॥ श्रीहरिः ॥ 42

कल्याण

श्रीहनुमान-अङ्क

[परिशिष्टाङ्कसहित]

[उनचासवें वर्षका विशेषाङ्क]

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित
'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

1184 श्रीकृष्णाङ्क
41 शक्ति-अङ्क
616 योगाङ्क
627 संत-अङ्क
604 साधनाङ्क
44 संक्षिप्त पद्मपुराण
539 संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण
1111 संक्षिप्त ब्रह्मपुराण
43 नारी-अङ्क
659 उपनिषद्-अङ्क
518 हिन्दू-संस्कृति-अङ्क
279 सं० स्कन्दपुराण
40 भक्त-चरिताङ्क
1183 सं० नारदपुराण
667 संतवाणी-अङ्क
587 सत्कथा-अङ्क
636 तीर्थाङ्क
1133 सं० श्रीमद्देवीभागवत (मोटा टाइप)
574 संक्षिप्त योगवासिष्ठ
789 सं० शिवपुराण (मोटा टाइप)
1773 गो-अङ्क
1793 श्रीमद्देवीभागवताङ्क (पूर्वार्द्ध)
1842 श्रीमद्देवीभागवताङ्क (उत्तरार्ध)
1932 श्रीलिङ्गमहापुराण (सटीक)
1947 भक्तमाल-अङ्क

42

॥ ॐ परमात्मने नमः ॥

कल्याण

श्रीहनुमान-अङ्क

[जनवरी, सन् १९७५ ई०]

[वर्ष ४९]

[संख्या १]

गीताप्रेस, गोरखपुर

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

श्रीहनुमान-अङ्क

उनचासवें वर्षका विशेषाङ्क

[परिशिष्टाङ्कसहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

सं० २०७१ तीसवाँ पुनर्मुद्रण ३,०००
कुल मुद्रण १,४९,०००

❖ मूल्य—₹ १५०
(एक सौ पचास रुपये)

जाके गति है हनुमानकी।
ताकी पैज पूजि आई, यह रेखा कुलिस पषानकी॥
अघटित-घटन, सुघट-बिघटन, ऐसी बिरुदावलि नहिं आनकी।
सुमिरत संकट-सोच-बिमोचन, मूरति मोद-निधानकी।
तापर सानुकूल गिरिजा हर, लखन, राम अरु जानकी॥
तुलसी कपिकी कृपा-बिलोकनि, खानि सकल कल्यानकी।
(विनय-पत्रिका ३०)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका, आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज, सह-सम्पादक—कृष्णचन्द्र अग्रवाल, एम्० ए०
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

e-mail : **booksales@gitapress.org** | website : **www.gitapress.org** | ✆ (0551) 2334721, 2331250

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

प्राचीन भारतके ऋषि-महर्षि अत्यन्त उच्चकोटिके ज्ञानी, भक्त और परोपकारी संत थे। उन्होंने लोक-कल्याणके लिये अपने भगवदीय ज्ञानका मुक्त हृदयसे प्रचार-प्रसार किया। जगदात्मा भगवान् एक ही हैं, फिर भी शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य, गणेश, स्कन्द तथा विष्णुके राम, कृष्ण, वामन, नृसिंह, मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंके नामपर उन्होंने पुराणों तथा उपासना-ग्रन्थोंकी रचना कर विभिन्न रुचिके प्राणियोंको उस एक ही परमात्माकी प्राप्तिकी ओर प्रेरित किया।

लोक-कल्याणकी दृष्टिसे 'कल्याण' पत्रिकाने भी उन्हीं ऋषियोंके पद-चिह्नोंका अनुसरण करते हुए कृष्णाङ्क, रामाङ्क, विष्णु-अङ्क, गणेशाङ्क प्रकाशित किये और पुराणोंकी परम्परामें भागवत, वामन, नृसिंह, विष्णु, मार्कण्डेय, स्कन्द, मत्स्य आदि पुराणाङ्क प्रकाशित किये और वाल्मीकीय रामायणाङ्क, मानसाङ्क, महाभारताङ्कके साथ-साथ गीता-तत्त्वाङ्क भी प्रकाशित किये।

इसी परम्परामें पाठकोंकी माँगपर शिवावतार रामभक्त हनुमानजीके नामपर भी एक विशेषाङ्क प्रकाशित करनेकी बात सोची गयी। हनुमानजीपर वेद, पुराण, रामायण, महाभारत और तुलसी-साहित्यमें प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। तन्त्र-साहित्यमें उनकी उपासनाके चमत्कारिक प्रभाव निर्दिष्ट हुए हैं और हनुमत्-उपासना, कल्पद्रुम आदि कई स्वतन्त्र ग्रन्थ भी हैं। मन्त्रमहोदधि, मन्त्रमहार्णव आदिमें उनकी अनेक उपासना-विधियाँ हैं। इन सबोंके आधारपर विद्वानोंने बहुत अच्छे लेख लिखे। वेदाचार्य गंगेश्वरानन्दजी महाराजने कुछ वैदिक मन्त्रोंका हनुमानपरक इतना सुन्दर अर्थ दिखलाया, जिसे पढ़कर यही लगा कि वास्तवमें उसके पद, अक्षर सब रामायणके उन्हीं अर्थोंको व्यक्त करते हैं जो हनुमानपरक हैं। इसीलिये प्राचीन विद्वान् नीलकंठ चातुरध्वरीकने अपने मन्त्र-रामायणमें मन्त्रोंके उद्धरणके साथ और गोस्वामी तुलसीदासजीने मानसमें बार-बार *'बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊ', 'तहाँ बेद अस कारन राखा'* और *'चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ'* आदिमें वेदोंमें रामचरित, हनुमच्चरित्रकी स्थिति मानी है।

इस प्रकार यह अङ्क अत्यन्त उपयोगी बन गया और फिर वाल्मीकि, अध्यात्म आदि सभी रामायणों, पुराणों आदिसे संग्रहकर स्वतन्त्र हनुमच्चरित्रकी विस्तृत क्रमबद्ध रचना कर हनुमानजीके जन्मसे लेकर अबतक उनके अमर रहकर किये गये क्रिया-कलापोंका भी परिचय दिया गया है; जैसे—द्वापरमें वे भीमसेनको मिले, अर्जुनके रथपर रहे और कलियुगमें गोस्वामीजीपर प्रसन्न रहकर उन्हें रामका दर्शन कराया और विविध भक्तोंकी मनोकामना पूर्ण की। इसी कारण देश-विदेशमें उनके अनेक मन्दिर और प्रतिमाएँ स्थापित की गयीं। जिनकी उपासनासे अनेक प्रकारके लोकोपकार तत्काल होते हैं। जिनमें अयोध्याकी हनुमानगढ़ी, काशीके संकटमोचन, राजस्थानके सालासर तथा अन्य भी ऐसे ही अनेक दिव्य अर्चावतारोंका उल्लेख हुआ है, जहाँ उनकी उपासनासे तत्काल चमत्कार प्रकट होते हैं और सभी क्लेश दूर हो जाते हैं।

साथ ही इस अङ्कमें हनुमानजीको तत्काल प्रसन्न करनेवाले विविध स्तोत्र, यन्त्र, मन्त्र और ध्यान-पद्धतियों आदिका समावेश किया गया है। इसमें उनकी षडङ्ग, दशाङ्ग-उपासनाकी विधियाँ भी निर्दिष्ट हुई हैं, जिनसे वे अतिशीघ्र प्रसन्न होते हैं और भक्तोंकी कामना पूर्ण कर देते हैं। इन सबोंके अतिरिक्त उनके भव्य चित्र और ऐसी घटनाओंका भी समावेश किया गया, जहाँ उनके ध्यान-स्मरण करते ही विपत्ति आदि दूर होने तथा उनके दर्शन आदि होनेकी बात भी सम्मिलित थी। फलतः यह अङ्क हाथों-हाथ तुरंत बिक गया और तभीसे अर्थात् १९७५ से ही इसके पुनः प्रकाशनकी माँग निरन्तर की जा रही है। साधनोंके अभाव व असुविधाके कारण इसका शीघ्र पुनः प्रकाशन सम्भव नहीं हो सका, पर पाठकोंकी माँग निरन्तर तेज होती गयी। अतः हमें दूसरे कार्योंको कुछ रोककर जैसे-तैसे इस बहुमूल्य अङ्कका पुनः प्रकाशन करना पड़ा। अतः पाठकोंसे निवेदन है कि वे यथासम्भव इसका संग्रह कर साधना-सम्बन्धी लाभ उठाकर हनुमत्प्राप्ति कर अपने जीवनको कृतार्थ करें।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरि: ॥

'श्रीहनुमान-अङ्क' की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

सीतारामपदाम्बुजे मधुपवद् यन्मानसं लीयते सीतारामगुणावली निशि दिवा यज्जिह्वया पीयते॥
सीतारामविचित्ररूपमनिशं यच्चक्षुषोर्भूषणं सीतारामसुनामधामनिरतं तं मारुतिं सम्भजे॥
(श्रीरामायण-रसायन)

वर्ष ४९ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२००, जनवरी १९७५ { संख्या १
पूर्ण संख्या ५७८

'रघुपतिप्रियभक्तं नमामि'

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥

(श्रीरामचरितमानस ५। श्लो० ३)

जो अतुल बलके धाम, सोनेके पर्वत (सुमेरु)-के समान कान्तियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वन (को ध्वंस करने)-के लिये अग्निरूप, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणोंके निधान, वानरोंके स्वामी और श्रीरघुनाथजीके प्रिय भक्त हैं, उन पवनपुत्र श्रीहनुमानजीको मैं प्रणाम करता हूँ।

राम राम

वेदोंमें श्रीहनुमच्चिन्तन

ॐ दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्।
ॐ अञ्जनीजाय विद्महे वायुपुत्राय धीमहि तन्नो हनुमान् प्रचोदयात्॥ (मन्त्रमहा० गायत्री-तन्त्र)
ॐ तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत् ते जनिम चारु चित्रम्।
पदं यद् विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्॥ (ऋक्संहिता ५। ३। ३)
प्र कृष्टिहेव शूष एति रोरुवदसुर्यं वर्णं नि रिणीते अस्य तम्।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृतमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना॥ (ऋक्संहिता ९। ७१। २)
इषुर्न धन्वन् प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते॥ (ऋक्संहिता ९। ६९। १)
नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतो ऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते।
आप्राः क्रतून् त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वो३रासदद्धरिः॥ (ऋक्संहिता ९। ७२। ५)
अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत।
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम्॥ (ऋक्संहिता १०। ५३। ७)
उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि।
पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान्द्रप्सः परिवारमर्षति॥ (साम० ११।३। १। २)

~~ ० ~~

श्रीहनुमानजीका त्रिकाल-स्मरण

श्रीहनुमानजीके अत्यन्त श्रद्धालु उपासकोंको चाहिये कि वे तीनों काल श्रीहनुमानजीका स्मरण-ध्यान करें। किंतु यदि ऐसा सम्भव न हो तो प्रातः या सायंकाल ही त्रैकालिक ध्यान-पूजन एक साथ भी कर सकते हैं। ध्यानके श्लोक भावार्थसहित यहाँ दिये जा रहे हैं—

(१)

प्रातः स्मरामि हनुमन्तमनन्तवीर्यं श्रीरामचन्द्रचरणाम्बुजचञ्चरीकम्।
लङ्कापुरीदहननन्दितदेववृन्दं सर्वार्थसिद्धिसदनं प्रथितप्रभावम्॥

जो श्रीरामचन्द्रजीके चरण-कमलोंके भ्रमर हैं, जिन्होंने लंकापुरीको दग्ध करके देवगणको आनन्द प्रदान किया है, जो सम्पूर्ण अर्थ-सिद्धियोंके आगार और लोकविश्रुत प्रभावशाली हैं, उन अनन्त पराक्रमशाली हनुमानजीका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ।

(२)

माध्यं नमामि वृजिनार्णवतारणैकाधारं शरण्यमुदितानुपमप्रभावम्।
सीताऽऽधिसिन्धुपरिशोषणकर्मदक्षं वन्दारुकल्पतरुमव्ययमाञ्जनेयम्॥

जो भवसागरसे उद्धार करनेके एकमात्र साधन और शरणागतके पालक हैं, जिनका अनुपम प्रभाव लोकविख्यात है, जो सीताजीकी मानसिक पीड़ारूपी सिन्धुके शोषण-कार्यमें परम प्रवीण और वन्दना करनेवालोंके लिये कल्पवृक्ष हैं, उन अविनाशी अञ्जनानन्दन हनुमानजीको मैं मध्याह्नकालमें प्रणाम करता हूँ।

(३)

सायं भजामि शरणोपसृताखिलार्तिपुञ्जप्रणाशनविधौ प्रथितप्रतापम्।
अक्षान्तकं सकलराक्षसवंशधूमकेतुं प्रमोदितविदेहसुतं दयालुम्॥

शरणागतोंके सम्पूर्ण दुःखसमूहका विनाश करनेमें जिनका प्रताप लोक-प्रसिद्ध है, जो अक्षकुमारका वध करनेवाले और समस्त राक्षसवंशके लिये धूमकेतु (अग्नि अथवा केतु ग्रहके तुल्य संहारक) हैं एवं जिन्होंने विदेहनन्दिनी सीताजीको आनन्द प्रदान किया है, उन दयालु हनुमानजीका मैं सायंकाल भजन करता हूँ।

~~ ० ~~

विभीषणकृतं हनुमत्स्तोत्रम्

(अनुवादक—पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल शास्त्री, साहित्यकेसरी)

नमो हनुमते तुभ्यं नमो मारुतसूनवे।
नमः श्रीरामभक्ताय श्यामास्याय च ते नमः॥ १॥

हनुमान! आपको नमस्कार है। मारुतनन्दन! आपको प्रणाम है। श्रीराम-भक्त! आपको अभिवादन है। आपके मुखका वर्ण श्याम है, आपको नमस्कार है॥ १॥

नमो वानरवीराय सुग्रीवसख्यकारिणे।
लङ्काविदाहनार्थाय हेलासागरतारिणे॥ २॥

आप सुग्रीवके साथ (भगवान् श्रीरामकी) मैत्रीके संस्थापक और लंकाको भस्म कर देनेके अभिप्रायसे खेल-ही-खेलमें महासागरको लाँघ जानेवाले हैं, आप वानर-वीरको प्रणाम है॥ २॥

सीताशोकविनाशाय राममुद्राधराय च।
रावणान्तकुलच्छेदकारिणे ते नमो नमः॥ ३॥

आप श्रीरामकी मुद्रिकाको धारण करनेवाले, सीताजीके शोकके निवारक और रावणके कुलके संहारकर्ता हैं, आपको बारम्बार अभिवादन है॥ ३॥

मेघनादमखध्वंसकारिणे ते नमो नमः।
अशोकवनविध्वंसकारिणे भयहारिणे॥ ४॥

आप अशोक-वनको नष्ट-भ्रष्ट कर देनेवाले और मेघनादके यज्ञके विध्वंसकर्ता हैं, आप भयहारीको पुनः-पुनः नमस्कार है॥ ४॥

वायुपुत्राय वीराय आकाशोदरगामिने।
वनपालशिरश्छेदलङ्काप्रासादभञ्जिने ॥ ५॥
ज्वलत्कनकवर्णाय दीर्घलाङ्गूलधारिणे।
सौमित्रिजयदात्रे च रामदूताय ते नमः॥ ६॥

आप वायुके पुत्र, श्रेष्ठ वीर, आकाशके मध्य विचरण करनेवाले और अशोक-वनके रक्षकोंका शिरश्छेदन करके लंकाकी अट्टालिकाओंको तोड़-फोड़ डालनेवाले हैं। आपकी शरीर-कान्ति प्रतप्त सुवर्णकी-सी है, आपकी पूँछ लम्बी है और आप सुमित्रा-नन्दन लक्ष्मणके विजय-प्रदाता हैं, आप श्रीरामदूतको प्रणाम है॥ ५-६॥

अक्षस्य वधकर्त्रे च ब्रह्मपाशनिवारिणे।
लक्ष्मणाङ्गमहाशक्तिघातक्षतविनाशिने ॥ ७॥
रक्षोघ्नाय रिपुघ्नाय भूतघ्नाय च ते नमः।
ऋक्षवानरवीरौघप्राणदाय नमो नमः॥ ८॥

आप अक्षकुमारके वधकर्ता, ब्रह्मपाशके निवारक, लक्ष्मणजीके शरीरमें महाशक्तिके आघातसे उत्पन्न हुए घावके विनाशक, राक्षस, शत्रु एवं भूतोंके संहारकर्ता और रीछ एवं वानर-वीरोंके समुदायके लिये जीवन-दाता हैं, आपको बारम्बार अभिवादन है॥ ७-८॥

परसैन्यबलघ्नाय शस्त्रास्त्रघ्नाय ते नमः।
विषघ्नाय द्विषघ्नाय ज्वरघ्नाय च ते नमः॥ ९ ॥

आप शस्त्रास्त्रके विनाशक तथा शत्रुओंके सैन्य-बलका मर्दन करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। विष, शत्रु और ज्वरके नाशक आपको प्रणाम है॥ ९॥

महाभयरिपुघ्नाय भक्तत्राणैककारिणे।
परप्रेरितमन्त्राणां यन्त्राणां स्तम्भकारिणे॥ १०॥
पयःपाषाणतरणकारणाय नमो नमः।

आप महान् भयंकर शत्रुओंके संहारक, भक्तोंके एकमात्र रक्षक, दूसरोंद्वारा प्रेरित मन्त्र-यन्त्रोंको स्तम्भित कर देनेवाले और समुद्र-जलपर शिला-खण्डोंके तैरनेमें कारणस्वरूप हैं, आपको पुनः-पुनः अभिवादन है॥१०½॥

बालार्कमण्डलग्रासकारिणे भवतारिणे॥ ११॥
नखायुधाय भीमाय दन्तायुधधराय च।
रिपुमायाविनाशाय रामाज्ञालोकरक्षिणे॥ १२॥
प्रतिग्रामस्थितायाथ रक्षोभूतवधार्थिने।
करालशैलशस्त्राय द्रुमशस्त्राय ते नमः॥ १३॥

आप बाल-सूर्य-मण्डलके ग्रास-कर्ता और भवसागरसे तारनेवाले हैं, आपका स्वरूप महान् भयंकर है, आप नख और दाँतोंको ही आयुधरूपमें धारण करते हैं तथा शत्रुओंकी मायाके विनाशक और श्रीरामकी आज्ञासे लोगोंके पालनकर्ता हैं, राक्षसों एवं भूतोंका वध करना ही आपका प्रयोजन है, प्रत्येक ग्राममें आप मूर्तरूपमें स्थित हैं, विशाल पर्वत और वृक्ष ही आपके शस्त्र हैं, आपको नमस्कार है॥ ११—१३॥

बालैकब्रह्मचर्याय रुद्रमूर्तिधराय च।
विहंगमाय सर्वाय वज्रदेहाय ते नमः॥ १४॥

आप एकमात्र बाल-ब्रह्मचारी, रुद्ररूपमें अवतरित और आकाशचारी हैं, आपका शरीर वज्रके समान कठोर है, आप सर्वस्वरूपको प्रणाम है॥ १४॥

कौपीनवाससे तुभ्यं रामभक्तिरताय च।
दक्षिणाशाभास्कराय शतचन्द्रोदयात्मने॥ १५॥
कृत्याक्षतव्यथाघ्नाय सर्वक्लेशहराय च।
स्वाम्याज्ञापार्थसंग्रामसंख्ये संजयधारिणे॥ १६॥
भक्तान्तदिव्यवादेषु संग्रामे जयदायिने।
किल्किलाबुबुकोच्चारघोरशब्दकराय च॥ १७॥
सर्पाग्निव्याधिसंस्तम्भकारिणे वनचारिणे।
सदा वनफलाहारसंतृप्ताय विशेषतः॥ १८॥
महार्णवशिलाबद्धसेतुबन्धाय ते नमः।

कौपीन ही आपका वस्त्र है, आप निरन्तर श्रीराम-भक्तिमें निरत रहते हैं, दक्षिण दिशाको प्रकाशित करनेके लिये आप सूर्य-सदृश हैं, सैकड़ों चन्द्रोदयकी-सी आपकी शरीर-कान्ति है, आप कृत्याद्वारा किये गये आघातकी व्यथाके नाशक, सम्पूर्ण कष्टोंके निवारक, स्वामीकी आज्ञासे पृथा-पुत्र अर्जुनके संग्राममें मैत्रीभावके संस्थापक, विजयशाली, भक्तोंके अन्तिम दिव्य वाद-विवाद तथा संग्राममें विजय-प्रदाता, 'किलकिला' एवं 'बुबुक' के उच्चारणपूर्वक भीषण शब्द करनेवाले, सर्प, अग्नि और व्याधिके स्तम्भक, वनचारी, सदा जंगली फलोंके आहारसे विशेषरूपसे संतुष्ट और महासागरपर शिलाखण्डोंद्वारा सेतुके निर्माणकर्ता हैं, आपको नमस्कार है॥ १५—१८½ ॥

वादे विवादे संग्रामे भये घोरे महावने॥ १९॥
सिंहव्याघ्रादिचौरेभ्यः स्तोत्रपाठाद् भयं न हि।

इस स्तोत्रका पाठ करनेसे वाद-विवाद, संग्राम, घोर भय एवं महावनमें सिंह-व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं तथा चोरोंसे भय नहीं प्राप्त होता॥ १९½ ॥

दिव्ये भूतभये व्याधौ विषे स्थावरजङ्गमे॥ २०॥
राजशस्त्रभये चोग्रे तथा ग्रहभयेषु च।
जले सर्वे महावृष्टौ दुर्भिक्षे प्राणसम्प्लवे॥ २१॥
पठेत् स्तोत्रं प्रमुच्येत भयेभ्यः सर्वतो नरः।
तस्य क्वापि भयं नास्ति हनुमत्स्तवपाठतः॥ २२॥

यदि मनुष्य इस स्तोत्रका पाठ करे तो वह दैविक तथा भौतिक भय, व्याधि, स्थावर-जंगम-सम्बन्धी विष, राजाका भयंकर शस्त्र-भय, ग्रहोंका भय, जल, सर्प, महावृष्टि, दुर्भिक्ष तथा प्राण-संकट आदि सभी प्रकारके भयोंसे मुक्त हो जाता है। इस हनुमत्स्तोत्रके पाठसे उसे कहीं भी भयकी प्राप्ति नहीं होती॥ २०—२२॥

सर्वदा वै त्रिकालं च पठनीयमिदं स्तवम्।
सर्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ २३॥

नित्य-प्रति तीनों समय (प्रातः, मध्याह्न, संध्या) इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये। ऐसा करनेसे सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति हो जाती है। इस विषयमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है॥ २३॥

विभीषणकृतं स्तोत्रं ताक्ष्र्येण समुदीरितम्।
ये पठिष्यन्ति भक्त्या वै सिद्धयस्तत्करे स्थिताः॥ २४॥

विभीषणद्वारा किये गये इस स्तोत्रका गरुडने सम्यक् प्रकारसे पाठ किया था। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका पाठ करेंगे, समस्त सिद्धियाँ उनके करतल-गत हो जायँगी॥ २४॥

इति श्रीसुदर्शनसंहितायां विभीषणगरुडसंवादे विभीषणकृतं हनुमत्स्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

इस प्रकार श्रीसुदर्शन-संहितामें विभीषण-गरुड-संवादमें विभीषणद्वारा किया हुआ हनुमत्स्तोत्र पूर्ण हुआ॥

श्रीमदाद्यशंकराचार्यकृतं श्रीहनुमत्पञ्चरत्नस्तोत्रम्

वीताखिलविषयेच्छं जातानन्दाश्रुपुलकमत्यच्छम्।
सीतापतिदूताद्यं वातात्मजमद्य भावये हृद्यम्॥ १॥
तरुणारुणमुखकमलं करुणारसपूरपूरितापाङ्गम्।
संजीवनमाशासे मञ्जुलमहिमानमञ्जनाभाग्यम्॥ २॥
शम्बरवैरिशरातिगमम्बुजदलविपुललोचनोदारम्।
कम्बुगलमनिलदिष्टं बिम्बज्वलितोष्ठमेकमवलम्बे॥ ३॥

जिनके हृदयसे समस्त विषयोंकी इच्छा दूर हो गयी है, (श्रीरामके प्रेममें विभोर हो जानेके कारण) जिनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू और शरीरमें रोमाञ्च हो रहे हैं, जो अत्यन्त निर्मल हैं, सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके प्रधान दूत हैं, मेरे हृदयको प्रिय लगनेवाले उन पवनकुमार हनुमानजीका मैं ध्यान करता हूँ॥ १॥ बाल रविके समान जिनका मुखकमल लाल है, करुणारसके समूहसे जिनके लोचन-कोर भरे हुए हैं, जिनकी महिमा मनोहारिणी है, जो अञ्जनाके सौभाग्य हैं, जीवनदान देनेवाले उन हनुमानजीसे मुझे बड़ी आशा है॥ २॥ जो कामदेवके बाणोंको जीत चुके हैं, जिनके कमलपत्रके समान विशाल एवं उदार लोचन हैं, जिनका शङ्खके समान कण्ठ और बिम्बफलके समान अरुण ओष्ठ हैं, जो पवनके सौभाग्य हैं, एकमात्र उन हनुमानजीकी ही मैं शरण लेता हूँ॥ ३॥

दूरीकृतसीतार्तिः प्रकटीकृतरामवैभवस्फूर्तिः।
दारितदशमुखकीर्तिः पुरतो मम भातु हनुमतो मूर्तिः॥ ४॥
वानरनिकराध्यक्षं दानवकुलकुमुदरविकरसदृक्षम्।
दीनजनावनदीक्षं पवनतपःपाकपुञ्जमद्राक्षम्॥ ५॥
एतत् पवनसुतस्य स्तोत्रं यः पठति पञ्चरत्नाख्यम्।
चिरमिह निखिलान् भोगान् भुक्त्वा श्रीरामभक्तिभाग् भवति॥ ६॥

॥ इति श्रीमदाद्यशङ्कराचार्यकृतं हनुमत्पञ्चरत्नस्तोत्रम्॥

जिन्होंने सीताजीका कष्ट दूर किया और श्रीरामचन्द्रजीके ऐश्वर्यकी स्फूर्तिको प्रकट किया, दशवदन रावणकी कीर्तिको मिटानेवाली वह हनुमानजीकी मूर्ति मेरे सामने प्रकट हो॥ ४॥ जो वानर-सेनाके अध्यक्ष हैं, दानवकुलरूपी कुमुदोंके लिये सूर्यकी किरणोंके समान हैं, जिन्होंने दीनजनोंकी रक्षाकी दीक्षा ले रखी है, पवनदेवकी तपस्याके परिणामपुञ्ज उन हनुमानजीका मैंने दर्शन किया॥ ५॥ पवनकुमार श्रीहनुमानजीके इस 'पञ्चरत्न' नामक स्तोत्रका जो पाठ करता है, वह इस लोकमें चिर-कालतक समस्त भोगोंको भोगकर श्रीराम-भक्तिका भागी होता है॥ ६॥

संकष्टमोचनस्तोत्रम्

(ब्रह्मलीन काशीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दसरस्वतीविरचित)

सिन्दूरपूररुचिरो बलवीर्यसिन्धुर्बुद्धिप्रवाहनिधिरद्भुतवैभवश्रीः।
दीनार्तिदावदहनो वरदो वरेण्यः संकष्टमोचनविभुस्तनुतां शुभं नः॥ १॥

जो सिन्दूर-स्नानसे सुन्दर देहयुक्त, बल-वीर्यके सागर, बुद्धि-प्रवाहके आकर और अद्भुत ऐश्वर्यके धाम हैं, जो दीनोंके दु:खोंका नाश करनेके लिये दारुण दावानलके समान हैं तथा जो वरदान-तत्पर, सर्वकामपूरक, संकटघटाविदारक और सर्वव्यापी हैं, वे संकटमोचन प्रभु हमलोगोंके लिये मङ्गलकारी हों॥ १॥

सोत्साहलङ्घितमहार्णवपौरुषश्रीर्लङ्कापुरीप्रदहनप्रथितप्रभावः ।
घोराहवप्रमथितारिचमूप्रवीरः प्राभञ्जनिर्जयति मर्कटसार्वभौमः॥ २॥

उन वानरराज-चक्रवर्तीकी जय हो, जो उत्साहपूर्वक महासिन्धुको लाँघ गये, जिनकी पुरुषार्थ-लक्ष्मी देदीप्यमान है, लंकानगरीके दहनसे जिनकी प्रभाव-प्रभा दिग्दिगन्तव्याप्त है और जो घोर राम-रावण-युद्धमें शत्रु-सेनाका मथन करनेमें महान् वीर तथा प्रभञ्जन-पवनको आनन्द देनेवाले—पवनकुमार हैं॥ २॥

द्रोणाचलानयनवर्णितभव्यभूतिः श्रीरामलक्ष्मणसहायकचक्रवर्ती।
काशीस्थदक्षिणविराजितसौधमल्लः श्रीमारुतिर्विजयते भगवान् महेशः॥ ३॥

जो संजीवनीके लिये द्रोणगिरिको ही उठा लाये थे, जो सुन्दर भव्य विभूतिसम्पन्न, श्रीराम-लक्ष्मणके सेवक-सहायकोंमें चक्रवर्तिशिरोमणि और मल्लवीर काशीपुरीके दक्षिण भाग-स्थित दिव्य भवनमें विराजमान हैं, ऐसे महेश—रुद्रावतार भगवान् मारुतिकी जय हो॥ ३॥

नूनं स्मृतोऽपि दयते भजतां कपीन्द्रः सम्पूजितो दिशति वाञ्छितसिद्धिवृद्धिम्।
सम्मोदकप्रिय उपैति परं प्रहर्षं रामायणश्रवणतः पठतां शरण्यः॥ ४॥

वे वानरराज स्मरणमात्रसे भक्तोंपर दया करनेवाले हैं और विधिपूर्वक सम्पूजित होनेपर सभी मनोरथोंकी तथा सुख-समृद्धिकी पूर्ति-वृद्धि करनेवाले हैं। वे मोदक (लड्डू)-प्रिय अथवा भक्तोंको विशेष मुदित करनेवाले हैं। रामायण-श्रवणसे उन्हें परम हर्ष प्राप्त होता है और वे पाठकोंकी पूर्णतया रक्षा करनेवाले हैं॥ ४॥

श्रीभारतप्रवरयुद्धरथोद्धतश्रीः पार्थैककेतनकरालविशालमूर्तिः।
उच्चैर्घनाघनघटाविकटाट्टहासः श्रीकृष्णपक्षभरणः शरणं ममास्तु॥ ५ ॥

महाभारत-महायुद्धमें रथपर जिनकी शोभा समुद्यत हुई है, पृथानन्दन अर्जुनके रथकेतुपर जिनकी विकराल विशाल मूर्ति विराजमान है, घनघोर मेघ-घटाके गम्भीर गर्जनके समान जिनका विकट अट्टहास है, ऐसे श्रीकृष्णपक्ष (पाण्डव-सैन्य)-के पोषक (अद्भुत चन्द्र) मेरे शरणदाता हों॥ ५॥

जङ्घालजङ्घ उपमातिविदूरवेगो मुष्टिप्रहारपरिमूर्च्छितराक्षसेन्द्रः।
श्रीरामकीर्तितपराक्रमणोद्धवश्रीः प्राकम्पनिर्विभुरुदञ्चतु भूतये नः॥ ६ ॥

उन विशाल जङ्घावाले श्रीहनुमानका वेग उपमासे रहित—अनुपम है, जिनकी मुष्टिके प्रहारसे राक्षसराज रावण मूर्च्छित हो गया था, जिनके पराक्रमकी अद्भुत श्रीका कीर्तन स्वयं भगवान् श्रीराम करते हैं, ऐसे प्रकम्पन (मारुत)-नन्दन, सर्वव्यापक श्रीहनुमान हमें विभूति प्रदान करनेके लिये तत्पर हों॥ ६॥

सीतार्तिदारुणपटुः प्रबलः प्रतापी श्रीराघवेन्द्रपरिरम्भवरप्रसादः।
वर्णीश्वरः सविधिशिक्षितकालनेमिः पञ्चाननोऽपनयतां विपदोऽधिदेशम्॥ ७ ॥

सीताके शोक-संतापके विनाशमें निपुण, प्रबल प्रतापी श्रीहनुमान भगवान् श्रीराघवेन्द्रके आलिङ्गनरूप दिव्य वर-प्रसादसे सम्पन्न हैं। जो वर्णियों—ब्रह्मचारियोंके शिरोमणि तथा कपट-साधु कालनेमिको विधिवत् शिक्षा देनेवाले हैं, वे पञ्चमुख हनुमानजी हमारी विपत्तियोंका सर्वथा अपसारण (दूर) करें॥ ७॥

उद्यद्भानुसहस्रसंनिभतनुः पीताम्बरालंकृतः
प्रोज्ज्वालानलदीप्यमाननयनो निष्पिष्टरक्षोगणः।
संवर्तोद्यतवारिदोद्धतरवः प्रोच्चैर्गदाविभ्रमः
श्रीमान् मारुतनन्दनः प्रतिदिनं ध्येयो विपद्भञ्जनः॥ ८ ॥

जिनका श्रीविग्रह उदीयमान सहस्र सूर्यके सदृश अरुण तथा पीताम्बरसे सुशोभित है, जिनके नेत्र अत्यन्त प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त हैं, जो राक्षस-समूहको नि:शेषतया पीस देनेवाले हैं, प्रलयकालीन मेघ-गर्जनाके तुल्य जिनकी घोर गर्जना है, जिनके मुद्गर (गदा)-का भ्रमण अतिशय दिव्य है, ऐसे शोभा-प्रभा-संवलित मारुतनन्दन विपद्विभञ्जन श्रीहनुमानजीका प्रतिदिन ध्यान करना चाहिये॥ ८॥

रक्षःपिशाचभयनाशनमामयाधिप्रोच्चैर्ज्वरापहरणं दमनं रिपूणाम्।
सम्पत्तिपुत्रकरणं विजयप्रदानं संकष्टमोचनविभोः स्तवनं नराणाम्॥ ९ ॥

संकट-मोचन प्रभु श्रीहनुमानका स्तवन (गुण-गान) मानवमात्रके लिये राक्षस-पिशाच (भूत-प्रेत)-के भयका विनाशक, आधि-व्याधि-शोक-संताप-ज्वर-दाहादिका प्रशमन करनेवाला, शत्रु-दमन, पुत्र-सम्पत्तिका दाता एवं विजय प्रदान करनेवाला है॥ ९॥

दारिद्र्यदुःखदहनं विजयं विवादे कल्याणसाधनममङ्गलवारणं च।
दाम्पत्यदीर्घसुखसर्वमनोरथाप्तिं श्रीमारुतेः स्तवशतावृतिरातनोति॥ १०॥

श्रीमारुतनन्दनकी इस स्तुतिका सौ बार पाठ करनेसे दरिद्रता और दु:खोंका दहन, वाद-विवादमें विजय-प्राप्ति, समस्त कल्याणमङ्गलोंकी अवाप्ति तथा अमङ्गलोंकी निवृत्ति, गृहस्थ-जीवनमें दीर्घकालपर्यन्त सुख-प्राप्ति तथा सभी मनोरथोंकी पूर्ति होती है॥ १०॥

स्तोत्रं य एतदनुवासरमस्तकामः श्रीमारुतिं समनुचिन्त्य पठेत् सुधीरः।
तस्मै प्रसादसुमुखो वरवानरेन्द्रः साक्षात्कृतो भवति शाश्वतिकः सहायः॥ ११॥

जो कोई विवेकशील धीर मानव निष्कामभावसे श्रीमारुतनन्दनका विधिपूर्वक चिन्तन करते हुए इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके समक्ष प्रसादसुमुख—परमसौम्य वानरेन्द्र श्रीहनुमानजी साक्षात् प्रकट होते हैं और नित्य उसकी रक्षा-सहायता करते हैं॥ ११॥

संकष्टमोचनस्तोत्रं शंकराचार्यभिक्षुणा।
महेश्वरेण रचितं मारुतेश्चरणेऽर्पितम्॥ १२॥

भिक्षु (संन्यासी) शंकराचार्य श्रीमहेश्वर (श्रीमहेश्वरानन्दसरस्वती महाराज)-ने इस 'संकष्टमोचनस्तोत्र'-की रचना की है और वे इसे श्रीमारुतिके चरणोंमें समर्पित कर रहे हैं॥ १२॥

मन्त्रात्मकं श्रीमारुतिस्तोत्रम्

ॐ नमो वायुपुत्राय भीमरूपाय धीमते।
नमस्ते रामदूताय कामरूपाय श्रीमते॥ १॥

मोहशोकविनाशाय सीताशोकविनाशिने।
भग्नाशोकवनायास्तु दग्धलङ्काय वाग्मिने॥ २॥

ॐ भयंकर रूपधारी बुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमानको नमस्कार है। जो स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ, मोह एवं शोकके विनाशक, सीताजीके शोकके निवारक, अशोकवनके विध्वंसक, लंकाको भस्म करनेवाले और कुशल वक्ता हैं, उन श्रीमान् रामदूतको नमस्कार है॥ १-२॥

गतिनिर्जितवाताय लक्ष्मणप्राणदाय च।
वनौकसां वरिष्ठाय वशिने वनवासिने॥३॥

तत्त्वज्ञानसुधासिन्धुनिमग्नाय महीयसे।
आञ्जनेयाय शूराय सुग्रीवसचिवाय ते॥ ४॥

जिन्होंने अपने वेगसे वायुको भी जीत लिया है, जो लक्ष्मणके प्राणदाता, बंदरोंमें श्रेष्ठ, जितेन्द्रिय, वनमें निवास करनेवाले, तत्त्व-ज्ञानरूपी सुधा-सिन्धुमें निमग्न, महान् ऐश्वर्यशाली और सुग्रीवके सचिव हैं, उन शूरवीर अञ्जनानन्दनको प्रणाम है॥ ३-४॥

जन्ममृत्युभयघ्नाय सर्वक्लेशहराय च।
नेदिष्ठाय प्रेतभूतपिशाचभयहारिणे॥ ५॥

यातनानाशनायास्तु नमो मर्कटरूपिणे।
यक्षराक्षसशार्दूलसर्पवृश्चिकभीहृते॥ ६॥

जो जन्म-मृत्युरूपी भयके विध्वंसक, सम्पूर्ण कष्टोंके विनाशक, (भगवान् श्रीरामके) परम निकटवर्ती, भूत, प्रेत और पिशाचके भयके निवारक, पीडाके नाशक और यक्ष, राक्षस, सिंह, सर्प एवं बिच्छूके भयको मिटा देनेवाले हैं, उन बंदररूपधारी हनुमानजीको अभिवादन है॥ ५-६॥

महाबलाय वीराय चिरंजीविन उद्धते।
हारिणे वज्रदेहाय चोल्लङ्घितमहाब्धये॥ ७॥
बलिनामग्रगण्याय नमो नः पाहि मारुते।

जो महासागरको लाँघ जानेवाले, अहंकारियोंके गर्वहारी, चिरंजीवी और बलवानोंमें अग्रगण्य हैं, जिनका शरीर वज्र-सरीखा कठोर है, उन महाबली वीरवर हनुमानजीको नमस्कार है। मारुतनन्दन! हमारी रक्षा कीजिये॥ ७½॥

लाभदोऽसि त्वमेवाशु हनुमन् राक्षसान्तक॥ ८॥

यशो जयं च मे देहि शत्रून् नाशय नाशय।

राक्षसोंके लिये कालस्वरूप हनुमान ! आप शीघ्र ही लाभ प्रदान करनेवाले हैं, अतः मुझे यश और विजय प्रदान कीजिये तथा मेरे शत्रुओंका सर्वथा नाश कर दीजिये॥ ८½॥

स्वाश्रितानामभयदं य एवं स्तौति मारुतिम्।
हानिः कुतो भवेत्तस्य सर्वत्र विजयी भवेत्॥ ९॥

जो मनुष्य इस प्रकार अपने आश्रित जनोंके लिये अभयप्रदाता हनुमानजीका स्तवन करता है, वह सर्वत्र विजयी होता है। भला, उसकी हानि हो ही कैसे सकती है?॥ ९॥

॥ इति श्रीहृत्पुण्डरीकाधिष्ठितश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीवासुदेवानन्दसरस्वतीकृतं श्रीमारुतिस्तोत्रम्॥

—शुक्ल

श्रीहनुमत्-गाथा

(रचयिता—पं० श्रीरामजी पाण्डेय, बी० ए०, काव्यरत्न)

(१)

देव ! वाणी, मन हमारे जल रहे संतापमें।
आज दोनों हों प्रतिष्ठित, हों समाहित आपमें॥
लेखनी लिपिबद्ध कर दे आपके यश-गानको।
शान्ति पाऊँ, शान्ति दूँ, प्रत्येक मनको, कानको॥

(२)

एक दिन ब्रह्मादि पहुँचे शम्भुके कैलासपर।
शम्भु ध्यानारूढ़ थे चैतन्यके आकाशपर॥
वेद-मन्त्रोंसे सभी वे प्रार्थना करने लगे।
शब्दसे आकाशके भी कानको भरने लगे॥

(३)

शम्भु भी व्युत्थित हुए, की रीति शिष्टाचारकी।
आगमनका हेतु पूछा, प्रीति की कर्तारकी॥
दीन-से बोले विधाता, 'देव ! उस दिन विष्णुने।
प्रार्थना सुन ली हमारी दनुजके विजिगिष्णुने॥

(४)

आपके अनुरोधसे वादा किया अवतारका।
प्रण किया कुलके सहित दशकंधके संहारका॥
हम निजी अज्ञानसे फिर भी प्रभो ! भयभीत हैं।
दीखते लक्षण सभी अनुमानसे विपरीत हैं॥

(५)

आप भी सहयोगको हरिके सहित अवतार लें।
धर्मके उद्धारके अधिकारका कुछ भार लें'॥
शैलजा संकोचमें थीं शम्भुकी मुस्कानसे।
देवतागण देखते थे यह सभी हैरान-से॥

(६)

मन उमाका ताड़कर जगदीशने उत्तर दिया।
देवगण, ब्रह्मा, उमा-सबको प्रफुल्लित कर दिया॥
'विष्णु-सेवक-भूमिका-निर्वाहकी है कामना।
पार्वतीको साथ लेनेकी नहीं सम्भावना॥

(७)

अस्तु, अपना अंश ही मैं दे सकूँगा आपको।
जो अलं भू-पाप-दानव-वंशके संतापको॥
पार्वती सूक्ष्मांश-रूपा शक्तिभूता पासमें।
संनिहित निर्दोष होंगी वीर राघव-दासमें'॥

(८)

देवगण ब्रह्मा-सहित कृतकृत्य होकर चल पड़े।
शिव-शिवानी-नेत्र हरिकी याद करते ढल पड़े॥
शम्भुने इसके लिये अपनी अपेक्षित आयुको।
कार्यको अनुमान कर रोका तपनको, वायुको॥

(९)

दे उन्हें निर्देश अति संक्षेपसे संकेतसे।
दी विदाई प्रेमसे अवगत करा अभिप्रेतसे॥
आप हो संलग्न तपमें शैलजाके साथमें।
व्यापिनी ऊर्जा समेटी शीघ्र अपने हाथमें॥

(१०)

यक्ष था अभिशप्त होकर केसरी वानर बना।
अप्सरा शप्ता उसीकी प्रेयसी थी अञ्जना॥
स्वर्णगिरिके शिखरपर आनन्दसे रहने लगे।
प्रान्तका शासन सफल वे शान्तिसे करने लगे॥

(११)

भव-भवानीकी निरन्तर कर रहे आराधना।
पूर्ण द्वादश वर्ष थे, मनमें न कोई कामना॥
सुखद पावसका महीना व्योम मेघाच्छन्न था।
और वसुधातल चतुर्दिक् शस्यसे सम्पन्न था॥

(१२)

पूर्ण थे नौ मास, मंगल-ग्रह सभी एकत्र थे।
मांगलिक लक्षण सुशोभित दीखते सर्वत्र थे॥
प्रसव-पीड़ाके बिना अद्भुत गुणोंके बालको।
अञ्जना जन्मा रही थी राक्षसोंके कालको॥

(१३)

शम्भुने, पवमानने, पतिने उसे दर्शन दिये।
देवगणने हर्षसे नभसे सुमन वर्षण किये॥
चन्द्रमाकी भाँति वह बालक सतत बढ़ने लगा।
वर्ण सब पढ़ने लगा, आयुष्यपर चढ़ने लगा॥

(१४)

एक दिन वह सो रहा था, माँ गयी बाहर कहीं।
जागकर रोने लगा आहारको पाकर नहीं॥
उदय-गिरिसे अंशुमाली त्यों लगे थे झाँकने।
नित्यकी ही भाँति रथको जा रहे थे हाँकने॥

(१५)

मित्रने आकृति बनायी जानकर अतिरञ्जिनी।
द्रवित नीलम-सिन्धुमें कलधौत कोमल कञ्जिनी॥
बिम्बको अनुपम अलौकिक फल समझ अनुमानसे।
उत्प्लवन शिशुने किया हुंकार कर जी-जानसे॥

(१६)

चिर प्रतिश्रुत वृत्तका मनमें सहज अनुमान कर।
सूर्यने सूक्ष्मांशका शिशुमें दिया आधान कर॥
तीन महती शक्तियोंका भार बालक बन गया।
विश्वके आधारका आधार बालक बन गया॥

(१७)

भू-गुरुत्वाकर्ष-कक्षा पारकर चलने लगा।
तीव्र तापन-तापसे प्रत्यङ्ग ज्यों जलने लगा॥
वायुने आश्चर्यसे, भयसे, सुशीतस्पर्शसे।
पुत्रको अपने सम्हाला मुग्धभाव-विमर्शसे॥

(१८)

शाम्भवी माया ! उसी दिन राहु ग्रसने आ गया।
गगनमें रवि-वर्णको पीताभ करके छा गया॥
लीलया लाङ्गूलधरने लील डाला लालको।
राहुने देखा सभय दुर्दान्त उद्धृत बालको॥

(१९)

कौन है यह बाल, जिसका मुख गगन-सा हो गया।
पिण्ड भीमाकार, जिसमें यह तपन-सा खो गया॥
लौटकर देवेन्द्रसे सारी कहानी दी सुना।
इन्द्रका अभिमान मानो बढ़ गया अस्सीगुना॥

(२०)

इन्द्र बोले क्रोधसे, 'राहो! तुम्हारे धड़ नहीं।
केतुके धड़ है, नहीं सिर, तदपि कोरे जड़ नहीं॥
फिर तुम्हारे अर्थ भोजन-पान होना चाहिये।
लोकमें अमृतप्रतिष्ठा ध्यान होना चाहिये॥

(२१)

देख जो वैरी तुम्हारा शत्रु मेरा घोर है।
दूसरेका स्वत्व हरता, क्यों नहीं वह चोर है।
देवता, मानव, असुर हो, अन्य प्राणी वन्य हो।
शौर्य त्रिभुवन-धन्य हो, प्रख्यात वीरम्मन्य हो॥

(२२)

अस्थि-निर्मित वज्र मेरा देख, राहो! यह चला।
मृत्यु-पारावारमें निस्सार वह तृण बह चला॥
हा अरे ! यह क्या हुआ, स्वयमेव पवि निस्सार है।
आजतक अव्यर्थ था, वह वज्र अब बेकार है॥

(२३)

भग्न करके वाम हनु वह आप ही मुरझा गया।
एक जटिल प्रहेलिकामें वह मुझे उलझा गया॥
दौड़कर जाओ, विधातासे कहो इस वृत्तको।
दण्ड देनेका उपक्रम वे करें दुर्वृत्तको'॥

(२४)

इन्द्रपर झपटा, उसे ले भीत ऐरावत गिरा।
राहुपर लपका, डरा वह इन्द्रके अभिमुख फिरा॥
शून्यमें सुस्थिर खड़ा था काँपता आहत सिरा।
दूसरा वह रवि-सुमन नक्षत्र-मण्डलसे घिरा॥

(२५)

पुष्प वर्षा बीच बालकको उठा पवमानने।
केसरीको दे दिया उस मेरु-गिरिके सामने॥
वायुके उपचारसे वह बाल संज्ञा-प्राप्त था।
जदपि इस हित अञ्जनाका क्षीर ही पर्याप्त था॥

(२६)

वायु फिर भी क्षुब्ध थे सूर्येन्द्रके व्यवहारसे।
या अलौकिक-वृत्तके माया-बहुल व्यापारसे॥
रोक ली क्षणभर उन्होंने शक्ति निज संजीवनी।
रवि-सहित भी सृष्टि निर्व्यापार हो अन्धी बनी॥

(२७)

भानु भी अत्यन्त लघु शिशुके अपरिमित तेजसे।
हो गये हतबुद्धि-से, निष्प्राण-से, निस्तेज-से॥
देवगणने आ वहाँ पूछा सकल वृत्तान्तको।
कर दिया संकेत रविने काष्ठ-मौन कृतान्तको॥

(२८)

सूर्य बतलाने लगे, जब आ गये कुछ होशमें।
बाल था या काल था, मुख व्याप्त अगणित क्रोशमें॥
सूक्ष्म-वपु-धारी पवनसे गुप्त था रक्षित हुआ।
लक्षणोंसे शम्भुसे बल-प्राप्त-सा लक्षित हुआ॥

(२९)

वे सभी आये, जहाँ थी स्वर्णगिरिकी वह गुहा।
आवरण घनतम बना था, छा रही हिमकी कुहा॥
उन्मना थे केसरी, थी अञ्जना अवनत-मुखी।
शान्त मुद्रा शिव किये थे, वायु भी अति ही दुखी॥

(३०)

प्रमुदिता पर पार्वती परिणामको पहचानकर।
अर्भकी आगम्यमाना कीर्तिका अनुमान कर॥
देवगण थे बोलते वरदानकी वचनावली।
सारगर्भित शब्दमय अनुरागमय रचनावली॥

(३१)

शक्तियाँ अपनी उसे दीं सर्वदेवोंने तभी।
काम आयेंगी किसी दिन रामजीके वे सभी॥
सर्वदा संसारकी दावाग्निमें संतप्तको।
शान्ति देंगी त्राण देकर जीव विषयासक्तको॥

(३२)

सूर्यने विद्या-विनयमें अन्यतम शिशुको किया।
इन्द्रने अमरत्वका वरदान बालकको दिया॥
वरुणने अवगाहिता दी, अग्निने निर्दाहता।
ईशने दी ईशिता, गति वायुने अव्याहता॥

(३३)

यक्षपतिने सम्पदा दी, शैलजाने भक्ति दी।
वेदने प्रागल्भ्य, यमने पाशमोचन-शक्ति दी॥
साथ ही की देवगणने घोषणा वरदानकी।
तुष्टिप्रद होगी हमें आराधना हनुमानकी॥

(३४)

देव दानव यक्ष किंनर नाग या गन्धर्वमें।
मर्त्य-मानव सिद्ध प्रेत पिशाच निशिचर सर्वमें॥
पशु-विहग चर-अचर तीनों काल त्रिभुवनमें कहीं।
केसरी-सुतके यथा हरि-भक्त हो सकता नहीं॥

(३५)

अञ्जना सुर नर सभीकी पूज्य जननी वन्द्य है।
आजसे तव किम्पुरुषकी जाति सृष्टि-अनिन्द्य है॥
धन्य है वह दक्षिणापथ भूमि, जिसमें जात हो।
कौन भारतमें कहे, त्रैलोक्यमें विख्यात हो॥

हमारे हनुमानजी

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी शारदापीठाधीश्वर स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराजका शुभाशीर्वाद)

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम्।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम्॥

इस पवित्र भारतभूमिपर जन्म-प्राप्त प्रत्येक धर्माभिमानी व्यक्ति श्रीमद्रामायणको अवश्य जानता है, साथ ही वह उसके प्रतिपाद्य मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी जीवनी भी न्यूनाधिकरूपसे जानता ही है। यह पवित्र ग्रन्थ हमारा मार्गदर्शक है। श्रीरामजीकी जीवनी हमारे लिये आदर्श है। हमारे सारे उत्तम संस्कार और आचरणोंपर रामायणका प्रभाव है ही।

हमारी माताएँ बचपनमें ही हमें श्रीराम-कथा सुनाती हैं। कीर्तनमण्डलियाँ भी श्रीरामजीके भजन गाकर लोगोंको आनन्द-सागरमें निमग्न कर देती हैं। कथावाचक भी श्रीरामकथा कहते-सुनाते हुए अपने एवं सभी श्रोताओंके जीवन-स्तरको ऊँचा करने-करानेके प्रयत्नमें सफल होते हैं। एक ही रामायणमें माता-पिता, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, सहोदर-बन्धु, राजा-प्रजा एवं स्वामी-सेवक—इन सबको अपने एवं दूसरोंके प्रति कर्तव्यताके लिये जो कुछ सीखना होता है, मिल जाता है। यद्यपि श्रीरामायणके प्रधान नायक मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम ही हैं, तथापि इसमें सुन्दरकाण्डसे आगे तो श्रीरामभक्त हनुमानजीकी ही जीवनी—चरित्रचित्रण अधिक विस्तारसे देखनेको मिलता है। रामायणमें कुल सात काण्ड हैं। उसके चौथे किष्किन्धाकाण्डके आरम्भमें ही श्रीहनुमानजी आते हैं। वहाँपर उनके गुणोंका अच्छा परिचय मिलता है।

श्रीरामचन्द्रजी स्वयं कहते हैं—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥

(वा० रा० ४।३।२८)

ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेदकी शिक्षा पाये बिना कोई भी व्यक्ति इस प्रकार वार्तालाप नहीं कर सकता—इतनी श्रेष्ठ सम्भाषणकुशलता नहीं प्राप्त कर सकता। तात्पर्य यह कि श्रीहनुमानजी समस्त विद्याओंमें पारंगत हैं।

इस प्रकार किष्किन्धाकाण्डसे लेकर युद्धकाण्डके अन्तमें वर्णित श्रीरामचन्द्रजीके पट्टाभिषेकतक प्रायः प्रत्येक प्रकरणमें श्रीहनुमानजी प्रधानरूपसे विराजते हैं। इनकी कथाके बिना रामायण अधूरी ही रह जाती। इनको हम श्रीरुद्रका अवतार मानते हैं और '**रुद्रमूर्तये नमः**' कहकर इनकी पूजा भी करते हैं। इनके स्मरणसे बुद्धि, बल, यश, धीरता, निर्भयता, आरोग्य, सुदृढ़ता और वाक्पटुता भी प्राप्त होती है—

बुद्धिर्बलं यशो धैर्यं निर्भयत्वमरोगता।
सुदार्ढ्यं वाक्स्फुरत्वं च हनुमत्स्मरणाद् भवेत्॥

(आनन्दरा० मनोहर० १३। १६)

भगवदवतारस्वरूप श्रीहनुमानजीकी स्वतन्त्र उपासना-पद्धति भी है। उसके अनुसार अनुष्ठान करनेसे इष्ट-प्राप्ति होती है और आत्मा तर जाती है। 'कल्याण'-के इस विशेषाङ्क तथा अन्य अङ्कोंमें भी वह पाठकोंको देखनेको मिलेगी।

श्रीरामभक्त हनुमानजीके मन्दिर भी हमारे भारतमें प्रायः सभी गाँवोंमें हैं। श्रीहनुमानजीकी सपर्या कर आप सब कृतार्थ हों, यही हमारी शुभ कामना है।

'तौ हनुमंत कहाऊँ'

हौं प्रभु जू कौ आयसु पाऊँ।
अबहीं जाइ, उपारि लंक गढ़, उदधि पार लै आऊँ॥
अबहीं जंबूद्वीप इहाँ तैं, लै लंका पहुँचाऊँ।
सोखि समुद्र उतारौं कपि-दल, छिनक बिलंब न लाऊँ॥
अब आवैं रघुबीर जीति दल, तौ हनुमंत कहाऊँ।
'सूरदास' सुभ पुरी अजोध्या, राघव सुबस बसाऊँ॥

(सूर-रामचरितावली ११३)

श्रीहनुमत्तत्त्व

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पश्चिमाम्नाय द्वारकाशारदापीठाधीश्वर
श्रीमदभिनवसच्चिदानन्दतीर्थस्वामीजी महाराजका प्रसाद)

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम्॥

हमारे सनातनधर्ममें अनेक उपास्य देवता हैं। स्मार्त्तोपासनामें पञ्चदेवोपासना प्रसिद्ध है ही, किंतु इन सभी उपास्य देवोंमें यदि किसीको ब्रह्मचर्यका मूर्तिमान् स्वरूप कहा जा सकता है तो वे हैं हमारे श्रीहनुमानजी ही। अतः सम्यक् ब्रह्मचर्य-परिपालन, शत्रु-निग्रह, काम-विजय, कार्य-सिद्धि आदिकी दृष्टिसे ये रुद्रावतार श्रीहनुमानजी अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। उपासना-पद्धतिकी जानकारीके लिये तो रामायणस्थ हनुमच्चरित्रका अवलोकन परमावश्यक है; क्योंकि दास्य-भक्तिके लिये हनुमानजी ही प्रमुख उदाहरण हैं। जैसा पद्यावलीके इस ६३ वें श्लोकमें कहा गया है—

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकिः कीर्तने
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम्॥

स्वयं वानर होनेपर भी दास्य-भक्तिके प्रतापसे भगवान् श्रीरामचन्द्रके प्रिय दास होते हुए भी आप देवता बन गये। यह सिद्धि दूसरा कोई कपिपति नहीं प्राप्त कर सका।

श्रीहनुमानजीका आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-पालनका आदर्श सर्वथा अद्वितीय है। इतिहासमें इसका ऐसा अन्य श्रेष्ठ उदाहरण कहीं नहीं मिलता। अदर्शन, अस्पर्शन, अस्मरण, असंकल्प आदि सामान्य ब्रह्मचर्यके आठ अङ्ग निर्दिष्ट हैं। किंतु इसके मूलमें एतदर्थ योग-वेदान्तादिके स्वाध्यायद्वारा दिव्य ज्ञान, वैराग्य एवं अभ्यास भी आवश्यक होते हैं तथा जन्मान्तरीय स्थिति भी देखी जाती है। इन सभी दृष्टियोंसे साधनसम्पन्न रुद्रावतार श्रीहनुमानजीने आजन्म ब्रह्मचर्यके परिपालनद्वारा अपनेको अपरिमित शक्तिशाली बनाकर श्रीरामायण-कथाको भी अमर बना दिया। इसमें लेशमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है।

तथापि श्रीहनुमानजीकी उपासना 'उग्र' कही गयी है, अतः साधकको तत्सम्बन्धी आभिचारिक (मारण, मोहन आदि) उपासनाएँ नहीं करनी चाहिये। अस्तु, हम उन्हें सादर नमस्कार करते हुए इस निबन्धका उपसंहार करते हैं—

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि॥

महाबलवान् भगवान् हनुमान

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पूर्वाम्नाय जगन्नाथपुरीक्षेत्रस्थ गोवर्धनपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी महाराज)

अञ्जनीपुत्र, पवनसुत, शंकरसुवन, केसरीनन्दन आदि पद संत-शिरोमणि, कविशिरोमणि, भक्तशिरोमणि, कलिपावनावतार श्रीतुलसीदासजीने महाबलवान् भगवान् श्रीहनुमानजीके लिये प्रयुक्त किये हैं। लोगोंको भ्रम होता है कि एक साथ ये इतने व्यक्तियोंके पुत्र कैसे कहे गये? किंतु वस्तुस्थितिपर विचार करें तो सब सुव्यवस्थित ही है। भगवान् भूतभावन विश्वनाथ शंकरके अवतार होनेके कारण ये शंकरसुवन हैं। '**आत्मा वै जायते पुत्रः**' इस शास्त्र-वचनानुसार वानरराज केसरीके औरस पुत्र होनेके कारण इन्हें केसरीनन्दन कहना सर्वथा सुसङ्गत ही है। पुञ्जिकस्थला नामकी अप्सरा शापभ्रष्ट होकर कामरूप वानरीके रूपमें अवतरित हुई। एक बार वह मनुष्यरूपमें दिव्यातिदिव्य वस्त्राभूषणसे सुसज्जित हो पर्वतपर विचरण कर रही थी। वायुदेवने एक सपाटेमें उसकी ओर वहन किया। उसने तुरंत कहा—'कौन मुझ पतिव्रताका स्पर्श करके अपने सर्वनाशको आमन्त्रित कर पतनके घोर गर्तमें गिरनेको लालायित हो रहा है ?' सर्वप्राण वायुदेव बोले—'देवि ! ऐसी बात नहीं है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक अशरणशरण अकारणकरुण करुणावरुणालय निर्गुण-निराकार भगवान् भूभारापहरणार्थ मानवरूप धारणकर रावणादि असुरोंका कदन करनेके लिये अवतरित हो रहे हैं। मैं उनकी सेवाके लिये तुम्हारे उदरमें पुत्ररूपमें आना चाहता हूँ, कृपया क्षमा करें।' बस, पवनसुत और अञ्जनीपुत्र-रूपसे इनकी विख्यातिका यही कारण है।

इन सब बातोंपर विश्वास न करनेवाले सज्जनोंसे भी इतना मान लेनेकी आशा तो हमें रखनी ही चाहिये कि श्रीहनुमानजी महाराजके रूपमें एक निखरा हुआ व्यक्तित्व सबके सामने आता है। एक अकेला व्यक्ति रावण-जैसे विश्वविजयी शत्रुके घरमें घुसकर अपना ध्येय पूर्ण करनेके बाद शत्रुसमुदायसे घिरा होनेपर भी निर्भीक रूपसे ललकारकर अपने स्वामीका जय-जयकार करता हुआ कहता है—'खबरदार ! मेरा सामना करनेकी थोड़ी-सी भी चेष्टा विनाशक सिद्ध होगी। मैं उन स्वामीका सेवक हूँ, जो स्वयं अति बलवान् हैं और जिनके अनुज भी वैसे ही हैं। वानरराज सुग्रीव उनके सेवक बन चुके हैं, जिनके बल-पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं। फिर मैं उन स्वामीका सेवक हूँ, जिन्हें संसारमें कठिन-से-कठिन कार्य करनेमें भी कोई क्लेश नहीं होता। मैं स्वयं भी वह हनुमान हूँ, जिसके शरीरपर इन्द्रका वज्र भी कुछ प्रभाव न डाल सका। समस्त संसार भी शत्रु बनकर अपनी सेनाएँ मेरे सामने भेज दे तो मैं उनका विनाश करके ही छोड़ूँगा। याद रखो, मैं वायुदेवका पुत्र होनेके कारण उतना ही बलवान् भी हूँ।' 'अजी, और कहीं यह डींग हाँको, पता भी है—यह रावणकी लंका है, जिससे सभी देव-दानव-मानव थर्राते हैं ?' 'होगी; हमें इसकी चिन्ता नहीं। एक क्या हजारों रावण भी अकेले मेरे सामने नहीं टिक सकते।' 'रावणके पास तोप, टैंक, मशीनगन, एटमबम, हाइड्रोजन बम, राकेट आदि हैं, तुम्हारे पास तो कुछ नहीं।' 'ये सब-के-सब धरे ही रह जायँगे। जब मैं पर्वतों, पर्वत-शिलाओं, वृक्षों-महावृक्षोंसे प्रहार करने लगूँगा तो सृष्टि उलट-पलट हो जायगी। तुमसे जो करते बने, करो। मैं इस सोनेकी लंकाको तहस-नहसकर, रावणके देखते-देखते जगन्माता जानकीके चरणोंमें प्रणाम कर, अपना काम पूरा करके चला जाऊँगा और तुम सभी हाथ मलते और पछताते ही रह जाओगे।'

कहना न होगा कि महाबलवान् भगवान् हनुमानने ये सब-की-सब प्रतिज्ञाएँ एकाकी, असहाय और अस्त्रबल, शस्त्रबल, सैन्यबल एवं संघटनबलसे शून्य होते हुए भी केवल बुद्धिबल और बाहुबलके आधारपर परिपूर्ण कीं। इष्टदेव भगवान् चन्द्रमौलीश्वर और भगवती विमलाम्बाके चरणोंमें हमारी विनम्र प्रार्थना है कि इस संकटके समय राष्ट्रमें घर-घर एवं जन-जनमें भगवान् हनुमान-जैसी भावना और कार्य-क्षमता उत्पन्न हो।

वर्तमान कालमें श्रीहनुमदुपासनाकी आवश्यकता

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य उत्तराम्नाय बदरीक्षेत्रस्थ ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराजका प्रसाद)

आज भारतमें अर्थ-कामके धर्म-नियन्त्रित न होनेसे अमर्यादित एषणाएँ पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हो रही हैं। आबाल-वृद्ध नर-नारी कामाचार, अभक्ष्यभक्षण आदि प्रवृत्तियोंमें फँसकर—विमोहित होकर व्यक्ति, समाज, देश एवं राष्ट्रके प्रति अपने कर्तव्यसे परिभ्रष्ट हो रहे हैं। जहाँ थोड़ी-बहुत धार्मिकता एवं आध्यात्मिकताके अंश विद्यमान भी हैं, वहाँ भी उनके आवरणमें दम्भ, पाखण्ड आदि दुष्प्रवृत्तियाँ कार्य कर रही हैं। इस विषम विमोहक दु:स्थितिमें अञ्जनी-नन्दन, केसरी-कुमार बालब्रह्मचारी श्रीहनुमानजीकी उपासना परमावश्यक है; क्योंकि उनके चरित्रसे हमें ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन, चरित्र-रक्षण, बल-बुद्धिका विकास, अपने इष्ट भगवान् श्रीरामके प्रति अभिमानरहित दास्य-भाव आदि गुणोंकी शिक्षा प्राप्त होती है।

'देवो भूत्वा देवं यजेत्'—यह उपासनाका मुख्य सिद्धान्त है और इसका 'उप' अर्थात् समीप, 'आसना' अर्थात् स्थित होना अर्थ है। जिस उपासनाद्वारा अपने इष्टदेवमें उनकी गुण-धर्म-रूप शक्तियोंमें सामीप्य-सम्बन्ध स्थापित होकर तदाकारता हो जाय, अभेद-सम्बन्ध हो जाय, यही उसका तात्पर्य एवं उद्देश्य है।

आजकी इस विषम परिस्थितिमें मनुष्यमात्रके लिये, विशेषतया युवकों एवं बालकोंके लिये भगवान् हनुमानकी उपासना अत्यन्त आवश्यक है। हनुमानजी बुद्धि-बल-वीर्य प्रदान करके भक्तोंकी रक्षा करते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस आदि उनके नामोच्चारणमात्रसे ही भाग जाते हैं और उनके स्मरणमात्रसे अनेक रोगोंका प्रशमन होता है। मानसिक दुर्बलताओंके संघर्षमें उनसे सहायता प्राप्त होती है। गोस्वामी तुलसीदासजीको श्रीरामके दर्शनमें उन्हींसे सहायता प्राप्त हुई थी। वे आज भी जहाँ श्रीराम-कथा होती है, वहाँ पहुँचते हैं और मस्तक झुकाकर, रोमाञ्च-कण्टकित होकर, नेत्रोंमें अश्रु भरकर श्रीराम-कथाका सादर श्रवण करते हैं। इस प्रकार वे भगवद्भक्तोंमें अव्यक्तरूपसे उपस्थित होकर उनकी भक्ति-भावनाओंका पोषण करते हैं। आज भी अधिकांश भक्तोंको उनके अनुग्रहका प्रसाद मिलता है। अत: उनकी कृपाकी उपलब्धिके लिये शास्त्रोंमें प्रतिपादित उपासना-पद्धतिके अनुसार, जिसमें श्रीहनुमदुपासना विस्तारसे वर्णित है, उपासनामें संलग्न होनेसे अनेक प्रकारकी लौकिक-पारलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। भारतको समुन्नत बनानेके लिये भौतिक क्षेत्रमें भी अनेक कार्य किये जा रहे हैं, किंतु जितना आध्यात्मिक पक्षपर बल दिया जाना चाहिये, उतना नहीं दिया जा रहा है। फलत: भौतिक समृद्धि मनुष्यके लिये वरदान न बनकर अभिशाप होने जा रही है। ऐसी परिस्थितिमें राष्ट्रको जिस आदर्शकी आवश्यकता है, वह मूर्तिमान् होकर हनुमच्चरित्रमें उपलब्ध होता है। हनुमानजी भगवत्तत्त्वविज्ञान, पराभक्ति और सेवाके ज्वलन्त उदाहरण हैं। विचारोंकी उत्तमताके साथ भगवदनुरक्ति और सेवा व्यक्तित्वके पूर्ण विकासकी द्योतक हैं, जो हनुमानजीके चरित्रमें देखी जा सकती हैं। भारतके भटकते हुए नवयुवकोंको हनुमानजीसे बहुत बड़ी प्रेरणा प्राप्त हो सकती है।

हनुमानजी बालब्रह्मचारी हैं। उनके ध्यान एवं ब्रह्मचर्यानुष्ठानसे निर्मल अन्त:करणमें भक्तिका समुदय भली प्रकार होता है। हनुमानजीके चरित्रमें शक्तिसंचय, उसका सदुपयोग, भगवद्भक्ति, निरभिमानिता आदिका पूर्ण विकास होनेके कारण उनकी आराधनासे इन गुणोंकी उपलब्धि साधक युवकों एवं बालकोंको भी हो सकेगी।

महामनाकी हार्दिक इच्छा

श्रीमहावीरजी मनके समान वेगवाले और शक्तिशाली हैं। ······ मेरी हार्दिक इच्छा है कि उनका दर्शन लोगोंको गली-गलीमें हो। मुहल्ले-मुहल्लेमें श्रीहनुमानजीकी मूर्ति स्थापित करके लोगोंको दिखलायी जाय। जगह-जगह अखाड़े हों, जहाँ इनकी मूर्तियाँ स्थापित की जायँ।

—महामना पं० श्रीमदनमोहनजी मालवीय

सर्वगुणसम्पन्न श्रीहनुमान

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य ऊर्ध्वाम्नाय काशी-सुमेरुपीठाधीश्वर स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराजका प्रसाद)

समस्त भारतमें अञ्जनीनन्दन पवनतनय श्रीहनुमानजीका महत्त्व पूजा एवं उपासनाकी दृष्टिसे अप्रतिम है। श्रीहनुमानजीके उपासक, पूजक न केवल सनातन-धर्मावलम्बी ही हैं, अपितु अन्य मतावलम्बी भी हैं। कतिपय ऐसे व्यक्तियोंसे मेरा सुपरिचय है, जो हनुमानजीके अनन्य उपासक हैं, यद्यपि उनका सम्बन्ध मूलत: जैनमत तथा आर्यसमाजसे है। शाक्त, शैव आदि सम्प्रदायोंके लोग भी श्रीहनुमानजीकी पूजा-अर्चना श्रद्धासे करते हैं। शास्त्रका सिद्धान्त है कि '**कार्यं कारणमन्तरेण नोत्पद्यते**' अर्थात् कोई भी कार्य कारणके बिना उत्पन्न नहीं होता। अत: श्रीहनुमानजीकी इस महती लोकप्रियताके मूलमें निश्चितरूपसे कोई प्रबल कारण छिपा हुआ है।

संस्कृत-वाङ्मयमें श्रीहनुमानजीकी कीर्तिवैजयन्ती सर्वत्र फहरा रही है। इन्हें शिवका अवतार माना जाता है। उत्सव एवं व्रत-सम्बन्धी प्राय: सभी निबन्ध-कथाओंमें, विशेषत: वायुपुराणमें इनके विषयमें स्पष्टरूपसे यह वचन प्राप्त होता है—

आश्विनस्यासिते पक्षे स्वात्यां भौमे च मारुतिः।
मेषलग्नेऽञ्जनागर्भात् स्वयं जातो हरः शिवः॥

अर्थात् आश्विन (चान्द्रमास—कार्तिक)-के कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको स्वाती नक्षत्र और मेष लग्नमें माता अञ्जनाके गर्भसे स्वयं भगवान् शंकर ही प्रकट हुए।

किसीके व्यक्तित्व, स्वभाव, बल, पौरुष आदिका परिचय प्राप्त करनेके लिये उसके विषयमें स्वयंका कथन, तत्कालीन व्यक्तियोंका वर्णन, उसके विरोधियोंके कथन आदि प्रधान साधन माने जाते हैं। इस दृष्टिसे हमें श्रीहनुमानजीके विषयमें विचार करनेपर उनका लोकोत्तर एवं दिव्य स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

ऋक्षराज जाम्बवान्जी कहते हैं—

हनूमन् हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि।
रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च॥
पक्षयोर्यद् बलं तस्य भुजवीर्यबलं तव।
विक्रमश्चापि वेगश्च न ते तेनापहीयते॥
बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुंगव।
विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न बुध्यसे॥

(वा० रा० ४। ६६। ३, ६-७)

'हनुमानजी! तुम वानरराज सुग्रीवके तुल्य हो। यही नहीं, प्रत्युत तेज तथा बलमें तुम श्रीरामचन्द्रजी और श्रीलक्ष्मणजीके समान हो। गरुड़जीके दोनों पंखोंमें जितना बल है, तुम्हारी दोनों भुजाओंमें भी उतना ही बल और पराक्रम है। अत: तुम्हारा विक्रम एवं वेग भी उनसे किसी प्रकार कम नहीं है। वानरश्रेष्ठ ! तुम्हारा बल, बुद्धि, तेज तथा सत्त्व (उत्साह) समस्त प्राणियोंसे विशिष्ट अर्थात् अधिक है। फिर तुम अपना स्वरूप क्यों नहीं पहचानते?'

श्रीजाम्बवान्के उपर्युक्त वचन श्रीहनुमानजीके बल, बुद्धि, तेज और सत्त्वके विषयमें कितना महत्त्वपूर्ण चित्र उपस्थित करते हैं।

वानरराज सुग्रीव हनुमानजीसे कहते हैं—

न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये।
नाप्सु वा गतिभङ्गं ते पश्यामि हरिपुंगव॥
सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः।
विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः॥
गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे।
पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः॥
तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते।
तद् यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय॥
त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः।
देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित॥

(वा० रा० ४। ४४। ३—७)

'वानरश्रेष्ठ! मैं देखता हूँ कि भूमि, अन्तरिक्ष, आकाश, अमरालय अथवा जलमें भी तुम्हारी गतिका अवरोध नहीं है। तुम असुर, गन्धर्व, नाग, नर, देवता, सागर और पर्वतोंसहित समस्त लोकोंको जानते हो। वीर महाकपे! गति, वेग, तेज और फुर्ती—ये सभी सद्गुण तुममें अपने महापराक्रमी पिता वायुके ही समान हैं। तुम्हारे समान इस पृथ्वीपर दूसरा कोई तेजस्वी नहीं है। अतएव वीर! ऐसा प्रयत्न करो जिससे सीताका (शीघ्र) पता लग जाय। नीतिशास्त्रविशारद हनुमान! तुममें बल, बुद्धि, विक्रम तथा देश एवं कालका अनुसरण और नीतिका ज्ञान भी पूर्णरूपसे है।'

महर्षि अगस्त्यसे भगवान् श्रीराघवेन्द्र कहते हैं—

अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च।
न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम॥

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः॥
दृष्ट्वैव सागरं वीक्ष्य सीदन्तीं कपिवाहिनीम्।
समाश्वास्य महाबाहुर्योजनानां शतं प्लुतः॥
धर्षयित्वा पुरीं लङ्कां रावणान्तःपुरं तदा।
दृष्टा सम्भाषिता चापि सीता ह्याश्वासिता तथा॥
सेनाग्रगा मन्त्रिसुताः किंकरा रावणात्मजः।
एते हनुमता तत्र एकेन विनिपातिताः॥
भूयो बन्धाद् विमुक्तेन भाषयित्वा दशाननम्।
लङ्का भस्मीकृता येन पावकेनैव मेदिनी॥
न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः॥
एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः॥
हनूमान् यदि मे न स्याद् वानराधिपतेः सखा।
प्रवृत्तिमपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान् भवेत्॥

(वा० रा० ७।३५।२—१०)

'यद्यपि वाली और रावणमें अतुल बल था, तथापि मेरी समझमें ये दोनों भी हनुमानजीके समान न थे। शौर्य, दक्षता, बल, धैर्य, प्राज्ञता, नीतिपूर्वक कार्य करनेकी क्षमता, पराक्रम तथा प्रभाव इन सभी सद्‌गुणोंने हनुमानजीके भीतर घर कर रखा है। सीताके अन्वेषणमें तत्पर वानरी सेना समुद्रको देखकर जब विकल हो रही थी, तब महावीर हनुमानने उसे आश्वासन दिया तथा वे सौ योजन समुद्रको लाँघ गये। पुनः लंकापुरीकी अधिष्ठात्री राक्षसीको परास्तकर उन्होंने रावणके अन्तःपुरको देखा, सीताका पता लगाया, उनसे वार्तालाप करके उन्हें ढाढस बँधाया। पुनः वीर हनुमानने अकेले ही रावणके सेनापतियों, मन्त्रिपुत्रों, किंकरोंका तथा रावण-पुत्र अक्षकुमारका वध किया। पश्चात् ब्रह्मास्त्रके बन्धनसे छूटकर उन्होंने रावणसे वार्तालाप करते हुए उसे फटकारा और अग्नि जैसे पार्थिव पदार्थोंको जलाती है, उसी प्रकार लंकापुरीको जलाकर भस्म कर दिया। युद्धके समय हनुमानजीने जो अद्वितीय पराक्रमके कार्य किये, वैसे काल, इन्द्र, विष्णु तथा कुबेरके भी नहीं सुने जाते। इन्हींके बाहुबलसे मैंने लंका, सीता, लक्ष्मण, राज्य, मित्र और बान्धवोंको प्राप्त किया है। अधिक क्या कहूँ, यदि वानराधिपति सुग्रीवके मित्र श्रीहनुमानजी न होते, उनकी सहायता मुझे न मिलती तो सीताका पता भी कौन लगा सकता था?'

श्रीहनुमानजी लंकामें रावणके अन्तःपुरमें जाकर वहाँके दृश्यको देखनेके अनन्तर विचार करते हैं—

परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति॥
न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी।

× × × ×

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते॥
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम्॥

(वा० रा० ५।११।३८-३९, ४१-४२)

'रावणके अन्तःपुरमें प्रसुप्त स्त्रियोंका मैंने दर्शन किया। कहीं यह कार्य मेरे धर्मका लोप तो न कर देगा इत्यादि? पुनः स्वयं ही इसका समाधान करते हुए वे कहते हैं कि यद्यपि मैंने रावणकी स्त्रियोंका दर्शन किया है, तथापि मेरे मनमें कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ है। समस्त इन्द्रियोंकी शुभाशुभ-प्रवृत्तिमें मन ही कारण होता है और मेरा वह मन सर्वथा विकारशून्य रहा है, अतः धर्मलोपका यहाँ कोई प्रसङ्ग नहीं है।' इस उक्तिसे श्रीहनुमानजी परमयोगी सिद्ध होते हैं।

रावण भी कहता है—

न ह्यहं तं कपिं मन्ये कर्मणा प्रति तर्कयन्।

(वा० रा० ५।४६।६)

''उसके अद्‌भुत पराक्रमको जानते हुए मैं उसे वानरमात्र नहीं मान सकता।' उसे इन्द्र आदिने अपने तपोबलसे हमारे विनाशके लिये वानररूप बनाया होगा। सेनापतियो! आपलोग उसका अपमान न करना; क्योंकि वह अत्यन्त धीर एवं पराक्रमशाली है। मैंने वाली, सुग्रीव आदिको भी देखा है, परंतु उन सबकी इस वानरकी गति, तेज, पराक्रम, मति, बल, उत्साह आदिमें तुलना नहीं की जा सकती।

महत्सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम्॥

(वा० रा० ५।४६।१४)

'यह वानररूपमें निश्चित ही कोई महाबलशाली अलौकिक पौरुषसम्पन्न प्राणी है।'' इस प्रकार रावण-जैसा दुर्दान्त शत्रु हनुमानजीसे आन्तरिक रूपसे भयाक्रान्त हो जाता है। इसलिये श्रीहनुमानजीकी दिव्यतामें कोई संशयका स्थान ही नहीं हो सकता।

'रामरहस्योपनिषद्' के आधारपर श्रीहनुमानजी ब्रह्म-ज्ञानियोंमें सर्वोत्तम ज्ञानीके रूपमें उपलब्ध होते हैं—

सनकाद्या योगिवर्या अन्ये च ऋषयस्तथा।
प्रह्लादाद्या विष्णुभक्ता हनुमन्तमथाब्रुवन्॥
वायुपुत्र महाबाहो किं तत्त्वं ब्रह्मवादिनाम्।
पुराणेष्वष्टादशसु स्मृतिष्वष्टादशस्वपि॥
चतुर्वेदेषु शास्त्रेषु विद्यास्वाध्यात्मिकेऽपि च।
सर्वेषु विद्यादानेषु विघ्नसूर्येशशक्तिषु।
एतेषु मध्ये किं तत्त्वं कथय त्वं महाबल॥

(१।२—४)

"ऋषिगण, प्रह्लाद आदि विष्णु-भक्त तथा योगियों एवं ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ सनकादि भी श्रीहनुमानजीके पास जाकर जिज्ञासापूर्वक प्रश्न करते हैं—'महाबाहु वायुपुत्र! अठारह पुराणों, अठारह स्मृतियों, चारों वेदों, छहों शास्त्रों, सभी विद्याओं तथा आध्यात्मिक शास्त्रमें ब्रह्मवादियोंका तत्त्व क्या है? अर्थात् ब्रह्मवादी किस तत्त्वको यथार्थ सत्य मानते या ब्रह्मरूपसे समझते हैं। सम्पूर्ण विद्याओंके दानमें तथा गणेश, सूर्य, शिव और शक्ति—इनमें यथार्थ तत्त्व क्या है? महाबली हनुमानजी! हम सबपर अनुग्रह करके आप उस तत्त्वका कथन कीजिये।"

इस प्रकार सनकादि-जैसे ब्रह्मज्ञानियोंका जिज्ञासुरूपसे श्रीहनुमानजीसे तत्त्वविषयक प्रश्न करना तथा उन्हें उनके द्वारा उपदेश दिया जाना स्पष्टतया श्रीहनुमानजीकी तत्त्वदर्शिताका परिचायक है। इन्हीं सब कारणोंसे संतशिरोमणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी श्रीरामचरितमानसके सुन्दरकाण्डमें श्रीहनुमानजीकी वन्दना करते हुए उनके उपर्युक्त गुणगणविशिष्ट स्वरूपका वर्णन करते हैं—

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥

प्रसन्नता तथा आनन्दका विषय यह है कि श्रीहनुमानजी आज भी हम सबकी आराधनाके आधारपर हमारे कष्टोंको दूर करते हैं, हम सबकी चित्तवृत्तिको दैवी शक्तिकी ओर उन्मुख करते हैं एवं अपनी अदृश्य प्रेरणासे भगवान्में श्रद्धा एवं भक्तिका स्रोत प्रवाहित करते हैं।

भगवान् श्रीरामने स्पष्ट शब्दोंमें श्रीहनुमानजीसे कहा है—

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर॥
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्।

(वा० रा० ७।१०८।३३ $\frac{1}{2}$)

'वानरराज! जबतक लोकमें मेरी कथाओंका प्रचार रहे, तबतक तुम मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो।'

श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामकी आज्ञा सहर्ष शिरोधार्य करते हुए कहते हैं—

यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी॥
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्।

(वा० रा० ७।१०८।३५ $\frac{1}{2}$)

'भगवन्! जबतक संसारमें आपकी पावन कथाका प्रचार रहेगा, तबतक मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ भूमण्डलपर अवस्थित रहूँगा।'

श्रीमारुतिका महत्त्व

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर वरिष्ठ स्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी महाराजका प्रसाद)

श्रीमद्रामायण एक ऐसा महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ है, जो मानव-जीवनके लिये धर्मशास्त्रोंकी तरह ही धर्मका प्रबोध करता है। इसमें कई पात्र प्रतिबिम्बित होते हैं—जैसे लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, विश्वामित्र, सुग्रीव, विभीषण आदि। किंतु श्रीराम और माता सीता इसके प्रधान पात्र हैं। इन दोनोंके द्वारा श्रीहनुमानजी प्रधान बने हैं। अञ्जनादेवीके पुत्र होनेके कारण इनका नाम 'आञ्जनेय' पड़ा। मरुत्‌का अर्थ है—वायु। मरुत्‌का पुत्र होनेके कारण इन्हें 'मारुति' भी कहा जाता है। श्रीरामके अवतारको पूर्ण एवं सफल बनानेके लिये रामायणमें श्रीहनुमान ही प्रधान पात्र परिलक्षित होते हैं। ये रामायणके एक ऐसे महान् पात्र हैं, जिन्होंने भगवान् श्रीरामको खोयी हुई सीताका संदेश दिया तथा रावणके संहार-कार्यमें भी उनकी पूर्ण सहायता की। श्रीमन्मारुति-पात्रके बिना रामायण रामायण ही नहीं रहती। श्रीहनुमानजी केवल शारीरिक बल-सम्पन्न ही नहीं, अपितु बुद्धि-बलसम्पन्न भी हैं। यदि उनका बल शरीरतक ही सीमित रहता तो उनके जीवनमें केवल युद्ध-ही-युद्ध रह जाता।

हनुमानजी बुद्धि-बलसम्पन्न, चतुर, प्रतिभावान् और समर्थ हैं, जो समय और संदर्भके अनुसार भाषण कर अपने कार्यमें सफलता प्राप्त करते हैं। उदाहरणार्थ—सीतामाताकी खोजमें अशोकवनमें पहुँचकर अपने आगमनका समाचार व्यक्त करनेके लिये उन्होंने जिस बौद्धिक प्रणालीका उपयोग किया, वही इसके लिये प्रबल प्रमाण है।

ऐसे महाबली और पर्वततक उखाड़ लानेवाले हनुमानजी अपने स्वामी श्रीरामके सम्मुख हाथ जोड़कर नतमस्तक हो केवल भक्तिभावसे ही विद्यमान रहते हैं। उन्होंने श्रीरामभद्रकी तन और मनसे जो महान् सेवा की, उसके प्रतिफलके रूपमें देनेके लिये श्रीरामचन्द्रजी-जैसे महान् दानीके पास भी कुछ नहीं था।

जो नि:स्वार्थभावसे सेवा करते हैं, उनके मनकी पवित्रता होती है और साथ-ही-साथ उन्हें आत्माका साक्षात्कार भी होता है। वही उसका प्रतिफल है। इसीलिये जो निरन्तर आत्माका साक्षात्कार करके अहर्निश श्रीरामके ध्यानमें मग्न रहते हैं, वे चिरंजीवी होते हैं। हनुमानजीके विषयमें श्रीमदाद्य शंकराचार्यने 'हनुमत्पञ्चरत्न' के नामसे पाँच श्लोक रचे हैं, जिनमें एक नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

दूरीकृतसीतार्तिः प्रकटीकृतरामवैभवस्फूर्तिः।
दारितदशमुखकीर्तिः पुरतो मम भातु हनुमतो मूर्तिः॥

अर्थात् 'श्रीराम-नाम' के स्मरणकी महिमासे ही हनुमानजीने माता सीताका दुःख दूर किया, श्रीराम-महिमाको व्यक्त किया, श्रीरामके वैभवको प्रकट किया, श्रीराम-नाम-जपकी महिमासे समुद्रको पार किया और अन्तमें लंका-प्रवेशके समय समुद्रपर पुल बाँधकर सुगमतासे सेनाके साथ लंकामें भी प्रवेश किया तथा रावणकी कीर्तिपताकाको ध्वस्त किया। ऐसे हनुमानजीका श्रीविग्रह मेरे सामने सुशोभित हो।

उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण घटनाओंके आधारपर हमें श्रीराम-नाम-स्मरणकी महिमा स्पष्टरूपसे विदित होती है। साधारणतया तो उपासक जिन-जिन मूर्तियोंकी उपासना करते हैं, उन-उनके नाम-जप या अनुष्ठानसे तत्सम्बन्धित देवताओंका साक्षात्कार कर लेते हैं। किंतु हनुमानजीकी बात अलग है, उन्हें 'श्रीराम-नाम' के अतिरिक्त अन्य कोई जप प्रसन्न नहीं कर सकता, श्रीराम-मन्त्र ही उनके लिये सर्वस्व है। इस महान् महिमाके कारण ही उन्होंने दशकण्ठका यश मिटा दिया था। हमारी भी यही कामना है कि ऐसे महिमापूर्ण हनुमानजी सदैव हमारे सम्मुख विद्यमान हों। साथ ही यह भी हमारी आकाङ्क्षा है कि सभी सज्जन इस प्रकारकी प्रार्थना करें और अपने जीवनमें हनुमानजीका साक्षात्कार कर लेनेका अहोभाग्य प्राप्त करें। आप किसी एक देवताकी आराधनाद्वारा तो एक ही फल प्राप्त कर सकते हैं, किंतु श्रीहनुमानजीकी आराधनाद्वारा तो आप बुद्धि, बल, कीर्ति, धीरता, निर्भीकता, आरोग्य, सुदृढ़ता और वाक्पटुता आदि सभी फल प्राप्त कर सकते हैं—

बुद्धिर्बलं यशो धैर्यं निर्भयत्वमरोगता।
सुदार्ढ्यं वाक्स्फुरत्वं च हनुमत्स्मरणाद् भवेत्॥

(आनन्दरा० मनोहर० १३।१६)

श्रीहनुमदुपासनामें सावधानी

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य बदरीक्षेत्रस्थ उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठाधीश्वर ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

घरमें नित्यप्रति श्रीहनुमानजी महाराजकी पूजा करनेसे भूत-प्रेत नहीं सताते। उनके नाममें अमोघ शक्ति है।

भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै॥

श्रीहनुमानजी महाराजको जो भी प्रसाद चढ़ाया जाय, वह शुद्ध घीमें शुद्धतापूर्वक घरपर बनाया हुआ होना चाहिये। यदि ऐसे प्रसादकी व्यवस्था न हो सके तो भोग लगाये ही नहीं। इसी प्रकार हनुमानजी महाराजको शुद्ध कूपजल अथवा गङ्गाजलसे स्नान कराना चाहिये। श्रीहनुमानजीका मन्दिर बनवानेके साथ ही कुआँ अवश्य बनवाना चाहिये, जिससे उपासक स्नानादि कार्य शुद्धतापूर्वक कर सके तथा देव-पूजनका कार्य पवित्रतापूर्वक सम्पन्न हो सके।

श्रीहनुमानजीके मन्दिरके पुजारीको सदाचारी होना चाहिये। शुद्ध सिन्दूर और शुद्ध घी आदिसे श्रीहनुमानजी महाराजका चोला चढ़ानेका विधान है। मन्दिरमें श्रीरामायण-के पाठसे हनुमानजी बड़े प्रसन्न होते हैं। प्रत्येक मंगलवार और शनिवारको दर्शन करनेसे तथा श्रीहनुमानचालीसाका पाठ करनेसे साधकका परम कल्याण होता है।

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

श्रीराम-भक्तिकी सजीव मूर्ति—श्रीहनुमान

(अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

परात्पर पूर्णब्रह्म श्रीरामका अवतार चतुर्व्यूहात्मक-मात्र न होकर पञ्चायतनरूपमें भी शास्त्रोंमें वर्णित है। एक ही ब्रह्मविभूति जहाँ चतुर्धा विभक्त होकर आविर्भूत हुई, वहाँ उसी परिवारके अनन्य अङ्ग श्रीहनुमानजी भी हैं। तत्कालीन विश्वमें अद्भुत, अलौकिक, दिव्य आनन्दामृतसिन्धुमें प्रफुल्लित श्रीराम-सरोजके दिव्यातिदिव्य सौरभके सहजोन्मत्त भ्रमर दो ही हुए—एक श्रीभरत और दूसरे श्रीहनुमान। इसी कारण गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें श्रीरामने हनुमानजीको कहा—*'तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना'* (मानस ४। २। ३½), *'तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई'* (ह० चा०)।

श्रीहनुमान श्रीराम-भक्तोंके परमाधार, रक्षक और श्रीराम-मिलनके अग्रदूत हैं। श्रीराम-भक्तको श्रीहनुमानजीसे सहज प्रेम, आश्रय और सस्नेह रक्षा प्राप्त होती है। महावीर हनुमानजीके वचनमें ही नहीं, किंतु उनके वास्तविक जीवनमें भी कोई असम्भव तत्त्व नहीं था। सहज सरल निरभिमान श्रीहनुमानके—

शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तुं पराक्रमः।
यत्पुनर्लङ्घितोऽम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव॥

(हनुमन्नाटक ६। ४४)

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥

(मानस ५। ३३। ३½)

—शब्दोंमें कितनी अहंकारशून्यता है, पर उनके अपने जीवनमें ही नहीं, अपितु उनके कृपाकटाक्षमें भी असम्भवको सम्भव बनानेकी सामर्थ्य है। इस विषयमें ऋक्षराज जाम्बवान्‌के ये वचन प्रमाण हैं—

कवन सो काज कठिन जग माहीं।
जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥

(मानस ४। २९। २½)

मृतकको जीवन-दान देना श्रीहनुमानजीके लिये अति सामान्य बात है। श्रीलक्ष्मणजीके जीवनकी तथा उनके द्वारा प्रभु श्रीरामकी भी सुरक्षाके निमित्त श्रीहनुमान ही हैं। स्वयं भगवान् श्रीराम अगस्त्यजीके समक्ष मुक्तकण्ठसे उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाते—

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः॥

(वा० रा० ७। ३५। ३)

शूरवीरता, दक्षता, बल, धैर्य, विद्वत्ता, नीति-ज्ञान, पराक्रम और प्रभाव—इन सभी सद्‌गुणोंने हनुमानजीके भीतर घर कर रखा है।

समस्त जगत्‌के लोगोंके लिये—**'सागरः सागरोपमः**—सागर अपनी उपमा आप ही है।' वह अनन्वय है, पर हनुमानजीके लिये वही वारीश सिन्धु एक गोखुरके समान सर्वथा नगण्य है। राक्षस समस्त देव-दानव-मानवके लिये भीमकाय, भीमकर्मा और भीमदर्शन हैं, परंतु श्रीहनुमानजीके लिये तो वे केवल मच्छर-से ही हैं। वे कहते हैं—

संरुद्धस्तैस्तु परितो विधमे राक्षसं बलम्।
कामं हन्तुं समर्थोऽस्मि सहस्राण्यपि रक्षसाम्॥
*		*		*
सर्वेषामेव पर्याप्तो राक्षसानामहं युधि॥

(वा० रा० ५। ५३। १३)

'चारों ओरसे राक्षसी सेनासे घिरा हुआ मैं राक्षसोंके बलका पूर्णतया मर्दन कर सकता हूँ तथा सहस्रों राक्षसोंका स्वेच्छया वध कर सकता हूँ। मैं अकेला ही युद्धमें उन सभी राक्षसोंके लिये पर्याप्त हूँ।

स्वयं रावण भी लंका-दाहके समय श्रीहनुमानजीकी रौद्र—विकराल मूर्ति देखकर वितर्क करता है—

वज्री महेन्द्रस्त्रिदशेश्वरो वा
साक्षाद् यमो वा वरुणोऽनिलो वा।
रौद्रोऽग्निरर्को धनदश्च सोमो
न वानरोऽयं स्वयमेव कालः॥

(वा० रा० ५। ५४। ३५)

'यह देवराज वज्रधर महेन्द्र भले हो सकता है, साक्षात् यम, वरुण, पवन अथवा विश्वको भस्म करनेके लिये संवर्ताग्नि, सूर्य, कुबेर या चन्द्र अथवा साक्षात् काल ही विश्वसंहारार्थ प्रकट हुआ हो सकता है, किंतु निश्चय ही यह वानर तो नहीं है।'

इस प्रकार श्रीरामचरित्रकी अनुपम महामालाके रत्न श्रीहनुमानजी हैं। अग्नि-बीज 'रं' को विस्तृतकर श्रीराम-

विरोधी राक्षस-सेना और उनकी स्वर्णमयी लंकापुरीको भस्म करने और श्रीराम-भक्तोंके दुःख-शोक, दीनता-दारिद्र्य, आधि-व्याधि, संताप तथा अज्ञानान्धकारको ज्ञानाग्निद्वारा छिन्न-भिन्न कर देनेके कारण श्रीहनुमान श्रीराम-नामके 'र' बीजके प्रतीक हैं। अतः उनकी भक्ति, वीरता और अनन्यताका सार रामायण-महामालाके अद्वितीय, अनुपम रत्नके रूपमें अङ्कित किया गया है—

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम्।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम्॥

'सिन्धुको गोखुरके समान लाँघ जानेवाले, राक्षसोंको मच्छर-तुल्य मसल देनेवाले, परमानन्दकन्द-श्रीमदयोध्याचन्द्र-कौसल्यानन्दवर्धन-दशरथनन्दन-श्रीराम-सुधारस-मन्दाकिनीमुक्तमालके महारत्न श्रीहनुमानजीको सहस्रशः, लक्षशः, कोटिशः प्रणाम है।'

श्रीहनुमानजीकी वीरता

(रचयिता—साहित्याचार्य पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

(१)

'रामकी कृपासे पार उदधि अपार हुआ,
दर्शसे तुम्हारे अम्ब! जीवन सफल ये।
दानवों-सहित नष्ट-भ्रष्ट कर दूँ, जो कहो
पस्त कर दूँ मैं अभी लंकाके महल ये।
भूख भी लगी है, जोश रोष भी बढ़ा है देख—
गाज रहे सैनिक दशाननके खल ये।
आज कुछ कौतुक दिखाना चाहता हूँ इन्हें,
खाना चाहता हूँ वाटिकाके पके फल ये'॥

(२)

पाकर इशारा पारावार-सी बढ़ी है शक्ति,
वज्र-से कठोर अंग-अंग हुए जंगीके।
पस्त हुई हिम्मत, प्रभावहीन त्रस्त दैत्य,
भाव देख विकट अड़ीले अड़भंगीके।
भाग चले बागसे अभागे भीरु रक्षक जो,
त्यागे तन, आगे जो बढ़े थे रणरंगीके।
हाड़ हिले रिपुके, पहाड़ फटने-से लगे,
सुनके दहाड़ महावीर बजरंगीके॥

(३)

खा-खा फल मधुर, प्रशाखा और शाखा तोड़,
मत्त गजराज-से विराज रहे वनमें।
शुंड-से वितुंडके लँगूरमें द्रुमोंके झुंड
वेगसे लपेटके उखाड़ लेते छनमें।
हूहू कर धाये जो समूह थे, पठाया उन्हें
रुष्ट मुष्टिकासे मार यमके सदनमें।
मारुतिकी मारसे कुमार वीर अक्षय भी
क्षीण हो धरा पै पड़ा प्राण त्याग रनमें॥

(४)

आया जो, सफाया हुआ उसका निमेषमें ही,
चारों ओर रुंड मुंड बिखरे विशेष थे।
विटप उजाड़े हुए वनके पड़े थे, मानो
लंकामयी बालाके उखाड़े हुए केश थे।
पावोंकी धमकसे धरा थी धँसने-सी लगी,
भारसे अपार अकुलाने लगे शेष थे।
क्रुद्ध आञ्जनेय युद्ध-ताण्डव मचाने लगे,
रावण-कुमारके लिये जो मारकेश थे॥

(५)

राक्षसोंके क्षयकी प्रथम भूमिका-सी वहाँ
वाटी वह युद्धकी समुद्घाटिका हुई।
अंग अंग भंजित पिशाच नाच-नाच गिरे,
रक्त-राशि-रंजित धराकी शाटिका हुई।
वीर बजरंगीके प्रहारसे क्षणोंमें वहाँ
असुर-संहारकी अनोखी नाटिका हुई।
वैरी-वनिताओंके सशोक क्रन्दनोंसे व्याप्त
शोकवाटिका-सी थी अशोकवाटिका हुई॥

श्रीराम-भक्त हनुमानजी

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज)

श्रीसुदर्शनचक्रावतार आदि सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र स्वनिर्मित 'वेदान्त-कामधेनु' ('वेदान्त दशश्लोकी') नामक ग्रन्थके नवम श्लोकमें कहते हैं—

कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते
यया भवेत् प्रेमविशेषलक्षणा।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः
सा चोत्तमा साधनरूपिका परा॥

अर्थात् सर्वतन्त्र-स्वतन्त्रानन्तानन्त श्रीसमलंकृतानन्त-कोटिब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभुकी कृपा उसी भक्तपर होती है, जिसमें दीनता, नम्रता, सरलता आदि भाव हों और भगवान्की कृपासे ही उस भक्तके चित्तमें भगवद्विषयक परम अनुराग प्रकट होता है। उस प्रेमानुरागको ही 'परा' एवं 'साध्य' भक्तिके नामसे भी निर्दिष्ट किया गया है।

इसी परा-(प्रेमलक्षणा-साध्य-) भक्तिसे सम्पन्न श्रीरामभक्त हनुमानजी उपर्युक्त दैन्यादि-सर्वगुण-सम्पन्नताके कारण नवधा भक्तिमें दास्यभावके सर्वश्रेष्ठ प्रथम भक्त माने जाते हैं। यथा—

केशवार्जुनयोः सख्यं सख्यं सुग्रीवरामयोः।
सख्यं कृष्णसुदाम्नः स्याद् दास्यं रामहनूमतोः॥

इसी प्रकार नवधा भक्तिके एक-एक अङ्गके प्रधान-प्रधान भक्तोंकी नामावलीके एक श्लोकमें भी बताया गया है। जैसे—

अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः।

अर्थात् भक्तिके दास्य-अङ्गमें कपिपति श्रीहनुमानजीका ही नाम प्रधान है।

भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासप्रणीत भक्तिसुधासंदोह श्रीमद्भागवतमहापुराणके पञ्चम स्कन्धमें जहाँ खण्डोंका वर्णन आया है, वहाँ किस खण्डमें भगवान् किस रूपसे विराजमान हैं और उनका मुख्य भक्त किस प्रकार उनकी स्तुति करता है—इसका भी कथन है।

१९वें अध्यायके प्रारम्भमें ही आचार्य श्रीशुकमुनि परम भागवत राजर्षि श्रीपरीक्षित्जीसे कह रहे हैं—

'किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते॥ १॥ आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति॥ २॥ ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति॥ ३॥

"राजन्! किम्पुरुष-वर्षमें श्रीलक्ष्मणजीके बड़े भ्राता आदिपुरुष सीताहृदयाभिराम भगवान् श्रीरामके चरणकमलोंकी संनिधिके परम रसिक महाभागवत श्रीहनुमानजी अन्य किंनरगणोंके सहित अविचल भक्तिभावसे उनकी उपासना करते हैं। वहाँ अन्य गन्धर्वोंके साथ आर्ष्टिषेण उनके स्वामी भगवान् श्रीरामकी परमकल्याणमयी गुणगाथा गाते रहते हैं और श्रीहनुमानजी उसे सुनते हैं तथा स्वयं भी इस मन्त्रका जप करते हुए इस प्रकार उनकी स्तुति करते हैं—'हम ॐकारस्वरूप पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीरामको नमस्कार करते हैं। आपमें सत्पुरुषोंके लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं, आप बड़े ही संयमशील, लोकाराधनतत्पर, साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीके समान और अत्यन्त ब्राह्मणभक्त हैं, ऐसे महापुरुष भगवान् श्रीरामको हमारा बारम्बार नमस्कार है'।"

श्रीरामभक्त हनुमानके जीवनमें अभिमानका तो लेशमात्र भी नहीं है। जब वे माता श्रीजानकीजीकी सुध लेकर आये और भगवान्से मिले, तब भगवान् श्रीरामने उनसे पूछा—

कहु कपि रावन पालित लंका।
केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥

(मानस ५। ३३। ३)

'हनुमानजी! बताओ, रावणके द्वारा सुरक्षित लंका और उसके बड़े बाँके किलेको तुमने किस प्रकार जलाया?'

तब श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामको प्रसन्नमन जान अभिमानरहित वचन बोले—

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

(मानस ५। ३३। ४-५)

भावविभोर श्रीहनुमान

श्रीहनुमानका परम सौभाग्य

श्रीरामके प्रति हनुमानका आत्मनिवेदन

श्रीरामभक्त हनुमान

सीतान्वेषी श्रीहनुमानका पर्वताकार

श्रीहनुमान रौद्ररूपमें

अभयदाता श्रीहनुमान

तुलसीदासजीपर श्रीहनुमानजीकी कृपा

'प्रभो ! बंदरका केवल एकमात्र यही पुरुषार्थ है कि वह एक डालसे दूसरी डालपर चला जाता है। मैंने जो समुद्र लाँघकर सोनेकी नगरी जलायी और राक्षसगणोंको मारकर अशोकवनका विध्वंस किया, वह तो केवल आपका ही प्रताप एवं प्रसाद है। नाथ! इसमें मेरे सामर्थ्यकी कोई बात नहीं है।'

सेवकको अपने स्वामीके गुण-गौरव एवं बल-पुरुषार्थ आदिपर पूर्ण भरोसा रखते हुए सदा यह ध्यान रखना चाहिये कि मैं ऐसे स्वामीका सेवक हूँ, कहीं मेरे कारण उनके गुण-गौरवपर किसी प्रकारकी आँच न आ जाय, ऐसा अभिमान तो सेवकोंको होना ही चाहिये। जैसे—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

(मानस ३।११।११)

श्रीहनुमानजीका अपना कोई भी स्वार्थ नहीं है। वे केवल अपने प्रभुकी सेवा एवं प्रसन्नतामें ही प्रसन्नता मानते हैं। ठीक ही है, सच्चा भक्त तो प्रभुकी प्रसन्नतामें ही अपनी प्रसन्नता मानता है। इसीको तत्सुख-सुखित्वभाव कहा जाता है। यही सर्वोत्कृष्ट भक्तका लक्षण है।

श्रीहनुमान-स्तुति

(पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबाका प्रसाद)

श्रीहनुमानजीकी स्तुतिसे सम्बन्धित बारह नाम हैं, जिनके द्वारा उनकी स्तुति की जाती है। ये नाम निम्नलिखित श्लोकोंमें वर्णित हैं—

हनुमानञ्जनीसूनुर्वायुपुत्रो महाबलः।
रामेष्टः फाल्गुनसखः पिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः॥
उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशनः।
लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा॥
एवं द्वादश नामानि कपीन्द्रस्य महात्मनः।
स्वापकाले प्रबोधे च यात्राकाले च यः पठेत्॥
तस्य सर्वभयं नास्ति रणे च विजयी भवेत्।
राजद्वारे गह्वरे च भयं नास्ति कदाचन॥

(आनन्दरामायण ८।१३।८—११)

उनका एक नाम तो हनुमान है ही, दूसरा अञ्जनीसूनु, तीसरा वायुपुत्र, चौथा महाबल, पाँचवाँ रामेष्ट (रामजीके प्रिय), छठा फाल्गुनसख (अर्जुनके मित्र), सातवाँ पिङ्गाक्ष (भूरे नेत्रवाले), आठवाँ अमितविक्रम, नवाँ उदधिक्रमण (समुद्रको अतिक्रमण करनेवाले), दसवाँ सीताशोकविनाशन (सीताजीके शोकको नाश करनेवाले), ग्यारहवाँ लक्ष्मणप्राणदाता (लक्ष्मणको संजीवनीबूटीद्वारा जीवित करनेवाले) और बारहवाँ नाम है—दशग्रीवदर्पहा (रावणके घमंडको दूर करनेवाले)। ये बारह नाम श्रीहनुमानजीके गुणोंके द्योतक हैं। श्रीराम और सीताके प्रति जो सेवा-कार्य उनके द्वारा हुए हैं, उन सबकी ओर इन्हीं नामोंद्वारा संकेत हो जाता है और यही श्रीहनुमानकी स्तुति है। इस स्तुतिसे मिलनेवाले अनेकों लाभ ऊपरके श्लोकोंमें वर्णित हैं।

सेनानायक श्रीहनुमानके इन बारह नामोंका जो रात्रिमें सोनेके समय या प्रातःकाल उठनेपर अथवा यात्रारम्भके समय पाठ करता है, उस व्यक्तिके समस्त भय दूर हो जाते हैं। वह व्यक्ति युद्धके मैदानमें, राज-दरबारमें या भीषण संकट जहाँ-कहीं भी हो, उसे कोई भय नहीं होता। इसलिये श्रीहनुमानको **'संकटमोचन'** भी कहा जाता है।

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम्॥

इस श्लोकमें भी श्रीहनुमानजीकी प्रशंसा है, जिन्होंने लीलासे ही समुद्रके जलको लाँघा और सीताजीके शोकरूपी अग्निको अपने साथ ले जाकर लंकाको जला दिया। ऐसे महावीर हनुमानकी मैं हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ। **(प्रेषक—रामकृष्णप्रसाद एडवोकेट)**

आदर्श भक्त श्रीहनुमान

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामके सर्वोत्तम दास-भक्त हैं। आपका जन्म वायुदेवके अंशसे और माता अञ्जनीके गर्भसे हुआ था। श्रीहनुमानजी बालब्रह्मचारी, महान् वीर, अतिशय बलवान्, अत्यन्त बुद्धिमान्, चतुरशिरोमणि, विद्वान्, सेवाधर्मके आचार्य, सर्वथा निर्भय, सत्यवादी, स्वामिभक्त, भगवान्के तत्त्व, रहस्य, गुण और प्रभावको भली प्रकार जाननेवाले, महाविरक्त, सिद्ध, परम प्रेमी भक्त और सदाचारी महात्मा हैं। आप युद्ध-विद्यामें बड़े ही निपुण, इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ तथा भगवान्के नाम, गुण, स्वरूप और लीलाके बड़े ही रसिक हैं। कहा जाता है कि अब भी जहाँ श्रीरामकी कथा या कीर्तन होता है, वहाँ श्रीहनुमानजी किसी-न-किसी वेषमें उपस्थित रहते ही हैं। श्रद्धा न होनेके कारण लोग उन्हें पहचान नहीं पाते।

श्रीहनुमानजीके गुण अपार हैं। भगवान् और उनके भक्तोंके गुणोंका वर्णन कोई भी मनुष्य कैसे कर सकता है। इस विषयमें जो कुछ भी लिखा जाय, वह बहुत ही थोड़ा है। यहाँ संक्षेपमें श्रीहनुमानजीके चरित्रोंद्वारा उनके गुणोंका कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है।

पहले-पहल जब पम्पा-सरोवरपर श्रीराम और लक्ष्मणसे श्रीहनुमानजी मिले हैं, उस प्रसङ्गको देखनेसे मालूम होता है कि इनमें विनय, विद्वत्ता, चतुरता, दीनता, प्रेम और श्रद्धा आदि सभी विलक्षण गुण विद्यमान हैं।

अपने मन्त्रियोंके साथ ऋष्यमूक-पर्वतपर बैठे हुए सुग्रीवकी दृष्टि पम्पा-सरोवरकी ओर जाती है तो वे देखते हैं कि हाथोंमें धनुष-बाण लिये हुए बड़े सुन्दर, विशालबाहु, महापराक्रमी दो वीर पुरुष इसी ओर आ रहे हैं। उन्हें देखते ही सुग्रीव भयभीत होकर श्रीहनुमानजीसे कहते हैं कि 'हनुमान! तुम जाकर इनकी परीक्षा तो करो। यदि ये वालीके भेजे हुए हों तो मुझे संकेतसे समझा देना, जिससे मैं इस पर्वतको छोड़कर तुरंत ही भाग जाऊँ।'

सुग्रीवकी आज्ञा पाकर आप ब्रह्मचारीका रूप धारण कर वहाँ जाते हैं और श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके उनसे प्रश्न करते हैं। मानस-रामायणमें श्रीतुलसीदासजी उनके प्रश्नका यों वर्णन करते हैं—

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥

× × × ×

जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥

(४।४-५, १)

अध्यात्मरामायणमें भी लगभग ऐसा ही वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त वहाँ श्रीरामचन्द्रजी भाई श्रीलक्ष्मणसे हनुमानजीकी विद्वत्ताकी सराहना करते हुए कहते हैं—

'लक्ष्मण! देखो, यह व्यक्ति ब्रह्मचारीके वेषमें कैसा सुन्दर भाषण करता है। अवश्य ही इसने सम्पूर्ण शब्द-शास्त्र बहुत प्रकारसे पढ़ा है। इसने इतनी बातें कहीं, किंतु इसके बोलनेमें कहीं कोई भी अशुद्धि नहीं आयी।'

वाल्मीकीय रामायणमें तो श्रीरामने यहाँतक कहा है कि 'इसने अवश्य ही सब वेदोंका अभ्यास किया है, नहीं तो यह इस प्रकारका भाषण कैसे कर सकता है।' इसके सिवा और भी बहुत प्रकारसे श्रीहनुमानजीके वचनोंकी सराहना करते हुए वे अन्तमें कहते हैं कि 'जिस राजाके पास ऐसे बुद्धिमान् दूत हों, उसके समस्त कार्य दूतकी बातचीतसे ही सिद्ध हो जाया करते हैं।'

रामचरितमानसमें आगेका वर्णन बड़ा ही प्रेमपूर्ण है— भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपना समस्त परिचय देकर श्रीहनुमानजीसे पूछते हैं कि 'ब्राह्मण ! बतलाइये, आप कौन हैं?' यह सुनते ही हनुमानजी श्रीरामको भलीभाँति पहचानकर तुरंत ही उनके चरणोंमें गिर पड़ते हैं, उनका शरीर पुलकित हो जाता है, मुखसे बोला नहीं जाता, वे टकटकी लगाकर भगवान्की रूपमाधुरी और विचित्र वेषको निहारने लगते हैं। कैसा अलौकिक प्रेम है। फिर धैर्य धारण करके वे भगवान्से कहते हैं—

मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥

तव माया बस फिरउँ भुलाना।
ता ते मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥
एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥
जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें।
सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें॥

(४।२।४-५, २; ३।१)

कितना प्रेम और दैन्यभाव है! इसके बाद विनयपूर्वक सुग्रीवकी परिस्थिति बतलाकर दोनों भाइयोंको अपनी पीठपर चढ़ाकर वे सुग्रीवके पास ले जाते हैं। वहाँ दोनों ओरकी सब बातें सुनाकर अग्निदेवकी साक्षीमें श्रीराम और सुग्रीवकी मित्रता करा देते हैं। वालीका वध करके भगवान् श्रीराम भाई लक्ष्मणके सहित प्रवर्षण पर्वतपर निवास कर वर्षा-ऋतुका समय व्यतीत करते हैं। उधर सुग्रीव राज्य, ऐश्वर्य और स्त्री आदिके मिल जानेसे भोगोंमें फँसकर भगवान्के कार्यको भूल जाते हैं। यह देखकर श्रीहनुमानजी राजनीतिके अनुसार सुग्रीवको भगवान्के कार्यकी स्मृति दिलाते हैं और उनकी आज्ञा लेकर वानरोंको बुलानेके लिये देश-देशान्तरोंमें दूत भेजते हैं। कैसी बुद्धिमानी है!

इसके बाद जब श्रीसीताजीकी खोजके लिये सब दिशाओंमें वानरोंको भेजनेकी बातचीत हो रही थी, उस समयका वर्णन श्रीवाल्मीकीय रामायणमें देखनेसे मालूम होता है कि सुग्रीवका श्रीहनुमानजीपर कितना भरोसा और विश्वास था तथा भगवान् श्रीरामको भी उनकी कार्यकुशलतापर कितना विश्वास था। वहाँ श्रीरामके सामने ही सुग्रीव हनुमानसे कहते हैं—

न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये।
नाप्सु वा गतिभङ्गं ते पश्यामि हरिपुंगव॥
सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः।
विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः॥
गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे।
पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः॥
तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते।
तद् यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय॥
त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः।
देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित॥

(४।४४।३—७)

'कपिश्रेष्ठ! तुम्हारी गतिका अवरोध न पृथ्वीमें, न अन्तरिक्षमें, न आकाशमें और न देवलोकमें अथवा जलमें ही देखा जाता है। देवता, असुर, गन्धर्व, नाग, मनुष्य और इनके सहित उन-उनके समस्त लोकोंका समुद्र और पर्वतोंसहित तुम्हें भलीभाँति ज्ञान है। महाकपे! तुम्हारी गति, वेग, तेज और फुर्ती—तुम्हारे महान् बलशाली पिता वायुके समान हैं। वीर ! इस भूमण्डलपर कोई भी प्राणी तेजमें तुम्हारी समानता करनेवाला न कभी हुआ और न है। अतः जिस प्रकार सीता मिल सके, वह उपाय तुम्हीं सोचकर बताओ। हनुमान ! तुम नीतिशास्त्रके पण्डित हो; बल, बुद्धि, पराक्रम, देश-कालका अनुसरण और नीतिपूर्ण बर्ताव—ये सब एक साथ तुममें पाये जाते हैं।'

इस प्रकार सुग्रीवकी बातें सुनकर भगवान् श्रीराम हनुमानजीकी ओर देखकर अपना कार्य सिद्ध हुआ ही समझने लगे। उन्होंने मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने नामके अक्षरोंसे युक्त एक अँगूठी हनुमानजीके हाथमें देकर कहा—

अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानुपश्यति॥
व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः।
सुग्रीवस्य च संदेशः सिद्धिं कथयतीव मे॥

(४।४४।१३-१४)

'कपिश्रेष्ठ! इस चिह्नके द्वारा जनकनन्दिनी सीताको यह विश्वास हो जायगा कि तुम मेरे पाससे ही गये हो। तब वह निर्भय होकर तुम्हारी ओर देख सकेगी। वीरवर! तुम्हारा उद्योग, धैर्य और पराक्रम तथा सुग्रीवका संदेश मुझे इस बातकी सूचना दे रहे हैं कि तुम्हारेद्वारा इस कार्यकी सिद्धि अवश्य होगी।'

अध्यात्मरामायणमें भी प्रायः इसी प्रकार श्रीरामने हनुमानजीके गुणोंकी प्रशंसा की है। वहाँ सहिदानीके रूपमें अपनी मुद्रिका देकर भगवान् श्रीराम हनुमानजीसे कहते हैं—

अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपिसत्तम।
जानामि सत्त्वं ते सर्वं गच्छ पन्थाः शुभस्तव॥

(४।६।२९)

'कपिश्रेष्ठ! इस कार्यमें केवल तुम्हीं समर्थ हो। मैं तुम्हारा समस्त पराक्रम भलीभाँति जानता हूँ। अच्छा, जाओ; तुम्हारा मार्ग कल्याणकारक हो।'

इसके बाद जब जाम्बवान् और अङ्गद आदि वानरोंके साथ हनुमानजी श्रीसीताजीकी खोज करते-करते समुद्रके किनारे पहुँचते हैं और श्रीसीताका अनुसंधान न मिलनेके कारण शोकाकुल होकर सब

वहीं अनशन-व्रत लेकर बैठ जाते हैं, तब गृध्रराज सम्पातिसे बातचीत होनेपर उन्हें यह पता लगता है कि सौ योजन समुद्रके पार लंकापुरीमें राक्षसराज रावण रहता है, वहाँ अपनी अशोक-वाटिकामें उसने सीताको छिपा रखा है। तब सब वानर एक जगह बैठकर परस्पर समुद्र लाँघनेका विचार करने लगे। अङ्गदके पूछनेपर सभीने अपनी-अपनी सामर्थ्यका परिचय दिया; परंतु श्रीहनुमानजी चुप साधे बैठे ही रहे। कैसी निरभिमानता है ! यह प्रसङ्ग श्रीवाल्मीकीय रामायणमें बड़ा ही रोचक और विस्तृत है। वहाँ जाम्बवान्‌ने श्रीहनुमानजीकी बुद्धि, बल, तेज, पराक्रम, विद्या और वीरताका बड़ा ही विचित्र चित्रण किया है। वे कहते हैं—

वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमन् किं न जल्पसि॥

× × × ×

रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च॥

× × × ×

गरुत्मानिव विख्यात उत्तमः सर्वपक्षिणाम्॥

× × × ×

पक्षयोर्यद् बलं तस्य भुजवीर्यबलं तव।
विक्रमश्चापि वेगश्च न ते तेनापहीयते॥
बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुङ्गव।
विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न सज्जसे॥

(४।६६।२—७)

'सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा वानर-जगत्‌के अद्वितीय वीर हनुमान! तुम कैसे एकान्तमें आकर चुप साधे बैठे हो? कुछ बोलते क्यों नहीं? तुम तो तेज और बलमें श्रीराम और लक्ष्मणके समान हो। गमनशक्तिमें सम्पूर्ण पक्षियोंमें श्रेष्ठ विनतापुत्र महाबली गरुड़के समान विख्यात हो। उनकी पाँखोंमें जो बल, तेज तथा पराक्रम है, वही तुम्हारी इन भुजाओंमें भी है। वानरश्रेष्ठ! तुम्हारे अंदर समस्त प्राणियोंसे बढ़कर बल, बुद्धि, तेज और धैर्य है; फिर तुम अपना स्वरूप क्यों नहीं पहचानते?'

इसके बाद जाम्बवान् उनके जन्मकी कथा सुनाते हैं तथा बाल्यावस्थाके पराक्रम और वरदानकी बात कहकर उनके बलकी स्मृति दिलाते हुए अन्तमें कहते हैं—

उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम्।
परा हि सर्वभूतानां हनुमन् या गतिस्तव॥
विषण्णा हरयः सर्वे हनुमन् किमुपेक्षसे।
विक्रमस्व महावेग विष्णुस्त्रीन् विक्रमानिव॥

(४।६६।३६-३७)

'वानरश्रेष्ठ हनुमान ! उठो और इस महासागरको लाँघ जाओ। जो तुम्हारी गति है, वह सभी प्राणियोंसे बढ़कर है। सभी वानर चिन्तामें पड़े हैं और तुम इनकी उपेक्षा करते हो, यह क्या बात है? तुम्हारा वेग महान् है। जैसे भगवान् विष्णुने (पृथ्वीको नापनेके लिये) तीन डगें भरी थीं, उसी प्रकार तुम छलाँग मारकर समुद्रके उस पार चले जाओ।' इतना सुनते ही श्रीहनुमानजी तुरंत ही समुद्र लाँघनेके लिये अपना शरीर बढ़ाने लगे।

रामचरितमानसमें भी इसी आशयका वर्णन है। वहाँ अङ्गदको धैर्य देनेके बाद जाम्बवान् हनुमानजीसे कहते हैं—

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना।
का चुप साधि रहेहु बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना।
बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं।
जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा।
सुनतहिं भयउ पर्बताकारा॥
कनक बरन तन तेज बिराजा।
मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥

(४।३०।२—४)

अध्यात्मरामायणमें भी प्रायः इसी तरहका वर्णन है। इसके सिवा पर्वताकार रूप धारण करनेके अनन्तर वहाँ श्रीहनुमानजी कहते हैं—

लङ्घयित्वा जलनिधिं कृत्वा लङ्कां च भस्मसात्॥
रावणं सकुलं हत्वाऽऽनेष्ये जनकनन्दिनीम्।
यद्वा बद्ध्वा गले रज्ज्वा रावणं वामपाणिना॥
लङ्कां सपर्वतां धृत्वा रामस्याग्रे क्षिपाम्यहम्।
यद्वा दृष्ट्वैव यास्यामि जानकीं शुभलक्षणाम्॥

(४।९।२२—२४)

'वानरो! मैं समुद्रको लाँघकर लंकाको भस्म कर डालूँगा और रावणको कुलसहित मारकर श्रीजनक-नन्दिनीको ले आऊँगा अथवा कहो तो रावणके गलेमें रस्सी डालकर तथा लंकाको त्रिकूट-पर्वतसहित बायें हाथपर उठाकर भगवान् श्रीरामके आगे ला रखूँ? या शुभलक्षणा श्रीजानकीजीको देखकर ही (रामजीके पास) चला आऊँ?'

कितना आत्मबल है ! इसपर जाम्बवान्‌ने कहा— 'वीर! तुम्हारा शुभ हो, तुम केवल शुभलक्षणा श्रीजानकीजीको जीती-जागती देखकर ही चले आओ।'

समुद्रको लाँघनेके लिये तैयार होकर आपने वानरोंसे जो वचन कहे हैं, उनसे यह पता चलता है कि आपका श्रीराम-नामपर बड़ा ही दृढ़ विश्वास था। आप भगवान् श्रीरामके गुण, प्रभाव और तत्त्वको भलीभाँति जानते थे तथा श्रीराममें आपका अविचल प्रेम था। अध्यात्मरामायणमें यह प्रसङ्ग इस प्रकार है—

पश्यन्तु वानराः सर्वे गच्छन्तं मां विहायसा॥
अमोघं रामनिर्मुक्तं महाबाणमिवाखिलाः।
पश्याम्यद्यैव रामस्य पत्नीं जनकनन्दिनीम्॥
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं पुनः पश्यामि राघवम्।
प्राणप्रयाणसमये यस्य नाम सकृत् स्मरन्॥
नरस्तीर्त्वा भवाम्भोधिमपारं याति तत्पदम्।
किं पुनस्तस्य दूतोऽहं तदङ्गाङ्गुलिमुद्रिकः॥
तमेव हृदये ध्यात्वा लङ्घयाम्यल्पवारिधिम्।

(५।१।२—६)

'समस्त वानरो ! तुम सभी लोग भगवान् श्रीरामद्वारा छोड़े हुए अमोघ बाणकी भाँति आकाशमार्गसे जाते हुए मुझे देखो। मैं आज ही श्रीरामप्रिया जनकनन्दिनी श्रीसीताजीके दर्शन करूँगा। निश्चय ही मैं कृतकृत्य हो चुका, कृतकृत्य हो चुका; अब मैं फिर श्रीरघुनाथजीका दर्शन करूँगा। प्राण निकलनेके समय जिनके नामका एक बार स्मरण करनेसे ही मनुष्य अपार संसार-सागरको पारकर उनके परमधामको चला जाता है, उन्हीं भगवान् श्रीरामका दूत, उनके हाथकी मुद्रिका लिये हुए, हृदयमें उन्हींका ध्यान करता हुआ मैं यदि इस छोटे-से समुद्रको लाँघ जाऊँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।'

समुद्र लाँघनेके लिये श्रीहनुमानजीने जो भयानक रूप धारण किया था, उसका वर्णन वाल्मीकीय रामायणमें विस्तारपूर्वक है। यहाँ उसका दिग्दर्शनमात्र कराया जाता है। वहाँ लिखा है—

ववृधे रामवृद्ध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु॥
निष्प्रमाणशरीरः सँल्लिलङ्घयिषुरर्णवम्।
बाहुभ्यां पीडयामास चरणाभ्यां च पर्वतम्॥
स चचालाचलश्चाशु मुहूर्त्तं कपिपीडितः।
तरूणां पुष्पिताग्राणां सर्वं पुष्पमशातयत्॥
तमूरुवेगोन्मथिताः सालाश्चान्ये नगोत्तमाः।
अनुजग्मुर्हनूमन्तं सैन्या इव महीपतिम्॥

(५।१।१०—१२, ४८)

'जिस प्रकार पूर्णिमाके दिन समुद्र बढ़ता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीरामके कार्यकी सिद्धिके लिये हनुमान बढ़ने लगे। समुद्र लाँघनेकी इच्छासे उन्होंने अपने शरीरको बेहद बढ़ा लिया और अपनी भुजाओं एवं चरणोंसे उस पर्वतको दबाया तो वह हनुमानजीके द्वारा ताडित हुआ पर्वत तुरंत काँप उठा और मुहूर्त्तभर काँपता ही रहा। उसपर उगे हुए वृक्षोंके समस्त फूल झड़ गये। जब उन्होंने उछाल मारी, तब पर्वतपर उगे हुए साल तथा दूसरे वृक्ष इधर-उधर गिर गये। उनकी जाँघोंके वेगसे टूटे हुए वृक्ष इस प्रकार उनके पीछे चले, जैसे राजाके पीछे सेना चलती है।'

इसके अतिरिक्त वहाँपर श्रीहनुमानजीके स्वरूपका मनोहर भाषामें बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। वहाँ लिखा है कि उस समय श्रीहनुमानजीकी दस योजन चौड़ी और तीस योजन लम्बी परछाईं वेगके कारण समुद्रमें बड़ी सुन्दर जान पड़ती थी। वे परम तेजस्वी, महाकाय कपिवर आकाशमें आलम्बनहीन पंखवाले पर्वतकी भाँति जान पड़ते थे। इससे उनकी लम्बाई-चौड़ाईके विस्तारका कुछ पता चलता है।

यह देखकर मैनाक-पर्वत उनसे विश्राम लेनेके लिये अनेक प्रकारसे प्रार्थना करता है, परंतु भगवान् श्रीरामका कार्य पूरा किये बिना आपको विश्राम कहाँ! आप उसे केवल स्पर्श करके ही आगे बढ़ जाते हैं।

रामचरितमानसमें श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता।
चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना।
एही भाँति चलेउ हनुमाना॥
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी।
तैं मैनाक होहि श्रमहारी॥
हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥

(५।१।४-५, १)

सुरसाको अपने बुद्धि-बलका परिचय देकर आगे जाते-जाते जब समुद्रपर आपकी दृष्टि पड़ती है, तब क्या देखते हैं कि एक विशालकाय प्राणी समुद्रके जलपर पड़ा हुआ है। उस विकरालवदना राक्षसीको देखकर वे सोचने लगे—'कपिराज सुग्रीवने जिस महापराक्रमी छायाग्राही अद्भुत जीवकी बात कही थी, वह निःसंदेह यही है।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने अपने शरीरको बढ़ाया। हनुमानजीके शरीरको बढ़ता देखकर सिंहिका भी अपना भयानक मुख फैलाकर हनुमानजीकी

ओर दौड़ी। तब हनुमानजी छोटा रूप बनाकर उसके मुखमें घुस गये और अपने नखोंसे उसके मर्मस्थलको फाड़ डाला। इस प्रकार कुशलता और धैर्यपूर्वक उसे मारकर फिर वे पहलेकी भाँति ही आगे बढ़ गये। कैसा विचित्र बुद्धि-कौशल, धैर्य और साहस है!

इस प्रकार समुद्रको पार करके आप त्रिकूट पर्वतपर जा उतरे। बिना विश्राम सौ योजनके समुद्रको लाँघनेपर भी आपके शरीरमें किसी प्रकारकी थकावट नहीं आयी। वहाँसे उन्होंने भलीभाँति लंकाका निरीक्षण किया। फिर लंकाके समीप जाकर उसके भीतर प्रवेश करनेके विषयमें भलीभाँति विचार करके अन्तमें यह निश्चय किया कि रात्रिके समय छोटा रूप बनाकर इसमें प्रवेश करना ठीक होगा। इसके बाद संध्याकालमें जब आप छोटा-सा रूप धारण करके लंकापुरीमें प्रवेश करने लगे, तब द्वारपर लंकापुरीकी अधिष्ठात्री लंकिनी राक्षसीने उनको देख लिया। उसने श्रीहनुमानजीको डाँट-डपटकर जब उन्हें लात मारी, तब आपने अपने बायें हाथका एक मुक्का उसके शरीरपर जमा दिया। उसके लगते ही वह रुधिर वमन करती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी; फिर उठकर ब्रह्माजीकी बातका स्मरण करके हनुमानजीकी स्तुति करने लगी और अन्तमें बोली—

धन्याहमप्यद्य चिराय राघव-
स्मृतिर्ममासीद् भवपाशमोचिनी।
तद्भक्तसङ्गोऽप्यतिदुर्लभो मम
प्रसीदतां दाशरथिः सदा हृदि॥

(अध्यात्म० ५।१।५७)

'आज मैं भी धन्य हूँ, जो चिरकालके बाद मुझे संसार-बन्धनका नाश करनेवाली श्रीरघुनाथजीकी स्मृति प्राप्त हुई तथा उनके भक्तका अति दुर्लभ सङ्ग भी मिला। वे दशरथपुत्र श्रीराम सदा ही मेरे हृदयमें प्रसन्नतापूर्वक निवास करें।'

रामचरितमानसमें यह प्रसङ्ग इस प्रकार है—हनुमानजीके प्रहारसे व्याकुल होकर गिर पड़नेके बाद सावधान होकर लंकिनी कहती है—

तात मोर अति पुन्य बहूता।
देखेउँ नयन राम कर दूता॥
तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(५।४।४, ४)

इसके बाद हनुमानजी छोटा-सा रूप धारण कर लंकापुरीमें सीताकी खोज करते-करते बहुत-से राक्षसोंके घरोंमें घूम-फिरकर रावणके महलमें जाते हैं। वहाँ रावणके महलकी विचित्र रचना देखते-देखते पुष्पक-विमानको आश्चर्ययुक्त होकर देखते हैं। इसके बाद जिस समय उन्होंने सीताको पहचाननेके लिये रावणके महलमें उसकी स्त्रियोंको देखकर अपने मनकी स्थितिका वर्णन किया है, उसे देखनेसे यह पता चलता है कि आपकी ब्रह्मचर्य-निष्ठा कितनी ऊँची थी, परस्त्री-दर्शनको आप कितना बुरा समझते थे और आपका कितना सुन्दर विशुद्ध भाव था। वाल्मीकीय रामायणकी कथा है कि जब हनुमानजीने रावणके महलका कोना-कोना छान डाला, परंतु उन्हें जानकी कहीं दिखायी नहीं पड़ीं तो उस समय सीताको खोजनेके उद्देश्यसे स्त्रियोंको देखते-देखते उनके मनमें धर्म-भयसे शङ्का उत्पन्न हुई। वे सोचने लगे, 'इस प्रकार अन्तःपुरमें सोयी हुई परायी स्त्रियोंको देखना तो मेरे धर्मको एकदम नष्ट कर देगा; परंतु इन परस्त्रियोंको मैंने कामबुद्धिसे नहीं देखा है। इस दृश्यसे मेरे मनमें तनिक भी विकार नहीं हुआ। समस्त इन्द्रियोंकी अच्छी-बुरी प्रवृत्तियोंका कारण मन ही है और मेरा मन सर्वथा शुद्ध एवं निर्विकार है। इसके अतिरिक्त सीताजीको दूसरे ढंगसे मैं खोज भी नहीं सकता। स्त्रियोंको ढूँढ़ते समय उन्हें स्त्रियोंके ही बीचमें ढूँढ़ना पड़ता है'—इत्यादि। ऐसे सुन्दर विचार और ऐसा विशुद्ध भाव आपके ही उपयुक्त है।

साधकोंको इससे विशेष शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और विकट परिस्थितियोंमें भी अपने मनमें किसी प्रकारका भी विकार नहीं आने देना चाहिये। वाल्मीकीय रामायणमें सीताकी खोजका बड़ा ही विचित्र और विस्तृत वर्णन है। यहाँ उसमेंसे बहुत ही थोड़े-से प्रसङ्गका दिग्दर्शनमात्र कराया गया है।

रामचरितमानसमें लिखा है कि सीताको खोजनेके लिये लंकामें घूमते-घूमते हनुमानजीकी दृष्टि एक सुन्दर भवनपर पड़ती है, जिसपर भगवान् श्रीरामके आयुध अङ्कित किये हुए हैं। तुलसीके पौधे उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। यह देखकर आप सोचने लगते हैं कि यहाँ तो राक्षसोंका ही निवास है, यहाँ सज्जन पुरुष क्यों निवास करने लगे। उसी समय विभीषण जाग उठते हैं और बार-बार श्रीराम-नामका उच्चारण करते हैं। यह देखकर हनुमानजीने सोचा कि निःसंदेह यह कोई भगवान्‌का भक्त है, इससे अवश्य पहचान करनी चाहिये; क्योंकि साधुसे कभी कार्यकी हानि नहीं हो सकती।

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए।
सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥

करि प्रनाम पूँछी कुसलाई।
बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥
की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई।
मोरें हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी।
आयहु मोहि करन बड़भागी॥
तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥

(५।६।३-४, ६)

भगवान्‌के भक्तोंमें परस्पर स्वाभाविक प्रेम कैसा होना चाहिये, इसका यहाँ बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा गया है। विभीषण कहते हैं—

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा।
करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥
तामस तनु कछु साधन नाहीं।
प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता।
बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥

(५।७।१-२)

तब हनुमानजी कहते हैं—

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती।
करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना।
कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥
जानतहूँ अस स्वामि बिसारी।
फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा।
पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥

(५।७।३-४, ७; ८।१)

कितना सुन्दर दैन्यभाव, अतुलित विश्वास और अनन्य भगवत्प्रेम है ! इसके बाद विभीषणसे सब समाचार पाकर हनुमानजी अशोक-वाटिकामें जाकर श्रीसीताजीको देखते हैं और मन-ही-मन उनको प्रणाम करते हैं।

अशोक-वाटिकामें जाकर श्रीसीताजीसे मिलनेके लिये हनुमानजीने कितनी बुद्धिमानी और युक्तियोंसे काम लिया है, इसका वाल्मीकीय रामायणमें बहुत विस्तृत वर्णन है। वहाँ लिखा है कि बहुत तरहकी युक्तियाँ लगाकर सीताजीसे मिलनेका उपाय सोचते-सोचते अन्तमें हनुमानजी बड़ी सावधानीके साथ एक सघन वृक्षके पत्तोंमें छिपकर बैठ जाते हैं। वहींसे सब ओर दृष्टि घुमाकर देखते हैं। देखते-देखते उनकी दृष्टि सीतापर पड़ती है। उन्हें देखकर बहुत-से चिह्नोंद्वारा अनुमान लगाकर यह निश्चय करते हैं कि ये ही जनकनन्दिनी सीता हैं। वहाँ उन्होंने सीताके रहन-सहन और स्वभावका बड़ा ही विचित्र चित्रण किया है। वे सीताजीके गहनोंको देखकर यह अनुमान लगाते हैं कि भगवान् श्रीरामने सीताजीके अङ्गोंमें जिन-जिन आभूषणोंकी चर्चा की थी, वे सभी इनके अङ्गोंमें दिखायी देते हैं। इनमें केवल वे ही नहीं दिखलायी दे रहे हैं, जो इन्होंने ऋष्यमूक-पर्वतपर गिरा दिये थे।

इसी प्रकार उनके रूप और गुणोंको देखकर बड़ी बुद्धिमानीसे उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि निःसंदेह ये ही सीताजी हैं। यह निश्चय हो जानेपर उनको श्रीसीताजीके दुःखसे बड़ा दुःख हुआ और वे मन-ही-मन बहुत विलाप करने लगे।

इसके बाद सीतासे किस प्रकार बातचीत करनी चाहिये, किस समय और कैसे मिलना चाहिये, किस प्रकार उन्हें विश्वास दिलाना चाहिये कि मैं श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ—इस विषयपर भी आपने बड़ी विचारकुशलता प्रकट की है। ठीक उसी समय रावण बहुत-सी राक्षसियोंको साथ लेकर वहाँ पहुँच जाता है। वह सीताको अनेक प्रकारसे भय दिखलाकर अपने अधीन करनेकी चेष्टा करता है, पर वे किसी तरह भी अपने निश्चयसे विचलित नहीं होतीं। अन्तमें रावण चला जाता है। तब उसके आज्ञानुसार राक्षसियाँ अनेक प्रकारसे सीताको भय दिखलाती हैं। उसी समय त्रिजटा नामकी राक्षसी अपने स्वप्नकी बात कहकर सीताको धैर्य देती है और उसकी बातें सुनकर वे घोर राक्षसियाँ भी शान्त हो जाती हैं। सीता विरहसे व्याकुल होकर विलाप करने लग जाती हैं।

तब हनुमानजी सीतासे मिलनेका उपयुक्त अवसर देखकर अपने पूर्व निश्चित विचारके अनुसार श्रीरामकी कथाका वर्णन करने लग जाते हैं। श्रीरघुनाथजीका आद्योपान्त समस्त चरित्र सुनकर सीताको बड़ा विस्मय हुआ। अध्यात्मरामायणमें लिखा है कि अन्तमें उन्होंने सोचा कि यह स्वप्न या भ्रम तो नहीं है। ऐसा विचार करके वे कहने लगीं—

येन मे कर्णपीयूषं वचनं समुदीरितम्।
स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः॥

(५।३।१८)

'जिन्होंने मेरे कानोंको अमृतके समान प्रिय लगनेवाले वचन सुनाये, वे प्रियभाषी महाभाग मेरे सामने प्रकट हों।'

ये वचन सुनकर आप माता सीताके सामने बड़ी विनयके साथ खड़े हो जाते हैं और हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करते हैं। अकस्मात् एक वानरको अपने सामने खड़ा देखकर सीताके मनमें यह शङ्का होती है कि कहीं रावण तो मुझे छलनेके लिये नहीं आ गया है। यह सोचकर वे नीचेकी ओर मुख किये हुए ही बैठी रहती हैं। रामचरितमानसमें उस समय श्रीहनुमानजीके वचन इस प्रकार हैं—

राम दूत मैं मातु जानकी।
सत्य सपथ करुनानिधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी।
दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥

(५।१३।५)

इसके बाद श्रीजानकीजीके पूछनेपर उन्होंने जिस प्रकार वानरराज सुग्रीवके साथ भगवान् श्रीरामकी मित्रता हुई, वह सारी कथा विस्तारपूर्वक सुना दी तथा श्रीराम और लक्ष्मणके शारीरिक चिह्नोंका एवं उनके गुण और स्वभावका भी वर्णन किया। ये सब बातें सुनकर जानकीजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रसङ्गका वर्णन श्रीवाल्मीकीय रामायणमें बड़ा विस्तृत और रोचक है।

रामचरितमानसमें श्रीतुलसीदासजीने बहुत ही संक्षेपमें इस प्रकार कहा है—

कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥
हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी।
सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी॥

(५।१३, १४।१)

इसके बाद महातेजस्वी पवनकुमार हनुमानजीने सीताजीको भगवान् श्रीरामकी दी हुई अँगूठी दी, जिसे लेकर वे इतनी प्रसन्न हुईं, मानो स्वयं भगवान् श्रीराम ही मिल गये हों।

उस समय वे हनुमानजीसे कहती हैं—

बूड़त बिरह जलधि हनुमाना।
भयहु तात मो कहुँ जलजाना॥
अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी।
अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमलचित कृपाल रघुराई।
कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥
सहज बानि सेवक सुख दायक।
कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता।
होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥
बचनु न आव नयन भरे बारी।
अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥

(५।१४।१—४)

इस प्रकार सीताको विरह-व्याकुल देखकर हनुमानजी कहते हैं—

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता।
तव दुख दुखी सुकृपा निकेता॥
जनि जननी मानहु जियँ ऊना।
तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना॥
रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर॥

(५। १४। ४, १४)

इसके बाद बड़ी बुद्धिमानीके साथ श्रीरामके प्रेम और विरह-व्याकुलताकी बात श्रीहनुमानजीने माता सीताको सुनायी और अन्तमें कहा कि श्रीरामचन्द्रजीने कहा है—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं।
जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

(५।१५।३-४)

इस प्रकार श्रीरामका प्रेमपूर्ण संदेश सुनकर सीता प्रेममें मग्न हो गयीं। उन्हें अपने शरीरका भी ज्ञान नहीं रहा। तब हनुमानजी फिर कहते हैं—

उर आनहु रघुपति प्रभुताई।
सुनि मम बचन तजहु कदराई॥
निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु॥

(५।१५।५, १५)

ये सब बातें सुनकर जब जानकीजीने यह कहा कि 'सब वानर तो तुम्हारे ही-जैसे होंगे, राक्षसगण बड़े भयानक और विकराल हैं। इन सबको तुमलोग कैसे जीत सकोगे, मेरे मनमें यह संदेह हो रहा है।' यह सुनकर हनुमानजीने अपना भयानक पर्वताकार रूप सीताको दिखलाकर अपना छिपा हुआ प्रभाव प्रकट कर दिया। उसे देखते ही सीताके मनमें विश्वास हो गया।

सीताने प्रसन्न होकर हनुमानजीको बहुत-से वरदान दिये। साथ ही यह भी कहा कि भगवान् श्रीराम तुमपर कृपा करेंगे। यह बात सुनते ही हनुमानजी प्रेममें मग्न हो गये और बार-बार चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए बोले—

अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता।
आसिष तव अमोघ बिख्याता॥

(५।१७।३)

इससे यह प्रकट होता है कि हनुमानजीका श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें कितना गूढ़ प्रेम है।

अध्यात्मरामायणमें लिखा है कि बातों-ही-बातोंमें सीताजीने जब यह पूछा कि 'वानर-सेनाके सहित श्रीराम इस बड़े भारी समुद्रको पार कर यहाँ कैसे आ सकेंगे?' तब—

हनूमानाह मे स्कन्धावारुह्य पुरुषर्षभौ॥
आयास्यतः ससैन्यश्च सुग्रीवो वानरेश्वरः।
विहायसा क्षणेनैव तीर्त्वा वारिधिमाततम्॥

(५।३।४७-४८)

हनुमानजीने कहा—'वे दोनों नरश्रेष्ठ मेरे कंधोंपर चढ़कर आ जायँगे और समस्त सेनाके सहित वानरराज सुग्रीव भी आकाशमार्गसे क्षणमात्रमें ही इस महासमुद्रसे पार होकर आ जायँगे।'

इस प्रसङ्गसे भी हनुमानजीके बल, वीर्य और साहसका परिचय मिलता है। इसके बाद माता सीतासे आज्ञा लेकर अशोक-वाटिकाके फल खाकर श्रीहनुमानजीने अपने स्वामी श्रीरामका विशेष कार्य करनेकी इच्छासे अशोक-वाटिकाके वृक्षोंको तहस-नहस करके समस्त वाटिकाको विध्वंस कर दिया। यह समाचार पाकर रावणने अपनी बड़ी भारी सेनाके साथ अक्षकुमारको भेजा। उन सबके साथ हनुमानजीका बड़ा भयंकर संग्राम हुआ। बड़ी वीरता और युद्ध-कौशलसे उन्होंने अनायास ही जम्बुमाली, मन्त्रीके सात पुत्रों, पाँच सेनापतियों और अक्षकुमारको मार डाला। इस युद्धके प्रसङ्गसे श्रीहनुमानजीका अतुलित बल-पौरुष और युद्ध-कौशल स्पष्ट व्यक्त होता है। श्रीवाल्मीकीय रामायणमें इसका बड़ा सुन्दर वर्णन है। श्रीहनुमानजीके अतुलित पराक्रमका चित्र खींचते हुए वहाँ लिखा है—

तलेनाभिहनत् कांश्चित् पादैः कांश्चित् परंतपः।
मुष्टिभिश्चाहनत् कांश्चिन्नखैः कांश्चिद् व्यदारयत्॥
प्रममाथोरसा कांश्चिदूरुभ्यामपरानपि।
केचित्तस्यैव नादेन तत्रैव पतिता भुवि॥

(५।४५।१२-१३)

'हनुमानजीने उन राक्षसोंमेंसे किन्हींको थप्पड़से मारकर गिरा दिया, कितनोंको पैरोंसे कुचल डाला, कइयोंका मुक्कोंसे काम तमाम कर दिया और बहुतोंको नखोंसे फाड़ डाला। कुछको छातीसे रगड़कर उनका कचूमर निकाल दिया तो किन्हीं-किन्हींको दोनों जाँघोंसे दबोचकर पीस डाला। कितने ही राक्षस तो उनकी भयानक गर्जनासे ही वहाँ पृथ्वीपर गिर पड़े'—इत्यादि।

जब बचे-खुचे राक्षसोंसे रावणको यह समाचार मिला कि मन्त्रीके सातों पुत्र और प्रधान-प्रधान प्रायः सभी राक्षस मारे गये, पाँचों सेनापति तथा अक्षकुमार भी मारा गया, तब उसने इन्द्रजित्को उत्साहित करके हनुमानजीको पकड़ लानेके लिये भेजा। मेघनाद और हनुमानजीका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। अन्तमें जब उसने श्रीहनुमानजीको बाँधनेके लिये ब्रह्मास्त्र छोड़ा, तब ब्रह्माजीका सम्मान रखनेके लिये वे उससे बँध गये। उन्होंने सोचा कि राक्षसोंद्वारा पकड़े जानेमें भी मेरा लाभ ही है; क्योंकि इससे मुझे राक्षसराज रावणके साथ बातचीत करनेका अवसर मिलेगा। यह सोचकर वे निश्चेष्ट हो गये। तब राक्षसोंने नाना प्रकारके रस्सोंसे हनुमानजीको अच्छी प्रकार बाँध लिया। ऐसा करनेसे ब्रह्मास्त्रका प्रभाव नहीं रहा। इस प्रकार ब्रह्मास्त्रसे मुक्त हो जानेपर भी परम चतुर हनुमानजीने ऐसा बर्ताव किया मानो इस बातको वे जानते ही न हों।

अध्यात्मरामायणमें लिखा है कि इसके बाद हनुमानजी रावणकी सभामें लाये गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने समस्त सभाके बीचमें बड़ी सज-धजके साथ राजसिंहासनपर बैठे हुए रावणको देखा। हनुमानजीको देखकर रावणको मन-ही-मन बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगा कि यह भयँकर वानर कौन है? क्या साक्षात् शिवजीके गण भगवान् नन्दीश्वर ही तो वानरका रूप धारण कर नहीं आ गये हैं? इस प्रकार बहुत-सा तर्क-वितर्क करनेके बाद रावणने प्रहस्तसे कहा—

प्रहस्त पृच्छैनमसौ किमागतः
किमत्र कार्यं कुत एव वानरः।
वनं किमर्थं सकलं विनाशितं
हताः किमर्थं मम राक्षसा बलात्॥

(५।४।५)

'प्रहस्त! इस वानरसे पूछो, यह यहाँ क्यों आया है? इसका क्या काम है? यह आया कहाँसे है? तथा इसने मेरा समस्त बगीचा क्यों नष्ट कर डाला? और मेरे राक्षस वीरोंको बलात् क्यों मार डाला?'

प्रहस्तने श्रीहनुमानजीसे सारी बातें सत्य-सत्य कहनेके लिये अनुरोध किया, तब आपने राजनीतिके अनुसार उत्तर दिया। मनमें भगवान्‌का स्मरण करके वे कहने लगे—

शृणु स्फुटं देवगणाद्यमित्र हे
रामस्य दूतोऽहमशेषहृत्स्थितेः।
यस्याखिलेशस्य हृताधुना त्वया
भार्या स्वनाशाय शुनेव सद्धविः॥

(५।४।८)

'देवादिकोंके शत्रु रावण! तुम स्पष्टरूपसे सुन लो—कुत्ता जिस प्रकार विशुद्ध हविको चुरा ले जाता है, उसी प्रकार तुमने अपना नाश करानेके लिये जिन अखिलेश्वरकी साध्वी भार्याको हर लिया है, मैं उन्हीं सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीरामका दूत हूँ।'

वाल्मीकीय रामायणमें इस प्रसङ्गका विस्तृत वर्णन है। वहाँ हनुमानजी कहते हैं—

अब्रवीन्नास्मि शक्रस्य यमस्य वरुणस्य च।
धनदेन न मे सख्यं............................॥
जातिरेव मम त्वेषा वानरोऽहमिहागतः।
दर्शने राक्षसेन्द्रस्य तदिदं दुर्लभं मया॥
वनं राक्षसराजस्य दर्शनार्थं विनाशितम्।
ततस्ते राक्षसाः प्राप्ता बलिनो युद्धकाङ्क्षिणः॥
रक्षणार्थं च देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे।
अस्त्रपाशैर्न शक्योऽहं बद्धुं देवासुरैरपि॥

× × × ×

राजानं द्रष्टुकामेन मयास्त्रमनुवर्तितम्॥

(५।५०।१३—१७)

'मैं इन्द्र, यम, वरुण आदि अन्य किसी देवताका भेजा हुआ नहीं हूँ, न मेरी कुबेरके साथ मित्रता है। मेरी तो यह जाति ही है अर्थात् मैं जन्मसे ही वानर हूँ, राक्षसराज रावणको देखनेके लिये ही मैं यहाँ आया हूँ तथा रावणसे मिलनेके उद्देश्यसे ही मैंने ऐसा यह दुर्लभ बगीचा उजाड़ा है। तुम्हारे बली राक्षस मुझसे लड़नेके लिये गये; तब अपने शरीरकी रक्षाके लिये मैंने उनका सामना किया। देवता या असुर—कोई भी किसी प्रकार मुझे अस्त्रोंद्वारा बाँध नहीं सकता। राक्षसराजको देखनेके लिये ही मैंने यह बन्धन स्वीकार किया है।'

इसके बाद हनुमानजीने संक्षेपमें श्रीरामकी समस्त कथाका वर्णन करते हुए उनकी सुग्रीवके साथ मित्रता होने और वालीके मारे जानेकी सब बातें कहकर यह बतलाया कि 'मैं सीताकी खोज करनेके लिये यहाँ आया हूँ।'

इसके बाद आपने बड़ी युक्तियोंसे रावणको भगवान् श्रीरामके बल, पराक्रम, प्रभाव और ऐश्वर्यकी बातें सुनाकर बहुत कुछ समझानेकी चेष्टा की। रामचरितमानसमें श्रीहनुमानजी कहते हैं—

बिनती करउँ जोरि कर रावन।
सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥

× × × ×

जाकें डर अति काल डेराई।
जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै।
मोरे कहें जानकी दीजै॥
प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥
राम चरन पंकज उर धरहू।
लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥

× × × ×

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी।
बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥

× × × ×

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥

(५।२२।४—२३)

भगवान् श्रीरामका प्रभाव दिखाकर बहुत कुछ समझानेके बाद अध्यात्मरामायणमें भी यही कहा है—

विसृज्य मौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनां
भजस्व रामं शरणागतप्रियम्।
सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो
रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात्॥

(५।४।२३)

रावण! तुम हृदयमें स्थित शत्रुभावनारूप मूर्खताका त्याग करके शरणागतप्रिय श्रीरामका भजन करो। श्रीसीताजीको आगे करके अपने पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित (भगवान् श्रीरामकी शरणमें जा पड़ो और) उन्हें नमस्कार करो। ऐसा करके तुम भयसे मुक्त हो जाओगे।'

इस प्रकार श्रीहनुमानजीने रावणको उसके हितकी बहुत-सी बातें कहीं; परंतु उसे वे बहुत ही बुरी लगीं। वह हनुमानजीपर क्रोध करके कहने लगा—'अरे बंदर! तुम निर्भयकी भाँति कैसे मेरे सामने बक रहे हो! तुम बंदरोंमें नीच हो। मैं अभी तुम्हें मार डालूँगा।' इस प्रकार उसने श्रीहनुमानजीको बहुत-सी खोटी-खरी बातें कहकर राक्षसोंको आदेश दिया कि 'इसे मार डालो।' यह सुनते ही बहुत-से राक्षस श्रीहनुमानजीको मारनेके लिये उद्यत हुए। उस समय विभीषणने रावणको समझाया। रामचरितमानसमें इसका यों वर्णन आता है—

नाइ सीस करि बिनय बहूता।
नीति बिरोध न मारिअ दूता॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई।
सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥

(५।२४।४)

यह सुनकर रावणने कहा—

कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥
पूँछहीन बानर तहँ जाइहि।
तब सठ निज नाथहि लइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई।
देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥

(५।२४, २५।१)

अध्यात्मरामायणमें लिखा है—यह सुनकर श्रीहनुमानजीने मन-ही-मन सोचा कि अब काम बन गया। उधर राक्षसोंने रावणकी आज्ञा पाकर तुरंत ही हनुमानजीकी पूँछपर बहुत-से वस्त्र घी और तेलमें भिगो-भिगोकर बाँध दिये। पूँछके अग्रभागमें थोड़ी आग लगा दी और शहरमें फिराकर एवं डोंडी पिटवाकर लोगोंको सुनाने लगे कि 'यह चोर है, इसलिये इसे यह दण्ड दिया गया है।' कुछ दूर जानेपर हनुमानजीने अपने शरीरको संकुचित कर तुरंत ही समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर पर्वताकार रूप धारण कर लिया और समस्त लंका जला डाली।

उत्प्लुत्योत्प्लुत्य संदीप्तपुच्छेन महता कपिः।
ददाह लङ्कामखिलां साट्टप्रासादतोरणाम्॥
हा तात पुत्र नाथेति क्रन्दमानाः समन्ततः।
व्याप्ताः प्रासादशिखरेऽप्यारूढा दैत्ययोषितः॥

(५।४।४२-४३)

'एक घरसे दूसरे घरपर छलाँग मारते हुए श्रीहनुमानजीने अपनी जलती हुई बड़ी पूँछसे अटारी, महल और तोरणोंसहित समस्त लंकाको जला दिया। उस समय 'हा तात!', 'हा पुत्र!', 'हा नाथ !'—इस प्रकार चिल्लाती हुई दैत्योंकी स्त्रियाँ चारों ओर फैल गयीं और महलोंके शिखरोंपर भी चढ़ गयीं।'

रामचरितमानसमें लिखा है—

निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं।
भईं सभीत निसाचर नारीं॥

× × × ×

जारा नगरु निमिष एक माहीं।
एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥

× × × ×

उलटि पलटि लंका सब जारी।
कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥
पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगे ठाढ़ भयउ कर जोरि॥

(५।२५।५, २६।३-४, २६)

इस प्रकार श्रीजानकीजीके पास पहुँचकर श्रीहनुमानजीने उन्हें प्रणाम किया और लौटकर श्रीरामके पास जानेके लिये आज्ञा माँगी। तब माता सीताने कहा कि 'हनुमान! तुम्हें देखकर मैं अपने दुःखको कुछ भूल गयी थी; अब तुम भी जा रहे हो तो बताओ, अब मैं भगवान् श्रीरामकी कथा सुने बिना कैसे रह सकूँगी?' अध्यात्मरामायणमें उस समय श्रीहनुमानजीके वचन इस प्रकार हैं—

यद्येवं देवि मे स्कन्धमारोह क्षणमात्रतः।
रामेण योजयिष्यामि मन्यसे यदि जानकि॥

(५।५।६)

'देवी जानकी! यदि ऐसी बात है और आप स्वीकार करें तो मेरे कंधेपर चढ़ जाइये; मैं एक क्षणमें ही आपको श्रीरामसे मिला दूँगा।'

वाल्मीकीय रामायणमें और भी विस्तृत वर्णन है। वहाँ हनुमानजीके इस प्रस्तावपर श्रीजनकनन्दिनी कहती हैं—'हनुमान! मैं स्वेच्छासे किसी पुरुषको कैसे स्पर्श कर सकती हूँ। श्रीरामजी वानरोंके साथ यहाँ आकर रावणको युद्धमें मारकर मुझे ले जायँ, इसीमें उनकी शोभा है। इसलिये तुम जाओ, मैं किसी तरह कुछ दिन और प्राण धारण करूँगी।'

इसके बाद रामचरितमानसमें हनुमानजीके वचन इस प्रकार हैं—

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा।
जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा॥

(५।२७।१)

तब सीताने अपनी चूडामणि हनुमानको दी। उसे पाकर हनुमानजी बड़े प्रसन्न हुए। उसके बाद सीताजीने वह सब प्रसङ्ग भी हनुमानजीको सुनाया, जिस प्रकार जयन्तने कौएका रूप धारण करके चोंच मारी थी और भगवान् श्रीरामने उसपर क्रोध किया था।

इस प्रकार श्रीहनुमानजी सीताका संदेश लेकर, उनको प्रणाम करके वहाँसे लौटे। उनके मनमें श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनोंकी बड़ी उतावली हो रही थी। इसलिये वे बड़े वेगसे पहाड़पर चढ़ रहे थे। उस समय उनके पैरोंकी धमकसे पर्वतकी शिलाएँ चूर-चूर होती जा रही थीं। सबसे ऊँचे शिखरपर चढ़कर श्रीहनुमानजीने अपना शरीर बढ़ाया और समुद्रसे पार होकर उत्तरी किनारेपर जानेका विचार किया। पर्वतसे उछलकर वे वायुकी भाँति आकाशमें जा पहुँचे। वह पर्वत हनुमानजीके पैरोंसे दबाये जानेके कारण बड़ी आवाज करता हुआ अपने ऊपर रहनेवाले वृक्षों और प्राणियोंसहित जमीनमें धँस गया।

श्रीहनुमानजी आकाशमार्गसे आगे बढ़ते हुए बड़े जोरसे गरजे, जिससे समस्त दिशाएँ गूँज उठीं। उसे सुनकर हनुमानजीसे मिलनेके लिये समस्त वानर उत्साहित हो उठे। जाम्बवान्के हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सबसे कहने लगे—'हनुमानजी सब प्रकारसे अपना कार्य सिद्ध करके आ रहे हैं। अन्यथा इनकी ऐसी गर्जना नहीं हो सकती।'

इतनेमें ही अत्यन्त वेगशाली पर्वताकार श्रीहनुमानजी महेन्द्र पर्वतके शिखरपर कूद पड़े। उस समय सभी वानर बड़े प्रसन्न हुए और महात्मा हनुमानजीको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। हनुमानजीने जाम्बवान् आदि बड़ोंको प्रणाम किया तथा अन्य वानरोंसे प्रेमपूर्वक मिले। संक्षेपमें ही सीताजीसे मिलने और लंका जला डालनेका सारा प्रसङ्ग उन लोगोंसे कह सुनाया। वाल्मीकीय रामायणमें इस प्रसङ्गका भी बड़े विस्तारसे वर्णन हुआ है।

समस्त वानरोंसहित श्रीहनुमानजी वहाँसे चलकर किष्किन्धा पहुँचे। वहाँ सब वानरोंने अङ्गदकी आज्ञा लेकर सुग्रीवके मधुवनमें आनन्दपूर्वक मधुपान किया। रक्षकोंने आकर वानरराज सुग्रीवके पास इसकी शिकायत की, उस समय लक्ष्मणके पूछनेपर सुग्रीवने कहा—'भाई लक्ष्मण! इन सब बातोंसे मुझे तनिक भी संदेह नहीं रहा कि हनुमानने ही भगवती सीताका दर्शन किया है। वानरश्रेष्ठ हनुमानमें कार्य सिद्ध करनेकी शक्ति, बुद्धि, उद्योग, पराक्रम और शास्त्रीय ज्ञान—सभी कुछ हैं।' इसके अतिरिक्त उन्होंने और भी बहुत-सी ऐसी बातें कहीं, जिनसे श्रीहनुमानजीका प्रभाव स्पष्ट व्यक्त होता है।

फिर सुग्रीवने तुरंत ही सब वानरोंके साथ हनुमानजीको अपने पास बुला लिया और वे उनका कुशल-समाचार जानकर बड़े प्रसन्न हुए। सब मिलकर श्रीरामजीके पास आये। उस समय श्रीरामचरितमानसमें हनुमानजीके महत्त्वका वर्णन करते हुए जाम्बवान्ने कहा है—

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी।
सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥

(५।३०।३)

इसके बाद श्रीहनुमानजीने भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया और श्रीरामने हनुमानको हृदयसे लगाया। तब हनुमानजीने कहा—'देवी सीता पातिव्रत्यके कठोर नियमोंका पालन करती हुई शरीरसे कुशल हैं, मैं उनके दर्शन कर आया हूँ।' हनुमानजीके ये अमृतके समान वचन सुनकर श्रीराम और लक्ष्मणको बड़ा हर्ष हुआ। भगवान्के मनका भाव जानकर हनुमानजीने उन्हें जिस प्रकार श्रीजानकीजीके दर्शन हुए थे, वह समस्त प्रसङ्ग सुनाकर उनकी दी हुई चूडामणि भगवान्को अर्पण कर दी। उस मणिको लेकर भगवान् श्रीरामने हृदयसे लगा लिया और उसे देख-देखकर विरहमें व्याकुल होने लगे।

रामचरितमानसमें सीताका संदेश देते हुए हनुमानजीने श्रीसीताजीके प्रेमकी बात इस प्रकार कही है—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥

(५।३०)

अन्तमें यहाँतक कह दिया—

सीता कै अति बिपति बिसाला।
बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥

(५।३१।५)

अध्यात्मरामायणमें इसका वर्णन इस प्रकार है। सीताके समाचार सुनाते हुए हनुमानजी कहते हैं—

अभिज्ञां देहि मे देवि यथा मां विश्वसेद्विभुः॥
इत्युक्ता सा शिरोरत्नं चूडापाशे स्थितं प्रियम्।
दत्त्वा काकेन यद् वृत्तं चित्रकूटगिरौ पुरा॥
तदप्याहाश्रुपूर्णाक्षी कुशलं ब्रूहि राघवम्।
लक्ष्मणं ब्रूहि मे किंचिद् दुरुक्तं भाषितं पुरा॥

तत्क्षमस्वाज्ञभावेन भाषितं कुलनन्दन।
तारयेन्मां यथा रामस्तथा कुरु कृपान्वितः॥

× × × ×

ततः प्रस्थापितो राम त्वत्समीपमिहागतः।
तदागमनवेलायामशोकवनिकां प्रियाम्॥
उत्पाट्य राक्षसांस्तत्र बहून् हत्वा क्षणादहम्।
रावणस्य सुतं हत्वा रावणेनाभिभाष्य च॥
लङ्कामशेषतो दग्ध्वा पुनरप्यागमं क्षणात्।

(५।५।५२—५९)

''आते समय मैंने सीतासे कहा कि 'देवि ! मुझे कोई ऐसी निशानी दीजिये, जिससे श्रीरघुनाथजी मेरा विश्वास कर लें।' मेरे इस प्रकार कहनेपर उन्होंने अपने केशपाशमें स्थित अपनी प्रिय चूडामणि मुझे दी। पहले चित्रकूटपर काकके साथ जो घटना हुई थी, वह सब सुनायी तथा नेत्रोंमें जल भरकर कहा कि श्रीरघुनाथजीसे मेरी कुशल कहना और लक्ष्मणसे कहना—'कुलनन्दन! मैंने पहले तुमसे जो कुछ कठोर वचन कहे थे, उन अज्ञानवश कहे हुए वचनोंके लिये मुझे क्षमा करना तथा जिस प्रकार श्रीरघुनाथजी कृपा करके मेरा उद्धार करें, वैसी चेष्टा करना।' उनका यह सँदेसा लेकर उनका भेजा हुआ मैं आपके पास चला आया। आते समय मैंने रावणकी प्यारी अशोक-वाटिका उजाड़ दी तथा एक क्षणमें ही बहुत-से राक्षस मार डाले। रावणके पुत्र अक्षकुमारको भी मारा और रावणसे वार्तालापकर लंकाको सब ओरसे जलाकर फिर तुरंत ही यहाँ चला आया।''

श्रीहनुमानजीसे सीताके सब समाचार सुनकर श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे—

हनूमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम्।
उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः॥
इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्वं मम मारुते।
इत्यालिङ्ग्य समाकृष्य गाढं वानरपुंगवम्॥
सार्द्रनेत्रो रघुश्रेष्ठः परां प्रीतिमवाप सः।

(५।५।६०—६२)

''वायुनन्दन हनुमान! तुमने जो कार्य किया है, वह देवताओंसे भी होना कठिन है। मैं इसके बदलेमें तुम्हारा क्या उपकार करूँ, यह नहीं जानता। मैं अभी तुम्हें अपना सर्वस्व देता हूँ।' यह कहकर रघुश्रेष्ठ श्रीरामने वानरश्रेष्ठ हनुमानको खींचकर गाढ़ आलिङ्गन किया। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये और वे प्रेममें मग्न हो गये।''

श्रीहनुमानजीके बल, पराक्रम, कार्यकौशल, साहस और पवित्र प्रेमका इस प्रकरणमें सभी रामायणोंमें बड़ा ही सुन्दर वर्णन मिलता है।

~~~ o ~~~

ऋग्वेदमें श्रीरामदूत श्रीहनुमान

(वेददर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराज, उदासीन)

शिवं स तनुतां रामो यस्य दूतं महाबलम्।
स्तौति वायुसुतं वीरमग्निमित्यादिका श्रुतिः॥

''**अग्निम्**' इत्यादि श्रुति जिनके महाबली दूत वीरवर पवनकुमार हनुमानजीकी स्तुति करती है, वे श्रीराम मङ्गलका विस्तार करें।''

भगवत्प्राप्तिके साधनभूत ज्ञान-कर्मादिमें यद्यपि भगवद्भक्तिकी श्रेष्ठता सुस्पष्ट प्रतिपादित है, किंतु भगवद्भक्तोंकी भक्तिकी महिमाका स्थान सुनिश्चितरूपसे सर्वोपरि है। स्वयं भगवान्‌का कथन है—'**मद्भक्तानां च ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः**।' (लघुभागवतामृत) लोकमें भी पुत्रके सम्मानसे पिताका सुप्रसन्न होना सर्वानुभूत है।

सन् १९६९ में 'वेदोपदेशचन्द्रिका' के मुद्रणकालमें इसी भावनावश भक्तप्रवर हनुमानजीके सम्बन्धमें मैंने वेदोंपर दृष्टि दौड़ायी तो उस समय मेरी समझमें केवल ऋग्वेदका प्रथम मन्त्र ही हनुमच्चरित्रका निर्देशक प्रतीत हुआ, जो 'वेदोपदेशचन्द्रिका' के पृ० ८-९ पर संस्कृत चान्द्रभाष्य तथा हिंदी-अनुवादके साथ छप चुका है।

पर इस समय तो श्रीरामके अतिप्रिय भक्त श्रीहनुमानजीकी विशेष अनुकम्पासे मन्त्रोंकी बात तो एक ओर रही, पूरे सूक्त-के-सूक्त ही हनुमच्चरित्रके प्रतिपादक प्रतिभासित हो रहे हैं। यहाँ यथामति उन वैदिक सूक्तों तथा तदन्तर्गत मन्त्रोंका अभिप्राय देनेका प्रयास किया जा रहा है—

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥

(ऋ० १।१२।१)

'**अग्निम्**' अग्रणी, वानराग्रणी, वायुपुत्रको अथवा
~~~

दैत्य-दाव-दहन (दैत्य-वनके दाहक अग्नि)-को, **'अस्य यज्ञस्य दूतम्'** ध्यानकी परिपाक दशामें भक्तोंके समक्ष उपस्थित अथवा जनकल्याणके लक्ष्यसे धराधामपर अयोध्यामें अवतीर्ण **'यज्ञो वै विष्णुः'**—(शतपथब्राह्मण १।१।२)—इस श्रुतिके अनुसार* **'यज्ञस्य'** विष्णुके अर्थात् दशरथनन्दन श्रीरामके दूतको, **'सुक्रतुम्'**—**'शोभनकर्माणम्'** जिस वीराग्रणी महानुभावने प्रभु श्रीरामकी प्रसन्नताके लिये समुद्रोल्लङ्घन, सीता-अन्वेषण, युद्धभूमिमें मूर्च्छित लक्ष्मणके पुनर्जीवनके लिये संजीवनी ओषधिके उद्गम-स्थान द्रोणाद्रिके समानयन आदि लोकोत्तर अद्भुत पराक्रम किये, उन श्रीहनुमानजीको **'वृणीमहे'** हम भक्तलोग उपास्यरूपमें स्वीकार करते हैं अथवा उनकी प्रार्थना करते हैं।

श्रीहनुमानजीके ध्यानके निम्नलिखित सुप्रसिद्ध श्लोकमें भी उपर्युक्त मन्त्रके ही पदोंसे सूचित भाव समाया हुआ है—

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये॥

मैं मनके समान शीघ्रगतियुक्त एवं वायुके समान प्रबलवेगभूषित, इन्द्रियविजयी (ब्रह्मचारी), बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, वायुपुत्र, वानरसमूहके अग्रणी, श्रीरामदूत भगवान् हनुमानकी शरणको प्राप्त होता हूँ। **'शरणं प्रपद्ये'** के स्थानपर कहीं-कहीं **'शिरसा नमामि'** पाठ है। उसका अर्थ है—'मैं उनके चरणोंमें नतमस्तक होता हूँ।'

भगवान् महावीरके स्तावक भक्तने क्या ही सुन्दर शब्दोंमें उपर्युक्त मन्त्रमें सूचित भावोंका इस पद्यमें मनोहारी अनुवाद किया है। कतिपय शब्द तो यथावत् ही प्रयुक्त किये गये हैं, जिनमें 'अग्नि' शब्द विशेष विवेचनीय है। निरुक्त (७।१४)-में 'यास्क' ने लिखा है—**'अग्निः कस्मात्? अग्रणीर्भवति'** अर्थात् 'अग्रणी' शब्दका अर्थ है—अग्रगामी, मुख्य, मुखिया। उसीके अनुसार स्वयूथ, वानरजातिके प्रधानतम नेताके लिये **'वानरयूथमुख्यम्'** विशेषण प्रयुक्त हुआ है। **'वायोरग्निः'** (तै० उ० २।१)—इस श्रुतिके प्रमाणसे 'अग्नि' शब्दका अर्थ 'वायुपुत्र' है। श्रीहनुमानकी वायुपुत्रता रामायण, महाभारत, पुराणादिमें स्पष्ट वर्णित है। इसी अभिप्रायसे 'वातात्मज' विशेषण उनके लिये सर्वथा न्याय्य एवं तर्कसंगत है। स्तोताकी यह नि:सीम कुशलता ही है कि उसने **'अस्य, यज्ञस्य, दूतम्'**—इन तीन शब्दोंका अभिप्राय एक ही 'रामदूत' शब्दसे व्यक्त कर दिया।

'विश्ववेदसम्' का अर्थ है—सर्वज्ञ, समस्त-विद्यानिधि, वेदविदुत्तम, दूसरे शब्दोंमें विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ। उनके ध्यानमें प्रयुक्त लौकिक श्लोकमें **'बुद्धिमतां वरिष्ठम्'** विशेषणमें इसी **'विश्ववेदसम्'** का भाव संनिहित है।

अब श्रीरामदूत पवनपुत्रका 'हनुमान' नाम क्यों पड़ा और उसकी क्या व्युत्पत्ति है, वह शब्द या तत्सदृश शब्दान्तर वेदमें प्रयुक्त है या नहीं?—इन्हीं बातोंपर यहाँ विचार करना है।

चिबुक (ठुड्डी)-वाचक 'हनु' शब्दसे **'मतुप्'** प्रत्यय होनेपर 'हनुमान' शब्द बना है। **'मतुप्'** प्रत्ययसे प्रकृतिके अर्थकी अतिशय विशिष्टता या विलक्षणता सूचित होती है। **'अतिशायने मतुप्'** इस प्रकार 'हनुमान' शब्दका अर्थ होगा—विलक्षण चिबुकसे संयुक्त। इस घटनाका संकेत निम्न-निर्दिष्ट मन्त्रमें है—

ममच्चन ते मघवन् व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य सं पिणग्वधेन॥
(ऋ० ४।१८।९)

'मघवन्' हे इन्द्र! **'ते'** आपके सांनिध्यमें **'चन'** निश्चित, **'ममत्'** प्रमाद करते हुए **'व्यंसः'** विशाल स्कन्धयुक्त आपके ऐरावतको फल मानकर खानेके लिये पकड़नेकी इच्छासे भयंकर विशाल शरीरधारी कपिराज महावीर **'निविविध्वान्'** आपको लगातार सताने लगा। तब **'निविद्धः'** सताये हुए—पीड़ित हुए आपने **'हनू' हनौ, 'विभक्तिवचनयोर्व्यत्ययः'** चिबुक (ठुड्डी)-में **'अप'** अपगमनके लिये—उसे हटानेके लिये **'वधेन'** वज्रसे **'जघान'** प्रहार किया। **'अधा, अथ'** तत्पश्चात् **'दासस्य'** भविष्यमें जो श्रीरामके सेवक होनेवाले हैं, उन महावीरका **'शिरः' 'अवयवेऽवयविनः प्रयोगः'** सिरके अवयव ओष्ठके नीचे चिबुकके वाम प्रदेशको **'सं पिणक्'** अच्छी तरह तोड़ डाला। अर्थात् आपके वज्र-प्रहारके प्रभावसे उसका हनुप्रदेश भग्न हो गया। अतएव वज्रभग्न हनुप्रदेशसे युक्त होनेके कारण उनकी संज्ञा 'हनुमान' हो गयी। **'क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः'**—इस उक्तिके अनुसार वह वज्रप्रहार लाभकारी ही प्रमाणित हुआ; क्योंकि मृतप्राय पुत्रको गोदमें लेकर गुफामें स्थित शोकग्रस्त वायुदेवने जब कोपवश अपना संचार रोक दिया तो पीड़ित प्रजाकी प्रार्थनासे देवगणसहित ब्रह्माने वहाँ आकर मृत अञ्जनानन्दन पवनपुत्रको जीवित

* वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः। (वा० रा० ५।३६।२)

ही नहीं किया, अपितु अतिदुर्लभ विविध वरदानोंद्वारा अतिबलवान् भी बना दिया। इसी अभिप्रायसे भगवान् वेद कह रहे हैं कि वे '**व्यंस:**' हनुमान '**उत्तरो बभूवान्**' पहलेसे भी अधिक बलवान् हो गये।

वैदिक प्रथा है कि जहाँतक सम्भव हो, किसी वस्तुका निर्देश प्रत्यक्ष शब्दद्वारा न किया जाय, अपितु उसकी सूचनाके लिये परोक्ष शब्द ही प्रयुक्त हो। ऐतरेयोपनिषद् (१।३।१४)-के '**परोक्षप्रिया इव हि देवा:**'—इस वचनके अनुसार देवोंको परोक्ष शब्दद्वारा वस्तुका निर्देश अत्यन्त प्रिय है। अतएव भगवान् वेदमें श्रीहनुमानजी 'हन्मन' शब्दद्वारा निर्दिष्ट हुए हैं।

निम्ननिर्दिष्ट मन्त्रके अवलोकनसे यह विषय और भी स्पष्ट हो जायगा—

अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्याऽवर्धत मध्य आ नाव्यानाम्।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून्॥*

(ऋक्० १।३३।११)

भोक्ता जीवके भोग्य अन्न व्रीहि-यवादि-निष्पत्तिके निमित्त मेघोंद्वारा जलकी वृष्टि होती है। मेघोंमें जल कहाँसे आया, इस शङ्काका समाधान वेदमें दो समुद्र मानकर किया गया है। ऋग्वेदके दो मन्त्रों (१०।९८।५-६)-में उत्तर एवं अधर दो समुद्र माने गये हैं—उत्तर—उत्कृष्ट, दिव्य, उपरिस्थित एवं अधर—निकृष्ट, अधोवर्ति पार्थिव समुद्र। ये दोनों समुद्र परस्पर एक-दूसरेकी वृद्धिमें सहकारी हैं। मेघके उदरमें स्थित जलराशिरूप समुद्रको अन्तरिक्ष या अन्तरिक्षस्थित समुद्रकी संज्ञा दी गयी है। उससे वृष्टिधाराके द्वारा गिराया गया जल निर्झरों और महानदियोंका निर्माण करता है। वे निर्झर महानदियोंमें मिलते हैं और महानदियाँ अन्ततः समुद्रमें मिलकर पार्थिव जलराशिको बढ़ाती हैं। सूर्यकी किरणें पार्थिव समुद्रकी जलराशिको आकृष्ट कर दिव्य समुद्रकी जलराशिकी वृद्धिका कारण बनती हैं। अतः मानना होगा कि पार्थिव समुद्रकी तरह दिव्य समुद्रमें भी अगाध जल वर्तमान है। वह इतना अधिक गम्भीर है कि उसे नौकाओंकी सहायतासे ही पार किया जा सकता है। '**नाव्य**' पदका प्रयोग गम्भीरताको सूचित कर रहा है। उस अन्तरिक्षमें स्थित गम्भीर जलराशि—समुद्रके मध्य वर्तमान श्रीहनुमान अभिवृद्ध हुए, उन्होंने विशालाकृति धारण कर ली। निष्कर्ष यह कि वह अन्तरिक्षस्थित गम्भीर जलराशि भी श्रीहनुमानको डुबानेमें असमर्थ रही।

तात्पर्य यह कि जलराशिमें रहनेपर भी साधारण प्राणियोंकी तरह वे डूबकर मरे नहीं, अपितु उसमें विशालाकृति धारणकर सहर्ष विचरण करते रहे और यह प्रयास करने लगे कि इन्द्रके ऐरावतको पकड़कर भक्षण किया जाय। इन्द्रने जो उन्हें भगानेका प्रयास किया तो वे भागनेके स्थानपर उलटे लगातार इन्द्रको सताने लगे। अन्तमें चिढ़कर क्रुद्ध इन्द्रने अवसर पाते ही उनपर वज्रका प्रहार कर दिया। श्रीहनुमानजी मनके समान शीघ्र गतिसे इन्द्रके साथ-साथ चलते रहे। उनकी चेष्टा यही रही कि किसी तरह इन्द्रके वाहन ऐरावतको भोज्य बनाया जाय। अतः '**हन्मना**'—हनुमानसे पीड़ित होनेके कारण उन्हें विवश होकर उनपर वज्रप्रहार करना पड़ा। ज्ञातव्य है कि वेदमें (जैसे ऋक्० २।२८।२ में) '**महिम्ना**' की जगह वर्ण-विलोपसे निष्पन्न '**मह्न**' शब्द प्रयुक्त हुआ है, ठीक उसी तरह '**हनुमता**' इस तृतीयान्त पदके स्थानमें '**हन्मना**' पदका प्रयोग हुआ है। कारण, उकारका लोप और तकारके स्थानमें नकारका आदेश मानकर '**हन्मना**' रूप सहज निष्पन्न

* 'आप:' जलानि, 'अस्य' जीवस्य भोक्तुः 'स्वधाम्' दैववशोपस्थापितं व्रीहियवादिरूपमन्नम् 'अनु' अनुलक्ष्य—उद्दिश्य व्रीहियवादि-शस्यसम्पत्यर्थम् 'अक्षरन्' पर्जन्याद् वृष्टा अभवन्, तदुक्तं गीतायां 'पर्जन्यादन्नसम्भवः' इति (३।१४)। अयमभिसंधिः—द्वौ समुद्रौ वर्तेते, तत्रैकः पार्थिवो जलराशिलक्षणः, द्वितीयो मेघोदरस्थितजलसमूहलक्षणोऽन्तरिक्षाख्यस्तत्र स्थितो वा। एतावन्योन्यस्योपकुर्वाते। अन्तरिक्षस्थः समुद्रः पर्जन्यविमुक्तसततजलधारानिर्मितनिर्झरमहानद्यादिक्रमेण पार्थिवं समुद्रं वर्धयति। पार्थिवः समुद्रश्च सूर्यरश्म्याकृष्टस्वजलराशिना द्वितीयमन्तरिक्षस्थं समुद्रम्। आहतुश्च मन्त्रवर्णौ—स उत्तरस्मादधरं समुद्रम्'॥ 'अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तरस्मिन्'॥ (ऋग्० १०।९८।६)उत्तराधरौ समुद्रौ 'पार्थिवदिव्यसमुद्रौ' स्फुटं निर्दिशतः, तथा च पार्थिवसमुद्र इवान्तरिक्षेऽपि समुद्रो विद्यते। पार्थिवस्येव तस्य जलराशिरतलस्पर्शोऽगाधो गम्भीरः, तस्मात् स वारिसमूहो नौभिरेव तरितुं शक्य इति। 'नाव्यानाम्' पूर्वोक्तहेतो नौभिस्तरितुं योग्यानां दिव्यसमुद्रस्थानामपां मध्येऽन्तः व्यंसो हनुमान् 'अवर्धत' अभिवृद्धो बभूव। नासौ जलराशिस्तं निमज्जयितुं शशाक इत्यर्थः। 'द्यूनं अभि' बलेन द्योतमानान् वीर्यातिरेकसमृद्धान् महाबलिनो राहुभास्करैरावतान् अभिलक्ष्य पक्वं फलं मत्वा भोक्तुं जिघृक्षतं 'व्यंसं' हनुमन्तम् 'ओजिष्ठेन' अतिबलवता 'सध्रीचीनेन' तान् गृहीत्वा भोक्तुं सहगच्छता 'मनसा' मनस्तुल्यवेगेन 'हन्मना' हनुमता, अत्र उकारलोपस्तकारस्य नकारश्च छान्दसः। देवानां परोक्ष-प्रियत्वाद्धनुमतेत्यनुक्त्वा तथोक्तिः, 'निविद्धः' इति शेषः। 'ममच्चन ते मघवन् व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान' (ऋग्० ४।१८।९) इति मन्त्रवर्णात्। 'इन्द्रः' तत्पीडितत्वात् क्रुद्धः 'अहन्' वज्रं प्रजहार। कथैषा वाल्मीकिरामायणे (उ० का० ३५ तमे सर्गे) अवज्ञेया।

होता है। अतः प्रमाणित हुआ कि दूतादि विशेषणोंद्वारा **ही नहीं**, अपितु उनके वाचक '**हनुमत्**' शब्दद्वारा भी **वेदमें** उनका निर्देश उपलब्ध है।

वेदमें '**दूत**' शब्द विभक्ति-भेदसे ९० बार, '**हनू**' **शब्द** ४ बार और 'हन्मना' शब्द, जो तृतीयान्त '**हनुमता**' **शब्दका** रूपान्तर है, ५ बार प्रयुक्त हुआ है। प्रयत्न **करनेपर** न्यूनातिन्यून एकोनशत मन्त्रोंकी हनुमत्परक **व्याख्या** शक्य है। विस्तारभयसे यहाँ नहीं दी जा रही **है**। मनीषीगण स्वमनीषासे उसे अवगत कर लेंगे। **मीमांसकोंने** परामर्श एवं उपसंहारको उपक्रमानुरोधी **माना है अर्थात्** आरम्भमें जिस विषयका निर्देश हो, **उसी विषयका** प्रतिपादक मध्यवर्ती या अन्तिम संदर्भ **मानना होगा**। मध्यवर्ती संदर्भका नामान्तर ही परामर्श **है**। **इसीको उपक्रम-परामर्शोपसंहार-न्याय** कहते हैं।

इस न्यायके अनुसार मध्यवर्ती द्वितीयादि मण्डलोंके **मन्त्र तथा** अन्तके दशम मण्डलके मन्त्र प्रथम मण्डलनिर्दिष्ट **विषयके** ही निरूपक होंगे, अतः प्रथम मण्डलके **प्रारम्भके** मन्त्रका व्याख्यान विशेष अनुपयुक्त न होगा। **इस** प्रसङ्गमें '**अग्नि**' आदि पदोंपर विशेष ध्यान देना **आवश्यक** है।

चान्द्रभाष्यमें ऋग्वेदके प्रथम मन्त्र (१।१।१)-**में** '**अग्नि**' शब्दका अर्थ वायुपुत्र मानकर हनुमानको **ही मन्त्रप्रतिपाद्य** स्वीकार किया गया है। प्रथम मन्त्रमें '**पुरोहितम्**' और '**यज्ञस्य**' पदोंका अर्थ यह है कि **सुग्रीवने श्रीरामके** समीप मैत्रीके लिये पहले जिसे भेजा, **उसीका स्पष्टीकरण** (ऋ० १। १२। १ में) '**दूतम्**' **पदद्वारा** किया गया है। '**पुरोहित**' शब्दका दूसरा अर्थ **यह भी है** कि युद्धारम्भसे पहले सीताकी खोजके लिये **जिसे** भेजा गया, वह पुरोहित है। कुछ भी अर्थ करें, '**पुरोहित**' शब्द दूतका समानार्थक है। ऋग्वेद १।१।१ **तथा** १।१२।१—दोनों स्थलोंमें प्रयुक्त '**होतारम्**' शब्दका **अर्थ है**—युद्धके लिये राक्षसवृन्दको आह्वान करनेवाला। '**ऋत्विजम्** (**ऋत्वा एजम्**)'-का अर्थ है—समुद्र पार **करके दैत्योंको** कँपानेवाला, अर्थात् जिसे देखकर दैत्योंका हृदय दहल गया, जिससे दैत्यवर्ग भयभीत हो गया। ऋ० १। १। १ मन्त्रस्थ '**रत्नधातमम्**' पद विशेष महत्त्वका है। इसकी व्याख्या है—सीताके लिये पहचाननेके लक्ष्यसे श्रीरामद्वारा दी गयी रामनामाङ्कित अँगूठीको धारण करनेवाला अथवा सीताके द्वारा अभिज्ञानके रूपमें दी गयी चूड़ामणिका धारक। '**तमप्**' प्रत्यय अतिशयताका सूचक है। इस प्रकार रामनामाङ्कित अङ्गुलीयकके धारक राम हैं—**रत्नधाः**। चूड़ामणि-रत्नकी धारिका सीता भी '**रत्नधा**' हैं। इन दोनोंने एक-एक रत्नको धारण किया और तृतीय हनुमानने अभिज्ञानरूपमें अँगूठी और चूड़ामणि—दोनोंको धारण किया, अतः वे एकैकरत्नधारक सीता और श्रीरामकी तुलनामें '**रत्नधातम**' हुए। '**रत्नधातम**' शब्द बलात् रामदूत हनुमानमें ही '**अग्नि**' शब्दके तात्पर्यका ग्राहक है। '**सशङ्खचक्रो हरिः**'—इस वाक्यमें जैसे शङ्ख चक्रका साहित्य 'हरि' शब्दके विष्णुरूप अर्थमें तात्पर्यका ग्राहक है, उसी तरह '**रत्नधातमम्**' शब्दके प्रयोगसे प्रथम मन्त्रमें अनेकार्थक होनेपर भी '**अग्नि**' शब्दका वायुपुत्र हनुमानमें ही तात्पर्य है; अन्यत्र नहीं।

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥

(ऋक्० १।१।१)

मन्त्रका अर्थ यह निष्पन्न हुआ—'**यज्ञस्य**' संगमनमैत्रीके निमित्त प्रथम सुग्रीवद्वारा श्रीरामके समीप प्रेषित '**देवम्**' विजिगीषु '**ऋत्विजम्**' समुद्र पार करके रक्षोवृन्दके हृदयको भयभीत करनेवाले, '**होतारम्**' युद्धके लिये अशोकवाटिकामें मन्त्री, मन्त्रीके पुत्र, रावणके पुत्र अक्षकुमारको ललकारनेपर उपस्थित उन सबके संहारक, '**रत्नधातमम्**' श्रीरामप्रदत्त अङ्गुलीयक[1] अर्थात् रत्नजटित अँगूठीके धारक[2] तथा सीताप्रदत्त चूड़ामणि[3] के ग्राहक, '**पुरोहितम्**' दूत, '**अग्निम्**' वायुपुत्र हनुमानकी मैं '**ईळे**' स्तुतिपूर्वक वन्दना करता हूँ।

ऋग्वेदका विशेष परिशीलन करनेपर और भी पता चला कि वेदमें प्रयुक्त '**अपां नपात्**' शब्दका असाधारण प्रतिपाद्य देव हनुमान ही हैं। वे स्वतन्त्र

१. रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम्॥ (वा० रा० ५।३६।२)

२. मणिरत्नं कपिवरः प्रतिगृह्याभिवाद्य च। सीतां प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणतः पार्श्वतः स्थितः॥ (वा० रा० ५।३८।६८)

३. ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम्। प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ॥ (वा० रा० ५।३८।६६)

एवं अल्पस्तुत देव हैं। इनके दो सूक्त हैं—ऋ० २। ३५ तथा ऋ० १०। ३०। इन सूक्तोंमें '**अपां नपात्**' शब्द बहुशः प्रयुक्त हैं। (ऋ० २। ३५, १। ३, ७, ९, १०, १३, १०। ३०। ३-४)।

'**अ*पां नपात्**' शब्दका अर्थ है—आकाशका नप्ता—पौत्र। '**अप्**' शब्द अन्तरिक्ष, आकाशका वाचक है। निघण्टुमें '**आपः**' शब्द अन्तरिक्ष नामोंमें पठित है—'**अन्तरिक्ष आकाश आपः**' (१—३। ६—८)।

सृष्टि-प्रकरणकी दृष्टिसे भी '**आकाशाद् वायुः**' (तै० उ० २। १) श्रुतिके अनुसार आकाशात्मज वायुके तनय भगवान् हनुमान ही हैं। वेदने इसी गूढ़ अभिप्रायसे उनके लिये '**अपां नपात्**' शब्दका प्रयोग किया है। '**अपां नपात्**' शब्दकी स्पष्ट व्याख्या भी उसी (३५वें) सूक्तके ११, १४ मन्त्रोंमें क्रमशः '**नप्तुरप आपो नप्त्रे**' इन शब्दोंद्वारा की गयी है। १०। ३० सूक्तके ३। ४ मन्त्रोंमें प्रयुक्त शब्दका स्पष्टीकरण १०। ३० के १४वें मन्त्रमें '**अपां नप्त्रे**' शब्दसे किया गया है।

निम्न-निर्दिष्ट मन्त्रसे इसपर विशेष प्रकाश डाला जाता है—

हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृगपां नपात् सेदु हिरण्यवर्णः।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै॥

(ऋक्० २। ३५। १०)

सायणाचार्यने '**रूप**' शब्दका अर्थ शरीर, '**संदृक्**'-का अर्थ इन्द्रिय तथा '**वर्ण**' का अर्थ कान्ति किया है। अतः '**सः**' वह हिरण्मय-शरीरयुक्त तथा हिरण्मय इन्द्रियोंसे समलंकृत है। '**सेदु—स+इत्+उ**' निश्चित ही वह स्वर्णके समान कान्तिसे शोभित है। जो '**अपां नपात्**' देव है, वह स्वर्णमय स्थान तेजोमय सूर्यमण्डलसे '**परि**' उपरि, दूसरे शब्दोंमें स्वर्णमय सूर्यमण्डलके ऊपर '**निषद्य**' स्थित (आसीन) होकर '**राजते**' शोभित हो रहा है। '**हिरण्यदा**' स्वर्णके दाता सम्पन्न भक्त '**अस्मै**' इस '**अपां नपात्**' देव हनुमानके लिये '**अन्नम्**' अन्नोपलक्षित मधुर मोदकादि पदार्थ '**ददति**' देते हैं। तात्पर्य, उन्हें मोदकादिका भोग लगाते हैं।

इसी मन्त्रका भाव '**हेमशैलाभदेहम्**' शब्दसे गोस्वामी तुलसीदासजीने अभिव्यक्त किया है। धन्य हैं—श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी, जिन्होंने वेद-मन्त्रोंका गहन अध्ययन किया और सूक्ष्म गवेषणासे अवगत भगवान् हनुमानके स्वरूपसे सम्बद्ध विशेषणोंका ललित-पदावलीद्वारा उपर्युक्त श्लोकमें उपन्यास किया। ज्ञानदेवता भगवान् हनुमानकी ही कृपासे मुझे उनके स्वरूपके प्रतिपादक कतिपय वेद-मन्त्र प्रतिभासित हुए। वेदार्थभाषक यास्क मुनि निरु० १०। ३६में ऋग्वेदकी १। १९। १ ऋचाकी व्याख्यामें बलपूर्वक लिख रहे हैं— '**कमन्यं मध्यमदेवमवक्ष्यत्**'। इस मन्त्रमें मध्यमदेवसे अतिरिक्त और किस देवका मन्त्रद्रष्टा ऋषि वर्णन करेगा। अर्थात् ऋग्वेद १। १९ के सभी मन्त्रोंमें '**मरुद्भिरग्न आ गहि**' वाक्यसे मध्यमदेव अर्थात् मध्यम-स्थान-वायु-सम्बद्ध देवका ही उल्लेख मानना होगा। निरुक्तका सिद्धान्त है कि मुख्यदेव तीन ही हैं, अन्य देव उनके विभूषित परिवार अथवा उन्हींके संकल्पप्रसूत विशेष रूप हैं। अतः इस सूक्तमें मध्यम स्थान वायुदेवके संकल्प-प्रसूत वायुपुत्र हनुमान ही '**अग्नि**' शब्दसे प्रतिपाद्य हैं।

अन्यत्र '**अग्नि** ' शब्दका कपिराज हनुमान अर्थ करनेमें किसीको आशङ्का करनेका कदाचित् अवसर है, किंतु ऋग्वेदके १। १९ सूक्तमें '**मरुद्भिरग्न आ गहि**' इस नवधा प्रयुक्त मन्त्रके अन्तिम वाक्यमें प्रयुक्त '**अग्नि** ' शब्दका अर्थ मध्यमस्थान वायुसे सम्बद्ध वायुपुत्र हनुमान ही प्रकरणानुसार गृहीत होगा। अतएव निघण्टु ५। ४। २३-में '**अग्नि**' शब्द पुनः प्रयुक्त हुआ है। पार्थिव अग्निवाचक '**अग्नि** ' शब्द (निघ० ५। १। १) पहले ही निर्दिष्ट है। अतः यहाँ पार्थिव अग्निके ग्रहणकी आशङ्का शक्य नहीं।

वेदमन्त्रप्रमाणाढ्यो लेखोऽयं हनुमत्परः।
तत्प्रसादसमुद्भूतः समेषां तनुतां मुदम्॥

---

* अपां नपात् तनूनप्त्रा व्याख्यातः (निरु० १०। १८), तनूनपात् (निघ० ५। २। ३) (निरु० ८। ५), 'तनू' गौका पुत्र दूध, उसका पुत्र आज्य, अतः गौ-पौत्र होनेसे 'तनूनपात्' शब्दका अर्थ, काथक्यके मतमें आज्य है। शाकपुणिके मतमें 'तनू' जलके पुत्र वनस्पति वृक्षादि हैं, उनका पुत्र, उनसे उत्पन्न अर्थात् जल-पौत्र अग्नि तनूनपात् शब्दका अर्थ है। उसी तरह आकाश-पुत्र वायु, वायुके पुत्र अर्थात् आकाशके पौत्र हनुमान 'अपां नपात्' शब्दके वाच्य हैं।

प्रत्यभिज्ञा-शक्तिके प्रकृष्ट प्रतीक श्रीहनुमानजी

(जगद्‌गुरु स्वामितिरुमालिगे प्र० भ० श्रीश्रीनिवासाचार्यजी [बालक स्वामीजी] महाराज)

मनुष्योंकी तो कौन कहे, देवताओंमें भी प्रत्यभिज्ञा-शक्ति (पहचाननेकी सूक्ष्म शक्ति)-का प्रायः अभाव देखा जाता है। वृत्रासुरमें भगवद्भक्ति है, यह बात देवताओंके भी राजा इन्द्रको तब ज्ञात हुई, जब देवासुर-संग्राममें वृत्रासुरने भगवत्स्मृतिसे सर्वतः संकुल होकर अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये और वह भक्ति-भावनामें करुणार्द्र स्वरसे भगवद्दर्शनके लिये व्याकुल होकर प्रार्थना करने लगा—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

(श्रीमद्भा० ६।११।२६)

रजस्तमःस्वभाववाले वृत्रासुरमें सहसा सात्त्विक गुणका गौरवगर्भित उदय देखकर इन्द्रको विवश होकर कहना पड़ा—

अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी।

(श्रीमद्भा० ६।१२।१९)

अर्थात् हे दानव! मैं नहीं जानता था कि रजस्तमोवृत्तिवाले तुममें इतनी अचल-अटल सात्त्विक भावनाका प्राबल्य हो सकता है। तुम तो मुझसे भी आगे निकल गये। इसी प्रकार भगवद्भक्त अम्बरीषको महर्षि दुर्वासा कहाँ पहचान सके? यदि पहचान पाते तो उसे जलानेके निमित्त कृत्या उत्पन्न नहीं करते। इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा-शक्तिहीनताके बहुत-से उदाहरण देवताओं, दानवों और ऋषियोंमें मिलते हैं। किंतु जब हम श्रीरामभक्त हनुमानजी महाराजकी प्रत्यभिज्ञा-शक्तिका विचार करते हैं तो स्पष्टतया विदित होता है कि उनमें व्यक्तिको उसकी आकृति देखते ही पहचान जानेकी विलक्षण शक्ति थी। इसीलिये उन्हें '**बुद्धिमतां वरिष्ठम्**'—यह विरुद दिया गया।

सुन्दरकाण्डमें उनकी प्रत्यभिज्ञा-शक्तिका पूर्ण परिचय मिलता है। पूर्वपरिचित अथवा पूर्व-दृष्ट-श्रुत स्थान और व्यक्तियोंको एवं उनकी विशेषताओं तथा दुर्बलताओंको पहचान लेना सहज-साध्य है, कष्ट-साध्य नहीं; किंतु जिस स्थान अथवा देश-विशेषको कभी देखा-सुना नहीं, सर्वथा नवीन उस देश-विशेषके लोगोंकी आभ्यन्तर प्रकृतिको जानकर स्वामीके कार्यको बना लेना प्रकृष्ट प्रत्यभिज्ञा-शक्तिका प्रबल परिचायक है। रामायणमें भगवान् श्रीरामके अति निकट रहनेवाले कितने ही पात्र हैं, जो उनके स्वभावको नहीं पहचानते। सहोदर भ्राता श्रीलक्ष्मणके विचारों और भावोंके श्रीरामसे टकरानेके बहुत-से उदाहरण हैं, किंतु श्रीहनुमानजी तो किष्किन्धामें पम्पासरोवरपर जब श्रीरामसे प्रथम बार मिलते हैं, तभी श्रीराम उनकी प्रत्यभिज्ञा-शक्तिसे इतने अधिक प्रभावित हो जाते हैं कि उनके श्रीमुखसे यह शब्द निकलता है—'**बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्**।' श्रीराम लक्ष्मणजीसे कहते हैं कि श्रीहनुमानजीने कितनी सुन्दर अर्थभाववती किंतु शब्दतः अल्पीयसी वाणीमें अपना अभिप्राय कह दिया और सबसे बड़ा गुण यह है कि उनके भाषणमें एक भी अक्षर व्यर्थ अथवा निष्प्रयोजन नहीं प्रयुक्त हुआ।

लंकामें प्रवेश करते समय जितने विघ्न उनके सम्मुख आते हैं, अपनी प्रत्यभिज्ञा-शक्तिके प्रभावसे वे उन सबका मर्म समझते हुए आगे बढ़ते रहे हैं। सुरसा, राक्षसी लंका आदिको परास्त करनेके बाद जब वे अशोक-वाटिकामें पहुँचते हैं तो श्रीसीताजीको देखते ही पहचान जाते हैं। श्रीवाल्मीकिजीने कहा है—

तां विलोक्य विशालाक्षीमधिकं मलिनां कृशाम्॥
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः।

(वा० रा० ५।१५।२६$\frac{1}{2}$)

इसके अतिरिक्त श्रीहनुमानजीकी प्रत्यभिज्ञा-शक्तिका परमोत्कृष्ट प्रमाण तब मिलता है, जब विभीषणके शरण आनेपर श्रीरामके संनिकट रहनेवाले सुग्रीव, लक्ष्मण आदि सभी यह आशङ्का करते हैं कि राक्षसराज रावणका भाई विभीषण कपटसे भेद लेनेके लिये शरणमें आया है, समाश्रित भावसे नहीं। सभी पार्श्ववासियोंके विचार जाननेके बाद जब भगवान् श्रीराम श्रीहनुमानजीके मुखकी ओर उनका अभिमत जाननेके भावसे देखते हैं, तब वे स्वाभाविकरूपसे सहजभावके साथ अपना अभिप्राय, जिसका आधार प्रबल प्रत्यभिज्ञा-शक्ति है, बताते हुए कहते हैं कि 'विभीषणको जैसा बताया जा रहा है, वह वैसा नहीं है, उसका जन्म यद्यपि राक्षस-कुलमें हुआ है, पर वह स्वभावसे राक्षस नहीं, महात्मा है, धर्मात्मा है।' श्रीहनुमानजीकी प्रत्यभिज्ञा-शक्तिकी विजय होती है और सब लोग अपने-अपने विचार बदलकर उन्हींके साथ हो जाते हैं। भगवान् श्रीरामजी उनकी प्रत्यभिज्ञा-शक्तिकी प्रशंसा करने लगते हैं।

भगवद्भक्तिका स्वरूप एवं माहात्म्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

जबतक साधकका संसारसे सम्बन्ध रहता है, तबतक उसका भगवान्‌से सम्बन्ध नहीं होता। संसारसे और शरीरसे सब प्रकारका सम्बन्ध छोड़कर एकमात्र भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ लेना, भगवान्‌के सिवा किसीसे कोई नाता न रहना—यही तो भक्ति है। दो सम्बन्ध एक साथ नहीं रह सकते। लड़की जब पिताके घरसे सर्वथा सम्बन्ध छोड़ती है, तब पतिके घरसे सम्बन्ध होता है। जब साधकका शरीर और संसारसे सम्बन्ध ही नहीं रह जाता, तब कोई वस्तु या परिस्थिति उसके लिये आवश्यक कैसे हो सकती है और वह किसी प्रकारकी कामना कर ही कैसे सकता है। जो वस्तुओंकी कामना करता है, वह तो वास्तवमें उन वस्तुओंका ही भक्त है, ईश्वरका नहीं।

भगवान्‌में पूर्ण विश्वास और नित्य नया प्रेम हो—इसीका नाम भक्ति है।

× × × ×

साधकको चाहिये कि प्रभुको अपना समझे, उनपर दृढ़ विश्वास करे, विश्वासमें विकल्प न आने दे। शरीर, मन, इन्द्रियाँ और बुद्धिको तथा अपने-आपको पूर्णतया भगवान्‌के समर्पण करके सब प्रकारसे उनपर निर्भर हो जाय। उनपर पूरा भरोसा करे।

भगवान्‌पर पूरा भरोसा होनेपर ही समर्पण होता है। समर्पण करनेके बाद जो यह देखना है कि कुछ नयापन आया या नहीं, यही भरोसेकी कमी है।

आश्चर्यकी बात तो यह है कि मनुष्य संसारपर जितना भरोसा करता है, उतना भगवान्‌पर नहीं करता। जैसे कहीं जानेवाला यात्री पहलेसे गाड़ीमें अपना स्थान सुरक्षित करा लेता है तो उसको यह भरोसा रहता है कि ठीक समयपर स्थान अवश्य मिल जायगा, अतः वह निश्चिन्त हो जाता है, यद्यपि उसमें अनेकों विघ्न भी आ सकते हैं। विघ्न असम्भव नहीं है तो भी उसपर भरोसा कर लेता है। संसारपर भरोसा करके बहुत बार धोखा खाया है एवं भगवान्‌पर भरोसा करनेवालेको कभी धोखा नहीं हुआ—यह मानते हुए भी मनुष्य भगवान्‌पर निर्भर नहीं होता, इससे बढ़कर दुःख और आश्चर्य क्या होगा?

मनुष्य स्वयं अलग रहकर अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको भगवान्‌में लगाना चाहता है, यहाँसे ही भूल होती है। प्रेमका सम्बन्ध साधकसे है न कि उसके मन, इन्द्रिय और बुद्धिसे। प्रेममार्गमें चलनेवाला पहले तो अपनेको अपने प्रियतमके प्रेमकी लालसा और बादमें प्रेम समझता है, प्रेमी प्रेममें विलीन हो जाता है। प्रेम और प्रेमीमें भिन्नता नहीं रहती। अतः प्रेममार्गके पथिकके जीवनमें भगवान्‌का प्रेम, भरोसा और कृपा सदा सजीव बने रहने चाहिये, भावकी शिथिलता नहीं होनी चाहिये।

मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ तो अहंकी विभूतियाँ हैं, उनमें प्रेम नहीं होता। प्रेम अहंमें होना चाहिये, अहंमें प्रेमकी प्रबलता होनेसे मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ—सब उसीमें विलीन हो जाते हैं। वे अहंके भावका विरोध नहीं करते।

साधकको ध्यानपूर्वक इस बातका मनन करना चाहिये कि मैं सचमुच क्या चाहता हूँ। मेरी वास्तविक आवश्यकता क्या है। जिसके न होनेपर साधक रह सकता है, जिसका वियोग अनिवार्य है, वह उसकी आवश्यकता नहीं हो सकता। सच्ची आवश्यकता उसीकी है, जिसके बिना वह नहीं रह सकता, जो कभी उससे अलग नहीं होता। सोचनेपर यदि यह ज्ञात हो कि ऐसा तो एकमात्र मैं स्वयं ही हूँ तो विचार करना चाहिये कि क्या कभी मैंने अपनेमें रमण किया या मैं संसारमें ही रमण करता रहता हूँ, तब ज्ञात होगा कि संसारमें ही रमण करता रहा हूँ। फिर विचार करनेपर मालूम होगा कि जो अनन्त नित्य-सौन्दर्य और अनन्त नित्य-रसका भण्डार है, उसीकी वास्तविक आवश्यकता है, वह है जीवका नित्य साथी—एकमात्र परमेश्वर। वह कभी भी जीवका साथ नहीं छोड़ता। जीव स्वयं ही संसारको अपनाकर उसे भूल गया है, उससे विमुख हो गया है।

यह मालूम होनेपर साधकको मान लेना चाहिये कि जिसकी मुझे आवश्यकता है, उससे मेरी देश-कालकी दूरी नहीं है, अतः उसकी प्राप्तिके लिये यह धारणा करना कि अमुक स्थानमें जानेपर या अमुक समयमें मेरी आवश्यकताकी पूर्ति होगी, सर्वथा प्रमाद है। उसकी प्राप्ति वर्तमानमें अभी हो सकती है। मेरे प्रमादने ही, मेरी भूलने ही मुझे उससे विमुख कर रखा है।

जिनको अपना मानकर मैंने अपना सम्बन्ध जोड़ रखा है, वे शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि एवं माता-पिता, भाई-बन्धु और पति-पत्नी आदि तथा समस्त पदार्थ—सभी अनित्य हैं। अतः इनका वियोग अनिवार्य है। इनको अपना मानकर, इनपर विश्वास करके मैं अपने प्रभुसे विमुख हो गया हूँ।

यह निश्चय कर लेनेके बाद साधकको चाहिये कि जिसकी उसे वास्तविक आवश्यकता है, उस परम प्रियतम प्रभुको ही अपना माने, उसीपर विश्वास करे, उसीसे प्रेम करे, उसके सम्मुख हो जाय, एकमात्र उससे ही अनन्य सम्बन्ध रखे और निरन्तर उसीका स्मरण करे।

× × × ×

जब यह बात समझमें आ जाय कि जो कुछ सत्यता, प्रियता और ज्ञान जहाँ-कहीं दीखते हैं, वे सब उसीकी महानता हैं,—जैसे प्रत्येक मिठाईमें मीठापन चीनीका ही है, लड्डू, जलेबी, बर्फी, रसगुल्ला और कलाकन्द आदि सभी चीनीको लेकर ही मीठे हैं—तो सब समय निरन्तर उसकी स्मृति रह सकती है। मनुष्यका सबसे अधिक प्रेम उससे होना चाहिये, जो उसके निकटतम है। यह नियम है कि जिसमें प्रेम होता है, उसकी स्मृति अपने-आप होती है। अत: साधकको देखना चाहिये कि मेरे अत्यन्त समीप कौन है? क्योंकि सुन्दर जीवनको विकसित करनेके लिये अपने निकटतमको देखना परम आवश्यक है। विचार करनेपर ज्ञात होगा कि हाथ-पैर-आँख आदि इन्द्रियोंको छोड़कर भी मनुष्य प्राणको रखना चाहता है। अत: उनकी अपेक्षा भी प्राण अधिक निकट हैं। प्राणोंसे अत्यन्त निकट वह है, जिसके लिये प्राणोंका भी त्याग किया जा सके। वह है अपना नित्य साथी परमेश्वर, जो जीवसे कभी अलग नहीं होता। वही जीवका अपना है। जो साधक दूरीसे बचकर अत्यन्त निकटतमका होकर रहता है, उसकी ओर सबका आकर्षण हो जाता है। अत्यन्त निकटतामें सब कुछ है; क्योंकि वही सबका केन्द्र है, जो अत्यन्त निकट है।

× × × ×

वे हमारे प्रियतम प्रभु असीम हैं, अनन्त हैं। असीमका वर्णन नहीं हो सकता, परंतु उनको प्राप्त किया जा सकता है। वे जीवको उसके साधनसे नहीं, किंतु स्वयं अपनी कृपाशक्तिसे द्रवित होकर मिलते हैं।

जीवका स्वभाव तो बालक-जैसा है और प्रभुका स्वभाव माँके सदृश। जब यह जीव बालककी भाँति प्रभुको पानेके लिये व्याकुल होकर रोने लग जाता है, तब उनमें करुणा उत्पन्न हो जाती है और वे जीवको निहाल कर देते हैं। जगत् एक खिलौना है। जबतक जीव बालककी भाँति इस जगत्‌रूप खिलौनेसे खेलता रहता है, इसे प्रभुके प्रेमरसकी भूख नहीं लगती, उसके लिये यह व्याकुल नहीं होता, तबतक भगवान् भी तमाशा देखते रहते हैं, उसे मिलते नहीं। पर जब साधकको बालककी भाँति भूख लग जाती है अर्थात् जैसे भूख लगनेपर बालक माँका दूध पीनेके लिये व्याकुल हो जाता है, खिलौनेका मोह छोड़कर, उसको फेंककर माँको पुकारने लग जाता है, वैसे ही जब प्रभुके प्रेमरसकी भूख लग जाती है और इस जगत्‌रूप खिलौनेसे विरक्त होकर साधक प्रभुके प्रेमरसके लिये व्याकुल होकर उनको पुकारने लगता है, तब प्रभु भी करुणाभावसे व्याकुल हो उठते हैं। फिर विलम्ब नहीं कर सकते। वे तत्काल ही प्रेमी साधकको अपने प्रेमका रस प्रदान कर देते हैं।

कृपालु श्रीहनुमान

(महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराज)

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

भक्तराज महावीरकी एक अपूर्व कहानी मैंने कई वर्षों पूर्व एक स्टेशनमास्टरके मुखसे सुनी थी। उनका नाम तो मैं भूल गया हूँ, परंतु घटना याद है, जो इस प्रकार है—

उन स्टेशनमास्टरकी इच्छा हुई कि मैं रामचरितमानसका अध्ययन करूँ। इसलिये एक विद्वान् रामायणीको उन्होंने आचार्यरूपसे ग्रहण किया। प्रथम दिन जब पाठ आरम्भ हुआ तो उन्होंने क्या देखा कि रेलिंगके बाहर एक बंदर बैठा हुआ है। दूसरे दिन फिर रामायण-पाठ चल रहा था, एकाएक वही बंदर आया और रेलिंगके भीतर आकर बैठ गया। क्रमशः प्रतिदिन वह (बंदर) निकट आता चला गया। कुछ दिनोंमें वह आकर स्टेशनमास्टर महाशयकी गोदमें बैठने लग गया। वे भी दिन-प्रतिदिन उसकी गतिविधिको परख रहे थे। पाठ आरम्भ होनेपर वह नित्य आता और पाठ-समाप्तिपर चला जाता। अब वह बंदर उन स्टेशनमास्टरके कन्धेपर बैठने लगा। नित्य आने-जानेसे स्टेशनमास्टर महोदयको भी उस बंदरसे प्रेम-सा हो गया। उन्हें उससे डर नहीं लगता था। तदनन्तर एक दिन रामायण-अध्ययनके समय वह बंदर स्टेशनमास्टर महाशयके मस्तकपर चढ़ गया और उनका बाल पकड़कर बैठ गया। भक्त स्टेशनमास्टरके बालोंमें कुछ कसक होने

लगी, उन्होंने माथा हिलाया, तब उस बंदरने बालोंकी पकड़को कुछ ढीला कर दिया। वहाँ जबतक रामायण-पाठ होता रहा, उतने दिनोंतक वे 'वानर' (हनुमान) नित्यप्रति आते रहे। पाठ-समाप्तिके पश्चात् फिर किसीने उनका दर्शन नहीं किया।

यह लीला श्रीजानकी मैयाके प्यारे पुत्र, राक्षस-वंशरूपी तृण-मण्डलके लिये प्रचण्ड दावानलरूप, भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके अनन्य सेवक और हमलोगोंके परम रक्षक श्रीमहावीरजीकी ही है। इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है।

(२)

यह बात प्राय: ९० वर्ष पूर्वकी है। एक दिन संध्या समय तेतरिया ग्रामकी ठाकुरवाड़ी (मन्दिर)-में एक क्षीणकाय सज्जन उपस्थित हुए। रात्रिमें भगवान् श्रीवंशीधरका प्रसाद ग्रहण किया। दूसरे दिन प्रात:काल एक भक्त श्रीमहावीरजीके भोगके लिये एक मन आटा, घी, सूजी, चीनी, आलू आदि लेकर उपस्थित हुआ; क्योंकि श्रीमहावीर-जीने कृपा करके उसकी मनौती पूर्ण की थी। इसीलिये उसने प्रसादके लिये यह सामान प्रस्तुत किया था।

पुजारीने आसपासके ग्रामोंके ब्राह्मणोंको प्रसाद पानेके लिये निमन्त्रित किया। मध्याह्नमें आरती होनेके पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजनके लिये बुलाने लगे तो उन्होंने कहा—'पहले नये अतिथिको भोजन कराइये।' उनके कहे अनुसार अतिथि महाराज (वहाँ भोजनार्थ आये हुए एक अपरिचित)-को एक मनुष्यके भोजनयोग्य (व्यञ्जन, हलुआ आदि) परोसा गया। उन्होंने वह सब भोजन तुरंत पा लिया। पुन: दो व्यक्तियोंके तृप्त होने योग्य भोजन परोसा गया, उसे भी उन्होंने तुरंत उदरस्थ कर लिया। फिर इस बार इन्हें तीन-चार व्यक्तियोंके तृप्त होने योग्य भोजन दिया गया। अब तो अन्य ब्राह्मण लोग भी उन अपूर्व भोजनकर्ताका दर्शन करनेके लिये उनके निकट आकर बैठ गये। अतिथि महाराज बिना कुछ बोले उसे भी चट कर गये। इस प्रकार क्रमश: जो कुछ बना था, वह सब उनकी जठराग्निकी आहुतिमें चढ़ा दिया गया। अनुमानत: दो-ढाई सेर प्रसाद शेष बचा, तब वे (अतिथिदेव) कहने लगे—'बस रहने दीजिये, अब आप सब लोग प्रसाद पाइये।'

आचमनके पश्चात् मुखशुद्धिके लिये हरीतकी (हर्रे) ग्रहण करके वे अतिथि महाशय अपने आसनपर जाकर बैठ गये। उसके बाद वे कब अदृश्य हो गये, यह कोई न जान सका। वे स्वयं महावीर हनुमानजी ही थे। जिनके उद्देश्यसे यह प्रसाद बनाया गया था, वे ही कृपा करके उसे ग्रहण कर गये।

ब्रह्मचारी श्रीहनुमान

(श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)

अञ्जनीगर्भसम्भूतो वायुपुत्रो महाबल:।
कुमारो ब्रह्मचारी च हनुमन्ताय नमो नम:॥

छप्पय

दच्छिन दिशि तट उदधि करें वानर उपवासा।
संपाती सिय पतो दयो बाढ़ी हिय आसा॥
हनुमत सागर लाँघि गये लंका सिय पाई।
सुरसा लंकिनि ताड़ि तोरि तरु लंक जराई॥
अति अद्भुत कारज कर्‌यो, प्रबल पराक्रम बिपुल बल।
कौन करि सकै काज तजि, वीर ब्रह्मचारी बिमल॥

संसारमें ब्रह्मचर्य ही एक ऐसी महान् शक्ति है, जिसके द्वारा मनुष्य महान्-से-महान् कार्य कर सकता है। सच्चे ब्रह्मचारीके लिये कोई भी बात असम्भव नहीं। मनुष्यकी शक्ति जब इन्द्रियोंके माध्यमसे सुखमें व्यय होने लगती है, तब वह संसारसे ऊपर नहीं उठ सकता। हनुमानजी ब्रह्मचारियोंके अग्रगण्य हैं। उन्होंने अपने ब्रह्मचर्य, शम, दम, त्याग, तितिक्षा, प्रज्ञा तथा विलक्षण बुद्धिकौशलसे श्रीरामचन्द्रजीको अपने वशमें कर लिया। उन्होंने सीतान्वेषणके समय अपनी बुद्धिमत्ताका जैसा परिचय दिया, उससे भगवान् श्रीराम अत्यन्त ही प्रभावित हुए और वे सदाके लिये हनुमानजीके ही हो गये। उन्होंने तो यहाँतक कह दिया—'हनुमान ! मैं तुम्हारे ऋणसे कभी उऋण ही नहीं हो सकता। मैं तो सदा तुम्हारा ऋणी ही बना रहूँगा।'

यों तो ऋक्षराज जाम्बवान्‌के स्मरण दिलानेपर हनुमानजीको अपनी शक्ति-सामर्थ्यका स्मरण हो आया। वे बोले—'आपलोग मुझसे जो कराना चाहें, वह करा सकते हैं। यह शतयोजन लम्बा समुद्र तो क्या, ऐसे सैकड़ों समुद्रोंको मैं लाँघ सकता हूँ। रावणकी तो बात ही क्या, मैं उसकी पूरी-की-पूरी लंकाको उखाड़कर समुद्रमें डुबा सकता हूँ, रावणको मच्छरकी भाँति पकड़कर

मसल सकता हूँ। आप कहें तो मैं लंकाको उखाड़कर यहीं ले आऊँ? आप कहें तो मैं रावणको मारकर सीताजीको भी साथ लेता आऊँ। आप कहें तो मैं रावणके पुत्र-पौत्र समस्त परिवारको भी श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लाकर रख दूँ।'

जाम्बवान्‌जीने देखा अब तो हनुमानजी आवश्यकतासे अधिक उत्तेजित हो गये, तब उनको समझाते हुए वे बोले—'हनुमान! देखो, हम तो भगवान्‌के दूत हैं। दूतोंको सदा मर्यादामें ही रहना चाहिये। दूतोंके लिये युद्ध निषेध है। दूत लड़ाई-झगड़ा नहीं कर सकता। दूतकी बातका राजालोग बुरा भी नहीं मानते। उसे दण्डका भी विधान नहीं; क्योंकि दूत जो भी कहता है, अपने स्वामीके अभिप्रायको ही प्रकट करता है; अत: तुम न तो रावणको मारना, न लंकाको उखाड़ना, न किसीको ताड़ना देना और न कोई अन्य ही उपद्रव करना। तुम केवल इतना ही करना कि सीताजीका पता लेकर ज्यों-के-त्यों ही लौट आना। सीताजीका पता मिलते ही स्वयं भगवान् राघवेन्द्र सेना सजाकर अपनी प्रियाका उद्धार करेंगे। यही उनकी कीर्ति प्रतिष्ठाके अनुरूप होगा। तुम तो अपनेको श्रीरामजीका दूत ही समझना। समझ गये न मेरी बात?'

हनुमानजीने कहा—'बूढ़े बाबा! आपकी बात मैं समझ गया। मैं सीताजीकी सुधि लेकर शीघ्र ही लौट आऊँगा; किंतु मुझे कोई मारे-पीटे तो मैं उससे आत्मरक्षार्थ भी लड़ाई न करूँ क्या?'

हँसकर जाम्बवान्‌ने कहा—'अरे, भैया! अपनी रक्षा तो कर ही लेना। वैसे व्यर्थमें लड़ाई मत मोल लेना।'

हनुमानजीने कहा—'अच्छा, बहुत अच्छा तो अब आप मुझे आज्ञा दीजिये।' यह कहकर हनुमानजीने बड़ोंके पैर छुए, बराबरवालोंसे मिले, छोटोंने उन्हें प्रणाम किया और वे कूदकर एक बड़े भारी वृक्षपर चढ़ गये। अब उन्होंने अपने शरीरको बढ़ाना आरम्भ किया। देखते-ही-देखते वे पर्वताकार हो गये। इतना भारी वृक्ष भी उनके भारको सहन करनेमें समर्थ न हुआ, वह टूटकर समुद्रमें गिरने लगा। हनुमानजी उछलकर समुद्रमें कूद पड़े। उनके साथ वृक्षोंकी फूली-फूली सैकड़ों डालियाँ समुद्रमें बहने लगीं। उन डालियोंको अपनी छातीसे तोड़ते-फोड़ते कपिराज आगे बढ़ने लगे। पता नहीं चलता था कि वे समुद्रमें तैर रहे हैं या आकाशमें उड़ रहे हैं। वायु-वेगके समान वे सर्र-सर्र उड़े जा रहे थे। सब लोग उनके ऐसे अद्भुत अलौकिक पुरुषार्थको देखकर आश्चर्यचकित हो एकटक उन्हें निहार रहे थे। समुद्रके जल-जन्तु भयभीत होकर समुद्रके तलमें छिप गये। पक्षियोंने आकाशमें उड़ना बंद कर दिया। हनुमानजी बिना विश्राम किये निरन्तर वायु-वेगके सदृश समुद्रके जलपर उड़ते ही जा रहे थे।

हिमालयके पुत्र मैनाकने, जो समुद्रमें छिपा हुआ है, कहा भी, 'हनुमान! तनिक विश्राम कर लो, फिर आगे बढ़ो।'

किंतु उसकी ओर बिना देखे ही हनुमानजीने शीघ्रतापूर्वक चलते-चलते ही कहा—'मैनाक भाई! धन्यवाद! धन्यवाद!! इस कृपाके लिये साधुवाद! श्रीरामचन्द्रजीका कार्य जबतक मैं कर न लूँगा, तबतक मुझे विश्राम कहाँ, आराम कहाँ। मुझे आज्ञा दो, शीघ्र पहुँचना है उस पार।'

सर्पोंकी माता सुरसाको देवताओंने हनुमानजीकी बुद्धिकी परीक्षा लेने भेजा। उसने आकर कहा—'ओ वानर! खड़ा रह, मैं तुझे खाऊँगी। बड़ी भूखी हूँ। देवताओंने मेरे लिये तुम्हें ही आहारके निमित्त भेजा है।'

हनुमानजीने कहा—'माँ ! मैं शीघ्रतामें हूँ। लौट आऊँ, तब खा लेना।'

उसने कहा—'बातें मत बनाओ। तुम बहुत हृष्ट-पुष्ट ब्रह्मचारी बलवान् हो, मैं तुम्हें ही आहार करके संतुष्ट होऊँगी।' बातको अधिक न बढ़ाकर वानर बोले—'अच्छा नहीं मानती है तो फाड़ मुख।' उसने मुख फाड़ा, ये उससे दुगुने बन गये। फिर उसने दुगुना मुख फाड़ा तो ये उससे भी दुगुने बन गये। ऐसे दुगुना-दुगुना बढ़ाते हुए जब उसने अपने मुखको सौ योजन चौड़ा बना लिया, तब ये छोटा-सा रूप बनाकर उसके मुखमें घुस गये। उसके एक प्रकारसे पुत्र बन गये और बाहर निकलकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। बोले—'माँ ! अब तो मैं तुम्हारे उदरमें चला गया, अब आज्ञा दे दो।'

सुरसा इनके बुद्धि-कौशलको देखकर परम प्रमुदित हुई और इन्हें भाँति-भाँतिके आशीर्वाद देकर चली गयी। ये आगे बढ़ गये।

आगे चलकर एक विघ्न और आ गया। राहुकी माता सिंहिका, जो समुद्रमें ही रहती थी, आकाशमें उड़नेवालोंकी समुद्रमें पड़ती हुई छायाके द्वारा ही उन्हें खींचकर पकड़ लेती और खा जाती। उसने इनकी

छायाको भी खींचा। ये उसकी धूर्तता समझ गये और ऐसा कसकर एक मुक्का जमाया कि उसके लगते ही वह परलोक सिधार गयी। हनुमानजी समुद्र-पार पहुँच गये। अब उन्होंने सोचा, इस पर्वताकार शरीरसे लंकामें प्रवेश करना उचित नहीं। समस्त सिद्धियाँ तो सदा इनके सम्मुख समुपस्थित ही रहती थीं। इन्होंने अणिमा-सिद्धिके द्वारा अपना बहुत ही छोटा-सा रूप बना लिया।

लंकाकी अधिष्ठात्री देवी, जो सदा ही लंकाकी रक्षा किया करती थी, किसी अपरिचित व्यक्तिको बिना अनुमतिके भीतर प्रविष्ट ही न होने देती थी। बहुत लघु रूप होनेपर भी उसने इन्हें देख लिया और गरजकर बोली—'कौन है तू, जो चोरकी भाँति मेरा तिरस्कार करके लंकामें प्रवेश कर रहा है ? सावधान, आगे न बढ़ना। नहीं तो तुझे खा जाऊँगी।'

हनुमानजीने बातको बढ़ाया नहीं। उन्होंने बिना कुछ सोचे-समझे उसे कसकर एक ऐसा मुक्का मारा कि वह अचेत होकर गिर पड़ी। तब उसने कहा—'कपिराज! अवश्य ही तुम श्रीरामके दूत हो, अब लंकाका विनाश संनिकट आ गया। ब्रह्माजीने मुझे पूर्वमें ही बता दिया था कि जब तू बंदरके मुष्टिप्रहारसे अचेत हो जायगी, तब समझ जाना कि अब लंकाका विनाश होगा। अत: तुम प्रसन्नतासे भीतर चले जाओ।' इतना सुनते ही रात्रिके समय हनुमानजीने लंकामें प्रवेश किया।

श्रीराम-काज करनेवाले ब्रह्मचारीको सात्त्विक, राजसिक और तामसिक—तीनों प्रकारकी मायाएँ आकर घेरती हैं और उसे भाँति-भाँतिके प्रलोभन देती हैं। जो इनके फंदेमें फँस जाता है, वह गिर जाता है तथा जो इनपर विजय प्राप्त कर लेता है, वह आगे बढ़ जाता है। सात्त्विक मायाको तो हाथ जोड़ ले, उसका मातृभावसे केवल स्पर्श करके आगे बढ़ जाय। तामस माया आये तो उसे मारकर ही आगे बढ़े। राजस मायाको मारे नहीं, केवल मूर्च्छित करके आगे बढ़ जाय। यही हनुमानजीने किया।

अब उन्हें सीताजीके अन्वेषणकी चिन्ता हुई। पहले उन्हें घुड़साल दिखायी दी। उसमें घुस गये, वहाँ असंख्यों घोड़े बँधे थे। उसमें हनुमानजी चारों ओर घूम-घूमकर सीताजीको खोजने लगे। वहाँ न मिलनेपर हस्तिशाला, गोशाला आदिमें खोजने लगे, फिर सोचने लगे—'मैं भी कैसा पागल हूँ, जो स्त्रीको गोशाला, गजशाला, अश्वशाला तथा दूसरे पशु-स्थानोंमें खोज रहा हूँ। स्त्री तो स्त्रियोंमें ही हो सकती हैं। चलूँ, रावणकी महिषीशालामें खोजूँ।' यह सोचकर वे रावणके अन्त:पुरमें गये। वहाँ एक सुवर्णमण्डित पलंगपर रावण सो रहा था। उसके समीप गलीचोंपर सहस्रों स्त्रियाँ पड़ी सो रही थीं। किसीका मुख सोते-सोते खुल गया था, किसीके मुखसे लार गिर रही थी, कोई जोर-जोरसे खुर्राटे ले रही थी, कोई बड़बड़ा रही थी, कोई पान खाते-खाते सो गयी थी, पानकी पीक उसके वस्त्रोंपर टपक रही थी। हनुमानजीने कभी सीताजीको देखा तो था नहीं, अत: प्रत्येक सुन्दरी स्त्रीको देखते और सोचते हो-न-हो यही सीता हो, फिर उससे बढ़कर सुन्दरीको देखते तो उसे सीता समझने लगते। फिर सोचने लगे—''इनमेंसे कोई भी सीता नहीं। तब सीता गयी कहाँ। सम्पातिकी बात झूठ तो हो नहीं सकती। उसने कहा था—'मैं सीताको लंकामें बैठी देख रहा हूँ।' अच्छा, लंका तो बहुच बड़ी है, फिर खोजूँ।''

यह सोचकर वे फिर खोजने लगे। परंतु कहीं पता न चला तो वे पुन: रावणके अन्त:पुरमें आये। अबकी बार उन अस्त-व्यस्त पड़ी स्त्रियोंको देखकर उनके मनमें बड़ी घृणा हुई। वे सोचने लगे—'ब्रह्मचारीको तो स्त्रियोंके चित्रको भी नहीं देखना चाहिये। मैंने अर्धनग्न अवस्थामें अचेत पड़ी हुई इन स्त्रियोंको देखा है, इससे मुझे दोष लगा। बड़ा अपराध हुआ। इसका क्या प्रायश्चित्त करूँ।'

फिर सोचने लगे—'मैंने स्त्रियोंको देखनेकी दृष्टिसे तो यहाँ प्रवेश किया नहीं। मैं तो माता सीताका अन्वेषण करने आया था। माता सीता स्त्रियोंमें ही मिलेंगी, इसी भावनासे मैंने रावणके अन्त:पुरमें प्रवेश किया। अपना अन्त:करण ही पुरुषका साक्षी होता है। इन स्त्रियोंको देखकर मेरे मनमें किसी प्रकारका विकार नहीं उत्पन्न हुआ। पाप और पुण्यमें भावना ही प्रधान होती है। जब मेरी भावना ही दूषित नहीं हुई, तब प्रायश्चित्त ही किस बातका? किंतु मैं जिस कामके लिये यहाँ आया था, वह काम तो अभी हुआ ही नहीं। सीताजीका पता तो लगा नहीं। मुझे सब काम छोड़कर सीताजीको ही खोजना चाहिये।' यह सोचकर मारुतनन्दन बालब्रह्मचारी हनुमान फिर दूसरे स्थानोंमें सीताजीको खोजने लगे।

संगीत-कोविद श्रीहनुमान

(नित्यलीलालीन परम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

प्राचीन कालकी बात है, सुर-मुनि-सेवित कैलास-शिखरपर महर्षि गौतमका आश्रम था। वहाँ एक बार पाताललोकसे जगद्विजयी वाणासुर अपने कुलगुरु शुक्राचार्य तथा अपने पूर्वज भक्तशिरोमणि प्रह्लाद, दानवीर बलि एवं दैत्यराज वृषपर्वाके साथ आया और महर्षि गौतमके सम्मान्य अतिथिके रूपमें रहने लगा। एक दिन प्रात:काल वृषपर्वा शौच-स्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर भगवान् शंकरकी पूजा कर रहा था। इतनेमें ही महर्षि गौतमका एक प्रिय शिष्य, जिसका अन्वर्थ नाम शंकरात्मा था और जो अवधूतके वेषमें उन्मत्तकी भाँति विचरता था, विकराल रूप बनाये वहाँ आ पहुँचा और वृषपर्वा तथा उसके सामने रखी हुई शंकरकी मूर्तिके बीचमें आकर खड़ा हो गया। वृषपर्वाको उसका इस प्रकारका उद्धत-सा व्यवहार देखकर बड़ा क्रोध आया। उसने जब देखा कि वह किसी प्रकार नहीं मानता, तब चुपकेसे तलवार निकालकर उसका सिर धड़से अलग कर दिया।

जब महर्षि गौतमको यह संवाद मिला, तब उनको बड़ा दु:ख हुआ; क्योंकि शंकरात्मा उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय था। उन्होंने उसके बिना जीवन व्यर्थ समझा और देखते-देखते वृषपर्वाकी आँखोंके सामने योगबलसे अपने प्राण त्याग दिये। उन्हें इस प्रकार देह-त्याग करते देखकर शुक्राचार्यसे भी नहीं रहा गया, उन्होंने भी उसी प्रकार अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया और उनकी देखादेखी प्रह्लादादि अन्य दैत्योंने भी वैसा ही किया। बात-की-बातमें ऋषिके आश्रममें शिव-भक्तोंकी लाशोंका ढेर लग गया। यह करुणापूर्ण दृश्य देखकर ऋषिपत्नी अहल्या हृदयभेदी स्वरसे आर्तनाद करने लगीं। उनकी क्रन्दन-ध्वनि भक्त-भयहारी भगवान् भूतभावनके कानोंतक पहुँची और उनकी समाधि भङ्ग हो गयी। वे वायुवेगसे महर्षि गौतमके आश्रमपर पहुँचे। इसी प्रकार गजकी करुण पुकार सुनकर एक बार भगवान् चक्रपाणि भी वैकुण्ठसे पाँव-पियादे आतुर होकर दौड़े आये थे। धन्य भक्तवत्सलता ! दैवयोगसे ब्रह्माजी तथा विष्णुभगवान् भी उस समय कैलासपर ही उपस्थित थे। उन्हें भी कौतूहलवश शंकरजी अपने साथ लिवा लाये।

भगवान् त्रिलोचनने आश्रममें पहुँचकर अपने कृपाकटाक्षसे ही सबको बात-की-बातमें जिला दिया। तब वे सब खड़े होकर भगवान् मृत्युञ्जयकी स्तुति करने लगे। भगवान् शंकरने महर्षि गौतमसे कहा—'हम तुम्हारे इस अलौकिक साहस एवं आदर्श त्यागपर अत्यन्त प्रसन्न हैं, वर माँगो।' महर्षि बोले—'प्रभो! आपने यहाँ पधारकर मुझे सदाके लिये कृतार्थ कर दिया। इससे बढ़कर मेरे लिये और कौन-सी वस्तु प्रार्थनीय हो सकती है? मैंने आज सब कुछ पा लिया। मेरे भाग्यकी आज देवतालोग भी सराहना करते हैं। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये। मैं चाहता हूँ कि आज आप मेरे यहाँ प्रसाद ग्रहण करें।'

भगवान् तो भावके भूखे हैं। उनकी प्रतिज्ञा है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन:॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९। २६)

इसी भावके वशीभूत होकर उन्होंने एक दिन श्रीरामरूपमें शबरीके बेर और श्रीकृष्णरूपमें सुदामाके तन्दुलोंका भोग लगाया था। उन्होंने महर्षिकी अविचल और निश्छल प्रीति देखकर उनका निमन्त्रण तुरंत स्वीकार कर लिया और साथ ही ब्रह्मा एवं विष्णुको भी महर्षिका आतिथ्य स्वीकार करनेको राजी कर लिया। जबतक इधर भोजनकी तैयारी हो रही थी, तबतक शंकरजी भगवान् विष्णुके साथ चलकर आश्रमके एक सुन्दर भवनमें गये और वहाँ एक सुकोमल शय्यापर लेटकर बहुत देरतक प्रेमालाप करते रहे। इसके अनन्तर वे आश्रम-भूमिमें स्थित एक सुरम्य तड़ागपर जाकर वहाँ जल-क्रीड़ा करने लगे। रँगीले भोलेबाबा भगवान् श्रीहरिके पद्मदलायत लोचनोंपर कमलकिंजल्कमिश्रित जल अञ्जलिके द्वारा फेंकने लगे। भगवान्ने उनके प्रहारको न सह सकनेके कारण अपने दोनों नेत्र मूँद लिये। इतनेमें ही भोलेबाबा मौका पाकर तुरंत उछलकर भगवान्के वृष-सदृश गोल-गोल सुडौल मांसल कन्धोंपर आरूढ़ हो गये। वृषभारोहणका तो उन्हें अभ्यास ही ठहरा; ऊपरसे जोरसे दबाकर उन्हें कभी तो पानीके अंदर ले जायँ और कभी फिर ऊपर ले आवें। इस प्रकार जब उन्हें बहुत तंग किया, तब विष्णुभगवान्ने भी एक चाल खेली। उन्होंने तुरंत शिवजीको पानीमें दे मारा। शिवजीने

भी नीचेसे ही भगवान्‌की दोनों टाँगें पकड़कर उन्हें गिरा दिया। इस प्रकार कुछ देरतक दोनोंमें पैंतरेबाजी और दावँ-पेंच चलते रहे। विमानस्थित देवगण अन्तरिक्षसे इस अपूर्व आनन्दको लूटने लगे। धन्य हैं वे आँखें, जिन्होंने उस अद्भुत छटाका निरीक्षण किया।

दैवयोगसे नारदजी उधर आ निकले। वे इस अलौकिक दृश्यको देखकर मस्त हो गये और लगे वीणाके स्वरके साथ गाने। शंकरजी उनके सुमधुर संगीतको सुनकर खेल छोड़ जलसे बाहर निकल आये और भींगे वस्त्र पहने ही नारदके सुर-में-सुर मिलाकर स्वयं राग अलापने लगे। अब तो भगवान् विष्णुसे भी नहीं रहा गया। वे भी बाहर आकर मृदंग बजाने लगे। उस समय वह समाँ बँधा, जो देखते ही बनता था। सहस्रों शेष और शारदा भी उस समयके आनन्दका वर्णन नहीं कर सकते। बूढ़े ब्रह्माजी भी उस अनोखी मस्तीमें सम्मिलित हो गये। उस अपूर्व समाजमें यदि किसी बातकी कमी थी तो वह भी प्रसिद्ध संगीतकोविद पवनसुत हनुमानजीके आनेसे पूरी हो गयी। उन्होंने जहाँ अपनी हृदयहारिणी तान छेड़ी, वहाँ सबको बरबस चुप हो जाना पड़ा। अब तो सब-के-सब निस्तब्ध होकर लगे हनुमानजीके गायनको सुनने। सब-के-सब ऐसे मस्त हुए कि खान-पानतककी सुधि भूल गये। उन्हें यह भी होश नहीं रहा कि हमलोग महर्षि गौतमके यहाँ निमन्त्रित हैं।

उधर जब महर्षिने देखा कि उनका पूज्य अतिथिवर्ग स्नान करके सरोवरसे नहीं लौटा और मध्याह्न बीता जा रहा है, तब वे बेचारे दौड़े आये और किसी प्रकार अनुनय-विनय करके बड़ी कठिनाईसे सबको अपने यहाँ लिवा लाये। तुरंत भोजन परोसा गया और लोग लगे आनन्दपूर्वक प्रसाद पाने। इसके अनन्तर हनुमानजीका गायन प्रारम्भ हुआ। भोलेबाबा उनके मनोहर संगीतको सुनकर ऐसे मस्त हो गये कि उन्हें तन-मनकी सुधि न रही। उन्होंने धीरे-धीरे अपना एक चरण हनुमानजीकी अञ्जलिमें रख दिया और दूसरे चरणको उनके कन्धे, मुख, कण्ठ, वक्षःस्थल, हृदयके मध्यभाग, उदरदेश तथा नाभिमण्डलसे स्पर्श कराते हुए मौजसे लेट गये। यह लीला देखकर विष्णुजी कहने लगे—'आज हनुमानके समान सुकृती विश्वमें कोई नहीं है। जो चरण देवताओंको भी दुर्लभ हैं तथा वेदोंके द्वारा अगम्य हैं, उपनिषद् भी जिन्हें प्रकाश नहीं कर सकते, जिन्हें योगिजन चिरकालतक विविध प्रकारके साधन करके तथा व्रत-उपवासादिसे शरीरको सुखाकर क्षणभरके लिये भी अपने हृदयदेशमें स्थापित नहीं कर सकते, प्रधान-प्रधान मुनीश्वर सहस्रकोटि संवत्सरपर्यन्त तप करके भी जिन्हें प्राप्त नहीं कर सकते, उन चरणोंको अपने समस्त अङ्गोंपर धारण करनेका अनुपम सौभाग्य आज हनुमानको अनायास ही प्राप्त हो रहा है। मैंने भी हजार वर्षतक प्रतिदिन सहस्र पद्मोंसे आपका भक्तिभावपूर्वक अर्चन किया, परंतु यह सौभाग्य आपने मुझे कभी प्रदान नहीं किया। लोकमें यह वार्ता प्रसिद्ध है कि नारायण शंकरके परम प्रीतिभाजन हैं और शंकर नारायणके, परंतु आज हनुमानको देखकर मुझे इस बातपर संदेह-सा होने लगा है और हनुमानके प्रति ईर्ष्या-सी हो रही है।'

मया वर्षसहस्रं तु सहस्राब्जैस्तथान्वहम्।
भक्त्या सम्पूजितोऽपीश पादो नो दर्शितस्त्वया॥
लोके वादो हि सुमहाञ्शम्भुर्नारायणप्रियः।
हरिः प्रियस्तथा शम्भोर्न तादृग् भाग्यमस्ति मे॥

भगवान् विष्णुके इन प्रेम-लपेटे अटपटे वचन सुनकर शंकरजी मन-ही-मन मुसकराने लगे।

~~~ ० ~~~

वीतराग श्रीहनुमान

(पूज्य मुनि श्रीविद्यानन्दजी महाराज)

भारतीय दर्शन-शास्त्रोंमें विविध संस्कृतिके अंदर आचार्योंने अनेक कथाएँ विभिन्न भाषाओंमें लिखीं। उन्होंने जिस प्रकारसे श्रीहनुमानजीका वर्णन किया, वह तर्कसंगत है। श्रीहनुमानजी तो वीतराग थे। उनकी माता अञ्जना भी उत्कृष्ट सती थीं। श्रीहनुमानजी कर्तव्यनिष्ठ थे। वे श्रीरामके अनन्य भक्त थे।

आज देशकी नयी पीढ़ीके समक्ष श्रीराम एवं हनुमानजीका चरित्र वैज्ञानिक ढंगसे रखनेकी आवश्यकता है, जिससे उनमें वीतरागताका निर्माण हो एवं समन्वय तथा शान्तिसे लोग उसपर चलकर अपना जीवन सफल करें।

~~~ ० ~~~

कठोर सेवक-धर्मके आदर्श श्रीहनुमान

(अनन्तश्री स्वामीजी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

स्वयं भगवान् शंकर अपने प्रियतम आराध्यदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी सेवाके लिये अवतार लेना चाहते हैं, स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठा कि सेवा-धर्मका निष्ठापूर्वक अनुष्ठान करनेके लिये कौन-सा शरीर उपयोगी रहेगा? श्रीरामचन्द्र नररूपसे प्रकट हो रहे हैं। यदि सेवक भी उन्हींके समान नर होकर प्रकट हो तो जाति, आकार, गुण, धर्म, खान-पान, रहन-सहनमें समानता करनी पड़ेगी। यह सेवा-धर्मके विपरीत है। ऐसा विचार करके शंकरने वानरका शरीर ग्रहण किया। वानरको पकी हुई रसोई या हिंसाजन्य भोजनकी आवश्यकता नहीं पड़ती। उसे घरकी आवश्यकता नहीं। बिस्तर, शृङ्गार-प्रसाधन आदि अपेक्षित नहीं। कहीं भी कैसे भी काम चल सकता है। हिरण्यगर्भकी समता उनके अनुरागरञ्जित शरीरमें प्रकट है। सदाशिव एवं महाविष्णुका अनुग्रह है। रुद्रकी संहारशक्ति है। प्राणवायुका बल है। केसरीकी वीतरागता है। अञ्जनाकी बुद्धि है। इस प्रकार सेवा-धर्मकी समग्रता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। सब देवताओंके वाहन होते हैं, परंतु मारुतनन्दनके लिये उसकी अपेक्षा नहीं है। उनकी सर्वत्र अप्रतिहतगति है। सेवा-धर्मकी पूर्णताके लिये यह सब अनिवार्य है।

न केवल श्रीरामभद्रकी सेवाके लिये ही, किंतु श्रीरामभक्तोंकी सेवाके लिये भी वे सर्वत्र, सर्वदा एवं सर्वथा तत्पर रहते हैं। सीता, लक्ष्मण, भरत, विभीषण, सुग्रीव, वानर-भालू और वर्तमान कालके अयोग्य भक्तोंतककी सेवा उनके द्वारा सम्पन्न होती रहती है। किसी भी स्तरके भक्तकी सेवा करनेमें उन्हें कोई संकोच नहीं है। इतना ही नहीं, निम्न-से-निम्न कोटिके भक्तोंको उनसे सेवा लेनेमें किसी प्रकारका संकोच न हो, मानो इसी कारण वे वानर-शरीरसे प्रकट होते हैं। लोक-व्यवहारमें ऐसा देखा जाता है कि अन्याय-मार्गपर चलनेवाले बेईमान, चोर, लुटेरे भी उनकी शरण ग्रहण करके और उन्हें 'जय सियाराम!' सुनाकर लाभ उठाना चाहते हैं और उठाते हैं। हनुमानजीका शरीर प्रापञ्चिक अथवा भौतिक नहीं है। अनाहत ब्रह्मध्वनिरूप 'राम-राम' के स्पन्दनसे उनका एक-एक क्षण, एक-एक कण एवं मनका एक-एक संकल्प अनुप्राणित है। श्रीरामकी ही सेवात्मक अभिव्यक्ति हैं—अञ्जनानन्दन।

प्रत्यक्षरूपसे की गयी सेवा सबकी पहचानमें आती है; परंतु भक्तका सूक्ष्म दृष्टिकोण परोक्षरूपसे भगवान्‌की सेवा करता है। इसका रहस्य यह है कि जबतक सेवक अपनेमें अज्ञान और न्यूनताका भाव धारण नहीं करेगा, तबतक वह अपने स्वामीके ज्ञान और पूर्णताको विश्वविश्रुत बनानेकी सेवा नहीं कर सकता। इसके लिये आप वाल्मीकिरामायणके दो प्रसङ्गोंपर ध्यान दीजिये।

मारुति मौन सेवक हैं। उनमें 'रुति' शब्दका अभाव ही है। ऐसा भी कह सकते हैं कि उनकी 'रुति' में मा-प्रभा (यथार्थ अनुभव) भरपूर है। उनकी रुति—वाणी भी सीताकी वाणी है। उनकी वाणीमें परा-पश्यन्तीका सौन्दर्य वैखरीमें भी उतरता है। किष्किन्धा-काण्डके प्रारम्भमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं उनके वाक्यविन्यासकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वे एक आचार्यके समान लंकामें प्रवेश करते हैं। समुद्र उनकी यात्रामें व्यवधान नहीं। उन्हें विश्रामकी आवश्यकता नहीं। माया-छायाका विघ्न प्रभावित नहीं कर सकता, स्वर्णलंका प्रलोभित नहीं कर सकती। विवेकके समान वे शान्तिमयी सीताको ढूँढ़ निकालते हैं और मानो प्रबल वैराग्याग्निके द्वारा स्वर्णलंकाको भस्म कर देते हैं।

यह सब प्रत्यक्ष एवं भावगर्भित परोक्षरूपसे भगवान्‌की सेवा है। उनकी सेवामयी दृष्टि उस समय पराकाष्ठापर पहुँच जाती है, जब वे सीता मातासे प्रार्थना करते हैं कि 'आप हमारी पीठपर बैठ जाइये, मैं अभी आपको श्रीरामके पास ले चलता हूँ। आपका विरह-दुःख कुछ क्षणोंमें ही मिट जायगा।' इसके उत्तरमें श्रीजनकनन्दिनी सीताके जो प्रखर पातिव्रत्यके उद्गार हैं, वे अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं। रामायण-निर्माणके सम्पूर्ण प्रयोजनका दर्शन वहीं होता है। श्रीजानकीजी कहती हैं कि 'मैंने अपने जीवनमें जान-बूझकर कभी परपुरुषका स्पर्श नहीं किया है। रावणने बलात् मुझे पकड़कर रथपर बैठाया—यह सही है। परंतु उस समय मैं विवश थी। तुम मेरे पुत्र हो तो क्या हुआ, मैं जान-बूझकर तुम्हारा भी स्पर्श नहीं कर सकती। जब मेरे स्वामी समुद्र पार करके आयेंगे, शत्रुओंपर विजय प्राप्त करेंगे और अपने पौरुषसे मुझे ले जायँगे, तब उनका यश बढ़ेगा। चोरीसे भागकर जानेमें उनकी क्या कीर्ति बढ़ेगी?'

सारा रामायण श्रीसीताजीका उदार एवं उदात्त महनीय चरित्र है। यदि हनुमानजी ऐसे प्रसङ्गमें अपनी चञ्चलता अथवा अपने उथले विचार प्रकट न करते तो सीताजीके अमर वचन एवं प्रेमोद्गार उन्हें कैसे मिल सकते थे। आप सूक्ष्मतासे देखें, इस वचनके द्वारा जनताके हृदयमें जननीके प्रति सद्भावकी कैसे निरतिशय प्रतिष्ठा जमी है और भगवान् श्रीरामचन्द्रके प्रेमाकुल हृदयको कैसा निरुत्तर शान्तिदायी आश्वासन प्राप्त हुआ है, जो किसी दूसरे प्रकारसे प्राप्त नहीं हो सकता था। सच है, सीता-राम दोनोंकी ऐसी सेवा हनुमानजीके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता था।

अब दूसरा प्रसङ्ग देखें। श्रीसीताजीके हृदयमें कितनी करुणामयी उदात्त एवं उदार वृत्ति है, भगवान् श्रीरामके प्रति कितना अगाध एवं अबाध प्रेम-रत्नाकर छलक रहा है, यह श्रीहनुमानजीके कारण ही अभिव्यञ्जना प्राप्त कर सका है। लंकाविजयके पश्चात् श्रीरामचन्द्रके शुभ-संदेश लेकर केसरीकिशोर अशोक-वनमें जाते हैं। वहाँ वे एक ऐसी भूमिका या अभिनय प्रकट करते हैं, जो सचमुच उनके स्वरूपके अनुरूप नहीं है। वे कहते हैं—'माँ ! आप आज्ञा दें तो आपको सतानेवाली इन निशाचरियोंको इनके कियेका फल चखा दूँ— रौंद दूँ, घसीट दूँ, नोच दूँ, मार डालूँ। केवल आपके संकेतभरका विलम्ब है।' निश्चय ही हनुमानजीके ये वचन श्रीसीताजीके हृदयको निवारणरूपसे प्रकट होनेका अवसर देनेके लिये ही हैं। श्रीजानकी माताके हृदयका यह तात्कालिक अवतार विश्वमानवके लिये प्रेरणाका शाश्वत स्रोत रहेगा, इसमें संदेह नहीं। वे कहती हैं— ''हनुमान! संसारमें ऐसा कौन प्राणी है, जिसने कभी-न-कभी कोई अपराध न किया हो। सभी अपराधी हैं—'**न कश्चिन्नापराध्यति।**' मैंने भी लक्ष्मणके प्रति अपराध किया है, तुमने भी लंकाके निरपराध बालक-बालिकाओंको पीड़ा पहुँचायी है। आर्य पुरुषका कार्य दण्ड देना नहीं है, करुणा करना है—'**कार्यं कारुण्यमार्येण।**' करुणामें पापी-पुण्यात्माका एवं शुभ-अशुभका विचार नहीं होता। तुम जो कुछ करनेके लिये कह रहे हो, उससे क्या श्रीरामचन्द्रजी या उनके भक्तोंका यश बढ़ेगा?' श्रीजानकीजीके वचनोंपर आप ध्यान दें। ये करुणा-समुद्रकी छलकती हुई लहरें तो हैं ही, भक्तोंके लिये एक मार्ग-निर्देश भी हैं। उन्हें अपने कर्तव्यका निश्चय करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उससे श्रीरामका और उनके भक्तोंका यश बढ़े। यदि उनके कर्तव्य-निश्चयमें यह दृष्टि नहीं है तो उनके भक्तिभावकी अपूर्णता ही माननी पड़ेगी।

सौन्दर्यकी दृष्टिसे जब हम हनुमानजीको देखते हैं तो वे शिवस्वरूप हैं, हृष्ट-पुष्ट एवं बलिष्ठ हैं, परंतु आकृतिकी दृष्टिसे देखें तो लोमश शरीर, हाथ-पाँव टेढ़े, चिबुक भी टेढ़ा, रूपमें लंका-दहनका प्रभाव। उनके प्रत्येक क्रिया-कलापसे श्रीरामका ही महत्त्व प्रकट होता है। वे किसीको अपना भक्त बनाकर श्रीरामका भक्त बनाते हैं। शृङ्गार-रसकी सेवामें दासीको भले ही सौन्दर्य-माधुर्यकी अपेक्षा हो, परंतु दास्य-रसकी सेवामें स्वशरीरके लिये सेवोपयोगी प्रसाधनकी ही अपेक्षा होती है, अधिक नहीं। उनका ब्रह्मचर्य भगवान् श्रीरामचन्द्रके लिये कितना सेवोपयिक है— यह थोड़े ही विचारसे ज्ञात हो जायगा। सीताजीके प्रति प्रेमसंदेशका आदान-प्रदान, रावणके अन्त:पुरमें प्रवेश और अवधधामके राजमहलमें अनवरत सेवाका अवसर अखण्ड ब्रह्मचर्यके बिना कैसे प्राप्त हो सकता है।

प्रीतिपूर्ण दास्य अथवा प्रेमानुभावरूप सेवामें अपनी जातिका उत्कर्ष बाधक हो जाता है। भगवान् श्रीरामचन्द्रको सेवाकी आवश्यकता हो और सेवक अपने व्यक्तिगत कर्तव्योंके पालनमें संलग्न हो, स्नान, संध्या-वन्दन, नित्यकर्म आदिमें मग्न हो, उसकी ऊँची जातिका अभिमान छोटी-मोटी सेवा करनेमें विघ्न करता हो तो यह सेवकका दुर्भाग्य ही समझना चाहिये। अपने खान-पानके लिये पृथक् व्यवस्था करनी पड़ती हो, यदृच्छया प्राप्त फल-फूल-मूल आदिसे काम न चल जाता हो तो निश्चय ही प्रेमरसकी सेवाधाराके अकुण्ठ प्रवाहमें प्रतिबन्ध आ जायगा। अतएव सेवा-धर्म केवल अनन्य सेवाके लिये होता है, उसमें स्वसेवा नहीं होती, अन्य सेवा भी नहीं होती। स्वामीकी सेवामें जो सहायक सेवा होती है, वह भले ही अपनी हो या परायी, सेवकको स्वीकार है। इसके अतिरिक्त नहीं। श्रीहनुमानजीने उत्कृष्ट जातिके समाश्रयणका परित्याग करके इस भावको स्पष्ट कर दिया।

पुराणोंमें उल्लेख मिलता है कि बाल्यावस्थामें हनुमानजीका बल अप्रतिभट था। कोई उनके क्रिया-कलापमें बाधा नहीं डाल सकता था। चाञ्चल्य जातिसिद्ध था। सूर्यतकको निगल जानेका प्रयास किया। ऋषियोंके लिये आवश्यक फल-मूलदायक वनवृक्षका विध्वंस किया। ऋषियोंने शाप दिया—'तुम्हें अपने बलका विस्मरण

हो जाय।' यह शाप नहीं, ज्ञानदान है। इसके कारण अपनी सगुणता और सबलता बाधित हो गयी। उपाधिमूलक बलका तिरस्कार हो गया। वे इतने बलिष्ठ होनेपर भी सामान्य वानरके समान रहने लगे। सेवकका बल स्वामीकी सेवाके लिये प्रकट होनेपर ही सार्थक होता है। जब समुद्र-लङ्घनकी आवश्यकता पड़ी, जाम्बवान्ने बलका स्मरण करा दिया, बस क्या था। बात-की-बातमें काम पूरा हो गया। श्रीहनुमानजीके मनमें जाम्बवान्के द्वारा उद्वेलित बलमें भी 'यह मेरा बल है'—ऐसी अभिमति नहीं हुई। उनकी दृष्टिमें सब बल स्वामीका बल है, परमेश्वरका बल है। वे न केवल अपने बल-प्रकाशको प्रत्युत रावणादिके बल-प्रकाशको भी भगवान्का ही बल समझते हैं। गोस्वामीजीने रावणके सम्मुख ***'जाके बल लवलेस ते'*** और भगवान् श्रीरामके सम्मुख ***'तव प्रताप बल नाथ'*** कहकर इसी भावकी अभिव्यञ्जना की है। उनकी अबाधमयी दृष्टिमें अपना आत्मा निर्बल और निर्गुण ही है। विशेषताएँ तो सब परमेश्वरके बलकी ही हैं।

भगवान् श्रीरामभद्रने मारुतिको क्या संदेश देकर सीताके पास भेजा था—यह किसीको ज्ञात नहीं था। यदि यह प्रकट कर दिया जाता कि हनुमानके द्वारा ही संदेश भेजा गया है तो दूसरे वानर अपने कार्यमें उदासीन हो जाते एवं अपनी अयोग्यताका मनन करके सैन्यसंग्रहमें भी उत्साहहीन हो जाते, परंतु अपने स्वामीके मन्त्रको, संदेशको गुप्त रखनेकी अद्भुत क्षमता महावीरमें देखी गयी। साथ ही स्मृति ऐसी कि करुणानिधान रघुनन्दनका संदेश उन्हींके शब्दोंमें ज्यों-का-त्यों बोला गया—'प्रेमका तत्त्व श्रीरामका मन ही जानता है और वह निरन्तर सीताके पास ही रहता है।' निश्चय ही सेवककी स्मरण-शक्ति कैसी होनी चाहिये, इसका यह एक उत्तम आदर्श है।

सेवकको अपने स्वामीका कार्य सम्पन्न किये बिना स्वयं किसीकी सेवा स्वीकार नहीं करना चाहिये—यह मैनाकके प्रसङ्गमें स्पष्ट है। ***'राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम।'***—यह एक अमर वाणी है। नागमाताके मुखसे दुगुना अपने आकारको बनाते जाना और उसका मुँह अतिशय बड़ा हो जानेपर छोटे आकारसे उसमें प्रवेश करके निकल आना—यह बुद्धिकौशल है। स्वर्णलंकिनीके प्रलोभनमें निर्लोभ और उसके भय-प्रदर्शनमें निर्भय, यह सेवाका ही धर्मदर्शन है।

शत्रुकी नगरीमें प्रविष्ट होनेके बाद केवल आज्ञापालन करके लौट आना—इतना ही सेवाका कर्तव्य नहीं होता। अभीतक शत्रु असावधान है, उसके यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र गुप्त नहीं रखे गये हैं। हनुमानकी प्रतिभाने उस समय श्रीरामकी विजयके लिये जितने मार्ग थे, सब प्रशस्त कर दिये। यन्त्र ध्वस्त कर दिये, ब्रह्मास्त्र आदिके मन्त्रज्ञान स्पष्ट हो गये, शासनतन्त्र भयभीत हो गया, सैनिकोंके हृदयमें खलबली मच गयी। श्रीरामका एक गुप्तचर इतना प्रभावशाली है तो वे और उनकी सेना कितनी सामर्थ्यशाली होगी? उसकी क्षमताके पारावारको कौन पार कर सकता है। शत्रुओंके हृदयमें इस भयका संचार कर देना बलबुद्धिनिधान पवननन्दनके ही वशकी बात थी। उनमें प्रतिभाके साथ शान्ति है, बुद्धिके साथ आज्ञापालन है, स्मृतिके साथ गोपन है, बलके साथ नियन्त्रण है, शारीरिक पुष्टिके साथ ब्रह्मचर्य है, साथ ही जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवान् श्रीरामचन्द्रकी सेवा है।

श्रीहनुमानजीमें सदाशिवका अनुग्रह, हिरण्यगर्भकी सत्यसंकल्पता, विष्णुकी पालनी शक्ति, ब्रह्माकी समता, रुद्रकी संहारशक्ति एवं अहंकारसे मुक्त ब्रह्मभाव अत्यन्त स्फुट दृश्यमान है। इसीसे उनकी प्रत्येक क्रिया हितभावसे परिपूर्ण है।

स्वं कर्तव्यं किमपि कलयँल्लोक एष प्रयत्ना-
न्नो पारार्थ्यं प्रति घटयते कांचन स्वात्मवृत्तिम्।
यस्तु त्यक्ताखिलभवमलः प्राप्तसम्पूर्णबोधः
कृत्यं तस्य स्फुटमिदमियल्लोककर्तव्यमात्रम्॥

जो मनुष्य लोक-व्यवहारमें प्रयत्नपूर्वक अपनी स्वार्थपूर्तिके कर्तव्योंमें ही संलग्न रहता है, वह परोपकारके लिये अपनी शक्ति-वृत्तियोंका ठीक-ठीक उपयोग नहीं कर सकता। परंतु जिस सत्पुरुषने संसारके सम्पूर्ण मलोंका परित्याग कर दिया है और अपनी पूर्णताका बोध प्राप्त कर लिया है, उसके हृदयमें चित्स्वभाववश जो इच्छाका उदय होता है, वह केवल लोकोपकारकी दृष्टिसे जो कर्तव्य हैं, उन्हींके लिये होता है—यह अत्यन्त स्पष्ट है।

महान् हनुमान

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीभजनानन्दजी सरस्वती महाराज)

श्रीहनुमानजीकी सेवा-भावना और सेवा-परायणता ऐसी अद्भुत थी कि श्रीरामचन्द्रजी, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीभरतजी, श्रीसीताजी तथा सभी अवधवासी उनके ऋणी बन गये। इतना महान् होकर भी हनुमानजी श्रीरामचन्द्र महाराजके समक्ष सदैव निरभिमानताकी मूर्ति ही रहे। उनकी यह निरहंकारिता अनेक स्थलोंपर देखनेमें आती है। जब श्रीहनुमानजी लंकासे श्रीसीताजीका समाचार लेकर लौटे और भगवान् श्रीरामचन्द्रने सब पूछकर तथा जानकर उनके महान् कार्योंकी भूरि-भूरि सराहना प्रारम्भ कर दी, तब दैन्यकी मूर्ति श्रीहनुमानजीने बड़ी विनम्रतापूर्वक कहा—'रघुनाथजी! बंदरका बस यही पुरुषार्थ है कि वह एक डालसे दूसरी डालपर कूद जाता है। यदि मेरेद्वारा कोई कार्य सम्पन्न हुआ है तो यह सब आपका ही प्रताप है। नाथ! इसमें मेरी प्रभुता (बड़ाई) कुछ भी नहीं है।' इतना बड़ा कार्य करके भी हनुमानजीके चरित्रमें निरभिमानता पद-पदपर प्रकट हो रही है।

ऐसे निरभिमानी श्रीहनुमानजीके प्रति सभी अवधवासी चिर ऋणी हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रके वनगमनके समय उनसे माता कौसल्या कहती हैं—'बेटा ! अयोध्यावासियोंको छोड़कर तुम वन जा रहे हो, परंतु तुम्हारे वनवासकी अवधि जल है और अवधवासी मछलीकी भाँति हैं। इसलिये अवधि बीतनेपर तुरंत ही आ जाना अन्यथा मछलीके समान प्रिय-परिजनोंका जीवन असम्भव है।' भगवान् श्रीरामके वनगमनके बाद सब लोग उनके दर्शनके लिये नियम-उपवास करने लगे। वे भूषण और भोग-सुखोंको छोड़कर चौदह वर्षोंकी अवधिपर जी रहे हैं—

राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपबास।
तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधि कीं आस॥

(मानस २।३२२)

श्रीरामकी प्रतीक्षा करते-करते चौदह वर्ष व्यतीत होनेको आये। अब चौदहवें वर्षका एक दिन शेष रह गया है। श्रीभरतजी कुशासनपर बैठकर प्रतीक्षा करने लगे—

रहेउ एक दिन अवधि अधारा।
समुझत मन दुख भयउ अपारा॥

(मानस ७।१।१)

श्रीभरतजीने सोचा कि आज यदि भगवान् नहीं आये तो अयोध्यावासी मर जायँगे। जल ही नहीं रहेगा तो प्रजारूपी मछली कैसे जियेगी? ऐसा सोचकर श्रीभरतजीने स्वयं अपने शरीरका ही सर्वप्रथम त्याग करना उचित समझा। उसी समय श्रीहनुमानजी आकर देख रहे हैं—

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जलजात॥

(मानस ७।१ ख)

भरतकी स्थिति देखकर हनुमानजी गद्‌गद हो गये और फिर श्रीराम-आगमनका समाचार सुनाकर श्रीहनुमानने न केवल भरतजीके अपितु सम्पूर्ण अवधवासियोंके जीवनकी रक्षा की। फिर भगवान् श्रीरामके दर्शनसे स्वाभाविक ही सारे अयोध्यावासियोंका मन प्रसन्न हो गया।

जिस प्रकार श्रीभरतजी, माता कौसल्यादि तथा अवधवासीगण श्रीहनुमानजीके ऋणी हैं, उसी प्रकार श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी भी उनके ऋणी हैं। मेघनादकी शक्तिद्वारा मूर्च्छित लक्ष्मणका दृश्य अत्यन्त करुण है। सुषेण वैद्यकी आज्ञाके अनुसार हनुमानजी संजीवनी-बूटी लाने गये। उनके लौटनेमें विलम्ब देखकर विलाप करते हुए श्रीरामचन्द्रजीकी दैन्यदशाका वर्णन श्रीगोस्वामीजीने अनोखे शब्दोंमें किया है—

मोपै तो न कछू ह्वै आई।
ओर निबाहि भली बिधि भायप चल्यो लखन-सो भाई॥
पुर, पितु-मातु, सकल सुख परिहरि जेहि बन-बिपति बँटाई।
ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यो न प्रान पठाई॥
जानत हौं या उर कठोरतें कुलिस कठिनता पाई।
सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुतको दरकि दरार न जाई॥
तात-मरन, तिय-हरन, गीध-बध, भुज दाहिनी गँवाई।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई॥

(गीतावली, लंका० ६)

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ऐसा करुण-विलाप कर रहे थे। उसी समय श्रीहनुमानजी संजीवनी लेकर आ गये और उस बूटीका सेवन करते ही लक्ष्मणजी उठ बैठे। उस समय भगवान् श्रीरामका हृदय अत्यन्त कृतज्ञतासे

भर गया।

इसी प्रकार कृतज्ञ हैं भगवती सीता भी। लंका-विजयके पश्चात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने जगज्जननी श्रीसीताजीके पास श्रीहनुमानजीको भेजा। दर्शन एवं प्रणामके उपरान्त श्रीहनुमान श्रीसीताजीसे कहते हैं—'अब आप अपनेको रावणके घरमें वर्तमान समझकर भयभीत मत हों; क्योंकि दशाननको जीतकर भगवान् श्रीरामने लंकाका सारा ऐश्वर्य विभीषणके अधीन कर दिया है।' ऐसी वाणी सुनकर सीतामाता कहती हैं—'वत्स! इस प्रिय संवादके अनुरूप ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे तुम्हें देकर मैं संतुष्ट हो सकूँ।'—

हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च।
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु एतन्नार्हति भाषितम्॥

(वा० रा० ६।११३।२०)

श्रीजानकीजीके हृदयमें अत्यन्त हर्ष हुआ। उनका शरीर पुलकित हो गया और उनके नेत्रोंमें आनन्दाश्रु छा गये। वे बार-बार कहती हैं—'हनुमान! मैं तुझे क्या दूँ?'—

अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा॥

(मानस ६।१०७ छं)

हनुमानजी-जैसा भाग्यवान् कौन होगा? महान् सेवा किसको ऋणी नहीं बना लेती?

रामायण-महामालाके महारत्न श्रीहनुमान

(लेखक—अनन्तश्री स्वामी श्रीनन्दनन्दनानन्दजी सरस्वती)

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥

मारुतात्मज श्रीहनुमान रामायण-महामालाके महारत्न हैं। वस्तुत: श्रीरामचरितका वर्णन हनुमानजीके वर्णनके बिना अपूर्ण ही रह जाता है। वेदवेद्य परात्पर परब्रह्मने जब भक्तानुग्रह-परवश हो दशरथात्मजरूपमें अवतीर्ण होनेका निश्चय कर लिया, तब शाश्वत शब्दब्रह्म वेदराशिने भी अपने इष्टके दुर्लभ लोकोत्तर कल्याण-गुणगणानुगानके लिये प्रचेतामुनिकी संतान प्राचेतस वाल्मीकिद्वारा रामायणात्मक अवतार धारण किया—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥

भारतमें निवास करनेवाले प्राय: सभी प्रमुख लेखकों एवं ऋषि-मुनियोंद्वारा श्रीरामकथा-मन्दाकिनीमें अवगाहन किया गया है। अत: वेदसंहिता, उपनिषद्, पुराण, इतिहास, महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटकादि साहित्यिक कृतियोंमें प्राय: श्रीरामचरितका वर्णन है, किंतु उन सबका मूलस्रोत—वैदिक भाग छोड़कर शेष सबका आधार विश्वकी साहित्य-शृङ्खलामें केवल आर्षकृति वाल्मीकीय रामायण आदिकाव्य ही है। रामचरितामृतका प्रवाह व्यास, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, काकभुशुण्डि, शंकर आदि महाविभूतियोंद्वारा पुराण-निगमागममें प्रसिद्ध है, तथापि उन सबमें प्रमुख प्रामाण्य वाल्मीकीय रामायणका ही है। भारत एवं जावा (यवद्वीप), बाली, सुमात्रा तथा सुदूरवर्ती प्राच्य-पाश्चात्य क्षेत्रों—जापान, अमेरिका, चीन, पेरू, मैक्सिको आदि देशोंमें श्रीरामकथा किसी-न-किसी रूपमें अवश्य मिलती है और श्रीरामकथानुसंधान करनेवाले आधुनिक विद्वानोंने उनके तुलनात्मक उद्धरण भी दिये हैं, किंतु उन साहित्यिक अनुसंधानकोंमें कुछ ईसाई फादर कामिल बुल्के आदिने दूसरे भेदोंके आधारपर कुछ विकृत करने अथवा वाल्मीकीय रामायणके वर्णनोंको कहीं प्रक्षिप्त, कहीं असङ्गत और अप्रामाणिक कहनेका साहस भी किया है। वह सब मिथ्या प्रयास, दुर्भावनापूर्ण और भारतीय तथा विशेषत: आर्य इतिहासको विकृतरूप देकर ईसाइयतके प्रचारका एक सूत्रपातमात्र है। वस्तुत: किसी देश और किसी भाषाकी श्रीरामकथा आदिकवि वाल्मीकिद्वारा वर्णित श्रीरामकथाका केवल छायाचित्रमात्र है, उन सबका प्रामाण्याधार केवल वाल्मीकीय रामायण है और जहाँ भी वर्णन-भेद है, वहाँ वह उनकी भ्रान्तिमूलक अथवा दुर्भावनाप्रेरित वृत्तिका ही परिचायक माना जायगा। भारतीय साहित्यमें कालिदास, भवभूति, तुलसीदास, रामदास (समर्थ) आदि सभी लेखकोंने वाल्मीकिको श्रीरामचरितके सम्बन्धमें परम प्रमाण माना है।

इसी प्रकार श्रीहनुमानजीके सम्बन्धमें भी वाल्मीकीय रामायण ही परम प्रमाण है। दूसरे अपना बुद्धिकौशल लगा सकते हैं, परंतु हनुमान कौन हैं, क्या हैं, किस प्रभाव, स्वभाव अथवा योग्यतासे युक्त हैं, इन सबमें तो अन्तिम आधार महर्षि वाल्मीकिकी भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटवादि समस्त पुंदोषोंसे असंस्पृष्ट

आर्ष वाणी ही है। अतः वाल्मीकीय रामायण एक महाकाव्यमात्र न होकर इतिहास-ग्रन्थ भी माना गया है। इस सामान्य उपकथनके अनन्तर अब श्रीहनुमानजीका जो चित्र महर्षि वाल्मीकिने दिया है, उसका कुछ अंश साररूपमें अवलोकन करनेका प्रयत्न किया जाता है।

परब्रह्म श्रीरामके मानव-अवतारमें अपनी महनीय भूमिका निभानेके लिये अन्य सभी देवताओंके समान श्रीहनुमानजी भी वानर-योनिमें प्रकट हुए हैं। यह वानर-जाति मनुष्योंमें आदिवासियोंकी कोई जाति थी। इस सम्बन्धमें महर्षि वाल्मीकिने किसी संदेहका अवकाश नहीं छोड़ा है। उन्होंने 'वानर' शब्दमात्र न देकर कपि, शाखामृग, प्लवग, प्लवंगम, हरि, हर्यक्ष, पिङ्गाक्ष, हरिशार्दूल, प्लवगर्षभ आदि अनेक पर्यायवाची शब्दोंसे लाङ्गूल एवं पुच्छयुक्त प्राकृत वानरत्वको स्पष्ट कर दिया है तथा पुच्छके विविध रूपों और प्रयोगोंका वर्णन भी विस्तारपूर्वक किया गया है।

महर्षि वाल्मीकिने प्रायः सर्वत्र श्रीहनुमानकी बुद्धि-प्रखरताकी प्रशंसा की है और उन्हें **'बुद्धिमतां वरं'** आदि विशेषणोंसे सम्मानित किया है। किंतु भगवान् श्रीरामके प्रथम मिलनमें वास्तविक कपिरूपको छिपाकर भिक्षुरूप धारण करनेकी भूलको उन्होंने कह ही डाला—

कपिरूपं परित्यज्य हनुमान् मारुतात्मजः।
भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः॥

(वा० रा० ४।३।२)

कपि-स्वभावकी शठताको कहे बिना महर्षिसे न रहा गया, जो आगे सब जगह हनुमानजीकी बुद्धिकी प्रशंसा ही करेंगे। इसी भावको गोस्वामी तुलसीदासजीने ***'एकु मैं मंद मोह बस कुटिल हृदय अग्यान'***—इन शब्दोंमें वर्णन किया है। शरण जाते समय भी सर्वान्तरात्मा श्रीरामसे दुराव महर्षिको ठीक न लगा, इसलिये यथावत् वर्णन भी कर दिया। श्रीहनुमानजीको भी इस भूलका अनुभव हुआ और भिक्षुरूप त्यागकर उन्होंने अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया।

प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना।
राज्ञा वानरमुख्यानां हनुमान् नाम वानरः॥

× × × ×

तस्य मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम्॥

(वा० रा० ४।३।२१-२२)

वानर-शरीरमें रहनेके कारण कभी-कभी वानर-प्रकृति भी प्रस्फुटित हो उठती है। इसके प्रदर्शनका वर्णन समय-समयपर वाल्मीकिने किया है, जैसे, जब लंकामें रावणके अन्तःपुरमें मन्दोदरीको देखकर हनुमानजीको सीता-दर्शनका भ्रमात्मक आनन्द हुआ, तब तत्काल कपि-प्रकृति फूट पड़ी—

आस्फोटयामास चुचुम्ब पुच्छं
ननन्द चिक्रीड जगौ जगाम।
स्तम्भानरोहन् निपपात भूमौ
निदर्शयन् स्वां प्रकृतिं कपीनाम्॥

(वा० रा० ५।१०।५४)

वानरी प्रकृतिका प्रदर्शन करते हुए उन्होंने जोर-जोरसे पुच्छको पटकना, चूमना, चिल्लाना, कूदना, खम्भोंपर चढ़ना आदि आरम्भ किया, किंतु उनकी यह अवस्था कुछ क्षणमें ही शान्त हो गयी—

अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा॥

(वा० रा० ५।११।१)

'ये सीताजी हैं'—ऐसी भ्रमात्मक बुद्धिका त्याग कर श्रीहनुमानजी अपने स्वभाविक गाम्भीर्यको प्राप्त हुए। इसी प्रकार जानकीजीका अशोक-वाटिकामें दर्शन करके भी वे चिन्ताग्रस्त हुए। उस समय उनका स्वाभाविक तेज उद्बुद्ध हो चुका था। अतः ऋक्षराज जाम्बवान्‌के स्तुत्यात्मक उद्बोधनके साथ-साथ हनुमानजी बढ़ते गये। यह केवल मनोवैज्ञानिक प्रभावमात्र नहीं, प्रत्युत अमोघ ऋषि-शापकी निवृत्तिमात्र है, जिसे महर्षि वाल्मीकिने स्पष्ट किया है—

अमोघशापैः शापस्तु दत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा।
न वेत्ता हि बलं सर्वं बली सन्नरिमर्दन॥

(वा० रा० ७।३५।१६)

इसी अमोघ शापके फलस्वरूप हनुमानजी सुग्रीवके साथ वालीके भयसे इधर-उधर भागते रहे। अन्तमें ऋष्यमूक पर्वतपर मतङ्ग ऋषिद्वारा वालीके शापका ध्यान भी सुग्रीवको श्रीहनुमानजीने ही दिलाया, जहाँ श्रीराम-मिलनपर्यन्त ये सब निश्चिन्त रहते रहे।

बुद्धि-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, बल-पराक्रम, कार्य-सिद्धिके भण्डार श्रीहनुमानजी पद-पदपर अलौकिकताका परिचय देते रहे।

महारत्न श्रीहनुमानके गुणगणोंका वर्णन भी महर्षि वाल्मीकिके आधारपर बहुत विस्तृत है। एक सीमित लेखमें अनन्त समुद्रके कुछ शीकर-कण अथवा कुछ सीपमात्र ही दिये जा सकते हैं।

अग्नि-साक्षिक श्रीराम-मैत्री सुग्रीवके लिये श्रीहनुमानका ही वरदान है। वर्षा-ऋतुके चार मास बीतनेपर भी सुग्रीव रुमा और ताराके साथ मधुपानमें लीन रहे। उस समय भी उनका उद्‌बोधन हनुमानजीने किया। समुद्रतटपर वानरदलके पहुँचनेसे पूर्व, स्वयंप्रभाके दर्शनके अनन्तर सुग्रीवके विरुद्ध अङ्गदादि वानरोंके प्रलाप करनेपर श्रीहनुमानने ही अङ्गदजीको सामादिके प्रयोगसे मार्ग-दर्शन कराया। किंतु तबतक हनुमान **'न ह्यविदितो देवो भुनक्ति'** के सिद्धान्तानुसार अपने वास्तविक स्वरूपसे अपरिचित थे। जब समुद्रतटपर सम्पातिद्वारा अशोक-वाटिका और सीताका पता बता देनेपर भी वानरदल अपने सामने अनन्त मकर-झषाकीर्ण वरुणालय सागरको देखकर हतप्रभ हो रहा था, तब जाम्बवान्‌के द्वारा श्रीहनुमानजीके वास्तविक रूपका उद्‌बोधन करनेपर हनुमानजी वानर-वीरोंसे अपने अद्‌भुत उत्साहका वर्णन करते हुए कहते हैं—

यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः॥
गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम्।
नहि द्रक्ष्यामि यदि तां लङ्कायां जनकात्मजाम्॥
अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम्।
यदि वा त्रिदिवे सीतां न द्रक्ष्यामि कृतश्रमः॥
बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम्।
सर्वथा कृतकार्योऽहमेष्यामि सह सीतया॥
आनयिष्यामि वा लङ्कां समुत्पाट्य सरावणाम्।

(वा० रा० ५।१।३९—४३)

जैसे अमोघ राम-बाण धनुषसे छूटकर लक्ष्यपर पहुँच जाते हैं, वैसे ही मैं रावणपालित लंकामें जाऊँगा। यदि जनकात्मजाको वहाँ न देख पाया तो इसी वेगसे स्वर्गको जाऊँगा। यदि वहाँ भी सीता-दर्शन नहीं हुआ तो राक्षसराज रावणको ही बाँध लाऊँगा अथवा रावणसहित लंकाको ही उखाड़कर ले आऊँगा। किसी भी तरह सब कार्य पूर्ण करके ही सीतासहित आऊँगा।'

लंका-प्रवेश, सीतान्वेषण, लंका-भ्रमण तथा अशोक-वनका मार्गण—ये सभी अद्‌भुत साहस एवं सूक्ष्मबुद्धिके परिचायक हैं। परंतु सीता-सम्भाषणकी समस्या सभी समस्याओंसे विकट बतायी गयी है। इस चिन्तनको भी वाल्मीकिने वानर-चिन्तन ही बताया। जानकीजीके दर्शन कर लेनेके पश्चात् सीताजीके प्रति रावणके वचन, उसके बाद जानकी-शोक, राक्षसी-तर्जन तथा सीताद्वारा शरीर-त्यागके प्रयत्न आदिको देखकर श्रीहनुमानजीने अत्यन्त सतर्कता और बुद्धिमानीपूर्वक **'राजा दशरथो नाम'** आदि कहते हुए अयोध्याधिपति दशरथके वर्णनसे संक्षिप्त गाथाका आरम्भ कर जानकीजीके हृदयमें परम हर्ष उत्पन्न कर दिया। यहाँतक श्रीहनुमानजीका सामान्य उद्‌बोधन था। माँ सीताकी प्रथम परमानन्दमयी दृष्टि शिंशपा (अशोक)-वृक्षपर बैठे श्रीहनुमानपर पड़ी—**'ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम्।'** यहाँसे उदीयमान सूर्यके समान श्रीहनुमत्सूर्यका वास्तविक उदय आरम्भ हुआ। जानकीजीके मनकी अनेक वैकल्पिक शङ्काओंको शान्त करना, उनके मनमें अपनेको श्रीरामदूत होनेका सत्य विश्वास जमाना, बातचीतके बीच बार-बार जानकीजीको संदेहोद्वेग आना और उनको अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक शान्त करना श्रीहनुमानजीकी कुशाग्रबुद्धिका ही कार्य है। अन्तमें जानकी-कृपापात्र श्रीहनुमान चूड़ामणि लेकर जानकी-शोकाग्निसे राक्षससमूहको मशक-तुल्य और सिन्धुको गोष्पद-सदृश बना देते हैं।

इस प्रकार उत्तराभिमुख सर्वसिद्ध हनुमान सागर-पार जाकर अङ्गद, जाम्बवान् आदि वानरसमूहको अभिनन्दित कर, उनके सहित श्रीराम-दर्शन कर, प्रथम आनन्दकर वचन **'दृष्टा देवीति'** कहकर, पुनः सब वार्ता सुनाकर श्रीरामको परमाह्लादित करते हैं। श्रीराम स्वयं हनुमानजीके अतुलित बल-पराक्रमसे कृतकृत्य हो जाते हैं—

'यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि वै।'

'श्रीहनुमानके पराक्रमसे हम सब और चौदह भुवन उपकृत हैं।' ये श्रीराम-दर्शनके अग्रदूत, श्रीराम-कृपाके अहैतुक प्रेरक और महर्षि वाल्मीकिके अत्यन्त प्रियपात्र हैं; रामायण-महामालाके महारत्न और श्रीरामभक्तोंके अनन्याश्रय हैं। उनके गुणगणवर्णनका प्रयास आकाश-अवगाहनके समान आत्म-साहस-परीक्षण है। इसमें भी वस्तुतः श्रीहनुमानजीकी कृपा ही सहायक है।

श्रीहनुमानजीका अवतरण

(लेखक—पूज्य श्रीश्रीधराचार्यजी महाराज, झालरिया मठ)

भारतीय शास्त्रोंमें श्रीहनुमानजीको वातात्मज या वायुपुत्र बताया गया है। श्रीमद्रामायणके बालकाण्डमें महर्षि वाल्मीकिने भी ब्रह्माके द्वारा देवताओंको आदेश दिलाया है कि भगवान् श्रीविष्णु आपलोगोंकी प्रार्थनासे मनुष्यरूप धारणकर दशरथके पुत्र होकर रावणका वध करेंगे। सब देवता उनकी सहायताके लिये पृथ्वीपर अपने-अपने अंशसे ऋक्ष, वानर आदि योनियोंमें अवतार ग्रहण करें। वहाँ भी केसरी वानरकी स्त्री अञ्जनाके गर्भसे वायुद्वारा हनुमानकी उत्पत्ति बतलायी गयी है। 'स्कन्द' एवं 'भविष्योत्तर' पुराणोंमें भी कथा आती है कि केसरीकी पत्नी अञ्जना अनपत्य दु:खसे दु:खी होकर मतङ्ग ऋषिके पास जाकर रोती हुई कहने लगी—'मुने! मेरे पुत्र नहीं है। आप कृपया पुत्र-प्राप्तिका कोई उपाय बतलाइये।' तब मतङ्ग ऋषिने कहा—'पम्पा सरोवरसे पूर्व दिशामें पचास योजनपर नरसिंहाश्रम है। उसकी दक्षिण दिशामें नारायणगिरिपर स्वामितीर्थ है। उससे एक कोश उत्तरमें आकाशगङ्गा तीर्थ है। वहाँ जाकर उसमें स्नान करके द्वादश वर्षतक तप करनेसे तेरे गुणवान् पुत्र उत्पन्न होगा।' मतङ्गके ऐसा कहनेसे वह नारायणाद्रिपर गयी, स्वामिपुष्करिणीमें स्नान किया और अश्वत्थकी प्रदक्षिणा एवं वराहभगवान्को प्रणाम करके आकाशगङ्गातीर्थमें रहनेवाले मुनियों एवं अपने पतिकी आज्ञा लेकर उपवास करती हुई बाह्य भोग छोड़कर तप करने लगी। इस प्रकार तप करते पूरे बारह वर्ष बीत गये, तब वायु देवताने प्रसन्न होकर उसे पुत्र होनेका वरदान दिया। परिणामस्वरूप अञ्जनाने एक उत्तम पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम मुनियोंने 'हनुमान' रखा।

ब्रह्माण्डपुराणमें यह प्रसङ्ग कुछ भिन्न प्रकारसे आया है। उसके अनुसार त्रेतायुगमें एक केसरी नामका असुर उत्पन्न हुआ। उसने पुत्र-कामनासे श्रीशिवजीको प्रसन्न करनेके लिये पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप करते हुए जितेन्द्रिय और निराहार रहकर तप किया। इससे प्रसन्न होकर शिवजीने उसे दर्शन दिया और कहा—'तू अपने इच्छानुसार वर माँग ले।' तब केसरीने कहा—'देवदेव! यदि आप संतुष्ट हैं और वर देना चाहते हैं तो मैं एक ऐसा पुत्र चाहता हूँ, जो बलवान्, संग्राममें विजयी, महाधैर्यवान् एवं महाबुद्धिमान् भी हो।' तब श्रीशंकरजी बोले—'मैं तुझे पुत्र तो नहीं दे सकता। कारण, विधाताने तुझे पुत्रसुख नहीं लिखा है, तथापि एक सुन्दरी कन्या दूँगा, जिससे तेरी इच्छाके अनुसार महान् बलशाली पुत्र उत्पन्न होगा।' ऐसा कहकर श्रीशंकरजी अन्तर्धान हो गये। वह असुर मनचाहा वर पाकर अत्यन्त प्रसन्न हो गया।

कुछ समय बाद उसके एक लोकविस्मयकारिणी कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम दैत्यराजने अञ्जना रखा। वह कन्या शुक्लपक्षमें चन्द्रकलाकी तरह बढ़ने लगी। पिता पुत्रवत् ही उस कन्यासे प्रेम करता था। वह अपनी समवयस्क लड़कियोंमें जब खेलती थी, तब उसको देखकर उस दैत्यकी आँखें हर्षसे विकसित हो जातीं और वह तृप्तिका अनुभव करता। इस तरह समय बीतता गया। एक बार केसरी नामक वानरने, जो बड़ा पराक्रमी एवं वानरोंमें श्रेष्ठ था, उस कन्याकी याचना की; तब दैत्यराजने बड़ी प्रसन्नतासे उसे वह कन्या दे दी। केसरी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली अञ्जनाके साथ आनन्दसे क्रीड़ा करने लगा। इस प्रकार बहुत समय बीत गया, पर अञ्जनाके कोई पुत्र नहीं हुआ।

एक बार धर्मदेवता पुल्कसी (वन्य नीच स्त्री)- का रूप धारण कर वहाँ आये। उनके एक हाथमें था बेंत तथा दूसरे हाथमें थी एक सुतली। वह स्त्री जोर-जोरसे यह आवाज लगा रही थी कि 'किसीको अपने भाग्यके विषयमें प्रश्न करना हो तो करे, उसके भाग्यमें क्या लिखा है, मैं बता दूँगी।' इस प्रकार सबके हाथकी रेखाएँ देखती और उन्हें फल बताती हुई वह अञ्जनाके पास पहुँची, तब अञ्जनाने उसको सुन्दर आसन देकर बैठाया और सुवर्णपात्रमें मौक्तिकरूपी तण्डुल उसके सामने रखकर उसको सभी प्रकारसे संतुष्ट करके पूछा—'देवि! मेरे भाग्यमें पुत्र-सुख है या नहीं? सत्य-सत्य कहो। यदि मुझे एक बलवान् पुत्र हो जायगा तो मैं तुम्हें तुम्हारे इच्छानुसार सब कुछ दूँगी।' तब वह पुल्कसी बोली—'तुझे बलवान् पुत्र अवश्य प्राप्त होगा, यह मैं धर्मकी शपथ खाकर कहती हूँ, तू चिन्ता मत कर। किंतु मैं जैसा बताऊँ, उसी प्रकार तू नियमपूर्वक तप कर। श्रीवेङ्कटाचलपर्वतपर सात हजार वर्षतक तप करनेसे तुझे मनोवाञ्छित पुत्र प्राप्त होगा।' ऐसा कहकर पुल्कसी जैसे आयी थी, वैसे ही चली गयी। अब अञ्जना उसके

कथनानुसार वेङ्कटाद्रिपर आकाशगङ्गाके पास जाकर, जहाँ बहुत-से सिद्ध-महात्मा वास करते थे, केवल वायु भक्षण कर वायुदेवताका ध्यान करती हुई दारुण तप करने लगी।

कुछ दिनों बाद आकाशगङ्गासे यह आकाशवाणी हुई कि 'बेटी ! तू चिन्ता मत कर, तेरा भाग्य खुल गया। रावण नामका राक्षस बड़ा दुष्ट होकर सब लोगोंको रुलायेगा, वह सबकी सुन्दर-सुन्दर स्त्रियोंको हरण करके लायेगा। उसका नाश करनेके लिये भगवान् श्रीहरि रघुकुलमें श्रीरामरूपसे अवतार लेंगे। उनकी सहायता करनेके लिये बड़ा पराक्रमी, बलशाली, धैर्यवान्, जितेन्द्रिय और अप्रमेय गुणवाला एक तुम्हारा पुत्र भी होगा।' यह आकाशवाणी सुनकर अञ्जना परम प्रसन्न हुई। उसने यह सब वृत्तान्त केसरीको बतलाया। वह भी अत्यन्त प्रसन्न होकर पुत्रोत्पत्तिकी प्रतीक्षा करने लगा। अञ्जनाका गर्भ क्रमशः बढ़ने लगा और दस मास पूर्ण होनेपर श्रावणमासकी एकादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें कमलनयनी अञ्जनाने सूर्योदयके समय कानोंमें कुण्डल और यज्ञोपवीत धारण किये हुए, कौपीन पहने, जिसका रूप, मुख, पूँछ और अधोभाग वानरके समान लाल था, ऐसे सुवर्णके समान रंगवाले सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। हनुमानजीके जन्मकी कथाएँ पुराणोंमें विभिन्न प्रकारसे मिलती हैं। कल्पभेदसे वे सभी सत्य ही हैं। हमें तो भक्तिपूर्वक उनकी आराधना करनी चाहिये।

श्रीहनुमानजीका प्रणव-विज्ञान

(अनन्तश्री जगद्गुरु रामानुजाचार्य श्रीपुरुषोत्तमाचार्य रङ्गाचार्यजी महाराज)

यह ऐतिह्य है कि भगवान् श्रीरामके दास श्रीहनुमानजीने 'प्रणव' के जिस अद्भुत विज्ञानका प्रतिपादन किया है, वह आज भी गुरुपरम्पराद्वारा सुरक्षित एवं उपलब्ध है। उन्होंने इस विज्ञानकी प्राप्ति विश्वप्रभव सूर्यनारायणसे की थी।

'**बुद्धिमतां वरिष्ठम्**' श्रीपवननन्दनके मतानुसार यह विश्व 'वाक्'-तत्त्वका ही परिणाम है, जो दो प्रकारका है—अर्थवाक् और शब्दवाक्। यह प्रणव एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर, सार्धत्र्यक्षर और चतुरक्षर-भेदसे अनेक प्रकारका कहा गया है। इसके निर्वचन भी '**अवति, आप्नोति**' आदि अनेक धातुओं एवं 'अ उ म्, अः + म्' आदि अनेक अक्षरसमुदायोंसे निष्पन्न होते हैं। निर्वचन-भेद तथा अक्षरसमुदाय-भेदके कारण अर्थ भी अनेक होते हैं। स्थूल-सूक्ष्म-पर-भेदसे भी अनेक अर्थ होते हैं।

शब्दमय 'ओम्'

शब्दमय 'ओम्' एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर, चतुरक्षर-भेदसे अनेक प्रकारका है। आञ्जनेयके मतमें इनमें चतुरक्षर 'प्रणव' 'अ ह् अम्'—इन चार अक्षरोंसे निष्पन्न है। दूसरे शब्दोंमें एकाक्षर-स्फोट 'ओम्' भी चार वर्ण-स्फोटमें स्थित है। इनका अर्थ इस प्रकार है—'अ' कारका अर्थ सूक्ष्म (आत्मा) है। 'ह' कारका अर्थ स्थूल (शरीर) अर्थात् प्रकृति है। 'अम्' का अर्थ दोनोंका एकत्र संनिपात है। 'अ ह् अम्' इस स्थितिमें 'ह्' कारके उत्व हो जानेसे 'अ उ अम्' स्थिति हो जाती है। गुण एवं पूर्वरूपसे 'ओम्' निष्पन्न होता है। यह एकाक्षरा व्याहृति परमात्माका नाम है—'**तस्य वाचकः प्रणवः**'। सूक्ष्म परमात्मा एवं स्थूल प्रकृति—दोनोंका एकत्र संनिवेश 'ओम्' है। प्रकृतिरूप शरीर-विशिष्ट परमात्मा ही 'ओम्' शब्दसे वाच्य है, प्रकृति-वियुक्त नहीं।

द्व्यक्षर 'ओम्'

द्व्यक्षर, त्र्यक्षर एवं सार्धत्र्यक्षर 'ओम्' के अर्थोंका विश्लेषण इस प्रकार है—जब प्रणव स्थूल अर्थका प्रतिपादन करता है, तब उसमें 'ओ' और 'म्' दो अक्षर माने जाते हैं। इस पक्षमें प्रणवघटक प्रथम अक्षर 'ओ' का अर्थ ओत है। द्वितीय अक्षर 'मकार' का अर्थ मित है। दोनोंके संसर्गसे यह स्थूल अर्थ निष्पन्न होता है, 'जिसमें सब मित पदार्थ प्रोत हैं एवं जो सब मित (परिमित) पदार्थोंमें ओत है, वह परमात्मा 'ओम्' शब्दसे अभिहित होता है।' भगवान् विष्णुसे अन्य जो कुछ भी है, वह मित (परिमित) है। अतः प्रकृति और प्राकृत सब पदार्थ मित हैं। ये मित पदार्थ जिसमें मणिगणोंकी तरह प्रोत हैं और इन मित पदार्थोंमें

जो पुष्करमें परमाणुवत् ओत है, वह परमात्मा वेदोंमें 'ओम्' शब्दसे अभिहित है।

त्र्यक्षर 'ओम्'

जब प्रणव सूक्ष्म अर्थका प्रतिपादन करता है, तब उसमें 'अ उ म्' ये तीन अक्षर माने जाते हैं। ये तीनों भगवान्‌की सृष्टि, स्थिति एवं संहारकारिणी शक्तियोंके बोधक हैं। ये तीनों शक्तियाँ भी भगवान् विष्णुकी पूर्णा षाड्गुण्यरूपा एक शक्तिकी अंशरूपा हैं। वेदमें इनके विश्व, तेजसी, प्राज्ञ—ये नामान्तर हैं। 'पाञ्चरात्र'-तन्त्रमें इनके संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध—ये नामान्तर हैं। 'अ उ म्' रूप ये तीनों शक्तियाँ जिसमें निवास करती हों, वह परमात्मा 'ओम्' है और 'ओम्'-का वाच्य भी है।

प्रणव जब 'पर' अर्थका प्रतिपादन करता है, तब उसमें 'अ और उम्' ये दो अक्षर माने जाते हैं। इनमें 'अ' कारका अर्थ है—स्थूल चित्-अचित्-विशिष्ट परमात्मा और 'उम्' का अर्थ है—सूक्ष्म चित्-अचित्-विशिष्ट परमात्मा। स्थूल परमात्मा कार्य है तथा सूक्ष्म परमात्मा कारण है। ये दोनों अभिन्न हैं, यह 'ओम्'-का पर अर्थ है।

अर्थरूप 'ओम्'

अर्थरूप 'ओम्' का प्रतिपादन करते हुए 'आञ्जनेय'-का विश्लेषण इस प्रकार है—

इत्थं यथा वाङ्मयोऽयं प्रपञ्चः शाब्द ओमिति।
तथैवार्थो वाङ्मयोऽयं प्रपञ्चो वाच्य ओमिति॥

अर्थात् जैसे वाचक वाङ्मय प्रपञ्च शाब्द 'ओम्' है, वैसे ही वाच्य अर्थरूप भी 'ओम्' है। दूसरे शब्दोंमें वाचक शब्दरूप 'ओम्' और वाच्य अर्थरूप 'ओम्'—ये दोनों 'ओम्' हैं। दोनोंका रूप भी अभिन्न है। यथा वाचक 'ओम्' इस एक अक्षर-स्फोटमें 'अ उ म्'—ये तीनों वर्ण स्फोटके अन्तर्गत हैं, वैसे ही 'ओम्' शब्दवाच्य अर्थरूप ईश्वर शारीरिक आत्मा आदिमें भी तीन-तीन कलाएँ अन्तर्भूत हैं। यह अर्थरूप 'ओम्' त्रिविक्रम विष्णु-शरीरके जीवात्मा आदि अनेक हैं।

अर्थरूप त्रिविक्रम विष्णुरूप 'ओम्' में 'प्रणव'-की तीन मात्राओंका संनिवेश इस प्रकार है—अ—द्यौः, उ—अन्तरिक्ष, म्—पृथिवी, अर्धमात्रा—विष्णु। सब मिलकर विष्णुरूप 'ॐ' हैं। अर्थरूप 'वेद'रूप 'ओम्' में प्रणवकी तीन कलाओंका संनिवेश इस प्रकार है—अ—ऋग्वेद, उ—यजुर्वेद, म्—सामवेद, अर्धमात्रा—अथर्ववेद। सब मिलकर वेदरूप 'ॐ' है।

अध्यात्ममें शारीरिक जीवात्मारूप 'ओम्' में तीन कलाओंका संनिवेश इस प्रकार है—अ—स्थूल देह, उ—सूक्ष्म देह, म्—कारण मनोमय देह, अर्धमात्रा—जीव। सबको मिलाकर अर्थरूप जीवात्मा 'ॐ' है। अन्तमें महामहिम 'प्रणव', उसके विज्ञान और उपद्रष्टा आञ्जनेय श्रीहनुमान इन तीनोंको पुनः-पुनः प्रणाम और कृतज्ञताके लिये उनकी भाव-मूर्तिका ध्यान इस प्रकार चिन्त्य है—

आञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम्।
पारिजाततरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम्॥

श्रीहनुमानजीसे विनय

एहौ हनुमान मान एतौ जौ बढ़ायौ जग,
राखियै तौ ध्यान आन-बान के निभाए कौ।
कहै 'रतनाकर'-बिसारियै न कानि, बर
बिरद सँभारियै कृपाल के कहाए कौ॥
और की न पौरि पै पठैयै मन ठैयै यहै
आप ही बनैयै सब काज अपनाए कौ।
फेरियै निगाह ना गुनाह हूँ कियै पै लाख,
राखियै उछाह निज बाहँ दै बसाए कौ॥

—महाकवि रत्नाकर

श्रीहनुमानजी और 'ॐ' कार—एक ही तत्त्व

(लेखक—विद्यावाचस्पति पं० श्रीश्रीकण्ठजी शर्मा शास्त्री 'चक्रपाणि')

देवताओंमें परोक्ष-वृत्तिद्वारा ही मानव या कोई साधारण जीव दिव्य एवं सात्त्विक सम्पत्ति प्राप्त कर सकता है। सिद्धान्त है कि '**परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः।**' (बृ० उ० ४।२।२) '**यत्परोक्षप्रियो देवो भगवान् विश्वभावनः।**' (श्रीमद्भागवत ४।२८।६५)

जिस प्रकार निराकार ब्रह्मका वाचक साकाररूपके व्याजसे 'ॐ' कार है, उसी प्रकार श्रीहनुमानजी निज नामकी परोक्षवृत्तिद्वारा ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक '**ॐ**' कारके प्रतीक हैं। सम्भवतः श्रीतुलसीदासजीने इस गूढ़भावको ही हृदयमें रखकर ***'अंजनिपुत्र पवनसुत नामा'***—यह स्तुति-विशेषण कहा हो। पुत्र पिताकी आत्मा है—'**आत्मा वै जायते पुत्रः**' तो पवनसुत पवनसे भिन्न नहीं और पवन प्राण-संज्ञावान् वायुसे अभिन्न है तो '**ॐ**' प्राणसे भिन्न नहीं; क्योंकि प्राणोपासना समफला है।

'**आगाता स वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षर-मुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम्।**' (छा० उ० १।२।१०)

उद्गीथ ॐकार ही है। छा० उ० १। १० के शांकरभाष्यमें—'**न ओंकारस्य कर्माङ्गत्वमात्र-विज्ञानमेव**'……से उपक्रम कर '**प्रकृतस्य उद्गीथस्य उद्गीथाख्यस्याक्षरस्याथ व्याख्यानं भवति**'—तकका पाठ ॐकारकी उद्गीथ-संज्ञामें प्रमाण है।

तान्त्रिक 'वर्णबीजकोश' के सिद्धान्तके अनुसार भी हनुमानजी और ॐकारमें धर्मसाम्यता निम्ननिर्दिष्ट प्रकारेण सुस्पष्ट है—

'ह' आकाशबीज है, जो आञ्जनेय (हनुमानजी)-का नामाक्षर विष्णुतत्त्वका द्योतक है। कोशशास्त्रमें आकाश द्रव्यको '**विष्णुपदम्**' कहा गया है। यथा—'**वियद् विष्णुपदं वा तु पुंस्याकाशविहायसी इत्यमरः।**' इस प्रकार नामका प्रथम अक्षर 'ह' कार विष्णुतत्त्व सिद्ध हुआ, जो ओंकार (अ+उ+म्)-के प्रथम भाग अकारसे गृहीत है—'**अकारो वासुदेवः स्यात्।**'

'नु' यह हनुमानके नामका दूसरा अक्षर है, इसमें जो 'उ' कार है, वह शिवतत्त्वका द्योतक है। 'मेदिनीकोश'-के '**उ सम्बोधनरोषोक्त्योः**'—इस वचनके अनुसार रुद्ररूप शिव ही सिद्ध होते हैं। श्रीमद्भागवत पारमहंस्यसंहितामें तो स्पष्ट ही '**रुद्रः क्रोधसमुद्भवः**' कहकर कार्य-कारणकी अभिन्नताके आधारपर रोषको रुद्र और रुद्रको रोष सिद्ध कर दिया गया है। इस प्रकार नामका द्वितीय अक्षर 'नु' शिवतत्त्व सिद्ध हुआ।

'मान्' नामके तृतीय भागमें जो 'म' एक भाग है, ('**क्वचिदेकदेशोऽपि गृह्यते**') यह बिन्दुनाद-शून्य अनुस्वारका बोधक है।

तन्त्र-ग्रन्थ 'वर्णबीज-प्रकाश-कोश' के अनुसार 'म' कार वर्ण उपस्थका बोधक है। उपस्थ-अङ्गके देवता प्रजापति ब्रह्मा हैं। इसलिये 'म' कारको ब्रह्मा-तत्त्व भी कहा जा सकता है।

इस प्रकार समष्टिशक्तिरूपसे ॐ ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीनों ही आदि कारण-तत्त्वोंका भी प्रतीक है। निष्कर्ष यह हुआ कि 'ह-अ, न्-उ, म-त्-हनुमान-'ओम्' एकतत्त्व सिद्ध हुए।

इस प्रकार हनुमानजीकी उपासना साक्षात् ओंतत्त्वोपासना होनेसे परब्रह्मकी ही उपासना हुई।

जन्म-मृत्यु तथा सांसारिक वासनाओंकी मूलभूत मायाका विनाश ब्रह्मोपासनाके बिना सम्भव नहीं। उस अचिन्त्य अवाच्य ब्रह्मका ही तो स्वरूप ॐकार है। इसीको दर्शनशास्त्रमें प्रणव नामसे कहा गया है—'**तस्य वाचकः प्रणवः।**' '**तज्जपस्तदर्थभावनम्।**' (योगदर्शन १, सूत्र २७-२८)

शिवपुराणके १७वें अध्यायमें प्रणवका निर्वचन करते हुए बताया गया है कि उक्त शब्दमें दो भाग हैं—एक '**प्र**' और दूसरा '**नव**'। '**प्र**' का अर्थ है—कर्मक्षयपूर्वक, '**नव**' का अर्थ है—नूतन ज्ञान देनेवाला। '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' आदि श्रुतिवाक्योंमें ज्ञानको ही तो ब्रह्म कहा है।

अथवा '**प्र**' का भाव है—प्रकृतिसे पैदा होनेवाला संसाररूपी महासागर और '**नव**' का भाव है—भवसागरसे पार लगानेवाली नाव।

तीसरा एक और भी भाव-निर्देश किया गया है—'**प्र**' प्रकर्षण, '**न**' अर्थात् '**वः**' **युस्मान् मोक्षम्—इति प्रणवः**' अर्थात् प्रणव अपने उपासकोंको मोक्षतक पहुँचा देनेवाला है तो श्रीहनुमानजी ही कहाँ कम (न्यून) हैं?

उक्त प्रणवके दो भेद हैं—सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म ओंकार तो एकाक्षरके रूपमें और स्थूल ओंकार '**नमः शिवाय**'—इस पञ्चाक्षर-मन्त्रके रूपमें है। इधर

श्रीहनुमानजीको शिव-अंश सर्वसम्मत माना गया है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी हनुमानजीके स्वरूपमें यह झलक दिखायी है—*सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा। भीम रूप धरि असुर सँहारे।* (भीम-स्थूल) अस्तु।

इसीको दीर्घ और ह्रस्व प्रणवके रूपसे भी निरुक्त किया गया है। दीर्घ प्रणवमें अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, शब्द, काल और कला—ये आठ शाल हैं, जो योगिजनोंद्वारा ही साध्य हैं।

इस प्रणवके अ—शिव, उ—शक्ति, म्—दोनोंकी एकता—ये तीन तत्त्व हैं। यह प्रवृत्तिमार्गसे मुक्त होनेके लिये जीव-साधारणका जाप्य है।

इस प्रकार उक्त रहस्यका प्रतिबिम्ब श्रीहनुमानजीमें स्पष्ट झलकता है, अर्थात् माया (संसार)-की निवृत्ति ब्रह्मज्ञानसे होती है। यह भाव ईशावास्योपनिषद् (१२)-में कितने स्पष्टरूपमें दर्शाया गया है—

'ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳरताः॥'

दूसरी ओर जैसे उक्त सिद्धान्तसे ब्रह्मका वाचक ॐ मायाका संहार करके संसार-बन्धनसे मुक्त करता है, उसी प्रकार श्रीहनुमानजी महाराज (जो ॐकारकी साक्षात् मूर्ति हैं) लंकाराक्षसीरूपिणी मायापर विजय पाकर परमज्ञानस्वरूपिणी ब्रह्मरूपा चिद्रूपाशक्ति श्रीसीताजीको प्राप्त करते हैं और श्रीरामको महान् संकटसे बचाते हैं। इस विवेचनसे यह सिद्ध हो गया कि श्रीहनुमान और 'ओम्' एक ही तत्त्व हैं।

~~~ o ~~~

रामस्नेही संत-मतमें श्रीहनुमान और सिंवरण

(लेखक—सींथल रामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य श्रीभगवद्दासजी महाराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य)

जन हरिया है मुगति कूं नीसरणी निज नाम।
चढ़ि चांपरि सूं सिंवरिये जो चाहे बिसराम॥
हरिसुत हरिप्रिय शिष्यहरि हरिमद-भंजन हार।
हरि कुल भूषण अंश हर सुर अरि करण संहार॥

परमधीर समीरसुत स्वामिधर्मपरायण रघुवीर-भक्त महावीर श्रीहनुमानजीके पावन चरित्रका स्व-स्वमतानुसार सभीने वर्णन किया है, जो वस्तुतः सर्वथा अपार है। कपिवंशावतंस श्रीहनुमानजी अञ्जनीदेवीकी कुक्षिसे अवतीर्ण हुए हैं—

ब्रह्म राम साकार बने जब प्रेम पुरातन चीनौ।
रुद्र होय हनुमंत रूप तब दास भक्ति चित दीनौ॥

भगवान् शिव ही श्रीरामावतारमें श्रीरामजीकी सेवाका लाभ लेनेहेतु हनुमान बने। श्रीहनुमानजी जिस प्रकार नाममें अभिरुचि रखते हैं, उसी प्रकार देवाधिदेव भगवान् शिव भी श्रीरामके अनन्य स्मरणयोगी भक्त हैं। वैसे देखा जाय तो नाम-साधना दोनोंकी एक ही है। आप दोनों इस संत-मतके आचार्य माने जाते हैं; क्योंकि महामन्त्रकी प्राप्ति और उसके स्मरणकी विधि शिवजी और हनुमानजीसे ही इसमें आयी है। जैसा कि गोस्वामीजी लिखते हैं—

राम नाम सिव सुमिरन लागे।
जानेउ सतीं जगतपति जागे॥

(मानस)

इत्यादि—

रामस्नेही-सम्प्रदायके आचार्योंकी इनके प्रति भावना और मान्यता—

'प्रथम गुरु शिव जान, नाम पारबती दीयो।'

(श्रीहरिरामदासजी महाराज)

'प्रथम नाम सदा शिव लीया। पारबतीको निज तत दीया॥'

(श्रीरामदासजी)

सो प्रथम भिन भिन कही जनहीके परसाद।
प्रेम लछ्न ऊमा जनम परा शंभु दामाद॥

(श्रीदयालुदासजी)

इस प्रकार शिवजीको प्रथम तारक-मन्त्रका उपदेष्टा मानते हैं और प्रेमाभक्तिके आचार्य भी। संत-मतमें दासको जो अत्यधिक महत्त्व प्राप्त है, उसका भी एक विशेष रहस्य है। इस दासपनेमें कितना प्रभाव है, इसका वर्णन किसी संतने इस प्रकार किया है—'पवन जिस रावणके यहाँ भयभीत अवस्थामें रहकर झाड़ू लगाता है, वहाँ ही उसका पुत्र रावणके महलोंको निर्भय-निःशङ्क होकर तोड़ रहा है। यह शक्ति हनुमानजीमें दासभाव होनेसे ही प्राप्त हुई है।'—

दासातन सबते बड़ो, समझ र आवे ओट।
पिता बुहारे घर आंगणो, सुत ढहावे नवकोट॥

(अज्ञात)

इसी कारण दीक्षा देते समय 'संत' नामके अन्तमें दास पद लगाकर शिष्य बनाते हैं।
~~~

अब संत-मतमें कुछ संतोंके भाव मूलरूपमें उद्धृत किये जा रहे हैं, जिससे ज्ञात होगा कि वे अपनी दृष्टिमें श्रीहनुमानजी महाराजको किस-किस रूपमें देख रहे हैं।

श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजने अपनी रचनाओंमें इनको एक शूर-वीर योद्धाके समान हुंकार (गर्जन)-से आसुरी सम्पत्तिको नाश करनेवाला और भक्त-रक्षक माना है—

हनुमन्त हुंकार मचती रहै यों सोखिया पकड़ बावन वीरं।

रामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य श्रीरामदासजी महाराज अपनी अनुभूत रचना 'भक्तमाल' में इनको भक्त-सहायक मानते हैं—

तुलसीदास रामका प्यारा। आठों पहर मगन मतवारा॥
× × ×। हनुमान हरि चरणां लाया।

गोस्वामीजीको हनुमानजीकी कृपासे ही श्रीरामजीके दर्शनोंका लाभ हुआ। रामस्नेही संत-मतमें हनुमानजीके विषयमें विशद वर्णन मिलता है—

सेवक धर्म अगम योगिन तें रामदूत बनि राख्यो।
कामिनि कनक दुहुँ दूरी करि लेश न वित्त अभिलाख्यो॥
कञ्चन लंक कलंक समुझि किल दे किलकारि दहायो।
किंकर निज परकीय कामिनी भोगत नहिं मन भायो॥
कपि कुञ्जरहि कवच सिध कीनो जरा सहित तन जंगी।
अमर भयो किं पुरुष अग्रणी वीर महा बजरंगी॥
पवन पिता तें अधिक पराक्रम अविचल द्रोण उठायो।
एक रजनिमें राम लखन हित उदधि लाँघि तट आयो॥
राज्य विभीषण पाय राम तें लंकेश्वर पद लीनौ।
हार अमोल्य रत्नमय हरिको तबहि निवेदन कीनौ॥
सियानाथ वह हार समर्प्यो मारुतिके बिन माँगे।
देखत सबके निज दाँढ़न ते भले रत्न जिन भागे॥
वानर केवल जानि विभीषण असुर करी उपहासी।
फोरि-फोरि मणिगण किम फेंको विगत ज्ञान वनवासी॥
उत्तर दीनो राम उपासक जातुधान कहा जानो।
राम नाम बिन अङ्कित राखस मणि कंकर सम मानो॥
प्रति उत्तर पुनि देत पलाशन काया राखत कैसे।
महावीर तब चीर चर्म निज अवलोकहु कहि ऐसे॥
साढ़ा तीन कोटि तन सबमें रोमावलि अविरेखी।
राम-राम प्रतिरोम कूपमें दिव्य नाम ध्वनि देखी॥
अक्षय के क्षय कारक अद्भुत अक्षय राम अराधै।
तैल सिन्दूर लपेट लंगोटो सकल सम्पदा साधै॥

श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य श्रीहरिरामदासजी महाराज अपने स्मरण-विधानमें सर्व-सिद्धिप्रद पवनरूपको मुख्य मानते हैं; क्योंकि शरीरस्थ वायुके समान रहनेपर ही सभी कार्य सुगमतासे निष्पन्न होते रहते हैं। यदि प्राण, अपान या अन्य वायु कुपित हो जायँ तो साधकको साधना-कालमें ही अनेक व्याधियाँ एवं विघ्न आ घेरते हैं। अतः संत सर्वशरीर-संचारी पवनको ही हनुमान मानकर चलते हैं। पवन चञ्चल, अस्थिर एवं गमनशील है, इसी प्रकार सर्वत्र संचारी हनुमानजी भी चञ्चलत्व-गुणसे युक्त अपनेको स्वीकार करते हैं—

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबही बिधि हीना॥

इसलिये पवनकी चञ्चलता मिटानेके निमित्त श्रीहनुमानजीकी कृपा अत्यावश्यक है। इनकी कृपासे दसों प्रकारके पवनके दोष (सभी वायु-दोष) मिट जाते हैं। चञ्चलता मिट जानेसे चित्तवृत्तियोंका निरोध होता है, जिससे नाम-स्मरणमें मन स्थिर हो जाता है। साधक साधनासे अपनेको अजर-अमर करना चाहता है, वह अमरत्व-शक्ति श्रीहनुमानजीकी कृपासे ही मिल सकती है। यह शक्ति पवनपुत्रको जानकीजीकी कृपाद्वारा प्राप्त है। योगारूढ़ संत भी इसी पवन (प्राण-वायु)-को नाम-जपसे सरल करके अपनेको अमर कर लेते हैं। यह नाम-जप जब रसना, कण्ठ, हृदय और नाभिसे किया जाता है, तब यह क्रमशः अध (अधम), मध (मध्यम), उत्तम एवं अति उत्तम संज्ञाओंमें बदलता रहता है।

प्रथम राम रसना सुमिर दुतीये कंठ लगाय।
तृतीये हिरदे ध्यान धरि, चौथे नाभि मिलाय॥
अध मध उत्तम त्रय घर ठानूँ। चौथे अति उत्तम अस्थानूँ॥
यह चहुँ भिन देखे आसरमा। रामभक्तिको पावे मरमा॥
अध सिंवरनजु ऐसे कहिये। रसना राम राम कूं गहिये॥
मध सिंवरन जो ऐसे भाई। मुख सिंवरन हालत रह जाई॥
उत्तम सिंवरन हृदय अस्थानूँ। माँहो माँहिं भया धर ध्यानूँ॥
अध मध उत्तम सिंवर सुजाना। अति उत्तमके माँहि मिलाना॥
अति उत्तम नाभि अस्थानू। मन संकल्प विकल्प नहिं ठानू॥
अति उत्तम सिंवरन सरबंगा। अक्षर एक भया अण भंगा॥
सिंवरण मार्ग संतका ताते भरम नसाय।
हरिरामा हरि बंदगी करिये चित्त लगाय॥

हरि (हनुमान)-की कृपासे हरि (श्रीराम)-का स्मरण इस विधानसे करनेपर समग्र संसृति-भय नष्ट हो जाते हैं। अति उत्तम स्मरणमें तो केवल रं-रंकारकी ध्वनि सारे शरीरकी रोमावलियोंसे ही अजस्र होने लग

जाती है। जब अपानवायु प्राणवायुसे मिलकर कुम्भकद्वारा निरुद्ध हो जाता है, तब साधकको समाधि लगनेकी अवस्था प्राप्त हो जाती है—

अरधे मिल उरधा पवन निरुधा ध्यान समाधि लगंदा है।

इस प्रकार मनकी गति स्थिर होनेपर पाँचों ही पवन (प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान) वशीभूत हो जाते हैं और साधक ब्रह्मानन्दरूपी अजर प्याला पीने लग जाते हैं—

मनवा थिर पवना पाँचूँ दमना प्याला अजर पीवंदा है।
हरिजन हरि जाणी वेद बखाणी शेष विष्णु ध्यावंदा है॥

ऐसे आनन्दको हरिजन भक्त और हरि (हनुमानजी) ही जानते हैं। वेद-पुराण कहते हैं कि जिसके रहस्यको जाननेके लिये शेष, विष्णु सतत ध्यान करते हैं, ऐसे तत्त्वको प्राप्त करनेके लिये साधकको इन्हीं हरि (हनुमानजी)-की कृपासे सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात समाधि स्वत:सिद्ध हो जाती है। जीभसे स्मरण करते समय जब मिश्री-जैसा आस्वाद रसनाको प्राप्त होने लग जाता है, तब इसको 'अध:' स्मरण कहते हैं। यह रसनाका स्मरण है। जब भँवरके गुञ्जार एवं मधुर वंशीकी तानके समान ध्वनि सुनायी देने लगे, तब कण्ठका स्मरण सिद्ध होता है, इसे 'मध्यम' स्मरण कहते हैं। जब प्राणगति हृदयकमलमें स्थिर हो जाती है, तब धम-धमकारकी ध्वनिका अनुभव होता है, यह 'हृदय' का स्मरण है। इसे ही 'उत्तम' स्मरणके नामसे पुकारते हैं। नाभिमें जाकर जब प्राणगति स्थिर हो जाती है और प्राण-अपानका वहाँ संयोग होनेसे विचित्र प्रकारके नृत्य होने लगते हैं, तब नाभिका 'स्मरण'-सिद्ध होता है और इसे 'अति उत्तम' स्मरण कहते हैं।

मुख्य बात यह है कि 'अति उत्तम' स्मरणमें प्रत्येक रोमकूपसे मायारहित रकारकी ध्वनि अबाधगतिसे निकलती रहती है। प्राण वायु भी कुण्डलिनीका भेदन करता हुआ सहस्रार-चक्रमें पहुँच जाता है, यहाँ दसवें द्वारकी समाधि पूर्ण होती है। यहाँपर जीवका जीवत्व छूट जाता है और वह ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। इसीको 'पराभक्ति' कहते हैं और यही ज्ञानकी चरम सीमा है।

यह अन्तिम अवस्था '**ज्ञानिनामग्रगण्य**' श्रीहनुमानजीकी कृपासे ही प्राप्त हो सकती है।

बिन्दु मकार इन्दुधर शेखर प्रतिदिन अमृत जु पीवै।
जुग अक्षरके जाप जोर तें जगत् प्रलय करि जीवै॥

सुमिरणके प्रतापसे ही श्रीहनुमानजी सात चिरजीवियोंमेंसे एक हैं। इस प्रकार रामस्नेही-सम्प्रदायमें हनुमान एवं सिंवरण (स्मरण)-का अभेद सम्बन्ध माना गया है।

श्रीहनुमानजीकी दृढ़ निष्ठा

फारि निज बच्छस्थल बीर हनुमान कह्यौ,
लीजै लखि मातु! खोलि हृदय बताऊँ मैं,
लखन-समेत सियाराम सुखधाम सदा
आठौं जाम मेरैं उर-धाम धरि ध्याऊँ मैं।
जौपै अजौं काहू कैं प्रतीति नाहिं होइ हियैं,
रोम-रोम फारि राम-नाम दिखराऊँ मैं,
बात ना बनाऊँ, बात साँची करि पाऊँ जौ न
बात का बढ़ाऊँ, बातजात ना कहाऊँ मैं॥

राम

—डॉ० श्रीरणवीरसिंहजी शक्तावत 'रसिक'

नाथ-सिद्ध-सम्प्रदायमें श्रीहनुमान

(लेखक—महंत श्रीअवेद्यनाथजी)

'नाथ-सम्प्रदाय' पर विपुल श्रेष्ठ सामग्री प्राचीन ग्रन्थोंमें बिखरी पड़ी हैं, पर उनका संतोषजनक सूक्ष्म शोध-संग्रह एवं सम्पादन शेष है। उदाहरणार्थ नारदपुराण, उत्तरभाग अध्याय ६९, स्कन्दपुराण, नागरखण्ड, अध्याय २६२, भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व आदिमें श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी एवं श्रीगोरक्षनाथजीके प्रादुर्भावकी बड़ी रोचक कथाएँ वर्णित हैं। इनके साथ ही मत्स्यनाथ, मीननाथ, अवलोकितेश्वर आदि पर्यायवाची नाम भी प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार महर्षि दुर्वासा-विरचित 'ललितास्तव' के श्लोक ५६में हनुमानजीके पिता श्रीवायुदेवताके साथ—

वन्दे तदुत्तरहरित्कोणे वायुं चमूरुवरवाहम्।
कोरकिततत्त्वबोधान् गोरक्षप्रमुखयोगिनोऽपि मुहुः॥

—तत्त्वबोधोत्पन्न योगियोंमें श्रीगोरक्षनाथजीका सर्वप्रथम निर्देश किया गया है। योग-सिद्धियोंसे सम्बद्ध होनेके कारण नवनाथोंका भी श्रीहनुमानजीसे सम्बन्ध रहा है। कई बार संस्पर्धा-सी भी चली है। नाथ-सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें हनुमानजीकी जन्म-कथा इस प्रकार मिलती है—

हनुमानजीकी माताका नाम अञ्जनी था। वे केसरी नामक वानरकी पत्नी थीं। केसरी और अञ्जनीने ऋष्यमूक पर्वतपर जाकर पुत्र-प्राप्तिके लिये शिवजीकी आराधना की।

जब उन्हें कठोर तपस्या करते हुए सात हजार वर्ष व्यतीत हो गये, तब शिवजीने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिये और अञ्जनीसे कहा—'अञ्जने! कल प्रातःकाल तुम सूर्यनारायणके सम्मुख अञ्जलि बाँधकर खड़ी हो जाना, उस समय तुम्हारी अञ्जलिमें जो कुछ गिरे, उसका सेवन कर लेना। उसके प्रभावसे तुम्हें अत्यन्त तेजस्वी तथा अजर-अमर पुत्रकी प्राप्ति होगी।'

यह कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। दूसरे दिन प्रातःकाल अञ्जनी सूर्यनारायणके सम्मुख अञ्जलि बाँधकर खड़ी हो गयी। उसी दिन अयोध्यानगरीमें महाराज दशरथने पुत्रेष्टि-यज्ञ पूरा किया था। यज्ञकी समाप्तिपर अग्निदेवता हवि लेकर प्रकट हुए और उन्हें उस हविके तीन भाग करके तीनों रानियोंको खिला देनेकी आज्ञा प्रदान की। अग्निदेवके आदेशानुसार महाराज दशरथने हविको तीन भागोंमें विभक्त करके एक-एक भाग अपनी तीनों रानियों—(१) कौसल्या, (२) कैकेयी और (३) सुमित्राको दे दिया। रानी कैकेयीने जिस समय हविके भागको हाथमें लिया, उसी समय वहाँ एक चील आ पहुँची और झपट्टा मारकर रानी कैकेयीके हाथमें स्थित हविके भागका कुछ अंश अपनी चोंचमें भरकर आकाशमें उड़ गयी।

ऋष्यमूक पर्वतपर, जहाँ अञ्जनी अञ्जलि बाँधे सूर्यनारायणके सम्मुख खड़ी थी, पूर्वोक्त चील अयोध्यासे चलकर वहीं आ पहुँची और उसकी चोंचसे हविका अंश निकलकर अञ्जनीकी अञ्जलिमें जा गिरा।

अञ्जनीने उसे सूर्यनारायणका दिया हुआ प्रसाद समझकर ग्रहण कर लिया। उसीके फलस्वरूप उनके गर्भसे श्रीराम-भक्त हनुमानजीका जन्म हुआ।

नाथ-सम्प्रदायमें हनुमानजीके जन्मके विषयमें दूसरी कथा इस प्रकार प्रचलित है—अञ्जनी गौतम ऋषिकी पुत्री थी। वह अत्यन्त रूपवती थी। एक बार उसके सौन्दर्यसे आकृष्ट होकर देवराज इन्द्र कपट-वेष धारण करके उसके समीप आ पहुँचे। गौतम ऋषि उस समय घरपर नहीं थे। कुछ ही देर बाद ऋषि आश्रममें आ पहुँचे। इन्द्र उन्हें आया हुआ जानकर भयभीत हो भाग गये।

इन्द्रको अपनी पुत्रीके घरमेंसे बाहर निकलते हुए देखकर गौतम ऋषिको अञ्जनीपर अत्यन्त क्रोध आया। उन्होंने उसे शाप दे दिया कि 'तू जीवनभर कुवाँरी (अविवाहिता) ही बनी रहेगी।'

शाप देनेके बाद जब ऋषिने योग-दृष्टिद्वारा सम्पूर्ण घटनापर विचार किया तो अपनी निर्दोष पुत्रीको शाप दिये जानेके कारण उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। अस्तु, उन्होंने शापका निवारण करनेके उद्देश्यसे कहा—'पुत्री! तेरे गर्भसे एक महाप्रतापी पुत्रका जन्म होगा।' इस प्रकार श्रीहनुमानजीका जन्म हुआ।

बड़े होकर हनुमानजीने अनेकों लीला-चरित्र किये, जिनका वर्णन रामायण तथा अन्य अनेक ग्रन्थोंमें विस्तारपूर्वक किया गया है।

भक्तशिरोमणि श्रीहनुमानजीकी दास्य-रति

भारतवर्षका यह अनुपम सौभाग्य है कि भगवान्‌के मङ्गलमय अनुग्रहसे इस धरापर वसिष्ठ, वाल्मीकि, व्यास, नारद, उद्धव, भरत, शबरी, मीराँ आदि अनेकों ऋषि, संत एवं भक्तजन अनन्तकालसे ज्ञान एवं भक्तिकी पावन गङ्गा बहाते रहे हैं। ऐसी ही महान् विभूतियोंमें भारतीय संस्कृतिके प्राण, भक्तशिरोमणि पवनपुत्र श्रीहनुमानजीका एक विशिष्ट स्थान है। बंदर-जैसी साधारण योनिमें जन्म लेकर अपने अनुकरणीय गुण, आचरण एवं भावोंद्वारा श्रीहनुमानजी महाराजने प्राणिमात्रका जो परम हित किया है एवं कर रहे हैं, उससे भूतलवासी युग-युगान्तरतक उऋण नहीं हो सकते। भगवान् श्रीरामजीके प्रति उनकी जो दास्य-भक्ति है, उसका पूरा वर्णन करनेकी सामर्थ्य किसमें है? फिर भी अपना समय सार्थक बनानेके लिये कुछ चेष्टा की जा रही है। निश्चय ही उसके मनन एवं अनुशीलनसे मनुष्य अपने जीवनके परम लक्ष्य (भगवत्प्राप्ति)-को प्राप्त कर सकता है।

अपने-आपको पूर्णतया भगवान्‌के समर्पित कर देना, उनके मनोभाव, प्रेरणा अथवा आज्ञानुसार प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करना, उन्हें निरन्तर सुख पहुँचाना और बदलेमें कुछ भी न चाहना—यही भक्तिका स्वरूप है। ये सारी बातें साङ्गोपाङ्ग श्रीहनुमानजीके चरित्रमें स्पष्टरूपसे पायी जाती हैं। वे अपने शरीर, मन, बुद्धि, बल, विवेक, भाव, योग्यता, समय आदिको एकमात्र भगवान्‌का समझकर उन्हें अपने इष्टदेव श्रीरामकी सेवामें ही लगाये रहते हैं। वे आत्म-निवेदनद्वारा पूर्णरूपसे भगवत्परायण हैं। **'तत्सुखे सुखित्वम्'** अर्थात् भगवान्‌के ही सुखमें अपनेको सुखी मानने अर्थात् एकमात्र भगवान्‌को सुख पहुँचानेकी भावनासे उनका जीवन ओतप्रोत है।

भगवान्‌को श्रद्धा-प्रेमपूर्वक सुख पहुँचानेकी भावनाको 'रति' कहते हैं। यह मुख्यरूपसे चार प्रकारकी मानी गयी है—१—दास्य-रति, २—सख्य-रति, ३—वात्सल्य-रति और ४—माधुर्य-रति।

दास्य-रति

वैष्णवाचार्योंके मतसे दास्य-रति ही भगवद्भक्तिका प्रारम्भिक सोपान है। इस रतिमें भक्त अपने-आपको सेवक (दास) एवं अपने इष्टको स्वामी मानकर उनकी सेव्य-सेवकभावसे सेवा करता है। सच्चा सेवक वह है, जिसके मनमें अपनी वस्तु, शरीर, मन, बुद्धि आदिपर न तो अपनापन रह जाता है और न सेवा करनेका लेशमात्र अभिमान ही रहता है; क्योंकि वह तो समझता है कि मैं सेव्यकी ही शक्ति एवं प्रेरणासे उन्हींकी सामग्री उन्हें अर्पण कर रहा हूँ।

सेव्यने सेवा स्वीकार कर ली तो वह अपने-आपको कृतकृत्य मानता है। इतना ही नहीं, अपने इष्टदेवके भक्तोंकी भी सेवाका अवसर मिल जानेपर वह अपना अहोभाग्य समझता है। सेवा करनामात्र जिनका लक्ष्य है, जिनका जीवन ही सेवामय है, भगवान्‌के ऐसे अनन्य सेवारसिक भक्तोंको सालोक्य[१], सार्ष्टि[२], सामीप्य[३], सारूप्य[४] और सायुज्य[५] मुक्तियाँ भी दी जायँ तो वे उन्हें ग्रहण नहीं करते—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

(श्रीमद्भा० ३।२९।१३)

ऐसे भक्तोंकी तो बस, एक ही अभिलाषा रहती है कि हम ऐसी कौन-सी सेवा करें, जिससे भगवान्‌को परम सुख मिले।

श्रीहनुमानजी प्रभु श्रीरामके मनोभावोंको समझनेमें इतने दक्ष हैं कि भगवान्‌के मनमें संकल्प उदय होनेके पूर्व ही वे आवश्यक सेवा प्रस्तुत कर देते हैं। लंकामें भगवान्‌के प्रवेश करनेके पूर्व ही उन्होंने उनके ठहरने तथा उनके सैन्य-शिविरके लिये यथोचित सुरक्षित स्थल आदिकी व्यवस्था कर ली। वे अपनी सेवा-पटुताके द्वारा भगवान्‌को सदैव निश्चिन्त बनाये रखते हैं। उदाहरणार्थ—सीताकी खोजके लिये जाते समय उन्हें केवल माँका कुशल-समाचार लानेके लिये ही कहा गया था, लंका-दहनका कोई प्रसङ्ग ही नहीं था, किंतु अशोक-वाटिकामें जब वे त्रिजटाका स्वप्न सुनते हैं—

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥

(मानस ५।१०।३)

—तब इसे भगवान्‌का संकेत एवं प्रेरणा समझकर प्रत्युत्पन्नमति श्रीमारुति लंका-दहनरूप अनुपम सेवा सम्पन्न कर देते हैं।

सख्य-रति

दास्य-रतिके पश्चात् सख्य-रतिका स्तर प्रारम्भ होता

१. भगवान्‌के नित्यधाममें निवास, २. भगवान्‌के समान ऐश्वर्य, ३. भगवान्‌की नित्य समीपता, ४. भगवान्‌का-सा रूप और ५. भगवान्‌के विग्रहमें समा जाना अर्थात् उन्हींमें मिल जाना।

है। जिस रतिमें भक्त और भगवान्‌का परस्पर समताका भाव रहता है, वह सख्य-रति कहलाती है। इसमें भी मुख्यरूपसे भगवान्‌को सुख पहुँचानेका ही भाव रहता है। दास्य-रतिमें दासको यह संकोच बना ही रहता है कि कहीं स्वामी मुझसे अप्रसन्न न हो जायँ या उनके सामने मुझसे कोई भूल न हो जाय, परंतु सख्य-भावमें ये दुर्बलताएँ नहीं रहतीं; क्योंकि इसमें सारा संकोच नष्ट होकर मित्रताका भाव दृढ़ बना रहता है, फिर भूलका प्रश्न ही कहाँ ? यहाँ तो हम दोनों ही बराबरके हैं—ऐसी मान्यता बद्धमूल हो जाती है। अतः भावात्मक भगवत्सांनिध्य दास्य-रतिकी अपेक्षा भी सख्य-रतिमें अधिक प्राप्त होता है।

श्रीवाल्मीकिरामायणके 'विभीषण-शरणागति'-प्रसङ्गमें श्रीहनुमानजीद्वारा एक बुद्धिमान् सखाकी तरह भगवान् श्रीरामको परामर्श देनेका बड़ा ही सजीव वर्णन हुआ है—

श्रीराघवेन्द्र सरकार वानरोंको सम्बोधित करते हुए उनसे पूछते हैं कि 'विभीषणको अपनाना चाहिये या नहीं'—इस विषयपर आपलोग अपनी-अपनी सम्मति प्रकट करें। तब सुग्रीव, अङ्गद, शरभ, मैन्द एवं जाम्बवान् आदिने क्रमशः अपने-अपने विचार रखे। सबके पश्चात्—

अथ संस्कारसम्पन्नो हनूमान् सचिवोत्तमः।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमर्थवन्मधुरं लघु॥
न वादान्नापि संघर्षान्नाधिक्यान्न च कामतः।
वक्ष्यामि वचनं राजन् यथार्थं राम गौरवात्॥

(वा० रा० ६।१७।५०, ५२)

"सचिवोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानजनित संस्कारसे युक्त श्रीहनुमानजी श्रवणमधुर, सार्थक, सुन्दर और संक्षिप्त वचन बोले—महाराज श्रीराम! मैं जो कुछ निवेदन करूँगा, वह वाद-विवाद या तर्क, स्पर्धा, अधिक बुद्धिमत्ताके अभिमान अथवा किसी प्रकारकी कामनासे नहीं कहूँगा। मैं तो कार्यकी गुरुतापर दृष्टि रखकर जो यथार्थ समझूँगा, वही बात कहूँगा।"—और वे कहते हैं कि मेरी समझसे विभीषणको अपना लेना ही उचित जान पड़ता है।

वात्सल्य-रति

इसे सख्य-रतिसे उत्कृष्ट माना गया है। वात्सल्य-भावमें भक्त अपनेको सखाके समकक्ष नहीं मानते, अपितु माता-पिताका शिशुके प्रति जो पालनका भाव होता है, ठीक उसीके अनुरूप वे भगवान्‌की भक्ति करते हैं। नियमतः जहाँ भगवान्‌के प्रति वात्सल्यभाव होता है, वहाँ उनकी सेवाका भाव होना अनिवार्य है। अतः वात्सल्य-रतिमें दास्य एवं सख्यभाव भी गौणरूपसे अन्तर्निविष्ट हैं। इसी कारण भगवान्‌का पैदल चलना हनुमानजीको किसी प्रकार सह्य नहीं है। जब भी भगवान्‌की कहीं जानेकी इच्छा हुई कि तुरंत हनुमानजी उन्हें उसी प्रकार अपने कंधेपर बैठाकर चल पड़ते हैं, जैसे माता-पिता अपने बच्चेको गोदमें लेकर चलते हैं। यह सेवापरक वात्सल्यभावका एक अनूठा उदाहरण है।

माधुर्य-रति

भक्ति-शास्त्रोंमें माधुर्य-रतिको वात्सल्य-रतिसे भी श्रेष्ठ माना गया है। इसे कान्ता-रति भी कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं—१—स्वकीया माधुर्य-रति एवं २—परकीया माधुर्य-रति। पति-पत्नी-भावको स्वकीया माधुर्य-रति कहते हैं। इस रतिमें माता, पिता, भाई, कुल, कुटुम्ब आदि सबको त्यागकर पतिव्रता पत्नी अपने-आपको सर्वभावसे पतिकी सेवामें अर्पण कर देती है। यहाँतक कि वह अपनी जाति और गोत्रका भी परित्याग करके पतिकी ही जाति एवं गोत्रकी बन जाती है। वह सब प्रकारसे पतिकी ही बनकर उनके सुखमें ही सुखी रहती है और तन, मन, धन, बल, बुद्धि, विवेक आदि सब कुछ पतिके ही अर्पण कर देती है एवं स्वयं पति-परायणा होकर दासीकी भाँति सर्वथा पतिकी सेवा करती है; अतः इसमें दास्य-रतिका भी समावेश है। मित्रके सदृश समानताका भाव रखते हुए वह प्रत्येक कार्यमें पतिको उचित परामर्श देती है; इसलिये इसमें सख्य-रतिका भी सम्मिश्रण है। स्वामीको किसी प्रकार किंचिदपि कष्ट न हो, इस भावसे उनका लालन-पालन करना, सर्दी-गरमीमें यथोचित वस्त्रादिसे उनकी सेवा करना, यथासमय उन्हें भोजनादि कराना एवं सभी प्रकारसे उनके सुख-आरामका ध्यान रखना—यह वात्सल्यभाव भी इस रतिमें व्याप्त रहता है एवं कान्ता-रति तो यह स्वयं है ही। इस प्रकार माधुर्य-प्रेम-रसमें पूर्वकथित सभी रतियोंका समावेश है।

'परकीया माधुर्य-रति' को आचार्योंने स्वकीया माधुर्य-रतिसे भी श्रेष्ठ माना है। यही सर्वोपरि रति है। यह स्वपरिणीता पत्नीसे भिन्न परायी नारीसे सम्बन्धित होती है। यद्यपि लोक-व्यवहारकी दृष्टिसे यह भाव अच्छा नहीं है, अपितु अत्यन्त घृणित है; किंतु इस परकीया-रतिसे एक ऐसा भाव लिया गया है, जिससे साधकको आध्यात्मिक जगत्‌के सर्वोपरि स्तरपर पहुँचनेके लिये प्रेरणा प्राप्त होती है। इस (परकीया-भाव)-की उत्कृष्टता

स्त्री-पुरुषके सम्बन्धको लेकर नहीं है, प्रत्युत सुख, सम्बन्ध, मोह-ममता, अनुकूलता, अभिमान आदिको छोड़कर सर्वथा आत्मसमर्पण कर देनेमें है। यद्यपि पतिव्रता पत्नी अपने पतिकी सेवा करती है, तथापि वह निवास-स्थान, वस्त्र, भोजन और बाल-बच्चोंका पालन-पोषण, उनके विवाह एवं संसारमें अपनी वंश-प्रतिष्ठा आदि इच्छाओंकी पूर्तिके लिये अधिकारपूर्वक पतिसे आवश्यक सहयोग चाहती है; परंतु परकीया माधुर्य-रतिमें केवल अपने इष्टको सुख देनेकी ही भावना रहती है। वहाँ मान-बड़ाई, पालन-पोषण, घर-परिवार आदि किसी भी स्वार्थकी इच्छा अर्थात् बाह्य वस्तुकी कामना नहीं रह जाती।

उपर्युक्त विवेचनसे स्वार्थ-त्यागके कारण परकीया माधुर्य-रतिकी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध होती है। यद्यपि इहलौकिक परकीया माधुर्य-रतिमें किसी अंशमें किंचित् निज-सुखेच्छा भी रहती है; किंतु अध्यात्म-जगत्में जहाँ भक्त-भगवान्का सम्बन्ध होता है, वहाँ भक्तमें सांसारिक वासनाकी गन्ध भी नहीं रहती। उसे केवल अपने प्रेमास्पद (भगवान्)-को सुख पहुँचानेकी ही इच्छा रहती है। उसका अपना कोई स्वार्थ तो क्या, मैंपन भी नहीं रह जाता। ऐसे निष्कामभावके फलस्वरूप परकीया माधुर्य-रतिको आचार्योंने सर्वोच्च परा-भक्ति माना है।

पूर्ववर्णित सब रतियोंमें एक-दूसरेको नीचा-ऊँचा माना गया है, किंतु इस विषयमें एक बड़ी रहस्यात्मक बात यह है कि साधक जिस रतिके माध्यमसे भगवद्भक्तिमें संलग्न है, उसमें यदि सर्वथा निष्कामभाव हो जाय तो उसी रतिमें सर्वाङ्गीण परिपूर्णता आ जाती है अर्थात् उस रतिमें किसी अन्य रतिसे किंचिदपि कमी नहीं रह जाती। यद्यपि श्रीहनुमानजीकी भगवान्में है तो दास्य-रति, पर वह परकीया माधुर्य-रतिसे किसी भी अर्थमें कम नहीं है। श्रीहनुमानजी सदा सेवा करनेके लिये आतुर रहते हैं—

'राम काज करिबे को आतुर॥' (हनुमानचालीसा)

हनुमानजी क्षुधातुर (अति भूखा) एवं तृषातुर (अत्यन्त प्यासा)-की तरह सेवाके लिये छटपटाते रहते हैं। परकीयाभावकी श्रेष्ठता इसीलिये है कि उसमें अपना कुछ भी स्वार्थ नहीं रहता, फिर भी आंशिकरूपसे निज-सुखेच्छा तो रहती ही है, साथ ही सुखकी रसानुभूति भी होती है। इस अर्थमें हनुमानजी परकीया माधुर्य-रतिकी पराकाष्ठाको भी अतिक्रमण कर गये हैं। उनमें श्रीरामकी सब प्रकारसे सेवा करने एवं उन्हें सुख पहुँचानेके अतिरिक्त अपने लिये कुछ भी इच्छा नहीं है।

दूसरी बात यह है कि लौकिक परकीया-भावका प्रेम कितना भी उच्चकोटिका क्यों न हो अर्थात् उपपतिसे अपने निर्वाहकी कामना सर्वथा न रहनेपर भी उसे अपने शरीरादिके निर्वाहकी आवश्यकता रहती ही है। इसलिये इस नायिकाको भोजन-वस्त्र एवं अन्य सुख-सुविधाओंकी व्यवस्था अपने प्रेमास्पदसे नहीं, तो अन्यत्र कहीं-न-कहींसे करनी ही पड़ती है। परंतु हनुमानजीने बंदरका शरीर इसीलिये धारण किया कि उन्हें किसीसे कभी भी किंचिन्मात्र आवश्यकता ही न पड़े। न उन्हें कपड़ेकी आवश्यकता है, न भोजनकी, न घरकी और न मान-प्रतिष्ठा-यश आदिकी। बंदर तो जंगलमें फल-फूल-पत्ते आदि खाकर एवं पेड़ोंपर रहकर जीवन-निर्वाह कर लेता है। लौकिक परकीया-भावमें कौटुम्बिक सम्बन्ध तो रहता ही है, परंतु श्रीहनुमानजीका तो एकमात्र भगवान्से ही सम्बन्ध है। इस प्रकार उनकी दास्य-रति अत्यन्त निराली है। वह माधुर्य-रतिसे भी ऊँची हो जाती है।

माधुर्य-रतिको परकीया अवस्था-भेदसे दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है—(१) संयोगावस्थापरक, (२) वियोगावस्थापरक। सभी साहित्यशास्त्रियों तथा दार्शनिकोंने (लोक-व्यवहारमें भी) संयोग-रतिसे वियोग-रतिको श्रेष्ठ एवं सरस माना है। श्रीहनुमानजीमें दोनों रतियाँ बड़े विलक्षणरूपसे विद्यमान हैं। संयोग-रतिमें पत्नी संनिकट रहकर भोजनादिके द्वारा पतिकी सेवा करती है और पतिके प्रवासी हो जानेपर अर्थात् वियोगकालमें उनका स्मरण-चिन्तन करती है। श्रीहनुमानजी संयोगकालमें भगवान् श्रीरामकी सर्वाङ्गीण सेवा करते हैं तथा वियुक्त होनेपर उनके भजन-चिन्तनमें ही डूबे रहते हैं—उनमें नित्य युक्त रहते हैं। इनके चिन्तनमें भी अद्‌भुत विलक्षणता है। पतिव्रता पत्नी तो केवल स्मरण-चिन्तन करके ही रह जाती है; परंतु ये तो—

'प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया।' (हनुमानचालीसा)

—भगवान्के चरित्र और गुणोंके सुनने और कहनेमें इतना रस लेते हैं, जिसकी कोई सीमा नहीं। इन्होंने ऐसा शरीर धारण कर रखा है और भगवान्के साथ सम्बन्ध भी ऐसा जोड़ लिया है कि जहाँ-कहीं, जिस समय भी श्रीरामकथा होती है, वहाँ ये स्वच्छन्द प्रकट हो जाते हैं और कथा-श्रवणमें अनिर्वचनीय माधुर्य-रसकी अनुभूति करते हैं।

हनुमानजीकी वियोग-रुचि भी निराली ही है। लौकिक अथवा पारमार्थिक पुरुष कहीं भी अपने इष्टका

वियोग नहीं चाहते—जैसे पतिव्रता पत्नी पतिका और भक्त भगवान्‌का।

परंतु हनुमानजीकी बात इन सबसे विलक्षण ही है। जब भगवान् स्वधामको पधारने लगे, तब हनुमानजीने यही वरदान माँगा कि 'भगवन् ! मुझे (यहीं) पृथ्वी-लोकमें ही निवास करनेकी आज्ञा देनेकी कृपा करें। जबतक आपकी अनपायिनी परमपावनी कथा इस पृथ्वीपर होती रहेगी, तबतक मैं यहाँ रहकर परम प्रेमसे इसका श्रवण करता रहूँगा।'—

यावद् रामकथा वीर चरिष्यति महीतले।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः॥

(वा० रा० ७।४०।१७)

श्रीहनुमानजीकी दास्य-रति गागरमें सागरके सदृश है, जिससे उनके जीवनका प्रत्येक क्षेत्र प्रभावित है। समुद्रोल्लङ्घन, लंका-दहन, संजीवनी-आनयन, भयंकर राक्षसोंका अवमर्दन आदि सेवामूर्ति श्रीहनुमानजीकी सेवाके ज्वलन्त उदाहरण हैं। सेवामें वे इतने दत्तचित्त और सावधान हैं कि श्रीरामजीके जँभाई लेनेपर चुटकी बजाने-जैसी छोटी-से-छोटी सेवातकमें भी नहीं चूकते। वास्तवमें हनुमानजीका सेवा-चातुर्य अतुलनीय है। वे श्रीरामजीके मानस-अन्तरालमें उठनेवाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावोंको भी जान लेते हैं और तुरंत तदनुरूप सेवा उपस्थित कर देते हैं। कब क्या करना, कैसे करना, किससे कैसा व्यवहार करना आदि-आदि जीवनकी छोटी-से-छोटी घटनासे लेकर बड़ी-से-बड़ी घटना—युद्धतक भी उनकी दास्य-रतिके प्रभाव एवं चमत्कारसे अछूते नहीं हैं। उनके सम्पूर्ण जीवन-यन्त्रमें दास्य-रति विद्युत्‌की तरह काम करती है। प्रेमाभक्तिमें तो वे विप्रलम्भ-परकीया-निष्कामभावकी पराकाष्ठाका भी अतिक्रमण कर जाते हैं। लौकिक जगत्‌में उन्हें सर्वसमर्थ, अष्टसिद्धि एवं नवनिधिका दाता माना गया है।

भक्तशिरोमणि श्रीहनुमानजीके कार्यकलाप, आचार-विचार एवं व्यवहार आदि न केवल हिंदू-जातिके प्रत्युत मानवमात्रके लिये परम कल्याणकारी सीख हैं, जिनके अध्ययनसे प्रत्येक व्यक्ति अपने लौकिक और पारलौकिक जीवनको सफल कर सकता है। इसीलिये मारुतनन्दन भारतवासियोंके लिये ऐसे लोकप्रिय इष्टदेव हैं कि उनके अनुयायी भक्त एवं उनके मन्दिर प्रायः काश्मीरसे कन्याकुमारी और द्वारकासे जगन्नाथपुरीतक भारतवर्षके प्रति ग्राम और नगरमें विद्यमान हैं। नेपाल, मलेशिया, इंडोनेशिया, जापान, जावा आदि विदेशोंमें भी श्रीहनुमानजी अत्यन्त लोकप्रिय हैं एवं वहाँ उनकी विभिन्न रूपोंमें पूजा प्रचलित है।

इस प्रकार भारतमें ही नहीं, अपितु विदेशोंमें भी हनुमानजीके मन्दिर हैं, उनकी मूर्तियाँ हैं और उनके चरित्र भी दिखाये जाते हैं। श्रीहनुमानजीका व्यक्तित्व परमोज्ज्वल, लोकोपकारी एवं अद्भुत है। उनके आचार-विचार, भाव, गुण, चरित्र एवं जीवनकी एक-एक घटना मानवमात्रके लिये निःश्रेयस् और अभ्युदयका द्वार है। उनके जीवनमें अध्यात्म और व्यवहारका मणि-काञ्चन-संयोग है। हनुमानजीका चरित्र कर्म, भक्ति और ज्ञानकी एक ऐसी चलती-फिरती त्रिवेणी है, जिसमें यदि कोई अवगाहन कर ले तो उसका कल्याण निश्चित है।

श्रीहनुमानजीका निष्कामकर्मयोग या दास्य-रति एक ऐसी रहस्यात्मक चाभी है, जो श्रेय और प्रेयके तालोंको बड़ी सुगमतासे खोल देती है। वह इतनी परिपूर्ण, लाभप्रद एवं कल्याणकारी है कि आज भी मानव इस साधनामें परिनिष्ठित होकर शीघ्रातिशीघ्र शान्ति, संतोष एवं परमोत्कर्षको प्राप्त कर सकता है।

—स्वामी रामसुखदास

श्रीरामद्वारा हनुमानजीकी प्रशंसा

साँचो एक नाम हरि लीन्हे सब दुःख हरि और नाम परिहरि नरहरि ठाए हौ।
बानर न होहु तुम मेरे बानरस सम, बलीमुख सूर बली मुख निज गाए हौ॥
साखा मृग नाहीं बुद्धिबलन के साखामृग कैधौं बेद साखामृग केसव कों भाए हौ।
साधु हनुमंत बलवंत जसवंत तुम, गए एक काज को अनेक करि आए हौ॥

—महाकवि केशवदास

श्रीहनुमत्-साधना

(राष्ट्रगुरु श्री १००८ पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराज, श्रीपीताम्बरापीठ, दतिया)

ऋषि, महर्षि, संत एवं भक्तोंने ज्ञान-प्राप्तिके लिये अनेक साधन बताये हैं। सभी साधनोंका लक्ष्य ब्रह्मकी प्राप्ति और अज्ञानकी निवृत्ति है। भारतवर्षमें सर्वत्र व्याप्त हनुमत्-साधना भी उन्हींमेंसे एक है।

श्रीहनुमानजीकी उपासना मुख्यत: तीन प्रकारकी होती है—१. एकमुखी हनुमानकी, २. पञ्चमुखी हनुमानकी और ३. एकादशमुखी हनुमानकी। इनके मन्त्र, स्तोत्र, कवच आदि भिन्न-भिन्न हैं, जिनको योग्य गुरुसे अधिकार प्राप्त करके साधना करनी चाहिये।

साधना-शास्त्रमें जो स्थान परमात्म-तत्त्वका है, वही स्थान गुरु-तत्त्वका है। बहुत-से साधकोंने गुरु-तत्त्वको साधकके लिये परमात्मासे भी अधिक हितकर बताया है। श्रीहनुमानजीको 'रामरहस्योपनिषद्' में गुरुरूपमें स्वीकार किया गया है। सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार एवं शाण्डिल्य, मुद्गल आदि महर्षियोंने श्रीहनुमानजीसे श्रीराम-तत्त्वका ज्ञान प्राप्त किया है, जिसका अनेक प्रकारसे वर्णन प्राप्त होता है तथा श्रीराममन्त्रके अनेक प्रकार इस उपनिषद्में बताये गये हैं। 'रामोत्तरतापनीयोपनिषद्'में माण्डूक्योपनिषद्के सभी मन्त्रोंका तात्पर्य शिवत्वमें बताया गया है और वही श्रीराम-तत्त्व है। दोनोंका अभेद है। इस उपनिषद्में श्रीराम-तत्त्वकी साधना अद्वैत सिद्धान्तके अनुसार मानी गयी है। जिस प्रकार अद्वैत वेदान्तमें **'अहं ब्रह्मास्मि'** महावाक्यका अर्थ किया गया है, उसी प्रकार इस उपनिषद्में **'रामोऽहम्'** महावाक्यका अर्थ किया गया है, जो इस प्रकार है—

सदा रामोऽहमस्मीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये।
न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः॥

वर्तमान समयमें प्रचलित श्रीरामानुजके विशिष्टाद्वैत-सम्प्रदाय और श्रीरामानन्दीय सम्प्रदायमें श्रीरामको परमात्म-रूपमें मान्य किया गया है। उपर्युक्त मतमें भेदसहित अद्वैत है और जीव परमात्माका अंशस्वरूप माना गया है। श्रीहनुमानजीके अवतारस्वरूप मध्वाचार्यने द्वैतवादका प्रतिपादन किया है।

कबीर, दादू, नानक आदि संतोंने भी श्रीराम-नामके द्वारा निराकार-निर्गुण-अद्वैत उपासना की है, जिसका समन्वय भी उक्त प्रकारसे ही है। इस प्रकार यह नाम-साधनाकी व्यापकता है और इसके उपदेष्टा गुरु-तत्त्वके रूपमें श्रीहनुमानजी ही हैं, इसलिये अद्वैत ब्रह्मका बोधक ही हनुमत्-साधना है। श्रीहनुमानजीकी साधनासे लौकिक सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं, जिस (साधना)-का जगत्के उपकारके लिये महात्मालोग उपयोग करते हैं। कहा भी गया है—

अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता। अस बर दीन जानकी माता॥

इसीका अनुसरण करके महात्मा तुलसीदासने रामचरित-मानसकी रचना की। समर्थ गुरु श्रीरामदासजीने भी महाराज शिवाजीको हनुमत्-शक्ति प्रदान कर हिंदू-धर्मकी रक्षा की थी। वैष्णवधर्ममें जो चतुर्व्यूह-तत्त्व माना गया है, उसीके रूपान्तर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न हैं। ऐसे श्रीहनुमत्-स्वरूपका इनके साथ जो अभिन्न योग है, इसका विस्तारसे निरूपण महर्षि वाल्मीकिने अपनी रामायणमें किया है।

यहाँ संक्षिप्तरूपमें श्रीहनुमत्-साधनाका स्वरूप लिखा गया है। परब्रह्मस्वरूप श्रीराम-तत्त्वका बोध श्रीहनुमानजीद्वारा ही होता है। इसीलिये श्रीराम-भक्तोंको भी श्रीहनुमत्-साधना करना अत्यन्त आवश्यक है।*

---

* श्रीहनुमत्-साधनाका विषय इसी अङ्कके ४५९ वें पृष्ठपर देखना चाहिये।

वेदोंमें श्रीहनुमान

(लेखक—मानस-तत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी 'रामायणी')

लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व महाविद्वान् श्रीनीलकण्ठ सूरिने वेदोंके कुछ मन्त्रोंका संकलन 'मन्त्ररामायण'-के रूपमें करके उनपर बहुत सुन्दर भाष्य किया है। उस मन्त्ररामायणमें दो स्थलोंपर संक्षिप्तरूपसे हनुमच्चरित्रका वर्णन है। एक तो लंकाका चरित्र, जिसका विस्तृत वर्णन वेदोपबृंहणरूप वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डमें है और दूसरा अयोध्यामें देवताओं एवं ऋषियों-मुनियोंके समक्ष श्रीरामजीने हनुमानजीकी प्रशंसा की है। उसी वेदवर्णित श्रीहनुमच्चरित्रका संक्षिप्त किंतु सरल हिंदी-अनुवाद यहाँ दिया जाता है।

मूल—

देवास आयन् परशूँर बिभ्रन्
वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन्।
नि सुद्रुवं दधतो वक्षणासु
यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति॥ १॥

(ऋग्वेद मण्ड० १०, सूक्त २८, मन्त्र ८)

संदर्भ—श्रीसीताजीका संदेश श्रीरामजीके लिये लेकर हनुमानजी रावणके परमप्रिय अशोक-वनको उजाड़ने लगे और रखवालोंके रोकनेपर उन्हें मार-पीटकर इतना व्याकुल कर दिया कि जो बचे उनकी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गयी, जिससे उन्होंने समझा कि देवतालोग आकर उपद्रव कर रहे हैं। अतः बचे हुए घायल-रक्षकगण जाकर रावणसे कहने लगे—

अन्वयार्थ—देवासः—बहुत-से देवतालोग, **आयन्**—अशोकवनमें आ गये हैं और वे **परशून् अबिभ्रन्**—हमलोगोंके परशु आदिको छीनकर धारण कर लिये हैं तथा **विड्भिः वना वृश्चन्तः**—हमलोगोंके संतानादि परिवारसहित अशोकवनको एकदम उजाड़ते हुए **अभि आयन्**—इधर-उधर चारों ओर खूब दौड़ते हैं। **नि सुद्रुवं वक्षणासु दधतः**—अत्यन्त शीघ्रगामी अग्नि-जैसे घरोंको जलाते हुए **अनुयत्रा कृपीटम् दहन्ति**—पीछेसे अलग पड़े हुए काष्ठादिको जला डालते हैं। **तद् अनुदहन्ति**—इसी तरह सब देवगण एक-एक पेड़-कुञ्ज आदिको नष्ट करते हैं, तब आस-पासके वृक्ष भी नष्ट हो जाते हैं॥१॥

ऐसा सुनकर रावण विचारने लगा—

मूल—

शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराऽद्रिं लोगेन व्यभेदमारात्।
बृहन्तं चिदृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः॥ २॥

(ऋ० १०।२८।९)

अन्वयार्थ—शशः प्रत्यञ्चं क्षुरम्—तुच्छ पशु शशक जैसे तीक्ष्ण धारवाली असिको **जगार**—निगलनेकी चेष्टा करके अपना ही अन्त करता है अथवा जैसे कोई **आरात् लोगेन अद्रिं व्यभेदम्**—दूरसे मिट्टीका ढेला मारकर पर्वतको चूर्ण करना चाहता हो, वही दशा मेरी है (इससे ज्ञात होता है कि अपने मरणके लिये ही रावणने सीताजीका हरण किया था।) **वयत् वत्सः**—जैसे तुरंतका जन्मा बछड़ा कुछ दिनोंमें ही बढ़कर **वृषभं शूशुवानः**—बहुत बड़ा परिश्रमी बैल बन जाता है, वैसे ही **बृहन्तं चित्**—अत्यन्त महान् एवं निश्चिन्त चैतन्य-तत्त्व आत्माका परित्याग करके **ऋहते रन्धयानि**—तुच्छ शारीरिक सुखके लिये मैं लोगोंको पीड़ा देता हूँ। पीड़ा देते-देते मेरा पाप बहुत बढ़ गया है॥ २॥

मूल—

सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान् गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत्॥ ३॥

(ऋ० १०।२८।१०)

संदर्भ—यद्यपि रावणको ऐसा उपर्युक्त ज्ञानोदय हुआ था, तथापि तमःप्रधान होनेके कारण क्षणभरमें ही उसका वह ज्ञान तिरोहित—लुप्त हो गया। इससे—

अन्वयार्थ—सुपर्णः—आकाशमें पक्षीके समान विचरनेवाले मायावी रावणने **इत्था नखम्**—इस प्रकार अनेक यत्न करके न **खिद्यते छेदनभेदनादिना इति नखम्**—छेदन-भेदन आदिसे कभी भी दुःखी न होनेवाले श्रीहनुमानजीको आसिषाय—बँधवानेके लिये ब्रह्मपाशका प्रयोग करवाया, परंतु श्रीहनुमानजी **अवरुद्धः सिंहः न—इव** ब्रह्मपाशमें घिरे होनेपर भी सिंहके समान—वेदोंमें 'न' अव्यय अधिकतर 'इव'-जैसे अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। **परिपदम्**—चारों ओर घूमते थे और **तर्ष्यावान् महिषः न**—जैसे प्याससे व्याकुल हो भैंसा जलकी ओर ही जाता है और मायिक विषयोंकी ओर ही जानेवाला मन महान् योगियोंके **निरुद्धः चित्**—चित्तवृत्तिके विरुद्ध रोके जानेपर भी रोकनेवाले मनुष्योंको किंवा उनकी

चित्तवृत्तियोंको वह महिष किंवा मन खींच ही ले जाता है। उसी तरह **एतत् तस्मै**—ये राक्षसगण भी उन श्रीहनुमानजीको रोक रखनेमें **अयथं गोधा कर्षत्**—सर्वथा असमर्थ थे तो भी पाशमें बाँधकर खींचने लगे॥ ३॥

मूल—

अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत।
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम्॥ ४॥

(ऋ० १०।५३।७)

संदर्भ—इस प्रकार ब्रह्मपाशमें बँधे होनेपर भी श्रीहनुमानजीने जब उस (ब्रह्मपाश)-की कुछ भी परवा न की, तब उस (ब्रह्मपाश)-का अपमान न हो, इसलिये देवतागण श्रीरामदूतकी प्रार्थना करने लगे—

अन्वयार्थ—सोम्याः[1]—हे भगवद्भक्त परम वैष्णव श्रीहनुमानजी महाराज! **नह्यत अक्ष आनह**—आपको बाँधने आया राक्षस अक्ष स्वयं ही मृत्युपाशमें बँध गया। **रशना इष् कृणुध्वम्**—आप कृपा कर इस ब्रह्मपाश-बन्धनको अभी मान लीजिये। **न उत आपिंशत**—बादमें चाहे इस ब्रह्मपाशको खण्ड-खण्ड कर डालियेगा। **अष्टाबन्धुरम्**—दो हाथ, दो पाँव, दो कंधे और दोनों ऊरु—इस तरह आठ जगह बँधे हुए **रथम्**—अपने रथ[2] शरीरको **अभितो वहत**—इस लंकापुरीमें ले जाइये। **येन देवासः प्रियम्**—जिससे देवतागण अपना अभीष्ट **अभि अनयन्**—प्राप्त करें। अर्थात् आपके लंकामें जानेसे देवताओंको सुख होगा॥ ४॥

मूल—

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्॥ ५॥

(ऋ० १०।८७।१, अथर्व० ८।३।१, तै० सं० १।२।१४।६)

संदर्भ—देवताओंकी प्रार्थनाको श्रीहनुमानजीने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार वे बँधकर लंकामें गये और जब रावणने उनकी पूँछमें आग लगवा दी, तब इस बातको अशोकवाटिका-रक्षिका राक्षसियोंसे सुन और देखकर श्रीसीताजी अग्निदेवसे प्रार्थना करने लगीं—

अन्वयार्थ—रक्षोहणं वाजिनम्—राक्षसोंको मारनेवाले एवं परम वेगवाले श्रीरामदूतको इस दशामें देखकर **आ जिघर्मि**—मैं शोकसे आँसू बहाती हूँ, अतः उन अग्निदेवसे जो **मित्रं प्रथिष्ठम्**—आञ्जनेयके पिता पवनके मित्र तथा परम पवित्र एवं प्रतिष्ठित देवता हैं, उनसे **शर्म उपयामि**—वत्स हनुमानके कल्याणकी कामना करती हूँ। (जब मैं श्रीरामके साथ थी, तब) **शिशानः क्रतुभिः समिद्धः**—पहले जो यज्ञोंद्वारा देदीप्यमान संदीपित किये गये हैं **सः अग्निः नः**—वही अग्निदेव स्वयं मेरे प्रिय वात्सल्यभाजन हनुमानजीकी सदैव **दिवा नक्तम् स रिषः पातु**—दिन-रात हिंसारत सभी कष्टोंसे ही रक्षा करते हैं॥ ५॥

मूल—

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृक्त्व्यपि धत्स्वासन्॥ ६॥

(ऋ० १०।८७।२)

अन्वयार्थ—अयोदंष्ट्रः—हे अग्निदेव! आप लौहमय दंष्ट्रा—दाढ़वाले हैं, आप अपनी **अर्चिषा यातुधानान् उपस्पृश**—प्रज्वलित लपटसे इन राक्षसोंको चाट जाइये। आप **जातवेदः समिद्धः**—भूतकालकी सारी बातें जाननेवाले हैं; अतः हे सर्वज्ञ अग्निदेव! खूब प्रज्वलित होकर **जिह्वया मूरदेवान्**—अपनी महान् प्रज्वलित जिह्वासे देवताओंके मूर अर्थात् अग्रज असुरोंको **आ रभस्व क्रव्यादः**—सब ओरसे चाट जाइये—सर्वथा जला दीजिये। मांसाहारी राक्षसोंको **वृक्त्वी आसन् अपिधत्स्व**—एकत्र करके अपने मुखमें छिपा लीजिये, चबा डालिये॥ ६॥

मूल—

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम्।
यद्वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः॥ ७॥

(ऋ० १०।८७।६, अथर्व० ८।३।५)

अन्वयार्थ—अस्ता जातवेदः इदानीं यत्र—हे अत्यन्त तेज बाण चलानेवाले सर्वज्ञ अग्निदेव! इस समय वे राक्षसगण जहाँ-कहीं भी हों **उत तिष्ठन्तमग्नः वा**—चाहे वे बैठे हों अथवा जल, निद्रामें डूबे या आनन्दमें हों अथवा **यद् वा अन्तरिक्षे चरन्तम्**—आकाशमें विचरते हुए हों अथवा **पथिभिः पतन्तम्**—मार्गमें जाते हों, उन सब राक्षसोंको और **तम्**—उस रावणके घरकी सम्पूर्ण वस्तुओंको और सम्पूर्ण राक्षसोंको **शिशानः शर्वा विध्य**—बाणोंको तेज करते हुए उन्हीं (बाणों)-से उन्हें बींध डालिये॥ ७॥

---

१. यहाँ बहुवचनका प्रयोग गुरुत्व—श्रेष्ठताकी दृष्टिसे है—'एकत्वं च न दातव्यं गुरावात्मनि चेश्वरे।'

२. 'शरीरं रथमित्याहुः' गीता और कठोपनिषद्।

मूल—

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि।
धृषद्वर्णं दिवे दिवे हन्तारं भङ्गुरावताम्॥ ८॥

(ऋ० १०। ८७। २२)

अन्वयार्थ—अग्ने त्वा विप्रम्—हे परम तेजस्विन् अग्निदेव! आपको व्यापक बतलाया गया है। आप **सहस्य पुरं परि**—शत्रुनगरके चारों ओर अपना तेज स्थापित कीजिये अर्थात् सारा नगर घेरकर स्थित हो जाइये, जिससे कोई बाहर न जा सके। **धृषद् वर्णं दिवे दिवे**—जो अन्योंको धर्षित करता है, परंतु स्वयं अधर्षित रहता है, ऐसे अग्ने! नित्यप्रति **भङ्गुरावतां हन्तारम्**—विनाशशील माया करनेवाले राक्षसोंका नाश करनेवाले आपकी **वयं** (आत्मदृष्ट्या—बहुवचन) **धीमहि**—मैं प्रार्थना करती हूँ, आप इन श्रीरामदूत हनुमानकी रक्षा कीजिये॥ ८॥

श्रीसीताकृत अग्नि-प्रार्थनात्मक इन वैदिक मन्त्रोंका भावानुवाद वेदोपबृंहणभूत श्रीवाल्मीकीय रामायण (५। ५३। २७—३०)-में देखना चाहिये—

यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः॥
यदि किंचिदनुक्रोशस्तस्य मय्यस्ति धीमतः।
यदि वा भाग्यशेषो मे शीतो भव हनूमतः॥
यदि मां वृत्तसम्पन्नां तत्समागमलालसाम्।
स विजानाति धर्मात्मा शीतो भव हनूमतः॥
यदि मां तारयेदार्यः सुग्रीवः सत्यसंगरः।
अस्माद् दुःखाम्बुसंरोधाच्छीतो भव हनूमतः॥

मूल—

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित् परिप्रियः॥ ९॥

(ऋ० ९। ७२। १)

संदर्भ—श्रीसीताजीका पता लगाकर श्रीहनुमानजी वानरोंसहित जब श्रीरामजीके पास वापस पहुँचते हैं, तब—

अन्वयार्थ—अरुषः हरिम्—रोषरहित परम शान्तस्वरूप श्रीरामजी हरि—हनुमानजीके ऊपर प्रेमयुक्त **मृजन्ति**—हाथ फेरने लगे। **धेनुभिः न**—जैसे गायसे उत्पन्न पञ्च-गव्ययुक्त **कलशे सोमः सम् अज्यते**—कलशमें सोम-वल्लीका रस अच्छी तरह मिलाया जाता है। उसी तरह आञ्जनेयने श्रीरामजीके प्रेमपूरित हृदय-कलशको **वाचम् युज्यते**—श्रीसीताजीकी प्रेम-संदेश-वाणीसे पूर्ण कर दिया और कहने लगे कि **मती हिन्वते**—जिनकी मति सदैव बढ़ी रहती है, उन श्रीरामजीको जब **पुरुष्टुतस्य**—बहुत बड़ी एवं श्रेष्ठ शब्दोंमें बहुत कालतक स्तुति करनेवाले ब्रह्मा-शिवादिसे **ईरयति वाचम्**—स्तुति की जाती हुई वाणी भी **न परिप्रियः**—प्रसन्न करनेमें समर्थ नहीं होती, **उत् कति चित्**—तब भला मेरी वाणी किस गणनामें है अर्थात् मैं जितनी भी स्तुति कर सकूँगा, वह सब आपकी महिमाके आगे अत्यल्प ही रहेगी॥ ९॥

श्रीहनुमानजीके सम्बन्धमें कुछ प्रश्नोत्तर

(लेखक—शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

अत्यन्त बलशाली, परम पराक्रमी, जितेन्द्रिय, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य तथा भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त श्रीहनुमानजीका जीवन भारतीय जनताके लिये सदासे प्रेरणादायक रहा है। वे वीरताकी साक्षात् प्रतिमा एवं शक्ति तथा बल-पराक्रमकी जीवन्त मूर्ति हैं। देश-देशान्तर-विजयिनी भारतीय मल्ल-विद्याके ये ही परमाराध्य इष्ट हैं। आप कभी अखाड़ोंमें जायँ तो वहाँ आपको किसी दीवालके आलेमें या छोटे-मोटे मन्दिरमें प्रतिष्ठित महावीरकी प्रतिमा अवश्य मिलेगी। उनके चरणोंका स्पर्श और नाम-स्मरण करके ही पहलवान अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं। जब भारत-भूपर यवनोंका शासन जोरोंपर था, उस समय प्रातःस्मरणीय श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने हनुमानचालीसा, हनुमानबाहुक, संकटमोचनादि रचनाओंद्वारा निष्प्राण हिंदू-जातिकी नसोंमें प्राण फूँकते हुए स्वयं भी काशीपुरीमें 'संकटमोचन' हनुमानकी स्थापना की और अपने भक्तोंद्वारा भी स्थान-स्थानपर हनुमत्पूजाका प्रचार कराया। औरंगजेबके शासन-कालमें उन्हींके आदर्शपर छत्रपति शिवाजीने दस-दस कोसकी दूरीपर हनुमान-मन्दिरकी स्थापना कर उन्हीं मारुतनन्दनके नेतृत्वमें वहाँ अखाड़े और दुर्गोंकी स्थापना

की थी। ये ही अखाड़े आगे चलकर हिंदू-धर्म-संरक्षणके गढ़ बने और इन्हींकी सहायतासे भारतसे यवन-साम्राज्यका मूलोच्छेद किया जा सका। आज भी आप दक्षिणमें जाइये तो ग्राम-ग्राममें आपको ग्राम-रक्षकके रूपमें श्रीहनुमानजीकी मूर्तियाँ स्थापित हुई मिलेंगी, जिन्हें 'ग्राम-मारुति' कहा जाता है। आज भी वहाँ हनुमत्पूजाका बड़ा प्रचार है।

वीरतामें हनुमानजीकी कोई तुलना नहीं। यही कारण है कि भारत-सरकार भी सर्वोत्कृष्ट वीरतापूर्ण कार्यके लिये 'महावीर-चक्र' नामक स्वर्ण-पदक ही प्रदान करती है। महाभारत-इतिहासके सर्वोत्कृष्ट योद्धा अर्जुनने अतुल पराक्रमके कारण ही इन्हें अपने रथकी ध्वजापर स्थान दिया था।

हनुमानजी केवल धीर-वीर ही नहीं हैं, अपितु भगवान् श्रीरामके चरणोंको स्पर्श करता हुआ उनका दिव्य रूप उनकी उत्कट स्वामिभक्ति, अनन्य-निष्ठा और प्रशंसनीय विनयका जीता-जागता चित्र है। उन-जैसी अनन्य-भक्ति संसारमें विरले जनोंको ही प्राप्त होती है। यदि मनुष्य पूर्ण श्रद्धा और विश्वासपूर्वक इनका आश्रय ग्रहण कर ले तो फिर तुलसीदासजीकी भाँति उसे श्रीराम-दर्शन होनेमें देर नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजीने—

जो यह पढ़ै हनुमान चलीसा। होय सिद्धि साखी गौरीसा॥

—जैसी प्रबल उक्ति अपने अनुभवके आधारपर ही कही है, केवल तुक मिलानेमात्रके लिये नहीं।

(१) नर या वानर?

हम इन दोनों ही पक्षोंसे पूछना चाहते हैं कि आखिर हनुमानजीके अस्तित्वमें आपके पास क्या प्रमाण है? कहना न होगा कि दोनोंका यही उत्तर हो सकता है—'रामायण'। किंतु जब 'रामायण' के आधारपर ही आप हनुमानजीका होना सिद्ध मानते हैं, तब आप दोनों ही 'अर्धकुक्कुटी' न्यायसे रामायणकी आधी बातको क्यों मानते हैं और आधीको क्यों छोड़ते हैं? पशुप्राय माननेवाले पक्षको श्रीवाल्मीकीय रामायणके उन प्रमाणोंको भी तो समझनेका प्रयत्न करना चाहिये, जिनसे हनुमानजीका व्याकरण-वेत्तृत्व, शुद्ध भाषण-कला-कुशलत्व, बुद्धिमतां-वरिष्ठत्व एवं ज्ञानिनामग्रगण्यत्व सिद्ध होता है। जैसे—जब भगवान् श्रीरामको सर्वप्रथम हनुमानजी मिले तो उनकी बातचीतसे प्रभावित होकर भगवान्ने एकान्तमें लक्ष्मणसे कहा—

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥

(वा० रा० ४।३।२९)

अर्थात् हे लक्ष्मण! मालूम पड़ता है कि इस व्यक्ति (हनुमान)-ने समस्त व्याकरण-शास्त्रका पूर्णरूपसे स्वाध्याय किया है, तभी तो इस लम्बी-चौड़ी बातचीतके दौरानमें इसने एक भी अपशब्द नहीं कहा।

क्या रामायणके इस सुस्पष्ट वर्णनकी विद्यमानतामें रामायणमें आस्था रखनेवाला कोई हनुमद्भक्त उन्हें 'कीकी-कीकी' करके मकानोंकी ईंटें उजाड़नेवाले और कपड़ा-लत्ता उठाकर भागनेवाले पशुप्राय लालमुँहे बंदरोंका किंवा कलमुँहे लंगूरोंका सजातीय माननेको उद्यत हो सकता है? फिर आप रामायणके लेखके सर्वथा विपरीत उन्हें पशु माननेका दुराग्रह क्यों करते हैं।

इसी प्रकार कथित बुद्धिवादी-पक्षसे भी प्रष्टव्य है कि यदि आप रामायणको कोरा कल्पित उपन्यास ही मानते हैं तो फिर हनुमानजीको रामायणके लेखके विरुद्ध कुछ-का-कुछ बना डालनेमें अपना बुद्धि-वैभव क्यों खर्च करते हैं? कल्पित उपन्यासको बुद्धिग्राह्य बनानेसे क्या लाभ होगा? उसे लकीरके फकीर आस्तिकोंके लिये ज्यों-का-त्यों ही रहने दीजिये और यदि हनुमानजीके अस्तित्वको एक ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार करते हैं तो फिर उनके होनेमें जो रामायण प्रमाण है, वही रामायण उनके स्वरूप और चरित्रके चित्रणमें भी एकमात्र साक्षी है, ऐसी दशामें आप मिथ्या कल्पना क्यों करते हैं? वाल्मीकिजीने जहाँ उन्हें विशिष्ट पण्डित, राजनीति-धुरंधर और वीर-शिरोमणि सिद्ध किया है, वहाँ उनको लोमश और पुच्छधारी भी शतशः प्रमाणोंमें व्यक्त किया है। इसलिये ईमानदारीका तकाजा है कि उक्त दोनों वर्णनोंका समन्वय करके हनुमानजीका स्वरूप स्थिर कीजिये, यही न्याय होगा।

(२) गौरव

हनुमज्जयन्तीके दिन श्रीहनुमानजीके पूजन, नाम-संकीर्तन आदिके अतिरिक्त शारीरिक शक्ति-प्रदर्शनके खेलोंका आयोजन होना चाहिये। नगरके बालकों एवं युवकोंकी कुश्तियाँ, दौड़, लाठी, तलवार, गदा आदि खेलोंका सामूहिक आयोजन हो और भारतीय इतिहासके इस अद्वितीय वीरकी उज्जीवनी जीवन-गाथा जनसाधारणको समझायी जानी चाहिये। राष्ट्रकी अकर्मण्यता और भीरुताको मिटाकर जनताको शक्तिशाली बनानेके लिये

देशमें हनुमज्जयन्ती-जैसे उत्सवोंकी परम आवश्यकता है। उनके-जैसा सदाचार, पराक्रम, अनुशासन और ब्रह्मचर्य किसी भी जाति एवं राष्ट्रके लिये स्थायी गौरवका कारण हो सकता है।

(३) क्या 'बाल समय रबि भक्षि लियो'—ठीक है?

हनुमानजीके सम्बन्धमें प्रायः यह प्रश्न भी किया जाता है कि क्या गोस्वामी तुलसीदासजीद्वारा रचित 'संकटमोचनस्तोत्र'के अनुसार श्रीहनुमानजी सूर्यको निगल गये थे? पृथ्वीसे लाखों गुना बड़ा सूर्य किसी प्राणीके मुखमें समा गया था—यह गप्प ही हो सकती है।

उपर्युक्त प्रश्नकर्ता यह बात भूल जाता है कि 'रामायण'के शब्दोंमें श्रीहनुमानजी उन प्रलयंकर शंकरके अवतार थे, जिनके भ्रू-भङ्गमात्रसे यह सारा ब्रह्माण्ड पलक-झपकमें भस्मसात् हो जाता है।

जब 'योगदर्शन' के लेखानुसार मनुष्यकोटिका योगी भी लोकान्तर-गमन, सूर्य-मण्डल-प्रवेश, परकाय-प्रवेश और अपनी देहको यथेष्ट छोटा-बड़ा तथा हलका-भारी बनानेमें समर्थ हो सकता है और सामान्य देव-जाति तो जन्मसे ही उपर्युक्त समस्त सिद्धियोंसे सम्पन्न होती है, फिर प्रलयके अधिष्ठाता शंकरभगवान्की शक्तिकी इयत्ताका माप-तौल लगाना अपनी अज्ञता प्रकट करना ही तो है? इसलिये रामायणके लेखानुसार उनको रुद्रावतार स्वीकार कर लेनेपर यह प्रश्न ही उपस्थित नहीं हो सकता।

जैसे श्रीकृष्णावतारमें भगवान्ने इन्द्रादि सभी देवताओंका मिथ्या स्वातन्त्र्याभिमान नष्ट करनेके लिये गोवर्धन-पूजनादिकी लीलाएँ की थीं, ठीक इसी प्रकार रुद्रावतार श्रीहनुमानजी महाराजने राहुको बलात् हटाकर स्वयं सूर्यके ग्रसनेकी लीला की, इससे सूर्य और राहु दोनोंको ही यह विदित हो गया कि हम सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र नहीं हैं, किंतु हमपर भी श्रीमन्नारायणभगवान्का अंकुश है। वही एकमात्र '**कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम्**' समर्थ प्रभु हैं। अन्य सब उनके दास हैं।

इसी काण्डके समय इन्द्रका वज्र-प्रहार और श्रीहनुमानजीके हनुका विकृत होना, पश्चात् वायुके प्रकोपसे समस्त देवगणके प्राणोंका निरोध हो जानेपर सभीका नतमस्तक होना आदि रामायणमें वर्णित है। इस तरह इस एक ही लीलामें रुद्रावतार श्रीहनुमानजीका सर्वदेवातिशायित्व व्यक्त हो जाता है।

पुराणोंमें श्रीमारुति

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम्० ए०, डी० लिट्०, साहित्याचार्य)

पवननन्दन हनुमानजीका चरित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे इतना अनुस्यूत है कि श्रीराम-चर्चाके प्रसङ्गमें मारुति-चर्चा अनिवार्य है। हनुमानजीके चरितका विस्तार तो वाल्मीकीय रामायण तथा तत्सम्बद्ध इतर रामायणोंमें उपलब्ध होता ही है, परंतु पुराण-साहित्य भी उनके चरितका कुछ ऐसा उल्लेख करता है, जो अन्यत्र अप्राप्य ही है। समग्र पुराणोंके विपुल साहित्यके अन्वेषण और अनुशीलनके बिना श्रीहनुमानजीके पौराणिक आख्यानका यथार्थ परिचय नहीं मिल सकता। इस छोटे-से लेखमें एक-दो पुराणोंके ही प्रसङ्ग उपस्थित किये जाते हैं।

स्कन्दपुराणका पञ्चम खण्ड 'अवन्तीखण्ड' के नामसे प्रख्यात है। इसके ७९वें अध्यायमें हनुमानजीके जन्म और पराक्रमकी कथा वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डमें वर्णित कथाके अनुरूप ही विस्तारसे दी गयी है। यहाँपर भी ऋषियोंके द्वारा प्रदत्त उस शापका संकेत है, जिसके कारण हनुमानजी अपने अतुल पराक्रमको भूल जाया करते थे। यदि ऐसा नहीं होता तो क्या वे वालीके अपराधोंको देखते हुए भी उसे मार नहीं डालते। मुनियोंने श्रीरामजीसे इस प्रसङ्गमें कहा था—

न बले विद्यते तुल्यो न गतौ न मतावपि।
अमोघवाक्यैः शापस्तु दत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा॥
न ज्ञातं हि बलं येन बलिना वालिमर्दने।

(अ० ७९, श्लोक २१-२२)

हनुमानजीके द्वारा अनेक तीर्थोंकी स्थापना और अनेक शिवलिङ्गोंकी प्रतिष्ठाका भी विवरण यहाँ उपलब्ध है, जो सर्वथा नूतन प्रतीत होता है। इस खण्डके ३१वें अध्यायमें उज्जयिनीमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा 'हनुमत्केश्वर'-लिङ्गकी स्थापनाका प्रसङ्ग है। इस नामकरणके विषयमें कहा गया है कि विभीषणके अभिषेकके अनन्तर हनुमानजी लंका गये थे और वहाँसे वे कुबेरद्वारा प्रदत्त और विभीषणद्वारा पूजित छः लिङ्गोंमेंसे एक लिङ्ग अपने साथ लाये थे। इसीकी स्थापना उज्जयिनीमें श्रीरामने की तथा हनुमानजीके नामपर इसे 'हनुमत्केश्वर' नामकी

प्राप्ति हुई। हनुमानजीने स्वयं अपने हाथों ब्रह्महत्याके परिमार्जनार्थ नर्मदाके तटपर 'हनुमन्तेश्वर-लिङ्ग' की स्थापना की थी (अ० ८३)। इतना ही नहीं, उन्होंने नर्मदाके ही तीरपर 'कपितीर्थ' नामक तीर्थकी भी प्रतिष्ठा की थी, जहाँ हम श्रीराम और लक्ष्मणको अयोध्यासे लौटकर दो शिव-लिङ्गोंकी स्थापना करते हुए पाते हैं (अ० ८४)।

स्कन्दपुराणका तृतीय खण्ड 'ब्रह्मखण्ड' के नामसे विश्रुत है। यहाँ 'रामेश्वर-लिङ्ग' की स्थापनाके प्रसङ्गमें हनुमानजीके विपुल पराक्रमकी अपूर्व परिचिति हमें प्राप्त होती है। कहा गया है कि ब्रह्महत्याके मार्जनके लिये श्रीरामने जब रामेश्वरकी प्रतिष्ठाका विचार किया, तब उन्होंने हनुमानजीको कैलाससे शिव-लिङ्ग लानेके लिये भेजा। जब उधर आनेमें विलम्ब हुआ और इधर उपयुक्त मुहूर्त आ पहुँचा, तब अगत्या श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीके द्वारा निर्मित सैकत-लिङ्गकी स्थापना कर दी। कैलाससे शिवजीद्वारा प्रदत्त लिङ्गके लानेपर हनुमानजी यहाँकी घटनासे नितान्त दु:खित हुए और शिवजीकी गौरव-रक्षाके लिये उन्होंने इस कैलासीय लिङ्गकी प्रतिष्ठाको ही उपयुक्त समझा। भगवान् शंकरके इस अपमानसे दु:खित होकर वे 'सैकत-लिङ्ग' के उखाड़नेमें लग गये, परंतु वह टस-से-मस नहीं हुआ। उलटे हनुमानजी गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये। उन्हींके महनीय गुणोंके कीर्तनसे उनकी निद्रा भङ्ग हुई। तब भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे उन्होंने (रामनाथ—रामेश्वरके उत्तरमें) उस विशिष्ट लिङ्गकी स्थापना की, जो उन्हींके नामसे 'हनुमल्लिङ्ग' कहा जाता है—

उत्तरं रामनाथस्य लिङ्गं स्वेनाहृतं पुरा।
आज्ञया रामचन्द्रस्य स्थापयामास वायुजः॥

(ब्रह्मखण्ड ४६।७७)

इसी संदर्भमें श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानजीको विमल ज्ञानका उपदेश दिया, जिसमें मानव-जीवनकी असारताका बड़ा प्रभावशाली, आकर्षक तथा आवर्जक स्वरूप निर्दिष्ट किया गया है। यह वर्णन वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्ड (सर्ग १०५)-के श्रीरामद्वारा भरतके ज्ञानोपदेशसे अर्थत: ही नहीं, प्रत्युत शब्दत: भी साम्य रखता है। इस महनीय प्रसङ्गके दो-तीन श्लोकोंको दृष्टान्तरूपमें देना पर्याप्त होगा। इनमें बड़े ओजस्वी तथा भावपूर्ण शब्दोंमें प्रभावी उदाहरणोंद्वारा जीवनकी नि:सारता चित्रित की गयी है—

अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते।
यात्येव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकार्णवम्॥

अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह।
आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः॥

× × × ×

यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात् कश्चित् पथि स्थितः।
अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति॥
एवं पूर्वैर्गतो मार्गः पैतृपितामहैर्ध्रुवः।
तमापन्नः कथं शोचेद् यस्य नास्ति व्यतिक्रमः॥

(वही १९-२०, २९-३०)

इसी ब्रह्मखण्डके १५वें अध्यायमें दक्षिण समुद्रके मध्यमें गन्धमादन पर्वतपर 'हनुमत्कुण्ड' नामक एक महनीय तीर्थका उल्लेख है, जहाँ 'धर्मसख' नामक राजाने पुत्रीय इष्टिके सम्पादनसे अपनी सौ पत्नियोंसे सौ पुत्रोंको प्राप्त किया था और अन्तमें तप करते हुए स्वर्गलोककी प्राप्ति की थी—

सर्वलोकोपकाराय हनुमान् मारुतात्मजः।
सर्वतीर्थोत्तमं चक्रे स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम्॥

(१५।३)

हनुमानजी कहीं शंकरजीके अंशरूपमें और कहीं साक्षात् शंकरजीके रूपमें वर्णित किये गये हैं। इसके प्रमाणस्वरूप शिवपुराणकी 'शतरुद्रसंहिता' के २०वें अध्यायका अनुशीलन करना चाहिये। वहाँ हनुमानजीकी जन्म-कथाका विशिष्ट उल्लेख है। श्रीरामकार्यकी सिद्धिके लिये शिवजीने स्वयं हनुमानका रूप धारण किया था। दानवोंको मोहमें डालनेके लिये विष्णुने जब मोहिनीरूप धारण किया, तब उस रूपके अलोकसामान्य सौन्दर्यपर शिवजी विक्षुब्ध हो गये। उस अन्त:क्षोभसे स्खलित शिववीर्यको सप्तर्षियोंने कानोंके मार्गसे गौतमकी पुत्री अञ्जनाके गर्भमें संक्रान्त कर दिया और इस गर्भसे हनुमानजीका जन्म हुआ। इस प्रकार हनुमानजी शिवजीके वीर्योत्पन्न पुत्र हैं। हनुमानजीके 'संकरसुवन' होनेकी प्रसिद्धि केवल भारतवर्षतक ही सीमित नहीं है, प्रत्युत वह बृहत्तर भारतके 'मलय एशिया' देशमें भी फैली है। इसका पूर्ण विवरण वहाँके प्रचलित रामायणमें उपलब्ध होता है। सूर्यको फल मानकर खाना, सूर्यसे सब विद्याएँ सीखना और सूर्यके आदेशपर सुग्रीवकी सेवामें उपस्थित होना—ये समग्र घटनाएँ 'शतरुद्रसंहिता'-के २०वें अध्यायमें विस्तारसे वर्णित हैं।

'बृहद्धर्मपुराण' में वर्णित रामायण-कथा देवी-तन्त्रके द्वारा पूर्णतया प्रभावित हुआ है। इसके १८वें अध्यायमें वर्णन मिलता है कि शिव-पार्वती रावणकी रक्षाके लिये लंकामें निवास करते थे। उनके पास देवगण रावणके

अत्याचारकी कथा सुनानेके लिये गये। तब सीताके अपमानसे क्षुब्ध होकर पार्वतीने लंका छोड़नेकी बात कही। श्रीराम-काजकी सिद्धिके लिये शिवजीने हनुमान बनना स्वीकार किया एवं ब्रह्माने जाम्बवान् तथा धर्मने विभीषणका रूप धारण किया। इस पुराणके २०वें अध्यायमें हनुमानजीके शिवरूप होनेका प्रमाण प्रस्तुत किया गया है। अशोक-वाटिकामें जब हनुमानजीने चण्डिका-मन्दिरको देखा, तब अपनेको शिवजीका रूप बतलाकर देवीसे लंका छोड़नेके लिये आग्रह किया। हनुमानजी (शिव)-ने अपने विश्वरूपका दर्शन कराया, जिसमें देवीने रावणकी सेनाको संकटमें और श्रीरामकी सेनाको सफलरूपमें देखा। इस प्रकार पौराणिक साक्ष्यपर हनुमानजी शिवजीके साक्षात् अवतार सिद्ध होते हैं। यह 'बृहद्धर्मपुराण' उपपुराणोंके अन्तर्गत माना जाता है। (द्रष्टव्य कलकत्ताके बिब्लिओथिका इंडिकामें प्रकाशित १८९७का संस्करण) यह अनेक तथ्योंके लिये 'महाभागवत'का पूर्णतया अनुसरण करता है (तुलनीय गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई १९१३का संस्करण)। ये दोनों ही ग्रन्थ रामायणके ऊपर देवीके प्रभावके द्योतक हैं।

पुराणोंमें हनुमानजीके विशाल पराक्रमका विशिष्ट विवरण उपलब्ध होता है। 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में हनुमानजीने अपने पराक्रमके विषयमें स्वयं गर्जना की है—

मर्कटीडिम्भतुल्यां च लङ्कां पश्यामि सुव्रते॥
मूत्रतुल्यं समुद्रं च शरावमिति भूतलम्।
पिपीलिकासंघमिव ससैन्यं रावणं तथा॥

(६२।७५-७६)

'मैं इस विशाल लंकाको वानरीके बच्चेके समान छोटा समझता हूँ। समुद्रको मूत्रके समान, समग्र पृथ्वीतलको छोटे मृत्पात्र (पुरवा)-के सदृश तथा असंख्य सैन्योंसे युक्त रावणको चींटियोंके झुंडके तुल्य मानता हूँ।' हनुमानका यह तथ्य-कथन साहित्यिक सौन्दर्यसे मण्डित है।

'स्कन्दपुराण' का अवन्तीखण्ड कहता है कि हनुमानजीसे बढ़कर जगत्‌में कोई भी प्राणी नहीं है। किसी भी दृष्टिसे—चाहे पराक्रम, उत्साह, मति और प्रतापको देखें, चाहे सुशीलता, माधुर्य तथा नीतिको परखें, चाहे गाम्भीर्य, चातुर्य, सुवीर्य और धैर्यपर दृष्टि डालें, हनुमानजीके सदृश इस विशाल ब्रह्माण्डमें कोई प्राणी है ही नहीं। विक्षुब्ध महासागर, सम्पूर्ण लोकोंको दग्ध कर डालनेके लिये उद्यत हुए संवर्तक अग्नि तथा प्रजाओंका संहार करनेके लिये उठे हुए कालके समान प्रभावशाली इन हनुमानजीके सामने कौन ठहर सकेगा।

पराक्रमोत्साहमतिप्रतापैः
सौशील्यमाधुर्यनयादिकैश्च ।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-
र्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके॥
ममेव विक्षोभितसागरस्य
लोकान् दिधक्षोरिव पावकस्य।
प्रजां जिहीर्षोरिव चान्तकस्य
हनूमतः स्थास्यति कः पुरस्तात्॥*

(७९। ४२-४३)

भारतीय संस्कृति मारुतनन्दन आञ्जनेय हनुमानजीसे अधिक पराक्रमी व्यक्तिकी कल्पना ही नहीं कर सकती। इसीलिये ही तो बजरंग (वज्राङ्ग)-बली हनुमानजीका स्मरण कर भारतीय योद्धा संग्रामके मैदानमें कूदता है और विजयलक्ष्मीका आलिङ्गन करता है।

~~~o~~~

सेवा और आत्मसमर्पणके प्रतीक श्रीहनुमान

(लेखक—आचार्य पं० श्रीहजारीप्रसादजी द्विवेदी)

श्रीहनुमानजीका चरित्र सेवा और आत्मसमर्पणका प्रत्यक्ष रूप है। वाल्मीकिरामायणके अनुशीलनसे जान पड़ता है कि हनुमानजी शास्त्र-मर्मज्ञ और अपूर्व विद्वान् थे। रावणके साथ उनकी वार्ता उनके पाण्डित्य और नीतिशास्त्रके ज्ञानकी परिचायिका है। तुलसीदासजीने उन्हें **'विमल गुणबुद्धि-वारिधि, विधाता'** कहा है। इस प्रकार विद्या और बुद्धिके निधान होते हुए भी उन्होंने सर्वात्मना श्रीरामकी सेवामें अपनेको अर्पित कर दिया। उनके अपूर्व शौर्य और अगाध बाहुबलसे बड़े-से-बड़े वीर काँप उठते थे, परंतु यह बल केवल उन दुष्ट शक्तियोंके विनाशके लिये प्रयुक्त हुआ, जो अत्याचार और शोषणमें लिप्त थीं। वे सदा धर्मपरायण और असहाय लोगोंके रक्षक रहे। अखण्ड ब्रह्मचर्यके वे प्रतीक ही बन गये हैं। इतने बड़े विद्वान् और बलवान्

* ये श्लोक कुछ उलट-फेरके साथ वाल्मीकीय रामायण (७। ३६। ४४, ४८)-में भी आये हैं।
~~~

होनेपर भी वे सदा निरीह भक्तके रूपमें ही कर्म करते रहे। अपनी विद्वत्ता और बाहुबलके विषयमें तो वे स्वयं ही अनभिज्ञ बने रहते थे। जाम्बवान्‌जीको उनकी शक्तिकी याद दिलानी पड़ी थी।

भारतीय समाजने हनुमानजीकी पूजा सदा धर्म-रक्षक और असुर-निकन्दनके रूपमें की है। वस्तुतः उनका अवतार ही 'रामकाज' के लिये हुआ था। जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्मका उत्थान होता है, तब-तब साधुओंकी रक्षाके लिये और दुर्वृत्तोंका विनाश करनेके लिये भगवान् इस भूतलपर अवतार धारण करते हैं, यही 'रामकाज' है और इसी कार्यमें पूर्ण सहायक होनेके कारण हनुमानजी सदा पूज्य बने रहे हैं।

वे अखण्ड शक्तिके स्रोत हैं, अशरण-शरण हैं, दीनजनके सहाय हैं और दुर्वृत्त लोगोंके काल हैं। तुलसीदासजीने उन्हें '**अघट-घटना-सुघट**' और '**सुघट-विघटन-विकट**' कहकर उनकी अपरिमेय शक्तिका वर्णन किया है। उनका जीवन समर्पित भक्तका जीवन था। ऐसा कहीं दीखता नहीं कि उनका भी कोई व्यक्तिगत सुख-दुःख था। भगवान्‌का अनन्य भक्त कौन होता है—यह स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानजीको बताया है—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥
(मानस ४।३)

चराचरमें जो कुछ भी रूप दिखायी दे रहा है, वह भगवान्‌का है और उसकी निरन्तर सेवा भक्तका रूप है। हनुमानजीसे बड़ा दूसरा भक्त कोई नहीं है। भगवत्-सेवाका अर्थ है—समस्त विश्वमें व्याप्त भगवान्‌की सेवा करना। इसीलिये साधुलोग प्रायः दूसरोंके दुःखसे दुःखी होते हैं, निःसहायके कष्टसे व्याकुल होते हैं और समस्त चराचरके दुःखसे विचलित होते हैं। भगवान् अखिलात्मा हैं अर्थात् जो कुछ है, सब उन्हींका रूप है—

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः॥
(श्रीमद्भागवत ८।७।४४)

अर्थात् समस्त जगत्‌के दुःखसे दुःखी होना अखिलात्मा पुरुषकी परम आराधना है।

हनुमानजी भगवान्‌के एकनिष्ठ उपासक हैं, इसीलिये समस्त जगत्‌के कष्टको दूर करनेके लिये सदा उद्यत रहते हैं। भारतीय साहित्य और साधनामें ऐसे परोपकारी एकनिष्ठ भगवत्-सेवकका चरित्र दुर्लभ ही है।

जनदेवता श्रीहनुमान

(लेखक—पं० श्रीकरुणापतिजी त्रिपाठी, उपकुलपति वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी)

हनुमानजीकी पूजा कबसे आरम्भ हुई—यह कहना कठिन है। परंतु इतना निर्भ्रान्तरूपसे कहा जा सकता है कि वाल्मीकिरामायणमें प्रत्यक्ष और व्यापकरूपसे हनुमानजीका विस्तृत चरिताङ्कन उपलब्ध है। वहाँ जो उनका स्वरूप काव्यायित हुआ है, वह कहाँतक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक है और कहाँतक काव्यात्मक एवं काव्यालंकारात्मक है—यह एक भिन्न प्रश्न है। पर श्रीराम-कथापरक काव्योंमें उनका चरित अत्यन्त उदात्त, उज्ज्वल, आदर्श और अनुकरणीय है। उनके अनेक रूप हैं। वे श्रीराम, जानकीजी और लक्ष्मणके ही सेवक नहीं हैं, अपितु भरत-शत्रुघ्नके भी सेवक हैं। वे भक्त हैं और धीर, वीर, बुद्धिमानोंमें अग्रणी तथा सभाचतुर हैं। लंका-दहनके समान अत्यन्त कठिन कार्यको भी वे अनायास करनेवाले हैं तथा शतयोजन-विस्तीर्ण सागरको पार करते हुए असाध्य कर्मको करनेमें समर्थ हैं।

श्रीहनुमानसे सम्बद्ध वाङ्मय

आदिकाव्य वाल्मीकिरामायणमें हनुमानजीका काव्यात्मक चरित व्यापकरूपसे अङ्कित हुआ है। उसका आरम्भ किष्किन्धाकाण्डसे होता है। सुन्दरकाण्डमें उसका अत्यन्त विस्तार है। लंकाकाण्डमें भी उसका प्रसार है। अन्ततक वह फैला हुआ है। उसके अनन्तर संस्कृतके श्रीरामकाव्यों, नाना रामायणों, पुराणों (जहाँ श्रीरामचरित वर्णित है) एवं नाटकोंमें उसका वर्णन मिलता है। प्राकृत-अपभ्रंश-काव्यों एवं भारतीय आधुनिक भाषाओंके साहित्यमें भी हनुमानजीका स्वरूप चित्रित हुआ है। इसके अतिरिक्त उपासना-साहित्य, स्तोत्र-साहित्य एवं तान्त्रिक वाङ्मयमें भी हनुमानजीकी पूजा, उपासना तथा तान्त्रिक साधना प्रचुर मात्रामें उपलब्ध है।*

* वाल्मीकिकृत रामायणके अतिरिक्त आदिरामायण, अध्यात्मरामायण, भुशुण्डिरामायण, आनन्दरामायण, चम्पूरामायण, महाभारत,

हनुमानजी केवल श्रीरामोपासकोंके ही देवता नहीं हैं, वे निगमागम पौराणिक और तान्त्रिक देव भी हैं। (जिसमें दक्षिणमार्गीय तन्त्रोपासना और वाममार्गीय तान्त्रिक देवता भी हैं।) साथ-ही-साथ लोकदेवता या जनदेवता भी हैं। जनदेवतासे मेरा तात्पर्य है उन देवताओंसे, जो वैदिक-पौराणिक-तान्त्रिक पूजा-उपासनाके साथ-साथ या उससे बाहर भी लोकमें 'बीर' ग्रामदेवता या लोकपरम्पराके देवतारूपमें पूजित होते हैं। झाड़-फूँक, अभिचार आदिमें उनका पूजन-वन्दन होता है। इनके मन्त्र-तन्त्रको जगाया जाता है और उनके द्वारा असामान्य सिद्धि एवं फलकी प्राप्ति बतायी जाती है। मुझे तो ऐसा लगता है, जैसे वाराणसीमें मोजूबीर, लहुराबीर, कंकड़हवाबीर आदि 'बीर' हैं या उत्तर भारतके बहुत बड़े भागमें मान्यताप्राप्त 'जागते' देवता और सिद्धिकर्त्ता बीर या अन्य अपदेव हैं, उसी प्रकार हनुमानजीका एक रूप 'बीरोंका बीर' अर्थात् 'महाबीर' है। यह एक जनविश्वास है कि उनके नामोच्चारणमात्रको सुनते ही भूत-पिशाच, प्रेत, यक्ष आदि जनपीड़क अपदेवता दूर भाग जाते हैं। बचपनमें जब किसी एकान्त-निर्जन रात्रिमें भूत-प्रेतादिका डर लगता था, तब हमलोग 'जै हनुमान', 'जै महावीर'-का जप करके भयमुक्त हो जाते थे।

जनदेवताकी उपासनामें कोई सामाजिक बन्धन नहीं है। सब लोग सब कालमें सभी जगह लोकदेवताका जप-पूजन कर सकते हैं। यह रूप भी लोकको तान्त्रिक या लोकागमिक लोकोपासनाका है। हनुमानजी इस रूपमें भी पूजित-वन्दित और अत्यन्त 'जागता' अर्थात् मान्यताके अनुसार अवश्य सद्यःफलद देवता हैं। यदि कोई शोधार्थी हनुमानजीपर शोध करे तो इस पक्षपर भी पर्याप्त गवेषणाका अवकाश है।

जनदेवताके रूपमें हनुमान-पूजाका एक और रूप भी है, जो अत्यन्त रोचक है। उत्तर भारतके बहुत बड़े भागमें, प्राय: गाँव-गाँव एवं नगरके मुहल्ले-मुहल्लेमें हनुमानजीके मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंमें भक्तलोग प्रेमपूर्वक पूजा-अर्चना करते हैं। स्त्रियाँ अवश्य बहुत-से स्थानोंपर हनुमानजीकी मूर्तियोंका स्पर्श इसलिये नहीं करतीं कि वे बालब्रह्मचारी हैं। घोर जंगलोंमें भी हनुमानजीके मन्दिर मिलते हैं। इन मन्दिरोंका एक बहुत बड़ा सामाजिक महत्त्व भी है। गाँवों और नगरोंके अनेक हनुमान-मन्दिरोंके साथ-साथ व्यायामशालाएँ और अखाड़े हैं जहाँ आस-पासके युवक और उत्साही जन एकत्र होकर व्यायाम तथा कुश्ती लड़नेका अभ्यास करते हैं।

तुलसीदासजीका योगदान

सम्भवत: वीर-कर्मके उपयुक्त वीरत्व-सम्पादनमें रामचरितमानसकार तुलसीदासजीका भी बहुत बड़ा योगदान है। हनुमान-मन्दिर और अखाड़ा—दोनोंका समन्वय कब और कैसे प्रचलित हुआ—यह कहना कठिन है, पर चित्रकूट, अयोध्या और वाराणसीकी किंवदन्तियोंके अनुसार गोस्वामीजीद्वारा स्थापित अनेक हनुमान-मन्दिरोंके साथ व्यायामशालाएँ भी हैं। धीरे-धीरे इनमें कहीं-कहीं ह्रास भी हो रहा है। काशीके हनुमानघाटपर एक हनुमान-मन्दिर है। कहा जाता है कि गोस्वामीजीने काशीमें आठ प्रमुख हनुमान-मन्दिरोंकी स्थापना की थी। उन्हींमें संकटमोचन, हनुमान-फाटक और हनुमानघाटके हनुमानजी भी हैं। हनुमानघाटके हनुमानजी बहुधा 'बड़े हनुमानजी' कहे जाते हैं। अस्सीके तुलसीघाटसे लगभग एक किलोमीटरकी दूरीपर यह मन्दिर है और इसके साथ कभी बहुत बड़ी व्यायामशाला (अखाड़ा) भी थी। आज भी छोटे पैमानेपर वह वर्तमान है। गोसाईंजीके द्वारा स्थापित अन्य अनेक मन्दिरोंके साथ भी व्यायामस्थल हैं।

आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्लकी यह कल्पना उचित ही थी कि सम्भवत: गोस्वामीजीने लोकरक्षक, आदर्श पुरुष भगवान्‌के मर्यादापुरुषोत्तमरूपको अवतारी मानकर समाजके पुनरुत्थानका कार्य किया। गोस्वामीजीद्वारा कृत यह कार्य जहाँतक एक ओर वैष्णवोपासनामें रामानुज-रामानन्द और औपनिषदिक दर्शनदृष्टिका लोकसुधारक समन्वितरूप है, वहीं दूसरी ओर युगबोध और युगीन-संकटबोधसे प्रेरित जनजीवनमें सामाजिक सांस्कृतिक क्रान्तिका भी प्रयास है। गोस्वामीजीका श्रीराम-दर्शन समाज-चेतनासे अनुप्राणित है। श्रीराम-कथा, श्रीराम-चरित और श्रीराम-भक्तिके माध्यमसे

श्रीमद्भागवत, पद्मपुराण, नृसिंहपुराण, ब्रह्माण्डपुराण (हनुमत्सहस्रनाम, हनुमत्कवच आदि), लिङ्गपुराण, भविष्योत्तरपुराण (हनुमद्व्रतकथा) आदिमें श्रीराम तथा हनुमान-विषयक सामग्रियाँ मिलती हैं। तन्त्र-मन्त्र साहित्यमें भी हनुमदुपासना-साधनाकी बातें मिलती हैं। गारुड़ीतन्त्र, मन्त्रमहार्णव, मन्त्रमहोदधि, सुदर्शनसंहिता, अगस्तिसंहिता आदिमें हनुमानजीकी मन्त्रतन्त्रोपासनाका वाङ्मय उपलब्ध है। 'वृहज्ज्योतिषार्णव' में तो 'हनुमदुपासनाध्याय' ही है। हनुमदुपनिषद् भी मिलती है। प्राकृत-अपभ्रंश और लोकभाषाओंके श्रीरामकाव्यों एवं ग्रन्थोंमें भी स्तुति, आरती, वन्दना मिलती हैं। केवल तुलसी-साहित्यमें ही हनुमानजीसे सम्बद्ध प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है।

गोस्वामीजीने स्वान्त:सुखकी साधना भी की और लोकहित एवं समाजसेवाका भी कार्य किया।

श्रीरामकी आदर्श पूजा और आदर्श प्रतिष्ठातक गोस्वामीजीको पहुँचानेवाले साधनोंमें हनुमानजीका स्थान अत्यन्त महत्त्वका है। किंवदन्तीके अनुसार श्रीरामरूपका प्रत्यक्ष दर्शन करानेवाले साधनके रूपमें हनुमानजीकी सहायता सर्वोपरि थी। अत: तुलसीदासजीने लोकहितके लिये जनदेवता हनुमानजीकी पूजा, मन्दिर-स्थापना और साथ-साथ व्यायामशालाओंका कार्यक्रम जोड़कर संसारमें एक नयी चेतना उत्पन्न की।

जनदेवता

हनुमानजीसे बढ़कर जनदेवता कौन हो सकता है। इनका जीवन श्रीरामके लिये प्रत्यक्षत: और ऋषि-मुनियों तथा रावण-खरदूषण-त्रस्त समाजकी सेवाके निमित्त परोक्षत: समर्पित था। उनके समग्र जीवनमें कहीं भी कोई स्वार्थ नहीं है। वे काम और लोभ, अभिमान तथा दर्पपर विजय प्राप्त कर चुके थे। शत्रुसंहारके समय रौद्ररसके अवसरपर उनमें क्रोध अवश्य झलक जाता है, पर वह वस्तुत: वीररससम्बद्ध उत्साहका संचारीभाव है।

स्वामिसेवा और समाजसेवाके लिये जैसा आदर्श समर्पितजीवन हनुमानजीका है, वैसा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। वीरता और कर्तव्यनिष्ठामें उनका स्थान अतुलनीय है। जिस प्रकारके असाध्य और अवर्णनीय कर्मोंका उन्होंने सम्पादन किया, वे अवर्णनीय हैं। फिर भी वे निरभिमान ही रहे—यह उनका सबसे बड़ा गुण है।

वे समझते, जानते और मानते थे कि भगवान्‌की कृपाका ही सब परिणाम था, जो वे असाध्य-सम्पादनसमर्थ हुए। वे उन सबमें अपनी प्रभुता नहीं समझते थे।

यहाँ तथ्य इतना ही है कि हनुमानजीमें अभिमान, स्वार्थ, काम और लोभ—इन सबका लव-लेश भी नहीं है। वे जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी, नि:स्वार्थ, निष्काम, निर्लोभ और निरभिमान हैं। वे परम भक्त, श्रीरामके अनन्य सेवक, प्रत्युत्पन्नमति और परोपकारकर्ता हैं। वे सभी कष्टों एवं दु:खोंसे छुटकारा दिलानेवाले हैं। वे संकटमोचन, संकटहरण, शत्रुपर विजय एवं रोगोंसे छुटकारा दिलानेवाले और लोगोंमें बल, विद्या, बुद्धि, यश तथा शक्तिको बढ़ानेवाले हैं।

वे अपनी इन्हीं महिमाओं तथा कृपालुता एवं आशुतोषताके कारण जनदेवता बन गये। उनकी तान्त्रिक उपासना जहाँ अत्यन्त कठिन है, वहीं संकटमोचन हनुमानाष्टक और हनुमानचालीसाका पाठ सर्वसिद्धिदायक कहा जाता है। हनुमानजीकी यह लोकप्रचलित उपासना सरल एवं सर्वजनसुलभ है। इसीसे समग्र भारतमें उनकी पूजा-उपासनाका इतना प्रचार-प्रसार है। निश्चय ही वे हिंदू जनताके जनदेवता हैं। चिरकालतक हिंदू-समाजके कल्याणविधानमें हनुमानजीकी अनुकम्पा हमारा अभ्युदय करती रहेगी।

~~ o ~~

संकट-हरण श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

कुछ दिन पूर्व वाराणसीमें एक साधु-स्वभावके सरल तथा निश्छल व्यक्ति रहते थे, जो सिख होते हुए भी पुराने ढंगके थे। वे वकालत करते थे। उन महापुरुषका नाम था—सरदार रामनारायणसिंह। वे कितने सिद्ध पुरुष थे, इसका अनुमान इसीसे लग सकता है कि उनके एकमात्र पुत्रको, जो इस समय स्वस्थ, प्रसन्न और पुत्रवान् है—क्षयका भयंकर रोग हो गया। उसके बचनेकी कोई आशा न रही। मैं भी बहुत चिन्तित था। सरदारजीकी परेशानी मुझसे देखी नहीं जाती थी। मैंने अपनी चिन्ता उनसे व्यक्त की। वे मुस्कुराकर बोले, 'मैं इसे स्वस्थ कर लूँगा; इसके लिये मुझे बलि देनी पड़ेगी। मेरी आयु ज्योतिषके अनुसार ६४ वर्षकी है। दो वर्ष वय (उम्र)-का बलिदान कर दूँगा।' उन्होंने कौन-सी क्रिया की, यह तो मुझे नहीं मालूम, किंतु मेरे देखते-देखते बालक स्वस्थ होने लगा। जब सरदारजीका ६२वाँ वर्ष आया, तब वे मुझसे बोले—'मैं जानेवाला हूँ।' मैंने विश्वास नहीं किया, पर वे सचमुच उसी वर्ष चले गये।

श्रीरामनारायणसिंहका नेपालसे घना सम्बन्ध था। उनके गुरु एक ८५ वर्षीय नेपाली सज्जन थे, जो ८ वर्षोंतक नेपाल सरकारके विदेशमन्त्री रह चुके थे तथा वाराणसीमें अज्ञातवास कर रहे थे। उनका जीवन अद्भुत चमत्कारोंसे पूर्ण था।

एक दिन हनुमानजीकी चर्चा चली। तन्त्रशास्त्र

तथा तान्त्रिक उपासनामें श्रीहनुमानजीका कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है, यह मैंने उन्हींके सत्सङ्गमें सुना। किंतु मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब श्रीरामनारायण-सिंहजी बोले—

'श्रीहनुमानजी अभी सदेह हमारे मध्यमें वर्तमान हैं। नेपालके घनघोर जंगलमें साधारण मानवगम्य शरीरसे उनसे कई तपस्वियोंका साक्षात्कार हो चुका है।' और उन्होंने ऐसे साक्षात्कारकी दो घटनाएँ बतलायीं तथा उन सज्जनोंसे परिचय भी करा दिया।

मेरे बहुत आग्रह करनेपर उन सज्जनोंके तथा सिंहजीके साथ नेपाल जानेका कार्यक्रम बना। पर कोई-न-कोई बाधा आती रही और तीसरे वर्ष सिंहजी स्वयं चल बसे।

वाराणसीमें एक सज्जन हैं, जो पहले स्थानीय नगरपालिकामें एक उच्च पदपर थे। उनके गुरु एक सिद्ध पुरुष थे, जिनके आश्चर्यजनक 'तमाशे' हमने स्वयं भी देखे-सुने हैं। आजका पढ़ा-लिखा व्यक्ति ऐसी घटनाओंको 'तमाशा' ही कहता है। उनके पास जब कोई अपना बड़ा संकट लेकर आता और वे पसीज जाते, तब इतना ही कहते—'जाओ ! माँकी जो इच्छा होगी, वे करेंगी।' और वह काम हो जाता।

एक बार एक स्त्री अपने मरणासन्न बालकको उठाकर उनके सामने रखकर रोने लगी। उसकी कातरता देखकर महात्माजी उद्विग्न हो उठे और कह बैठे—'जाओ, यह ठीक हो जायगा।' वह स्त्री प्रसन्न-वदन अपने स्वस्थ बालकको लेकर चली गयी, पर महात्माजी बहुत व्याकुल होकर तड़पने लगे—छटपटाने लगे। उन्होंने कहा— 'सदैव माँकी इच्छासे काम होता था। आज मैं इतना अभिमानी हो गया कि मेरी इच्छासे काम होने लगा। मुझे धिक्कार है। अब मेरा कल्याण इसीमें है कि मैं संसारको छोड़ दूँ।'

बस, दो दिनके भीतर ही उनका शरीर शान्त हो गया।

वे महात्मा श्रीहनुमानजीके बड़े भक्त थे। उनके पास श्रीहनुमदुपासनाकी एक हस्तलिखित पुस्तक थी। मेरे उपरिलिखित मित्रने आपसमें वितरण करनेके लिये उसकी ढाई सौ प्रतियाँ छपवा भी ली हैं।

हिंदू देवपरिवारमें श्रीहनुमान ही ऐसे देवता हैं, जो तीन दिव्यगुणोंके समुच्चय हैं—अखण्ड ब्रह्मचर्य, अतुल शौर्य तथा अनुपम पाण्डित्य। ब्रह्मचर्यकी तपस्यासे ही उन्होंने मृत्युको मार डाला है। जो मृत्युसे निर्भीक है, वह संसारमें अतुल पराक्रमी तो होगा ही और उसका प्रकाण्ड ज्ञान भी ब्रह्मचर्यका वरदान है। आजकलके 'पढ़े-लिखे' भारतीय युवकोंमें प्राय: यह शङ्का उत्पन्न होती है कि "हनुमान नामक कोई कपि कभी रहा भी होगा और यदि वह कपि था तो इतना विद्वान् एवं गुणवान् कैसे हो सकता है?" ऐसी शङ्का करनेवाले वेदके अपौरुषेय होनेपर अथवा उनकी प्राचीनतामें भी विश्वास नहीं करते। वे भारतीय-यूनानी- मिस्री सभ्यताको समानान्तर मान लें और भारतको मिस्र अथवा यूनानके बाद सभ्य बना न मानें, यही बहुत है।

किंतु, स्वयं वैज्ञानिक खोज उनकी भूलको भूल सिद्ध करती जा रही है। उत्तरी अमेरिकाके न्यूयार्क प्रदेशके सैंडिया नामक स्थानमें एक गुफा मिली है, जिसमें ईसासे दस सहस्र वर्ष पहलेके औजार मिले हैं। एक अन्य स्थानपर आजके ६८००वर्ष पहलेका एक बाल-शव मिला है, जिसे दफनानेके पहले सिन्दूरसे पोत दिया गया था। मिस्रके प्राचीनतम 'पिरामिड' से ढाई-तीन हजार वर्ष अधिककी पुरानी सामग्रियाँ प्राप्त हो चुकी हैं।

और सन् १९७२ में प्राप्त सामग्री तो आजसे छब्बीस हजार वर्ष पुरानी सिद्ध हो चुकी है। उस समयके पुरुष स्त्री-परिवारसहित रहते थे। शरीरमें गेरू या सिन्दूर पोतते थे। उनके हथियार थे गदा, चक्र, हल आदि और चेहरा प्राय: वानरका-सा था। अमेरिकन वैज्ञानिक उन्हें 'भारतीय' कहते हैं।

अमेरिका प्राचीन भारतका 'पाताललोक' था, यह सिद्ध हो चुका है। दक्षिण अमेरिकामें प्राप्त 'मय'-सभ्यताके स्वर्ण-मन्दिर, कला, मूर्तियाँ, लिपि, ग्रन्थ एवं आजके आठ हजार वर्ष पहलेकी प्राप्त सामग्री यदि मय दानवका राज्य नहीं सिद्ध करती है तो और क्या है।

ऐसे युगके हनुमान और हमारे श्रीहनुमान बहुत ही परिमार्जित, परिष्कृत सभ्यताके महान् प्रतीककी कड़ीको जोड़ रहे हों तो नये पढ़े-लिखे लोगोंको अविश्वास क्यों होता है। संसारके सभी रोग अच्छे हो सकते हैं, किंतु अविश्वासकी कोई औषध नहीं।

श्रीहनुमानजीका साचिव्य

(लेखक—पद्मभूषण पण्डितराज श्रीराजेश्वरजी शास्त्री, द्रविड़)

किसी रामायणमें कथा आती है कि हनुमानजी जिस समय लंकानगरीमें गये, उस समय रातभर माता सीताजीकी खोज करते हुए प्रात:काल वे जब विभीषणके मकानके समीपसे जा रहे थे, तब उन्होंने विभीषणको प्रात:स्मरणके प्रसङ्गमें श्रीरामनाम-संकीर्तन करते हुए पाया। फिर उनके घरको भी तुलसी-वृक्षोंसे विलसित तथा श्रीराम-नामसे अङ्कित देखकर हनुमानजी उसके भीतर गये और विभीषणसे मिले। दोनोंकी परस्पर वार्ता हुई और दोनोंने एक-दूसरेको पहचाना। बड़े प्रेमसे विभीषणने उनका सत्कार किया। तदनन्तर कार्यसिद्ध होनेतक वे दोनों दिनमें अपने-अपने कार्यमें लगे रहते और रातमें श्रीराम-चर्चा किया करते थे।

जिस समय विभीषण श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें आये, उस समय उनपर विश्वास किया जाय अथवा नहीं, ऐसा विचार-विमर्श प्रारम्भ हुआ। सुग्रीव, अङ्गद, शरभ, जाम्बवान् और मैन्दने अपना-अपना मत व्यक्त किया, राक्षस होनेके कारण उन्हें विभीषणपर विश्वास नहीं हो रहा था। दूसरा पक्ष यह देखता है कि विभीषण धर्मरुचि था। पितामह ब्रह्माजीने रावण और कुम्भकर्णको अभिलषित अमरत्व या इन्द्रलोक नहीं दिया, किंतु विभीषणने केवल धर्मरुचित्वका ही वरदान माँगा, इसी कारण उसे न माँगनेपर भी अमरत्व प्रदान कर दिया। इसलिये विभीषणका धर्मात्मत्व स्थायी था। सुग्रीवसे लेकर मैन्दतक सभी वानरोंको उसका धर्मात्मत्व स्थायीरूपमें न लक्षित होकर व्यभिचारिभावके ही रूपमें दीख रहा था। किंतु यदि सुग्रीवका कथन निश्चित हो गया होता तो उस समय—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा० रा० ६।१८।३३)

—श्रीरामचन्द्रजीकी यह प्रतिज्ञा असत्य हो जाती और धर्मात्मत्व स्थायिभावसे सम्पन्न एक विश्वास्य मित्र मारा जाता तथा राजनीतिमें एक अक्षम्य प्रमाद हो गया होता। यह बात अर्थशास्त्रमें '**धर्मरुचिरूपांशुदण्डं प्रयुञ्जीत**'— इस प्रसङ्गमें कही गयी है।

किसीका भी विश्वास प्राप्त करनेके लिये धर्मरुचित्व आवश्यक है—यह बात सुग्रीव आदिकी समझमें नहीं आ रही थी; किंतु हनुमानजीने इसे समझा और उपर्युक्त प्रत्येक मतका खण्डन किया; क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीकी शरणागतिके लिये किसी भी देश अथवा कालकी आवश्यकता नहीं होती और '**निर्गुणमपि भर्तारम्**'— इस वचनके अनुसार विभीषण विपत्कालमें रावणको स्वयं छोड़कर नहीं आया था, अपितु जब रावणने ही पूर्णरूपसे उसका अपमान किया और उसे निकाल दिया, तभी वह श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें आया था।

श्रीरामचन्द्रजीने भी हनुमानजीके ही कथनानुसार विभीषणको धर्मरुचि तथा विश्वास्य माना। इसीलिये विभीषणके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी मैत्री निभ सकी। यह प्रसङ्ग बड़ा महत्त्वपूर्ण है। वास्तविकता यह है कि यदि विभीषण न मिला होता तो लंकापर विजय पाना कठिन हो जाता और यदि विभीषण सुग्रीवके वचनके अनुसार मारा गया होता तो क्या स्थिति हुई होती, यह बात लोगोंको समझनी चाहिये।

आज खण्डितरूपसे ही उपलब्ध हनुमन्नाटकको देखा जाय तो यह बात अनायास ही ध्यानमें आती है कि हनुमानजीमें वाल्मीकिकी अपेक्षा कवित्वशक्ति भी अधिक थी। उन्होंने अपनी उसी शक्तिसे विभीषणको पहचाना था। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥
किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥

(मानस १।७।३-४)

आज सनातनधर्म हनुमानजीके वचनानुसार लोगोंको देश-काल-विपरीत भासनेपर भी परम अनुष्ठेय ही है। हनुमानजीने यही दिखलाया है कि ईश्वर-शरणागतियुक्त होनेके कारण सर्वदेश-कालमें धर्मकी मान्यता है और यही सचिवोत्तम हनुमानजीका वैशिष्ट्य है।

त्रेतायुगमें श्रीहनुमानजीद्वारा अवधी-भाषामें श्रीरामकथाका शुभारम्भ

(लेखक—स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज)

श्रीराम-कथाके अन्यतम रसिक श्रीहनुमानकी श्रीराम-कथा-निष्ठाका वर्णन समस्त भारतीय वाङ्मयमें विस्तारसे किया गया है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें श्रीहनुमानजीने भगवान् श्रीरामसे उनके परधामगमनके समय कथा-श्रवणके लिये चिरंजीवी होनेका वरदान माँगा था। यह उनकी कथा-निष्ठाका परिचायक है—

यावद् रामकथा वीर चरिष्यति महीतले।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः॥
यच्चैतच्चरितं दिव्यं कथा ते रघुनन्दन।
तन्ममाप्सरसो राम श्रावयेयुर्नरर्षभ॥

(वा० रा० ७।४०।१७-१८)

'वीरवर श्रीरघुनन्दन! जबतक इस पृथ्वीपर श्रीराम-कथाका प्रचार रहे, तबतक निस्संदेह मेरे शरीरमें प्राण बसे रहें। नरश्रेष्ठ श्रीराम! आपका जो यह दिव्य चरित और कथा है, इसे अप्सराएँ गाकर मुझे सुनाया करें।'

श्रीराघवेन्द्रने श्रीहनुमानजीका आलिङ्गन करते हुए कहा—'कपिश्रेष्ठ! जबतक मेरी कथा इस लोकमें प्रचलित रहेगी, तबतक तुम्हारी कीर्ति अमिट रहेगी तथा तुम्हारे शरीरमें प्राण भी रहेंगे ही। जबतक ये लोक बने रहेंगे, तबतक मेरी कथाएँ भी स्थिर रहेंगी।'

दाक्षिणात्य आचार्योंने श्रीहनुमानजीकी इस कथानिष्ठाकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि श्रीराघवमें ऐसे अद्भुत गुण थे, जिनसे आकृष्ट होकर हनुमानजी साकेतधामका परित्याग कर आज भी उस कथा-रसका सेवन कर रहे हैं—

सोऽत्रैव हन्त हनुमान् परमां विमुक्तिं
बुद्ध्यावधूय चरितं तव सेवतेऽसौ।

(पञ्चस्तवी)

श्रीहनुमानजी जहाँ एक ओर असाधारण कथा-रसिक हैं, वहीं असाधारण कथा-गायक भी हैं। वास्तवमें श्रीहनुमानजीमें नवधा भक्ति, प्रेमाभक्ति आदि सभी भक्ति-रसोंका पूर्णरूपसे समावेश है। श्रोताके रूपमें तो श्रीहनुमानजीको भक्तगण अधिक जानते ही हैं, किंतु सुन्दरकाण्डमें जब उन्होंने जगज्जननी श्रीजानकीजीको श्रीराम-कथा सुनायी है, उस समय उनको श्रीराम-कथाके गायकरूपमें भी देखते हैं। इसी अवसरपर श्रीहनुमानजी अवधी-भाषामें श्रीजनकनन्दिनीको कथा सुनाते हैं।

उस समय श्रीहनुमानजीने विचार किया कि यदि मैं श्रीसीताजीके समक्ष संस्कृत-भाषामें वार्तालाप करता हूँ तो रावण जानकर वे मुझसे भयभीत हो जायँगी, अतः मुझे उनके साथ मनुष्यकी भाषामें ही वार्तालाप करना चाहिये।

श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं कि '**मानुषं वाक्यम्**'—मनुष्यवाक्यका अर्थ है—कोसलदेशवासी मनुष्यकी भाषा; क्योंकि श्रीजानकीजी इसी भाषासे परिचित हैं—'**अत्र वाक्यस्य मानुषत्वं कोसलदेशवर्तिमनुष्यसम्बन्धित्वं विवक्षितम्। तादृग्वाक्यस्य देव्याः परिचितत्वात्।**'

इस वार्तालापको 'रामकीर्तन' कहा गया है—'**रामकीर्तनहर्षिता**' (५।३३।१४)। इस प्रकार लोक-भाषा (अवधी-भाषा)-में श्रीहनुमानजीने त्रेतायुगमें ही श्रीराम-कथाका शुभारम्भ कर दिया था। उसी परम्पराका निर्वाह गोस्वामीजीने भी किया तथा अवधी-भाषामें मानसकी रचना की। वैसे तो श्रीहनुमानजीके समान वेद-शास्त्रोंका ज्ञाता अन्यत्र दुर्लभ है। भगवान् श्रीरामने किष्किन्धाकाण्डमें इनके पाण्डित्यका सविस्तर वर्णन किया है।

उत्तरकाण्डमें भी सूर्यके समीप इनके व्याकरण-अध्ययनका वर्णन इनके असाधारण ज्ञानका द्योतक है—(द्रष्टव्य वा० रा० ७। ३६। ४५—४८)।

इस प्रकार वेद एवं व्याकरण आदिके ज्ञाता होनेपर भी अवधी-भाषामें श्रीहनुमानजीने श्रीजनकनन्दिनीको कथा सुनायी—यह वस्तुतः अद्भुत एवं अलौकिक घटना है।

जो लोग भाषानिर्मित काव्योंपर आक्षेप करते हैं, उनको ध्यान रखना चाहिये कि लोक-भाषामें श्रीराम-कथाका शुभारम्भ त्रेतायुगमें ही हो चुका था।

श्रीहनुमानजीके सम्बन्धमें महात्मा गांधीकी निष्ठा

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

बात है सन् १९२७ के आरम्भकी।

१९२६के पूरे सालभर गांधीने विश्राम किया साबरमती और वर्धा-आश्रममें।

फिर वे निकल पड़े अपने प्रवासपर—देशव्यापी प्रवासपर।

त्रिविध कार्यक्रम—खादी-चरखा, अस्पृश्यता-निवारण और हिंदू-मुस्लिम-एकता—ही था उनके प्रवासका कारण।

धुआँधार प्रवास चलने लगा।

महाराष्ट्रमें एक दिन उनसे अनुरोध किया गया—व्यायाम-मन्दिरमें मारुतिकी प्रतिष्ठाका।

विद्यार्थी ठहरे गांधीजीको परम प्रिय। देशकी नयी पौध संस्कारवान् बने, चरित्रवान् बने, संयमी बने, स्वस्थ और सबल बने तथा दीन-दरिद्र देशको ऊपर उठाये—इसके लिये वे कोई बात उठा न रखते। कोई भी ऐसा मौका न चूकते।

× × × ×

मारुति-विग्रहकी स्थापनाके उपरान्त गांधीजी बोले—'बच्चो! तुम जानते हो मारुतिको? मारुतसुत हनुमानजी कौन थे? वे थे वायुके पुत्र।

इन मारुतिकी प्रतिष्ठा हम क्यों करते हैं?

क्या इसीलिये कि वे वीर योद्धा थे?

क्या इसीलिये कि उनमें अतुल शरीर-बल था?

उनके-जैसा शरीर-बल हमें भी चाहिये।

पर केवल शरीर-बल हमारा आदर्श नहीं।

शरीर-बल ही हमारा आदर्श होता तो हम रावणकी मूर्तिकी स्थापना न करते?

पर हम रावणके बदले मारुतिकी स्थापना करते हैं।

किसलिये?

इसीलिये कि हनुमानजीका शरीर-बल आत्मबलसे सम्पन्न था।

श्रीरामके प्रति हनुमानजीका जो अनन्य प्रेम था, उसीका फल था यह आत्मबल।

इसी आत्मबलकी हम प्रतिष्ठा करते हैं।

आज हमने पाषाणखण्डकी नहीं, भावनाकी प्रतिष्ठा की है।

हम चाहते हैं कि आत्मबलकी इसी भावनाको आदर्श बनाकर हम भी मारुति बनें।

भगवान् हमें मारुतिका-सा शरीर-बल दें।

भगवान् हमें मारुतिका-सा आत्मबल दें।

भगवान् हमें इस आत्मबलकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्य-पालनका बल दें।'

× × × ×

इसी प्रसङ्गकी चर्चा करते हुए गांधीजीने बादमें एक दिन कहा—

हम मारुतिका दर्शन किसलिये करें?

मारुति कौन थे? बंदर थे या क्या थे, मैं नहीं जानता। मैं तो उनकी शक्तिकी, उनकी सेवा-भावनाकी पूजा करता हूँ।

मारुति राक्षस नहीं थे। वे इन्द्रजित्की तरह श्रीरामके विरोधी भी नहीं थे। श्रीरामके सेवक थे। ब्रह्मचारी थे। उनमें अपार आत्मबल भरा था। उनमें सेवाकी अपार भावना थी। उसीकी मैं पूजा करता हूँ।

हमें आवश्यकता है इसी आत्मबलकी, इसी सेवा-भावनाकी। इसी आत्मबलसे हम भारतमाताकी सेवा करें।

× × × ×

और एक दिन दरिद्र-नारायणकी सेवाके लिये बेचैन गांधी बोले—

मेरे हृदयमें कैसी आग जल रही है, आपको पता है?

हनुमानजीको एक माला मिली थी। उसके दाने तोड़-तोड़कर वे देखने लगे। लोगोंने पूछा—'क्यों करते हो ऐसा?'

बोले—'देखता हूँ, इनमें श्रीराम-नाम है क्या? मुझे ऐसी कोई चीज नहीं चाहिये, जिसमें श्रीराम न हों।'

'सबमें श्रीराम-नाम होता है क्या ?'

'मुझमें तो है?'—ऐसा कहते हुए उन्होंने अपनी छाती चीरकर दिखा दी। श्रीराम तो वहाँ विराजमान थे ही।

मुझमें हनुमानजीकी-सी शक्ति तो नहीं है कि मैं आपको छाती फाड़कर दिखा दूँ। किंतु आपकी तबीयत हो तो आप छुरीसे मेरी छाती चीरकर देख लें, उसके भीतर आपको श्रीराम-नाम ही मिलेगा।

× × × ×

बात आयी, गयी, हो गयी।

एक-दो नहीं, बीस-इक्कीस साल निकल गये।

जिस दिन गांधीकी छातीमें गोली लगी तो गांधीका यह सत्य सबके आगे मुखरित हो गया। गोली लगते ही उनके मुखसे निकला—'राम'!

पूजनीय गुरुजी (श्रीमाधवराव सदाशिव गोलवलकर)-की श्रीहनुमन्निष्ठा

(लेखक—श्रीदत्तोपंत बापूरावजी ठेंगड़ी, संसद्-सदस्य)

मलयालम भाषाकी एक रामायणका प्रारम्भ विशेष ढंगका है। श्रीराम-कथा सुनानेकी भावनासे भगवान् शंकर पार्वतीजीसे कह रहे हैं कि सीताजीने श्रीहनुमानको अपना इच्छित वर माँग लेनेके लिये कहा। हनुमानजीके मनमें एक ही वरकी चाहना थी, अत: उन्होंने सदा-सर्वदा चिरन्तन कालतक श्रीराम-नामका जप कर सकनेका वर माँगा। यह सुनकर भगवती पार्वतीको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने यह सम्पूर्ण प्रसङ्ग सुननेकी अभिलाषा प्रकट की। इसपर ही रामायणका कथन प्रारम्भ होता है।

जब मलयालमके एक विद्वान्ने यह बात पूजनीय श्रीगुरुजीको बतायी, तब उन्होंने इसपर प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि इस तरहके प्रारम्भमें एक विशेष प्रकारका औचित्य है। श्रीहनुमानजीका कार्य सम्पूर्ण श्रीराम-कथामें अद्वितीय है और उस अद्वितीयत्वकी ओर साधारण जनका ध्यान आकृष्ट करनेकी दृष्टिसे इस प्रकारका प्रारम्भ उपयुक्त ही है। पूजनीय गुरुजीकी आन्तरिक धारणा थी कि राष्ट्रिय स्वयंसेवकसंघके कार्यकर्ताओंके सम्मुख एक आदर्शके नाते जिनके नाम प्रस्तुत किये जा सकते हैं, उनमें हनुमानजीका नाम अग्रगण्य है। पूजनीय श्रीगुरुजीका विचार था कि—

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥

—यह श्लोक श्रीहनुमानजीकी उन विशेषताओंको प्रकट करता है, जो संघके स्वयंसेवक कार्यकर्ताओंके लिये सदैव मननीय एवं चिन्तनीय है। इस श्लोकमें श्रीहनुमानजीकी विलक्षण विशेषताओंकी ओर संकेत किया गया है। श्रीहनुमानजी पराक्रमी थे, '**बुद्धिमतां वरिष्ठ**' थे, नेतृत्वके गुणोंसे सम्पन्न थे और यह सब होते हुए भी वे 'श्रीरामदूत' थे, निरहंकारी थे, आत्म-समर्पणकी मूर्ति थे। श्रीगुरुजी बहुधा कहा करते थे कि यह निरहंकारपूर्ण आत्मसमर्पण ही हनुमानजीका श्रेष्ठतम गुण था।

एक अन्य श्लोककी ओर भी वे बार-बार संकेत करते थे। किसी एक अवसरपर किसी विशेष संदर्भमें हनुमानजीने प्रभु श्रीरामसे कहा—

देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशक:।
आत्मदृष्ट्या त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मति:॥

इस श्लोकमें द्वैतावस्थासे अद्वैतकी ओर जानेवाले मार्गका तथा एक ही समयमें विभिन्न स्तरोंपर स्वयंको स्थित करनेकी क्षमताका—दोनोंका बोध स्पष्टरूपसे होता है। श्रीगुरुजी कहते थे कि यह श्लोक सभी भक्ति-पथ-पथिकोंके लिये मार्गदर्शक है।

संघके स्वयंसेवकोंको संघ-कार्यकी कल्पना कराते हुए पूजनीय गुरुजी कहा करते थे कि आज हम हिंदू-राष्ट्रके पुनर्निर्माणके कार्यमें जुटे हुए हैं। इस समय यह स्मरणीय है कि तीन सौ वर्ष पूर्व जब स्वराज्य-संस्थापनाका कार्य छत्रपति शिवाजीद्वारा चलाया जा रहा था, तब उनके कार्यकी नींव गहरी तथा विस्तृत बनानेकी दृष्टिसे समर्थ श्रीरामदास स्वामीने प्रत्येक गाँवमें श्रीहनुमानजीकी प्रतिष्ठा करनेका उपक्रम किया। अनगढ़े पत्थरको भी सिन्दूर लगाकर हनुमानजीके नाते उसकी प्राण-प्रतिष्ठा कर देना उनकी सामान्य प्रक्रिया थी। इस तरह श्रीसमर्थद्वारा विस्तृत पैमानेपर प्राणप्रतिष्ठाका कार्य किया गया। प्राणप्रतिष्ठाके साथ-साथ हर स्थानपर श्रीहनुमानजीके मन्दिरके साथ ही व्यायामशाला-जैसे कुछ शारीरिक कार्यक्रम चलाये गये, जिससे गाँवके युवकोंका वहाँ एकीकरण होता रहे। यही श्रीसमर्थकी योजनाकी स्थूल रूपरेखा थी। पूजनीय गुरुजीका विश्वास था कि राष्ट्र-निर्माणके कार्यकी प्रक्रियाके नाते समर्थ श्रीरामदास स्वामीकी योजनासे मार्ग-दर्शन प्राप्त करना आज भी लाभदायक ही सिद्ध होगा।

उपनिषदोंमें श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीबाबूलालजी गुप्त 'श्याम')

श्रीहनुमानजीका वर्णन उपनिषदोंमें भी आया है। यहाँ संक्षिप्तरूपसे कुछ अंश प्रस्तुत किया जा रहा है। रामरहस्योपनिषद्, रामपूर्वतापनीय-उपनिषद् तथा मुक्तिकोपनिषद् आदि अनेक उपनिषदोंमें श्रीहनुमानजीका वर्णन है। जहाँ-जहाँ भगवान् श्रीरामके तत्त्व, रहस्य और महिमाका वर्णन है, वहाँ-वहाँ श्रीहनुमानजीका भी वर्णन आया है। श्रीराम-तत्त्वकी जिज्ञासा और रहस्यके वर्णनमें उनकी प्रधान भूमिका है।

रामरहस्योपनिषद्में वर्णन मिलता है कि जब सनकादि योगीन्द्र तथा अन्य ऋषि और प्रह्लाद आदि भगवान् विष्णुके भक्तोंने श्रीहनुमानजीसे पूछा कि अठारहों पुराणों, स्मृतियों, चारों वेदों तथा छहों शास्त्रों और अध्यात्मविद्याके ग्रन्थोंमें किस तत्त्वका उपदेश हुआ है तो श्रीहनुमानजीने कहा—

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्॥

(१।६)

अर्थात् श्रीराम ही परम ब्रह्म हैं, श्रीराम ही परम तपस्वरूप हैं, श्रीराम ही परम तत्त्व हैं और श्रीराम ही तारक ब्रह्म हैं।

इसके पश्चात् ऋषियोंने श्रीरामके अङ्गोंके विषयमें पूछा तथा अन्य प्रश्न भी किये, जिनका उत्तर देते हुए श्रीहनुमानजीने श्रीराम-रहस्यका उद्घाटन किया तथा प्रणव (ॐ)-को भी श्रीरामका अङ्ग बतलाया और श्रीरामोपासनाका भी वर्णन किया।

श्रीरामपूर्वोत्तरतापनीयोपनिषद्में श्रीराम-नामका अर्थ, श्रीरामका स्वरूप, श्रीराम-मन्त्रकी व्याख्या, जप-प्रक्रिया तथा ध्यान आदिके वर्णनके साथ-साथ संक्षिप्त चरित्र तथा पूजायन्त्रका भी वर्णन किया गया है, जिसमें श्रीहनुमानजीका नाम आया है। यथा—

ततस्ततार हनुमानब्धिं लङ्कां समाययौ॥
सीतां दृष्ट्वाऽसुरान् हत्वा पुरं दग्ध्वा तथा स्वयम्।
आगत्य रामेण सह न्यवेदयत तत्त्वतः॥

(४।२५-२६)

अर्थात् तब हनुमानजी समुद्रको लाँघकर लंकामें गये, वहाँ उन्होंने सीताजीका दर्शन कर, असुरोंका वध कर, लंकामें आग लगाकर तथा श्रीरामके पास लौटकर सब समाचार यथावत् सुनाया। संक्षिप्त चरित्रका वर्णन करके आगे जहाँ षट्कोणका अनुसरण करके आवरण-पूजाके लिये यन्त्रस्थ देवताओंका वर्णन किया गया है, वहाँ भी उनका वर्णन आया है कि श्रीरामचन्द्रजीके उत्तर और दक्षिण भागमें क्रमशः शत्रुघ्न और भरतजी स्थित हैं। हनुमानजी श्रोताके रूपमें भगवान् श्रीरामके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हैं। वे भी त्रिकोणके भीतर स्थित हैं—

उदग्दक्षिणयोः स्वस्य शत्रुघ्नभरतौ ततः।
हनूमन्तं च श्रोतारमग्रतः स्यात् त्रिकोणगम्॥

(रामपूर्व० ४।३२)

तृतीय आवरणमें भी वर्णन आया है, वहाँ भी श्रीहनुमानजी, सुग्रीव तथा भरत आदिके नाम हैं। यथा—

तृतीयं वायुसूनुं च सुग्रीवं भरतं तथा।

(रामपूर्व० ४।३५)

इसके अतिरिक्त मुक्तिकोपनिषद्में जहाँ वेदान्तकी महिमा, उपनिषदोंका वर्णन, मुक्तिके भेद तथा अध्यात्म-तत्त्वका वर्णन किया गया है, उसमें श्रीरामजी और श्रीहनुमानका ही संवाद मुख्यरूपसे है, उन्होंने ही सब रहस्य पूछे हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण उपनिषद् है। वहाँका प्रसङ्ग है कि श्रीअयोध्यापुरीमें श्रीरामजी एक बार अपने स्वरूपमें स्थित—समाधिस्थ थे। समाधिसे उत्थान होनेपर श्रीहनुमानजीने श्रीरामजीसे पूछा कि 'मैं आपके स्वरूपको जानना चाहता हूँ, कृपया उसका वर्णन कीजिये।' तब भगवान् श्रीरामने कहा कि 'मेरा स्वरूप वेदान्तमें भलीभाँति प्रतिपादित है, मैं उसका वर्णन करूँगा। मुझ विष्णुके निःश्वाससे विस्तृत चारों वेद उत्पन्न हुए। तिलोंमें तेलकी भाँति वेदान्त उसमें प्रतिष्ठित है।'—

निःश्वासभूता मे विष्णोर्वेदा जाताः सुविस्तराः।
तिलेषु तैलवद् वेदे वेदान्तः सुप्रतिष्ठितः॥

(मुक्तिको० १।९)

वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इन चारोंकी अनेकों शाखाएँ हैं और उन शाखाओंकी उपनिषदें भी अनेकों हैं; यथा—ऋग्वेदकी २१, यजुर्वेदकी १०९, सामवेदकी १००० तथा अथर्ववेदकी शाखाओंके ५० भेद हैं। इस प्रकार ११८० शाखाएँ हैं तथा एक-एक शाखाकी एक-एक उपनिषद् मानी गयी है—

ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशति संख्यकाः।
नवाधिकशतं शाखा यजुषो मारुतात्मज॥
सहस्त्रसंख्यया जाताः शाखाः साम्नः परंतप।
अथर्वणस्य शाखाः स्युः पञ्चाशद् भेदतो हरे॥
एकैकस्यास्तु शाखाया एकैकोपनिषन्मता।

(मुक्तिको० १।१२—१४)

भगवान् श्रीरामने कहा कि इन उपनिषदोंमें एकमात्र माण्डूक्योपनिषद् ही मुमुक्षुजनोंको मुक्ति प्रदान करनेमें समर्थ है। यदि उससे भी ज्ञानमें परिपक्वता न आये तो इन उपनिषदों (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक)-का पाठ करो। उससे ज्ञान प्राप्त करके शीघ्र ही अद्वैतधामको प्राप्त करोगे—

माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां विमुक्तये॥
तथाप्यसिद्धं चेज्ज्ञानं दशोपनिषदं पठ।
ज्ञानं लब्ध्वाचिरादेव मामकं धाम यास्यसि॥

(मुक्तिको० १।२६-२७)

पुनः आगे कहा कि यदि उससे भी ज्ञानकी दृढ़ता न आये तो बत्तीस उपनिषदोंका सम्यक् रूपसे अभ्यास करना चाहिये और यदि विदेह-मुक्ति चाहते हो तो १०८ उपनिषदोंका पाठ करो।

इसके अतिरिक्त जीवन्मुक्ति-विदेहमुक्तिका स्वरूप, प्रमाण, उनकी सिद्धिके उपाय आदिका भी वर्णन वहाँपर आया है। इस प्रकार उपनिषदोंमें बहुत-से स्थानोंपर श्रीहनुमानजीका वर्णन है। स्थान-संकोचके कारण संक्षेपमें सूत्ररूपसे यहाँ वर्णन किया गया है।

श्रीहनुमानजी वेदान्तके मूर्तिमान् स्वरूप तथा पूर्ण ज्ञाता थे। तभी तो उन्हें '**ज्ञानिनामग्रगण्य**' कहा गया है।

सदैव रक्षक श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीबल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश', साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

श्रीराम-भक्त हनुमानजीकी यह सत्योक्ति थी कि यदि स्वर्गमें भी सीता नहीं मिली तो मैं स्वयं त्रैलोक्यविजयी राक्षसराज रावणको ही बाँधकर ले आऊँगा—

यदि वा त्रिदिवे सीतां न द्रक्ष्यामि कृतश्रमः॥
बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम्।

(वा० रा० ५।१।४१-४२)

तभी तो स्वयं भगवान् श्रीरामने श्रीहनुमानजीका यशोगान किया है कि युद्धमें हनुमानजी-जैसा पराक्रम यम, इन्द्र, विष्णु और कुबेर आदि लोकपालोंमें भी नहीं देखा जाता—

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः॥

(वा० रा० ७।३५।८)

धर्मकी रक्षा ऐसे ही महात्मा कर सकते हैं, जो स्वयं श्रीहनुमानकी तरह पराक्रमी एवं निष्काम हों। जिसमें समर्पण नहीं, त्याग और कर्तव्य-पूर्तिकी निष्ठा नहीं, वह सच्चा सेवक, सच्चा धर्मरक्षक नहीं हो सकता। गीतामें भगवान्ने आसक्तिरहित कर्म-साधनाको सिद्धि-सोपान माना है। श्रीहनुमानजी-जैसे पराक्रमी-निष्काम सेवक न होते तो अवश्य ही श्रीरामके सत्पक्षको विजयश्री न मिलती। जाम्बवान्ने युद्धकाण्डमें ठीक ही कहा है—'यदि हनुमान जीवित हैं तो हम सबके न रहनेपर भी भगवान् श्रीरामकी विजय निश्चित है।'

सेवकके लिये उक्त निष्कामभावके अतिरिक्त जिन अन्य गुणोंकी अपेक्षा है, उनमें ब्रह्मचर्य और सत्य मुख्य हैं। 'ब्रह्मचर्य' का अर्थ है—शारीरिक सप्त धातुओंका सार—'शुक्र' नामक धातुका संरक्षण। 'सत्य' का अर्थ है—मन-वचन-कर्मकी एकता। हनुमानजी इन दोनोंके आदर्श हैं। उनका शरीर अखण्ड ब्रह्मचर्यके लिये प्रसिद्ध है, इसीलिये उन्हें शरीरसे 'वज्राङ्ग' कहा जाता है। उनके बलकी सीमा नहीं। सत्यके लिये हनुमानजीका चरित्र अद्वितीय है। वे जिन भगवान् श्रीरामकी वाणीसे वन्दना करते हैं, उन्हें हृदयसे भी उतना ही चाहते हैं।

श्रीराम-भक्ति एवं सद्गुणोंके कारण श्रीहनुमानजीका स्मरण अमोघ फलकारी है। लौकिक कार्योंके उपस्थित होनेपर कामना-पूर्तिके लिये भक्तको चाहिये कि श्रीरामसेवक श्रीहनुमानजीका स्मरण करे। सेवककी कामना-पूर्तिके लिये वे सदा उपस्थित रहते हैं। श्रीहनुमानजीने स्वयं कहा है—

'लौकिके समनुप्राप्ते मां स्मरेद् रामसेवकम्।'

(रामरहस्योपनिषद् ४।११)

गीतोक्त अनन्य-भक्तिके मूर्तरूप श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीराजेन्द्रजी शर्मा)

गीताकी दृष्टिसे ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग—तीनों ही भगवत्प्राप्तिके साधन हैं। हैं तो तीनों ही स्वतन्त्र, परंतु यहाँ ऐसा समझना चाहिये कि जिसका कर्मयोग सिद्ध हो गया, उसके ज्ञानयोग और भक्तियोग भी स्वत:सिद्ध हो जायँगे और जिसे ज्ञानयोगसे परमतत्त्वकी प्राप्ति होती है, उसके कर्मयोग और भक्तियोग स्वत:-सिद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार भक्तिमार्गीके भी ज्ञानयोग और कर्मयोग स्वत:सिद्ध हो जाते हैं। श्रीहनुमानजी ऐसे ही भक्तियोगी हैं, उनके ज्ञानयोग और कर्मयोग स्वत:सिद्ध हैं।

श्रीहनुमानजीकी यह निश्चित धारणा है कि 'भक्ति स्वतन्त्र है, उसे किसी अवलम्बकी आवश्यकता नहीं है और ज्ञान-विज्ञान सभी उसके अधीन हैं।' इसीलिये उन्होंने ज्ञान-साधनके अधिकारी होते हुए भी अनन्य-भक्तिका ही आश्रय लिया। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें अनन्य-भक्तिका स्वरूप यों दर्शाया है—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(११।५५)

इस श्लोकमें अनन्य-भक्तिके साधन-पञ्चकका निरूपण हुआ है—१-**मत्कर्मकृत्**—मेरे लिये ही सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको करनेवाला हो, २-**मत्परमः**—मेरे ही परायण हो, ३-**मद्भक्तः**—मेरे नाम, रूप, गुण, लीलाका भजन करनेवाला मेरा भक्त हो, ४-**सङ्गवर्जितः**—आसक्तिरहित हो और ५-**सर्वभूतेषु निर्वैरः**—सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंमें वैरभावसे रहित हो। श्रीहनुमानजीमें ये पाँचों गुण पूर्णरूपसे समाहित हैं।

१-'**मत्कर्मकृत्**' का तात्पर्य है—समस्त कर्मोंको भगवान्‌के अर्पित कर देना अर्थात् मन-बुद्धिसे यह निश्चय कर लेना कि 'मैं भगवान्‌के सर्वथा अर्पित हूँ और मेरे परम प्रापणीय केवल भगवान् ही हैं।' वास्तवमें 'मत्कर्म' से उन कर्मोंकी ओर संकेत किया गया है, जो भगवान्‌के परायण होकर केवल भगवान्‌के लिये ही किये जायँ।

मन-बुद्धिसे भगवान्‌के अर्पित होकर कार्य करनेका अर्थ यही है कि भगवत्कार्य-सम्पादन ही जीवनका चरम लक्ष्य हो जाय। सच्चा भक्त अपना समस्त जीवन ही प्रभुके लिये समर्पित कर देता है। श्रीहनुमानजीके विषयमें तो यह प्रसिद्ध ही है कि उनका अवतरण ही 'राम-काज' के लिये हुआ था—

राम काज लगि तव अवतारा। (मानस ४।३०।३)

श्रीहनुमानजी प्रतिक्षण अथकरूपसे श्रीरामजीका कार्य-सम्पादन करनेमें ही अपनेको सफलजीवी मानते हैं। स्वामीके कार्यकी सिद्धिके लिये उन्हें मान, अपमान, विश्राम अथवा शारीरिक सुख और छोटे-बड़ेकी कोई चिन्ता नहीं रहती। समुद्र-लङ्घनके समय जब जलनिधिने यह इच्छा प्रकट की कि श्रीहनुमानजी मैनाक पर्वतपर विश्राम कर लें तो पवनतनयने विनम्रतापूर्वक कह दिया—

राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥

(मानस ५।१)

'मुझे श्रम ही कहाँ हुआ, जो मैं विश्राम करूँ ? अथवा श्रीरामजीका कार्य किये बिना मुझे विश्राम कहाँ?' '**मत्कर्म**'-का अनुसरण करनेवाला भक्त 'अपनापन' समाप्त कर देता है।

लंकापुरीमें जब मेघनाद श्रीहनुमानजीपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करता है तो वे मूर्च्छित हो जाते हैं और उन्हें नागपाशमें बाँध लिया जाता है। इस प्रसङ्गमें शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं—

प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥

(मानस ५।२०।२)

प्रभुके कार्यके लिये श्रीहनुमानजीने स्वयंको बँधवा लिया। फिर वे रावणसे निरभिमानतापूर्वक कहते हैं—

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥

(मानस ५।२२।३)

लंकासे लौटनेके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर श्रीहनुमानने स्वयं अपने मुँहसे अपनी करनीका बखान नहीं किया, अपितु—

पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥

(मानस ५।३०।३)

वानर-समुदायके समक्ष भी वे अपने किसी कार्यका श्रेय नहीं लेना चाहते। वे वानरोंसे भी यही कहते हैं—

राम कृपाँ भा काजु बिसेषी॥ (मानस ५।२९।२)

कार्य तो विशेष हुआ, किंतु इसमें भी मेरा कोई श्रेय नहीं है। यह भी श्रीराम-कृपाके कारण ही हुआ।

इस प्रकार अनन्य भक्त श्रीहनुमानजी केवल श्रीरामचन्द्रजीके परायण हुए उन्हींके लिये कार्य करते हैं।

२—'**मत्परमः**'—पदका भाव है, 'ऐसा भक्त, जो मेरी प्राप्तिके लिये तत्पर रहे अर्थात् मेरी परायणता चाहनेवाला हो।' जो भक्त पूर्ण तत्परताके साथ भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिये कर्म करता है, वही भगवान्‌के परायण है। उसका साधन और सिद्धि केवल भगवत्प्राप्ति ही है—

साधन सिद्धि राम पग नेहू।

सर्वथा भगवान्‌के परायण होनेसे सगुण-उपासक अपने-आपको भगवान्‌का यन्त्र ही समझता है।

श्रीहनुमानजी जानते हैं कि भगवान्‌के परायण होनेमें जाति, विद्या, रूप, कुल, धन, क्रिया आदिका कोई व्यवधान नहीं है। यथा—

नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधनक्रियादिभेदः।

(नारदभक्तिसूत्र ७२)

भगवान् तो केवल भक्तिका नाता मानते हैं—***'मानउँ एक भगति कर नाता।'*** इसी भावको लेकर श्रीहनुमानजी विभीषणको भी श्रीरामके परायण होनेका उपदेश दे रहे हैं और उसके लिये अपना ही उदाहरण देते हैं—

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥

(मानस ५।७।७-८।७)

संजीवनी-आनयन-प्रसङ्गमें भी जब श्रीहनुमानजी द्रोणपर्वतको लेकर अयोध्याके ऊपर पहुँचे हैं और भरतजीके तीरके आघातसे नीचे गिर पड़े हैं, उस समय भी उन्होंने प्रभुका ही स्मरण किया है—

परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥

(मानस ६।५९।१)

—और जब भरतजीने कहा कि 'शैलसहित मेरे तीरपर चढ़ जाओ, मैं अभी तुम्हें श्रीरामके पास पहुँचा दूँगा।' तो श्रीहनुमानजीको थोड़ा अभिमान हो आया। किंतु तुरंत ही श्रीरामजीके प्रभावकी स्मृति हो जानेसे वे वन्दना करते हुए श्रीभरतजीसे बोले—

तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत।

(मानस ६।६० (क))

अर्थात् श्रीहनुमानजी पल-पलपर असाध्य कार्य करते हुए भी प्रभुके प्रतापका ही स्मरण करते हैं। अहंकार और विमूढ़ता ही कर्तृत्वाभिमानके कारण हैं—

'अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥'

(गीता ३।२७)

किंतु हनुमानजीमें ये लेशमात्र भी नहीं थे। ऐसी है श्रीहनुमानजीकी कर्तृत्वाभिमानरहित प्रभुपरायणता।

३—'**मद्भक्तः**' पदका अर्थ है, भक्तियोगी मेरेमें ही अनन्य प्रेम रखनेवाला हो।' ऐसा अनन्यभक्त आनन्द-विभोर होकर अपने-आप भगवान्‌के समर्पित हो जाता है, उनके हाथकी कठपुतली बन जाता है।

श्रीहनुमानजी भगवान्‌के सहज सेवक हैं। सहज सेवक निष्काम भक्त होता है। वे किसी स्वार्थ या कारणवश श्रीरामके सेवक नहीं हुए हैं। '**आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ**'—इन चार प्रकारके भक्तोंमें वे उच्चकोटिके ज्ञानी अर्थात् निष्कामभावसे भूषित भगवान्‌के भक्त हैं। उनके स्वरूपके सम्बन्धमें तुलसीदासजी बताते हैं—

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।

(मानस २।१३१)

ज्ञानी भक्त तो मोक्ष चाहता है, किंतु भगवद्भक्त मोक्ष न चाहकर सहज स्नेह—अनपायिनी भक्तिका इच्छुक होता है। इस दृष्टिसे भक्तका शरीर बना रहना आवश्यक है। बिना शरीरके भक्ति हो ही नहीं सकती। ज्ञानयोगसे बोधकी प्राप्ति होती है और भक्तियोगसे प्रेमकी। भक्तियोगीको भगवान् विशेष प्रिय होते हैं और ज्ञानयोगीको अपना स्वरूप विशेष प्रिय होता है। श्रीतुलसीदासजीने लिखा है—

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥

(मानस ६।११२।४)

श्रीहनुमानजी यही माँगते हैं—

स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा।
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु॥

(वा० रा० ७।४०।१६)

'महाराज! आपके प्रति मेरा परम स्नेह सदा बना रहे। वीर! आपमें ही मेरी निश्चल भक्ति सदा बनी रहे। आपके सिवा मेरा और कहीं भी आन्तरिक अनुराग न हो।'

श्रीहनुमानजीमें '**मद्भक्त**' के अनुसार भगवान् श्रीरामके प्रति अनन्य प्रेम है और वे पूर्णतया भगवान् श्रीरामके प्रति समर्पित होकर उन्हींके भजन, ध्यान, गुणगान और कीर्तन आदिमें तन-मनकी सुध खोकर मग्न रहते हैं।

४—सङ्गवर्जितः—सङ्गसे रहित अर्थात् सम्पूर्ण प्राणी और पदार्थोंमें आसक्तिरहित होना। भगवान्‌को छोड़कर

जिसका कहीं और किसीमें किंचिन्मात्र भी प्रेम न हो, वह सङ्गवर्जित है। जो सङ्गवर्जित नहीं है, वह राग-द्वेषसे प्रेरित क्रियाओंमें घुल-मिल जाता है। राग-द्वेषसे ममत्व बढ़ता है और यही संसारसे सम्बन्ध जोड़नेवाला है। श्रीहनुमानजीका संसारमें लेशमात्र भी राग नहीं है। उनका ममत्व एकमात्र श्रीरामजीसे है। भक्तिमार्गका यह सिद्धान्त है कि जिसका भगवान्‌में राग होगा, उसका संसारसे द्वेष नहीं होगा। उसकी दृष्टिमें तो परमात्माके सिवा दूसरा कोई प्रेमास्पद है ही नहीं। इस सिद्धान्तके अनुसार श्रीहनुमानजीका भगवान् श्रीरामका अनन्यभक्त होनेके नाते 'सङ्गवर्जित' होना निर्विवाद सिद्ध होता है।

५—**सर्वभूतेषु निर्वैरः**—समस्त प्राणियोंके प्रति अद्वेषकी भावना रखना—'**अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्**'—यह भक्तिमार्गका अन्तिम साधन है। जैसा ऊपर कहा गया है, संसारमें राग न रहनेसे भगवान्‌में अनन्य प्रेम होता है और रागरहित होनेसे वैरभाव नहीं रहता। इस दृष्टिसे साधन-पञ्चकका अन्तिम साधन—'**निर्वैरः सर्वभूतेषु**', '**सङ्गवर्जितः**' के अन्तर्गत ही आ जाता है।

अनन्यभक्तका कहीं राग-द्वेष होता ही नहीं। इसलिये उसके द्वारा किया गया कोई कर्म यदि द्वेषभावसे प्रेरित दृष्टिगत होता है तो वह दर्शकका ही दोष है; क्योंकि जैसे भगवान्‌के सभी कार्य जीवके कल्याणके लिये ही होते हैं, इसी प्रकार उनके अनन्य सेवककी क्रियाएँ भी प्रभु-प्रेरित होनेके कारण जीवोंके कल्याणके लिये ही होती हैं, उनका कोई दूसरा प्रयोजन नहीं होता। भगवान् श्रीरामने जिन राक्षसोंको मारा, उन सभीको 'निज पद' दे दिया। यथा—ताड़का—'***दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।***' विराध—'***देखि दुखी निज धाम पठावा।***' खर-दूषण-प्रसङ्ग—'***राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।***' मारीच—'***मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना।***' कुम्भकर्ण—'***तासु तेज प्रभु बदन समाना।***' रावण—'***तासु तेज समान प्रभु आनन।***' सभी राक्षस—'***मुक्त भए छूटे भव बंधन।***'

इसी प्रकार जब श्रीहनुमानजीने मकरीको मारा तो वह भी दिव्य यानपर चढ़कर आकाशमें चली गयी और हनुमानजीके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हुई बोली—

कपि तव दरस भइउँ निष्पापा।

इसी प्रसङ्गमें कपट मुनिको श्रीहनुमानजीने अपनी पूँछमें लपेटकर मार डाला तो उसने भी '***राम राम कहि छाड़ेसि प्राना।***' स्मरण है न आपको—'***जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥***' यह श्रीहनुमानजीकी कृपाका ही फल है कि कपट मुनिको भी दुर्लभ गति प्राप्त हुई। सच तो यह है कि अनन्य-भक्तमें अपने प्रभुकी शक्ति अवतरित होती है; क्योंकि वह सारे कर्म प्रभुके लिये ही प्रभुकी प्रेरणासे ही करता है, इसलिये वह पाप-पुण्यके जनक कर्तृत्वाभिमानसे सर्वथा रहित होता है।

विभीषण-शरणागतिके प्रसङ्गमें सुग्रीवने विभीषणको रावणका भाई जानकर उसे संदेहास्पद व्यक्ति माना, किंतु श्रीहनुमानजीने तो लंकामें हुए प्रथम परिचयमें भी '*शत्रुके भाई*' के प्रति कोई द्वेषभाव नहीं दिखाया, प्रत्युत उसको प्रभुकी शरणमें लाकर उसका कल्याण कर दिया।

इसी प्रकार जब रावणके सम्मुख श्रीहनुमानजीको लाया गया और उनसे अक्षकुमारके मारनेका कारण पूछा गया तो उन्होंने निर्विकारभावसे यही उत्तर दिया—

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे।
तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा।
कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी।
मारहिं मोहि कुमारग गामी॥

(मानस ५। २२। ३, २)

यहाँ भी हनुमानजीका प्रभु-कार्य करनेका ही उद्देश्य है, द्वेषभावसे अक्षकुमारको मारनेका नहीं। भगवान्‌ने ऐसे अधर्मियोंका नाश करनेके लिये ही तो अवतार लिया था। श्रीहनुमानजी उस अवतार-लीलामें उनके सहायक थे, दास थे, सेवक थे। प्रभुका कार्य करना ही उनके जीवनका लक्ष्य था।

श्रीहनुमानजी सर्वथा निर्वैर थे। जिसका स्वभाव ही परहित-साधन हो, वह किसीसे वैर कैसे कर सकता है? श्रीरामजी और उनके सेवक श्रीहनुमानजीका स्वभाव है—
'**हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥**'

(मानस ७। ४७। ३)

सच तो यह है कि अनन्यभक्तिके जो पाँच साधन—**मत्कर्मकृत्, मत्परमः, मद्भक्तः, सङ्गवर्जितः** और **सर्वभूतेषु निर्वैरः** बताये गये हैं, इनमेंसे किसी एकका भी आश्रय ग्रहण कर लेनेसे शेष चार साधन भी स्वतःसिद्ध हो जाते हैं और भगवान्‌की भक्ति प्राप्त हो जाती है। श्रीहनुमानजीके चरित्रका अनुकरण तथा उनका भजन करनेसे श्रीरामजीकी प्राप्ति हो जाती है—'***तुम्हरे भजन राम को पावै।***'

निष्ठावान् सेवक श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीहरिकृष्ण दुजारी)

भगवान्‌को सेवक अत्यन्त प्रिय होता है। उन्होंने स्वयं कहा है—

समदरसी मोहि कह सब कोऊ।
सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥

भगवान् शंकर इस रहस्यको जानते हैं, इसीलिये उन्होंने स्वयं हनुमानजीके रूपमें अवतरित होकर भगवान् श्रीरामजीकी सेवा कर दास्य-भक्तिका अत्यन्त भव्य एवं अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया।

अनन्य निष्ठा

सेवकको अपने प्रभुकी कृपाका ही अवलम्ब रहता है, उस कृपाके आश्रयमें ही वह अपने सब कार्योंका सम्पादन करता है और प्रभुकी कृपाकी ओर ही निहारता रहता है। प्रभु-कृपाका आश्रय ही अनन्य निष्ठाका परिचायक है।

हनुमानजीकी अनन्य निष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ती है, वे विश्वके, ब्रह्माण्डके कण-कणमें अपने प्रभुको विराजमान देखते हैं। एक बार विधुके निर्मल प्रकाशमें विभीषण, सुग्रीव, अङ्गद, नील, नल, हनुमानजी आदिके साथ भगवान् श्रीराम सुबेलपर्वतके शिखरपर विराजमान थे। उन्होंने सबसे पूछा—'चन्द्रमामें यह श्यामता कैसी है?' सभी लोगोंने अपने-अपने विचार प्रकट किये। अन्तमें हनुमानजीने कहा—

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥

(मानस ६।१२)

'प्रभो! सुनिये, चन्द्रमा आपका प्रिय दास है। आपकी सुन्दर श्याम मूर्ति चन्द्रमाके हृदयमें बसती है, वही श्यामताकी झलक उसमें है।' हनुमानजीका यह उत्तर उनके हृदयकी निष्ठाका परिचायक है। हनुमानजीके हृदयमें सदैव उनके प्रभु श्रीरामजी विराजमान हैं। इसका प्रमाण उन्होंने मणि-विदारणके समय अपना हृदय चीरकर सबको दिखा दिया था। उन्हें भीतर-बाहर सर्वत्र वे ही दीखते हैं।

सेवा

अनन्य निष्ठाकी तरह सेवा-भावका भी हनुमानजीके जीवनमें पूर्ण विकास है। अनन्य वही है, जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि 'मैं सेवक हूँ और चराचर (जड-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भगवान्‌का रूप है।' हनुमानजीका यही लक्षण अपने प्रभु श्रीरामजीसे प्रथम भेंटमें दिखायी देता है—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(मानस ४।३)

दासकी गति अपने स्वामीको छोड़कर दूसरी ओर होती ही नहीं और उसके चिन्तनका विषय होता है एकमात्र अपने प्रभुकी सेवा। दासके हृदयमें नित्य-निरन्तर अपने स्वामीकी सेवाके लिये व्याकुलता बनी रहती है। अपने प्रभुको पहचानते ही हनुमानजी उनकी सेवामें तत्पर हो गये। प्रभुका वियोग-दुःख उनसे देखा नहीं गया और माता जानकीकी खोजकी उन्हें चिन्ता हो गयी। उन्होंने तुरंत निवेदन किया—

'नाथ! इस पर्वतपर वानरराज सुग्रीव रहते हैं, वे आपके दास हैं। प्रभो! उनसे मित्रता कीजिये और उन्हें दीन जानकर निर्भय कर दीजिये। वे सीताजीकी खोज करायेंगे और जहाँ-तहाँ करोड़ों वानरोंको भेजेंगे।' इस प्रकार सब बातें समझाकर हनुमानजी अवसरसे चूकनेवाले नहीं थे, वे अपने आराध्यको पैदल कैसे ले चलते? तुरंत दोनों भाइयोंको कंधोंपर चढ़ा लिया और सुग्रीवके पास ले गये।

स्वामीकी प्रसन्नता एवं संतोष ही सेवककी निधि होती है। हनुमानजीको तो सेवा करनेमें विलक्षण रस मिलता है, जिसे प्राप्तकर वे प्रतिक्षण आनन्दित होते रहते हैं। वे तो सेवा करते ही हैं अपने सुखके लिये। वे सेवाको ही अपना परम स्वार्थ समझते हैं, उन्हें तो सेवा करनेमें पग-पगपर आनन्द मिलता है। अपने स्वामीको सुख पहुँचानेके लिये अपने ऊपर आनेवाले किसी भी भयानक-से-भयानक कष्टकी उन्हें परवा नहीं थी। अपितु वे प्रभुके कार्यमें आये कष्टको—विपत्तिको परम सुख मानकर वरण कर लेते हैं, सिर चढ़ाते हैं, हृदयसे लगाते हैं।

एक विलक्षण गुण हनुमानजीमें यह भी है कि वे स्वयं ज्ञानिनामग्रगण्य, विद्या-विशारद, संगीत-नृत्य आदि कलाओंमें निपुण, अतुलित बलशाली एवं सर्वगुणसम्पन्न होकर भी अपने प्रभुकी छोटी-से-छोटी

सेवा भी करनेको सदैव तैयार रहते हैं। प्रभुके सभी कार्योंमें पूर्ण सफलता प्राप्त करके भी उनके हृदयमें सदैव यही भाव रहता है—

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

निष्ठावान् सेवकोंके लिये तो हनुमानजी परम आदर्श हैं ही। उनका स्मरण सभीके लिये परम मङ्गलमय है।

जीवन-स्रोत श्रीहनुमान

(लेखक—पं० श्रीरामदरशजी त्रिपाठी, पत्रकार)

हनुमानजी श्रीराम-नामको हृदयमें धारणकर समुद्रको पार कर गये। सुरसासे दूना रूप और आकार, फिर अत्यन्त लघु, जिस पर्वतपर चरण, वह पातालमें, ऐसी स्थिति आयी केवल नामधारणसे। वही नाम साकार हो जाता है, हृदय चीरकर दिखा दिया जाता है, जिस समय प्रभु श्रीराम, माँ जानकी प्रत्यक्ष होती हैं—ऐसे रुद्रावतार श्रीहनुमानजी हैं। लंकाधिपति रावण अपने दस सिरोंको काट-काटकर पुष्पकी भाँति श्रीशिवजीकी अर्चनामें भेंट कर चुका था। दस रुद्र उसके वशमें, काल उसकी कोठरीमें, देवता नतमस्तक, परिस्थिति विकट, सृजनकर्ताका उसे वरदान, संहारकर्ता उसके वशमें, पालनकर्ताकी प्रतिज्ञा कि जब भी पृथ्वीपर अभिमानी असुरोंका बोझ बढ़े तो उसे हटाना, इसमें संहार-अधिपतिकी सहायता आवश्यक, इसी हेतु एकादश रुद्रका श्रीहनुमत्-रूपावतार।

श्रीहनुमान-चरित एक जीवन-दर्शन है, जिसका मनन-श्रवण परलोक सुधारनेका अवलम्ब तो है ही, इस जीवनमें सफलताकी एक महत्त्वपूर्ण कुंजी है, जिसके प्रयोगसे जीवनमार्गके सभी बंद द्वार अनायास खुल जाते हैं। सांसारिक जीवनमें आवश्यकता होती है सभीको एक मित्रकी, एक पथप्रदर्शककी, एक सेवककी, चाहे व्यक्ति साधारण हो, असाधारण हो अथवा पुरुषोत्तम हो। ये तीनों आवश्यकताएँ अकेले श्रीहनुमत्-चरितसे पूरी हो जाती हैं।

श्रीहनुमानजी—आदर्श मित्ररूपमें

पम्पापुरनरेश वाली अपने सगे भाईको सत्तासे विच्युत कर अनाश्रित बना देता है। सुग्रीव भाईके डरसे ऋष्यमूक-पर्वतकी कन्दरामें निवास करते हैं—निर्वासित जीवन व्यतीत करते हैं, निरन्तर भयपूर्ण स्थितिमें रहते हैं कि 'न जाने कब, किस छद्मवेशमें वालीद्वारा भेजा गया कोई गुप्त शत्रु हत्या कर दे।' ऋषिशापवश वह स्वयं तो वहाँ आ नहीं सकता। ऐसी भयपूर्ण मन:स्थितिमें बलशाली श्रीहनुमानजी सत्ताधिपति वालीको, जिसके साथ रहकर प्राप्त सभी सम्भव सुखोंका उपभोग कर सकते थे, त्यागकर कन्दरानिवासी सुग्रीवकी रक्षा करते हैं और मित्रता निभाते हैं। केवल मित्रता निभानेकी इतिश्री इतनेसे ही नहीं, प्रत्युत इससे आगे मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामसे उनकी मित्रता भी कराते हैं। सुग्रीवसे मित्रता निभानेके लिये योद्धा श्रीहनुमान विप्र हनुमान बनते हैं, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामसे मिलते हैं। सुग्रीवकी इस शङ्काका निवारण करनेहेतु कि कहीं युगल योद्धाओंके रूपमें वालीद्वारा प्रेरित शत्रु तो नहीं आ रहे हैं। श्रीहनुमान श्रीरामसे मिलते हैं, जीव परमात्मासे मिलता है, एकाकार होता है। साधककी साधना सफल होती है, किंतु इतनी ही सफलतासे मित्र श्रीहनुमानको चैन कहाँ, जबतक मित्र दु:खमें, तबतक शान्ति कहाँ। श्रीराम-सुग्रीवकी मित्रता, श्रीहनुमानकी प्रेरणा और परिणाम हुआ वालीवध, सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य, भय समाप्त, खोयी हुई सत्ताकी प्राप्ति, मित्रके वास्तविक चरित्रका प्रत्यक्षीकरण श्रीहनुमानद्वारा।

ब्राह्ममुहूर्तकी वेला, अन्त:पुर देखा जा चुका, कोई भवन बाकी न बचा, श्रीहनुमानजी चिन्तित। राम-नाम-उच्चारणके साथ विभीषण जागे, श्रीहनुमान उनसे मिले, हृदय मिला, मित्रता हुई। सुग्रीवकी घटना पुन: दुहरायी गयी। विभीषण लंकाधिपति हुए। आसुरी शक्तियोंका विनाश हुआ। विभीषणने श्रीरामानुशासनमें शासन-सूत्र अन्तत: सँभाला अर्थात् क्षणिक मैत्रीसे, जो ब्राह्ममुहूर्तमें हुई, श्रीहनुमानने विभीषणको मित्र माना तो श्रीरामसे उन्हें मिलाया, राजा बनाया। इस प्रकार दोको अधिपति बनाया मित्र श्रीहनुमानने, जो दैनिक जीवनमें निरन्तर मित्रके कर्तव्य एवं प्रेरणाके प्रकाशस्तम्भ हैं।

पथप्रदर्शक हनुमान

'माँ जानकीकी सूचना लाये बिना लौटे तो जीवित नहीं बचोगे'—आदेश हुआ राजा सुग्रीवका। समुद्र-तटपर किंकर्तव्यविमूढ़ सभी शोकमग्न। सम्पातिने इतनी

सूचना तो दे दी कि लङ्कामें माँ जानकी हैं। मात्र सूचनासे, बिना निशानी लाये जीवन बचनेकी कोई सम्भावना न थी। जाम्बवान् अपने पूर्व पौरुषके न रहनेसे असहाय, युवराज अङ्गद वापसीके प्रति शङ्कालु, सभी वीर योद्धा शोकमग्न। चेतना हुई, जाम्बवान्के वचन अच्छे लगे, 'जबतक लौट न आऊँ, प्रतीक्षा करो' का मार्ग प्रदर्शित कर समुद्र-लङ्घन किया वीर श्रीहनुमानने और जीवन-पथके प्रदर्शक बने इन सभी वीरोंके। श्रीराम-हनुमानकी गाथाएँ प्रत्यक्ष रहीं त्रेतामें। द्वापरमें भीमके पथप्रदर्शक बने, अहंकार छोड़नेमें जब स्वर्गका मार्ग रोककर बैठ गये, अन्यथा भीम उस मार्गसे कहीं और निकल जाते कर्तव्यसे च्युत होकर। कलियुग भी श्रीहनुमानके पथप्रदर्शनसे वञ्चित नहीं। घर-घरमें प्रचलित रामचरितमानसके रचनाकारकी इच्छा हुई रामदर्शनकी। पथप्रदर्शक श्रीहनुमान प्रत्यक्ष हुए, तुलसीदासकी सहायता की कि वे भगवान् रामका दर्शन कर सकें, जब वे चूकते ही रहे तो बाध्य हो श्रीहनुमानको प्रत्यक्षत: कहना पड़ा कि 'तुलसीदास चन्दन घिस रहे हो, जिसे रघुवीर ग्रहण कर रहे हैं', तुलसीदासको श्रीराम मिल गये। परिणामत: मानवताको रामचरितमानस मिल गया। जो सम्भव हुआ पथप्रदर्शक श्रीहनुमानके नाते। जीवनके पल-पलमें, प्रत्येक कठिनाईमें, हर कार्यमें निरन्तर सुलभ हैं पथप्रदर्शनहेतु श्रीहनुमान, केवल विलम्ब है उन्हें पुकारनेमें।

सेवक श्रीहनुमान

भक्तिमार्गमें श्रीहनुमानकी श्रीरामभक्ति दासभावकी भक्ति है, जब कि श्रीराम उन्हें भ्रातृभावसे मानते हैं। दासभावकी भक्तिका जो स्वरूप सेवक श्रीहनुमानने प्रस्तुत किया, वह अवर्णनीय है। अकेले लंकामें युद्ध, अक्षकुमारसहित अगणित योद्धाओंको जुझाते हुए माँ जानकीकी निशानीसहित वापसी, अपने प्रभु श्रीरामके चरणोंमें बैठकर उनकी सेवा करते हुए रावणसे युद्ध, अहिरावणद्वारा छल-कपटसे श्रीराम-लक्ष्मणको पाताल ले जाकर बलिकी तैयारीके समय अकेले जीवनका मोह छोड़ पाताल-यात्रा, अपने प्रभुके लिये जीवनका जोखिम उठाकर युद्ध और अहिरावणको पराजितकर प्रभुसहित प्रत्यावर्तन किया श्रीहनुमानने।

इस प्रकार श्रीहनुमानजीने एक मित्र, एक पथप्रदर्शक एवं एक सेवकके रूपमें जो मान्यता स्थापित की, उसके हजारवें भागको यदि जीवनमें उतारा जा सके तो नि:संदेह लौकिक उपलब्धि भी होगी, पारलौकिक तो सुनिश्चित ही है।

श्रीहनुमान-नारद-मिलन

(लेखक—श्रीश्यामलालजी हकीम)

देवर्षि श्रीनारद भगवद्भक्तिके आचार्य हैं। भक्तिका प्रचार-प्रसार तथा आचरणद्वारा आदर्श स्थापन कर जागतिक जीवोंको भगवदुन्मुख करना ही इनका एकमात्र ध्येय या लक्ष्य है। इनको भगवान्‌का मन कहकर भी वर्णन किया गया है। जीवका निस्तार करना जैसे श्रीभगवान्‌का सहज स्वभाव या धर्म है, उसी प्रकार उनके मनस्वरूप श्रीनारद भी जीवोंको भगवदुन्मुख करनेमें सतत तत्पर रहकर अबाधगतिसे त्रिभुवनमें विचरण करते रहते हैं।

जैसे श्रीभगवान्‌के अनन्त स्वरूप और अनन्त धाम हैं, उसी प्रकार उनके भक्त भी अनन्त हैं। यह विचारकर एक बार श्रीनारदजीके मनमें कौतुकवश यह जाननेकी तीव्र उत्कण्ठा जाग उठी कि श्रीभगवान्‌का सबसे अधिक प्रिय भक्त या कृपापात्र कौन है? इसी संदर्भमें वे पृथिवीलोक-स्थित प्रयागनिवासी एक ब्राह्मण भक्तसे मिले, जो श्रीशालग्रामका प्रिय भक्त था। श्रीनारदजीने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—'विप्र! आप श्रीभगवान्‌के परम भक्त हैं।' उस ब्राह्मणने अपनी दीनता प्रकट करते हुए निकटवर्ती देशके राजाका परिचय दिया कि वास्तवमें वह राजा ही श्रीभगवान्‌का परम भक्त है। श्रीनारदजी उस राजाके निकट पहुँचे और उसकी प्रशंसा की। परंतु राजाने भी अपनेको भगवत्कृपासे वञ्चित बताकर देवराज इन्द्रको भगवान्‌का पूर्ण कृपापात्र बतलाया।

कितनी देर लगती है श्रीनारदजीको? ये तुरंत स्वर्गलोकमें इन्द्रके पास पहुँचे और बोले—'देवराज! आप धन्य हैं एवं श्रीभगवान्‌के पूर्ण कृपापात्र हैं; क्योंकि श्रीउपेन्द्र भगवान् आपके छोटे भाई बनकर यहाँ

विराजमान रहते हैं। समस्त लोकपाल, मुनिगणादि आपकी आज्ञाके वशवर्ती हैं।' श्रीनारदद्वारा अनेक प्रकारकी स्तुति सुनकर इन्द्रने अपने दोषोंकी गाथा कह सुनायी और अपनेको भगवत्-कृपासे वञ्चित बतलाया। इन्द्रने श्रीनारदजीको ब्रह्मलोकमें भेजा और श्रीब्रह्माजीको भगवान्‌का परम कृपापात्र बताया।

श्रीनारदजी ब्रह्माजीके पास पहुँचे। ब्रह्माजीने श्रीमहादेवजीको ही श्रीभगवान्‌का परम प्रिय भक्त बताकर उन्हें शिवलोक भेज दिया। श्रीमहादेवजीने भी अपनेको भगवत्-कृपापात्र नहीं माना और वैकुण्ठवासियोंके भाग्यकी सराहना की। श्रीपार्वतीजीने वैकुण्ठवासियोंमें श्रीलक्ष्मीजीको श्रीभगवान्‌का परम कृपापात्र कहकर वर्णन किया। जब श्रीनारदजी वैकुण्ठ जाने लगे तो महादेवजीने उन्हें बताया कि इस समय श्रीभगवान् भौम द्वारकापुरीमें लीला कर रहे हैं। अतः आप सुतललोकमें जाकर उनके परम प्रिय भक्त प्रह्लादजीके दर्शन करें।

श्रीनारदजी प्रह्लादजीके पास पहुँचे और उनकी गुणमहिमाका गान करते हुए कहने लगे—'प्रह्लादजी! निश्चय ही आप श्रीभगवान्‌के श्रेष्ठ भक्त हैं। उनकी जैसी कृपा आपपर है, वैसी और किसीपर भी नहीं है।' श्रीप्रह्लादजी भला कैसे इस बातको सहन करते?

वस्तुतः भक्ति एवं भगवत्-कृपाका स्वभाव है दैन्य और प्राण है विनम्रता। परम भगवत्-कृपा-प्राप्त होते हुए भी भक्त अपनेको कृपा-वञ्चित मानता है, सदा अतृप्त रहता है कृपाकादम्बिनीके लिये।

श्रीप्रह्लादजीने अपने सम्बन्धमें श्रीनारदजीकी समस्त धारणाओंका निरसन करते हुए अन्तमें कहा—

निरुपाधिकृपार्द्रचित्त हे बहुदौर्भाग्यनिरूपणेन किम्।
तव शुग्जननेन पश्य तत् करुणां किंपुरुषे हनूमति॥

(बृहद्भागवतामृत १।४।३६)

'मुनिश्रेष्ठ! आप निर्हेतुक कृपालु हैं। मैं अपने दुर्भाग्योंका अधिक निरूपण कर आपको दुःखी नहीं करना चाहता। आप किम्पुरुषवर्षमें जाकर श्रीहनुमानजीके दर्शन कीजिये।'

श्रीप्रह्लादजीने आगे कहा—

हनूमांस्तु महाभाग्यस्तत्सेवासुखमन्वभूत्।
सुबहूनि सहस्राणि वत्सराणामविघ्नकम्॥
यो बलिष्ठतमो बाल्ये देववृन्दप्रसादतः।
सम्प्राप्तसद्वरव्रातो जरामरणवर्जितः॥

(वही १।४।३९-४०)

'श्रीहनुमानजी ही बड़े भाग्यशाली हैं, उन्होंने भगवान् श्रीराघवेन्द्रके सेवा-सुखका निरन्तर ग्यारह हजार वर्षोंतक निर्विघ्नरूपसे आस्वादन किया है। वे अतिशय बलवान् हैं और देवताओंकी कृपासे अनेक वर प्राप्त कर वे जरा-मरणसे रहित हैं।'

'नारदजी! आप विचार कीजिये, श्रीहनुमानजी-जैसा भगवत्-कृपापात्र और कौन हो सकता है? वे प्रभु श्रीराघवेन्द्रके श्रेष्ठ वाहन हैं। उनकी पूँछ प्रभुके लिये श्वेत छत्रस्थानीय है। उनकी पीठ प्रभुका सुखद आसन है। सच पूछिये तो श्रीरामकी विजयके सम्पादक श्रीहनुमानजी ही हैं। अतः वे ही सब प्रकारसे श्रीभगवान्‌के कृपा-भाजन हैं। यहाँतक कि प्रभुका आज्ञापालन करते हुए वे श्रीराघवेन्द्रके असह्य विरहको भी सहनकर यहाँ पृथ्वीलोकपर विराजते हैं, प्रभुके साथ साकेत लोकमें नहीं गये। केवल इसलिये कि भगवद्विमुख जीवोंको दास्य-भक्तिकी शिक्षा प्रदान कर उनका संसारसागरसे निस्तार कर सकें।'

स्वामिन् कपिपतिर्दास्य इत्यादिवचनैः खलु।
प्रसिद्धो महिमा तस्य दास्यमेव प्रभोः कृपा॥
यदृच्छया लब्धमपि विष्णोर्दाशरथेस्तु यः।
नैच्छन्मोक्षं विना दास्यं तस्मै हनुमते नमः॥

(वही १।४।५०-५१)

श्रीप्रह्लादजीने फिर कहा—'स्वामिन्! दास्य-भक्तिमें श्रीहनुमानजीकी महिमा प्रसिद्ध है। वे अग्रगण्य हैं। श्रीरामजीसे अनायास मुक्ति प्राप्त कर सकते हुए भी जिन्होंने उनकी दास्य-भक्ति माँगी अथवा दास होना ही स्वीकार किया, मैं उन श्रीहनुमानजीको प्रणाम ही करता हूँ और अधिक क्या कहूँ? नारदजी! मुझसे अधिक उनकी महिमा तो आप ही जानते हैं।'

श्रीप्रह्लादजीसे श्रीहनुमानजीकी अलौकिक गुणावलि सुनकर श्रीनारदजी किम्पुरुषवर्षमें पहुँचे। उस समय श्रीहनुमानजी श्रीराघवेन्द्रकी चरणसेवामें लगे हुए थे। श्रीनारदजी श्रीहनुमानजीके दर्शन करते ही उल्लसित हो उठे और 'जय श्रीराघवेन्द्र', 'जय श्रीलक्ष्मण' कहकर नाचने लगे। श्रीहनुमानजीने उछलकर अपने प्रभु-नाम-कीर्तनकारी श्रीनारदजीको गोदीमें भर लिया। वे परमानन्दित हो उठे।

श्रीनारदजी बोले—

श्रीमन् भगवतः सत्यं त्वमेव परमप्रियः।
अहं च तत्प्रियोऽभूवमद्य यत्त्वां व्यलोकयम्॥

(वही १।४।६०)

'श्रीमन् मारुति! सत्य ही आप श्रीभगवान्‌के परम प्रिय हो, आप ही उनके परम कृपापात्र हो। मैं भी आपके दर्शन कर आज प्रभुका प्यारा बन गया और श्रीभगवान्‌की कृपाका अनुभव कर रहा हूँ।'

इस प्रकार श्रीनारदजीने श्रीहनुमानजीकी अनेक प्रकारसे प्रशंसा की, परंतु श्रीहनुमानजीने उसके प्रत्युत्तरमें क्या कहा, उसे पाठकगण श्रीसनातन गोस्वामिपादविरचित—'श्रीबृहद्भागवतामृतम्' नामक ग्रन्थ-रत्नमें अध्ययन करें।

~~~ 0 ~~~

श्रीरामनाम-रसिक हनुमानजी

(लेखक—श्रीशत्रुहनशरणजी)

हमारे श्रीहनुमंतलालजी विशेषरूपसे श्रीराम-नामके कीर्तनपरायण ही रहा करते हैं। नाम-कीर्तन प्रारम्भ करते ही आप प्रेमोन्मत्त हो जाते हैं। आपके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी झड़ी-सी लग जाती है। सम्पूर्ण श्रीविग्रहके रोंगटे ऐसे सुदीप्तरूपसे खड़े हो जाते हैं—'**पुलक सरीर पनस फल जैसा॥**'

श्रीहनुमत्संहितोक्त निम्नोद्धृत श्लोकमें श्रीहनुमानजी अपनी रसनाको आदेश दे रहे हैं—

हे जिह्वे जानकीजानेर्नाम माधुर्यमण्डितम्।
भजस्व सततं प्रेम्णा चेद्वाञ्छसि हितं स्वकम्॥
जिह्वे श्रीरामसंलापे विलम्बं कुरुषे कथम्।
वृथा नायाति ते किंचिद्विना श्रीनामसुन्दरम्॥

'हे रसने! यदि तू अपना कल्याण चाहती है तो श्रीजानकी-जीवनका मधुरातिमधुर 'राम' नाम सतत प्रेमपूर्वक रटती रह। जिह्वे! श्रीराम-नामका उच्चारण करनेमें तू देर क्यों कर रही है? मधुर मनोहर श्रीराम-नामके उच्चारण बिना तेरा क्षणमात्र भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिये।'

श्रीहनुमानजीका सिद्धान्त है कि जीव चाहे लेटा हो या बैठा हो अथवा खड़ा ही क्यों न हो, जिस किसी भी दशामें श्रीराम-नामका स्मरण करके वह भगवान्‌के परमपदको प्राप्त हो जाता है।

आसीनो वा शयानो वा तिष्ठन् वा यत्र कुत्र वा।
श्रीरामनाम संस्मृत्य याति तत्परमं पदम्॥

श्रीराम-नामको हनुमानजीने अपना जीवनसर्वस्व मान रखा है—

केवलं रामनामैव सदा मज्जीवनं मुने।
सत्यं वदामि सर्वस्वमिदमेकं सदा मम॥

'मुने! एकमात्र श्रीराम-नाम ही मेरा जीवन है। मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि सदा-सर्वदा मेरा एकमात्र सर्वस्व श्रीराम-नाम ही है।'

श्रीहनुमंतलालजीके विश्वस्त हृदयमें श्रीराम-नामका परम-तत्त्व ऐसा जम गया है कि इसकी तुलनामें आप अन्यान्य साधनोंको अत्यल्प मानते हैं। श्रीआदिरामायणमें सेतुबन्ध-प्रसङ्गमें नल-नीलको श्रीराम-नामका उपदेश करते हुए आप कह रहे हैं—

एकतः सकला मन्त्रा एकतो ज्ञानकोटयः।
एकतो रामनाम स्यात् तदपि स्यान्न वै समम्॥
देशकालक्रियाज्ञानादनपेक्ष्यः स्वरूपतः।
अनन्तकोटिफलदो राममन्त्रो जगत्पतेः॥

अर्थात् तराजूके एक पलड़ेपर सभी महामन्त्रोंके एवं कोटि-कोटि ज्ञान-ध्यानादि साधनोंके फलोंको रखा जाय, दूसरे पलड़ेपर केवल श्रीराम-नामको ही रखा जाय तो भी सब मिलकर श्रीराम-नामकी तुलना नहीं कर सकते। श्रीराम-नामकी आराधनामें अन्य साधनोंकी भाँति देश-कालकी पवित्रता एवं अनुष्ठानादि क्रिया और ज्ञानकी अपेक्षा नहीं होती। उच्चारणमात्रसे ही अनन्तकोटि फल प्रदान करनेवाले हैं—श्रीराम-नामरूपी मन्त्र।

श्रीराम-नाम-भजनमें विलक्षणता यह है—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र सर्वेश्वर परम प्रभुको भी वशमें करनेवाले श्रीराम-नामकीर्तनकी बराबरी भला अन्य साधन कैसे कर सकेंगे?

जो सदा स्नेहपूर्वक श्रीराम-नाम-जप करते हैं, उनके ऊपर तो हनुमानजी लट्टू हो जाते हैं। उनके लिये आप कल्पवृक्ष बनकर सभी मनोरथोंको सफल करते रहते हैं। आपके ही मुखसे सुन लीजिये—

ये जपन्ति सदा स्नेहान्नाम माङ्गल्यकारणम्।
श्रीमतो रामचन्द्रस्य कृपालोर्मम स्वामिनः॥
~~~

तेषामर्थे सदा विप्र प्रदाताहं प्रयत्नतः।
ददामि वाञ्छितं नित्यं सर्वदा सौख्यमुत्तमम्॥

'विप्रवर ! जो मानव मेरे स्वामी दयासागर श्रीमान् रामचन्द्रजीके मङ्गलकारी नामका सदा प्रेमपूर्वक जप करते हैं, उनके लिये मैं सदा प्रयत्नपूर्वक प्रदाता बना रहता हूँ। मैं नित्य उनकी अभिलाषा-पूर्ति करते हुए उन्हें उत्तम सुख देता रहता हूँ।'

इस प्रकार श्रीहनुमानजी स्वयं तो नाम-कीर्तनमें सदा जागरूक रहते ही हैं, अन्य कीर्तन-प्रेमियोंकी भी सदा रक्षा और सहायता करते रहते हैं।

श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० श्रीसर्वानन्दजी पाठक, एम्०ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, काव्यतीर्थ, पुराणाचार्य)

तत्त्वतः सम्पूर्ण सृष्टिमें परब्रह्म परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीका अस्तित्व नहीं है। स्थावर-जङ्गमरूपमें जो कुछ भी तत्त्व दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे सब ब्रह्मके ही प्रतीक हैं। विश्वका विकास उसी ब्रह्मका लीला-विलास है—तदितर कुछ भी नहीं है।[1] उस एक ही अव्यय—सनातन तत्त्वको मेधावीलोग इन्द्र, वरुण, वायु आदि भिन्न-भिन्न नामोंसे सम्बोधित करते हैं, पर उस परमतत्त्वमें वस्तुतः अनेकता नहीं है।[2] जब कल्पके आदिमें इस परम चैतन्य-तत्त्वने अपनेको एकाकी देखा—अनुभव किया, उसमें सृष्टिके लिये संकल्पोदय हुआ और उसने कामना की—मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ, प्रजासृष्टि करूँ।[3] तब स्वयं ही वह बहुरूप हो गया और सृष्टिक्रम चला।[4] अब प्रश्न यह उठता है कि उस सर्वशक्तिमान्‌को किसी व्यापारकी कामना क्यों हुई; क्योंकि कामना अथवा आकाङ्क्षा तो अभावग्रस्त व्यक्तियोंको ही होना तर्कसंगत है। उस सर्वशक्तिमान् परमतत्त्वको किसी पदार्थकी कामना हो—इस प्रतिपादनमें विरोधाभास लगता है। इसका प्रत्यक्ष समाधान करना न तो साधारण मानव-मस्तिष्कके लिये सम्भव है और न तार्किकके पास इस लोकोत्तर रहस्यको समझनेकी शक्ति ही है; क्योंकि तर्ककी कोई सीमा नहीं है।[5] वह तत्त्व तर्क और मानव-बुद्धिकी पहुँचसे परे है। ब्रह्मके सनातन स्वरूपके निर्धारणके सम्बन्धमें वैदिक उक्ति है—'वह अमृतस्वरूप, मृत्यु और परिवर्तनरूप विकारसे रहित तथा नित्य सत्य परमानन्दघन है। ब्रह्म ही इस सम्पूर्ण सृष्टिमें अपना लीलाभिनय करता हुआ हमारे आगे-पीछे, दाहिने-बायें, ऊपर-नीचे सर्वत्र प्रसरित होकर विभिन्न रूपोंमें अपना अस्तित्व धारण कर रहा है। ब्रह्म ही विश्वका यथार्थ रूप है और वही एकमात्र आराध्य तथा आकाङ्क्षणीय तत्त्व है। इस सम्पूर्ण दृश्यमान विश्व-तत्त्वको साक्षात् ब्रह्मके ही रूपमें अनुभव किये बिना हमारा जीवन कदापि निःश्रेयस्‌में प्रतिष्ठित हो ही नहीं सकता'।[6] जिससे ये दृश्यमान चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवन धारण करते हैं तथा अन्तमें इस लोकसे प्रयाण करते हुए जिसमें समाविष्ट हो जाते हैं, वही 'ब्रह्म'-पदवाच्य है।[7]

जिस प्रकार सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन, वराह, मीन आदि परमात्माके अवतार हैं, उसी प्रकार विश्वके समस्त प्राणी भी अंशी श्रीकृष्णरूप परमेश्वरके ही अवतार हैं। अंश या कलाकी न्यूनाधिकताके अनुपातसे ईश्वर, देवता तथा मनुष्य आदि कोटियोंका विभाजन होता है। इनमें जो लोकोत्तर शक्तिसम्पन्न हुए, वे देवता या ईश्वर-नामसे अभिहित हुए और जो केवल लौकिक बल-बुद्धिसे सम्पन्न हुए, वे मनुष्य आदि

१-(क) सर्वं खल्विदं ब्रह्म। (छान्दोग्योपनिषद् ३।१४।१) (ख) जीवो ब्रह्मैव नापरः। (ग) नेह नानास्ति किंचन। (कठोपनिषद् २।१।११)

२-एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। (ऋग्वेद १।१६४।४६)

३-तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति। (छान्दोग्य-उप० ६।२।३)

४-तदात्मानः स्वयमकुरुत। (तैत्तिरीय-उप० २।७।१)

५-तर्काप्रतिष्ठानात्। (ब्रह्मसूत्र २।१।११)

६-ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥ (मुण्डकोपनिषद् २।२।११)

७-यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद् विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति। (तैत्तिरीय-उप० ३।१।१)

जागतिक प्राणी कहलाये। परंतु वासुदेव श्रीकृष्ण तो सम्पूर्ण कलाओंसे परिपूर्ण होकर धराधामपर अवतीर्ण हुए थे।[१] उन्हीं प्रभु श्रीकृष्णकी घोषणा है—'इस देहमें यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है और यही प्रकृतिस्थित मन तथा त्वक्, रसना, चक्षुष्; कर्ण और नासिका—इन पाँचों इन्द्रियोंको आकर्षित करता है; अर्थात् यह जीवात्मा परमेश्वरका ही सनातन अंश है—उन्हींका स्वरूप है; परंतु मायाके संयोगसे त्वक् आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों और छठे मनके साथ लिङ्ग-शरीर धारणकर संसारमें गमनागमन करता है।[२] इसी प्रकार वैदिक प्रतिपादन भी है—'भगवान्‌के भिन्न-भिन्न रूपोंकी परछाईंके समान आत्मा अस्तित्व धारण करता हुआ-सा प्रतीत होता है'।[३] जब आदिदेव नारायणने अपने द्वारा उत्पन्न किये हुए पञ्चभूतोंकी सहायतासे ब्रह्माण्डरूपी देहका निर्माण करके उसमें अपने अंशसे प्रवेश किया, तब वे ही 'पुरुष' नामधारी हुए।[४] भगवान् श्रीकृष्ण भी कहते हैं—'धनंजय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।'[५] इसीका समर्थन करते हुए पुराणान्तरका प्रतिपादन है—उसीमें यह सम्पूर्ण चराचर ओत-प्रोत है और सम्पूर्ण जगत् उसीका स्वरूप है, उससे भिन्न कुछ नहीं है। उसको जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है।[६] सत्त्वगुणसम्पन्न परमात्माके अवतारोंकी कोई संख्या नहीं—वे संख्यातीत हैं।[७] अस्तु।

वर्तमान निबन्धके प्रतिपाद्य पवनतनय श्रीहनुमानजी अपनी मनोजवता, अखण्ड जितेन्द्रियता, अतुलितबलधामता, ज्ञानियोंमें अग्रगण्यता आदि अलौकिक ईश्वरीय गुणोंसे सम्पन्न होनेके कारण देवकोटिमें ही आते हैं।[८]

'हनुमान् या हनूमान्' पद **'हनुमत् या हनूमत्'** शब्दकी प्रथमा विभक्तिका एकवचनान्त रूप है। इस शब्दकी शब्दशास्त्रीय व्युत्पत्ति अनेक प्रकारसे होती है—(१) **'हनु'** या **'हनू'** (जो ठुड्डी—ऊपरी जबड़ेका वाचक है) शब्दके आगे **'तदस्य अस्ति'** (पा० ५। २। ९४) अर्थमें अथवा **अतिशायन** अर्थमें भी **'तद्धितीय' 'मतुप्'** प्रत्ययके योगसे **'हनुमत्'** या **'हनूमत्'** शब्दकी सिद्धि होती है। यह शब्द सुग्रीवसचिव, पवनपुत्र अथवा श्रीरामदूत हनुमानजीका बोधक है। (२) एकाक्षर कोशके मतसे **'ह'** (ब्रह्म)-के शब्दार्थ शिव, आनन्द, आकाश और जल आदि हैं[९] और **'नु'** शब्दका अर्थ पूजन या प्रशंसा है। इसकी निष्पत्ति **'णु'** धातुके आगे **'क्विप्'** प्रत्ययके योगसे होती है। इस युक्तिसे निष्पन्न ब्रह्मवाचक **'ह'** और पूजनवाचक **'नु'=हनु+मतुप्='हनुमत्'** शब्द रामरूप ब्रह्मके पूजक या भक्तरूप अर्थका परिचायक है। (३) **'ह'** शिव, आनन्द, आकाश और जल आदिका वाचक है, **'नु'** पूजन, प्रशंसा आदिका बोधक है, **'मा'** लक्ष्मी और विष्णुका द्योतक है और **'न'** बल, युद्ध आदि वीरतासूचक है—ये चारों शब्दार्थ श्रीरामदूत मारुतिमें समाविष्ट हैं।[१०] इस प्रकार व्युत्पन्न उपर्युक्त **'हनुमत्'** शब्दकी सिद्धिमें तीनों प्रकार युक्तियुक्त ही हैं।

पर अब समस्या यह उत्पन्न होती है कि उपर्युक्त प्रथम प्रकारसे निष्पन्न **'हनुमत्'** शब्द सामान्यतया अशेष वानर-भालू-जातियोंका ज्ञापक सिद्ध होता है, न कि केवल राम-दूत या सुग्रीव-सचिव पवनात्मजका; क्योंकि प्रत्येक वानरका ऊपरी जबड़ा समानरूपात्मक होता है। वस्तुतः **'हनुमत्'** शब्दमें प्रयुक्त **'हनु'** या **'हनू'** शब्द एक विशिष्ट घटनामय रहस्यका संकेतक है। हनुमानजी वायुदेवताके औरस पुत्र थे और इनका शरीर वज्रके समान सुदृढ़ तथा गति गरुडके समान तीव्र थी।[११] वायुनन्दन जन्मकालसे ही इतने तेजस्वी थे कि

१-एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्। (श्रीमद्भागवत १। ३। २८)
२-ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥ (गीता १५। ७)
३-रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय। (ऋग्वेद ६। ४७। १८)
४-भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन्। स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः॥ (श्रीमद्भागवत ११। ४। ३)
५-मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय। मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥ (गीता ७। ७)
६-तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत्। तदेवेदं जगत्कृत्स्नं तद्विज्ञाय विमुच्यते॥ (कूर्मपुराण २। ९। १०)
७-अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः। (श्रीमद्भागवत १। ३। २६)
८-मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्। वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये॥ (रामरक्षास्तोत्र ३३)
९-हः शिवे सलिले शून्ये धारणे मङ्गलेऽपि च। गगने नकुलीशे च रक्ते नाके च वर्ण्यते॥ (एकाक्षरकोश एवं मेदिनीकोश ३३। १)
१०-हर्षदेव, महाक्षपणक एवं पुरुषोत्तमदेवके एकाक्षरकोश।
११-मारुतस्यौरसः श्रीमान् हनूमान् नाम वानरः। वज्रसंहननोपेतो वैनतेयसमो जवे॥ (वाल्मीकिरामायण १। १७। १६)

बचपनमें ही सूर्यको एक फल समझकर ये उनको पकड़कर निगल जानेके लिये उछल पड़े, परंतु सूर्यतक न पहुँचकर उदयगिरिपर ही गिर पड़े। उस गिरिके शिलाखण्डपर गिरनेके कारण इनकी हनु कुछ कट गयी। उस कटी हुई विशिष्ट हनुके कारण ये '**हनुमान्**' नामसे प्रसिद्ध हुए। वह कटी हुई विशिष्ट '**हनु**' रावणकी नगरी लङ्कामें इनके द्वारा आग लगा दी जानेकी घटनाका भी स्मरण कराती है।[१] इस प्रसङ्गमें महर्षि अगस्त्यका कथन है कि 'इनके पिता केसरी सुमेरु पर्वतपर राज्य करते थे और वहीं उनकी पत्नी अञ्जनाके गर्भसे वायुदेवने इन्हें जन्म दिया। जन्मके समय इनकी अङ्गकान्ति धानके अग्रभागके समान पिङ्गल वर्णकी थी। एक दिन अपनी जननी अञ्जनाकी अनुपस्थितिमें भूखसे व्याकुल होकर ये बालरविको पकड़नेके लिये आकाशमें उछले। अपने पुत्रको सूर्यकी ओर जाते देखकर वायुदेव भी शीतल होकर इनके पीछे-पीछे चले। इस प्रकार पिताके बलसे उड़ते हुए ये सूर्यके समीप पहुँच गये। संयोगवश उसी दिन राहु भी सूर्यको ग्रहण करना चाहता था। जब सूर्यके रथके ऊपरी भागमें इन्होंने राहुका स्पर्श किया, तब वह भागकर इन्द्रकी शरणमें चला गया और उनसे अपना कष्ट कह सुनाया। राहुकी बात सुनकर इन्द्रने अपने वज्रसे हनुमानपर प्रहार किया, जिससे ये पवनात्मज एक पर्वतपर गिर पड़े और इनकी बायीं ठुड्डी (हनु) टूट गयी। इनके इस प्रकार आहत होते ही वायुदेवने अपनी गति रोककर देवताओंके सहित समस्त जगत्‌को त्रस्त कर दिया और इन्हें लेकर वे एक गुफामें चले गये। तब इन्द्रादि देवताओंसहित ब्रह्माजी उस स्थानपर आये, जहाँ वायुदेव अपने आहत पुत्रको गोदमें लिये बैठे थे। यह दृश्य देखकर ब्रह्माजीको वायुदेवतापर अतिशय दया आयी।[२] ब्रह्माजीने इन्हें पूर्ण स्वस्थ कर दिया।[३] पुनः ब्रह्माने देवताओंसे इन्हें वर देनेके लिये कहा। तब इन्द्रने इन्हें अपने वज्रसे अवध्य होनेका वर देते हुए हनुके टूट जानेके कारण इन्हें '**हनुमान**' नामसे समाख्यात होनेका वर भी दिया।[४]

आयु:सीमा

हनुमानजीकी आयुके रहस्यका विवेचन करना एक समस्या है। ऐसे तो ये अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम और मार्कण्डेय—इन आठ चिरजीवियोंमें एकतम हैं;[५] पर हनुमानजीको केवल चिरजीवी कहना पर्याप्त नहीं है—इन्हें नित्यजीवी अथवा अजर-अमर कहना भी असंगत नहीं; क्योंकि लंका-विजयके पश्चात् हनुमानजीने एकमात्र श्रीराममें सदाके लिये अपनी निश्चल भक्तिकी याचना की थी और श्रीरामने इन्हें हृदयसे लगाकर कहा था—'कपिश्रेष्ठ! ऐसा ही होगा। संसारमें मेरी कथा जबतक प्रचलित रहेगी, तबतक तुम्हारी कीर्ति भी अमिट रहेगी और तुम्हारे शरीरमें प्राण भी रहेंगे। तुमने मुझपर जो उपकार किये हैं, उनका बदला मैं नहीं चुका सकता'।[६] इस प्रकार जब श्रीरामने चिरकालतक संसारमें प्रसन्नचित्त होकर जीवित रहनेका इन्हें आशीर्वाद दिया, तब इन्होंने भगवान्‌से कहा—'जबतक संसारमें आपकी पावन कथाका प्रचार होता रहेगा, तबतक मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ पृथ्वीपर रहूँगा।[७] इन्द्रसे भी हनुमानजीको वरदान मिला था कि इनकी मृत्यु तबतक नहीं होगी, जबतक स्वयं इन्हें मृत्युकी इच्छा न होगी।[८]

एक बार सीताजीके द्वारा दिये गये मणि और रत्नोंसे विभूषित हारको पहनकर हनुमानजी भगवान् श्रीरामके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े थे। भगवान्‌ने इनकी नैष्ठिकी भक्तिके कारण अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'हनुमान! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम जो वर चाहो, माँग लो। जो वर त्रिलोकीमें देवताओंको भी मिलना दुर्लभ है, वह भी मैं तुम्हें अवश्य दूँगा।' तब हनुमानजीने अत्यन्त हर्षित होकर भगवान् श्रीरामके

१-वाल्मीकिरामायण ६।२८।८—१७।
२-वाल्मीकिरामायण ७।३५।१४—६५।
३-वाल्मीकिरामायण ७।३६।४।
४-वाल्मीकिरामायण ७।३६।८—१२।
५-अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः। कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः।
..........मार्कण्डेयमथाष्टमम्। (आनन्दरामायण)
६-वाल्मीकिरामायण ७।४०।१५—२४।
७-यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी॥ तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्। (वाल्मीकिरामायण ७।१०८।३५ $\frac{१}{२}$)
८-सहस्रनेत्रः प्रीतात्मा ददौ ते वरमुत्तमम्॥ स्वच्छन्दतश्च मरणं तव स्यादिति वै प्रभो। (वाल्मीकिरामायण ४।६६।२८$\frac{१}{२}$)

चरणोंमें प्रणिपात करके कहा—'प्रभो! आपका नामस्मरण करते हुए मेरा मन तृप्त नहीं होता, अतः मैं निरन्तर आपके नामका स्मरण करता हुआ पृथ्वीपर स्थित रहूँगा। राजेन्द्र! मेरा मनोवाञ्छित वर यही है कि जबतक संसारमें आपका नाम स्थित रहे, तबतक मेरा शरीर भी विद्यमान रहे।' इसपर भगवान् श्रीरामने कहा—'ऐसा ही होगा, तुम जीवन्मुक्त होकर संसारमें सुखपूर्वक रहो। कल्पका अन्त होनेपर तुम्हें मेरे सायुज्यकी प्राप्ति होगी, इसमें संदेह नहीं है'।[1]

इन प्रमाणोंसे ज्ञात होता है कि हनुमानजी न केवल चिरजीवी ही हैं, अपितु वे नित्यजीवी, इच्छा-मृत्यु तथा अजर-अमर भी हैं। भगवान् श्रीरामसे उन्हें कल्पके अन्तमें सायुज्य मुक्तिका वरदान प्राप्त है, अतः उनकी अजरता-अमरतामें कोई संशय नहीं है। जनश्रुतियोंसे ज्ञात होता है कि आज भी वे अपने नैष्ठिक भक्त-उपासकोंको यदा-कदा जिस-किसी रूपमें दर्शन देते हैं।

भक्तिकी उत्कृष्टता

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें भक्तिकी सर्वोत्कृष्टताके समर्थनमें भगवान्ने नारदसे कहा है—'नारद! मैं न तो वैकुण्ठमें निवास करता हूँ और न योगियोंके हृदयमें ही। मेरे भक्त जहाँ मेरा गुण-गान करते हैं, वहीं मेरा सच्चा निवास है। जो मनुष्य मेरे उन भक्तोंका गन्ध-पुष्पादिके द्वारा पूजन-अर्चन करते हैं, उस पूजन-अर्चनसे मुझे जो संतुष्टि होती है, वह मेरे स्वयंके पूजनसे नहीं होती। जो मनुष्य मेरी पुराण-कथाका श्रवण तो करते हैं, किंतु मेरे भक्तोंके गानकी निन्दा करते हैं, वे मूढ मेरे द्वेषके पात्र होते हैं।'[2]

'भक्ति' शब्दकी सिद्धि '**भज् सेवायाम्**' धातुसे '**क्तिन्**' प्रत्ययके योगसे होती है; अतः 'भक्ति' शब्द 'सेवा' का पर्यायवाचक है और सेवा 'भक्ति' का। भागवतपुराणमें एक प्रसङ्ग है—जब हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र प्रह्लादसे उसके द्वारा पठित कतिपय श्लोकोंकी आवृत्ति करने और उनका सारांश कहनेको कहा, तब प्रह्लादने भगवान्की 'नवधा भक्ति' का इस प्रकार प्रतिपादन किया था—(१) श्रवण, (२) कीर्तन, (३) स्मरण, (४) पादसेवन, (५) अर्चन, (६) वन्दन, (७) दास्य, (८) सख्य और (९) आत्मनिवेदन।[3] भक्तिमार्गके ये ही नौ सोपान हैं। श्रीपवनात्मज क्रमशः आठ सोपानोंको पारकर अन्तिम सोपान आत्मनिवेदनपर प्रतिष्ठित हैं। भक्तिमार्गके इस चरम सोपानको प्राप्त कर लेनेपर भक्तके द्वैतभावका लय होकर उसमें अद्वैतका उदय होता है। भक्त भगवान्में एकाकारता या जीवन्मुक्ति प्राप्त कर लेता है, किंतु हनुमानजीने मुक्तिकी अपेक्षा भक्तिको ही श्रेयस्कर समझा। महावीर हनुमान दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामके और जनकनन्दिनी भगवती श्रीसीताके उच्चकोटिके नैष्ठिक भक्त हैं। इसीलिये तो राजसिंहासनारूढ़ सीतापति श्रीरामचन्द्रने इनकी ऐकान्तिक भक्तिसे प्रसन्न होकर इनसे त्रिलोकीमें देवताओंके लिये भी दुर्लभ इच्छानुसार वर माँगनेको कहा; पर हनुमानने और कुछ न माँगकर अनपायिनी भक्ति ही माँगी। भक्तवत्सल श्रीरामने संकोचमें भरकर कहा—'कपिश्रेष्ठ! तुमने मुझपर जो उपकार किये हैं, उनका बदला मैं नहीं चुका सकता। उनके विनिमयमें देनेके लिये मेरे पास कोई पदार्थ नहीं है—अर्थात् मैं लज्जित हूँ।'[4] यह है श्रीभगवान्की भक्तवत्सलता!

भक्तवत्सल भगवान्के पास कोई भी पदार्थ भक्तोंके लिये अदेय नहीं रहता, वे अपने सच्चे भक्तोंके समक्ष अपना हृदय खोल देते हैं। लंका-विजयके पश्चात् जब

---

१. रामोऽपि मारुतिं दृष्ट्वा कृताञ्जलिमुपस्थितम्। भक्त्या परमया तुष्ट इदं वचनमब्रवीत्॥
हनूमंस्ते प्रसन्नोऽस्मि वरं वरय काङ्क्षितम्। दास्यामि देवैरपि यद् दुर्लभं भुवनत्रये॥
हनूमानपि तं प्राह नत्वा रामं प्रहृष्टधीः। त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम॥
अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन् स्थास्यामि भूतले। यावत् स्थास्यति ते नाम लोके तावत् कलेवरम्॥
मम तिष्ठतु राजेन्द्र वरोऽयं मेऽभिकाङ्क्षितः। रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम्॥
कल्पान्ते मम सायुज्यं प्राप्स्यसे नात्र संशयः। (अध्यात्मरा० ६। १६। १०—१४½)

२. नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वै। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥
तेषां पूजादिकं गन्धपुष्पाद्यैः क्रियते नरैः। तेन प्रीतिं परां यामि न तथा मत्प्रपूजनात्॥
मत्पुराणकथां श्रुत्वा मद्भक्तानां च गायनम्। निन्दन्ति ये नरा मूढास्ते मद्द्वेष्या भवन्ति हि॥
(पद्मपुराण, उत्तर ९४। २३—२५)

३. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ (श्रीमद्भागवत ७। ५। २३)

४. एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे। शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥ (वाल्मीकिरामायण ७। ४०। २३)

भगवान् श्रीराम राज्याभिषिक्त हुए, तब पुरस्कार-प्रदानके प्रसङ्गमें उन्होंने अत्यन्त प्रेमसे कोटिमित चन्द्रोंके समान प्रदीप्तिमान् अमूल्य मणि और रत्नोंसे विभूषित एक हार अपनी प्रेयसी श्रीसीताजीको भी दिया। श्रीजनकनन्दिनी उस हारको गलेसे उतारकर बार-बार अपने पतिदेव तथा उपस्थित वानरोंकी ओर देखने लगीं। भगवान् श्रीरामने श्रीसीताजीका संकेत (भक्तवत्सलता) समझकर उनकी ओर देखते हुए कहा—'सुमुखी विदेहनन्दिनि! तुम जिसपर प्रसन्न हो, उसे यह हार दे दो।' तब श्रीसीताजीने श्रीरामजीके समक्ष ही वह हार हनुमानजीको दे दिया। उस हारको पहनकर गौरवान्वित हो हनुमानजी अत्यन्त सुशोभित हुए।[१] श्रीरामजीके समान ही भगवती जानकीजीने भी अपने सच्चे भक्त हनुमानजीको आशीर्वाद देते हुए कहा—'मारुते! तुम जहाँ कहीं भी रहोगे, वहीं मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण भोग तुम्हारे पास उपस्थित हो जायँगे।' अपने उपास्यके इस प्रकार कहनेपर महामति हनुमानजी अतिशय प्रसन्न हुए और फिर नेत्रोंमें आनन्दाश्रु भरकर वे उन्हें बार-बार प्रणाम करते हुए भारी मनसे तपस्या करनेके लिये हिमालयपर चले गये।[२] श्रीसीताजीकी भक्तवत्सलता तो सीमाको पार कर गयी थी। जब लंकाके दैत्योंने हनुमानजीकी पूँछमें आग लगा दी, तब श्रीसीताजीने अत्यन्त चिन्तातुर होकर अग्निसे प्रार्थना करते हुए कहा—'हे अग्निदेव! यदि मेरी पति-सेवा नैष्ठिकी है, मेरी तपस्या प्रतिष्ठित है और मैंने विशुद्ध पातिव्रत्यका सचमुच पालन किया हो तो आप भक्त हनुमानके लिये शीतल हो जायँ।' अग्निदेव हनुमानजीके पिता वायुके परमसखा होनेके कारण तथा श्रीसीतादेवीकी इस प्रार्थनासे परम शीतल हो गये और हनुमानकी पूँछको थोड़ा भी जलने नहीं दिया।[३] ऐसी है श्रीसीतारामकी भक्तवत्सलता!

यौगिक सिद्धियाँ

यौगिक सिद्धियाँ 'अणिमा' आदि आठ प्रकारोंमें संख्यात हैं, यथा—(१) अणिमा, (२) महिमा, (३) गरिमा, (४) लघिमा, (५) प्राप्ति, (६) प्राकाम्य, (७) ईशित्व और (८) वशित्व।[४] परम भक्तियोगी पवनतनय हनुमानजीमें ये आठों सिद्धियाँ सम्यक्तया प्रतिष्ठित थीं। इनमेंसे प्रत्येक सिद्धिका स्पष्ट रूप महावीर हनुमानजीके आचरणमें दृष्टिगत होता है।

अणिमा और लघिमा

सागरको पारकर लंकाकी द्वारपालिका 'लंकिनी' निशाचरीको निहत करनेके पश्चात् जनकनन्दिनीके अन्वेषणक्रममें श्रीहनुमानजी गोस्वामी तुलसीदासके मतसे मशकके समान सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप धारणकर रात्रिमें सारी लंकानगरीका निरीक्षण कर लेते हैं, किंतु अत्यन्त अणु या लघुरूप होनेके कारण वहाँके निवासियोंको उनका कुछ पतातक नहीं चलता। हनुमानजी शत्रुओंके लिये सर्वथा अदृश्य हो गये थे।[५] अशोकवाटिकामें पहुँचकर और शिंशपा (सीसम) वृक्षके पत्तोंमें बैठे-बैठे वे जानकी माताको अपना परिचय देते हुए श्रीरामकी अवस्थाका वर्णन करते हैं।[६]

इन विवृतियोंसे मारुतिमें अणिमा और लघिमा—इन दो सिद्धियोंकी सम्पूर्ण प्रतिष्ठाका परिचय मिल जाता है।

महिमा

सागरको पार करनेके समय परीक्षाकारिणी सुरसाके साथ प्रतियोगितामें मारुतिने अपने शरीरको क्रमशः

१- चन्द्रकोटिप्रतीकाशं मणिरत्नविभूषितम्। सीतायै प्रददौ हारं प्रीत्या रघुकुलोत्तमः॥
अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी। अवैक्षत हरीन् सर्वान् भर्तारं च मुहुर्मुहुः॥
रामस्तामाह वैदेहीमिङ्गितज्ञो विलोकयन्। वैदेहि यस्य तुष्टासि देहि तस्मै वरानने॥
हनूमते ददौ हारं पश्यतो राघवस्य च। तेन हारेण शुशुभे मारुतिर्गौरवेण च॥
(अध्यात्मरा० ६।१६।६—९)

२- तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते॥ स्थितं त्वामनुयास्यन्ति भोगाः सर्वे ममाज्ञया।
इत्युक्तो मारुतिस्ताभ्यामीश्वराभ्यां प्रहृष्टधीः॥ आनन्दाश्रुपरीताक्षो भूयो भूयः प्रणम्य तौ।
कृच्छ्राद्ययौ तपस्तप्तुं हिमवन्तं महामतिः॥ (अध्यात्मरामायण ६।१६।१५½—१७)

३- यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः। यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः॥ (वाल्मी० रा० ५।५३।२७)
वायोः प्रियसखित्वाच्च सीतया प्रार्थितोऽनलः। न ददाह हरेः पुच्छं बभूवात्यन्तशीतलः॥ (अध्यात्म० ५।४।४६)

४- अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः॥
(अमरकोश, रामाश्रमी व्याख्या १।१।३४ (१७-१८)

५- द्र० अध्यात्मरा० ५।१।२।

६- (क) द्रष्टव्य अध्यात्मरामायण ५।३।३।
(ख) तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई॥ (मानस ५।८½)

दससे प्राय: सौ योजनोंतक विस्तृत किया था।[१] और जब हनुमानने 'वानर-सेनाओंके साथ आकर श्रीरामजी राक्षस-मण्डित लंकाको क्षणभरमें भस्म कर देंगे'— ऐसी बात कही, तब जानकीजीने पूछा—'हे कपे! तुम तो अत्यन्त लघु शरीरवाले हो और अन्य वानर-भालू भी तो तुम्हारे ही समान लघुकाय होंगे, फिर वे ऐसे बलिष्ठ विशाल शरीरधारी राक्षसोंसे कैसे लड़ेंगे?' सीताजीद्वारा ऐसा संदेह व्यक्त किये जानेपर महावीर मारुतिने उन्हें आश्वस्त कराते हुए अपनेको स्वर्ण-शैलके समान विशाल बनाकर अपनी अतुल शक्तिका परिचय दिया।[२] इन दोनों ही अवसरोंपर इनका क्रमिक वर्धमान शरीर विशालताके कारण अनन्त आकाशमें मानो समावेश नहीं पा रहा था। इन प्रसङ्गोंमें हनुमानजीमें महिमा-सिद्धिके प्रतिष्ठित रूपका स्पष्ट दर्शन मिलता है।

गरिमा

एक बार हनुमानजी गन्धमादनके एक भागमें अपनी पूँछ फैलाकर स्वच्छन्द पड़े थे। उसी समय बलगर्वित भीमसेनको आते देख वे मनमें हँसते हुए उनसे बोले— 'अनघ! बुढ़ापेके कारण मैं स्वयं उठनेमें असमर्थ हूँ, कृपया आप ही मेरी इस पूँछको हटाकर आगे बढ़ जाइये।' भीमसेन अवज्ञाके साथ हँसते हुए बायें हाथसे उन महाकपिकी पूँछ हटाने लगे, पर वह टस-से-मस न हुई। तब वे अपने दोनों हाथोंसे जोर लगाने लगे, फिर भी इन्द्रधनुषके समान ऊपर उठी हुई वह पूँछ उनके द्वारा टस-से-मस नहीं हुई।[३] इस अनपेक्षित पराभवके कारण भीमसेनने उन्हें पहचानकर लज्जावनत-मुख हो उन कपिशार्दूलसे क्षमा माँगी।

इस विवरणसे महामारुतिमें 'गरिमा'-सिद्धिका पूर्ण प्रस्फुटितरूप प्रत्यक्ष उपस्थित हो जाता है।

प्राप्ति

'प्राप्ति'-सिद्धिके प्रतिष्ठित होनेपर साधक योगीको इच्छित-वाञ्छित पदार्थ मिल जाता है। श्रीसीताजीके अन्वेषणक्रममें अनेकों वानर-भालू भी चारों दिशाओंमें भेजे गये थे। उनमें मारुति भी एकतम थे। इनमें एकमात्र निष्कपट और भक्तिपूर्ण वाञ्छा थी—माताके साक्षात्कारकी। परिणामत: लंकामें पहुँचनेके कुछ ही क्षणोपरान्त अशोकवाटिकामें जनक-नन्दिनी माताका अभिलषित दर्शन इन्हें अकस्मात् उपलब्ध हुआ और ये कृतकृत्य हो गये।[४]

प्राकाम्य

'प्राकाम्य'-सिद्धिकी प्रतिष्ठा होनेपर साधक जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह उसे अचिर उपलब्ध हो जाती है। भक्त हनुमानजीकी आन्तरिक आकाङ्क्षा अनपायिनी भक्तिकी उपलब्धि थी और तदनुसार सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीरामने भक्त-वरको वह वर देकर भी अपनेको पूर्ण कृतार्थ नहीं समझा।[५]

ईशित्व

हनुमानजी भगवान् श्रीरामकी वानर-भालुओंकी सेनाका सम्यक् संचालन करनेवाले सफल सेनानायक थे और साथ ही परम भक्त भी। अत: 'ईशित्व'-सिद्धिका भी प्रतिष्ठितरूप महावीरजीमें साक्षात् दृष्टिगोचर होता है।

वशित्व

'वशित्व'-सिद्धिके प्रतिष्ठित हो जानेपर व्यक्तिमें आत्म-जयित्व भी स्वत:सिद्ध हो जाता है। हनुमानजी अखण्ड ब्रह्मचारी एवं पूर्ण जितेन्द्रिय थे,[६] अत: अतुलित-बलधामता उनमें निरन्तर विद्यमान रहती है।

बल-पुरुषार्थ

महामारुतिके शारीरिक, मानसिक और आत्मिक

---

१. (क) वक्त्रं चकार हनुमांस्त्रिंशद्योजनसम्मितम्॥ (अध्यात्मरा० ५। १। २०), (ख) वाल्मीकिरामायण ५। १। १६५।
(ग) सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥
जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥ (मानस ५। १। ४-५ $\frac{१}{२}$)

२. (क) द्र० अध्यात्मरा० ५।३।६४ $\frac{१}{२}$, (ख) कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥ (मानस ५।१५।४)

३. विज्ञाय तं बलोन्मत्तं बाहुवीर्येण दर्पितम्। हृदयेनावहस्यैनं हनूमान् वाक्यमब्रवीत्॥
प्रसीद नास्ति मे शक्तिरुत्थातुं जरयानघ। ममानुकम्पया त्वेतत् पुच्छमुत्सार्य गम्यताम्॥
× × × ×
सावज्ञमथ वामेन स्मयञ्जग्राह पाणिना। न चाशकच्चालयितुं भीम: पुच्छं महाकपे:॥
उच्चिक्षेप पुनर्दोर्भ्यामिन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम्। नोद्धर्तुमशकद् भीमो दोर्भ्यामपि महाबल:॥
(महाभारत, ३। १४७। १५-१६; १९-२०)

४. अध्यात्मरा० ५। २। ९—११।

५. द्र० पादटिप्पणी २४ तथा २७।

६. द्रष्टव्य पादटिप्पणी १५।

बलकी इयत्ता न थी। वे देव, दानव और मानव आदि समस्त प्राणियोंके लिये अजेय थे। वे कभी किसीसे पराजित नहीं हुए, न कभी आहत ही। यद्यपि एक बार मेघनादने इन्हें बन्धनमें डाल दिया था, परंतु वहाँ इनके बँध जानेका कारण कुछ और ही था। जब मेघनादने इनपर ब्रह्माजीके द्वारा प्रदत्त अस्त्रको चलाया, तब उस ब्रह्मास्त्रका महत्त्व रखनेके लिये ये स्वयं उसमें बँध गये थे। यदि ये चाहते तो उस ब्रह्मास्त्रको भी व्यर्थ कर देते, पर ऐसा न करनेमें दो कारण थे—प्रथम यह कि यदि वह अस्त्र विफल हो जाता तो जगत्स्रष्टाकी अपार महिमा मिट जाती[१] और द्वितीय कारण था उस बन्धनके द्वारा दशाननके सम्मुख पहुँचकर उसकी नगरीका दाह करना। हनुमानजीके बुद्धि-बल तथा पुरुषार्थका अन्त नहीं। संसारमें उनकी गतिको न तो कोई जान सकता है और न उसकी सीमा ही बाँध सकता है।[२] जाम्बवान्‌के आदेशपर ये हिमालयसे ओषधियुक्त पर्वतको ही उठा लाये, जिससे उन ओषधियोंके प्रयोगसे मूर्च्छित श्रीराम, लक्ष्मण तथा समस्त वानर पुन: स्वस्थ हो गये। तत्पश्चात् ये उस पर्वतको हिमालयपर ही रख भी आये थे।[३] लक्ष्मणजीके मूर्च्छित हो जानेपर जब श्रीराम विलाप करने लगे, तब सुषेणके आदेशानुसार हनुमानजी पुन: हिमालयसे ओषधियुक्त पर्वत ले आये और उसकी ओषधियोंके प्रयोगसे लक्ष्मण स्वस्थ हुए।[४] इनका बल अन्तक—कालके समान है, इसी कारण इनके सम्मुख कोई विरोधी टिक नहीं सकता[५]। इन्होंने अनेकानेक राक्षसोंको भी निहत किया था।

तन्त्र-वाङ्मयमें श्रीहनुमान

तन्त्र-वाङ्मयमें भी हनुमानजीका सादर स्मरण किया गया है और वहाँ ये एकमुख, पञ्चमुख तथा एकादशमुखके रूपमें परिवर्णित हैं। सात्त्विक प्रकृतिके होनेपर भी तान्त्रिक उपासना-पद्धतिसे पुरश्चरण किये जानेपर ये शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन और मारण—इन षट्कर्मोंमें भी सिद्धि प्रदान करते हैं, पर षट्कर्मोंसे यहाँ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—ये आन्तरिक शत्रु ही अभिप्रेत हैं, बाहरके सामाजिक शत्रु सम्भवत: नहीं। '**बृहज्ज्योतिषार्णव-धर्मस्कन्धान्तर्गत हनुमदुपासना**' आदि तन्त्रग्रन्थोंमें हनुमत्कवच, स्तोत्र, सहस्रनाम, कल्प, पटल, ध्यान आदि अनेक क्रियाओंके साङ्गोपाङ्ग विवरण मिलते हैं। इनकी कतिपय उपासनापद्धतियाँ ऐसी भी हैं, जिनके पुरश्चरण सिद्ध होनेपर श्रीहनुमानजीके साक्षात् दर्शन अन्य देवताओंके दर्शनोंकी अपेक्षा शीघ्र होते हैं। आपन्न-प्रपन्नजनके आकस्मिक भय-संकट इनके स्मरणमात्रसे दूर भाग जाते हैं। आज भी ऐसे अनुभवी साधकोंका समाजमें अभाव नहीं है।

लेखके उपसंहरणमें यही ज्ञातव्य है कि भगवान् श्रीरामके एकमात्र सहायभूत हनुमान आदि वानर देवताओंके अंशसे उत्पन्न होनेके कारण अतुलित पराक्रमी तथा सर्वथा सर्वत्र अजेय थे। त्रेतायुगके चक्रवर्ती सम्राट् महाराजा दशरथके पुत्रेष्टि नामक यज्ञमें आमन्त्रित होकर ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि सम्पूर्ण देवगण उपस्थित हुए थे। देवताओंने ब्रह्मासे रावणके अत्याचारके सम्बन्धमें निवेदन किया। इसपर भगवान् ब्रह्मदेवने कहा कि उन्होंने रावणको देव-दानवोंसे अवध्यताका वर दे रखा है। देवताओंने भगवान् विष्णुसे दशरथके पुत्रके रूपमें जन्म लेकर रावणका वध करनेका निवेदन किया और भगवान् विष्णुने उनकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया।[६] तब ब्रह्माने उन देवताओंसे अप्सराओं और किंनरियोंसे वानरोंके रूपमें अपने समान ही पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करनेके लिये कहा और ब्रह्माके आदेशानुसार देवताओंने वानर-संतान उत्पन्न की।[७] इसी उपक्रममें रुद्रावतार श्रीआञ्जनेयका भी प्राकट्य हुआ।

---

१. ब्रह्म अस्त्र तेहिं साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार॥ (मानस ५। १९)

२. गतिं हनूमतो लोके को विद्यात् तर्कयेत वा। (वा०रा० ६।९।११)

३. वा० रा० ६।७४।२६।

४. वा०रा० ६।१०१।३०।

५. लोकक्षयेष्वेव यथान्तकस्य हनूमत: स्थास्यति क: पुरस्तात्। (वा०रा० ७।३६।४८)

६. वा०रा० १।१५।४—३३।

७. वा०रा० १।१७।२—८।

श्रीहनुमच्चिन्तन

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्या-वाचस्पति, विद्यानिधि, विद्याभूषण)

'श्रीहनुमानजी वनवासी मनुष्य थे', ऐसा कई आधुनिक विद्वानोंका मत है; परंतु हिंदू अपने सनातनधर्मानुसार मनुष्यसे उच्चयोनि देवयोनिका अथवा भगवान्‌के विशिष्ट अवतारोंका ही उपासक है। मनुष्ययोनिमें वह अपने माता-पिता एवं आचार्यका भी—**'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव'** (कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद् १। ११। २) इस वैदिक आदेशानुसार देवरूपमें ही पूजन करता है। श्रीहनुमानजी भी श्रीरुद्रदेव या श्रीवायुदेवके अवतार हैं—ऐसी वेद-पुराणादि शास्त्रोंकी मान्यता है। अतः उनकी उपासना हिंदू-समाजमें आज भी प्रचलित है। जब हिंदू माता, पिता एवं आचार्यको वेद-शास्त्रादिके अनुसार देवता मानकर उनकी पूजा सम्पन्न करता है, तब वह देवता या देवावतारकी पूजा करे—यह तो स्वाभाविक ही है।

वेदोंमें वर्णन आता है—**'एष ह वा अनद्धा पुरुषो यो न देवान् अवति (अर्चति), न पितॄन्।'** (शतपथब्राह्मण ६। २। ३। २४, ऐतरेयब्राह्मण ८। २। ८)। यहाँ देवपूजा सम्पन्न न करनेवाले पुरुषकी निन्दा की गयी है; उसे अवास्तविक पुरुष माना गया है।

'न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो
देवेषु मे अधि कामा अयंसत'॥
(ऋ० १०।६४।२)

यहाँ भी वेदने देवताओंको सुखप्रद और कामना-पूरक बताया है। **'देवान् वसिष्ठो अमृतान् ववन्दे'** (ऋ० सं० १०।६५।१५)। यहाँ वेदने देवपूजनमें प्रख्यात ऋषि वसिष्ठका इतिहास निर्दिष्ट कर दिया है। इस प्रकार वेद एवं शास्त्रोंमें देवपूजा पग-पगपर व्याप्त है। अस्तु!

अब श्रीहनुमानका देवतावतारत्व देखें—'श्रीशिव-महापुराण' की 'शतरुद्रसंहिता' के २०वें अध्यायके चतुर्थ, पञ्चम तथा षष्ठ पद्योंमें हनुमानजीका अवतार रामकार्यार्थ बतलाया गया है। इसी अध्यायके ९वें श्लोकमें **'शिवावतारं च प्राप'** हनुमानको शिवका अवतार, १२में 'रुद्रांश', ३२में 'महादेवात्मज', ७में **'हनूमानिति नामभाक्। शम्भुर्जज्ञे'** तथा ३६ में **'सीताराम-सुखप्रद'** कहा गया है।

इसी स्थलपर श्रीहनुमानजीको **कपितनुः** (२०।७) तथा **कपीशानः (श्लोक ८), कपिवरः (श्लोक १४), कपिकुञ्जरः (१६), कपिसत्तमः (१२), हनूमान् वानरेश्वरः (१७), कपिनायकः (२०), कपीश्वरः (१८)** एवं **पुनः कपिकुञ्जरः (२५)** भी कहा है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि श्रीहनुमानका अवतार मनुष्ययोनिमें न होकर दिव्य वानरयोनिमें हुआ। इसे **'रामकार्यकरः'**, **'रामदूताभिधः'** **'हनुमान् स महावीरः'** (२०।३८)—इन शब्दोंसे भी स्पष्ट किया गया है।

इस बातको विशेष स्पष्ट करनेके लिये 'वाल्मीकीय रामायण' में इन्हें वानरके प्रायः सभी पर्यायवाचक शब्दोंसे भूषित किया गया है। यहाँ तो हम स्थालीपुलाक-न्यायसे उनका दिङ्मात्र ही निरूपण करते हैं।

'अमरकोश' के द्वितीयकाण्डके 'सिंहादिवर्ग' के तृतीय पद्यमें वानरके पर्याय बतलाये गये हैं। वहाँ—

'कपिप्लवङ्गप्लवगशाखामृगबलीमुखाः।
मर्कटो वानरः कीशो वनौकाः'''॥'

ये नौ नाम आये हैं। १०वाँ प्रसिद्ध नाम 'हरि' भी है, जिसे उक्त कोशके तृतीयकाण्ड 'नानार्थवर्ग' के १७५वें श्लोकमें निर्दिष्ट किया गया है। इन सभी नामोंका प्रयोग रामायणमें कहीं-कहीं नहीं, सर्वत्र, एक समयमें नहीं, सभी समयोंमें और एक बार नहीं, बार-बार मिलता है।

इन सब बातोंसे स्पष्ट हो जाता है कि ये कोई वनवासी मनुष्य नहीं थे, बल्कि देवावतार होनेसे दिव्य वानरयोनिके ही थे! देवता होनेसे ये जनताके उपास्य हैं।

आर्यसमाजके प्रवर्तक स्वामी श्रीदयानन्दजीने भी अपने 'संस्कृतवाक्य-प्रबोध' के 'ग्राम्यपशुप्रकरण' में पृष्ठ ४५ पर **'अयं महाहनुत्वाद्धनुमान् वर्तते'** यह बंदर बड़ी ठुड्डीवाला होनेसे हनुमान है—ऐसा संकेत किया है, जिसका वास्तविक इतिहास 'वाल्मीकीय रामायण' (६।२८।१५)-में आया है। इन्द्रके वज्रके लगनेसे इनकी हनु (ठुड्डी) बड़ी हो जानेसे 'हनुमान' यह नाम हुआ। **'मतुप्'** प्रत्यय अतिशय अर्थमें भी प्रयुक्त होता है। यदि हनुमान उन्हें मनुष्यरूपमें इष्ट होते तो स्वामीजी उन्हें किसी मनुष्य-प्रकरणमें रखते, ग्राम्यपशु-प्रकरणमें नहीं।

'शिवमहापुराण' में एक विचित्र ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख है, जो इस प्रकार है—एक बार प्रभु शम्भुने श्रीविष्णुका मोहिनी रूप देखा। इससे उनका रेतः स्खलित

हुआ। उसे ही उन्होंने रामकार्यके लिये प्रयुक्त किया—

एकस्मिन् समये शम्भुरद्भुतोतिकरः प्रभुः।
ददर्श मोहिनीरूपं विष्णोः स हि वसद्गुणः॥
चक्रे स्वं क्षुभितं शम्भुः कामबाणहतो यथा।
स्वं वीर्यं पातयामास रामकार्यार्थमीश्वरः॥

(शतरुद्रसं० २०।३-४)

यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि वेद दो भागोंमें विभक्त हैं—मन्त्रभाग और ब्राह्मणभाग। ब्राह्मणभागमें अर्थवाद भी रहते हैं। अर्थवादके भी गुणवाद, अनुवाद एवं भूतार्थवाद—ये तीन भेद हैं। यह कथा भी भूतार्थवाद है। अर्थवादमें शब्दका अर्थमात्र न लेकर उसका तात्पर्य ही देखना पड़ता है। इस प्रकार इस घटनाका तात्पर्य यह है कि स्त्री-शक्ति एक मोहिनी शक्ति है, जिससे यथासम्भव बचकर रहना चाहिये। दूसरी ओर इसका यह भी तात्पर्य है कि महादेवपर भी विष्णुकी मोहिनी शक्तिका प्रभाव पड़ा करता है। यहाँ महादेवको 'प्रभु' शब्दसे कहा गया है। इसलिये प्रभु—

प्रभुः स्वातन्त्र्यमापन्नो यदिच्छति करोति तत्।
पाणिनेर्न नदी गङ्गा यमुना च स्थली नदी॥

—स्वतन्त्रेच्छावान् होता है। वह जो चाहे, सो करे। इसमें एक अच्छा उदाहरण भी दिया गया है। संस्कृत-व्याकरणके परमाचार्य श्रीपाणिनिके (**'यू स्त्र्याख्यौ नदी'** १।४।३) इस सूत्रके अनुसार गङ्गा और यमुना तो 'नदी' नहीं रहतीं, किन्तु 'स्थली'—जिसमें पानीकी एक बूँद भी नहीं, वह 'नदी' बन जाती है। इस बातको सर्वसाधारण नहीं जान सकते, किंतु 'नदी'-संज्ञाके मर्मज्ञ वैयाकरण ही जान सकते हैं।

इस प्रकार यहाँ भी वेदों एवं पुराणोंके विद्वान् ही इसका तात्पर्य समझ सकते हैं कि शिव एवं विष्णु मनुष्य नहीं थे, देवता एवं दिव्य थे। देवताका शुक्र भौतिक नहीं होता, दिव्य होता है, जिसको 'तेजस्' भी कहा गया है। उसकी दिव्यताका वर्णन भी इसी महापुराणमें इस प्रकार प्राप्त होता है—

तद् वीर्यं स्थापयामासुः पत्रे सप्तर्षयश्च ते।
प्रेरिता मनसा तेन रामकार्यार्थमादरात्॥
तैर्गौतमसुतायां तद् वीर्यं शम्भोर्महर्षिभिः।
कर्णद्वारा तथाञ्जन्यां रामकार्यार्थमाहितम्॥
ततश्च समये तस्माद्धनूमानिति नामभाक्।
शम्भुर्जज्ञे कपितनुर्महाबलपराक्रमः॥

(३।२०।५—७)

उस शुक्र (तेज)-को वैज्ञानिक सप्तर्षियोंने गौतमपुत्री, कामरूपिणी केसरीपत्नी अञ्जनीमें कानद्वारा प्रवाहित किया। वही तेज गर्भाशयमें हनुमानरूपमें प्रकट हो गया।

इस प्रकार भगवान् शिवके महाशक्तिशाली होनेके कारण उनसे उत्पन्न दिव्य वानर-शरीरवाले हनुमान भी महाशक्तिमान् हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? यही बात उपरिनिर्दिष्ट (३।२०।७) श्लोकमें कही गयी है।

फिर वहाँ हनुमानने दिव्य वानर-शरीरसे सूर्यके द्वारा सब विद्याओंका अध्ययन अनायास ही कर लिया—

तदाज्ञया ततो धीरः सर्वविद्यामयत्नतः।
सूर्यात् पपाठ स कपिर्गत्वा नित्यं तदन्तिकम्॥

(३।२०।११)

तदनन्तर वे सूर्यकी ही आज्ञासे उनके अंश सुग्रीवके पास रहने लगे—

सूर्याज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यान्तिकं ययौ।
मातुराज्ञामनुप्राप्य रुद्रांशः कपिसत्तमः॥

(३।२०।१२)

रामायणमें श्रीहनुमानजीकी जो विद्वत्ता बतायी गयी है, वह मनुष्य होनेसे नहीं, दिव्य वानर होनेके कारण ही है। यह आश्चर्यकी बात भी नहीं है; क्योंकि देवता सर्वविद् होते हैं—'**विद्वांसो हि देवाः**' (शतपथब्रा० ३।७।३।१०)। जैसे कोई पुरुष नाटकमें बंदरका पार्ट अदा करे तो उससे वह पुरुषत्व, वह बल और वह विद्या हट नहीं जाती, इसी प्रकार देवावतारोंमें भी अभिनयकी बात समझनी चाहिये। इसी दिव्यतावश शिवके अवतार अभौतिक हनुमानकी उपासनाका भी विधान है। उस देवोपासनारूप यज्ञसे बल और बुद्धि आदिका प्राप्त होना शास्त्रोंमें वर्णित है। इसलिये सनातनधर्मी हिंदूजातिमें देवपूजापर अटूट विश्वास है और उसका फल भी प्राप्त हुआ करता है।

श्रीहनुमानको 'पवनसुत' भी कहा जाता है। उसका कारण यह है कि महादेवकी आठ मूर्तियाँ हैं। शिवमहापुराणमें कहा गया है—

शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः।
ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्ट विश्रुताः॥
भूम्यम्भोऽग्निर्मरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः।
अधिष्ठिताश्च शर्वाद्यैरष्टरूपैः शिवस्य हि॥

(३।२।३-४)

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, यजमान—ये आठ रूप भी शिवके ही प्रत्यक्ष रूप

हैं। ऐसा वर्णन पुराणोंमें तथा महाकवि श्रीकालिदासके 'अभिज्ञानशाकुन्तल' की प्रारम्भिक नान्दीमें भी आया है—

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥

(१।१)

अतः मरुत् (पवन) भी महादेवका दूसरा शरीर होनेसे उससे उत्पन्न मारुति तथा शिवसुत—यह बात एक ही हो जाती है। इसलिये वेदमें '**रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्राः**' (ऋ० सं० ६। ६६। ३) इत्यादि मन्त्रोंमें मरुतोंको, क्योंकि उक्त मन्त्रके देवता मरुत् हैं, रुद्रका पुत्र बताया गया है। इसी प्रकार '**वेद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुताम्**' (ऋ० सं० ८। २०। ३) यहाँ रुद्रके पुत्रों मरुतोंकी उग्र शक्ति बतायी गयी है। अतः रामायणानुसार मारुति 'हनुमान' में भी वही उग्र शक्ति कही गयी है। यह वैदिक बात सिद्ध होनेसे पवनसुत हनुमान रुद्रकी विभूति सिद्ध हो गये। वायुपुत्र होनेसे उनमें वायुवाला बल भी सिद्ध हुआ तथा वे वैदिक देवता भी सिद्ध हो गये, केवल पौराणिक ही नहीं। ऐसे महावीर श्रीहनुमानने श्रीरामका कार्य पूर्ण करनेके लिये वाटिकाको नष्ट करके राक्षसोंको मारा। उसी महापुराणका वचन है—

'**रावणाराममाहत्य जघान बहुराक्षसान्॥**' (३।२०। २१)

यहाँ श्रीहनुमानको 'राक्षसोंका हन्ता' बताया गया है। प्रकारान्तरसे श्रीशिवने ही यह रामकार्य किया। श्रीरामने भी समुद्रपर पुल बाँधनेके लिये शिवलिङ्गकी पूजा की—

गत्वा तत्र ततो रामस्तर्तुकामो यथा ततः।
शिवलिङ्गं समानर्च प्रतिष्ठाप्य जयेप्सया॥

(३।२०।२९)

इसे ही 'रामेश्वर' कहा गया है। श्रीशिवने तो उसका '**राम ईश्वरो यस्य**'—यह अर्थ रखा, श्रीरामने उसका '**रामस्य ईश्वरः**'—यह अर्थ किया तथा जनताने '**रामश्च ईश्वरश्च' (महादेवः)**—यह विग्रह किया।

'वाल्मीकीय रामायण' में—

न त्वां हिंसामि सुश्रोणि मा भूत् ते मनसो भयम्॥
मनसास्मि गतो यत् त्वां परिष्वज्य यशस्विनि।

(४।६६।१७-१८)

यहाँ वायुदेवने अञ्जनासे कहा था कि 'मैं तुममें मानसिक गमन कर रहा हूँ; तुम्हारा एकपतिव्रत-धर्म नष्ट नहीं कर रहा हूँ।'

वीर्यवान् बुद्धिसम्पन्नस्तव पुत्रो भविष्यति॥
महासत्त्वो महातेजा महाबलपराक्रमः।
लङ्घने प्लवने चैव भविष्यति मया समः॥

× × ×

ततो हि नामधेयं ते हनुमानिति कीर्तितम्॥

(वा० रा० ४।६६।१८, १९, २४)

"तुम्हारा लड़का महान् बलशाली, बुद्धिमान्, अत्यन्त पराक्रमी, बड़ा तेजस्वी और उछलने-कूदनेमें मेरे ही तुल्य होगा। उसका नाम 'हनुमान' होगा।"

यहाँ देवताओंके मानसिक गमनका ही उल्लेख है, किसीका धर्मभङ्ग करना नहीं बताया गया है। महाभारतमें देवताओंके लिये लिखा है—

देवाश्चैश्वर्यवन्तो वै शरीराण्याविशन्ति वै॥
सन्ति देवनिकायाश्च संकल्पाज्जनयन्ति ये।
वाचा दृष्ट्या तथा स्पर्शात् संघर्षेणेति पञ्चधा॥

(आश्रमवासिक० ३०।२१-२२)

यहाँ देवताओंका संकल्प, वाणी, दृष्टि, स्पर्श अथवा संघर्षद्वारा संतान उत्पन्न कर सकना बताया गया है। साथ ही देवयोनिमें लोकोत्तर शक्ति बतायी गयी है। इस प्रकार कल्पभेदसे श्रीहनुमानजीकी उत्पत्तिमें भेद बताया गया है। इससे उनकी अलौकिक बलशालिता व्यक्त होती है।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि श्रीहनुमान कोई वनवासी जातिके मनुष्य नहीं थे, रुद्र या उनके भेद वायुदेवके अंश होनेसे वे देवता थे। उन्होंने रामकार्य पूर्ण किया। उनकी उपासनासे बल-बुद्धि आदि प्राप्त हो सकते हैं और होते हैं।

'मंगल-मूरति मारुत-नंदन'

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

पाठकोंको आश्चर्य अवश्य होता होगा कि जिन श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने *'असुभ होइ जिन्हके सुमिरे ते बानर रीछ बिकारी।'* (विनय-पत्रिका १६६। ९)-के नियमानुसार स्वयमेव हनुमानजीसे श्रीरामचरितमानस (५। ६। ४) में—

'प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥'

—इत्यादि कहा-कहलाया, वे ही 'विनय-पत्रिका'-में हनुमानजीको—

'जयति मंगलागार' (२७। १)

'मंगल-मूरति मारुत-नंदन। सकल-अमंगल-मूल-निकंदन॥
पवनतनय संतन-हितकारी। हृदय बिराजत अवध-बिहारी॥'

(३६। १-२)

—इत्यादि कैसे कह डालते हैं। ऐसी परस्पर-विरोधी बातोंपर शङ्का होना स्वाभाविक है। प्रात:काल मङ्गल-स्मरणका विधान है। यों भी प्रत्येक कार्यारम्भमें, विशेषकर स्थिर कार्यादिके प्रारम्भमें **'मङ्गलाद्यप्रयोगं च'** (वा० रा० २। १००। ६७) आदिके अनुसार मङ्गल-स्मरण आवश्यक तथा उसका अनुष्ठान न करना दोषावह माना गया है। ऐसी दशामें व्यक्ति बड़ी द्विविधामें पड़ जाता है कि वह प्रात:काल एवं यात्रा, कार्यारम्भ आदिमें अन्य मङ्गल-स्मरणोंके साथ श्रीहनुमानजीका भी स्मरण करे या नहीं। अस्तु, यहाँ संक्षेपमें इसी प्रश्नपर विचार प्रस्तुत करनेका यत्न किया जा रहा है। आरम्भमें 'मङ्गल' शब्द तथा मङ्गल पदार्थपर भी कुछ विचार कर लेनेसे प्रसङ्गको साङ्गोपाङ्ग समझनेमें सहायता मिलेगी; अत: थोड़ा उसपर भी विचार किया जा रहा है।

मङ्गल पदार्थ क्या है?

गत्यर्थक **'मगि'** धातुसे **'अलच्'** प्रत्यय (उणादि पञ्चमपाद अन्तिम मङ्गलसूत्र) द्वारा 'मङ्गल' शब्द निष्पन्न होता है। पुन: उससे **'यत्'** प्रत्यय करनेसे **'मङ्गल्य'** एवं **'ष्यञ्'** करनेसे **'माङ्गल्य'** शब्द बनता है— **'कल्याणं मङ्गलं शुभम्।'**

मङ्गला सितदूर्वायामुमायां पुंसि भूमिजे।
नपुंसकं तु कल्याणे सर्वार्थरक्षणेऽपि च॥
मङ्गल्यः स्यात् त्रायमाणाश्वत्थबिल्वमसूरके।
स्त्रियां शम्यामध:पुष्पीमिसीशुक्लवचासु च॥
रोचनायामथो दध्नि क्लीबं शिवकरे त्रिषु।

(मेदिनीकोश २८। १२०; २६। १००-१०१)

'मेदिनीकर' के इस वचन तथा—

दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला॥

(मानस ७। ३। ५)

औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना॥

(मानस २। ५। १)

—इत्यादिके अनुसार दधि, दूर्वा, अक्षत, हरिद्रा, रोली, चन्दन, ताम्बूल, सुपारी, बिल्व, रोचना, ब्राह्मण, राजा, वेश्या, सजल कलश, दीप, आम्रपल्लव, कदलीपत्र, दीपक, शङ्ख, दर्पण, मङ्गलवाद्य, पुष्प, कन्या एवं पतिव्रता तथा सौभागिनी स्त्री, गौ, मागध-बन्दी, ध्वजा-पताका आदि **'मङ्गल पदार्थ'** हैं। रघुनन्दनभट्टके 'एकादशी-तत्त्व' में तो कुशलाचारताको ही 'माङ्गल्य' कहा गया है। किंतु **'रत्नमाला'** आदिमें हंस, शिखि, शुक, पिक, चाष आदि पक्षियोंको एवं अश्व-गजादिके घोषको भी 'मङ्गलमय' बतलाया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणपति-खण्डके १६वें अध्याय और उसीके श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड, उत्तरार्द्धके ७०वें अध्यायमें एवं मानस, बालकाण्ड २९९से ३०५ दोहेतक नकुल, मृगमाला, श्वेत चामर, अश्वत्थ, शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु, मीन, शृगाल (लोवा-लोमड़ी) आदि मङ्गलमय प्राणी-पदार्थोंकी एक बड़ी ही लंबी तालिका प्राप्त होती है।

सर्वोत्कृष्ट मङ्गलसारसर्वस्वता

वेदोंमें मङ्गलके लिये **'स्वस्ति न इन्द्रः'**, **'भद्रं कर्णेभिः'** आदिमें **'स्वस्ति'** तथा **'भद्र'** आदि शब्द ही अधिकतया प्रयुक्त हैं। उनमें 'मङ्गल' पदके—**'सुमङ्गलीरियं वधूः'** (ऋक्० सं० १०। ८५। ३३, अथर्व० सं० १४। २। २८), **'सुमङ्गली प्रतरणी'** (अथर्व० सं० १४। २। २६), **'मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा'** (अथर्व० सं० १९। २३। २८) इत्यादि प्रयोग विरले ही प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवतादि पुराणोंमें इस शब्दका प्रयोग अवश्य प्रचुररूपसे उपलब्ध है, पर सर्वाधिक प्रयोग किया है इसका श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने ही। अकेले मानसमें ही यह शब्द प्राय: तीन सौ बार प्रयुक्त हुआ है। श्रीरामविवाह-प्रकरणमें प्रति दोहेमें इसका कई बार प्रयोग हुआ है। देखिये—२९६-९७ तथा ३०२-५ दोहे। इनमें 'मङ्गल' पदकी पुनरुक्तियाँ भी सुन्दर लगती हैं। (विशेष द्रष्टव्य श्रीबद्रीदासजीनिर्मित कोशमें मंगल, सुमंगल आदि शब्द।)

वस्तुतः इन तथा अन्य सभी दृष्टियोंसे स्वयं भगवान् ही सभी मङ्गलोंके मङ्गल, मूर्तिमान् मङ्गल या मङ्गलमूल-सारसर्वस्व हैं। यहाँतक कि उनकी स्मृति भी सर्वार्थसाधिका कही गयी है—

अतिकल्याणरूपत्वान्नित्यकल्याणसंश्रयात् ।
स्मर्तॄणां वरदत्वाच्च ब्रह्म तन्मङ्गलं परम् (विदुः)॥
अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसंततिम्।
स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मङ्गलं परम्॥

गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें भी भगवान् मङ्गलके भी मङ्गल, मोदके भी मोद, सुखके भी सुख, आनन्दके भी आनन्दप्रद और प्राणोंके भी प्राण हैं—

'आनँदहू के आनँद दाता॥' (मानस १। २१६। १)
'रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥' (मानस २। ७३। ३)

प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह जिन्हहि तिन्हहि बिधि बाम॥ (मानस २। २९०)

इस प्रकार गोस्वामीजी तथा श्रीमद्भागवतकारके अनुसार श्रीभगवन्नाम, चरित्र, चरण तथा उनके चरणादि-संस्पृष्ट—सम्पृक्त-स्थल, प्राणी-पदार्थ आदि भी तद्वत् ही महामङ्गलमय हैं—

तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम्॥
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्। (१२। १२। ४८-४९)

गोस्वामीजीके भी—

मंगलरूप भयउ बन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते॥ (मानस ४। १३। ५)
सो बनु सैलु सुभायँ सुहावन। मंगलमय अति पावन पावन॥
महिमा कहिअ कवनि बिधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू॥ (मानस २। १३८। २)
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥ (मानस १। ९। १)
नाथ ! कुसल-कल्यान-सुमंगल बिधि सुख सकल सुधारिकै।
देत-लेत जे नाम रावरो, बिनय करत मुख चारिकै॥ (गीतावली ५। ३६। ४)

—इत्यादि कथनोंका यही तात्पर्य है।

श्रीहनुमानजीके विषयमें शङ्काका कारण

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी कुछ भी निराधार लिखनेवाले न थे। वे जो कुछ लिखते, नानापुराण-श्रुति-स्मृति-सम्मत ही लिखते थे; विशेषकर रामचरितोंके ज्ञानमें तो वे अत्यन्त ही निष्णात थे। वाल्मीकीय रामायणमें भगवती श्रीसीताद्वारा ही वानरको 'अशुभ' कहा गया है—

नाहं स्वप्नमिमं मन्ये स्वप्ने दृष्ट्वा हि वानरम्।
न शक्योऽभ्युदयः प्राप्तुं प्राप्तश्चाभ्युदयो मम॥[1] (५। ३४। २२)

'स्वप्नो मयायं विकृतोऽद्य दृष्टः शाखामृगः शास्त्रगणैर्निषिद्धः॥'[2] (५। ३२। ९)

इन वचनोंसे सिद्ध होता है कि 'वानर' का प्रत्यक्ष या स्वप्नादिमें भी दर्शन अभ्युदयकारी या माङ्गलिक नहीं माना जाता। अतः श्रीगोस्वामीजीका श्रीहनुमानजीद्वारा ही *'प्रात लेइ जो नाम हमारा।'* (मानस ५। ६। ४) आदि कथन निराधार नहीं है, तथापि उनका *'मंगल-मूरति मारुत-नंदन'* कथन भी निर्मूल या असत्य नहीं है। विचार करनेपर हनुमानजीकी 'मङ्गलसारता'-में निम्नलिखित हेतु प्रमुख दीखते हैं।

श्रीहनुमानजीकी मङ्गलमयता

हनुमानजी साक्षात् शिवावतार हैं। भगवान् शिव परम-मङ्गलमय हैं ही। **'शिव'** शब्दका अर्थ ही परममङ्गल है—

यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां
सकृत् प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत्।
पवित्रकीर्तिं तमलङ्घ्यशासनं
भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः॥[3] (श्रीमद्भा० ४। ४। १४)

इस प्रकार साक्षात् देवतारूप तथा महादेवावतार होनेसे श्रीहनुमानजी 'मंगल-मूरति' हैं ही। स्वयं श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने भी इस शङ्काका खुलासा—रहस्य-भेदन विनय-पत्रिकाके २७वें आदि पदोंमें कर दिया है। यथा—*'जयति मंगलागार, संसारभारापहर, वानराकारविग्रह पुरारी।'* इत्यादि।

१-मैं इसे स्वप्न नहीं मान सकती; क्योंकि स्वप्नमें वानरका देखना कभी मङ्गलकारी नहीं होता। इधर मैं देखती हूँ कि मुझे मङ्गल प्राप्त हो गया। (अतः श्रीहनुमानजी इसके अपवाद—मङ्गलरूप ही हैं।)

२-अरे! आज मैंने शास्त्रनिषिद्ध वानरका बड़ा बुरा स्वप्न देखा।

३-जिन भगवान् शंकरका 'शिव'—यह दो अक्षरोंका नाम अन्य प्रसङ्गोंमें भी मुँहसे निकलनेपर पापनाशक एवं परम मङ्गलकारी

अर्थात् जैसे शिवजी अमङ्गलवेशमें भी अमङ्गलहारी एवं समस्त मङ्गलकारी हैं—*'असिव बेष सिवधाम कृपाला॥'* (मानस १। ९१। २), *'साजु अमंगल मंगल रासी॥'* (मानस १। २५। १) इत्यादि, वैसे ही श्रीहनुमानजी सामान्य वानरवेशमें भी मङ्गलागार हैं। आप आश्रितोंके काम-क्रोध-लोभ-अज्ञानाश्रित जन्म-मरणरूपी संसारभारको दूर कर परमप्रभुके चरणोंमें पहुँचाकर परम श्रेय—महामङ्गल प्रस्तुत कर देते हैं। इससे बढ़कर मङ्गल और क्या होगा? यह समस्त मङ्गलोंका भी मङ्गल एवं समस्त श्रेष्ठ फलोंका भी तो फल है; अत: निस्संदेह श्रीहनुमानजी 'मंगल-मूरति' हैं और इसीलिये इन्हें ***'मंगल-मूरति मारुत-नंदन'*** कहना पूर्णरूपसे सही है।

श्रीत्र्यम्बकराय मखिने वाल्मीकिरामायणके सुन्दरकाण्डकी टीकामें इसके अतिरिक्त दूसरे-तीसरे कारणोंका भी न्यास किया है। उनके अनुसार हनुमानजीकी सुन्दरता और मङ्गलमयताके ही आधारपर 'सुन्दरकाण्ड'-की भी सुन्दरता एवं मङ्गलमयता मानी गयी है। श्रीहनुमानजी सभी प्रकारसे सुन्दर, कल्याणरूप एवं मङ्गलरूप हैं। इसीलिये सुन्दरकाण्डके पाठसे कल्याण होता है। 'सुन्दर' का एक अर्थ 'हनुमान' भी है। इधर श्रीरामप्राण होनेसे तो श्रीहनुमानजी शुद्ध राममय—मङ्गलमय सिद्ध होते ही हैं।

सुन्दरकाण्ड वाल्मीकीय रामायणका प्राण है, किंतु इसमें श्रीहनुमानजी ही सर्वस्व हैं। यदि वे मङ्गलरूप न होते तो सुन्दरकाण्डके पाठसे पूर्ण मङ्गल कैसे होता? सीताका पता लगाना, उन्हें श्रीरामसे मिलाना, धर्मकी स्थापना करना, धर्मोन्मूलक रावणादि राक्षसोंका उन्मूलन, विभीषण-सुग्रीवादिको राज्यदान—ये सभी कार्य परम मङ्गलमय* ही हैं। यावज्जीवन ब्रह्मचर्यधारण, ज्ञानार्जन, रामभक्तोंका श्रेयोविस्तार—यही इनका मूर्तरूप है। इस प्रकार कार्यशुद्धि, ज्ञानशुद्धि, भावशुद्धि, व्यवहारशुद्धि एवं आत्मशुद्धि आदिके शुद्ध विग्रह श्रीहनुमानजी विशुद्ध मङ्गलविग्रह-मङ्गलमूर्ति ही हैं, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है। और *'प्रात लेइ'* आदि कथनमें इनकी नम्रता एवं निरहंकारिता भी एक हेतु है।

निष्कर्ष एवं उपसंहार

निष्कर्षत: यात्रारम्भ, कार्यारम्भ, प्रातर्मङ्गल आदि रूपमें सर्वत्र श्रीहनुमत्स्मरण परम मङ्गलमय ही है। यह बात श्रीगोस्वामीजीके निम्नलिखित पद्योंसे और भी स्पष्ट हो जाती है—

सकल काज सुभ समउ भल सगुन सुमंगल जानु।
कीरति बिजय बिभूति भलि हियँ हनुमानहि आनु॥

(दोहावली २३२ तथा रामाज्ञाप्रश्न ३। ४। १)

सुमिरत संकट-सोच-बिमोचन, मूरति मोद-निधानकी॥

× × × ×

तुलसी कपिकी कृपा-बिलोकनि, खानि सकल कल्यानकी॥

(विनय-पत्रिका ३०। २-३)

'पवनतनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप।'

(हनु० चाली०)

मंजुल मंगल मोद मय मूरति मारुत पूत।
सकल सिद्धि कर कमल तल, सुमिरत रघुबर दूत॥

(रामाज्ञा० ६। ४। १)

सदा अभय, जय, मुद-मंगलमय जो सेवक रनरोर को॥
भगत-कामतरु नाम राम परिपूरन चंद चकोर को।
तुलसी फल चारों करतल जस गावत गई बहोर को॥

(विनय-पत्रिका ३१। ५-६)

मंगल मूरति मारुतिहि सादर लीन्ह बुलाइ॥

(रामाज्ञा० ३। ६। ४)

तुलसी तुलसी राम सिय, सुमिरि लखनु हनुमान।
काजु बिचारेहु सो करहु, दिनु दिनु बड़ कल्यान॥

(रामाज्ञा० १।१।७)

सुख मुद मंगल कुमुद बिधु, सगुन सरोरुह भानु।
करहु काज सब सिद्धि प्रभु आनि हिएँ हनुमानु॥

(रामाज्ञा० ७।१।२)

इन सभी वचनोंमें स्पष्ट ही श्रीहनुमानजीके स्मरणसे नित्य-निरन्तर उत्तरोत्तर कल्याण-प्राप्तिका निर्देश है। (विनयपीयूष, सिद्धान्त-तिलकादि व्याख्याओंमें इन विषयोंपर तथा पदोंके भावार्थोंपर विशेष विचार हुआ है।) अत: नि:संकोच कार्यारम्भ आदिमें श्रीसीतारामसहित श्रीहनुमानजीका भी स्मरण किया जाना ही चाहिये।

होता है, उन्हीं मङ्गलमय पवित्रकीर्ति भगवान् शंकरसे आप (दक्षप्रजापति) द्वेष करते हैं। उनसे द्वेष करनेवाला तो अमङ्गलरूप ही होता है।

* कहते हैं कि 'विनय-पत्रिका' के ३१ से ३६ तकके पदों तथा 'मंगल-मूरति' आदि पदोंकी अकबरकी बंदीसे मुक्ति आदि अनेक मङ्गलोंके सिद्ध होनेपर ही गोस्वामीजीने रचना की थी। इस प्रकार उन्हें इनकी मङ्गलमयताका पूर्णतया प्रत्यक्ष अनुभव भी था।

श्रीहनुमत्स्वरूप—एक विवेचन

(लेखक—साहित्यमहोपाध्याय प्रो० श्रीजनार्दनजी मिश्र, 'पङ्कज', एम्०ए०, शास्त्री, काव्यतीर्थ, व्याकरण-साहित्य-न्याय-सांख्य-योग-दर्शन-वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

अञ्जनानन्दन पवनकुमार श्रीहनुमानजीका स्मरण आते ही उनके दोनों रूप—'**अतुलितबलधाम**' एवं '**ज्ञानिनामग्रगण्य**' हमारे सामने प्रकट हो जाते हैं। श्रीमारुतिमें बल और ज्ञानकी पराकाष्ठा उनके बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग दोनों पक्षोंका एक सामान्य परिचय है।

अतुलितबलधामका मुष्टि-प्रहार—गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीहनुमानजीको '**अतुलितबलधामम्**' कहकर योगदर्शनके 'विभूतिपाद' में निर्दिष्ट संयमकी ओर संकेत किया है। 'विभूतिपाद' में वर्णित सारी सिद्धियाँ तथा अन्य प्रकारके अद्भुत एवं रहस्यमय चमत्कार संयमद्वारा ही किये जा सकते हैं। संयमको आप आधुनिक 'परमाणु बम' ही समझें, जिसमें सभी प्रकारकी अद्भुत शक्तियाँ संनिविष्ट हैं। दर्शनकी दृष्टिमें स्थूल भूतोंकी अपेक्षा सूक्ष्म भूत सूक्ष्मतर हैं, उनकी अपेक्षा तन्मात्राएँ और इन्द्रियाँ सूक्ष्मतर हैं और उनकी अपेक्षा भी अहंकार तथा अहंकारकी अपेक्षा चित्त। चित्त—यह गुणों (सत्त्व-रज-तम)-का प्रथम विषम परिणाम है। सांसारिक सभी पदार्थोंकी प्रकृति होनेके कारण यह सभीके साथ तदाकार हो सकता है; सबसे सूक्ष्म होनेके कारण सबमें प्रविष्ट होकर उनमें यथोचित परिणाम उत्पन्न कर सकता है। संयममें चित्तका ही सारा खेल होता रहता है।

'योगदर्शन' के अनुसार धारणा, ध्यान एवं समाधि—तीनों एक ही संयमरूप क्रियाके भाग हैं। नासिकाग्र, भ्रूमध्य, कण्ठ आदिके किसी एक विषयमें चित्तको ठहरा देना 'धारणा' है। कुछ देरतक लगातार चित्तका किसी एक स्थानपर स्थित रहना 'ध्यान' कहलाता है। वही ध्यान जब सूक्ष्मके साथ अविच्छिन्न गतिका रूप ले लेता है अर्थात् ध्यान करनेवालेको 'ध्येय' के अतिरिक्त और किसीकी भी सुध-बुध नहीं रह जाती, तब ध्यानकी वह अवस्था 'समाधि' कहलाती है। अब पाठक 'विभूतिपाद' के २४वें सूत्रपर ध्यान दें—'**बलेषु हस्तिबलादीनि**—बलोंमें संयम करनेसे हाथी आदिके समान बल प्राप्त होते हैं।' भाव यह कि जब योगी हाथी, सिंह, व्याघ्र आदिके बल तथा वायु आदिके वेगमें तदाकार होकर साक्षात्-पर्यन्त संयम करता है, तब उनके-जैसे बलोंको प्राप्त होता है अर्थात् इनमेंसे जिस-किसीके बलमें संयम किया जाता है, उसीका-सा बल प्राप्त होता है। श्रीपवनकुमार तो साक्षात् वायुनन्दन ही हैं। उनमें अप्रमेय बल है। कारणसे कार्योत्पत्ति होती है। बीज कारण और वृक्ष कार्य है। बरगदका एक छोटा-सा बीज तो आप नाकके एक छिद्रमें भी रख सकते हैं, पर उसी बीजसे प्रसूत-वर्धित वृक्ष कितना स्थान लेगा, विचार कर लें। मिट्टीके ढेलेपर न तो पानी लाया जा सकता है और न दूध-घी ही रखा जा सकेगा; पर उसी मिट्टीसे बने घड़ेमें पानी ले आयें, चाहे घी-दूध रख लें। अभिप्राय इतना ही है कि पवनमें जो बल है, जो शक्तियाँ हैं, पवनात्मजमें वे सभी पवनकी अपेक्षा विशेष हैं, अधिक विस्तृत हैं।

रामचरितमानसके पाठकोंको विदित है कि पवनपुत्र हनुमानने रामायणके चार चुने वीरोंपर मुष्टिका-प्रहार किया है। लंकानगरीकी अधिष्ठात्री देवी लंकिनीपर हनुमानजीका प्रथम मुष्टिका-प्रहार हुआ है—

मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥

(मानस ५।३।२)

लंकिनीके प्राण-पखेरू न उड़ पायें, इसलिये उसे हलके-से ही मारा, नहीं तो स्त्री-हत्या हो जाती। लंकिनीने पहले तो हनुमानजीको 'चोर' कहा था, परंतु पीछे जब वह सँभलकर उठी, तब उसने उनके लिये दोनों हाथ जोड़ लिये।

दूसरा मुष्टिका-प्रहार मेघनादपर अशोक-वाटिकामें हुआ है। हनुमानजीका यह दूसरा मुक्का घननाद कभी नहीं भूला। देखिये—

मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥
उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया॥

(मानस ५।१८।४-४½)

मुक्का लगते ही मेघनाद मूर्च्छित हो गया; परंतु उसके प्राण बच गये; क्योंकि हनुमानजीका मुक्का तो लोगोंको पाठ पढ़ाता है—उनके प्राण नहीं लेता। उसी मेघनादका श्रीरामानुज लक्ष्मणजीसे युद्ध छिड़ा है। दोनोंके बीच हनुमानजी कूद पड़े हैं। वे बार-बार मेघनादको ललकार रहे हैं, पर वह तो भुक्तभोगी है।

हनुमानजीका मुक्का क्या भूल जानेका विषय है? मेघनाद श्रीहनुमानजीके सामने आता ही नहीं।

तीसरा मुक्का रावणानुज कुम्भकर्णको लगा है—

कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा॥

(मानस ६।६४।२$\frac{1}{2}$)

किंतु पर्वत और चट्टानोंकी मार तो उस कुम्भकर्णके लिये आकके रुईभरे फलोंकी भाँति निस्सार है; उसे पर्वत-शृङ्गकी चोटोंका तो पता भी न चला—

'.....................। **जिमि गज अर्क फलनि को मार्‍यो॥'**

(मानस ६।६४।३)

ऐसा भूधराकार शरीरधारी कुम्भकर्ण भी हनुमानजीके मुष्टिका-प्रहारसे तिलमिला उठा है; कलाबाजी खाता हुआ पृथ्वीपर गिर गया है। पुनः उठा तो सही, पर उधर हनुमानजीका मुक्का तैयार था। मुक्का लगा और कुम्भकर्ण भूतलपर चक्कर काटकर पुनः गिर पड़ा—

तब मारुतसुत मुठिका हन्यो। पर्‍यो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥
पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता॥

(मानस ६।६४।४)

चौथा मुक्का रावणको लगा है। पूर्वापेक्षया यह भीषण वज्रमुष्टि-प्रहार है। लंकिनी, घननाद तथा घटकर्णको तो मुष्टिका-प्रहारमात्र लगा है, पर लंकेशको वज्र-मुष्टिका लगी है—

मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥
मुरुछा गै बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥

(मानस ६।८३।१$\frac{1}{2}$)

हनुमानजीकी इस वज्र-मुष्टिकाने तो लंकापति रावणको भी मूर्च्छित कर दिया है। इसपर अब दार्शनिक दृष्टिसे विचार करें। यह मानी हुई बात है कि एक-एक अँगुलीका अलग-अलग अपना महत्त्व, प्रभाव और कर्तृत्व है। पाँचोंकी समवेत शक्ति मुष्टिका बन जाती है। मार-पीटमें क्या बच्चे, क्या जवान और क्या बूढ़े—सभी मुक्का-मुक्की कर लेते हैं। तात्त्विक दृष्टिसे ये पाँचों अँगुलियाँ ज्ञानेन्द्रियोंकी प्रतीक हैं। मोड़ देनेसे 'मुष्टिका' बन जाती हैं। अङ्गुष्ठमें अग्नितत्त्व, तर्जनीमें वायु-तत्त्व, मध्यमामें आकाश-तत्त्व, अनामिकामें जल-तत्त्व और कनिष्ठिकामें पृथ्वी-तत्त्व स्थित हैं। इन पाँचोंकी समष्टि अर्थात् मुड़कर एकताबद्ध होना ही 'मुष्टिका' है। इसमें बड़ी शक्ति आ जाती है। हाँ, इसमें ब्रह्मचर्यका बल तथा योगज संयम भी अपेक्षित है। रावणको वज्र-मुष्टिका लगी थी। यों तो श्रीबजरङ्गीके मुक्केसे मूर्च्छा चारोंको आयी है।

अवतार-तथ्य और जन्म-तिथि—श्रीहनुमानजी रुद्रावतार हैं। गोस्वामीजीने तो स्पष्ट लिख दिया है—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥
जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।
पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान॥

(दोहावली १४२-१४३)

रुद्रावतारके अतिरिक्त श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामके अंश भी हैं। जिस प्रकार उदार दिनकर-वंशमें ब्रह्मका अंशसहित नरावतार हुआ, उसी प्रकार यह वानरावतार भी हुआ। 'आनन्द-रामायण' में कथा आती है कि कोसलेन्द्र चक्रवर्ती महाराज दशरथके यहाँ पुत्रेष्टि-यज्ञकी पूर्णाहुतिपर अग्निदेव स्वर्णस्थालीमें चरु (पायस) लेकर प्रकट हुए। चरु-वितरणके समय कैकेयी रानीके पायसांशसे कुछ चरु एक चील झपट्टा मारकर ले भागी। उसी समय अञ्जन-गिरिपर ऋतुस्नाता अञ्जना अपने बाल सुखा रही थीं। उन्हींकी गोदमें वह चरु गिर गया। उसीसे हनुमानजीका अञ्जनाके गर्भसे अवतार हुआ। मानसकारके अनुसार न केवल परात्पर ब्रह्मका रामरूपमें अवतार हुआ, अपितु चतुर्व्यूह—श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—चारों अवतीर्ण हुए—

'अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥

× × ×

तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥

(मानस १।१८६।१,२$\frac{1}{2}$)

किष्किन्धाकाण्डके अन्तिमांशमें श्रीजाम्बवन्तजीकी उक्ति भी विचारणीय है—

राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा॥

(मानस ४।२९।३)

अवश्य ही ***'राम काज लगि तव अवतारा'***—जाम्बवन्तकी यह उक्ति बड़ी सारगर्भित है।

'नैषधीय' महाकाव्यमें नल-दमयन्तीके परस्पर मिलन एवं प्रणय-सम्बन्धमें जैसे 'हंस-दूत' है, उसी प्रकार गोस्वामीजीकी पुष्पवाटिकामें एक दूती है और वही श्रीजानकी और श्रीरामको परस्पर मिला पाती है। ***'एक सखी सिय संगु बिहाई।'*** (मानस १।२२७।३$\frac{1}{2}$) इस अर्धालीसे प्रतीत होता है कि श्रीजानकीजीकी आठ सखियोंमें यह सखी एक ही है—प्रधान है। 'अगस्त्य-संहिता' (रामायण)-में श्रीसीताजीकी आठ अन्तरङ्ग सहेलियोंकी नामावली आयी है। वे हैं—(१) श्रीचारुशीला,

(२) श्रीलक्ष्मणा, (३) श्रीहेमा, (४) श्रीक्षेमा, (५) श्रीवरारोहा, (६) श्रीपद्मगन्धा, (७) श्रीसुलोचना तथा (८) श्रीसुभगा। 'अवध-विलास' पुस्तकमें नामान्तर भी हैं। 'मानस-पीयूष' में लिखा है कि 'श्रीहनुमानजी ही श्रीरामसे श्रीजानकीको मिलानेवाली सखी श्रीचारुशीलाके रूपमें हैं'। अत: नखसे शिखतक—*'राम काज लगि तव अवतारा।'*—रामकार्यमें आदिसे अन्ततक श्रीहनुमानजी छायाकी भाँति श्रीरामके साथ हैं। वस्तुत: राम-कार्यके लिये ही श्रीहनुमानजीका अवतार हुआ है।

एक मान्यता ऐसी है कि चैत्रमास, शुक्लपक्ष, एकादशी-तिथि और मघानक्षत्रमें श्रीहनुमानजी अवतरित हुए—

चैत्रे मासि सिते पक्षे हरिदिन्यां मघाभिधे।
नक्षत्रे स समुत्पन्नो हनुमान् रिपुसूदनः॥

कल्प-भेदसे पुन:—

महाचैत्रीपूर्णिमायां समुत्पन्नोऽञ्जनीसुतः।
वदन्ति कल्पभेदेन बुधा इत्यादि केचन॥

(आनन्दरा० सार० १३।१६२)

तदनुसार चैत्रपूर्णिमा उनका जन्म-दिवस है।

महामना मदनमोहन मालवीयजीद्वारा प्रवर्तित विश्वपञ्चाङ्ग एवं हृषीकेश पञ्चाङ्गों आदिके अनुसार श्रीहनुमानजीका जन्म कार्तिक कृष्णपक्ष 'नरक चतुर्दशी' मङ्गलवारको सायंकाल मेष-लग्नमें हुआ। हनुमज्जयन्तीकी प्रचलित तिथि यही है।

महावीरकी गर्जना—

महर्षि वाल्मीकिने महावीर हनुमानकी घोर गर्जनाके महत्त्वको, विशेषत: असुर-समूहमें उस शब्द-शक्तिके अमिट प्रभावको अपनी रामायणमें अपेक्षित स्थलोंपर बतलाया है। गोस्वामीजीने इस गर्जनाको मर्यादित, पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध किया है। प्रतिशोधकी दृष्टिसे ही लें, महामोहका प्रतीक असुराधिप रावण (**रावयति-रोदयति**—जगत्‌को रुलानेवाला) विश्व-विजयके लिये निकल पड़ा है यौवन-मदमें उतराता हुआ—

चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्त्रवहिं सुर रवनी॥

(मानस १।१८१।२$\frac{1}{2}$)

इस अर्धालीमें दिखाया गया है कि दिग्विजयी रावणके पद-चापसे पृथ्वी डोलने लगती है और उसकी गर्जनासे देवाङ्गनाओंके गर्भपात होने लगते हैं।

महावीर हनुमानजी लंकाको जलाकर चले तो उन्हें प्रभुकी प्रेरणा मिली और उन्होंने भी वहाँसे चलते समय घोर गर्जना की, जिसके भयंकर शब्दसे वहाँके राक्षसोंकी पत्नियोंके गर्भपात हो गये—

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्त्रवहिं सुनि निसिचर नारी॥

(मानस ५।२७$\frac{1}{2}$)

पद्मपुराणके अनुसार तो पुष्पक-विमानद्वारा लंकासे अयोध्याकी ओर लौटते समय रणक्षेत्रके बाहर जहाँ-तहाँ युवती—असुर-नारियोंकी मृत देहोंको देखकर भगवान् श्रीरामने दाँतों-तले अँगुली दबा ली। उन्होंने जिज्ञासासे लक्ष्मण, सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान तथा विभीषणकी ओर देखा, पर कहींसे भी कोई उत्तर नहीं मिला। भला, श्रीराम नारी-हत्याको कैसे प्रोत्साहन देते? इतनी स्त्रियाँ मरीं तो कैसे? हनुमानजीको स्वयं पता नहीं। उस मौनको जगज्जननी श्रीसीताने भङ्ग किया। उन्होंने हनुमानजीकी ओर इशारा किया। अब भेद खुला कि हनुमानजीने लंकासे लौटते समय महाध्वनि की थी। उसीके परिणामस्वरूप भयभीत गर्भवती रमणियाँ अपने गर्भके साथ ही परलोक सिधार गयीं। ऊपरकी चौपाईका आधार कदाचित् पद्मपुराणकी यही कथा है।

वानर-ऋक्ष-गृध्रका अस्तित्व एवं महत्त्व—

आध्यात्मिक दृष्टिसे विवेचनका यह अभिप्राय नहीं कि श्रीहनुमानजीकी भौतिक या जागतिक सत्ता नहीं है; उनकी सत्ता तो त्रिकालाबाधित सत्य है। महर्षि वाल्मीकिने तो उन्हें 'चतुर्वेदी' लिखा है। हनुमानजी चारों वेदके ज्ञाता थे। सम्पूर्ण व्याकरणपर उनका अधिकार था।

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥

(वा० रा० ४।३।२८-२९)

श्रीरामचन्द्रने ऋष्यमूकपर्वतपर श्रीसीताकी खोजमें विचरते हुए लक्ष्मणसे हनुमानजीकी सराहना की है। सचमुच वाणीके अठारह दोषोंमेंसे एक भी दोष हनुमानजीमें नहीं हैं, ऐसी स्थितिमें उन्हें आजकलका बंदर कैसे माना जा सकता है? कौन-सा बंदर चतुर्वेदी और महावैयाकरण है? इतना ही नहीं, अशोकवाटिकामें माँ सीतासे श्रीहनुमानका वार्तालाप भी एक विवेच्य विषय है—

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥

(वा० रा० ५।३०।१८)

'यदि मैं द्विजातियोंके बीच बोली जानेवाली संस्कृत-भाषामें बातें करूँगा तो माँ सीता मुझे रावण समझकर भयभीत हो जायँगी।' ऐसा विचारकर श्रीहनुमानजीने प्राकृत-भाषामें, जो स्त्रियों तथा दास-दासियोंमें प्रचलित थी, माँ सीतासे बातचीत की।

पाठक यदि वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका अवलोकन करें तो वाली और सुग्रीवकी राजधानी, राजसभा, नृत्य-संगीतशाला तथा महल-अटारियोंका वर्णन पढ़कर आश्चर्यचकित हो जायँगे। उनकी आर्य—वैदिक संस्कृति थी। वालीकी अन्त्येष्टि-क्रियाका वर्णन पढ़कर तो लगता है कि वे पूर्णत: द्विजाति थे।

श्रीजाम्बवन्तजी ब्रह्माके अवतार हैं, सुग्रीवके प्रधान मन्त्री हैं। ये द्वापरतक पाठकोंको मिलते हैं। इन्हींकी कन्या जाम्बवती भगवान् श्रीकृष्णकी आठ पटरानियोंमेंसे एक हैं। साम्ब जाम्बवतीके ही पुत्र हैं। हनुमानजी रुद्रावतार हैं। 'स्कन्दपुराण' में इनकी सिद्धिके लिये कई पुरश्चरण, कई प्रयोग और कई मन्त्र उपलब्ध हैं। एक मन्त्रमें '**रुद्रात्मकाय**' शब्द भी आता है। वाली इन्द्रके तथा सुग्रीव सूर्यके अवतार हैं। इसके सिवा अन्य बंदर भी भिन्न-भिन्न देवोंके अवतार हैं।

अन्य पात्रोंमें जटायु एवं सम्पाति भी विचारणीय हैं। क्या इन्हें मात्र गीध कह देना उचित होगा? ये तो भारतके आसमानके रक्षक हैं। इतना ही नहीं, जटायु और सम्पाति उद्भट संस्कृतज्ञ भी हैं, जिनके देहाभिमानका नाश चन्द्रमा ऋषिके तत्त्वोपदेशसे होता है। 'खग' शब्दका प्रयोग भी श्लिष्ट है। 'खग' अर्थात् ('**खं गच्छतीति**') आकाशचारी। इस सम्बन्धमें गोस्वामीजीने भी इशारा किया है—

हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई॥
तेज न सहि सक सो फिरि आवा।
मैं अभिमानी रबि निअरावा॥
जरे पंख अति तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोर चिकारा॥

(मानस ४।२७।१-२)

और महर्षि चन्द्रमाने इनका देहजनित अभिमान छुड़ाया—

मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही॥
बहु प्रकार तेहिं ग्यान सुनावा। देह जनित अभिमान छड़ावा॥

(मानस ४।२७।३)

पाठक विचार करें, कौन गीध तत्त्वज्ञान सुनकर देहाभिमान छोड़ देता है। जटायु तो महाराज दशरथके मित्र हैं; पद्मपुराणमें तो वे युद्धमें दशरथके सहायक भी थे। सीताको 'पुत्रि!' सम्बोधन देनेवाला तथा विमानसे सीताको लिये आकाश-मार्गमें उड़ते रावणको चुनौती देनेवाला क्या कोई मात्र गीध हो सकता है?

'मा भैषीः पुत्रि सीते व्रजति मम पुरो
नैव दूरं दुरात्मा'

(हनुमन्नाटक ४।१०)

ज्ञानिनामग्रगण्य—अध्यात्मरामायणमें श्रीजानकीने श्रीरामकी प्रेरणासे श्रीहनुमानजीको अध्यात्मतत्त्वका उपदेश दिया है। गोस्वामीजीका इन्हें '**ज्ञानिनामग्रगण्यम्**' कहना कितना सारगर्भित है? भगवान् श्रीरामके पूछनेपर—'तू कौन है?' हनुमानजी उत्तर देते हैं—

देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
वस्तुतस्तु त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥

'देहदृष्टिसे मैं [रामका] दास हूँ और जीवदृष्टिसे आपका अंश हूँ तथा परमार्थ दृष्टिसे जो आप हैं, वही मैं हूँ—ऐसी मेरी निश्चित धारणा है।'

इनके विद्यागुरु भगवान् भुवन-भास्कर थे। उनसे इन्होंने ज्योतिष विद्याकी प्राप्ति की थी। 'हनुमानबाहुक'-(४)-में लिखा है—

भानुसों पढ़न हनुमान गये भानु मन
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेर-फारसो।

पहले तो सूर्यने इन्हें टाला, पर घूमते रथके सामने जब ये हाथ जोड़े डटे ही रह गये, तब उन्होंने इन्हें विद्या पढ़ायी। गोस्वामी तुलसीदासजी कपीश्वर श्रीहनुमानजी तथा कवीश्वर श्रीवाल्मीकि—दोनोंको ही विशुद्ध ज्ञानका स्वरूप मानते हैं—

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥

(मानस १।४ मङ्गलाचरण)

महर्षि वाल्मीकि (कवीश्वर) तथा महावीर हनुमान (कपीश्वर) दोनों ही श्रीसीतारामके गुण-समूहरूप अरण्यमें नित्य विहार करनेवाले विशुद्ध ज्ञानके स्वरूप हैं। दोनों विशुद्ध विज्ञानी हैं।

श्रीरुद्ररूप हनुमान

(लेखक—श्रीरामलाल)

श्रीहनुमानजी साक्षात् परमेश्वर रुद्र हैं। उनकी रुद्ररूपमें अभिव्यक्ति वेद, उपनिषद्, रामायण, पुराण आदि शास्त्रोंमें यथाप्रसङ्ग निरूपित है। संत-महात्माओंकी वाणी और उक्तियोंमें भी आञ्जनेय हनुमानकी रुद्ररूपमें मूल-अभिव्यक्ति स्वीकार की गयी है। महाराष्ट्र प्रदेशके महान् संत तुकारामका वचन है—

'तुका म्हणे रुद्रा। अंजनीचिया कुमरा॥'

गोस्वामी तुलसीदासजीने भी श्रीहनुमानके संस्तवनमें उनके रुद्रावतारकी ओर संकेत किया है—

'जयति मंगलागार, संसारभारापहर, वानराकारविग्रह पुरारी।'

(विनय-पत्रिका २७।१)

श्रीहनुमानके परब्रह्मस्वरूपका चिन्तन हमारे पुराणोंमें अधिकाधिक उपलब्ध होता है। श्रीरामप्रोक्त कवचके प्रसङ्गमें श्रीसनत्कुमारकी हनुमानजीके सम्बन्धमें प्रशस्ति है कि 'वे सब रूपोंमें अभिव्यक्त हैं, सर्वज्ञ हैं, सृष्टि करते तथा उसका पोषण करते हैं; एवं वे स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और साक्षात् महेश्वर हैं'—

स सर्वरूपः सर्वज्ञः सृष्टिस्थितिकरोऽवतु॥
स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः साक्षाद्देवो महेश्वरः।

(नारदपुराण, पूर्व०, तृतीयपाद ७८।२४-२५)

त्रिपुरनाशके पहले देवताओंने भगवान् शंकरकी विभूतियोंका वर्णन करते हुए उनके हनुमानरूपका स्मरण किया है—

'आदित्यानां वासुदेवो हनूमान् वानरेषु च।'

(शिवपुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड २। ५१)

श्रीहनुमानके परब्रह्मस्वरूपकी सम्पूर्णताकी आधारशिला है—उनकी श्रीराम और श्रीरुद्रसे अभिन्नता—एकाकारता। श्रीब्रह्माने श्रीरामके स्तवनमें उनको ग्यारह रुद्र एवं भू आदि तीनों लोक कहा है। ''ॐ' जो सुप्रसिद्ध श्रीरामचन्द्रजी हैं, वे अवश्य ही भगवान् हैं तथा जो ग्यारह रुद्र और भू आदि तीनों लोक हैं, वे भी उन्हींके स्वरूप हैं। उन भगवान् श्रीरामको निश्चय ही मेरा बारंबार नमस्कार है।'

'ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् ये चैकादश रुद्रा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः।' (रामोत्तरतापनी उप० ३३)

उपर्युक्त स्वरूपगत अभिन्नताका स्पष्टीकरण 'श्री-हनुमन्नाटक' में भी उपलब्ध होता है—'श्रीमहादेव और श्रीरामके परम तेजःस्वरूप पवनकुमार हनुमान आ गये'—

'सम्प्राप्तः पवनात्मजः पटुमहः श्रीकण्ठवैकुण्ठयोः॥'

(हनुमन्नाटक १३।३३)

श्रीहनुमानके परब्रह्मस्वरूपका वर्णन शुक्लयजुर्वेदीय 'तारसारोपनिषद्' में भी मिलता है। मिथिलाके राजकीय उपवनमें राजर्षि विदेह जनकको परब्रह्मविद्याका उपदेश देते समय महर्षि याज्ञवल्क्यने अपने दो शिष्य—बृहस्पति और भरद्वाजके प्रश्न करनेपर अविमुक्त क्षेत्र, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तथा **'ॐ नमो नारायणाय'**—अष्टाक्षर-मन्त्रके तत्त्वपर प्रकाश डाला है। भरद्वाजद्वारा तारकके रूपका विवेचन करनेके लिये आग्रह किये जानेपर महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा कि **'ॐ नमो नारायणाय'**—इस अष्टाक्षर-मन्त्रमें 'ॐ' ब्रह्मा है, 'न' कार विष्णु है और 'म' कार रुद्र—

'ओमिति ब्रह्म भवति। नकारो विष्णुर्भवति। मकारो रुद्रो भवति।' (तारसारोपनिषद् १। ५)

तारकब्रह्मका स्वरूप स्पष्ट करते हुए याज्ञवल्क्यने तारक-तत्त्वके निरूपणमें रुद्रके रूपपर हनुमत्परक विचार प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा है—'ॐ' परब्रह्म है। यही उपास्य है। यह सूक्ष्माष्टाक्षर है। अकार प्रथमाक्षर है, उकार द्वितीयाक्षर है एवं मकार तृतीयाक्षर शिव हनुमान है—

'मकाराक्षरसम्भूतः शिवस्तु हनुमान् स्मृतः।'

(तारसारोपनिषद् २।२)

परब्रह्म नारायण ही शिवस्वरूप हनुमान हैं। याज्ञवल्क्यने भरद्वाजको बोध प्रदान किया कि 'ॐ परमात्मा नारायण ही रुद्रावतार श्रीहनुमान हैं'—

'ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान् मकारवाच्यः शिवस्वरूपो हनूमान् भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः॥' (तारसारोपनिषद् ३।३)

जाम्बवान्ने श्रीरामको रुद्रावतार हनुमानकी स्तुति करनेकी यों प्रेरणा दी।

'देव! रुद्रावतारोऽयं मारुतिः, रुद्रस्तुतिः क्रियताम्।'

(हनुमन्नाटक ६ ठा अङ्क)

हनुमत्सहस्रनाममें श्लोक १, ३, ५, १६, ३०, ६२, १०० में क्रमशः श्रीहनुमानके रुद्र, शिव, विश्वनाथ,

सदाशिव, महेश्वर, गिरीश, गिरिजाकान्त और रुद्ररूप आदि नामोंका उल्लेख है। साक्षात् भगवान् शिवद्वारा भी श्रीहनुमान संस्तुत हैं—

..महेशकृतसंस्तवः॥

(श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्र ६०)

परब्रह्म रुद्रावतार श्रीहनुमानका वृत्तान्त वेद, पुराण, रामायण, तन्त्र-मन्त्र तथा अन्यान्य कृतियोंमें उपलब्ध होता है। श्रीहनुमानजी साक्षात् रुद्ररूप हैं।

'रुद्रावतारः संजज्ञे वायुपुत्रः प्रतापवान्॥'

(आनन्दरा०, सार० ११।२०)

उपर्युक्त कथन सर्वथा वेदसम्मत है। महर्षि वाल्मीकि आदि कवियों तथा मनीषियोंने भगवान् विष्णु (श्रीराम)-के गुण-गानसे अपनी वाणी पवित्र की। इन्हीं कवियोंके मध्यमें श्रीरुद्रावतार हनुमानकी भी गणना हुई है—

सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः॥

(ऋग्वेद ९।७३।७)

टीकाकार महामति नीलकण्ठने उपर्युक्त ऋचाका भाष्य इस प्रकार किया है। उनका कथन है—

'आसमन्ताद् वितते व्याप्ते महाविष्णौ। सहस्रधारे सोमांशुरूपेण तत्तदिन्द्रियवृत्त्यभिव्यक्तचिदा सा सरूपेण वानन्तप्रवाहे पवित्रे पावने निमित्तभूते सति मनीषिणो जितचेतसः कवयः काव्यरचनासमर्था वाचं स्वीयां पुनन्ति भगवद्गुणगणकीर्तनेन पवित्रीकुर्वन्ति वाल्मीकिप्रभृतयः। एषां कवीनां मध्ये रुद्रासो बहुत्वं पूजायां रुद्रो हनूमान् इषिरास इषिरोद्भुतगतिरद्रुहोऽद्रोही स्पशः—चारः सीतान्वेषकश्चरोऽभूदित्यर्थः। स च स्वञ्चः शोभनगमनः। सुदृशः सम्यक् परीक्षकः। नृचक्षसो नरं सीतारूपं चष्टे पश्यतीति नृचक्षः सीतां ददर्शेत्यर्थः। वप्रवद् रुद्रोऽपि रामायणमकरोत्तत्र च रामदास्यमधिकम्। एवमन्योऽपि रामस्तोत्रेण वाचं दास्येन देहं च पुनीयादिति भावः।'

(मन्त्ररामायण ८)

भाष्यका आशय यह है कि 'सोम-किरणोंके रूपमें सुधाकी सहस्र-सहस्र धाराएँ अथवा स्वरूपसे ही सच्चिदानन्दमय अनन्त प्रवाह प्रकट करनेवाले, सर्वत्र व्यापक, परमपवित्र महाविष्णु (श्रीराम)-के निमित्त मनीषी कवि वाल्मीकि आदि उनके गुणगानके द्वारा अपनी वाणीको पवित्र करते हैं। इन्हीं कवियोंमें रुद्र (-के अवतार) श्रीहनुमानजी भी हैं, जो स्वभावतः अद्रोही (किसीके साथ द्वेष न रखनेवाले) हैं। ये **इषिर**—अद्भुत गतिवाले तथा **स्पशः**—गुप्तचर (अर्थात् सीताका अन्वेषण करनेवाले दूत) हैं। **स्वञ्चः**—इनका संचरण बहुत सुन्दर है और ये **नृचक्षसाः**—अन्वेषणीय मानवमूर्ति सीताके प्रत्यक्षदर्शी हैं—इन्होंने सीताको लंकामें ढूँढ़ निकाला और उनका साक्षात् दर्शन किया। वाल्मीकिकी भाँति रुद्र (हनुमान) भी रामायण (हनुमन्नाटक आदि)-की रचना करनेवाले हैं, किंतु उनमें श्रीरामके प्रति दास्य-भावका सौभाग्य अधिक है। इसी तरह दूसरे लोगोंको भी चाहिये कि वे श्रीरामके स्तवनसे वाणीको तथा दास्य-सेवासे शरीरको पवित्र करें।'

ऋग्वेदमें मन्त्रद्रष्टा ऋषिद्वारा स्वकार्यसिद्धिके लिये रुद्ररूप हनुमानके आवाहनका वर्णन मिलता है—

'कृशानुमस्तृन तिष्यं सधस्थ आ
रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे।'

(१०।६४।८)

उपर्युक्त मन्त्रका 'मन्त्ररामायण' (७१)-में नीलकण्ठने इस प्रकार भाष्य किया है—

'..........ब्रह्माण्डपिण्डमाक्रान्तुं शक्तो रुद्रस्तं हनुमद्रूपं रुद्रेषु मध्ये रुद्रियं रुद्रकर्मार्हं शत्रुसंहारक्षमं हवामहे ऊतये स्वकार्यसमृद्धये स्वेष्टसिध्यर्थमित्यर्थः।'

श्रीहनुमान एकादश रुद्रोंके मध्य ग्यारहवें रुद्र हैं, शत्रुका संहार करनेवाले हैं। वे परम कल्याणस्वरूप साक्षात् शिव हैं।

हमारे पुराणोंमें हनुमानजीके रुद्रावतारात्मक प्रसङ्ग तथा वृत्तान्त प्रचुरतासे प्राप्त होते हैं। निस्संदेह प्रायः सभी पुराणोंमें रामकथाके संदर्भमें हनुमानजीका चरित्र-चित्रण मिलता है। नन्दीश्वरने सनत्कुमारसे श्रीशंकरजीके हनुमानके रूपमें आविर्भूत होकर लीला करनेका वृत्तान्त वर्णन किया है। नन्दीश्वरने कहा कि 'मुने! अब हनुमानजीका चरित्र सुनिये; उनके रूपमें प्रकट होकर शिवजीने सुन्दर लीलाएँ की हैं'—

अतः परं शृणु प्रीत्या हनुमच्चरितं मुने।
यथा चकाराशु हरो लीलास्तद्रूपतो वराः॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता २०।११)

श्रीहनुमानके आविर्भावके सम्बन्धमें कहा गया है कि एक समय शिवजीने भगवान् विष्णुका मोहिनीरूप देखा। उन्होंने श्रीरामके कार्यकी सम्पन्नताको दृष्टिमें रखकर अपना वीर्यपात किया। शिवजीसे प्रेरित सप्तर्षियोंने उसको पत्तेमें रखकर अञ्जनीमें कर्ण-मार्गसे प्रवेश कराया। उस वीर्यसे महाबली तथा पराक्रमयुक्त

वानर-शरीरवाले 'हनुमान' नामके शिव प्रकट—अवतरित हुए—

ततश्च समये तस्माद्धनूमानिति नामभाक्।
शम्भुर्जज्ञे कपितनुर्महाबलपराक्रमः॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसं० २०।७)

त्र्यम्बकसम्भव हनुमानजीसे रक्षा करनेकी प्रार्थना की गयी है। श्रीसनत्कुमारने 'हनुमत्कवच' का वर्णन करते हुए उनके उपर्युक्त रूपका वर्णन किया है—

'लोकोत्तरगुणः श्रीमान् पातु त्र्यम्बकसम्भवः।'

(नारदपुराण, पूर्व० तृ० ७८।२०)

उनका ध्यान किया गया है कि 'अङ्गदादि महावीरोंसे रुद्ररूप श्रीहनुमान वेष्टित—घिरे हुए हैं'—

'अङ्गदाद्यैर्महावीरैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम्॥'

(नारदपुराण, पूर्व० तृ० ७४। १२४)

रुद्ररूप श्रीहनुमानजी तरुण हैं, प्रसन्नमुद्रामें स्थित शिवांश हैं। भगवान् श्रीरामके वचन हैं—

'प्रसन्नमूर्तिस्तरुणः शिवांशः'

(नारदपुराण, पूर्व०, तृ० ७९।३५३)

श्रीहनुमानजीको शिवके प्रमुख गण नन्दीके रूपमें भी वर्णित किया गया है और इस वर्णनमें भी उनकी रुद्ररूपता—शिवात्मकता सुरक्षित है। 'हनुमत्सहस्रनाम' के ८९वें श्लोकमें उनका एक नाम 'नन्दी' भी कहा गया है। इस सम्बन्धमें यह प्रसङ्ग भी उपलब्ध होता है—एक बार कैलास पर्वतपर पुष्पकविमानकी गतिको अवरुद्ध देखकर राक्षसराज रावणने दृष्टि दौड़ायी तो उसे पर्वतशिखरपर वानररूपमें स्थित नन्दी दीख पड़े। उन्हें देखकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा, तब नन्दीने रावणको शाप देते हुए कहा—''दशग्रीव! इस पर्वतपर स्वयं भगवान् शंकर क्रीडा कर रहे हैं। तुम विमानद्वारा उस स्थानके निकट जा रहे हो और साथ ही मेरा उपहास भी कर रहे हो, अतः मैं तुम्हें शाप दूँगा—'प्रजापति पुलहके वंशमें तुम्हारा विनाश करनेके लिये मेरे ही मुखके-से मुखवाले भीम पराक्रमी भयंकर वानर उत्पन्न होंगे।''

पुष्पकस्य गतिं रुद्धां तत्र वीक्ष्य निशाचरः।
ददर्श शैलशृङ्गस्थं नन्दिनं वानराकृतिम्॥
तं दृष्ट्वा मुमुचे हासं नन्दी तं शप्तवांस्ततः।
गिरावस्मिन् दशग्रीव स्वयं क्रीडति शंकरः॥
विमानेन यदा तस्य समीपमुपयास्यसि।
करोषि चावहास्यं मां तस्माच्छप्स्याम्यहं तव॥
मद्वक्त्रसदृशा घोराः पुलहस्य प्रजापतेः।
उत्पत्स्यन्ति कुले भीमाः क्षयार्थं वानरास्तव॥

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण, १। २२२। ५—८)

नन्दीके उपर्युक्त शापमें उनके रुद्रांशका हनुमद्रूपमें प्रकट होनेका संकेत उपलब्ध होता है और इस संकेतका स्पष्टीकरण पुराणोंमें भी मिलता है। नन्दीकी गणना ग्यारहवें रुद्रके रूपमें की गयी है। भगवान् विष्णुके अंशोंसहित श्रीरामरूपमें प्रकट होनेपर उनके कार्यकी सम्पन्नताके लिये नन्दी हनुमानके रूपमें अवतरित हुए—

शिलादतनयो नन्दी शिवस्यानुचरः प्रियः।
यो वै चैकादशो रुद्रो हनूमान् स महाऋषिः॥
अवतीर्णः सहायार्थं विष्णोरमिततेजसः।

(स्कन्दपुराण, माहेश्वर, केदार० ८। ९९-१००)

उल्लेख है कि शिलाद ऋषिकी तपस्यासे प्रसन्न होकर साक्षात् भगवान् शिवने अयोनिजरूपमें नन्दी होकर प्रकट होनेका वचन दिया था—

'तव पुत्रो भविष्यामि नन्दीनाम्ना त्वयोनिजः।'

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता, ६। ३४)

अतः यह तथ्य स्पष्ट है कि नन्दीके रूपमें अवतरित होनेवाले अयोनिज ग्यारहवें रुद्र ही हनुमान हैं। महाराज भोजने स्वरचित 'चम्पूरामायण' में वर्णन किया है कि 'रावण समीरपुत्र हनुमानको अपने सम्मुख उपस्थित देखकर आश्चर्यचकित हो गया। उसे कैलास उठानेके अपराधमें नन्दीश्वरने जो शाप दिया था, उसका उसे स्मरण हो आया और उसने समझ लिया कि शिव-पार्षद नन्दी स्वयं वानररूपमें यहाँ आ गये हैं—

सोऽपि प्लवंगमभिवीक्ष्य समीरपुत्रं
चित्रीयमाणहृदयः पिशिताशनेन्द्रः॥
कैलासशैलचलनागसि शापदायी
नन्दीश्वरः स्वयमिहागत इत्यमंस्त॥

(चम्पूरामायण, सुन्दर ८८)

महाकवि गिरिधरकृत गुजराती रामायणमें वर्णन है कि केसरीकी पत्नी अञ्जनीकी तपस्यासे प्रसन्न होकर रुद्रने उसे वर माँगनेके लिये कहा। तब अञ्जनीने उनसे वर माँगा—'आप मुझे तेजस्वी पुत्र प्रदान कीजिये।' भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर कहा—'तुम धन्य हो, तुम्हारे उदरसे ग्यारहवें रुद्र प्रकट होंगे'—

शंकर कहे धन्य अंजनी, तने पुत्र थाशे नेट।
रुद्र जे अगियारमा, ते प्रगटशे तुज पेट॥

(गिरिधररामा०, बालकाण्ड १२। २७)

ठीक इसी समय एक गृध्रीने चरु गिराया। वायुका वेग तेज था, वायुके द्वारा चरु अञ्जनीके हाथमें आ गया। अञ्जनीने शिव-मन्त्रका उच्चारण कर चरु खा लिया—

'शिवमंत्र भणीने अंजनीये भक्ष कीधो तेह।'

(गिरिधररा० बालकाण्ड १२। ३२)

इस सम्बन्धमें विस्तृत प्रसङ्ग इस प्रकार है कि गृध्री सुवर्चला नामकी अप्सरा थी। नृत्यभङ्गके अपराधमें ब्रह्माने उसको गृध्री होनेका शाप दिया था तथा उसे शापसे मुक्त होनेका उपाय भी बताया था कि 'जब तुम कैकेयीके पायसभाग—पुत्रेष्टियज्ञसे प्राप्त चरु-अंशको अञ्जनपर्वतपर गिरा दोगी, तब तुम्हारी सुगति हो जायगी। अपने भागका चरु खानेमें कैकेयीने कुछ विलम्ब किया; गृध्री उसे छीनकर उड़ गयी। कौसल्या और सुमित्राके एक-एक चरु-अंशको कैकेयीने ग्रहण किया था। 'आनन्दरामायण' में सुवर्चलाद्वारा चरु लेकर अञ्जनपर्वतपर गिरा देनेका स्पष्ट उल्लेख है—

तस्मात् सा पायसं नीत्वाक्षिपदञ्जनपर्वते।
निजं स्वरूपं सा लब्ध्वा जगाम सुरमन्दिरम्॥

(आनन्दरामायण, सार० १।१०७)

उपर्युक्त प्रसङ्गसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि तपस्यामें तत्पर अञ्जनाने शंकरके वरदानसे ग्यारहवें रुद्रके रूपमें हनुमानको जन्म दिया। रामचरितके समुद्रमें अवगाहन करनेवाले मर्मज्ञोंने किष्किन्धाको काशीका रूप प्रदान किया है और श्रीसीताजीके अन्वेषणमें तत्पर श्रीरामके सम्मुख रुद्रावतार हनुमानजीके प्रकट होनेका वर्णन किया है। इसका स्पष्ट अङ्कन रामचरितमानसके टीकाकार महामति श्रीशिवलाल पाठकने अपनी प्रसिद्ध कृति 'मानस-मयङ्क' और 'मानस-अभिप्राय-दीपक'-में किया है। 'हनुमन्नाटक' के रचयिताने तो इसका केवल संकेतमात्र किया है। गोस्वामी तुलसीदासजीने किष्किन्धाका काशीरूपमें रहस्यात्मक निरूपण किया है, पर श्रीशिवलाल पाठकने तो इसका स्पष्ट उल्लेख कर दिया है। 'हनुमन्नाटक' में संकेत है कि "रुद्रावतार पवनकुमारको किष्किन्धापर्वतपर रौद्ररसस्वरूप देखकर श्रीरामने कहा कि 'क्या सीताजीको किसीके द्वारा ले जाते हुए किसीने देखा है' यह सुनकर श्रीरामके कष्टको हरते हुए वीर हनुमानने प्रसन्न होकर कहा"—

किष्किन्धाद्रौ रौद्ररुद्रावतारं
दृष्ट्वा रामो मारुतिं वाचमूचे।
सीता नीता केनचित् क्वापि दृष्टा
हृष्टः कष्टं संहरन् प्राह वीरः॥

(हनुमन्नाटक ५।३३)

महामति श्रीशिवलाल पाठकने 'मानस-अभिप्राय-दीपक' के किष्किन्धाकाण्डमें लिखा है कि 'यह किष्किन्धा शम्भुकी पुरी साक्षात् काशी है; इसमें दीप सजाया गया है, जो प्रतिपदमें प्रकाशित होगा। जो लोग किष्किन्धा—काशीके तत्त्वज्ञ अथवा रसिक हैं, उन्हींके हृदयमें यह दीपक शोभित होगा; नेत्रविहीन—अंधेको इसका प्रकाश नहीं दीख पड़ेगा'—

साजत दीपक शंभु पुर, राजत प्रति पद माहिं।
भ्राजत काशी रसिक उर, काशत दृग हत नाहिं॥

(मानस-अभिप्राय-दीपक, कि० १)

इस काशी—किष्किन्धामें पापियों—राक्षसोंके पापका नाश कर उनको भगवद्धाम भेजनेवाले बंदर हैं। यह मुक्तिप्रदायिनी भूमि है। इसमें उमा-शम्भु-संवाद है एवं भवानीसहित शंकरजी निवास करते हैं। सशक्ति—शक्तिमान् श्रीहनुमान यहाँके निवासियोंको नाद—मुक्ति प्रदान करते हैं—

अघहा निकर कपीश कपि, उमा-शंभु-संवाद।
काशीपुरी कपीश की, रासी वासी नाद॥

(मानस-अभिप्राय-दीपक, कि० ५)

'मानसमयङ्क' के रचयिता श्रीशिवलाल पाठकने किष्किन्धाको काशी, हनुमानको शिवरूप समझकर किष्किन्धाकाण्डमें श्रीरामकथाका विवेचन किया है। उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मणको क्रमशः इन्दीवर और कुन्दके फूलका रूपक दिया है; जिस तरह कमलका फूल शिवजीपर चढ़ता है और सूर्यको देखकर प्रफुल्लित होता है, उसी तरह श्रीराम हनुमानरूपी शिवपर चढ़ते हैं और सुकण्ठ—सुग्रीवरूपी सूर्यको देखकर प्रसन्न होते हैं। कुन्दरूपी लक्ष्मणजी श्रीरामरूपी चन्द्रमाके प्रकाशमें अखण्डरूपसे—पूर्ण प्रकाशित होते हैं—

चढ़े बालधी शंभु पर, फूले रवी सुकंठ।
फूले कुन्द मयंक ढिग, पूरे फूल अखंड॥

(मानसमयङ्क, कि० ४)

'मानसमयङ्ककार' का कथन है कि 'रामदूत श्रीहनुमानजी किष्किन्धाकाण्डरूपी काशीमें शिवरूप हैं, उनकी महाशक्ति ही भवानी पार्वती हैं। जिस तरह भगवान् शिवकी अर्धाङ्गिनी पार्वतीजी एक ही रूपमें विद्यमान हैं, उसी

तरह सशक्ति हनुमानजी एक ही रूपमें स्थित हैं; जिस तरह शिवका गुण तम—रौद्र है, उसी तरह हनुमानजीका रौद्ररूप इस किष्किन्धारूपी काशीमें प्रकट है।'

रामदूत हैं शंभु जू, शक्ती महाभवानि।
एकरूप ह्वै के बसे, गुणयुत काशी जानि॥

(मानसमयङ्क, कि० ३१)

तन्त्र-शास्त्रमें भी श्रीहनुमानजीके रुद्रमूर्तिधर रूपका वर्णन उपलब्ध होता है। परब्रह्म रुद्ररूप श्रीहनुमानका महत्त्व तन्त्रोंमें निरूपित है—

करालशैलशस्त्राय द्रुमशस्त्राय ते नमः।
बालैकब्रह्मचर्याय रुद्रमूर्तिधराय च॥

(श्रीविद्यार्णव, हनुमत्स्तुति २८।१३)

मन्त्रशास्त्रमें रुद्रावतार हनुमानके ध्यान तथा नमस्कार आदिका वर्णन है—

'ॐ रुद्रमूर्तये शिरसे स्वाहा।'

(मन्त्रमहार्णव, पूर्वखण्ड, पृष्ठ १६८)

'मन्त्रमहार्णव' में वर्णन है कि श्रीशिवजीने भगवती पार्वतीसे रुद्ररूप हनूमत्साधनकी विधि बतायी और कहा कि रुद्रात्मक हनुमन्मन्त्रके जपसे साधक तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर लेता है। उन्होंने द्वादशाक्षर हनुमन्मन्त्र बताया—

'हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्।'

(मन्त्रमहार्णव, पूर्वखण्ड, पृष्ठ १६९)

पीठपूजोपयोगी रुद्ररूप हनुमानका दूसरा मन्त्र है—

'ॐ नमो भगवते रुद्राय सर्वभूतात्मने हनुमते सर्वात्मसंयोगपद्मपीठात्मने नमः।'

(मन्त्रमहार्णव, उत्तरखण्ड, तरङ्ग ३, पृष्ठ ६४२)

रुद्रावतार श्रीहनुमानकी प्रभुतापर विचार करते हुए लंकाको हनुमानद्वारा जलाते देखकर रावण मनमें सोचता है कि 'यदि पवनकुमार रुद्रके अवतार हैं तो मुझ रुद्रभक्तकी नगरीको क्यों जला रहे हैं? मैं समझ गया—पिनाकधारी शिव मेरे द्वारा दस मस्तकोंके समर्पणसे प्रसन्न हो गये, पर ग्यारहवें रुद्र प्रसन्न न हो सके। यही कारण है कि रुद्रावतार हनुमानजी लंका जला रहे हैं। मैंने पङ्क्तिभेद किया और पङ्क्तिभेद करना कभी कल्याणप्रद नहीं होता'—

रावणः—(स्वगतम्) यद्ययं रुद्रो मारुतिस्तर्हि किमिति रुद्रभक्तस्य मे नगरीं दहति। अहह ज्ञातम्—

तुष्टः पिनाकी दशभिः शिरोभि-
स्तुष्टो न चैकादशको हि रुद्रः।
अतो हनूमान् दहतीति कोपात्
पङ्क्तेर्हि भेदो न पुनः शिवाय॥

(हनुमन्नाटक ६।२७)

श्रीरामने कुम्भकर्णके साथ युद्धमें रुद्ररूप हनुमानको देखा। वे महावीर उस समय उग्र नरसिंहके समान लाल-लाल नेत्र किये हुए रणभूमिमें आये—

आलक्षितो रघुवरेण सलक्ष्मणेन
कालान्तकादिव रिपोः परिशङ्कितेन।
स्थानं जगाम हनुमान् समरेऽवतीर्य
माहेश उग्रनरसिंह इवारुणाक्षः॥

(हनुमन्नाटक ११।३५)

महाराजा रघुराजसिंहने अपनी प्रसिद्ध रचना 'रामरसिकावली' में लिखा है कि 'महेशरूप हनुमानने श्रीसीताजीके शोकरूपी हलाहल विषका पान कर लिया'—

'सीतासोक हलाहल जाना। किय मारुति महेस तेहि पाना॥

(रामरसिकावली 'भक्तमाला', मङ्गलाचरण १। १२। ६)

भगवती श्रीसीताने पञ्चाक्षर शिवमन्त्रद्वारा श्रीहनुमानको तृप्त किया था। लंकासे वापस आनेपर श्रीसीताजीने एक दिन श्रीहनुमानको प्रसाद ग्रहण करनेके लिये निमन्त्रित किया। वे उनको बार-बार भोजन परोसती गयीं और वे उसे समाप्त करते गये। श्रीसीताजी आश्चर्यचकित हो गयीं। ''उन्होंने ध्यानयोगसे समझा कि हनुमान तो साक्षात् गङ्गाधर रुद्र हैं, जो वानररूपमें प्रकट हैं। उन्होंने **'नमः शिवाय'** मन्त्रका उच्चारण कर भोजन अर्पित किया। श्रीहनुमान तृप्त हो गये''—

ध्यानयोगे मा जानकी देखिला सत्वर।
वानररूपेते अवतीर्ण गङ्गाधर॥

× × ×

नमः शिवाय बले अन्न दिल हनूर माथे॥

(कृतिवासीय रामायण, लंकाकाण्ड)

परब्रह्म रुद्ररूप हनुमानजीकी महिमा उन्हींकी कृपासे समझमें आ पाती है। वे सर्वमङ्गलनिधि, सच्चिदानन्दघन, परब्रह्म परमात्मा हैं। दास्यभक्तिके रसास्वादनके लिये उन्होंने हनुमानरूपमें प्रकट होकर श्रीरामकी सेवा की। वे श्रीराम-पदपद्ममकरन्दके मधुकर हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने रुद्ररूप हनुमानकी प्रशंसा की है—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥

(दोहावली १४२)

परब्रह्म रुद्ररूप हनुमानजीके चरित्र, लीला और

महिमाका वेद भी पार नहीं पा सकते। श्रीरुद्ररूप हनुमत्तत्त्वका पूर्ण महत्त्वाङ्कन असम्भव न होनेपर भी कठिन अवश्य है। रुद्ररूप तो हनुमान ॐकारस्वरूप पूर्ण ब्रह्म हैं।

परात्पर श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीदेवजी शर्मा, एम्०ए०)

'तुम सर्वथा निर्विकार हो, अतः देह, बुद्धि, इन्द्रियाँ और दुःखादि—ये न तुम्हारे गुण हैं और न तुम स्वयं हो। इन सबका कारण अज्ञान है और स्वप्न-दृश्यके समान ये सब असत् हैं। तुम देहमें रहते हुए भी सुख-दुःखादि विकारोंसे निर्लिप्त हो। तुम चिदानन्दस्वरूप, अजन्मा, अविनाशी, देहादिसंघातसे पृथक्, शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन एवं उपाधिरहित हो। हे महामते! भगवान् विष्णुकी भक्तिसे बुद्धि निर्मल होती है और शुद्ध आत्मज्ञान होता है। उससे मनुष्य परमपद प्राप्त करता है। अतः तुम प्रकृतिसे परे, पुराण-पुरुष, सर्वव्यापक, आदि नारायण, लक्ष्मीपति, हरि भगवान् श्रीरामका भजन करो। अपने हृदयमें स्थित शत्रुभावरूप मूर्खताको छोड़ दो और शरणागतवत्सल श्रीरामका भजन करो।'

—तैंतीस कोटि देवगणको बंदी बनानेवाले महाप्रतापी राक्षसराज रावणको उसके भरे दरबारमें ऐसा शुद्ध अध्यात्मका उपदेश देना और स्वाभाविक निर्भीकतासे उस प्रबल श्रीरामारिको श्रीरामभक्तिका महामार्ग सुझाना किसी सामान्य व्यक्तिका काम नहीं। ऐसा करनेवाला निस्संदेह भगवान्‌का ही रूप हो सकता है, किंवा स्वयं भगवान् ही हो सकता है। स्वर्ग, मर्त्य एवं पातालमें श्रीरघुवीरके रण-बाँकुरे हठीले हनुमानके समान बाँका (श्रेष्ठ) वीर भला और कौन है?

'नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन
कहाँ हनुमानु-से बीर बाँके'

(कवितावली ६।४५)

हनुमानजी भगवान् शंकरके अंशावतार (ग्यारह रुद्रोंमेंसे ग्यारहवें) माने जाते हैं। ग्यारह रुद्रोंमेंसे प्रत्येकमें भगवान् रुद्रका ग्यारहवाँ भाग रहता हो, ऐसी बात नहीं। रुद्र तो एक, अखण्ड एवं अविभाज्य है—

'एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः।'

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३।२)

अर्थात् 'रुद्र एक ही है, अतः ब्रह्मविद्गण दूसरेकी अपेक्षा नहीं करते।' अभिप्राय यह कि हनुमानजी भगवान् शंकरके ग्यारहवें भाग हों, ऐसी बात नहीं, अपितु वे साक्षात् शंकर ही हैं। भगवान् शंकरने ही तो विश्वके कल्याणके लिये, भगवत्सेवाका उच्चादर्श स्थापित करनेके प्रयोजनसे स्वयं हनुमानका रूप धारण किया। जब भगवान् श्रीराम शिशुक्रीड़ा कर रहे थे, तब वह कौन मदारी था, जो बंदरका तमाशा दिखाने आया था? स्वयं मदारी और स्वयं ही बंदर, वही तो रुद्र है और तमाशा देखनेवाला भी कौन था? वही रुद्र ही।' '**एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः।**'—वह स्वयं तमाशा भी है और तमाशाई भी।

हिंदुओंमें मान्यता है (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) त्रिदेवोपासना और (गणेश-शक्ति-शिव-विष्णु-सूर्य) पञ्चदेवोपासनाकी; किंतु एक ही आदि-सत्य त्रिरूप या पञ्चरूपमें अभिव्यक्त होकर लीलायमान है। एक ही परमात्मा सृष्टि, स्थिति और लयका कारण है। जैसे मकड़ी स्वयं ही जाला बनाती है और स्वयं ही उसे अपनेमें समेट लेती है, वैसे ही एक अजन्मा अनेक रूपोंमें जन्म लेता है। श्रुति कहती है—'**अजायमानो बहुधा वि जायते।**' (यजुर्वेद ३१।१९) तथा '**एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।**' (कठोपनिषद् २।२।१२)। छान्दोग्योपनिषद्‌में भी एक ब्रह्मको सृष्टि, स्थिति और लयकर्ता माना गया है—

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।'

(३।१४।१)

जब एक ही परा सत्ता राम, कृष्ण, शिव, शक्ति आदि नामों और रूपोंसे जानी जाती है—अर्थात् जो राम है, वही शिव है और जो शिव है, वही शक्ति है तो फिर हनुमत्तत्त्व, जो रुद्ररूप ही है, उनसे पृथक् कैसे? गोस्वामीजीने खोलकर कहा है—

रामको दुलारो दास बामदेव को निवास,
नाम कलि-कामतरु केसरी-किसोर को।

(हनुमानबाहुक ९)

× × ×

बामदेव-रूप, भूप राम के सनेही, नाम
लेत देत अर्थ धर्म काम निरबान हो॥
(हनुमानबाहुक १४)

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि 'हनुमानजी परात्पर तत्त्व हैं; उनका शिवकी भाँति रामसे अभिन्न व्यक्तित्व है। वे केवल मनुष्योंके सम्मुख दास्य-भक्ति—सेवा-धर्मके आदर्शको स्थापित करनेके लिये ही अलग-से दिखायी देते हैं; क्योंकि भवसागरको पार करनेके लिये सेवक-सेव्य-भाव आवश्यक है।' काकभुशुण्डिका कथन है—

'सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।'
(मानस ७। ११९क)

जो बंदर भगवान्के साथ शिशु-क्रीडा कर गया था, वही ऋष्यमूकपर्वतपर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। ब्रह्मचारीके वेषमें जब उसने भगवान्से भेंट की, तब एक अपरिचितकी भाँति नहीं, प्रत्युत निम्नलिखितरूपमें—

युवां त्रैलोक्यकर्ताराविति भाति मनो मम।
युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ॥
मायया मानुषाकारौ चरन्ताविव लीलया।
भूभारहरणार्थाय भक्तानां पालनाय च॥
अवतीर्णाविह परौ चरन्तौ क्षत्रियाकृती।
जगत्स्थितिलयौ सर्गं लीलया कर्तुमुद्यतौ॥
स्वतन्त्रौ प्रेरकौ सर्वहृदयस्थाविहेश्वरौ।
नरनारायणौ लोके चरन्ताविति मे मतिः॥
(अध्यात्मरा० ४। १। १३—१६)

'मेरा मन तो यह कहता है कि आप दोनों त्रिलोकीके रचनेवाले, संसारके कारणभूत, जगन्मय, प्रधान और पुरुष ही हैं। आप मानो पृथ्वीका भार उतारने और भक्तजनोंकी रक्षा करनेके लिये ही लीलावश अपनी मायासे मनुष्यरूप धारण कर विचर रहे हैं। आप साक्षात् परमात्मा ही क्षत्रियकुमारके रूपमें अवतीर्ण होकर पृथ्वीपर घूम रहे हैं। आप लीलासे ही संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और (दुष्टोंका) नाश करनेमें तत्पर हैं। मेरी बुद्धिमें तो यही आता है कि आप सबके हृदयमें विराजमान, सबके प्रेरक, परमस्वतन्त्र भगवान् नर-नारायण ही इस लोकमें विचर रहे हैं।'

अब इन शब्दोंकी जरा तुलना कीजिये 'मानस'-के इन शब्दोंसे—

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥
जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥
(मानस ४। दोहा १)

अपने ही स्वरूपको पाकर अपरिचित कौन बना रहे? श्रीसीताजीकी खोजके लिये अनेकों योद्धा भेजे गये, परंतु मुद्रिकासहित गुह्य संदेश केवल हनुमानजीको ही दिया गया। लक्ष्मणजीके अचेत होनेपर सुषेण वैद्यको लाने तथा संजीवनी ओषधि लानेका कार्य केवल हनुमानजीको ही सौंपा गया। श्रीराम-लक्ष्मणको अहिरावणके महल (नागलोक)-से वापस लानेका कार्य भी हनुमानजीने ही किया। रावण-वधके पश्चात् भगवान्का विजय-संदेश लेकर हनुमानजी ही पुनः श्रीसीताजीके पास पहुँचे थे। अयोध्या लौटनेपर भगवान्के आगमनका संदेश भरतजीको कौन दे तो इसके लिये भी हनुमानजी ही परम विश्वस्त दूत दीखे। भगवान्के राज-दरबारमें अपना हृदय चीरकर उसमें भगवान्का साक्षात्कार करानेका काम भी केवल वे ही कर सकते थे। सभी वानरोंके विदा हो जानेपर भी हनुमानजी भगवान्के चरणारविन्दमें सदैवके लिये रहे। लव-कुशसे युद्ध करते समय भी हनुमानजीकी भूमिका सबसे विलक्षण रही। महाभारतके युद्धमें अर्जुनकी पताकाको कौन सँभाले हुए थे? ये हनुमानजी ही तो थे। आज भी जहाँ कहीं रामायणका पाठ हो रहा हो, यदि हममें देखनेकी शक्ति हो तो वहाँपर हम हनुमानजीको रामचरित सुनते देख सकते हैं; वे '**प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया**' (हनुमानचालीसा) जो ठहरे। इन सब बातोंका यही निष्कर्ष है कि हनुमानजी लीलारूपमें भगवान्के दास भले ही दीख रहे हों, परंतु तत्त्वतः वे श्रीरामस्वरूप ही हैं। उपासना-जगत्में भी वे देवकोटिमें गिने जाते हैं। महादेवजीकी भाँति महावीर भी पञ्चमुख और एकादश मुख माने जाते हैं; वे उन्हींके अवतार जो ठहरे।

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको प्रदोषकालमें अञ्जनादेवीके गर्भसे हनुमानजीका जन्म हुआ। अतः इस दिन उनकी जयन्ती मनायी जाती है। इस दिन प्रातः उठकर नित्यकृत्यसे निवृत्त होकर हनुमानजीका विधिवत् पूजन किया जाता है। उनके अप्रतिम आदर्श शौर्य, धैर्य, औदार्य एवं भगवद्भजनसे आप्लावित उनके पावन चरितका गान तथा श्रवण किया जाता है। इसके लिये 'रामायण' अथवा 'मानस' का पाठ किया जाता है। उसमें भी सुन्दरकाण्डके पाठका विशेष माहात्म्य है। हनुमानजीकी

प्रतिमापर तेल एवं सिन्दूर चढ़ाया जाता है। उनपर फूल केवल वे ही चढ़ाये जाते हैं, जिनके नाम पुरुषवाचक हों; क्योंकि हनुमानजी अखण्ड ब्रह्मचारी जो ठहरे। प्रसादके रूपमें इन्हें चना, गुड़, पूआ, केला, लड्डू, अमरूद आदि चढ़ाये जाते हैं। हनुमानजीकी उपासना हमारे राष्ट्रको सुदृढ़, सुसंगठित एवं सशक्त बनानेके लिये प्रधान साधनस्वरूप है। अतः राष्ट्रका हित इसीमें है कि हनुमानजीको 'राष्ट्रवीर' के रूपमें तथा अर्जुनके 'कपिध्वज' को पुनः राष्ट्रध्वजके रूपमें अपनाया जाय तथा हनुमज्जयन्तीको राष्ट्रीय पर्वका गौरव प्रदान किया जाय, जिससे हमारा भारत-देश पुनः बल-वैभव-सम्पन्न होकर 'जगद्गुरु' के उच्च पदपर आसीन हो सके।

'हर ते भे हनुमान'

(लेखक—पं० श्रीहनुमानदत्तजी मिश्र)

नानापुराणनिगमागमसम्मत वाणीका गान करनेवाले गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका यह कथन सत्य ही है कि भगवान् शंकर ही श्रीहनुमानरूपमें अवतरित हुए हैं।

वायुपुराणके पूर्वार्धमें भगवान् महादेवके श्रीहनुमानरूपमें अवतार लेनेका उल्लेख है—

अञ्जनीगर्भसम्भूतो हनुमान् पवनात्मजः।
यदा जातो महादेवो हनुमान् सत्यविक्रमः॥

(६०।७३)

'श्रीमहादेवजी पवनसुत अञ्जनीनन्दन सत्य-विक्रमी श्रीहनुमानके रूपमें अवतीर्ण हुए।'

'स्कन्दपुराण' में भी श्रीहनुमानको स्वयं शंकर बताया गया है—

यो वै चैकादशो रुद्रो हनुमान् स महाकपिः॥
अवतीर्णः सहायार्थं विष्णोरमिततेजसः।

(माहेश्वर, केदार० ८।९९-१००)

'ग्यारहवें रुद्र ही अमिततेजस्वी विष्णुकी सहायताहेतु महाकपि हनुमान हुए।'

'अगस्त्य-संहिता' में श्रीहनुमानजीके अवतारकी तिथि-घड़ी आदिका स्पष्ट वर्णन करते हुए उन्हें शिवावतार बताया गया है—

ऊर्जे कृष्णचतुर्दश्यां भौमे स्वात्यां कपीश्वरः।
मेषलग्नेऽञ्जनागर्भात् प्रादुर्भूतः स्वयं शिवः॥

'कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी, भौमवार, स्वाती नक्षत्र, मेष लग्नमें माता अञ्जनीके गर्भसे स्वयं शिवजीने कपीश्वर हनुमानके रूपमें अवतार ग्रहण किया।'

उसीके ३२वें अध्यायके बारहवें श्लोकमें भी श्रीहनुमानको रुद्रावतार बताया गया है—

यशोवितानधवलीकृत जगत्त्रितयाय च।
वज्रदेहीति चोक्ता हि रुद्रावतारपदं तथा॥

'अपने यश-समूहसे त्रिभुवनको उज्ज्वल कर देनेवाले, वज्रदेह तथा रुद्रावतार कहलानेवाले हनुमान… ?'

'हनुमदेकमुखीकवच' भी श्रीहनुमानको रुद्रावतार ही कहता है—

'सदाशिवाय ब्रह्मरुद्रावतारिणे…मृत्युञ्जय, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, कालभैरव…ॐ नमो हनुमते…एकादशरुद्राय।'

'हनुमत्पञ्चमुखी कवच' में भी श्रीहनुमानको 'रुद्रमूर्ति' कहा गया है—

'ॐ रुं रुद्रमूर्तये करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। ॐ रुं रुद्रमूर्तये अस्त्राय फट्।'

'हनुमच्छत्रुञ्जयस्तोत्र' (४)-में भी श्रीहनुमानको 'रुद्रावतार' माना गया है—

रुद्रावतार संसारदुःखभारापहारक।
लोललाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय॥

श्रीरामकथाके अनन्य गायक गोस्वामी तुलसीदासजीने भी स्थान-स्थानपर इस तथ्यका उद्घोष किया है। वे अपने परमाराध्यके पायक श्रीहनुमानके विषयमें कहते हैं—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥
जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।
पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान॥

(दोहावली १४२-१४३)

'सज्जन उसी शरीरका आदर करते हैं, जिससे श्रीरामसे प्रेम हो। इसी स्नेहवश रुद्रदेह त्यागकर हनुमानने वानरका शरीर धारण किया। श्रीरामकी सेवाका आनन्द अपने मनमें जानकर ही ब्रह्मा सेवक जाम्बवन्त हुए और शंकरजी हनुमानके रूपमें अवतरित हुए।'

'हनुमानबाहुक' में भी वे कहते हैं—

राम को दुलारो दास बामदेव को निवास,
नाम कलि-कामतरु केसरी-किसोर को
करुना निधान, बलबुद्धि के निधान, मोद-
महिमानिधान, गुन-ज्ञान के निधान हौ।

बामदेव-रूप, भूप राम के सनेही, नाम
लेत देत अर्थ धर्म काम निरबान हौ॥

(९, १४)

अर्थात् हनुमानजी वामदेव (शंकर)-के रूप हैं। अपनी 'विनय-पत्रिका' में भी गोस्वामीजीने श्रीहनुमानको रुद्रावतार, महादेव, वामदेव, पुरारी आदि नामोंसे सम्बोधित किया है—

जयति रणधीर, रघुबीरहित, देवमणि,
रुद्र-अवतार संसार-पाता। (२५)
जयति मर्कटाधीश, मृगराज-विक्रम,
महादेव, मुद-मंगलालय, कपाली। (२६)
जयति मंगलागार, संसारभारापहर,
वानराकार-विग्रह पुरारी। (२७)
सामगायक, भक्त-कामदायक, वामदेव,
श्रीराम-प्रिय-प्रेमबंधो ॥ (२८)

उपर्युक्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीहनुमानजी रुद्रावतार हैं, स्वयं शंकर ही हैं। कहीं ऐसी भी कथा आती है कि भगवान् शंकरने एक बार भगवान् श्रीरामसे दास्य-सुख-प्राप्तिका वरदान माँगा था और यह याचना स्वीकृत भी हुई। उसी सेवा-सुखका आस्वादन करते हुए भक्ति-भावनाकी महिमाको दिखलानेके लिये ही भगवान् शंकरका श्रीहनुमानके रूपमें प्राकट्य हुआ।

~~~०~~~

शंकरसुवन, केसरीनन्दन, पवनतनय, आञ्जनेय नामोंका परिचय

(लेखक—'श्रीयुगलचरणरजोऽभिलाषी')

पुराणों और इतिहासोंमें श्रीहनुमच्चरित्रका अनेक रूपोंमें वर्णन मिलता है। श्रीहनुमानजी कहीं 'शंकर-सुवन', कहीं 'केसरीनन्दन', कहीं 'पवनतनय', कहीं 'आञ्जनेय' और कहीं 'साक्षात् शंकर' के रूपमें वर्णित हैं। कल्प-भेद एवं प्रसङ्ग-भेदसे ये सभी नाम सत्य हैं। जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको प्रसङ्ग-भेदसे वसुदेवनन्दन, नन्द-सुवन, गिरिधारी, रासविहारी, वंशीधारी आदि कहा जाता है, वैसे ही रामभक्त श्रीहनुमानके विषयमें भी समझना चाहिये। श्रीहनुमानजीके इन नामोंका सार्थक्य समझनेके लिये कतिपय रहस्यपूर्ण प्रसङ्गोंका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

'रुद्रावतार' श्रीहनुमान

एक बार भगवान् शंकर भगवती सतीके साथ कैलास-पर्वतपर विराजमान थे। प्रसङ्गवश भगवान् शंकरने सतीसे कहा—'प्रिये! जिनके नामोंको रट-रटकर मैं गद्गद होता रहता हूँ, वे ही मेरे प्रभु अवतार धारण करके संसारमें आ रहे हैं। सभी देवता उनके साथ अवतार ग्रहण करके उनकी सेवाका सुयोग प्राप्त करना चाहते हैं, तब मैं ही उससे क्यों वञ्चित रहूँ? मैं भी वहीं चलूँ और उनकी सेवा करके अपनी युग-युगकी लालसा पूर्ण करूँ।'

भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर सतीने सोचकर कहा—'प्रभो! भगवान्‌का अवतार इस बार रावणको मारनेके लिये हो रहा है। रावण आपका अनन्य भक्त है। यहाँतक कि उसने अपने सिरोंको काटकर आपको समर्पित किया है। ऐसी स्थितिमें आप उसको मारनेके काममें कैसे सहयोग दे सकते हैं?'

यह सुनकर भगवान् शंकर हँसने लगे। उन्होंने कहा—'देवि! जैसे रावणने मेरी भक्ति की है, वैसे ही उसने मेरे एक अंशकी अवहेलना भी तो की है। तुम जानती ही हो कि मैं ग्यारह स्वरूपोंमें रहता हूँ। जब उसने अपने दस सिर अर्पित कर मेरी पूजा की थी, तब उसने मेरे एक अंशको बिना पूजा किये ही छोड़ दिया था। अब मैं उसी अंशसे उसके विरुद्ध युद्ध करके अपने प्रभुकी सेवा कर सकता हूँ। मैंने वायु देवताके द्वारा अञ्जनाके गर्भसे अवतार लेनेका निश्चय किया है।' यह सुनकर भगवती सती प्रसन्न हो गयीं।

इस प्रकार भगवान् शंकर ही श्रीहनुमानके रूपमें अवतरित हुए, इस तथ्यकी पुष्टि पुराणोंकी आख्यायिकाओंसे होती है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी दोहावली (१४२)-में लिखा है—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान।

'शंकरसुवन' श्रीहनुमान

शिवपुराणान्तर्गत श्रीहनुमज्जन्मका संक्षिप्त वृत्तान्त इस प्रकार है—एक समय भगवान् शम्भुको भगवान् विष्णुके मोहिनी रूपका दर्शन प्राप्त हुआ। उस समय ईश्वरेच्छासे रामकार्यकी सिद्धि हेतु उनका वीर्य स्खलित हो गया। उस वीर्यको सप्तर्षियोंने पत्र-पुटकमें सुरक्षित
~~~

करके रख दिया। तत्पश्चात् उन्होंने ही शम्भुकी प्रेरणासे उस वीर्यको गौतम-कन्या अञ्जनामें कानके रास्ते स्थापित किया। समय आनेपर उस गर्भसे वानर-शरीरधारी महापराक्रमी पुत्रका जन्म हुआ, जो शंकरसुवन श्रीहनुमानके नामसे विश्वमें विख्यात हुए।

कथान्तर-भेदसे इसका वर्णन इस प्रकार भी है—मोहिनी-रूप-दर्शनसे स्खलित हुए शम्भु-वीर्यके विषयमें भगवान् विष्णु विचार करने लगे कि इस शम्भु-सम्भूत शुक्रका क्या उपयोग किया जाय? कुछ सोच-विचारकर उन दोनों (विष्णु और शम्भु)-ने मुनियोंका रूप धारण किया और उस वीर्यको पत्र-द्रोणमें लेकर वन-ही-वन आगे बढ़े। कुछ दूर जानेपर उन लोगोंने एक कन्या देखी, जो घोर तपस्यामें निरत थी। वे उसके पास जाकर बोले—'तपस्विनी कन्ये! यह क्या कर रही हो? बिना दीक्षा लिये तुम्हारी तपस्या सफल नहीं हो सकती; अत: शीघ्र ही किसी योग्य मुनिसे दीक्षा ले लो।' तपोनिष्ठ कन्या अञ्जनाने उन दोनों मुनियोंकी बात सुनकर मनमें विचार किया—'ये तो सर्वकालद्रष्टा हैं। मेरे भूतकालकी बातको सत्य-सत्य कह रहे हैं, अत: क्यों न इन्हींसे मन्त्र-दीक्षा ले ली जाय।' यह सोचकर अञ्जना बोली—'मुनिवर! आप योग्य एवं समर्थ हैं। मैं दीक्षित होनेके लिये और कहाँ भटकूँगी; आपलोग ही मुझे मन्त्र-दीक्षा दे दें।' तब मुनिरूपधारी विष्णुने अञ्जनाको मन्त्र-दीक्षा दी। दीक्षा देते समय उन्होंने शम्भु-वीर्यको मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर कानद्वारा अञ्जनाके गर्भमें स्थापित कर दिया। उस शम्भु-शुक्रसे उद्भूत श्रीहनुमानजी अञ्जनीनन्दन शंकरसुवन कहलाये।

'पवनतनय' श्रीहनुमान

अप्सराओंमें परम रूपवती पुञ्जिकस्थला नामकी एक लोकविख्यात अप्सरा थी। इसीने ऋषिके शापसे कामरूपिणी वानरी होकर पृथ्वीपर जन्म ग्रहण किया था। वही कपिश्रेष्ठ केसरीकी भार्या होकर 'अञ्जना' नामसे विख्यात हुई। पर्वतश्रेष्ठ सुमेरुपर केसरी राज्यशासन करते थे। अञ्जना उनकी एक प्रियतमा पत्नी थी। वानरपति केसरी और अञ्जना दोनों एक दिन मनुष्यका वेष धारण कर पर्वत-शिखरपर विहार कर रहे थे। अञ्जनाका मनोहर रूप देखकर पवनदेव मोहित हो गये और उन्होंने उसका आलिङ्गन किया। साधुचरित्रा अञ्जनाने आश्चर्यचकित होकर कहा—'कौन दुरात्मा मेरा पातिव्रत्य-धर्म नष्ट करनेको तैयार हुआ है? मैं अभी शाप देकर उसे भस्म कर दूँगी।' सती-साध्वी अञ्जनाकी यह बात सुनकर पवनदेवने कहा—'सुश्रोणि! मैंने तुम्हारा पातिव्रत्य नष्ट नहीं किया है; यदि तुम्हें कुछ भी संदेह हो तो उसे दूर कर दो। मैंने मानसिक संस्पर्श किया है। उससे तुम्हें एक पुत्र होगा, जो शक्ति एवं पराक्रममें मेरे समान होगा, भगवान्‌का सेवक होगा और बल-बुद्धिमें अनुपमेय होगा। मैं उसकी रक्षा करूँगा।' इस प्रकार भगवान् शंकरने अंशरूपसे वायुका माध्यम लेकर अञ्जनाके गर्भसे पुत्र उत्पन्न किया, जो भविष्यमें शंकरसुवन, केसरीनन्दन, पवनपुत्र, आञ्जनेय आदि कहलाया। वे ही श्रीहनुमान अपनी अद्वितीय सेवा-चर्यासे भगवान् श्रीरामके अभिन्न अङ्ग बन गये।

ऐसा भी कहा जाता है कि भगवान् श्रीराम पितृ-वचनका पालन करके जब अयोध्या लौटे, तब भगवती सीतादेवी स्वयं रन्धनकर श्रीहनुमानको भोजन कराने लगीं। अन्न-व्यञ्जनादि जितना ही परोस दिया जाता, श्रीहनुमान बात-की-बातमें सभी चट कर जाते। तब भगवती सीताने निरुपाय हो श्रीहनुमानके पश्चात्-भागमें '**ॐ नम: शिवाय**' कहकर अन्न परोसा। ऐसा करनेसे श्रीहनुमान तृप्त हो गये! यों करनेका यही उद्देश्य था कि सबको यह ज्ञात हो जाय कि श्रीहनुमानजी भगवान् शिवके अवतार हैं।

श्रीहनुमानजीने अपनी अद्भुत वीरता, अनवरत सेवा, आदर्श चरित्र, अनन्य भक्ति आदि अनन्त सद्‌गुणोंसे केवल अपना ही जीवन सफल नहीं किया तथा लोकमें केवल महान् आदर्शकी ही प्रतिष्ठा नहीं की, अपितु वे जिनके अवतार एवं अंश थे, उन भगवान् शंकर, सर्वपूज्य पवनदेव, कपिश्रेष्ठ केसरी तथा माता अञ्जनाकी परमोज्ज्वल कीर्तिका भी चतुर्दिक् विस्तार किया।

श्रीहनुमन्नाम-विवेचन

(लेखक—श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव, शास्त्री, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०)

परमभागवत श्रीरामके अनन्य भक्त महावीर हनुमानके अनेक सोपाधिक नाम हैं। ये सभी नाम अपनेमें अनेक रहस्यपूर्ण संकेत छिपाये हुए हैं एवं हनुमानके पृथक्-पृथक् रूपों (व्यक्तित्व)-का संकेत करते हैं। इनमेंसे कुछ प्रसिद्ध नामोंकी यथामति विवेचना करनेका प्रयत्न इस लेखमें किया जा रहा है।

हनुमान—यह हनुमानजीका स्व-स्वरूपनिर्देशक मुख्य नाम है। इस नामके अतिरिक्त अन्य नाम गुण-कर्मादिकी उपाधिके आश्रित होनेके कारण विशेषण-विशिष्ट हैं। वाल्मीकिरामायण एवं अध्यात्मरामायणमें उन्होंने श्रीरामको अपना परिचय 'हनुमान' नामसे ही दिया है। यथा—

'अहं सुग्रीवसचिवो हनूमान् नाम वानरः॥'

(वा० रा० ५। ३४। ३८)

'हनूमानिति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा॥'

(वा० रा० ५। ३५। ८३)

अहं सुग्रीवसचिवो वायुपुत्रो महामते॥
हनूमान् नाम विख्यातो ह्यञ्जनीगर्भसम्भवः।

(अ० रा० ४। १। २३-२४)

'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्डमें वे भरतजीको भी इसी नामसे अपना परिचय देते हैं—

'मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना॥'

(मानस ७। १। ४)

नाम और नामीमें अभेद होता है। नाममें नामीका व्यक्तित्व, उसका चरित्र, गुण एवं प्रभाव सूक्ष्मरूपसे अन्तर्हित होते हैं। 'हनुमान'—इस नाममें भी हनुमानजीका सम्पूर्ण व्यक्तित्व, गुण और चरित, पौरुष एवं प्रभाव बीजरूपसे अन्तर्निहित हैं। 'हनुमान' शब्द हिंसा तथा गति अर्थवाली '**हन्**' धातुमें '**उ**' प्रत्यय और तद्धितीय '**मतुप्**' प्रत्यय लगानेपर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है—हनु (दाढ़)-वाला।

'मेदिनी-कोश' के अनुसार '**हनु**' शब्दके कई अर्थ हैं—वेश्या, मृत्यु, अस्त्र, रोग एवं दोनों कपोलाङ्ग*। जैसे इसमें 'अस्त्र' एवं 'मृत्यु'—ये दोनों अर्थ '**हन्**' धातुके हिंसार्थसे सम्बन्धित हैं। 'अस्त्र' में गत्यर्थ भी सम्मिलित है तथा इस शब्दका धात्वर्थ है—क्षेपण एवं दूरीकरण। अतः '**हनु**' के इन दोनों अर्थोंको '**मतुप्**' प्रत्ययके अर्थसे संयुक्त करनेपर 'हनुमान' का अर्थ होता है—अस्त्रवान् एवं मृत्युमान्। ये दोनों अर्थ हनुमानको प्रक्षेपण, प्रहार एवं संहारकी प्रचण्ड शक्तिसे युक्त निर्दिष्ट करते हैं। इन्हीं नामार्थोंके अनुरूप हनुमानजी सर्वसंकटहर्ता, सर्वविध भूत-प्रेत-पिशाच-ग्रहादि-बाधाके निवारक, शत्रु-स्तम्भक एवं असुर-संहारक माने जाते हैं।

हनुमानकी इस अप्रतिम संहारशक्तिको विचारकर ही महर्षि अगस्त्यने श्रीरामसे कहा था—

प्रवीविविक्षोरिव सागरस्य लोकान् दिधक्षोरिव पावकस्य।
लोकक्षयेष्वेव यथान्तकस्य हनूमतः स्थास्यति कः पुरस्तात्॥

(वा० रा० ७। ३६। ४८)

'प्रलयकालमें भूतलको आप्लावित करनेके लिये भूमिके भीतर प्रवेश करनेकी इच्छावाले महासागरके तुल्य, सम्पूर्ण लोकोंको दग्ध कर डालनेके लिये उद्यत हुए संवर्तक अग्नितुल्य तथा लोकसंहारके लिये उठे हुए कालके समान प्रभावशाली इन हनुमानजीके सामने कौन ठहर सकेगा?'

त्रैलोक्यविजयी महापराक्रमी रावणकी स्वर्णनगरी लंकाको अकेले ही भस्मीभूत कर देना उनकी संहारकारिणी शक्तिका स्पष्ट प्रमाण है।

हनुमानमें अन्तर्निहित पराक्रम और प्रहारकी प्रबल प्रचण्ड शक्तिका विचार करके ही ब्रह्माने बाल हनुमानको वर देते हुए पवनदेवसे कहा था—

अमित्राणां भयकरो मित्राणामभयंकरः।
अजेयो भविता पुत्रस्तव मारुत मारुतिः॥
रावणोत्सादनार्थानि रामप्रीतिकराणि च।
रोमहर्षकराण्येव कर्ता कर्माणि संयुगे॥

(वा० रा० ७। ३६। २३, २५)

'पवनदेव! तुम्हारा यह पुत्र मारुति शत्रुओंके लिये भयंकर, मित्रोंके लिये अभयदाता एवं अजेय होगा। युद्धमें यह रावणके संहार और भगवान् श्रीरामकी प्रसन्नताका सम्पादन करनेवाले अनेक अद्भुत एवं रोमाञ्चकारी कर्म करेगा।'

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः॥

(वा० रा० ७। ३५। ८)

* हनुर्हट्टविलासिन्यां मृत्यावस्त्रे गदे स्त्रियाम्॥ द्वयोः कपोलावयवे हीनं गर्ह्योनयोस्त्रिषु। (मेदिनीकोश २०। २५-२६)

'युद्धमें जिस प्रकार हनुमानके पराक्रम और संहारकी बातें सुननेको मिलती हैं, वैसे कर्मकी बातें न तो कालकी, न इन्द्रकी, न विष्णुकी और न कुबेरकी ही सुननेमें आती हैं।'

अपनी तेजस्विता और पराक्रमसे सम्पूर्ण रामायण-कथामें छाये हुए दो ही प्रमुख पात्र हैं—श्रीराम और रामदूत हनुमान। हनुमानका पराक्रम श्रीरामसे कुछ ही न्यून है। युद्धभूमिमें रावण भी हनुमानके प्रचण्ड प्रहार तथा उदग्र सामर्थ्यके सामने तेजोहीन हो गया था। श्रीराम स्वयं मानते हैं कि हनुमानका बल वाली और रावणसे भी अधिक है—

अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च।
न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम॥

(वा०रा० ७।३५।२)

'इसमें संदेह नहीं कि वाली और रावणके बलकी तुलना कहीं नहीं थी, परंतु मेरा विश्वास है कि इन दोनोंका बल भी हनुमानके बलकी बराबरी नहीं कर सकता।'

स्वयं हनुमानजीने अपने मुखसे कहा है कि 'मैं अपार पराक्रमवाला हूँ, करोड़ों तुच्छ रावण मेरे समान नहीं हो सकते।' अतएव श्रीहनुमत्स्वरूपके ध्यानमें भी उनके प्रबल सामर्थ्य एवं उदग्र संहारशक्तिका चिन्तन ही मुख्य है—

वामहस्ते महावृक्षं दशास्यकरखण्डनम्।
उद्यद्दक्षिणदोर्दण्डं हनुमन्तं विचिन्तयेत्॥

'बायें हाथसे दशमुख रावणकी भुजाओंको तोड़ देनेके लिये महावृक्षको पकड़े हुए एवं दाहिने हाथको ऊपरकी ओर उठाये हुए श्रीहनुमानका ध्यान एवं चिन्तन करे।'

हनुमानजी नाना कर्मोंमें कुशल भी हैं। हनुमानकी कर्मदक्षता सुग्रीवके सचिवरूपमें, श्रीरामके दूतरूपमें, वानर-यूथपतिके रूपमें युद्ध-संचालनमें तथा संजीवनौषध-पर्वतको लाकर मूर्च्छित लक्ष्मणको जीवन प्रदान करनेके रूपमें प्रकट है। श्रीराम कृतज्ञतापूर्वक हनुमानके कर्मोंका स्मरण करते हुए कहते हैं—

एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः॥
हनूमान् यदि मे न स्याद् वानराधिपतेः सखा।
प्रवृत्तिमपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान् भवेत्॥

(वा० रा० ७।३५।९-१०)

'इन हनुमानके ही बाहुबलसे मैंने लंकापर विजय प्राप्त की। प्रिय पत्नी सीताको पुनः प्राप्त किया, मृतप्राय सहोदर भाई लक्ष्मणको पुनः जीवित रूपमें पाया, वानराधिपति सुग्रीव एवं राक्षसश्रेष्ठ विभीषणादिको मित्र-रूपमें पानेमें तथा पुनः अयोध्या लौटकर राज्य एवं बन्धु-बान्धवोंको पानेमें मैं समर्थ हुआ। यदि वानरराज सुग्रीवके मित्र हनुमान मेरे सहायक न होते तो भला प्राणप्रिया जानकीका समाचार जाननेमें भी कौन समर्थ हो सकता था।' हनुमानके अभावमें जानकीका समाचार मिलना भी कठिन था, लंकापर विजय और सीताकी पुनः प्राप्तिकी बातें तो दूरकी हैं।

'**हन्**' धातुका दूसरा अर्थ है—'गति'। वैयाकरणोंके अनुसार 'गति' शब्दके भी तीन अर्थ हैं—ज्ञान, गमन और प्राप्ति। मतुबर्थ (**तदस्य अस्ति**—वह इसका है)-से संयुक्त करनेपर 'हनुमान' का अर्थ होगा—ज्ञानवाला, गतिवाला और प्राप्तिवाला। श्रीहनुमान सर्वविद्यावारिधि हैं, गति एवं बलके भंडार हैं। उन्हें सभी ऐश्वर्य-भोगोंकी तथा ब्रह्मकी प्राप्ति हो चुकी है। हनुमान अपने नामार्थके अनुरूप गति, मति एवं शक्तिमें अतुल हैं, इस बातको स्वयं महर्षि अगस्त्य श्रीरामके सम्मुख स्वीकार करते हैं—

सत्यमेतद् रघुश्रेष्ठ यद् ब्रवीषि हनूमति।
न बले विद्यते तुल्यो न गतौ न मतौ परः॥

(वा० रा० ७।३५।१५)

'रघुश्रेष्ठ श्रीराम! हनुमानके विषयमें आप जो कुछ कहते हैं, वह सब सत्य ही है। बल, बुद्धि एवं गतिमें इनकी बराबरी करनेवाला दूसरा कोई नहीं है।'

इनकी विद्याके सम्बन्धमें महर्षि अगस्त्य कहते हैं—

सर्वासु विद्यासु तपोविधाने
प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम्।
सोऽयं नवव्याकरणार्थवेत्ता
ब्रह्मा भविष्यत्यपि ते प्रसादात्॥

(वा० रा० ७।३६।४७)

'सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञान तथा तपस्याके अनुष्ठानमें ये देवगुरु बृहस्पतिकी बराबरी करते हैं। नवों व्याकरणोंके सिद्धान्तको जाननेवाले ये हनुमानजी आपकी कृपासे अगले कल्पमें साक्षात् ब्रह्मा होंगे।'

प्रथम भेंटमें ही श्रीराम इनकी शिष्ट, स्निग्ध, परिष्कृत वाणीमें प्रौढ़ एवं विदग्ध सम्भाषणसे बहुत प्रभावित हुए थे तथा लक्ष्मणसे इनके सम्पूर्ण व्याकरण-ज्ञान एवं चारों वेदोंके पाण्डित्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी (वा० रा०, कि० का० ३।२८-२९)।

वाल्मीकीय रामायणके अनुसार हनुमानने भगवान्

सूर्यसे वेद, व्याकरण, छन्द एवं अन्य सभी शास्त्रोंका अध्ययन किया था।

श्रीहनुमानको गतिके सम्बन्धमें ब्रह्माजीका वरदान बाल्यकालमें ही मिल चुका है—

कामरूपः कामचारी कामगः प्लवतां वरः।
भवत्यव्याहतगतिः कीर्तिमांश्च भविष्यति॥

(वा०रा० ७।३६।२४)

'यह इच्छानुसार रूप धारण कर सकेगा, जहाँ चाहेगा, इच्छानुसार मन्द या तीव्रगतिसे जा सकेगा एवं इसकी गति कहीं भी रुक नहीं सकेगी। यह कपिश्रेष्ठ बड़ा यशस्वी होगा।'

वायुदेवताने अञ्जनादेवीको वर देते हुए अपने भावी पुत्रके विषयमें कहा था—

'लङ्घने प्लवने चैव भविष्यति मया समः॥'

(वा०रा० ४।६६।१९)

'लाँघने और छलाँग मारनेमें वह तुम्हारा पुत्र मेरे ही समान होगा।'

ऋक्षराज जाम्बवान्‌को हनुमानकी इस अतुल गति-शक्तिका ज्ञान था। इसलिये जब सभी वानरगण समुद्र-लङ्घनकी विकट समस्याको हल न कर सकनेके कारण विषादयुक्त हो रहे थे, उस समय ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने हनुमानको ही समुद्र लाँघकर जानकीकी खोज-खबर लानेकी प्रेरणा देते हुए कहा था—

उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम्।
परा हि सर्वभूतानां हनुमन् या गतिस्तव॥

(वा० रा० ४।६६।३६)

'वानरश्रेष्ठ हनुमान! उठो और इस महासागरको लाँघ जाओ; क्योंकि तुम्हारी गति सभी प्राणियोंसे बढ़कर है।'

स्वयं हनुमान कहते हैं—

मारुतस्य समो वेगे गरुडस्य समो जवे।
अयुतं योजनानां तु गमिष्यामीति मे मतिः॥

(वा०रा० ४।६७।२७)

'मैं वेगमें वायुदेवताके समान तथा गतिमें गरुडके समान हूँ। मेरा ऐसा विश्वास है कि मैं इस समय दस हजार योजनतक जा सकता हूँ।'

श्रीहनुमानके वेग एवं गतिकी अपूर्व शक्ति उनके समुद्रोल्लङ्घन तथा लंकासे गन्धमादनपर्वतपर जाकर त्वरित गतिसे ओषधिसहित पर्वतखण्डको ले आने एवं उसे पुनः प्रत्यस्थापित कर आनेमें प्रत्यक्ष दिखायी देती है।

'**हन्**' धातुके गत्यर्थमूलक 'प्राप्ति' अर्थकी दृष्टिसे विचार करें तो श्रीरामैकपरायण प्रभु-सेवक हनुमानको किस वस्तुकी प्राप्ति दुर्लभ रही। लंका जाकर श्रीजानकीजीका कुशल-समाचार सुनानेपर प्रभुने उनका आलिङ्गन कर अपना सर्वस्व ही उन्हें पुरस्काररूपमें दे दिया—

एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः॥

(वा०रा० ६।१।१३)

लौकिक सिद्धि-प्राप्तिकी दृष्टिसे देखें तो उन्हें चिरञ्जीवित्व एवं सूर्य-चन्द्रकी स्थिति-पर्यन्त स्थायी कीर्ति प्राप्त हुई। 'जबतक लोकमें रामकथा रहेगी, तबतक हनुमान भी जीवित हैं एवं उनकी कीर्ति भी स्थायी है।'

चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका॥
तावत् ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा।

(वा० रा० ७।४०।२१-२२)

'अध्यात्मरामायण' में भगवती जानकी कहती हैं कि 'मारुते! तुम जहाँ-कहीं भी रहोगे, वहाँ सभी भोग मेरी आज्ञा—आशीर्वादसे तुम्हें प्राप्त होंगे'—

तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते।
स्थितं त्वामनुयास्यन्ति भोगाः सर्वे ममाज्ञया॥

(६।१६।१५-१६)

वहीं श्रीराम उन्हें चिरञ्जीवित्व एवं कल्पान्तमें सायुज्यमुक्तिका वरदान देते हैं—

'मारुते त्वं चिरञ्जीव ममाज्ञां मा मृषा कृथाः।'

(७।९।३५)

'कल्पान्ते मम सायुज्यं प्राप्स्यसे नात्र संशयः।'

(६।१६।१५)

रामचरितमानसमें जगदम्बा जानकी उन्हें सकल सद्‌गुणकी खान और अजर-अमर होने तथा भगवत्कृपा प्राप्त करनेका वरदान देती हैं—

सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत॥

(मानस ६।१०७)

आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥

(मानस ५।१६।१-१$\frac{१}{२}$)

प्रभु श्रीरामसे उन्हें दुर्लभ अनपायिनी भक्तिका वर मिलता है—

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥

(मानस ५।३३।१)

यही नहीं, भगवान् श्रीरामके वरदानसे श्रीराम और हनुमानकी कीर्ति-कथाका परमभक्तिके साथ गान भव-सागरसे पार करनेवाला है—

मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं।
संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥

(मानस ६। १०५। छं० १)

श्रीतुलसीदासजीके मतानुसार तो जगज्जननी जानकीकी कृपासे स्वयं हनुमानजी अष्ट सिद्धियों और नव निधियोंको दे सकनेके वरदान-सामर्थ्यसे युक्त हैं—

'अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता। अस बर दीन जानकी माता॥'

(हनुमानचालीसा)

इस प्रकार हम देखते हैं कि हनुमानजीमें 'प्राप्ति' गुणकी प्रचुरता है। उन्हें भौतिक-आध्यात्मिक भोग, यौगिक शक्ति-सिद्धि एवं भक्ति तथा मुक्तिकी प्राप्ति सहजतया उपलब्ध है।

इसी कारण हनुमानजीमें निहित गुणोंका समुच्चय करते हुए श्रीराम महर्षि अगस्त्यसे कहते हैं—

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः॥

(वा० रा० ७। ३५। ३)

'शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम एवं प्रभुत्व—इन सभी सद्‌गुणोंने श्रीहनुमानजीके भीतर घर कर रखा है।'

इसीका समर्थन करते हुए महर्षि अगस्त्य कहते हैं—

पराक्रमोत्साहमतिप्रताप-
सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-
र्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके॥

(वा०रा० ७। ३६। ४४)

'संसारमें ऐसा कौन है, जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल और धैर्यमें हनुमानजीसे बढ़कर हो।'

इस प्रकार उपर्युक्त विवरणोंसे यह स्पष्ट है कि 'हनुमान' नाममें '**हन्**' धातुके आश्रित संहार, पराक्रम, विविध कर्मदक्षता, ज्ञान, गति एवं प्राप्तिसे युक्त होना—ये सभी अर्थ पूरी तरह घटते हैं।

'हनु' शब्दका अर्थ कपोलावयव (ठुड्डी) भी है। इन्द्रके वज्रप्रहारसे वामहनुके भङ्ग हो जानेके कारण इनका नाम 'हनुमान' (भग्न ठुड्डीवाला) पड़ा। इस प्रकार 'हनुमान' नाम पड़नेकी लघु कथा वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्ड (अ० ३६) एवं किष्किन्धाकाण्ड (अ० ६७)-में इस रूपमें मिलती है—

एक दिन जब माता अञ्जना अपने शिशुको गुफामें अकेले छोड़कर जंगलमें फल लेने गयीं, तब हनुमानजी भूखसे व्याकुल होकर जोर-जोरसे रोने लगे। तभी इन्हें पूर्व दिशामें जपाकुसुमवर्ण सूर्य उदित होते हुए दिखायी दिये। इन्होंने उसे कोई फल समझा तथा उसको पकड़नेकी इच्छासे ये सूर्यकी ओर झपटे। ये कई सहस्र योजन आकाश लाँघते हुए सूर्यके समीप पहुँच गये। जिस दिन हनुमान सूर्यको पकड़नेके लिये उछले, उसी दिन राहु भी सूर्यको ग्रसना चाहता था एवं उनके रथके ऊपरी भागमें बैठा था। हनुमानने जब सूर्यके रथके ऊपरी भागमें स्थित राहुका स्पर्श किया, तब वह डरकर भाग खड़ा हुआ और इन्द्रके पास जा पहुँचा। उसने इन्द्रसे शिकायत की कि उसका आज (अमावास्या)-का ग्रास दूसरेको क्यों दिया गया है? उसी समय इन्द्र वज्र लेकर राहुके साथ घटनास्थलपर आये। इधर राहु इन्द्रको छोड़कर सूर्यकी ओर बढ़ा और उधर हनुमान दौड़ते हुए पर्वताकार राहुको बड़ा फल समझकर उसे पकड़नेके लिये उछले। राहु इन्द्रकी दुहाई देते हुए पीछेकी ओर मुड़कर भागा। इन्द्रने उसे अभयदान देते हुए कहा—'डरो मत, मैं अभी इस आक्रमणकारीको मार डालता हूँ।' इसपर हनुमानजी ऐरावतको भी फल समझकर उसे पकड़नेके लिये दौड़े। यह देखकर इन्द्रने अत्यन्त कुपित होकर उनपर अपने वज्रसे प्रहार किया। इन्द्रके वज्रकी चोट खाकर ये एक पहाड़पर गिर पड़े। वहाँ गिरते समय इनकी बायीं ठुड्डी टूट गयी। इस प्रकार वामहनुके क्षतिग्रस्त होनेके कारण इन्द्रने इनका नाम 'हनुमान' रखा—

मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथा हतः।
नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति॥

(वा० रा० ७। ३६। ११)

इन्द्रने पवनदेवसे कहा—"मेरे हाथसे छूटे हुए वज्रके द्वारा इस बालककी हनु—ठुड्डी टूट गयी है, इसलिये इस कपिश्रेष्ठका नाम 'हनुमान' होगा।"

इस घटनाके देवलोकमें घटित होनेके कारण यह आधिदैविक कथा है। भौतिक दृष्टिसे इसका तात्पर्य है

कि सूर्यके रूपमें आदित्यमण्डलस्थ ब्रह्म तथा ज्ञान-प्रकाश, ऐरावतके रूपमें स्वर्गके राजसिक भोग एवं राहुके रूपमें निद्रा-प्रमाद-विषय-सुखादि तामसिक भोग जीवनके फल हैं। ज्ञान और ब्रह्मकी प्राप्तिमें तामसिक और राजसिक भोग प्रतिबन्धक हैं। इन दोनों प्रतिबन्धोंको जीत लेनेपर भी इन्द्रके रूपमें प्राप्त दैवी सिद्धियाँ तथा सात्त्विक अहंकार ब्रह्म-प्राप्तिमें तथा यथार्थ ज्ञानकी उपलब्धिमें बड़े कठोर विघ्न सिद्ध होते हैं। जैसे हनुमानजी रघुनाथ-कला हैं, वैसे ही प्रत्येक जीव ईश्वर-कला होनेसे लघु हनुमान है। प्रत्येक मनुष्यमें ज्ञानकी क्षुधा इतनी तीव्र होनी चाहिये कि वह पृथ्वीसे द्युलोक-पर्यन्त सभी विषयोंको अपनी बुद्धिमें आत्मसात् कर सके। उसमें इतना उत्साह और इतनी सामर्थ्य होनी चाहिये कि वह सीधे ज्ञानके स्रोततक पहुँचकर ज्ञानका साक्षात्कार कर सके। ऐसा करनेमें उसे आकाशकी सीमाको चीरकर द्युलोकतक पहुँचना पड़े तथा ज्ञानामृतको पानेके लिये देवताओंसे भी संघर्ष करना पड़े तो उसे झिझकना नहीं चाहिये। मृत्युलोकमें जाकर नचिकेताद्वारा आचार्य यमसे स्वर्गविद्या और ब्रह्मविद्या सीखनेकी बात तथा सुपर्णद्वारा स्वर्गसे अमृत-कलशको पृथ्वीपर लानेकी कथाएँ उपनिषदों, ब्राह्मणों एवं पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं।

आञ्जनेय—सुव्रता सती अञ्जनादेवीके पुत्र होनेके कारण हनुमानजी 'आञ्जनेय', 'अञ्जनिनन्दन' या 'अञ्जनिसुत' नामोंसे पुकारे जाते हैं। यह नाम उनके आधिदैविक रूपका संकेत देता है। अञ्जना पूर्वजन्ममें 'पुञ्जिकस्थला' नामकी एक श्रेष्ठ अप्सरा थीं। उनका अनुपम सौन्दर्य त्रिलोकीमें विख्यात था। शापवश वे कपियोनिमें आयी थीं।[१] एक बार जब वे मानवीरूप धारणकर सुमेरुशिखरपर विहार कर रही थीं, तभी पवनदेवने उनका मनसा संस्पर्श किया।[२] इस प्रकार वायुदेवताके मानस संकल्प एवं संस्पर्शसे अञ्जनाके क्षेत्रसे हनुमानका अयोनिज जन्म हुआ है। उनकी जन्मकथा सर्वथा दिव्य एवं रहस्यमयी है। उनकी बाल-लीला भी दिव्य ही है।

वस्तुतः परब्रह्मके अंशभूत सभी देवता नित्य एवं चिन्मय हैं। परमात्मा अपनी लीला एवं प्रयोजनके अनुसार उनमेंसे कुछको लोकमें अभिव्यक्त करते हैं, कुछको परोक्ष रखते हैं और कुछको अपनेमें ही अन्तर्निहित रखते हैं। अभिव्यक्त शक्तियोंमेंसे कुछ देवशक्तियाँ परमात्माके इच्छानुसार नित्य एवं स्थायी होती हैं तथा कुछ कार्य करके पुनः परब्रह्मशक्तिमें ही तिरोहित हो जाती हैं। इसी भाँति आञ्जनेय नित्य ब्रह्मकला हैं, पर उनकी अभिव्यक्ति श्रीरामावतारके समय लीलामें सहायता देनेके लिये हुई थी। तबसे वे पुनः इस लोकमें नित्य देवताके रूपमें कार्यरत हैं। 'मेरुतन्त्र' के अनुसार हनुमानका प्रभाव चारों युगोंमें स्थायी है।

पुञ्जिकस्थला नामकी अप्सराका वर्णन 'शतपथब्राह्मण'-में आता है। इस ब्राह्मणके अनुसार पुञ्जिकस्थलाका अर्थ है—दिशा या अग्निकी सेना।[३] दिशाएँ अनन्तताकी प्रतीक हैं।[४] दिशाओंका देवता वायु है। वह उन सबमें आविष्ट है।[५] दिशाएँ स्वर्गलोक या ऋतकी वाचक भी हैं।[६] रामायणके अनुसार अप्सराएँ 'अप्' (जल)-में मन्थन करनेसे उसके रससे उत्पन्न हुई थीं[७]। इस प्रकार 'अप्सरा' शब्द उत्कृष्ट घनीभूत सौन्दर्यका संकेतक है। वायु विश्वका प्राण है तथा सभीका उत्पादक एवं सम्पूर्ण कर्मका कारक होनेसे 'विश्वकर्मा' है।[८] अञ्जना और वायुके संस्पर्शमें स्वर्गरूपी दिक् (दिव्य चेतना, दिव्य प्रकाश) एवं वायुका, सत्यरूपी दिक् एवं पवमानका, दैवी प्रकृति एवं विश्वप्राणका योग सम्यक्-रूपसे सुघटित होता है। इन दोनों दिव्य शक्तियोंके संयोगका परिणाम है—स्वर्गीय

१-द्रष्टव्य—वा० रा० ४। ६६। ८-९

२-द्रष्टव्य—वा० रा० ४। ६६। १७-१८

३-पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसाविति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहिस्थिः सेना च तु ते समितिश्च (अग्ने)। (श० ब्रा० ८। ६। १। १६)

४-अपरिमिता हि दिशः (श० ब्रा० ६। ५। २। ७)

५-सर्वा वा वास्यैतद्देवता (मै० २। ३। ७। २३) ता (दिशः) अयं वायुः पवमान आविष्ट इति वाजसनेयिनः॥ (जै० २। २२९)

६-दिशो वै स्वर्गो लोकः स्वर्गो (मै० ४। ४। ५। ९), दिशो हि लोको दिशः। (श० ब्रा० ८। १। २। ४), दिशो वै ऋतस्य सत्यम्॥ (श० ब्रा० ८। १। २। ४)

७-अप्सु निर्मथनादेव रसात् तस्माद् वरस्त्रियः। उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवन्॥ (वा० रा० १। ४५। ३३)

८-'यो वै प्राणः स वातः॥' (श० ब्रा० ५। २। ४। ९) 'अयं वै वायुर्विश्वकर्मा योऽयं पवत एष हीदं सर्वं करोति॥' (श० ब्रा० ८। १। १। ७), 'वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत्॥' (वा० रा० ७। ३५। ६१)

बल, प्रकाश एवं सत्यकी चेतनासे युक्त हनुमानजीका दिव्य जन्म। हनुमानके बाल्यकालमें भिन्न-भिन्न देवोंने जो उन्हें वरदान दिये हैं, वे भी इसी बातके संकेतक हैं कि हनुमान देवताओंकी शक्तिके पुञ्जीभूत रूप थे।

पुञ्जिकस्थला अप्सराका द्वितीय अर्थ '**अग्निसेना**' (अग्निदेवकी शक्ति) भी हनुमज्जन्मके विषयमें भलीभाँति सुघटित होता है। '**दिशा**' शब्द ब्राह्मण-ग्रन्थोंकी परिभाषामें अग्निवाचक भी है।[१] वायु अग्निसखा है। वायुमें सबको युक्त करनेका—मिलानेका गुण है।[२] अग्निशक्ति एवं विश्वप्राणशक्ति वायुके मिश्रणका संयुक्त परिणाम है—हनुमान, जिनमें अग्निका तेज और संहारकशक्ति तथा वायुका प्रबल वेग और पराक्रम विद्यमान है। अग्निके अंशसे उत्पन्न होनेके कारण ही उनका वर्ण उद्यत्कोटिसूर्य-सदृश अरुण है। अग्नि देवोंके सेनानी हैं[३] और हनुमान कपियूथपति हैं। जैसे अग्नि विश्वका जीवन है, वैसे ही हनुमान रामसेनाके प्राण हैं। लंका-युद्धमें जब इन्द्रजित्-द्वारा ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किये जानेपर श्रीराम-लक्ष्मणसहित सम्पूर्ण वानर-सेना मूर्च्छित हो गयी, तब केवल हनुमान और विभीषण ही उसके प्रभावसे बचे रहे। हनुमानसहित वानर-सेनाकी खोज-खबर लेते हुए जब विभीषण जाम्बवान् आदिके पास पहुँचे, तब उन्हें कुछ-कुछ चेतना आयी थी। उस समय जाम्बवान्ने विभीषणसे श्रीराम या लक्ष्मणके विषयमें न पूछकर केवल हनुमानजीके विषयमें ही इस प्रकार पूछा—

अञ्जना सुप्रजा येन मातरिश्वा च सुव्रत।
हनूमान् वानरश्रेष्ठः प्राणान् धारयते क्वचित्॥
अस्मिञ्जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम्।
हनूमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि मृता वयम्॥
धरते मारुतिस्तात मारुतप्रतिमो यदि।
वैश्वानरसमो वीर्ये जीविताशा ततो भवेत्॥

(वा० रा० ६।७४। १८, २२-२३)

'उत्तम व्रतके पालक विभीषण! यह तो बताओ, जिनको जन्म देनेसे अञ्जनादेवी उत्तम पुत्रकी जननी और वायुदेव श्रेष्ठ पुत्रके जनक माने जाते हैं, वे वानरश्रेष्ठ हनुमान जीवित तो हैं?······यदि वीरवर हनुमान जीवित हैं तो यह मरी हुई सेना भी जीवित ही है—ऐसा समझना चाहिये और यदि उनके प्राण निकल गये हों तो हमलोग जीते हुए भी मृतकके ही तुल्य हैं। तात! यदि वायुके समान वेगशाली और अग्निके समान पराक्रमी पवनकुमार हनुमान जीवित हैं तो हम सबके जीवित होनेकी आशा की जा सकती है।'

इसके बाद हनुमान हिमालयसे दिव्य ओषधियुक्त पर्वतखण्डको युद्धभूमिमें लाकर उसकी गन्धसे ही सबको स्वस्थ कर देते हैं। हनुमानद्वारा लंकाके दहनमें एवं उस भयानक अग्निज्वालासे स्वयं अस्पृष्ट रहनेमें भी उनके आग्नेयांश होनेका प्रमाण मिलता है। आञ्जनेयकी वन्दनाका यह श्लोक भी उनके अग्निगर्भ-सम्भूत होनेका संकेत देता है—

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम्॥

'जिन्होंने लीलापूर्वक सिन्धु-सलिलका उल्लङ्घन करके जनकात्मजा सीताकी शोकाग्निको लेकर उसी अग्निसे लंकाको जला दिया, उन आञ्जनेयको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।'

अब यदि पुञ्जिकस्थला, अञ्जना एवं वायुके वाच्यार्थपर विचार करें तो भी देवजन्मका, देवशक्तिके अभिव्यक्त होनेका सुन्दर रहस्य उद्घाटित होता है। पुञ्जिकस्थलाका अर्थ है—पुञ्जीभूत भूमि अर्थात् सम्पूर्ण बिखरी हुई भौतिक चेतनाको एकत्र संघटित करके एक समन्वयात्मक व्यक्तित्व (One integral being)-के रूपमें प्रकट एकतानता एवं एकत्वको प्राप्त हुई भौतिक चेतनाकी सत्ता। 'अञ्जना' शब्द 'अञ्ज' धातुसे निष्पन्न हुआ है, जिसके अर्थ हैं—व्यक्ति (विवेचन), म्रक्षण (स्निग्धता), कान्ति एवं गति। जो सौन्दर्यप्रसाधनसहित अपनी कान्ति एवं गतिसे अभिव्यक्त हो, उसका नाम 'अञ्जना' है। अञ्जना सौन्दर्यकी चेतनामें देवत्वको अभिव्यक्त करनेवाली सक्रिय एवं गतिशील भौतिक चेतनाकी शक्ति है। सुमेरुशिखरपर अञ्जनाका वायुसे संस्पर्श हुआ था। सुमेरु दिव्य चेतनाकी शिखराग्रभूमि है, जहाँ ब्रह्मादि देवोंकी नगरी है। जब साधककी व्यष्टि भौतिक चेतना पुञ्जीभूत एवं एकाग्र होकर देवत्व-प्राप्तिके लिये ऊपरकी ओर उठती हुई दैवी चेतनाके उच्चतम शिखरोंका स्पर्श करती है, तब

१-दिशोऽग्निः॥ (श० ब्रा० ६। २। २। ३४)
२-यदिदं सर्वंयुङ्क्ते तस्माद् वायुः (जै० २। ५९)
३-एषोऽग्निर्देवानां सेनानी॥ (काठ० ३६। ८)

भगवान्‌की सक्रिय वायुरूपा दिव्य शक्ति साधककी चेतनामें दैवी चेतनाके अंशको उतारकर हनुमानके समान भागवत-मन्त्रके रूपमें दैवी कार्यको सम्पन्न करनेवाले दिव्य भागवत योद्धाको जन्म देती है। साधककी भौतिक चेतनामें दिव्य चेतनाके अवतीर्ण होनेके पश्चात् प्राणोंमें दिव्य स्पर्श-लाभके बाद साधक भगवान्‌का यन्त्र एवं जगत्‌में भगवान्‌के प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला, भगवदेकशरणाश्रित परम दिव्य योद्धा तथा महान् कर्मी बन जाता है।

भगवान् महावीर जब कभी मातृपक्षीय नाम 'आञ्जनेय'-से सम्बोधित होते हैं, तब स्वभावतः ही उस नाममें जननी-जातिके कष्टको दूर करनेकी या उसकी सेवा करनेकी वृत्ति मुख्यरूपसे संकेतित रहती है। अञ्जनानन्दन या आञ्जनेयसे सम्बन्धित श्लोकोंमें उन्हें विशेषरूपसे जगज्जननी जानकीके शोकका नाशक बताया गया है—

'अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम्।'

संसारमें साधु-संत स्त्रियोंके साथ मातृवत् व्यवहार करते हैं। वे उनका जननीके समान आदर करते हैं तथा उनका हित करनेके लिये सदा सचेष्ट रहते हैं। अतः श्रीतुलसीदासजीके शब्दोंमें अञ्जनिपुत्र संतोंके सदा सहायक हैं—

'अंजनि-पुत्र महाबलदाई। संतन के प्रभु सदा सहाई॥'

इस प्रकार 'आञ्जनेय' नाम हनुमानके देवोंकी पुञ्जीभूत शक्ति, सत्यबल, अग्निशक्ति एवं वायुशक्ति होनेके साथ-साथ परम भागवत योद्धा एवं मातृजाति और संतोंके सेवक तथा सहायक रूपका स्मरण दिलाता है। यह भाव इस श्लोकमें भी ध्वनित है—

अञ्जनीगर्भसम्भूत कपीन्द्रसचिवोत्तम।
रामप्रिय नमस्तुभ्यं हनूमन् रक्ष सर्वदा॥

पवनपुत्र—हनुमान वायुदेवताके मानस औरस पुत्र हैं[1], इसलिये उन्हें 'वातात्मज', 'पवनपुत्र', 'वायुनन्दन', 'मारुति' आदि नामोंसे पुकारा जाता है। वे वायुके अंशावतार हैं। रामायणमें मैनाकपर्वतने कहा है कि हनुमानकी पूजासे वायुदेवताकी पूजा हो जाती है।[2] वायु जगत्‌के प्राण हैं। देवोंमें सर्वाधिक ओजयुक्त एवं गति-शक्तिसे युक्त हैं।[3] अतएव **'आत्मा वै जायते पुत्रः'** (पिताकी आत्माका चैतन्यांश ही पुत्रके रूपमें उत्पन्न होता है)-के सिद्धान्तके अनुसार उनमें पिता पवनदेवके सभी गुण एवं शक्तियाँ हैं। स्वयं वायुदेवने अञ्जनादेवीसे उनके भावी पुत्रके गुणोंके सम्बन्धमें कहा था—

मनसास्मि गतो यत् त्वां परिष्वज्य यशस्विनि।
वीर्यवान् बुद्धिसम्पन्नस्तव पुत्रो भविष्यति॥
महासत्त्वो महातेजा महाबलपराक्रमः।
लङ्घने प्लवने चैव भविष्यति मया समः॥

(वा० रा० ४।६६।१८-१९)

'हे यशस्विनि! तुम्हारा आलिङ्गन कर मैंने मानसिक गमन किया है, अतः तुम्हारा पुत्र मेरे समान ही वीर्यवान्, बुद्धिसम्पन्न, महासत्त्व, महातेजस्वी, महाबली, महापराक्रमी तथा उछलने-कूदने और चलनेमें मेरे समान ही होगा।'

वायु देवोंके दूत हैं,[4] अतः हनुमानका भी परब्रह्मके अवतार श्रीरामका दूत होना सुसंगत है—'**राम काज लगि तव अवतारा।**' (मानस ४।२९।३)

पवनपुत्रके नामसे संकेतित इन गुणोंका संकलन गोस्वामी तुलसीदासजीने सुन्दरकाण्डके प्रारम्भमें वायुनन्दन हनुमानकी वन्दनामें कर दिया है—

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥

'अतुलित बलके भण्डार, स्वर्णगिरि सुमेरुके समान काञ्चन-कान्तियुक्त शरीरवाले, राक्षसरूपी वनको जलानेके लिये अग्निके समान तेजस्वी, ज्ञानियोंमें सर्वश्रेष्ठ, सकलगुण-निधान, वानरोंके अधीश्वर, श्रीरामके प्रिय भक्त पवनपुत्रको मैं प्रणाम करता हूँ।'

'एकमुख-हनुमत्कवच' में मारुतात्मजका ध्यान इस रूपमें मिलता है—

उद्यदादित्यसंकाशमुदारभुजविक्रमम्।
कंदर्पकोटिलावण्यं सर्वविद्याविशारदम्॥
श्रीरामहृदयानन्दं भक्तकल्पमहीरुहम्।
अभयं वरदं दोर्भ्यां कलये मारुतात्मजम्॥

'उदय होते हुए सूर्यके समान अरुणवर्ण एवं

१-मारुतस्यौरसः पुत्रः। (वा० रा० ४।६६।३०)
२-द्रष्टव्य—वा० रा० ५।१।१२०-१२१
३-प्राणो वै वायुः (तै० सं० २।१।१।२), यो वै प्राणः स वातः॥ (श० ब्रा० ५।२।४।९), वायुर्वै देवानामोजिष्ठः क्षेपिष्ठः॥ (मै० २।५।१), वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता॥ (तै० सं० २।१।१।१)
४-आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः। त्वꣳहि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे॥ (तै० आ०४।४२।१)

तेजस्वी, प्रचण्ड भुजविक्रमशील, करोड़ों कामदेवोंके सम्मिलित लावण्यसे युक्त, सर्वविद्याविशारद, श्रीरामके हृदयको आनन्द देनेवाले, भक्तोंके लिये कल्पवृक्षके समान कामपूरक, दोनों हाथोंमें अभय एवं वरदमुद्रा धारण किये हुए वायुपुत्रका मैं चिन्तन करता हूँ।'

गोस्वामी तुलसीदासजीने पवनकुमारकी वन्दना करते हुए उन्हें संकटहरन, मङ्गलमूर्तिरूप, खल-वन-पावक, ज्ञानघन तथा हृदयमें शर-चापधारी श्रीरामका ध्यान करते हुए वर्णित किया है।

हनुमानके लिये वायुपुत्रका अर्थ बतानेवाले जिन समानार्थक शब्दोंका प्रयोग हुआ है, उनमें वायुके पर्यायवाची उन-उन शब्दोंमें उनके धातुमूलक सूक्ष्मार्थकी ध्वनि मिल जाती है। जैसे—'वा' धातुमूलक 'वातजात' या 'वायुपुत्र' शब्दोंके प्रयोगमें गति, पराक्रम, विद्या, शोकापनोदन, भक्ति आदि गुणोंकी प्रधानता है, '**पू**' (पवित्र करना) धातुमूलक '**पवनतनय**' और '**पवमाननन्दन**' नामोंमें पवित्रता, पावनता या दोषोंके दूरीकरण और पवित्रीकरणकी भावना मुख्य है। 'मरुत्' शब्द मरणार्थक '**मृ**' धातुसे बना है। (वायुके बिना या वायुकी वृद्धिमें प्राणियोंका मरण होता है, इसलिये वायुका नाम 'मरुत्' है), अतएव 'मरुत्' के पुत्रके रूपमें मारुतिका जहाँ स्मरण है, वहाँ उनमें प्रक्षोभकारक या संहारक शक्तिकी प्रधानता है। यह बात मारुतिके इस ध्यानपरक श्लोकसे स्पष्ट हो जाती है—

उद्यत्कोट्यर्कसंकाशं जगत्प्रक्षोभकारकम्।
श्रीरामाङ्घ्रिध्याननिष्ठं सुग्रीवप्रमुखार्चितम्।
वित्रासयन्तं नादेन राक्षसान् मारुतिं भजेत्॥

'उदय होते हुए करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान, जगत्को अत्यधिक क्षुब्ध करनेवाले, श्रीरामके चरणोंके ध्यानमें लीन, सुग्रीवादि वानरप्रमुखोंद्वारा पूजित एवं अपनी गर्जनासे राक्षसोंको भयभीत करते हुए मारुतिका भजन-ध्यान करे।'

यहाँ उपासनाके एक रहस्य—नियमका उद्घाटन कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। लौकिक शब्दोंकी भाँति उपासनामें पर्यायवाचित्वका नियम समानार्थमें काम नहीं करता। प्रत्येक देवताकी अनन्त शक्तियाँ एवं रूप होते हैं। उसकी प्रत्येक शक्ति और रूपको अभिव्यक्त करनेवाला एक नाम होता है। किसी एक नामसे देवताकी किसी विशेष शक्ति या रूपका जो बोधन होता है, वह दूसरे किसी नामसे नहीं हो सकता। इसी नियमका अनुसरण करते हुए 'तैत्तिरीयोपनिषद्' (३। १०। ४)-में ब्रह्मके विभिन्न नामोंकी उपासनाका फल दरसाते हुए बताया गया है कि जिस प्रकारके नामसे ब्रह्मकी उपासना की जाती है, उस नामके अर्थके अनुकूल ही उपासकको उसका फल मिलता है।

इससे यह स्पष्ट है कि एक ही देवताके विभिन्न नामोंमेंसे किसी एक नामसे उस देवताकी उपासना (या जप) किये जानेपर साधकको उस नामार्थके अनुकूल ही ब्रह्मदेवतासे फल प्राप्त होता है।

शंकर-सुवन—श्रीहनुमानके शंकर-पुत्र, रुद्रावतार या रुद्रके अंशसे उत्पन्न होनेके सम्बन्धमें निम्नलिखित भिन्न-भिन्न कथाएँ मिलती हैं—

'आनन्दरामायण' के अनुसार सती-साध्वी अञ्जनाने पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये उग्र तपस्या की। दीर्घकाल बीतनेपर भगवान् शंकर उसके तपसे प्रसन्न होकर प्रकट हुए एवं उसे वरदान माँगनेको कहा। तब अञ्जनाने शंकरके सदृश भोले भक्त, किंतु पवनके समान पराक्रमी पुत्र देनेकी प्रार्थना की। तब शिवजीने कहा कि 'रुद्रगणमेंसे ग्यारहवें महारुद्र तुम्हारे पुत्र होंगे। तुम हाथ फैलाकर एवं आँखें बंदकर मेरे ध्यानमें थोड़ी देर खड़ी रहो। थोड़ी देरमें पवनदेव तुम्हारे हाथोंमें प्रसाद रखेंगे। उस प्रसादके खानेसे निश्चय ही रुद्रावतार, परमतेजस्वी, वज्राङ्ग-शरीर पुत्ररत्न तुम्हें प्राप्त होगा।' ऐसा कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये।

इसी बीच राजा दशरथके पुत्रेष्टि-यज्ञमें अग्निद्वारा दी गयी यज्ञ-खीरके कुछ अंशको कैकेयीके हाथसे एक चील लेकर आकाशमें उड़ गयी। उसी समय भगवत्कृपासे भयंकर आँधी उठी। वह खीर चीलके मुखसे छूटकर वायुद्वारा अञ्जनाकी अञ्जलिमें गिरी। तत्क्षण अञ्जनाने उसे खा लिया। उस खीरके खानेसे वह गर्भवती हुई एवं नौ मास बीतनेपर चैत्र शुक्ल पूर्णिमाको मङ्गलवारके दिन मङ्गलवेलामें श्रीहनुमानजीका जन्म हुआ।*

'शिवपुराण' (शतरुद्रसंहिता, अ० २०)-के अनुसार एक बार भगवान् विष्णुके मोहिनी रूपको देखकर भगवान् शिवके स्खलित हुए वीर्यको सप्तर्षियोंने कानोंके द्वारा अञ्जनाके गर्भमें स्थापित किया, जिससे शंकर-सुवन हनुमानजीका जन्म हुआ।

'वायुपुराण' एवं 'भविष्यपुराण' (प्रति० ४)-में कथाका रूप और ही है। एक बार शिवजीने अपने रौद्र तेजके रूपमें अञ्जनाके पति वानरराज केसरीके

* डॉ० चमनलाल गौतमद्वारा सम्पादित 'मन्त्र-महाविज्ञान', तृतीय खण्ड, पृ० ३५७

मुँहमें प्रवेश किया एवं अञ्जनाके साथ विहार किया। तत्पश्चात् वायुने भी केसरी-वानरके शरीरमें प्रविष्ट होकर अञ्जनाके साथ रमण किया। इससे गर्भवती हुई अञ्जनाने वानर-मुखवाले पुत्रको जन्म दिया।[१]

उपर्युक्त कथाएँ केवल भौतिक अनर्गल प्रलाप नहीं हैं, वे गूढ़ आध्यात्मिक एवं दैवी विज्ञानके रहस्योंसे भरी हुई हैं। रहस्यसूत्र इन कथाओंमें विद्यमान हैं। लेखके विस्तार-भयसे उन सबकी विवेचना सम्भव नहीं है।

'विनय-पत्रिका' (गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित)-के परिशिष्टमें यह संक्षिप्त कथा मिलती है—"एक बार शिवजीने श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति की और यह वर माँगा कि 'हे प्रभो! मैं दास्यभावसे आपकी सेवा करना चाहता हूँ, इसलिये कृपया मेरे इस मनोरथको पूर्ण कीजिये।' श्रीरामचन्द्रजीने 'तथास्तु' कहा। वही शिवजी श्रीरामावतारमें हनुमानके रूपमें अवतीर्ण होकर श्रीरामके प्रमुख सेवक बने।"

इस विषयमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका मत है कि 'जिस शरीरके धारण करनेसे श्रीरामसे प्रेम एवं उनकी सेवा हो सके, वही शरीर आदरणीय है—ऐसा ही विचारकर श्रीरामसेवाका रस लेने एवं श्रीरामकी एकनिष्ठ अनन्य भक्तिके आनन्दका अनुभव करनेके लिये भगवान् शंकर रुद्रका देह—श्रीरामके उपास्यका स्वरूप त्यागकर श्रीरामके अनन्य सेवक हनुमान बन गये। (दोहावली १४२-१४३)

विनय-पत्रिकाके पदोंमें गोस्वामीजीने हनुमानजीको शंकररूप मानकर 'देवमणि', 'रुद्र-अवतार', 'महादेव', 'वानराकार-विग्रह पुरारी', 'रुद्राग्रणी', 'वामदेव', 'कालाग्नि', 'मन्मथ-मथन'—इन नामोंसे सम्बोधित किया है।

सम्मान्य श्रीअनिरुद्धाचार्य वेङ्कटाचार्यजी हनुमानजीके रुद्रपुत्र होनेकी वैदिक व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—"वेदोंमें आग्नेय प्राण 'शिव' एवं सौम्य प्राण 'शक्ति' शब्दसे अभिहित होता है। इन दोनोंके संयोगसे उत्पन्न सप्तविध प्राण ही 'मरुद्गण' हैं। '**मरुतो रुद्रपुत्रासः**— मरुद्गण रुद्रके पुत्र हैं।' ये मरुद्गण भौतिक वायुके जनक हैं, अतः वायु 'मारुत'-नामसे कहा जाता है। पुराण-विज्ञानके अनुसार अदिति (सूर्यसंयुक्ता पृथ्वी)-से मरुद्गणकी उत्पत्ति हुई। इन्द्रने अदितिके गर्भमें प्रविष्ट होकर पहले उस एक गर्भके सात भाग किये। पुनः एक-एक भागके सात-सात खण्ड किये। इस प्रकार मरुतोंकी संख्या उनचास हुई। ये पृथ्वीसे लेकर द्युलोकपर्यन्त बहनेवाली वायुके उनचास प्रकार हैं। इनमेंसे पृथ्वीमें स्थित घनभावापन्न सर्वादिमरुत्प्राण गणपति हैं। विरलभावापन्न सूर्यमें स्थित सर्वान्तमरुत्प्राण महावीर (हनुमान) हैं। मरुद्गणके अन्तर्गत होनेसे ये रुद्रपुत्र हैं। 'वैखानस-आगम' में हनुमान आकाशसे अभिन्न हैं।[२]

इस प्रकार वैदिक दृष्टिसे देखें या पौराणिक कथाकी दृष्टिसे, हनुमानका अञ्जनिपुत्र एवं पवनसुत होनेपर शंकर-सुवन या रुद्रावतार होना सुतरां उपपन्न हो जाता है। पीछे 'शतपथ-ब्राह्मण' के प्रमाणसे हम बता आये हैं कि अञ्जनि मूलतः 'अग्निसेना' है। वायु विश्वप्राण (cosmic life energy) है। वैदिक परिभाषामें रुद्र अग्नि भी हैं एवं प्राण भी।[३] तोड़-फोड़, संहार, विनाश, प्रज्वलन, प्रदीप्ति, सर्वभक्षण आदि घोर अग्निके कर्म हैं। घोर अग्नि ही रुद्र है। रुद्र अग्नि-प्रजननकर्ता भी हैं।[४] अतः अग्न्यंश एवं प्राणांशके सम्बन्धमें हनुमान रुद्रांश भी हैं।

शंकर-सुवन श्रीहनुमानका रुद्ररूप, श्रीरामके प्रति अनन्य भक्ति, एकनिष्ठ निष्काम सेवा, उनकी निर्विकार-चित्तता एवं योगीरूपका संकेत देता है।

केसरीनन्दन—महाकपि केसरी सुमेरु पर्वतपर शासन करते थे।[५] अञ्जना उनकी पत्नी थी। स्मृति-ग्रन्थोंमें पतिको 'बीजप्रद' एवं पत्नीको उसका 'क्षेत्र' बताया गया है। पतिके वीर्यको ग्रहणकर संतानको उत्पन्न करनेवाली होनेसे वह क्षेत्ररूपा है। केसरीके क्षेत्र (पत्नी) अञ्जनामें वायुके मानस-संकल्प-वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण हनुमान केसरीके क्षेत्रज पुत्र हैं।[६] हनुमानके शब्दोंमें वे उनके देवर्षि-निर्दिष्ट पिता हैं।[७] जब केसरीने

१-सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, 'प्राचीन चरित्र कोश', पृष्ठ १०९९

२-'कल्याण'—श्रीगणेश-अङ्क, पृ० ७७

३-एष रुद्रो यदग्निः। (तै० सं० २।६।६६), अग्निर्वै रुद्रः। (श० ब्रा० ५। ३। १। १०), एष हि रुद्रो यदग्निः। (मै० १।६।७। ११, ऐ० ब्रा० २। ५), एषा वा अस्य (अग्नेः) घोरा तनूर्यद् रुद्रः। (तै० सं० २। २। २। ३), प्राणा वै रुद्राः प्राणा हीदं सर्वं रोदयन्ति। (जै० उ० ४। २। १। ६)

४-रुद्रोऽग्निः स प्रजनयिता। (कठ० ११।५)

५-द्रष्टव्य—वा० रा० ७। ३५। १९

६-स त्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रजो भीमविक्रमः। (वा० रा० ४। ६६। २९)

७-स च देवर्षिनिर्दिष्टः पिता मम महाकपिः। (वा० रा० ५। ३५। ८२)

गोकर्णतीर्थ-पर्वतपर ऋषियोंकी प्रेरणासे शम्बसादन नामक असुरका वध किया, तब ऋषियोंने उसे पुत्रवान् होनेका आशीर्वाद दिया था। तत्पश्चात् उनकी पत्नी अञ्जनाने वायुद्वारा हनुमानको जन्म दिया था।[१]

श्रीहनुमानकी जन्म-कथा दिव्य एवं रहस्यमयी है। केसरीका सुमेरुपर शासन, महाकपित्व एवं परोक्ष-पितृत्व किसी और ही अध्यात्म-तथ्यकी ओर संकेत करते हैं। स्वर्ण-कान्तियुक्त सुमेरुपर्वत देवभूमि है, जिसके मध्यमें ब्रह्मलोक है एवं उसके चारों ओर यथास्थान अन्य देवोंके लोक हैं।[२] इस देवलोकपर एवं ब्रह्मा, इन्द्रादि देवोंपर देवोंके देव परमात्माका ही शासन हो सकता है, सामान्य वानराधिपतिका नहीं। केसरीका अर्थ है—'**के—ब्रह्मणि सरणशीलः।**', अर्थात् 'जो 'क' रूप आनन्द-ब्रह्ममें नित्य सरणशील हो, गति-विहार करनेवाला हो, उसका नाम 'केसरी' है।' इस प्रकार केसरी ब्रह्मका आनन्द-सामर्थ्य है, जो देवोंकी भूमिको नियन्त्रित एवं अधिशासित करता है। ब्रह्मका आनन्दांश ही सृष्टिका आधार है। 'तैत्तिरीय-उपनिषद्' के अनुसार 'आनन्दसे ही सभी भूत उत्पन्न होते हैं, उसीमें जीवन धारण करते हैं एवं अन्तमें उसीमें लीन होते हैं[३]।' 'केनोपनिषद्' की यक्ष-कथामें यह स्पष्ट हो गया है कि 'ब्रह्मका वज्र महद्भयके रूपमें सतत उठा हुआ है एवं उसीके भयसे सभी अग्नि, सूर्य, कालादि देवता निरन्तर क्रियाशील हैं।' ब्रह्म ही 'महाकपि' है। 'कपि' शब्द चलनार्थक '**कप्**' धातुसे बना है। ब्रह्म सर्वव्यापक होनेसे सर्वत्र पहुँचा हुआ है एवं सम्पूर्ण सृष्टिको चला रहा है, अतः वह 'महाकपि' है। अञ्जनि ब्रह्मके नाम-रूपको अभिव्यक्त करनेवाली सत्प्रकृति है। प्रकृति ब्रह्मका क्षेत्र है। आनन्द-ब्रह्म प्रकृतिके क्षेत्रको आधार बनाकर ही देवलोकसे तिर्यक्-तृण-पर्यन्त सभी नाम-रूपोंकी रचना करते हैं। उसी प्रकृतिके पिण्डीभूत अग्न्यंश-प्रधान किसी व्यष्टिरूपसे विश्व-प्राणके चेतनांशका संयोग होनेपर 'हनुमान' का दिव्य जन्म हुआ। जैसे आनन्द-ब्रह्म सम्पूर्ण चराचरके क्षेत्रज्ञ पिता हैं, वैसे हनुमानके भी। हनुमानने अपने पिता केसरीको जो देवर्षि-निर्दिष्ट कहा है, उसका एक अभिप्राय यह भी लगाया जा सकता है। देवर्षिगण ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य किसका निर्देश करेंगे?

यहाँ यह बात भी ध्यानमें रखनेयोग्य है कि श्रीरामकी सेवामें जितने भी वानर थे, वे सभी सुरसृष्ट थे या देवांशसे उत्पन्न हुए थे।[४] देवोंका भोजन अमृत है, जो ब्रह्मकी आनन्द-कला है। वानर आनन्द-ब्रह्मके उपासक थे। 'केनोपनिषद्' में आनन्द-ब्रह्मकी 'वन' नामसे उपासना वर्णित है।[५]

'वने भवं वानम्, वानं राति इति वानरः।'

—"वन-नामक ब्रह्ममें जो आनन्द-रस है, उसका नाम है—'वान'। उस 'वान' को जो प्रदान, ग्रहण या आस्वादन करते हैं, वे 'वानर' हैं।" यह बात रामचरितमानससे भी स्पष्ट होती है। जाम्बवान् वानरोंको बताते हैं कि 'हम सब श्रीरामके रूपमें सतत सगुण ब्रह्मकी उपासना कर रहे हैं, अतः हम बड़े बड़भागी हैं'—

'हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥'

(मानस ४। २५। ७)

अयोध्यामें श्रीरामके भवनमें निवास करते हुए सभी कपि सदा ही प्रभुपदमें प्रीति रखते हुए ब्रह्मानन्दमें मग्न रहे। उन्हें मास-दिवसके बीतनेकी सुधि ही न रही—

ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति॥

(मानस ७। १५)

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि सुमेरु-शासक महाकपि केसरी आनन्द-ब्रह्म हैं एवं 'केसरीनन्दन' पदसे हनुमानजीके 'श्रीरघुनाथ-कला' होनेका संकेत मिलता है।

१-वा०रा०, सुन्दर ३५। ८१—८३, ९०

२-श्रीमद्भागवत महापुराण ५। २१। ७

३-(क) आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति॥ (तै० उ० ३। ६)
(ख) को ह्येवान्यात् कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। (तै० उ० २। ७)

४-एते च ऋक्षाः सह वानरेन्द्रैस्त्वत्कारणाद् राम सुरैर्हि सृष्टाः। (वा० रा० ७। ३६। ५०)

५-तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यम्, स य एतदेवं वेदाभि हैनꣳ सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति। (केन० उ० ४। ६)

पवन-तनयके विभिन्न विशेषण

(लेखक—डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्०ए० पी-एच्०डी०)

भक्तोंका परिगणन करते समय जो नाम मालाके सुमेरुकी भाँति सबसे पहले हमारा ध्यान आकर्षित करता है, वह है—भक्तराज हनुमान। प्रबल पराक्रमी, जितेन्द्रिय-श्रेष्ठ, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य महावीर हनुमानका जीवन भारतीय जनताके लिये सदैव प्रेरणाका स्रोत रहा है। आज भी ये मल्लविद्याके परमाराध्य रूपमें भारतके ग्राम-नगरादिमें प्रतिष्ठित तथा सुपूजित हैं। भारतमें स्थापित किसी भी अखाड़ेमें आप चले जायँ तो वहाँ मूर्ति या भित्ति-चित्रके रूपमें श्रीहनुमानजीका श्रीविग्रह अवश्यमेव दृष्टिगोचर होगा। भारतके मल्ल आजके नास्तिकप्राय वातावरणमें भी भगवान् श्रीमहावीरका नाम-स्मरण करके ही अपने कार्य (कुश्ती आदि)-में प्रवृत्त होते हैं। हिंदी-साहित्यके भक्तिकालका अध्ययन करनेपर विदित होता है कि जब भारतपर मुस्लिम आक्रान्ताओंके आक्रमण हो रहे थे एवं भारतीय जनता सर्वथा निराश्रित-सी स्थितिमें पहुँच गयी थी—उसके धर्म, देवस्थान आदि कुछ भी सुरक्षित न रह गये थे, उस समय उसके भयग्रस्त हृदयको सम्बल प्रदान करनेके लिये संत-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने लोक-नायकत्वको सार्थक बनानेके निमित्त 'हनुमानचालीसा', 'संकटमोचन', 'हनुमानबाहुक' आदि श्रीहनुमान-चरित्र-परक रचनाओंद्वारा निष्प्राण हिंदू-जातिकी नसोंमें वीरताके ऊर्जस्वल रक्तको प्रवाहित करनेका स्तुत्य अथच सफल प्रयास किया था। यही नहीं, उन्होंने इस प्राण-प्रवाही स्रोतको स्थायित्व प्रदान करनेके लिये काशीमें स्वयं 'संकट-मोचन हनुमान' की स्थापना करके अपने अनुयायियों—भक्तोंद्वारा हनुमत्-पूजनकी पद्धति इस दृष्टिसे प्रचलित की थी, जिससे भारतीय हिंदू अपनेको दीन-हीन अथवा निराधार न मानकर इस प्रेरणा-स्रोतसे प्रेरणा लेकर अपने कर्तव्य-कर्मके प्रति जागरूक हो जायँ। औरंगजेबके शासन-कालमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके आदर्शपर समर्थ स्वामी श्रीरामदास तथा छत्रपति शिवाजीने दस-दस कोसकी दूरीपर श्रीहनुमान-मन्दिरोंकी स्थापना कर महावीर हनुमानके नामपर अखाड़ों और दुर्गोंकी स्थापना की थी। ये ही अखाड़े आगे चलकर हिंदू-धर्म-रक्षणके केन्द्र बने। आज भी दक्षिणके ग्राम 'ग्राम-मारुति' से अभिमण्डित हैं तथा इस बातके परिचायक हैं कि महावीर हनुमानने किस प्रकार अपने अनुयायियोंको अनुप्रेरित कर—**'स्वधर्मे निधनं श्रेयः'** (गीता ३। ३५)-की भावनासे ओत-प्रोत कर हिंदू तथा हिंदुत्वकी रक्षा की थी।

श्रीहनुमान केवल धीर-वीर ही नहीं हैं, वे वीरताके ऐसे अपूर्व स्रोत हैं, जिसके स्पर्शमात्रसे दूसरे भी बलधाम बनकर अपनी महत्ता प्रतिपादित कर सकते हैं। भगवान् श्रीरामके चरणोंका स्पर्श करता हुआ उनका दिव्य रूप उनकी अनन्यनिष्ठा, अप्रतिम स्वामिभक्ति, अनुकरणीय विनयशीलता तथा आदर्श ओजस्विताका मूर्तिमान् प्रतीक है। अस्तु।

महावीर हनुमान क्या आधुनिक साधारण बंदर थे? यदि ऐसा होता तो भारतीय वाङ्मयमें उनका स्तवन इस रूपमें न होता—

(क) **अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं**
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥

(मानस ५, श्लो० ३)

(ख) **मनोजवं मारुततुल्यवेगं**
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये॥

(श्रीरामरक्षास्तोत्र ३३)

इसके अतिरिक्त भगवान् श्रीरामके श्रीहनुमानके साथ हुए वार्तालापसे प्रभावित होकर अपने अनुज लक्ष्मणसे यह कहना—

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥

(वा० रा० ४।३।२९)

'हे लक्ष्मण! जान पड़ता है कि इस व्यक्ति (हनुमान)-ने समग्र व्याकरण-शास्त्रका बहुशः स्वाध्याय किया है। यही कारण है कि हमारे साथ इतनी विस्तृत वार्ता करते हुए इसने एक भी अपशब्द नहीं कहा है।'—सिद्ध करता है कि श्रीहनुमान एक विशिष्ट नर अर्थात् वानर थे। वैसे तो लोग तोतेको भी बोलना सिखाते हैं और वह मानवका अनुकरण कर 'राम-राम, मिट्ठू' आदि शब्दोंका यथावत्

उच्चारण करता है, परंतु आजतक यह पढ़ने या सुननेमें नहीं आया कि किसी बंदरने कभी कुछ पढ़ा या मानवका अनुकरण करते हुए तद्वत् कुछ कहना सीखा हो। परंतु महावीर हनुमान इतने मेधावी थे कि वानर-जातिके नायक सुग्रीवने उन्हें अपने प्रधान मन्त्री-पदपर अधिष्ठित किया था तथा भगवान् श्रीरामने प्रथम परिचयमें ही उन्हें अपना आत्मीय कहकर सदाके लिये अपना लिया था।

श्रीहनुमानजीका वास्तविक स्वरूप क्या है, इसका यत्किंचित् आभास पूर्वोक्त श्लोकोंसे मिलता है। प्रथम श्लोकमें श्रीहनुमानजीका प्रथम विशेषण है—**'अतुलितबलधामम्'**। इसके गम्भीरतापूर्वक अनुशीलनसे विदित होता है कि तुलसीदासजी श्रीहनुमानजीको मात्र बलवान् कहकर ही संतुष्ट नहीं थे, बल्कि वे उन्हें बलवान्से भी बढ़कर कुछ और कहना चाहते थे। यही कारण है कि उन्हें 'बलवान्' न कहकर 'बलधाम' अर्थात् बलका भण्डार कहा। यह इसलिये कि श्रीहनुमानजी स्वयं तो बलवान् हैं ही, दूसरोंको बल प्रदान करनेमें समर्थ हैं; अत: यह विशेषण सार्थक है।

दूसरा विशेषण उनकी देहका है—**'हेमशैलाभदेहम्'**। इसका अर्थ है—श्रीहनुमानजीकी देह स्वर्णिम शैलकी आभाके सदृश है। उससे यह भाव परिलक्षित होता है कि श्रीहनुमानजी कठिनाइयोंसे संघर्षकर उसी प्रकार समुज्ज्वल वर्णके अधिपति बने हैं, जैसे स्वर्ण अग्निमें तपकर होता है। इससे स्पष्टत: यह ध्वनित होता है कि यदि व्यक्ति अपने शरीर तथा उसकी कान्तिको स्वर्णिम बनाना चाहता है तो उसे उसी प्रकार अपने-आपको कठिनाइयोंके तापमें तपाना चाहिये, जिस प्रकार श्रीहनुमानजीने अपने शरीरको तपाया था; तभी उसे बल और ओजकी प्राप्ति होगी।

तीसरा विशेषण है—**'दनुजवनकृशानुम्'**। इसका सामान्य अर्थ है—राक्षसकुलरूपी वनके लिये अग्निके समान। विशिष्ट अर्थके लिये कहा जा सकता है कि इसका अभिप्राय 'समदृष्टि' से है। जैसे वनमें प्रज्वलित अग्नि बिना छोटे-बड़े वृक्षका विचार किये सभीको जलाकर भस्मसात् कर देती है, उसी प्रकार श्रीहनुमानजी भी दनुजवत् कर्म-कर्त्ताओंको बिना विचार किये धूलमें मिला देते हैं; भूलकर भी वे उसके बाह्य रूप आदिका ध्यान नहीं करते। यही कारण है कि जब साधु-वेषधारी राक्षस कालनेमिने परम ईश्वरभक्तके रूपमें उन्हें भटकानेका प्रयास किया, तब उसे समाप्त कर देनेमें उन्होंने जरा भी विलम्ब न किया। इस प्रकार उन्होंने अपने अनुयायियोंको यह शिक्षा दी कि 'यदि तुम अपने मार्गको निष्कण्टक बनाकर लक्ष्य-सिद्धि चाहते हो तो मार्गमें आनेवाली प्रत्येक आपदाको सूक्ष्म दृष्टिसे पहचानकर, विवेकद्वारा उसका परिहार करके आगे बढ़ो और तब देखो सफलता किस प्रकार तुम्हारे मार्गमें पलक-पाँवड़े बिछाती है।' इस प्रकार यह विशेषण भी अन्वर्थक ही है।

चौथा विशेषण है—**'ज्ञानिनामग्रगण्यम्'**। इसका सामान्य अर्थ है—ज्ञानियोंमें सर्वप्रथम गिननेयोग्य। इसका विशेष अर्थ है—श्रीहनुमानजी इसलिये ज्ञानियोंमें अग्रगण्य हैं कि उन्होंने अपने बुद्धिबलसे ही सुरसा, लंकिनी आदि विपदाओंको अपने मार्गसे हटाकर, इतना ही नहीं, उनका आशीर्वाद लेकर सफलता प्राप्त की एवं भगवान् श्रीरामका चिर-सहचर बननेका सौभाग्य प्राप्त किया। अप्रत्यक्षरूपमें यह विशेषण इस भावको व्यञ्जित करता है कि वही व्यक्ति भगवान्के चिर कृपा-प्रसादका अधिकारी हो सकता है, जो निज विवेक-बलसे अपने मार्गमें आनेवाले विघ्नोंको न केवल पराभूत करे, अपितु उन्हें इस प्रकार विवश कर दे कि वे उसके बुद्धि-वैभवके सामने नतमस्तक हो उसे हृदयसे आशीर्वाद दे उठें उसकी सर्वाङ्गीण सफलताके लिये।

पाँचवाँ विशेषण है—**'सकलगुणनिधानम्'**। इसका सामान्य अर्थ है—सम्पूर्ण गुणोंके आगार; विशिष्ट अर्थ है—दुष्टके साथ दुष्टता और सज्जनके साथ सज्जनताका व्यवहार करनेमें प्रवीण। श्रीहनुमानजीके चरितके अध्ययनसे यह सुस्पष्ट है कि वे यथोचित व्यवहारमें कितने दक्ष थे। इसी दक्षताका परिणाम था कि भगवान् श्रीरामकी अष्टयाम-सेवाका सौभाग्य ही उन्हें प्राप्त नहीं हुआ, अपितु वे पार्षद-प्रमुख बनकर अपनी परम्परामें भी अग्रणी बने।

छठा विशेषण है—**'वानराणामधीशम्'**, अर्थात् वानरोंके प्रभु। सभी जानते हैं कि वानर अतीव चञ्चल होते हैं; पलभर भी गम्भीरता बनाये रखना उनके वशकी बात नहीं। ऐसी जातिपर शासन करना किसी सामान्य व्यक्तिके वशकी बात नहीं। उनपर वही व्यक्ति अपना प्रभुत्व जमा सकता है, जो उनकी नस-नससे परिचित हो तथा जो चञ्चलताको गम्भीरतासे, उद्धतताको नम्रतासे अथवा चञ्चलताको चञ्चलतासे, उद्धतताको उद्धततासे दबानेमें समर्थ हो। अत: यह विशेषण भी सार्थक है। श्रीहनुमानजी इस विद्यामें पारंगत थे; इसीसे वे वानरोंके मुखिया बने।

सातवाँ विशेषण है—'**रघुपतिप्रियभक्तम्**', अर्थात् भगवान् श्रीराघवेन्द्रके प्रिय भक्त। श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामके ऐसे भक्त हैं कि उनपर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका यह दोहा पूर्णतः चरितार्थ हो जाता है—

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

(दोहावली २७७)

अपने हृदयमें श्रीरामके निवासको दिखानेके लिये अपना हृदय चीरकर दिखा देना, खेल-खेलमें समुद्र लाँघना आदि कार्य करके भी कभी अभिमानग्रस्त न होना आदि विशेषताओंके कारण भगवान् श्रीरामका प्रियपात्रत्व प्राप्त करनेमें समर्थ होकर श्रीहनुमानजीने अपने अनुयायियोंको यह शिक्षा दी है कि 'यदि भगवान्‌का प्रिय पात्र होना चाहते हो तो निरभिमान होकर अनन्यभावसे प्रभुकी सेवा करो। इससे तुम्हारी इच्छा ही पूरी नहीं होगी, तुम यशःशरीरसे अजर-अमर होकर इस उक्तिकी सत्यताको प्रमाणित करोगे—'**राम तें अधिक राम कर दासा॥**' (मानस ७।११९।८)

अन्तिम विशेषण है—'**वातजातम्**', अर्थात् वायुपुत्र। इसका विशिष्ट अर्थ यह है कि जिस प्रकार वायु अप्रतिहतगति है, उसी प्रकार श्रीहनुमानजी भी अप्रतिहत-गतिवाले हैं। वे प्रत्येक विषय, क्षेत्र और कालमें अबाधरूपसे सब कार्य करनेमें समर्थ हैं तथा अपने अनुयायियोंको उसी प्रकार अप्रतिहतगतिवाला बनानेमें समर्थ हैं। दूसरा भाव यह है कि जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें वही व्यक्ति विशेषतया सफल हो सकता है, जो वायुकी भाँति सतत गतिशील रहे, रुके नहीं। इस दृष्टिसे यह विशेषण भी सर्वथा अन्वर्थक ही कहा जा सकता है।

दूसरे श्लोकमें आये हुए तीन विशेषणों—'**बुद्धिमतां वरिष्ठम्**', '**वानरयूथमुख्यम्**' तथा '**वातात्मजम्**' की व्याख्या हम प्रथम श्लोकमें '**ज्ञानिनामग्रगण्यम्**', '**वानराणामधीशम्**' तथा '**वातजातम्**' के अन्तर्गत कर चुके हैं। शेष विशेषणोंमें '**मनोजवम्**' तथा '**मारुततुल्यवेगम्**' यहाँ विशेषरूपमें द्रष्टव्य हैं। '**मनोजवम्**'—अर्थात् मनके समान गतिवाले तथा '**मारुततुल्यवेगम्**'—अर्थात् वायुके समान गतिशील। ये दोनों विशेषण केवल गतिका परिचय देनेके लिये ही प्रयुक्त नहीं हुए हैं, इनके द्वारा कविका उद्देश्य विशेष तथ्यका उद्‌घाटन करना भी है। यहाँ '**मनोजवम्**' के द्वारा बताया गया है कि यद्यपि श्रीहनुमान वानर-जातिके स्वाभाविक गुण—चाञ्चल्यसे परिपूर्ण हैं और प्रत्येक क्रियामें वे मनकी-सी गतिसे अग्रसर भी होते हैं, तथापि यह तीव्रगामिता केवल परहित-साधन अथवा स्वामी-हित-साधनतक ही सीमित है। वे मनके अधीन होकर ऐसा कोई कार्य नहीं करते, जो उनकी महत्ताका विघातक हो। इसीलिये '**जितेन्द्रियम्**' विशेषणके वे पूर्ण अधिकारी हैं। ब्रह्मचर्यव्रतके अखण्डधारक होनेके कारण ही वे सप्त चिरजीवियोंमें अपना स्थान सुरक्षितकर इस उक्तिको सार्थक बना सके हैं—'**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।**' (अथर्ववेद ११।५।१९) इस प्रकार '**मनोजवम्**' तथा '**जितेन्द्रियम्**'—दोनों विशेषण अन्वर्थक हैं।

दूसरे दो विशेषण हैं—'**मारुततुल्यवेगम्**' तथा '**श्रीरामदूतम्**'। वस्तुतः ये दोनों विशेषण एक-दूसरेके पूरक हैं; क्योंकि श्रीहनुमानजी वातात्मज होनेके कारण वायुकी-सी गतिके सहज अधिकारी हैं और यह गति सार्थक हुई है श्रीरामके दूत-कार्य-सम्पादनमें। सीताकी खोज, संजीवनी-आनयन, भरतको नन्दिग्राममें भगवान् श्रीरामका संदेश पहुँचाना आदि कार्य इसी मारुत-तुल्य-वेगके कारण ही सम्पन्न हुए थे, यह सभी जानते हैं। अतः यह तथा इसका उद्देश्यभूत श्रीरामदूतत्व—दोनों ही विशेषण सार्थक हैं।

उक्त अन्वर्थक विशेषणोंसे समलंकृत श्रीहनुमानजीकी महिमा कितनी अपूर्व है, इसका यत्किंचित् आभास निम्नलिखित श्लोकोंसे मिल जाता है—

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम्।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम्॥

'जिन्होंने समुद्रको गौके खुर-जितना बना डाला तथा राक्षसोंको मच्छरकी तरह मसल दिया, उन रामायणरूपी महामालाके रत्नभूत अनिलात्मज श्रीहनुमानजीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

यह श्लोक श्रीमहावीरके जीवनकी पूरी विशेषताओंको अपने भीतर समेटे हुए है और पहले आये हुए कतिपय विशेषणोंकी पुष्टि करता है। '**गोष्पदीकृतवारीशम्**'—इस पदका भाव है—अपने वेगसे समुद्रको भी गौके खुरसे बने हुए गड्ढेके समान सर्वथा क्षुद्र या नगण्य बना देनेकी क्षमतासे परिपूर्ण। '**मशकीकृतराक्षसम्**'—इस पदसे व्यञ्जित होता है कि अतुलित बलधाम होनेके कारण राक्षसोंको मच्छरकी तरह मसल देनेकी शक्तिसे सम्पन्न। '**रामायणमहामालारत्नम्**'—इस पदसे ध्वनित होता है कि रामायणरूपी महामाला वीररत्न श्रीहनुमानजीके ओजस्वी

कार्योंके बिना सर्वथा अधूरी है अर्थात् यदि रामायणसे महावीर हनुमानका चरित्र निकाल दिया जाय तो वह उतनी शोभन न रह सकेगी, जितनी आज है।

निम्न श्लोक इससे कुछ और आगे बढ़कर उनकी चारित्रिक विशेषताओंका उद्घाटन करता है—

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम्।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयंकरम्॥

'जो अञ्जनाके आनन्दको बढ़ानेवाले, अतिशय वीर, श्रीजानकीजीके शोकके निवारण करनेवाले, अक्षके संहारक तथा लंकाके लिये भयंकर अर्थात् भयकी सृष्टि करनेवाले हैं, उन वानरराजकी मैं वन्दना करता हूँ।'

इस श्लोकके भावोंपर विशेष विचार करनेपर चमत्कृत हो जाना पड़ता है। आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने कहा है—'**कृत्स्नं रामायणं प्रोक्तं सीतायाश्चरितं महत्।**—अर्थात् उन्होंने सम्पूर्ण रामायणमें भगवती सीताके ही महान् चरित्रका उद्घाटन किया है।' परंतु वह उद्घाटन भी श्रीहनुमानके ही लोकोत्तर कार्योंके माध्यमसे हुआ है, अतः उनकी महत्ता स्वयं सिद्ध हो जाती है। उपर्युक्त श्लोकका प्रथम पद है—'**अञ्जनानन्दनम्**'। इसका भाव है—अञ्जना नामक अपनी माताके आनन्दको बढ़ानेवाले। यह आनन्द केवल दो बातोंसे बढ़ता है—पुत्रकी वीरतासे अथवा पुत्रकी श्रीराम-भक्तिसे; क्योंकि कहा गया है—'**पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥**'

(मानस २।७४।२)

माई ऐसा पूत जण, कै दाता कै सूर।
नाहिं त रह तू बाँझड़ी, मती गवाँवै नूर॥

—ये दोनों ही बातें महावीर, भक्तप्रवर हनुमानके जीवनमें पद-पदपर दृष्टिगोचर होती हैं।

'**वीरम्**' शब्दसे ध्वनित होता है कि वे वास्तविक वीर थे। इसीलिये रावणपालित लंकामें निश्शङ्क प्रविष्ट होकर उन्होंने रावणपुत्र अक्षको कालके गालमें भेज दिया तथा स्वर्णिम लंकाको अग्निके अर्पण कर वे स्वयं अक्षत ही बने रहे। इन सारे कार्योंको उन्होंने जानकी-अन्वेषण-कार्यके प्रसङ्गमें ही किया था। इसी कारण वे भगवान् श्रीरामका संदेश अतीव कुशलता-पूर्वक भगवती सीताको देकर उनका शोक शमन करनेमें सफल हुए थे। इस तरह '**अतुलितबलधामम्**' तथा '**जानकीशोकनाशनम्**' के साथ '**वीरम्**' विशेषण विशेष रहस्यका परिचायक है।

निम्नाङ्कित श्लोक '**मनोजवम्**' शब्दकी मनोरम व्याख्या प्रस्तुत करता है—

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम्॥

'जिन्होंने सिन्धुकी अगाध जलराशिको लीला-ही-लीलामें लाँघकर तथा जनकात्मजाकी शोकाग्निको लेकर उसीसे लंकाको फूँक डाला, उन आञ्जनेयकी मैं हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ।'

विशेष भावकी दृष्टिसे देखा जाय तो विदित होता है कि '**सलीलम्**' शब्द '**उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलम्**' के साथ तभी सार्थक होता है, जब मनोजवत्वयुक्त कर्ता हो; अन्यथा '**सलीलम्**' की सार्थकतामें व्याघात आ जाता है। साथ ही यह तो सभीको ज्ञात है कि जल अग्निका शामक होता है; परंतु श्रीहनुमान उस अथाह जलराशिको लाँघकर जब भगवती सीताके पास पहुँचते हैं, तब उस सामान्य जलसे सीताके शोकजनित दाहको शान्त नहीं करते; अपितु '**मनोजवम्**', अर्थात् मनके सहकर्मी अथवा समानगतिक होनेके कारण भगवती जानकीके मनोभावको ताड़कर दाहसे दाहको शान्त करते हैं। यों भगवती सीताको शान्ति पहुँचानेके निमित्त रावणपालित लंकाको जलाकर उन्होंने जानकीकी मनःकामना पूरी की। इस प्रकार श्रीहनुमानजीके प्रत्येक विशेषण अन्वर्थक तथा उनके वैशिष्ट्यके परिचायक हैं।

महावीर हनुमानजीकी जिस अप्रतिम गुण-गरिमाका गान स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम, भरत, भगवती सीता, भगवान् श्रीकृष्ण, नरावतार अर्जुन आदिने किया है, उसका आकलन इस लघु लेखमें सम्भव नहीं। अतः मैं गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके शब्दोंमें वीरशिरोमणि श्रीहनुमानके चरणोंमें अपनी भाव-सुमनाञ्जलि समर्पित कर इस लेखको समाप्त करता हूँ—

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

(मानस १।१७ सोरठा)

श्रीहनुमानजीकी अनन्य श्रीराम-भक्ति

(लेखक—श्रीअवधकिशोरदासजी वैष्णव 'प्रेमनिधि')

श्रीहनुमानजीकी श्रीराम-भक्ति वर्णनातीत है। स्वयं प्रभु श्रीराम जिनके ऋणिया बन गये, सर्वसमर्थ स्वामी जिनके प्रेमपरवश हो गये, श्रीजनकराजकिशोरीजी जिनसे उऋण न हो सकीं, उन श्रीहनुमानजीके लिये उनके लंकादाहके बाद वापस आनेपर प्रभुको स्वयं श्रीमुखसे कहना पड़ा—

अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च महाबलः।
वैदेह्या दर्शनेनाद्य धर्मतः परिरक्षिताः॥
एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः॥

(वा० रा० ६।१।११, १३)

'हे हनुमान! तुमने विदेहराजनन्दिनी सीताका पता लगाकर—उनका दर्शन कर और उनका शुभ समाचार सुनाकर समस्त रघुवंशकी तथा महाबली लक्ष्मणकी और मेरी भी आज धर्मपूर्वक रक्षा कर ली। पर इस समय मेरे पास ऐसी कोई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं हो रही है, जो तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं तुम्हें दे सकूँ। पूर्णकामको प्रसन्न करनेके लिये हृदयका प्रेम ही पर्याप्त होता है; अतएव प्रेमीजनोंका प्राणसर्वस्व, हार्दिक प्रेमालिङ्गन ही इस समय देकर मैं अपनेको कृतार्थ मानता हूँ।'

ऐसे प्रेमकी प्रतिमा श्रीहनुमानजीसे पुनः एक बार प्रभु श्रीरामने कहा था—

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्॥

(वा० रा० ७।४०।२३-२४)

'हे हनुमान! तुम्हारे एक-एक उपकारका ऋण चुकानेमें मैं अपने प्राण समर्पण करनेको उद्यत हूँ; परंतु तुम्हारे जो अनेकों उपकार शेष रह जाते हैं, उनके लिये तो हम सपरिवार-सपरिकर तुम्हारे ऋणी ही रहेंगे। मैं नहीं चाहता कि तुमसे उऋण हो जाऊँ। तुम्हारे उपकार मेरे अङ्गमें पच जायँ; क्योंकि किसीका प्रत्युपकार तभी किया जाता है, जब वह आपत्तिमें पड़ा हो। मैं स्वप्नमें भी नहीं चाहता कि तुमपर कभी कोई आपत्ति आये।'

भगवान् श्रीरामके ये शब्द श्रीहनुमानजीके प्रति उनके अगाध स्नेहके ज्वलन्त प्रमाण हैं। ऐसे अनन्य श्रीरामभक्त श्रीहनुमानजीकी भक्तिका निरूपण करना असम्भव है।

श्रीराम-नाममें निष्ठा

श्रीराम-राज्याभिषेकके अनन्तर श्रीकिशोरीजीने एक दिव्य रत्नोंका हार श्रीहनुमानजीको प्रसन्नतापूर्वक प्रदान किया। उसकी कान्तिसे श्रीहनुमानजीका दिव्य विग्रह अपूर्व शोभासे उद्दीप्त हो उठा—

तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा॥
हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः।
चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाचलः॥

(वा० रा० ६।१२८।८२-८३)

'जिन श्रीहनुमानजीमें तेज, धैर्य, सुयश, चातुर्य, सामर्थ्य, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम तथा विलक्षण बुद्धि—ये सद्गुण नित्य ही निवास करते हैं, वे वानरश्रेष्ठ श्रीहनुमानजी उस हारके धारण करनेसे ऐसे सुशोभित होने लगे, जैसे चन्द्रमाकी किरणोंके समूह-सदृश श्वेत बादलोंकी मालासे कोई पर्वत शोभा पा रहा हो।'

ऐसे हारको पाकर उसमें भी वे श्रीराम-नामको ढूँढ़ने लगे। कथा प्रसिद्ध ही है। अन्तमें उन्होंने अपने हृदयमें श्रीरामकी दिव्य झाँकी करायी है। तब प्रभुने पूछा—'हनुमान! क्या तुमको हमसे भी हमारा नाम अधिक प्यारा है?' इसपर हनुमानजीने तुरंत उत्तर दिया—

राम त्वत्तोऽधिकं नाम इति मे निश्चिता मतिः।
त्वया तु तारितायोध्या नाम्ना तु भुवनत्रयम्॥

'प्रभो! आपसे आपका नाम तो बहुत ही श्रेष्ठ है, ऐसा मैं बुद्धिसे निश्चयपूर्वक कहता हूँ। आपने तो केवल अयोध्यावासियोंको तारा है, परंतु आपका नाम तो सदा-सर्वदा तीनों भुवनोंको तारता ही रहता है।'

यह है श्रीहनुमानजीकी रामनामनिष्ठा। श्रीहनुमानजीको शीघ्र प्रसन्न करनेका सरल साधन है—श्रीराम-नामका स्मरण तथा श्रीराम-कथाका अध्ययन, मनन एवं स्मरण।

श्रीहनुमानजीका यह उपदेश भी महत्त्वपूर्ण है—

नैव योज्यो राममन्त्रः केवलं मोक्षसाधकः।
ऐहिके समनुप्राप्ते मां स्मरेद् रामसेवकम्॥

(रामरहस्योपनिषद् ४।११)

'स्मरण रहे, लौकिक क्षुद्र कामनाकी पूर्तिके लिये

सर्वदा मोक्षसाधक, परम कल्याणप्रदायक श्रीराममन्त्रका आश्रय भूलकर भी नहीं लेना चाहिये। श्रीरामकृपासे मेरे द्वारा ही अभिवाञ्छित फलकी प्राप्ति हो जायगी। कोई भी सांसारिक काम अटक जाय तो मुझ श्रीरामसेवकका स्मरण करना चाहिये।'

वाञ्छितार्थं प्रदास्यामि भक्तानां राघवस्य तु।
सर्वदा जागरूकोऽस्मि रामकार्यधुरंधरः॥

(श्रीरामरहस्योपनिषद् ४।१३)

'मैं श्रीराघवेन्द्र प्रभुके प्रिय भक्तोंको मनोऽभिवाञ्छित सभी वस्तुएँ प्रदान करता रहता हूँ; मैं भक्तोंकी कामना-पूर्तिस्वरूप श्रीरामकार्य करनेके लिये सर्वदा जागरूक हूँ।'

हनुमानजी यह नहीं चाहते कि मेरे रहते हुए मेरे स्वामीको भक्तोंका दुःख देखना पड़े। यदि कोई मेरी उपेक्षा कर मेरे स्वामीको क्षुद्र कामनाके लिये पुकारता है तो मुझे बड़ी वेदना होती है। इसीलिये 'श्रीरामार्चा-पद्धति' में बार-बार यह उपदेश आता है—

रामसिद्ध्यर्थरूपोऽयं हनूमान् मारुतात्मजः॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तोषयेद् भक्तकामदम्।

(२।३९-४०)

'पवनकुमार श्रीहनुमानजी श्रीरामकृपाकी सिद्धिके प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। अतः भक्तोंकी कामना-पूर्ति करनेवाले श्रीहनुमानजीको सम्पूर्ण रीतिसे संतुष्ट करना चाहिये।'

एक बार श्रीरामचन्द्रजीने श्रीहनुमानजीसे कहा—'हनुमान! यदि तुम मुझसे कुछ माँगते तो मेरे मनको बहुत संतोष होता; अतः आज तो हमसे कुछ अवश्य माँग लो।' तब श्रीहनुमानजीने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—

स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा।
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु॥

(वा० रा० ७।४०।१६)

'श्रीराजराजेन्द्र प्रभो! मेरा परम स्नेह नित्य ही आपके श्रीपाद-पद्मोंमें प्रतिष्ठित रहे। हे श्रीरघुवीर! आपमें ही मेरी अविचल भक्ति बनी रहे। आपके अतिरिक्त और कहीं मेरा आन्तरिक अनुराग न हो। कृपया यही वरदान दें।'

इस अनन्य निष्ठाको एक अन्य प्रसङ्गमें श्रीहनुमानजीने और अधिक स्पष्ट रूपसे व्यक्त किया है—

रामादन्यं नमेच्चेत् पततु शिरसि मे कालदण्डः प्रचण्डो
जिह्वामेतां द्विजिह्वो दशतु रघुपतेर्नामतोऽन्यं जपेच्चेत्।
दम्भोलिर्मामकीनं विदलतु हृदयं चिन्तयेच्चेत्ततोऽन्यं
जानीते सर्ववेत्ता सकलहृदिगतो वेत्तु वान्यो न वेत्तु॥

'श्रीराम-पादारविन्दोंको त्यागकर यदि मेरा मस्तक किसी अन्यके चरणोंपर झुके तो मेरे सिरपर प्रचण्ड कालदण्डका तत्काल प्रहार हो। मेरी जीभ श्रीराम-नामके अतिरिक्त यदि अन्य तुच्छ मन्त्रोंका जप करे तो दो जीभवाला काला भुजङ्ग उसे डस ले। मेरा हृदय श्रीराघवेन्द्र प्रभुको भूलकर यदि अन्य किसीका चिन्तन करे तो भयंकर वज्र उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। मैं यह सत्य कहता हूँ अथवा यह औपचारिक चाटुकारिता-मात्र ही है, इस बातको सर्वान्तर्यामी आप तो पूर्णरूपसे जानते ही हैं, अन्य कोई जाने अथवा न जाने।' यह है श्रीहनुमानजीकी अनन्य श्रीराम-निष्ठा। ऐसे महाभाग दूसरी वस्तु भला, स्वप्नमें भी क्यों चाहेंगे? हाँ, एक बात अवश्य है—आनन्दरूप परात्पर प्रभु श्रीरामके नाम-रूप-लीला-धाममें तथा श्रीसीता और श्रीराममें कोई भेद नहीं है; अतएव '**रामचरित सुनिबे को रसिया**' होनेके नाते आपने प्रभुसे यह याचना की—

यावद् रामकथा वीर चरिष्यति महीतले।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः॥

(वा० रा० ७।४०।१७)

'हे श्रीरघुवीर! जबतक श्रीराम-कथा इस भूतलको पावन करती रहे, तबतक निस्संदेह (उस मधुरातिमधुर लीला-कथाको श्रवण करनेके लिये) मेरे प्राण इस शरीरमें ही निवास करें।'

इसी भावको सुव्यक्त करते हुए आचार्योंने कहा है—

तादृग् गुणाननुबभूविथ राघवत्वे
यस्तावकं चरितमन्वहमन्वयुङ्क्त।
सोऽत्रैव हन्त हनुमान् परमां विमुक्ते-
र्बुद्ध्यावधूय चरितं तव सेवतेऽसौ॥

''रघुवंशविभूषण श्रीराघवेन्द्रमें ऐसे-ऐसे लोक-विलक्षण गुण-गणोंका प्राकट्य हुआ कि उन लीला-चरित्रोंका नित्य-निरन्तर श्रवण करते हुए प्रेमरसका आस्वादन करनेवाले रसिक संतोंको कदापि तृप्ति होती ही नहीं है। वे सदा-सर्वदा अतृप्त हृदयसे '**चरित सुनहिं तजि ध्यान**' ही चाहते रहते हैं। यही कारण है कि श्रीहनुमन्तलालजी यहीं लीला-विभूतिमें ही पर-विभूतिका अनुभव करते हुए अत्यन्त प्रेमसे श्रीराघवेन्द्रकी लीला-कथाके रसका निरन्तर सेवन करते रहते हैं।''

श्रीसीताराम-नाम-लीलास्वरूप तथा धाममें अभेदभाव माननेवाले अनन्य निष्ठाकी प्रत्यक्ष प्रतिमा सद्गुरुमूर्ति श्रीमारुतिनन्दनके दिव्य चरणारविन्दोंमें मैं प्रेम और

आदरसहित पुनः-पुनः साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ—

सीतारामपदाम्बुजे मधुपवद् यन्मानसं लीयते
सीतारामगुणावली निशिदिवा यज्जिह्वया पीयते।
सीतारामविचित्ररूपमनिशं यच्चक्षुषोर्भूषणं
सीतारामसुनामधामनिरतं तं सद्गुरुं सम्भजे॥

(श्रीरामायणरसायन)

सर्वगुणसम्पन्न श्रीहनुमान

(लेखक—आचार्य डॉ० श्रीसुवालालजी उपाध्याय 'शुकरत्न', एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्याचार्य, शिक्षा-शास्त्री, तीर्थद्वय, रत्नद्वय)

इस अनन्त सृष्टिका ज्ञान अनन्त ज्ञानमय प्रभुके अतिरिक्त और किसीको नहीं है। वे ही प्रतिक्षण अपने अनन्त अक्षय कोषसे अनन्त तेज, अनन्त वैभव शत-शत द्वारोंसे लुटाते रहते हैं। किंतु जैसे निर्मल दर्पण ही सूर्य-किरणका प्रतिबिम्ब ग्रहण कर सकता है, वैसे ही प्रभु-समर्पित पवित्र-पावन आत्मामें ही वह प्रचण्ड तेज अपने सम्पूर्ण वैभवके साथ उतरता है। अनन्त कालसे यह जीवात्मारूपी हंस अपने पुरुषार्थरूपी पंख फैलाये ऊपरकी ओर उठनेका प्रयत्न करता रहा है, किंतु प्रभु-कृपाके बिना उसका अखण्ड वेग स्थिर नहीं रहता। वह धरतीके पाप-पङ्कमें फँसकर अपनी जीवनयात्रासे ही हाथ धो बैठता है। किंतु यह दुःखमय भव-सागर समझा जानेवाला संसार आत्मजयी और प्रभु-समर्पित जीवके लिये सहस्रधाराओंमें प्रवाहित होनेवाले आनन्दका अमरस्रोत बनकर उसके तेजको युग-युगोंतक दसों दिशाओंमें फैलाता रहता है। श्रीहनुमानजीका जीवन इस भावनाका ही मूर्तिमान् रूप है। एकादश रुद्रके अवताररूपमें प्रसिद्ध यद्यपि वे साधारण जीव या प्राकृत वानर नहीं हैं—'**महत् सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम्॥**' (वा० रा० ५।४६।१४), तथापि उन्होंने अपने दिव्य चरित्रोंद्वारा इन्हीं भाव-किरणोंका विस्तार किया है। संघर्षशील संसारमें तेजस्वी जीवन बिताकर भगवान्‌तक पहुँचनेके लिये उनके जीवन-आदर्शको ही अपनाना पूर्ण और श्रेष्ठ जीवनकी स्वीकृति है।

श्रीहनुमानका चरित्र अपूर्व, अद्भुत और लोकोत्तर है। श्रीरामने उन्हें 'पुरुषोत्तम' की पदवीसे विभूषित किया है (वा०रा० ६।१।७)*। वे अजर, अमर हैं और कल्पान्ततक इस धरतीपर रहेंगे। जहाँ-जहाँ श्रीराम-कथा होती है, वहाँ-वहाँ श्रीहनुमानजी नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भरे तथा ललाटसे बद्धाञ्जलि लगाये उपस्थित रहते हैं—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

वे प्रभु श्रीरामके अन्तरङ्ग पार्षद हैं। किसीको भी श्रीरामके चरणोंतक पहुँचानेका उन्हींको अधिकार है। श्रीरामके परिवार और परिकरमें हनुमान ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके स्वतन्त्र मन्दिर हैं। आसेतु-हिमाचल समस्त भारतके पुर, नगर और गाँव-गाँवमें शक्ति, भक्ति और मतिके देवता मारुतिकी प्रतिष्ठा है। ऐसा अलौकिक व्यक्तित्व है, इन हनुमानका!

स्वयं श्रीरामने अगस्त्य-ऋषिसे उनकी महत्ताका इस प्रकार वर्णन किया है—'वाली और रावणका बल निस्संदेह अतुलनीय था, परंतु मेरी यह धारणा है कि इन दोनोंका बल भी हनुमानके बलकी तुलनामें नगण्य-सा ही था। शौर्य, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, राजनीतिज्ञता, पराक्रम और प्रभाव—इन सभी सद्‌गुणोंने हनुमानको अलंकृत कर रखा है। युद्धमें हनुमानके जो पराक्रम देखे गये हैं, वैसे वीरतापूर्ण कर्म न तो कालके, न इन्द्रके, न विष्णुके और न कुबेरके ही सुने जाते हैं। इन्हींके बाहु-वीर्यसे लंका, सीता, लक्ष्मण, विजय, राज्य तथा मित्र-बन्धुजन मुझे पुनः प्राप्त हुए हैं।' (वा० रा० ७।३५।२—९)

भगवती सीताके द्वारा प्रसन्नतासे अमूल्य मणियोंका हार दिये जाते समय भी प्रभु श्रीरामने ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं—

तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा॥

(वा० रा० ६।१२८।८२)

'तेज, धैर्य, यश, दक्षता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और बुद्धि—ये गुण हनुमानमें नित्य स्थित हैं।'

एक नहीं, अनेक स्थानोंपर श्रीहनुमानजीके इन गुणोंकी चर्चा है—

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति॥

(वा० रा० ५।१।२०१)

* यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्त्रा कर्मणि दुष्करे। कुर्यात् तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम्॥

'वानरेन्द्र! जिस पुरुषमें तुम्हारे समान धैर्य, सूझ-बूझ, बुद्धि और कुशलता—ये चारों गुण विद्यमान हैं, वह अपने कर्ममें कभी असफल नहीं होता।'

धीरता, गम्भीरता, प्रत्युत्पन्नमतित्व, सुशीलता, वीरता, श्रद्धा, नम्रता, निरभिमानिता आदि अनेक गुणोंसे सम्पन्न हनुमानको तुलसीदासने महर्षि वाल्मीकिके समान विशुद्ध विज्ञानमय कहकर,[१] सुन्दरकाण्डमें इनकी '**सकलगुण-निधानम्**' के उद्घोषसे सादर वन्दना की है—

'सकलगुणनिधानं　वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥'

श्रीहनुमानजीमें सभी गुणोंका अद्भुत समन्वय है। ऐसे विलक्षण भी हैं वे, जिनमें सभी कार्योंको सम्पन्न करनेकी क्षमता है। यद्यपि प्रभुके सभी भक्त बड़े महिमामय हैं, किंतु श्रीहनुमानजी-जैसा सौभाग्यशाली कोई नहीं है। 'श्रीरामचरितमानस' में इस सम्बन्धमें एक अनुपम प्रसङ्ग प्राप्त होता है। उनकी ऐसी ही विश्वसनीयता, विलक्षण-बुद्धि-सम्पन्नता तथा श्रीराममें उनके दृढ़ विश्वासको देखकर श्रीसीताजीने उन्हें अमोघ आशीर्वाद दिया है—

आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना।
अजर अमर गुन निधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥
(मानस ५।१६।१)

यहाँ श्रीसीताजीने अनेक बातोंके लिये हनुमानजीको आशीर्वाद दिया है—'वे बल-शील-निधान हों, अजर-अमर-गुणनिधि हों और श्रीरामजी उनपर बहुत छोह करें।' जब इस प्रकार सभीके द्वारा चाहे जानेवाले सर्वोच्च गुणोंकी प्राप्तिका उन्हें अमोघ आशीर्वाद मिल गया, तब सर्वगुणसम्पन्न होनेसे उन्हें कौन रोक सकता है[२]; किंतु यहाँ एक बड़ी मार्मिक बात है। प्रारम्भिक पाँच वरदानोंको तो जैसे उन्होंने सुना ही नहीं; सम्भव है, विनम्रता और निरभिमानिताके कारण बल-शील-निधान, गुणनिधि और अजर-अमर होने-जैसे वरदान भी उनको बोझ ही मालूम पड़े होंगे; किंतु जैसे ही उन्होंने यह सुना—

'करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना।
निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥'
(मानस ५।१६।२)

—वैसे ही वे वरदान-प्राप्तिसे फूल जानेवाले '**अहं**' को तत्काल झाड़कर, प्रभु-प्रेमके अथाह सागरमें डूब गये। ऐसा है, पूर्ण-समर्पित, अहंकार-विहीन अद्भुत चरित्र श्रीहनुमानजीका!

ऐसे ही अन्य अनेक प्रसङ्गोंमें उनकी इस अहं-विहीन अद्वितीय चारित्रिक विशेषताका पता चलता है। एक अन्य प्रसङ्ग देखिये। लंकासे लौटनेके पश्चात् प्रभुने श्रीहनुमानकी प्रशंसा की—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता।
लोचन नीर पुलक अति गाता॥
(मानस ५।३१।३-४)

पर प्रशंसाके इन शब्दोंको सुनते ही श्रीहनुमानजी प्रभुके मुखको देखकर, 'त्राहि-त्राहि' कहकर उनके चरणोंपर गिर पड़े। उनकी यह धारणा थी कि व्यक्ति तो निमित्तमात्र है, भगवान् जिससे जो कुछ चाहते हैं, करा लेते हैं। इसीलिये 'रामचरितमानस' में श्रीरामके साथ मिलन होनेतक श्रीहनुमानने अपना बल कभी प्रकट नहीं किया। अहं-विसर्जित सेवामय हनुमानजीकी इस जीवन-निष्ठासे किसीकी सेवाकी तुलना कैसे की जा सकती है!

इसीलिये श्रीहनुमानजी दास्य-भक्तिके परम आदर्श हैं। भक्ति-शास्त्रोंकी दृष्टिमें दास्य-भक्ति जीवका अनादि-सिद्ध, स्वस्वरूपानुबन्धि नित्य भाव है। अंशीकी सेवा करना ही अंशका धर्म है। वैयक्तिक सम्बन्धोंका प्रथम स्फुरण भगवत्सुखैकतात्पर्यमयी सेवासे युक्त दास्यभावमें ही होता है। नारदजीने इसे अपने भक्तिसूत्र ८२ में '**दास्यासक्ति**' कहा है। आचार्य रामानुज शेष-शेषिभाव और आचार्य मध्व '**जीवगणा हरेरनुचराः**' कहकर इस दास्य-भक्तिके प्रति अपनी प्रबल रुचि प्रदर्शित करते हैं। तुलसीदासजी तो 'सेव्य-सेवक-भाव' के बिना संसार-सागरसे पार होना ही स्वीकार नहीं करते—

'सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि॥'
(मानस ७। ११९ क)

१-सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ। वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥ (मानस, बालका० वन्दना ४)
२-विशिष्ट-विशिष्ट देवताओंने भी बचपनमें उनको अनेक असाधारण वरदान दिये थे।

श्रीहनुमानजीकी ये सब विशेषताएँ उनके दास्यभावके ही कारण हैं। यह भाव उनके प्राणोंके पोर-पोरमें समाया हुआ है। इसी कारण वे चन्द्रमामें भी इसी भावका दर्शन करते हैं—

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥

(मानस ६।१२ क)

अपने प्राणेश्वर प्रभु श्रीरामको देखनेके लिये साक्षात् श्रीकिशोरीजीद्वारा प्रदत्त प्रकाशसे जगमगाती अनमोल मुक्तामालाके एक-एक दानेको भी उन्होंने दाँतोंसे तोड़-तोड़कर फेंक दिया। सेवाके सर्वोच्च आदर्शके रूपमें किये गये उनके कार्योंको देखकर भगवान् श्रीराम कितनी बार उनके ऋणी बननेकी घोषणा करते हैं—

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥

(वा० रा० ७।४०।२३)

'हे हनुमान! तेरे द्वारा किये गये एक-एक उपकारके लिये एक-एक प्राण भी यदि दूँ तो भी उन उपकारोंसे मैं उऋण नहीं हो सकता; क्योंकि प्राण पाँच ही हैं और तुम्हारे उपकार अनन्त हैं। अत: शेष उपकारोंके लिये तो मुझे ऋणी ही रहना पड़ेगा।' इसीलिये राम-सीता-लक्ष्मणके समान वानरश्रेष्ठ हनुमान युग-युगोंके लिये हमारे आराध्य बन गये हैं। अन्तमें भी हनुमानजी यही वर माँगते हैं—

स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा।
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु॥
यावद्रामकथा वीर चरिष्यति महीतले।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः॥

(वा० रा० ७।४०।१६-१७)

'राजराजेश्वर! आपके प्रति मेरा महान् स्नेह सदा बना रहे। वीर! आपमें ही मेरी निश्चल भक्ति रहे। आपके अतिरिक्त और कहीं मेरा आन्तरिक अनुराग न हो। वीरवर! इस पृथ्वीपर जबतक राम-कथा प्रचलित रहे, तबतक निस्संदेह मेरे प्राण इस शरीरमें ही बसे रहें।'

प्रभु श्रीरामने हनुमानजीकी इस इच्छाको पूरा किया है—

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर॥
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्।

(वा० रा० ७। १०८। ३३-३४)

'हरीश्वर! जबतक संसारमें मेरी कथाओंका प्रचार रहे, तबतक तुम भी मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो।'

श्रीराम उन्हें वैकुण्ठ (साकेत) नहीं ले गये; यहीं छोड़कर गये। श्रीहनुमानजीका हृदय चीरकर देखें तो भी उनके पास अब भी श्रीराम ही हैं। साथ ही श्रीराम उनके बिना एक कदम भी न चल सकें, अपने जीवनकी ऐसी परमोच्च आवश्यकता भी (Supreme necessity) श्रीहनुमानने निर्माण की थी। रामायणमेंसे श्रीहनुमानको तथा सुन्दरकाण्डको निकाल दीजिये और फिर उसे पढ़िये तो उसका प्राय: सारा रस ही चला जायगा। श्रीराम और श्रीहनुमानकी जोड़ी अविभाज्य है। श्रीरामकी भाँति श्रीहनुमान भी सर्ववन्द्य हैं; यद्यपि वे अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते ही नहीं, उनका सब कुछ श्रीराममय ही है।

श्रीहनुमानने अपने अद्भुत चरित्रसे यह भी स्पष्ट कर दिया कि चारित्र्य, पावित्र्य, ज्ञान, निर्भयता आदि गुणोंके बिना सच्चा दास्यभाव नहीं आता। महाराष्ट्रमें समर्थ रामदासस्वामीने 'दास मारुति' और 'वीर मारुति'— ऐसे दो भावोंकी मूर्तियोंकी स्थापना की है। एकमें हनुमान भगवान्‌के चरण पकड़े हुए हैं और दूसरेमें लंका-दहनका प्रसङ्ग चित्रित है। जो दास हो सके, वही वीर होता है। हनुमान दास होनेके साथ ही 'अतुलितबलधाम' भी हैं और 'ज्ञानिनामग्रगण्य' होते हुए भी कुशल राजनीतिज्ञ, वानराधीश एवं निपुण दूत भी हैं। आजके दिग्भ्रान्त तथा कलुषितान्त:करण समाजके उद्धारके लिये ऐसे ही विविध पुरुषार्थयुक्त भक्तोंकी आवश्यकता है, जो इस धरतीपर पुन: राम-राज्यकी स्थापना कर सकें। जहाँतक हनुमानके बल और पराक्रमका प्रश्न है, रामायण तथा पुराणोंमें इसके अगणित उदाहरण भरे पड़े हैं। अतुलबलशाली राक्षसोंसे घिरी हुई लंकाकी अकेले ही यात्रा करना और अपना समस्त दूत-कार्य श्रेष्ठ रीतिसे सम्पन्न कर उसको जला डालना कितना अद्भुत कार्य था ! लंका-दहन करके जैसे आधी लड़ाई तो उन्होंने पहले ही जीत ली; राक्षस-प्रजाका आत्म-प्रत्यय समाप्त कर डाला, प्रजाका अपने सामर्थ्यके ऊपर विश्वास समाप्त हो गया। इस कर्मका प्रभाव इतना शक्तिशाली तथा राक्षसोंको मानसिक आघात पहुँचानेवाला था कि उनका चैतन्य अन्ततक भी तैयार नहीं हो सका। यह शत्रु-राष्ट्रका पूर्णतया

तेजोभङ्ग श्रीहनुमानका कितना महत्त्वपूर्ण कार्य है! इस अपूर्व कार्यको भी श्रीहनुमान '**सो सब तव प्रताप रघुराई**' (मानस ५। ३२। ५) कहकर स्वीकार करते हैं।

समुद्र-लङ्घनके समय श्रीहनुमानने जाम्बवन्तसे कहा था—'बताओ, मुझे लंकामें जाकर क्या करना होगा? क्या इस समुद्रको यहींसे पी लूँ या लंकाको उठाकर त्रिकूट-पर्वतसहित समुद्रमें फेंक दूँ ? उस दुष्ट रावणको पकड़कर कीड़ेकी भाँति पैरोंसे मसल दूँ या संसारसे राक्षसोंका नाम ही मिटा दूँ?' (हनुमन्नाटक ६। ५-६) इसी प्रकारके विचार उन्होंने शक्ति-प्रहारसे घायल श्रीलक्ष्मणजीके अचेत होनेपर भी व्यक्त किये थे—'प्रभो! आपकी आज्ञा हो तो मैं स्वर्ग अथवा पातालसे अमृत उठा लाऊँ, चन्द्रमाको पकड़कर भीगे वस्त्र-सा इनके मुखमें निचोड़ दूँ; यदि यमराज कुछ गड़बड़ करें तो उन्हें भी पकड़कर कच्चा चबा जाऊँ, जिससे आजसे कोई मरे ही नहीं। सूर्योदय होते ही कुमार न बचेंगे, यदि यह डर है तो सूर्यको ही पकड़कर पातालमें क्यों न बंद कर दूँ, जिससे सूर्यका उदय ही न हो सके'—

पातालतः किमु सुधारसमानयामि
निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि।
उद्दण्डचण्डकिरणं ननु वारयामि
कीनाशपाशमनिशं किमु चूर्णयामि॥
(हनुमन्नाटक १३। १६)

ऐसा है उनका अद्भुत पराक्रम और वज्रसंकल्प! मुष्टि-प्रहारसे रावण तथा कुम्भकर्ण आदिको धराशायी करना, किसीसे भी न उठाये जानेवाले शेषावताररूप श्रीलक्ष्मणको क्षणभरमें रण-प्राङ्गणसे उठाकर श्रीरामके समीप ले आना तथा संजीवनी बूटीके लिये पर्वतको ही उठा लाना आदि प्रसङ्ग उनके अतुल बलके परिचायक हैं। महाभारतमें भी उनके पराक्रमके सूचक अनेक प्रसङ्ग हैं। बुद्धि-कौशलके साथ उनके अतुलित बलकी भी तुलना किसीसे भी नहीं की जा सकती।

सफल और श्रेष्ठ दूतके रूपमें उनकी उपलब्धियाँ विस्मयकारी हैं। उनके द्वारा सम्पादित कार्य अनेक पक्षीय तथा चकित कर देनेवाले हैं। इसलिये उनको सामान्य दूतकी श्रेणीमें नहीं रखा जा सकता। वे सुग्रीवके दूत बने तो श्रीराम-लक्ष्मणके हृदयपर भी उन्होंने अपना अधिकार कर लिया। श्रीरामके दूत बने तो वे श्रीसीतामें जीवन-धारण करनेकी कामना जगानेवाले बन गये। भयभीत, दु:खी, चिन्तित और मृत्युकी कामना करनेवाली श्रीसीताको उन्होंने किस कुशलता और मनोवैज्ञानिक ढंगसे अपनी ओर उन्मुख किया, वह सम्पूर्ण प्रसङ्ग अत्यन्त मार्मिक है। पुन: श्रीरामके दूत बने तो केवल श्रीभरतके ही नहीं, श्रीराम-वियोगमें कृशशरीर अयोध्याकी सम्पूर्ण प्रजाके ही प्राणदाता बन गये।

सीता-खोजके समय समुद्र-पार करते हुए उन्हें पग-पगपर विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ा। प्रलोभन, बौद्धिक जाल और भयके रूपमें उपस्थित बाधाओंको उन '**बुद्धिमतां वरिष्ठ**' ने सरलतापूर्वक पार करते हुए, अपनी दूरदर्शितासे सूक्ष्म रूप धारणकर लंकामें प्रविष्ट हो अद्भुत चातुर्यसे अपने अनेक कार्य सिद्ध किये। वहाँसे लौटनेपर भी हनुमानने लंकाके दुर्ग, फाटक, सेना-विभाग तथा संक्रम आदिका पूरा विवरण श्रीरामको कह सुनाया, जो उनके लंकापर आक्रमण करते समय अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ।

संसार-सागरको पार करते समय प्रत्येक व्यक्तिको ऐसी ही अनेक विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ता है। जीवनका मार्ग संघर्षोंकी काँटेदार पगडंडियोंसे होकर गुजरता है। जीवनमें हर कदमपर संघर्ष करना पड़ता है। संघर्षसे भयभीत होनेवाला व्यक्ति विजयसे पहले ही पराजय स्वीकार कर लेता है। प्रभु-विश्वासी और प्रभु-समर्पित-जीवन मनुष्य इन द्वन्द्वात्मक संघर्षोंसे खण्डित नहीं होते; उनका वेग अखण्ड रहता है। अथाह सागरकी दुर्धर्ष लहरोंपर भी उन्हें गति और आनन्दके स्वरोंका संगीत ही सुनायी पड़ता है। रामदूत हनुमानद्वारा किया गया समुद्रोल्लङ्घन कार्य हमारे मनमें ऐसी ही प्रेरणाएँ जगाता है।

भारतके असंख्य अखाड़ोंके अधिष्ठाता देवता नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रीहनुमानके चरितकी चरम पवित्रताके भी अनेक उदाहरण रामायणमें प्राप्त होते हैं। श्रीहनुमान लंकामें रात्रिके समय रावणके अन्त:पुरमें परम सुन्दरी स्त्रियोंके झुंडमें भी श्रीसीताको खोजने पहुँचते हैं। दूसरोंकी स्त्रियोंको अस्त-व्यस्त अवस्थामें देखकर वे बड़े धर्म-संकटमें पड़ गये और चिन्तित हो गये। फिर उन्होंने स्वयं ही अपने मनका परदारा-दर्शन-सम्बन्धी

समाधान इस प्रकार किया—'परदारा-दर्शन मैंने अवश्य किया है, परंतु मेरे मनमें उनके प्रति कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ। मन ही तो सारे विकारोंका मूल है और मैं मनसे निर्विकार—सर्वथा निर्दोष हूँ। मेरी आँखोंसे ही ऐसा पाप क्यों हो; परंतु इसके अतिरिक्त अन्य कोई चारा भी न था; मैं श्रीसीताजीको ढूँढ़ता भी कैसे; स्त्री तो स्त्रियोंमें ही मिलेगी, नहीं तो और कहाँ मिलेगी। खोयी हुई स्त्री कोई हरिणियोंके समूहमें थोड़े ही मिलेगी? इसलिये शुद्ध बुद्धिसे केवल श्रीसीताको खोज निकालनेके लिये ही मैंने रावणकी अन्त:पुरवासिनी स्त्रियोंको देखा है।' इस प्रकारके पापभीरु शुद्धचरित्र श्रीहनुमानका तेज निश्चित ही अपूर्व एवं अलौकिक होगा ही—

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते॥

(वा० रा० ५। ११। ४०)

जगत्‌में रहते हुए कब सम्भव है कि हमारी इन्द्रियाँ विषयोंसे सर्वथा असम्पृक्त रह सकें; कोलाहलमय जगत्‌में क्या यह सम्भव है कि कान हों और शब्द सुनायी न दे; रूपमय जगत्‌में क्या यह सम्भव है कि आँखें हों और रूप न दीखे; इस स्थितिमें हम विषयोंसे असम्पृक्त एक सीमामें ही रह सकते हैं। वायुके साथ प्रवाहित होकर आनेवाली गन्धको कैसे रोका जा सकता है? इसी प्रकार रस और स्पर्शके सम्पर्कको भी हम पूर्णरूपसे नहीं रोक सकते। इन्द्रियोंका प्रयोग करना, किंतु उनमें राग और द्वेषकी ऊर्मियोंको न उठने देना, इसीका नाम है—शुद्ध चरित्रवत्ता, तप और साधना। यही श्रीहनुमानने अपने जीवनसे प्रदर्शित किया।

आजका मनुष्य एक दृष्टिसे तो बहुत समृद्ध है; क्योंकि उसने अपने जीवनको असंख्य वैज्ञानिक उपलब्धियोंसे सँवार लिया है। किंतु चारित्रिक और पारमार्थिक दृष्टिसे वह अति निम्न स्तरकी ओर खिसकता चला जा रहा है। संयमके सब आदर्श धूलमें मिलते दृष्टिगोचर हो रहे हैं। ऐसी स्थितिमें देशके अस्त-व्यस्त विचारोंवाले लाखों व्यक्ति यदि श्रीहनुमानजी-जैसे सर्वगुण-सम्पन्न पूर्ण चरित्रका पारायण कर शरीरको रोग और दुर्बलतासे, बुद्धिको अज्ञान और अशुभ विचारोंसे, कर्मेन्द्रियोंको जडता और आलस्यसे, हृदयको कठोरता, भय और क्षुद्र स्वार्थसे तथा आत्माको कृपणता एवं अहंकारके पंजेसे मुक्त कर सकें तो कितना अच्छा होगा!

परम कल्याणकारक श्रीहनुमानका स्मरण करें!

(रचयिता—पं० श्रीनन्दलालजी खेडवाल, शास्त्री, साहित्याचार्य)

सदसि वसन्तं सुमृदु हसन्तं
कपिषु लसन्तं धुरिसन्तम्।
जितहरिदन्तं कृतविपदन्तं
युधि निनदन्तं श्रितसन्तम्॥
सदनुभवन्तं सततमवन्तं
प्रभुवरवन्तं प्रभवन्तम्।
स्वहृदि रमन्तं सुरतनुमन्तं
स्मर परमं तं हनुमन्तम्॥

'हम सब उन देव-विग्रह श्रीहनुमानजीका स्मरण करें, जो सदा अपने हृदयमें रमण करनेवाले हैं, (संतोंकी) सभामें निवास करते हैं, मृदु-मधुर हास्ययुक्त हैं, वानरोंके मध्य सुशोभित हैं, सज्जनोंकी धुरी हैं, दिग्विजयी हैं, विपत्तिनिवारक हैं, युद्धमें निनाद करनेवाले हैं, संतोंके आश्रित हैं, सत्-ब्रह्म (भगवान् श्रीराम)-के ध्यानमें रत हैं, सदा सबके रक्षक हैं, वरदायक हैं तथा परम कल्याणकारक हैं।'

रूप एक—गुण अनेक

(लेखक—पं० श्रीमङ्गलजी उद्धवजी शास्त्री, सद्विद्यालंकार)

महावीर हनुमानने भगवान् श्रीरामके आदर्श रामराज्यकी स्थापनामें जो सहयोग दिया, वह शतकोटि रामायणोंमें स्वर्णाक्षरोंसे अङ्कित है। पवनकुमारका सर्वोच्च आदर्श था—सच्चे अर्थमें सेवक बनना और उसी आदर्शके लिये उन्होंने अपना तन-मन-सर्वस्व श्रीरामके चरणोंमें समर्पित कर दिया। लंकाधिपति रावणद्वारा अपहृत श्रीजानकीजीको पुनः प्राप्त करनेमें उन्होंने अपने बहुविध गुणोंका जो परिचय दिया, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए स्वयं श्रीरामने कहा—*'तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई'।* भला सच्चे सेवकको इससे अधिक और चाहिये भी क्या?

भारतकी सीतास्वरूप भाग्यलक्ष्मी आज समुद्रपार उठायी जा रही है; भारतस्थित अनेकविध आसुरी बल—सुबाहु, मारीच, ताड़का और शूर्पणखाका साक्षात् रूप धारण करके उस सीताको उड़ा ले जानेमें सहयोग प्रदान कर रहे हैं। ऐसे विकट एवं कराल समयमें श्रीमहावीरकी आवश्यकता है।

वैसे तो श्रीहनुमानजी स्वयं भगवान् श्रीशंकरके अवतार होनेसे गुणोंके साक्षात् स्वरूप ही थे, किंतु उनका यह अवतार तो सेवकके रूपमें ही हुआ था। उनके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन होना तो असम्भव है, तथापि सेवकोचित निम्नाङ्कित गुणोंका हम यहाँ यत्किंचित् वर्णन करेंगे, जो मानव-जातिके लिये अनुकरणीय हैं। ये गुण हैं—१—स्वामिभक्ति (भगवद्भक्ति), २—अपूर्व त्याग, ३—ज्ञानकी पूर्णता, ४—निरभिमानिता एवं ५—अद्भुत चातुर्य।

स्वामिभक्ति (भगवद्भक्ति)

श्रीहनुमानजी नवधा भक्तिके प्रकारमें सातवीं दास्य-भक्तिके आचार्य माने जाते हैं। स्वामीका आज्ञापालन ही सेवकका परम धर्म है। वैसे तो श्रीहनुमानजी अवधकी बाल-लीलासे ही भगवान् श्रीरामके सच्चे सेवक थे, किंतु उनका विशेष परिचय हमें तब मिलता है, जब श्रीसीताजीके वियोगमें भगवान् श्रीराम और लक्ष्मण ऋष्यमूकपर्वतके निकट आते हैं। इधर अपने भाई वालीके भयके कारण सुग्रीव पर्वतके ऊपर अपने अनुचरोंके साथ निवास करते थे। उन्होंने इन अज्ञात वीर पुरुषोंको पहचाननेके लिये श्रीहनुमानजीको भेजा और वे ब्राह्मण वटुका रूप बनाकर वहाँ गये भी—*'बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।'* (मानस ४।१।३)

श्रीराम-लक्ष्मणके श्याम-गौर शरीर, मनोहर मुखाकृति और सौम्य स्वरूपसे प्रभावित होकर श्रीमहावीरने श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम किया और उनका परिचय पूछा। अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए श्रीरामने कहा—'हम दोनों भाई अवध-नरेश श्रीदशरथजीके पुत्र हैं। मेरा नाम राम है और ये मेरे अनुज लक्ष्मण हैं। सीतादेवीके साथ हमलोग वनमें आये थे; दुर्भाग्यवश कोई राक्षस जनक-नन्दिनीका अपहरण कर लिया। उसीकी खोजमें हम दोनों वन-वनमें फिर रहे हैं।'

इन वचनोंको सुनकर श्रीहनुमानजीकी जो दशा हुई, उसका वर्णन जड लेखनी कैसे कर सकती है? माता अञ्जनादेवीके मुखसे उन्होंने श्रीरामका वर्णन सुना था और उसी सीता-हरणके प्रसङ्गकी मानो यहाँ पुनरावृत्ति हो रही थी। श्रीशंकरजीने जिनके बालस्वरूपका दर्शन भी करा दिया था, उन्हीं प्रभु श्रीरामको आज किशोरावस्थामें सम्मुख खड़े देखकर भी हनुमानके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। अपने आराध्यदेवके दर्शन करके वे अपना वास्तविक रूप छिपा न सके। प्रभु-चरणोंको पाकर भला बाह्याडम्बर कहाँतक टिक सकता है? उन्होंने अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया और श्रीरामके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया। बाल-सखा एवं अनन्य भक्तको भगवान्ने अपने हृदयसे लगा लिया। भक्त और भगवान्के इस मिलनका भला कौन वर्णन कर सकता है?

फिर क्या था? सुग्रीवके साथ मैत्री हुई और वालीका वध हुआ तथा श्रीसीताजीकी खोजके लिये श्रीहनुमानजीका वरण हुआ। समुद्रोल्लङ्घनकर वे लंका पहुँचे और श्रीसीताजीको मुद्रिका प्रदान कर वापस लौटे।

स्वामीकी आज्ञाका पालन ही सेवकका एकमात्र धर्म होता है। लंका-प्रवेश, लक्ष्मण-मूर्च्छा, रावण-वध और उसके बाद अयोध्या-लीलामें भी हमें श्रीमहावीरकी अनन्य भक्तिका दर्शन होता है। ऐसा भक्त तो स्वयं भगवान्को भी सुखदायी होता है। यही कारण है कि हम आज भी श्रीराम-पञ्चायतनमें श्रीमहावीरके दर्शन करते हैं। इतना ही नहीं, हमें गाँव-गाँवमें छोटे-मोटे रूपमें प्रतिष्ठित श्रीहनुमानजीके दर्शन होते हैं।

अपूर्व त्याग

लेखक अपने सर्वस्वका त्याग तो कर सकता है,

किंतु अपने लिखे हुए एक अक्षरका भी त्याग उसके लिये कठिन होता है। अक्षर ही उसकी आत्मा होती है। बड़े-से-बड़े संत-महात्मा, ज्ञानी और त्यागीको भी इस लोकैषणाके ऊपर विजय पाना बड़ा ही कठिन है। किंतु हमारे नायक श्रीमहावीरके एक ऐसे त्यागकी भी एक छोटी-सी झलक देखनेयोग्य है। वैसे तो श्रीहनुमानजीने श्रीरामके चरणोंमें अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया था; स्वयं बाबा भोलेनाथके अवतार होनेके कारण वे वितृष्ण एवं वीतराग तो थे ही, किंतु लोकैषणाका त्याग करके उन्होंने अपने जीवन-मन्दिरके ऊपर स्वर्ण-कलश चढ़ा दिया। वह प्रसङ्ग इस प्रकार है—

जगज्जननी श्रीसीताजीके त्यागके पश्चात् भगवान् श्रीराम कुछ उदास एवं एकान्तप्रिय बन गये थे। स्वामीकी उदासीनता भला श्रीहनुमान-जैसे एकनिष्ठ संत कैसे सहन कर सकते थे? अत: श्रीपवनकुमार प्रभु-सेवासे अवकाश पाकर एक समीपस्थ पर्वतके ऊपर बैठकर श्रीराम-स्मरण करने लगे। बाल-लीलासे लेकर उस समयतककी सभी लीलाएँ वे स्फटिक शिलाओंके ऊपर अपने वज्रनखसे देववाणीमें काव्यबद्ध करते हुए उत्कीर्ण करने लगे। थोड़े समयमें सम्पूर्ण श्रीरामचरितमय महाकाव्य तैयार हो गया।

जब इस बातकी सूचना महर्षि वाल्मीकिजीको लगी, तब वे उस पर्वतपर पधारे। श्रीमहावीरने महर्षिको नमस्कार करके उनके सामने अपनी रचना रख दी, जिसे देखकर वे मुग्ध हो गये। साथ-ही-साथ उनके हृदयमें यह भी विचार आया कि 'यदि यह श्रीरामचरित्र लोकप्रसिद्ध हो जायगा तो फिर मेरी रामायणको कोई देखना भी नहीं चाहेगा। मेरी कृति इस महाचरितके आगे फीकी पड़ जायगी।' इसी विचार-सागरमें महर्षिजी डूबने-उतराने लगे।

'पूज्यवर!' अकस्मात् श्रीमारुतिकी आवाज सुनकर महर्षिजी जाग उठे। महावीरने प्रश्न किया—'आप उदास क्यों हो गये? क्या मेरी रचनामें कोई भूल रह गयी है?'

'नहीं, नहीं वत्स!' वाल्मीकिजी बोले—'आपकी रचना अत्यन्त उच्चकोटिकी है, इसमें तो कोई संदेह ही नहीं है; किंतु·····।'

'आप शीघ्र कहिये, महर्षिजी !' श्रीहनुमानके स्वरमें पूज्य-भावना और अपनी भूल सुधारनेकी तत्परता थी।

'आप प्रथम मुझे वचन दीजिये, फिर मैं कहूँगा।' श्रीवाल्मीकिजी बोले—'आप इसे वरदान भी कह सकते हैं।'

'मैं तो आपका तुच्छ दास हूँ।' महावीरने कहा—'आप आज्ञा दीजिये; मैं उसका अवश्य पालन करूँगा।'

'महाबली!' वाल्मीकि बोले—'आपके रामचरितका विश्वमें प्रचार होनेके पश्चात् मेरी रामायणको कोई भी नहीं पूछेगा।'

'समझ गया, ऋषिवर!' महोदार चरित्रवान् महावीरने हँसते हुए कहा—'इतनी छोटी-सी बातको आपने इतना महत्त्व दिया! आप शीघ्र ही मेरे साथ पधारिये। इन उत्कीर्ण-शिलाओंको भी मैं अपने साथ लिये लेता हूँ।'

—यह कहकर अपने एक कंधेपर महर्षिको तथा दूसरेपर उन सभी शिलाओंको लेकर पवनकुमार समुद्रतटपर पहुँचे और मध्य-समुद्रमें जाकर महर्षिके देखते-देखते उन सभी शिलाओंको '**श्रीरामार्पणमस्तु!**' कहकर उन्होंने समुद्रमें फेंक दिया।

पलक मारते-मारते यह सब हो गया, जो वाल्मीकिजीकी कल्पनामें भी न था। बड़ा पश्चात्ताप हुआ ऋषिवरको। उन्हें लगा कि इन शिलाओंके बदले यदि कपिराजने मुझे फेंक दिया होता तो उत्तम होता! मैंने इन परम त्यागी महावीरजीके साथ बड़ा ही अन्याय कर दिया, किंतु ***'समय चुकें पुनि का पछिताने।'*** (मानस १।२६१।२) अपने स्थानपर आकर श्रीहनुमानने महर्षिके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—"यह कार्य तो मैंने यों ही समय-यापनके लिये किया था—'**येन केन प्रकारेण रामे बुद्धिं निवेशयेत्।**' इसके सिवा इसमें मेरा अन्य कोई उद्देश्य नहीं था।'

महामना मारुतिके हृदयमें न दु:ख था न पश्चात्ताप। महान् परिश्रमसे और जीवनके विप्रयोगके अमूल्य अवसरमें की हुई रचनाको उन्होंने महर्षिके संतोषके लिये समुद्रके अर्पण कर दिया।

'धन्य श्रीरामके अनन्य सेवक! धन्य जितेन्द्रिय! धन्य पवनकुमार!' महर्षि वाल्मीकिको आज समग्र शब्दकोशके विशेषण अल्प मालूम होते थे। उनके नेत्रोंसे अविच्छिन्न अश्रुप्रवाह बह रहा था। वे बोले—"आपका तो समग्र जीवन ही भगवान् श्रीरामकी यशोगाथा रूप ही है। महावीर! आप अमर हैं। मैं आज प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपके संतोष एवं तृप्तिके लिये मैं दूसरा जन्म धारण कर आपका ही अनन्य उपासक 'तुलसी' बनकर आपके ही अनुग्रहसे इस 'महानाटक' ग्रन्थके आधारपर सर्वजनहिताय 'रामचरितमानस' नामक अपूर्व ग्रन्थकी रचना करूँगा और अपने उस जीवन-पर्यन्त आपका उपासक बना रहूँगा।" इस प्रकार कहकर श्रीवाल्मीकिजी अपने आश्रमको पधारे।

आजके युगमें 'सेवक' शब्द सस्ता बन गया है। जनताका गला भी उसका सेवक बनकर ही घोटा जाता है। किंतु सेवा-धर्म तो परम गहन है। उसका मूलमन्त्र है—आदर्श त्याग, तप और कठोर धर्माचरण। वातानुकूलित प्रासादोंमें बैठकर, विशाल अट्टालिकाओंमें रहकर 'सेवक' बनना तो 'सेवक' शब्दका अपमान ही करना है। वस्तुत: तन, मन, धन, यश एवं मानका त्याग करनेके बाद ही सच्ची सेवाका अधिकार प्राप्त होता है। श्रीमहावीरके आदर्श त्यागके उदाहरण रामायणमें भरे पड़े हैं।

ज्ञानकी पूर्णता

श्रीहनुमान जैसे 'अतुलितबलधाम' हैं, वैसे ही वे ज्ञानके भी साक्षात् स्वरूप हैं। श्रीरामके मिलन-प्रसङ्गके समय श्रीहनुमानजीके गुणोंका परिचय कराते हुए स्वयं श्रीरामजी लक्ष्मणसे कहते हैं कि ''श्रीहनुमानजी 'त्रयी' के ज्ञाता और सम्पूर्ण व्याकरणको जाननेवाले हैं।''

आध्यात्मिक ज्ञानके तो वे मूर्तिमान् स्वरूप ही थे। अन्य रामायणोंसे ज्ञात होता है कि ऋषियोंकी विशाल सभामें उन्होंने ब्रह्मज्ञानका उपदेश भी दिया था। उनका ज्ञान केवल मौखिक आडम्बरमात्र नहीं था, वह आचरणद्वारा भी प्रत्यक्ष होता था। एक बारका प्रसङ्ग है कि जब श्रीयुगल-सरकार अपने भवनमें विराजमान थे, उसी समय मारुतिजीने आकर उन्हें प्रणाम किया। श्रीरामने विनोदार्थ उनसे प्रश्न किया—'**कस्त्वम्?**— तुम कौन हो?' तुरंत ही हनुमानजीने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—

देहदृष्ट्या तु दासोऽस्मि जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
वस्तुतस्तु त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥

'प्रभो! देहदृष्टिसे तो मैं आपका दास हूँ, जीवदृष्टिके विचारसे आपका अंश हूँ और तत्त्वदृष्टिसे देखनेपर वस्तुत: जो आप हैं, वही मैं हूँ—ऐसी मेरी निश्चित धारणा है।'

क्यों न हो, जो ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी श्रीजनकनन्दिनीका कृपापात्र हैं और जो ज्ञानस्वरूप सदाशिवके अवतार हैं, वे ही '**ज्ञानिनामग्रगण्यम्**' भी हैं।

निरभिमानित्व

'**अभिमानं सुरापानम्**' कहकर शास्त्रकारोंने अभिमानको सुरापानके समान त्याज्य माना है। श्रीहनुमानजीमें लेशमात्र भी अभिमान नहीं था। निरभिमानित्व भक्तिके मार्गमें भूषण-स्वरूप है—'**भक्तानां दैन्यमेवोक्तं हरितोषणकारणम्।**— भक्तोंकी दीनता ही भगवत्संतोषका कारण कही गयी है।' लंका-दहनके पश्चात् वहाँसे वापस आनेपर श्रीरामने पवनकुमारकी प्रशंसा करते हुए उनसे पूछा—

कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
× × ×
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥

(मानस ५। ३२। २$\frac{1}{2}$, ४)

भला, अपने स्वामीद्वारा की हुई प्रशंसा निरभिमान सेवक श्रीमारुतिको कैसे अच्छी लगती? अपनी प्रशंसाका श्रवण ही तो अभिमान उत्पन्न करा देता है। अत: श्रीहनुमानजीने उत्तर दिया—

'**सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥**'

(मानस ५। ३२। ४$\frac{1}{2}$)

यदि यहाँ कोई स्वार्थी सेवक होता तो वह स्वयं भी उसीके साथ-साथ अपनी प्रशंसाके गीत गाने लगता। किंतु श्रीहनुमानजी तो जानते ही थे कि '**इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः।**— स्वयं (प्रशंसा सुननेसे या) अपने ही मुखसे अपनी प्रशंसा करनेसे तो स्वर्गाधिपति इन्द्र भी लघुताको प्राप्त हो जाते हैं।' अत: वे बोले—

ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल॥

(मानस ५। ३३)

हनुमानजीके इसी निरभिमानित्व-महागुणको देखकर स्वयं भगवान् श्रीराम बोल उठे—'कपिवर! तुम्हारे किये हुए अनेक उपकारोंमेंसे एक-एक उपकारके बदले यदि मैं अपना प्राण अर्पण कर दूँ तो भी अन्य उपकारोंका ऋण तो मेरे जिम्मे रह ही जाता है। अत: तुम्हारे ऋणसे मैं किसी प्रकार उऋण नहीं हो सकता।'

यही तो उनके जीवनकी कृतार्थता है कि साक्षात् श्रीराम उनके ऋणी हैं।

अद्भुत चातुर्य

जिस बड़भागी भक्तके ऊपर भगवान्‌की कृपा होती है, उसे वे अपने सद्गुणोंका दान देते हैं। भगवान् श्रीराम चतुरशिरोमणि हैं तो उनके अनन्य भक्त श्रीमहावीर भी चतुरशिरोमणि क्यों न हों? ऐसी कथा प्रचलित है कि एक समय कपिवर श्रीहनुमानकी प्रशंसाके आनन्दमें निमग्न श्रीरामजीने श्रीसीताजीसे कहा— 'महादेवी! लंका-विजयमें यदि मारुतिका सहयोग न प्राप्त हुआ होता तो आज भी मैं सीता-वियोगी ही बना रहता।'

'आर्यपुत्र!' श्रीसीताने प्रश्न किया—'आप बार-बार कपिवर हनुमानकी प्रशंसा करते रहते हैं'—कभी उनके बल-शौर्यकी, कभी उनके ज्ञानकी, कभी उनके चातुर्यकी; अत: आज आप एक ऐसा प्रसङ्ग सुनाइये, जिसमें

उनका चातुर्य लंका-विजयमें विशेष सहायभूत रहा हो।'

'ठीक याद दिलाया तुमने।' श्रीराम बोले—''वैसे तो युद्धसे रावण थक चुका था। अनेक सुभटोंका श्रीहनुमानजीद्वारा वध भी हो चुका था। अब युद्धमें विजय प्राप्त करनेका उसने अन्तिम उपाय सोचा। यह था—देवीको प्रसन्न करनेके निमित्त सम्पुटित मन्त्रद्वारा चण्डी महायज्ञ। अब यज्ञ प्रारम्भ हो गया। किंतु हमारे चतुरशिरोमणि मारुतिके मनमें चैन कहाँ? यदि यज्ञ पूर्ण हो जाता और रावणको देवीका वरदान मिल जाता तो उसकी विजय निश्चित थी। बस, तुरंत कपिवरने ब्राह्मणका रूप धारण करके रावणके यज्ञमें सम्मिलित ब्राह्मणोंकी सेवा करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसी निस्स्वार्थ सेवा देखकर ब्राह्मणोंने कहा—'विप्रवर! आपकी इस सेवासे हम संतुष्ट हैं। आप हमलोगोंसे कोई वरदान माँग लें।'

''पहले तो महावीरने कुछ भी माँगनेसे इनकार कर दिया; किंतु सेवासे संतुष्ट ब्राह्मणदेवोंका आग्रह देखकर उन्होंने एक वरदान माँग लिया।''

'वरदानमें क्या माँगा महावीरने?' सीताजीके प्रश्नमें उत्सुकता थी;—'शीघ्र बतलाइये, नाथ!'

'उनकी उसी वर-याचनामें ही तो चातुर्य है कपिराजका!' श्रीराम बोले—''जिस मन्त्रके सम्पुटीकरणसे हवन किया जा रहा था, उसी मन्त्रके एक अक्षरका परिवर्तन महावीरने वरदानमें माँग लिया और बेचारे भोले ब्राह्मणोंने 'तथास्तु' कह दिया। उसीके कारण मन्त्रमें अर्थान्तर हो गया, जिससे रावणका घोर विनाश हुआ।''

'एक ही अक्षरमें इतना अर्थ-परिवर्तन?' सीताजीने प्रश्न किया—'कौन-सा मन्त्र था वह?'

श्रीरामने उत्तर दिया—''वह मन्त्र इस प्रकार है''—

जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि।
जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते॥

(अर्गलास्तोत्र-२)

''इस श्लोकमें '**भूतार्तिहारिणि**' में 'ह' के स्थानपर 'क' उच्चारण करनेका श्रीहनुमानजीने वर माँगा। ब्राह्मणोंने वैसा ही किया। '**भूतार्तिहारिणि**' का अर्थ है—'सम्पूर्ण प्राणियोंकी पीड़ा हरनेवाली' और '**भूतार्तिकारिणि**' का अर्थ है—प्राणियोंको पीड़ित करनेवाली।' इस प्रकार एक अक्षरके विपर्ययसे रावणका सर्वस्व नाश हो गया।

''रावणको यज्ञकी पूर्णाहुतिके बाद जब यह ज्ञात हुआ तो उसने अपने दसों मुखोंसे श्रीहनुमानजीकी प्रशंसा की।''

''ऐसे चतुरशिरोमणि हैं हमारे हनुमन्तलाल''—श्रीरामने प्रसङ्गको पूर्ण किया। श्रीसीताजी यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं।

वैसे तो हनुमानजीके अतुलित बल-वीर्य, भाव-भक्ति, सेवापरायणता, कार्यतत्परता आदि अनेक गुण रामायणादि ग्रन्थोंमें वर्णित हैं ही। आज हमारे भारतकी संस्कृति-सुषमा, ज्ञान-लक्ष्मी एवं राज्यश्रीरूपी सीता विदेशी सभ्यता-संस्कृतिद्वारा पराभूत की जा रही है और हमलोग मूर्च्छित बने बैठे हैं। अत: हमें आज श्रीहनुमानजीकी आवश्यकता है; ऐसे हनुमानजीकी, जो श्रीराम-भक्त, ज्ञानी, त्यागी, चरित्रसम्पन्न एवं चातुर्यशील हों।

श्रीहनुमानजीकी साधना और सिद्धि

(लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी)

साधनाकी परिणति अथवा पूर्ति कामनारहित हो जानेमें और उपासनाकी सिद्धि उपास्यके निकट नित्य आसन (निवास) प्राप्त कर लेनेमें है। स्वार्थरहित सेवा ही सफलताका मूलमन्त्र है। इस कसौटीपर जो भी खरा उतरता है, उसीकी अनुभूति, उसीकी अभिव्यक्ति और उसीकी कृति समाजका सच्चा मार्गदर्शन कर सकती है। इसीलिये कामनारहित उपासनारत होकर और सेवाका व्रत लेकर कार्य करनेवाले श्रीहनुमानजीकी जय-जयकारोंकी प्रतिध्वनि आज भी हमलोगोंको चारों ओर सुननेको मिलती है।

साधनाके द्वारा जिसने अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको वज्राङ्ग बना लिया है, उपासनाके द्वारा जिसका हृदय निर्मल—विमल हो चुका है और सेवाके द्वारा जिन्होंने समस्त ज्ञान-विज्ञानकी प्राप्ति कर ली है, ऐसा सदाचार एवं सद्विचार-समन्वित राजदूत अथवा रामदूत ही भारतकी अपहृत शान्तिरूपी सीताकी खोज कर सकता है और उसे वापस ला सकता है!

महावीर होनेपर भी जिसको किंचिन्मात्र अपने बलका

अभिमान नहीं, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य होनेपर भी जो परम विनीत है तथा पर्वताकार होते हुए—बड़प्पनकी सर्वोच्च सीमापर पहुँच करके भी जो रामकार्य अथवा राष्ट्रकार्य करनेके लिये अपने व्यक्तित्वको मसक-समान अत्यन्त छोटा बनानेमें जरा भी हिचक नहीं करता, ऐसे ही साधकका आदर्श चरित्र आजके दानवत्वका दमन कर हमारे नरत्वको नारायणत्वकी ओर ले जा सकता है।

जो बढ़ते हुए लोभरूपी सुरसाके मुखमें प्रवेश करके भी उसके वशमें नहीं हो सके, जिन्होंने कामकी प्रतिमूर्ति सिंहिका निशिचरीके अनेक प्रयास करनेपर भी उसके मायावी रूप-लावण्य-सौन्दर्यकी ओर दृष्टितक नहीं डाली और जो क्रोधरूपिणी लंकिनीके लाख बार ललकारनेपर भी उत्तेजित न होकर धैर्यपूर्वक सामान्य मुष्टिक-प्रहारद्वारा उसके 'अहं' का नाश (वमन) कर सके, उन्हीं लोभ, काम और क्रोधके विजेता श्रीहनुमानजीने अपने गन्तव्य मार्गको कभी अवरुद्ध नहीं होने दिया। वे जल, थल अथवा आकाशमार्गसे जब, जहाँ, जिस कार्यके उद्देश्यसे गये, उसे पूरा करके ही लौटे। आकाशमें व्यवधान डालनेवाली सुरसा, जलके भीतरसे आकर्षित करनेवाली सिंहिका और थलपर विघ्न पहुँचानेवाली लंकिनी—इन तीनोंके ही मनोरथ उनके सामने विफल हुए। अहंकारियोंका मान-मर्दन करनेके कारण ही तो आप 'हनुमान' कहे जाते हैं।

स्वार्थरहित सेवाके पथपर बढ़ते ही भयानक और विपरीत शक्तियाँ भी अनुकूल कार्य करने लग जाती हैं। तभी तो हनुमानजीके लिये विषने अमृतका, शत्रुने मित्रका, समुद्रने गो-पदका और अग्निने अपनी दाहकता छोड़कर शीतलताका रूप धारण कर उनके कार्यमें सहयोग किया। विषधर सर्पोंकी माता सुरसा अमृतोपम आशीर्वाद देकर गयी, शत्रुका सगा भाई विभीषण राक्षससे 'रामदास' बन गया, अगाध और अपार समुद्र गो-पद-जलकी भाँति लाँघा जा सका तथा धधकती हुई अग्निको अपनी पूँछमें बाँधकर हनुमानजी लंकाको जला सके।

अनिच्छित होते हुए भी सच्चे साधकको सेवाके लिये सिद्धियाँ अपने-आप सदैव तैयार रहती हैं। अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व—इन अष्ट सिद्धियोंने रामकार्य-सम्पादनमें हनुमानजीको सहायता देनेके उद्देश्यसे होड़ लगा रखी थी। लघुरूप धारण करनेमें अणिमा, विशाल रूप धारण करनेमें महिमा, गुरु (अधिक भारवाला) बननेमें गरिमा, विशाल होते हुए भी हलकापन लानेमें लघिमा, अलभ्य वस्तु उपलब्ध करने-करानेमें प्राप्ति, राम-कार्यके लक्ष्यको पूरा करनेमें प्राकाम्य, निर्भयता लानेमें ईशित्व तथा विपक्षीको भी वशमें कर लेनेमें वशित्व-नामकी सिद्धियोंने हनुमानजीकी स्वतः सहायता की।

वैसे तो सम्पूर्ण संसार पञ्चतत्त्वोंके वशमें है, किंतु राम-कार्य अथवा राष्ट्र-कार्यके लिये सर्वस्व-समर्पण करनेकी दृढ़ भावना रखनेवाला साधक इन पञ्चतत्त्वोंको अपने वशमें कर लेता है। वायु, आकाश, पृथ्वी, अग्नि तथा जल—इन सभीने हनुमानजीको समयोचित योगदान दिया। पवनदेवने उनचास पवन चलाकर, आकाशने हनुमानजीकी गर्जनाके स्वरको और अधिक गम्भीर एवं भयानक बनाकर, पृथ्वीने देहकी गरुताको हलका करके, अग्निने हनुमानजीकी रक्षा करते हुए लंकाको जलाकर तथा जलने आग बुझाने और श्रम दूर करनेमें उनका पूर्ण सहयोग किया।

जिस साधकमें सेवाकी इतनी तल्लीनता एवं इतनी तत्परता हो कि वह श्रम करनेमें ही विश्राम तथा स्वत्व-परित्यागमें ही सर्वस्वकी प्राप्ति और राम-कार्य (राष्ट्र-कार्य) सम्पादित करनेमें ही अपने जन्मकी सार्थकता और सफलता समझता हो, उसके लिये फिर किसी भी प्रकारकी शक्ति, सम्पत्ति, भक्ति अथवा मुक्ति असम्भव नहीं रह जाती। यही कारण है कि भगवान् श्रीरामने हनुमानजीको सब कुछ देकर भी उनका सदैवके लिये ऋणी होना स्वीकार किया और सीताजीने उन्हें गृहीता न बनाकर 'अष्टसिद्धि और नवनिधिका दाता' बना दिया।

अन्य वस्तुओंकी कौन कहे, अपना जीवन भी हनुमानजीको अपने लिये नहीं, राम-कार्य—राष्ट्र-कार्यके लिये ही प्यारा था, तभी तो वे राम-कार्य सम्पादित करके कालके गालमें—सुरसाके मुखमें प्रवेश करनेको तैयार थे। ऐसे दृढ़व्रती साधक, आराधक और राम-सेवक श्रीहनुमानजीको कौन परास्त कर सकता है। इसीलिये तो वे वानरत्वसे नरत्व और फिर देवत्व प्राप्त करके इस मृत्युलोकमें भी सदाके लिये अमर हैं।

श्रीहनुमानका व्यक्तित्व

(लेखक—श्रीदेवीरत्नजी अवस्थी 'करील')

मनुष्यके रूपमें अवतरित एवं दैवी सम्पदाओंसे परिपूर्ण महापुरुषोंके चरित्रोंके मानवीय आचरणोंका अध्ययन, मनन, चिन्तन एवं तद्वत् आचरण हमारे लिये बड़ा लाभदायक सिद्ध होता है। वाल्मीकीय रामायणमें आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने स्पष्ट लिखा है कि 'भगवान् विष्णुके रामरूपमें इस धराधामपर अवतरित होनेके साथ ही अनेक देवताओं-दैवीशक्तियोंने उनकी सहायताके लिये भूलोकमें अवतार धारण किया।' सबके पालक विष्णु जब मानव बने—नारायणसे नर होकर पृथ्वीपर अवतरित हुए, तब अवश्य ही जो असीम था, वही स्वयं सीमित हो उठा। सीमित होनेके कारण ही विष्णुके अवतार श्रीरामने प्राय: सर्वत्र मनुष्यवत् आचरण किया और अपने समस्त जीवनमें उन्होंने जिस प्रकारके कार्य किये, वे आजके इस युगमें भी उतने ही अनुकरणीय और व्यावहारिक बने हुए हैं, जितने उस परम पुरातन युगमें थे, जिसमें श्रीराम, वाल्मीकि और हनुमान साथ-ही-साथ विद्यमान थे।

हनुमानजीका आदिवृत्त और उनकी विद्वत्ता

हनुमानजीके पिताका नाम केसरी था। उनकी जननी थीं महासती अञ्जना। केसरी और अञ्जना कितने सफल पिता-माता थे, इसकी पूर्ण कल्पना आपको तभी हो सकती है, जब भारतवर्षभरमें व्याप्त हनुमत्पूजासे आप परिचित हों। यद्यपि वाल्मीकीय रामायण श्रीरामचरित है, हनुमच्चरित नहीं, पर हनुमच्चरित्र भी उसका परम अविभाज्य अङ्ग है। फिर भी उसके अनुसार यह सिद्ध होता है कि केसरी और अञ्जनाने अपने इस एकमात्र सत्पुत्रकी शिक्षा-दीक्षाका समुचित प्रबन्ध किया था। हनुमान अपने युगके विद्वानोंके शिरोमणियोंमेंसे एक थे। सम्पूर्ण ऋग्वेदके ज्ञान-विज्ञानपर उनका पूर्ण अधिकार था। यजुर्वेदके कर्म-विज्ञानके दुरूह रहस्योंके वे पूर्ण ज्ञाता थे। सामवेदके उपासना-विज्ञानके वे एक तत्त्वज्ञ मनीषी थे। चारों वेदोंके ज्ञान, कर्म और उपासनाके तीनों धर्ममार्गोंके वेत्ता हनुमान जितने विद्वान् थे, उतने ही आचरण-सम्पन्न भी थे। उनकी विद्वत्ता उनके सम्पूर्ण आचरणमें उतरी हुई थी। उनकी कथनी और करनीमें कोई अन्तर नहीं था। वे कोरे उपदेशक ही नहीं थे, बल्कि उनका सारा सदाचार उनके नित्यके कार्योंमें प्रतिबिम्बित होता था। परमात्माके मुखसे उत्पन्न हुए ब्राह्मणत्वके वे तपोबल थे, उनके बाहुओंसे उद्भूत होनेवाले क्षत्रियत्वके वे वीर्य-बल थे, उनके जङ्घस्थलोंसे उत्पन्न होनेवाले वैश्यत्वके वे पोषक-बल थे और उन्हींके चरणोंसे प्रसूत शूद्रत्वके सेवा-बल थे। इस प्रकार हमारे हनुमान वैदिक वर्ण-व्यवस्थाके साकार प्रतिरूप थे। वे संसारभरके ज्ञान, वीर्य, पोषण और कर्म-बलका प्रतिनिधित्व एक साथ करते थे और उनका सारा धर्माचरण उनके कार्योंमें प्रविष्ट था। ऐसे ही धर्म-धुरंधरोंके लिये तो तुलसीदासजीने ये शब्द कहे हैं—*'जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥'* भगवान् श्रीरामसे जब हनुमान पहले-पहल मिले, तब उनकी बातचीतसे भगवान् अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने लक्ष्मणसे उनकी भूरि-भूरि सराहना की। हनुमानकी विद्वत्ता और उनकी प्रभावशालिनी वाक्-शक्तिकी प्रशंसा जिनके द्वारा की गयी है, उनके लिये स्वयं वाल्मीकि लिख गये हैं—'**रामो द्विर्नाभिभाषते।**— श्रीराम दो प्रकारकी बातें नहीं कहते।' श्रीरामके इस कथनमें किसी प्रकारकी अतिशयोक्ति नहीं खोजी जा सकती।

मन, कर्म और वाणीकी एकता

हनुमानजी स्वयं महामनस्वी व्यक्ति थे। उनका मन जितना पवित्र और सबल था, उतने ही उनके कर्म भी पवित्र और सबल थे। उनका मन और उनके कर्म जिस प्रकार पवित्र और सबल थे, उसी प्रकार उनकी वाणी नितान्त निष्कपट, यथार्थ और ओजस्विनी थी। इस प्रकार शुद्ध मन, शुद्ध कर्म और शुद्ध वाग्बलवाले श्रीहनुमान सदैव सत्यके ही पक्षधर बने रहे और उसी सत्यमें एकाकार होकर वे उसके लिये प्रत्येक संकट झेलनेको तत्पर रहते थे। इसके प्रमाणके लिये वाल्मीकीय रामायणका महान् आधार हमारे सम्मुख आज भी विद्यमान है।

श्रीहनुमान आजके युगके लोगोंकी भाँति उगते सूर्यके पुजारी नहीं थे। उनको वालीके बल, प्रताप, ऐश्वर्य और राज्यसे कोई प्रयोजन न था। वे उन सुग्रीवके साथ थे,

जिनके पक्षमें सत्यको छोड़कर और कुछ था ही नहीं। श्रीहनुमानमें ऐसी क्षमता थी कि वे धर्म और सत्यके पक्षका तथा अधर्म और असत्यके पक्षका अन्तर तुरंत समझ लेते थे और तत्क्षण ऐसा निर्णय करते थे, जो स्थायी होता था। संसारका कोई भी प्रलोभन उन्हें उससे डिगा नहीं सकता था। अपनी महती प्रज्ञाके द्वारा उन्होंने श्रीरामके उस सत्यमार्गकी महत्ता पहचान ली थी, जिसके लिये यह घोषित हो चुका है—'**यतो धर्मस्ततो जयः।**'

श्रीरामका पक्षधर होना सहज काम नहीं था। श्रीरामके पक्षमें किसी भी प्रकारके भौतिक सुखोंकी प्राप्ति सम्भव नहीं थी। उनके पक्षधरके लिये यह अनिवार्य था कि वह सत्यकी ओरसे असत्यसे संघर्ष करे। वाली और रावण-जैसे असत्योन्मुख और सत्ता-सम्पन्न विपक्षियोंका विरोध झेलना कोई सरल कार्य नहीं था। यह विरोध श्रीहनुमानपर न तो सुग्रीवके द्वारा लादा गया था और न श्रीरामके ही द्वारा यह उनपर मढ़ा गया था। यह उनके स्वयंके तत्त्व-चिन्तनका परिणाम था। एक सत्याग्रही स्वयंसेवककी भाँति उन्होंने स्वयं ही इस विरोधका वरण किया था। इसीलिये वे जीवनभर सुग्रीवके सचिव और श्रीरामकी सेनाके स्वयंसेवक बने रहे। श्रीरामकी महती कृपा प्राप्त करके भी उन्होंने सदैव सुग्रीवको ही अपना नेता और अधिपति माना, यह उनकी एक बड़ी विशेषता थी। श्रीराम और सुग्रीवको जीवनभरके लिये एक करनेमें हनुमानने अपनी जिस विलक्षण प्रतिभाका परिचय दिया था, उसी विलक्षण शक्तिका सतत परिचय देते हुए वे सुग्रीवके सचिव और श्रीरामके सेवक बने रहे।

श्रीहनुमानका सत्यार्पित जीवन

श्रीहनुमानने अपना सारा जीवन सत्यको समर्पित कर रखा था। सत्यके लिये समर्पित होकर उन्होंने अपने-आपको श्रीरामकार्यमय बना डाला था। विषम परिस्थितियोंमें भी उन्होंने भ्रष्टाचारके सम्मुख घुटने नहीं टेके। उन्होंने उस समय अपने राज्यके युवराज अङ्गदको भी धीरज बँधाया, जब वे मृत्युसे डरकर अपने कर्तव्यधर्मसे च्युत होने जा रहे थे। जब श्रीहनुमान समुद्र पार करनेके हेतु वानरोंसे विदा होने लगे, वह समय भी बड़ा विषम था। न जाने कौन-सी विपत्ति उनके सामने आ जाय! समुद्रमें प्रविष्ट होना मृत्युके मुखमें ही प्रविष्ट होना तो था। फिर समुद्रके उस पार एकाकी हनुमानके सामने शत्रुओंका वह भयंकर साम्राज्य था, जिसकी तुलनामें संसारकी सभी भीषणताएँ फीकी हो जाती थीं। यदि हम अपने-आपको श्रीहनुमानके स्थानपर रखकर परिस्थितिका विवेचन करें, तभी हम यह समझ पायेंगे कि श्रीहनुमानमें कितनी अधिक सत्यनिष्ठा थी। उनमें कैसा ज्वलन्त शौर्य था और कितना निर्भीक था उनका स्वभाव! कितना साहस था उनमें!

महाविपत्तिका साक्षात्कार

महाविपत्ति साकार हो उठी! श्रीहनुमान शत्रुपक्षके बंदी हो गये। उन्हें अपमानपूर्वक मारा-पीटा गया। तिरस्कारपूर्वक बाँधकर, नगरकी सड़कोंपर पैदल चलाकर उन्हें राज-दरबारमें उस सम्राट्के सम्मुख उपस्थित किया गया, जिसके आतङ्कसे उस युगकी धरती त्राहि-त्राहि कर रही थी। ऐसे सम्राट्के सम्मुख बंदी होकर जानेकी कल्पना अपने लिये कीजिये और तब सोचिये कि श्रीहनुमान कितने साहसी, कितने निर्भीक और कितने श्रीरामार्पित—सत्यार्पित थे।

सम्राट्की ओरसे लंकाके साम्राज्यके महामन्त्री प्रहस्तने जब उनका परिचय जानना चाहा, तब मृत्युके मुखमें खड़े होते हुए भी बन्धनबद्ध हनुमानने जैसा ओजस्वी वक्तव्य दिया, उसकी प्रशंसा करते हुए वाल्मीकि कहते हैं कि 'उनके उस वक्तव्यका प्रत्येक शब्द सार्थक था और केवल एक ही अर्थ देनेवाला था'। श्रीहनुमानकी वह वक्तृता वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डमें विस्तारसे है, अतः स्थानाभावके कारण यहाँ उसे नहीं दिया जा रहा है।

सार्थक और एकार्थक शब्द भी हृदयकी भाषामें बोले जायँ तो उनका अधिक प्रभाव पड़ता है। पर हृदयकी भाषामें बोलनेवाले बिरले ही महापुरुष होते हैं। श्रीहनुमान ऐसे ही महापुरुष थे। श्रीहनुमानका आशीर्वाद पाकर जब श्रीविवेकानन्द हृदयकी भाषामें अमेरिकाकी धर्मसभामें यों बोले—'बहनो और भाइयो!' तब वहाँ बैठे हुए सभी लोग उनके भाई-बहन बन गये। श्रीहनुमानको पूजनेवाले लोकमान्य श्रीतिलक जब हृदयकी भाषामें गरजकर गोरे अंग्रेजोंके समूहमें बोले—'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है', तब तत्क्षण स्वराज्यकी आधारशिला गढ़ी जाने लगी।

श्रीहनुमानकी उस सार्थक और केवल एकार्थक शब्दोंवाली तथा अपने हृद्गत भावोंको व्यक्त करनेवाली वक्तृताका क्या प्रभाव पड़ा, वाल्मीकीय रामायणमें स्पष्ट वर्णित है। उस विलक्षण प्रभाववाली वक्तृताका प्रभाव

यह पड़ा कि लंकाकी प्रजाका बहुमत श्रीरामके पक्षमें हो गया। वहाँके सम्राट्की पत्नी श्रीरामके पक्षमें हो गयी, उसका भाई श्रीरामके पक्षमें हो गया और उसका नाना भी श्रीरामके पक्षमें हो गया। उसके मन्त्रिमण्डलके अनेक प्रभावशाली सदस्य अपने पक्षको अपराधी समझने लगे और स्वयं रावण भी मन-ही-मन अपनेको दोषी समझने लगा। वाल्मीकीय रामायणसे यह भी ज्ञात होता है कि श्रीहनुमानकी उस वक्तृताके प्रभावके कारण ही रावणकी सेनाका और उसके साम्राज्यकी जनताका मनोबल इतना गिरा कि उनकी पराजय अवश्यम्भावी हो गयी। लंकाके साम्राज्यके सारे अङ्गोंके मनोबलको गिरानेके कार्यमें श्रीहनुमानके व्यक्तित्व और उनके वक्तृत्वने जो भूमिका निबाही है, उसका मनकी आँखोंसे सम्यक् प्रत्यक्षीकरण आवश्यक है।

श्रीहनुमानके व्यक्तित्वको पहचाननेके लिये यह भी आवश्यक है कि हम उनके चरित्रकी मानवी भूमिकाके महत्त्वको समझें। यदि हम यह विश्वास करते हों कि श्रीरामके रूपमें स्वयं भगवान् विष्णु और मरुत्पुत्रके रूपमें स्वयं शिव अवतरित हुए थे, तब भी हमको यह समझना चाहिये कि दैवी शक्तियाँ दो उद्देश्योंसे अवतरित होती हैं। इन उद्देश्योंकी सूचना गीताद्वारा हमें आज भी प्राप्त होती है। इन दोनों उद्देश्योंमें पहला उद्देश्य है—'धर्मसंस्थापन' और दूसरा उद्देश्य है—'दुष्टसंहार'। इनमें भी ध्यान देनेकी बात यह है कि दुष्टसंहारको पहला स्थान प्राप्त नहीं है; पहला स्थान धर्म-संस्थापनको दिया गया है। धर्म-संस्थापनके लिये जब भगवान् और देवता मनुष्य-समाजमें अवतरित होते हैं, तब ठीक वैसा ही आचरण करते हैं, जो धर्मानुकूल और मनुष्यों-जैसा ही हो। भगवान् श्रीराम और रामसेवक हनुमान यावज्जीवन संहारकर्ममें ही व्यस्त नहीं रहे, वे समाजके धर्मसंस्थापनके कार्यमें अग्रणी बनकर जीवनभर उसका नेतृत्व करते रहे और जब अत्यन्त आवश्यक हो गया, तभी उन्होंने शस्त्रास्त्रोंका उपयोग किया। इसलिये यह आवश्यक है कि हम हनुमच्चरित्रकी मानवीय भूमिकाको अपने जीवनमें उतारें और युग-युगमें व्याप्त धर्म-संस्थापनके कार्यमें उनके सहयोगी बनें।

ज्ञानिनामग्रगण्य श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीबाबूरामजी द्विवेदी, एम्० ए०, बी० एड्०, 'साहित्यरत्न')

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥[१]

श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्डके मङ्गलाचरणमें पवनसुत हनुमानकी बल-बुद्धि-विद्या-युक्त सेवाभाव-संवलित कर्तव्यनिष्ठा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी यश:प्रशस्तिमें पर्यवसित होकर उन्हें अपना ऋणी बनाकर[२] लंकाकाण्डमें रावण-कुम्भकर्णादि दुर्दान्त राक्षसोंके विनाशकी ओर अग्रसर होती है।

भगवान् श्रीराम हनुमानजीद्वारा अनुष्ठित 'रामकाज' को, जिसको पूर्ण किये बिना उन्हें विश्राम नहीं है,[३] अपने प्रति उपकार मानते हुए कहते हैं—'हे हनुमान! तुम्हारे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तुम्हारा क्या प्रत्युपकार (बदलेमें उपकार) करूँ; मेरा मन तुम्हारे सम्मुख नहीं हो सकता।'[४]

श्रीहनुमानकी अघटन-घटना-पटीयसी बौद्धिक शक्तिद्वारा सम्पन्न—सीतान्वेषण, मेघनाद-वध, लक्ष्मणकी शक्तिकृत मूर्च्छा-निवृत्ति आदि महत्त्वपूर्ण कार्योंसे प्रभावित होकर गोस्वामी तुलसीदासने विभिन्न स्थलोंपर विश्वासपूर्वक उद्घोष किया है—

(क) **मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा।**
राम ते अधिक राम कर दासा॥[५]

१. रा० च० मा०, सुन्दरकाण्ड, श्लोकसंख्या ३
२. सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं। (रा० च० मा०, सुन्दर० ३२।३$\frac{१}{२}$)
३. राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥ (मानस ५।१)
४. हनूमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम्। उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिण:॥ (अध्यात्मरा० ५।५।६०)
५. रा० च० मा०, उत्तर० ११९।८।

(ख) **साहब तें सेवक बड़ो जो निज धरम सुजान।**
राम बाँधि उतरे उदधि लाँघि गए हनुमान॥[१]

(ग) **पाहि रघुराज पाहि कपिराज रामदूत!**
रामहूँ की बिगरी तुम्हीं सुधारि लई है॥[२]

ऐसे उत्तम आदर्शयुक्त बुद्धिमान् सेवककी, जो स्वामी (श्रीराम)-द्वारा दुष्कर-कार्यमें नियुक्त होकर, उसे (सीतान्वेषण-कार्य) पूरा करके तदनुरूप अन्य कार्य (लंका-दहन) भी सम्पन्न करते हैं[३]—प्रार्थना करते हुए गोस्वामी तुलसीदास उपर्युक्त श्लोकमें कहते हैं—'अतुलनीय बलके भण्डार, सुवर्णपर्वतके समान कान्तियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वनको ध्वंस करनेके लिये अग्निरूप, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणोंके निधान (कोश), वानरोंके स्वामी और श्रीरघुनाथजीके प्रिय भक्त पवनतनय श्रीहनुमानजीको मैं प्रणाम करता हूँ।'

हनुमन्नामका शास्त्रीय आधार

हन्+उन्=हनु। स्त्रीत्वपक्षे ऊङ्-हन्+ऊङ्=हनू+ मतुप् =हनुमत् अथवा **हनूमत्=हनुमान्** या **हनूमान्।**

ज्ञानिनाम् अग्रगण्यः—अग्रगन्ता यः स हनुमान्।
वाल्मीकिरामायणमें हनुमन्नामके दोनों रूप मिलते हैं—

'भृत्यकार्यं हनुमता सुग्रीवस्य कृतं महत्।'
(वा० रा० ६।१।६)

'तन्नियोगे नियुक्तेन कृतं कृत्यं हनूमता।'
(वा० रा० ६।१।१०)

आदिकाव्यमें हनूमानके आविर्भाव और नामके सम्बन्धमें इस प्रकार उल्लेख मिलता है कि ''उदयगिरिके शिखरपर उनका जन्म हुआ। वे सूर्यको लाल फल समझकर उसे पानेके लिये ऊपर उड़े। इन्द्रकृत वज्र-प्रहारद्वारा पवनपुत्रके चिबुकका वामभाग खण्डित हो गया और तभीसे वे 'हनुमान' कहलाये।[४]''

'चम्पू-रामायण' से भी इन्द्रकृत हनुमानके हनुभङ्गकी पुष्टि इस प्रकार होती है—'इन्होंने विद्याद्वारा सूर्यका पुत्रत्व (शिष्यत्व) और जन्मद्वारा पवनपुत्रत्व प्राप्त किया। ये इन्द्रके वज्र-प्रहारसे हनुभङ्गरूप चिह्नसे युक्त हैं और इन्हें रावणके यशरूप चन्द्रमाका शरीरधारी कृष्णपक्ष कहते हैं।'[५] परंतु 'पद्मपुराण' में 'हनुमान' नामके विषयमें विचित्र कल्पना (उक्ति) है—''हनुरुह' नामक नगरमें बालक (हनुमान)-ने जन्म-संस्कार प्राप्त किया, इसीलिये वह 'हनुमान' के नामसे प्रसिद्ध हुआ[६]।'

हनुमन्नाम-विषयक इन्द्रकी उक्ति समीचीन प्रतीत होती है। वे कहते हैं—''मेरे हाथसे छूटे हुए वज्रद्वारा पवनसुतकी हनु (ठुड्डी) टूट गयी, इसीलिये इस कपिश्रेष्ठका नाम 'हनुमान' (हनूमान) होगा।[७]

विद्या (ज्ञान)-के स्रोत श्रीहनुमान

आदिकाव्यके अनुसार ब्रह्माद्वारा प्रेरित होकर सूर्यदेवने बालक हनुमानको अपने तेजका सौवाँ भाग प्रदान करते हुए आशीर्वाद (वरदान) दिया कि 'मैं इसे शास्त्र-ज्ञान दूँगा, जिससे यह श्रेष्ठ वक्ता होगा। शास्त्र-ज्ञानमें इसकी समता करनेवाला कोई नहीं होगा।[८]

'पद्मपुराण' में हनुमानकी पूँछकी विद्यानिर्मित पाशसे तुलना की गयी है और कहा गया है कि 'उसके द्वारा वे किसी वीरको उसी प्रकार आकृष्ट कर लेते थे, जिस प्रकार कोई पुरुष स्नेहद्वारा अपने मित्रको खींच लेता है।[९]'

श्रीआदि शंकराचार्यने श्रीहनुमानके **'ज्ञानिनामग्रगण्य'** होनेका मूल स्रोत भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी उस ज्ञान-मुद्राको बताया है, जिसके अनुसार वे अपने सामने हाथ जोड़कर खड़े हुए हनुमान आदि भक्तोंको अपनी कल्याणकारिणी चिन्मुद्रासे ज्ञान प्रदान करते रहते हैं।[१०]

वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डमें एक प्रसङ्ग आता है। जब पृथ्वीपर रावण (**रावयति इति रावणः**—संसारको रुलानेवाला)-का आतङ्क छा गया, सर्वत्र

---

१. दोहावली ५२८।
२. कवितावली, उत्तरकाण्ड १७६।
३. यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्त्रा कर्मणि दुष्करे। कुर्यात् तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम्। (वा० रा० ६।१।७)
४. तदा शैलाग्रशिखरे वामो हनुरभज्यत। ततो हि नामधेयं ते हनुमानिति कीर्तितम्। (वा० रा० ४। ६६। २४)
५. तपनपवनयोर्यः प्राप्तवान् पुत्रभावं शतमखकृतपालिं विद्यया जन्मना च।
स तु दशमुखकीर्तिस्तोमसोमस्य पक्षश्चरम इव तनूमान् प्राप रामं हनूमान्॥ (चम्पूरामायण ४। १०)
६. पुरे हनुरुहे यस्माज्जातः संस्कारमाप्तवान्। हनुमानिति तेनागात् प्रसिद्धिं स महीतले॥ (पद्मपुराण)
७. मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथाहतः। नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति॥ (वा० रा० ७। ३६। ११)
८. तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति। न चास्य भविता कश्चित् सदृशः शास्त्रदर्शने॥ (वा० रा० ७। ३६। १४)
९. कश्चिल्लाङ्गूल पाशेन विद्यारचितमूर्तिना। आकर्षत् परमं वीरं स्नेहेन सुहृदं यथा॥ (पद्मपुराण)
१०. पुरः प्राञ्जलीनाञ्जनेयादिभक्तान् स्वचिन्मुद्रया भद्रया बोधयन्तम्…। 'रामं भजेऽहम्' (श्रीरामभुजङ्गप्रयातस्तवराज ७)

त्राहि-त्राहि मच गयी, तब सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंके संहारहेतु, धर्मकी स्थापना करनेकी अपनी प्रतिज्ञाको[१] चरितार्थ करते हुए भगवान् विष्णु महामनस्वी राजा दशरथके यहाँ पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए।[२] उस समय ब्रह्माजीकी प्रेरणासे वायुदेवने हनुमान नामक ऐश्वर्यशाली वानरको उत्पन्न किया। उनका शरीर वज्रके समान सुदृढ़ था। वे उड़नेमें गरुडके समान तेज थे। सभी श्रेष्ठ वानरोंमें वे सबसे अधिक बुद्धिमान् और बलवान् थे।[३]

इस प्रसङ्गसे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहनुमानकी बुद्धिमत्ता और शक्तिसम्पन्नता जन्मजात थी। परंतु शास्त्रोंके स्वाध्यायद्वारा उन्होंने विशेष ज्ञानका अर्जन किया था—यह बात भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके कथनसे सिद्ध होती है। जब शुद्ध संस्कृत भाषामें हनुमानजी श्रीराम-लक्ष्मणको नर-नारायण कहते हैं, तब "भगवान् श्रीराम लक्ष्मणको संकेत करते हैं कि देखो, अवश्य ही इस ब्रह्मचारी (हनुमान)-ने सम्पूर्ण शब्दशास्त्र (व्याकरण)-का अनेक बार अध्ययन किया है। इसने इतनी बातें कहीं, पर इसके बोलनेमें कहीं कोई भी अशुद्धि नहीं हुई।"[४]

आदिकाव्यमें तो हनुमानके शास्त्र-ज्ञान-स्रोतका विस्तृत वर्णन मिलता है। सुग्रीवद्वारा प्रेषित हनुमानकी शुद्ध वक्तृता सुनकर भगवान् श्रीराम कहते हैं—'हे लक्ष्मण! जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा न मिली हो, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया हो तथा जो सामवेदका विद्वान् न हो, वह इस प्रकार सुन्दर भाषामें वार्तालाप नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरणका कई बार स्वाध्याय किया है; क्योंकि बहुत-सी बातें बोल जानेपर भी इनके मुँहसे कोई अशुद्धि नहीं निकली।'[५]

ज्ञानियोंमें प्रमुख श्रीहनुमान

हनुमानजीको ज्ञानियोंमें सर्वश्रेष्ठ और वीरोंमें अद्वितीय शक्तिशाली कहा गया है। ज्ञानिनामग्रगण्य श्रीहनुमानका मङ्गलमय विग्रह बुद्धि-कौशल और अतुल बल-वैभवका समन्वित रूप है; इसीलिये जहाँ-कहीं भी उनके ज्ञानकी प्रशंसा की गयी है, वहाँ उनकी अमोघ शक्ति और अलौकिक पराक्रमकी ओर भी संकेत किया गया है।

'पद्मपुराण' के अनुसार श्रीहनुमानको सभी विद्याएँ सिद्ध हो गयी थीं। वे प्रभावशाली, विनयशील और महाबलवान् थे तथा समस्त शास्त्रोंका अर्थ करनेमें कुशल और परोपकारपरायण थे।[६]

'रामरक्षास्तोत्र' के ३३वें श्लोकमें श्रीहनुमानजीको बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ (**ज्ञानिनामग्रगण्य**) बतलाते हुए श्रीबुधकौशिकमुनि उनसे प्रार्थना करते हैं 'जिनकी गति मनके समान और वेग वायुके समान है, जो परम जितेन्द्रिय एवं बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, उन पवननन्दन वानराग्रणी श्रीरामदूतकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।'[७]

महर्षि वाल्मीकिजीने समुद्रोल्लङ्घन-प्रसङ्गमें जाम्बवान्-द्वारा श्रीहनुमानजीकी बल-बुद्धिकी प्रशंसा करायी है। जाम्बवान् कहते हैं—'हे वानर-जगत्‌के वीर! सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हनुमान! तुम एकान्तमें आकर चुपचाप क्यों बैठे हो? कुछ बोलते क्यों नहीं?'[८]

'अध्यात्मरामायण' में हनुमानके बल और बुद्धिकी परीक्षा लेनेके निमित्त देवताओंद्वारा प्रेरित सुरसा (नागमाता) समुद्रके ऊपर उपस्थित होती है। हनुमानके बुद्धि-कौशल, साहस और निर्भीकताको देखकर वह स्तब्ध रह जाती है और पवनतनयको नमस्कार करते हुए एवं 'रामकाज' (सीताकी सुधि) विषयक प्रतिज्ञाको दुहराते हुए देख-सुनकर कहती है—'हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! जाओ, श्रीरामचन्द्रजीका कार्य सिद्ध करो।'[९]

गोस्वामी तुलसीदासने 'मानस' के आरम्भमें ही

---

१. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ (गीता ४। ८)
२. पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः। (वा० रा० १। १७। १)
३. मारुतस्यौरसः श्रीमान् हनूमान् नाम वानरः। वज्रसंहननोपेतो वैनतेयसमो जवे॥
सर्ववानरमुख्येषु बुद्धिमान् बलवानपि। (वा० रा० १। १७। १६-१७)
४. श्रीरामो लक्ष्मणं प्राह पश्यैनं वटुरूपिणम्। शब्दशास्त्रमशेषेण श्रुतं नूनमनेकधा॥
अनेन भाषितं कृत्स्नं न किंचिदपशब्दितम्। (अ० रा० ४। १। १७½)
५. नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः। नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्। बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥ (वा० रा० ४। ३। २८-२९)
६. सिद्धविद्यः प्रभावाढ्यो विनयज्ञो महाबलः। सर्वशास्त्रार्थकुशलः परोपकृतिदक्षिणः॥ (पद्मपुराण)
७. मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्। वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये॥
८. वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर। तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमन् किं न जल्पसि॥ (वा० रा० ४। ६६। २)
९. गच्छ साधय रामस्य कार्यं बुद्धिमतां वर॥ (अ० रा० ५। १। २३)

श्रीसीतारामके गुण-समूहरूपी पवित्र वनमें विहार करनेवाले विशुद्ध विज्ञानसम्पन्न कवीश्वर (वाल्मीकिजी) और कपीश्वर (हनुमानजी)-की वन्दना की है।[१]

श्रीहनुमानजी विवेकप्रधान वैराग्यादि गुणसम्पन्न उत्तम साधनाके प्रतीक हैं। आध्यात्मिक और यौगिक अर्थानुसार मानव-शरीरमें हनुमानजी शक्तिरूपमें और प्राणशक्तिरूपमें निवास करते हैं।[२] गोस्वामी तुलसी-दासजी 'विनयपत्रिका' में हनुमानकी शक्ति और बुद्धिकी प्रशंसा करते हुए उनकी प्रार्थना करते हैं—'हे पवनसुत! आप वेदान्तके जाननेवाले, नाना प्रकारकी विद्याओंके विशारद, चार वेद, छः वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष)-के ज्ञाता, ब्रह्मस्वरूपके निरूपक, ज्ञान-विज्ञान और वैराग्यके पात्र हैं। शुकदेवजी एवं नारदादि मुनि सदा आपकी निर्मल गुणावलीका गान किया करते हैं। आपकी जय हो।'[३] 'आपके समान भला ज्ञानकी खानि और सर्वज्ञ (सबके मनकी जाननेवाला) दूसरा कौन है।'[४]

श्रीहनुमानजीके स्वरूपमें ब्रह्मा, विष्णु और शंकरकी शक्तियोंका समन्वय करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं—'सृष्टिरचना करनेमें ब्रह्माके समान, विश्वका पालन-पोषण करनेमें भगवान् विष्णुके समान और संहार करनेमें शिवके समान शक्ति रखनेवाले श्रीहनुमान मरे हुएको जीवित करनेमें अमृत-सदृश हुए।'[५]

भगवद्विभूतियोंके निर्देशके प्रसङ्गमें गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है कि 'जो-जो ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त पदार्थ हैं, सबको मेरे तेजके अंशसे उत्पन्न हुआ समझो।'[६]

श्रीहनुमानजी भी भगवद्विभूतियोंमें श्रीसम्पन्न, ऐश्वर्ययुक्त और बल-बुद्धि-तेजसे परिपूर्ण कहे गये हैं। महाभारत-वनपर्व (तीर्थयात्रापर्व)-में भीमसेन और हनुमानके संवादका प्रसङ्ग ध्येय है। भीमसेन अपने बड़े भाई हनुमानजीका परिचय देते हुए कहते हैं—'वानरप्रवर हनुमान मेरे बड़े भाई हैं। अपने सद्‌गुणोंके कारण वे सर्वत्र प्रशंसनीय हैं। वे बुद्धिमान्, ऐश्वर्यशाली (श्रीमान्), धैर्यवान् और उत्साही हैं। रामायणमें उनकी बड़ी ख्याति है।'[७] भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवजीसे कहा है कि "षडैश्वर्ययुक्त महापुरुषोंमें मैं 'वासुदेव' हूँ, प्रेमी भक्तोंमें 'उद्धव', किम्पुरुषों (सेवकों)-में 'हनुमान' और विद्याधरोंमें 'सुदर्शन' हूँ।"[८]

'मानस' के चार आदर्श पात्र—लक्ष्मणजी, भरतजी, हनुमानजी और शंकरजी हैं। ये भगवान् श्रीरामके आदर्श सेवक हैं; परंतु शंकरजी स्वयं निर्णय देते हैं कि 'हनुमानसे बढ़कर श्रीरामका परम भक्त और आदर्श सेवक अन्य कोई नहीं है।'[९]

उद्धवसे ज्ञान-चर्चा करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'यज्ञोंमें ज्ञानयज्ञ, पुरोहितोंमें वसिष्ठ, युगोंमें सत्ययुग और सेवकोंमें हनुमान तथा कथावाचकोंमें वेदव्यास मैं ही हूँ।'[१०]

आदर्श सेवक हनुमान अपने स्वामी श्रीरामकी मर्यादाकी रक्षा करते हुए कहते हैं कि 'इहलौकिक कार्य-सिद्धि-हेतु राम-मन्त्रका उपयोग न करनेके लिये, ऐहिक कार्य-सिद्धि और संकटनिवारणार्थ मुझ रामसेवक (हनुमान)-का स्मरण करना चाहिये।'[११]

'महाबीर बिक्रम बजरंगी' (वज्राङ्गी), ***'बिद्या-बारिधि', 'बुद्धिबिधाता', 'ज्ञानिनामग्रगण्य'*** श्रीहनुमानजीका आश्रय ग्रहण करते हुए हम भी उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं और गोस्वामी तुलसीदासके शब्दोंमें पवनसुत श्रीहनुमानजीको प्रणाम करते हैं—'जो दुष्टरूपी वनको भस्म करनेके लिये अग्निरूप हैं, जो ज्ञानकी

---

१. सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ। वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥ (मानस १ श्लोक ४)

२. मानसपीयूष (भाग ५), किष्किन्धाकाण्ड।

३. जयति वेदान्तविद विविध-विद्या-विसद, वेद-वेदांगविद ब्रह्मवादी।
ज्ञान-विज्ञान-वैराग्य-भाजन विभो, विमल गुण गनति सुक-नारदादी॥ (विनय-पत्रिका २६।८)

४. तो सो ग्यान-निधान को सरबग्य बिया रे। (विनय-पत्रिका ३३।६)

५. रचिबे को बिधि जैसे, पालिबे को हरि, हर मीच मारिबे को, ज्याइबे को सुधा पान भो। (हनुमानबाहुक ११)

६. यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ (१०।४१)

७. भ्राता मम गुणश्लाघ्यो बुद्धिसत्त्वबलान्वितः। रामायणेऽतिविख्यातः श्रीमान् वानरपुंगवः॥ (म० भा०, वन० १४७।११)

८. वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम्। किम्पुरुषाणां हनुमान् विद्याध्राणां सुदर्शनः॥ (श्रीमद्भागवत ११।१६।२९)

९. देखिये, 'कल्याण', धर्माङ्क (सेवाधर्मके आदर्श)।

१०. सुखसागर, स्कन्ध ११, अध्याय १६

११. नैव योज्यो राममन्त्रः केवलं मोक्षसाधकः। ऐहिके समनुप्राप्ते मां स्मरेद् रामसेवकम्॥ (रामरहस्योपनिषद् ४।११)

घनमूर्ति हैं, जिनके हृदयरूपी भवनमें धनुष-बाण धारण किये श्रीरामचन्द्रजी निवास करते हैं'।[१]

हम उन अघटन-घटना-पटीयान् श्रीहनुमानजीका आश्रय ग्रहण करते हैं, जिनका आश्रय लेते हुए भगवान् श्रीरामने 'सीताजीकी खोज' के प्रसङ्गमें कहा था कि 'अत्यन्त बलशाली कपिश्रेष्ठ! मैंने तुम्हारे बलका आश्रय लिया है। पवनकुमार हनुमान! जिस प्रकार श्रीजनकनन्दिनी सीता प्राप्त हो सके, तुम अपने महान् बल-विक्रमसे वैसा ही प्रयत्न करो। अच्छा, अब तुम जाओ।'[२]

अन्तमें हम उन महावीर श्रीहनुमानजीकी विनती करते हैं, जिनके यशका श्रीरामचन्द्रजीने भी स्वयं (अपने श्रीमुखसे) वर्णन किया है।[३]

भगवान् श्रीरामके ज्ञानी भक्त श्रीहनुमान

(लेखक—वैद्य श्रीगुरुदत्तजी, एम्० एस्-सी०, वैद्यभास्कर, आयुर्वेद-वाचस्पति)

श्रीमद्भगवद्गीतामें भक्तोंके चार प्रकार बताये गये हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

(७।१६)

'हे अर्जुन! उत्तम कर्मवाले चार प्रकारके भक्तजन होते हैं—(१) अर्थार्थी, (२) आर्त्त, (३) जिज्ञासु और (४) ज्ञानी।' श्रीमद्भगवद्गीतामें तथ्य-कथनकी एक विशिष्ट शैली है। भगवान् श्रीकृष्ण परमात्माकी बात कहनेमें प्रथम पुरुषका उपयोग करते हैं, जिसे अंग्रेजीमें 'डायरेक्ट स्पीच' (Direct Speech)—कहा जाता है। वे वहाँ '**माम्**', '**मम**' इत्यादि शब्दोंका भी प्रयोग करते हैं और उनसे भगवान् श्रीकृष्णका अभिप्राय परमात्मासे ही होता है। ऐसा ही इस श्लोकमें कहा गया प्रतीत होता है कि परमात्माके भक्त चार प्रकारके होते हैं। परंतु परमात्माके अतिरिक्त अन्य देवी-देवता या महापुरुषकी उपासनासे भी मुक्ति हो सकती है। इस विषयमें भी भगवान् श्रीकृष्णने इसी प्रसङ्गमें आगे चलकर कहा है—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥

(गीता ७।२१)

'जो-जो भक्त जिस-जिस देवता-शरीरकी श्रद्धासे पूजा करनेकी इच्छा करता है, उस-उस (देवता)-में ही मैं उस (भक्त)-की श्रद्धाको स्थिर कर देता हूँ।' सशरीर देवताओं या महापुरुषोंकी भी भक्ति हो सकती है और परमात्मा उस भक्तकी श्रद्धाको उस देवता या महापुरुषमें स्थिर कर देते हैं और वह भक्ति फल-प्रदायिनी होती है—

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान्॥

(गीता ७।२२)

'वह (भक्त) उस श्रद्धासे युक्त हुआ उस देवताके पूजनकी चेष्टा करता है और परमात्माकी निश्चित प्रक्रियानुसार उस (देवता)-से वह निस्संदेह इच्छित भोगोंको प्राप्त करता है।'

पवनसुत श्रीहनुमान कोसलनरेश महाराजा दशरथके पुत्र भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त थे। वाल्मीकीय रामायणके अवलोकनसे यह विदित होता है कि श्रीरामजीके वन-गमनका समाचार देशमें फैल चुका था। गृह-कलहसे कुलको बचानेके लिये भाईको राज-पाट देकर चौदह वर्षकी अवधिके लिये वनमें जानेकी बात ज्यों ही भगवान् श्रीरामके सामने आयी, वे किंचिन्मात्र भी शोक अथवा क्रोध प्रकट किये बिना ही वनको चल पड़े थे। इस महान् त्यागके समाचारसे विन्ध्याचलका केवल उत्तर-भाग ही नहीं, अपितु दक्षिणका भाग भी परिचित हो चुका था। शबरीके आश्रममें श्रीरामकी महिमाका समाचार उनके वहाँ पहुँचनेसे पहले ही पहुँच चुका था। इसी प्रकार श्रीरामके त्याग-तपस्याकी सूचना सुग्रीवादिको भी मिल चुकी थी।

श्रीहनुमानजी पम्पापुरके वनमें भ्रमण करनेवाले

१. प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन। जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥ (रामचरितमा०, बाल० १७)

२. अतिबल बलमाश्रितस्तवाहं हरिवर विक्रम विक्रमैरनल्पैः। पवनसुत यथाधिगम्यते सा जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व॥ (वा० रा० ४। ४४। १७)

३. महाबीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥ (रा० च० मा० १। १६। ५)

श्रीराम-लक्ष्मणका परिचय प्राप्त करनेके लिये एक ब्राह्मणके रूपमें उनके निकट आये और उनसे इन्होंने उस भयंकर वनमें घूमनेका कारण जाननेकी इच्छा प्रकट की, तब श्रीरामने अपना परिचय दिया। परिचय प्राप्त करते ही श्रीहनुमानने क्या किया?—

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥

(मानस ४। १। ३)

शिवजी उमाको सुना रहे थे कि जब हनुमानजीको पता चला कि पूर्वश्रुत महिमामय श्रीराम उनके सामने खड़े हैं, तब उनका तन और मन पुलकित हो उठा और वे श्रीरामका चरण स्पर्श करने लगे। दोनों भाइयोंका परिचय पाकर श्रीहनुमान समझ गये कि यह सम्मिलन एक ईश्वरीय संयोग है। श्रीहनुमानके मनमें भगवान् श्रीरामके प्रति श्रद्धा और भक्ति प्रथम दर्शनके समय ही उत्पन्न हो गयी थी। शूर-धीर-वीर पुरुषोंके अलौकिक कार्योंकी प्रशस्ति सुनकर लोग बिना उनको देखे ही उनके भक्त हो जाते हैं। इसके अनेक उदाहरण इतिहासके पृष्ठोंपर लिखे मिलते हैं। श्रीरामकी ख्याति पहले ही पम्पापुरमें और वैसे लंकामें भी पहुँच चुकी थी। रावणके भाई विभीषणको श्रीरामकी महिमाका ज्ञान था। जब लंकामें श्रीसीताकी खोज करते हुए श्रीहनुमानजी विभीषणके महलमें पहुँचे, तब वहाँ उन प्रभु-भक्तके निवास-गृहके लक्षण देखकर वे चकित रह गये—

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥
लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥

(मानस ५। ४। ४; ५। ५। १/२)

'श्रीहनुमानजीने वहाँ एक भवन देखा, जहाँ हरि-मन्दिर पृथक् बना था।····वे विचार करने लगे कि लंका तो नास्तिकोंका देश है, यहाँ किसी सज्जनका निवास विस्मयजनक है।' जब विभीषणका साक्षात्कार हुआ और—

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥

(मानस ५। ६)

'जब श्रीहनुमानजीने श्रीराम-कथा और अपना नाम बताया, तब उसे सुनते ही विभीषणके मन और शरीर—दोनों पुलकित हो उठे तथा वे भगवान्के गुण-ग्रामका स्मरण करके उसीमें मग्न हो गये।' यह श्रीरामके गुणोंकी महिमा थी कि हनुमान विभीषण और श्रीरामके दर्शनसे पूर्व ही उनके प्रशंसक और भक्त हो गये थे।

श्रीहनुमानजी कैसे थे, इसका वर्णन महर्षि वाल्मीकिजीने बहुत सुन्दर शब्दोंमें किया है। प्रथम भेटके बाद श्रीहनुमानके बारेमें श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा था—'जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा नहीं मिली हो, जिसने यजुः और सामवेद नहीं पढ़े हों, वह इस प्रकारकी सुन्दर भाषामें वार्तालाप नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरणका कई बार स्वाध्याय किया है; क्योंकि बहुत-सी बातें बोले जानेपर भी इनकी भाषामें कोई अशुद्धि नहीं हुई। सम्भाषणके समय इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंह तथा अन्य अङ्गोंमें भी कोई विकार प्रकट नहीं हुए। इन्होंने थोड़ेमें ही बड़ी स्पष्टताके साथ अपना अभिप्राय बता दिया है और किसी कर्ण-कटु शब्दका भी उच्चारण नहीं किया। हृदय, कण्ठ और मूर्धा—इन तीन स्थानोंद्वारा स्पष्टरूपसे अभिव्यक्त होनेवाली इनकी इस विचित्र वाणीको सुनकर किसका चित्त प्रसन्न न होगा?' (वा० रा० ४। ३। २८—३३)

अभिप्राय यह कि महर्षि वाल्मीकिजीके कथनानुसार श्रीहनुमान एक वेदज्ञाता और भाषाके विद्वान् थे तथा वे सभ्य-व्यवहार करना जानते थे। वाल्मीकीय रामायणमें वर्णित उस कालके दक्षिण पठारकी स्थितिका अध्ययन करनेसे ज्ञात होता है कि रावणद्वारा छिपायी गयी श्रीसीताजीको खोज निकालनेका काम सुगम नहीं था। यह कठिन एवं भयावह कार्य वही व्यक्ति कर सकता था, जिसकी श्रीरामके प्रति अगाध श्रद्धा हो। श्रीहनुमानजी ऐसे ही थे, तभी तो लंकामें जाकर घर-घरमें श्रीसीताको ढूँढ़ निकालनेका प्रयास उनके द्वारा सम्भव हो सका था।

वह स्थिति कितनी भयावह रही होगी, जब श्रीहनुमानको रावणके सम्मुख उपस्थित किया गया और उसे पता लगा कि यह श्रीरामका दूत और भक्त है तथा श्रीसीताका पता लगाने अशोक-वाटिकामें पहुँच गया है। श्रीहनुमानजी भी यही चाहते थे कि रावणको बता दिया जाय कि उन्हें श्रीसीताका पता चल गया है और अब लंकापर आक्रमण होगा। पर रावण इससे भयभीत नहीं हुआ था। उसे क्रोध अवश्य आया था कि एक व्यक्ति अकेला ही उस वाटिकामें घुस आया और वहाँतक पहुँच गया है, जो सर्वाधिक गोपनीय स्थान था। रावणसे जब श्रीहनुमानजीने कहा—

दूतोऽहमिति विज्ञाय राघवस्यामितौजसः।
श्रूयतामेव वचनं मम पथ्यमिदं प्रभो॥

(वा० रा० ५। ५०। १९)

'प्रभो! मैं अमिततेजस्वी श्रीरामजीका ही दूत हूँ, ऐसा जानकर आप मेरे इन हितकारक वचनोंको सुनें।'

मदोन्मत्त रावणको जब यह ज्ञात हुआ कि उसका विपक्षी महान् तेजस्वी है और उनके एक अनुचरने उसकी सुरक्षित नगरीमें आकर मनमाना उपद्रव मचाया है तो उसके क्रोधकी सीमा न रही। उस भयावह परिस्थितिमें भी श्रीहनुमानजी अपनी श्रद्धा और भक्तिके आस्पद श्रीरामका कार्य करनेके लिये वहाँ निर्भीक खड़े थे और रावणसे बातें कर रहे थे। इस सभामें वार्तालापके समय और पीछे दण्ड दिये जाते समय श्रीहनुमानजीके मनकी स्थिति स्थिर और सक्रिय रह सकी। इसमें हेतु थे केवल उनकी श्रीरामके प्रति भक्ति और श्रद्धा और ये ही श्रद्धा-भक्ति उन्हें सफलता दिलवा सकी थीं।

इतिहास साक्षी है कि सुग्रीवके सब सेनानियोंमें सर्वाधिक शौर्य और पराक्रमका प्रदर्शन भी हनुमानजीने ही किया था। जब किसी भक्तके मनमें अपने आराध्यदेवके लिये अनन्य भक्ति उमड़ पड़ती है, तब वह अपने आराध्यदेवके समान ही कार्य-सम्पादनकी अचिन्त्य सामर्थ्य पा जाता है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं हमारे श्रीश्रीहनुमानजी।

यह प्रसिद्ध है कि 'जो व्यक्ति जिस देवतामें अनन्य भक्ति करता है, उसमें उस देवताके गुण आ जाते हैं।' ऐसे ही श्रीरामके अद्वितीय शौर्य, बल, पराक्रम और ओजको श्रीहनुमानजीने प्राप्त किया।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि श्रीहनुमानजीकी श्रीरामके प्रति भक्ति किस प्रकारकी थी? पहले चार प्रकारके भक्तोंकी चर्चा हो चुकी है। यह भी पहले कहा जा चुका है कि श्रीरामकी महिमा सम्पूर्ण देशमें फैल चुकी थी। श्रीरामजीके श्रेष्ठ त्याग, तप:पूर्ण जीवन और धर्म-निष्ठाका ज्ञान श्रीहनुमानजीको था। इसी कारण वे मनसे तो पहले ही श्रीरामभक्त बन चुके थे, परंतु प्रथम भेंटमें जब उन्होंने श्रीरामके ओज:पूर्ण ब्रह्मचर्य-समन्वित सुन्दर शरीरको देखा, तब वे पुलकित मन और तनसे श्रीरामकी सेवाके लिये तैयार हो गये। इस भक्ति और सेवामें न तो किसी अर्थ-प्राप्तिकी इच्छा थी और न ही श्रीहनुमानजी स्वयं संकटग्रस्त आर्त थे। वे जिज्ञासु भी नहीं थे। वे ज्ञानी भक्त थे, श्रीरामजीके गुणोंका ज्ञान होनेपर ही वे श्रीरामभक्त हुए थे। ज्ञानी भक्तके विषयमें भगवान्‌ने कहा है—

'उदारा: सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।'

(गीता ७।१८)

'ये सभी (चारों प्रकारके भक्तजन) बहुत श्रेष्ठ हैं, परंतु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है।' अत: भगवान् श्रीरामको कोई कुछ भी माने—साक्षात् परमात्मा अथवा अतिमानव अथवा आदर्श मानव, श्रीरामभक्त श्रीहनुमान श्रीरामस्वरूप ही थे।

अतुलितबलधाम श्रीहनुमान

(लेखक—राष्ट्रपति-पुरस्कृत पं० श्रीजगदीशजी शुक्ल, साहित्यालंकार, काव्यतीर्थ)

'बलं बलवतां चाहम्' (गीता ७।११)—इस गीतोक्तिके अनुसार सभी बलवानोंके बल स्वयं भगवान् ही हैं। क्रुद्ध रावणने बंदी हनुमानजीसे जब पूछा कि ***'केहि कें बल घालेहि बन खीसा।*** (मानस ५। २०।$\frac{1}{2}$)—तूने किसके बलपर वनको उजाड़कर नष्ट कर डाला', तब शील और तेजके समन्वित रूप हनुमानजीने अत्यन्त निर्भीकताके साथ उस बलका स्पष्ट परिचय दिया—

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया।
पाइ जासु बल बिरचति माया॥
जाकें बल बिरंचि हरि ईसा।
पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन।
अंडकोस समेत गिरि कानन॥
धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता।
तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा।
तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली।
बधे सकल अतुलित बलसाली॥
जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥

(मानस ५।२०।२—४$\frac{1}{2}$; ५।२१)

माया, ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा शेषका

बल भी श्रीरामजीका ही बल है। जिनके बलके क्षुद्र अंशको पाकर संसारके क्षुद्र जीव भी बलवान् बनते हैं, जो अतुलित बलवानोंका भी वध करनेवाले हैं, वे ही भगवान् श्रीराम वस्तुतः अतुलितबलशाली हैं। '**जयत्यतिबलो रामः**' (वा० रा० ५। ४२। ३३) कहकर पवन-नन्दनने उन्हीं अतुलबली भगवान् श्रीरामका जय-जयकार किया है। जनकपुरके दूतोंने भी '***राजन रामु अतुल बल जैसें।***' (मानस १। २९२। १$\frac{1}{4}$) कहकर राजा दशरथसे उन्हीं श्रीरामजीके अतुलबलका बखान किया था। वे ही अतुलबली श्रीराम पवन-कुमारके हृदयागारमें धनुष और बाण धारण किये हुए नित्य निवास करते हैं—

'**जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥**'

(मानस १। १७)

वस्तुतः हनुमानजीका हृदय पवित्र एवं सुन्दर 'आगार' है। उसमें विहार करनेवाले हैं—अतुलितबली भगवान् श्रीराम; अतएव हनुमानजी उन अतुलितबली श्रीरामके धाम हैं। हनुमानजीका बल अपना बल नहीं है, वह तो अतुलितबली श्रीरामका ही बल है; हनुमानजी तो उस अतुलितबलके धाममात्र हैं। तभी तो गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने 'रामचरितमानस' के सुन्दरकाण्डमें '**अतुलितबलधामम्**' कहकर हनुमानजीकी वन्दना की है और 'हनुमानचालीसा' में भी '***रामदूत अतुलित बलधामा।***' लिखकर उनका जयजयकार किया है।

त्रेतायुगमें अतुलित बलशाली बहुत थे। खर, दूषण, त्रिशिरा, वाली, मेघनाद, रावणादि अतुलित बलशाली ही तो थे। वाली और रावण इनमें मुख्य थे; किंतु उन दोनोंका भी बल श्रीहनुमानजीके बलकी तुलनामें न्यून था। भगवान् श्रीरामने महर्षि अगस्त्यसे अपना यही विचार हनुमानजीके विषयमें बतलाया है—

अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च।
न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम॥
शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः॥

(वा० रा० ७। ३५। २-३)

'वाली और रावण, दोनोंका बल अतुलनीय था, पर इनका बल भी हनुमानके बलके समान नहीं है, ऐसा मैं समझता हूँ। शूरता, निपुणता, बल, धीरता, बुद्धि, नीति, विक्रम और प्रभावका हनुमानमें निवास है।' आगे फिर श्रीरामजीने महर्षिको समझाया—

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः॥
एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः॥
हनूमान् यदि मे न स्याद् वानराधिपतेः सखा।
प्रवृत्तिमपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान् भवेत्॥

(वा० रा० ७। ३५। ८—१०)

'युद्धमें यमराज, इन्द्र, विष्णु और कुबेरके वैसे वीरतापूर्ण कर्म नहीं सुने जाते, जैसे हनुमानके हैं। इन्हींके बाहुबलसे मैंने लंका, सीता, लक्ष्मण, विजय, राज्य, मित्र और बान्धवोंको पाया है। वानरराज सुग्रीवके मित्र हनुमान यदि मुझे न मिलते तो सीताका पता भी कौन लगा सकता?'

श्रीहनुमानने वालीका वध क्यों नहीं किया, इसका कारण भगवान् श्रीरामने महर्षिको बतलाया है—

किमर्थं वाली चैतेन सुग्रीवप्रियकाम्यया।
तदा वैरे समुत्पन्ने न दग्धो वीरुधो यथा॥
नहि वेदितवान् मन्ये हनूमानात्मनो बलम्।
यद् दृष्टवाञ्जीवितेष्टं क्लिश्यन्तं वानराधिपम्॥

(वा० रा० ७। ३५। ११-१२)

'उस समय जब सुग्रीव और वालीमें विरोध हुआ था, सुग्रीवका हित करनेके लिये हनुमानजीने तृणके समान वालीको क्यों नहीं जला दिया? सम्भवतः उस समय हनुमानको अपने बलका ज्ञान न था कि मैं वालीको मार सकता हूँ। इसी कारण उन्होंने प्राणोंके समान प्रिय वानरराज सुग्रीवको कष्ट उठाते देखा।' वस्तुतः हनुमानजीको ऋषि-शापवश अपने बलका स्मरण ही नहीं रहता था।

भगवान् श्रीरामको सम्पूर्ण हनुमच्चरित सुनाते हुए महर्षि अगस्त्यने भी हनुमानजीके गुणोंके सम्बन्धमें अपना निर्णय इस प्रकार दिया है—

पराक्रमोत्साहमतिप्रताप-
सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-
र्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके॥

(वा० रा० ७। ३६। ४४)

'भला, पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, कोमलता, न्यायान्यायका ज्ञान, गम्भीरता, चतुरता, बल

और धैर्यमें श्रीहनुमानसे अधिक इस त्रिलोकीमें कौन है?'

श्रीहनुमानजी रावणका भी वध कर सकते थे, परंतु रावण-वधका यश भगवान् श्रीरामको प्राप्त हो, इसी विचारसे इन्होंने स्वयं उसके वधकी उपेक्षा कर दी। हनुमानजी स्वयं भीमसेनको बतला रहे हैं—

भीमसेन न पर्याप्तो ममासौ राक्षसाधमः॥
मया तु निहते तस्मिन् रावणे लोककण्टके।
कीर्तिर्नश्येद्राघवस्य तत एतदुपेक्षितम्॥

(महा० वन० १५०।१८-१९)

'हे भीमसेन! वह राक्षसाधम रावण मेरे बराबरका बलवान् नहीं था। यदि उस लोकपीडकको मैं मार डालता तो राघवेन्द्र श्रीरामको यश नहीं मिलता; इसीसे मैंने उसकी उपेक्षा कर दी।' हनुमानजी चाहते तो लंकाके सारे राक्षसोंको अकेले ही मौतके घाट उतार सकते थे। ऋक्षराज जाम्बवान्से स्वयं उन्होंने कहा था—

'सहित सहाय रावनहि मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥

(मानस ४।२९।४$\frac{१}{२}$)

रावणको भी हनुमानजीके अतुलबलका पक्का ज्ञान था, तभी तो वह मेघनादको समझा रहा था—

न मारुतस्यास्ति गतिप्रमाणं च चाग्निकल्पः करणेन हन्तुम्॥

(वा० रा० ५।४८।११)

'वायुपुत्र हनुमानके सामर्थ्यकी इयत्ता नहीं है। वह कितना बली है, इसका निश्चय नहीं है। अग्निके समान तेजस्वी वह वानर किन्हीं साधनविशेषोंद्वारा नहीं मारा जा सकता।' अपने पाँच सेनापतियोंको भी रावणने हनुमानजीके बलके सम्बन्धमें समझाया था—

दृष्टा हि हरयः पूर्वं मया विपुलविक्रमाः।
वाली च सह सुग्रीवो जाम्बवांश्च महाबलः॥
नीलः सेनापतिश्चैव ये चान्ये द्विविदादयः।
नैव तेषां गतिर्भीमा न तेजो न पराक्रमः॥
न मतिर्न बलोत्साहो न रूपपरिकल्पनम्।
महत्सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम्॥

(वा० रा० ५।४६।१२—१४)

'मैंने विपुल पराक्रमी वाली, सुग्रीव, महाबली जाम्बवान्, सेनापति नील तथा द्विविद आदि अन्य वानरोंको भी देखा है, परंतु उनके कार्य इतने भयंकर नहीं हैं और न उनका इतना तेज और पराक्रम ही है, न उनके बुद्धि है, न बल है और न ऐसा उत्साह ही है। उनमें रूप बदलनेकी ऐसी शक्ति भी नहीं है। वस्तुतः वानरके रूपमें आया हुआ यह कोई बड़ा शक्तिशाली दिव्य प्राणी है।'

रावण तो अपने बलके समकक्ष किसीके बलको मानता ही नहीं था; फिर भी वह हनुमानजीके बलका लोहा तो मान ही गया था। अङ्गदके सामने उसने अपने बलकी बहुत डींग हाँकी, किंतु हनुमानजीका ध्यान आते ही वह यह स्वीकार करनेको विवश हो गया कि—

'है कपि एक महा बलसीला॥'
'आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा।'

(मानस ६।२२।२$\frac{१}{२}$, २$\frac{३}{४}$)

रावणकी यह स्वीकृति ही अतुलितबलधाम हनुमानजीके अतुल बलकी विजय-वैजयन्ती है। हनुमानजीका बलपारावार अपार और अथाह है। आजतक किसीने भी इन अतुलितबलधामके बलकी थाह नहीं पायी। जो युद्धमें सामने आ गया, उसे ही मुँहकी खानी पड़ी; चाहे वह भट हो या सुभट, महाभट हो या दारुण भट। अशोक-वाटिकाका युद्ध इसका प्रमाण है।

कई दिनोंके भूखे हनुमानजी पराम्बा श्रीजानकीसे आदेश लेकर मेघनादसे भी अधिक प्यारे रावणके अशोक-वनमें प्रविष्ट हुए। जब मधुर-मधुर फलोंका आहार पूरा हो गया, तब वृक्षोंको उखाड़ने-उजाड़नेका काम आरम्भ हो गया। जब पहरा देनेवाले भटोंने हस्तक्षेप किया, तब उनमेंसे जो सामने आ गये, वे तो सुरधाम चले गये और जो भाग गये, उन्होंने जाकर रावणको इसकी सूचना दी—

नाथ एक आवा कपि भारी।
तेहिं असोक बाटिका उजारी॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे।
रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥

(मानस ५।१७।२)

प्रहरी भटोंसे सूचना पाकर रावणने अपने ही तुल्य पराक्रमी अस्सी 'हजार' किंकर नामक राक्षसोंको, प्रहस्त-पुत्र जम्बुमालीको, सात मन्त्रिपुत्रोंको तथा पाँच सेनापतियोंको क्रमशः भेजा। उन्हें देखते ही युद्धके उत्साहमें हनुमानजीने बड़ी भयंकर गर्जना की। उन्होंने कुछ चुने-चुनाये भटोंको तो कालके गालमें पहुँचाया और कुछ चोट खाये हुए अधमरोंको रावणके पास

समाचार पहुँचानेके लिये छोड़ दिया। वे घायल राक्षस गुहार लगाते हुए रावणके पास पहुँचे। इस बार रावणने अपने प्रियपुत्र कुमार अक्षको युद्धार्थ भेजा। वह महाभट सुभटोंकी सेना लेकर चला। उसे आता देखकर हनुमानजीने एक वृक्षको हाथमें लेकर उसे डाँटा और देखते-ही-देखते उसका वध कर पुनः ऊँची ध्वनिमें गर्जन किया—

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा।
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥

(मानस ५।१७।४)

अशोक-वाटिकामें हनुमानजीको चार बार युद्ध करना पड़ा। चारों युद्धोंके तारतम्यको हम इनके गर्जनसे समझ सकते हैं। पहली लड़ाई प्रहरी भटोंके साथ हुई। वह इनकी दृष्टिमें इतनी हलकी रही कि इन्हें युद्धका उत्साह ही नहीं आया; इसलिये इन्होंने साधारण गर्जन भी नहीं किया। दूसरी लड़ाई रावणके द्वारा प्रेषित जाने-माने भटोंके साथ हुई। उसमें इन्हें थोड़ा युद्धोत्साह आया, इसलिये इन्होंने साधारण गर्जन किया। तीसरी लड़ाई महाभट अक्षकुमारके साथ हुई। रावण-पुत्र अक्षका वध करके ये युद्धोत्साहमें जोरसे गरजे। चौथी लड़ाई दारुण भट और अतुलित योद्धा मेघनादके साथ हुई। मेघनादको देखकर इन्होंने तीन क्रियाएँ एक साथ कीं—कटकटाये, गरजे और दौड़े—

कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥

(मानस ५।१८।२)

हनुमानजीके बलकी थाह न भटोंने पायी, न सुभटों या महाभटोंने। रावणसे मिलनेके ही उद्देश्यसे दारुण भट मेघनादके द्वारा किये गये ब्रह्मास्त्रके प्रयोगका हनुमानजीने सम्मान किया। अतः मूर्च्छाकी लीला की। तब मेघनाद नागपाशमें बाँधकर इन्हें रावणकी राजसभामें ले गया। रावणसे मिलनेके बाद लाङ्गूल-दाहकी तैयारी पूरी होते ही इन्होंने अपने विशाल शरीरको योगबलसे इतना संकुचित कर दिया कि उन्हें बन्धनसे सहज ही मुक्ति मिल गयी। इसके बाद विश्वविजयी रावण तथा स्वर्गविजेता मेघनादके देखते-ही-देखते आपने सम्पूर्ण लंकाका पूर्णरूपसे अग्नि-संस्कार करके अपने अतुलित बलका झंडा रावण और समस्त लंकावासियोंके अन्तस्तलपर गाड़ दिया।

हनुमानजी लात, लाङ्गूल और मुक्का—तीनोंसे प्रहार करते हैं। इनके तीनों अङ्गोंका बल अद्वितीय तथा अमोघ है, फिर भी इनके मुक्केका प्रहार विशेष सबल और अचूक है। लंकाके तीनों विशिष्ट वीर—रावण, कुम्भकर्ण तथा मेघनाद इनके एक-एक मुष्टि-प्रहारको भी सहन नहीं कर सके। परिणामतः तीनों मूर्च्छित हुए। इनके क्रमशः उदाहरण लीजिये।

प्रचण्ड शक्ति-प्रयोगके द्वारा मूर्च्छित लक्ष्मणको जब रावण उठाने लगा, तब वे उससे उठ न सके; इतनेमें ही हनुमानजीने लक्ष्मणको देख लिया और—

देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर॥

(मानस ६।८३)

फिर भी—

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा॥

(मानस ६।८३।½)

इसके बाद—

मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥

(मानस ६।८३।१)

रावणका मुष्टि-प्रहार प्रघोर था, फिर भी वह हमारे हनुमानजीको गिरा नहीं सका; इधर हनुमानजीके मुष्टि-प्रहारसे चारोंखाने चित्त हो गया वह विश्वविजयी वीर रावण। रावण मूर्च्छित पड़ा रहा और हनुमानजी उसकी मूर्च्छा-निवृत्तिकी प्रतीक्षा करते रहे; किन्तु वाह रे मुष्टि-प्रहारका प्रभाव! होशमें आते ही रावणसे रहा नहीं गया और वह मुक्त-कण्ठसे हनुमानजीके विपुल बलकी सराहना करने लगा—

मुरुछा गइ बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥

(६।८३।१½)

अब पवन-नन्दनके मुक्केसे कुम्भकर्णकी मूर्च्छाका प्रसङ्ग देखिये। कुम्भकर्णके ऊपर—

कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा।
करहिं भालु कपि एक एक बारा॥

(मानस ६।६४।२½)

फिर भी—

मुर्‌यो न मनु तनु टर्‌यो न टार्‌यो।
जिमि गज अर्क फलनि को मार्‌यो॥

(मानस ६।६४।३)

तब—

'तब मारुतसुत मुठिका हन्यो।'

(मानस ६। ६४। ३$\frac{१}{४}$)

परिणाम—

'परयो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥'

(मानस ६।६४।३$\frac{१}{२}$)

कुम्भकर्ण कोटि-कोटि गिरि-शिखर-प्रहारको सहता हुआ भी युद्धमें निर्बाध बढ़ता जा रहा था। वह पवनात्मजका मुक्का लगते ही व्याकुल होकर धरतीपर ढेर हो गया और लगा सिर पीटने। जो कार्य असंख्य योद्धाओंद्वारा कोटि-कोटि गिरि-शिखर-प्रहार करनेसे भी न हो सका, वह वायुपुत्रके एक मुक्केकी मारसे तुरंत सम्पन्न हो गया। धन्य हैं वायुकुमार और धन्य है उनका यह मुष्टि-प्रहार! कुम्भकर्णने भी रावणको समझाते हुए हनुमानजीके बलकी प्रशंसा जी खोलकर की थी—

हैं दससीस मनुज रघुनायक। जा के हनूमान से पायक॥

(मानस ६।६२।१$\frac{१}{२}$)

मेघनाद तो अशोक-वाटिकाके युद्धमें ही हनुमानजीके मुक्केसे मूर्च्छित हो चुका था—

मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥

(मानस ५। १८। ४)

हनुमानके मुक्केका मर्म जान लेनेके बाद मेघनाद अपने-आपको उनके सामने सदा पराजित अनुभव करता था। हनुमानजीके बार-बार ललकारनेपर भी वह उनके निकट नहीं आता था; बल्कि बड़ी सावधानीके साथ उनसे कटा-कटा फिरता था—

बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना॥

(मानस ६।५०।२)

यह है अतुलितबलधाम हनुमानजीके मुष्टिप्रहारका अनोखा चमत्कार और सदैव ही अभिनन्दनीय है—श्रीपवननन्दनका यह अतुलित बल!

श्रीमहावीर-महिमा

सीता   राम

[१]

जय जय श्रीहनुमन्त, कृपानिधि कृति अनन्त के।
प्रबल बुद्धि बलवन्त, जो एकै दस दिगन्त के॥
अरुन रंग सो तरुन, अंग तान्त्रिक तरंग सों।
बिकट बीर बजरंग, अचल अच्युत अभंग सों॥
हे प्रभु 'द्विजेश' मैं भजि तुम्हें, भय भञ्जन के काम सों।
जेहि तें तौ पद अभिराम प्रद, पेखि सु करत प्रनाम सों॥

[२]

जिन अद्भुत अद्वितीय तीय बिनु अनुज तनुज के।
सुर मनुजहिं सुमतीय, नेकु नहिं मीत दनुज के॥
अंजनि जननि सों जन्य, मन्य मारुत मन रंजन।
रंजन भुज आजानु, भानु भक्षक जिमि ब्यंजन॥
अवलोकि 'द्विजेश' त्रिलोक जेहिं, दै तिहुँ काल प्रमान इमि।
भूतो न भविष्यत अस कोऊ वर्तमान हनुमान जिमि॥

—महाकवि 'द्विजेश'

अद्भुत पराक्रमी श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

विद्या-बुद्धिके निधान, ज्ञानवान्, वेदज्ञ, तीक्ष्णबुद्धि, सर्वशास्त्र-पारंगत, असीम पराक्रमकी मूर्ति, सर्वोपरि शौर्य-वीर्यके आगार, आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रीहनुमानजी शंकरके अंशसे वायुद्वारा कपिराज केसरीकी पत्नी अञ्जनाके गर्भसे एक मतसे चैत्र शुक्ला एकादशीको अवतरित हुए थे। श्रीहनुमानजीने अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके नायक मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी सेवामें संलग्न होकर ऐसे-ऐसे अद्भुत कार्य किये, जिनका और किसीसे होना सर्वथा असम्भव था।

जब अहिरावण श्रीराम-लक्ष्मणको निद्रावस्थामें मोहनी विद्यासे मोहित करके पातालमें ले गया, तब श्रीहनुमानजीने शोकमग्न वानरसेनाको संतोष दिलाते हुए प्रतिज्ञा की कि 'मैं चौदह भुवनों और तीनों लोकोंमें जहाँ भी श्रीराम-लक्ष्मण होंगे, उन्हें खोजकर लाऊँगा।' ऐसा कहकर हनुमानजी प्रलयकालके बादलोंके समान भयंकर गर्जना करके चले और एक गृध्रके संकेतपर शीघ्र ही पाताल पहुँच गये। वहाँ एक अद्भुत लीला यह हुई कि ज्यों ही आप सूक्ष्म रूप धारणकर अहिरावणकी देवीके सम्मुख पहुँचे, त्यों ही देवी तो लुप्त हो गयी तथा आप स्वयं देवी बनकर उस स्थानपर विराजमान हो गये। आप सम्पूर्ण पूजा-सामग्रीको भक्षण करते गये। जब श्रीराम-लक्ष्मणको बलि देनेके लिये लाया गया, तब हनुमानने मेघके समान गर्जन करके राक्षसोंको मारकर अहिरावणका मस्तक अग्निकुण्डमें होम दिया और वे श्रीराम-लक्ष्मणको वहाँसे छुड़ा लाये। दोनों भ्राताओंने प्रसन्न होकर उनसे कहा—'हनुमन्! तुम्हारे समान हितकारी देवता, मुनि, सिद्ध और शरीरधारियोंमें कोई नहीं है। तुम्हारी कीर्ति तीनों लोकोंमें छा जायगी।'

समुद्रको लाँघना, सीताजीको खोजना, अशोक-वाटिकाको उजाड़ना, लंकाको जलाना, संजीवनी बूटीको लाना, राक्षसोंके साथ भयंकर युद्ध करना आदि ऐसे शौर्ययुक्त अद्भुत कार्य श्रीहनुमानजीद्वारा सम्पन्न हुए हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजीने 'हनुमानचालीसा' में कहा है कि 'रामदूत हनुमान अतुलितबलधाम, महावीर, विद्यावान्, गुणी, अति चतुर, कुमति-निवारक और सुमतिके सङ्गी हैं, जिन्होंने विकट रूप धारणकर लंका जलायी, भीमरूप धारणकर असुरोंका संहार किया और स्वामी श्रीरामके सब काम सुधारे। जगत्के जितने दुर्गम कार्य हैं, वे सब उनकी कृपासे सुगम हो जाते हैं।' विनय-पत्रिकामें गोस्वामीजीने विनती की है कि 'हनुमानजी! आप अहंकार, काम, क्रोध आदि दुष्टोंसे व्याप्त घोर संसाररूपी रात्रिका नाश करनेवाले साक्षात् सूर्य हैं।' अतः यह पूर्णतया प्रत्यक्ष है कि हनुमानमें इतना बल, पराक्रम, सामर्थ्य या ब्रह्मचर्य-तेज था कि वे किसी भी लोकमें कैसा भी रूप बनाकर अबाध गतिसे आ-जा सकते थे।

श्रीराम-गाथाओंमें तो केसरीनन्दन श्रीहनुमानजीको पराक्रमी श्रीरामसेवक बताया ही है, इनके अतुल बल-पौरुषकी अन्य स्थानोंपर भी प्रचुर प्रशंसा की गयी है। केवल त्रेतायुग ही नहीं, द्वापरयुग भी श्रीहनुमानजीकी पराक्रम-गाथासे गौरवान्वित है। महर्षि गर्गाचार्यकृत 'गर्गसंहिता'-ग्रन्थके 'विश्वजित् खण्ड' के तीसवें अध्यायमें उल्लेख है कि 'भीमनादिनी नगरीका कलंक नामक राक्षस दस हजार राक्षसोंको साथ लेकर यादवोंसे युद्ध करने लगा। वह इतना भयंकर बली था कि हाथियों, रथ-रथियों, घोड़ों-ऊँटों तथा सेनानियोंको दाँतोंसे चबा जाता और उन्हें आकाशमें गन्नेकी खोईकी भाँति फेंक देता था। भगवान् श्रीकृष्णके ज्येष्ठ पुत्र जब उससे लड़ते-लड़ते पराजित होने लगे, तब उन्होंने कपिवर हनुमानके 'कपीन्द्रास्त्र' का संधान किया। संधान करते ही हनुमानजी प्रकट हो गये और उन्होंने उस राक्षसको आकाशमें सौ योजन दूर फेंक दिया। इसपर कलंकने हनुमानपर एक अत्यन्त भारी गदा फेंकी; किंतु वे वेगसे उछलकर बच गये और कलंककी छातीपर ऐसा मुक्का मारा कि वह तत्काल धरतीपर गिरकर ढेर हो गया। फिर हनुमानजीने वैदूर्यपर्वत लाकर उसके ऊपर डाल दिया, जिससे वह मृत्युका ग्रास बन गया।'

महाभारतके सारे युद्धमें प्रायः सर्वत्र श्रीकृष्णके सखा अर्जुन छाये हुए हैं। प्रत्येक प्रसङ्गपर उनके बल-पौरुषकी प्रशंसा हुई है। उनके रथकी ध्वजापर श्रीहनुमानजी विराजमान थे, तभी अर्जुन बड़े-बड़े योद्धाओंको जीतने-मारनेमें समर्थ हुए। इसीसे भीष्मपर्वमें अर्जुनके 'कपिध्वज', 'कपिनिकेतन' आदि नाम बताये गये हैं, जो वीरवर हनुमानके ही नामपर आधृत हैं। श्रीकृष्णके अभिन्न मित्र

एवं स्वयं महान् शूरवीर होते हुए भी अर्जुनको हनुमानके बल-प्रभावकी आवश्यकता हुई और उनके सम्मानमें अर्जुनके नाम उन्हींके नामानुसार प्रसिद्ध हुए—यह महाबली हनुमानके पौरुषका प्रत्यक्ष आदर है और उनके अतुल बलशाली होनेका महान् प्रमाण है।

सच तो यह है कि बलकी सदासे पूजा होती आयी है। देश, काल और पात्रके अनुसार व्यष्टि-समष्टि, राष्ट्र एवं समाजमें यश-धन-धान्यकी प्राप्ति एवं सुरक्षाके लिये हमें पग-पगपर बलकी आवश्यकता है। ऋग्वेदमें बलकी महिमाका कई स्थानोंपर वर्णन है। वहाँ कहा गया है कि 'विद्या और शारीरिक उन्नतिके बिना सुखकी वृद्धि कभी नहीं हो सकती। बल ही श्रेष्ठ पुरुषोंका पालन और दुष्टोंका दलन कर सकता है। अतएव कदाचारसे बचकर शरीर-बल-सम्पादन करनेका सदैव प्रयत्न करना चाहिये।' इसीलिये तो हमारे देशमें आजसे नहीं, सुदीर्घ कालसे बलके पुञ्ज, कृपाके सागर श्रीहनुमानजीकी आराधना भक्ति, ज्ञान, श्री, धर्म, शक्ति-सामर्थ्य-प्राप्त्यर्थ एवं असाध्य रोगों तथा भारी संकटोंके निवारणार्थ विश्वास-भक्ति-श्रद्धासहित होती चली आ रही है। सर्वत्र ही सभी जाति और सम्प्रदायके अमीर-गरीब श्रीहनुमानके पूजा-पाठ-अनुष्ठान आदिमें संलग्न रहते हैं और उसका शुभ फल प्राप्त करते हैं।

~~~ o ~~~

नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके आदर्श—महावीर श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीराममाधव चिंगले, एम्० ए०)

अञ्जनीगर्भसम्भूतो वायुपुत्रो महाबलः।
कुमारो ब्रह्मचारी च तस्मै हनुमते नमः॥

अत्यन्त प्राचीन कालसे पुण्यभू भारतवर्षने अनेक ऋषि-मुनियों, तपस्वियों तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंको जन्म दिया है, जो केवल भारतके लिये ही नहीं, अखिल जगत्के लिये ललामभूत हैं। श्रीहनुमानजी अनेक कारणोंसे आदर्श ब्रह्मचारियोंके अग्रगण्य हैं। श्रीसमर्थ रामदासस्वामी आपके विषयमें कहते हैं—'**जगी धन्य तो मारुती ब्रह्मचारी**' अर्थात् 'जगत्में धन्य हैं वे ब्रह्मचारी हनुमान'। मानव-समाजके सामने श्रीहनुमानजीने ब्रह्मचर्यका बहुत ही उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया है।

अनेक देवताओंका प्रासङ्गिक आविर्भाव सशक्तिक रूपमें दिखायी देता है, किंतु श्रीहनुमानजी इस विषयमें अपवाद हैं। जन्मसिद्ध ब्रह्मचर्य—यही आपका स्वरूप-लक्षण है। आपकी माताने आपसे कहा था—'जो तुम्हारा यह लक्षण पहचानेगा, वही तुम्हारा स्वामी होगा।' विशेषता तो यह है कि जिस वानर-जातिमें इन्होंने जन्म लिया था, उसमें बहुपत्नीक-प्रथा रूढ़ थी; किंतु श्रीहनुमानजी इसके दुर्लभ अपवाद रहे और उनका यह रहना हेतु-पुरस्सर था तथा यह किसी प्रकारकी साधन-सम्पन्नताके अभावमें या किसी प्रकारकी न्यूनता या अयोग्यताके कारण नहीं। आप 'कपीन्द्रसचिवोत्तम' थे तथा जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें असाधारण योग्यता और अलौकिक गुणोंसे सम्पन्न थे। यदि आप चाहते तो भोगविलासमय जीवन व्यतीत कर सकते थे; किंतु फिर भी आप इस प्रकारके जीवनसे सर्वथा अस्पृष्ट रहे। इसीलिये आप धीर कहे गये हैं। महाकवि कालिदासके अनुसार 'धीर वे ही हैं, जो विकारोंके निमित्त उपलब्ध होनेपर भी अपने मनको निर्विकार रख पाते हैं—**विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः**' (कुमारसम्भव १।५९) मतवाले हाथी तथा खूँखार व्याघ्र-सिंहादिपर विजय पानेवाला मनुष्य 'वीर' होता है, किंतु अपने मनको जीतकर कामदेवपर विजय पानेवाला मनुष्य 'महावीर' होता है। श्रीभर्तृहरिने यथार्थ ही कहा है—**मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः...। कंदर्पदर्पदलने विरलाः समर्थाः॥** (शृङ्गारशतक ७३) श्रीहनुमानजी इन्हीं दुर्लभ कोटिके लोगोंमें हैं। इसीलिये आप 'महावीर' संज्ञाके पात्र हुए।

जब श्रीभगवान् अवतार धारण करते हैं, तब वे अकेले ही प्रकट नहीं होते; उनके साथ ही उनकी अनेक दिव्य शक्तियोंके अंशभूत देवगण भी विभिन्न रूपोंमें तथा विभिन्न सामर्थ्योंसे सम्पन्न होकर अवतरित होते हैं। जिस समय भगवान् श्रीरामने रावणसे संत्रस्त देव-मानवादिकी रक्षाके हेतु अवतार धारण किया, उस समय उन्हींके संकेतानुसार अनेक देवगण भी वानरादिके विभिन्न रूपोंमें प्रकट हो गये। उनके अनन्य भक्त कैलासनाथ भूतभावन भगवान् श्रीशंकरजीने समाधि-अवस्थामें ही भगवान् श्रीरामके अवतार धारण करनेका संकल्प जान लिया और अपने एक अंशसे अपने आराध्यदेवके प्रमुख सेवकके रूपमें आविर्भूत होनेका निश्चय कर लिया। इसी आशयसे श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी
~~~

कहते हैं—*'हर ते भे हनुमान'*। (दोहावली १४३) इसीलिये समर्थ स्वामी रामदासजीने श्रीहनुमानजीको 'महारुद्रका अवतार' कहा है। यह अवतार श्रीशंकरजीने शक्तिसहित न धारण करके अकेले ही धारण किया। अतएव नैष्ठिक ब्रह्मचर्य आपके इस अवतारका मुख्य लक्षण है। कामारि और अनन्य श्रीरामभक्त तो आप थे ही, इसलिये इस व्रतका आपने अनायास पालन करके मानव-समाजके सामने ब्रह्मचर्यका एक उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया है। अल्पशक्ति मानवको आचरण-विषयक और उज्ज्वल चारित्र्य-विषयक शिक्षा देना यह भी भगवदवतारका एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन होता है। इसी आशयसे श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।'

(५। १९। ५)

'मेरे प्रभुका मानवरूपमें अवतार केवल राक्षसोंके वधके लिये नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मानवोंको शिक्षा देना है।' ये वचन स्वयं श्रीहनुमानजीके मुखारविन्दसे अपने आराध्य प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुतिके रूपमें निकले हैं। एक प्रकारसे ये वचन स्वयं उन्हींपर लागू होते हैं; क्योंकि उनके अवतारका भी यह एक प्रमुख उद्देश्य है।

ब्रह्मचर्यकी महिमा अत्यन्त प्राचीन कालसे वेदों, उपनिषदों तथा इतिहास-पुराणादिमें गायी गयी है। 'अथर्ववेद' का तो एक सम्पूर्ण सूक्त ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचारीकी अपरिमित महिमा दिखलानेवाला है (काण्ड ११ सू० ५)। छान्दोग्योपनिषद्में ब्रह्मचर्यकी महिमा विस्तृतरूपसे बतलायी गयी है। ऋषि-मुनि अपने शिष्योंको दीर्घकालतक ब्रह्मचर्यके पालन करनेका आदेश देते थे। अन्य उपनिषदों तथा श्रीमद्भगवद्गीतामें ब्रह्मचर्यको ब्रह्मपदकी प्राप्तिका साधन बतलाया गया है—

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥

(गीता ८। ११)

महाभारत 'मोक्षधर्म' का निम्न श्लोक इस विषयमें प्रसिद्ध है—

यदिदं ब्रह्मणो रूपं ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम्।
परं तत्सर्वधर्मेभ्यस्तेन याति परां गतिम्॥

'ब्रह्मचर्य परब्रह्मका ही रूप है। वह सब धर्मोंमें श्रेष्ठ है। उसके द्वारा मोक्षरूप परमगति प्राप्त होती है।' 'पद्मपुराण' में ब्रह्मचर्यको सबसे श्रेष्ठ तप कहा गया है— **'ब्रह्मचर्यं समाधत्ते किमतः परमं तपः॥'**

इस अमित महिमामय ब्रह्मचर्यकी व्याख्या तथा लक्षण भिन्न-भिन्न स्थानोंपर विभिन्न प्रकारसे बताये गये हैं। 'लिङ्गपुराण' के अनुसार 'यतियों एवं ब्रह्मचारियोंके लिये मनसे, वाणीसे, शरीरसे तथा कर्मसे मैथुनकी प्रवृत्ति न होना ही ब्रह्मचर्य है'—

मैथुनस्याप्रवृत्तिर्हि मनोवाक्कायकर्मणा।
ब्रह्मचर्यमिति प्रोक्तं यतीनां ब्रह्मचारिणाम्॥

'दक्षसंहिता' में अष्टविध ब्रह्मचर्यका स्वरूप निम्न श्लोकोंमें बतलाया गया है—

ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टधा मैथुनं पृथक्॥
स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्॥

(७। ३१—३३)

अष्टविध ब्रह्मचर्यके पालनमें निम्न आठ बातोंसे बचना आवश्यक है—(१) स्त्रियोंका कामभावसे स्मरण, (२) उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग तथा सौन्दर्यादिका वर्णन, (३) उनके साथ कामभावपूर्वक हँसी-विनोद, (४) उनका कामभावसे दर्शन, (५) उनके साथ एकान्तमें कामबुद्धिसे सम्भाषण, (६) कामासक्त होकर उनकी प्राप्तिकी अभिलाषा, (७) उनके साथ रमण करनेका निश्चय एवं (८) प्रत्यक्ष समागम। इस प्रकार ब्रह्मचर्यका पालन असिधारा-व्रतके सदृश है।

समाजमें रहते हुए, विशेषतः श्रीहनुमानजी-जैसे अधिकारके पदको सँभालते हुए अष्टविध ब्रह्मचर्यका पालन करना खेल नहीं है; यह बहुत बड़ी तपस्या है। किंतु श्रीहनुमानजी इस विषयमें कितने खरे थे, इसका परिचय उनके जीवनकी एक ही घटनाके द्वारा हो जाता है। ब्रह्मचारीके लिये स्त्रियोंकी ओर देखनेका भी निषेध है। श्रीहनुमानजी लंकामें माँ जानकीजीकी खोज करनेके लिये गये थे। इसके लिये उन्हें रात्रिके समय रावणके रनिवासकी अनेक सुन्दरी स्त्रियोंको ध्यानपूर्वक देखना पड़ा। बाध्य होकर ही उन्हें यह करना पड़ा। यह एक तरहका धर्म-संकट था। यदि स्त्रियोंकी ओर न देखकर ब्रह्मचर्यव्रतका अक्षरशः पालन करते हैं तो जानकीजीकी खोजरूप प्रभु-कार्यका सम्पन्न करना असम्भव हो जाता है। यदि प्रभु-कार्यार्थ स्त्रियोंकी ओर देखते हैं तो ब्रह्मचर्य-व्रतभङ्गका प्रसङ्ग उपस्थित होता है। इस कारण उनका चित्त थोड़ी देरके लिये दोलायमान हो जाता है और व्रतभङ्गकी आशङ्कासे वे उद्विग्न-से हो जाते हैं; किंतु शीघ्र ही इस समस्याका हल प्राप्त हो जाता है। आत्मपर्यवेक्षणके द्वारा वे इस दुविधाको जिस सुन्दर

रीतिसे दूर करते हैं, वह सभी ब्रह्मचर्यव्रतधारियोंके लिये बोधप्रद है। किसी भी क्रियाकी अपेक्षा उसके मूलमें रहनेवाला हेतु या उद्देश्य अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। रावणके रनिवासकी स्त्रियोंकी ओर देखनेका उनका उद्देश्य केवल माँ जानकीकी खोजरूप प्रभु-कार्य करनेका था; कामभावसे स्त्रियोंकी ओर देखना नहीं। अपने आत्मपर्यवेक्षणमें श्रीहनुमानजीने ठीक ही कहा है कि 'स्त्रीकी खोज स्त्री-समुदायमें ही की जाती है, हरिणियोंके समुदायमें नहीं।' आपका हेतु पूर्णत: विशुद्ध और पवित्र था। स्त्रियोंकी ओर देखकर भी आपका ब्रह्मचर्यव्रत अखण्डित ही रहा; क्योंकि उनकी ओर देखकर भी आपका मन पूर्णरूपसे निर्विकार रहा। वस्तुत: अपरिहार्य कारणोंके उपस्थित होनेपर स्त्रियोंकी ओर देखना दोषपूर्ण नहीं है, किंतु उनकी ओर कामासक्त होकर पापबुद्धिसे देखना दोषपूर्ण है।

पूर्णरूपसे ब्रह्मचर्यका पालन करना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। जो आजन्म ब्रह्मचर्यका पालन करता है, उसके विषयमें कहा गया है कि 'वह देव ही है, मनुष्य नहीं—**स देवो न तु मानुष:**'। अब प्रश्न यह है कि इसके पालनका प्रमुख उपाय क्या है? इसका स्पष्ट उत्तर यही है कि ***'जहाँ काम तहँ राम नहिं'*** और ***'जहाँ राम नहिं काम।'*** महात्मा गाँधीने वैवाहिक जीवनमें ही ब्रह्मचर्यका व्रत ले लिया था और इसके पालनके लिये उन्होंने अनेक प्रयोग किये थे, किंतु अन्तमें वे इसी निष्कर्षपर पहुँचे थे कि पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन राम-नाम या भगवद्भक्तिद्वारा ही सम्भव है। जाबालदर्शन-उपनिषद् (१। १४)-में ब्रह्मचर्यका यही अर्थ दिया गया है—**'ब्रह्मभावे मनश्चारं ब्रह्मचर्यं परंतप।'** अर्थात् 'ब्रह्मभावमें मनका विचरण करना ब्रह्मचर्य है।' जिसका जीवन भगवन्मय हो गया हो, वही सच्चा ब्रह्मचारी हो सकता है। श्रीहनुमानजी उच्चतम कोटिके श्रीरामभक्त थे। उनका रोम-रोम श्रीराममय हो रहा था। उनके हृदयमें अपने आराध्यदेवकी मूर्ति निरन्तर विद्यमान रहती थी। सम्पूर्ण जगत्‌को वे ***'सीयराममय'*** देखते थे। ऐसी स्थितिमें ब्रह्मचर्यकी विघातक कोई ग्राम्यवृत्ति उनके चित्तमें कैसे उदय हो सकती थी?

ब्रह्मचर्य एक ऐसी तपस्या है, जिसको सिद्ध कर लेनेपर मनुष्यमें अनेक दिव्य तथा दुर्लभ गुण प्रकट हो जाते हैं—

'वपुषि च गुणकोटी निर्मिमीते यदर्चा'
चिरायुषः सुसंस्थाना दृढसंहनना नराः।
तेजस्विनो महावीर्या भवेयुर्ब्रह्मचर्यतः॥

कोई आश्चर्य नहीं कि श्रीहनुमानजी इसके प्रभावसे ही 'सकलगुणनिधान' हुए हों। श्रीवाल्मीकिरामायणमें आपकी इस गुण-सम्पदाका वर्णन यत्र-तत्र पाया जाता है। संक्षेपमें उनका दिग्दर्शन करानेके लिये निम्न श्लोक पर्याप्त हैं—

(१) **तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः।**
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा॥
(वा० रा० ६। १२८। ८२)

'श्रीहनुमानमें ये सद्‌गुण सदा विद्यमान रहते हैं— तेज, धृति, यश, चतुरता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और उत्तम बुद्धि।'

(२) **शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।**
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः॥
(वा० रा० ७। ३५। ३)

'शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम और प्रभाव—इन सभी सद्‌गुणोंने श्रीहनुमानके भीतर घर कर रखा है।'

(३) **पराक्रमोत्साहमतिप्रताप-**
सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-
र्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके॥
(वा० रा० ७। ३६। ४४)

'संसारमें ऐसा कौन है, जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल और धैर्यमें श्रीहनुमानसे बढ़कर हो।'

विशेषता तो यह है कि श्रीहनुमानजीकी उपासनासे उनके भक्तोंमें भी अभीष्ट गुण प्रकट होने लगते हैं। यथा—

बुद्धिर्बलं यशो धैर्यं निर्भयत्वमरोगता।
अजाड्यं वाक्पटुत्वं च हनुमत्स्मरणाद् भवेत्॥

'श्रीहनुमानजीके स्मरणसे मनुष्यमें बुद्धि, बल, यश, धैर्य, निर्भयता, आरोग्यता, विवेक और वाक्पटुता आदि गुण आ जाते हैं।'

'गोस्वामी तुलसीदासजी' हनुमानचालीसामें कहते हैं—

दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते॥
नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा॥

माँ जानकीके वरप्रदानसे आप अष्टसिद्धि-नवनिधिके दाता भी हैं—

अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता। अस बर दीन्ह जानकी माता॥

आपका संकटमोचन-रूप प्रसिद्ध ही है—

संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बल बीरा॥

आज हमारे देशके नवयुवकोंमें सर्वत्र ब्रह्मचर्यका ह्रास दीख पड़ता है। यदि इनके सामने श्रीहनुमानजी-जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारीका आदर्श बाल्यावस्थासे ही रखा जाय तो सम्भवतः ब्रह्मचर्यका महत्त्व समझनेपर इन्हें ब्रह्मचर्यव्रतके निष्ठापूर्वक पालन करनेकी प्रेरणा मिल सकती है। यही कारण है कि स्वामी श्रीविवेकानन्द-जैसे सुदूरदर्शी राष्ट्र-संतने मोह-निद्रासे ग्रस्त भारतको निम्न संदेश देकर जगाया था—'देश तथा धर्मके उद्धारके लिये आपलोग श्रीरामचन्द्रजी तथा श्रीहनुमानजीकी उपासना जोरोंसे प्रचलित कीजिये।'

सेवा-सावधान श्रीहनुमान

(लेखक—पं० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी, रत्नमालीय, एम्० ए०, बी० एड्०)

'ग्यान-गुनवान, बलवान, सेवा-सावधान,
साहेब सुजान उर आनु हनुमान सो।'
(हनुमानबाहुक ८)

श्रीराघवेन्द्र सरकारके अडिग पायक, राम-रतिरूपी रुचिर रसायनके अप्रतिम स्वादविद्, मनसा-वाचा-कर्मणा सत्यधर्म-व्रती, जानकीनाथ-चरणानुरागी, शूर-शिरोमणि, साहसी, सुमति, समीर-कुमार श्रीहनुमानजीकी मञ्जुल-मङ्गल-मोदमयी मूर्तिका सर्वाधिक सम्मोहक पक्ष है—उनकी सेवा-सावधानता, जिसकी परिधिमें समुद्र-संतरण, रावण-मद-मर्दन, कुम्भकर्ण-गर्व-खर्वीकरण, मेघनाद-मख-विध्वंसन, निकुम्भनिपातन, धूम्राक्ष-धूलि-धूसरण, त्रिशिर-शिर-संहरण, अकम्पन-उर-कम्पन, अतिकाय-काय-संकोचन, अक्ष-वक्ष-विदारण एवं दिव्यौषधि-आनयनसे लेकर भावविह्वल हो चुटकी बजानेतकके व्यापार सम्मिलित हैं।

अपने इन्हीं 'परम सुजान' राम-गुलामके गुणोंपर रीझे हुए मनसा-वाचा-कर्मणा गुलाम तुलसी ***(मनकी, वचनकी, करमकी तिहूँ प्रकार, तुलसी तिहारो तुम साहेब सुजान हो***—हनुमानबाहुक १४) आनन्दोच्छ्वसित हो जय-जयकार कर उठते हैं—

जयति सिंहासनासीन सीतारमण,
निरखि निर्भर हरष नृत्यकारी।
राम-संभ्राजशोभा-सहित सर्वदा
तुलसिमानस-रामपुर-विहारी ॥
(विनय-पत्रिका २७।५)

'रामगुलाम तुही हनुमान गुसाँइ सुसाँइ सदा अनुकूलो।'
(हनुमानबाहुक ३६।१)

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥
(मानस ६।१०।३$\frac{1}{2}$)

पुण्यश्लोक पवनात्मजके चरित्रका केन्द्रीय भाव है—राम-गुलामी और रामगुलामीका प्राण-तत्त्व है—सेवा-सावधानता। सेवाधर्म परम गहन है। यह योगियोंके लिये भी अगम्य है—

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवा धरमु कठिन जगु जाना॥
(मानस २।२९२।३$\frac{1}{2}$)

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥
(मानस २।२०२।३$\frac{1}{2}$)

'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।'

सम्पूर्ण छल त्यागकर स्वामीकी कर-पग-नयनवत् सेवा करना ही सेवक-धर्म-संहिताका स्वर्णिम नियम है ***('सेइअ स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी', 'सेवक कर पग नयन से')***। और हनुमानजी इस नियमके सुविज्ञ हैं, इस धर्मके विशेषज्ञ हैं, पूर्ण पण्डित हैं।

श्रेष्ठ सेवकके जिन गुणोंका उल्लेख निम्नोक्त विदुर-वचनमें हुआ है, वे सभी उनके व्यक्तित्वमें जगमगा रहे हैं—

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्री।
वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः॥
(विदुरनीति ५।२५)

'जो सेवक स्वामीके अभिप्रायको समझकर आलस्यरहित हो समस्त कार्योंको पूरा करता है, जो हितकी बात कहनेवाला, स्वामि-भक्त, सज्जन और राजाकी शक्तिको जाननेवाला है, उसे अपने समान समझकर कृपा करनी चाहिये।'

उनके समग्र व्यक्तित्वमें विनयशीलता और अनुशासनका मणि-काञ्चन-संयोग सर्वत्र दिखायी पड़ता है। उनकी अतुलनीय सेवाका स्मरण करते ही श्रीरामचन्द्रजी मुक्तकण्ठसे पुकार उठते हैं—

एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः॥
हनूमान् यदि मे न स्याद् वानराधिपतेः सखा।
प्रवृत्तिमपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान् भवेत्॥
(वा० रा० ७।३५।९-१०)

'मुनीश्वर! मैंने तो इन्हींके बाहुबलसे विभीषणके लिये लंका, शत्रुओंपर विजय, अयोध्याका राज्य तथा

सीता, लक्ष्मण, मित्र और बन्धुजनोंको प्राप्त किया है। यदि मुझे वानरराज सुग्रीवके सखा हनुमान् नहीं मिलते तो जानकीका पता लगानेमें भी कौन समर्थ हो सकता था?'

आइये, अब इन सेवकशिरोमणिकी सेवा-सावधानताके कुछ स्थलोंका सिंहावलोकन किया जाय। श्रीलक्ष्मण-लालजीको श्रीसीता-रक्षण-कार्य-भार सौंपते हुए श्रीरामजीने जिन चार बातोंका उल्लेख किया है, उन्हींमें सेवा-सावधानताका मर्म भी छिपा हुआ है—

'सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥'

(मानस ३। २७। ९)

बुद्धि, विवेक, बल और कालका विचार रखकर ही सेवा-धर्मका सम्पादन सम्भव है। बुद्धि व्यवसायात्मिका होती है; वह कार्यमें प्रवृत्त करती है। विवेक, व्याकरणात्मक होता है; वह कार्याकार्यव्यवस्थिति-क्रममें सदसत् पक्षोंकी विवेचना कर तत्त्वार्थ-सम्बन्धमें सहायता पहुँचाता है। बल कार्य-सम्पादनका मूल उपादान है और समयका विचार अनुकूल हवा देखकर नाव खोल देनेके समान है। श्रीहनुमानजीके व्यक्तित्वमें इन चारों गुणोंका सुगुम्फन हुआ है। वाल्मीकीय रामायणमें भी आकाशचारी जीव उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति॥

(वा० रा० ५। १। २०१)

'वानरेन्द्र! जिस पुरुषमें तुम्हारे समान धैर्य, सूझ, बुद्धि और कुशलता—ये चार गुण होते हैं, उसे अपने कार्यमें कभी असफलता नहीं मिलती।'

मति और दृष्टि शब्द बुद्धि और विवेकके वाचक हैं, दक्षता कुशलाचरणकी सूचिका है तथा धृति तो बलवानों एवं वीरोंका प्रथम लक्षण और अन्यतम भूषण ही है। हनुमत्-चरित्रमें स्थल-स्थलपर उपर्युक्त चारों गुणोंके पुष्टिकारी प्रसङ्ग बिखरे पड़े हैं। पहले उनके दर्शन हम सुग्रीव-सचिवके रूपमें करते हैं, तत्पश्चात् राम-सेवकके रूपमें। एक ओर वे **'नतग्रीव सुग्रीवैकबन्धु'** हैं तो दूसरी ओर वे ***'भानु-कुल-भानु-कीरति-पताका'*** हैं। प्रत्येक स्थानपर वे अपने इस द्विविध व्यक्तित्वका सफल निर्वाह करते हैं। आत्मपरिचय देते हुए वे श्रीसीताजीसे निवेदित करते हैं—

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मनः॥
सचिवोऽहं हरीन्द्रस्य सुग्रीवस्य शुभप्रदे।

(अ० रा० ५। ३। २३-२४)

'हे शुभप्रदे! मैं तो कोसलाधिपति परमात्मा श्रीरामका दास और वानरराज सुग्रीवका मन्त्री हूँ, तथा हे शोभने! सम्पूर्ण जगत्के प्राणस्वरूप पवनदेवका पुत्र हूँ।'

क्या सुग्रीव-सचिवत्व, क्या रामदासत्व—प्रत्येक प्रसङ्गमें हम उन्हें परम सावधान पाते हैं।

श्रीसुग्रीव-सेवक हनुमानकी सेवा-सावधानता

श्रीहनुमानजीके प्रथम दर्शन हमें ऋष्यमूकपर्वतपर वाली-भय-ग्रस्त उद्विग्नहृदय सुग्रीवके साथ होते हैं। सुग्रीवके मानसपटलपर जागते, सोते एवं स्वप्नमें सदैव वालीकी मूर्ति ही नाचती है। उनकी इस उन्मनी अवस्थामें अनन्य सखा (**समख्यातः सखा मतः**), परिचारक (कर-पग-नयन) और बन्धु (**राजानो मन्त्रिबान्धवाः**) हैं—पवनकुमारजी। दैवयोगसे उस पर्वतपर श्रीराम-लक्ष्मणका पदार्पण होता है। वाली भयभीत सुग्रीव अस्थिर हो उठते हैं, उनका उद्वेग बढ़ जाता है, तब हनुमानजी उनकी चिन्ता-निवृत्तिके लिये श्रीराम-लक्ष्मणकी शरणमें पहुँचते हैं। हर्षकी बात है कि श्रीराम-लक्ष्मणके रूपमें केवल उन्हें 'सुग्रीव-व्याधि-निवारण-कुशल वैद्य' ही नहीं मिलते, प्रत्युत उनको अपने परम प्रभुके दर्शनका भी सौभाग्य-लाभ होता है। और उन्हें अपनेको सर्वात्मना समर्पण कर वे निहाल हो उठते हैं—

पुलकित तन मुख आव न बचना।
देखत रुचिर बेष कै रचना॥
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही।
हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही॥

(मानस ४। २। ६-७)

सुग्रीव-सेवा-संलग्न श्रीहनुमानके प्रत्येक आचरणसे बुद्धि, विवेक, बल और समय-विचारकी पुष्टि होती है। बुद्धिमान्का प्रथम लक्षण है—**'क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति'**—चिरकालतक सुनना और उसके रहस्यको तुरंत ताड़ लेना। वस्तुस्थितिके मूलमें पहुँचनेकी सामर्थ्य मारुतात्मजमें कूट-कूटकर भरी है। श्रीराम-लक्ष्मणको देखते ही उन्हें उनमें सहज प्रतीति हो जाती है कि उनका आश्रयण सुग्रीव-सुगतिका सहज साधन बन सकता है; क्योंकि बुद्धिमान् एवं विक्रम-सम्पन्न सुहृत्तमोंके साहाय्यसे साधनहीन, वित्तहीन और विपत्तिमग्न जीव अनायास कृतकृत्य हो जाते हैं। वे सुग्रीवको श्रीराम-सख्य-संस्थापनार्थ सुमन्त्र देकर अपने साचिव्यको सार्थक बनाते हैं। सहज विवेक-सम्पन्न होनेके नाते उनकी क्रान्त-दर्शिनी प्रज्ञा श्रीराम-लक्ष्मणके महानुभावत्वपर मुग्ध हो जाती है और

उन्हें उनके चरणोंमें सर्वात्मना समर्पण करा देती है। इन कोमल पदवाले कठिन भूमिगामी प्रभुजीकी परिचर्यामें प्रवृत्त होनेके बाद श्रीहनुमान सर्वत्र उन्हें पीठपर आसीन कर अपनी 'सेवकाई' सफल करते हैं। श्रीराम-लक्ष्मणका कठोर भूमिपर चलना हनुमानजीकी आँखोंमें तीखे काँटेकी तरह गड़ने लगता है।

महावीरजीके बलकी तो बात ही क्या है? वे निराश्रयी, उत्साही, सुग्रीवके भी पञ्चविध बल (बाहु-बल, मन्त्रि-बल, अर्थ-बल, कुटुम्ब-बल एवं प्रजा-बल)-स्वरूप ही हैं। कार्य-सिद्धिका मूल है—समयकी पहचान—समुचित कालका विचार और हानियोंकी हानि है—समय-च्युति। श्रीहनुमन्तलालजी समय-वनके परम सावधान पारखी हैं। इसीलिये आदिकविने मुग्ध होकर उनके लिये '**कालधर्मविशेषविद्**' विशेषणका प्रयोग किया है। अवसर मिलते ही राम-सुग्रीव-सख्य-दृढीकरणके उद्देश्यसे वे अग्नि प्रज्वलित कर सम्बन्ध (सम्यक् बन्धन)-की गाँठें कसकर बाँध देते हैं; बादमें जब सुग्रीव भोग-विलासमें लिप्त हो श्रीराम-काजके प्रति अनवधानता और आलस्य दिखाते हैं, तब सेवा-सावधान हनुमानजी उन्हें कर्तव्यका स्मरण कराकर राम-रोषानलसे बचाते हैं और प्रतिज्ञा-पालनके लिये प्रोत्साहित करते हैं।

श्रीराम-सेवकके रूपमें सावधानता

श्रीराम-दासके रूपमें मारुतनन्दन-लीलाके प्रमुख मर्मस्पर्शी प्रसङ्ग हैं—समुद्र-संतरण, दिव्यौषधि-आनयन, सीता-प्रबोधन, लंका-निर्दहन, सुरारि-सैन्य-सिन्धु-मन्थन आदि, जिनमें उपर्युक्त चारों प्रकारकी सावधानियोंके अगणित उदाहरण भरे पड़े हैं। हनुमन्तलालजीके बुद्धि-वैभवकी झाँकी प्रस्तुत करता है, रामायणका सुरसा-प्रसङ्ग। सीतान्वेषण-जैसे विकट कार्यमें प्रवृत्त हनुमानजीके बुद्धि और बलकी परीक्षा लेती है—नागमाता सुरसा, जो बाहरसे प्रतिकूल होते हुए भी अन्तरात्मासे उनके अनुकूल ही है। वह परीक्षककी निष्करुणता और निष्पक्षताका सम्यक् निर्वाह कर, संतुष्ट हो, सफल सेवक समीर-सुतजीको *'बलबुद्धिनिधान'* की उपाधि प्रदान करके चली जाती है। उसके साथ महामति मारुतात्मजका व्यवहार अत्यन्त सूझ-बूझसे भरा है, जो सिद्ध कर देता है कि वे सेवा-धर्मशास्त्रमें अनेक नवीन परिच्छेद जोड़नेवाले पारंगत पण्डित हैं; क्योंकि '**यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्**—जो क्रियाशील पुरुष है, वही विद्वान् है।' पहले तो वे उसे परावृत करनेके लिये अपने महामहिम स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके कार्यका उद्देश्य सुनाते हैं, जिससे वह स्वामीके विशिष्ट कार्यकी गुरुताका विचार कर उनका मार्ग छोड़ दे। *'राम काज करि फिरि मैं आवौं।'* इत्यादि कहकर पुनः वे सीता-सुधि-आनयनका उद्देश्य उद्घाटित करते हैं, जिससे एक स्त्रीकी दूसरी स्त्रीके प्रति सहज जातिगत सहानुभूति होनेके नाते द्रवित होकर मार्ग छोड़ दे। *'सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं।'* किंतु इतनेपर भी उसका भाव नहीं बदलता। तब बुद्धिके धनी मारुतात्मजका तीसरा तीर छूटता है, जो अद्भुत नुकीला है। वह सुरसाके हृदयके कोमलतम अंशको चीर देता है, भले ही वह सभी विषयोंकी परीक्षा पूरी किये बिना नहीं टलती—*'सत्य कहउँ मोहि जान दे माई।'* एक तो महानुभाव मारुतात्मजद्वारा लौटकर आनेकी सत्य प्रतिज्ञा, दूसरे *'माई'* से की गयी विनम्र विनती—इन दोनों हेतुओंसे उसके हृदयमें भी अपत्य-स्नेह जाग्रत् हुए बिना नहीं रहता; किंतु कर्तव्य-बोधके वैवश्यवश वह यह झटका भी सँभालकर खड़ी है—राह रोककर पहाड़की तरह अड़ी है। श्रीहनुमानजी परेशान हैं कि यह कैसी विकट समस्या है, जिसमें उनके सब-के-सब दिव्यास्त्र बेकार हो गये हैं। अतः वे शीघ्र निपटारा कर डालनेके उद्देश्यसे कह उठते हैं—'मुझे ग्रसो न!'—*'ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना!'* तब सुरसा वदनका विस्तार करती है और साथ ही आञ्जनेयका आकार द्विगुणित होता जाता है। दाँव-पेंच, क्रिया-प्रतिक्रिया, घात-प्रतिघात, समस्या-समाधानका यह क्रम सुरसाके सौ योजन मुख-विस्तारतक चलता है। सहसा समीरसुवनजीको एक सरलतम समाधान सूझ जाता है। वे झट अङ्गुष्ठमात्र लघु रूप बनाकर उसके मुखमें प्रविष्ट हो बाहर निकल जाते हैं और उसे नमस्कार करते हैं—'**प्रविष्टोऽस्मि हि ते वक्त्रं दाक्षायणि नमोऽस्तु ते।**—दक्ष-नन्दिनी! तुम्हें नमस्कार है। मैं तुम्हारे मुखमें प्रवेश कर चुका।' इतनेपर भी भला सुरसा संतुष्ट क्यों न हो। धन्य है मारुतात्मजकी चतुरस्र चतुराई।

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥

(मानस ५।२)

अब श्रीहनुमानजीके विमल विवेकके एक-दो रुचिर प्रसङ्ग और देखिये। स्वधर्ममें स्थिरता, तत्त्वार्थ-परिज्ञानमें प्रवीणता और आत्मविनिग्रह—ये विवेकके विशिष्ट अङ्ग हैं और आञ्जनेयका व्यक्तित्व इन सभी गुणोंका अनूठा महाकाव्य है। सीता-परिमार्गण-क्रममें

वे रावणके रनिवासकी स्त्रियोंको देखकर धर्मलोपकी आशङ्कासे अभिभूत हो उठते हैं—

निरीक्ष्यमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः।
जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशङ्कितः॥
परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति॥

(वा० रा० ५।११।३७-३८)

किंतु, अविलम्ब ही अपने मनकी विशुद्धता और विहित कार्यकी अनिवार्यताका विचार कर वे आत्म-निर्वेदसे मुक्त हो जाते हैं। उनका दूसरा विवेकपूर्ण कार्य है—विप्ररूप धारण कर विभीषणसे परिचय करना, लंकाका भेद लेना, सज्जन-सम्पर्क-सुख लूटते हुए स्वामीके कार्यकी सिद्धि करना। उनका तीसरा विवेकपूर्ण कार्य है—मेघनादद्वारा प्रयुक्त ब्रह्मास्त्रका (प्रतिकार-समर्थ होकर भी) समादर करना। वे तो मर्यादापुरुषोत्तमके महान् सेवक ठहरे, फिर भला मर्यादाकी रक्षा क्यों न करें? धन्य है, मारुतात्मजका विवेक!

श्रीराम-सेवा-प्रसङ्गमें उनके बलकी इयत्ता बतलानेकी शक्ति किसकी लेखनीमें है? महाबली मारुतात्मजका रण-कौशल देखकर तो श्रीराम-लक्ष्मण, रावण, विधि, चक्रपाणि, चण्डीपति, चण्डिका एवं देवतागण—सभी सिहाते हैं—

'तुलसी' लखत, रामु, रावन, बिबुध, बिधि,
चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं।
बड़े-बड़े बानइत, बीर बलवान बड़े,
जातुधान-जूथप निपाते बातजात हैं॥

(कवितावली, लंकाकाण्ड ४१)

उनके द्वारा की जाती हुई राक्षसोंकी दुर्दशाका श्रीतुलसीदासजीद्वारा प्रस्तुत वर्णन देखिये—

दबकि दबोरे एक, बारिधिमें बोरे एक,
मगन महीमें, एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर, चरन उखारे एक,
चीरि-फारि डारे, एक मीजि मारे लात हैं॥

(कवितावली, लंकाकाण्ड ४१)

और पवित्र कर लीजिये कानोंको 'जुद्ध-क्रुद्ध', रणकौतुकी कपीशकी राम-जय-जयकारभरी गर्जनासे—

कतहुँ बिटप-भूधर उपारि परसेन बरष्षत।
कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि गजराज करष्षत॥
चरन चोट चटकन चकोट अरि-उर-सिर बज्जत।
बिकट कटकु बिद्दरत बीरु बारिदु जिमि गज्जत॥
लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय !' उच्चरत।
तुलसीस पवननंदनु अटल जुद्ध-क्रुद्ध कौतुक करत॥

(कवितावली, लंकाकाण्ड ४७)

असुरमण्डली तो उनके अलौकिक बलसे संत्रस्त होकर दिशा-विदिशाओंमें उनकी मूर्ति ही देखती है। कैसी बेचैनी है उसे! आँख मूँद लेनेसे भी उसका कल्याण नहीं—

मूदैं आँखि हिय में, उघारें आँखि आगें ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ-तहाँ, और कोउ कोकिए।

(कवितावली, सुन्दर० १७)

अब समय-विचारके कुछ नमूने देखें—

यो हि कालव्यतीतेषु मित्रकार्येषु वर्तते।
स कृत्वा महतोऽप्यर्थान्न मित्रार्थेन युज्यते॥

(वा० रा० ४।२९।१४)

'कार्य-साधनका उपयुक्त अवसर बीत जानेके बाद जो मित्रके कार्योंमें लगता है, वह बड़े-बड़े कार्योंको सिद्ध करके भी मित्रके प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला नहीं माना जाता।'

इस श्लोकके भावानुसार मन्त्रणा देनेवाले तथा—

भूताश्चार्था विरुध्यन्ति देशकालविरोधिताः।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा॥

(वा० रा० ५।३०।३७)

'अविवेकी या असावधान दूतके हाथमें पड़नेपर बने-बनाये काम भी देश-कालके विरोधी होकर उसी प्रकार असफल हो जाते हैं, जैसे सूर्यके उदय होनेपर सब ओर फैले हुए अन्धकारका कोई वश नहीं चलता, वह निष्फल हो जाता है।'

—इसका विवेक रखनेवाले हनुमानजी समयके सावधान पारखी हैं। वे अवसरका पूर्ण उपयोग करना जानते हैं। अशोक-वाटिका-प्रसङ्ग देखिये—रावण-संत्रासित माँ मैथिलीका मनस्ताप जब अपनी चरम सीमापर पहुँच जाता है, तब वे विकल-विह्वल विलाप करती हुई प्राण-परित्यागका निश्चय करती हैं—

धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता।
मुहूर्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका॥

(वा० रा० ५।२६।७)

'मैं बड़ी अनार्य और असती हूँ, मुझे धिक्कार है, जो उनसे अलग होकर मैं एक मुहूर्त भी इस पापी जीवनको धारण किये हूँ। अब तो यह जीवन केवल पापार्जनके लिये ही है।'

श्रेयो मे जीवितान्मर्तुं विहीनाया महात्मना।
रामादक्लिष्टचारित्राच्छूराच्छत्रुनिबर्हणात्॥

(वा० रा० ५।२६।४३)

'मेरे पति भगवान् श्रीरामका सदाचार अक्षुण्ण है। वे शूरवीर होनेके साथ ही शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ हैं। मैं उनसे संरक्षण पानेके योग्य थी, परंतु उन महात्मासे बिछुड़ गयी। ऐसी दशामें जीवित रहनेकी अपेक्षा मर जाना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है।'

जब अशोक-विटपसे माताजी अङ्गार-याचना करती हैं, तब अनतिदूर वर्तमान आञ्जनेय बोलें या न बोलें, इस असमञ्जसमयी स्थितिका कैसा सुन्दर समाधान वे ढूँढ़ निकालते हैं। उन्हें सम्भाषण करनेमें कई खतरे दृष्टिगोचर होते हैं और न बोलनेमें खतरोंके खतरे श्रीसीताजीके प्राण-नाशका ही खतरा है। बोलनेमें एक खतरा तो यह है कि उनकी संस्कृत-परिष्कृत वाणी सुनकर कहीं माँ मैथिली रावण-रचित कोई नवीन माया समझकर चीख न पड़ें, जिससे राक्षस-राक्षसियोंमें सनसनी समा जाय और वे सतर्क होकर उन्हें ढूँढ़ने लगें। जूझनेमें कोई हर्ज तो नहीं, किंतु न तो उसमें कोई बुद्धिमत्ता है, न उसका उपयुक्त अवसर ही। प्राथमिक कर्तव्य तो सीता-प्रबोधन है। दूसरा खतरा यह है कि क्रूरकर्मा रावण कहीं सीताकी हत्या ही न कर दे—

एष दोषो महान् हि स्यान्मम सीताभिभाषणे।
प्राणत्यागश्च वैदेह्या भवेदनभिभाषणे॥

(वा० रा० ५।३०।३६)

'सीताजीसे बातचीत करनेमें मुझे यही दोष प्रतीत होता है और यदि मैं उनसे बातचीत नहीं करता हूँ तो विदेह-नन्दिनी सीताका प्राणत्याग भी निश्चित ही दीखता है।'

धन्य है उनकी सुबुद्धिको, जो कहीं धोखा नहीं देती। अपनी मधुरा कल्याणी वाणीमें वे श्रीराम-कथा सुनाने लगते हैं; उसका यथेच्छ प्रभाव पड़ता है। अपने सम्भाषणद्वारा पूर्ण सान्त्वना प्रदान कर माँ सीताकी छाती शीतल करनेके उपरान्त वे अशोकवनका विध्वंस कर डालते हैं और कौतुकपूर्वक रावणसभामें जा धमकते हैं। पहले तो वे अपनी विवेक, नीति एवं धर्मयुक्त वाणीसे रावणको रास्ता सुझाते हैं; पर जब वह मूढ नहीं मानता, तब अवसर उपस्थित देख वे लगे हाथ उसे दण्ड भी दे डालते हैं। उनका प्रत्येक कदम संतुलित, संयत और क्रमबद्ध है।

अब दूसरा प्रसङ्ग देखिये। घोर संग्राममें जब समस्त राम-दल मूर्च्छित पड़ा है, तब ऋक्षराजके आदेशानुसार वे गरुडोग्रवेगसे सहस्रों योजन लाँघकर दिव्यौषधियाँ लाने पहुँचते हैं। किंतु यह क्या अजीब गड़बड़-घोटाला है, सभी ओषधियाँ तो अदृश्य हो गयीं—

महौषध्यस्ततः सर्वास्तस्मिन् पर्वतसत्तमे।
विज्ञायार्थिनमायान्तं ततो जग्मुरदर्शनम्॥

(वा० रा० ६। ७४। ६४)

'उस उत्तम पर्वतपर रहनेवाली सम्पूर्ण महौषधियाँ यह जानकर कि कोई हमें लेनेके लिये आ रहा है, तत्काल अदृश्य हो गयीं।'

विघ्नोंके बीच ही विशेष चमत्कार दिखानेवाले चतुरशिरोमणि वातजात भला ऐसे छोटे-मोटे विघ्नसे कहीं कुण्ठित होनेवाले हैं? वे बाहुबलसे विशाल पर्वतको ही उखाड़कर चल देते हैं; एक पल भी ऊहापोहमें बेकार नहीं बिताते। उनकी सजग कालज्ञ बुद्धिका परिचय समराङ्गणके उस स्थलपर मिलता है, जब विसंज्ञ सुग्रीवको लेकर हर्षमग्न कुम्भकर्ण अपने गढ़की ओर लौटता है। समीप पहुँच चुके हैं समीरसुत; किंतु यह क्या? स्वामी सुग्रीवको वे छुड़ाते नहीं। क्या यही स्वामिभक्ति है उनकी? क्या इससे भी बढ़कर नमकहलालीका कोई उपयुक्त अवसर आयेगा? हाँ, स्वामिभक्ति ही तो उन्हें रोक रही है; अवसर-विचार ही तो उनके पैरोंको जकड़े हुए है। ऐसा करनेसे स्वामीके यशकी हानि जो हो जाती—

मया तु मोक्षितस्यास्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
अप्रीतिश्च भवेत् कष्टो कीर्तिनाशश्च शाश्वतः॥

(वा० रा० ६। ६७। ७९)

'यदि मैं इन्हें छुड़ाऊँ तो महात्मा सुग्रीवको प्रसन्नता नहीं होगी; उलटे इनके मनमें खेद होगा और सदाके लिये इनके यशका नाश हो जायगा।'

कहाँतक इन 'सेवक-सरोरुह-सुखद-भानु-भोर-स्वरूप' सेवक-शिरोमणिकी सावधानताकी चर्चा की जाय? उनकी चुटकी बजानेतकमें वह चमत्कार है, जो समस्त श्रीराम-परिकरकी बुद्धिको चकरा देता है और उनकी चरण-सेवाके विशेषाधिकारको सर्वथा सुरक्षित कर देता है। उनकी विस्तृत विरुदावलीका न तो ओर है न छोर—

'जय जनकजा-रमण, जय जनकजा-रमणानुज,
जय जनकजा-रमण-चरण-चकोर!'

श्रीरामकथानुरागी श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीरामपदारथसिंहजी)

भगवान्‌की कथामें अनुराग होना भक्तिका एक लक्षण है। श्रीराम-भक्तिकी मिठाससे आकर्षित होकर 'हरसे हनुमान' बननेवाले महाभागवत श्रीआञ्जनेयमें भक्तिका यह लक्षण आश्चर्यजनक रूपमें विद्यमान है। उनका श्रीरामकथानुराग पराकाष्ठाको प्राप्त है। सच तो यह है कि श्रीहनुमानजीने श्रीरामकथाको अपना जीवनाधार ही बना लिया है।

श्रीवाल्मीकीय रामायणसे विदित होता है कि श्रीमारुतनन्दनने भगवान् श्रीरामसे यही वरदान माँग लिया था कि 'जबतक जगन्मङ्गलमयी श्रीरामकथा पृथ्वीपर प्रचलित रहे, तभीतक उनके शरीरमें प्राण रहें'—

यावद्रामकथा वीर चरिष्यति महीतले।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः॥

(वा० रा० ७। ४०। १७)

महाभारतके वनपर्वमें भी भीमसेनको रामचरित सुनाते समय उन्होंने अपने द्वारा भगवान् श्रीरामसे उपर्युक्त आशयका वरदान माँगनेका उल्लेख किया है—

वरं मया याचितोऽसौ रामो राजीवलोचनः॥
यावद्रामकथेयं ते भवेल्लोकेषु शत्रुहन्।
तावज्जीवेयमित्येवं तथास्त्विति च सोऽब्रवीत्॥

(१४८। १६-१७)

स्पष्ट है कि श्रीहनुमानजीको राम-कथाकी शर्तपर ही जीना स्वीकार है। उन्हें दीर्घ-जीवन प्राप्त है, पर बिना राम-कथाके वह उन्हें पसंद नहीं।

अनेक व्यक्तियोंको श्रीहनुमानजीके श्रीरामकथानुरागका प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिला है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके सम्बन्धमें प्रसिद्धि है कि उनका शौच-शेष-जल नित्य पानेपर काशीमें एक प्रेत प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें बतलाया कि श्रीहनुमानजी कोढ़ीके वेशमें प्रह्लादघाटपर रामायणकी कथामें नित्य ही सबसे पहले आते हैं और सबसे पीछे जाते हैं। इसी संकेतके आधारपर गोस्वामीजीने श्रीहनुमानजीको कथास्थलपर जाकर पहचाना। भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने भी यह कथा लिखी है—

सौच जल सेष पाय भूतहु बिसेष कोऊ,
बोल्यो सुख मानी हनुमानजू बताये हैं।
रामायन कथा, सो रसायन है काननि को,
आवत प्रथम, पाछे जात, घूना छाये हैं॥
जाय पहिचानि, संग चले उर आनि, आये,
बन मधि, जानि धाइ, पायँ लपटाये हैं।
करे तिसकार, कही "सकोगे न टारि, मैं तो
जान्यो रससार" रूप धर्‌यो जैसे गाये हैं॥

उपर्युक्त घटनासे गोस्वामीजीके हृदयपर श्रीहनुमानजीके श्रीरामकथानुरागकी अमिट छाप पड़ी और सम्भवतः इसीलिये श्रीमन्मानसमें उन्होंने उनका प्रथम स्मरण राम-कथाके अनुरागीके रूपमें ही किया है। बालकाण्डके मङ्गलाचरणमें नौ महानोंकी नमस्कारात्मक स्तुतियाँ हैं। वहाँ सभी वन्दनीयोंके किसी-न-किसी गुणकी ओर संकेत किया गया है। उसमें श्रीहनुमानजीके दो गुण संकेतित हैं, जिनमेंसे प्रथम है—उनका '***सीतारामगुणग्राम-पुण्यारण्यविहारी***' होना। 'विहारी' अर्थात् विहार करनेवाला। विहारी अपने विहारस्थलको छोड़ना नहीं चाहता। श्रीशिवजीने भगवान् श्रीरामके बालरूपकी वन्दना '***दसरथ अजिर बिहारी***' कहकर की है; क्योंकि वे छोटे बालक हैं, आँगन छोड़कर कहीं नहीं जाते। भगवान् श्रीकृष्ण 'वृन्दावनविहारी' कहलाते हैं; क्योंकि वे वृन्दावनको छोड़कर कभी कहीं नहीं जाते—'***वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।***' अतः श्रीहनुमानजीको '***सीताराम-गुणग्रामपुण्यारण्यविहारी***' कहनेका तात्पर्य है कि वे श्रीसीतारामकथाको कभी नहीं छोड़ते।

'विहारी' शब्दमें स्वभावकी भी वीप्सा है। विहरणशील अर्थात् विहार करनेके स्वभाववाला 'विहारी' कहलाता है। स्वभाव प्रायः जन्मजात हुआ करता है; वह जन्म-जन्मान्तरोंका संस्कार होता है। कभी-कभी ही प्रबल कारणके उपस्थित होनेपर स्वभावमें परिवर्तन देखा जाता है। जैसे देवर्षि एवं सप्तर्षियोंके संयुक्त प्रयासरूप प्रबल कारणने कवीश्वर श्रीवाल्मीकिजीके स्वभावको बदल दिया और वे '**सीता-रामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारी**' बन गये। उनके स्वभावमें श्रीरामकथानुराग प्रविष्ट हो गया। कपीश्वर श्रीहनुमानजीमें श्रीरामकथानुराग जन्मसे ही है। भगवान् श्रीरामसे भेंट होनेके पूर्वसे ही वे श्रीराम-कथाके प्रेमी हैं। प्रमाणस्वरूप 'रामाज्ञाप्रश्न' का अधोलिखित दोहा द्रष्टव्य है—

राम जनम सुभ काज सब कहत देवरिषि आइ।
सुनि सुनि मन हनुमान के प्रेम उमँग न अमाइ॥

(४। ४। १)

'कवीश्वर' और 'कपीश्वर' दोनों ही श्रीराम-कथानुरागियोंके लिये आदर्श हैं, अतः दोनों समानरूपसे स्तुत्य हैं। जिनके स्वभावमें उपदेशादिसे श्रीरामकथानुराग प्रविष्ट होता है, उनसे वे श्रेष्ठ हैं, जिनके स्वभावमें वह जन्मसे ही विद्यमान रहता है। श्रीगोस्वामीजी इस विधिसे श्रीरामचरितमानसके प्रारम्भमें ही श्रीहनुमत्स्वभावका उद्घाटन करते हुए उद्घोष करते हैं कि वे रामकथाके जन्मजात एवं स्वभावसिद्ध अनुरागी हैं।

जो व्यक्ति जिस वस्तु-विषयसे स्वाभाविक अनुराग रखता है, वह उस वस्तु-विषयके बिना रह नहीं सकता। वह उसकी प्राप्तिके लिये सतत प्रयत्नशील रहता है; क्योंकि वह उसके रसका रसिक होता है। श्रीहनुमानजी ***'प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया'*** रूपमें प्रसिद्ध हैं। वे कथा-रसके आस्वादनका अवसर कभी नहीं चूकते। जहाँ भी भगवान् श्रीरामकी कीर्ति-कथाका गायन होता है, वहाँ वे अवश्य पहुँचते हैं और हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये, नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भरे आद्यन्त विराजमान रहते हैं।

श्रीहनुमानजीका श्रीरामकथानुराग लंकामें भी विख्यात था। एक बार शत्रुपक्षको उससे लाभ उठानेकी युक्ति सूझी। श्रीराम और रावणका लोकविश्रुत युद्ध चल रहा था। लंकाके समराङ्गणमें मेघनादके वाणसे आहत सौमित्रि संज्ञाशून्य स्थितिमें पड़े थे। उनके लिये हिमालयसे रातों-रात संजीवनी बूटी लानी थी। श्रीमारुतनन्दन ही यह गुरुतम कार्य कर सकते थे। वे प्रभञ्जनवेगसे चले। उधर रावणको पता लगा। उसने कालनेमिको प्रेरित किया कि वह किसी प्रकार श्रीहनुमानजीको रातभर बिलमा ले। कालनेमिको जाना पड़ा श्रीहनुमानजीको बिलमानेके लिये। उसने जो उपाय किया, वह श्रीमन्मानसमें प्रकट है। वह मार्गमें मायासे ***'सर मंदिर बर बाग'*** बनाकर स्वयं मुनि बनकर बैठ गया। श्रीमारुतसुत वहाँ पहुँचे। उस सुन्दर आश्रमको देखनेके पश्चात् वहाँ उनकी जल पीकर दिनभरकी लड़ाईकी थकावट दूर करनेकी इच्छा हुई। तब उन्होंने मुनिसे जलका पता पूछनेका विचार किया—

मारुतसुत देखा सुभ आश्रम।
मुनिहि बूझि जल पियौं जाइ श्रम॥

(मानस ६। ५७। २)

वे उस मायामय आश्रममें गये और मुनिवेशधारी कालनेमिको उन्होंने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया—

'जाइ पवन सुत नायउ माथा।'

प्रत्युत्तरमें कालनेमि रामकथा कहने लगा—

'लाग सो कहै राम गुन गाथा॥'

कालनेमि जानता था कि श्रीवायुनन्दन वायुके समान ही दुर्निग्रह हैं। उनको उलझानेका कोई अन्य अचूक उपाय न देखकर उसने श्रीराम-कथाका सहारा लिया। वह जानता था कि श्रीहनुमानजी श्रीराम-कार्य और श्रीराम-कथामें प्राथमिकता श्रीराम-कथाको ही देते हैं। उसे यह भी मालूम था कि वे कथा-समाप्तिके पूर्व कथास्थलसे जा नहीं सकते। अतः अपनी कुयोजनाको सफल करनेकी आशासे अन्य उपचार किये बिना वह श्रीराम-कथा कहने लगा। इसका फल हुआ भी उसकी आशाके अनुकूल ही। श्रीहनुमानजी कथा सुनने लगे। उसकी शिष्टाचार-सम्बन्धी भूलपर उनका ध्यान नहीं गया और वे अपनी प्यास भी भूल गये। कथाप्रेमी वक्ताकी भूल-चूकपर ध्यान ही नहीं देता और कथा-श्रवणके समय उसे भूख-प्यास रहती ही नहीं। श्रीमद्भागवतकी कथा श्रवण करते समय महाराज परीक्षित्को भूख-प्यास नहीं रही। उनका अपना कथन है—

नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्॥

(श्रीमद्भागवत १०।१।१३)

श्रीहनुमानजी कथा-श्रवणमें ऐसे तल्लीन हो गये कि वे प्यास ही नहीं, जड़ी लाने जाना भी भूल गये। देर होने लगी। सुषेणने संजीवनी और समय दोनोंका समान महत्त्व बतलाया था—

'जियै कुँवर, निसि मिलै मूलिका कीन्हीं बिनय सुषेन'

(गीतावली ६।९।२½)

श्रीलक्ष्मणजीके लिये सूर्योदय प्राणघातक है, उसके पूर्व ही जड़ीका पहुँचना आवश्यक है। बादमें वह प्रभावहीन हो जायगी—ये सारी बातें श्रीहनुमानजीकी स्मृतिसे उतर गयीं; क्योंकि श्रीराम-कथा कानोंमें पड़ी, इससे उनके मन, चित्त—सब उसीमें लग गये। अन्य बातोंको कौन याद रखे? इधर विलम्ब होने लगा, उधर भगवान् श्रीरामकी व्याकुलता बढ़ने लगी—

उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी।
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥

(मानस ६।६१।१-२)

—पर श्रीहनुमानजी तो कथा सुननेमें तन्मय थे। कालनेमिने जो युद्ध-लीला देखी थी, उसे कहना प्रारम्भ किया—

होत महारन रावन रामहिं। जितिहहिं राम न संसय या महिं॥

(मानस ६।५७।५)

जब देखी हुई लीलाका वर्णन हो चुका, कुछ कहनेको शेष न रहा, तब वह अपनी प्रशंसाकी कथा सुनाने लगा—

इहाँ भएँ मैं देखउँ भाई। ग्यानदृष्टि बल मोहि अधिकाई॥

(मानस ६।५७।६)

उस समय कानोंसे केवल श्रीराम-कथा ही सुननेवाले श्रीहनुमानजीके चित्तमें विक्षेप हुआ; उन्हें प्यास मालूम हुई और आगे चलकर मकरी-भूत अप्सरासे सारा भेद खुला। वे कालनेमिको मारकर आगे बढ़े और द्रोणाचलको ही उठाकर लंका ले गये। वैद्यने जड़ी पाकर तुरंत उपचार किया और लक्ष्मणजी स्वस्थ होकर उठ बैठे।

कालनेमिको श्रीराम-कथा पूरी ज्ञात नहीं थी। यदि वह भगवान्‌के जन्म, विवाह आदिकी भी कथा जानता होता तो *'राम काज कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥'* (मानस ५।१)-का विचार रखनेवाले श्रीहनुमानजीको रातभर वह अवश्य उलझा लेता। उस दशामें उनके श्रीराम-कथा-विषयक अद्भुत अनुरागका परिणाम शुभ होता या अशुभ, यह प्रश्न श्रीराम-कथाके महत्त्वपर अपूर्ण आस्था होनेके कारण पैदा होता है। आश्वस्त रहना चाहिये कि श्रीराम-कथानुरागीका कोई कार्य उसके कथानुरागके कारण नहीं बिगड़ता। श्रीहनुमानजीसे कभी कोई कार्य बिगड़ा हो, ऐसा उदाहरण नहीं है। भगवान् श्रीरामके सब कार्य सुन्दर ढंगसे श्रीहनुमानजीने ही पूरे किये—

सब पर राम तपस्वी राजा। तिनके काज सकल तुम्ह साजा॥

(हनुमानचालीसा)

श्रीरघुपति-वर-दूत हनुमान

(लेखक—पं० श्रीसीतारामजी चतुर्वेदी, एम्० ए०)

पवनपुत्र श्रीहनुमानजीके लिये अनेक भक्तों और कवियोंने अनेक प्रकारके विशेषणोंका प्रयोग किया है। उन्हें अतुलित बलधाम, सुमेरुके समान चमचमाते शरीरवाला, राक्षसोंके समूहको अग्निके समान जला डालनेवाला, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणोंका निधान, वानरोंके अधीश्वर और श्रीरामका श्रेष्ठ दूत कहा गया है। इतना ही नहीं, उन्हें मनके समान अत्यन्त तीव्र गतिवाला, पवनके समान वेगसे चलनेवाला, अत्यन्त जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी, बुद्धिमान् लोगोंमें सबसे अधिक वरिष्ठ, वायुका पुत्र, वानरोंकी सेनाका नायक और श्रीरामका दूत भी कहा गया है।

भारतीय नीति-ग्रन्थोंमें दूतके लक्षण बताते हुए कहा गया है—

मेधावी वाक्पटुः प्राज्ञः परचित्तोपलक्षकः।
धीरो यथोक्तवादी च एष दूतो विधीयते॥
गुणी भक्तो शुचिर्दक्षः प्रगल्भोऽव्यसनी क्षमी।
ब्राह्मणः परमर्मज्ञो दूतः स्यात् प्रतिभानवान्॥
साकारो निस्स्पृहो वाग्मी नानाशास्त्रविचक्षणः।
परचित्तावगन्ता च राज्ञो दूतः स इष्यते॥

'जो व्यक्ति दूतका कार्य करनेके लिये भेजा जाय, वह मेधावी (बुद्धिमान्, प्रतिभावान् और अच्छी स्मरण-शक्तिवाला), वाक्पटु (समयके अनुसार उचित बात कहनेमें चतुर), प्राज्ञ (किसी भी बातको झट समझ जानेवाला), दूसरेके मनकी बात झट ताड़ जानेवाला, धीर (धैर्यशाली) और जैसा कहा गया हो, वैसा ही जाकर कहनेवाला होना चाहिये। दूत ऐसा होना चाहिये, जो गुणी (अनेक गुणोंका भण्डार, आवश्यकता पड़नेपर समुचित व्यवहार कर सकनेवाला), अपने स्वामीका भक्त, पवित्र (किसी भी प्रकारके प्रलोभनसे न डिग सकनेवाला), दक्ष (आवश्यकतानुसार व्यवहार करनेमें चतुर), प्रगल्भ (बातचीत करनेमें कुशल), अव्यसनी (जिसमें किसी प्रकारका व्यसन या दुर्गुण न हो), सहिष्णु, ब्राह्मण (पवित्र आचरणवाला), दूसरेके मनकी या भेदकी बात झट जान सकनेवाला और प्रतिभावान् (समयके अनुसार व्यवहार कर सकनेकी बुद्धिवाला) हो। राजाका दूत देखनेमें सुन्दर, निर्लोभ, बातचीतमें कुशल, अनेक शास्त्रोंका पण्डित और दूसरेके मनकी बात झट समझ सकनेवाला होना चाहिये।'

पवनपुत्र श्रीहनुमानजीमें ये सभी गुण भरपूर मात्रामें विद्यमान थे। उनकी बुद्धिमत्ता तो कई स्थानोंपर प्रत्यक्ष प्रकट हो जाती है। श्रीरामसे मिलन होनेके साथ ही उन्होंने अपने स्वामी श्रीराम और सुग्रीव—दोनोंकी मित्रता कराकर अपनी स्वामिभक्ति और बुद्धिमत्ता—दोनोंका एक साथ परिचय दिया। यदि उन्होंने ऐसा न किया होता तो न सुग्रीवका ही भय दूर हो पाता और न जानकीकी खोजमें ही समुचित सहायता मिल पाती। इसी प्रकार उनकी बुद्धिमत्ता और वाक्पटुताका परिचय वहाँ मिल जाता है, जब वे अशोक-वाटिकामें

सीताजीसे और लंकामें रावणसे बातचीत करते हैं। अतुलित शक्ति होनेपर भी उन्होंने अपने धैर्यका परिचय उस समय दिया, जब रावण आकर श्रीसीताजीको तर्जन करने लगा था। उनकी बुद्धिमत्ताका यह भी कम प्रमाण नहीं है कि उन्होंने कैसे विभीषणसे मित्रता करके लंकाका सारा भेद प्राप्त कर लिया। श्रीरामने सीताके लिये उन्हें जो संदेश दिया था और सीताने जो संदेश श्रीरामको भिजवाया था, वह उन्होंने दोनोंको ठीक वैसे ही कह सुनाया। उनकी अपूर्व बुद्धिमत्ता वहाँ भी प्रकट होती है। जब लक्ष्मणको शक्ति लग जाती है, तब वे लंकाके प्रसिद्ध वैद्य सुषेणको न जगाते हैं और न उसका द्वार खटखटाते हैं; क्योंकि ऐसा करनेपर राक्षसोंको इसकी भनक मिल सकती थी। इसलिये वे वैद्यजीको उनके घरसहित उठाये लिये चले आते हैं; क्योंकि ऐसे संकटके समय एक क्षण नष्ट करना भी बुद्धिमत्ताकी बात नहीं थी। सुषेण वैद्यके कथनानुसार जब वे द्रोणाचलपर दिव्यौषधि लेने गये, उस समय वहाँ उन्हें ओषधिकी पहचान न हो पायी। किंतु ऐसी परिस्थितिमें वे न तो तनिक भी घबराये एवं न विचलित ही हुए। उन्होंने तत्काल पूरा-का-पूरा पहाड़ ही उखाड़ लिया और उसे लेकर वे इतने वेगसे उड़ चले कि उनकी गतिका वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी 'कवितावली' में कहा है—

लीन्हो उखारि पहारु बिसाल, चल्यौ तेहि काल बिलंबु न लायौ।
मारुतनंदन मारुत कौ, मन कौ, खगराज कौ बेगु लजायौ॥
तीखी तुरा 'तुलसी' कहतो पै हिएँ उपमा कौ समाउ न आयौ।
मानों प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी, कपि यौं धुकि धायौ॥
(६।५४)

हनुमानजीके उस वेगका वर्णन करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं कि 'हनुमानजीने विशाल पहाड़ उखाड़ते ही बिना विलम्ब किये उसी समय वहाँसे प्रस्थान कर दिया और उन्होंने पवन, मन और गरुड— तीनोंके वेगको लज्जित कर दिया। वे ऐसे वेगसे चले, मानो आकाशमें प्रत्यक्ष पर्वतकी रेखा खिंच गयी हो।' उनके वेग और उनकी अपार शक्तिका परिचय तो उनके समुद्र लाँघने और द्रोणाचल उखाड़कर बात-की-बातमें लंका पहुँचा देनेसे ही स्पष्ट हो जाता है। जिन लक्ष्मणको मेघनाद और रावणतक नहीं उठा सके, उन्हें वे सरलतापूर्वक रणभूमिसे अपने हाथोंपर उठाये श्रीरामके पास लिये चले आये।

श्रीहनुमानजीको यह शाप था कि उन्हें अपने बलका ज्ञान तभी होगा, जब उन्हें उसका कोई स्मरण दिला देगा। इसीलिये जब समुद्र-तटपर पहुँचकर सम्पातिके बता देनेपर भी कोई समुद्र लाँघनेका साहस नहीं कर पा रहा था, उस समय जाम्बवन्तने ही हनुमानसे कहा था—'***का चुप साधि रहेहु बलवाना॥***' (मानस ४। २९। १½) और यह सुनते ही वे '***भयउ पर्बताकारा॥***' (मानस ४। २९। ३) हो उठे। अपनी इस शक्ति अर्थात् महिमा, गरिमा और लघिमा आदि सिद्धियोंका परिचय उन्होंने उस समय दिया था, जब सुरसा उनकी परीक्षा लेने आयी थी। जैसे-जैसे सुरसा अपना मुँह फैलाती जाती थी, हनुमान उससे दुगुने बड़े होते चले जाते थे। तब सुरसाने उन्हें कह दिया था कि 'जाओ, मैंने तुम्हारी बुद्धि और बलकी परीक्षा ले ली है।'

दूतका कार्य यह है कि जो काम उसे सौंपा जाय, उसे वह सावधानीसे निरालस होकर करे। जब समुद्र-तटसे उछलकर श्रीहनुमान लंकाकी ओर जा रहे थे, उस समय मैनाकपर्वतने उनसे कहा कि 'तनिक विश्राम कर लीजिये'। किंतु श्रीहनुमानने कहा—नहीं, "***राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥***" (मानस ५। १) इतना ही नहीं, लंका जलाकर सीतासे आज्ञा प्राप्त करके वे तत्काल वहाँसे चल पड़े। उन्होंने कुछ भी विलम्ब नहीं किया। उन्होंने किस प्रकार सारी लंका जलाकर राख कर डाली, यह उनकी तेजस्विता, शक्ति और प्रतापका जीता-जागता उदाहरण है। लंकासे अयोध्या लौटनेपर जब भरतने सबको बढ़िया आभूषण और वस्त्र पहनाये, उस समय हनुमानजीको भी मोतियोंका हार दिया गया। किंतु उन्होंने उसे तोड़कर फेंक दिया। दूत क्या पुरस्कारके लिये काम करता है? वे तो श्रीरामके भक्त थे—पवित्र, निर्लोभ भक्त। इसीलिये उन्होंने झट हृदय फाड़कर सबको दिखला दिया कि 'यह देखो, मेरा सारा जीवन-धन श्रीराम और श्रीसीता मेरे हृदयमें विराजमान हैं; मुझे अब क्या चाहिये।'

इस प्रकार श्रीहनुमानजी अपने स्वामी श्रीरामके ऐसे परम सराहनीय दूत सिद्ध हुए कि उनके समान कोई दूसरा दूत आजतक हुआ ही नहीं। यहाँतक कि श्रीरामने भी उनके लिये यह कह दिया कि 'मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और आजीवन तुमसे उऋण नहीं हो सकता।'

कुशल दूत श्रीहनुमान

(लेखक—पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र, काव्य-व्याकरण-सांख्य-स्मृति-तीर्थ)

नीतिशास्त्रके अनुसार दूतका काम बहुत दायित्वपूर्ण होता है। अत: दूतका काम साधारण पुरुष नहीं कर सकता। 'दूत' शब्दका अर्थ होता है—संदेश पहुँचानेवाला। अत: दूतमें दैहिक और बौद्धिक—दोनों तरहके बल अपेक्षित हैं। श्रीहनुमानजी भगवान् शंकरके अवतार हैं तथा पवनके अंश हैं, अत: उनमें दैहिक और बौद्धिक बल अपार है।

महाकवि विश्वनाथभट्टने 'साहित्यदर्पण' में दूतके तीन भेद बताते हुए 'निसृष्टार्थ दूत' उसको कहा है, जो स्वामीके कार्यको सम्पन्न करनेके लिये अपनी ओरसे विपक्षको समझाता है, डराता है, लोभ देता है और उसके अपने व्यक्तियोंमें भेद उत्पन्न करता है। वह स्वामीका कार्य जिस तरह सिद्ध हो, वैसा ही प्रयत्न करता है और किसी प्रकार अपने स्वामीके कार्यको बिगड़ने नहीं देता। श्रीहनुमानजी पहले सुग्रीव-दूतके रूपमें भगवान् श्रीरामसे मिलकर श्रीसुग्रीवका काम बनाते हैं, फिर श्रीराम-दूतके रूपमें श्रीसीतान्वेषण-जैसा महान् अद्भुत कार्य करते हैं।

सूर्यपुत्र सुग्रीव अपने बड़े भाई वालीके डरसे ऋष्यमूक (मलय)पर्वतपर अपने मन्त्री श्रीहनुमानजीके साथ निवास कर रहे थे। अत्यन्त तेजस्वी श्रीराम और लक्ष्मणको निर्भीकताके साथ उस पर्वतकी ओर आते देखकर वे भयभीत हो गये। उनके सभी मन्त्री भी डर गये और इधर-उधर भागने लगे। उस अवस्थामें जब हनुमानजीने उनको ढाढस बँधाया, तब सुग्रीव कुछ स्वस्थ हुए। उन्होंने हनुमानजीको उनके पास पता लगानेके लिये भेजा—

धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई।
पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला॥

(मानस ४।१।४-५)

हनुमानजीमें कामरूपता—स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्ति थी। उन्होंने ब्राह्मणका (वाल्मीकिरामायणके अनुसार भिक्षुकका) रूप धारण करके श्रीराम-लक्ष्मणके पास जाकर अत्यन्त नम्रतापूर्वक प्रणाम किया और मधुर वचनोंमें उन दोनोंकी समुचित प्रशंसा की। ब्राह्मणद्वारा गृहस्थाश्रमी क्षत्रिय रूपवाले श्रीराम और लक्ष्मणको प्रणाम किया जाना कुछ लोग उचित नहीं समझते। किंतु सत्य बात तो यह है कि प्रभावशाली व्यक्तिके सामने बरबस सिर झुक जाता है। इसके दृष्टान्तस्वरूप महाभारतमें कथा है कि दुर्योधनकी राजसभामें भगवान् श्रीकृष्णके उपस्थित होते ही उसके मना करनेपर भी भगवान् श्रीकृष्णके प्रभावसे प्रभावित होकर सभी सभासद्गण उठकर खड़े हो गये थे। सभाओंमें भी देखा जाता है कि सभापतिके आनेपर सभी सभासद्, चाहे वे ब्राह्मण, वृद्ध और विद्वान् कोई भी क्यों न हों—उनके सम्मानमें खड़े हो जाते हैं। भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणको देखते ही हनुमानजीने पहचान लिया कि हो-न-हो ये दोनों कोई अवतारिक पुरुष हैं। इसलिये ब्राह्मण होनेपर भी इन्होंने उन्हें प्रणाम किया और यह उचित ही हुआ। हनुमानजी नीतिमें निपुण थे, इसलिये अपने प्राकृत वानररूपको छोड़कर उन्होंने अन्य रूप धारण किया था। दूतको प्राकृत रूपमें देखकर विपक्ष उसके साथ दुर्व्यवहार कर सकता है और उसे भी विपक्षके विचार और व्यवहारको जाननेमें कठिनाई हो सकती है। इसलिये दूत अपनेको ऐसे वेषमें प्रस्तुत करता है कि विपक्ष उसपर विश्वास कर ले। 'किरातार्जुनीय' महाकाव्यके अनुसार दुर्योधनका प्रजाके साथ व्यवहार जाननेके लिये युधिष्ठिरने जिस एक वनचरको दूत बनाकर भेजा था, वह भी संन्यासी-रूपमें गया था।

कौन व्यक्ति कितना प्रभावशाली है, इसका पूर्ण ज्ञान भी श्रीहनुमानजीको था। इसीलिये वे श्रीराम और लक्ष्मणके सौन्दर्य और प्रभावको देखकर समझ गये कि ये साधारण मनुष्य नहीं हैं। अतएव श्रीराम और लक्ष्मणके पास जाकर उन्होंने प्रणाम किया और उनसे उनका परिचय पूछा—

राजर्षिदेवप्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ॥
देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ।

(वा० रा० ४।३।५-६)

'आप दोनों राजर्षियों तथा देवताओंके समान प्रभावशाली, तपस्वी और कठोर व्रतका पालन करनेवाले प्रतीत होते हैं। इतने सौन्दर्यशाली होनेपर भी आप इस कण्टकाकीर्ण जंगलमें कैसे घूम रहे हैं?' उत्तरस्वरूप भगवान् श्रीरामने इतना ही कहा—

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥

(मानस ४।२।१—३)

श्रीहनुमानजी दशरथके पुत्र रामका नाम सुनते ही

समझ गये कि ये परब्रह्म परमात्मा हैं और उन्होंने विचार किया कि 'जैसे मेरे स्वामी सुग्रीवका राज्य और स्त्री आदि छीन लिये गये हैं और स्त्रीके वियोगसे वे दुःखित हैं, वैसे ही ये भी स्त्रीसे वियुक्त हैं। यदि ये मेरे स्वामी सुग्रीवसे मित्रता कर लें तो इनका और उनका—दोनोंका काम सम्पन्न हो जाय।' ऐसा सोचकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'इस पर्वतपर वानरोंके राजा सुग्रीव रहते हैं। उनके राज्य और उनकी स्त्रीको उनके बड़े भाई वालीने छीन लिया है। उनके साथ मित्रता करके आप उन्हें अभय प्रदान कीजिये और वे आपकी पत्नीकी खोज वानरोंद्वारा करायेंगे।'

श्रीरामचन्द्रजी तो चाहते ही थे कि ऐसा कोई सहायक मिल जाय, जो सीताकी खोज करा दे। हनुमानजीने वाली और सुग्रीवके वैमनस्यकी सारी कथा उन्हें कह सुनायी। जब श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानजीकी सलाह मान ली, तब हनुमानजीने अपना ब्राह्मण-रूप छोड़ दिया और प्राकृत वानरका शरीर धारण करके उन दोनों भाइयोंको अपनी पीठपर चढ़ाकर ऋष्यमूकपर्वतपर ले गये।

हनुमानजीने उनको पीठपर इसलिये चढ़ा लिया कि परब्रह्मस्वरूप श्रीराम और लक्ष्मणके श्रीचरणोंके स्पर्शसे उनकी पीठ पवित्र हो जायगी। दूसरे, मनुष्यरूपमें अत्यन्त कोमल शरीरवाले श्रीराम और लक्ष्मण इतने ऊँचे पर्वतपर चढ़नेमें थक जायँगे। तीसरे, पीठपर चढ़ाकर ले जाते हुए हनुमानजीको देखकर सुग्रीवके मनकी उद्विग्नता शान्त हो जायगी; वे समझ जायँगे कि ये उनके हितैषी हैं, शत्रु नहीं।

सुग्रीवके पास पहुँचकर हनुमानजीने अग्निकी साक्षीमें उन दोनोंकी मित्रता करायी एवं एक-दूसरेके कार्यको सिद्ध करनेकी प्रतिज्ञा करवायी। भगवान् श्रीरामने अपने मित्र सुग्रीवका काम पहले सम्पन्न किया और उनके शत्रु वालीको मारकर अपहृत राज्य और स्त्रीको उनके अधीन कर दिया। इस प्रकार हनुमानजीने सुग्रीवका कार्य सम्पन्न करके निसृष्टदूतत्वका पूर्ण परिचय दिया।

सुग्रीवने भी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वानरोंकी सेना बुलायी और श्रीसीताजीकी खोजमें साधारण वानरोंको पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशामें भेजा; किंतु दक्षिण दिशामें लब्धप्रतिष्ठ वीर वानरोंको नियुक्त किया। जब सुग्रीवकी आज्ञासे वे वीर वानर प्रस्थान करने लगे, तब उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया। सबसे अन्तमें हनुमानजीने उनके चरणोंपर सिर झुकाया। उस समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने इनको बल-पौरुष और बुद्धिमें सबसे बढ़कर समझा और इनको अपने पास बुलाकर श्रीसीताजीके लिये कुछ संदेश कहा एवं चिह्नस्वरूप उनको अपनी अँगूठी दी। अँगूठी इसलिये दी कि उसे देखनेसे श्रीसीताको विश्वास हो जाय कि ये श्रीरामके दूत हैं और तब वे खुलकर इनके साथ बातचीत कर सकें।

वीर वानर रास्तेकी कठिनाइयोंको पार करते हुए समुद्रके किनारे एक पर्वतपर पहुँचे। वहाँ सम्पातिद्वारा सीताजीका निश्चित समाचार मिलनेपर वानरोंको प्रसन्नता हुई, पर साथ ही चिन्ता भी हुई कि सौ योजन विस्तृत समुद्रको पार कैसे किया जाय। जाम्बवान्के स्मरण करानेपर श्रीहनुमानको अपनी शक्तिका ज्ञान हुआ। उन्होंने तुरंत अपने शरीरको विशाल बना लिया और श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका ध्यान करके वे चल पड़े।

वस्तुतः हनुमानजी भगवान् श्रीरामके निस्स्वार्थ और अनन्य भक्त थे। रामायणमें जैसी अहैतुकी भक्ति उनकी दिखलायी गयी है, वैसी अन्य किसी पात्रकी नहीं। उनकी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीपर जितनी श्रद्धा और आस्था थी, उतनी और किसीकी भी नहीं। जब हनुमानजी समुद्र पार करने लगे, तब देवताओंने उनकी बल-बुद्धिकी परीक्षा लेनेके लिये नागमाता सुरसाको भेजा। हनुमानजीने अपने बुद्धि-बलसे उसको परास्त कर दिया। उन्होंने इसी तरह संतप्त किया सिंहिकाको और पराभूत किया लंकिनीको। उन्हें भगवान् श्रीरामकी कृपामें इतना विश्वास था कि उन्होंने श्रीराम-नामके भरोसे त्रैलोक्यविजयी रावण-जैसे शत्रुकी नगरीमें अकेले जानेका साहस किया। वहाँ जाकर उन्होंने न केवल महारानी सीताजीकी खोज ही की, बल्कि अपने स्वामी भगवान् श्रीरामका प्रभाव भी रावणको बतला दिया।

रावण-पुत्र अक्षयकुमारका अन्त करना, अशोकवनको नष्ट-भ्रष्ट करना, लंकानगरीको जला देना और भगवती श्रीसीताका समाचार भगवान् श्रीरामको सुनाना—वे सब महान् कार्य श्रीहनुमान-जैसे कुशल और समर्थ दूत ही कर सकते थे।

इस प्रकार श्रीहनुमानजीने सच्चे अर्थमें 'निसृष्टार्थ दूत' का कार्य किया है। तभी भगवती श्रीसीताजीने भी उनके कार्यसे प्रसन्न होकर यह अमोघ आशीर्वाद दिया—

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥

(मानस ५।१७।३)

और श्रीरामने भी उनके विषयमें यही कहा—'मैं तुम्हारा सदा ऋणी ही रहूँगा।'

शास्त्रोक्त दौत्य-कसौटीपर श्रीरामदूत हनुमान

(लेखक—पं० श्रीलक्ष्मणजी शास्त्री)

भारतीय संस्कृतिको यदि मानवमात्रके ज्ञानका विश्वकोश कहा जाय तो भी कोई अतिशयोक्ति न होगी। कामन्दक, शुक्राचार्य, कौटल्य आदि पुरातन राज-धर्माचार्योंने राज्यको 'सप्ताङ्ग चेतन' के रूपमें ग्रहण किया है और इस पृथ्वीमण्डलके सर्वश्रेष्ठ—'**न भूतो न भविष्यति**' नीतिमान् राजाके रूपमें श्रीरामको सम्मान प्रदान किया है। उन्हीं भगवान् श्रीरामके द्वारा श्रीलक्ष्मणजीको विस्तृत राजनीतिके उपदेशका उल्लेख अग्निपुराणके अध्याय २३८ से २४२ पर्यन्त पाँच अध्यायोंमें उपलब्ध होता है। उसमें राजदूतके गुण-धर्मादि लक्षणोंका भी विवेचन सात श्लोकोंद्वारा किया गया है, जिनमेंसे प्रथम और प्रधान श्लोक इस प्रकार है—

प्रगल्भः स्मृतिमान् वाग्मी शस्त्रे शास्त्रे च निष्ठितः।
अभ्यस्तकर्मा नृपतेर्दूतो भवितुमर्हति॥

(२४१।७)

अर्थात् 'निर्भीक प्रवक्ता, शुद्ध-स्मरणशक्ति-चैतन्य, अनन्यथा-वाक्, युद्धकला-कुशल, शास्त्र-परिनिष्ठित और अनुभव-सम्पन्न व्यक्ति ही राजदूत-पदके अनुरूप होता है।' सकलगुणनिधान श्रीहनुमान भगवान् श्रीरामके मात्र प्रधान राजदूत ही नहीं, वरन् समर्थ सेनापति एवं महान् गुप्तचर भी थे। सुरसा, लंकिनी और स्वयं भगवती सीताने भी उनके अद्भुत दौत्य-कौशल्यकी सम्यक् परीक्षा ली थी, जिसमें उन्होंने शत-प्रतिशत सफलता प्राप्त की थी—'***बुधि बल मरमु तोर मैं पावा***'। अग्निपुराणोक्त राजदूतके मुख्य पाँच गुणोंमें प्रथम लक्षण है—'**प्रगल्भः**' अर्थात् जो उचित और आवश्यक बातको कहीं भी किसी भी परिस्थितिमें निस्संकोचभावसे कहनेमें पूर्ण समर्थ हो।

अहंकार और क्रोधकी प्रतिमूर्ति शोकाकुल दशानन रत्न-खचित स्वर्ण-सिंहासनपर बैठा हुआ था। सभा भरी हुई थी और शतयोजन-सागरको पार करके सीतामातासे भेंटकर, अशोक-वाटिकाको उजाड़, राजपुत्र अक्षकुमारको मार, मेघनादद्वारा ब्रह्मास्त्र-बद्ध बंदी हनुमान उसके सामने खड़े थे। सभामें सन्नाटा छाया हुआ था एवं समस्त सभा आश्चर्यचकित दृष्टिसे उन्हें घूर रही थी। ऐसी आतङ्कपूर्ण विषम परिस्थितिमें भी उस अद्वितीय प्रतिभाशाली राजदूतके द्वारा दिये गये भाषणके एक-एक शब्दसे उसका प्रकृष्टतम प्रागल्भ्य ही नहीं, समस्त दौत्य-दाक्षिण्य भी प्रत्यक्ष हो रहा था—

'हे राक्षसराज! मैं महात्मा सुग्रीवका सचिव और अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्रका दास हनुमान हूँ। इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथके पुत्र श्रीराम धर्ममार्गका आश्रय लेकर अपनी पत्नी जनकनन्दिनी श्रीसीता और वीर भ्राता श्रीलक्ष्मणसहित दण्डकारण्यमें आये थे। वहाँसे उनकी पत्नी भगवती श्रीसीताको कोई चोर चुरा ले गया। उनकी खोज करते हुए वे दोनों भाई ऋष्यमूकपर्वतपर पधारे और वहाँ उनकी सुग्रीवसे मित्रता हो गयी। अपने सखाके हितके लिये उन्होंने उसके भाई महाबली वालीका वध करके सुग्रीवको वानरोंका अधिपति घोषित कर दिया। उन्हीं अपने स्वामीकी आज्ञासे कोटि-कोटि वानर-भालू देवी जानकीजीकी खोजमें सब दिशाओंमें निकल पड़े हैं। मैं भी उन्हींकी तलाश करता हुआ आपकी लंकामें आ पहुँचा हूँ। मैंने स्वयं आपके यहाँ अशोक-वनमें माता श्रीसीताके दर्शन किये हैं और उनसे वार्ता भी की है। दशानन! आप तो महामति हैं, नीतिज्ञ और धर्मज्ञ हैं, अर्थ-कामके मर्मको भलीभाँति जानते हैं, फिर परायी स्त्रीका इस प्रकार अपहरण करके बलात् घरमें रखनेका शठता—धूर्ततापूर्ण और महदशोभनीय कुकर्म आपसे कैसे हो गया ? किंतु अभी अवसर है उस भूलको सुधारनेका। आप मेरा धर्मानुकूल अनुरोध मानकर तत्काल रघुकुलवधू देवी जानकीजीको सम्मानसहित श्रीरामके पास भेज दें। इसीमें आपकी भलाई है, अन्यथा आपका जीवित रहना कठिन है'—

सर्वलोकेश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम्।
रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम्॥

(वा० रा० ५।५१।४२)

राजदूतके सम्बन्धमें श्रीरामकी द्वितीय उक्ति है—'**स्मृतिमान्**' अर्थात् विलक्षण स्मरणशक्तिसम्पन्न व्यक्ति। स्वर्ण, मणि, रत्न, हाथी, घोड़े, रथ, राक्षस, दानव, दैत्य, गन्धर्व, नाग, देव, वृक्ष, लता, गुल्म, पशु-पक्षी और धन-धान्यसे भरी-पूरी लंकाको भस्मीभूत करके मेघ-गर्जना करते हुए जब श्रीहनुमान वापस लौटे, तब सभीने उनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की। श्रीरामने तो यहाँतक कह डाला कि 'यदि मैं तुम्हारे ऊपर अपने प्राणोंको भी निछावर

कर दूँ तो भी कपिश्रेष्ठ! मैं तुम्हारा ऋणी ही रहूँगा।' उन्होंने अपना प्रेम-सर्वस्व प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान करके श्रीहनुमानकी ओर साभिप्राय दृष्टि डालते हुए पुनः कहा—

'सौम्य! सुना जाता है कि लंकामें प्रवेश करना तथा उसे जीतना अत्यन्त दुष्कर है। इसलिये मैं अपने नेत्रोंसे देखे हुएके समान उसका स्पष्ट विवरण सुनना चाहता हूँ। तुमने समूची लंकाका युद्धकी दृष्टिसे गहन अध्ययन किया है। अतएव बताओ कि रावणकी सेना कितनी है और लंकाकी रक्षाके लिये उसने क्या-क्या उपाय कर रखे हैं।'

ऐसा प्रतीत होता है, मानो राजदूतकी स्मृतिकी थाह लगानेके लिये ही प्रभुने ऐसा प्रश्न किया हो। भगवान् श्रीरामके अर्थयुक्त वचन सुनकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीहनुमानजीने निवेदन किया—

'हे रघुवंशविभूषण! लंकावासी समस्त राक्षस अत्यन्त सबल और सम्पन्न हैं। वहाँ बड़े-बड़े मस्त हाथी, घोड़े एवं रथ भरे पड़े हैं। उसके चार विशाल सिंहद्वारोंपर मजबूत कपाटोंमें मोटी-मोटी अर्गलाएँ जड़ी हुई हैं। उन द्वारोंपर शत्रुसेनाको रोकनेके लिये विशाल और प्रबल यन्त्र लगे हैं। दस-दस सहस्र भयंकर शूलधारी सुभट प्रत्येक द्वारकी रक्षा किया करते हैं और उनकी सहायताके लिये चतुरङ्गिणी सेना सर्वदैव संनद्ध रहती है। लंकाके चारों ओर स्वर्णिम कोट बना हुआ है, जिसके बीच-बीचमें मणि, मूँगा और मोती जड़े हुए हैं। उस चहारदीवारीके बाहर चारों ओर ठंढे जलसे भरी हुई भयानक गहरी खाई बनी हुई है, जिसमें मगरमच्छ आदि हिंस्र जलजन्तु तैरते रहते हैं। उस खाईके ऊपर चारों द्वारोंतक पहुँचनेके लिये विस्तृत मार्ग हैं, जिनमें शत्रु-सैन्यको खाईमें गिरा देनेके लिये भारी यन्त्र लगे हुए हैं। उनमें एक संक्रम (लकड़ीका पुल) तो बड़ा ही दुर्भेद्य है, जो स्वर्ण-स्तम्भ तथा वेदियोंसे सुशोभित है। उसमें पर्याप्त सेना निवास करती है, जिसकी देखभाल निष्णात सेनापति किया करते हैं। स्वयं रावण भी बड़ी सावधानीपूर्वक सेनाका निरीक्षण करता रहता है। इस प्रकार लंका देवताओंके दुर्गके समान अतिशय दुर्गम है। उसपर देवताओंके लिये भी आक्रमण करना दुष्कर है। परंतु रण-केसरी श्रीराम! भगवती सीता अशोक-वनमें बड़ी व्याकुलतासे आपके दर्शनोंकी प्रतीक्षामें प्राण धारण किये हुए हैं और ये नल, नील, अङ्गद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवन्त आदि अनेक सेना-नायकोंसहित वानर-भालुओंकी अपार वाहिनी आपके आदेशकी प्रतीक्षामें आतुर खड़ी है। (वा० रा० युद्ध० अ० ३)

राजदूतकी तीसरी योग्यता है—उसका '**वाग्मी**' होना। '**प्रशस्ता वागस्यास्तीति वाग्मी**' अर्थात् राजदूतकी वाणी अकाट्य होनी चाहिये, जिसको कोई अन्यथा न कर सके। श्रीमारुतनन्दनका सर्वप्रथम वार्तालाप ऋष्यमूकपर्वतपर भगवान् श्रीरामसे हुआ था। श्रीहनुमानकी वाग्मितासे श्रीराम इतने अधिक प्रभावित हुए कि अवसर पाकर उसी समय उन्होंने श्रीलक्ष्मणजीसे उनकी प्रशंसा प्रारम्भ कर दी—

'बन्धु लक्ष्मण! कोई विद्या अथवा ऐसा कोई शास्त्र और वेद नहीं है, जिसका इन्होंने अध्ययन न किया हो। इनका गम्भीर ज्ञान इनके प्रवचनसे ही प्रकट हो गया। इस संसारके निवासी मनीषी-महानुभावों तथा स्वर्गके निवासी कोविद-देवताओंमें कौन ऐसा है, जो इनके-जैसी वाक्पटुता रखता हो। धनुर्धर! यदि यह महावीर कपि-कुल-नायक सुग्रीवकी आज्ञाका पालक है तो फिर स्वयं सुग्रीव किस प्रकारके प्रभावसे सम्पन्न होगा!'—

विल्लिनाय्! इवनैय् पोलाम्
कविक् कुलक् कुरित्रिळवीरन्।
चोल्लिनाल एवल् चेय्वान्
अवन् निलै चोल्लर्पाट्टो?॥

तमिळ—'कम्ब-रामायण'

श्रीहनुमानजीकी वाक्-प्रतिभाका एक और उदाहरण देखिये। लंकासे लौटनेपर उनके मुखसे सब कुछ सुनकर श्रीराम पूछते हैं—

कैसें पुरी जरी कपिराई!
बड़े दैत्य कैसैं कै मारे, अंतर आप बचाई?
प्रगट कपाट बिकट दीन्हे हे, बहु जोधा रखवारे।
तैंतिस कोटि देव बस कीन्हें, ते तुम सौं क्यौं हारे॥
तीनि लोक डर जाके काँपैं, तुम हनुमान न पेखे?

श्रीहनुमानजी अपने समर्थ-सुढर स्वामीको इसका क्या उत्तर देते हैं, सो देखिये; उनका प्रशस्त प्रत्युत्तर सर्वकाल प्रशंसनीय है या नहीं—

तुम्हरें क्रोध, स्राप सीता कैं, दूरि जरत हम देखे॥

(सूर—रामचरितावली, पद १०९)

राजदूतका चौथा गुण है—'**शस्त्रे शास्त्रे च निष्ठितः**' अर्थात् युद्धकौशल और शास्त्र-विद्या—दोनोंके ही प्रयोगमें राजदूतको दक्ष और विवेकयुक्त होना चाहिये अर्थात् क्षत्रियत्व और ब्राह्मणत्वका उसमें सम्यक् समन्वय होना चाहिये। प्रबल पराक्रमी पवनपुत्र श्रीहनुमानने माता सीताको आश्वस्त तो कर दिया; किंतु शत्रुके पराक्रमका

संतुलन तो अभी शेष है। परंतु यह कैसे हो? इस समय उनके प्राणोंका मूल्य बहुत अधिक था। भगवान् श्रीराम और स्वामी सुग्रीवकी बहुमूल्य योजनाओंके केन्द्र-बिन्दु इस समय वे ही तो थे। यदि उनको कुछ हो गया तो योजनाओंका क्या होगा! सभी पहलुओंपर विचार करके वे प्रकटरूपसे अशोक-वनमें विचरण करने लगे। इतना ही नहीं, वे फल-फूल तोड़कर खाने लगे, वनको उजाड़ने लगे और सरोवरोंको गंदा भी करने लगे। इससे सबसे पहले उनकी भिड़न्त हुई उद्यान-रक्षिका राक्षसियोंसे। अपने पराक्रमसे श्रीहनुमानने सबको अभिभूत कर दिया।

राक्षसियोंका चीखना-चिल्लाना सुनकर उपवनके रक्षक राक्षस शस्त्र लेकर हनुमानजीपर टूट पड़े। तब तो वे बड़ी तेजीसे अशोक-वनको ध्वस्त करने लगे। उन्होंने वनका तोरण तोड़ डाला और चैत्य-गृहके एक स्वर्णमण्डित स्तम्भको परिघ बनाकर बड़ी फुर्तीसे उन राक्षसोंका संहार कर दिया। यह सूचना पहुँची रक्षकाधिपति प्रहस्तपुत्र जम्बुमालीके पास। तुरंत वह अपनी अस्सी सहस्र वाहिनी लेकर वहाँ आ गया और तीक्ष्ण लौह-नाराच वाणोंसे हनुमानजीको क्षत-विक्षत कर दिया। अब श्रीहनुमानजीकी क्रोधाग्नि भभक उठी। उन्होंने बड़े वेगसे कूदकर परिघको घुमाकर जम्बुमालीकी हँसुलीके नीचे प्रहार करके उसे मार डाला और साथ ही उन अस्सी हजार राक्षस-सैनिकोंको भी यमलोक पहुँचा दिया।

यह सूचना युवराज मेघनादको दी गयी तो उसने श्रीहनुमानको मार डालनेके लिये बड़ी भारी सेना, अनेकों महारथियों और मन्त्रि-पुत्रोंके साथ अक्षकुमारको भेज दिया। अब कटक विकट थी; श्रीहनुमान भी सतर्कता—कुशलतापूर्वक युद्ध करने लगे। कभी वे छिप जाते, कभी प्रकट हो जाते, कभी सिंह-गर्जना करते हुए प्रहार करने लगते और कभी अन्तर्धान होकर कहीं-के-कहीं प्रकट होते। कभी किसी वृक्ष या प्रासादपर चढ़ जाते और अवसर पाते ही वे राक्षसोंपर टूट पड़ते। एक वानरका यह चमत्कारपूर्ण लाघव, बल तथा साहस देखकर राक्षसोंमें भारी आतङ्क छा गया। अन्तमें अनेक राक्षस-भटोंके संरक्षणके बीचमेंसे हनुमानजीने अक्षकुमारको खींचकर भूमिपर पटक दिया और लातोंकी मारसे उसके प्राण ही ले लिये। उस समय वे इतने क्रोधावेशमें थे कि जिधर भी आँख उठा देते थे, उधरका ही मैदान साफ हो जाता था। अक्षकुमारका निधन सुनकर सारी लंकापुरीमें तहलका मच गया। भ्राताके निधनसे संतप्त इन्द्रजित् मेघनादने आते ही बड़े क्रोधमें भरकर श्रीहनुमानको वाणोंकी बौछारसे ढक दिया। वे जिधर भी जाते थे, उधर ही वाणोंसे घिर जाते थे। उसके हस्त-लाघव और युद्ध-कौशलसे हनुमानजी चकित हो गये। वे भाँप गये कि महाबली मेघनाद अजेय है। तत्काल उन्होंने कूटनीतिका आश्रय ले युद्ध त्याग दिया और हाथ उठाकर इन्द्रजित्से कहा—'हे वीर! मैं दूत हूँ, इसलिये अवध्य हूँ। मैंने केवल आत्मरक्षार्थ ही युद्ध किया है। मैं राक्षसेन्द्रकी सेवामें अपना संदेश सुनाना चाहता हूँ।' अवसरका लाभ उठाकर युवराजने उन्हें ब्रह्मास्त्रमें बाँध लिया और राक्षसाधिपति रावणकी सेवामें उन्हें ले चला। मार्गमें राक्षसलोग उन्हें चिढ़ा रहे थे, अपमानित कर रहे थे, मार रहे थे; किंतु वे चुपचाप थे। उन्हें तो बस, अपना लक्ष्य प्राप्त करना था—***'कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥'*** (मानस ५। २१। ६)

भगवान् विवस्वान्के मेधावी शिष्य ज्ञानिनामग्रगण्य श्रीहनुमान्के शास्त्र-ज्ञानकी तो स्वयं श्रीरामने भ्राता लक्ष्मणसे भूरि-भूरि प्रशंसा की है और उनकी बहुज्ञतासे प्रभावित होकर **'वेदा मे वचनम्'** के प्रोक्ता परब्रह्म भानुकुल-भानु श्रीरामने हनुमानको 'रामगीता' (अद्भुत-रामायण), 'ज्ञानगीता' (राम-रसायन), 'राम-हृदय' (अध्यात्मरामायण), 'मुक्तिकोपनिषद्'-(शुक्लयजुर्वेदीय) आदिका उपदेश भी किया था। इतना ही नहीं, सनक-सनन्दनादि योगियोंके जिज्ञासा करनेपर स्वयं श्रीहनुमानजीने भी उन्हें 'श्रीरामोपनिषद्' (अथर्ववेदीय) एवं 'श्रीरामरहस्योपनिषद्' (अथर्ववेदीय) उपनिषद्विद्याका व्याख्यान किया था, जिसके अनुसार 'राम' शब्दके आदिका 'रा' तत्पदार्थ है, 'मकार' त्वं-पदार्थ है और दोनोंका संयोजन **'असि'** है, अर्थात् 'राम' शब्द **'तत्त्वमसि'**—इस वेदान्त महावाक्यका पर्याय है—

आद्यो रा तत्पदार्थः स्यान्मकारस्त्वंपदार्थवान्।
तयोः संयोजनमसीत्यात्मतत्त्वविदो विदुः॥

(श्रीरामरहस्योपनिषद् ५। १३)

दूतका पाँचवाँ और अन्तिम लक्षण है—**'अभ्यस्तकर्मा'**। इसका तात्पर्य बहुत व्यापक है। विद्या, बुद्धि, विवेक, देश, काल, पात्र, अनुभव, कर्तव्य और कार्यसिद्धि आदि अनेक व्यावहारिक गुणोंका यह प्रतिनिधित्व करता है। लंकापुरीमें पहुँच जानेपर अञ्जनी-नन्दनका मन प्रसन्न हो गया, बड़ा दुस्तर कार्य पूर्ण हुआ; परंतु अब पद-

पदपर साहस, सावधानी और पराक्रमका अवसर था। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ था। वे अपनेको छिपाये त्रिकूट-शिखरपर चढ़ गये। वहाँ झाड़ियोंमें छिपकर वे अद्भुत स्वर्णमयी लंकाका सिंहावलोकन करने लगे—'अहा! यह लंकापुरी तो इन्द्रकी अमरावतीसे स्पर्धा कर रही है। असंख्य धनुर्धर राक्षस-योद्धा बड़ी मुस्तैदीसे इसका पहरा दे रहे हैं।' मारुति विचार करने लगे—

'मुझे श्रीरामके पावन कार्यका निर्वाह करते हुए यहाँसे सकुशल संदेश लेकर लौटना है, इसलिये व्यर्थके संघर्ष और शक्ति-क्षयसे अपनेको बचाना चाहिये। निराशा और असावधानीसे भी मुझे बचना है। अपनेको बहुत बुद्धिमान् समझनेवाले दूत भी कामको बिगाड़ देते हैं। देश-काल-पात्रादिके प्रतिकूल व्यवहारसे भी बहुधा काम बिगड़ जाते हैं। इसलिये मुझे बहुत सोच-समझकर सावधानीपूर्वक कार्य करना चाहिये।'

ऐसा सोचकर वे उस समय छिप गये। फिर जब चारों ओर रात्रिका अन्धकार व्याप्त हो गया, तब उन्होंने लघुरूप धारणकर अपने कार्यका श्रीगणेश किया। अपनेको छिपाते-बचाते भवनोंमें पैठ-पैठकर वे श्रीसीतामाताको खोजने लगे।

इस प्रकार राजदूतके लिये आवश्यक सभी श्रेष्ठ गुणोंसे हनुमानजीका व्यक्तित्व समन्वित है। जैसे श्रेष्ठ नीतिमान् राजा श्रीराम हैं, वैसे ही श्रेष्ठ नीतिज्ञ रामदूत श्रीहनुमान हैं।

राजनीतिज्ञ श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० श्रीभवानीशंकरजी पंचारिया, एम्०ए०, पी-एच्० डी०)

महर्षि शुक्राचार्यके मतसे 'श्रीरामके समान नीतिमान् राजा पृथ्वीपर न कोई हुआ है और न कभी होना ही सम्भव है—**'न रामसदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत्'** (शुक्रनीति ४। ६। १२९५)। शुक्राचार्यजीके उपर्युक्त कथनकी परम्परामें हम श्रीहनुमानजीके विषयमें भी यह कह सकते हैं कि 'उनके समान कुशल मन्त्रणा प्रदान करनेवाला सचिवोत्तम भी अन्यत्र नहीं हुआ है।' स्वयं श्रीरामने अपने अनुज लक्ष्मणसे इस बातका उल्लेख करते हुए कहा था—

'लक्ष्मण! ये महामनस्वी वानरराज सुग्रीवके सचिवोत्तम हनुमान हैं। ये उन्हींके हितकी इच्छासे मेरे पास आये हैं। भाई! जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेदका विद्वान् नहीं है, वह इस प्रकार सुन्दर भाषामें वार्तालाप नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरणका कई बार स्वाध्याय किया है; क्योंकि बहुत-सी बातें बोल जानेपर भी इनके मुखसे कोई अशुद्धि नहीं निकली। सम्भाषणमें इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंह तथा अन्य किसी अङ्गसे भी कोई दोष प्रकट हुआ हो, ऐसा कहीं लक्षित नहीं हुआ। इन्होंने बड़ी स्पष्टतासे अपना अभिप्राय व्यक्त किया है।' (वा० रा० ४। ३। २६—३१)

श्रीराम हनुमानजीके प्रथम मिलनमें ही उनके महान् गुणोंपर मुग्ध हो जाते हैं और उनकी योग्यता तथा कुशलताका मूल्याङ्कन करते हुए पुनः श्रीसुमित्रानन्दनसे राजनीतिका रहस्य प्रकट करते हुए कहते हैं—'वध करनेके लिये तलवार उठाये हुए शत्रुका हृदय भी इस अद्भुत वाणीसे बदल सकता है। जिस राजाके पास इनके समान मन्त्र-कुशल दूत न हो, उसके कार्योंकी सिद्धि कैसे हो सकती है। निस्संदेह जिस राजाके पास इनके-जैसे कार्यसाधक उत्तम दूत हों, उसके सभी मनोरथ दूतोंकी बातचीतसे सिद्ध हो जाते हैं।' (वा० रा० ४। ३। ३३—३५)

इन तथ्योंसे स्पष्ट है कि श्रीहनुमानमें जहाँ एक श्रेष्ठ सचिवके समस्त गुणोंका समावेश था, वहीं वे उत्तम राजदूत भी थे। श्रीराम-सुग्रीव-मैत्रीके स्थापनमें उनकी भूमिका एक सफल राजनीतिज्ञके रूपमें प्रकट हुई है। यदि सुग्रीवको विपन्नावस्थामें हनुमान-जैसे मन्त्र-कुशल, दूरदर्शी, नीतिज्ञ, मेधावी, शूरवीर और राजनीतिज्ञ मन्त्रीका सांनिध्य प्राप्त नहीं होता तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि कभी स्वप्नमें भी बलशाली वालीके रहते सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य, अपहृत पत्नी और राज्य-वैभव प्राप्त होता। यहाँ वे एक श्रेष्ठ राजदूतके रूपमें श्रीराम-सुग्रीवमें स्वर्ण-संधि स्थापित करवाकर उभय पक्षके हिताहितका बराबर ध्यान रखते हुए उत्तम मध्यस्थकी भूमिकाका समुचित निर्वहन करते हैं। यह पवनपुत्र हनुमानकी ही विशेषता है कि सुग्रीवके प्रति

श्रीरामके हृदयमें अच्छे मित्रके संवरणका आकर्षण उत्पन्न हो सका। उन्हींके सत्प्रयासका परिणाम था कि श्रीराम सम्पन्न वानरराज वालीकी उपेक्षा करके दर-दर भटकते, प्राण बचाते, ऋष्यमूकमें छिपे सुग्रीवको अपनाते हैं। कहीं सुग्रीवके चञ्चल, वानरस्वभावके कारण यह मैत्री बीचमें ही टूट न जाय, इस विचारसे वे दोनोंके मध्य अग्निकी साक्षी दिलाकर स्थायी मित्रता स्थापित कराते हैं। महर्षि वाल्मीकिने विजयका मूल कारण मन्त्रियोंकी उत्तम मन्त्रणाको ही बताया है। स्वयं रावण भी अपने मन्त्रियोंके समक्ष इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हुए कहता है—'**मन्त्रमूलं च विजयं प्रवदन्ति मनस्विनः**। (वा० रा० ६।६।५)—बुद्धिमानोंका भी यही कथन है कि विजयका मूल कारण मन्त्रियों-द्वारा की गयी उत्तम मन्त्रणा ही है।'

बलशाली वालीपर अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली सुग्रीवकी विजय उपर्युक्त सिद्धान्तकी पुष्टि है। आदर्श राज्यके प्रणेता श्रीरामका भी मत है कि राजाकी विजयका मूल मन्त्र-शक्ति ही है।

'**मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव।**'

(वा० रा० २।१००।१६)

अर्थात् 'श्रेष्ठ मन्त्रणा ही राजाओंकी विजयका मूल कारण है।'

कतिपय विद्वानोंका यह कथन हमें भ्रान्त प्रतीत होता है कि मन्त्रि-परिषद्का राज्य-व्यवस्थामें प्रचलन 'ब्रिटिश केबिनेट' द्वारा प्रारम्भ हुआ है; अथवा ब्रिटिश केबिनेट ही समस्त मन्त्रि-परिषद्की जननी है। श्रीरामायणके अनुशीलनपर ज्ञात होता है कि मन्त्रि-परिषद् मूलरूपसे भारतीय राजदर्शनका प्रधान अङ्ग रहा है। श्रीरामका आदर्श मन्त्रि-मण्डल विभिन्न योग्यता-सम्पन्न मन्त्रियोंसे युक्त था। श्रीहनुमान इसमें सुरक्षा और विदेश-विभागके विशेषज्ञ होनेके नाते विदेश-मन्त्री तथा सुरक्षा-सलाहकारोंमें प्रधान थे। श्रीरामकी विजय और राजनीतिज्ञ रावणकी पराजयका मूल कारण उभय पक्षका मन्त्रि-मण्डल ही था। श्रीरामचन्द्रजीने चित्रकूटमें अनुज कैकेयीनन्दन भरतको राजनीतिका उपदेश देते हुए इस रहस्यका उद्घाटन किया था—

सहस्राण्यपि मूर्खाणां यद्युपास्ते महीपतिः।
अथवाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता॥
एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम्॥

(वा० रा० २।१००।२३-२४)

'यदि राजा हजार या दस हजार मूर्खोंको अपने पास रख ले तो भी उनसे अवसरपर कोई अच्छी सहायता नहीं मिलती; किंतु यदि एक मन्त्री भी मेधावी, शूरवीर, चतुर एवं नीतिज्ञ हो तो वह राजा या राजकुमारको बहुत बड़ी सम्पत्तिकी प्राप्ति करा सकता है।'

वस्तुतः 'मन्त्र-शक्ति' ही राजदर्शनका एक ऐसा महत्त्वपूर्ण अङ्ग रहा है, जिसकी उपेक्षासे राज्यको जितनी क्षति होती है, उतनी कदाचित् किसी अन्य बातसे नहीं। यदि उपर्युक्त कसौटीको दृष्टिगत रखते हुए हम श्रीराम अथवा सुग्रीवके महान् विपत्तिसे छुटकारा पाने और ऐसे दुर्धर्ष राजनीतिके प्रकाण्ड विद्वान्, विश्वको रुलानेवाले रावणके पतनका अनुसंधान करें तो हमें ऐसा भासित होगा कि यह हनुमानजीकी अद्वितीय, अद्भुत, विलक्षण और विचक्षण मन्त्रणाका ही शुभ परिणाम है, रामायणके आदिकर्ता महर्षि वाल्मीकिने हनुमानजीकी विवेक-शक्ति, वाक्-पटुता, पराक्रम, निर्णयशक्ति, प्रत्युत्पन्नमतित्व, दूरदर्शिता एवं बाहरी चेष्टाओंसे ही मनके भावोंको ताड़ लेनेकी अद्भुत क्षमताका विशेष उल्लेख किया है, जिसके बलपर प्रथम मिलनमें ही श्रीराम और लक्ष्मणको देखकर उन्होंने इस बातका अनुमान लगा लिया कि 'जिसके सहायक ये नरश्रेष्ठ होंगे, उसके कष्टोंका पूर्ण निवारण हो सकता है।' सुग्रीवने भी ऋष्यमूकपर्वतपरसे श्रीराम-लक्ष्मणको देखा; किंतु वे उन्हें शत्रु-शिविरसे भेजा (वाली-मित्र) अरि-मित्र मानते हैं और मारे भयके थर-थर काँपने लगते हैं; जब कि वास्तवमें ऋष्यमूकपर उन्हें वालीका कोई भय नहीं था। श्रीराम-लक्ष्मणके सम्बन्धमें सुग्रीव कहते हैं—'मेरे मनमें संदेह है कि ये दोनों श्रेष्ठ पुरुष वालीके ही भेजे हुए हैं; क्योंकि राजाओंके बहुत-से मित्र होते हैं; अतः उनपर सहसा विश्वास करना उचित नहीं। प्राणिमात्रको छद्मवेषमें विचरनेवाले शत्रुओंको विशेषरूपसे पहचाननेकी चेष्टा करनी चाहिये; क्योंकि वे दूसरोंपर अपना विश्वास जमा लेते हैं, किंतु स्वयं किसीका विश्वास नहीं करते और अवसर पाते ही उन विश्वासी पुरुषोंपर ही प्रहार कर बैठते हैं। वाली इन कार्योंमें बड़ा कुशल है। अतः कपिश्रेष्ठ! तुम एक साधारण पुरुषकी भाँति वहाँ जाओ और उनकी चेष्टाओं, रूप, बातचीत तथा तौर-तरीकोंसे उन दोनोंका यथार्थ परिचय प्राप्त करो।' (वा० रा० ४।२।२१—२५)

हनुमान सुग्रीवके स्वामिभक्त सचिव थे। वे उनकी विपन्नावस्थासे क्षुब्ध थे। वे उन्हें ढाढस और दिलासा

दिलाते हुए कहने लगे—'सौम्य! आपको दुष्टात्मा वालीका यहाँ कोई भय नहीं। यदि वह यहाँ आयेगा तो जानते हैं, उसके सिरके सहस्त्रों टुकड़े हो जायँगे। बुद्धि और विज्ञानके बलसे आप दूसरोंकी चेष्टाओं और मनोभावोंको समझ लेनेके पश्चात् ही अपना आवश्यक कार्य करें; क्योंकि जो राजा बुद्धि-बलका आश्रय नहीं लेता, वह सम्पूर्ण प्रजापर शासन नहीं कर सकता।'

सुग्रीवकी ओरसे हनुमानजीने स्वत: ही मैत्री-प्रस्ताव रखकर अपनी दूरदर्शिता और कार्यकुशलताका परिचय दिया। श्रीराम और लक्ष्मण उनकी सम्भाषण-कलाके प्रभावसे ही सुग्रीवके प्रति आकृष्ट हो सके थे। इतना ही नहीं, हनुमानजीने सुग्रीवकी दयनीय दशाका कुछ ऐसा विचित्र चित्रण किया कि श्रीरामने मैत्री स्थापित करते ही उसके कष्टके निवारणार्थ वालीका वध किया और किष्किन्धाके राज्य-सिंहासनपर सुग्रीवको प्रतिष्ठित कर दिया।

उपर्युक्त प्रमाणोंके आधारपर हम कह सकते हैं कि श्रीहनुमान-जैसे सचिवोत्तमके महान् प्रयासोंसे ही सुग्रीवने अपना खोया हुआ राज्य, पत्नी रुमा और प्रतिष्ठा पुन: अर्जित की थी।

रामायणके अनुशीलनसे इस बातका भी संकेत मिलता है कि सुग्रीवमें दृढ़ता, वचन-निर्वाहता और राजधर्मके अनुसार मित्र-राष्ट्रको दिये गये वचनोंको पूर्ण करनेकी तत्परता नहीं थी। ज्यों ही उनके कष्ट दूर हुए, वे किष्किन्धाके राजमहलोंमें पहुँचते ही श्रीरामको दिये गये वचनोंको भुला बैठे। कञ्चन-कामिनी एवं राज-सुखने उन्हें किंकर्तव्यविमूढ़-सा कर दिया था। ऐसी स्थितिमें हनुमानजीने एक श्रेष्ठ राजनीतिज्ञके चातुर्यका परिचय दिया है। उन्होंने सुग्रीवको मन्त्री-शिरोमणि या सचिवोत्तमके दायित्वोंका हवाला देते हुए कहा—

नियुक्तैर्मन्त्रिभिर्वाच्यो ह्यवश्यं पार्थिवो हितम्।
इत एव भयं त्यक्त्वा ब्रवीम्यवधृतं वच:॥

(वा० रा० ४।३२।१८)

'राज्यकी भलाईके कामपर नियुक्त हुए मन्त्रियोंका यह कर्तव्य है कि राजाको उसके हितकी बात अवश्य बतावें। अतएव मैं भयको छोड़कर अपना निश्चित विचार बता रहा हूँ।'

'समयका ज्ञान रखनेवालोंमें श्रेष्ठ कपिराज! आपने सीताकी खोज करनेके लिये जो समय निश्चित किया था, उसे आप इन दिनों प्रमादमें पड़ जानेके कारण भूल गये हैं। देखिये न, यह सुन्दर शरद्-ऋतु आरम्भ हो गयी है। राजाओंके लिये विजय-यात्राकी तैयारी करनेका समय आ गया है, किंतु आपको कुछ पता ही नहीं है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि आप प्रमादमें पड़ गये हैं। इसीलिये लक्ष्मण यहाँ आये हैं। महात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नीका अपहरण हुआ है, इसलिये वे बहुत दु:खी हैं। अत: लक्ष्मणके मुखसे उनका कठोर वचन भी सुनना पड़े तो आपको चुपचाप सह लेना चाहिये; क्योंकि आपकी ओरसे अपराध हुआ है। हाथ जोड़कर लक्ष्मणको प्रसन्न करनेके सिवा आपके लिये और कोई उचित कर्तव्य मैं नहीं देखता। जिसे पीछे हाथ जोड़कर मनाना पड़े, ऐसे पुरुषको क्रोध दिलाना कदापि उचित नहीं है। विशेषत: वह पुरुष, जो मित्रके किये हुए पहले उपकारको याद रखता हो और कृतज्ञ हो, इस बातका अधिक ध्यान रखे। श्रीराम और लक्ष्मणके आदेशकी आपको मनसे भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। श्रीरामके अलौकिक बलका ज्ञान तो आपके मनको है ही।' (वा० रा० ४।३२।१३—२२)

प्राय: यह देखा गया है कि राज्यका पतन मन्त्रीके सम्यक् मन्त्रणा न देनेसे एवं रोगीका मरण चिकित्सककी उपेक्षासे हो जाया करता है। इन नीतिपरक सिद्धान्तोंका विवेचन गोस्वामी तुलसीदासजीने इस प्रकार किया है—

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥

(मानस ५।३७)

हनुमानजीने भयरहित होकर सुग्रीवको एक योग्य मन्त्रीके समान उचित सलाह प्रदान की। ऐसी नेक मन्त्रणा तो स्वयं राजनीतिके पण्डित रावणको भी उसके मन्त्रियोंने नहीं दी थी। इसी दोषका उद्घाटन करते हुए महर्षि वाल्मीकिने टिप्पणी की है—

सुलभा: पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिन:।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभ:॥

(वा० रा० ६।१६।२१)

'सदा प्रिय लगनेवाली मीठी-मीठी बातें कहनेवाले तो सुगमतासे मिल सकते हैं, किंतु जो सुननेमें अप्रिय तथा परिणाममें हितकर हो, ऐसी बात कहने और सुननेवाले दुर्लभ होते हैं।'

महर्षि वाल्मीकिने हनुमानजीके मन्त्रणा-कार्यका दिग्दर्शन कराते हुए लिखा है कि 'वे शास्त्रके निश्चित सिद्धान्तको जाननेवाले थे। कब क्या करना चाहिये और क्या नहीं,

इन बातोंका उन्हें यथार्थ ज्ञान था। जब हनुमानजीने यह देखा कि सुग्रीव अपनी प्रयोजन-सिद्धिपर धर्म और अर्थके संग्रहमें शिथिलता दिखाने लगे हैं और युवती स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा-विलासमें मदहोश रहते हैं, तब उन्हें स्वेच्छाचारी होनेसे रोकनेके लिये वे सत्य एवं लाभदायक धर्म और अर्थसे युक्त वचन कहते हैं; किंतु इसमें भी वे उन्हें ऐसे वचनोंसे उद्बोधित करते हैं, जिनसे सुग्रीवका अपमान भी न हो और वे श्रीरामके साथ पूर्व-संकल्पित कार्यकी ओर अग्रसर भी हो जायँ।

हनुमानजीने कहा—

राज्यं प्राप्तं यशश्चैव कौली श्रीरभिवर्धिता॥
मित्राणां संग्रहः शेषस्तद् भवान् कर्तुमर्हति।
यो हि मित्रेषु कालज्ञः सततं साधु वर्तते॥
तस्य राज्यं च कीर्तिश्च प्रतापश्चापि वर्धते।
यस्य कोशश्च दण्डश्च मित्राण्यात्मा च भूमिप।
समान्येतानि सर्वाणि स राज्यं महदश्नुते॥

(वा० रा० ४।२९।९—११)

''राजन्! आपने राज्य और यश प्राप्त कर लिया तथा कुल-परम्परासे आयी हुई लक्ष्मीको भी बढ़ाया; किंतु अभी मित्रोंको अपनानेका कार्य शेष रह गया है, उसे आपको इस समय पूर्ण करना चाहिये। जो राजा 'कब प्रत्युपकार करना चाहिये'—इस बातको जानकर मित्रोंके प्रति सदा साधुतापूर्ण बर्ताव करता है, उसके राज्य, यश और प्रतापकी वृद्धि होती है। राजन्! जिस राजाका कोश, दण्ड (सेना), मित्र और अपना शरीर—ये सब-के-सब समानरूपसे उसके वशमें नहीं रहते हैं, वह विशाल राज्यका पालन एवं उपभोग नहीं कर पाता।''

श्रीहनुमानजीने सामनीतिके अनुसार आगे भी सुग्रीवको परामर्श देते हुए कहा—'आप सदाचारसे सम्पन्न और नित्य सनातनधर्मके मार्गपर स्थित हैं; अतः मित्रके कार्यको सफल बनानेकी आपने जो प्रतिज्ञा की है, उसे यथोचित रूपसे पूर्ण कीजिये; क्योंकि कार्य-साधनका उपयुक्त अवसर बीत जानेपर जो मित्र कार्योंमें लगता है, वह बड़े-से-बड़े कार्योंको सिद्ध करके भी मित्रके प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला नहीं माना जाता। शत्रुदमन! श्रीराम हमारे परम सुहृद् हैं; उनके कार्यका समय व्यतीत होता जा रहा है। अतः विदेहकुमारीकी खोज प्रारम्भ कर देनी चाहिये। श्रीराम समयका ज्ञान रखते हैं, उन्हें अपने कार्यकी सिद्धिके लिये शीघ्रता है तो भी वे आपके अधीन बने हुए हैं। वे संकोचवश आपसे नहीं कहते कि उनके कार्यका समय बीत रहा है। वे चिरकालतक मित्रता निभानेवाले तथा आपके अभ्युदयके हेतु हैं। आपका कार्य भी वे सिद्ध कर चुके हैं। अब आप उनका कार्य सिद्ध कीजिये। यदि उनके कहनेके पूर्व ही हमलोग कार्य प्रारम्भ करेंगे तो समय बीता हुआ नहीं माना जायगा। अतः अब पराक्रमी वानरोंको आज्ञा देनेमें विलम्ब करना उचित नहीं। आपको स्मरण होगा, श्रीरामको वालीके प्राण लेनेमें जरा भी हिचक नहीं हुई। वे आपका प्रिय कार्य कर चुके हैं। अतः अब हमलोग विदेहकुमारी सीताका इस भूतल और आकाशमें भी पता लगायें।'

उपर्युक्त तथ्योंसे स्पष्ट है कि ज्यों ही हनुमानजीने यह अनुभव किया कि एक पक्षने अपने पूर्व वचनका पालन किया और दूसरा पक्ष उसके प्रति अत्यन्त उदासीन-सा हो गया, त्यों ही उन्होंने सुग्रीवको साम, दाम, भेद और दण्डनीतिसे भलीभाँति समझाकर उन्हें कर्तव्यका भान कराया। यथा—

इहाँ पवन सुत हृदयँ बिचारा। राम काजु सुग्रीवँ बिसारा॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥

(मानस ४।१९।१-२)

आजकी शासन-व्यवस्थामें भी मन्त्रियोंका प्राधान्य होता है, किंतु मन्त्रियोंमें वैसी कुशलता, चातुर्य एवं कर्तव्यके प्रति दृढ़ता नहीं पायी जाती, जैसी हनुमानजीने सचिवके रूपमें दिखायी थी। वस्तुतः हनुमानजीके कहनेपर सुग्रीवने वानरोंके बुलानेके लिये यह अध्यादेश जारी किया कि 'सब जगह यह प्रचारित कर दिया जाय कि जो वानर पंद्रह दिनोंके अंदर किष्किन्धा नहीं आयगा, उसे प्राण-दण्ड दिया जायगा।' तत्पश्चात् वे अन्तःपुरमें लौट गये। अर्थात् वे हनुमानजीकी मन्त्रणापर भी श्रीरामके प्रति किये गये संकल्पपर दृढ़ नहीं हुए। इसपर श्रीरामने लक्ष्मणको उद्बोधितकर सुग्रीवको भय दिखलाकर रास्तेपर लानेके लिये प्रेषित किया। इस आकस्मिक भयको देखकर सुग्रीव अत्यन्त भयातुर हो गये और उन्होंने तुरंत ही अपनी मन्त्रि-परिषद्के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि 'क्या कारण है, श्रीरामके कार्यको मैं कर रहा हूँ, फिर भी वे मुझपर कुपित हैं? क्या किसीने मेरे विरुद्ध उन्हें कुछ उलटा-सुलटा कहकर भड़काया है?' श्रीहनुमानजीने उनसे कहा—'श्रीरामने बिना लोकापवादकी परवाह किये आपका प्रिय कार्य किया

है। अतः निस्संदेह वे आपपर कुपित नहीं हैं। उन्होंने जो आपके पास लक्ष्मणजीको भेजा है, इसमें सर्वथा आपके प्रति उनका प्रेम ही कारण है।'

आदर्श राज्यके प्रणेता—मर्यादापुरुषोत्तम राजा रामने चित्रकूटमें भरतको राज्य-संचालनकी व्यावहारिक शिक्षा देते हुए इस बातका आग्रह किया था कि 'मन्त्रि-परिषद्में केवल ऐसे व्यक्ति ही सम्मिलित किये जायँ, जो घूस न लेते हों अथवा निश्छल हों, बाप-दादोंके समयसे ही काम करते आ रहे हों तथा बाहर-भीतरसे पवित्र एवं श्रेष्ठ हों।' उन्होंने यह भी परामर्श दिया कि 'प्रधान व्यक्तियोंको प्रधान, मध्यम श्रेणीके मनुष्योंको मध्य और छोटी श्रेणीको छोटे ही कामोंपर नियुक्त किया जाय।' उन्होंने पूछा—'क्या तुमने अपने ही समान शूरवीर, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय, कुलीन तथा बाहरी चेष्टाओंसे ही मनकी बात समझ लेनेवाले सुयोग्य व्यक्तियोंको ही मन्त्री बनाया है?' यथा—

कच्चिदात्मसमाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः।
कुलीनाश्चेङ्गितज्ञाश्च कृतास्ते तात मन्त्रिणः॥

(वा० रा० २।१००।१५)

इस श्लोकमें इस बातका संकेत किया गया है कि एक सुयोग्य मन्त्रीमें किन-किन गुणोंका समावेश होना चाहिये। यहाँ भारतीय राजदर्शनमें अपेक्षित गुणोंके जिन-जिन तत्त्वोंका समावेश है, यदि उनकी कसौटीपर श्रीहनुमानको आँका जाय तो हम पायेंगे कि या तो हनुमानकी योग्यताके आधारपर ही मन्त्रीकी योग्यताका मापदण्ड निर्धारित किया गया है अथवा मन्त्री-पदकी समस्त योग्यताका उनमें समावेश था।

जब शत्रु-शिविरसे अरि-भ्राता विभीषण शरणापन्न होकर श्रीराम-शिविरमें प्रवेश पाना चाहते हैं, तब श्रीरामने अपनी सुरक्षा-समितिके परामर्शदाताओंसे विधिवत् मन्त्रणा चाही थी। सुरक्षा-परिषद्के समक्ष सुग्रीवने, जो उनके सुरक्षा-विभागके प्रधान थे, समस्या रखी—'यह शत्रु-शिविरसे आया है और शत्रु-भ्राता है; अतः हमारे साथ धोखा कर सकता है; क्योंकि जब यह संकटकालमें अपने सगे भाईका भी साथी नहीं हुआ, तब यह हमारा कैसे हो सकता है? अतः मेरी राय है कि इसे बंदी बनानेकी अथवा इसके वधकी आज्ञा हमें शीघ्र प्रदान की जाय।'

श्रीराम महान् नीतिज्ञ थे। उनके समान नीति-प्रीति-परमार्थ और स्वार्थका विशेषज्ञ भी अन्य कोई नहीं था। अस्तु, उन्होंने प्रज्ञाचक्षु कुमार अङ्गदसे इसपर मन्तव्य प्रकट करनेके लिये कहा। इसपर अङ्गदने कहा—'प्रभो! यह चूँकि हमारे लिये अपरिचित है, अतः सहसा इसपर विश्वास न करते हुए हमें इसके गुण-दोषोंका पता लगाकर ही कोई नीति निर्धारित करनी चाहिये। अतः इसके परीक्षणके बाद जैसा उचित हो, वैसा करना ही श्रेयस्कर होगा।' जब वृद्ध नीतिज्ञ जाम्बवान्से इसपर मन्त्रणा चाही गयी तो उन्होंने स्पष्ट कहा—'विदेशियों, शत्रु-शिविरसे सम्बन्धित या अरिमित्रवर्गपर कदापि विश्वास न किया जाय; क्योंकि वे कभी भी धोखा दे सकते हैं।' इसी प्रकार शरभ, मैन्द आदि अन्य मन्त्रियोंसे जब विभीषणके प्रति नीति-निर्धारणके प्रश्नपर सलाह माँगी गयी तो वे भी यही कहते हैं कि 'शत्रुके साथ कोई रियायत न की जाय, बल्कि इसे बंदी बनाकर इसका वध कर दिया जाय।' सम्भवतः ये सब सुग्रीवकी ठकुरसुहाती मन्त्रणामें ही अपना मत प्रकट करते हैं। जब श्रीरामने मनोवैज्ञानिक, बाह्य चेष्टासे मनके भावोंको सही-सही भाँप लेनेवाले हनुमानसे पूछा, तब उन्होंने यही परामर्श दिया—'विभीषणको एकदम अपने शिविरमें बिना संकोचके प्रवेश दे दिया जाय। ये बिलकुल शरण देनेयोग्य, लाभदायक और हमारे लिये सहायक सिद्ध होंगे।' इसपर समस्त विरोधी विचार रखनेवाले मन्त्रियोंने, विशेषकर सुग्रीवने महान् आपत्ति प्रकट की और कहा—'आपके पास कौन-से प्रमाण हैं, जिनके आधारपर आप इसे निर्दोष सिद्ध कर रहे हैं? क्या यह अभी शरणके बहाने हमारे भेदोंको जानकर निद्रावस्थामें श्रीराम या लक्ष्मण या हमारे सैनिकोंपर प्रहार नहीं कर सकता?'

सुग्रीवकी इन आशङ्काओंका समाधान करनेके लिये श्रीहनुमानजीने अकाट्य तर्क प्रस्तुत किये। उन्होंने कहा—"प्रभो! मैं जो कुछ निवेदन करूँगा, वह वाद-विवाद, तर्क, स्पर्द्धा, अधिक बुद्धिमत्ताके अभिमान या किसी कामनासे नहीं करूँगा; मैं तो कार्यकी गुरुतापर दृष्टि रखकर जो यथार्थ समझूँगा, वही कहूँगा। आपके मन्त्रियोंने अर्थ-अनर्थ, गुण-दोषकी परीक्षाका जो सुझाव

दिया, वह प्रयोजनहीन है; क्योंकि वह कह रहा है—'मैं रावणका छोटा भाई विभीषण हूँ और आपकी शरण चाहता हूँ'। अत: अब जासूसीकी इसमें क्या आवश्यकता है? वह अपना ठीक-ठीक परिचय दे रहा है। पुनश्च उसकी परीक्षा लेनेके लिये समयकी अवधि चाहिये; किंतु वह अभी शरणकी याचना कर रहा है। अत: निर्णय तो तुरंत ही करना है। यदि परीक्षणके लिये हम उसे अभी कोई काम सौंपेंगे तो क्या नवीन व्यक्तिको सहसा किसी महत्त्वपूर्ण कार्यको सौंप देना बुद्धिमानी है? प्रभो! विभीषण तो आपके उद्योग, रावणके मिथ्याचार, वालीके वध और सुग्रीवके राज्याभिषेकके समाचार सुनकर राज्य पानेकी इच्छासे यह समझ-बूझकर ही यहाँ आये हैं—'श्रीराम अवश्य ही शरणमें आयेकी रक्षा करते हैं' 'अत: उनका संग्रह मेरी दृष्टिसे उचित ही है। मेरे मनमें इनके प्रति कोई संदेह नहीं; क्योंकि दुष्ट पुरुष कभी भी निश्शङ्क होकर सामने नहीं आ सकता। इसके सिवा उनकी वाणीमें भी कोई दोष नहीं। कोई भी अपने आकारको कितना ही क्यों न छिपाये, उसके भीतरी भाव कभी छिप नहीं सकते। बाहरका आकार पुरुषोंके आन्तरिक भावको बलात् प्रकट कर देता है।'' (वा० रा० ६। १८)

आगेकी घटनाओंसे श्रीहनुमानके ये वचन अक्षरश: सिद्ध होते हैं। लंका-अभियानमें विभीषणके द्वारा श्रीराम-दलको अनेक स्थलोंपर सहायता मिली थी। यदि विभीषण इन्द्रजित्के गुप्त यज्ञकी बात न बताता और लक्ष्मणद्वारा उस यज्ञका विध्वंस न होता तो कोई भी शक्ति समरभूमिमें उसे पराजित नहीं कर सकती थी। इसी प्रकार कृत्रिम सीताके वधकी छद्म चालको भी यदि विभीषण नहीं बताते तो वानरोंका उत्साह उसी क्षण समाप्त हो गया होता; क्योंकि शत्रुकी इस चालसे स्वयं श्रीराम अचेत हो गये थे। किंतु जब विभीषणने कहा कि 'यह कृत्रिम ऐन्द्रजालिक शक्तिका सहारा लेकर वानरोंको अनुत्साहित करनेका उपक्रममात्र है। सीताको मारना तो दूर, उन्हें कोई देख भी नहीं सकता—ऐसा रावणका प्रबन्ध है। इसके अनुसार रावण सीताका वध किसी भी दशामें नहीं कर सकता।' इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि विभीषणको शरण देनेकी नीतिमें भावी सफलताके बीज निहित थे। इससे राक्षसोंके अनेक भेदोंका पर्दाफाश हो सका था। विभीषणने मानव-वेषमें या वानरोंके वेषमें आये राक्षसोंको पहचानकर उन-(शुक-सारण)-की रामदलमें जासूसीतक रोक डाली, जिससे राक्षसोंकी शक्ति क्षीण हुई। सच पूछा जाय तो श्रीरामकी रावणपर विजयका श्रेय श्रीरामके अतिरिक्त यदि अन्य किसीको दिया जाय तो उसके लिये राजनीतिज्ञ हनुमानजीको सबसे उपयुक्त पात्र माना जा सकता है।

गुणनिधान श्रीहनुमान

दासन में दास हैं अनन्य रामचन्द जू के,
दूतन में दूत बर चतुर अनंत हैं।
बिद्या-बुद्धि-बल के निधान गुन-खानि आछे,
दीनन के हेत सदा बने दयावंत हैं॥
बेग राम-बान-सो प्रसिद्ध है 'नरायण जू',
सांतिप्रद संतन में साँचे सुचि संत हैं।
दानिन में दानी, त्यों ही ध्यानिन में ध्यानी महा,
ग्यानिन में अग्रगण्य बीर हनुमंत हैं॥

—श्रीनारायणदासजी चतुर्वेदी

विश्वासके स्वरूप श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी सेठ, एम्० ए०, पी०-एच्०डी०)

उत्तरी भारतके छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े जिस किसी नगरमें जानेका अवसर प्राप्त हुआ है, वहाँ कहीं-न-कहीं श्रीहनुमानजीका मन्दिर अवश्य दृष्टिगोचर हुआ है। स्थान-स्थानपर साधकोंको 'हनुमानचालीसा' का बड़ी ही श्रद्धासे पाठ करते भी देखा गया है। राजस्थानमें ही सालासर-जैसे कुछ सिद्ध स्थान भी देखनेको मिले हैं, जहाँके दर्शनार्थियोंका यह पूरा विश्वास है कि श्रीहनुमानजीके समक्ष शुद्ध मनसे जो भी मनौती की जायगी, वह अवश्य पूरी होगी। साधक श्रीहनुमानजीको ऐसा श्रीराम-भक्त मानते हैं, जिनके पास अतुलित बल है और जो साधकोंकी प्रार्थनाको स्वीकार कर उन्हें संकटसे बचा देते हैं।

पिछले दिनों एक संत मेरे घरपर पधारे थे। मेरे कक्षके एक कोनेमें श्रीबजरंगबलीकी बड़ी ही आकर्षक प्रतिमाको देखकर वे पूछने लगे—'क्या तुम्हारे आराध्य हनुमान हैं?' मैंने बड़ी सरलतासे उत्तर दिया—''मैं तो उस अव्यक्तको ही अपना आराध्य मानता हूँ; फिर भी यदि मुझे नाम 'राम' का प्रिय लगता है तो रूप 'कृष्ण' का। श्रीहनुमानजी महाराजके प्रति मेरा विश्वास बहुत है; क्योंकि 'रामदुआरेके यही रखवारे' हैं। और इनकी आज्ञाके बिना प्रभुके दरबारमें प्रवेश नहीं हो सकता।'' यह सुनकर उन्होंने इतना ही कहा—''बिलकुल ठीक है, प्रभु-विश्वास ही 'हनुमानजी' हैं।''

मैं सोचने लगा कि यह क्या बात हुई। कुछ समयके पश्चात् इस कथनका रहस्य मेरे सामने स्पष्ट हो गया। पूज्य स्वामी शरणानन्दजी महाराज कहा करते हैं कि प्रत्येक साधकके जीवनमें आस्थाका तत्त्व विद्यमान है। दूसरी ओर उसे विचार-शक्ति एवं क्रिया-शक्ति प्राप्त है। इस आस्थाके तत्त्वको ही वे विश्वास-मार्गमें प्रधानता देते हैं। प्रभु-विश्वासी हुए बिना साधककी साधना सफल नहीं होती और प्रभु-विश्वास ही साधकको प्रभु-प्रेमी बना देता है। वैसे पूज्य स्वामीजी अपने प्रवचनमें प्रभुके किसी विशेष रूप या विशेष नामको अपनानेकी चर्चा नहीं करते, किंतु एक दिन अनायास उन्होंने एक साधकसे यह कहा—'प्रभु-प्रेम-प्राप्ति-हेतु तुम हनुमानजीको अपना इष्ट बना लो।' संतोंके उपदेशकी शैली बड़ी ही निराली होती है। वे भिन्न-भिन्न साधकोंको एक कुशल वैद्यके समान भिन्न-भिन्न पथ और पथ्य बता देते हैं, किंतु प्रभु-प्रेमकी बात अन्तमें ही करते हैं। पूज्य श्रीस्वामीजीके इस संकेतसे हनुमानजीके प्रति मेरी आस्था और दृढ़ हो गयी है।

अब मुझे ऐसा लगता है कि प्रभु-विश्वासके प्रतीक सचमुच हमारे श्रीहनुमानजी महाराज हैं। जिस व्यक्तिकी हनुमानजीमें आस्था हो जाती है, उसका प्रभु-विश्वास बढ़ने लगता है और विश्वासका तत्त्व ही साधकको विविध बाधाओंसे निकालता हुआ प्रभु-प्रेम पानेका अधिकारी बना देता है। इसीलिये ***'राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे॥'*** कहा जाता है। जिसका प्रभुमें विश्वास ही नहीं होगा, वह उनके साम्राज्यमें कैसे प्रवेश पा सकता है? ईश्वर-विश्वासीकी बुद्धि स्वतः निर्मल होने लगती है। विश्वासी साधक हनुमानजी महाराजकी कृपासे उनके ही समान 'ज्ञान-गुन-सागर' बन जाता है।

श्रीबजरंगबलीको कुमतिका निवारण करनेवाला, महातेजस्वी, प्रतापी और ***'राम काज करिबे को आतुर॥'*** बताया गया है। मेरा विश्वास है कि जिस साधकपर हनुमानजी कृपा कर देते हैं, वह भी प्रभुका ही कार्य करने लगता है। फिर तो उसे भी हनुमानजीके समान प्रभु-चरित्र सुनना और सुनाना ही सुहाता है। हनुमानजी साधककी बुद्धिको विवेकवती बनाकर उसे संसार-सागरको पार करनेकी सामर्थ्य प्रदान कर देते हैं। उनकी कृपासे साधकको वास्तविक सुख तथा आनन्द प्राप्त हो जाते हैं।

वास्तवमें ईश्वर-विश्वासीको 'हनुमानचालीसा' की एक-एक पङ्क्तिकी सत्यताका अनुभव होने लगता है। उसका विश्वास उसे अष्ट सिद्धियों तथा नवों निधियोंको दिलानेमें समर्थ है। उसके लिये श्रीरामकृष्ण परमहंसका जीवन उदाहरण है, जिन्हें मातृ-विश्वासके बलपर सभी कुछ प्राप्त था। ईश्वर-विश्वास ही वह 'राम-रसायन' है, जिसे साधक हनुमानजीसे माँग सकता है। व्यक्तिके जन्मके दुःखोंको दूर करनेमें, साधकको पूर्ण प्रभु-विश्वासी बनानेमें और अन्तकालमें रघुपुरमें श्रीरामसे मिलानेमें श्रीहनुमानजी पूर्ण समर्थ हैं। श्रीहनुमानजी विश्वासके प्रतीक हैं और प्रभु-विश्वासी साधकके प्रभु-विश्वासको पुष्ट करनेके लिये हनुमदुपासना आवश्यक है।

श्रीहनुमानके सीता-शोधका आध्यात्मिक रहस्य

[लेखक—डॉ० श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी, 'आनन्द', एम्०ए० (हिंदी, संस्कृत, दर्शन),बी०एड्०, पी-एच्०डी०, व्याकरणाचार्य]

आध्यात्मिक अन्तर्यात्रामें हनुमान और सीताका रहस्यार्थ पौराणिक उपाख्यानके वाच्यार्थसे पूर्णतया भिन्न है। हनुमान अन्तर्यात्राके एक यात्री हैं और सीताजी उस यात्राका अन्तिम लक्ष्य। यदि हनुमानजी 'साधक' हैं तो सीताजी 'साध्य'। यदि हनुमान 'योगी' हैं तो सीता योगीका लक्ष्य 'योग' हैं। अन्त:पथके यात्री हनुमानका पाथेय ज्ञान है। हनुमान वैराग्य हैं। ज्ञानका पाथेय लेकर वैराग्यद्वारा शान्ति-शोधमें प्रवृत्त होना ही हनुमानद्वारा सीता-शोध किया जाना है।

'वैराग्य' के बिना कर्म, ज्ञान एवं उपासना—तीनों अपूर्ण हैं। वैराग्य ही कर्मको भक्तिके पास, भक्तिको ज्ञानके पास एवं ज्ञानको शान्तिके पास पहुँचाता है। हनुमान वैराग्य-साधनाके प्रतीक हैं एवं वैराग्यस्वरूप हैं—

'प्रबल वैराग्य दारुन प्रभंजन तनय,
विषम-वन भवनमिव धूमकेतू'

(विनय-पत्रिका ५८।८)

'जयति धर्मार्थ-कामापवर्गद बिभो, ब्रह्मलोकादि-वैभव-विरागी।'

(विनय-पत्रिका २९।२)

'वैराग्य' क्या है? महर्षि पतञ्जलि वैराग्यकी मीमांसा करते हुए कहते हैं—''**दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्** (योगदर्शन १। १५)—दृष्ट एवं आनुश्रविक भोगोंसे वितृष्ण चित्तका पूर्ण वशीकरण किया जाना ही 'वैराग्य' है। गुणोंसे अनासक्ति ही 'वैराग्य' है। ''ज्ञानकी चरम सीमा ही 'वैराग्य' है।—**ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्।**'' (योगभाष्य १। १६)। इसके ठीक पश्चात् ही कैवल्यकी सम्प्राप्ति होती है—**'एतस्यैव हि नान्तरीयकं कैवल्यमिति।'** (योगभाष्य १।१६) श्रीहनुमानजीको परम विरागी होनेके कारण ही '**ज्ञानिनामग्रगण्यम्**' कहा गया है; क्योंकि ज्ञानकी पराकाष्ठा 'वैराग्य' है। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि ''**तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्**। (योग १।१६)—प्रकृति-पुरुषान्यताख्यातिसे गुण-वैतृष्ण्यका आविर्भाव होना ही 'पर वैराग्य' है।''

योगियोंका परम प्राप्तव्य 'योग' है। इस योगकी प्राप्तिके दो साधन हैं—(१) अभ्यास और (२) वैराग्य। अभ्यास और वैराग्यसे चित्तवृत्ति-निरोधकी प्राप्ति होती है—

'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः' (यो० सू० १।१२)
'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥' (यो० सू० १।२)

योगका मूल वैराग्य है। वैराग्य ही योगका परम साधन है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें जिन्हें ब्रह्मसे एकीभाव प्राप्त करनेका अधिकारी बताया है, उनमें वैराग्य-सम्पन्न व्यक्तिकी भी गणना की है—'**ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥**' (१८। ५२) वैराग्यका लक्ष्य शान्ति है। उसका मार्ग ज्ञान है। उसका कर्तव्य-कर्म शोध है। समस्त प्राणियोंका एकमात्र लक्ष्य 'शान्ति' है। श्रीरामोपाख्यानमें सीता ही शान्ति है। जहाँ शान्ति होगी, वहीं पूर्णता होगी और जहाँ पूर्णता होगी, वहीं एकरस, अखण्ड एवं शाश्वतिक आनन्द होगा। अत: शान्ति समस्त प्राणियोंका नैसर्गिक एवं प्रतिक्षण-प्रवृत्त व्यापार है; क्योंकि उसके बिना सुख कहाँ—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

(गीता २।६६)

शान्तिरूपिणी सीता जब जनकपुरीमें महाराज जनकके यहाँ अवतरित हुईं, तब उनके प्राप्त्यर्थ श्रीरामको अनामन्त्रित होनेपर भी पद-यात्रा करनी पड़ी। उन्हें अपनी शान्ति-स्वरूपा सीताके लिये 'भव-चाप' तोड़ना पड़ा—***'भंजेउ राम आपु भव चापू॥'*** भव-चापको तोड़े बिना ब्रह्मको भी शान्ति नहीं मिली। भव-समुद्रको लाँघे बिना हनुमानको भी सीतारूपी शान्ति नहीं मिली।

प्रवृत्तिमार्गस्वरूप लंकामें मोहरूपी राजा रावण राज्य किया करता है। वही शान्तिका अपहरण करनेवाला है। समस्त संसार मोह-निशामें सोता है, किंतु योगी इसमें भी जागता रहता है और अपनी अन्तर्यात्रामें प्रवृत्त रहता है—

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥
एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥

(मानस २।९३।२-३)

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

(गीता २।६९)

श्रीहनुमान सीता-शोधके लिये इसी निशामें यात्रा करते हैं; क्योंकि योगीके लिये संसारकी रात्रि ही दिन है एवं संसारका दिन ही रात्रि।

योगीकी यात्रा गोपनीय होती है; क्योंकि वह

वैराग्यस्वरूप होनेके कारण आत्मविज्ञापन नहीं करना चाहता; कारण, यह योग-मार्गके लिये प्रत्यूह है। इसीलिये हनुमानजी रात्रिमें यात्रा करते हैं—*'अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार॥'* हनुमानजीका सीता-शोधहेतु रात्रिमें यात्रा करना, साधकके लिये अन्तर्साधनाको पूर्णतया गोपनीय रखना एवं 'जग-जामिनी' में सदा जाग्रत् रहनेका संकेत है। तुलसीदासजी भी यही संकेत करते हैं—

जागु, जागु, जीव जड़ ! जो है जग-जामिनी।
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी॥

(विनय-पत्रिका ७३। १)

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥

(मानस २।९३।३-४)

प्राकृत पुरुषोंकी बात कौन कहे, स्वत: ब्रह्म श्रीरामको भी अपहृत शान्ति-सीताके लिये विरह-विदग्ध स्वरमें विलाप करना पड़ा—*'हा गुन खानि जानकी सीता।'* इत्यादि।

ज्ञानियोंमें अग्रणी एवं सर्वोच्च योगी महाराज जनकको शान्तिके शोधके लिये क्लिष्ट-कर्म (हल-चालन) करना पड़ा। शान्ति राज-शोधमें नहीं मिली, अत: घरके बाहरी क्षेत्र (खेत)-में उन्हें हल चलाना पड़ा। भूतत्त्व (मूलाधार-चक्र)-में स्थित सुषुप्ता कुण्डलिनीका जागरण करना ही भूखण्डमें हल चलाना है। जनकद्वारा हल चलाया जाना इसी मूलाधार-चक्र-वेधनका संकेत है। महाराज जनकने हल-क्रियासे सीताकी—शान्ति-रूपिणी सीताकी पुत्रीरूपमें प्राप्ति की। जीव बिना ब्रह्मके रह सकता है, किंतु बिना शान्तिके नहीं। कौसल्याम्बाने कहा है—

'जौं सिय भवन रहै कह अंबा।
मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥'

(मानस २।६०।७)

इसी प्रकार राजा दशरथने भी कहा है—

'एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥'

(मानस २।८२।६)

बिना शान्ति-सीताके महाराज दशरथका मर्मान्तक मरण हुआ। जिस देश, समाज एवं राष्ट्रकी शान्ति नष्ट हो जाय, भला, वह कबतक जीवित रह सकता है?

ब्रह्मका परम भक्त कौन? जो शान्तिका शोधक हो। शान्तिका शोधक कौन? शक्तिमान् हनुमान। हनुमान महान् योगी हैं। योगीका कर्म मिलाना है।

सीता और श्रीरामको किसने मिलाया?
सुग्रीव और श्रीरामको किसने मिलाया?
विभीषण और श्रीरामको किसने मिलाया?
लक्ष्मणको जीवन-दान देकर श्रीरामसे किसने मिलाया?
विरह-वारिधिमें डूबते हुए भरतको श्रीरामसे किसने मिलाया?

—इन सभीको मिलाया योगिराज हनुमानने।

योगी संसारार्णवका अतिक्रमण करके ही कैवल्यस्वरूप लक्ष्यको प्राप्त कर पाता है। इसी प्रकार श्रीहनुमान सीता-शोधहेतु समुद्रका अतिक्रमण करते हैं। प्रत्येक साधकको शान्तिप्राप्त्यर्थ सर्वप्रथम भव-सिन्धुका संतरण करना पड़ता है; अन्यथा वह अपने लक्ष्यको प्राप्त नहीं कर सकता। श्रीहनुमानका समुद्रोल्लङ्घन इसी आध्यात्मिक अन्तर्यात्राका प्रतीक है। संसार-सिन्धुका संतरण करनेवाला ही श्रीरामका कार्य पूर्ण कर सकता है—

जो नाघइ सत जोजन सागर। करइ सो राम काज मति आगर॥
राम काज लगि तव अवतारा। .... ॥
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥

विभीषणका श्रीरामसे तभी मिलन हो पाता है, जब वे भव-सिन्धुको पार करते हैं—

'एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा॥'

अध्यात्म-जगत्‌की कोई भी अन्तर्यात्रा हो, किंतु भगवान्‌को आगे किये बिना उसमें सफलता नहीं मिल पाती। इसीलिये सागर-संतरणके पूर्व श्रीहनुमान श्रीरघुनाथजीको याद करते हैं—

यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥
बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवन तनय बल भारी॥

सीताजी भी हनुमानको इसीके अनुकूल आदेश देती हैं—

'रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥'

केवल वैराग्यके द्वारा ही सीता-शोध सम्भव हो पाया। बिना नेत्रके किसी भी वस्तुके दर्शन नहीं हो पाते। ज्ञान एवं वैराग्य ही दो नेत्र हैं, अत: ज्ञान-वैराग्यके द्वारा ही सीताका शोध हो पाया—

'मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥'

(मानस ७। १२०। १४-१५)

परमशान्तिरूप पदके प्राप्त्यर्थ ही ये दो नेत्र हैं—(१) ज्ञान और (२) वैराग्य। शान्तिकी गवेषणाके तीन मार्ग हैं—(१) राग, (२) विराग और (३) अनुराग।

(१) राग है—मोहजन्य आसक्ति, (२) विराग है—अनासक्ति और (३) अनुराग है—परमात्म-प्रेम। (१) शान्तिकी प्राप्तिके लिये रावणकी अनुसंधित्साका मार्ग है—रागमार्ग। (२) शान्तिकी प्राप्तिके लिये श्रीरामकी अनुसंधित्साका मार्ग है—अनुरागमार्ग और (३) शान्तिकी प्राप्तिके लिये श्रीहनुमानकी अनुसंधित्साका मार्ग है—विरागमार्ग। जब सीताजी श्रीरामको एवं पार्वतीजी श्रीशिवको चाहती हैं तो वे अनुराग-मार्गका आत्मीकरण करती हैं—

'पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बरु मागा॥'
'सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥'

शान्ति-प्राप्तिके फल भी भिन्न-भिन्न होते हैं—(१) शान्ति-प्राप्तिसे जनकको प्रकाश-प्राप्ति, (२) शान्ति-प्राप्तिसे श्रीरामको विकास-प्राप्ति और (३) शान्ति-प्राप्तिसे रावणको विनाश-प्राप्ति।

शान्तिके अनुसंधित्सु रावणका विनाश क्यों ? यह इसलिये कि वह शान्तिका पुजारी नहीं, प्रत्युत उसका अपहर्ता है। वह जनकपुरमें उसी शान्तिके प्राप्त्यर्थ शास्त्रविहित विधिसे प्रयास करनेपर पराजित होता है, अत: उसका बलात् अपहरण करता है। शान्ति-प्राप्तिका उसका मार्ग छल-छद्मपूर्ण है—

'होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी॥

शोधका यह मार्ग शास्त्रसंगत नहीं है—

य: शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत:।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

(गीता १६। २३)

इसीलिये भगवान् श्रीराम कहते हैं—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

शान्तिकी प्राप्ति-हेतु कपट एवं बलात् अपहरणपरायण होनेका दुष्परिणाम ही है—रावणका सर्वनाश। रावणकी दृष्टिमें शान्ति पूज्या नहीं, भोग्या है। इसीलिये उसका विनाश होता है।

साधक भी आध्यात्मिक सिद्धिको भोग्या नहीं, पूज्या मानकर ग्रहण करे; अन्यथा सिद्धि-विलोप एवं साधकका विनाश निश्चित ही है।

शान्ति अपहरणका विषय नहीं, साधनाका विषय है। परमात्मशून्य जड-समाधिमें भी शान्तिकी प्राप्ति होती है, किंतु वह शान्ति देखनेमें शान्ति होते हुए भी वस्तुत: अशान्तिमय रहती है। सीता श्रीरामकी शान्ति हैं—

भट जम नियम सैल रजधानी। सान्ति सुमति सुचि सुंदर रानी॥

वे अशोकके नीचे बैठी रहनेपर भी सशोक इसीलिये हैं; क्योंकि उनके सामने उनके आत्मस्वरूप श्रीराम नहीं हैं। वे कहती हैं—

सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

यह इसी रहस्यका उद्घाटन है कि परमात्मशून्य जड-समाधिमें शान्ति प्राप्त होनेपर भी साधक शोकसे मुक्त नहीं हो सकता। प्रत्येक साधनामें परमात्माकी पुरस्सरता अपरिहार्य है—

'शान्ति' ज्ञान-वैराग्यकी जननी है। परा-भक्ति ही शान्ति है और यही सीता है।

भक्ति कहती है—

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ।
ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ॥

(पाद्मीय श्रीमद्भागवतमा० १। ४५)

यदि भगवती भक्ति (शान्ति=सीता)-के ज्ञान एवं वैराग्य पुत्र हैं, तब तो हनुमान ज्ञान-वैराग्य दोनों ही होनेके कारण शान्ति-स्वरूपा—भक्तिस्वरूपा सीताजीके साक्षात् पुत्र हैं; क्योंकि उनके विषयमें स्पष्टत: कहा गया है—

(१) ***'प्रनवउँ पवन कुमार खल बन पावक ग्यानघन।'*** और (२) ***'प्रबल बैराग्य दारुण प्रभंजनतनय।'*** इसीलिये तो श्रीसीताजी हनुमानजीको 'पुत्र' कहकर सम्बोधित करती हैं—***'अजर अमर गुन निधि सुत होहू।'*** और हनुमानजी भी सीताजीको 'माता' कहकर सम्बोधित करते हैं—***'राम दूत मैं मातु जानकी।'***

साधकको शान्तिकी प्राप्तिके लिये वैराग्यका मार्ग ग्रहण करते हुए मातृभावनासे अग्रसर होना चाहिये। तभी वियुक्ताकुलाको वियुक्त आकुलके साथ सामरस्य करानेमें—वियुक्ता शान्तिस्वरूपा सीताको वियुक्त परब्रह्म श्रीरामसे मिलानेमें साधकको साफल्य मिल सकता है, अन्यथा नहीं। यही है उपर्युक्त कथांशका रहस्य।

विरागी साधककी परीक्षाकी कसौटी उसका गुणातीत होना है। परब्रह्म स्वयं गुणातीत है—***'गुनातीत सचराचर स्वामी'***, इसीलिये उसके साधकको भी गुणातीत होना चाहिये—'**निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन**।' (गीता २। ४५)

हनुमान गुणातीत हैं। अत: गुणसंकुल पदार्थोंसे विरक्त हैं। यही कारण है कि जब सीताजी यह वरदान देती हैं—

'आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥ अजर अमर गुन निधि सुत होहू।'—तब हनुमानको कोई प्रसन्नता नहीं होती। किंतु जब वे यह

वरदान देती हैं—

'करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥'

करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

—तब वे हर्षमग्न हो उठते हैं।

ठीक भी है, यथार्थ साधकको कसौटी उसकी ऐहिक सिद्धियाँ नहीं हैं; उसकी अनुसंधित्सा है—भगवत्कृपा। उसकी सिद्धिकी कसौटी है—भगवत्प्रेमकी प्रगाढ़ता।

परम शान्तिका शोध एवं उसकी प्रत्यभिज्ञा केवल वैराग्य ही कर पाता है। शक्ति एवं शक्तिमान्‌के वियोगको संयोगमें परिवर्तित करनेवाला एकमात्र साधन है—भगवत्प्रेमपुरस्सर वैराग्य। शक्तिमान् परब्रह्म (श्रीराम) अपनी वियुक्ता शक्ति (सीता)-की शोधके लिये केवल वैराग्य (हनुमान)-को दूत बनाकर भेजते हैं। ब्रह्म अपनी वियुक्ता शक्तिके (सम्मिलनके) आश्वासनार्थ एवं वैराग्यपर विश्वास करनेके लिये अपनी मुद्रिका केवल वैराग्यको ही देते हैं। स्पष्ट है कि वैराग्यको भी बिना भगवत्कृपाके शान्ति प्राप्त हो पाना सम्भव नहीं। यदि शान्ति प्राप्त भी हो जाय तो शान्तिको वैराग्यपर विश्वास नहीं होगा।

वैराग्य तभीतक अपने उद्यमोंमें सक्षम है, जबतक ब्रह्म साधकको अपनी कृपारूपिणी प्रत्यभिज्ञा (मुद्रिका) प्रदान नहीं कर देता। अन्यथा शान्तिका साक्षात्कार हो जानेपर भी साधकको शान्ति अशान्त दिखायी पड़ती है और शान्ति साधकके विरुद्ध कुशङ्काएँ करनेके कारण उसपर विश्वास नहीं करती। मुद्रिका-प्राप्ति ही साधक और साध्यके यथार्थ साक्षात्कारका वास्तविक माध्यम है।

साधन-मार्गमें मानका त्याग होना प्रथम संविदा है। हनुमानका अर्थ है—'जिसका मान नष्ट हो चुका हो।' आत्माभिमान साधना-जगत्‌का दारुण प्रत्यूह है। यही कारण है कि हनुमान बार-बार लघु रूप धारण करते हैं—

सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥

'अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार॥'

'अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥'

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥

शान्तिकी गवेषणाके प्रकारान्तरसे तीन मार्ग और हैं—(१) कर्म-मार्ग, (२) भक्ति-मार्ग और (३) ज्ञान-मार्ग। वैराग्य ज्ञान-मार्गसे गवेषणा करता है, अतः हनुमानजी आकाशमार्गसे यात्रा करते हैं। ज्ञान निरालम्ब है और आकाश भी निरालम्ब है। अतः आकाशमार्ग 'ज्ञानमार्ग' का प्रतीक है। समुद्र-संतरणके बिना लक्ष्य-प्राप्ति असम्भव है—

'जो नाघइ सत जोजन सागर। करइ सो राम काज मति आगर॥'

साधकके लिये राम-काज क्या है? शान्ति—सीताका शोध।

आध्यात्मिक अन्तर्यात्राके मार्गमें अनेक बाधाएँ आती हैं। श्रीहनुमानकी यात्रामें आनेवाले प्रत्यूह ही उन बाधाओंके प्रतीक हैं। ये बाधाएँ हैं—(१) सत्त्वगुणी मायाकी बाधा—सुरसा, (२) रजोगुणी मायाकी बाधा—लंकिनी और (३) तमोगुणी मायाकी बाधा—सिंहिका। ये तीनों नारियाँ ही त्रिगुणात्मिका मायाके तीन रूप हैं। हनुमानजीको सीता-शोधमें तीनों बाधाएँ नारीके द्वारा हुईं। अतः साधकको मायारूपी नारीसे सदैव सावधान रहना चाहिये। हनुमानजीने सुरसाको प्रणाम करके अपनी रक्षा की, रजोगुणी लंकिनीको अर्धमृता करके छोड़ दिया तथा तमोगुणी सिंहिकाका प्राणान्त कर दिया। इसी प्रकार साधकको तीनों गुणोंका यथोचित उपयोग करना चाहिये, तभी वह प्रत्यूहोंके पार जाकर अपनी रक्षा कर पाता है।

हनुमानजीने लंकामें पहुँचनेपर सीताकी खोज करनेके निमित्त कनक-भवनका शोध किया। कनक-भवनका त्याग करनेके बाद भी कनक-मृगपर मुग्ध सीताजी कनक-नगरी लंकामें बंदिनी बन गयीं। इसीलिये हनुमानजीने उन्हें कनक-भवनमें खोजा। उन्होंने विचार किया कि सीताजीको कनकमें शान्ति थी, अतः वे शान्तिको कनकमें खोजने लगे। कनक-नगरीमें सीता (शान्ति) नहीं मिली। वस्तुतः स्वर्णमें शान्ति नहीं, वहाँ शान्तिकी भ्रान्ति मात्र है। यदि स्वर्णमें शान्ति होती तो स्वर्णपुरके स्वर्णशोधके स्वामी राक्षसराज रावणको लंकामें ही शान्ति मिल गयी होती; किंतु उसे शान्ति नहीं मिली। हनुमानजीने कनक-नगरीस्थित कनक-भवनके प्रत्येक खण्डमें सीताजीका शोध किया—***'मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा।'*** किंतु ***'मंदिर महुँ न दीख बैदेही॥'*** हनुमानजीने सोचा कि यहाँ तो सब 'सोने' वाले हैं; अतः किसी जागनेवालेसे सीताजीका पता पूछना चाहिये—

मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥

शान्तिकी प्राप्तिकी युक्ति किसी भगवद्भक्तके पास ही होती है, अतः शान्ति-शोधक वैराग्य (हनुमान)-

को उसे पानेकी युक्ति मिल गयी—

'जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥'

...। बन असोक सीता रह जहवाँ॥'

उस अशोक-वनमें आकर हनुमानजीने देखा कि ***'सीता बैठि सोच रत अहई।'***—उस अशोक-वनमें भी सीता अ-शोक नहीं, स-शोक हैं।

सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।

कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्हि हरषि उठि कर गहेउ॥

अशोकने वस्तुत: ऐसा अङ्गार गिरा दिया, जिसमें जानकीजीका समस्त शोक जलकर भस्म हो गया। जानकीजीने कहा था—'हे अशोक ! मेरे शोकको हरकर अपने नामको सत्य करो।' अशोकने अपना नाम सत्य कर दिया—

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी॥

रामनाम-अङ्कित मुद्रिका पाकर परम अशान्त सीताको परम शान्ति मिली—

'रामचंद्र गुन बरनै लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥'

क्षणस्थायी राग-शून्यता वैराग्य नहीं है। वैराग्य तो वह है, जो कभी भी जरा-जर्जर न हो, शिथिल न हो, अपितु अमर रहे, सर्वत्र-सर्वदा तरुण रहे। सीतारूपा शान्तिने हनुमानरूप वैराग्यसे कहा—

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

यह निर्भर प्रेम ही तो परम शान्ति है—

निर्भरानन्द-संदोह कपि-केसरी, केसरी-सुवन भुवनैक भर्त्ता॥

(विनय-पत्रिका २९। १)

सुन्दरकाण्डके आरम्भके मङ्गलाचरणमें ही श्रीगोस्वामीजीने लिखा है—'**शान्तम्**', '**शाश्वतम्**' और '**शान्तिप्रदम्**'; पर शान्त वही होगा, जिसे शान्ति मिली होगी। इस काण्डमें (१) शान्ति-सीताका समाचार पाकर अशान्त श्रीरामको शान्ति मिली, (२) समुद्र-तटपर बैठी हुई मरणासन्न वानरी-सेनाको शान्ति मिली, (३) हनुमानजीको तो साक्षात् शान्तिदेवीसे वरदान पाकर परम शान्ति मिली और (४) वैराग्य-पुत्रके द्वारा श्रीराम-नाम तथा श्रीराम-कथा और ***'रामनाम अंकित अति सुंदर॥'*** मुद्रिका पाकर शान्ति-देवीको महाशान्ति मिली। अत: इस काण्डका प्रथम मङ्गलाचरण '**शान्तम्**' एवं '**शान्तिप्रदम्**' के शोधसे आरम्भ होता है—'**शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदम्।**'

श्रीहनुमानसे प्रार्थना

(रचयिता—डॉ० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, पी-एच्०डी०)

वीराग्रगण्य ! हमको वर वीरता दो।
तेजोनिधान! अपनी महिमा दिखा दो॥
उद्दाम साहस भरो मनमें हमारे,
उन्मूल हों भय तथैव सदैव सारे॥
दुर्धर्ष घोर सब विघ्न-घनावलीको
हे वायुपुत्र! इस ही क्षणमें उड़ा दो।
भारी भयानक सभी कठिनाइयोंको
हे दीनवत्सल! कृपा करके हटा दो॥
श्रीरामचन्द्र-पद-पङ्कज-चञ्चरीक!
हे देवदेव! हम हों नित ही विभीक।
विध्वस्त हो सकल कायरता-अनीक।
श्रीराममें विमल हो रति अव्यलीक॥

श्रीहनुमच्चरित्रका तुलनात्मक अध्ययन

(लेखक—डॉ० श्रीगोपीनाथजी तिवारी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

धर्मधुरीण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके यश:शरीरके कर हैं—श्रीलक्ष्मण और चरण हैं—श्रीहनुमानजी। यदि ये दो सेवक श्रीरामके साथ न होते तो रावण-वध-जैसा महान् दुष्कर कार्य सम्पन्न न होता। लक्ष्मण तो श्रीरामकी छाया हैं और हनुमान हैं—सेवक, आदर्श सेवक, अप्रतिम भक्त। ये ऐसे सेवक हैं, जो सदा श्रीराम-मुख निहारते रहते थे और दौड़ पड़ते थे उनका थोड़ा-सा संकेत पाकर ही। यदि हनुमान सीताका पता लगाकर न लाते तो श्रीराम-लक्ष्मण क्या करते ! फिर यदि वे लक्ष्मणको संजीवनी लाकर रात्रिमें ही स्वस्थ न कर देते तो युद्ध आगे कैसे बढ़ता? फलत: रावण-विजयकी श्रीराम-कथामें हनुमानजीको सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है।

हनुमानजीके चरित्रके सबसे पहले चितेरे हैं—आदिकवि वाल्मीकि। वाल्मीकिजीने हनुमानजीकी प्रशंसा स्वयमेव तथा अन्योंके अतिरिक्त स्वयं श्रीरामसे भी कई बार करायी है। जब अत्यन्त अप्रतिम कार्य सीताकी खोज करके हनुमानजी वापस आकर श्रीरामको सूचना देते हैं, तब वे कहते हैं—'हे हनुमान ! जो दुष्कर कार्य तुमने सम्पन्न किया है, उसे दूसरा कोई मनसे भी नहीं कर सकता।' महर्षि अगस्त्यसे हनुमानजीकी प्रशंसा करते हुए भगवान् श्रीराम कहते हैं—'वाली और रावण अतुल बली थे, किंतु ये दोनों भी बलमें हनुमानजीके समकक्ष न थे। मैं तो स्पष्ट घोषणा करूँगा कि इन्हीं हनुमानकी भुजाओंके बलसे मैंने लंका-विजय की, सीताको प्राप्त किया, राज्य, लक्ष्मण और मित्रों तथा बान्धवोंको पाया।'

हनुमानजी वेदपाठी और संस्कृतज्ञ थे। इनका उच्चारण अत्यन्त शुद्ध था। ये व्याकरणमें पारंगत थे। जब ये श्रीरामके पास आते हैं और बोलते हैं तो श्रीराम लक्ष्मणसे कहते हैं—'ये मधुरभाषी हैं। इनका उच्चारण शुद्ध है, इनकी बोलनेकी शैली बहुत उत्तम है। ये न तो अधिक शब्द बोले न कम। ये तीनों वेदोंके ज्ञाता मालूम पड़ते हैं।' (वा० रा०, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ३) यह व्याकरण-विद्या हनुमानजीने सूर्यसे सीखी थी। सूर्य चलते रहते थे और हनुमानको शिक्षा देते रहते थे। (वा० रा०, उत्तरकाण्ड ३६। ४५)

वाल्मीकि ऋषिने हनुमानजीमें चार वैशिष्ट्य दिखलाये हैं—

(१) ये बेजोड़ बली हैं, शौर्यके महासागर हैं। ये सीताकी खोजमें मार्ग-बाधक सिंहिकाको मार डालते हैं। कालनेमि, अक्षयकुमार और धूम्राक्षका ये स्वयं वध करते हैं तथा अन्य राक्षसोंके वधमें भी सहायक होते हैं। द्रोणाचलको उखाड़कर लाना इनका ही अद्भुत कार्य था।

(२) ये बड़े बुद्धिमान् हैं। असीम बलके साथ ही अपार बुद्धि भी इनमें थी, तभी तो ये नागमाता सुरसासे पार पा सके। जब ये ओषधियोंको पहचान न सके, तब पर्वतखण्ड उखाड़कर चल दिये; यह इनका बुद्धि-वैभव ही था।

(३) ये वेष-परिवर्तनमें अत्यन्त दक्ष थे। ये स्वयं भगवान् श्रीरामसे कहते हैं—'मैं कामरूप हूँ अर्थात् स्वेच्छानुसार रूप बना लेता हूँ।' सुग्रीवने इन्हें भेजा कि पता लगाकर आओ कि ये दो धनुषधारी मुनि कौन हैं? तब हनुमानजीने 'भिक्षुक' का रूप बनाया। जब ये श्रीसीताको खोजने गये तो रात्रिके समय बिल्ली (वृषदंशक)-के रूपमें लंकामें प्रवेश किया। हनुमानजीने सोचा, बिल्लीकी ओर कोई ध्यान नहीं देता, किंतु जब नन्दिग्राममें भरतके पास श्रीरामका सुसमाचार ले गये तो ब्राह्मण-वेष धारण करके गये।

(४) हनुमानजी बड़े सुन्दर वक्ता हैं। श्रीराम उनकी बातचीतसे बहुत प्रभावित होते हैं। सीताको श्रीरामदूत होनेका विश्वास दिलाना सरल कार्य न था, किंतु हनुमानजीकी वाक्पटुता इस प्रसङ्गमें दर्शनीय है। रावणकी सभामें भी इन्होंने रावणसे बात करनेमें अपनी इस शक्तिका अच्छा परिचय दिया था।

वाल्मीकिने श्रीहनुमानको इन गुणोंके साथ-ही-साथ एक सच्चे सेवकका रूप दिया है। ये सुग्रीवके कर्तव्यनिष्ठ सेवक थे। सच्चा सेवक सदा अपने स्वामीकी हित-कामना ही करता है और उसकी आज्ञाका अपनी बल-बुद्धिसे पालन करता है। सुग्रीवकी आज्ञासे श्रीहनुमान श्रीराम-लक्ष्मणको ले आये और उन्हें सुग्रीवका सखा बनाकर स्वामीको राज्य तथा स्त्री वापस कराये। कुपित लक्ष्मणके आनेसे पूर्व ही इन्होंने सुग्रीवको सजगकर वानरोंको बुलानेकी आज्ञा प्रसारित करवायी।

जब सुग्रीवने आज्ञा दी कि 'श्रीसीताको खोज लाना है तो इन्होंने वह कार्य सम्पन्न किया। अङ्गद भी हनुमानजीकी इस स्वामि-भक्तिकी प्रशंसा करते हैं। जब सीताका समाचार हनुमानजीने श्रीरामको दिया तो वे भी उनकी स्वामिभक्तिकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि हनुमानने सुग्रीवका महान् भृत्यकार्य करके सच्चे सेवकका आदर्श प्रस्थापित किया है। श्रीराम-रावण-युद्धमें सुग्रीवके साथ हनुमानजी भी सम्मिलित थे और इन्होंने वहाँ भी अपनी स्वामिभक्ति दिखायी।

अध्यात्मरामायणके श्रीहनुमान भी वाल्मीकिके हनुमानके समान ही बल-बुद्धिसे युक्त हैं। वे रूप बदलनेमें पटु हैं; किंतु अध्यात्मकारके हनुमान वाल्मीकिसे भिन्न रूप बनाते हैं। सुग्रीवकी आज्ञासे वे ब्राह्मण ब्रह्मचारीका रूप बनाकर श्रीरामके पास जाते हैं। लंकामें प्रवेश करते समय उन्होंने कोई सूक्ष्म शरीर बना लिया था, ऐसा अध्यात्मकारका कथन है। हनुमानजीने किस प्राणीका रूप धारण किया था, इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया है। भरतके पास श्रीरामका कुशल-समाचार ले जाते समय वाल्मीकिका अनुगमन करते हुए अध्यात्मकार हनुमानजीद्वारा 'मानवरूप' ही धारण कराते हैं।

हनुमानजी भक्त हैं, किंतु इससे आगे बढ़कर वे ज्ञानी हैं। वे निर्गुण श्रीरामके ब्रह्मत्वका उपदेश रावणको देते हैं। उनका बल ज्ञानपर है, भक्तिपर नहीं। वे रावणसे कहते हैं—'रावण! तुम ज्ञानका आश्रय लो। ज्ञानद्वारा संसारकी दशापर विचार करो और मोक्ष-प्राप्तिका उपाय सोचो। तुम स्वयं निर्विकार हो। तुम न शरीर हो, न बुद्धि। इनसे प्राप्त दुःख तुम्हारे नहीं हैं। तुम दुःखी होते हो अज्ञानके कारण; क्योंकि तुमने अपनेको शरीर, बुद्धि, इन्द्रियाँ समझ लिया है। ये सांसारिक पदार्थ, ये सारे रिश्ते-नाते स्वप्नवत् मिथ्या हैं। सत्यको समझो, जानो; विचार करो कि मैं चिन्मात्र हूँ, अज हूँ, अक्षर हूँ, आनन्दमय हूँ। इसी बुद्धिको ग्रहण करनेपर तुम मोक्ष पाओगे। विष्णुकी भक्ति करो। भक्ति बुद्धिका शोधन कर ज्ञानको दृढ़ करती है। ज्ञान-प्राप्तिसे विशुद्ध तत्त्वका अनुभव होता है।' (अ० रा० ५। ४। १५—२२)

राज्याभिषेक हो जानेपर वाल्मीकीय रामायणमें जब सबको वस्त्राभूषण प्रदान किये जाते हैं, तब सीताजीने हनुमानजीको भी दिव्य वस्त्र और सुन्दर आभूषण दिये। तत्पश्चात् उन्होंने अपने गलेका एक कण्ठहार निकालकर महाराज श्रीरामकी ओर देखा। तब श्रीरामने कहा—'प्रिये! तुम जिसे चाहो, इसे दे दो।' सीताजीने वह हार पुरुषार्थ, विक्रम और बुद्धिमें सर्वश्रेष्ठ जानकर हनुमानजीको प्रदान किया। अध्यात्मकारने भी इस प्रसङ्गका ग्रहण थोड़ी भिन्नतासे किया है। अध्यात्मरामायणमें श्रीरामने करोड़ों चन्द्रमाओंके समान चमकता हुआ मणिरत्नहार बड़े प्रेमभावसे सीताके गलेमें पहनाया। सीताजीने उस मणिहारको उतारकर अपने हाथमें ले लिया और श्रीरामसे आज्ञा प्राप्तकर उसे हनुमानजीको दे दिया। अध्यात्मकारने श्रीरामके द्वारा हार सीताको पहनाया है। यह अपमान था कि सीताजी उस हारको उतारकर किसीको दें, किंतु हनुमानजीको देनेमें श्रीरामको भी कुछ आपत्ति नहीं है और सीताजी सभामें हनुमानका सम्मान करती हैं। आगे चलकर अध्यात्मकार इनसे वर मँगवाते हैं। हनुमानजी माँगते हैं कि 'जबतक संसारमें आप (श्रीराम)-का नाम प्रचलित रहे, तभीतक मैं भी जीवित रहूँ।' श्रीरामने स्वीकृति देते हुए कहा कि 'ऐसा ही हो। तुम जीवन्मुक्त होकर संसारमें सुखपूर्वक रहो। कल्पान्तमें तुम सायुज्य मोक्ष पाओगे।' जानकीजीने भी उन्हें वरदान दिया कि 'तुम जहाँ कहीं रहोगे, मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण भोग वहीं उपस्थित हो जायँगे।' इन वरदानोंको प्राप्तकर हनुमानजी सुग्रीवके साथ किष्किन्धा नहीं गये, वरन् तपस्या करने हिमालयपर चले गये। (अ० रा० ६। १६। १६-१७)

हनुमन्नाटकके अनुसार हनुमानजी मच्छर (द्विदंश) बनकर लंकामें प्रवेश करते हैं। गोस्वामीजीके हनुमानजी भी लंका-प्रवेशके समय यही रूप बनाते हैं। हनुमन्नाटकके हनुमान मुनिवेषधारी श्रीराम-लक्ष्मणसे मिलते समय तथा भरतके पास संदेशा ले जाते समय ब्राह्मण-वेष नहीं बनाते हैं। इसमें हनुमानजीद्वारा स्थान-स्थानपर आत्मश्लाघा मिलती है। सीता-अन्वेषणके लिये जब वानर जाते हैं, तब प्रश्न पैदा होता है कि दक्षिणमें सागर-पार कौन जा सकेगा? हनुमानजी कहते हैं—'स्वामी श्रीराम! सुनिये! मेरा शरीर पाँच अङ्गुलका, मेरी पूँछ बारह अङ्गुलकी है; और मेरी इन भुजाओंको देखिये, जो सागर पार करेंगी।' जाम्बवान्ने कहा—'श्रीराम! हनुमान रुद्रावतार हैं। अतः आप रुद्रकी स्तुति कीजिये।' इसपर श्रीराम रुद्रकी स्तुति करते हैं। हनुमान हर्षित होकर कहते हैं—'स्वामिन्! बतलाइये, मैं क्या करूँ? क्या लंकाको यहाँ ले आऊँ अथवा भारतवर्ष या सम्पूर्ण जम्बूद्वीपको ही

लंकामें ले चलूँ? समुद्रको सुखा दूँ अथवा चारों पहाड़ोंको ही उखाड़कर समुद्रको ही पाट दूँ? सीताको यहाँ ले आऊँ अथवा आपको वहाँ पहुँचा दूँ?'

इसी प्रकार हनुमानजी सभामें बैठे रावणसे कहते हैं—'रावण! मेरी उठी हुई भुजाओंके सम्मुख त्रिकूट या मेरुकी क्या शक्ति, जो खड़ा रह सके। रावण ! तेरी क्या गणना है? तू तो मेरे सामने करोड़ों कीड़ोंसे भी तुच्छ है।'

लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर श्रीराम हनुमानको धिक्कारते हुए कहते हैं—'हे हनुमान! तुझे धिक्कार है, जो तू लक्ष्मणको अकेला छोड़कर भाग गया। यदि भरत होता तो ऐसा न करता।' यह सुनकर हनुमान अपने शरीरको आकाशतक बढ़ा लेते हैं और असूयाके साथ श्रीरामसे कहते हैं—'सातों समुद्रों, दसों दिशाओं, सातों पर्वतों तथा आकाशमें कहीं भी वह आततायी राक्षस मुझसे न बचेगा।' पुन: वे कहते हैं कि 'क्या पातालसे अमृत लाऊँ? क्या चन्द्रमासे अमृत निचोड़ूँ अथवा सूर्यको निकलने न दूँ या यमपाशको चूर्ण कर डालूँ।' श्रीराम लंकासे सुषेणको ले आनेकी आज्ञा देते हैं। सुषेण कहते हैं कि 'द्रुहिण पर्वतपरसे विशल्यकरणी वल्ली लायी जाय। कौन लायेगा?' हनुमानने कहा—'श्रीराम! यह द्रुहिण (द्रोणाचल) पर्वत यहाँसे साठ लाख योजन (२४० लाख मील) दूर है। मैं उससे यह ओषधि इतनी देरमें ले आऊँगा, जितनी देरमें सरसोंके पकते तेलमें सरसों फूटती है।'

वाल्मीकिरामायण और अध्यात्मरामायणमें हनुमान सीधे लंकामें आ जाते हैं, जबकि हनुमन्नाटक एवं मानसादिके अनुसार वे अयोध्याके ऊपरसे उड़कर आते हैं, जहाँ भरतजी उन्हें राक्षस समझकर उनपर वाण छोड़ते हैं। जब गिरते हुए हनुमानजी 'हा राम! हा लक्ष्मण!' कहते हैं, तब भरत उनके पास जाते हैं और श्रीराम-लक्ष्मणकी कथा ज्ञात करते हैं। हनुमन्नाटकमें भरतकी परीक्षा लेनेके लिये हनुमान कहते हैं—'भरत! अब मैं रात्रिमें ही लंका कैसे पहुँचूँगा।' भरत बाण संधान करते हैं। हनुमानजी बाणपर जा बैठते हैं, पर फिर उतर जाते हैं। गोस्वामीजीके हनुमानजी भरतजीकी परीक्षा नहीं लेते। स्वयं भरतजी ही मानसमें कहते हैं—

तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता॥
चढु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता॥

हनुमानजीकी ओर संकेत करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरे भार चलिहि किमि बाना॥

किंतु तुरंत उन्हें ध्यान आया—भरत श्रीरामके प्रिय भाई हैं। अत: श्रीरामका प्रभाव इनमें क्या न होगा? अत: वे बाणपर नहीं बैठते हैं।

श्रीहनुमानजीकी कीर्ति और मान्यताको सर्वाधिक बढ़ानेवाले हैं—गोस्वामी तुलसीदासजी। मानसमें वे श्रीरामके विनीत दास और अनन्य भक्त हैं। आज हनुमानजीकी जो इतनी मान्यता दिखायी पड़ती है, उसके प्रधान आधारस्तम्भ गोस्वामीजी ही हैं। श्रीरामके भरत, लक्ष्मण, अङ्गद, जामवन्त आदि सभी दास्य भावनावाले भक्त हैं; किंतु इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं—महाबली हनुमान। आज श्रीरामके बाद यदि किसीकी सर्वाधिक स्तुतियाँ हैं तो वे हैं हनुमानजीकी ही। सीता तो श्रीरामकी आदिशक्ति हैं, महामाया हैं, अत: उनकी तो बात ही क्या? उनके बाद श्रीरामके सबसे निकट महाबली हनुमानजी ही हैं। जबसे श्रीराम-हनुमान-मिलन होता है, वे सदा श्रीरामके साथ रहते हैं। राज्यारोहणके पश्चात् गुह, विभीषण, सुग्रीव, अङ्गद आदि तो अपने घर लौट आते हैं, परंतु श्रीहनुमानजी श्रीरामके पास रहते हैं। अङ्गद भी श्रीरामके पास रहनेके बड़े इच्छुक हैं, किंतु उन्हें जाना पड़ता है। श्रीरामके सदा पास रहकर सतत चरण-सेवाका सुअवसर हनुमानजीको ही मिलता है। हनुमानजीने सुग्रीवसे आज्ञा ली और वे अयोध्यामें ही रह गये। भरत-शत्रुघ्न वाटिकामें हनुमानको ले जाते हैं और वहाँ उनसे श्रीरामका गुणगान सुनते हैं। श्रीराम कहीं भी जाते हैं तो पवनसुत साथ रहते हैं। एक बार श्रीराम तीनों भाइयों और परम प्रिय पवनकुमारके साथ सुन्दर उपवन देखने गये—

भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवन कुमारा॥
सुंदर उपबन देखन गए। सब तरु कुसुमित पल्लव नए॥

तीनों भाई श्रीरामसे कुछ पूछना चाहते हैं। भरत तो श्रीरामकी छाया ही हैं। लक्ष्मणसे अधिक श्रीरामका साथ और किसने दिया? किंतु ये दोनों भाई भी हनुमानकी ही ओर देखते हैं। श्रीहनुमान भगवान् श्रीरामके इतने निकट हैं कि वे चाहे जब, जहाँ और जैसे श्रीरामसे पूछ सकते हैं; अन्य किसीका साहस नहीं है ऐसा करनेका।

हनुमानजी हाथ जोड़कर कहते हैं—

नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं॥

श्रीराम बोले—

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहिं मोहि कछु अंतर काऊ॥

इसपर भरतजीने श्रीरामसे संतोंकी महिमा पूछी और प्रार्थना की कि 'संत और असंतका भेद समझा दीजिये।'

गोस्वामीजीने भी वाल्मीकि-अध्यात्मकारके समान हनुमानजीको बल और बुद्धिसे सम्पन्न माना है। सुरसाने हनुमानजीकी परीक्षा लेकर कहा—

'राम काजु सब करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।'

सीताजीने भी हनुमानजीको बल और बुद्धिका कोश पाया और उन्हें आज्ञा दी कि जाकर फल खा लो—

देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति चरन हृदय धरि तात मधुर फल खाहु॥

हनुमानजीकी रूप धारण करनेकी कलाका गोस्वामीजीने भी वर्णन किया है। जब सुग्रीव दो युवक मुनियोंको धनुष-बाणसहित देखते हैं, तब वे डरकर हनुमानको पता लगानेके लिये भेजते हैं। रामचरितमानसमें वे अध्यात्मके समान ब्राह्मण-वटुका रूप धारणकर श्रीराम-लक्ष्मणका पता लगाते हैं। विभीषण और भरतके पास भी वे ब्राह्मणका रूप धारण करके जाते हैं। गोस्वामीजी हनुमानजीसे ब्राह्मणका ही रूप धारण कराते हैं। वाल्मीकि और अध्यात्ममें हनुमानजी भरतके पास मनुष्यरूपमें जाते हैं।

हनुमानजीमें लघु या विशाल आकार धारण करनेकी भी शक्ति थी। वाल्मीकि, अध्यात्मकार, हनुमन्नाटक आदि सभीने इस शक्तिके साथ हनुमानको अङ्कित किया है। सुरसाके सामने वे अपने शरीरको बढ़ाते जाते हैं और फिर अत्यन्त छोटे बन जाते हैं। मशक-समान रूप धारण कर वे लंकामें प्रवेश करते हैं। सीताने जब कहा कि 'तुम्हारे-जैसे छोटे बंदर राक्षसोंका सामना कैसे करेंगे', तब हनुमानजीने अपने शरीरको बढ़ाया—

कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥

जब पूँछमें तेल और कपड़ा बाँधा जाने लगा, तब हनुमानजी अपनी पूँछको बढ़ाते गये—***'बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥'*** आग लगाते समय विशाल शरीरको अत्यन्त हलका कर लिया और एक भवनसे दूसरेपर कूदते गये तथा आग लगाते गये—

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई॥

हनुमानजी शक्तिके केन्द्रीभूत पुञ्ज थे। द्रोणाचलके खण्डको उखाड़कर लाना उनकी शक्तिका प्रमाण है। शेषावतार मूर्च्छित लक्ष्मणको मेघनाद-जैसे शक्तिशाली करोड़ों योद्धा न उठा सके, किंतु हनुमानजी उन्हें उठाकर श्रीराम-शिविरमें ले आये।

अध्यात्मरामायणके अनुसार श्रीहनुमान ज्ञानियोंमें अग्रगण्य हैं, किंतु सबसे बड़ी विशेषता जो गोस्वामीजीने हनुमानजीमें प्रदर्शित की है—वह है उनका भक्तरूप। वन्दना-प्रकरणमें ही गोस्वामीजी हनुमानजीके भक्तरूपकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि उनके हृदयमें सदा राजा राम विराजते हैं—

प्रनवउँ पवन कुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

ये हनुमानजी ही हैं, जिन्होंने शरचापधारी महाराज श्रीरामको अपने हृदयमें बंद कर रखा है, जिससे वे बाहर निकल ही नहीं पाते। सीताजीने आशीर्वाद दिया—'वत्स! तुम बल और शीलके कोश बनो' हनुमानजीको इससे कोई विशेष प्रसन्नता न हुई। तब सीताजीने दूसरा आशीर्वाद दिया—***'अजर अमर गुननिधि सुत होहू।'*** किंतु इससे भी हनुमानजीका हृदय प्रफुल्लित नहीं हुआ। सीताजीने तीसरा आशीर्वाद दिया—***'करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥'*** बस, अब क्या था? इसे सुनकर हनुमानजी गद्गद हो गये—

करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

और अत्यन्त आह्लादित होकर वे माँ सीताके चरणोंमें गिरकर बोले—

अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥

सीताकी खोज करना हनुमानके बल और बुद्धिका ही फल था। समुद्र लाँघना अन्यके बल-बूतेकी बात न थी। फिर सीताको विश्वास दिलाना कि मैं श्रीरामका संदेशवाहक हूँ—यह हनुमानजीका ही बुद्धि-कौशल था। हनुमानजीने ठीक उस समय मुद्रिका गिरायी, जब सीता अत्यन्त दु:खी, व्यग्र और निराश होकर मृत्युकी याचना कर रही थीं—अशोकसे आग माँग रही थीं। फिर उन्होंने अपनी वाक्पटुतासे उन्हें प्रभावित किया। हनुमानजीकी वाक्पटुता सर्वत्र मिलती है। सीता-खोजकी सूचना श्रीरामको देते हुए उन्होंने अपने कथनमें अद्भुत

चतुरता दिखायी।

'हनुमन्नाटक' में श्रीहनुमान अपनी प्रशंसा करते दिखायी देते हैं, मानसमें वे विनयकी मूर्ति हैं। श्रीरामने पूछा—

'कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥'

कोई भी अन्य व्यक्ति होता तो इस स्थलपर अपनी प्रशंसा करता और बखान करता कि उसने कैसे लंका जलायी। पर हनुमानजी कहते हैं—

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥
ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल॥

हनुमानजीने श्रीरामसे याचना भी की तो भक्तिकी ही—

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥

श्रीराम तो हनुमानके ऋणी बन गये। यह गौरव पूरी श्रीराम-कथाके पात्रोंमें किसी जन-परिजन या सेवकको नहीं मिला। श्रीराम हनुमानसे कहते हैं—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥

इन सब गुणोंका परिणाम है कि सीता और तीनों भाइयोंके साथ सिंहासनके पास आसीन होनेका अधिकार हनुमानको प्राप्त हुआ। तुलसीदासजीने सेवक हनुमानको वास्तविक महत्त्व और गौरव दिया तथा उन्हें श्रीरामके चरणोंके निकट सदाके लिये विराजमान कर दिया। यही नहीं, भक्तोंको श्रीरामके पास पहुँचानेवाले हनुमानजी ही हैं, इसकी घोषणा कर दी।

भक्तिकी खोजमें श्रीहनुमान

(लेखक—प्रो० श्रीउमेशकुमारजी श्रीवास्तव, एम्० कॉम०, विशारद)

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

(मानस १। १७)

ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सकलगुणनिधान, भक्तिस्वरूपा सीताजीके कृपापात्र श्रीहनुमानजीका चरित्र अत्यन्त सुन्दर एवं कल्याणकारी तो है ही, साथ-ही-साथ कलिकालके विभिन्न रोगोंसे ग्रस्त जीवोंके उद्धारका मार्गदर्शक भी है। श्रीहनुमानजीके चरित्रका विश्लेषण करके उसे यथामति हृदयंगम करनेसे हमें सच्ची दीनता, यथार्थ शरणागति, अलौकिक अनुरक्ति, असाधारण निर्भरता और गम्भीर ज्ञानके स्वरूपका पता चलता है। अखिल ब्रह्माण्डनायक प्रभु श्रीरामकी इच्छासे सीताजीकी खोजमें जानेपर श्रीहनुमानजीको अनेक बाधाओंका सामना करना पड़ा, किंतु अन्तमें वे उनका पता लगाकर, उनका अमोघ आशीर्वाद प्राप्त करके पुनः प्रभुकी कृपा प्राप्त करनेमें सफल हुए। यह ऐतिहासिक तथ्य है; पर इसका आध्यात्मिक विश्लेषण इस रूपमें किया जा सकता है—सीता भक्तिस्वरूपा हैं और हनुमान भक्तिकी खोज करनेवाले साधक। भक्तिस्वरूपा मातेश्वरी श्रीसीताजीकी कृपा-प्राप्तिकी पद्धति प्रकट करके श्रीहनुमानजीने अनेकों भक्तों, ज्ञानियों एवं संत-महापुरुषोंका इहलौकिक एवं पारलौकिक कल्याण किया है और **'यावच्चन्द्रदिवाकरौ'** करते रहेंगे।

विशेषरूपसे ध्यान देनेकी बात यह है कि श्रीरामचरित-मानसके किष्किन्धाकाण्डके प्रारम्भमें जब श्रीहनुमानजी 'विप्र-वेष' धारण करके प्रभुसे मिलने जाते हैं, तब वहाँ उन्हें प्रभुकी कृपा तुरंत प्राप्त नहीं होती; क्योंकि प्रभुका सिद्धान्त है—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

(मानस ५।४४।५)

'कपट-विप्र-वेष' के कारण श्रीहनुमानजीको प्रभुका दर्शन करते ही उनकी कृपा प्राप्त नहीं हुई, वरन् अनन्य-भावसे शरणागत होनेपर ही उन्हें अभयदान प्राप्त हुआ। उन्होंने कर्तव्यवश पहले सुग्रीवके सचिवका कार्य कुशलतापूर्वक निभाया और पुनः सुग्रीवरूपी जीवको ईशसे मिलाकर उसका परम उपकार किया; क्योंकि—

पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥

(मानस ७।१२१।१४)

यह श्रीहनुमानजी-जैसे महान् संतको अच्छी तरह ज्ञात था, इसीलिये उन्होंने पर-उपकारको सर्वोपरि महत्त्व दिया। प्रभुके साथ सुग्रीवके मैत्री-कार्यको ही उन्होंने प्रधानता दी। वे जानते थे कि प्रभु अनुकूल

भले ही हो गये हों, परंतु भक्तिदेवीके अनुकूल हुए बिना आत्म-कल्याण कर पाना सम्भव नहीं है। इसीलिये श्रीहनुमानजीने पहले सुग्रीवका कार्य करना उचित समझा और ब्राह्मण-वेषसे ही क्षत्रिय-वेषधारी दो राजकुमारोंको प्रणाम किया। कई महापुरुषोंको यह बात बड़ी अजीब-सी लगती है, परंतु आध्यात्मिक दृष्टिसे विचार करनेपर यह सहज स्वाभाविक भी है। ब्रह्मके समक्ष उपस्थित होनेपर श्रीहनुमानरूपी जीव भला क्यों न प्रणाम करता? कपट-विप्र-वेष बनाकर प्रभु श्रीरामसे मिलनेपर श्रीहनुमानजी सर्वप्रथम न तो अपना परिचय देते हैं और न उनका ही परिचय पूछते हैं, वरन् प्रणाम करते हैं। यह उनके ज्ञानियोंमें अग्रगण्य होनेका प्रमाण है। अपने प्रभुको वे सुग्रीवसे पहले पहचान गये। तत्पश्चात् वे भगवान्‌से पूछते हैं—

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥
मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता॥

(मानस ४।१।७—९)

भक्तकी उत्कण्ठा अपने परम आराध्यसे मिलनेकी अवश्य है, होनी भी चाहिये; परंतु वानरराज सुग्रीवकी उपेक्षा करके नहीं—उनके कार्यके महत्त्वको कम करके नहीं। व्यावहारिक दृष्टिसे यह इस बातका द्योतक है कि आध्यात्मिक साधनाके चरमोत्कर्षपर पहुँचकर भी व्यवहार तो निभाना ही पड़ता है।

सुग्रीवने प्रभुकी झलक देखकर कहा था कि 'ये युगल पुरुष बल और रूपके निधान लगते हैं' फिर भी भयभीत सुग्रीव प्रभुको देखकर भागनेको तत्पर हैं। सुग्रीवरूपी जीव, जो विषयोंकी ओर आकृष्ट है, उसका यह कार्य स्वाभाविक है कि वह ईश्वरको न पहचान पाये। परंतु सौभाग्यकी बात यह है कि सुग्रीव श्रीहनुमानजीपर आश्रित हैं, उनकी मन्त्रणापर ही निर्भर हैं। इसी निर्भरताका फल सुग्रीवको इस रूपमें मिलता है कि श्रीहनुमानजी श्रीलक्ष्मण और श्रीरामको सुग्रीवके पास ले आये अथवा यों कहें कि विश्वासरूपी हनुमानपर आश्रित रहनेपर जीवरूपी सुग्रीवके पास साक्षात् ज्ञान एवं वैराग्य आ गये उसके संकटोंका निवारण करनेके लिये।

जिस तरह हनुमानजीने सुग्रीवका हित किया, उसी प्रकार वे रावणका भी हित करना चाहते थे, पर रावणने हनुमानजीपर तनिक भी विश्वास नहीं किया; क्योंकि वह मोह और अभिमानका मूर्तिमान् रूप था। इस कारण वह विनाशकी ओर बढ़ता गया। उसकी पत्नी मन्दोदरीने उसे अनेकों प्रकारसे समझाया, पर भला, कभी दिन और रात, राम और काम तथा विश्वास और संशय एक साथ रह सकते हैं ? श्रीहनुमानजी उसे ऐसी युक्ति बतलाते हैं, जिससे लंकापर अचल राज्य करनेकी उसकी प्रबल अभिलाषा पूरी हो सकती थी—

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥

(मानस ५।२३।१)

जब हृदयमें विश्वासका अभाव रहता है, तब संसारके समस्त रोगोंको दूर करनेवाली महौषधि देनेपर भी रोगी अविश्वासी बनकर उसका पान नहीं करता और अपने विनाशका कारण स्वयं प्रस्तुत कर लेता है। रावणने भी यही मार्ग अपनाया। भक्तिस्वरूपा सीताजीको अपनी लंकामें लाकर वह अपना कल्याण दो कारणोंसे नहीं कर सका—पहला कारण था—संशय और दूसरा था—अभिमान।

परोपकारी संत श्रीहनुमानजी रावणकी दशापर दया करके असाध्य रोगसे ग्रसित रावणको समझाते हैं—

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥

(मानस ५।२३)

'हे रावण! तुम मोह ही जिसका मूल है, ऐसे अत्यधिक पीड़ा देनेवाले तमरूप अभिमानका त्याग कर दो और कृपाके समुद्र राघवेन्द्र भगवान् श्रीरामका भजन करो।' भला अन्धकार और सूर्यमें कभी मैत्री सम्भव हो सकती है?

जब विप्र-वेषधारी श्रीहनुमानने ऋष्यमूकपर्वतके चरण-प्रान्तमें अपने परमाराध्य प्रभुको पहचान लिया और उन्होंने उनके चरणोंमें गिरकर निवेदन किया—

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥

(मानस ४।२)

—तब प्रभुने श्रीहनुमानको उठाकर हृदयसे लगा लिया—अपना लिया; परंतु उन्हें अनपायिनी भक्ति नहीं दी। इस प्रकार अनेक भक्तोंको प्रभुने अपनाया है और अनेकों वरदान भी दिये हैं; परंतु 'अनपायिनी भक्तिरूपी चिन्तामणि' तो विरलोंको ही प्राप्त हुई है। श्रीहनुमानजीके चरित्रमें इसी चिन्तामणिकी प्राप्तिका सुगम मार्ग दर्शाया गया है। अपने जीवनमें कल्याणकामी व्यक्तिको प्रभु-चरणोंमें प्रेम करना चाहिये—इसकी शिक्षा श्रीहनुमानजीके

जीवनसे मिलती है—

जेहि सरीर रति राम सों, सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस, वानर भे हनुमान॥

(दोहावली १४२)

प्रभुकी इच्छामें अपनी इच्छाको मिला देनेवाले भक्तमें न कोई आतुरता होती है और न अपने बल-बुद्धिका भरोसा अथवा अभिमान ही। श्रीरामजीने श्रीहनुमानको अपने पास बुलाकर अपना कर-कमल उनके मस्तकपर रख दिया, सहिदानके रूपमें उन्हें अपनी मुद्रिका दी और यह भी कहा—

बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥

(मानस ४।२३।११)

श्रीहनुमानजीकी लंका-यात्राके समय माया पुनः अपना जोर दिखाती है। मायाके तीनों स्वरूपों—सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणीसे सामना होनेपर श्रीहनुमानजी प्रभु श्रीरामकी कृपासे उनपर विजयी हुए। सत्त्वगुणी मायाका प्रतीक है—सुरसा। देवलोकसे वह श्रीहनुमानजीकी परीक्षा लेने आयी। भक्तिकी खोजमें तो श्रीहनुमान हैं, परंतु परीक्षासे डरने या भागनेकी इच्छा उनमें नहीं है। सुरसा चाहती थी उनके बल और बुद्धिका परिचय पाना कि ये 'रामकाज' कर पायेंगे अथवा नहीं; परंतु हनुमानजी 'रामकाज' करना चाहते थे। इससे यह सिद्ध होता है कि सत्त्वगुणी माया साधकके जीवनमें बाधक नहीं होती, परंतु उसकी लगन, उत्साह, कर्मठता और शक्तिका परीक्षण वह अवश्य करती है। यदि उसका आशीर्वाद प्राप्त करना है तो साधकको श्रीहनुमानजीका मार्ग ही अपनाना पड़ेगा। सत्त्वगुणी मायाके उपादानोंसहित प्रकट होनेपर उसे पहचान लेना, रामकाजके महत्त्वको सर्वोपरि मानना, सीताजीका दर्शन प्राप्तकर उनकी सुधि प्रभुको सुनाना और तब सत्त्वगुणी मायासे परीक्षा लेनेके लिये अनुरोध करना—यह क्रम श्रीहनुमानजीने रखा। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि साधकको सत्त्वगुणी मायाके महत्त्वकी उपेक्षा तो नहीं करनी चाहिये, परंतु उसके डराने अर्थात् पथभ्रष्ट करनेसे विचलित भी नहीं होना चाहिये। सुरसाने श्रीहनुमानजीकी भलीभाँति परीक्षा ली और जब उसने यह 'मरम' जान लिया कि इस श्रीराम-दूतकी प्रत्येक क्रिया भगवान् श्रीरामपर ही अवलम्बित है, इसका बल-बुद्धि—सब प्रभु-कृपाके अगाध स्रोतसे सम्बन्धित है, तब ऐसे परम ज्ञानी, निष्काम कर्मयोगी एवं भक्तराज मतिधीर श्रीहनुमानको उसने आशीर्वाद दिया कि 'तुम प्रभुका कार्य अवश्य करोगे।'

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥

(मानस ५।२)

सत्त्वगुणी माया पहले बाधक प्रतीत हो रही थी; परंतु प्रभु श्रीरामजीके नामका सतत स्मरण, उनकी कृपापर अगाध विश्वास, प्रभुद्वारा सौंपे गये कार्यको अविराम भावसे सम्पन्न करनेकी उत्कट इच्छा तथा तन-मन-वचन—सभी प्रभुको समर्पित किये रहनेके कारण श्रीहनुमानजीको सुरसा आशीर्वाद देकर विदा हुई। साधना-जीवनमें सत्त्वगुणी मायाको अनुकूल बनानेके लिये हनुमानजीद्वारा अपनाया गया मौलिक उपाय अनुकरणीय है।

सिंहिका तमोगुणी मायाकी प्रतीक है, जिसपर प्राणघातक प्रहार करके उसे समाप्त करना ही साधकके लिये कल्याणकारी है। तमोगुणी माया बड़ी ही तीव्रताके साथ पहले छाया पकड़कर गति रोक देती है, फिर उसे नीचे गिराकर खा जाती है अर्थात् साधकके विचारको कलुषित करके उसकी छाया पकड़ती है। तब साधककी परमार्थकी ओर गति रुक जाती है; उसका अधःपतन होने लगता है। यदि वह अपने बलपर हाथ-पैर चलाता है तो वह दुष्टा उसका अस्तित्व ही समाप्त कर देती है; परंतु जो सचेत साधक होते हैं, वे श्रीहनुमानजीकी भाँति ***'तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा।'***— उसकी चाल तुरंत पहचानकर उसका काम तमाम कर डालते हैं। वे उसके माया-जालमें नहीं फँसते।

लंकिनी रजोगुणी मायाकी प्रतीक है। इसे अपने मार्गमें आनेपर ***'उचित सिखावन'*** देना चाहिये। शरीरयात्राके लिये इसका यत्किंचित् अवलम्बन आवश्यक तो है, परंतु इसको अधिक महत्त्व देनेपर भक्ति-पथका पथिक दिग्भ्रान्त हो सकता है, साथ ही कलङ्कित भी। लंकिनी कहती है—

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी॥
पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका॥

(मानस ५।४।३—५)

अर्थात् साधकके जीवनमें ऐसे क्षण भी आ सकते हैं, जब वह अपने जीवनके लिये आवश्यक साधनोंकी भी घोर उपेक्षा कर दे, उस समय रजोगुणी माया अपना जोर दिखाती है। ऐसी स्थितिमें प्रभुके चरणोंमें अगाध

विश्वास रखनेवाला साधक उससे सावधान हो जाता है—

रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥

(मानस २।३२४।८)

वह 'बड़भागी साधक' लक्ष्मीके ऐश्वर्यको महत्त्व नहीं देता। लक्ष्मीपतिका कृपाप्राप्त साधक लक्ष्मीकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। यदृच्छालाभमें संतुष्ट, द्वन्द्वातीत, विमत्सर एवं सिद्धि-असिद्धिमें सम साधकके लिये रजोगुणी माया भी बाधक नहीं बन पाती।

लंकामें तमोगुणी आचार-व्यवहारके बीच श्रीहनुमानजीको प्रभु-कृपासे संत विभीषणका घर दिखलायी देता है—

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।

नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ॥

(मानस ५।५।८; ५।५)

उस घोर तमोगुणी आचार-विचारसे लिप्त नगरीमें रामायुध-चिह्नोंद्वारा अङ्कित गृह और पवित्र तुलसीका झुंड महान् आश्चर्य उत्पन्न कर देता है! कपि हनुमान अपनी खोजके मध्य तर्क-वितर्क करने लगते हैं। उसी समय विभीषण जाग उठते हैं और 'राम-राम' का उच्चारण करने लगते हैं। हनुमानजीके हृदयमें निरन्तर प्रभुके नाम-स्मरणकी ध्वनिसे जब यह ध्वनि सम्मिलित हुई, तब वे हर्षित हो गये। प्रभुकी प्रेरणासे उनके हृदयमें यह भाव आया—

एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥

(मानस ५।६।४)

यदि भक्तिकी खोज सच्ची है तो प्रतिकूलताके बीच भी सिद्धि-प्राप्तिमें सहायक उपायकी उपलब्धि हो जाती है। लंकाकी घोर प्रतिकूलताओंमें भी हनुमानजीको विभीषण मिल गये—

अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥

(मानस ५।७।४)

संतको संत मिल ही जाते हैं। श्रीहनुमानजी इसी सुअवसरपर विभीषणसे भक्तिस्वरूपा माता सीतातक पहुँचनेकी युक्ति पूछते हैं और अशोक-वनमें पहुँचकर वे अपने स्वाभाविक स्वरूप 'वानर-तन' में उनके सामने प्रकट होते हैं।

संक्षेपमें भक्तिदेवीके चरणोंतक हनुमान (साधक)-की यात्राका वर्णन यही है। मनमें पर-उपकारकी इच्छा, प्रभु-प्रतापपर अगाध विश्वास, उनका सतत नाम-स्मरण, सत्त्वगुणी-रजोगुणी-तमोगुणी मायापर प्रभु-नामके सहारे निरभिमान रहते हुए विजय, संत-समागम और संत-कृपासे भक्तिदेवीतक पहुँचना अवश्य सम्भव है। भक्तिदेवीके सामने अपने स्वाभाविक स्वरूपको प्रकट करके प्रभुके चरणोंमें अगाध विश्वासका प्रमाण प्रस्तुत करना पड़ता है, तब कहीं उनका अमोघ आशीर्वाद प्राप्त होता है। उसके बाद 'ज्ञानघन-प्रभु' भी परम प्रसन्न होते हैं। श्रीहनुमानजीको भक्तिदेवीका अमोघ आशीर्वाद प्राप्त हुआ और फिर प्रभु-कृपा भी प्राप्त हुई। इसके उपरान्त और क्या चाहिये ? यही साधक-जीवनकी सिद्धि है।

ऐसे हनुमान हैं !

कीस-गन-नायक, प्रदायक सकल सिद्धि,
हेमतुल्य देह, गुन-ग्यानके निधान हैं।
संत-सुखदायक, दनुज-बन-पावक हैं,
सब बिधि लायक, परम बलवान हैं॥
मंगल-विधायक, सुपायक हैं रामजी के,
कहत सकल स्रुति, संत औ पुरान हैं।
'सत्य' के सहायक, सुगायक मधुर नाम,
राम-मन-मानस-मराल हनुमान हैं॥

प्यारे अंजनी के हैं, दुलारे कपि केसरी के,
तारे नैनों के हैं सीताराम औ लखन के।
बारे तन-मन राम-नाम-रस-मतवारे,
'सत्य' के सहारे, दुख टारे कपि-गन के॥
असुर सँहारे, भट खेदि-खेदि मारे रन,
न्यारे हैं आयुध लूम, दसन, नखन के।
भगत उबारे, भवसागर उतारे पार,
जग रखवारे एक पूत हैं पवन के॥

—श्रीसत्यनारायणजी पँवार, एम्०ए०, बी०-एड्०

श्रीहनुमानका रूप-निरूपण

[रूप, अङ्ग-प्रत्यङ्ग, परिधान, अलंकार, आभूषण, शृङ्गार आदि]

(लेखक—श्रीरामलाल)

विषय-प्रवेश

भगवत्सम्बन्धके असीम साम्राज्यमें महाविष्णु श्रीरामके दास्य-रसके अनन्य, अप्रतिम और असाधारण रसिक श्रीहनुमानके दिव्य अवतरण, रूप, अङ्ग-प्रत्यङ्ग, अलंकार, आभूषण, शृङ्गार आदिका वर्णन करना बड़े सौभाग्यकी बात है। उनके दिव्य चरित्रका रसास्वादन उनकी कृपासे हृदयमें महती श्रद्धाका उदय होनेपर ही सम्भव होता है। ऐसे तो उनके पवित्र चरित्र, ऐश्वर्य, सौन्दर्य, जीवनके माधुर्य आदिका निगम-आगम-उपनिषदों, प्रायः सभी पुराणों, रामायणों तथा अन्यान्य आर्ष-ग्रन्थों और काव्यों एवं नाटकोंमें निरूपण हुआ है, पर विशेषता तो यह है कि साक्षात् भगवान्ने भी उनके यशका वर्णन किया है। गोस्वामी तुलसीदासजीकी वन्दना है—

महाबीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥

(रामचरितमा० १।१७।१०)

श्रीरामके कार्य-सम्पादनके लिये ही हनुमानजीने शरीर धारण किया था। भगवान्की सेवामें निरन्तर तत्पर रहना ही उनके पुण्यमय जीवनका प्रयोजन रहा है। महर्षि अगस्त्यने भगवान् श्रीरामसे उनकी विशेषताओंका वर्णन करते हुए कहा है—'संसारमें ऐसा कौन है, जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल और धैर्यमें श्रीहनुमानजीसे बढ़कर हो'—

पराक्रमोत्साहमतिप्रतापसौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च ।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यैर्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके॥

(वा० रा० ७।३६।४४)

'स्कन्दपुराण' में उल्लेख है कि साक्षात् शिवने हनुमानजीको अजर, अमर, अजेय और समस्त आयुधोंसे अवध्य, शत्रुओंके लिये भय देनेवाला एवं मित्रोंके लिये अभयदाता होनेका वरदान दिया था। शक्रके वज्राघातसे हनुमानके मूर्च्छित होनेपर वायुदेवने महाकाल-वनमें शिवलिङ्गकी आराधना की। लिङ्गका स्पर्श होते ही उनके शरीरमें प्राणका संचार हो गया। वायुदेवने प्रसन्न होकर उस शिवलिङ्गका नाम 'हनुमत्केश्वर' रखा। उस समय लिङ्गने हनुमानको वर दिया—

आयुधानां हि सर्वेषामवध्योऽयं भविष्यति।
अजरश्चामरश्चैव भविष्यति न संशयः॥
अमित्रभयदो ह्येष मित्राणामभयप्रदः।
अजेयो भविता युद्धे लिङ्गेनोक्तं पुनः पुनः॥

(अवन्ती०, चतुरशीतिलिङ्गमा० ७९।३५-३६)

जिस तरह पतिव्रता पत्नी अपने पतिको ही प्रियतम समझती और चाहती है, ठीक इसी तरह बुद्धि, शक्ति, भक्ति, कान्ति, सिद्धि आदि श्रीराम-चरणकी अभिवन्दना करनेवाले सर्वोत्कृष्ट श्रीहनुमानजीकी अपने प्रियके समान कामना करती हैं। श्रीहनुमानकी महत्ता बतलाते हुए कहा गया है—

मरुत्सुतं रामपदारविन्दवन्दारुवृन्दारकमाशु वन्दे।
धीःशक्तिभक्तिद्युतिसिद्धयो यं कान्तं स्वकान्ता इव कामयन्ते॥

(रामचरिताब्धिरत्न १।७)

श्रीहनुमानजी भगवान्के प्रिय हैं, यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। इनकी महिमाके सम्बन्धमें भक्त-कवि रहीम खानखानाकी प्रशस्ति है कि पवननन्दन श्रीहनुमान विपत्तियोंको विदीर्ण कर देते हैं तथा दुष्टों और दानवोंके समूहरूपी वनको जलाकर भक्तजनोंको अभय प्रदान करते हैं—

ध्यावहुँ बिपद-बिदारन सुवन-समीर।
खल-दानव-बन-जारन प्रिय रघुबीर॥

(रहीम-रत्नावली, बरवै ५)

श्रीहनुमानके स्वरूप और रूपपर वेदों, उपनिषदों और पुराणों तथा भक्ति-साहित्यमें साङ्गोपाङ्ग विवेचन उपलब्ध होता है। श्रीहनुमान साक्षात् परब्रह्म हैं और वे रुद्ररूपमें प्रकट महादिव्य शक्तिके—भागवत ज्योतिके प्रतीक हैं। वे ॐस्वरूप हैं, परम उपास्य हैं। ॐकारमें मकार उन्हींका रूप है, मकार शिवका वाचक है—

मकाराक्षरसम्भूतः शिवस्तु हनुमान् स्मृतः।

(तारसारोपनिषद् २।२)

श्रीरामकी दास्य-भक्तिके सम्पूर्ण रसास्वादनके लिये ही परब्रह्म रुद्र हनुमानके रूपमें प्रकट हुए।

श्रीहनुमानजीके रूप, अङ्ग-प्रत्यङ्ग, परिधान, अलंकार, आभूषण, शृङ्गार आदिका चिन्तन उन्हींकी कृपासे

सम्भव है। भगवान् श्रीरामके चरण-कल्पतरुके मूल—दास्यमें तल्लीन श्रीहनुमानके अनुग्रह और प्रसन्नतासे ही प्राणी उनके रूपके दर्शन तथा वर्णनका सौभाग्य प्राप्त करता है।

श्रीहनुमानका रूप

श्रीहनुमान प्रत्येक युगमें भगवद्भक्तोंको अपने स्वरूपका दर्शन कराते रहते हैं। वे सप्त चिरञ्जीवियोंमेंसे एक हैं। द्वापर और कलिके संधिकालमें भीमसेनने इनके रूपको देखा था। गन्धमादनपर्वतपर कदली-वनमें विचरण करते हुए भीमको इन्होंने कृपापूर्वक अपना रूप दिखलाया था। उनकी अङ्ग-कान्ति गिरती हुई बिजलीके समान पिङ्गलवर्णकी थी। उनका गर्जन वज्रपातकी गड़गड़ाहटके समान था। वे विद्युत्पातके सदृश चञ्चल प्रतीत होते थे। विद्युत्पातके समान चकाचौंध पैदा करनेके कारण उनकी ओर देखना कठिन था—

विद्युत्सम्पातदुष्प्रेक्षं विद्युत्सम्पातपिङ्गलम्।
विद्युत्सम्पातनिनदं विद्युत्सम्पातचञ्चलम्॥

(महा०, वन० १४६। ७६)

उनके कंधे चौड़े और पुष्ट थे। उनके शरीरका मध्यभाग और कटिप्रदेश पतला था। उनकी रोमावली घनी थी, पूँछ ऊपरकी ओर उठकर ध्वजा-सी सुशोभित थी, होंठ छोटे थे, जीभ और मुखका रंग ताँबेके समान था और कान लाल रंगके थे। उनके खुले मुखमें सफेद चमकते दाँत थे और दाढ़ें तीखे-श्वेत अग्रभागसे सुशोभित थीं। सुवर्णमय कदली-वृक्षोंके बीच विराजमान, तेजसे दीप्त हनुमानजी ऐसे लगते थे, मानो केसरोंकी क्यारीमें अशोक-पुष्पका गुच्छा रखा हो—

केसरोत्करसम्मिश्रमशोकानामिवोत्करम्।
हिरण्मयीनां मध्यस्थं कदलीनां महाद्युतिम्॥

(महा०, वन० १४६। ८१)

स्कन्दपुराणके ब्रह्मखण्डके धर्मारण्य-माहात्म्यमें उल्लेख है कि ब्राह्मणोंके विशेष आग्रहपर श्रीहनुमानजीने अपना रूप प्रकट किया। उस दिव्य स्वरूपको देखकर धर्मारण्य-निवासी हर्षित हुए—

'दृष्ट्वा दिव्यस्वरूपं तं हनुमन्तं जहर्षिरे।'

(३७। १८)

कहा जाता है कि चित्रकूटमें गोस्वामी तुलसीदासजीको श्रीराम-लक्ष्मणके दर्शनके बाद श्रीहनुमानजीने प्रकट होकर बतलाया था कि उन्हें श्रीरामने दर्शन दिया, पर वे (गोस्वामीजी) उन्हें पहचान न सके। अभिनव-वाल्मीकि तुलसीदासजीने श्रीहनुमानके मङ्गलमय रूपका बड़ा भव्य चित्रण किया है—

स्वर्न-सैल-संकास कोटि रबि-तरुन-तेज-घन।
उर बिसाल, भुजदंड चंड नख बज्र बज्रतन॥
पिंग नयन, भृकुटी कराल, रसना दसनानन।
कपिस केस, करकस लँगूर, खल-दल-बल-भानन॥
कह तुलसिदास बस जासु उर मारुतसुत मूरति बिकट।
संताप पाप तेहि पुरुष पहिं सपनेहुँ नहिं आवत निकट॥

(श्रीहनुमानबाहुक २)

महाराष्ट्रके प्रसिद्ध संत समर्थ रामदासको उनके विकट तपसे प्रसन्न होकर श्रीहनुमानने उन्हें अपना महाकाय-रूप दिखाया था। समर्थ रामदास गोदावरीके पुण्य जलमें खड़े होकर नित्य ब्राह्ममुहूर्त्तसे सूर्योदयतक श्रीराम-नामका जप किया करते थे। उसी समय एक बंदर तटके ही एक अशोकवृक्षपर नित्य निश्चल होकर बैठा रहता था। बारह वर्षोंतक यह क्रम चलता रहा। तेरह करोड़ जप पूर्ण होनेपर एक दिन ध्यानमें उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि वह बंदर उनके सामने खड़ा हो गया और फिर उनके भीतर प्रवेश कर गया। जब उन्होंने नेत्र खोले, तब सामने एक बंदरको देखा। कुछ ही क्षणोंमें बंदरने महाकाय रूप धारण कर लिया। इस प्रकार हनुमानने अपना रूप प्रकट कर संत समर्थको कृतार्थ किया।

श्रीहनुमानजीके रूपका निश्चित आकार-प्रकार नहीं है। कहीं वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं तो कहीं बृहत्से भी बृहत् हैं। उनके रूपके सम्बन्धमें उल्लेख है—

'बृहत्कायो बृहद्यशाः॥' (श्रीहनुमत्सहस्रनाम ४९)

'नारदीयपुराण' में उल्लेख है कि उत्तम साधकको उनका ध्यान इस रूपमें करना चाहिये—'श्रीहनुमानका मुख पाटल-गुलाबके पुष्पके सदृश है। (कुछ महानुभाव 'पाटल' से लाल रंगका गुलाब, कुछ गुलाबी रंगका गुलाब और कुछ रक्त-पीत-मिश्रित—नारंगीके रंगका गुलाब अर्थ लेते हैं।) शरीरकी कान्ति स्वर्ण-शैलके समान है तथा वे पारिजात-वृक्षके मूलमें अवस्थित हैं'—

आञ्जनेयं पाटलास्यं स्वर्णाद्रिसमविग्रहम्।
पारिजातद्रुममूलस्थं चिन्तयेत् साधकोत्तमः॥

(पूर्वखण्ड ७५। १०२)

विभिन्न रामायणों तथा पुराणोंमें श्रीहनुमानजीके स्वेच्छानुसार अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त अथवा प्रकट होते रहनेका उल्लेख मिलता है। जैसे—कहीं वे

महाकाय रूपमें चित्रित किये गये हैं तो कहीं सूक्ष्म रूपमें। उन्हें 'वज्रकाय' भी कहा गया है। वज्रदेहरूपमें उनकी स्तुति इस प्रकार की गयी है—

'विहङ्गमाय शर्वाय वज्रदेहाय ते नमः॥'

(श्रीनारदीयपु०, पूर्व०, तृ० ७८।४३)

श्रीवाल्मीकिरामायणमें उनके शरीरको वज्रके समान सुदृढ़ बताया गया है—

मारुतस्यौरसः श्रीमान् हनूमान् नाम वानरः।
वज्रसंहननोपेतो वैनतेयसमो जवे॥

(११।१७।१६)

श्रीहनुमानजी कहीं वानरदेहमें अभिव्यक्त हैं तो कहीं मानव-देहमें। भीमको अपना रूप दिखाते समय श्रीहनुमानजीने कहा कि 'हमलोग तो पशुयोनिके प्राणी हैं'—

'वयं धर्मं न जानीमस्तिर्यग्योनिमुपाश्रिताः।'

(महाभारत, वन० १४६।८८)

भगवल्लीलाकी सम्पन्नता तथा पूर्तिके लिये श्रीहनुमान-द्वारा मानव-शरीर अपनानेका प्रसङ्ग भी उपलब्ध होता है। श्रीअध्यात्मरामायणमें उल्लेख है कि हनुमानजी नन्दिग्राममें श्रीभरतजीको भगवान् श्रीरामके आगमनका संदेश सुनानेके लिये मनुष्य-शरीरसे गये थे—

तथेति हनुमांस्तत्र मानुषं वपुरास्थितः॥
नन्दिग्रामं ययौ तूर्णं वायुवेगेन मारुतिः।

(६।१४।४४-४५)

इसी प्रसङ्गके संदर्भमें दक्षिणभारतीय श्रीरंगनाथ-रामायणके युद्धकाण्डके १६५वें अध्यायमें वर्णन है कि 'श्रीहनुमानने मानवरूप धारणकर बड़े वेगसे गङ्गाजीको पार किया तथा शृङ्गवेरपुर पहुँच गये।'

नराकार तथा वानराकारमें प्रकट होते रहनेवाले श्रीहनुमानके सूक्ष्म, विकट और भीम आदि अनेक रूपोंका विवरण मिलता है। उन्होंने अशोक-वनमें सीताजीको सूक्ष्मरूप दिखाया, विकटरूप धारणकर लंका जलायी तथा भीमरूप प्रकट कर असुरोंका संहार किया—

सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा। बिकट रूप धरि लंक जरावा॥
भीम रूप धरि असुर संहारे। ....॥

(हनुमानचालीसा)

श्रीसीताजीका पता लगानेके लिये लंका जाते समय सुरसाके विशाल शरीर और मुखको देखकर हनुमानजीने अत्यन्त लघुरूप धारण किया—

'अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥'

(रामचरितमानस ५। १। ५)

महाराज भोजने 'चम्पू-रामायण' में श्रीहनुमानजीके इस प्रसङ्गके रूपका उल्लेख करते हुए कहा है कि उन्होंने अपना शरीर अङ्गुष्ठमात्र करके सुरसाके जठरमें प्रवेश किया तथा उससे बाहर आकर त्रिविक्रम भगवान् विष्णुका-सा विशाल रूप धारण कर लिया—

तनुं तनूकृत्य तदा हनूमान् कृत्वावगाहं जठरे तदीये।
ततो विनिष्क्रम्य स चक्रपाणेस्त्रिविक्रमस्य क्रममेव चक्रे॥

(सुन्दरकाण्ड १२)

लंकामें प्रवेश करते समय श्रीहनुमानने पुनः अति लघुरूप धारण कर लिया था। यह रूप मशकके समान था—

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥

(रामचरितमानस ५।४।१)

अशोक-वनमें सीताजीके समक्ष प्रकट होते समय उन्होंने जो रूप धारण किया, उसके सम्बन्धमें अनेक मत व्यक्त किये गये हैं। उनके उस समयके सूक्ष्म अथवा लघुरूपकी उपमा मच्छर तथा बिल्लीसे दी गयी है। 'श्रीहनुमन्नाटक' में वर्णन है कि 'पवनकुमार श्रीहनुमानजीने दशरथनन्दन श्रीरामकी आज्ञासे राक्षसपुरी लंकाको देखकर द्विदंश (मच्छर)-के समान रूप धारण कर, गणनामें न आनेयोग्य शरीरके आकारसे लज्जायुक्त होकर, शिंशपा वृक्षसे उतरकर (श्रीरामकी) मुद्रिका भगवती जानकीके सम्मुख गिरा दी'—

अथ दशरथसूनोराज्ञया वायुपुत्रो
रजनिचरपुरीमालोक्य भूत्वा द्विदंशः।
अकलितपरिमाणो मात्रया सत्रपस्तां
क्षिपति जनकजाग्रे शिंशपाग्रावतीर्णः॥

(६।१३)

इस प्रसङ्गमें महर्षि वाल्मीकिने वृषदंश (बिल्ली) रूपका ही उल्लेख किया है—

सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः।
वृषदंशकमात्रोऽथ बभूवाद्भुतदर्शनः॥

(वा० रा० ५।२।४९)

'श्रीरंगनाथ-रामायण' में श्रीहनुमानजीके उस समयके रूपका बड़ा भव्य चित्र उपस्थित कर उनकी दिव्यताका महत्त्वाङ्कन किया गया है—

'श्रीहनुमानने अङ्गुष्ठमात्रका आकार ग्रहण किया और उस अशोक वृक्षके पास पहुँचकर उसपर चढ़ गये। बालकके रूपमें वट-वृक्षके पत्रोंमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुके समान वे श्रेष्ठ वानर उस वृक्षकी घनी

शाखाओंमें बड़ी कुशलताके साथ छिपकर बैठ गये और उन पुण्यात्माने उन विशालाक्षी सीताजीको बार-बार ध्यानसे देखा।' (सुन्दरकाण्ड, अध्याय ६)

किष्किन्धामें श्रीराम-मिलनके अवसरपर श्रीहनुमानने विप्र-वेष धारण किया था। अनेक रामायणों तथा पुराणों आदिके अवलोकनसे स्पष्ट होता है कि कहीं उन्हें विप्र-वेषमें, कहीं वटु, संन्यासी, भिक्षु, तापस आदि रूपोंमें चित्रित किया गया है। श्रीरामचरितमानसमें वर्णन है कि सुग्रीवद्वारा वटुरूपमें श्रीरामके निकट जानेकी प्रेरणा प्राप्तकर श्रीहनुमान विप्ररूपमें गये—

'बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।'

(४।१।६)

'नरसिंहपुराण' में वर्णन है कि सुग्रीवने उपर्युक्त अवसरपर हनुमानजीसे तापस-वेषमें जानेके लिये कहा—

हनुमन् पृच्छ शीघ्रं त्वं गच्छ तापसवेषधृक्॥

(५०।५)

श्रीहनुमानने भिक्षु (संन्यासी)-का रूप धारण करके भाईसहित श्रीरामसे पूछा—'महामते! आप कौन हैं? इस निर्जन घोर वनमें कहाँसे आ गये? यहाँ आनेका आपका क्या प्रयोजन है? ठीक-ठीक बताइये।'

इत्युक्तो हनुमान् गत्वा पम्पातटमनुत्तमम्।
भिक्षुरूपी स तं प्राह रामं भ्रात्रा समन्वितम्॥
को भवानिह सम्प्राप्तस्तथ्यं ब्रूहि महामते।
अरण्ये निर्जने घोरे कुतस्त्वं किं प्रयोजनम्॥

(नरसिंहपुराण ५०।७-८)

महाराज भोजने भी उपर्युक्त मिलन-प्रसङ्गमें श्रीहनुमानके इस भिक्षु-वेषका ही वर्णन किया है—

स एष स्वीकृतभिक्षुवेषस्सविनयमेतावाबभाषे॥
भवन्तौ कतरौ कान्ताकारौ कान्तारं कथमिदमवातरताम्॥

(किष्किन्धाकाण्ड ११-१२)

उपर्युक्त श्लोकके 'स्वीकृत भिक्षु-वेष' को टीकाकार श्रीरामचन्द्रबुधेन्द्रने 'स्वीकृत संन्यासी-वेष' माना है।

श्रीहनुमानने विप्ररूप धारणकर पुण्यात्मा विभीषणसे भेंट की थी।

बिप्ररूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥

(रामचरितमानस ५।६।५)

श्रीहनुमानकी वैद्यरूपमें भी भावना की गयी है। गोस्वामी तुलसीदासजीने 'कवितावली' में बड़ी सुन्दर काव्यभाषामें कहा है कि ''विराट् पुरुषके हृदयमें रावणरूपी राजरोग बढ़ रहा था, जिससे व्याकुल होकर वह दिनोदिन समस्त सुखोंसे हीन होता जाता था। देवता, सिद्ध और मुनिगण अनेक प्रकारकी ओषधि करके हार गये; परंतु न तो वह शोकरहित होता था, न कुछ चैन ही पाता था। तब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे रसवैद्य हनुमानजीने समुद्रके पार उतरकर और लंकारूपी सिकोरेको ठीक करके राक्षसरूपी बूटियोंके रसमें लंकाके सोने और रत्नोंको यत्नपूर्वक फूँककर 'मृगाङ्क' (एक रसौषधि-विशेष) बना डाला''—

रावनु सो राजरोगु बाढ़त बिराट-उर,
दिनु-दिनु बिकल, सकल सुख राँक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर, सिद्ध, मुनि,
होत न बिसोक, औत पावै न मनाक सो।
राम की रजाइ तें रसाइनी समीरसूनु,
उतरि पयोधि-पार सोधि सरवाक सो।
जातुधान-बुट पुटपाक लंक-जातरूप-
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो॥

(सुन्दरकाण्ड २५)

श्रीहनुमानजीके वैद्यरूपकी बड़ी मनोरम भावना महाराज भोजने भी 'चम्पूरामायण' में प्रस्तुत की है। 'श्रीहनुमानने अशोक-वाटिकामें जो दशानन रावणके वज्र-वचनोंसे विदीर्ण सीताजीके कर्णोंके भीतरी घावकी चिकित्साके लिये ओषधिरूप थे तथा उन्हें विश्वास दिलानेके लिये रघुवंशसे सम्बन्धित थे, ऐसे मधुर मधुके समान श्रीराम-नाम-संकीर्तन सुनाया'—

देव्या दशाननवचोमयवज्रदीर्ण-
कर्णान्तरव्रणविरोपणभेषजानि ।
विस्रम्भणार्थमयमन्वयसंगतानि
रामाभिकीर्तनमधूनि शनैर्न्यषिञ्चत्॥

(सुन्दरकाण्ड ४९)

लक्ष्मणजीके शरीरमें नया प्राण संचारित करनेके प्रसङ्गमें महाराज प्रवरसेनने अपने 'सेतुबन्ध' काव्यमें श्रीहनुमानके वैद्यरूपपर भावनात्मक प्रकाश डाला है—

'सो वि अ पवणसुआणिअधराहरोसहिविइण्णजीअट-भहिओ। तह संधिअचावसरो णिसाअरेहि सह जुज्झिउं आढत्तो।'

संस्कृतमें इसका रूपान्तर है—**'सोऽपि च पवनसुतानीतधराधरौषधिवितीर्णजीवाभ्यधिकः। तथा संधितचापशरो निशाचरैः सह योद्धुमारब्धः॥'** (१५।४७)

इसपर टीकाकार श्रीरामदासभूपतिने अपनी 'रामसेतुप्रदीप' टीकामें उपर्युक्त वाक्यके भाष्यमें स्पष्ट किया है—

'सोऽपि च लक्ष्मणः पवनसुतेनानीतस्य धराधरस्य औषध्या वितीर्णेन प्रत्यानीय दत्तेन जीवेन प्राणपञ्चकेनाभ्यधिको नूतनसृष्ट्या श्रमराहित्येन परमतेजस्वी सन् निशाचरैः सह योद्धुमारब्धः। तथा पूर्ववदेव संधितं चापशरं येन स तथेति क्षतजन्यधातुवैषम्याभाव उक्तः।'

अर्थात् लक्ष्मणजीने पवनसुतद्वारा लायी गयी पर्वतीय ओषधिसे नव-जीवन प्राप्तकर श्रमरहित हो परमतेजस्वी रूपमें राक्षसोंसे युद्ध करना आरम्भ किया।

श्रीरामने हनुमानजीकी प्रशंसा करते हुए भगवती सीतासे कहा था कि 'श्रीहनुमानद्वारा' जिन्होंने द्रोणाचलको लाकर लक्ष्मणजीके शल्य (घाव)-की चिकित्सा की थी, समस्त जगत् निष्कण्टक बना दिया गया है'—

आनीतद्रोणशैलेन सौमित्रेः शल्यहारिणा।
अक्रियन्त जगन्त्येव निश्शल्यानि हनूमता॥

(अनर्घराघव ७। १०)

श्रीहनुमानद्वारा स्वेच्छापूर्वक बृहद् रूप धारण करनेके अनेक प्रसङ्ग उपलब्ध होते हैं। श्रीरामने किष्किन्धामें हनुमानके मिलन-प्रसङ्गमें लक्ष्मणसे कहा था कि 'ये तो बृहदाकार मोक्षरूपमें ही प्रकट हैं।' श्रीरामके सामने हनुमानजीने अपना बृहद् रूप प्रकट किया। महामति परम भक्त कंबनकी उक्ति है—

"फिर धर्मको अनाथ होनेसे बचानेवाले हनुमानजी अपने वास्तविक रूपमें इस प्रकार खड़े हो गये कि स्वर्णमय मेरुपर्वत भी उनकी भुजाओंकी समता नहीं कर सकता था। ऐसा लगता था कि वेद-शास्त्र ही बड़े आकारमें खड़े हो गये हों। सभी बड़े-बड़े पदार्थ उनके सम्मुख छोटे लगने लगे। तीनों लोकोंको अपने चरणसे नापनेवाले श्रीराम (विष्णु) स्वर्णिम उज्ज्वल कुण्डलोंसे विभूषित उनके मुखको नहीं देख पाते थे। श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा कि 'हे तात! मोक्षपद ही वानरका रूप लेकर उपस्थित हुआ है, जो क्षुद्र गुणोंसे रहित होकर अमन्द प्रकाशसे युक्त नित्य वेदों तथा दोषरहित ज्ञानसे भी दुर्ज्ञेय है'।"

(कंब-रामायण, कि०, दूसरा अध्याय, हनुमानपटल)

तपस्विनी स्वयम्प्रभासे भेंट होनेके अवसरपर श्रीहनुमानने विराट् रूप धारण करके उसके नगरमें प्रवेश किया था। श्रीकंबनका कथन है—

'श्रीहनुमानने तपस्याके परिणामस्वरूप ब्रह्मासे मयद्वारा प्राप्त उस नगरका भेदन किया। उन्होंने अपने हाथोंको ऊपर उठाकर अपने शरीरको गगनतलतक इस तरह बढ़ाया कि वह विवर, जो ऊपरी गगनसे बहुत नीचे स्थित था, फटकर एकाकार हो गया। वायुपुत्रके दोनों हाथ दो उज्ज्वल दाँतोंके समान ऊपर उठे थे; जब वे विवरका भेदन करते हुए ऊपर उठे तो देखनेवाले भयभीत हो गये। उस समय वे क्रोधके साथ पृथ्वीको उठा लेनेवाले महावराहके समान दृष्टिगत हुए। उस समय वे भगवान् वामनके सुन्दर चरणकी समता कर रहे थे, जिन्होंने बलिसे तीन डग वसुधा माँगकर दो डगोंसे सारी सृष्टिको नापते हुए कमलमें निवास करनेवाले उत्तमस्वरूप ब्रह्माकी सृष्टिको आवृत करनेवाले आकाशरूपी आवरणको छेद दिया था।'

(कंब-रामायण, किष्कि०, १३वाँ अध्याय)

लंका जाते समय श्रीहनुमानजीने महेन्द्रपर्वतपर अपना विशाल पर्वताकार रूप प्रकट किया था। 'उस समय समस्त प्राणियोंको वायुपुत्र महामनस्वी हनुमानजी महान् पर्वतराजके समान विशालकाय, सुवर्ण-वर्ण, अरुण (बालसूर्य)-के समान मनोहर मुखवाले और महान् सर्पराजके समान दीर्घ भुजावाले दीख पड़े'—

महानगेन्द्रप्रतिमो महात्मा
सुवर्णवर्णोऽरुणचारुवक्त्रः।
महाफणीन्द्राभसुदीर्घबाहु-
र्वातात्मजोऽदृश्यत सर्वभूतैः॥

(अध्यात्मरा० ४। ९। २९)

श्रीसीताजीके पाससे किष्किन्धाके लिये प्रस्थान करते समय चूडामणि प्राप्त करनेके पहले उन्होंने उनके (सीताजीके) विश्वासके लिये अपना विश्वरूप दिखाया। श्रीरंगनाथ-रामायणके रचयिता राजा गोनबुद्धने इसकी बड़ी रमणीय झाँकी प्रस्तुत की है—

"श्रीहनुमानने अपना रूप इतना विशाल बनाया कि सम्पूर्ण आकाशमें उनका शरीर परिव्याप्त हो गया। चमकनेवाले नक्षत्रोंका समूह पहले उनके कण्ठका मालती—मल्लिकाका हार बना, फिर वक्षःस्थलपर शोभित होनेवाले रजतका हार बना और उसके बाद उनके कटिप्रदेशको अलंकृत करनेवाली चाँदीकी क्षुद्र घंटिकाओंकी मेखला बन गया। ऐसा अत्यन्त विस्मयकारी रूप धारणकर जब हनुमानजी सीताके समक्ष खड़े हुए, तब वे मन-ही-मन भयभीत हो गयीं और कहने लगीं कि 'हे अनुपम गात्रवाले! हे अञ्जनासुत! तुम्हारा यह रूप आश्चर्यजनक है। इसका शीघ्र ही उपसंहार करो।' उनका वह विश्वरूप देखकर देवता भी उनकी

प्रशंसा करने लगे। पवनपुत्रने भगवान् विष्णुके समान उस विशाल आकारको त्यागकर लघु रूप धारण कर लिया।'' (सुन्दरकाण्ड १४)

श्रीहनुमानजीके रूपकी अनेक सुन्दर उपमाएँ मिलती हैं, जिनसे उनके महत्त्वपूर्ण, रमणीय और अद्भुत भव्य सौन्दर्यका परिचय मिलता है। श्रीसीताजीने अशोक-वनमें हनुमानजीको उदयाचलपर विराजमान सूर्यके समान देखा—

सा तिर्यगूर्ध्वं च तथा ह्यधस्ता-
न्निरीक्षमाणा तमचिन्त्यबुद्धिम्।
ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं
वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम्॥

(वा० रा० ५।३१।१९)

अशोक-वनमें ही सीताजीके मनमें अपने पराक्रमका विश्वास दिलानेके लिये उन्होंने अपना बृहद् रूप बढ़ाया, जो विन्ध्याचलके समान विशाल दीख पड़ता था। महाकवि क्षेमेन्द्रका कथन है—

प्रवर्धमानः सहसा पुनर्विन्ध्य इवोत्थितः।

(रामायणमञ्जरी, सुन्दर० ३५६)

महाभारतके वनपर्वमें उल्लेख है कि श्रीहनुमानका विन्ध्यपर्वतके समान अत्यन्त भयंकर और अद्भुत शरीर देखकर भीम घबरा गये—

तमद्भुतं महारौद्रं विन्ध्यपर्वतसंनिभम्।
दृष्ट्वा हनुमतो वर्ष्म सम्भ्रान्तः पवनात्मजः॥

(१५०।१०)

श्रीहनुमन्नाटकमें हनुमानजीके रूपकी वसन्तके साथ बड़ी सौम्य उपमा दी गयी है। 'लंकासे लौटनेपर वायुसे चुम्बित शुद्ध केसरवाले, उद्दीप्त चन्द्रमण्डलके आगे चलनेवाले तथा वियोगी श्रीरामकी कातर दृष्टिसे देखे जाते हुए हनुमानजी वसन्त ऋतुके समान श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख उपस्थित हुए'—

ततो मरुच्चुम्बितचारुकेसरः
प्रसन्नताराधिपमण्डलाग्रणीः।
वियुक्तरामातुरदृष्टिवीक्षितः
समागतः श्रीहनुमान् वसन्तवत्॥

(हनुमन्नाटक ६।३५)

'चम्पू-रामायण' में महाराज भोजने श्रीहनुमानकी उपमा मन्दराचलसे दी है। उनका कथन है कि 'ब्रह्माने सीतारूपी लक्ष्मीको श्रीरामरूपी विष्णुको प्रदान करनेके लिये राक्षस-सेनारूपी तरंगोंसे क्षुभित अत्यन्त भयंकर लंकारूपी सागरको रज्जुके समान (भुजङ्गरूपी) वासुकि-कायसे आवेष्टित मन्दराचलरूपी पवनात्मज-स्वरूप मथानीसे मथ डाला'—

सीताभिधानकमलां प्रभवे प्रदातुं
लङ्कार्णवं क्षुभितसैन्यतरंगभीमम्।
वेधा ममन्थ किल रज्जुभुजङ्गराज-
भोगावृतेन पवनात्मजमन्दरेण॥

(सुन्दरकाण्ड १०२)

शरीरका वर्ण (रंग)

श्रीहनुमानजीके शरीरका रंग—वर्ण अनेक प्रकारका कहा गया है, पर निर्विवादरूपसे सामान्यतः वे स्वर्ण-वर्णके ही चित्रित किये गये हैं। भगवान् सूर्यने उन्हें प्रभा प्रदान की थी—

'सूर्येण च प्रभा दत्ता..............।'

(स्कन्दपु०, अवन्ती०, चतुरशीतिलिङ्गमा० ७९।३४)

श्रीहनुमानजीके शरीरका वर्ण उद्दीप्त स्वर्णके समान कहा गया है। उनकी स्तुति है—

'ज्वलत्काञ्चनवर्णाय.......।' (नारदपु०, पूर्व० ७८।३७)

'हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र' के ९२,१०८ और १२४ वें श्लोकोंमें उन्हें क्रमशः '**स्वर्णवर्णः**', '**रुक्मवर्णः**' और '**नीलवर्णः**' के नामसे विभूषित बताया गया है। स्वर्ण-वर्णवाले हनुमानजीका ध्यान है—

स्फटिकाभं स्वर्णकान्तिं द्विभुजं च कृताञ्जलिम्।
कुण्डलद्वयसंशोभिमुखाम्बुजमहं भजे॥

(श्रीतत्त्वनिधि, पृष्ठ ५९)

संजीवनापहर्ता रामभक्त ब्रह्मचारी श्रीहनुमानजीके स्फटिक वर्णके ध्यानमें उनसे दीर्घायु प्रदान करनेकी प्रार्थना की गयी है—

हनूमान् रामपादाब्जसङ्गी वर्णिवरः शुचिः।
संजीवनापहर्ता मे दीर्घमायुर्ददात्विह॥

(श्रीतत्त्वनिधि, पृष्ठ ११८)

उन्हें लाल देहवाला भी कहा गया है।

'लाल देह लाली लसै।' (संकटमोचन हनुमानाष्टक)

श्रीहनुमानके शरीरका अङ्गराग सिन्दूर कहा गया है। रक्तचन्दन, पुष्प और सिन्दूर आदिसे उनकी पूजा होती है—

रक्तचन्दनपुष्पैश्च सिन्दूराद्यैः समर्चयेत्॥

(नारदपु०, पूर्व० ७४।४४)

श्रीहनुमानजीके विशाल शरीरकी छाया दस योजन चौड़ी और तीस योजन लंबी तथा वेगयुक्त होनेसे बड़ी

रमणीय कही गयी है। 'खारे पानीके समुद्रमें पड़ी हुई हनुमानजीका अनुसरण करनेवाली उनकी वह छाया श्वेत बादलोंकी पङ्क्तिके समान शोभा पाती थी'—

श्वेताभ्रघनराजीव वायुपुत्रानुगामिनी।
तस्य सा शुशुभे छाया पतिता लवणाम्भसि॥

(वा० रा० ५। १। ७७)

श्रीहनुमानजीकी विशेषता यह थी कि वे बड़े ही सुन्दर और विभिन्न प्रकारके रूप धारण कर लिया करते थे—

'**स चारुनानाविधरूपधारी**।' (वा० रा० ५। १। २१०)

इनका सौन्दर्य श्रीरामकी दिव्यतम दास्य-भक्तिके महासागरका कौस्तुभमणि है, वे साक्षात् दास्य-रस ही हैं।

श्रीहनुमानके रूप, अङ्ग-प्रत्यङ्ग, परिधान तथा अलंकार आदि परम दिव्य हैं। कोटि-कोटि कंदर्पोंके लावण्यसे भी उनका दिव्य सौन्दर्य मापा नहीं जा सकता। श्रीहनुमानजीको ब्रह्माने वरदान दिया था कि 'तुम्हारे शरीरके दिव्य आभूषण, जो दूसरोंके लिये अदृश्य हैं, केवल (विष्णु) सेव्यके द्वारा ही दृष्टिगत हो सकते हैं।' 'श्रीरंगनाथ-रामायण' में उल्लेख है कि "जब किष्किन्धामें श्रीहनुमान श्रीराम-लक्ष्मणसे मिलने गये, तब श्रीरामने लक्ष्मणजीसे कहा कि 'हे लक्ष्मण! ऐसा प्रतीत होता है कि सुनहला रंग, मुञ्ज (मूँज)-की सुन्दर करधनी, रत्न-कुण्डलोंसे विलसित कर्ण, श्रेष्ठ हार, यज्ञोपवीत, कौपीन तथा हाथमें कङ्कण धारण किये किसी मनुष्यने कपिका ही रूप अपनाया है। इस रूपको धारण करनेके लिये क्या स्वयं भगवान् रुद्रने तो जन्म नहीं लिया है? इस पृथ्वीपर केवल कपिमात्रको ऐसी प्रभा किस तरह प्राप्त हो सकती है?"

श्रीहनुमानने वायुपुत्र तथा सुग्रीवके मन्त्रीरूपमें अपना परिचय दिया और कहा—

"अपनी प्रिय माताके गर्भसे जन्म लेनेके कुछ वर्षोंके पश्चात् मैंने किसी उद्देश्यसे ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिये तपस्या की थी। तपस्यासे प्रसन्न होकर कमल-सम्भव (ब्रह्मा)-ने मुझे दर्शन दिया। वे बोले कि 'कोई इच्छा हो तो कहो।' मैंने उनकी परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया, सहस्रों प्रकारसे स्तुति कर फिर कहा—'हे विमलात्मा! इस पृथ्वीपर मेरे मोक्ष तथा इच्छित कार्योंकी सिद्धिके आधार और (मेरे) आराध्य कौन हैं? मैं किनकी प्रार्थना तथा सेवा करूँ।' तब कमल-सम्भव (ब्रह्मा)-ने अपने मनमें विचारकर कहा कि 'जो तुम्हारे शरीरके आभूषणोंको देख सकेंगे, वे ही तुम्हारे स्वामी और प्रभु होंगे। वे ही हम सबके इष्टदेव तथा संसारके कर्ता हैं। वे ही विष्णु हैं। ऐसा जानो कि वे ही तुम्हारे त्राता और प्रभु हैं।' इस तरह आदेश देकर ब्रह्मा चले गये। तबसे मैं समस्त लोकमें विचरण करता रहता हूँ। हे राजन्! (राम) मेरे आभूषणोंकी दीप्तिको स्वर्गके निवासी भी नहीं देख सकते।"

(श्रीरंगनाथ-रामायण, किष्कि०, अध्याय ३)

महाकवि गिरिधरकृत गुजराती रामायणमें उपर्युक्त प्रसङ्गका अत्यन्त भावपूर्ण स्पष्टीकरण उपलब्ध होता है। श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—

भाई जोआ कपीनो वेश।
अेने वज्र कछोटो छाजे, वली कनकनुं कोपीन राजे।
अे कपिवर महाबलवंत, अेनु नाम हशे हनुमंत॥

(किष्किन्धाकाण्ड २। ५-६)

'भैया लक्ष्मण! इन कपिका वेश देखो। ये वज्र और कछोटेसे सुशोभित हैं; इनके स्वर्णिम कौपीन है। ये कपिश्रेष्ठ महान् बलशाली हैं और इनका नाम 'हनुमान' होगा।'

श्रीरामके वचन सुनकर हनुमानजीने विचार किया कि 'मेरी माँने मुझसे कहा था कि जो तुम्हारे अप्रकट स्वर्ण-वर्णके कौपीन और कछोटेको जान लेंगे, उन्हींको तुम अपना स्वामी समझना और उन्हींकी सेवा करना'—

मारी माते कह्युं हतुं मुजने, सुत ओळखशे जे तुजने॥
कोपीन कनक कछोटो ओळखशे, छे गुप्त ते परगट लखशे॥
तेने स्वामि जाणजे सुत्र, तेनी सेवा तु करजे पुत्र॥

(गिरिधर-रा०, किष्कि० २। ७-८)

परिधान

सामान्यत: श्रीहनुमानजीको पीताम्बरसे अलंकृत कहा गया है। उनके द्वारा श्वेत वस्त्र धारण करनेका भी वर्णन मिलता है। 'हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र' के ११वें श्लोकमें उनको '**पीतवासा:**' कहा गया है। उनके पीताम्बरसे अलंकृत रूपका ध्यान है—

ध्यायेद्बालदिवाकरप्रतिनिभं देवारिदर्पापहं
देवेन्द्रप्रमुखैः प्रशस्तयशसं देदीप्यमानं रुचा।
सुग्रीवादिसमस्तवानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियं
संरक्तारुणलोचनं पवनजं पीताम्बरालंकृतम्॥

(श्रीविद्यार्णवतन्त्र, द्वादशाक्षरमन्त्र ३३। १२)

'जिनके शरीरका वर्ण बाल-सूर्यके समान अरुण है, जो देव-शत्रुओंके दर्पको चूर्ण करनेवाले हैं, देवेन्द्र

आदि प्रमुख देवगण जिनका यशोगान करते हैं, जो अपनी कान्तिसे उद्भासित हो रहे हैं, सुग्रीव आदि समस्त वानर जिन्हें घेरे हुए हैं, जो सुव्यक्त—श्रीरामतत्त्वके प्रेमी हैं, जिनके नेत्र लाल हैं, उन पीताम्बरधारी पवन-नन्दनका ध्यान करना चाहिये।'

श्रीसीताने हनुमानजीको श्वेतवस्त्रसे अलंकृत देखा था। 'अशोक-वाटिकामें अशोक-वृक्षकी शाखाओंके भीतर छिपे हुए, विद्युत्पुञ्जके समान अत्यन्त पिङ्गलवर्णवाले तथा श्वेतवस्त्रधारी हनुमानजीपर भगवती सीताकी दृष्टि पड़ी। फिर तो उनका मन चञ्चल हो गया। उन्होंने देखा कि फूले हुए अशोकके समान अरुणकान्तिसे प्रकाशित एक विनीत और प्रियवादी वानर बैठा है। उसके नेत्र तपाये स्वर्णके समान चमक रहे हैं'—

ततः शाखान्तरे लीनं दृष्ट्वा चलितमानसा।
वेष्टितार्जुनवस्त्रं तं विद्युत्संघातपिङ्गलम्॥
सा ददर्श कपिं तत्र प्रश्रितं प्रियवादिनम्।
फुल्लाशोकोत्कराभासं तप्तचामीकरेक्षणम्॥

(वा० रा० ५।३२।१-२)

अङ्ग-प्रत्यङ्ग-शृङ्गार

श्रीहनुमानजीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग दिव्य सौन्दर्यके अधिष्ठान हैं। उनसे दिव्यतम सात्त्विकता प्रवाहित होती रहती है। माता अञ्जनीके गर्भसे प्रकट होते समय ही वे समस्त दिव्य आभूषणोंसे भूषित थे। महाकवि गिरिधरका कथन है कि 'उनके अङ्गकी कान्ति उदयाचलपर उदित होते हुए सूर्यके समान थी, मस्तकपर मणिजटित टोपी थी—मुकुट था। कानके कुण्डलोंकी झलक विद्युत्के समान थी; उनके वज्र और कछोटा सुशोभित था, कनक-वर्णकी कौपीन थी, कमरमें मूँजकी करधनी थी। उनके वक्षःस्थलपर यज्ञोपवीत था, पूँछका अग्रभाग प्रवालके समान लाल रंगका तथा कोमल था'—

उदयाचल उपर जेम उगे कान्ति अंग दिनेश॥
विद्युत जेवाँ कुण्डल झलके मणीजडित शिर टोपी।
वज्री कछोटो कोपीन कंचन कटिये मुंजी ओपी॥
महावीर रणधीरने शोभे यज्ञोपवित्तज सार।
सुख पुच्छाग्र प्रवाळ जेवुं रक्तवरण सुकुमार॥

(गिरिधर-रामायण, बाल० १३।३—५)

गोस्वामी तुलसीदासजीने उनकी स्तुतिमें कहा है कि 'आपके सिरपर भूरे रंगकी कठोर जटाओंका जूड़ा बँधा हुआ है'—

'.......कपिश-कर्कश-जटाजूटधारी।'

(विनय-पत्रिका २८।२)

श्रीहनुमानजीका मस्तक मुकुटसे समलंकृत है। उनके ध्यानमें कहा गया है—

पीताम्बरादिमुकुटैरभिशोभिताङ्गं
पिङ्गाक्षमाद्यमनिशं मनसा स्मरामि॥

(श्रीविद्यार्णवतन्त्र, हनुमत्प्रकरण ३३।११)

उनका मस्तक अपने परमाराध्य श्रीसीतारामके चरण-देशमें पूर्णतया प्रणत रहता है। लंकासे लौटते समय श्रीसीताके आशिषको शिरोधार्यकर उन्होंने कहा—

'अयं मूर्ध्नि गृहीतो देव्याः प्रसादः।'

(प्रसन्नराघव ६। ४८के उपरान्त)

जगज्जननी सीताके चरणोंके तथा श्रीराम एवं भरतादिके कर-कमलोंके संस्पर्शमें ही श्रीहनुमानके सिरकी प्रणतिकी सार्थकता है। लंकासे लौटते समय उन्होंने श्रीरामवल्लभा जानकीके चरण-कमलोंमें प्रणामकर किष्किन्धाके लिये प्रस्थान किया—

चरनकमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह॥

(रामचरितमानस ५।२७)

उनके लंकासे लौटकर श्रीसीताका कुशल-समाचार सुनानेपर प्रभु श्रीरामने उनसे कहा कि 'हे कपि! तुमने मेरा परम उपकार किया है।' प्रभुके वचन सुनकर हनुमानजी प्रेमाकुल होकर उनके चरणोंपर गिर पड़े। प्रभुने अपने कर-कमलसे उनके सिरका संस्पर्श किया—

'प्रभु कर पंकज कपि के सीसा।'

(रामचरितमानस ५।३३।२)

लंका-विजयके बाद श्रीरामकी आज्ञासे हनुमानजी उनके प्रत्यागमनका समाचार भरतजीको सुनाने गये। उन्होंने परम भागवत श्रीभरतके चरणपर नतमस्तक होकर श्रीरामकी समस्त गुण-गाथाका वर्णन किया—

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा॥

(रामचरितमानस ७।२।१५)

श्रीहनुमानजीके केशका रंग पीला है। उनके कानमें कुण्डल शोभित हैं। उनके ध्यानमें कहा गया है—

वज्राङ्गं पिङ्गकेशाढ्यं स्वर्णकुण्डलमण्डितम्॥

(मन्त्रमहार्णव, पृष्ठ १८४)

स्वयम्प्रभाके नगरके बिलमें प्रवेश करते समय श्रीहनुमानके कानोंके दो विद्युत्खण्ड-सदृश प्रकाशमान कुण्डल अपनी कान्तिसे घने अन्धकारको दूर कर रहे थे—ऐसा वर्णन, 'कंबरामायण' के किष्किन्धाकाण्डके १३वें अध्यायमें मिलता है।

श्रीहनुमानजीके श्रवण श्रीरामके यश तथा उनके

लीला-नाम-कीर्तन आदि सुननेके रसिक हैं। उनके कानोंमें रत्न-निर्मित दिव्य कुण्डल सुशोभित हैं। श्रीरंगनाथ-रामायणके किष्किन्धाकाण्डके दूसरे अध्यायमें वर्णन है कि 'उनके रत्न-कुण्डल आदिको, जिनकी दीप्ति स्वर्गके निवासियोंके लिये भी अदृश्य कही गयी है, श्रीरामने पहचान लिया।' हनुमानचालीसामें उल्लेख है—

कंचन बरन बिराज सुबेसा। कानन कुंडल कुंचित केसा॥

नारदपुराणमें चञ्चल कुण्डलोंकी दीप्तिसे दीप्त मुखवाले हनुमानजीके ध्यानका वर्णन है—

तप्तचामीकरनिभं भीघ्नसंविहिताञ्जलिम्।
चलत्कुण्डलदीप्तास्यं पद्माक्षं मारुतिं स्मरेत्॥

(पूर्व० ७४।११०)

श्रीरामका गुणानुवाद सुनना हनुमानके कानोंका विशिष्ट अलंकार है। 'किम्पुरुषवर्षमें गन्धर्वोंके साथ आर्ष्टिषेणके द्वारा गायी गयी अपने स्वामी श्रीरामकी परम कल्याणमयी गुणगाथा वे सुनते और स्वयं गाते रहते हैं'—

'आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति।'

(श्रीमद्भागवत ५।१९।२)

श्रीप्रह्लादजीका नारदजीके प्रति निवेदन है कि 'वे हनुमानजीका किम्पुरुषवर्षमें जाकर दर्शन करें। वहाँ वे अपने प्रभुकी ही कीर्ति सुनकर अपने प्राणोंको धारण करते हैं और उनके विग्रहके पार्श्वभागमें स्थित होकर आज भी वे पूर्ववत् विराजमान हैं।' श्रीप्रह्लादजीके वचन हैं—

आत्मानं नित्यतत्कीर्तिश्रवणेनोपधारयन्।
तन्मूर्तिपार्श्वतस्तिष्ठन् राजतेऽद्यापि पूर्ववत्॥

(बृहद्भागवतामृत १।४।५०)

श्रीहनुमानजीके मुखमण्डलकी साङ्गोपाङ्ग शोभाका वर्णन महाभारतमें उपलब्ध होता है। यह प्रसङ्ग उस समयका है, जब गन्धमादनपर्वतपर कदली-वनमें भीमसेनको उनका दर्शन हुआ था। 'श्रीहनुमानजीके होंठ छोटे थे, जीभ और मुखका रंग ताँबेके समान था। कान भी लाल रंगके थे। उनकी भौंहें चञ्चल थीं। उनके खुले मुखमें सफेद चमकते दाँत और दाढ़ें अपने सफेद और तीखे अग्रभागके द्वारा अत्यन्त शोभायुक्त थीं। इन सबके कारण उनका मुख किरणोंसे प्रकाशित चन्द्रमाके समान दीख पड़ता था। मुखके भीतरकी सफेद दन्तावलि उसकी शोभा बढ़ानेके लिये आभूषणका काम दे रही थी। वे शत्रुसूदन अपने कान्तिमान् शरीरसे प्रज्वलित अग्निके समान जान पड़ते थे और अपनी मधुके समान पीली आँखोंसे इधर-उधर देख रहे थे।'

ह्रस्वौष्ठं ताम्रजिह्वास्यं रक्तकर्णं चलद्भ्रुवम्।
विवृत्तदंष्ट्रादशनं शुक्लतीक्ष्णाग्रशोभितम्॥
अपश्यद् वदनं तस्य रश्मिवन्तमिवोडुपम्।
वदनाभ्यन्तरगतैः शुक्लैर्दन्तैरलंकृतम्॥
दीप्यमानेन वपुषा स्वर्चिष्मन्तमिवानलम्।
निरीक्षन्तममित्रघ्नं लोचनैर्मधुपिङ्गलैः॥

(वनपर्व १४६। ७९-८०, ८२)

श्रीहनुमानजीका मुख दुःखियोंके क्लेश और संकट-ग्रस्त प्राणियोंके दुःखका नाश करता है—

'प्रोद्यच्चण्डमयूखमण्डलमुखं दुःखापहं दुःखिनाम्।'

(मन्त्रमहार्णव, पूर्व०, तरंग ९ वाँ, पृष्ठ १८४, ध्यान १)

पञ्चमुखयुक्त श्रीहनुमानजीका भव्य ध्यान श्रीविद्यार्णव-तन्त्रमें वर्णित है। 'हनुमानजी पञ्चवक्त्र एवं अत्यन्त भयंकर हैं, वे पंद्रह नेत्रों और दस भुजाओंसे सुशोभित हैं। वे समस्त कामनाओंको पूर्ण करते हैं'—

पञ्चवक्त्रं महाभीमं त्रिपञ्चनयनैर्युतम्।
बाहुभिर्दशभिर्युक्तं सर्वकाम्यार्थसिद्धिदम्॥

(पञ्चमुख हनुमत्प्रकरण ३३।२)

इनके पूर्व दिशाका मुख वानरका है; यह करोड़ों सूर्यकी प्रभासे युक्त है। दक्षिणकी ओरका मुख नरसिंह-आकारका है; यह महान् अद्भुत, भीषण और भयको नष्ट कर देता है। नरसिंहवक्त्र हनुमानजीका शरीर अत्यन्त उग्र तेजसे प्रदीप्त है। पश्चिम दिशावाला मुख गरुडका है; इससे समस्त रोगोंका शमन होता है। यह विषरोगका निवारण करता है। उत्तराभिमुखी हनुमान सूकरवक्त्रवाले हैं। यह मुख नीले नभके समान श्याम वर्णका है। यह ज्वररोगका नाश करता है। ऊर्ध्वमुख हय—अश्वके आकारका है; यह दानवोंका नाश करता है। पञ्चमुखी हनुमानका ध्यान है कि ये पीताम्बर तथा मुकुटसे अलंकृत हैं। इनके नेत्र पीले रंगके हैं—

पञ्चास्यमच्युतमनेकविचित्रवीर्य-
वक्त्रं सुशङ्खविधृतं कपिराजवर्यम्।
पीताम्बरादिमुकुटैरभिशोभिताङ्गं
पिङ्गाक्षमाद्यमनिशं मनसा स्मरामि॥

(श्रीविद्यार्णवतन्त्र, हनुमत्प्रकरण ३३।११)

आचार्य शंकरने हनुमानजीसे प्रार्थना करते हुए उनके मुखका वर्णन किया है। उनकी उक्ति है कि 'जिनका मुख-कमल बाल (उदयकालीन) सूर्यके समान रक्तवर्णका है, जिनका नेत्रप्रान्त करुणा-रससे

परिपूर्ण है, जो असीम एवं मनोरम महिमासे सम्पन्न हैं, उन्हीं (मूर्तिमान्) अञ्जना-सौभाग्यस्वरूप हनुमानजीसे मैं श्रीरामभक्तिविलसित पवित्र-निर्मल जीवनकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना करता हूँ'—

तरुणारुणमुखकमलं करुणारसपूरपूरितापाङ्गम्।
सञ्जीवनमाशासे मञ्जुलमहिमानमञ्जनाभाग्यम्॥

(श्रीहनुमत्पञ्चरत्न २)

श्रीहनुमानजीके मुखका रंग लाल कहा गया है; कहीं-कहीं उनके लिये माणिक्य और मूँगेके रंगकी भी उपमा उपलब्ध होती है। श्रीवाल्मीकिने हनुमानजीके लंका-गमनके समयके रूप-वर्णनमें उनके मुखका रंग ताम्रके समान लाल कहा है। उनकी दृष्टिमें मुखका यह रक्तवर्ण संध्याकालीन सूर्यमण्डलके समान था—

मुखं नासिकया तस्य ताम्रया ताम्रमाबभौ।
संध्यया समभिस्पृष्टं यथा स्यात् सूर्यमण्डलम्॥

(वा० रा० ५।१।६०)

श्रीवाल्मीकिने अशोक-वनमें भगवती सीताजीको प्रणाम करनेवाले हनुमानजीके मुखको विद्रुम—मूँगेके समान बताया है—

सोऽवतीर्य द्रुमात् तस्माद् विद्रुमप्रतिमाननः।

(वा० रा० ५।३३।१)

'चम्पू-रामायण' में अशोक-वनवाले प्रसङ्गमें ही महाराज भोजने श्रीहनुमानके मुखकी उपमा माणिक्यसे दी है। कृशाङ्गी भगवती सीताद्वारा प्रदत्त चूड़ामणिको लेकर हनुमानजीने, जिनका मुख माणिक्यके रंगका था, प्रस्थान किया—

चूडामणिं कपिवरस्य ददौ दशास्य-
संत्रासपुञ्जितरुषाग्निदशं कृशाङ्गी।
आदाय तत्प्रणतिपूर्वमसौ प्रतस्थे
माणिक्यगर्भवदनोरगतुल्यबाहुः॥

(सुन्दरकाण्ड ६९)

श्रीहनुमानजीके मुख-मण्डलमें उनके नेत्रोंकी महिमा निस्संदेह अवर्णनीय है। उनके नेत्र श्रीराम और उनके लीला-परिकरके दर्शनके लिये सदा उत्सुक रहते हैं। श्रीराम-भक्तोंपर कृपा-कटाक्षकी अनवरत वृष्टि करते रहना उनका सहज स्वभाव है। सामान्य रूपसे श्रीहनुमानजीके नेत्र थोड़ी-थोड़ी लालिमासे युक्त पिङ्ग—पीले रंगके ही हैं; परंतु लीलाके स्तरपर वे लाल कहे गये हैं, जब वे राक्षसोंपर क्रोध करते हैं। उनके नेत्र कमल-दलके समान प्रफुल्ल तथा विकसित रहते हैं। आचार्य शंकरकी उक्ति है कि मैं उन हनुमानजीका आश्रय लेता हूँ, जिनके नेत्र कमल-दलके समान विकसित हैं—

शम्बरवैरिशरातिगमम्बुजदलविपुललोचनोदारम्।
कम्बुगलमनिलदिष्टं बिम्बज्वलितोष्ठमेकमवलम्बे॥

(श्रीहनुमत्पञ्चरत्न ३)

'श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्र' के दूसरे श्लोकमें उन्हें '**पिङ्गाक्ष**' कहा गया है। महर्षि वाल्मीकिने उनकी पीली-पीली आँखोंका वर्णन किया है। 'वायुके मार्गका अनुसरण करनेवाले हनुमानजीके बिजलीकी-सी चमकवाले दो नेत्र ऐसे प्रकाशित थे, मानो पर्वतपर दो स्थानोंके दहकते दावानल हों। पिङ्गल नेत्रवाले उनकी दोनों गोल-गोल पीली-पीली आँखें चन्द्रमा-सूर्यके समान प्रकाशित थीं'—

तस्य विद्युत्प्रभाकारे वायुमार्गानुसारिणः।
नयने विप्रकाशेते पर्वतस्थाविवानलौ॥
पिङ्गे पिङ्गाक्षमुख्यस्य बृहती परिमण्डले।
चक्षुषी सम्प्रकाशेते चन्द्रसूर्याविव स्थितौ॥

(वा० रा० ५।१।५८-५९)

महाभारतमें वर्णन है कि गन्धमादनपर्वतपर कदली-वनमें घूमते हुए भीमसेनने मधुके समान पीले नेत्रोंवाले शत्रुसूदन श्रीहनुमानको देखा—

निरीक्षन्तममित्रघ्नं लोचनैर्मधुपिङ्गलैः॥

(वनपर्व १४६।८२)

श्रीरामके सेवा-कार्यमें राक्षसोंद्वारा विघ्न उपस्थित किये जानेपर उनके नेत्र लाल हो उठते हैं। 'श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्र' के ३३वें श्लोकमें उन्हें '**क्रोधसंरक्तलोचनः**' कहा गया है। कुम्भकर्णके साथ युद्धमें लक्ष्मणसहित श्रीरामने रुद्ररूपवाले तथा नरसिंहके समान उग्र श्रीहनुमानको लाल-लाल नेत्रोंसे युक्त देखा—

आलक्षितो रघुवरेण सलक्ष्मणेन
कालान्तकादिव रिपोः परिशङ्कितेन।
स्थानं जगाम हनुमान् समरेऽवतीर्य
माहेश उग्रनरसिंह इवारुणाक्षः॥

(हनुमन्नाटक ११।३५)

श्रीविद्यार्णवतन्त्रके तैंतीसवें श्वासके हनुमत्-प्रकरणके १२वें श्लोकमें '**संरक्तारुणलोचनः**'। के रूपमें उनका ध्यान वर्णित है। अक्ष-वधके प्रसङ्गमें महाकवि पद्माकरने

उनके अरुण नेत्रका संदर्भ प्रस्तुत करते हुए कहा है—

फारौं बक्ष न अक्ष को, जौं लगि मैं हनुमान।
तौ लौं पलक न लाइहौं, कछुक अरुन अँखियान॥

(जगद्विनोद ५८७)

श्रीहनुमानके नेत्रोंकी महती विशेषता यह है कि वे अपने स्वामी श्रीरामके पद-दर्शनके लिये सदैव उत्कण्ठित रहते हैं। श्रीसीतासे चूड़ामणि लेकर लंकासे किष्किन्धाको प्रस्थान करते समय उन्होंने कहा—

'देवि, अनुजानीहि त्वरयति मां रामचन्द्रचरण-दर्शनोत्कण्ठा।' (प्रसन्नराघव—६। ४६ के बादका गद्यांश)

श्रीहनुमानके नेत्र अत्यन्त करुणापूर्ण और संकट तथा चिन्ताओंको दूर कर भगवद्भक्तोंके हृदयको प्रमुदित और आनन्दित करते हैं।

महर्षि वाल्मीकिने हनुमानजीकी लाल नासिकाका वर्णन करते हुए कहा है कि उसके कारण उनका मुख लालीसे युक्त था, मानो संध्याकालसे युक्त सूर्यमण्डल हो—

मुखं नासिकया तस्य ताम्रया ताम्रमाबभौ।
संध्यया समभिस्पृष्टं यथा स्यात् सूर्यमण्डलम्॥

(वा० रा० ५।१।६०)

'श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्र' के ५वें श्लोकमें उनको बड़ी नासासे युक्त—'**बृहन्नास:**' कहा गया है।

श्रीहनुमानजीकी रसना—जिह्वा श्रीरामके नामामृत-सागरमें सम्प्लावित रहती है। वह लाल रंगकी है। उनके मुखको लाल जिह्वासे युक्त वर्णित किया गया है। महाभारत, वनपर्वके १४६वें अध्यायके ७९वें श्लोकमें '**ताम्रजिह्वास्यम्**' का उल्लेख है। उनकी जिह्वा श्रीरामके चरितामृतका वर्णन और उसका रसास्वादन करती है। किष्किन्धामें श्रीहनुमानने तरुण तपस्वी श्रीराम-लक्ष्मणके सौन्दर्यको कुशके गुच्छसे उत्पन्न पवित्र सौरभकी उपमा देते हुए कहा है कि 'आपकी वार्ता-सुधाके आस्वादको मेरी कुशल जिह्वा स्वयं ग्रहण करना चाहती है; आपका वृत्तान्त श्रवणोंको सुख देनेवाला है'—

कुशस्तम्बेऽपि सम्भूतं सौरभ्यमिव भासते।
तपोवेषेऽपि सौन्दर्यं युवयोर्युवयोगिनो:॥
युष्मद्वार्तासुधास्वादलुब्धयो: श्रोत्रयो: सुखम्।
स्वयमेव ग्रहीतुं मे जिह्वा प्रह्वा प्रवर्तते॥

(चम्पूरामायण, किष्किन्धा० १६-१७)

भगवान् श्रीरामके यशके वर्णनमें अपनी जिह्वाकी असमर्थता प्रकट करते हुए श्रीहनुमानने अपनी वाणीके सम्बन्धमें निवेदन किया है कि 'हे राम! सूर्य आपकी कीर्तिका बखान करनेमें नितान्त अक्षम है, वह तो जुगनू-सा बन जाता है, चन्द्रमाका प्रकाश मकड़ीके जालेके समान (संकुचित) हो जाता है, तारागण मच्छरके आकारवाले हो जाते हैं, आकाशतक भ्रमरके समान हो जाता है और मेरी वाणी साधारण दशावाली—कुण्ठित हो जाती है'—

खद्योतद्युतिमातनोति सविता जीर्णोर्णनाभालय-
च्छायामाश्रयते शशी मशकतामायान्ति तारादय:।
इत्थं वर्णयतो नभस्तव यशो यातं स्मृतेर्गोचरं
यच्चास्मिन् भ्रमरायते रघुपते वाचस्ततो मुद्रिता॥

(हनुमन्नाटक १४।८४)

श्रीहनुमानकी जिह्वा परम सौभाग्यवती है; क्योंकि उसपर विहार करनेवाली उनकी मधुर वाणीकी प्रशंसामें भगवती सीताने कहा है कि 'तुम्हारी वाणी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न, माधुर्य-गुणसे भूषित तथा बुद्धिके आठ अङ्गोंसे समृद्ध है। ऐसी वाणी केवल तुम्हीं बोल सकते हो'—

अतिलक्षणसम्पन्नं माधुर्यगुणभूषणम्।
बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं त्वमेवार्हसि भाषितुम्॥

(वा० रा० ६।११३।२६)

माधुर्यगुणभूषित वाणी ही श्रीहनुमानकी जिह्वाका दिव्य अलंकार है। भगवती सीताने अशोक-वनमें श्रीहनुमानकी वाणी सुनकर उनको 'अमृतमुख' कहा है—

'अमिअमुह, को सि तुमम्!'

संस्कृतरूपान्तर—'**अमृतमुख! कोऽसि त्वम्!**'

(प्रसन्नराघव, ६ठे अङ्कके ३८वें श्लोकके बाद)

श्रीहनुमानकी वाणी सुधा-सी मधुर तथा सुखद थी। उन्होंने उपर्युक्त प्रसङ्गमें सुधामयी रघुनाथ-कथासे सम्पन्न वाणीका सृजन किया। महामति क्षेमेन्द्रका कथन है—

रघुनाथकथामस्या: करोम्यग्रे सुधामयीम्॥
इति संचिन्त्य हनुमान् विटपान्तरिताकृति:।
ससर्ज वाणीं वैदेहीश्रोत्रपात्राभिगामिनीम्॥

(श्रीरामायणमञ्जरी, सुन्दर० ३०८-९)

महाकवि सूरदासने श्रीरामके मुखारविन्दसे हनुमानजीकी मधुर प्रिय वाणीकी प्रशंसा करायी है। श्रीरामने उनसे प्रश्न किया और उन्होंने उत्तर दिया—

मिले हनु, पूछी प्रभु यह बात।
महा मधुर प्रिय बानी बोलत, साखामृग, तुम किहि के तात?
अंजनि कौ सुत, केसरि कैं कुल, पवन गवन उपजायौ गात॥

(सूरसागर, नवम स्कन्ध ५१३)

गोस्वामी तुलसीदासजीने उनके वचनको मधुर, प्रिय और मृदु कहा है। उनका मधुर वचन श्रीरामके गुणसे परिपूर्ण रहता है। वह सीताजीके कानोंके लिये अमृतस्वरूप कहा गया है—

सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥
रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥
श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥

(रामचरितमानस ५। १३। ४—७)

श्रीसीताको अत्यन्त व्याकुल देखकर उनके विरह-दु:खको दूर करनेके लिये श्रीहनुमानने मृदु वचन कहे—

देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥

(रामचरितमानस ५। १४। ८)

श्रीसीताने उनका वह वचन सुना, जो पीयूषके समान सुखद था। 'उनके वचनामृतसे सीताजीके कान, शरीर और हृदय तो शीतल हो गये, किंतु नेत्रोंको भगवान् श्रीरामके दर्शनकी भूख लगी रह गयी'—

भये सीतल स्त्रवन-तन-मन सुने बचन-पियूष।
दास तुलसी रही नयननि दरस ही की भूख॥

(गीतावली, सुन्दर० ६। ६)

श्रीहनुमानकी जिह्वा श्रीरामके दोनों कानोंके लिये सुधा-वृष्टि करनेवाले वचनोंसे समलंकृत थी—

'ततस्तदीयं वचनमाकर्ण्य कर्णयुगलसुधावर्षि।'

(श्रीचम्पूरामायण, किष्किं० २०)

श्रीहनुमानजीकी जिह्वा वाणीकी मधुरता, मृदुता, प्रियता और विनम्रतासे विभासित थी। उसने भागवत-माधुर्यका ही रसास्वादन किया; भागवत-माधुर्य ही उनकी जिह्वाका समलंकरण है।

श्रीहनुमानजीके कपोलकी सार्थकताका वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा कि अपने गालमें उन्होंने श्रीरामद्वारा प्रदत्त मुद्रिका रखकर सीताजीका अन्वेषण करनेके लिये प्रस्थान किया—

रजायसु राम को जब पायो।
गाल मेलि मुद्रिका, मुदित मन, पवनपूत सिर नायो॥

× × ×

तुलसी सिय बिलोकि पुलक्यो तनु, भूरि भाग भयो भायो॥

(गीतावली, सुन्दर० १)

श्रीहनुमानजीके होंठ बिम्बफलके समान उद्दीप्त लाल कहे गये हैं। आचार्य शंकरकी उक्ति है—

'बिम्बज्वलितोष्ठमेकमवलम्बे॥' (हनुमत्पञ्चरत्न ३)

उनके अधर बड़े-बड़े पर्वतोंको चबा जाते हैं। महाकवि ग्वालने उनके अधरका वर्णन यों किया है—

लंका ते निकसि आए जुत्थन के जुत्थ लखि,
कूद्यो बज्र-अंग किटकिटी दै झपट्टि कै।
सुनि-सुनि गर्बित बचन दुष्ट पुष्टन के,
मुष्ट बाँधि उच्छलत सामने सपट्टि कै॥
'ग्वाल' कबि कहै महा मत्ते रत्ते अक्ष करि,
धावै जित्त-तित्त परै वज्र सो लपट्टि कै।
चब्बत अधर फेंकै पब्बत उतंग तुंग,
दब्बत दनुज्ज के दलन हैं दपट्टि कै॥

(काव्यकल्पद्रुम—रसमञ्जरी १९७)

श्रीहनुमानजीके दाँत और दाढ़का बड़ा सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है। उल्लेख है कि 'उनके खुले मुखमें सफेद चमकते दाँत और दाढ़ें अपने सफेद और तीखे अग्रभागसे शोभित थीं। उनके कारण उनका मुख किरणोंसे प्रकाशित चन्द्रमाके समान दीख पड़ता था। सफेद दन्तावलि मुखकी शोभा बढ़ानेके लिये आभूषणका काम दे रही थी'—

विवृत्तदंष्ट्रादशनं शुक्लतीक्ष्णाग्रशोभितम्॥
अपश्यद् वदनं तस्य रश्मिवन्तमिवोडुपम्।
वदनाभ्यन्तरगतैः शुक्लैर्दन्तैरलंकृतम्॥

(महाभारत, वन० १४६। ७९-८०)

आचार्य शंकरने श्रीहनुमानकी दन्त-पङ्क्तिका सौन्दर्य निरूपण करते हुए कहा है कि 'हे राम! सज्जनोंको आराम देनेवाले, आनन्द-प्रस्रवणके मूल उत्स आपके नामामृतका जो सदा पान करते हैं और दन्त-पङ्क्तिको बाहर कर हँसते रहते हैं, मैं उन श्रीहनुमानका अपने अन्त:करणमें एकान्त चित्तसे भजन करता हूँ'—

सदा रामरामेति रामामृतं ते सदाराममानन्दनिष्यन्दकंदम्।
पिबन्तं नमन्तं सुदन्तं हसन्तं हनूमन्तमन्तर्भजे तं नितान्तम्॥

(रामभुजङ्गस्तोत्र २१)

महाकवि कंबनने उनके दाँतोंको विद्युत्के समान कहा है। सम्पातिने श्रीहनुमानसे कहा—'हे विद्युत्के समान दाँतोंवाले! मैं जटायुका बड़ा भाई हूँ'—ऐसा वर्णन कंब-रामायण, किष्किन्धाकाण्डके पंद्रहवें अध्याय, सम्पाति-पटलमें उपलब्ध होता है। महर्षि वाल्मीकिने उनको सफेद दाढ़ोंसे शोभित कहा है—

'…शुक्लदंष्ट्रोऽनिलात्मजः।' (वा० रा० ५। १। ६२)

श्रीहनुमानजीके रूप, नाम और लीलाके संदर्भमें उनकी हनुकी विशेष भूमिका है। इन्द्रके वज्राघातसे

वाम हनुके खण्डित होनेपर उनका नाम 'हनुमान' पड़ा। 'हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र' के पचासवें श्लोकमें उनका एक नाम '**बृहद्धनुः**' कहा गया है। जन्म लेते ही क्षुधार्त होकर उन्होंने उदयकालीन सूर्यको पक्का फल समझकर उन्हें निगलना चाहा था। सूर्य-ग्रहणका समय था। राहु सूर्यको ग्रसनेवाला था कि अपना एक दूसरा प्रतिद्वन्द्वी देखकर उसने इन्द्रको उलाहना दिया। इन्द्रने क्रोध करके वज्रसे उनकी हनुपर प्रहार कर उसे खण्डित कर दिया—

हनुं जघान वज्रेण तं कोपात् पाकशासनः।
येनाद्रौ पतितस्यास्य वामो हनुरभज्यत॥

(रामायणमञ्जरी, उत्तर ७०४)

महर्षि वाल्मीकिका कथन है कि "श्रीहनुमान उदयाचलपर गिर पड़े। वहाँके शिलाखण्डपर गिरनेसे उनकी एक हनु कुछ कट (खण्डित हो) गयी, साथ ही दृढ़ हो गयी; इसलिये वे 'हनुमान' नामसे विख्यात हुए"—

अनासाद्यैव पतितो भास्करोदयने गिरौ।
पतितस्य कपेरस्य हनुरेका शिलातले।
किञ्चिद् भिन्ना दृढहनुर्हनूमानेष तेन वै॥

(वा० रा० ६। २८। १४-१५)

हनुके कुलिश-पातसे भग्न होनेका प्रसङ्ग प्रस्तुत करते हुए महाराज भोजने 'चम्पूरामायण' में कहा है कि 'हनुमानजी बाल्यकालमें पक्के फलकी भ्रान्तिसे सूर्यमण्डलका भक्षण करनेके लिये उछल पड़े। इसके बाद इन्द्रद्वारा प्रयुक्त वज्रके आघातसे उनकी हनु भग्न हो गयी, जिससे उनके पिता वायु कुपित हो गये और उन्होंने वायुका संचार बंद कर दिया, इससे तीनों लोकोंके प्राणी संतप्त हो उठे। तब ब्रह्माने जगत्‌के वायुद्वारा पोषणके लिये हनुमानजीको कल्पायु (चिरञ्जीवी) होने तथा ब्रह्मास्त्र, नारायणास्त्र, पाशुपतास्त्र आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे अभेद्य होनेका वरदान दिया'—

उदपतदुपभोक्तुं मण्डलं चण्डभानोः
परिणतफलबुद्ध्या बालभावेऽपि सोऽयम्।
तदनुकुलिशपातक्षुण्णगण्डाय तस्मै
वरमदिशदमेयं वायुतृप्त्यै विधाता॥

(किष्किन्धाकाण्ड ९८)

श्रीहनुमानका कण्ठ दिव्य मणि-मालाओं और हारोंसे विभूषित रहता है। उनका कण्ठ शङ्खके सदृश उतार-चढ़ाववाला कहा गया है। 'हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र' के १०२वें श्लोकमें उनका 'कम्बुकण्ठ' के नामसे वर्णन है। आचार्य शंकरने हनुमत्पञ्चरत्नस्तोत्रके तीसरे श्लोकमें उनका 'कम्बुगल' रूपमें स्मरण किया है। उनके कण्ठमें लंकासे लौटनेपर भगवान् श्रीरामके संकेतपर भगवती सीताने हार डाल दिया था। उन्होंने उस हारमें भी राम-नामको अङ्कित देखनेका प्रयास किया था। श्रीवाल्मीकि तथा अन्य रामायण-रचयिताओं और राम-काव्यकारोंने इस प्रसङ्गका बड़ा रोचक वर्णन किया है। अध्यात्मरामायणमें उल्लेख है कि 'श्रीरामने अत्यन्त प्रेमसे करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान अमूल्य मणि और रत्नोंसे भूषित एक हार जानकीजीको दिया'—

चन्द्रकोटिप्रतीकाशं मणिरत्नविभूषितम्।
सीतायै प्रददौ हारं प्रीत्या रघुकुलोत्तमः॥

(६। १६। ६)

भगवती सीताने श्रीरामके सामने ही वह हार हनुमानजीको दे दिया; उस हारको पहनकर वे गौरवान्वित और शोभित हुए—

हनूमते ददौ हारं पश्यतो राघवस्य च।
तेन हारेण शुशुभे मारुतिर्गौरवेण च॥

(अध्यात्मरा० ६। १६। ९)

श्रीवाल्मीकिरामायणके अनुसार श्रीहनुमानके कण्ठमें समलंकृत उपर्युक्त हार इन्द्रकी प्रेरणासे वायुदेवताने भगवान् श्रीरामको समर्पित किया था। 'राज्याभिषेकके अवसरपर वायुदेवताने सौ सुवर्णमय कमलोंसे बनी एक दीप्तिमती माला और सब प्रकारके रत्नोंसे युक्त मणियोंसे विभूषित मुक्ताहार राजा रामको भेंट किया।...उत्तम मणियोंसे युक्त उस परमोत्तम मुक्ताहारको जो चन्द्रमाकी किरणोंके समान प्रकाशित था, श्रीरामने सीताके गलेमें डाल दिया—

राघवाय ददौ वायुः.........................।
सर्वरत्नसमायुक्तं मणिभिश्च विभूषितम्॥
मुक्ताहारं नरेन्द्राय ददौ शक्रप्रचोदितः।
मणिप्रवरजुष्टं तं मुक्ताहारमनुत्तमम्॥
सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम्।

(वा० रा० ६। १२८। ७०-७१, ७७-७८)

श्रीसीताने उस हारको हनुमानजीको प्रदान किया। 'उस हारसे हनुमानजी उसी तरह शोभित हुए, जिस तरह चन्द्रमाकी किरणोंके समूह-सदृश श्वेत बादलोंकी

मालासे कोई पर्वत सुशोभित हो रहा हो'—

हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः।
चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाचलः॥

(वा० रा० ६। १२८। ८३)

श्रीहनुमानके कण्ठके उपर्युक्त समलंकरणका भव्य वर्णन 'रंगनाथ-रामायण' में युद्धकाण्डके १६८वें अध्यायमें मिलता है। ऐसा लगता है कि रचयिताने उपर्युक्त श्लोकका स्पष्ट भाष्य प्रस्तुत किया है—'श्रीसीताजीने अपने कृपा-रससे सींचते हुए उस हारको हनुमानजीके कण्ठमें पहना दिया। उस पवित्र हारको धारणकर वे पुण्यात्मा पवनपुत्र शरत्कालके बादलोंसे घिरे हुए मेरुपर्वतकी भाँति सुशोभित होने लगे।'

श्रीसीताजीद्वारा प्रदत्त हारकी सर्वोत्तम सार्थकता यह है कि इसको निमित्त बनाकर हनुमानजीने अपने अन्तःकरणको सीताराम-वर्णसे अङ्कित प्रमाणित किया। इस प्रसङ्गका बड़ा सुन्दर समापन महाराजा रघुराजसिंहने अपने 'रामस्वयंवर' काव्यके २३वें प्रबन्धमें चित्रित किया है। उनका कथन है—

पहिरि हार सोह्यो सभा, पवनकुमार अपार।
चंदकिरणि सित घन सहित, जैसो पुरट पहार॥

श्रीहनुमानजीने हारकी एक मणि, यह देखनेके लिये कि उसमें 'राम' अङ्कित हैं कि नहीं, अपने दाँतोंसे फोड़ डाली। इसपर विभीषणने व्यङ्ग्य किया—'मणिमें नाम किस तरह अङ्कित होगा, तनके ही भीतर उसकी विद्यमानता दुर्लभ है।' श्रीहनुमानजीने विभीषणको विश्वास दिलानेके लिये अपने शरीरका चर्म चीर डाला—

सुनत बिभीषन के बैन वायुसूनु बोल्यो,
राम नाम अंकित न राखे तनु कौन काम।
भाषि साभिमान निज बज्रनख नोकन सों,
चीर्‌यो चित चायके चटक तनुहीं को चाम॥
रघुराज जानकी लखन बहु वार्‌यो ताहि,
हाय हाय ह्वै रह्यो सभा में अरु धाम-धाम।
चीरत हीं चाम चाम अंतर चितै परे,
चितेर के लिखे-से बर्न सीताराम सीताराम॥

(रामस्वयंवर २३वाँ प्रबन्ध)

एक हार श्रीरामने भी उन्हें पहनाया था। 'उन्होंने अपने कण्ठसे चन्द्रमाके समान उज्ज्वल एक हार निकाला, जिसके मध्यभागमें वैदूर्यमणि थी। उसे उन्होंने हनुमानजीके गलेमें बाँध दिया। वक्षःस्थलसे सटे हुए इस हारसे वे ऐसे शोभित हुए, मानो सुवर्णमय गिरिराज सुमेरुके शिखरपर चन्द्रमाका उदय हुआ हो'—

ततोऽस्य हारं चन्द्राभं मुच्य कण्ठात् स राघवः।
वैदूर्यतरलं कण्ठे बबन्ध च हनूमतः॥
तेनोरसि निबद्धेन हारेण महता कपिः।
रराज हेमशैलेन्द्रश्चन्द्रेणाक्रान्तमस्तकः॥

(वा० रा० ७। ४०। २५-२६)

महर्षि गौतमके आश्रमकी घटना है। हनुमानजीके मधुर गानसे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उनके कण्ठमें मुक्ता-परिकल्पित हार पहनाया था—

हारं च मुक्तापरिकल्पितं शिवो
हनूमतः कण्ठगतं चकार॥

(नारदीयपुराण, पूर्व०, तृतीय० ७९। १३५)

जो प्राणी श्रीराम-नामका संकीर्तन करते हैं, उनके आलिङ्गनको हनुमानजी अपने गलेका भूषण बना लेते हैं। एक समयकी बात है, प्रह्लादकी प्रेरणासे नारदजी श्रीहनुमानका दर्शन करनेके लिये किम्पुरुष-वर्षको गये। वे 'श्रीरघुनाथजीकी जय हो, जानकीकान्तकी जय हो, लक्ष्मणजीके भ्राताकी जय हो'—इस प्रकार उच्च स्वरसे कीर्तन कर रहे थे। हनुमानजीने अपने इष्ट प्रभुका नाम-कीर्तन सुनते ही आनन्दित होकर छलाँग मारी और उन्हें अपने कण्ठसे लगा लिया—

निजेष्टस्वामिनो नामकीर्तनश्रुतिहर्षितः।
उत्प्लुत्य हनुमान् दूरात् कण्ठे जग्राह नारदम्॥

(बृहद्भागवतामृत १। ४। ५९)

श्रीहनुमानजी सुन्दर ग्रीवासे सुशोभित हैं। 'श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्र' के ९४ वें श्लोकमें उन्हें **'मणिग्रीवः'** कहा गया है। उनकी ग्रीवा छोटी और मोटी कही गयी है। उनके द्वारा विश्राम करते समय बाँहके मूलभागको तकिया बनाकर उसपर छोटी-मोटी ग्रीवाको रखनेका वर्णन मिलता है—

बाहुस्वस्तिकविन्यस्तपीनह्रस्वशिरोधरम् ।'

(महाभारत, वन० १४६। ७७)

उनकी रोमावली स्वर्ण-वर्णकी है। 'हनुमत्सहस्रनाम-स्तोत्र' के ही तीसरे श्लोकमें उनके लिये 'पिङ्गरोमा' शब्दका प्रयोग उपलब्ध होता है। महर्षि वाल्मीकिने उनके द्वारा महेन्द्रपर्वतसे उछलते समय रोएँ झाड़नेका वर्णन किया है। 'उस समय हनुमानजी अग्निके समान जान पड़ते थे; उन्होंने अपने शरीरको हिलाया, रोएँ झाड़े तथा महामेघके समान बड़े जोर-जोरसे गर्जना की—

दुधुवे च स रोमाणि चकम्पे चानलोपमः।
ननाद च महानादं सुमहानिव तोयदः॥
(वा० रा० ५। १। ३२)

गोस्वामी तुलसीदासजीने उनकी स्तुति करते हुए उनकी रोमावलीको बिजलीकी रेखा अथवा ज्वालाओंकी मालाके समान जगमगाती हुई बताया है—

जातरूपाचलाकारविग्रह, लसल्लोल विद्युल्लता ज्वालमाला॥
(विनय-पत्रिका २८। १)

उनके चौड़े और पुष्ट कंधेकी सदुपयोगिता यह है कि उसने भगवान् श्रीरामके आसनके रूपमें परम सौभाग्य प्राप्त किया। "रावणका रणमें आगमन देखकर श्रीहनुमानजीने भगवान् श्रीरामसे निवेदन किया कि 'आप हमारे कंधेपर विराजमान होकर रिपुपर विजय प्राप्त कीजिये।' प्रभु उनकी बात सुनकर मुस्कुरा उठे और वे उनके कंधेपर उसी तरह आरूढ़ हो गये, जिस तरह भगवान् विष्णु गरुडके कंधेपर शोभित होते हैं। भानुवंशके सूर्य श्रीराम उनके कंधेपर इस तरह लगते थे, मानो सोनेके पहाड़पर सूर्य अग्निके समान विभूषित हों।"

दसमुख-समर-पयान लखि, बोल्यो पवन कुमार।
नाथ हमारे कंध चढ़ि, जीतहु रिपु यहि बार॥
पवनसुवनके बचन सुनि, प्रभु नेसुक मुसक्यान।
चढ़े कपीसहिं कंध पर, यथा गरुड़ भगवान॥
सोह्यो हनुमत कंध पर, भानुबंस को भानु।
मनहुँ कनकगिरि मिलि उये, भानु कुसानु समानु॥
(रामस्वयंवर, २३वाँ प्रबन्ध)

महाकवि कंबनने 'कंब-रामायण' के किष्किन्धा-काण्डके १३वें अध्यायमें हनुमानजीके स्वयम्प्रभाके नगरमें प्रवेश करते समयका प्रसङ्ग उपस्थित करते हुए कहा है कि 'दीर्घ स्वर्ण-पर्वत-सदृश कंधोंवाले हनुमानजी बारह योजनतक गये। उनके कंधेपर ही श्रीसुग्रीवद्वारा श्रीरामका महत्त्वपूर्ण कार्य—भगवती सीताका पता लगाना रखा गया था। महाकवि क्षेमेन्द्रने सुग्रीवके मुखसे कहलाया है—

हनुमत्स्कन्धविन्यस्तं रामकार्यमिदं महत्॥
(रामायणमञ्जरी, किष्किन्धाकाण्ड २४३)

उनके कंधेपर मूँजका यज्ञोपवीत सौन्दर्य बिखेरता है—

'काँधे मूँज जनेऊ साजै।' (हनुमानचालीसा)

श्रीहनुमानजीके कक्ष—काँखके सम्बन्धमें महाकवि कृत्तिवासने अपनी कृत्तिवासीय रामायणके लंकाकाण्डमें एक रोचक कथाका इस प्रकार वर्णन किया है कि "उन्होंने कुछ समयके लिये सूर्यको अपने कक्षमें रख लिया था। श्रीलक्ष्मणके मूर्च्छित हो जानेपर सुषेणके संकेतपर श्रीरामकी आज्ञासे हनुमानजी औषध लाने गये। सूर्योदयके बाद औषधका प्रभाव निरर्थक हो जाता, इसलिये रातमें ही उसे लानेकी बात थी। रावणने भास्करसे रातमें ही उदित होनेकी प्रार्थना की। श्रीहनुमानने क्रुद्ध होकर सूर्यके रथका पीछा किया और कहा कि 'जबतक लक्ष्मणके शरीरमें प्राणका संचार न हो जाय, आप उदयाचलपर न जाइये।' सूर्यके न माननेपर उन्होंने उन्हें पकड़कर अपने कक्षमें रख लिया"—

सूर्य्येरे धरिया हनू करे कोलाकुलि।
सापटिया सूर्य्येरे पूरिल कक्षतलि॥

श्रीहनुमानके औषध लानेपर लक्ष्मणजीके शरीरमें प्राण आ गया। रातमें ही वे औषधका पर्वत यथास्थान रखकर वापस आ गये। कार्य पूरा करनेके बाद हनुमानजीने श्रीरामके सामने उपस्थित होकर हाथ जोड़े तो उनके कक्षतलमें सूर्य दीख पड़े। प्रभुके कहनेपर उन्होंने भगवान् भास्करको मुक्त कर दिया। पवननन्दनने सूर्यदेवताको प्रणाम किया—

सूर्य्येरे प्रणाम करे पवननन्दन।

भगवान् श्रीरामने अपने पूर्वज सूर्यको नमस्कार किया। वे उदयाचलपर गये, रातका अन्त हुआ और भुवन प्रकाशित हो गया—

आदिकर्ता आपन वंशेर दिवाकर।
शत शत प्रणाम करेन रघुबर॥
उदय पर्वते भानु करेन गमन।
पोहाइल विभावरी, प्रकाशे भुवन॥
(कृत्तिवासीय रा०, लंकाकाण्ड)

श्रीहनुमानजीके वक्ष—छातीकी महिमाका वर्णन शब्दोंमें नहीं किया जा सकता। यह शक्तिका वज्रपुञ्ज है। उनके वक्षकी पुष्टता और शक्तिमत्ताका वर्णन महर्षि वाल्मीकिने किया है। लंकाके युद्धमें निकुम्भने उनकी छातीपर परिघसे प्रहार किया। उनकी छाती बड़ी सुदृढ़ और विशाल थी। 'उससे टकराते ही उस परिघके सहसा सैकड़ों टुकड़े (होकर) बिखर गये, मानो आकाशमें सौ उल्काएँ एक साथ गिरी हों'—

स्थिरे तस्योरसि व्यूढे परिघः शतधा कृतः।
विकीर्यमाणः सहसा उल्काशतमिवाम्बरे॥
(वा० रा० ६।७७।१२)

'रंगनाथ-रामायण' के किष्किन्धाकाण्डके २३वें अध्यायमें श्रीहनुमानद्वारा वक्षसे मैनाकपर्वतको धक्का देनेका अद्भुत उल्लेख है कि 'समुद्रकी ओरसे मैनाकपर्वत उन्हें विश्राम देने आया। श्रीहनुमानने उसको दैत्य समझा; उन्होंने वज्रके समान कठोर वक्ष:स्थलसे उस पर्वतको धक्का दिया। तुरंत ही वह (पर्वत) बवंडरमें फँसे सूखे पत्तेकी तरह शक्तिहीन होकर चक्कर काटने लगा।'

लंकासे लौटनेपर श्रीरामकी राजसभामें सीताजीद्वारा प्रदत्त हारको दाँतोंसे छिन्न-भिन्न करनेके अवसरपर 'उन्होंने अपना वक्ष विदीर्ण कर दिया, जिसके भीतर लाखों अस्थिमय राम-नाम अङ्कित थे'—

सभा मध्ये देखाइल विदारिया वक्ष।
अस्थिमय रामनाम लेखा लक्ष लक्ष॥

(कृत्तिवासीय रा०, लंकाकाण्ड)

उनके वक्ष:स्थलका इन्द्रप्रदत्त नीलोत्पलमयी मालासे सुशोभित होनेका वर्णन उपलब्ध होता है—बाल्यावस्थामें श्रीहनुमानने उदयकालीन सूर्यको निगलना चाहा था। इन्द्रके वज्राघातसे उनके मृतप्राय हो जानेपर वायुदेवताने महाकालवनमें आकर शिव-लिङ्गकी आराधना की और उसके संस्पर्शसे हनुमानजी चेतमें आ गये। 'उस अवसरपर देवताओंसे घिरे इन्द्रने आकर उन्हें नीलोत्पलमयी माला प्रदान की और इस प्रकार कहा'—

एतस्मिन्नन्तरे शक्रः समायातः सुरैर्वृतः।
नीलोत्पलमयीं मालां सम्प्रगृह्येदमब्रवीत्॥

(स्कन्दपुराण, अवन्ती०, चतुरशीतिलिङ्गमा० ७९। ३१)

उपर्युक्त प्रसङ्गके संदर्भमें श्रीवाल्मीकिका कथन है कि 'तब सुन्दर मुखवाले सहस्रनेत्रधारी इन्द्रने शिशु हनुमानको बड़ी प्रसन्नतासे कमलकी माला पहना दी'—

ततः सहस्रनयनः प्रीतियुक्तः शुभाननः।
कुशेशयमयीं मालामुत्क्षेप्येदं वचोऽब्रवीत्॥

(वा० रा० ७। ३६। १०)

उनके वक्ष:स्थलपर मूँजका यज्ञोपवीत समलंकृत रहता है। उनके नागयज्ञोपवीत धारण करनेका भी वर्णन मिलता है। धर्मारण्यके निवासी ब्राह्मणोंने उनकी स्तुति की है—

नागयज्ञोपवीताय प्रबलाय नमोऽस्तु ते॥

(स्कन्दपु०, ब्रह्मखण्ड, धर्मारण्य-माहा० ३७। ७)

श्रीहनुमानजीका हृदय-कमल भगवान् श्रीरामकी दास्यभक्तिसे निरन्तर परिपूर्ण रहता है। वे उनके चरण-कमलको अपने हृदयमें सदा धारण करते हैं। श्रीरामके चरण ही उनके हृदयके अलंकार हैं। 'जिनके नामका निरन्तर जप करनेसे भक्तजन एक ही क्षणमें अज्ञानकृत बन्धनको काटकर करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान उनके परम कल्याणमय पदको तत्काल पा लेते हैं, उन्हीं श्रीरामके चरण-कमलको सदा अपने हृदयमें धारण करनेसे हनुमानजी सदा समस्त बन्धनोंसे मुक्त हैं। उनका ब्रह्मपाश या अन्य बन्धन क्या कर सकता है'—

यस्य नाम सततं जपन्ति ये-
ऽज्ञानकर्मकृतबन्धनं क्षणात्।
सद्य एव परिमुच्य तत्पदं
यान्ति कोटिरविभासुरं शिवम्॥
तस्यैव रामस्य पदाम्बुजं सदा
हृत्पद्ममध्ये सुनिधाय मारुतिः।
सदैव निर्मुक्तसमस्तबन्धनः
किं तस्य पाशैरितरैश्च बन्धनैः॥

(अध्यात्म० ५।३।९९-१००)

उनके हृदयमें धनुष-बाण धारण कर श्रीरामजी निवास करते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीहनुमानजीकी वन्दना की है—

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

(रामचरितमानस १। १७)

भगवान् श्रीरामको हृदयमें धारण करनेमें ही श्रीहनुमानने अपने जीवनको धन्य माना। प्रभुकी मुद्रिका लेकर प्रयाण करते समय उन्होंने कृपानिधान श्रीरामको अपने हृदयमें धारण कर लिया—

हनुमत जन्म सफल करि माना। चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना॥

(रामचरितमानस ४।२३।१२)

श्रीहनुमानजीने अपने हृदयमें श्रीरामके चरणको रखकर (ध्यानगत कर) द्रोणाचलसे औषध लानेके लिये प्रस्थान किया था—

रामचरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजनसुत बल भाषी॥

(रामचरितमानस ६।५६।१)

जब हनुमानजीने भगवती सीतासे कहा कि अशोक-वाटिकाके सुन्दर मीठे फल देखकर मुझे बड़ी भूख लग गयी है; मुझे वाटिकाके रक्षक राक्षसोंका तनिक भी भय नहीं है, तब सीताजीने फल खानेकी आज्ञा

तो दे दी, पर साथ-ही-साथ कहा कि तुम भगवान् राघवेन्द्रके चरणोंको हृदयमें धारण कर लो—

देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥

(रामचरितमानस ५। १७)

श्रीरामके चरण ही उनके हृदयके सर्वोत्तम भूषण हैं! उनके मनमें सदा श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजीका निवास है—

'राम लषन सीता मन बसिया।'

(श्रीहनुमानचालीसा)

श्रीहनुमानजी मनसे बड़े धार्मिक और धैर्यशाली कहे गये हैं—

'करुना-कलित मन-धारमिक धीर को।'

(श्रीहनुमानबाहुक १०)

श्रीहनुमानजीकी पीठकी सार्थकता यह है कि वह प्रभुके आसनके रूपमें प्रयुक्त हो सकी। किष्किन्धामें अपनी पीठपर श्रीराम-लक्ष्मणको आसनस्थ कर वे सुग्रीवके पास गये—

भिक्षुरूपं परित्यज्य वानरं रूपमास्थितः।
पृष्ठमारोप्य तौ वीरौ जगाम कपिकुञ्जरः॥

(वा० रा० ४।४।३४)

गोस्वामी तुलसीदासजीने सरस-कोमल भाषामें कहा है—

एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई॥

(रामचरितमानस ४।४।५)

परमभागवत महामति सनातन गोस्वामीकी उक्ति है कि 'श्रीहनुमानजी अपने प्रभुको ले जानेके लिये श्रेष्ठ वाहनस्वरूप हैं। उस समय उनकी पूँछ श्वेत छत्रका काम देती है, उनकी पीठ श्रीरामके बैठनेके लिये सुख-आसनस्वरूप होती है। वे सेतुबन्धके कार्यमें अग्रणी हैं'—

स्वप्रभोर्वाहकश्रेष्ठः श्वेतच्छत्रितपुच्छकः।
सुखासनमहापृष्ठः सेतुबन्धक्रियाग्रणीः॥

(बृहद्भागवतामृत १।४।४५)

श्रीहनुमानजीकी बाहु विशाल हैं। उन्हें 'आजानुबाहु' कहा गया है। उनकी भुजाएँ प्रचण्ड बलसे शोभित और शक्तिमयी हैं। श्रीहनुमानबाहुकके पहले और दूसरे छन्दमें उन्हें '**भुज बिसाल**' और '**भुजदंड चंड**' कहकर वर्णित किया गया है। वे द्विभुज हैं। उनका ध्यान है—

स्फटिकाभं स्वर्णकान्तिं द्विभुजं च कृताञ्जलिम्।
कुण्डलद्वयसंशोभि मुखाम्बुजमहं भजे॥

(श्रीतत्त्वनिधि, पृष्ठ ५९)

महर्षि वाल्मीकिने उनकी भुजाओंके वर्णनमें कहलाया है कि 'गरुड़के दोनों पंखोंमें जो बल है, वह तुम्हारी भुजाओंमें है।' जाम्बवान्‌के वचन हैं—

अरिष्टनेमिनः पुत्रो वैनतेयो महाबलः।
पक्षयोर्यद् बलं तस्य भुजवीर्यबलं तव।

(वा० रा० ४। ६६। ४, ६)

भगवती सीताजीकी खोजमें 'आकाशमार्गसे जाते हुए हनुमानजीकी दोनों भुजाएँ ऐसी दीख पड़ती थीं, मानो पर्वतके शिखरसे पाँच फनवाले दो सर्प निकले हुए हों—

तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ।
पर्वताग्राद् विनिष्क्रान्तौ पञ्चास्याविव पन्नगौ॥

(वा० रा० ५।१।५६)

महेन्द्रपर्वतपर चढ़कर हनुमानजीने अद्भुत रूप धारण किया था।······वे महान् सर्पराजके समान दीर्घ भुजावाले दीख पड़े—

महाफणीन्द्राभसुदीर्घबाहुर्वातात्मजोऽदृश्यत सर्वभूतैः॥

(अध्यात्मरा० ४। ९। २९)

महाराजा भोजने 'चम्पूरामायण' में उनकी बाहुको उरगतुल्य कहा है—

'माणिक्यगर्भवदनोरगतुल्यबाहुः॥'(सुन्दरकाण्ड ६९)

उनका भुजबल कभी घटता नहीं है। कविचक्रवर्ती कंबनने जाम्बवान्‌से श्रीहनुमानजीके भुजबलकी प्रशंसा करायी है। 'कंब-रामायण' के किष्किन्धाकाण्डके १६वें अध्यायके महेन्द्रशैलपटलमें जाम्बवान्‌ने कहा है कि 'तुम एक बार कूदो तो इस ब्रह्माण्डसे भी परे जा पहुँचोगे। तुम्हारा भुजबल कभी घटता नहीं। तुम्हारी महिमा मेरुसे भी ऊँची है।'

श्रीहनुमानने भगवान् श्रीरामके चरणदेशमें अपना भुजबल निवेदित करते हुए कहा था कि 'हे देव! क्या परकोटे, विहारस्थल और बड़े-बड़े द्वारोंवाली लंकाको ही यहाँ ले आऊँ या वहीं रावणकी सारी सेनाको नष्ट कर दूँ अथवा सहज ही उठाये हुए पर्वतोंके ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे समुद्रको पाट दूँ। आप आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ। मेरे इन भुजदण्डोंसे सब कुछ हो सकता है'—

किं प्राकारविहारतोरणवतीं लङ्कामिहैवानये
किं वा सैन्यसमुद्धृतं च सकलं तत्रैव सम्पादये।
हेलान्दोलितपर्वतोच्चशिखरैर्बध्नामि वारां निधिं
देवाज्ञापय किं करोमि सकलं दोर्दण्डसाध्यं मम॥

(हनुमन्नाटक ६। ६)

श्रीवाल्मीकि-रामायणमें हनुमानजीने श्रीजाम्बवान्से कहा कि 'मैं अपनी भुजाओंके वेगसे समुद्रको विक्षुब्धकर उसके जलसे पर्वत, नदी और जलाशयोंके साथ सम्पूर्ण जगत्को सम्प्लावित कर सकता हूँ।'

बाहुवेगप्रणुन्नेन सागरेणाहमुत्सहे।
सम्प्लावयितुं लोकं सपर्वतनदीह्रदम्॥

(वा० रा० ४। ६७। १२)

परमवैष्णव महाकवि सूरदासजीका कथन है कि अशोकवाटिकामें फल खानेके लिये आज्ञा देते समय सीताजीने भुजामें बल होनेका उन्हें वरदान दिया था—

चिरजीवौ सुकुमार पवनसुत......................।
बहुत भुजनि बल होइ तुम्हारैं ये अमृत फल खाहु॥

(सूरसागर, नवाँ स्कन्ध ५२७)

श्रीहनुमानजीकी भुजाओंकी महिमाका वर्णन करते हुए महाराजा रघुराजसिंहने कहा है कि 'उनमें अथाह बल है। वे युद्धप्रिय हैं और रणके समुद्रमें अवगाहन करती रहती हैं; वानरोंकी रक्षा करती हैं और श्रीरामकी विजयध्वजा हैं। वे अपने भक्तोंके अपराधको क्षमा कर देती हैं। अण्ड-कटाहको चकनाचूर कर देनेमें वे पूर्ण समर्थ हैं और उसकी रक्षा करती हैं। वे शत्रुओंको जलाकर नष्ट कर देती हैं'—

बल की अथाहैं बीर महि में मजाहैं करैं,
हठि युद्ध चाहैं रनसिंधु अवगाहे हैं।
कपिन पनाहैं सर्वदा है रामजीत की,
धुजा हैं करि राहैं बहु लंक गढ़ ढाहे हैं॥
दासन गुनाहैं नहिं गुनत, छमा हैं छई,
बीरता नसाहैं फोरैं अंडहू कटाहैं हैं।
रघुराज छाहैं करैं सत्रुन को दाहैं उत,
साहन उमाहैं भरी हनुमंत बाहैं हैं॥

(रामस्वयंवर, २३वाँ प्रबन्ध)

महाकवि रत्नाकरका कथन है कि 'जिनका पक्ष हनुमानजी लेते हैं, उनकी वीरताका उल्लङ्घन कौन कर सकता है। जिनकी धाक उनकी कृपासे जगत्‌में स्थापित हो जाती है, उन्हें कोई पराभूत नहीं कर सकता। उनके भक्तोंका सामना करनेकी इच्छा करनेवाले मूढ़ हैं, उनका मद चूर-चूर हो जाता है। जिन्हें हनुमानजी अपनी बाँहोंमें शरण देते हैं अथवा उनकी बाँहें जिनकी रक्षामें तत्पर हैं, उन शरणागतोंको टेढ़ी नजरसे देखनेकी किसीमें भी शक्ति नहीं है'—

संतत हिमायत-हमेव मैं छक्यौ सो रहै,
ता की छाक छनक उछाकि को सकत है।
कहै 'रतनाकर' जमी जो जग ताकी धाक,
ताहि फल-फंदनि फलाकि को सकत है॥
ताके सामना की करि कामना कुटिल कूर
मूढ मद चूर ह्वै न थाकि को सकत है।
बाहँ दै बसावै जाहि बाँकौ हनुमान ताहि
तनक तेररि तीखैं ताकि को सकत है॥

(हनुमन्महिमा)

श्रीहनुमानकी बाँहें सदा प्रभु-सेवामें तत्पर रहती हैं। वे भक्तोंकी रक्षा करती हैं और संतोंका संरक्षण करती हैं।

श्रीहनुमानजीके हाथ अपने स्वामी और उनके परिकर, भक्त तथा शरणागतोंकी सेवा और रक्षामें सदा तत्पर रहते हैं और राक्षसों तथा आततायियोंके विनाशमें वे सदा आगे रहते हैं। श्रीहनुमानजीके हाथ कङ्कणसे अलंकृत रहते हैं। 'रंगनाथ- रामायण' के किष्किन्धाकाण्डके दूसरे अध्यायमें वर्णन है कि "अञ्जनी-सुत हनुमान वटुका वेष धारणकर पम्पा-सरोवरके निकट आये। श्रीरामको देनेयोग्य एक फल हाथमें लेकर वे उनके निकट जाने लगे। तब श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा कि सुनहला रंग, मूँजकी सुन्दर करधनी, रत्नकुण्डल-विलसित कर्ण, श्रेष्ठ हार, यज्ञोपवीत, कौपीन, हस्तकङ्कण धारण किये किसी मनुष्यने क्या कपिका रूप धारण किया है।" उनके एक ध्यानमें वामहस्तको गदायुक्त तथा दक्षिणहस्तको पाश-कमण्डलुयुक्त ऊपर उठा हुआ कहा गया है—

वामहस्तगदायुक्तं पाशहस्तकमण्डलुम्।
उद्यद्दक्षिणदोर्दण्डं हनुमन्तं विचिन्तयेत्॥

(मन्त्रमहार्णव, पृष्ठ १८५)

जब श्रीहनुमान भगवतीसीताका पता लगाकर आये तो उनके हाथोंमें सीताजीका चूड़ामणि-आभूषण था। उसे देखकर भगवान् श्रीरामने कहा—'मेरे प्राण हृदयरूपी द्वारसे परलोक जाना चाहते हैं; मुझे सीताजीका कुशल-समाचार सुनाओ। श्रीहनुमानजीने कहा कि 'हे जगत्‌को

आनन्द देनेवाले श्रीराम! आपका कल्याण हो। आपके प्राणोंके जानेका द्वार बंद करनेकी अर्गला—चूड़ामणि मेरे हाथमें है'—

हा राम जगदानन्द किमिदं शिवमस्तु ते।
तव प्राणगतिद्वारस्यार्गलेयं करे मम॥

(हनुमन्नाटक ६। ३८)

वनवासमें श्रीरामके साथ आहार और निद्राके अभावके कारण अरुण नेत्रवाले लक्ष्मण श्रीहनुमानको देखने लगे। फिर उन्होंने हाथमें चूड़ामणि लिये हुए भरतजीके बड़े भाई श्रीरामके दोनों चरण-कमलोंमें प्रणाम किया—

निद्रात्ययादरुणितेन समीरपुत्रस्सौमित्रिनेत्रयुगलेन निपीयमानः।
चूडामणिं करतले कलयन् ववन्दे पादारविन्दयुगलं भरताग्रजस्य॥

(चम्पूरामायण, सुन्दर० १२२)

श्रीहनुमानजीके हाथोंकी सार्थकता है—प्रभुके चरणोंकी सेवामें। यह उनका परम सौभाग्य कहा गया है। सुबेल शैलके रम्य शिखरपर विश्राम करते हुए प्रभुके चरणोंको अपने हाथोंसे अङ्गद और हनुमानजी दबा रहे थे—

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥

(रामचरितमानस ६। १०। ३½)

लंकासे लौटनेपर श्रीरामके तिलकोत्सवमें श्रीहनुमान राजसभामें उनकी चरण-सेवामें तत्पर चित्रित किये गये हैं। महाराजा रघुराजसिंहके शब्दोंमें इसका बड़ा भव्य वर्णन है—

प्रभु पद पंकज कंज कर दाबत पवनकुमार।
सिंहासन आगैं लसत, राम प्रेम आगार॥

[भक्तमाला (रामरसिकावली), त्रेतायुगखण्ड, प्र० अ०]

इनके हाथमें श्रीरामकी ध्वजा विराजमान रहती है। लंकासे लौटनेपर प्रभु अयोध्यानगरका पर्यटन करते हैं, उस समय हनुमानजीके हाथमें श्रीरामके रथकी ध्वजा है—

भे सवार स्यंदन रघुनंदन। फहरि रहे पताक बहु बृंदन॥
बाजिन बाग भरत कर लीनो। रिपुहन छत्र लियो मुद भीनो॥
लखन चमर चालत सुख छाई। द्वितिय चमर लिय निसिचरराई॥
रथध्वज लिये खड़ो हनुमाना। कियो राम इमि अवध पयाना॥

(रामस्वयंवर, २३वाँ प्रबन्ध)

श्रीरामके राज्याभिषेकमें हनुमानजीके हाथमें छड़ी समलंकृत है। महाराजा रघुराजसिंहने उस समयकी बड़ी रमणीय झाँकी प्रस्तुत की है—

ठाढ़ो दिसि दाहिने लखन लीन्हें चारु चौंर,
दूजों चौंर चालै बाम ठाढ़ो सत्रुसाल है।
छत्र छपानाथ सो बिराजित भरत कर,
आतपत्र लीन्हे खड़ो कीस-कुलपाल है॥
सिंहधुज हेमदंड फहरैं पताक तुंग,
ठाढ़ो लै निसाचरेस विक्रम बिसाल है।
रघुराज राजराज-बदन बिलोकै खड़ो,
लीन्हें छरी जोरे कर आगे बायुलाल है।

(रामस्वयंवर, २३वाँ प्रबन्ध)

उनके हाथ वज्र और ध्वजासे विभूषित रहते हैं। वे राक्षसोंके संहार और संतोंके संरक्षणमें लगे रहते हैं—

'हाथ बज्र औ ध्वजा बिराजै।' (हनुमानचालीसा)

श्रीहनुमानजी हाथमें पर्वत लेकर कुम्भकर्णपर भीषण आक्रमण करते हुए चित्रित किये गये हैं। 'उनके हाथमें पर्वत ऐसा शोभित है—मानो सुमेरुकी चोटीपर मैनाकपर्वत संस्थित हो'—

'मैनाको मेरुशृङ्गस्थित इव हनुमत्पाणिपद्मे नगेन्द्रः।'

(हनुमन्नाटक ११। ३६)

उनके हाथमें स्वयं श्रीराम प्रसन्नतापूर्वक बिक गये—उनके अपने हो गये। ''हनुमानजीका द्रोणाचलपर जाना सुनकर रावणने राक्षस कालनेमिको विघ्न डालनेके लिये भेजा। उसने कपट-मुनिका वेष बनाया और वह मारा गया। श्रीहनुमानजीने अनेक योजन-विस्तृत पर्वतको सहसा उखाड़ लिया, रक्षकोंको मारकर बड़े-बड़े वीरोंका नाश कर दिया। 'देखो, हनुमानजी चलकर पर्वत और भरतजीका कुशल-समाचार लाये हैं'—ऐसा कहकर कृपालु रघुनाथजी उनके बल, साहस और वेगकी सराहना करने लगे। मानो वे कपिनाथ (हनुमानजी)-के हाथ बिक गये। श्रीरामने उनका उपकार माना''—

चल्यो हनुमानु, सुनि जातुधानु कालनेमि
पठयो, सो मुनि भयो, पायो फलु छलि कै।
सहसा उखारो है पहारु बहु जोजन को,
रखवारे मारे भारे भूरि भट दलि कै॥
बेगु, बलु, साहसु, सराहत कृपाल रामु,
भरत की कुसल, अचलु ल्यायो चलि कै।
हाथ हरिनाथ के बिकाने रघुनाथ जन,
सीलसिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै॥

(कवितावली, लंका० ५५)

संकटग्रस्त भक्तोंकी रक्षा करना हनुमानजीके हाथोंकी विशेषता है। बाहु-पीड़ासे पीड़ित गोस्वामी तुलसीदासजीने उनसे प्रार्थना की है कि 'आपके बलने

युद्धमें वानरोंको रावणसे जिताया, आपके ही नष्ट करनेसे राक्षस बेघर-बार हो गये। आपके ही बलसे राजा श्रीरामने देवताओंका सब काम पूरा किया और आपने ही रघुनाथजीके समाजका सम्पूर्ण साज सजाया। आपके गुणोंका गान सुनकर देवता रोमाञ्चित होते हैं और ब्रह्मा-विष्णु-महेशकी आँखें सजल हो जाती हैं। हे वानरोंके स्वामी! तुलसीके मस्तकपर आप अपना हाथ फेरिये। आप-जैसे अपनी मर्यादाकी लाज रखनेवालोंके दास कभी दुःखी नहीं देखे गये'—

तेरे बल बानर जिताये रन रावन सों,
तेरे घाले जातुधान भये घर-घर के।
तेरे बल रामराज किये सब सुर-काज,
सकल समाज साज साजे रघुबर के॥
तेरो गुन-गान सुनि गीरबान पुलकत,
सजल बिलोचन बिरंचि-हरि-हर के।
तुलसीके माथे पर हाथ फेरो कीसनाथ,
देखिये न दास दुखी तोसे कनिगर के॥

(हनुमानबाहुक ३३)

श्रीहनुमानजीके हाथ भक्तोंको अभय-दान प्रदान करते हैं। श्रीरामकी दास्य-भक्तिके वे मूलाधार हैं, सेवा-यन्त्र हैं।

श्रीराम-भक्त कविवर रसिकबिहारीने श्रीहनुमानजीके पंजोंकी महिमाका वर्णन किया है कि 'वे रात-दिन कृपाका दान देते रहते हैं, बड़े बलवाले हैं तथा दुष्टोंका नाश करते हैं; भक्तोंके भयको मिटाते और उनके क्लेशोंको हर लेते हैं, समस्त विघ्नोंका निवारण करते हैं, वैरियोंके बलका अन्त कर देते हैं, खलोंके समूहका संहार करते तथा दीन आश्रित जनोंका मन प्रसन्न कर देते हैं'—

दाता हैं अतुल, जनत्राता बरबंड बहु,
दुष्टन के घाता हैं, प्रचंड सो घनेरे हैं।
रसिकबिहारी के कलेस के निपाता सदा,
भक्त-भय-हाता चहूँ ये हनिरवेरे हैं।
केसरीकिसोर रन रोर बर जोर बीर,
पकरि पछारें विघ्न जेते सब मेरे हैं।
बैरी-बल-भंजा, उद्ध खल-दल गंजा, धीर,
दीन-मनरंजा, ऐसे पंजा जुग तेरे हैं॥

(रामरसायन ५। १०। ७)

शत्रुओं (राक्षसों और निशाचरों)-के विनाशमें उनकी मुष्टिका (घूसे अथवा मुक्के)-की शक्ति अतुल है। भगवती सीताकी खोजमें लंकामें प्रवेश करते समय विघ्न डालनेवाली लंकिनी नामक राक्षसीपर उन्होंने मुष्टिकाका प्रहार किया, वह मुखसे रक्त उगलती हुई धरतीपर लुढ़क गयी। उसने उठकर निवेदन किया कि "मैंने आपका (रामदूतका) दर्शन कर लिया, यह मेरा पुण्य है। ब्रह्माने कहा था कि 'जब तुम कपिके प्रहारसे विकल होओगी, तब राक्षसोंका संहार हो जायगा'—

मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥

(रामचरितमानस ५। ३। २)

लंकाके रणस्थलमें श्रीहनुमानजीने मुक्केके प्रहारसे कुम्भकर्ण-जैसे महान् रणधीरको व्याकुल कर दिया—वह धराशायी हो गया था—

तब मारुतसुत मुठिका हन्यो।
पर्‌यो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥

(रामचरितमानस ६। ६४। ७$\frac{1}{2}$)

समरभूमिमें रावणने उनके मुक्केके प्रहारसे प्रभावित होकर उनके बलकी सराहना की—

मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥
मुरुछा गै बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥

(रामचरितमानस ६। ८३। १-१$\frac{1}{2}$)

गोस्वामी तुलसीदासजीने कवितावलीमें वर्णन किया है कि 'जो रावण शिवजीके पर्वत (कैलास)-को बीसों भुजाओंसे उठाकर स्वच्छन्दतापूर्वक खेलनेवाला था, जिसके भारी साहसको सुनकर लोकपाल, दिक्पाल, दैत्य और देवगण— सभी डर गये थे; जो बड़ा यशस्वी और बलशाली वीर था तथा जिसकी कीर्ति-कथा आज भी जगत्‌में गायी जाती है, उसी रावणको हनुमानजीने मुक्केसे मारा। वह उसी तरह पृथ्वीपर गिर गया, जिस तरह वज्रके प्रहारसे विशाल पर्वत गिर जाता है'—

जो दससीसु महीधर ईस को बीस भुजा खुलि खेलनिहारो।
लोकप, दिग्गज, दानव, देव, सबै सहमे सुनि साहसु भारो॥
वीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो।
सो हनुमान हन्यो मुठिकाँ गिरि गो गिरिराजु ज्यों गाज को मारो॥

(लंका० ३८)

श्रीहनुमानने करतल-प्रहार—थप्पड़से जम्बुमाली राक्षसके रथको तोड़ डाला—

तस्य तं रथमास्थाय हनूमान् मारुतात्मजः।
प्रममाथ तलेनाशु सह तेनैव रक्षसा॥

(वा० रा० ६। ४३। २२)

वे अपनी अञ्जलिसे श्रीरामकी सेवा करते हैं। कभी-कभी तो वे उनका गुण-गान करते हुए उनपर सुन्दर श्वेत चँवर डुलाते हैं, कभी उनके सम्मुख उपस्थित होकर हाथ जोड़कर स्वयंनिर्मित चित्र-विचित्र श्लोकोंसे उनकी स्तुति करते हैं—

कदापि शुभ्रैर्वरचामरैः प्रभुं गायन् गुणान् वीजयति स्थितोऽग्रतः।
कदाप्युपश्लोकयति स्वनिर्मितैश्चित्रैः स्तवैः श्रीहनुमान् कृताञ्जलिः॥

(बृहद्भागवतामृत २। ४। २६०)

श्रीहनुमानजीके शरीरका मध्यभाग और कटिप्रदेश पतला है—

'तनुमध्यकटीतटम्॥' (महा०, वन० १४६। ७७)

उनके कटिप्रान्तके नीचेका भाग लाल कहा गया है। वे देखनेमें ऐसे लगते थे, मानो फटे हुए गेरूसे युक्त विशाल पर्वत हो—

स्फिग्देशेनातिताम्रेण रराज स महाकपिः।
महता दारितेनेव गिरिगैरिकधातुना॥

(वा० रा० ५। १। ६३)

वे कटिप्रदेशमें कौपीन धारण करते हैं। उनकी स्तुति है—

कौपीनवाससे तुभ्यं रामभक्तिरताय च।

(नारदपु०, पूर्व०, तृतीय० ७८। ४५)

'रामरहस्योपनिषद्' में स्वयं हनुमानजीने अपने ध्यानकी विधि इस प्रकार बतायी है—

द्विभुजं स्वर्णवर्णाभं रामसेवापरायणम्।
मौञ्जीकौपीनसहितं मां ध्यायेद् रामसेवकम्॥

(रामरहस्योपनिषद् ३। १०६)

आशय यह है कि 'दो भुजाओंसे युक्त, स्वर्ण-वर्णकी शोभावाले, श्रीरामसेवापरायण, कटिमें मूँजकी करधनी और कौपीन—लँगोटी धारण करनेवाले मुझ रामसेवकका ध्यान करना चाहिये।' 'लाङ्गूलशत्रुंजय हनुमत्स्तोत्र' में उनके इस स्वरूपका वर्णन है—

कौपीनं कटिसूत्रमौञ्ज्यजिनयुग्देहं विदेहात्मजा-
प्राणाधीशपदारविन्दनिरतस्वान्तं कृतान्तं द्विषाम्।

(मन्त्रमहार्णव, पूर्वखण्ड, तरंग ९वाँ)

श्रीहनुमल्लीलाका विशेष उपकरण हनुमानजीकी लाङ्गूल—पूँछ है। उनकी पूँछने अग्निसे प्रदीप्त किये जानेपर लंका जला दी, राक्षसोंका मान-मर्दन किया तथा श्रीलक्ष्मणजीकी प्राणरक्षाके लिये उन्होंने उसके अग्रभागपर द्रोणाचलको रखकर एक लंबी दूरी पारकर लंकामें प्रवेश किया। उन्हें 'दीर्घलाङ्गूलधारी' कहा गया है—

ज्वलत्काञ्चनवर्णाय दीर्घलाङ्गूलधारिणे।
सौमित्रिजयदात्रे च रामदूताय ते नमः॥

(नारद०, पूर्व०, तृतीय० ७८। ३७)

महर्षि वाल्मीकिने श्रीहनुमानकी पूँछका वर्णन करते हुए लिखा है—आकाशमें तैरते हुए हनुमानकी उठी हुई पूँछ इन्द्रकी ऊँची ध्वजा-सी जान पड़ती थी—

लाङ्गूलं च समाविद्धं प्लवमानस्य शोभते।
अम्बरे वायुपुत्रस्य शक्रध्वज इवोच्छ्रितम्॥

(वा० रा० ५। १। ६१)

उनकी पूँछके लहरानेकी शोभाका महाराजा रघुराजसिंहने इस प्रकार वर्णन किया है कि 'वह ऐसी थी, मानो रावणकी साक्षात् मृत्यु व्योममें मँडरा रही हो, या महाकालकी लंबी जिह्वा हो अथवा आकाशमें शेषनाग विराजमान हों अथवा यमराजने कालपाश फैलाया हो, या शिवके तीसरे नेत्रकी अग्नि-शिखा हो या भगवान् विष्णुके शार्ङ्गधनुषकी द्युति हो। यह बड़ी मोददायिनी है'—

कैधौं दसकंधर की मीचु मँडराती ब्योम
कैधौं महाकाल कोपि रसना लमाई है।
कैधौं अहिराज आज राजत अकास ही मैं,
कैधौं यमराज कालपास पसराई है॥
कैधौं या त्रिनेत्र की त्रिनेत्र-बह्नि-सिखा फैली,
कैधौं हरि सारंग की दुति दरसाई है।
कैधौं रघुराज मोददाई छबि छाई मन,
भाई बायुलाल जू लँगूर लहराई है॥

(रामस्वयंवर)

लंकामें उनकी पूँछमें अग्नि प्रज्वलित की गयी। इस सम्बन्धमें अनेक प्रकारके विचित्र-विचित्र भावपूर्ण वर्णन उपलब्ध होते हैं। अग्नि देवता पवनके मित्र हैं तथा पवनपुत्रकी रक्षाके लिये भगवती सीताने अग्निसे प्रार्थना की थी। ऋग्वेदमें मन्त्र है—

रक्षोहणं वाजिन मा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म।
शिशानो अग्नि : क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्।

(१०। ८७। १)

उपर्युक्त मन्त्र अथर्ववेद (८। ३। १) और तैत्तिरीय संहिता (१। २। १४। ६)-में भी प्राप्त होता है। इसका भाष्य महामति नीलकण्ठने 'मन्त्ररामायण' (१०४)-में

इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

'एवं बद्धस्य हनुमतः पुच्छे लापितमग्निं सीता प्रार्थयते—रक्षोहणमिति! रक्षोहणं रक्षसां अक्षादीनां हन्तारं वाजिनं हरिं वानरं दृष्ट्वा आजिघर्मि क्षरामि शोकेनाश्रूणि निवर्तयामीत्यर्थः अतो मित्रं हनुमत्पितुर्वायोः सखायं प्रथिष्ठं प्रथमानं अग्निं शर्म हनूमते कल्याणं उपयामि उपेत्य याचामि।''''शिशानो दीप्यमानोऽग्निः क्रतुभिः यज्ञैः पूर्वं अस्माभिः समिद्धः संदीपितः स इदानीं नोऽस्मत्सम्बन्धिनं जनं दिवा नक्तं च सदिषः हिंसातः पातु।'

भाष्यका भावार्थ यह है कि '(राक्षसोंद्वारा) बद्ध हनुमानजीकी पूँछमें प्रज्वलित अग्निसे भगवती सीता प्रार्थना करती हैं कि अक्षादि राक्षसोंको मारनेवाले हनुमानजीको देखकर मेरे नेत्रोंसे व्यथाके आँसू झर रहे हैं। आप उनके पिता वायुदेवताके मित्र हैं; मैं आपसे उनके कल्याणकी याचना करती हूँ। हे अग्नि! हमने पहले यज्ञोंमें (अनेक बार) आपको संदीपित किया है; आप हमारे भक्त हनुमानकी राक्षसोंके प्रहारसे रात-दिन रक्षा कीजिये।'

'हनुमन्नाटक' में इस प्रार्थनाका बड़ा भव्य रूप अङ्कित है। हनुमानजीने रावणसे कहा कि 'तुम मुझे भस्म कर दो', तब उसने उनकी पूँछमें आग लगवा दी। उस समय सीताजीने प्रार्थना की कि ''हे अग्निदेव! यदि आर्यपुत्र (राघवेन्द्र) ब्राह्मणोंद्वारा कठोर वचन कहे जानेपर भी रुष्ट नहीं होते हैं, यदि आप घृतके होमसे तृप्त होते हैं तथा यदि श्रीरामजीमें मेरी भक्ति है तो राक्षसोंके कुतूहलस्वरूप तेलसे भीगे पुराने वस्त्र और सनसे लिपटी तथा जलती पूँछके द्वारा हनुमानजी संतप्त न हों।' इस प्रकारकी प्रार्थनासे अग्नि देवता शीतल हो गये।''

लाङ्गूले चैलतैलप्लुतबहलशणैर्वेष्टिते दीप्यमानो
रक्षोभिर्वीक्षितोऽग्निर्द्विजपरुषगिरा राघवो यद्यरुष्टः।
तुष्टो यद्याज्यहोमैस्त्वमपि रघुपतेर्यद्यहं भक्तियुक्ता
संतप्तः प्रार्थितो मा तदिह हनुमतः सीतया शीतलोऽभूत्॥

(हनुमन्नाटक ६। २४)

महाराजा भोजकी विशेषोक्ति है कि सीताजीकी प्रार्थनासे पूँछके अग्रभागमें अग्नि मंणिदीपके समान समलंकृत हो उठी और शीतल हो गयी—

घोरस्य राघवकलत्रतपोमयाग्रे-
र्माभूवमिन्धनमहं क्षणमित्यवेत्य।
शैत्यं वितत्य दहनः पवमानसूनो-
र्वालाग्रसीम्नि मणिदीप इवावतस्थे॥

(चम्पूरामायण, सुन्दर० १००)

गोस्वामी तुलसीदासजीने पूँछका इस रूपमें वर्णन किया है—'भयंकर ज्वाल-मालाके सहित उनकी विशाल पूँछ ऐसी जान पड़ती थी, मानो लंकाको निगलनेके लिये कालने जीभ फैलायी है अथवा मानो आकाशमार्गमें अनेक धूमकेतु भरे हैं या वीर-रसरूपी वीरने मानो तलवार निकाल ली है। यह इन्द्रधनुष है अथवा बिजलीका समूह है या सुमेरु पर्वतसे अग्निकी भारी नदी बह चली है। उसे देखकर राक्षस और राक्षसियाँ—सभी व्याकुल हो रहे हैं और कहते हैं कि यह वनको तो उजाड़ चुका, अब नगर जलायेगा।'

बालधी बिसाल बिकराल, ज्वाल-जाल मानो
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कै धौं ब्योम-बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सो उघारी है॥
'तुलसी' सुरेस-चापु, कै धौं दामिनी-कलापु
कै धौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखें जातुधान-जातुधानीं अकुलानी कहैं,
काननु उजार्‌यो, अब नगरु प्रजारिहै॥

(कवितावली, सुन्दर० ५)

महाकवि सेनापतिने हनुमानजीकी जलती पूँछको रावणके दलके नाशके लिये उदित धूमकेतु कहा है। उनकी उत्प्रेक्षा है कि तेल और घीसे सिक्त पटसमूहसे लिपटी उनकी पूँछ कहीं सीताजीका साक्षात् संताप तो नहीं है अथवा वह कहीं उत्पातकी थैली (पिटारी) या प्रलयकालीन अनलका पलीता (तोपमें आग लगानेवाली बत्ती) तो नहीं है—

रह्यो तेल पी ज्यौं घिय हू कौं पूर भीज्यौ, ऐसौ
लपट्यो समूह पट कोटिक पहल कौं।
बेग सौं भ्रमत नभ देखियै बरत पूँछ,
देखियै न राति जैबौ महल-महल कौं॥
सेनापति बरनि बखानै मानौं धूमकेतु
उदयौ बिनासी दसकंधर के दल कौं।
सीता को संताप, कि खलीता उतपात कौं, कि
काल को पलीता, प्रलै-काल के अनल कौं॥

(कवित्तरत्नाकर ४। ३८)

भगवती सीताजीकी प्रार्थनासे हनुमानजीकी पूँछ

नहीं जली। 'वायुका प्रिय मित्र होनेके कारण तथा सीताजीकी प्रार्थनासे अग्निने हनुमानजीकी पूँछ नहीं जलायी। उनके लिये अग्निदेव अत्यन्त शीतल हो गये। जिनके नाम-स्मरणसे मनुष्य सब पापोंसे छूटकर तुरंत ही तापत्रयरूप अग्निको पार कर जाते हैं, उन्हीं श्रीरामके विशिष्ट दूतको प्राकृत अग्निके द्वारा किस तरह ताप पहुँचाया जा सकता था'—

वायोः प्रियसखित्वाच्च सीतया प्रार्थितोऽनलः।
न ददाह हरेः पुच्छं बभूवात्यन्तशीतलः॥
यन्नामसंस्मरणधूतसमस्तपापस्तापत्रयानलमपीह तरन्ति सद्यः।
तस्यैव किं रघुवरस्य विशिष्टदूतः संतप्यते कथमसौ प्रकृतानलेन॥

(अध्यात्म० ५। ४। ४६-४७)

हनुमानजीने द्रोणाचलको उखाड़कर अपनी लंबी पूँछपर रख लिया तथा साठ लाख योजनकी दूरी पारकर वे लंका पहुँच गये और श्रीलक्ष्मणजीके प्राणोंकी रक्षा की। 'हनुमन्नाटक' के १३वें अङ्कके बीसवें श्लोकके इस अंश '**लक्षाणां षष्टिरास्ते द्रुहिणगिरिरितो योजनानाम्**'-से लंकासे द्रोणाचलकी साठ लाख योजनकी दूरीका पता चलता है। ''एक पुङ्खमात्र ही जिसका प्रवेश शेष रह गया था, ऐसे भरतके बाणद्वारा बिंधे हुए ललाटपट्टवाले 'हा राम! हा लक्ष्मण! मैं कहाँ हूँ।'—कहते हुए बालोंवाली पूँछके अग्रभागमें द्रोणाचलको धारण किये हुए हनुमानजी पृथ्वीपर अचेत होकर गिर पड़े''—

पुङ्खावशेषभरतेषु ललाटपट्टे
हा राम लक्ष्मण कुतोऽहमिति ब्रुवाणः।
सम्मूर्च्छितो भुवि पपात गिरिं दधानो
लाङ्गूलशेखररुहेण सकेसरेण॥

(हनुमन्नाटक १३। २५)

पद्मपुराणमें वर्णन है कि 'श्रीरामके अश्वमेध यज्ञके अश्वकी रक्षामें नियुक्त श्रीहनुमान राजा सुबाहुके रथको अपनी लंबी पूँछमें लपेटकर उसे वेगपूर्वक खींच ले चले'—

पुच्छेनावेष्ट्य तस्योच्चै रथं निन्ये महाबलः॥

(पातालखण्ड २८। ३४)

महाभारतमें वर्णन है कि जब वे गन्धमादनपर्वतपर कदलीवनमें विश्राम कर रहे थे, तब उन्होंने भीमको अपना विशाल रूप दिखाया था। उस समय उनकी पूँछ ऊपरकी ओर उठकर ध्वजाके समान शोभित हो रही थी—

लाङ्गूलेनोर्ध्वगतिना ध्वजेनेव विराजितम्॥

(वनपर्व १४६। ७८)

उपर्युक्त प्रसङ्गमें ही वर्णन है कि 'भीमने उनकी पूँछको उठानेका प्रयत्न तो किया, पर उसे वे हिला-डुलातक न सके। तब उन्होंने हनुमानजीसे क्षमा माँगी—

न चाशकच्चालयितुं भीमः पुच्छं महाकपेः॥
उच्चिक्षेप पुनर्दोर्भ्यामिन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम्।
नोद्धर्तुमशकद् भीमो दोर्भ्यामपि महाबलः॥

(महा०, वन० १४७। १९-२०)

बाहुकी पीड़ासे संतप्त गोस्वामी तुलसीदासजीने हनुमानजीसे उनकी बाँहपर अपनी लंबी पूँछ फेरनेकी प्रार्थना की। उन्होंने निवेदन किया कि 'मैं आपके टुकड़ोंसे पला हूँ। मुझसे चूक पड़नेपर भी आप मौन न हो जाइये। मैं कुमार्गी दो कौड़ीका हूँ, पर आप अपनी ओर देखिये। हे भोलानाथ! (रुद्ररूप हनुमान!) अपने भोलेपनसे ही आप थोड़े-से दोषसे रुष्ट हो जाते हैं; आप संतुष्ट होकर मेरा पालन कर मुझे बसाइये; अपना सेवक समझकर मेरी दुर्दशा न कीजिये। आप जल हैं तो मैं मछली हूँ, आप माता हैं तो मैं छोटा बालक हूँ। देरी न कीजिये, मुझे आपका ही सहारा है। बच्चेको व्याकुल जानकर प्रेमकी पहचान कर मेरी रक्षा कीजिये। मेरी बाँहपर अपनी लंबी पूँछ फेरिये, जिससे मेरा कष्ट मिट जाय'—

पालो तेरे टूक को, परेहू चूक मूकिये न,
कूर कौड़ी दू को हौं, आपनी ओर हेरिये।
भोरानाथ भोरे ही सरोष होत थोरे दोष,
पोषि तोषि थापि आपनो न अवडेरिये॥
अंबु तू हौं अंबुचर, अंब तू हौं डिंभ, सो न,
बूझिये बिलंब, अवलंब मेरे तेरिये।
बालक बिकल जानि पाहि प्रेम पहिचानि,
तुलसी की बाँह पर लामी लूम फेरिये॥

(हनुमानबाहुक ३४)

श्रीहनुमानजीकी पूँछ उनके पराक्रमकी प्रतीक है, प्रभु श्रीरामके कार्यकी सम्पादिका है एवं उनके भक्तोंके लिये प्राणदायिका है।

श्रीहनुमानजीके ऊरु तथा जङ्घामें असाधारण बलका उल्लेख मिलता है। स्वयं हनुमानजीकी स्वीकृति है कि 'वरुणका निवासस्थान यह महासागर मेरी जाँघों और पिंडलियोंके वेगसे विक्षुब्ध हो उठेगा तथा बड़े-बड़े

ग्राह ऊपर आ जायँगे।'

ममोरुजङ्घावेगेन भविष्यति समुत्थितः।
समुत्थितमहाग्राहः समुद्रो वरुणालयः॥

(वा० रा० ४। ६७। १३)

महर्षि वाल्मीकिकी उक्ति है कि 'उनके ऊरुके महान् वेगसे ऊपरको उठे हुए वृक्ष एक मुहूर्ततक उनके पीछे-पीछे इस तरह दौड़ते रहे, जैसे दूरदेशके पथपर जानेवाले अपने बन्धुको उसके भाई-बन्धु पहुँचाने जाते हों'—

ऊरुवेगोत्थिता वृक्षा मुहूर्तं कपिमन्वयुः।
प्रस्थितं दीर्घमध्वानं स्वबन्धुमिव बान्धवाः॥

(वा० रा० ५। १। ४७)

रावणने ब्रह्माद्वारा प्रदत्त प्रचण्ड शक्तिके प्रयोगसे रणस्थलमें लक्ष्मणजीको मूर्च्छित कर दिया। उसने उनको उठाना चाहा, पर उठा न सका। हनुमानजीको वहाँ देखकर उसने मुष्टि-प्रहार किया। उन्होंने उस प्रहारको सह लिया और अपने शरीरका भार अपने जानुपर प्रस्थापित कर अपने-आपको भूमिपर गिरनेसे बचा लिया। उनके जानुमें अपार बल था—

'जानु टेकि कपि भूमि न गिरा।' (मानस ६। ८३। १)

श्रीहनुमानके चरण-कमल संतों और भगवद्भक्तोंके प्राणाधार हैं, जिनकी महिमा अनन्त, असीम और अवर्णनीय है। बड़े-बड़े महात्माओं, ऋषियों तथा मुनियों और सत्कवियोंने उनके चरणकी महिमाका वर्णन कर संतुष्टि प्राप्त की है। परम भागवतरत्न संत-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीकी उक्ति है कि 'हे हनुमानजी! मैं मनसा-वाचा-कर्मणा आपके चरणोंके शरणागत हूँ'—

'मानस बचन काय सरन तिहारे पाँय.........।'

(हनुमानबाहुक ४३)

हनुमन्नाटकके रचयिताका कथन है कि हनुमानजीने अपने चरणोंकी शक्तिका वर्णन इस प्रकार किया—'कूर्म जिसकी जड़के समान है, समुद्र जिसके थालेके समान है, दिशाएँ लताओंके समान हैं, मेघमण्डल जिसके पत्ते हैं, सूर्य, चन्द्रमा और तारागण जिसके फल-फूल हैं, हे नाथ! ऐसा आकाशरूपी वृक्ष मेरे चरण उठाने और रखनेके मध्यमें अवस्थित है। पवनकुमारके उपर्युक्त वचनोंसे श्रीरामजीने उन्हें सीताजीकी खोजकी आज्ञा दी। ऐसे श्रीराम हमें लक्ष्मी प्रदान करें।'

कूर्मो मूलवदालबालवदपां नाथो लतावद्दिशो
मेघाः पल्लववत् प्रसूनफलवन्नक्षत्रसूर्येन्दवः।
स्वामिन् ब्योमतरुर्मम क्रमतले श्रुत्वेति गां मारुतेः
सीतान्वेषणमादिशन् दिशतु वो रामः सहर्षः श्रियम्॥

(६। ३)

महर्षि वाल्मीकिने श्रीहनुमानके चरणकी असाधारणताका निरूपण करते हुए कहा है कि 'उन महाकायके दोनों पैरोंसे दबा हुआ वह महान् महेन्द्रपर्वत सिंहसे आक्रान्त महान् मदमत्त गजराजकी तरह चीत्कार-सा करने लगा'—

पादाभ्यां पीडितस्तेन महाशैलो महात्मना।
ररास सिंहाभिहतो महान् मत्त इव द्विपः॥

(वा० रा० ४। ६७। ४३)

उपर्युक्त प्रसङ्गमें गोस्वामी तुलसीदासजीका कथन है कि 'जिस पहाड़पर हनुमानजी चरण रखते थे, वह तत्क्षण पातालमें चला जाता था'—

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥

(रामचरितमानस ५। १। ४)

श्रीनरहरिदासकृत 'अवतारचरित' में वर्णन है कि लंका जाते समय समुद्र-लङ्घनके लिये उद्यत श्रीहनुमानके चरण रखते ही पर्वत उसी तरह चूर-चूर हो गया जिस तरह हाथीके पैर रखते ही ककड़ी चूर-चूर हो जाती है'—

'चिरभटी फटी गज चरणचूर'

कविवर मानने अपनी 'हनुमत्-नख-शिख-वर्णन' रचनामें हनुमानजीके चरणकी बड़ी सुन्दर वन्दना की है—

गोपद-बरन, तोयनिधिके तरन, अक्ष-
दलके दरन, जे करन अरि अंत के।
आपद-हरन, दया दीन पै धरन, काल-
नेमि-संघरन, उर-आभरन संत के॥
औढर-ढरन, मान कबि के भरन, चारों
फल के फरन, जै करन जयवंत के।
असरन-सरन, अमंगल-हरन, बंदौं
रिधि-सिधि करन, चरन हनुमंत के॥

'जो समुद्रको गो-खुरके समान पार करनेवाले,

अक्षकुमार और उसके दलको विदीर्ण करनेवाले, आपदासे उबारनेवाले, दीनोंपर दया करनेवाले, कालनेमिका संहार करनेवाले, संतोंके हृदयके अलंकार, बात-की-बातमें प्रसन्न हो जानेवाले, मेरा (मान कविका) पोषण करनेवाले, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों फल प्रदान करनेवाले, विजयशीलोंको विजयी बनानेवाले, आश्रयहीनोंको शरणमें रखनेवाले, विघ्नों और अमङ्गलोंका नाश करनेवाले तथा ऋद्धि-सिद्धिके प्रदाता हैं, उन (श्रीहनुमान)-के चरणोंकी मैं वन्दना करता हूँ।'

श्रीहनुमानजीने अपने चरणकी अँगुलीके स्पर्शसे मैनाकपर्वतको धन्य किया। समुद्रसे ऊपर उठकर मैनाकने कहा कि "हे पवनकुमार! पक्ष काटनेवाले इन्द्रके भयसे मैं यहाँ छिपा रहता हूँ। मेरी नाभिमें अनेकों रत्न हैं। हिमालयका पुत्र एवं सुवर्णके शरीर-वाला मैं मैनाक समुद्रकी प्रेरणासे आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप दूरसे आये हैं; अत: मेरे शरीरपर ठहरकर मार्गके श्रमको दूर कीजिये।' उसकी वाणी सुनकर पवननन्दन हनुमानजीने उसके शिखरके अग्रभागका चरणकी अँगुलीसे स्पर्श किया और भुजाओंके वेगके पवनसे दिशाओंको पूरित करते हुए वे आगे चल पड़े।

विश्रान्तस्तत्र हर्षात् सपदि जलधिना प्रेरितो रत्ननाभो
मैनाकः काञ्चनाङ्गस्तुहिनगिरिसुतः प्राह दूरागतस्त्वम्।
हंहो दूराध्वखेदं जहि मम शिखरे प्राप्य तस्येति वाचं
स्पृष्ट्वाङ्गुल्या तदग्रं भुजरयपवनापूरिताशं जगाम॥

(हनुमन्नाटक ६। ११)

श्रीहनुमानजीकी परम पवित्र एवं निर्मल साङ्गोपाङ्ग सुषमाका वर्णन महामाङ्गलिक है। भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणजीसे किष्किन्धामें कहा था कि हनुमानजीके मुख, नेत्र, ललाट, भौंह तथा अन्य किसी भी अङ्गमें कोई दोष नहीं है—

न मुखे नेत्रयोर्वापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च गात्रेषु दोषः संविदितः क्वचित्॥

(वा० रा० ४। ३। ३०)

श्रीहनुमानका श्रीविग्रह सुषमानिधि, परममङ्गलमय और दिव्य है; वे परमपूज्य, परमाराध्य और परमोपास्य हैं।

श्रीहनुमच्चरण-वन्दना

(१)

बलके निधान, यातुधानके विनाशक जो,
बलि-बलि जाते भक्त जिनको निहारके।
जिनपै मधुप-मन फेरी हैं लगाते सदा,
धन्य 'तलवे' जो अवलम्ब निराधारके॥
जिस 'नख-ज्योति' से प्रकाशित है जीवन ही,
खोलतीं जो 'उँगली' कपाट स्वर्ग-द्वारके।
मेरे मन-मन्दिरमें नित्य ही निवास करें,
चरण-सरोरुह वे अञ्जनी-कुमारके॥

(२)

अशरण-शरण चरण जो अरुण-वर्ण,
जिनकी छटासे हैं हरित मन जनके।
'वज्र-पद' जिनके अजेय-शक्तिसे हैं पूर्ण,
देते जो अभय-दान मेट क्लेश तनके॥
अमल-कमल भी विमुग्ध जिनपै हैं हुए,
पूजते जिन्हें हैं सदा भक्त त्रिभुवनके।
मेरे मन-मानसमें नित्य ही विलास करें,
सुखद-पदाम्बुज वे मारुत-सुवनके॥

(३)

जिन चरणोंकी द्युति हरती त्रिलोक-तम, घातक प्रचंड हैं जो भक्त जन-भयके।
रामानुज-प्राण-हित धाये जो पवन-तुल्य, सपदि विनाशक हैं जो संताप-त्रयके॥
ऋषि-मुनि-सेवित हैं वन्दनीय बार-बार, विकराल काल हैं जो अघके अनयके।
मेरे लोचनोंमें नित्य करते निवास रहें, चरण-कमल वे ही पवन तनयके॥

—श्रीउमादत्तजी सारस्वत 'दत्त', कविरत्न

श्रीहनुमानका भाव-विग्रह

श्रीहनुमानजीके स्वभाव, गुण, पराक्रम आदि उनके भाव-विग्रहके मूल आधार हैं। इस विग्रहको समझ लेनेपर उनके स्वरूपका शब्दाङ्कन सहज-सुलभ हो जाता है तथा उसके हृदयंगम करनेमें बड़ी सुविधा होती है। उनका भाव-विग्रह श्रीरामके सायुज्यसे अनुप्राणित होकर जगत्के कल्याणके लिये निरन्तर प्रवाहित है। इस भाव-विग्रहके गठनमें भगवान्के प्रति उनकी अनन्य प्रीति एवं निष्काम सेवा-भावना—आप्तकामताका विशेष योगदान है।

भगवान् श्रीरामने परोपकारशीलता, परदु:खकातरता, दयालुता और बुद्धिमत्ताको सज्जनोंका स्वाभाविक गुण कहा है—

परोपकारशीलत्वं परदु:खासहिष्णुता।
दयापरत्वं दाक्षिण्यं सतां स्वाभाविका गुणा:॥

(उन्मत्तराघव ४१)

श्रीहनुमानजीकी प्रवृत्ति समस्त गुणोंसे ओत-प्रोत है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है—भगवान् श्रीरामका प्रिय सेवक होना—

वायुपुत्रो महातेजा रामस्यासीत् प्रिय: सदा॥

(कूर्मपुराण, पूर्व० २१।३५)

कविचक्रवर्ती कंबनने 'कंब-रामायण' के किष्किन्धा-काण्डके तीसरे अध्याय (सख्य-पटल)-में उनकी प्रीति और सेवा-भावनाका बड़ा ही सजीव चित्रण किया है कि 'हनुमानजीने सुग्रीवसे कहा कि मेरे पिताने मुझसे कहा था कि तुम इस संसारके सृष्टिकर्ता ब्रह्माकी भी सृष्टि करनेवाले भगवान् विष्णु (श्रीराम)-की सेवा करोगे। वह सेवा ही उत्तम तपस्या है। जब समस्त लोक विपत्तिग्रस्त हो जायँगे, तब भगवान् अवतार लेंगे। उन्हें देखते ही तुम्हारे मनमें उनके प्रति प्रेम (भक्ति-भाव) उत्पन्न होगा; यही उन्हें पहचाननेका प्रमाण होगा। हे स्वामी (सुग्रीव)! इन वीर (श्रीराम)-को देखते ही मुझे ऐसा लगता है कि मेरी अस्थियाँ भी (प्रेम उमड़नेसे) गल गयीं; इस कारण उनका रूपतक भी मेरी पहचानमें नहीं आया।'

भगवान् शंकरने भगवती पार्वतीसे कहा है—'हनुमानजीके समान न तो कोई सौभाग्यशाली है, न श्रीरामके चरणका प्रेमी है। उनकी प्रीति-सेवाकी स्वयं श्रीरामने बार-बार सराहना की है।'

हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ रामचरन अनुरागी॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥

(रामचरितमानस ७। ४९। ४-५)

'भावार्थ-रामायण' में संत-शिरोमणि एकनाथ महाराजका कथन है कि महावीर हनुमानजी बुद्धिके सागर हैं, भावार्थ (भाव)-के महान् मेरुपर्वत हैं, आज्ञा-पालनमें अग्रगण्य हैं—

जो बुद्धी चा सागरु। भावार्था चा महामेरु।
आज्ञेचा तरी किंकरू। महावीरु हनुमंत॥

(युद्ध० ७८)

महाराजकी उक्ति है कि 'वे भक्तिसुखके सागर हैं, भजन-पद्धतिके सद्गुरु—महामहिम आचार्य हैं, निश्चयमें सुमेरुपर्वतके समान अटल हैं और धैर्यके प्रतीक हैं'—

जो भक्ति सुखाचा सागरु। भजनधर्मासी सद्गुरु।
निश्चयाचा महामेरु। धैर्य निर्धारु त्याचेनि॥

(भावार्थ-रामायण, युद्ध ६८)

बलवान्, विवेकी, भक्ति-वैराग्य-ज्ञानयुक्त एवं सर्वार्थ-साधक हनुमानजीने श्रीरामको अपने प्रेम और सेवासे संतुष्ट किया—

बलवंत विवेकवंत। भक्तिवैराग्यज्ञानवंत।
सर्वार्थी साधक हनुमंत। श्रीरघुनाथ तुष्टला॥

(भावार्थरामायण, युद्ध २८)

गोस्वामी तुलसीदासजीने लोगोंको सावधान किया है कि 'आप ज्ञानी, गुणवान्, बलवान् और सेवामें सजग हनुमानजीके समान चतुर स्वामीको अपने हृदयमें बसाओ।'

ज्ञान-गुनवान-बलवान-सेवा-सावधान,
साहेब सुजान उर आनु हनुमान सो॥

(हनुमानबाहुक ८)

श्रीहनुमानने श्रीराम-कार्यके सम्पादनके लिये ही अवतार-शरीर धारण किया है। जाम्बवान्ने उनसे कहा था—

'रामकाज लगि तव अवतारा।'

(रामचरितमानस ४।२९।३)

लंकासे सीताका पता लगाकर लौटनेपर हनुमानजीसे श्रीरामने कहा कि 'हनुमन्! तुमने जो कार्य किया है, वह देवताओंसे भी होना कठिन है। मैं नहीं जानता कि इसके बदलेमें तुम्हारा क्या उपकार करूँ। लो, मैं तुम्हें अभी अपना सर्वस्व सौंपता हूँ।' ऐसा कहकर उन्होंने वानरश्रेष्ठ हनुमानजीका गाढ आलिङ्गन किया और कहा—'संसारमें मुझ परमात्माका आलिङ्गन मिलना दुर्लभ

है। हे वानरश्रेष्ठ! तुम मेरे परम भक्त और प्रिय हो'।"

हनूमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम्।
उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः॥
इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्वं मम मारुते।
इत्यालिङ्ग्य समाकृष्य गाढं वानरपुङ्गवम्॥
परिरम्भो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः।
अतस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुङ्गव॥

(अध्यात्मरा० ५। ५। ६०-६१, ६३)

श्रीहनुमानका पराक्रम अनुपम कहा गया है। श्रीरामने अगस्त्यजीसे कहा कि 'रावण और वालीके इस बलकी कहीं तुलना नहीं है; परंतु मेरा विचार है कि इन दोनोंका बल भी हनुमानजीके बलकी बराबरी नहीं कर सकता। युद्धमें हनुमानजीके जो पराक्रम देखे गये हैं, वैसे वीरतापूर्ण कर्म काल, इन्द्र, भगवान् विष्णु और कुबेरके भी नहीं सुने जाते'—

अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च।
न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम॥
न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः॥

(वा० रा० ७। ३५। २, ८)

श्रीहनुमानके पराक्रम-शरीरका परिचय उनके समुद्र-लङ्घन एवं द्रोणाचल उखाड़कर लाने और ले जाकर रखनेके कर्ममें विशेषरूपसे परिलक्षित होता है; ऐसे तो वे पराक्रमके अविकल-अखण्ड प्रतीक ही हैं। उनका पराक्रम प्रभु श्रीरामकी कृपासे सम्पन्न है। हनुमानजीकी उक्ति है—

शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तुं पराक्रमः।
यत्पुनर्लङ्घितोऽम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव॥

(हनुमन्नाटक ६। ४४)

महाकवि कालिदासने हनुमानजीके समुद्र लाँघनेके सम्बन्धमें बड़ी सुन्दर उक्ति प्रस्तुत की है। वे कहते हैं—'हनुमानजी उसी तरह सागर लाँघ गये, जिस तरह वीतराग पुरुष संसार-सागरको पार कर लेता है'—

मारुतिः सागरं तीर्णः संसारमिव निर्ममः॥

(रघुवंश १२। ६०)

लंकाके समरमें श्रीलक्ष्मणके मूर्च्छित होनेपर हनुमानजीने श्रीरामकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते हुए कहा कि 'आपकी आज्ञा हो तो मैं पातालसे अमृत-रस ले आऊँ, चन्द्रमाको निचोड़कर अमृत प्रस्तुत कर दूँ, प्रचण्ड किरणवाले सूर्यको रोक दूँ, सदा पाशयुक्त यमराजके पाशको चूर-चूर कर दूँ'—

पातालतः किमु सुधारसमानयामि
निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि।
उद्दण्डचण्डकिरणं ननु वारयामि
कीनाशपाशमनिशं किमु चूर्णयामि॥

(हनुमन्नाटक १३। १६)

भगवान् श्रीरामने उपर्युक्त कथनसे अपने मनमें विचार किया कि 'जो-जो बात महावीरने कही है, उसे वे अभी करके दिखा तो सकते हैं; पर ऐसा करनेसे असमयमें ही प्रलय हो जायगा'—

'यद्यदुक्तमनेन महावीरेण तत्तदिदानीमेव कृत्वा दर्शयति; परंतु तत्करणादकालेऽपि महाप्रलयः स्यात्।'

(हनुमन्नाटक अङ्क १३। १६ के उपरान्त)

स्वयं प्रभु श्रीरामने उनके बलका आश्रय लिया और कहा—'पवनकुमार हनुमान! जिस प्रकार भी जनकनन्दिनी सीता प्राप्त हो सके, तुम अपने महान् बल-विक्रमसे वैसा ही प्रयत्न करो'—

अतिबल बलमाश्रितस्तवाहं
हरिवर विक्रम विक्रमैरनल्पैः।
पवनसुत यथाधिगम्यते सा
जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व॥

(वा० रा० ४। ४४। १७)

आचार्य भिखारीदासने अपने 'काव्यनिर्णय' ग्रन्थमें श्रीहनुमानके सागर-लङ्घनके समय उनके पराक्रमके रूपका वर्णन करते हुए कहा है कि 'वे क्षणमात्रमें ही समुद्रको पार कर ऐसे दीख पड़े, मानो स्वर्ण-धनुष हों।' उनकी गतिकी चपलताका वर्णन है—

तेरे जोग काम यै, राम के सनेही जाम-
वंत कह्यो औधहू के द्यौस दस द्वै रह्यौ।
एती बात सुनत अधिक हनुमंत गिरि
सुंदर ते कूदि कैं सुबेल पर ह्वै रह्यौ॥
'सदा' अति गति की चपलता कहाँ लों कहौं,
भालु-कपि-कटक अचंभे जकि ज्वै रह्यौ।
एक छिन बार-पार लागी पारावार के,
गगन-मध्य कंचन-धनुष ऐसो व्वै रह्यौ॥

(काव्यनिर्णयमें)

गोस्वामी तुलसीदासजीने उनके लिये महाभारत-युद्धके प्रथम सेनापति भीष्मकी उक्ति प्रस्तुत की है कि 'तीनों कालमें, तीनों लोकमें हनुमानजीके समान कोई वीर ही नहीं हुआ'—

भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान-
सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो॥

(हनुमानबाहुक ७)

श्रीहनुमानजीके भाव-विग्रहके अन्तर्गत उनके स्मरण (स्मृति), प्रण, हर्ष, वेग, गर्जन, हाँक, रोष आदि उपाङ्गके रूपमें स्वीकार किये जाते हैं। इनके द्वारा उनके भावोंका सुन्दर और अत्यन्त सार्थक परिचय मिलता है। वे श्रीरामकी पादाम्बुजस्मृतिमें निरन्तर तत्पर रहते हैं—उनकी स्मृतिमें श्रीरामके चरण-कमल विद्यमान रहते हैं। श्रीहनुमानके ध्यानमें इसका स्पष्ट निरूपण है—

श्रीमद्रामपदाम्बुजस्मृतिरतं ध्यायामि वातात्मजम्॥

(मन्त्रमहोदधि १३। ८)

श्रीहनुमानजीकी स्वीकृति है कि 'योगिजन अपने हृदयमें नित्य-निरन्तर जिनका ध्यान किया करते हैं, देवता और असुर भी अपना मुकुट-मण्डित मस्तक झुकाकर जिनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं तथा बड़े-बड़े लोकेश्वर जिनकी पूजा करते हैं, वे अयोध्याके अधिनायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं। मैं उनका स्मरण करके जो कुछ कहता हूँ, वह सब सत्य होगा'—

मत्स्वामी हृदये नित्यं ध्येयो वै योगिभिर्मुहुः।
यं देवाः सासुराः सर्वे नमन्ति मणिमौलिभिः॥
रामः श्रीमानयोध्यायाः पतिर्लोकेशपूजितः।
तं स्मृत्वा यद् ब्रुवे वाक्यं तद् वै सत्यं भविष्यति॥

(पद्म०, पाताल० ३३। ४५-४६)

स्मरणालंकारका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए मध्य-कालीन संस्कृत-साहित्यके महारथी विद्वानोंमें महादिग्गज पण्डितराज जगन्नाथकी अमृतमयी वाणीकी उद्घोषणा है कि 'अगाध और चारों ओर भरे महासमुद्रको देखकर हनुमानजीको भगवान् श्रीरामके हृदयका स्मरण हो आया'—

अगाधं परितः पूर्णमालोक्य स महार्णवम्।
हृदयं रामभद्रस्य सस्मार पवनात्मजः॥

(रसगङ्गाधर)

श्रीहनुमानजीका प्रण वज्रके समान अभेद्य है। वे भगवद्भक्तराज हैं। उन्होंने रावणसे कहा कि 'मैं प्रण करके कहता हूँ कि जो श्रीरामके विमुख है, उसकी कोई भी रक्षा नहीं कर सकता'—

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥

(रामचरितमानस ५। २२। ३½)

श्रीहनुमानजीका हर्ष प्रभु श्रीरामकी शरणागत-वत्सलताका प्रतीक है। प्रभु शरणागतको अभय देते हैं। विभीषणकी शरणागतिके समय प्रभुने सुग्रीवसे कहा था कि 'शरणागतके भयका हरण करना मेरा प्रण है। प्रभुके वचन सुनकर हनुमानजी हर्षमें भर गये'—

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना॥

(मानस ५। ४२। ५)

प्रभुको प्राप्त करना—पहचान लेना उनके हर्षका उद्गम है। उस समय हनुमानजीके हृदयमें स्थित हर्षके सुखका वर्णन करना भगवान् शंकरके लिये भी कठिन हो जाता है। किष्किन्धामें श्रीरामके दर्शनके समयका प्रसङ्ग है—

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही॥

(मानस ४। १। ३-३½)

उनका वेग मारुतके समान है। ऋषि बुध-कौशिकको स्वप्नमें रामरक्षास्तोत्रका आदेश देनेवाले भगवान् शंकरके (श्रीहनुमत्स्तुतिमें) शब्द हैं—

'मनोजवं मारुततुल्यवेगम्' (३३)

उन्हें महाराज भोजने 'खगेन्द्रवेग' (गरुड़के समान वेगवाले) तथा 'प्रथमानवेग'—तीव्रतम वेगवाले कहा है—

महेन्द्रशैलस्य खगेन्द्रवेगः प्रस्थादुदस्थात् प्रथमानवेगः॥

(चम्पूरामायण, सुन्दरकाण्ड १)

उनके गर्जनकी महिमा महाभारतके वनपर्वमें वर्णित है। गन्धमादनपर्वतपर कदली-वनमें भीमने श्रीहनुमानसे कहा कि 'आपके प्रभावसे हमलोग अपने शत्रुओंको जीत लेंगे।' हनुमानजीने उनको आश्वासन दिया कि 'जब तुम शक्ति और वाणके आघातसे व्याकुल हुई शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश कर सिंहनाद करोगे, तब मैं अपनी गर्जनासे उस सिंहनादको और अधिक बढ़ा दूँगा। इसके अतिरिक्त अर्जुनकी ध्वजापर बैठकर मैं ऐसी भीषण गर्जना करूँगा, जो शत्रुओंके प्राणोंको हरनेवाली होगी। इससे तुमलोग सुगमतासे उनका नाश कर सकोगे'—

चमूं विगाह्य शत्रूणां शरशक्तिसमाकुलाम्।
यदा सिंहरवं वीर करिष्यसि महाबल॥
तदाहं बृंहयिष्यामि स्वरवेण रवं तव।
विजयस्य ध्वजस्थश्च नादान् मोक्ष्यामि दारुणान्॥
शत्रूणां ये प्राणहराः सुखं येन हनिष्यथ।

(महाभारत, वन० १५१। १६—१८)

पार्थकी रथध्वजामें कपिराज हनुमानके गर्जनका उल्लेख करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है कि "उनके गर्जनको सुनकर दुर्योधनकी सेनामें घबराहट

उत्पन्न हो गयी। द्रोणाचार्य और भीष्मपितामहने कहा कि 'ये महाबली पवनकुमार हैं, जिनका बल वीररस-समुद्रका जल है।' इनके स्वाभाविक ही बालकोंके खेलके समान धरतीसे सूर्यतक उछलनेसे आकाश-मण्डल एक पगसे भी कम हो गया था। सब योद्धागण नत-मस्तक हो हाथ जोड़कर देखते हैं; हनुमानजीके दर्शनसे उन्हें संसारमें जीनेका फल मिल गया अर्थात् हनुमानजीका गर्जन उनके दर्शनका कारण बना।''

भारत में पारथ के रथकेतु कपिराज,
गाज्यो सुनि कुरुराज-दल हलबल भो।
कह्यो द्रोन-भीषम समीरसुत महाबीर,
बीररस-बारि-निधि जाको बल जल भो॥
बानर सुभाय बालकेलि भूमि भानु लागि,
फलँग फलाँगहू तें घाटि नभतल भो।
नाइ-नाइ माथ, जोरि-जोरि हाथ जोधा जोहैं,
हनुमान देखे जग जीवन को फल भो॥

(हनुमानबाहुक ५)

'जिस प्राणीके हृदयमें हनुमानजीकी हाँकका भरोसा होता है, उसके दिन अच्छी तरह व्यतीत होते हैं। जो उन्मत्त वीरोंमें शिरोमणि रावणके साहसरूपी शैल-शिखरको विदीर्ण करनेके लिये वज्रकी टाँकी हैं, उन हनुमानजीकी भयंकर हाँकको सुनकर दिक्पाल दाँतोंसे पृथ्वीको दबाकर चिग्घाड़ने लगते हैं, कच्छप-शेष भयसे सिकुड़ जाते हैं, शिवजी संदेहमें पड़ जाते हैं, पृथ्वी और सुमेरु विचलित हो जाते हैं, सातों समुद्र उछलने लगते हैं, ब्रह्माजी व्याकुल-वधिर होकर दिशाओं-विदिशाओंको झाँकने लगते हैं, घर-घरमें निशाचरोंकी स्त्रियोंके गर्भपात होने लगते हैं—राक्षसकुलका संहार होने लगता है'—

मत्त-भट-मुकुट, दसकंठ-साहस-सइल-
सृंग-बिद्दरनि जनु बज्र-टाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज, कमठु,
सेषु संकुचित, संकित पिनाकी॥
चलत महि-मेरु, उच्छलत सायर सकल,
बिकल बिधि बधिर दिसि-बिदिसि झाँकी।
रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत,
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी॥

(कवितावली, लंका० ४४)

श्रीहनुमानका रोष राक्षसोंका अमङ्गल करता है। 'हनुमानजीने रावणका यज्ञ-विध्वंस किया। उन्होंने रोषमें भरकर रावणके हाथसे बलपूर्वक स्रुवा छीन लिया और उसीसे उसपर शीघ्रतासे आघात किया'—

स्रुवमाच्छिद्य हस्ताच्च रावणस्य बलाद्रुषा।
तेनैव संजघानाशु हनूमान् प्लवगाग्रणीः॥

(अ० रा० ६। १०। २२)

श्रीहनुमानजी समस्त प्राणियोंमें अपने प्रभु श्रीरामको व्याप्त देखते हैं। वे परमार्थी भक्त—सेवक हैं। श्रीरामजीका विजय-संदेश सुनानेपर सीताजीने उनको आशीर्वाद दिया था—

सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत॥

(मानस ६। १०७)

हनुमानजीके तप, सुकृत, पुण्य, विश्वास और आश्रय—सब कुछ भगवान् श्रीरामकी दास्य-भक्तिमें संनिहित हैं। उनकी भाव-भक्तिकी सरसताका रसास्वादन उनकी ही कृपाका फल है। (श्रीरामलाल)

श्रीहनुमानजीके आयुध एवं वाहन

श्रीहनुमानजी अपने प्रभु श्रीरामके चरणोंमें पूर्ण समर्पित आप्तकाम-निष्काम सेवक हैं। उनका सर्वस्व प्रभुकी सेवाका उपकरण है। उनके सम्पूर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्ग, रद, मुष्टि, नख, पूँछ, गदा एवं गिरि, पादप आदि प्रभुके सेवा-मार्गमें अवरोध उत्पन्न करनेवाले अमङ्गलोंके नाशके लिये दिव्य आयुध हैं।

श्रीहनुमानजी वज्राङ्ग हैं—सभी आयुधोंसे अवध्य हैं। 'वरुणदेवताने उन्हें अमरत्व प्रदान किया था, यमने अपने दण्डसे अभयदान दिया था, कुबेरने गदाघातसे अप्रभावित होनेका वर दिया था और भगवान् शंकरने शूल तथा पाशुपत आदि अस्त्रोंसे अभय होनेका वरदान दिया था। प्रजापतिने कहा था कि ये ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मदण्ड आदिसे अवध्य होंगे। अस्त्र-शस्त्रोंके कर्ता विश्वकर्माने उन्हें समस्त आयुधोंसे अवध्य होनेकी बात कही थी'—

अमरत्वं च वरुणः स्वदण्डादभयं यमः।
निष्कम्पतां गदाघाते स्वायुधेषु च वित्तपः॥
शूलपाशुपतादिभ्योऽप्यभयं भगवान् भवः।
ब्रह्मास्त्रब्रह्मदण्डाद्यैरवध्यत्वं प्रजापतिः॥
सर्वायुधप्रतीघातं विश्वकर्मास्त्रशस्त्रकृत्॥

(रामायणमञ्जरी, उत्तरकाण्ड ७१०—१२)

श्रीहनुमानजी युद्धवीर हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीका कथन है कि 'शिव, स्वामिकार्तिक, परशुराम, दैत्य और देवतावृन्द—सबकी युद्धरूपी नदीके पार जानेमें वे समर्थ एवं योग्य योद्धा हैं। वेदरूपी वन्दीजन उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि आप सत्य-प्रतिज्ञ एवं चतुर योद्धा, बड़े कीर्तिमान् और यशस्वी हैं, जिनके गुणोंकी कथाको रघुनाथजीने श्रीमुखसे स्वयं कहा तथा जिनके अतिशय पराक्रमसे अपार जलसे भरा हुआ संसार-समुद्र सूख गया। उन सुन्दर राजपूत (पवनकुमार)-के बिना राक्षसोंके दलका नाश करनेवाला दूसरा कौन है? अर्थात् दूसरा कोई है ही नहीं।'

पंचमुख-छमुख-भृगुमुख्य-भट-असुर-सुर,
सर्व-सरि-समर समरत्थ सूरो।
बाँकुरो बीर बिरुदैत बिरुदावली,
बेद बंदी बदत पैज पूरो॥
जासु गुनगाथ रघुनाथ कह, जासु बल
बिपुल-जल-भरित जग-जलधि झूरो॥
दुवन-दल-दमन को कौन तुलसीस है,
पवन को पूत रजपूत रूरो॥

(हनुमानबाहुक ३)

पञ्चमुख हनुमानको दस आयुधोंसे समलंकृत कहा गया है—

खड्गं त्रिशूलं खट्वाङ्गं पाशमङ्कुशपर्वतम्॥
ध्रुवमुष्टिगदामुण्डं दशभिर्मुनिपुङ्गव।
एतान्यायुधजालानि धारयन्तं यजामहे॥

[श्रीविद्यार्णवतन्त्र (हनुमत्प्रकरण) ३३। ८-९]

खड्ग, त्रिशूल, खट्वाङ्ग, पाश, अङ्कुश, पर्वत, स्तम्भ, मुष्टि, गदा और वृक्ष (की डाली) ही उनके दस आयुधोंके रूपमें परिगणित हैं।

श्रीहनुमानजीका बायाँ हाथ गदासे युक्त कहा गया है। गदा उनके हाथमें रहनेवाला एक प्रमुख आयुध है—

'वामहस्तगदायुक्तम्'

(मन्त्रमहार्णव, पूर्वखण्ड, नवम तरंग, पृष्ठ १८५)

श्रीलक्ष्मण और रावणके युद्धमें लक्ष्मणको पराजित होते देख हनुमानजीने गदाका प्रयोग किया था। 'वे हाथमें गदा लेकर दौड़ पड़े थे। उस समय वे ऐसे लगते थे मानो प्रलयकालमें जगत्के संहारमें तत्पर कुपित रुद्र हों। रावणके रथको उन्होंने गदासे भङ्ग कर दिया और उसके बाद तरु-गिरि-पाषाणकी वृष्टि की।'

हनुमंत धायो ते समे, कर गदा ग्रही निरवाण।
प्रलय समे जेम रुद्र कोपे, लेवा जगत ना प्राण॥
ते गदा मारी भंग कीधो, रावण नो रथ जेह।
पछे तरु-गिरि-पाषाण नी वृष्टि करी जेम मेह॥

(गिरिधर-रामायण, युद्धकाण्ड १६। १-२)

स्कन्दपुराणमें हनुमानजीको वज्रायुध धारण करनेवाला कहकर उनको नमस्कार किया गया है—

नमः श्रीरामभक्ताय अक्षविध्वंसनाय च।
नमो रक्षःपुरीदाहकारिणे वज्रधारिणे॥

(स्कन्दपु०, ब्रह्मखण्ड, धर्मारण्यमा० ३७। ३)

उनके हाथमें वज्र सदा विराजमान रहता है—

'हाथ बज्र औ ध्वजा बिराजै।' (हनुमानचालीसा)

गिरि, नख और तरु उनके आयुधोंमें परिगणित हैं। उनकी 'करालशैलशस्त्रधारी' और 'द्रुमशस्त्रवाले'-के रूपमें स्तुति की गयी है—

करालशैलशस्त्राय द्रुमशस्त्राय ते नमः।

(श्रीविद्यार्णवतन्त्र, हनुमत्स्तुतिप्रकरण २८। १३)

पर्वतका शिखर उठाकर राक्षसोंकी सेनाको भगाकर मारुतात्मज हनुमानने धूम्राक्षपर आक्रमण किया था—

विद्राव्य राक्षसं सैन्यं हनूमान् मारुतात्मजः।
गिरेः शिखरमादाय धूम्राक्षमभिदुद्रुवे॥

(वा० रा० ६। ५२। ३२)

उसी गिरिशिखरसे उन्होंने धूम्राक्षका वध किया था—

हनूमान् गिरिशृङ्गेण धूम्राक्षमवधीद्रिपुम्।

(अग्निपुराण १०। ८)

नारदपुराणके पूर्वभागके तृतीयपादके ७८वें अध्यायके ४४ वें श्लोकमें उन्हें '**करस्थशैलशस्त्राय**' कहा गया है। लंकाके दुर्गका विध्वंस करते समय हनुमानजीने क्रोधपूर्वक मेघनादपर पर्वतसे आक्रमण किया था—

पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा॥
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा॥

(रामचरितमानस ६। ४२। ३)

रावण और विभीषणके युद्धमें भी उन्होंने पर्वतका उपयोग किया था—

देखा श्रमित बिभीषनु भारी। धायउ हनूमान गिरि धारी॥

(रामचरितमानस ६। ९४। १/२)

नखायुध और दन्तायुधरूपमें भी उनकी स्तुति की गयी है। वे नखों और दाँतोंसे शस्त्रका काम लेते हैं—

नखायुधाय भीमाय दन्तायुधधराय च।
विहगाय शर्वाय वज्रदेहाय ते नमः॥

(नारदपुराण, पूर्व०, तृतीय० ७८। ४३)

'हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र' के ९१वें श्लोकमें उन्हें '**नखयुद्धविशारदः**' कहा गया है। उनके नखोंकी उपमा

वज्रसे दी गयी है—

उर बिसाल, भुजदंड चंड नख बज्र बज्रतन॥

(हनुमानबाहुक २)

अशोक-वाटिका उजाड़ते समय राक्षसोंके संहारके लिये उन्होंने वृक्षको आयुध बनाया था। हनुमानजीने एक विशाल साल-वृक्ष उखाड़कर उसे घुमाना आरम्भ किया—

सालं विपुलमुत्पाट्य भ्रामयामास वीर्यवान्॥

(वा० रा० ५। ४४। १२)

अक्षकुमारको आते देखकर हनुमानजीने हाथमें वृक्ष ले लिया और उसको मारकर घोर नाद किया—

आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥

(मानस ५। १७। ४)

उन्होंने लंकामें युद्ध छिड़नेपर महान् वेगसे एक वृक्षको उखाड़कर अकम्पनके सिरपर प्रहार किया—

ततोऽन्यं वृक्षमुत्पाट्य कृत्वा वेगमनुत्तमम्।
शिरस्यभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम्॥

(वा० रा० ६। ५६। २९)

वे रदसे भी शस्त्रका काम लेते हैं। नारदपुराणके पूर्वखण्डके तृतीयपादके ७८वें अध्यायके ४३वें श्लोकमें '**दन्तायुधधराय**' कहकर उन्हें नमस्कार किया गया है। महाकवि चंदबरदाईने 'पृथ्वीराजरासो' में उनके रदयुद्धका अत्यन्त सजीव वर्णन किया है—"हनुमानजीने लंकामें भ्रमण करते हुए सीताजीको खोज लिया और मनमें श्रीरामका चिन्तन कर बड़े क्रोधसे सघन उपवनको नष्ट कर दिया। उन्होंने दीवारपर चढ़कर रदयुद्धद्वारा अक्षकुमार आदि दनुजवीरोंका संहार कर दिया। जब शेष वीरोंने मेघनादको सूचना दी, तब उसने जाकर उनको पाशमें बाँध दिया और उनकी पूँछमें वस्त्र लपेटकर कहा कि 'तुम्हारा अन्त निकट है'—ऐसा कहकर उसने वस्त्रसे लिपटी हुई उनकी पूँछमें आग प्रज्वलित कर दी, इस तरह उसने सुवर्णमयी लंकाको ही जलाकर कीचड़ कर दिया"—

गयौ लंक हनुयेस, भ्रमत सुधि सीता पाइय।
वन-उपवन संघरिय, धरे मन राम दुहाइय॥
वाय चढ्यौ प्राकार, दसन जुद्धह दनु भख्खिय।
अखै कुमारन हनिय, दौरि इंद्राजित दख्खिय॥
निखि पास रास दृढ़ बंधयौ कहि सु मरन अंबर धरौ।
लग्गाय पुच्छ लंका जरिय, कनक पंक किन्नौ खरौ॥

(पृथ्वीराजरासो २। १३)

मुष्टिकाको भी वे शस्त्रके रूपमें उपयोग करते दिखलाये गये हैं। लंकाके युद्धस्थलमें उन्होंने कुम्भकर्णपर मुष्टिका-प्रहार किया था—

तब मारुतसुत मुठिका हन्यो। पर्‍यो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥

(रामचरितमानस ६। ६४। ३½)

उन्होंने कालनेमिपर गुरुदक्षिणाके रूपमें मुष्टि-प्रहार किया था। उन्होंने उससे दृढ़ मुष्टिकाके रूपमें गुरुदक्षिणा लेनेको कहा और उसे मार डाला—

गृहाण मत्तो मन्त्रांस्त्वं देहि मे गुरुदक्षिणाम्।
इत्युक्तो हनुमान् मुष्टिं दृढं वद्ध्वाह राक्षसम्॥
गृहाण दक्षिणामेतामित्युक्त्वा निजघान तम्॥

(अध्यात्मरा० ६। ७। ३०-३१)

उन्होंने रावणपर मुक्केसे प्रहार किया था। वे युद्ध करनेके लिये उसके सामने आये। उन्होंने कसकर मुट्ठी बाँधी और उससे उसकी छातीपर प्रहार किया। घूँसा लगते ही वह रथमें घुटनोंके बल गिर गया। रावणने कहा कि मैं मानता हूँ—'तुम बड़े शूरवीर हो'—

हनूमानथ चोत्प्लुत्य रावणं योद्धुमाययौ।
आगत्य हनुमान् रक्षोवक्षस्यतुलविक्रमः॥
मुष्टिबन्धं दृढं बद्ध्वा ताडयामास वेगतः।
तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद् रथे॥
मूर्च्छितोऽथ मुहूर्तेन रावणः पुनरुत्थितः।
उवाच च हनूमन्तं शूरोऽसि मम सम्मतः॥

(अध्यात्मरा० ६। ११। ६—८)

श्रीहनुमानजीने अक्षकुमारके (रथके) आठ घोड़ोंको थप्पड़से मार डाला। थप्पड़ भी उनके शस्त्ररूपमें परिगणित हैं—

स तस्य तानष्टवरान् महाहयान्
समाहितान् भारसहान् विवर्तने।
जघान वीरः पथि वायुसेविते
तलप्रहारैः पवनात्मजः कपिः॥

(वा० रा० ५। ४७। ३१)

वज्रदेह हनुमानजीका अत्यन्त प्रभावशाली शस्त्र लाङ्गूल-पूँछ है। गन्धमादनपर्वतपर कदली-वनमें विश्राम करते समय भीमने उन्हें देखा था। उन्होंने भीमका मार्ग रोक लिया और अपना शरीर बड़ा कर लिया। 'जब श्रीहनुमानजी इन्द्रकी ध्वजाके समान ऊँची तथा विशाल अपनी लाङ्गूलको फटकारते, उस समय वज्रकी गड़गड़ाहटके समान आवाज होती थी। वह पर्वत उनकी पूँछकी फटकारके उस महान् शब्दको सुन्दर कन्दरारूपी

मुखोंद्वारा चारों ओर प्रतिध्वनिके रूपमें दुहराता था, मानो कोई साँड़ जोर-जोरसे डकार रहा हो। पूँछके फटकारनेकी आवाजसे वह महान् पर्वत हिल उठा। उसके शिखर झूमते-से जान पड़े और वह सब ओरसे टूट-फूटकर बिखरने लगा। वह शब्द मतवाले हाथीके चिग्घाड़नेकी आवाजको भी दबाकर विचित्र पर्वत-शिखरोंपर चारों ओर फैल गया।'

जृम्भमाणः सुविपुलं शक्रध्वजमिवोच्छ्रितम्।
आस्फोटयश्च लाङ्गूलमिन्द्राशनिसमस्वनम्॥
तस्य लाङ्गूलनिनदं पर्वतः सुगुहामुखैः।
उद्गारमिव गौर्नर्दन्नुत्ससर्ज समन्ततः॥
लाङ्गूलास्फोटशब्दाच्च चलितः स महागिरिः।
विघूर्णमानशिखरः समन्तात् पर्यशीर्यत॥
स लाङ्गूलरवस्तस्य मत्तवारणनिःस्वनम्।
अन्तर्धाय विचित्रेषु चचार गिरिसानुषु॥

(महाभारत, वन० १४६। ७०—७३)

उनकी पूँछके प्रचण्ड आघातका वर्णन 'हनुमन्नाटक'-में इस प्रकार उपलब्ध होता है—'हनुमानजीके कर-कमलमें स्थित पर्वत सुमेरुपर्वतपर स्थित मैनाकके समान शोभित हुआ और बड़े-बड़े समर्थ वीरोंकी समाप्ति जिसमें हो, उस समरमें कुम्भकर्णके हाथका मुद्गर मन्दराचलपर भगवान्‌की मूर्तिके समान दीख पड़ा। उस समय आञ्जनेयद्वारा फेंके गये पर्वतको राक्षस कुम्भकर्णने अपने मुद्गरसे टुकड़े-टुकड़े कर डाला। तब उन्होंने बड़े क्रोधसे अपनी पूँछसे उस मुद्गरको खींच लिया। उद्यत पवन-कुमारके प्रचण्ड चपेटकी चोटसे कुम्भकर्णका सिर हिमालयपर पड़ा, जिसके जलमें भीमसेन गोते लगायेंगे और पूँछसे कटा धड़ आकाशमें जाकर घूमने लगा'—

मैनाको मेरुशृङ्गस्थित इव हनुमत्पाणिपद्मे नगेन्द्रः
कल्पान्ते मन्दराग्रेऽजन इव समरे मुद्गरः कुम्भकर्णे।
अद्रिं क्रव्यादवीरः प्रहितमनिलजेनाच्छिनन्मुद्गरेण
लाङ्गूलेनाञ्जनेयोऽद्भुतजनितरुषा मुद्गरं द्राक् चकर्ष॥
उद्यन्मरुत्तनयचण्डचपेटघाता-
न्मूर्धा पपात तुहिने रजनीचरस्य।
भग्नो भविष्यति यदम्भसि भीमसेनो
बभ्राम पुच्छनिकृतो गगने कबन्धः॥

(हनुमन्नाटक ११। ३६, ३८)

'रंगनाथ-रामायण' के युद्धकाण्डके १२७ वें अध्यायमें वर्णन है कि 'द्रोणाचल-आनयनके समय हनुमानजीने कालनेमिका वध किया; दस योजन विशाल और दस योजन ऊँचे पर्वतको उखाड़ लिया तथा चित्रसेन आदि तेईस करोड़ गन्धर्वोंको पूँछमें लपेटकर समुद्रमें फेंक दिया।'

नारदपुराणके पूर्वभागके तृतीयपादके ७८वें अध्यायके १३वें श्लोकमें सनत्कुमारद्वारा वर्णित 'हनुमत्कवच' में उन्हें '**चरणायुधः**' कहा गया है।—जिनके चरण आयुध हैं, वे हनुमानजी हाथोंकी रक्षा करें'—

'........**करौ च चरणायुधः।**'

गोस्वामी तुलसीदासजीका कथन है कि 'कच्छपकी पीठमें जिनके पाँवके गड़हे समुद्रका जल भरनेके लिये मानो नापके पात्र हुए। राक्षसोंके नाशके समय वह समुद्र ही उनके छिपनेका गढ़ हुआ तथा वही बड़े-बड़े मत्स्योंका निवास बना'—

कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाड़ैं मानो
नाप के भाजन भरि जलनिधि-जल भो।
जातुधान-दावन परावन को दुर्ग भयो,
महामीन-बास तिमि तोमनि को थल भो॥

(हनुमानबाहुक ७)

अध्यात्मरामायणमें उल्लेख है कि हनुमानजीने मुद्गरसे अक्षकुमारको मार डाला। 'उसे देखकर वे अपना मुद्गर लेकर आकाशमें उड़ गये और बड़े वेगसे ऊपरसे ही उन्होंने उसके मस्तकपर मुद्गरसे प्रहार किया। इस प्रकार अक्षको मारकर उसकी सेनाको भी समाप्त कर दिया'—

तमुत्पपात हनुमान् दृष्ट्वाऽऽकाशे समुद्गरः।
गगनात्त्वरितो मूर्ध्नि मुद्गरेण व्यताडयत्॥
हत्वा तमक्षं निःशेषं बलं सर्वं चकार सः॥

(५। ३। ८७-८८)

उन्होंने स्तम्भसे मेघनादपर प्रहार किया था—

ततोऽतिहर्षाद्धनुमान् स्तम्भमुद्यम्य वीर्यवान्॥
जघान सारथिं साश्वं रथं चाचूर्णयत् क्षणात्।

(अ० रा० ५। ३। ९६-९७)

हनुमानजीने राम-रावण-युद्धमें तोमरसे प्रहार किया था। महाकवि केशवदासका कथन है—

सूरज मुसल, नील पट्टिस परिघ, नल-
जामवंत असि, हनू तोमर प्रहारे हैं॥

(रामचन्द्रिका १९। ४६)

हनुमानजीने परिघसे जम्बुमालीका नाश किया था—

ततः परिघमादाय घोरघोषभ्रमं युधि।
अपातयत् कपिवरः स्यन्दनाज्जम्बुमालिनम्॥

(रामायणमञ्जरी, सुन्दर० ४३७)

महर्षि वाल्मीकिका कथन है कि प्रमदावनका विध्वंस करनेपर राक्षसोंसे घिरे हनुमानजीने फाटकपर रखे हुए परिघको उठाकर उसीसे उन्हें मार डाला—

स तं परिघमादाय जघान रजनीचरान्।

(वा० रा० ५।४२।४०)

'जिस तरह पूर्वकालमें इन्द्रने त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपके तीनों मस्तकोंको वज्रसे काट डाला था, उसी तरह कुपित हुए पवनपुत्र हनुमानजीने त्रिशिरा (रावण-पुत्र)-के किरीट-कुण्डल-मण्डित तीनों मस्तकोंको तीखी तलवारसे काट दिया'—

स तस्य शीर्षाण्यसिना शितेन
किरीटजुष्टानि सकुण्डलानि।
क्रुद्धः प्रचिच्छेद सुतोऽनिलस्य
त्वष्टुः सुतस्येव शिरांसि शक्रः॥

(वा० रा० ६।७०।४७)

वज्राङ्ग हनुमानजी अपने-आपमें ही एक अखण्ड सम्पूर्ण आयुध हैं। अपने किसी भी अङ्गसे जब वे किसी आयुधको स्पर्श या ग्रहण करते हैं, तब उसमें दिव्यता और शक्तिका विशेषरूपसे संचार हो जाता है।

वाहन

श्रीहनुमानजीका वाहन होनेकी शक्ति किसमें है— यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसके उत्तरमें केवल इतना ही कहकर संतोष किया जा सकता है कि उनके सिवा उनका वाहन होनेकी शक्ति किसी दूसरेमें है ही नहीं। वे इतने वेगवान् हैं कि उनके वेगके समान तीनों लोकोंमें किसीका भी वेग नहीं है। यद्यपि 'श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्र' के ७२वें श्लोकमें उन्हें **'वायुवाहनः'** कहा गया है और यह युक्तिसंगत भी है, तथापि वायु भी उनके भारका वहन करनेमें प्रायः असमर्थ ही हैं। उन्होंने किष्किन्धामें स्वयं श्रीराम (भगवान् विष्णु) और श्रीलक्ष्मण (विष्णुके ही अभिन्न शेष अंश)-को अपनी पीठपर बिठा लिया और सुग्रीवके पास ले गये—

एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई॥

(रामचरितमानस ४।३।२½)

श्रीलक्ष्मणजी जगदाधार हैं, साक्षात् शेष हैं। वे ब्रह्माण्डको कन्दुकके समान उठा लेनेकी शक्ति रखते हैं। उनके मूर्च्छित होनेपर हनुमानजी अकेले ही उन्हें उठाकर श्रीरामके सम्मुख ला सके; परंतु मेघनाद-जैसे करोड़ों वीर भी उन्हें उठा न सके—

मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ॥

(रामचरितमानस ६।५४)

जगदाधार शेषको उठानेवाले हनुमानजीको वहन करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। वे बात-की-बातमें द्रोणाचलपर्वतको उखाड़कर अपनी पूँछके अग्रभागपर रखकर लंका ले गये और उसी रातको यथास्थान रख आये। उन्होंने श्रीरामसे कहा था कि 'आज्ञा दीजिये। हम सब वीर आपके हित-साधनके लिये उपस्थित हैं। यहाँसे द्रोणाचल साठ लाख योजन है; जितना समय प्रज्वलित अग्निमें भुननेसे सरसोंके दानेको चटकनेमें लगता है, उतनी ही अवधिमें मैं (पवनकुमार) वहाँ जाकर यहाँ लौट आऊँगा'—

नीत्वा लङ्कां सुषेणं पुनरनिलसुतः प्रार्थयामास रामं
देवाज्ञां देहि वीरास्तव हितकरणोपस्थिताः सन्ति सर्वे।
लक्षाणां षष्टिरास्ते द्रुहिणगिरिरितो योजनानां हनूमां-
स्तैलाग्रेः सर्षपस्य स्फुटनखपरस्तत्र गत्वात्र चैमि॥

(हनुमन्नाटक १३।२०)

समूचे द्रोणाचलको उखाड़कर क्षणमात्रमें उसे लंकामें पहुँचाने और यथास्थान रख आनेवाले पवननन्दनके वेगसे बढ़कर किसका वेग हो सकता है, जो उनका वाहन बने! स्पष्ट है, किसीमें भी ऐसी सामर्थ्य नहीं है। उन्हें 'मारुततुल्य वेगसे युक्त' कहा गया है। मारुतने उन्हें द्रुत-गतिसे सम्पन्न होनेका वरदान दिया था। स्कन्दपुराणके अवन्तीखण्डके चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्यके ७९वें अध्यायके ३४वें श्लोकमें **'पवनेन गतिर्द्रुता'** का उल्लेख मिलता है। वायु, गरुड और मनकी गति भी उनके वेगके सम्मुख कुछ नहीं है। उनके वेग—गतिका वर्णन नहीं हो सकता। गोस्वामी तुलसीदासजीकी उक्ति है—'मैं उनके वेगका वर्णन करता, पर मेरे हृदयमें उनकी उपमाकी सामग्री नहीं मिली'—

तीखी तुरा 'तुलसी' कहतो
पै हिएँ उपमा को समाउ न आयो।

(कवितावली, लंका० ५४)

सचमुच उनकी गति नितान्त अवर्णनीय है।

(श्रीरामलाल)

श्रीहनुमानजीका नित्य-निवास

श्रीहनुमानजी सनातन, चिरंजीवी और परात्पर हैं। 'हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र' के ३रे, १६वें और ५५वें श्लोकोंमें उन्हें क्रमशः '**सनातनः**', '**चिरंजीवी**' और '**परात्परः**' कहा गया है। वे श्रीरामकी कल्याणमयी कथा सुननेके अप्रतिम रसिक हैं। जहाँ-जहाँ उनकी (श्रीरामकी) कथा होती है, वहाँ-वहाँ वे अदृश्यरूपमें अथवा छद्मवेषमें विद्यमान रहकर उसका रसास्वादन करते हैं। उनके हृदयमें भगवान् श्रीराम नित्य रमणशील हैं। श्रीहनुमानजी न तो किसी धाम अथवा लोकके सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र अधिपति हैं, न उनके भगवद्भक्तिमय आप्तकाम जीवनके लिये श्रीरामकी कथाके श्रवणको छोड़कर किसी विशिष्ट धाममें निवासकी अपेक्षा अथवा आवश्यकता ही है। पर हाँ, शास्त्रोंमें उनके किम्पुरुषवर्ष और साकेत (अयोध्या)-में निवास करनेका उल्लेख अवश्य मिलता है। यद्यपि वे किम्पुरुषवर्षमें निवास कर भगवान् श्रीरामकी उपासना करते हैं, उनके अर्चा-विग्रहकी पूजा-स्तुति करते हैं, तथापि वह उनका धाम नहीं है। वह तो उनके सेव्य—आराध्यदेवके अर्चा-विग्रहकी उपस्थितिसे गौरवान्वित तथा कृतार्थ है, इसलिये उनका निवास-स्थल है, जहाँ वे गन्धर्वोंसे युक्त आर्ष्टिषेणद्वारा गायी जानेवाली कल्याणमयी श्रीराम-कथाका श्रवण करते हैं। वे वहाँ मन्त्र जपते हुए श्रीरामकी स्तुति करते हैं तथा कहते हैं—'ॐकारस्वरूप, पवित्रकीर्ति, सत्पुरुषके लक्षण, शील और आचरणसे युक्त, संयतचित्त, लोकाराधनतत्पर, साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीके समान और अत्यन्त ब्राह्मणभक्त महापुरुष महाराज श्रीरामको हमारा बार-बार प्रणाम है'—

'**ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षण-शीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति।**' (श्रीमद्भागवत ५। १९। ३)

महाराजा रघुराजसिंहजीने अपने 'रामरसिकावली' (भक्तमाला) ग्रन्थमें श्रीहनुमानजीके किम्पुरुषवर्षमें निवासका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। उनके अनुसार 'वे बड़े तेजस्वी हैं। उनके समान श्रेष्ठ श्रीरामभक्त दूसरा कोई नहीं है। किम्पुरुषवर्षमें जहाँके ठाकुर कोसलेन्द्र भगवान् श्रीराम हैं, हनुमानजी गन्धर्वोंके साथ उनका अनुरागपूर्वक चरण-वन्दन और पूजन करते हुए सदा निवास करते हैं। वहाँ तुम्बुरु आदि गन्धर्व समाजसहित आकर मधुर-मधुर बाजे बजाते और रामायणका गान करते हैं। पवननन्दन उन्हें सुनते हैं और उनके नेत्रोंसे अश्रु झरते रहते हैं। वे श्रीरामजीके चरणोंके ध्यानमें तल्लीन हो जाते हैं; इसी तरह जहाँ-कहीं भी रघुपति-कथा होती है, वहाँ वे हाथ जोड़कर विनम्रतासे उसे सुनते हैं'—

हनुमत तेज बिदित जग माहीं। तेहि सम रामभक्त कोउ नाहीं॥
खंड किंपुरुष महँ सब काला। जहँ ठाकुर हैं कोसलपाला॥
तहँ गंधर्बन सहित कपीसा। नाइ नाइ नित प्रभुपद सीसा॥
करि पूजन नित नव अनुरागा। निवसत पवनतनय बड़भागा॥
तहँ तुंबुर आदिक गंधर्बा। आवहिं सहित समाजन सर्बा॥
महा मधुर बहु बाज बजाई। गावहिं रामायन सुर छाई॥
सुनहिं पवनसुत सर्बदा आँखिन अंबु बहाइ।
छकत रामपद-प्रेम महँ सकल सुरत बिसराइ॥
अरु जहँ जहँ रघुपति-कथा सादर बाँचत कोइ।
तहँ तहँ धरि सिर अंजली सुनत पुलकतन सोइ॥

(रामरसिकावली, त्रेतायुगखण्ड, प्रथम अध्याय)

किम्पुरुषवर्ष हेमकूटसे दक्षिण स्थित कहा गया है। हेमकूट किंनरोंका निवासस्थल बताया जाता है—

हेमकूटाद्दक्षिणतस्तथा किम्पुरुषं स्मृतम्॥

(विष्णुधर्मोत्तर, प्रथम खण्ड ७। २८)

हेमकूट पर्वत तपस्या करनेका स्थान है, जहाँ शीघ्र सिद्धि मिल जाती है। महाकवि कालिदासने 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के सातवें अङ्कमें राजा दुष्यन्तके प्रति मातलिसे कहलवाया है—

'**आयुष्मन्! एष खलु हेमकूटो नाम किम्पुरुष-पर्वतस्तपःसंसिद्धिक्षेत्रम्।**' (अङ्क ७, ८ वें श्लोकके उपरान्त)

'गर्गसंहिता' के विश्वजित्-खण्डमें हनुमानजीके किम्पुरुषवर्ष-निवास और तपोमय जीवनपर प्रकाश डाला गया है। उसमें उल्लेख है कि ''पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंने मिलकर क्षीर-सागरका मन्थन किया। उससे चौदह रत्न निकले, जिनमें अमृतपूर्ण मनोहर कलश भी था। उस (कलश)-को साक्षात् कमल-नयन श्रीहरिने दोनों नेत्रोंसे देखा। उनके नेत्रोंसे हर्षके आँसूकी एक बूँद उस कलशमें गिर पड़ी, उससे एक वृक्ष उत्पन्न हुआ, जिसे 'तुलसी' कहते हैं। भगवान् विष्णुने उस वृक्षका नाम 'रङ्गवल्ली' रखा। उन्होंने

किम्पुरुषवर्षके हेमकूटपर्वतकी उपत्यकामें भूमिपर उस रङ्गवल्लीकी स्थापना की। वह वृक्ष वहाँ सदा विराजमान है। उस वृक्षके नामपर रङ्गवल्लीपुर नगर स्थित है, जहाँ प्रतिदिन श्रीरामपूजक महात्मा हनुमानजी संगीत-कुशल आर्ष्टिषेणके साथ दर्शनके लिये आया करते हैं''—

तन्नेत्रहर्षबिन्दुश्च कलशे निपपात ह।
तस्माद् वृक्षः समुद्भूतस्तुलसीति प्रकथ्यते॥
रङ्गवल्लीति तन्नाम चकार मधुसूदनः।
अत्र किम्पुरुषे खण्डे हेमकूटगिरेरधः॥
तस्यां च रङ्गवल्ल्याः कौ स्थापनं स चकार ह।
रङ्गवल्लीमहावृक्षः सदात्रैव विराजते॥
तन्नाम्ना प्रसिद्धमभूद्रङ्गवल्लीपुरं त्विदम्।
अत्र नित्यं हि हनुमानार्ष्टिषेणेन रागिणा॥
दर्शनार्थं समायाति महात्मा रामपूजकः॥

(२६। २२—२६)

किम्पुरुषवर्षमें चराचर जगत्‌के शासक दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं और भगवती सीता उनके साथ सुशोभित रहती हैं। हनुमानजी उन आदिपुरुषकी स्तुतिमें तत्पर रहते हैं। वे उनका गुण गाते तथा भक्तिपूर्वक भलीभाँति उनकी पूजा करते हैं—

एवं किम्पुरुषे वर्षे सत्यसंधं दृढव्रतम्।
रामं राजीवपत्राक्षं हनुमान् वानरोत्तमः॥
स्तौति गायति भक्त्या च सम्पूजयति सर्वशः॥

(देवीभागवत ८। १०। १९-२०)

महात्मा सनातन गोस्वामीने अपने 'बृहद्भागवतामृत' ग्रन्थमें श्रीप्रह्लादकी प्रेरणासे श्रीरामकी उपासनामें तत्पर हनुमानजीके दर्शनके लिये देवर्षि नारदके किम्पुरुषवर्षमें जानेका उल्लेख किया है। प्रह्लादजीने नारदजीसे कहा कि 'यदि आप भगवान्‌के कृपापात्रका दर्शन करना चाहते हैं तो किम्पुरुषवर्षमें जाकर हनुमानजीका दर्शन कीजिये। मैंने हनुमानजीकी जो महिमा वर्णित की है, उससे भी अधिक आप स्वयं जानते हैं'—

मदनुक्तं च माहात्म्यं तस्य वेत्ति परं भवान्।
गत्वा किम्पुरुषे वर्षे दृष्ट्वा तं मोदमाप्नुहि॥

(१। ४। ५३)

श्रीनारदने आकाशमार्गसे किम्पुरुषवर्षमें पदार्पण किया। 'उन्होंने हनुमानजीका साक्षात् दर्शन किया। वे साक्षात्‌की भाँति भगवान् श्रीरामके मूर्तिस्वरूपका पूजन वनमें पैदा होनेवाली सामग्रियोंसे कर रहे थे, बड़े आनन्दसे गन्धर्वोंके मुखारविन्दसे रामरसायनरूप रामायण सुन रहे थे और कम्पित पुलकित होकर प्रेमाश्रु बहा रहे थे। वे अपने द्वारा निर्मित विचित्र दिव्य गद्य-पद्यमय स्तोत्रोंद्वारा स्तुति कर रहे थे तथा दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे'—

तत्रापश्यद्धनूमन्तं रामचन्द्रपदाब्जयोः।
साक्षादिवार्चनरतं विचित्रैर्वन्यवस्तुभिः॥
गन्धर्वादिभिरानन्दाद् गीयमानं रसायनम्।
रामायणं च शृण्वन्तं कम्पाश्रुपुलकाञ्चितम्॥
विचित्रैर्दिव्यदिव्यैश्च गद्यपद्यैः स्वनिर्मितैः।
स्तुतिमन्यैश्च कुर्वाणं दण्डवत् प्रणतीरपि॥

(बृहद्भागवतामृत १। ४। ५५—५७)

श्रीहनुमानने नारदजीको प्रणाम किया और उनको श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करानेके लिये मन्दिरमें ले गये—

क्षणात् स्वस्थेन देवर्षिः प्रणम्य श्रीहनूमता।
रघुवीरप्रणामाय समानीतस्तदालयम्॥

(बृहद्भागवतामृत १। ४। ६२)

हनुमानजीने देवर्षि नारदसे कहा कि 'अयोध्यापुरीके पुरंदर श्रीराम सब राजाओंमें चक्रवर्ती हैं। उनकी श्रीसीता-लक्ष्मण सदा सेवा करते हैं। वे भरतजीके ज्येष्ठ भ्राता हैं एवं सुग्रीवके प्रिय हैं। विभीषण उनके चरणोंमें शरणागत हैं। वे दशरथनन्दन हैं, कौसल्याजीके सुपुत्र हैं। उनके कर-कमलमें सदा धनुष शोभित है। मैं यहाँ (किम्पुरुषवर्षमें) उन्हीं श्रीराघवेन्द्रके अर्चा-विग्रहका साक्षात्‌की भाँति दर्शन करता हुआ तथा उनकी चरितामृत-कथाको सुनता हुआ निवास करता हूँ'—

तस्मादस्य वसाम्यत्र तादृग्रूपमिदं सदा।
पश्यन् साक्षात् स एवेति पिबंस्तच्चरितामृतम्॥

(बृहद्भागवतामृत १। ४। १०२)

हिमालयपर तपस्याके लिये हनुमानजीके गमनका उल्लेख अध्यात्मरामायणमें मिलता है, जिससे किम्पुरुषवर्षमें जाकर निवास करनेका प्रसङ्ग स्पष्ट हो जाता है। हनुमानजीने श्रीरामसे कहा था कि 'आपका नाम-स्मरण करते-करते मेरा चित्त तृप्त नहीं होता। मैं आपका नाम-स्मरण करता हुआ निरन्तर पृथ्वीपर रहूँ। मुझे वर दीजिये कि जबतक संसारमें आपका नाम रहे, तबतक मेरा शरीर भी रहे।' श्रीरामने कहा कि 'ऐसा ही हो; तुम जीवन्मुक्त होकर संसारमें सुखपूर्वक रहो; कल्पका अन्त होनेपर तुम निस्संदेह मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे।'

रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम्॥
कल्पान्ते मम सायुज्यं प्राप्स्यसे नात्र संशयः।

(६। १६। १४-१५)

'वे महामति श्रीहनुमान नेत्रोंमें आनन्दाश्रु भरकर श्रीसीतारामको पुनः-पुनः प्रणाम कर बड़ी कठिनतासे

तपस्याके लिये हिमालयपर चले गये'—

आनन्दाश्रुपरीताक्षो भूयो भूयः प्रणम्य तौ।
कृच्छ्राद्ययौ तपस्तप्तुं हिमवन्तं महामतिः॥

(अध्यात्मरा० ६।१६।१७)

महाकवि कालिदासका कथन है कि 'विष्णुभगवान् (श्रीराम)-ने रावणका वध करके देवताओंका कार्य पूरा किया। उत्तरगिरि हिमालयपर हनुमानजीको तथा दक्षिणगिरि त्रिकूटपर विभीषणको अपने दो कीर्तिस्तम्भोंके रूपमें स्थापित कर तीनों लोकोंको धारण करनेवाले भगवान् अपने विराट् शरीरमें लीन हो गये'—

निर्वर्त्यैवं दशमुखशिरश्छेदकार्यं सुराणां
विष्वक्सेनः स्वतनुमविशत् सर्वलोकप्रतिष्ठाम्।
लङ्कानाथं पवनतनयं चोभयं स्थापयित्वा
कीर्तिस्तम्भद्वयमिव गिरौ दक्षिणे चोत्तरे च॥

(रघुवंश १५।१०३)

हनुमानजी किम्पुरुषवर्षमें निवास कर हिमगिरिपर श्रीरामके कीर्तिस्तम्भके रूपमें विराजमान होकर उनके भजन-पूजनमें लगे रहते हैं।

श्रीरामके सायुज्यसे सम्पन्न हनुमान दिव्य साकेतलोक—अयोध्यापुरीमें निवास करते हैं। वे उनके दिव्यातिदिव्य अभिन्न स्वरूप हैं। वे त्रिपाद्विभूतिलोकके अन्तर्गत दिव्य अयोध्यामें वास करते हैं। वे वहाँ जीवन्मुक्त होकर भी सर्वव्यापक—सर्वलोकगामी हैं। यह उनकी इच्छाके अधीन है कि वे जहाँ चाहें, वहाँ भक्तोंको दर्शन देकर कृतार्थ करते रहें। 'जो उपासनाद्वारा मुक्तिपदको प्राप्त हुए हैं, उनका साकार देह मुक्त-साकार है। उस मुक्त पुरुषके आकारका आविर्भाव अखण्ड ज्ञानसे होता है। भगवद्धाममें स्थित मुक्तात्माओंका शरीर ज्ञानघन है। वह (मुक्तात्माओंका साकार शरीर) भी शाश्वत होता है। वह मुक्त-साकार ऐच्छिक है।'

'उपासनया ये मुक्तिं गतास्तेषां साकारो मुक्तसाकारः। तस्याखण्डज्ञानेनाविर्भावो भवति। सोऽपि शाश्वतः। मुक्तसाकारस्त्वैच्छिक इति।'

(त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद्, पूर्वखण्ड, अध्याय २)

त्रिपाद्विभूतिमें स्थित लोक असंख्य हैं एवं शुद्ध-सत्त्वमय और ब्रह्मानन्दसे परिपूर्ण हैं। वे नित्य और निर्विकार हैं। उनमें स्थित कैवल्यस्वरूप विष्णुके परमधाममें भगवच्चरणारविन्दके सेवक निवास करते हैं। 'उसके मध्यमें दिव्य अयोध्यानगरी है, जो मणि-काञ्चनके चित्र-विचित्र प्राकारों और तोरणोंसे घिरी है'—

तन्मध्ये नगरी दिव्या सायोध्येति प्रकीर्तिता।
मणिकाञ्चनचित्राढ्यप्राकारैस्तोरणैर्वृता॥

(पद्मपुराण, उत्तर० २२८।१२)

श्रीरामानन्दग्रन्थमालामें नारदपञ्चरात्रान्तर्गत बृहद्ब्रह्म-संहितामें उल्लेख है कि 'श्रीरामके अनन्य सेवक महावीर हनुमान ही श्रीराम-मन्त्रके तत्त्वको पूर्णरूपसे जानते हैं। वे महाविभूतिमें स्थित होकर साकेतधामकी ईशान दिशामें रक्षकरूपसे सदा निवास करते हैं—

श्रीराममन्त्रतत्वज्ञः श्रीरामानुचरो बली।
नित्यो महाविभूतिस्थ ईशान्यां दिशि संस्थितः॥

'यह दिव्य साकेत अथवा अयोध्या समस्त दिव्य अष्टोत्तर-शत वैकुण्ठादि धामोंकी मूलाधारभूत है तथा मूल प्रकृति—मायासे परे तत्सद्ब्रह्म—नित्यानन्दस्वरूप (श्रीराममयी) विरजासे पार दिव्य रत्नोंकी खान है—श्रीसीतारामका विहार-स्थल है।' महात्मा अग्रदासजीके द्वारा संगृहीत 'रामसारसंग्रह' में निम्नलिखित अथर्वणोत्तरार्धगत श्रुति है—

'यायोध्यापुरी सा सर्ववैकुण्ठानामेव मूलाधारा मूल-प्रकृतेः परा तत्सद्ब्रह्ममयी विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोषाढ्या तस्यां नित्यमेव सीतारामयोर्विहारस्थलमस्तीति।' (उत्तर० २०)

भार्गवपुराणके भी वचनोंमें उपर्युक्त आशयका समर्थन किया गया है और कहा गया है कि 'त्रिपाद्विभूतिके अन्तर्गत दिव्य वैकुण्ठमें विरजाके परे देवोंकी अमृतमयी पुरी अयोध्या स्थित है'—

त्रिपाद्विभूतौ वैकुण्ठे विरजायाः परे तटे।
या देवानां पुर्ययोध्या सामृतेनामृता पुरी॥

(रामसारसंग्रह, उत्तर० ५३)

सदाशिवसंहितामें भगवान् शिवका कथन है कि 'जो सुवर्ण और मणि-रत्नोंसे खचित तथा चिन्तामणियोंके सुन्दर गृहोंसे संयुक्त है, मैं ऐसी अद्भुत सच्चिदा-नन्दघनमयी श्रीरामरूपिणी अयोध्याकी शरण ग्रहण करता हूँ—

सौवर्णचित्रां मणिरत्नचित्रां
चिन्तामणीनां सुगृहैर्विचित्राम्।
सच्चिद्घनानन्दमयीमयोध्यां
श्रीरामरूपां शरणं प्रपद्ये॥

(रामसारसंग्रह, उत्तर० १५१)

श्रीनारदजीकी प्रेरणासे दिव्य अयोध्यापुरीमें गोपकुमारने प्रवेश किया। गोपकुमारका कथन है कि ''वहाँ मैंने बहुत-से बंदरोंको देखा, जो श्रीरामनाम-कीर्तन करते हुए चञ्चलतासे कूद रहे थे। मैं करबद्ध खड़ा हो गया। श्रीहनुमानजी मुझे अन्तःपुरमें ले गये। मैंने मनुष्याकृति

भगवान् श्रीरामका दर्शन किया। श्रीहनुमानजी प्रभुके समीप गये, जिनके वामभागमें सीताजी शोभित थीं तथा दक्षिणभागमें लक्ष्मणजी विराजमान थे। मैंने देखा श्रीहनुमानजी कभी-कभी उनके गुण गाते हुए चँवर डुलाते हैं तो कभी सामने उपस्थित होकर हाथ जोड़कर स्वनिर्मित श्लोकोंसे स्तुति करते हैं, कभी श्वेत छत्र धारण करते हैं, कभी उन (श्रीराम)-के चरण-कमलकी सेवा करते हैं और कभी एकाग्र होकर वे अनेक सेवाएँ एक ही साथ करते हैं।'

कदापि शुभ्रैर्वरचामरैः प्रभुं
गायन् गुणान् वीजयति स्थितोऽग्रतः।
कदाप्युपश्लोकयति स्वनिर्मितै-
श्चित्रैः स्तवैः श्रीहनुमान् कृताञ्जलिः॥
श्वेतातपत्रं च बिभर्त्यसौ क्षणं
संवाहयेत्तस्य पदाम्बुजेक्षणम्।
सेवाप्रकारान् युगपद् वहन् क्षणं
तस्मिन्नवैयग्र्यमहो तनोति च॥

(बृहद्भागवतामृत २। ४। २६०-६१)

श्रीहनुमानजी दिव्य अयोध्यामें अहर्निश अपने उपास्य श्रीरामकी सेवामें तत्पर रहते हैं। अमृतमयी दिव्य अयोध्यामें वे श्रीरामके सायुज्यमें तद्रूप रहते हैं, वे मुक्त-साकार हैं। ऐच्छिक मुक्ताकार होकर वे पृथ्वीतलपर श्रीअयोध्यामें विराजमान रहकर प्रभुकी सेवा करते हैं, भक्तोंका मनोरञ्जन करते हैं।

अयोध्याकी स्थितिके सम्बन्धमें विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें वर्णन है—

कोसलाविषये स्फीते तस्मिन् मनुजपुङ्गव।
देवानामप्ययोध्यास्ति त्वयोध्यानामतः पुरी॥

(प्रथम० १३। १)

यह श्रीरामकी पुरी है। हनुमानजी इस पुरीमें नित्य निवास करके प्रभुकी सेवा करते हैं। अयोध्यास्थित हनुमानगढ़ी त्रिपाद्विभूतिलोकस्थित दिव्य अयोध्याकी महिमाके अन्तर्गत हनुमानजीकी सेवाकी प्रतीक है। महर्षि अगस्त्यने अयोध्याकी महिमाका बखान किया है। "अ'-कार ब्रह्मा है, 'य'-कार विष्णु है और 'ध'-कार रुद्रस्वरूप है। इनके संघातसे 'अयोध्या' नाम शोभित है। समस्त उपपातकोंके साथ ब्रह्महत्यादि महापातक इस पुरीसे युद्ध नहीं कर सकते। इसीलिये इसका नाम 'अयोध्या' है। यह भगवान् विष्णुकी आदिपुरी है, सुदर्शन चक्रपर स्थित है और पृथ्वीपर अतिशय पुण्यदायिनी है"—

अकारो ब्रह्म च प्रोक्तं यकारो विष्णुरुच्यते।
धकारो रुद्ररूपश्च अयोध्यानाम राजते॥
सर्वोपपातकैर्युक्तैर्ब्रह्महत्यादिपातकैः।
नायोध्या शक्यते यस्मात्तामयोध्यां ततो विदुः॥
विष्णोराद्या पुरी येयं क्षिति न स्पृशति द्विज।
विष्णोः सुदर्शने चक्रे स्थिता पुण्यकरी क्षितौ॥

(स्कन्दपु०, वैष्णव०, अयोध्यामा० १। ६०—६२)

श्रीरामने परमधाम जानेके समय हनुमानजीसे कहा था कि 'वायुनन्दन! तुम चिरंजीवी होओ; जबतक लोग मेरी कथा कहें, तबतक प्राणोंको धारण करो'—

वायुपुत्र चिरंजीव मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः॥
यावल्लोका वदिष्यन्ति मत्कथां वानरर्षभ।
तावत्त्वं धारय प्राणान् प्रतिज्ञां प्रतिपालयन्॥

(स्कन्दपु०, वैष्णव०, अयोध्यामा० ६। १२७-२८)

निस्संदेह अयोध्यापुरी समस्त सुखोंकी राशि है। श्रीसीतारामके संनिधानमें श्रीहनुमान उनकी सेवाके सुखका निरन्तर आस्वादन करते हुए पृथ्वीपर साकार दिव्य ऐच्छिक देहसे विद्यमान रहते हैं। भगवान् शंकरका कथन है कि 'जिनके चरणारविन्द-युगलका तुलसीदल आदिसे पूजन कर भक्तजन अतुलनीय विष्णुपद प्राप्त करते हैं, उन्हीं श्रीरामने जिनके शरीरका आलिङ्गन किया, उन पवित्र कर्म करनेवाले पवनपुत्रके विषयमें क्या कहा जाय'—

यत्पादपद्मयुगलं तुलसीदलाद्यैः
सम्पूज्य विष्णुपदवीमतुलां प्रयान्ति।
तेनैव किं पुनरसौ परिरब्धमूर्ती
रामेण वायुतनयः कृतपुण्यपुञ्जः॥

(अध्यात्मरामायण ५। ५। ६४)

आचार्य शंकरकी वाणी है कि 'जिनके द्वारा सीताजीकी व्यथा दूर होती है, जिनकी स्फूर्तिके प्रकाशित होनेपर श्रीरामका प्रभाव व्यक्त होता है, दशानन-कीर्तिविनाशिनी उन्हीं हनुमानजीकी मूर्ति (हनुमद्विग्रह) हमारे सामने प्रकाशित हो'—

दूरीकृतसीतार्तिः प्रकटीकृतरामवैभवस्फूर्तिः।
दारितदशमुखकीर्तिः पुरतो मम भाति हनुमतो मूर्तिः॥

(हनुमत्पञ्चरत्न ४)

श्रीहनुमानजी साक्षात् भगवत्सेवा-विग्रह हैं—सकल सिद्धियोंके दाता 'परमकल्याणस्वरूप' सेवाब्रह्म हैं।

(श्रीरामलाल)

श्रीहनुमान-चरित

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

धर्म-प्राण आर्य-धरापर शायद ही कोई जनपद, कोई नगर और कोई गाँव ऐसा होगा, जहाँ पवनकुमारका छोटा-बड़ा मन्दिर या मूर्ति न हो। अखाड़ोंपर, जहाँ मूर्ति नहीं है, वहाँ उनकी मिट्टीकी ही मूर्ति बनाकर पूजा की जाती है। सच तो यह है—महावीर हनुमान भारतके तन, मन एवं प्राणमें व्याप्त हैं और वे सदा ही हमें शक्ति, भक्ति, समर्पण, श्रम, निश्छल सेवा, त्याग, बलिदान आदिकी प्रेरणा देते रहते हैं। परमादर्श श्रीहनुमानजीका जीवन प्रकाश-स्तम्भकी भाँति हमारे कल्याण-मार्गका निश्चित दिशा-निर्देश करता रहता है।

श्रीसीतारामके अनन्य भक्त श्रीहनुमानजी अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाले एवं शूरता, वीरता, दक्षता, बुद्धिमत्ता आदि गुणोंके पुञ्ज हैं। वज्राङ्ग हनुमानजी अत्यन्त शक्तिसम्पन्न एवं परम पराक्रमी तो हैं ही, अत्यन्त बुद्धिमान्, शास्त्रोंके पारंगत विद्वान्, परम नीतिज्ञ एवं सरलताकी मूर्ति हैं। भगवान् श्रीरामके प्रति उनका समर्पित-जीवन अपने प्रभुसे पृथक् नहीं रह गया है। उनके तन, मन, प्राण एवं रोम-रोममें अवधेश-कुमार श्रीराम इस प्रकार व्याप्त हो गये हैं कि हनुमानजीका पृथक् अस्तित्व ही नहीं रह गया है। वे श्रीराममय हो गये हैं। परमप्रभु श्रीरामसे उन्होंने स्वयं निवेदन किया है—'प्रभो ! देहदृष्टिसे तो मैं आपका दास हूँ, जीवरूपसे आपका अंश हूँ तथा परमार्थदृष्टिसे तो आप और मैं एक ही हूँ; यह मेरा निश्चित मत है[१]।'

श्रीहनुमानजीको प्रसन्न होते देर नहीं लगती। 'राम-राम', 'सीताराम-सीताराम' जपना प्रारम्भ कर दीजिये, बस, वे श्रीरामभक्त उपस्थित हो जाते हैं, प्रसन्न हो जाते हैं। मनुष्य किसी प्रकार प्रभुकी ओर उन्मुख हो जाय, वह जन्म-जरा-मरणसे मुक्ति प्राप्त कर ले, दयामय प्रभुकी ओर पग बढ़ाकर, उनपर समर्पित होकर अपना सुनिश्चित कल्याण कर ले—इसके लिये कृपामूर्ति श्रीहनुमानजी सर्वदा प्रयत्न करते रहते हैं; किसी-न-किसी बहानेसे प्रेरणा और प्रोत्साहन भी देते ही रहते हैं। भक्तोंको तो वे प्राणोंसे अधिक प्यार करते हैं।

समस्त अमङ्गलोंका नाश करनेवाले मङ्गलमूर्ति भक्तवर श्रीहनुमानजीका चरित्र परम पवित्र, परम मधुर एवं परमादर्श तो है ही, अत्यन्त अद्भुत भी है। श्रीहनुमानजीकी परम पुण्यमयी माता अञ्जनादेवी हैं; किंतु वे 'शंकर-सुअन', 'वायुपुत्र' और 'केसरीनन्दन' कहे जाते हैं, अर्थात् शिव, वायु और केसरी उनके पिता हैं। इस रहस्यको स्पष्ट करनेवाली विभिन्न कथाएँ पुराणोंमें प्राप्त हैं और कल्पभेदसे सभी सत्य हैं। श्रद्धापूरित हृदयसे ही उनका अध्ययन, मनन, चिन्तन आदि करना चाहिये।

सौभाग्यशालिनी माता अञ्जना तथा शिव, वायु एवं केसरीकी कथाएँ संक्षेपमें यहाँ दी जा रही हैं—

माता अञ्जना

स्वर्गाधिप शचीपति इन्द्रकी रूप-गुण-सम्पन्ना अप्सराओंमें पुञ्जिकस्थला नामकी एक प्रख्यात अप्सरा थी। वह अत्यन्त लावण्यवती तो थी ही, चञ्चला भी थी। एक बारकी बात है कि उसने एक तपस्वी ऋषिका उपहास कर दिया।

ऋषि इसे नहीं सह सके। क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप दे दिया—'वानरीकी तरह चञ्चलता करनेवाली तू वानरी हो जा।'

ऋषिका शाप सुनते ही पुञ्जिकस्थला काँपने लगी। वह तुरंत ऋषिके चरणोंपर गिर पड़ी और हाथ जोड़कर उनसे दयाकी भीख माँगने लगी।

सहज कृपालु ऋषि द्रवित हो गये और बोले—'मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता। वानरी तो तुम्हें होना ही पड़ेगा, किंतु तुम इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ होओगी। तुम जब चाहोगी, तब वानरी और जब चाहोगी, तब मानुषीके वेषमें रह सकोगी।'

उस परम रूपवती अप्सरा पुञ्जिकस्थलाने ऋषिके शापसे कपियोनिमें वानरराज महामनस्वी कुञ्जरकी पुत्री-[२] के रूपमें जन्म लिया। वह प्रख्यात अनिन्द्य सुन्दरी थी। उसके रूपकी समानता करनेवाली धरतीपर

१. देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकः। वस्तुतस्तु त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥

२. (क) वा० रा० ४।६६।९$\frac{१}{२}$, (ख) गौतमकी पुत्री (शि० पु०, शतरु० २०। ६)।

अन्य कोई स्त्री नहीं थी। उस त्रैलोक्य-विख्यात सुन्दरी कुञ्जरपुत्रीका नाम था—'अञ्जना'।

लावण्यवती अञ्जनाका विवाह वीरवर वानरराज केसरीसे हुआ। कपिराज केसरी काञ्चनगिरि (सुमेरु)-पर रहते थे। समस्त सुविधाओंसे सम्पन्न इसी सुन्दर पर्वतपर अञ्जना अपने पतिदेवके साथ सुखपूर्वक रहने लगीं। वीरवर केसरी अपनी सुन्दरी पत्नी अञ्जनाको अत्यधिक प्यार करते और अञ्जना सदा अपने प्राणाराध्य पतिदेवमें ही अनुरक्त रहती थीं। इस प्रकार सुखपूर्वक बहुत दिन बीत गये; पर उनके कोई संतान नहीं हुई।

श्रीहनुमानकी उत्पत्तिके विभिन्न हेतु

श्रीहनुमानजीकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें विभिन्न कथाएँ उपलब्ध होती हैं। संक्षेपमें वे इस प्रकार हैं—

अनन्त करुणा एवं प्रेमकी मूर्ति श्रीभगवान्‌की लीला मधुर, मनोहर एवं अद्भुत होती है। उसके स्मरण एवं श्रवणसे मुनिगण मुग्ध हो जाते हैं। भक्तोंकी तो वह परम निधि ही होती है; किंतु वह लीला होती है—रहस्यमयी। परम मङ्गलकारिणी भगवल्लीलाका रहस्य देवता एवं योगीन्द्र-मुनीन्द्रगण भी नहीं जान पाते; वे आश्चर्यचकित होकर मौन हो जाते हैं, फिर हम कामादि दोषोंसे ग्रस्त सांसारिक मनुष्य उसे कैसे सोच-समझ सकते हैं। हाँ, उन करुणामय लीला-विहारीकी लीलाका गुण-गान हमारे लिये परम कल्याणकर है।*

देवताओं और दैत्योंमें अमृत-वितरणके लिये परमप्रभुने मोहिनी रूप धारण किया था, यह सुनकर कर्पूरगौर नीलकण्ठ बहुत चकित हुए। श्रीभगवान्‌का स्त्री-वेष कैसा था?—आप्तकाम भगवान् शंकरके मनमें अपने प्राणाराध्यके उस विशिष्ट रूप एवं विशिष्ट लीलाके दर्शन करनेकी कामना उदित हुई।

गङ्गाधर माता पार्वतीके साथ क्षीराब्धिके तटपर पहुँचे। उन्होंने स्तवन किया। लक्ष्मीपति प्रकट हुए। देवाधिदेव महादेवने निवेदन किया—'प्रभो! मैंने आपके मत्स्यादि सभी अवतार-स्वरूपोंका दर्शन किया था, किंतु अमृत-वितरणके समय आपने परम लावण्यमयी स्त्रीका वेष धारण किया, उस अवतार-स्वरूपके दर्शनसे मैं वञ्चित ही रह गया। कृपया मुझे उस रूपके भी दर्शन करा दें, जिसे देखकर देवता और दानव—सभी मोहित हो गये थे।'

'देवाधिदेव महादेव! आप योगियोंके उपास्य एवं मदनका दहन करनेवाले हैं। आप स्त्री-अवतार देखकर क्या करेंगे? आपके लिये उसका कोई महत्त्व नहीं।' लक्ष्मीपतिने हँसते हुए उत्तर दिया।

'पर प्रभो! मैं उक्त अवतार-स्वरूपके दर्शनसे वञ्चित रहना नहीं चाहता।' पार्वतीश्वरने साग्रह निवेदन किया—'कृपया मुझे उस मोहिनी स्वरूपके भी दर्शन करा ही दें।'

'तथास्तु!' क्षीराब्धिशायी संक्षिप्त उत्तर देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। अब वहाँ न तो क्षीरोदधि था और न नव-नीरद-वपु, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी लक्ष्मीपति ही थे। वहाँ थे सर्वत्र मनोहर पर्वत एवं सुरम्य वन। माता पार्वतीसहित भगवान् शंकर उस सुखद वन-प्रान्तके मध्यमें थे।

वनमें पूर्णतया वसन्त छाया था। वृक्षोंमें नये कोमल पत्ते निकल आये थे। सर्वत्र पुष्प खिले थे और उन सुगन्धित सुमनोंपर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे। कोकिला 'कुहू-कुहू' शब्द कर रही थीं। शीतल-मन्द समीरमें कोमल लतिकाएँ एवं पुष्प धीरे-धीरे झूम रहे थे। सर्वत्र ऋतुराजका साम्राज्य प्रसरित था एवं मादकता व्याप्त थी।

सहसा योगियोंके उपास्य त्रिनेत्रने कुछ दूरपर लता-ओटमें देखा—एक अत्यन्त रूपवती स्त्री अपने कर-कमलोंपर कन्दुक उछालती हुई रह-रहकर दीख जाती है।

कामारि अधीर होने लगे। जिस अनन्त अपरिसीम सौन्दर्य-सिन्धुके एक सीकरकी तुलना सृष्टिकी सम्पूर्ण सौन्दर्य-राशिसे सम्भव नहीं, वह सौन्दर्य-सिन्धु स्वयं जब मूर्त हो उच्छलित होता दीख जाय, तब क्या हो? उसके सम्मुख लावण्यमयी अप्सराओंका त्याग और काम-दहनकी क्या गणना? भोलेनाथको अपनी भी सुध न रही। वे निर्निमेष दृष्टिसे कन्दुकद्वारा क्रीड़ा करती हुई मोहिनीको देख रहे थे।

सहसा पवनका झोंका आया और जैसे बिजली-सी कौंध गयी—अप्रतिम सौन्दर्यशालिनी मोहिनीका वस्त्र खिसका और वह नग्नप्राय हो गयी। लाजसे सिकुड़ी मोहिनी लताओंमें छिपनेका प्रयत्न करने लगी और चिता-भस्म-धारण करनेवाले योगिराज कामारिका अवशिष्ट धैर्य भी समाप्त हो गया। वे महामहिमामयी

* कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥ (मानस ७। १०२। २)
कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास। गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥ (मानस ७। १०३ क)

माता पार्वतीके सम्मुख ही लज्जा त्यागकर उन्मत्तकी तरह मोहिनीके पीछे दौड़े।

मोहिनीने योगीश्वर शंकरको अपनी ओर आते देखा तो मुस्कुराकर लताओंकी ओटमें अपने अङ्गोंको छिपानेका प्रयत्न करती हुई दूर भागने लगी। भूतभावन मोहिनीके पीछे दौड़ रहे थे और वह भागी जा रही थी। नीलकण्ठको अपनी स्थितिका अनुमान भी नहीं था। उन्होंने दौड़कर मोहिनीके करका स्पर्श कर लिया।

प्रज्वलित अग्निमें घृताहुति पड़ गयी, पर मोहिनी हाथ छुड़ाकर भागी। उसके स्पर्शसे उत्तेजित कामारि पूर्णतया बेसुध हो चुके थे। वनों, पर्वतों, ऋषियोंके आश्रमों एवं देवलोकमें भी भगवान् शंकर मोहिनीके पीछे-पीछे दौड़ लगा रहे थे और माता पार्वती, शिवगण, सुरगण एवं ऋषिगण—सभी आश्चर्यचकित हो यह दृश्य देख रहे थे; पर थे सभी मौन। असफल काम क्रोधके रूपमें परिणत हो जाता है और फिर प्रलयंकर शंकरके रोषानलकी आहुति कौन बने ! सभी स्तब्ध थे, जैसे सभी जड-से हो गये हों।

अन्ततः योगिराज शिवका रेतस् स्खलित हुआ। अब उन्हें अपनी स्थितिका भान हुआ। विश्वनाथने तुरंत दोनों हाथ जोड़ लिये और मस्तक झुकाकर कहा—'प्रभो! आपकी लीला अगम्य है। आपकी मायाका पार पाना सम्भव नहीं है।'

अपने परमप्रभुकी लीलाकी अगम्यता एवं अनिर्वचनीयताको समझकर भगवान् शंकर उनका ध्यान करने जा ही रहे थे कि उनके सम्मुख वनमालाधारी चतुर्भुज प्रभु प्रकट हुए और उमावल्लभ शिवकी निष्ठा एवं विश्वासकी प्रशंसा कर वे वहीं अन्तर्धान हो गये। परमपिता कर्पूरगौर भी माता पार्वतीके साथ प्रभु-गुण-गान करते हुए कैलासके लिये चल पड़े।

भगवान् शंकरका अमोघ वीर्य व्यर्थ कैसे जाता? उस वीर्यका राम-कार्यकी सिद्धिके लिये प्रयोग करनेकी दृष्टिसे भगवान् शंकरने सप्तर्षियोंको प्रेरित किया। उन्होंने उस वीर्यको पत्तेपर स्थापित कर लिया और समयसे उसे केसरीपत्नी अञ्जनामें कर्ण-मार्गसे प्रवेश करा दिया। उसके फलस्वरूप श्रीहनुमानजी प्रकट हुए।*

× × ×

पतिके साथ दीर्घकालतक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती हुई अञ्जनाको कोई संतान नहीं हुई। इस कारण वे अत्यन्त कठोर तप करने लगीं।

अञ्जनाको तपश्चरण करते देख महामुनि मतङ्गने उनके पास जाकर पूछा—'अञ्जना देवि! तुम इतना कठोर तप किसलिये कर रही हो?'

अञ्जनाने महामुनिके चरणोंमें प्रणाम कर अत्यन्त विनम्रतासे उत्तर दिया—'मुनीश्वर! केसरी नामक श्रेष्ठ वानरने मेरे पितासे मुझे माँगा। उन्होंने मुझे उनकी सेवामें समर्पित कर दिया। मैं अपने पतिदेवके साथ बहुत दिनोंसे अत्यन्त सुखपूर्वक रह रही हूँ; किंतु अबतक मुझे कोई संतान नहीं हुई। इसी कारण मैंने किष्किन्धामें अनेक व्रत, उपवास तथा तप किये; परंतु मुझे पुत्रकी प्राप्ति नहीं हो सकी। अतएव दुःखी होकर मैंने पुत्रके लिये पुनः तपश्चर्या प्रारम्भ की है। विप्रवर! आप कृपापूर्वक मुझे यशस्वी पुत्र प्राप्त होनेका उपाय बताइये।'

तपोधन मतङ्गमुनिने अञ्जनासे कहा—'तुम वृषभाचल (वेङ्कटाचल)-पर जाकर भगवान् वेङ्कटेश्वरके भुक्ति-मुक्ति-दायक चरणोंमें प्रणाम करो। फिर वहाँसे कुछ ही दूर आकाशगङ्गा नामक तीर्थमें जाकर स्नान कर लो। तदनन्तर उसका शुभ जल पीकर वायुदेवको प्रसन्न करो। इससे तुम्हें देवता, राक्षस, मनुष्यसे अजेय तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे भी अवध्य पुत्र प्राप्त होगा।'

देवी अञ्जनाने महामुनिके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने वृषभाचलकी यात्रा की। वहाँ पहुँचकर भगवान् वेङ्कटेश्वरके चरणोंकी अत्यन्त भक्तिपूर्वक वन्दना की। इसके बाद उन्होंने 'आकाशगङ्गा' नामक तीर्थमें स्नान कर उसके परम पावन जलका पान किया। फिर उसके तटपर तीर्थकी ओर मुँह करके वायुदेवताकी प्रसन्नताके लिये अत्यन्त संयमपूर्वक तपश्चरण प्रारम्भ किया। अञ्जना अत्यन्त श्रद्धा, विश्वास एवं धैर्यपूर्वक तप करती रहीं, शारीरिक कष्टोंकी तनिक भी चिन्ता न कर वे अखण्ड तप करती ही रहीं।

भगवान् सूर्य मेषराशिपर थे। चित्रानक्षत्रयुक्त पूर्णिमा तिथि थी। अञ्जनाके कठोर तपश्चरणसे तुष्ट वायुदेवता प्रकट हो गये। उन्होंने अञ्जनासे कहा—'देवि! मैं तुम्हारे तपसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँगो; मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

वायुदेवका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त कर प्रसन्न अञ्जनाने उनके चरणोंमें प्रणाम कर अपना मनोरथ प्रकट कर दिया—'महाभाग! मुझे उत्तम पुत्र प्रदान कीजिये।'

* शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता, अध्याय २० के आधारपर।

संतुष्ट वायुदेवने कहा—'सुमुखि! मैं ही तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हें विश्वविख्यात कर दूँगा।'

वर प्राप्त कर अञ्जनादेवीकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। अपनी प्राणप्रियाकी वर-प्राप्तिका संवाद पाकर कपिराज केसरी भी अत्यन्त मुदित हुए।[1]

एक बारकी बात है। परम लावण्यवती विशाललोचना माता अञ्जनाने शृङ्गार किया। उनके सुन्दर कलेवरपर पीली साड़ी शोभा दे रही थी। साड़ीका किनारा लाल रंगका था। वे विविध सुगन्धित सुमनोंके अद्भुत आभूषणोंसे दिव्य सौन्दर्यकी सजीव प्रतिमा-सी प्रतीत हो रही थीं।

माता अञ्जना पर्वत-शिखरपर खड़ी होकर प्राकृतिक सौन्दर्य देख-देखकर मन-ही-मन मुदित हो रही थीं। उस समय उनके मनमें कामना उदित हुई—'कितना अच्छा होता, यदि मेरे एक सुयोग्य पुत्र होता।'

सहसा वायुका तीव्र झोंका आया और अञ्जनाकी साड़ीका अञ्चल कुछ खिसक गया। उनके अङ्ग दीखने लगे। अञ्जनाने अनुभव किया, जैसे मुझे कोई स्पर्श कर रहा है।

सहमती हुई सती अञ्जनाने अपना वस्त्र सँभाला और अपना स्पर्श करनेवालेको डाँटते हुए कहा—'कौन ढीठ मेरे पातिव्रत्यका नाश करना चाहता है?' वे शाप देनेके लिये प्रस्तुत हो गयीं।

परम सती अञ्जनाको क्रुद्ध देखकर पवनदेव प्रकट हो गये।

उन्होंने कहा—'यशस्विनि! मैं तुम्हारे एकपतिव्रतका नाश नहीं कर रहा हूँ। अतः तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिये। मैंने अव्यक्तरूपसे तुम्हारा आलिङ्गन करके मानसिक संकल्पद्वारा तुम्हें बल-पराक्रमसे सम्पन्न एवं बुद्धिमान् पुत्र प्रदान किया है। तुम्हारा पुत्र महान् धैर्यवान्, महातेजस्वी, महाबली, महापराक्रमी तथा लाँघने और छलाँग मारनेमें मेरे ही समान होगा।'

माता अञ्जना प्रसन्न हो गयीं। उन्होंने पवनदेवको क्षमा कर दिया। अञ्जना गर्भवती हुईं। कपिराज केसरीकी प्रसन्नताकी सीमा न थी।[2]

× × ×

अधिक आयु बीत जानेपर भी कोई संतान न होनेसे रघुकुलशिरोमणि राजा दशरथके मनमें अत्यधिक ग्लानि हुई। उन्होंने वसिष्ठजीके आदेशानुसार महर्षि ऋष्यशृङ्गके द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया। ऋषिने भक्तिपूर्वक आहुतियाँ दीं। इससे प्रसन्न होकर अग्निदेव हाथमें चरु (हविष्यान्न, खीर) लिये प्रकट हुए और उन्होंने राजा दशरथसे कहा—'तुम्हारे कार्यकी सिद्धि हो गयी। अब तुम इस खीरको रानियोंमें यथाक्रम बाँट दो।' अग्निदेव अन्तर्धान हो गये।

राजा दशरथने पायसका आधा भाग बड़ी रानी कौसल्याको दिया और शेष आधेके दो भाग किये, जिनमेंसे एक भाग कैकेयीको दिया। शेषके दो भाग हुए और राजाने उनको कौसल्या एवं कैकेयीके हाथपर रखकर, उनका मन प्रसन्न कर अर्थात् उनकी अनुमतिसे सुमित्राको दे दिया।

कैकेयी हाथमें पायस लिये हुए कुछ विचार कर रही थीं कि सहसा आकाशसे एक गृध्रीने झपटकर चरुको अपनी चोंचमें ले लिया और वह तुरंत आकाशमें उड़ गयी।

अब तो कैकेयी व्याकुल हो गयीं। तब महाराज दशरथकी प्रेरणासे कौसल्या तथा सुमित्राने अपने चरुका थोड़ा-थोड़ा भाग कैकेयीको दिया। तीनों रानियाँ गर्भवती हुईं। महारानी कौसल्याके अङ्कमें श्रीरामचन्द्रजी, कैकेयीकी गोदमें भरतजी एवं सुमित्रादेवीको कृतार्थ करनेके लिये लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी प्रकट हुए।

कपिराज केसरी अपनी सुन्दरी सहधर्मिणी अञ्जनाके साथ सुमेरुपर्वतपर निवास करते थे। अञ्जनाने पुत्रकी प्राप्तिके लिये सात सहस्र वर्षोंतक कर्पूरगौर उमानाथकी उपासना की। प्रसन्न होकर आशुतोषने अञ्जनासे वर माँगनेके लिये कहा।

अञ्जनाने सर्वलोकमहेश्वरके चरणोंमें प्रणाम कर अत्यन्त विनयपूर्वक याचना की—'करुणामय शम्भो ! मैं समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न योग्यतम पुत्र चाहती हूँ।'

प्रसन्न भोलेनाथने कहा—'एकादश रुद्रोंमेंसे मेरा अंश ग्यारहवाँ रुद्ररूप ही तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट होगा। तुम मन्त्र ग्रहण करो। पवनदेवता तुम्हें प्रसाद देंगे। पवनके उस प्रसादसे ही तुम्हें सर्वगुणसम्पन्न पुत्रकी प्राप्ति होगी।'

पार्वतीश्वर अन्तर्धान हो गये और भगवती अञ्जना अञ्जलि पसारे शिव-प्रदत्त मन्त्रका जप करने लगीं। उसी समय उक्त गृध्री कैकेयीके भागका पायस लिये आकाशमें उड़ती हुई जा रही थी। सहसा झंझावात आया।

---

१. स्कन्दपुराण (वैष्णवखण्ड)-के आधारपर।

२. वाल्मीकिरामायण किष्किन्धाकाण्डके ६६वें अध्यायके आधारपर।

गृध्रीका अङ्ग सिकुड़ने लगा और पायस उसकी चोंचसे गिर गया। पवनदेव पहलेसे ही तैयार थे। उन्होंने उक्त चरु अञ्जनाकी अञ्जलिमें डाल दिया। भगवान् शंकर पहले ही बता चुके थे; अञ्जनाने तुरंत पवन-प्रदत्त चरु अत्यन्त आदरपूर्वक ग्रहण कर लिया और वे गर्भवती हो गयीं।[1]

श्रीहनुमानका अवतरण

चैत्र शुक्ल १५ मङ्गलवारकी पवित्र वेला थी। भगवान् शिव अपने परमाराध्य श्रीरामकी मुनि-मनमोहिनी अवतार-लीलाके दर्शन[2] एवं उसमें सहायता प्रदान करनेके लिये अपने अंश ग्यारहवें रुद्रसे[3] इस शुभ तिथि और शुभ मुहूर्तमें माता अञ्जनाके गर्भसे पवन-पुत्र महावीर हनुमानके रूपमें धरतीपर अवतरित हुए। कल्पभेदसे कुछ लोग इनका प्राकट्य-काल चैत्र शुक्ल एकादशीके दिन मघा नक्षत्रमें मानते हैं, कुछ कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीको और कुछ कार्तिकी पूर्णिमाको पवन-पुत्रका जन्म मानते हैं। कोई मंगलवार तो कोई शनिवारको उनका जन्म-दिन स्वीकार करते हैं।[4] भावुक भक्तोंके लिये अपने आराध्यकी सभी पुण्यमयी तिथियाँ श्रेष्ठ हैं।

भगवान् शिवके ग्यारहवें रुद्रावतार—मारुतात्मज, केसरी-किशोर, अञ्जना-नन्दनके धरतीपर चरण रखनेके समय प्रकृति पूर्णतया रम्य हो गयी थी। दिशाएँ प्रसन्न थीं। सूर्यदेवकी किरणें सुखद-शीतल थीं। सरिताओंमें स्वच्छ सलिल बहने लगा था। पर्वत उत्सुक नेत्रोंसे आञ्जनेयके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रपात प्रसन्नतासे उछलते हुए गतिशील थे। वनों, उपवनों, बागों और वाटिकाओंमें विविध रंगके मनोहर पुष्प खिल उठे थे; उनपर भ्रमरावली गुञ्जार कर रही थी। मदमत्त वायु मन्थर गतिसे डोल रहा था।

भगवान् शंकर माता अञ्जनाके लालके रूपमें प्रकट हुए। प्राकट्य-कालमें ही हनुमानजीका सौन्दर्य अतुलनीय एवं अवर्णनीय था। उनकी अङ्ग-कान्ति पिङ्गलवर्णकी थी। उनके रोम, केश एवं नेत्र भी पिङ्गलवर्णके ही थे। हनुमानजी विद्युच्छटा-तुल्य सुवर्णनिर्मित मनोहर कुण्डल धारण किये हुए ही माता अञ्जनाकी कुक्षिसे अवतरित हुए। उनके मस्तकपर मणि-जटित टोपी शोभा दे रही थी और वे कौपीन एवं कछनी काछे हुए थे। उनके प्रशस्त वक्षपर यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था एवं हाथमें वज्र और कटिप्रदेशमें मूँजकी मेखला सुशोभित थी। अपने पुत्रका अलौकिक रूप-सौन्दर्य देखते ही माता अञ्जना आनन्द-विभोर हो गयीं।

भाग्यवती धरित्रीपर हनुमानजीके चरण रखते ही माता अञ्जना और कपिराज केसरीके आनन्दकी तो सीमा ही नहीं थी, चतुर्दिक् हर्षोल्लासकी लहरें दौड़ पड़ीं। देवगण, ऋषिगण, कपिगण, पर्वत, प्रपात, सर, सरिता, समुद्र, पशु-पक्षी और जड-चेतन ही नहीं, स्वयं माता वसुंधरा पुलकित हो उठीं। सर्वत्र हर्ष एवं उल्लास प्रसरित था। चतुर्दिक् आनन्दका साम्राज्य व्याप्त हो गया था।

---

१. ब्रह्मलोककी दिव्य अप्सराओंमेंसे सुवर्चला नामक अप्सराकी कुचेष्टासे क्रुद्ध होकर पितामहने उसे मर्त्यलोकमें गृध्री हो जानेका शाप दे दिया। वह करुण प्रार्थना करने लगी। तब ब्रह्माने कहा—'राजा दशरथके पुत्रेष्टियज्ञमें अग्निदेव चरुके साथ प्रकट होंगे। वह चरु तीनों रानियोंमें वितरित होगा। तू कैकेयीके भागका चरु लेकर उड़ जायगी। चरु तो तू खा नहीं सकेगी, किंतु उसके स्पर्शसे ही तू उक्त कुत्सित योनिसे मुक्त होकर पुनः अप्सराका रूप धारण करके ब्रह्मलोकमें आ जायगी।'

लोकपितामहके वचनानुसार वैसी ही घटना घटी और गृध्रीकी चोंचसे चरु छूटते ही उसका शरीर छूट गया और वह पूर्ववत् दिव्य अप्सरा होकर ब्रह्मलोकमें चली गयी। (आनन्दरामायणके आधारपर)

२. जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान। रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥

जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान। पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान॥ (दोहावली १४२-४३)

३. (क) जयति रणधीर, रघुबीरहित, देवमणिरुद्र-अवतार, संसार-पाता। (ख) जयति मर्कटाधीश, मृगराज-विक्रम, महादेव, मुद-मंगलालय, कपाली। (ग) जयति मंगलागार, संसार-भारापहर, वानराकारविग्रह पुरारी। (घ) रामपदपद्म-मकरंद-मधुकर, पाहि, दास, तुलसी शरण, शूलपाणी। (विनय-पत्रिका २५, २६, २७ और २९वें पदमें) (ङ) यो वै चैकादशो रुद्रो हनुमान् स महाकपिः॥ अवतीर्णः सहायार्थं विष्णोरमिततेजसः। (स्क०, माहे०, के० ८। ९९-१००)

'ग्यारहवें रुद्र ही अमित तेजस्वी विष्णुकी सहायताके लिये महाकपि हनुमानके रूपमें अवतरित हुए।'

४. (क) चैत्रे मासि सिते पक्षे हरिदिन्यां मघाभिधे। नक्षत्रे स समुत्पन्नो हनुमान् रिपुसूदनः॥ महाचैत्रीपूर्णिमायां समुत्पन्नोऽञ्जनीसुतः। वदन्ति कल्पभेदेन बुधा इत्यादि केचन॥ (आनन्दरामायण, सारका० १३। १६२-६३)

'चैत्र शुक्ल एकादशीके दिन मघानक्षत्रमें शत्रुसूदन हनुमानजीका जन्म हुआ था। कुछ विद्वान् कल्पभेदसे चैत्रकी पूर्णिमाके

बाल्यकाल

माता अञ्जना अपने प्राणप्रिय पुत्र हनुमानजीका लालन-पालन बड़े ही मनोयोगपूर्वक करतीं। कपिराज केसरी भी उन्हें अतिशय प्यार करते। जब हनुमानजी प्रसन्नतापूर्वक किलकते तो अञ्जना और केसरी आनन्द-मग्न हो जाते। हनुमानकी बाल-क्रीड़ाएँ अत्यन्त आकर्षक और सुखद तो थीं ही, अद्भुत भी होती थीं।

एक बारकी बात है। कपिराज केसरी कहीं बाहर गये थे। माता अञ्जना भी बालकको पालनेमें लिटाकर वनमें फल-फूल लेने चली गयीं। बालक हनुमानजीको भूख लगी। माताकी अनुपस्थितिमें वे हाथ-पैर उछाल-उछालकर क्रन्दन करने लगे। सहसा उनकी दृष्टि प्राचीके क्षितिजपर गयी। अरुणोदय हो रहा था। उन्होंने सूर्यके अरुण बिम्बको लाल फल समझा।[1]

तेज और पराक्रमके लिये अवस्था अपेक्षित नहीं। यहाँ तो हनुमानजीके रूपमें अञ्जनाके अङ्कमें प्रत्यक्ष प्रलयंकर शंकर ग्यारहवें रुद्र क्रीड़ा कर रहे थे। वायुदेवने पहले ही उन्हें उड़नेकी शक्ति प्रदान कर दी थी। हनुमानजी उछले और वायुवेगसे आकाशमें उड़ने लगे। पवनपुत्र तीव्र गतिसे उड़ते चले जा रहे थे। उन्हें इस प्रकार वेगपूर्वक उड़ते देखकर देव, दानव और यक्षादि विस्मित होकर कहने लगे—'इस वायुपुत्रके वेगके तुल्य वेग तो स्वयं वायु, गरुड़ और मनमें भी नहीं है। इसी आयुमें शिशुका ऐसा वेग और पराक्रम है तो यौवनकालमें इसकी शक्ति कैसी होगी!'

वायुदेवने अपने पुत्रको सूर्यकी ओर जाते देखा तो उनके मनमें चिन्ता हुई—'मेरा यह बच्चा कहीं सूर्यकी प्रखर किरणोंसे झुलस न जाय'—इस कारण वे बर्फके समान शीतल होकर उसके साथ चलने लगे।

सूर्यदेवने भी अलौकिक बालकको अपनी ओर आते देखा तो उन्हें समझते देर न लगी कि ये पवन-पुत्र अपने पिताके वेगसे मेरी ओर आ रहे हैं और स्वयं पवनदेव भी उनकी रक्षा करनेके लिये साथ ही उड़ रहे हैं। सूर्यदेवने अपना सौभाग्य समझा—'अहा! स्वयं भगवान् चन्द्रमौलि ही हनुमानजीके रूपमें मुझे कृतार्थ करनेके लिये पधार रहे हैं!' अंशुमालीकी अग्निमयी किरणें शीतल हो गयीं। हनुमानजी सूर्यके रथपर पहुँचकर उनके साथ क्रीड़ा करने लगे।

संयोगकी बात, उस दिन अमावस्या तिथि थी। सिंहिकापुत्र राहु सूर्यदेवको ग्रसनेके लिये आया तो भुवनभास्करके रथपर बैठे हुए उस बालकको देखा। राहु बालककी चिन्ता न कर दिनमणिको ग्रसनेके लिये आगे बढ़ा ही था कि हनुमानजीने उसे पकड़ लिया। उनकी वज्रमुष्टिमें दबकर राहु छटपटाने लगा। वह किसी प्रकार प्राण बचाकर भागा। वह सीधा सुरपति इन्द्रके समीप पहुँचा और उसने भौंहें टेढ़ी कर क्रोधके साथ कहा—'सुरेश्वर! मेरी क्षुधाका निवारण करनेके लिये आपने मुझे सूर्य और चन्द्रको साधनके रूपमें प्रदान किया था, किंतु अब आपने यह अधिकार दूसरेको किस कारण दे दिया?'

क्रुद्ध सिंहिकापुत्र राहुकी चकित करनेवाली वाणी सुनकर सुरेन्द्र उसका मुँह देखने लगे। उसने आगे कहा—'आज पर्वके समय मैं सूर्यको ग्रसनेके लिये उनके समीप गया ही था कि वहाँ पहलेसे ही उपस्थित दूसरे राहुने मुझे कसकर पकड़ लिया। मैं किसी प्रकार अपनी जान बचाकर यहाँ आ पाया हूँ।'

नेत्रोंमें आँसूभरे क्रुद्ध राहुकी वाणी सुनकर वासव चिन्तित हो उठे। वे अपने सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये और ऐरावतपर बैठकर घटना-स्थलकी ओर चले। राहु उनके आगे-आगे चला। शचीपति आश्चर्यचकित हो मन-ही-मन सोच रहे थे—'तिमिरारिके समीप ऐसा कौन पराक्रमी पहुँच गया, जिसके भयसे सिंहिकापुत्रको प्राण बचाकर भागना पड़ा।'

उधर राहु बड़े वेगसे सूर्यकी ओर दौड़ा। उसे देखते ही हनुमानजीको भूखकी स्मृति हुई। वे राहुको सुन्दर भक्ष्य समझकर उसपर टूट पड़े।

दिन हनुमानजीका शुभ-जन्म बतलाते हैं।' (ख) ·····प्रादुरासीत्तदा तां वै भाषमाणो महामतिः। मेषसंक्रमणं भानौ सम्प्राप्ते मुनिसत्तमाः। पूर्णिमाख्ये तिथौ पुण्ये चित्रानक्षत्रसंयुते॥ (स्कन्दपु०, वैष्णवखं० ४०। ४२-४३) (ग) आश्विनस्यासिते पक्षे स्वात्यां भौमे चतुर्दशी। मेषलग्नेऽञ्जनीगर्भात् स्वयं जातो हरः शिवः॥ (वायुपुराण) (घ) शुक्लादिमासगणनया आश्विनकृष्णः कार्तिककृष्णः, तुलार्के मेषलग्ने सायंकाले। अतश्चतुर्दश्यां सायंकाले जन्मोत्सवः। (हृषीकेश-पञ्चाङ्ग, वाराणसी)

१. ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि यह घटना भी श्रीहनुमानजीके जन्मके समयकी है—

(क) अध्यात्मरामायण ४। ९। १८-१९। (ख) असौ हि जातमात्रोऽपि बालार्क इव मूर्तिमान्। ग्रहीतुकामो बालार्कं पुप्लावाम्बरमध्यतः॥ (स्कन्दपु०, अवन्तीखण्ड, चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्य ७९। २४)

'सुरेश्वर! बचाइये! बचाइये!!'—चिल्लाता हुआ राहु इन्द्रकी ओर भागा।

सुरेन्द्र राहुकी रक्षाके लिये दौड़े। राहुके बच निकलनेपर हनुमानजीने ऐरावतको देखा तो उसे सुन्दर सुस्वादु खाद्य समझा। वे ऐरावतपर झपटे। उस समय हनुमानजीका स्वरूप प्रज्वलित अग्निकी भाँति प्रकाशित और भयानक प्रतीत हो रहा था। इन्द्र डर गये। अपनी रक्षाके लिये उन्होंने बालकपर वज्रसे प्रहार किया। वह हनुमानजीकी बायीं हनु (ठुड्डी)-में लगा, जिससे उनकी हनु टूट गयी और वे छटपटाते हुए पर्वत-शिखरपर गिरकर मूर्च्छित हो गये।

अपने प्राणप्रिय पुत्रको वज्रके आघातसे छटपटाते देख वायुदेव इन्द्रपर अत्यन्त कुपित हुए। शक्तिशाली वायुदेवने अपनी गति रोक दी और वे अपने पुत्रको अङ्कमें लेकर पर्वतकी गुफामें प्रविष्ट हो गये।

फिर तो त्रिभुवनके समस्त प्राणियोंमें श्वास आदिका संचार रुक गया। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके जोड़ टूटने लगे और वे सब-के-सब सूखे काठकी तरह अवसन्न हो गये। उनके सारे धर्म-कर्म रुक गये।

प्राण-संकटसे भयभीत इन्द्र, देव, गन्धर्व, असुर, नाग, गुह्यक आदि जीवन-रक्षाके लिये ब्रह्माजीके पास दौड़े। ब्रह्माजी सबको साथ लेकर उस गिरि-गुहामें पहुँचे, जहाँ पवनदेव अपने पुत्रको अङ्कमें लेकर वक्षसे सटाये दु:खातिरेकसे आँसू बहा रहे थे। मूर्च्छित हनुमानजीकी सूर्य, अग्नि एवं सुवर्णके समान अङ्ग-कान्ति देखकर चतुर्मुख चकित हो गये।

अपने सम्मुख स्रष्टाको देखते ही पवनदेव पुत्रको गोदमें लेकर खड़े हो गये। उस समय हनुमानजीके कानोंमें अलौकिक कुण्डल हिल रहे थे। उनके मस्तकपर मुकुट, गलेमें हार और दिव्य अङ्गोंपर सुवर्णके आभूषण सुशोभित थे। पवनदेवता विधाताके चरणोंपर गिर पड़े।

चतुराननने अपने हाथोंसे अत्यन्त स्नेहपूर्वक पवनदेवको उठाया और उनके पुत्रके अङ्गोंपर अपना कर-कमल फेरने लगे। कमलयोनिके कर-स्पर्शसे पवन-पुत्र हनुमानजीकी मूर्च्छा दूर हो गयी। वे उठकर बैठ गये। अपने पुत्रको जीवित देखते ही जगत्‌के प्राणस्वरूप पवनदेव पूर्ववत् बहने लगे और त्रैलोक्यको जीवन-दान मिला।

ब्रह्माने संतुष्ट होकर हनुमानजीको वर प्रदान करते हुए कहा—'इस बालकको ब्रह्मशाप नहीं लगेगा और इसका कोई अङ्ग कभी भी शस्त्रास्त्रसे नहीं छिद सकेगा।'

फिर उन्होंने सुर-समुदायसे कहा—'देवताओ! यह असाधारण बालक भविष्यमें आपलोगोंका बड़ा हित-साधन करेगा, अतएव आपलोग इसे वर प्रदान करें।'

देवराज इन्द्रने तुरंत प्रसन्नतापूर्वक हनुमानजीके कण्ठमें अम्लान कमलोंकी माला पहनाकर कहा—''मेरे हाथसे छूटे हुए वज्रके द्वारा इस बालककी हनु (ठुड्डी) टूट गयी थी, इसलिये इस कपिश्रेष्ठका नाम 'हनुमान' होगा * इसके अतिरिक्त इस बालकपर मेरे वज्रका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और इसका शरीर मेरे वज्रसे भी अधिक कठोर होगा।''

वहाँ उपस्थित सूर्यदेवने कहा—'मैं इसे अपने तेजका शतांश प्रदान करता हूँ; साथ ही समयपर इसे शिक्षा देकर शास्त्र-मर्मज्ञ भी बना दूँगा। यह अद्वितीय विद्वान् और वक्ता होगा।'

वरुणने कहा—'मेरे पाश और जलसे यह बालक सदा सुरक्षित रहेगा।'

यमदेव बोले—'यह नीरोग और मेरे दण्डसे सदा अवध्य रहेगा।'

पिङ्गलवर्णके यक्षराज कुबेरने कहा—'युद्धमें इसे कभी विषाद नहीं होगा। मेरी गदासे यह सुरक्षित तो रहेगा ही, मेरे यक्ष-राक्षसोंसे भी कभी पराजित नहीं हो सकेगा।'

भगवान् शंकरने वर प्रदान किया—'यह मुझसे और मेरे आयुधोंसे सदा अवध्य रहेगा।'

विश्वकर्मा बोले—'यह बालक मेरे द्वारा निर्मित समस्त दिव्य अस्त्रों और शस्त्रोंसे सदा सुरक्षित रहकर चिरायु होगा।'

इस प्रकार देवताओंके अमोघ वरदान दे लेनेपर कमलयोनि ब्रह्माने अत्यन्त प्रसन्न होकर पुन: कहा—'यह दीर्घायु, महात्मा तथा सब प्रकारके ब्रह्मदण्डोंसे अवध्य होगा।'

फिर प्रसन्न चतुराननने पवनदेवसे कहा—'मारुत! तुम्हारा यह पुत्र शत्रुओंके लिये भयंकर और मित्रोंके लिये अभय देनेवाला होगा। इसे युद्धमें कोई पराजित नहीं कर सकेगा। यह इच्छानुसार रूप धारणकर जहाँ चाहेगा, जा सकेगा। इसकी अव्याहत गति होगी। यह अत्यन्त यशस्वी होगा और अत्यन्त अद्भुत एवं रोमाञ्चकारी कार्य करेगा।'

इस प्रकार वर प्रदान कर ब्रह्मादि देवगण तथा असुरादि अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हुए।

* मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथा हत:। नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति॥ (वा० रा० ७। ३६। ११)

ऋषियोंका शाप

बालक हनुमान बड़े ही चञ्चल और नटखट थे। एक तो प्रलयंकर शंकरके अवतार, दूसरे कपि-शावक, उसपर देवताओंद्वारा प्रदत्त अमोघ वरदान। इनकी चपलतासे माता-पिता प्रसन्न होते। मृगराजकी पूँछ पकड़कर उसे चारों ओर घुमाना और हाथीको पकड़कर उसकी शक्तिका अनुमान लगाना तो प्राय: इनकी नित्यकी क्रीड़ाके अन्तर्गत था। कभी ये विशाल वृक्षोंको मूलसहित हिला देते। पर्वतका कोई शिखर ऐसा नहीं था, जहाँ ये छलाँग मारकर न पहुँच जायँ। सम्पूर्ण अगम्य वन एवं पर्वत इनके देखे-भाले थे।

वनके प्राणी प्राय: इनसे घबराते, किंतु अंदरसे इन्हें प्यार भी करते थे। ये समस्त प्राणियोंके मित्र और रक्षक थे। कोई सबल किसी दुर्बलको कष्ट दे, यह हनुमानजीको सह्य नहीं था। ये एक वृक्षकी चोटीसे दूसरे वृक्षकी चोटीपर कूदते हुए योजनों दूर निकल जाते। इनके भारसे यदि किसी वृक्षकी डालके टूटनेकी आशङ्का होती तो ये हल्के हो जाते।

वरदानजनित शक्तिसे सम्पन्न हनुमानजी तपस्वी ऋषियोंके आश्रमोंमें चले जाते और वहाँ कुछ-न-कुछ ऐसी चपलता कर बैठते, जिससे ऋषियोंको क्लेश पहुँचता। एक ऋषिका आसन दूसरे ऋषिके समीप रख देते। किसीका मृगचर्म ओढ़कर पेड़ोंपर कूदते या उसे किसी वृक्षपर टाँग देते। किसीके कमण्डलुका जल उलट देते तो किसीका कमण्डलु पटककर फोड़ देते या उसको जलमें बहा देते।

हनुमानजी जप करते मुनियोंके अङ्कमें बैठ जाते। अहिंसापरायण मुनि ध्यानस्थ होकर जप करते रहते, किंतु ये वानर-शिरोमणि मुनिकी दाढ़ी नोचकर भाग जाते। किसीकी कौपीन तो किसीके पाठकी पोथी अपने दाँतों और हाथोंसे फाड़कर फेंक देते। ये महाबली पवन-कुमार महात्माओंके यज्ञोपयोगी पात्र भी नष्ट कर देते। स्रुक्-स्रुवा आदिको तोड़ देते तथा कठिनाईसे प्राप्त ढेर-के-ढेर वल्कलोंको चीर-फाड़कर फेंक देते थे। ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा दिये गये वरदानसे परिचित होनेके कारण ऋषिगण अवश थे; चुप रह जाते, पर उन्हें बड़ा क्लेश पहुँचता।

धीरे-धीरे हनुमानजीकी आयु विद्याध्ययनके योग्य हो गयी, पर इनकी चञ्चलता बनी ही रही। माता-पिता भी बड़े चिन्तित थे। उन्होंने अपने प्राणप्रिय लालको अनेक प्रकारसे समझाया, कई प्रकारके यत्न किये, किंतु हनुमानजीकी चपलतामें कमी नहीं आयी। अन्तत: अञ्जना और वानरराज केसरी ऋषियोंके समीप पहुँचे। ऋषियोंने भी अपनी कष्ट-गाथा उन्हें कह सुनायी। उन्होंने ऋषियोंसे विनम्रतापूर्वक निवेदन किया—'तपोधनो! हमें यह बालक बहुत दिनोंके बाद कठोर तपके प्रभावसे प्राप्त हुआ है। आपलोग इसपर अनुग्रह करें। ऐसी कृपा करें, जिससे यह विद्या प्राप्त कर ले। आपलोगोंकी करुणासे ही इसका स्वभाव-परिवर्तन सम्भव है। आप हम दीनोंपर दया करें।'

ऋषियोंने सोचा—'इसे अपनी अमित शक्ति एवं पराक्रमका अभिमान है। यदि यह अपना बल भूल जाय तो इसका यथार्थ हित हो सकता है।'

कुछ वयोवृद्ध समर्थ ऋषि यह भी जानते थे कि 'यह बालक देवताओंका हित-साधन करनेवाला है। यह भगवान् श्रीरामका अनन्य भक्त होगा और अनुगत भक्तके लिये बलका अहंकार उचित नहीं। दीन-भावसे ही प्रभुका कैङ्कर्य निभ सकेगा।'

इस कारण भृगु एवं अङ्गिराके वंशमें उत्पन्न हुए ऋषियोंने हनुमानजीको शाप दे दिया—'वानरवीर ! तुम जिस बलका आश्रय लेकर हमें सता रहे हो, उसे हमारे शापसे मोहित होकर दीर्घ-कालतक भूले रहोगे—तुम्हें अपने बलका पता ही न चलेगा। जब कोई तुम्हें तुम्हारी कीर्तिका स्मरण दिलायेगा, तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा।*'

तपस्वी मुनियोंके इस प्रकार शाप देनेसे पवनकुमारका तेज और ओज कम हो गया और ये अत्यन्त सौम्य स्वभावके हो गये। अब ये अन्य कपि-किशोरोंकी तरह आश्रमोंमें शान्तभावसे विचरण करते। इनके मृदुल व्यवहारसे ऋषि-मुनि भी प्रसन्न रहने लगे।

* बाधसे यत् समाश्रित्य बलमस्मान् प्लवंगम। तद् दीर्घकालं वेत्तासि नास्माकं शापमोहित:॥ यदा ते स्मार्यते कीर्तिस्तदा ते वर्धते बलम्॥ (वा० रा० ७।३६।३४-३५)

मातृ-शिक्षा

बालकपर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है—माताके जीवन एवं उसकी शिक्षाका। आदर्श माताएँ अपने पुत्रको श्रेष्ठ एवं आदर्श बना देती हैं। पुराण-इतिहासोंमें ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं।

हनुमानजीकी माता अञ्जना—अञ्जनादेवी परम सदाचारिणी, तपस्विनी एवं सद्गुण-सम्पन्न आदर्श माता थीं। उन्होंने अपने लालको प्राप्त करनेके लिये जितनी तत्परतासे कठोर तपश्चरण किया था, उसी तत्परतासे वे अपने प्राणप्रिय बालकका जीवन-निर्माण करनेके लिये सजग और सावधान रहती थीं। वे हनुमानजीके वीरतापूर्ण कार्य देखकर मन-ही-मन मुदित होतीं और उन्हें प्रोत्साहन देतीं।

पूजनोपरान्त और रात्रिमें शयनके पूर्व वे अपने प्राणाधिक प्रिय पुत्रको पुराणोंकी कथाएँ सुनाया करतीं। वे आदर्श पुरुषोंके चरित्र बार-बार सुनातीं और अपने पुत्रका ध्यान उनकी ओर आकर्षित करती रहतीं। वे महापुरुषोंके जो चरित्र सुनातीं, उन्हें पुनः-पुनः अपने लालसे भी पूछतीं; और उनका लाल—उसे क्या सीखना था! सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी शिवसे गोपनीय क्या है? किंतु लीलामें कभी-कभी हनुमानजी अनजान बनकर ठीक उत्तर न देते तो माता उसे पुनः सुनाकर कण्ठस्थ करा देतीं। करुणावरुणालयके अवतारोंकी समस्त कथाएँ हनुमानजीके जिह्वाग्रपर थीं। उन श्रेष्ठ कथाओंको वे अपने समवयस्क कपि-किशोरोंको अत्यन्त प्रेम और उत्साहपूर्वक सुनाया करते।

माता अञ्जना जब भगवान् श्रीरामके अवतारकी कथा प्रारम्भ करतीं, तब बालक हनुमानका सारा ध्यान उक्त कथामें ही केन्द्रित हो जाता। निद्रा उनके समीप फटकने नहीं पाती थी। माताको झपकी आती तो हनुमानजी उन्हें झकझोरकर कहते—'माँ! आगे कह, फिर क्या हुआ?'

माता फिर कहने लगतीं। श्रीराम-कथाके श्रवणसे हनुमानजीकी तृप्ति ही नहीं होती थी। वे माँसे बार-बार श्रीराम-कथा ही सुनानेका आग्रह करते। माता अञ्जना उल्लासपूर्वक कथा सुनातीं और हनुमानजी उस कथाके श्रवणसे भाव-विभोर हो जाते। उनके नेत्रोंमें अश्रु भर आते, अङ्ग फड़कने लगते। वे सोचते—'यदि मैं भी वही हनुमान होता!'

कथा सुनाते-सुनाते माता अञ्जना पूछ बैठतीं—'बेटा! तू भी वैसा ही हनुमान बनेगा?'

'हाँ, माँ ! अवश्य वही हनुमान बनूँगा।'—हनुमानजी उत्तर देते। 'पर श्रीराम और रावण कहाँ हैं ? यदि रावणने जननी सीताकी ओर दृष्टिपात किया तो मैं उसे पीसकर रख दूँगा।'

माता अञ्जना कहतीं—'बेटा! तू भी वही हनुमान हो जा। अब भी लंकामें एक रावण राज्य करता है और अयोध्या-नरेश दशरथके पुत्रके रूपमें श्रीरामका अवतार भी हो चुका है। तू जल्दी ही बड़ा हो जा। श्रीरामकी सहायता करनेके लिये बल और पौरुषकी आवश्यकता है। तू यथाशीघ्र बलवान् और पराक्रमी हो जा।'

'माँ! मुझमें शक्तिकी कमी कहाँ है?' हनुमानजी रात्रिमें शय्यासे कूद पड़ते और अपना भुजदण्ड दिखाकर माँके सम्मुख अमित शक्तिशाली होनेका प्रमाण देने लगते। माता अञ्जना हँसने लगतीं और फिर अपने प्यारे बालक हनुमानजीको अङ्कमें लेकर थपकी देने तथा मधुर स्वरसे प्रभु-स्तवन सुनाती हुई सुलाने लगतीं। हनुमानजी माता अञ्जनाके वक्षमें चिपककर सुखपूर्वक सो जाते।

सहज अनुरागसे हनुमानजी बार-बार श्रीराम-कथा श्रवण करते। बार-बार श्रीराम-कथाके श्रवण करनेसे वे बार-बार भगवान् श्रीरामका स्मरण और चिन्तन करते; फलतः उनका श्रीराम-स्मरण उत्तरोत्तर गाढ़ होता गया। धीरे-धीरे उनका अधिकांश समय श्रीरामके ध्यान और स्मरणमें ही व्यतीत होने लगा। वे कभी अरण्यमें, कभी पर्वतकी गुफामें, कभी सरिताके तटपर और कभी सघन कुञ्जमें ध्यानस्थ बैठ जाते। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु प्रवाहित होता रहता।

इस प्रकार ध्यानकी तन्मयताके कारण उन्हें क्षुधा और तृषाका भी ज्ञान नहीं रहता। माता अञ्जना मध्याह्न और सायंकाल अपने हृदय-खण्ड हनुमानजीको ढूँढ़ने निकलतीं। वे जानती थीं—मेरा पुत्र कहाँ होगा। वे वन, पर्वत, सरिता, निर्झर एवं अरण्यमें घूम-घूमकर हनुमानजीको ढूँढ़कर लातीं, तब कहीं माताके आग्रहसे उनके मुँहमें ग्रास पहुँचता और यह क्रम प्रतिदिन चलने लगा। हनुमानजी अपने आराध्यके प्रेममें इतने तल्लीन रहने लगे कि उन्हें अपने शरीरकी सुध भी कम रहती। उनके मुँहसे 'राम-राम'—केवल 'राम-राम'का ही जप होता रहता।

सूर्यदेवसे शिक्षा-प्राप्ति

माता अञ्जना अपने पुत्रकी मानसिक स्थिति देखकर कभी-कभी उदास हो जातीं और वानरराज केसरी तो प्राय: चिन्तित रहा करते। हनुमानजीकी आयु भी विद्याध्ययनके योग्य हो गयी थी। माता-पिताने सोचा—'अब इसे गुरुके पास विद्या-प्राप्तिके लिये भेजना चाहिये। कदाचित् इसी हेतुसे इसकी दशा परिवर्तित हो जाय।' यद्यपि वे अपने ज्ञानमूर्ति पुत्रकी विद्या-बुद्धि एवं बल-पौरुष तथा ब्रह्मादि देवताओंद्वारा प्रदत्त अमोघ वरदानसे भी पूर्णतया परिचित थे; किंतु वे यह भी जानते थे कि सामान्य जन महापुरुषोंका अनुकरण करते हैं और समाजमें अव्यवस्था उत्पन्न न हो जाय, इस कारण महापुरुष स्वतन्त्र आचरण नहीं करते। वे सदा शास्त्रोंकी मर्यादाका ध्यान रखते हुए नियमानुकूल व्यवहार करते हैं। इसी कारण जब-जब दयाधाम प्रभु भूतलपर अवतरित होते हैं, वे सर्वज्ञान-सम्पन्न होनेपर भी विद्या-प्राप्तिके लिये गुरु-गृह जाते हैं। वहाँ गुरुकी सर्वविध सेवा कर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उनसे विद्योपार्जन करते हैं। सच तो यह है कि गुरुको सेवासे संतुष्ट कर अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक प्राप्त की हुई विद्या ही फलवती होती है। अतएव माता अञ्जना और कपीश्वर केसरीने हनुमानजीको शिक्षा-प्राप्तिके लिये गुरु-गृह भेजनेका निश्चय किया।

माता-पिताने अत्यन्त उल्लासपूर्वक हनुमानजीका उपनयन-संस्कार कराया और फिर उन्हें विद्या-प्राप्तिके लिये गुरुके चरणोंमें जानेकी आज्ञा प्रदान की; किंतु वे किस सर्वगुण-सम्पन्न; आदर्श गुरुके समीप जायँ! माता अञ्जनाने अतिशय स्नेहसे कहा—'बेटा! सर्वशास्त्रमर्मज्ञ समस्त लोकोंके साक्षी भगवान् सूर्यदेव हैं। वे तुम्हें समयपर विद्याध्ययन करानेका आश्वासन भी दे चुके हैं। अतएव तुम उन्हींके समीप जाकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक शिक्षा ग्रहण करो।'

कौपीन-कछनी काछे, मूँजका यज्ञोपवीत धारण किये, पलाशदण्ड एवं मृगचर्म लिये ब्रह्मचारी हनुमानजीने भगवान् सूर्यकी ओर देखा और फिर विचार करने लगे। माता अञ्जना ऋषियोंके शापसे अवगत थीं ही; उन्होंने तुरंत कहा—'अरे बेटा! तेरे लिये सूर्यदेव कितनी दूर हैं। तेरी शक्तिकी सीमा नहीं। अरे! ये तो वे सूर्यदेव हैं, जिन्हें अरुण-फल समझकर तू बचपनमें उछलकर निगलने पहुँच गया था। सूर्यके साथ तू क्रीड़ा कर चुका है। तेरे भयसे राहु प्राण लेकर इन्द्रके पास भागा था और तेरे भयसे सुरेन्द्र भी सहम गये थे। बेटा! ऐसा कोई कार्य नहीं, जो तू न कर सके। तेरे लिये असम्भव कुछ नहीं। तू जा और भगवान् सवितासे सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर। तेरा कल्याण सुनिश्चित है।'

फिर क्या था? आञ्जनेयने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। दूसरे ही क्षण वे आकाशमें उछले तो सामने सूर्यदेवके सारथि अरुण मिले। हनुमानजीने पिताका नाम लेकर अपना परिचय दिया और उन्होंने अंशुमालीको दिखला दिया।

अञ्जनानन्दनने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भगवान् भुवनभास्करके चरणोंमें प्रणाम किया। सरलताकी मूर्ति, सर्वथा निश्छल-हृदय, विनम्र पवनकुमारको बद्धाञ्जलि खड़े देखकर सूर्यदेवने पूछा—'बेटा! यहाँ कैसे?'

हनुमानजीने अत्यन्त नम्र वाणीमें उत्तर दिया—'प्रभो! मेरा यज्ञोपवीत-संस्कार हो जानेपर माताने मुझे आपके चरणोंमें विद्याध्ययन करनेके लिये भेजा है। आप कृपापूर्वक मुझे ज्ञान प्रदान करें।'

आदित्य बोले—'बेटा ! देख लो, मेरी बड़ी विचित्र स्थिति है। मुझे अहर्निश रथपर दौड़ते रहना पड़ता है। ये अरुणजी रथका वेग कम करना नहीं जानते। ये क्षुधा-पिपासा और निद्राको त्यागकर अनवरतरूपसे रथ हाँकते ही रहते हैं। इस विषयमें पितामहसे कुछ कहनेका अधिकार भी मुझे नहीं। रथसे उतरना भी मेरे लिये सम्भव नहीं। ऐसी दशामें मैं तुम्हें शास्त्रका अध्ययन कैसे कराऊँ? तुम्हीं सोचकर कहो, क्या किया जाय। तुम्हारे-जैसे आदर्श बालकको शिष्यके रूपमें स्वीकार करनेमें मुझे प्रसन्नता ही होगी।'

भगवान् दिवाकरने टालनेका प्रयत्न किया, किंतु समीरात्मजको इसमें किसी प्रकारकी कठिनाईकी कल्पना भी नहीं हुई। उन्होंने उसी विनम्रतासे कहा—'प्रभो! वेगपूर्वक रथके चलनेसे मेरे अध्ययनमें क्या बाधा पड़ेगी? हाँ, आपको किसी प्रकारकी असुविधा नहीं होनी चाहिये। मैं आपके सम्मुख बैठ जाऊँगा और रथके वेगके साथ ही आगे बढ़ता रहूँगा।'

मारुतात्मज भगवान् तिमिरारिकी ओर मुख करके उनके आगे-आगे स्वाभाविकरूपमें चल रहे थे।

सूर्यनारायणको इसमें तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। वे समीरकुमारकी शक्तिसे परिचित थे। वे यह भी अच्छी

तरह जानते थे कि ये स्वयं ज्ञानिनामग्रगण्य हैं; किंतु शास्त्रकी मर्यादाका पालन करने हेतु एवं मुझे यश प्रदान करनेके लिये ही मुझसे विद्या प्राप्त करना चाहते हैं।'

बस, सूर्यदेव वेदादि शास्त्रों एवं समस्त विद्याओंके अङ्गोपाङ्ग एवं उनके रहस्य जितनी शीघ्रतासे बोल सकते थे, बोलते जाते थे। हनुमानजी शान्तभावसे उन्हें सुनते जा रहे थे। प्रश्न और शङ्का तथा उत्तर और समाधानकी आवश्यकता ही नहीं थी। आदित्यनारायणने हनुमानजीको वर्ष-दो-वर्ष या दो-चार मासमें नहीं, कुछ ही दिनोंमें समस्त वेदादि शास्त्र, उपशास्त्र एवं विद्याएँ सुना दीं। हनुमानजीमें तो स्वतः सारी विद्याएँ निवास करती थीं। सविधि विद्याध्ययन हो गया। सबमें पारंगत हो गये वे।

अत्यन्त भक्तिपूर्वक गुरु-चरणोंमें साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम कर अञ्जनानन्दनने हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की—'प्रभो! गुरु-दक्षिणाके रूपमें आप अपना अभीष्ट व्यक्त करें।'

सर्वथा निष्काम सूर्यदेवने उत्तर दिया—'मुझे तो कुछ नहीं चाहिये, किंतु यदि तुम मेरे अंशसे उत्पन्न कपिराज वालीके छोटे भाई सुग्रीवकी रक्षाका वचन दे सको तो मुझे प्रसन्नता होगी।'

'आज्ञा शिरोधार्य है।'—अनिलात्मजने गुरुके सम्मुख प्रतिज्ञा की—'मेरे रहते सुग्रीवका बाल भी बाँका नहीं हो सकेगा; मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।'

'तुम्हारा सर्वविध मङ्गल हो!' भगवान् सूर्यदेवने आशीर्वाद दिया और केसरी-किशोर गुरुदेवके चरणोंमें पुनः साष्टाङ्ग लेट गये।

परम विद्वान् पवनकुमारने गन्धमादनपर लौटकर अपने माता-पिताके चरणोंपर मस्तक रखा। माता-पिताके हर्षकी सीमा न थी। उस दिन उनके यहाँ ऐसा अद्भुत उत्सव मनाया गया कि गन्धमादनपर हर्ष और उल्लासके समारोहका इतना सुन्दर और विशद आयोजन इसके पूर्व कभी किसीने देखा नहीं था। सम्पूर्ण कपि-समुदाय आनन्द-विभोर हो गया। सबने प्राण-प्रिय अञ्जनानन्दनको अपने अन्तर्हृदयका आशीर्वाद प्रदान किया।

शिशु श्रीरामके साथ

कर्पूरगौर शिव और नील-कलेवर श्रीराममें अनन्य प्रीति है। सच तो यह है, भगवान् श्रीराम और महेश्वर तत्त्वतः एक ही हैं; इनमें भेद नहीं। इसी कारण 'जो गोविन्दको नमस्कार करते हैं, वे शंकरको भी नमस्कार करते हैं एवं जो भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी अर्चना करते हैं, वे वृषभध्वजकी भी पूजा करते हैं। जो विरूपाक्षसे द्वेष करते हैं, वे जनार्दनसे भी द्वेष करते हैं एवं जो रुद्रको* नहीं जानते—जिन्हें रुद्रका स्वरूप विदित नहीं है, वे केशवको भी नहीं जानते।

भगवान् शंकरने स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहा है—'जो इन अव्यक्त विष्णुको और मुझ महेश्वर देवको एक-सा देखते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता।'† किंतु लीलाके लिये—अपनी ही रसमयी मधुर लीलाके आस्वादनके लिये वे दोनों आशुतोष शिव एवं मुनिमनरञ्जन श्रीरामके रूपमें प्रकट होते हैं।

पाप-ताप-निवारण, धर्म-संस्थापन एवं प्राणियोंके अशेष मङ्गलके लिये जब-जब भगवान् श्रीराम धरतीपर अवतरित होते हैं, तब-तब सर्वलोकमहेश्वर शिव भी अपने प्रियतम श्रीरामकी मुनिमनमोहिनी मधुर मङ्गलमयी लीलाके दर्शनार्थ धरणीपर उपस्थित हो जाते हैं। वे अपने एक अंशसे अपने प्राणप्रिय श्रीरामकी लीलामें सहयोग करते हैं, पर दूसरे रूपमें उनकी भुवनपावनी लीलाके दर्शन कर मन-ही-मन मुदित भी होते रहते हैं। उस समय उनके आनन्दकी सीमा नहीं रहती।

निखिल भुवन-पावन भगवान् श्रीराम महाभागा कौसल्याके सम्मुख प्रकट हुए और अवधकी गलियोंमें उमानाथ लगे घूमने। वे अयोध्यापति दशरथके राजद्वारपर कभी प्रभु-गुण-गायक साधुके रूपमें तो कभी भिक्षा प्राप्त करनेके लिये विरक्त महात्माके वेषमें दर्शन देते। कभी परमप्रभुके अवतारोंकी मङ्गलमयी कथा सुनाने प्रकाण्ड विद्वान्के रूपमें राज-सदन पधारते तो कभी त्रिकालदर्शी दैवज्ञ बनकर राजा दशरथके कमल-नयन शिशुका फलादेश बताने पहुँच जाते। इस प्रकार वे किसी-न-किसी बहाने घूम-फिरकर श्रीरामके समीप जाते ही रहते। भगवान् शंकर कभी अपने आराध्यको

---

* ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शंकरम्। येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम्॥
ये द्विषन्ति विरूपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम्। ये रुद्रं नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम्॥ (रुद्रहृदय-उपनिषद् ६-७)

† ये त्वेनं विष्णुमव्यक्तं मां च देवं महेश्वरम्। एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः॥ (कूर्मपुराण-ईश्वरगीता)

अङ्कमें उठा लेते, कभी हस्तरेखा देखनेके मिस उनका कोमलतम दिव्य हस्त-पद्म सहलाते और कभी अपनी जटाओंसे उनके नन्हे-नन्हे कमल-सरीखे लाल-लाल तलवे झाड़ते तो कभी उन देव-दुर्लभ सुकोमल अरुणोत्पल चरणोंको अपने विशाल नेत्रोंसे स्पर्श कर परमानन्दमें निमग्न हो जाते। धीरे-धीरे कौसल्यानन्दन राजद्वारतक आने लगे।

एक बारकी बात है—पार्वतीवल्लभ मदारीके वेषमें डमरू बजाते राज-द्वारपर उपस्थित हुए। उनके साथ नाचनेवाला एक अत्यन्त सुन्दर बंदर था। मदारीके साथ अवधके बालकोंका समुदाय लगा हुआ था।

डमरू बजने लगा—और कुछ ही देरमें श्रीरामसहित चारों भाई राजद्वारपर आ पहुँचे। मदारीने डमरू बजाया और बंदरने दोनों हाथ जोड़ लिये। भ्राताओंसहित राघवेन्द्र हँस पड़े।

मदारी जैसे निहाल हो गया। डमरू और जोरसे बजा। बंदरने नाचना आरम्भ किया। वह ठुमुक-ठुमुककर नाचने लगा।

भगवान् वृषभध्वज अपने एक अंशसे अपने प्राणाराध्यके सम्मुख नाच रहे थे और अपने दूसरे अंशसे स्वयं ही नचा रहे थे। नाचने और नचानेवाले आप ही थे—श्रीरामचरणानुरागी पार्वतीवल्लभ और बंदरके नाचसे मुग्ध होकर बार-बार ताली बजानेवाले थे—सम्पूर्ण सृष्टिको नट-मर्कटकी भाँति नचानेवाले अखिलभुवनपति कौसल्या-कुमार भगवान् श्रीराम!

अन्तमें भगवान् श्रीराम प्रसन्न हो गये और मचल उठे—'मुझे यह बंदर चाहिये।'

चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथके ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामकी कामना कैसे अपूर्ण रहती। मदारी बंदरका मूल्य चाहे जो ले, पर बंदर तो कौसल्या-किशोरके पास ही रहेगा। मदारीको भी तो यही अभीष्ट था। इसी उद्देश्यसे—अपने प्रभुके चरणोंमें समर्पित होनेके लिये ही तो वह राजद्वारपर आया था। नवनीरद-वपु श्रीरामने अपने कर-कमलोंसे बंदरको ग्रहण किया—युग-युगकी लालसा पूर्ण हुई बंदरकी। वह नाच उठा—थिरक-थिरककर नाचने लगा। अबतक भोलेनाथ बंदरके रूपमें अपनेको नचा रहे थे; अब वे स्वयं नाच रहे थे और उन्हें नचानेवाले थे मुनि-मन-मानस-मराल दशरथकुमार! बंदरके सुख, सौभाग्य और आनन्दकी सीमा न थी। वह विविध प्रकारके मनोमोहक हाव-भाव प्रदर्शित करता हुआ अपने आराध्यके सम्मुख नृत्य करनेमें तन्मय था; उधर मदारी अदृश्य हो गया। पता नहीं, वह कैलास-शिखरपर चला गया या अपने परम-प्रभुकी सुखद लीलाके दर्शनार्थ अपने दूसरे रूपमें प्रविष्ट हो गया।

इस प्रकार हनुमानजीने अपने स्वामी श्रीरामके समीप रहनेका अवसर प्राप्त कर लिया। श्रीराम हनुमानजीको अतिशय प्यार करते। वे हनुमानजीके समीप बैठते, उनके साथ खेलते, उनके सुवर्ण-तुल्य अङ्गोंपर अपने कर-कमल फेरते; कभी उन्हें नाचनेके लिये आज्ञा देते तो कभी दौड़ाकर कोई वस्तु मँगवाते। हनुमानजी अपने प्रभुकी प्रत्येक आज्ञाका अत्यन्त आदर, उत्साह एवं प्रसन्नतापूर्वक पालन करते। वे प्रत्येक रीतिसे भगवान् श्रीरामको प्रसन्न करते। भगवान् श्रीरामको जैसे सुख मिले, उनका जैसे मनोरञ्जन हो, वे वही करते।

इस प्रकार कई वर्षोंका समय क्षणार्धके समान व्यतीत हो गया। महर्षि विश्वामित्र अयोध्या पधारे और जब उनके साथ श्रीरामके जानेका अवसर आया तो उन्होंने हनुमानजीको एकान्तमें बुलाकर कहा—'मेरे अन्तरङ्ग सखा हनुमान! मेरे धराधामपर अवतरित होनेका प्रमुख कार्य अब प्रारम्भ होनेवाला है। लंकाधिपति रावणकी अनीति एवं अनाचारसे पृथ्वी विकल हो उठी है। अब मैं उसका वध कर पृथ्वीपर धर्मकी स्थापना करूँगा। मेरे इस कार्यमें तुम्हारी सहायता अपेक्षित होगी। दशाननने महाबली वालीको मिला रखा है और वह अपने अनुज सुग्रीवके रक्तका प्यासा है। भयाक्रान्त सुग्रीव ऋष्यमूकपर्वतपर निवास कर रहे हैं। अतएव तुम ऋष्यमूकपर्वतपर जाकर सुग्रीवसे मैत्री कर लो। मैं अपने पड़ोसमें बसनेवाले मारीच, सुबाहु और ताड़काका उद्धार कर कुछ ही दिनोंमें दण्डकारण्यमें खर-दूषण, त्रिशिरा और शूर्पणखा-जैसे भयानक कण्टकोंको दूर करता हुआ ऋष्यमूककी ओर आऊँगा। वहाँ तुम मुझसे सुग्रीवकी मैत्री स्थापित करवाकर वानर-भालुओंके द्वारा मेरे अवतार-कार्यमें सहायता करना।'

हनुमानजी अपने प्रभुसे पृथक् होना नहीं चाहते थे, किंतु प्रभुकी आज्ञाका पालन ही उनके लिये सर्वोपरि कर्तव्य था। उन्होंने अपने प्राणाराध्यके चरणोंमें प्रणाम किया और उनके मङ्गलमय-कल्याणमय मधुर नामोंका मन-ही-मन जप करते हुए वे ऋष्यमूकके लिये प्रस्थित हो गये।

सुग्रीव-सचिव

ऋक्षरजा वानरके दो पुत्र थे—वाली और सुग्रीव*। पिता अपने दोनों पुत्रोंको समान रूपसे प्यार करते थे। दोनों बालक अत्यन्त धीर, वीर, बलवान्, बुद्धिमान् एवं सुन्दर तो थे ही, दोनोंमें परस्पर अतिशय प्रीति थी। वाली सुग्रीवको प्राणतुल्य चाहते और सुग्रीव वालीके चरणोंमें पिताकी भाँति श्रद्धा रखते। दोनों भाई भोजन, शयन, क्रीड़ा, आखेट आदि साथ ही करते—प्रायः सदा साथ रहते।

पिताके दिवंगत होनेपर मन्त्रियोंने ज्येष्ठ होनेके कारण वालीको वानर-समुदायके राज्य-पदपर अभिषिक्त किया। वे समस्त वानर-जातिके प्राणाधिक प्रिय थे और अपनी प्रजाको भी पुत्रवत् प्यार करते। इस प्रकार वाली किष्किन्धाके विशाल राज्यका शासन करते और सुग्रीव श्रद्धा-भक्तिके कारण अत्यन्त विनीतभावसे दासकी भाँति अपने अग्रजकी सेवामें प्रस्तुत रहते।

उधर कपिराज केसरी अपनी सहधर्मिणीके साथ अपने प्राणप्रिय पुत्र हनुमानकी विरक्ति एवं एकान्तप्रियतासे अत्यधिक चिन्तित थे। वे कपियोंके यूथपति थे और ऋक्षरजाके शासनमें रहते थे। इस कारण उन्होंने हनुमानजीको राजनीतिका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये पम्पापुर भेजनेका निश्चय किया। मातृ-पितृ-भक्त हनुमानजीने माता-पिताका आदेश प्राप्त होते ही उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद लेकर वे पम्पापुरके लिये चल पड़े।

पवनकुमारके पम्पापुरमें आगमनका समाचार प्राप्त होते ही सुग्रीवने आगे जाकर उनका स्वागत किया। उनके देव-दुर्लभ गुणोंसे परिचित होनेके कारण वालीने भी उनका अत्यधिक सम्मान किया और उन्हें बड़े ही आदरसे अपने पास रखा। हनुमानजी विद्वान्, बुद्धिमान्, बलवान्, धैर्यवान्, सदाचारपरायण एवं सरलताकी सजीव मूर्ति थे, इस कारण वाली इन्हें अपना अन्तरङ्ग बनाना चाहते थे। किंतु विद्या-वारिधि केसरीकुमारको अपनी गुरु-दक्षिणाकी स्मृति सदा बनी रहती। अतएव वे सुग्रीवके अभिन्न मित्र बन गये। सुग्रीवके हृदयमें भी इनके लिये अतिशय प्रीति थी।

जिस समय वज्राङ्ग हनुमान पम्पापुर पहुँचे, उस समय उस क्षेत्रके चारों ओर राक्षसोंके राज्य थे। एक ओर शक्तिशाली खर-दूषणादि, दूसरी ओर विराध और तीसरी ओर देव-द्विजद्रोही वीरवर दशाननका निष्कण्टक राज्य था। वानरराज वाली अन्यतम वीर एवं योद्धा थे; इस कारण असुर उनसे भयभीत रहा करते। वे उनके राज्यकी सीमामें उपद्रव करनेका साहस नहीं कर पाते; किंतु राक्षसोंकी दुष्टतासे अवगत होनेके कारण वाली निश्चिन्त होकर दुष्ट-दलनके लिये कहीं दूर जा भी नहीं सकते थे। परंतु केसरी-किशोरके पम्पापुरमें प्रवेश करते ही उनकी यह चिन्ता प्रायः दूर हो गयी। माता अञ्जनाने अपने अलौकिक पुत्रको राक्षसोंकी अनेक कथाएँ सुनायी थीं, इस कारण हनुमानजीके मनमें बाल्यकालसे ही राक्षसोंके प्रति रोष उत्पन्न हो गया था। अतः उनकी दृष्टिमें पड़ जानेपर किसी राक्षसका सुरक्षित बच निकलना सम्भव नहीं था। वे असुरोंको खोज-खोजकर उनका प्राण-हरण करते और असुर उनके नामसे ही काँपते थे। वाली हनुमानजीकी सरलता और साधुताके साथ उनकी अनुपम वीरता, धीरता और पराक्रमको देखकर चकित होते रहते।

वीरवर वाली और सुग्रीवकी आदर्श प्रीति-कथा सर्वत्र प्रख्यात थी। वे दोनों प्रत्येक रीतिसे सुखी थे; किंतु क्रूर नियतिकी निर्दयताकी सीमा नहीं। उसने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी, जिससे दोनों अपने सहज प्रेमको भूलकर एक-दूसरेके रक्त-पिपासु बन गये।

उस समय मयका पुत्र मायावी नामक दानव अपनी शक्ति एवं वीरताके गर्वसे उन्मत्त होकर प्रतिभट ढूँढ़ता फिरता था। एक दिनकी बात है कि अर्धरात्रिके समय वह बलवान् असुर किष्किन्धाके द्वारपर जाकर वालीको ललकारते हुए भयानक गर्जन करने लगा।

अप्रतिम वीर वाली शत्रुका आह्वान सुनते ही उसका मुख-मर्दन करनेके लिये सदैव प्रस्तुत रहते थे। वे प्रगाढ़ निद्रामें थे, किंतु असुरकी ललकार सुनते ही शय्यासे उठकर तुरंत दौड़ पड़े। अग्रजको शत्रुके सम्मुख जाते देखकर सुग्रीव भी उनके पीछे दौड़े। असुरने जब वालीको और उनके पीछे सुग्रीवको भी आते देखा तो वह भयभीत होकर तीव्र गतिसे भागा। दोनों भाइयोंने भी उसी गतिसे उसका पीछा किया।

अत्यधिक दूर जानेपर उसे घास-फूससे ढका हुआ

* वानरेन्द्रं महेन्द्राभमिन्द्रो वालिनमात्मजम्। सुग्रीवं जनयामास तपनस्तपतां वरः॥ (वा० रा० १।१७।१०)

'देवराज इन्द्रने वानरराज वालीको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया, जो महेन्द्रपर्वतके समान विशालकाय और बलिष्ठ थे। तपनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् सूर्यने सुग्रीवको जन्म दिया।'

एक विशाल विवर मिला। असुर उसी विवरमें प्रविष्ट हो गया। क्रोधोन्मत्त वाली सुग्रीवको वहीं द्वारपर सावधानीके साथ खड़ा रहनेका आदेश देकर स्वयं विवरमें घुस गये।

वालीने अपने भाई सुग्रीवको पंद्रह दिनोंतक विवर-द्वारपर सावधानीपूर्वक प्रतीक्षा करनेका आदेश दिया था, किंतु सुग्रीव एक मासतक वहाँ सजग होकर डटे रहे। वे विवरके द्वारपर कान लगाकर कुछ सुननेका प्रयत्न करते, पर वालीके स्थानपर राक्षसोंका कोलाहल सुनायी पड़ता था। सुग्रीव अपने अग्रजके लिये मन-ही-मन चिन्तित थे कि उनके सम्मुख विवरसे फेनसहित रक्तकी धारा निकली। भ्रातृ-स्नेहके कारण सुग्रीव व्याकुल हो गये। उनके मनमें वालीके लिये शङ्का होने लगी।

बहुत ध्यान देनेपर भी जब उन्हें वालीका कोई शब्द सुनायी नहीं पड़ा, तब उन्होंने सोचा—'इस विशाल विवरमें असुरोंने मिलकर मेरे प्राणाधिक प्रिय अग्रजको मार डाला है और अब वे बाहर आकर मुझे भी जीवित नहीं छोड़ेंगे।'

अत्यन्त दु:खी सुग्रीवने अपनी रक्षाके लिये पर्वत-तुल्य एक विशाल चट्टानसे विवरका मुख बंद कर दिया और उदास-मन वालीको जलाञ्जलि देकर वे किष्किन्धा लौट आये।

सुग्रीव अपने अग्रजकी मृत्युका संवाद अप्रकट रखना चाहते थे, किंतु चतुर मन्त्रियोंने युवराज अङ्गदको छोटा देखकर सुग्रीवको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। वे नीतिपूर्वक राज्यके दायित्वका निर्वाह करने लगे।

उधर वीरवर वाली असुरके समस्त साथियोंका वध कर राजधानी लौटे। जब उन्होंने अनुज सुग्रीवको अपने स्थानपर राज्य-पदका उपभोग करते देखा, तब उनके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने सोचा—'इसी स्वार्थी भाईने मेरी स्त्री और राज्यका सुख प्राप्त करनेके लिये विवर-द्वारपर विशाल चट्टान रख दी थी, जिससे मैं बाहर न निकल सकूँ और वहीं मेरा अन्त हो जाय।' यह विचार मनमें आते ही प्रज्वलित अग्निमें घृताहुति पड़ गयी। वाली क्रोधोन्मत्त हो गये।

सुग्रीवने क्रोधारुण-लोचन अपने बड़े भाईको देखते ही उनका राज्य वापस कर दिया और वे उन्हें वस्तु-स्थिति समझानेका प्रयत्न करने लगे; किंतु अतिशय क्रुद्ध वाली सुग्रीवके कट्टर शत्रु हो गये थे। उन्होंने राज्यसहित सुग्रीव-पत्नी रुमाको अपने अधिकारमें कर लिया। वे सुग्रीवका वध भी कर डालना चाहते थे। सुग्रीव प्राण-रक्षाके लिये मन्त्रियोंसहित भाग खड़े हुए।

भयभीत सुग्रीव भागे जा रहे थे और वाली उन्हें मार डालनेके लिये उनके पीछे लगे थे। नद-नदियों, वनों, पर्वतों, समुद्रों एवं नगरोंको छोड़ते सुग्रीव दौड़ते जा रहे थे। कहीं कुछ दिन भी रुकनेका साहस उनमें न रह गया था—वाली जो प्राणघातक शत्रुकी तरह पीछे लगे थे।

भागते-दौड़ते सुग्रीव हिमालय, मेरु और उत्तर समुद्रतक जाकर भी वालीसे अपना पीछा न छुड़ा सके; उन्हें कहीं शरण नहीं मिली। तब उनके साथ निरन्तर छायाकी भाँति रहनेवाले ज्ञानिनामग्रगण्य हनुमानजीको दुन्दुभि-वध* की घटना स्मरण हो आयी।

उन्होंने भयभीत सुग्रीवसे कहा—'राजन्! मुझे महामुनि मतङ्गद्वारा वीरवर वालीको दिये शापकी स्मृति हो आयी है। कुपित होकर महामुनिने शाप दिया था—

..ह्यस्मिन्नाश्रममण्डले।
प्रविशेद् यदि वै वाली मूर्धास्य शतधा भवेत्॥
तत्र वासः सुखोऽस्माकं निरुद्विग्नो भविष्यति।

(वा० रा० ४। ४६। २२-२३)

'यदि वाली इस आश्रममण्डलमें प्रवेश करेगा तो उसके मस्तकके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे। अत: वहीं निवास करना हमलोगोंके लिये सुखद और निर्भय होगा।'

सुग्रीव तुरंत अपने प्राणप्रिय सचिव हनुमानजीके परामर्शके अनुसार ऋष्यमूकपर्वतपर मतङ्गाश्रममें चले गये। मतङ्ग-मुनिके शाप-भयसे वाली वहाँ नहीं जा

* 'महिषके वेषमें रहनेवाले दुन्दुभि नामक दैत्यमें एक सहस्र हाथियोंका बल था। उसे अपनी शक्तिका बड़ा अहंकार था। एक बारकी बात है कि वह समुद्र और हिमवान्‌का तिरस्कार कर गर्जना करता हुआ वीरशिरोमणि वालीसे युद्ध करनेके लिये किष्किन्धापुरीके द्वारपर जाकर जोर-जोरसे दुन्दुभि-नादकी तरह गर्जना करने लगा। दुन्दुभि अपने खुरोंसे पृथ्वीको खोदता, वृक्षोंको नष्ट करता और पुरीके द्वारको सींगोंसे तोड़नेका प्रयत्न करता हुआ युद्धका आह्वान कर रहा था।

उसकी गर्जना सुनकर परमपराक्रमी वाली अमर्षसे भरे हुए बाहर निकले। उस समय उनके कण्ठमें इन्द्रप्रदत्त विजयप्रदायिनी सुवर्णमाला सुशोभित थी। वे दुन्दुभिको देखते ही उससे युद्ध करनेके लिये सावधानीसे खड़े हो गये। वह उनपर अपने सींगोंसे आक्रमण करनेके लिये अत्यन्त वेगपूर्वक झपटा ही था कि वालीने उसके दोनों सींग कसकर पकड़ लिये। महिषके सींग जैसे वज्रमुष्टिमें बँध गये। वाली दुन्दुभि-दैत्यके सींग पकड़कर उसे चारों ओर घुमाने लगे।

सकते थे; विवश होकर वे लौट गये।

राजनीति-विशारद कपिराज वाली पवनकुमारको अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने साथ रखना चाहते थे; किंतु आञ्जनेय सुग्रीवके सच्चे शुभचिन्तक थे। सुखके दिनोंमें तो सभी घेरे रहते हैं—उस समय क्षुद्र चाटुकारोंका अभाव नहीं रहता, किंतु आपत्ति-कालमें वे साथ छोड़कर चले जाते हैं। सच्चे सुहृद् और सच्चे सेवक ही विपत्तिमें भी अपनी प्रीति एवं भक्तिसे विचलित नहीं होते।

अञ्जनानन्दन सुखके दिनोंमें सुग्रीवके साथ रह चुके थे, वे भला विपत्तिमें उन्हें कैसे छोड़ देते? वे सदा सुग्रीवके साथ रहते, उनकी सुख-सुविधाका ध्यान रखते और उसकी व्यवस्था करते, उन्हें सत्परामर्श देते और धैर्य बँधाते रहते। महावीर हनुमानजीके साथ एवं उनके सुनिश्चित आश्वासनपर सुदृढ़ विश्वासके कारण सुग्रीव आपदामें भी सुखानुभूति करते रहते थे। पवनकुमार उन्हें अपने मन्त्री ही नहीं, अन्यतम मित्र, सखा, सुहृद् और सहोदर भ्रातातुल्य प्रतीत होते थे।

वालीके द्वारा सर्वस्व छीन लिये जानेपर भी बहिष्कृत सुग्रीव अपने अनुपम सचिव हनुमानजीके कारण ऋष्यमूकपर्वतपर राजाकी भाँति सुखपूर्वक रहते थे।

ऋष्यमूकपर्वतपर शापके कारण स्वयं वाली तो आ नहीं सकता था, किंतु अपने दूसरे वीरोंको भेजकर वह सुग्रीवको मरवा डालनेका प्रयत्न कर सकता था, इसे सुग्रीव भलीभाँति जानते थे; किंतु हनुमानजीकी शक्ति, पराक्रम एवं विलक्षण बुद्धिपर सुदृढ़ विश्वासके कारण वे कुछ निश्चिन्त रहते। महावीर हनुमान सुग्रीवकी सेवा एवं उनकी आज्ञाके पालनमें सदा तत्पर रहते। सर्वगुणसम्पन्न पवनकुमारको अपने सखा एवं सचिवके रूपमें प्राप्त कर सुग्रीव सदा ही अपने भाग्यकी सराहना किया करते।

प्राणाराध्यके पाद-पद्मोंमें

पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये दशरथनन्दन श्रीराम अपनी सती सहधर्मिणी जनकनन्दिनी और अनुज लक्ष्मणके साथ वनमें गये। वे चित्रकूट और दण्डकारण्यमें तेरह वर्षोंतक ऋषियों-महर्षियों एवं समस्त प्राणियोंको कृतार्थ करते हुए विचरण करते रहे। असुर जहाँ-कहीं तपस्वी मुनियोंको कष्ट पहुँचाते, भगवान् श्रीराम वहीं असुरोंका वध कर मुनियोंका जीवन निरापद कर देते।

चौदहवें वर्षमें वे पञ्चवटीमें एक सुन्दर पर्णकुटी बनाकर रहने लगे। एक दिन लंकाधिपति रावणकी प्रेरणासे मारीच काञ्चन-मृगके वेषमें उनकी कुटीके सामने घूमने लगा। जनकनन्दिनी उस अद्भुत मृगको देखकर मुग्ध हो गयीं। उन्होंने उस सुवर्ण-मृगको ले आनेके लिये भगवान् श्रीरामसे प्रार्थना की। भगवान् श्रीराम सुवर्ण-मृगके पीछे दौड़े और उधर रावणने छलसे सीताका हरण कर लिया। उसने भगवती सीताको ले जाकर लंकाकी अशोक-वाटिकामें रख दिया।

जनकदुलारीको ढूँढ़ते हुए सानुज श्रीराम विराध, कबन्ध आदिका वध करते ऋष्यमूकपर्वतकी ओर जा निकले।

सुग्रीवके मनमें वालीके भयके कारण सदा शङ्का बनी रहती थी। उन्होंने मन्त्रियोंके साथ जब गिरि-शिखरसे आजानुबाहु, धनुष-वाणधारी, विशाल नेत्रोंवाले

उस समय वाली क्रोधकी भयानक मूर्ति बन गये थे। वे बार-बार जोर-जोरसे गर्जन कर रहे थे। इस प्रकार पहले तो उन्होंने उस पर्वताकार दैत्यको चारों ओर घुमाया और फिर उसे बलपूर्वक पृथ्वीपर पटक दिया। दुन्दुभिके दोनों कानोंसे रुधिरकी धाराएँ बहने लगीं।

अमितशक्तिशाली दुन्दुभि उठा और तुरंत वालीसे भिड़ गया। परमपराक्रमी असुर और वानरराज वालीमें युद्ध होने लगा। दोनों एक-दूसरेको मार डालना चाहते थे। दुन्दुभि अपने खुरों और सींगोंसे वालीपर आक्रमण करता जा रहा था और वाली मुक्कों, लातों, घुटनों, शिलाओं और वृक्षोंसे दुन्दुभिपर प्रहार कर रहे थे।

वीरवर वालीके बारंबारके असह्य प्रहारसे दुन्दुभि शिथिल होने लगा; किंतु वाली उसपर आक्रमण करते ही जा रहे थे। अन्ततः उन्होंने उस दुर्दमनीय दानवको उठाकर अपनी पूरी शक्तिसे पृथ्वीपर पटक दिया और स्वयं कूदकर उसपर चढ़ गये। वालीका असह्य भार वह सह न सका। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे रक्त प्रवाहित होने लगा और तुरंत ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

दुन्दुभिके मर जानेपर कुपित वालीने उसके शवको उठाकर एक योजन दूर फेंक दिया, जो महामुनि मतङ्गके आश्रममें जाकर गिरा। वेगपूर्वक फेंके जानेके कारण मृत असुरके शरीरसे बहते हुए रक्तकी कुछ बूँदें महामुनिके शरीरपर भी पड़ गयीं।

अपने शरीरपर रक्तके पड़े छींटे देखकर महामुनि चिन्ता करते हुए उसके कारणकी खोज करने लगे तो उन्हें पर्वताकार मृत महिष दिखायी पड़ा। उन परम तपस्वी ऋषिको अपने तपोबलसे समझते देर न लगी कि यह कुकृत्य किसका है ? अतः उन्होंने तुरंत वालीको शाप दे दिया कि 'यदि वह उस आश्रममण्डलमें प्रवेश करेगा तो उसके मस्तकके टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे।'

तथा देवकुमारोंकी तरह तेजस्वी दोनों वीर भाइयोंको देखा तो वे भयसे काँप गये।

व्याकुल होकर सुग्रीवने हनुमानजीसे कहा—'इन दोनों वीरोंको देखकर मेरा मन भयाक्रान्त हो रहा है। सम्भव है, मेरे प्राणोंके शत्रु वालीने मुझे मार डालनेके लिये इन्हें भेजा हो। राजाओंके मित्र अधिक होते हैं, अतएव इनपर विश्वास करना उचित नहीं। मनुष्यको छद्म-वेषमें विचरनेवाले शत्रुओंको विशेषरूपसे पहचाननेकी चेष्टा करनी चाहिये; क्योंकि वे दूसरोंपर अपना विश्वास जमा लेते हैं, परंतु स्वयं किसीका विश्वास नहीं करते और अवसर पाते ही उन विश्वासी पुरुषोंपर ही प्रहार कर बैठते हैं।[१] वाली इसमें बड़ा पटु है। अतएव कपिश्रेष्ठ! तुम सामान्य व्यक्तिकी भाँति इनके समीप जाकर इनका तथा इनके मनोभावोंका परिचय प्राप्त कर लो। यदि इन्हें वालीने भेजा हो तो तुम वहींसे संकेत कर देना; मैं मन्त्रियोंसहित इस पर्वतसे तुरंत भागकर अन्यत्र शरण लूँगा।'

पवनकुमार अपने प्राणधन महाधनुर्धर श्यामल-गौर श्रीराम-लक्ष्मणको पहचान नहीं रहे थे, किंतु उनके दायें अङ्ग फड़क रहे थे। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलक आये और हृदय बरबस उनकी ओर आकृष्ट हो रहा था।

वानरश्रेष्ठ सुग्रीवका उद्देश्य समझकर पवनकुमार ऋष्यमूकपर्वतसे उछलते हुए चले। मार्गमें उन्होंने ब्राह्मणका वेष धारण कर लिया। अभूतपूर्व एवं अश्रुतपूर्व सौन्दर्यसे युक्त श्रीराम-लक्ष्मणके दर्शन कर हनुमानजीकी अत्यन्त विचित्र दशा हो गयी। उनका मस्तक स्वत: उनके चरणोंमें झुक गया। फिर उन्होंने हाथ जोड़कर मनको अत्यन्त प्रिय लगनेवाली विनम्र वाणीमें पूछा—'वीरवर! श्याम और गौरवर्णवाले अन्यतम सुन्दर पुरुष आपलोग कौन हैं? निश्चय ही आपलोग वीरपुंगव क्षत्रियकुमार हैं। किंतु आप अत्यन्त कोमल हैं और यहाँ पर्वत तथा वन अत्यन्त भयानक हैं; सर्वत्र व्याघ्रादि हिंस्र पशुओंका भय है। मार्ग कंकड़ों, पत्थरों एवं कुश-कण्टकोंसे भरा पड़ा है। आपके चरण-कमलोंके उपयुक्त यह कठोर भूमि कदापि नहीं है। फिर भी आपलोग किस कारण इस निर्जन वनमें विचरण कर रहे हैं!'

हनुमानजीने आगे कहा—'मैं आपलोगोंका तेजस्वी स्वरूप देखकर चकित हो रहा हूँ। कोई साधारण क्षत्रियकुमार इतना तेजस्वी नहीं हो सकता। लोकोत्तर तेजोमय पुरुष आप कौन हैं? कृपापूर्वक बता दें कि आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनों देवताओंमेंसे कोई हैं या आप नर और नारायण हैं? अथवा आप निखिल सृष्टिके स्वामी स्वयं परब्रह्म परमात्मा तो नहीं हैं, जो भू-भार-हरणार्थ युगल रूपोंमें अवतरित होकर मुझे सनाथ करने यहाँ पधारे हैं?'

बातचीत करनेमें कुशल हनुमानजीके चुप होते ही भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'भाई लक्ष्मण ! इनके विद्वत्तापूर्ण शुद्ध उच्चारणसे स्पष्ट है कि ये व्याकरण-शास्त्रके पारंगत विद्वान् तो हैं ही, इन्होंने वेदोंका गहन अध्ययन भी किया है। निश्चय ही इन्होंने समस्त शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया है; क्योंकि ये संस्कार[२] और क्रम[३]से सम्पन्न, अद्भुत, अविलम्बित[४] तथा हृदयको आनन्द प्रदान करनेवाली कल्याणमयी वाणीका उच्चारण करते हैं। हृदय, कण्ठ और मूर्धा—इन तीनों स्थानोंद्वारा स्पष्टरूपसे अभिव्यक्त होनेवाली इनकी इस विचित्र वाणीको सुनकर किसका चित्त प्रसन्न न होगा! वध करनेके लिये तलवार उठाये हुए शत्रुका हृदय भी इस अद्भुत वाणीसे बदल सकता है।[५] तुम इनसे वार्ता करो।'

अग्रजका आदेश प्राप्त होते ही सुमित्रानन्दनने ब्राह्मणवेषधारी पवनकुमारसे कहा—'ब्रह्मन् ! हम दोनों अयोध्याके प्रख्यात धर्मात्मा राजा दशरथके पुत्र हैं। ये मेरे बड़े भाई हैं; इनका नाम श्रीराम है और मेरा लक्ष्मण। पिताकी आज्ञासे हम चौदह वर्षके लिये अरण्यवास करने आये हैं। यहाँ पञ्चवटीमें इनकी सती पत्नी सीताको किसी राक्षसने छलपूर्वक हरण कर लिया। हमलोग इस बीहड़ वनमें उन्हें ही ढूँढ़ते फिर रहे हैं। आप कौन हैं? कृपया अपना परिचय दीजिये।'

पवनकुमार सुमित्रानन्दनसे युगल रूपोंका परिचय

१ अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छद्मचारिण:। विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषु प्रहरन्त्यपि॥ (वा० रा० ४। २। २२)

२. व्याकरणके नियमानुकूल शुद्ध वाणीको 'संस्कार-सम्पन्न' (संस्कृत) कहते हैं।

३. शब्दोच्चारणकी शास्त्रीय परिपाटीका नाम 'क्रम' है।

४. बिना रुके धाराप्रवाह रूपसे बोलना 'अविलम्बित' कहलाता है।

५. संस्कारक्रमसम्पन्नामद्भुतामविलम्बिताम् । उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम्॥
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया। कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि॥ (वा० रा० ४। ३। ३२-३३)

तो प्राप्त कर रहे थे, किंतु उनका ध्यान केन्द्रित था जटा-जालसे सुशोभित नव-नीरद-वपु श्रीरामके मुखारविन्दपर। भुवनमोहन रूप जैसे उनके रोम-रोममें प्रविष्ट हो रहा था। उनके नेत्र सजल एवं अङ्ग पुलकित थे। अपने प्रभुका परिचय प्राप्त होनेपर तो उन्हें अपनी सुधि भी न रही। पवनकुमार प्राणाराम श्रीरामके त्रैलोक्य-दुर्लभ पावन पद-पद्मोंमें साष्टाङ्ग पड़ गये। वे व्याकुल होकर प्रेमाश्रुओंसे उन भवाब्धिपोत युगल पद्मारुण-चरणोंका प्रक्षालन करने लगे।

आञ्जनेयका अश्रु-प्रवाह विराम नहीं ले रहा था। वाणी अवरुद्ध थी। धैर्यपूर्वक किसी प्रकार हाथ जोड़कर उन्होंने प्रार्थना की—'दयाधाम प्रभो! मैं पामर आपको पहचान नहीं सका—भूल गया, यह तो स्वाभाविक है; किंतु आप अनजान बनकर यह कैसा प्रश्न कर रहे हैं! आप मुझे कैसे भूल गये! इन त्रैलोक्यत्राता चरण-कमलोंके अतिरिक्त मेरे लिये और क्या अवलम्ब है? करुणासिन्धु! अब आप दया कीजिये। मुझे अपना लीजिये नाथ!'

'दयाधाम! करुणासिन्धु !!'—निश्चय ही वे भुवनपावन श्रीराम करुणानिधि हैं। उनके पावनतम पाद-पद्मोंके परागसे करुणा-वारिधि ही तो प्रतिक्षण उच्छलित होता रहता है; पर उन्हें छल-कपट प्रिय नहीं। आवरणसे उनकी झाँकी सम्भव नहीं। वे परमोदार सीतावल्लभ सर्वथा निश्छल, निष्कपट, सरल हृदय देखते हैं और पवनकुमार उपस्थित थे ब्राह्मणके वेषमें। उन्होंने अपने वास्तविक स्वरूपपर आवरण डाल रखा था, इस कारण कमल-नयन श्रीराम उनकी ओर अपलक दृगोंसे देख रहे थे; पर थे वे सर्वथा मौन।

मारुतात्मजकी अधीरता बढ़ती जा रही थी। अत्यधिक आकुल-चित्तसे रुदन करते हुए वे प्रार्थना करने लगे—'प्रभो! मैं मोहग्रस्त, अज्ञानान्धकारमें पड़ा हुआ एवं कुटिल-हृदय हूँ, उसपर आपने मुझे विस्मरण कर दिया, फिर मेरी क्या दशा हो! दयामय! अब आप दया करें'—

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥

(मानस ४। २)

प्राणाराध्य प्रभुके सम्मुख अशान्त चित्तसे करुण प्रार्थना करते हुए हनुमानजी आत्म-विस्मृत हो गये। उन्हें अपने छद्म-वेषका ध्यान नहीं रहा। उनका ब्राह्मण-वेष स्वतः दूर हो गया। वे अब अपने वास्तविक वानर-रूपमें प्रभुके चरणोंपर गिरकर रुदन करते हुए प्रार्थना कर रहे थे।

करुणामय श्रीरामने अपने अनन्य भक्त हनुमानजीको वास्तविक वानर-रूपमें देखा; फिर क्या देर थी। उन्होंने तत्क्षण समीरकुमारको उठाया और अपनी प्रलम्ब भुजाओंमें भरकर उन्हें अपने वक्षसे सटा लिया। उस समय भगवान् और भक्त—दोनोंकी अद्भुत दशा थी। प्रेममूर्ति भक्तवत्सल श्रीराम अपना अभयद-मङ्गलमय कर-कमल हनुमानजीके मस्तकपर फेर रहे थे और वे शिशुकी भाँति परमप्रभुके विशाल वक्षसे चिपके हुए सिसक रहे थे। उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी थी।

अपने प्रभु श्रीरामकी प्रीतिका विश्वास हो जानेपर हनुमानजीने श्रीरामानुज लक्ष्मणके चरणोंमें प्रणाम किया। सुमित्रानन्दनने भी उन्हें तुरंत उठाकर हृदयसे लगा लिया। इसके अनन्तर हनुमानजीने भगवान् श्रीरामको सुग्रीवका परिचय दिया। नीति-निपुण पवनकुमारने श्रीरामके मुखारविन्दको अपलक दृगोंसे देखते हुए विनम्र वाणीमें कहा—'प्रभो! अपने ज्येष्ठ भ्राता वालीकी भयानक शत्रुताके कारण सुग्रीव ऋष्यमूकपर्वतपर निवास करते हैं । वे राज्यसे बहिष्कृत और स्त्रीके वियोगमें अतिशय दुःखी हैं। वे वनों-पर्वतोंमें विपत्तिके दिन व्यतीत कर रहे हैं। यही स्थिति आपकी भी है। सुग्रीवको समर्थ सहयोगीकी आवश्यकता है। यदि आप उनसे मैत्री स्थापित कर लें तो निश्चय ही सुग्रीवको बड़ी प्रसन्नता होगी और अपना राज्य तथा पत्नी प्राप्त हो जानेपर वे सीताके अन्वेषण एवं उन्हें प्राप्त करानेमें बहुमूल्य सहयोग प्रदान कर सकेंगे। अतएव मेरी प्रार्थना है कि आप सुग्रीवको आत्मीय बना लें।'

भगवान् श्रीरामकी स्वीकृति मिलते ही पवनकुमार उन युगल मूर्तियोंको अपने कंधोंपर बैठाकर ऋष्यमूकके लिये चल पड़े। हनुमानजीको श्रीराम-लक्ष्मणसहित अपनी ओर आते देखकर सुग्रीवको बड़ी प्रसन्नता हुई।

श्रीआञ्जनेय युगल मूर्तियोंसहित सुग्रीवके समीप पहुँचे। सुग्रीवने उन परम तेजस्वी कुमारोंको प्रणाम किया। हनुमानजीने सुग्रीवका भगवान् श्रीरामसे परिचय कराया। तदनन्तर उन्होंने प्रज्वलित अग्निको साक्षी देकर धर्मवत्सल श्रीराम एवं सुग्रीवमें मैत्री स्थापित करा दी। भगवान् श्रीराम एवं वानरराज सुग्रीव दोनों प्रसन्न हुए। फिर सुग्रीव अधिक पत्ते और फूलोंवाली शाखा बिछाकर उसपर अत्यन्त आदरपूर्वक सीतापति श्रीरामको बैठाकर स्वयं उनके साथ बैठे। हनुमानजीने चन्दन-वृक्षकी एक पुष्पित डाली तोड़कर सुमित्रानन्दनको बैठनेके लिये दी।

हर्षोत्फुल्ल सुग्रीवने स्निग्ध-मधुर वाणीमें अपनी

विस्तृत कथा सुनाते हुए श्रीदशरथनन्दनसे कहा—'रघुनन्दन! वालीने मेरी प्राणप्रिय पत्नीको मुझसे छीनकर अत्यन्त क्रूरतापूर्वक मुझे निकाल दिया। मैं उन्हींके त्रास और भयसे उद्भ्रान्तचित्त होकर इस पर्वतपर निवास करता हूँ। आप मुझे अभय कर दीजिये।'

भगवान् श्रीरामने वचन दिया—'मित्र सुग्रीव! मैं वालीको अपने एक ही वाणसे मार डालूँगा। विश्वास करो, मेरे अमोघ वाणसे उसके प्राणोंकी रक्षा किसी प्रकार सम्भव नहीं।'

× × ×

वाली—निखिल भुवनपावन भगवान् श्रीरामके एक ही वाणसे वाली मारे गये। त्रैलोक्यत्राता श्रीरामके सम्मुख उन्होंने अपने भौतिक कलेवरका त्याग किया। पतिकी मृत्युका संवाद सुनकर वालीकी पत्नी तारा वहाँ आकर करुण क्रन्दन करने लगी। उस समय ताराको समझाते हुए परम वीतराग हनुमानजीने कहा—

गुणदोषकृतं जन्तुः स्वकर्म फलहेतुकम्।
अव्यग्रस्तदवाप्नोति सर्वं प्रेत्य शुभाशुभम्॥
शोच्या शोचसि कं शोच्यं दीनं दीनानुकम्पसे।
कश्च कस्यानुशोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन् बुद्बुदोपमे॥
जानास्यनियतामेवं भूतानामागतिं गतिम्।
तस्माच्छुभं हि कर्तव्यं पण्डिते नेह लौकिकम्॥

(वा० रा० ४।२१।२-३, ५)

'देवि! जीवके द्वारा गुण-बुद्धिसे अथवा दोष-बुद्धिसे किये हुए जो अपने कर्म हैं, वे ही सुख-दुःखरूप फलकी प्राप्ति करानेवाले होते हैं। परलोकमें जाकर प्रत्येक जीव शान्तभावसे रहकर अपने शुभ और अशुभ—सभी कर्मोंका फल भोगता है। तुम स्वयं शोचनीया हो, फिर दूसरे किसको शोचनीय समझकर शोक कर रही हो? स्वयं दीन होकर किस दीनपर दया करती हो? पानीके बुलबुलेके समान इस शरीरमें रहकर कौन जीव किस जीवके लिये शोचनीय है! देवि! तुम विदुषी हो; अतः जानती ही हो कि प्राणियोंके जन्म और मृत्युका कोई निश्चित समय नहीं है। इसलिये शुभ (परलोकके लिये सुखद) कर्म ही करना चाहिये। अधिक रोना-धोना आदि जो लौकिक कर्म (व्यवहार) है, उसे नहीं करना चाहिये।'

पवनकुमारने ताराको समझाते हुए यह भी कहा—

अङ्गदस्तु कुमारोऽयं द्रष्टव्यो जीवपुत्रया।
आयत्यां च विधेयानि समर्थान्यस्य चिन्तय॥

(वा० रा० ४। २१। ४)

'तुम्हारे पुत्र कुमार अङ्गद जीवित हैं। अब तुम्हें इन्हींकी ओर देखना चाहिये और इनके लिये भविष्यमें जो उन्नतिके साधक श्रेष्ठ कार्य हों, उनका विचार करना चाहिये।'

वालीका अन्त्येष्टि-संस्कार हुआ। श्रीलक्ष्मणजीने कपिराज सुग्रीवको किष्किन्धाधिपतिके पदपर सविधि अभिषिक्त कर दिया। वाली-पुत्र अङ्गद युवराज हुए। सुग्रीवको धन-सम्पत्ति, राज्य और पत्नी आदि सभी अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त हो गयीं। अशरणशरण श्रीरामकी कृपासे क्या नहीं प्राप्त होता!

सुग्रीव किष्किन्धामें रहने लगे; किंतु पिताकी आज्ञाका आदर करते हुए भगवान् श्रीरामने नगरमें प्रवेश नहीं किया। वे चातुर्मास्य व्यतीत करनेके लिये प्रस्रवण-गिरिपर चले गये।

आञ्जनेय प्रतिक्षण अपने परमाराध्य परमप्रभु श्रीरामके चरणोंमें ही रहना चाहते थे, किंतु सुग्रीवने अभी-अभी राज्य-पदका दायित्व ग्रहण किया था; कार्य-संचालनके लिये निपुण सचिवकी नितान्त आवश्यकता थी; इस कारण लोकोपकारी श्रीरामने उन्हें सुग्रीवके कार्यमें सहयोग प्रदान करनेकी आज्ञा दी। हनुमानजीके लिये प्रभुका आदेश ही सर्वोपरि कर्तव्य है। वे किष्किन्धामें सुग्रीवके समीप रहने लगे।

सुग्रीवको सत्परामर्श-दान

भगवान् श्रीराम अपने भाई लक्ष्मणके साथ अपनी प्राणप्रिया जनकदुलारीकी चिन्ता करते हुए प्रवर्षण-गिरिपर वर्षाके दिन व्यतीत करने लगे और कपिराज सुग्रीव धन-सम्पत्ति, राज्य एवं अपनी पत्नी रुमाके साथ अनिन्द्य सुन्दरी ताराको भी प्राप्त कर अत्यन्त प्रमुदित थे। वे निश्चिन्त होकर राज्यके भोगोंका उपभोग करने लगे। वे राज्य-सुखमें इतने तन्मय हुए कि उन्हें अपने परम हितैषी सानुज श्रीरघुनाथजीकी मैत्री, उनका उपकार तथा उनके प्रति अपने दायित्वका ध्यान भी नहीं रह गया। किंतु पवनपुत्र हनुमान शास्त्रके निश्चित सिद्धान्तको जाननेवाले थे; कर्तव्याकर्तव्यका उन्हें यथार्थ ज्ञान था। वार्तालापकी कलामें सुपटु श्रीहनुमानजी सदा सजग और सावधान रहनेवाले परम बुद्धिमान् सचिव थे। उन्हें भगवान् श्रीरामका ध्यान प्रतिक्षण बना रहता था। जगदम्बा जानकीका पता लगानेके लिये वे अतिशय व्यग्र थे।

जब हनुमानजीने देखा कि आकाश स्वच्छ हो गया,

नदियोंमें निर्मल जल बहने लगा, मार्ग यात्राके योग्य हो गये, किंतु वानरराज सुग्रीव अपना प्रयोजन सिद्ध हो जानेपर धर्म और अर्थके संग्रहमें उदासीन हो चले हैं; वे अभिलषित मनोरथोंको प्राप्त कर स्वेच्छाचारी-से हो रहे हैं, तब उन्होंने सुग्रीवके समीप जाकर सत्य, प्रिय एवं हितप्रद वचन कहे—

राज्यं प्राप्तं यशश्चैव कौली श्रीरभिवर्धिता॥
मित्राणां संग्रहः शेषस्तद् भवान् कर्तुमर्हति।
तद् भवान् वृत्तसम्पन्नः स्थितः पथि निरत्यये।
मित्रार्थमभिनीतार्थं यथावत् कर्तुमर्हति॥
तदिदं मित्रकार्यं नः कालातीतमरिंदम।
क्रियतां राघवस्यैतद् वैदेह्याः परिमार्गणम्॥
न च कालमतीतं ते निवेदयति कालवित्।
त्वरमाणोऽपि स प्राज्ञस्तव राजन् वशानुगः॥
नहि तावद् भवेत् कालो व्यतीतश्चोदनादृते।
चोदितस्य हि कार्यस्य भवेत् कालव्यतिक्रमः॥
शक्तिमानतिविक्रान्तो वानरर्क्षगणेश्वर।
कर्तुं दाशरथेः प्रीतिमाज्ञायां किं नु सज्जसे॥
प्राणत्यागविशङ्केन कृतं तेन महत् प्रियम्।
तस्य मार्गाम वैदेहीं पृथिव्यामपि चाम्बरे॥
देवदानवगन्धर्वा असुराः समरुद्गणाः।
न च यक्षा भयं तस्य कुर्युः किमिव राक्षसाः॥
तदेवं शक्तियुक्तस्य पूर्वं प्रतिकृतस्तथा।
रामस्यार्हसि पिङ्गेश कर्तुं सर्वात्मना प्रियम्॥

(वा० रा० ४। २९। ९-९$\frac{१}{२}$, १२, १५-१६, १९, २१, २३—२५)

'राजन्! आपने राज्य और यश प्राप्त कर लिया तथा कुल-परम्परासे आयी हुई लक्ष्मीको भी बढ़ाया, किंतु अभी मित्रोंको अपनानेका कार्य शेष रह गया है, उसे आपको इस समय पूर्ण करना चाहिये।…आप सदाचार-सम्पन्न और नित्य सनातन धर्मके मार्गपर स्थित हैं; अतः मित्रके कार्यको सफल बनानेके लिये जो प्रतिज्ञा की है, उसे यथोचितरूपसे पूर्ण कीजिये। …शत्रुदमन! भगवान् श्रीराम हमारे परम सुहृद् हैं। उनके कार्यका समय बीता जा रहा है; अतः विदेहकुमारी सीताकी खोज आरम्भ कर देनी चाहिये। राजन्! परम बुद्धिमान् श्रीराम समयका ज्ञान रखते हैं और उन्हें अपने कार्यकी सिद्धिके लिये जल्दी लगी हुई है तो भी वे आपके अधीन बने हुए हैं। संकोचवश आपसे नहीं कहते कि मेरे कार्यका समय बीत रहा है।…यदि हमलोग श्रीरामचन्द्रजीके कहनेके पहले ही कार्य प्रारम्भ कर दें तो समय बीता हुआ नहीं जाना जायगा; किंतु यदि उन्हें इसके लिये प्रेरणा करनी पड़ी तो यही समझा जायगा कि हमने समय बिता दिया है—उनके कार्यमें बहुत विलम्ब कर दिया है ।…वानर और भालू-समुदायके स्वामी सुग्रीव! आप शक्तिमान् और अत्यन्त पराक्रमी हैं, फिर भी दशरथनन्दन श्रीरामका प्रिय कार्य करनेके लिये वानरोंको आज्ञा देनेमें विलम्ब क्यों करते हैं?…श्रीरघुनाथजीको आपके लिये वालीके प्राणतक लेनेमें हिचक नहीं हुई; वे आपका बहुत बड़ा प्रिय कार्य कर चुके हैं; अतः अब हमलोग उनकी पत्नी विदेहकुमारी सीताका इस भूतलपर और आकाशमें भी पता लगावें। देवता, दानव, गन्धर्व, असुर, मरुद्गण तथा यक्ष भी श्रीरामको भय नहीं पहुँचा सकते, फिर राक्षसोंकी तो बिसात ही क्या है? वानरराज! ऐसे शक्तिशाली तथा पहले ही उपकार करनेवाले भगवान् श्रीरामका प्रिय कार्य आपको अपनी सारी शक्ति लगाकर करना चाहिये।'

सत्त्वगुण-सम्पन्न वानरराज सुग्रीव श्रीरामके कार्यमें विलम्ब हो जानेके कारण भयग्रस्त हो गये । वे सदा ही समीरकुमारके परामर्शका आदर करते थे। प्रीतिपूर्वक कर्तव्यकी सत्प्रेरणासे प्रसन्न होकर उन्होंने तुरंत नील नामक वानर-वीरको आज्ञा प्रदान की—'तुम पंद्रह दिनोंमें मेरे समस्त उद्योगी एवं शीघ्रगामी यूथपतियों तथा समस्त वीर सैनिकोंको मेरे समीप उपस्थित करनेका प्रयत्न करो। यह मेरा सुनिश्चित निर्णय है कि इस अवधिके बाद यहाँ पहुँचनेवाले वीर वानरको अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा।'

उधर वर्षाके उपरान्त शरत्का आगमन हो जानेपर भी सुग्रीवको निश्चिन्त एवं निष्क्रिय समझकर भगवान् श्रीरामने क्षुब्ध होकर अपने अनुजसे कहा—"भाई लक्ष्मण! वानरराज सुग्रीवने सीताकी खोजका समय निश्चित कर दिया था, किंतु अपना स्वार्थ सिद्ध हो जानेपर वह दुर्बुद्धि वानर मेरी उपेक्षा कर रहा है। वह मुझे राज्यसे भ्रष्ट, दीन, अनाथ और शरणागत समझकर मेरा तिरस्कार कर रहा है। अतएव तुम जाकर स्पष्ट शब्दोंमें उससे कह दो—'जो बल-पराक्रमसे सम्पन्न तथा पहले ही उपकार करनेवाले कार्यार्थी पुरुषोंको प्रतिज्ञापूर्वक आशा देकर पीछे उसे तोड़ देता है, वह संसारके सभी पुरुषोंमें नीच है। जो अपने मुखसे प्रतिज्ञाके रूपमें निकले हुए भले या बुरे—सभी तरहके वचनोंको अवश्य पालनीय समझकर

सत्यकी रक्षाके उद्देश्यसे उनका पालन करता है, वह वीर समस्त पुरुषोंमें श्रेष्ठ माना जाता है।'*

भगवान् श्रीरामने दु:खी हृदयसे अपने अनुजसे आगे कहा—'उस दुरात्मासे कह दो, मेरे शरसे मारा गया वाली जिस मार्गसे गया है, वह मार्ग बंद नहीं हुआ है। उस समय तो अकेले वालीको ही मैंने मारा था, किंतु यदि तुमने अपने वचनका पालन नहीं किया तो मैं तुम्हें बन्धु-बान्धवोंसहित कालके हवाले कर दूँगा।'

अपने ज्येष्ठ भाई श्रीरामके वचन सुनते ही सुमित्रा-नन्दन रोषमें भर गये। उन्होंने प्रभुके चरणोंमें प्रणाम कर निवेदन किया—'विषय-भोगमें आसक्त बुद्धिहीन वानरने अग्निदेवकी साक्षीमें मैत्री स्थापित की; किंतु स्वार्थ सिद्ध हो जानेपर उसकी नीयत बदल गयी है। मैं मिथ्यावादी सुग्रीवको अभी मारकर अङ्गदको राज्याभिषिक्त करता हूँ। अब वे ही राजा होकर वानर-वीरोंके द्वारा सीतादेवीका पता लगायें।'

धनुष-वाण हाथमें लिये क्रुद्ध लक्ष्मणको सुग्रीव-वधके लिये प्रस्थान करते देखकर अत्यन्त धीर एवं गम्भीर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने उन्हें समझाते हुए कहा—'लक्ष्मण ! तुम्हारे-जैसे श्रेष्ठ वीर पुरुषको मित्र-वधका निषिद्ध कर्म करना उचित नहीं। जो उत्तम विवेकके द्वारा अपने क्रोधको मार देता है, वह वीर समस्त पुरुषोंमें श्रेष्ठ है।† वत्स! सुग्रीव मेरा मित्र है, तुम उसे मारना मत। केवल यह कहकर कि 'तू भी वालीके समान मारा जायगा' उसे डराना और शीघ्र ही उसका उत्तर लेकर आ जाना।'‡

'जैसी आज्ञा!' इक्ष्वाकुकुल-सिंह वीरवर सुमित्रानन्दनने श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने भयंकर धनुष-वाणको हाथमें लिये हुए वे किष्किन्धाके लिये चल पड़े। उस समय क्रोधके कारण उनकी आकृति अत्यन्त भयावह हो गयी थी। उनके अधर फड़क रहे थे। लक्ष्मण अत्यधिक रोषके कारण मार्गके वृक्षोंको गिराते और पर्वत-शिखरोंको उठा-उठाकर दूर फेंकते जा रहे थे। उस समय वे प्रत्यक्ष काल-से प्रतीत हो रहे थे।

किष्किन्धाके समीप पहुँचकर श्रीरामानुजने अपने धनुषकी प्रत्यञ्चाका भयंकर टङ्कार किया। उस समय कुछ सामान्य वानर नगरके परकोटेपर अपने हाथमें पत्थर और वृक्ष लेकर किलकारी मारने लगे। कुपित लक्ष्मणकी क्रोधाग्निमें जैसे घृताहुति पड़ गयी। प्रज्वलित प्रलयाग्नि-तुल्य लक्ष्मणने अपने विशाल धनुषपर भयानक वाण चढ़ाया ही था कि किष्किन्धाके समस्त वानर वीर काँप उठे। लक्ष्मण किष्किन्धाका मूलोच्छेद करनेके लिये प्रस्तुत हो गये।

नगर-निवासियोंको अत्यधिक आकुल देख युवराज अङ्गदने लक्ष्मणजीके समीप पहुँचकर अत्यन्त आदरपूर्वक उनके चरणोंमें शीश झुकाया। उनको देखते ही अन्यतम भ्रातृभक्त लक्ष्मणका रोष शान्त हो गया। उन्होंने युवराजको अपने हृदयसे लगाकर कहा—'वत्स! तुम यथाशीघ्र सुग्रीवके समीप जाकर कहो कि श्रीराघवेन्द्र तुमपर कुपित हैं और उन्हींकी प्रेरणासे मैं यहाँ आया हूँ।'

'बहुत अच्छा!'—अङ्गदने विनम्रताके साथ हाथ जोड़कर विदा ली और सुग्रीवके समीप पहुँचे। अङ्गदके द्वारा श्रीलक्ष्मणजीके रोषकी बात ज्ञात होते ही सुग्रीव भयाक्रान्त हो गये। उन्होंने तत्काल श्रीरामानुजको अनुकूल बनानेके लिये पवनकुमारको भेजा।

हनुमानजीने श्रीलक्ष्मणके समीप जाकर उनके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और फिर उन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—

एहि वीर महाभाग भवद्गृहमशङ्कितम्॥
प्रविश्य राजदारादीन् दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च।
यदाज्ञापयसे पश्चात् तत् सर्वं करवाणि भोः॥

(अ० रा० ४। ५। ३७-३८)

'हे महाभाग वीरवर! नि:शङ्क होकर आइये, यह घर आपका ही है। इसमें पधारकर राजमहिषियों और महाराज सुग्रीवसे मिलिये। फिर आपकी जो आज्ञा होगी, हम वही करेंगे।'

पवनकुमार हनुमानजी अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्रीरामानुजका कर-कमल पकड़कर उन्हें नगरके बीचसे राज-सदन ले चले। मधुरभाषिणी ताराने लक्ष्मणका स्वागत करते हुए कहा—'आपके कार्यके लिये सुग्रीव स्वयं चिन्तित हैं। आप कृपापूर्वक अन्त:पुरमें पधारकर

---

* अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम्। आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः॥
शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम्। सत्येन प्रतिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः॥ (वा० रा० ४। ३०। ७१-७२)

† कोपमार्येण यो हन्ति स वीरः पुरुषोत्तमः॥ (वा० रा० ४। ३१। ६)

‡ न हन्तव्यस्त्वया वत्स सुग्रीवो मे प्रियः सखा॥
किंतु भीषय सुग्रीवं वालिवत्त्वं हनिष्यसे। इत्युक्त्वा शीघ्रमादाय सुग्रीवप्रतिभाषितम्॥ (अ० रा० ४। ५। १३-१४)

उन्हें अभय-दान दें।'

अन्तःपुरमें भयभीत सुग्रीवने अपनी पत्नी रुमासहित लक्ष्मणजीके चरणोंमें प्रणाम किया। वहाँ भी क्रुद्ध लक्ष्मणसे नीति-निपुण समीरात्मजने कहा—

त्वत्तोऽधिकतरो रामे भक्तोऽयं वानराधिपः॥
रामकार्यार्थमनिशं जागर्ति न तु विस्मृतः।
आगताः परितः पश्य वानराः कोटिशः प्रभो॥
गमिष्यन्त्यचिरेणैव सीतायाः परिमार्गणम्।
साधयिष्यति सुग्रीवो रामकार्यमशेषतः॥

(अ० रा० ४। ५। ५४—५६)

'महाराज! ये वानरराज श्रीरामचन्द्रजीके आपसे भी अधिक भक्त हैं। भगवान् श्रीरामके कार्यके लिये ये रात-दिन जागते रहते हैं; ये उसे भूल नहीं गये हैं। प्रभो ! देखिये, ये करोड़ों वानर इसीलिये सब ओरसे आ रहे हैं। ये सब शीघ्र ही सीताजीकी खोजके लिये जायँगे और महाराज सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीका सब कार्य भली प्रकार सिद्ध करेंगे।'

तदनन्तर वानरराज सुग्रीवने सुमित्राकुमारके चरणोंमें प्रणाम कर अत्यन्त विनीत वाणीमें कहा—'प्रभो! मैं श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ। उन्होंने ही मेरे प्राणोंकी रक्षा की है और यह धन, वैभव एवं राज्यादि सब कुछ उन्हींका दिया हुआ है। वे प्रभु तो स्वयं त्रिभुवनको परास्त कर सकते हैं। मैं तो उनके कार्यमें सहायकमात्र होऊँगा। मैं विषयी पामर पशु सर्वथा आपका हूँ। अतएव आप मेरा अपराध क्षमा करें।'

सुग्रीवकी प्रार्थना सुनते ही सुमित्रानन्दनने उनकी भुजा पकड़कर उन्हें हृदयसे लगा लिया और प्रेमपूर्वक उनसे कहा—'महाभाग! मैंने भी प्रणय-कोपवश आपको जो कुछ कहा है, उसका विचार मत कीजिये। भगवान् श्रीराम अरण्यमें एकाकी हैं और श्रीसीताजीके वियोगमें व्याकुल हो रहे हैं। अतएव अब शीघ्र उनके समीप चला जाय।'

'हाँ, अवश्य चला जाय।' सुग्रीवने पाद्यार्घ्यादिसे लक्ष्मणजीकी पूजा की और फिर वे उनके साथ स्वयं श्रेष्ठ रथमें बैठे। सुग्रीवके साथ अङ्गद, नील और पवनकुमार आदि मुख्य-मुख्य वानर भी श्रीरघुनाथजीके समीप चले। उस समय भेरी, मृदङ्ग आदि नाना प्रकारके वाद्य बजने लगे।

सीतान्वेषणार्थ प्रस्थान

मृगचर्म और जटा-मुकुटसे सुशोभित सजल-जलद-वपु भगवान् श्रीराम गुफाके द्वारपर एक शिला-खण्डपर बैठे उदास मनसे पक्षियोंको देख रहे थे। दूरसे शान्तमूर्ति श्रीरघुनाथजीका दर्शन होते ही सुग्रीव और लक्ष्मण रथसे उतर पड़े। सुग्रीव तीव्र गतिसे प्रभुके समीप पहुँचे और अबोध बालककी तरह प्रभु-पद-पद्मोंमें गिरकर सिसकने लगे। दयामूर्ति श्रीरामने उन्हें तुरंत उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया और फिर अपने समीप बैठाकर वे प्रेमपूर्वक उनका कुशल पूछने लगे।

सुग्रीवने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'प्रभो! मेरा कोई दोष नहीं। आपकी माया ही अत्यन्त प्रबल है। इससे तो आपकी कृपासे ही पार पाया जा सकता है। मैं तो अतिशय भोगासक्त पामर पशु हूँ। आप मुझपर दया कीजिये; करुणा कीजिये स्वामी!'

करुणामय श्रीराम वानरराज सुग्रीवके मस्तकपर अपना कर-कमल फेरने लगे। उसी समय कोटि-कोटि वीर वानर-भालुओंका समूह आता हुआ दिखायी दिया।

उन्हें देखकर सुग्रीवने श्रीरघुनाथजीसे कहा—'प्रभो! ये समस्त वानर-भालू आपकी आज्ञाके पालक एवं फल-मूल आदि खानेवाले हैं। ये रीछोंके अधिपति जाम्बवान् अत्यन्त बलवान्, अद्भुत योद्धा एवं परम बुद्धिमान् हैं। ये एक करोड़ भालुओंके यूथपति और मेरे मन्त्रियोंमें अग्रगण्य हैं। इनके अतिरिक्त नल, नील, गवय, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ, मैन्द, गज, पनस, बलीमुख, दधिमुख, सुषेण, तार तथा हनुमानके पिता महाबली और परम धीर केसरी—ये मेरे प्रधान यूथपति हैं। इनके अधीन पर्वत-तुल्य विशालकाय कोटि-कोटि वानर-वीर हैं। ये सब-के-सब युद्धभूमिमें आपके लिये सहर्ष प्राण दे देंगे। आप इन्हें इच्छानुसार आज्ञा प्रदान कीजिये।'

सर्वशक्तिसम्पन्न श्रीरघुनाथजीने सुग्रीवसे कहा—'सुग्रीव! तुम मेरा कार्य जानते ही हो। यदि उचित समझो तो इन्हें यथाशीघ्र जानकीको खोजनेके लिये नियुक्त कर दो।'

सुग्रीवने समस्त यूथपतियोंको सावधानीपूर्वक सर्वत्र श्रीसीताजीका पता लगानेके लिये आज्ञा देते हुए कहा—

विचिन्वन्तु प्रयत्नेन भवन्तो जानकीं शुभाम्।
मासादर्वाङ्निवर्तध्वं मच्छासनपुरःसराः॥
सीतामदृष्ट्वा यदि वो मासादूर्ध्वं दिनं भवेत्।
तदा प्राणान्तिकं दण्डं मत्तः प्राप्स्यथ वानराः॥

(अ० रा० ४। ६। २५-२६)

'मेरी आज्ञासे तुम सब लोग बड़े प्रयत्नसे जानकीजीकी

खोज करो और एक मासके भीतर ही लौट आओ। यदि श्रीसीताजीको बिना देखे तुम्हें एक माससे एक दिन भी अधिक हो जायगा तो हे वानरो! याद रखो, तुम्हें मेरे हाथसे प्राणान्त दण्ड भोगना पड़ेगा।'*

इस प्रकार सुग्रीवने वानर और भालुओंके यूथपतियोंको सीताका शीघ्र पता लगानेके लिये कठोरतम आदेश प्रदान किया। उन्होंने समस्त दिशाओंमें अनेकों वानरोंको भेजकर दक्षिण दिशामें अधिक प्रयत्नके साथ महाबली युवराज अङ्गद, जाम्बवान्, हनुमान, नल, सुषेण, शरभ, मैन्द और द्विविद आदिको भेजा। उस समय उन्होंने वीरवर हनुमानकी प्रशंसा करते हुए उनसे कहा—

'कपिश्रेष्ठ! पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, देवलोक अथवा जलमें भी तुम्हारी गतिका अवरोध मैं कभी नहीं देखता हूँ। असुर, गन्धर्व, नाग, मनुष्य, देवता, समुद्र तथा पर्वतोंसहित सम्पूर्ण लोकोंका तुम्हें ज्ञान है। वीर! महाकपे! सर्वत्र अबाधित गति, वेग, तेज और स्फूर्ति—ये सभी सद्‌गुण तुममें अपने महापराक्रमी पिता वायुके ही समान हैं। इस भूमण्डलमें कोई भी प्राणी तुम्हारे तेजकी समानता करनेवाला नहीं है; अतः जिस प्रकार श्रीसीताजीकी उपलब्धि हो सके, वह उपाय तुम्हीं सोचो। हनुमान! तुम नीतिशास्त्रके पण्डित हो। एकमात्र तुम्हींमें बल, बुद्धि, पराक्रम, देश-कालका अनुसरण तथा नीतिपूर्ण बर्ताव एक साथ देखे जाते हैं।'†

इस प्रकार श्रीपवनकुमारका गुण-गान करते हुए समस्त वानरोंको श्रीसीतान्वेषणार्थ आदेश देकर सुग्रीव श्रीरघुनाथजीके समीप बैठ गये। वीर वानर और भालू कमल-नयन श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करके जाने लगे। सबके अन्तमें जब श्रीपवनपुत्र प्रभुके समीप पहुँचे, तब भगवान् श्रीरामने उनसे कहा—'वीरवर! तुम्हारा उद्योग, धैर्य एवं पराक्रम और सुग्रीवका संदेश—इन सब बातोंसे लगता है कि निश्चय ही तुमसे मेरे कार्यकी सिद्धि होगी। तुम मेरी यह अँगूठी ले जाओ; इसपर मेरे नामाक्षर खुदे हुए हैं। इसे अपने परिचयके लिये तुम एकान्तमें सीताको देना। कपिश्रेष्ठ! इस कार्यमें तुम्हीं समर्थ हो। मैं तुम्हारा बुद्धिबल अच्छी तरह जानता हूँ। अच्छा, जाओ! तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो!'‡

पवनकुमारने प्रभुकी मुद्रिका अत्यन्त आदरपूर्वक अपने पास रख ली और उनके चरण-कमलोंमें अपना मस्तक रख दिया। भक्तवत्सल प्रभुका कर-कमल स्वतः उनके मस्तकपर चला गया। बड़ी कठिनाईसे हनुमानजी उठे। प्रभु-चरणोंकी पावनतम धूलि उन्होंने माथे चढ़ायी और प्रभुकी निखिलपावन दिव्य मूर्तिको हृदयमें धारणकर वे उत्साहपूर्वक चल पड़े। उनकी जिह्वासे श्रीराम-नामका अखण्ड जप होता जा रहा था।

श्रीरामभक्त स्वयम्प्रभासे भेंट

आञ्जनेय वानर-दलके साथ भगवती सीताको ढूँढ़ते हुए विन्ध्यगिरिके गहन वनमें पहुँचे। उस निबिड़ वनमें कण्टकाकीर्ण सूखे वृक्षोंके अतिरिक्त जलका कहीं नाम भी नहीं था। वानर-भालुओंका समुदाय इधर-उधर भटकते रहनेसे प्याससे छटपटाने लगा। उन्हें जल कहीं दीख नहीं रहा था और तृषाधिक्यसे उनके कण्ठ एवं तालु सूख रहे थे, किंतु ज्ञानिनामग्रगण्य संकटमोचन आञ्जनेय उनके साथ थे। उन्होंने धैर्यपूर्वक चारों ओर देखा। कुछ ही दूरीपर उन्हें तृण, गुल्म और लतादिसे ढकी एक विशाल गुफा दीख पड़ी। उन्होंने उसमेंसे हंस, क्रौञ्च, सारस और चकवे आदि पक्षियोंको निकलते हुए देखा। उन पक्षियोंके पंख भीगे हुए थे, इससे जलका अनुमान कर उन्होंने सबको वहाँ चलनेके लिये कहा। दुर्गम वनोंके ज्ञाता पवनपुत्र श्रीहनुमानके

* जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई॥ अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ॥ (मानस ४। २१। ४)

† न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये। नाप्सु वा गतिभङ्गं ते पश्यामि हरिपुंगव॥
सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः। विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः॥
गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे। पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः॥
तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते। तद् यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय॥
त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः। देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित॥
(वा० रा० ४।४४।३—७)

‡ अभिज्ञानार्थमेतन्मे ह्यङ्गुलीयकमुत्तमम्। मन्नामाक्षरसंयुक्तं सीतायै दीयतां रहः॥
अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपिसत्तम। जानामि सत्त्वं ते सर्वं गच्छ पन्थाः शुभस्तव॥ (अ० रा० ४। ६। २८-२९)

साथ वानर-भालुओंके समुदायने एक-दूसरेका हाथ पकड़े हुए धीरे-धीरे उस गुफामें प्रवेश किया।

गुफामें कुछ दूरतक गहन अन्धकार था, किंतु आगे जाते ही उन्हें निर्मल जलसे भरे सरोवर एवं साल, ताल, तमाल, नागकेसर, अशोक, चम्पा, नागवृक्ष, कनेर आदि पुष्पों तथा सुमधुर फलोंसे लदे हुए वृक्ष भी दीख पड़े। इतना ही नहीं, वहाँ उन्होंने अद्भुत वस्त्रालंकारोंसहित एक अत्यन्त सुन्दर भवन भी देखा, जहाँ दिव्य भक्ष्य-भोज्य आदि सभी सामग्रियाँ प्रचुर मात्रामें उपस्थित थीं। किंतु वहाँ स्वर्ण-सिंहासनपर एक अत्यन्त लावण्यमयी रमणीको अपने शरीरपर वल्कल और कृष्ण मृगचर्म धारण किये ध्यानमग्न बैठे देख वे एक-दूसरेके मुँहकी ओर ताकने लगे। उस ध्यानमग्ना योगिनीके शरीरसे तेज प्रसरित हो रहा था। भयाक्रान्त बंदरोंने उसके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धासे प्रणाम किया।

'तुमलोग कहाँसे आये हो?' उन महाभागाने बंदरोंको प्रणाम करते देखकर अत्यन्त शान्त चित्तसे मधुर वाणीमें पूछा—'तुम कौन हो और किस उद्देश्यसे इन दुर्गम स्थानोंमें विचरण कर रहे हो? मेरे इस स्थानको नष्ट क्यों कर रहे हो?'

'परमादरणीया देवि!' विशालकाय श्रीहनुमानने अत्यन्त विनम्रतासे उत्तर दिया—'अवधनरेश दशरथके पुत्र श्रीराम अपने पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये अपनी धर्मपत्नी जनकनन्दिनी श्रीजानकीजी और भाई लक्ष्मणके साथ वनमें पधारे थे। वहाँ उनकी परमसाध्वी पत्नीको लंकाधिपति रावण हर ले गया। सुग्रीवने श्रीरामसे मैत्री होनेके कारण हमें श्रीजानकीजीकी खोज करनेकी आज्ञा दी है। इसी शुभ कार्यसे हम इधर आ गये। क्षुधा-पिपासासे आकुल होकर हम इस पवित्र गुफामें प्रविष्ट हुए हैं।' श्रीहनुमानने पुनः कहा—'देवि! आप कौन हैं? कृपापूर्वक हमें भी अपना परिचय दीजिये।'

'मेरा अहोभाग्य!' तपःपूता योगिनीने श्रीहनुमानसे कहा—'आज मेरी तपश्चर्या सफल हो गयी। मेरे आनन्दकी सीमा नहीं। सर्वथा निश्चिन्त होकर तुमलोग सर्वप्रथम यथेच्छ मधुर फलोंका आहार और अमृतमय जलका पान कर लो एवं तृप्त होकर मेरे पास बैठकर विश्राम करो; तब मैं तुमलोगोंको अपना वृत्तान्त सुनाऊँगी।'

श्रीहनुमानजी बंदरोंसहित मधुर फल खाकर एवं शीतल जल पीकर तृप्त और प्रसन्न हो गये। फिर वे योगिनीके समीप जाकर विनयपूर्वक बैठ गये।

'पूर्वकालकी बात है।' भक्तिमती देवीने वानरोंसहित हनुमानजीको बताया—"विश्वकर्माकी हेमा नामक एक अत्यन्त सुन्दरी पुत्री थी। उसके अद्भुत नृत्यसे संतुष्ट होकर आशुतोष शिवने उसे यह विशाल दिव्य नगर रहनेके लिये दे दिया। यहाँ वह सहस्रों वर्षतक रही। वह मेरी प्राणप्रिय सखी थी। ब्रह्मलोकको प्रयाण करते समय उसने मुझे वास्तविक मुमुक्षु एवं क्षीराब्धिशायी श्रीविष्णुकी अनन्य उपासिका समझकर प्रेमपूर्वक मुझसे कहा—'सखी स्वयम्प्रभा! तू इस एकान्त शान्त स्थानमें रहकर तप कर। त्रेतायुगमें स्वयं श्रीनारायण भू-भार-हरण करनेके लिये अवधनरेश दशरथकी परम भाग्यवती धर्मपत्नी कौसल्याके गर्भसे प्रकट होंगे। वे धर्म-संस्थापन एवं दुष्टोंके विनाशके लिये वनमें भ्रमण करेंगे। उनकी परम सती पत्नीको ढूँढ़ते हुए कुछ बंदर इस गुफामें तुम्हारे पास आयेंगे। तुम भक्ष्य, भोज्य एवं मधुर जलसे उनका स्वागत कर उन परमप्रभु श्रीरामके पास चली जाना। उनके दर्शन कर उनसे प्रीतिपूर्वक प्रार्थना करना; उनकी दयासे तुम योगिदुर्लभ श्रीविष्णुके आनन्दमय नित्यधाममें चली जाओगी'।"

अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक श्रीहनुमानजीकी ओर देखती हुई तपस्विनीने पुनः कहा—'मैं दिव्य नामक गन्धर्वकी पुत्री स्वयम्प्रभा हूँ। आज यहाँ तुमलोगोंके पवित्र चरण पड़नेसे मेरा भाग्य-सूर्य उदित हुआ है। अब मैं अपने प्राणाराम परमप्रिय प्रभु भगवान् श्रीरामके दर्शनार्थ जानेके लिये आतुर हो रही हूँ। तुमलोग अपने-अपने नेत्र बंद कर लो; तुरंत इस गुफासे बाहर पहुँच जाओगे। तुम सीताजीको पा जाओगे। निराश मत होओ।'*

महाभागा स्वयम्प्रभाके आदेशानुसार वानर-भालुओंका वह विशाल समुदाय नेत्र बंद करते ही गुफाके बाहर अरण्यमें पहुँच गया।

सम्पातिद्वारा सीताका पता लगना

वानर-भालू पुनः श्रीजनकनन्दिनीकी खोजमें लगे। अत्यधिक श्रमके साथ खोज करनेपर भी दशानन या श्रीसीताजीका कहीं पता नहीं चला। थके हुए वानर-भालू बैठकर परस्पर विचार करने लगे कि 'क्या किया

* मूदहु नयन बिबर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥ (मानस ४।२४।२$\frac{1}{2}$)

जाय?' उस समय अत्यन्त दुःखित होकर अङ्गदने कहा—'इस कन्दरामें घूमते हुए सम्भवतः एक मास बीत गया। राजा सुग्रीवकी दी हुई अवधि समाप्त हो गयी और भगवती सीताका पता नहीं चला। अब किष्किन्धा लौटनेपर तो हम निश्चय ही मारे जायँगे। मुझे तो वे छोड़ ही नहीं सकते, अवश्य मार डालेंगे; कारण मैं उनके शत्रुका पुत्र हूँ। मेरी रक्षा तो धर्मात्मा वीरवर श्रीरामजीने की है। अब प्रभुका कार्य पूरा न करनेका बहाना लेकर वे मुझे किस प्रकार जीवित छोड़ सकते हैं? अतएव मैं तो लौटूँगा नहीं; किसी-न-किसी प्रकार यहीं अपना शरीर त्याग दूँगा।'

इस प्रकार साश्रुनयन युवराजको विलाप करते देखकर वानरोंको बड़ा क्लेश हुआ। उन्होंने अत्यन्त सहानुभूतिपूर्वक अङ्गदसे कहा—'आप चिन्ता न करें। हम सब अपने प्राण देकर भी आपके जीवनकी रक्षा करेंगे। हम सब अमरावतीपुरीकी सुख-सामग्रियोंसे सम्पन्न इस गुफामें ही सुखपूर्वक रहेंगे।'

वानरोंके द्वारा धीरे-धीरे कही गयी इन बातोंको सुनकर परमनीतिज्ञ पवननन्दनने युवराजको आश्वस्त करते हुए अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहा—'युवराज! तुम व्यर्थकी चिन्ता कैसे करने लगे? तुम महारानी ताराके प्राणप्रिय पुत्र होनेके कारण सुग्रीवके भी सहज ही प्रिय हो और तुममें श्रीराघवेन्द्रकी प्रीति तो प्रतिदिन लक्ष्मणसे भी अधिक बढ़ती जा रही है। वानरोंने जो तुम्हें इस गुफामें निष्कण्टक रहनेका परामर्श दिया है, वह व्यर्थ है; क्योंकि त्रैलोक्यका कोई भी लक्ष्य श्रीरघुनन्दनके बाणोंसे अभेद्य नहीं है। स्त्री-बच्चोंसे कभी पृथक् न रहनेवाले ये वानर तुम्हें उचित परामर्श नहीं दे रहे हैं।'

पवनपुत्रने अत्यन्त प्रेमपूर्वक अङ्गदको समझाते हुए आगे कहा—'इसके अतिरिक्त बेटा! मैं एक अत्यन्त गुप्त रहस्य और बताता हूँ; सावधान होकर सुनो। भगवान् श्रीराम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। वे साक्षात् निर्विकार श्रीनारायणदेव हैं। भगवती सीताजी जगन्मोहिनी माया हैं और लक्ष्मणजी त्रिभुवनाधार साक्षात् नागराज शेषजी हैं। वे सब ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे राक्षसोंके विनाश करनेके लिये माया-मानवरूपमें उत्पन्न हुए हैं। इनमेंसे प्रत्येक त्रिलोकीकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं।* हमारा तो परम सौभाग्य है कि हम परमप्रभुकी लीलाके कार्यमें निमित्त बन रहे हैं।'

इस प्रकार युवराज अङ्गदको धैर्य प्रदान करनेके अनन्तर परमपराक्रमी रामदूत श्रीहनुमान जाम्बवान् और अङ्गद आदि वानरोंके साथ माता सीताको ढूँढ़ते हुए धीरे-धीरे दक्षिण-समुद्रके तटपर महेन्द्रपर्वतकी पवित्र उपत्यकामें जा पहुँचे। वहाँ सामने अगाध एवं असीम महासागरकी भयानक लहरोंको देखकर वानर-भालू घबरा गये। सीतान्वेषणके लिये सुग्रीवकी दी हुई एक मासकी अवधि भी समाप्त हो गयी और सामने महासमुद्र! वीर वानर-भालुओंकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। इस कारण वानरराज सुग्रीवके कठोर दण्डकी कल्पना कर उन्होंने कहा—

'राजा सुग्रीव बड़े दुर्दण्ड हैं; वे हमें निस्संदेह मार डालेंगे। सुग्रीवके हाथसे मरनेकी अपेक्षा तो प्रायोपवेशन (अन्न-जल छोड़कर मर जाने)-में ही हमारा अधिक कल्याण है'—ऐसा निर्णय कर वे सब जहाँ-तहाँ कुश बिछाकर मरनेके निश्चयसे वहीं बैठ गये।†

वानरोंका कोलाहल सुनकर गृध्र सम्पाति विन्ध्यगिरिकी कन्दरासे बाहर निकले और जब उन्होंने अन्न-जल त्यागकर मरनेका निश्चय किये वानर-भालुओंको कुशासनपर बैठे देखा तो उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। सम्पातिने हर्षातिरेकमें कहा—

विधिः किल नरं लोके विधानेनानुवर्तते।
यथायं विहितो भक्ष्यश्चिरान्मह्यमुपागतः॥
परम्पराणां भक्षिष्ये वानराणां मृतं मृतम्॥

(वा० रा० ४। ५६। ४-५)

'जैसे लोकमें पूर्वजन्मके कर्मानुसार मनुष्यको उसके कियेका फल स्वतः प्राप्त होता है, उसी प्रकार आज दीर्घकालके पश्चात् यह भोजन स्वतः मेरे लिये प्राप्त हो गया। अवश्य ही यह मेरे किसी कर्मका फल है। इन वानरोंमेंसे जो-जो मरता जायगा, उसको मैं क्रमशः भक्षण करता जाऊँगा।'

भोजनके लिये लालायित महाकाय सम्पातिको देखकर वानरगण अत्यन्त भयभीत हो गये। वे सोचने

* अन्यद् गुह्यतमं वक्ष्ये रहस्यं शृणु मे सुत। रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः॥
सीता भगवती माया जनसम्मोहकारिणी। लक्ष्मणो भुवनाधारः साक्षाच्छेषः फणीश्वरः॥
ब्रह्मणा प्रार्थिताः सर्वे रक्षोगणविनाशने। मायामानुषभावेन जाता लोकैकरक्षकाः॥ (अ० रा० ४। ७। १६—१८)

† अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥ (मानस)

लगे—'हमसे न तो श्रीरामकी ही कोई सेवा हो सकी और न सुग्रीवकी ही आज्ञाका पालन हुआ; अब हमलोग व्यर्थ ही इसके पेटमें चले जायँगे।' फिर उन्होंने उस पंखहीन अत्यन्त विशाल गृध्रको सुनाकर कहा—

अहो जटायुर्धर्मात्मा रामस्यार्थे मृतः सुधीः।
मोक्षं प्राप दुरावापं योगिनामप्यरिंदमः॥

(अ० रा० ४। ७। ३४)

'अहो! धर्मात्मा जटायु धन्य है, जिस बुद्धिमान्‌ने श्रीरामके कार्यमें अपने प्राण दे दिये। देखो, उस शत्रुदमनने वह मोक्षपद प्राप्त कर लिया, जो योगियोंको भी दुर्लभ है।'

जटायुका नाम सुनकर सम्पाति अत्यधिक दुःखी हो गये। अत्यन्त आश्चर्यसे उन्होंने वानरोंसे कहा—

के वा यूयं मम भ्रातुः कर्णपीयूषसंनिभम्॥
जटायुरिति नामाद्य व्याहरन्तः परस्परम्।
उच्यतां वो भयं मा भून्मत्तः प्लवगसत्तमाः॥

(अ० रा० ४। ७। ३५-३६)

''हे कपिश्रेष्ठगण! तुमलोग कौन हो, जो आपसमें मेरे कानोंको अमृतके समान प्रिय लगनेवाले मेरे भाई 'जटायु' का नाम ले रहे हो। तुम मुझसे किसी प्रकारका भय न करके अपना वृत्तान्त कहो।''

सम्पातिके आश्वासन देनेपर भी वानर-यूथपतियोंने उनपर विश्वास नहीं किया। वे मांसभोजी महाकाय गृध्रसे अत्यन्त शङ्कित थे। बहुत सोच-विचारके उपरान्त वानर उनके समीप गये और युवराज अङ्गदने उन्हें श्रीरामके सम्बन्धमें जन्मसे लेकर श्रीसीताहरणतककी सारी घटना अत्यन्त विस्तारपूर्वक सुनायी। इसके बाद जटायुके श्रीसीताकी रक्षाके लिये रावणके साथ युद्ध कर श्रीरामकी गोदमें सुखपूर्वक प्राण-विसर्जन करनेकी बात कही। परम कारुणिक श्रीरामने जिस प्रकार उनकी अन्तिम क्रिया की थी, वह भी उन्होंने भाव-विभोर होकर बतायी और अन्तमें उन्होंने यह भी कहा कि 'हमलोग वानरोंके राजा सुग्रीवके आदेशसे श्रीसीताजीकी खोजके लिये यहाँतक आये हैं; पर अबतक उनका कोई पता नहीं लगा, इस कारण हमलोग दुःखसे अधीर और व्याकुल हो रहे हैं।'

अपने प्राणप्रिय भाई जटायुका प्रभुके लिये प्राणार्पण एवं उनकी अन्तिम गतिका सुखद संवाद सुनकर सम्पाति आनन्द-विह्वल हो गये। इतना ही नहीं, महामुनि चन्द्रमाके वचनके अनुसार अपने परम कल्याणका क्षण उपस्थित जानकर वे अपना सारा दुःख भूल गये। उनके अङ्ग-अङ्ग परमानन्दसे पुलकित हो गये—

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा सम्पातिर्हृष्टमानसः॥
उवाच मत्प्रियो भ्राता जटायुः प्लवगेश्वराः।
बहुवर्षसहस्रान्ते भ्रातृवार्ता श्रुता मया॥

(अ० रा० ४।७।४६-४७)

''अङ्गदके वचन सुनकर चित्तमें प्रसन्न हो सम्पातिने कहा—'हे कपीश्वरो! जटायु मेरा परमप्रिय भाई है। आज कई सहस्र वर्षोंके अनन्तर मैंने भाईका समाचार सुना है''। फिर उन्होंने कहा—

वाङ्मतिभ्यां हि सर्वेषां करिष्यामि प्रियं हि वः॥
यद्धि दाशरथेः कार्यं मम तन्नात्र संशयः।

(वा० रा० ४।५९।२४-२५)

'मैं वाणी और बुद्धिके द्वारा तुम सबलोगोंका प्रिय कार्य अवश्य करूँगा; क्योंकि दशरथनन्दन श्रीरामका जो कार्य है, वह मेरा ही है—इसमें संशय नहीं है।'

सम्पातिने फिर कहा—'सर्वप्रथम तुमलोग मुझे जलके पास ले चलो, जिससे मैं अपने भाईको जलाञ्जलि दे लूँ। फिर तुमलोगोंकी कार्य-सिद्धिके लिये मैं उचित मार्ग बताऊँगा।'*

सम्पातिकी इच्छा जानकर महावीर हनुमानजी उन्हें उठाकर समुद्र-तटपर ले गये।† वहाँ सम्पातिने स्नान करके जटायुको जलाञ्जलि दी। फिर वानरगण उन्हें उनके स्थानपर ले गये। वहाँ भगवान् श्रीरामके भक्तोंको सम्मुख बैठे देखकर सम्पातिके सुखकी सीमा न थी। उनका शारीरिक एवं मानसिक कष्ट तो पहले ही दूर हो गया था; उन्होंने चारों ओर अपनी दृष्टि डालकर प्रभुके प्रिय भक्तोंको अत्यन्त आदरपूर्वक बताया—

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका॥
तहँ असोक उपबन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई॥
मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार॥

(मानस ४। २७। ६; २८)

'त्रिकूटपर्वतपर लंकानगरी है। वहाँ रावण सहज ही निःशंक रहता है। वहाँ अशोक नामक एक उपवन है, जहाँ श्रीसीताजी शोकमग्न बैठी हैं। मैं सब देख

* मोहि लै जाहु सिंधु तट देउँ तिलांजलि ताहि। बचन सहाइ करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि॥ (मानस ४। २७)
† जयति घर्मांशु-संदग्ध-संपाति नवपक्ष-लोचन-दिव्य-देह-दाता॥ (विनय-पत्रिका २८वाँ पद)

रहा हूँ, तुम नहीं देख सकते; क्योंकि गृध्रकी दृष्टि अपार—बहुत दूरतक जानेवाली होती है। मैं वृद्ध हो गया, नहीं तो तुम्हारी कुछ सहायता करता।'

फिर उन्हें प्रोत्साहित करते हुए सम्पातिने उनसे कहा—

तद् भवन्तो मतिश्रेष्ठा बलवन्तो मनस्विनः॥
प्रहिताः कपिराजेन देवैरपि दुरासदाः।

(वा० रा० ४। ५९। २५-२६)

'तुमलोग भी उत्तम बुद्धिसे युक्त, बलवान्, मनस्वी तथा देवताओंके लिये भी दुर्जेय हो। इसीलिये वानरराज सुग्रीवने तुम्हें इस कार्यके लिये भेजा है।'

तदनन्तर उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणके तीक्ष्ण शरोंकी महिमाका गान करते हुए वानर-भालुओंसे कहा—

रामलक्ष्मणबाणाश्च विहिताः कङ्कपत्रिणः॥
त्रयाणामपि लोकानां पर्याप्तास्त्राणनिग्रहे।
कामं खलु दशग्रीवस्तेजोबलसमन्वितः।
भवतां तु समर्थानां न किंचिदपि दुष्करम्॥

(वा० रा० ४। ५९। २६-२७)

'श्रीराम और लक्ष्मणके कङ्कपत्रसे युक्त जो बाण हैं, वे साक्षात् विधाताके बनाये हुए हैं। वे तीनों लोकोंका संरक्षण और दमन करनेके लिये पर्याप्त शक्ति रखते हैं। तुम्हारा विपक्षी दशग्रीव रावण भले ही तेजस्वी और बलवान् है, किंतु तुम-जैसे सामर्थ्यशाली वीरोंके लिये उसे परास्त करना आदि कोई भी कार्य दुष्कर नहीं है।'

प्रोत्साहन देनेके अनन्तर सम्पातिने कहा—'तुमलोग किसी-न-किसी तरह समुद्र लाँघनेका प्रयत्न करो। राक्षसराज रावणको तो वीरवर श्रीरामचन्द्रजी स्वयं मार डालेंगे। तुमलोग विचार कर लो कि तुममें ऐसा कौन वीर है, जो समुद्र लाँघकर लंकामें पहुँच जाय और माता सीताके दर्शन एवं उनसे बातचीत कर पुनः समुद्रके इस पार आ जाय।'

सम्पातिके द्वारा माता सीताका पता पाकर वानर-वृन्दके हर्षकी सीमा न रही। उन्होंने कौतूहलवश सम्पातिका पूरा जीवन-वृत्तान्त जाननेकी इच्छा व्यक्त की। उन्होंने उन्हें बड़े ही आदर और प्रेमपूर्वक अपने पंख भस्म होने एवं चन्द्रमामुनिके द्वारा कही गयी सारी बातें सुना दीं। इसके अनन्तर उन्होंने कहा—"वानरो! पंखहीन पक्षीकी विवशता क्या कही जाय? मेरी इस अत्यन्त दयनीय स्थितिमें मेरा पुत्र पक्षिप्रवर सुपार्श्व ही मुझे यथासमय आहार प्रदान कर मेरा भरण-पोषण करता आया है। हमलोगोंकी क्षुधा अत्यन्त तीव्र होती है। एक दिन मैं भूखसे छटपटा रहा था, किंतु मेरा पुत्र देरसे रिक्तहस्त लौटा; इस कारण मैंने उसे अनेक कटु बातें कहीं। इसपर उसने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक मुझसे कहा—'मैं आपके आहारके लिये यथासमय आकाशमें उड़ा और महेन्द्रगिरिके द्वारको रोककर अपनी चोंच नीची किये समुद्री जीवोंको देखने लगा। उसी समय वहाँ मैंने एक कज्जलगिरिकी भाँति बलवान् पुरुषको देखा, जो अपने साथ एक अलौकिक तेजस्विनी स्त्रीको बलात् लिये जा रहा था। उस स्त्री और पुरुषके द्वारा मैंने आपकी भूख मिटानेका निश्चय किया, किंतु उस पुरुषकी अत्यन्त मधुर एवं विनम्र वाणीसे प्रभावित होकर मैंने उसे छोड़ दिया।'

'इसके अनन्तर मुझे महर्षियों एवं सिद्ध पुरुषोंसे विदित हुआ कि वह अलौकिक तेजस्विनी स्त्री दशरथनन्दन श्रीरामकी पत्नी भगवती सीता थीं और काला पुरुष लंकाधिपति रावण था। श्रीसीताके केश खुले हुए थे। वे अत्यन्त दुःखसे श्रीराम और लक्ष्मणका नाम लेकर विलाप कर रही थीं और उनके आभूषण गिरते जा रहे थे। इसी कारण मुझे यहाँ आनेमें देर हो गयी।'

"पंखहीन, असहाय और विवश मैं छटपटाकर रह गया। मैं कुछ नहीं कर सकता था। दुष्ट रावणकी शक्तिसे मैं परिचित था, इस कारण जगदम्बा सीताकी रक्षा न करनेके कारण मैंने उसे कठोर वचन कहे।" फिर सम्पातिने कहा—

तस्या विलपितं श्रुत्वा तौ च सीतावियोजितौ॥
न मे दशरथस्नेहात् पुत्रेणोत्पादितं प्रियम्।

(वा० रा० ४।६३।७-८)

'श्रीसीताका विलाप सुनकर और उनसे बिछुड़े हुए श्रीराम तथा लक्ष्मणका परिचय पाकर तथा राजा दशरथके प्रति मेरे स्नेहका स्मरण करके भी मेरे पुत्रने जो सीताजीकी रक्षा नहीं की, अपने इस बर्तावसे उसने मुझे प्रसन्न नहीं किया—मेरा प्रिय कार्य नहीं होने दिया।'

परम भाग्यवान् सम्पाति वानरोंको अपनी कथा सुना ही रहे थे कि उनके दो नये पंख निकल आये। उनमें यौवन-कालका बल भी उत्पन्न हो गया। महर्षि चन्द्रमाकी वाणीका स्मरण करके वे अत्यन्त सुखी हुए। उन्होंने वानरोंसे कहा—

सर्वथा क्रियतां यत्नः सीतामधिगमिष्यथ॥
पक्षलाभो ममायं वः सिद्धिप्रत्ययकारकः।

(वा० रा० ४। ६३। १२-१३)

'वानरो! तुम सब प्रकारसे यत्न करो। निश्चय ही

तुम्हें माता सीताका दर्शन प्राप्त होगा। मुझे पंखोंका प्राप्त होना तुमलोगोंकी कार्य-सिद्धिका विश्वास दिलानेवाला है।'

फिर उन्होंने भगवान् श्रीरामके मङ्गलमय नामकी महिमाका बखान करते हुए उनके लिये समुद्रोल्लङ्घन अत्यन्त सरल कार्य बताया। सम्पातिने कहा—

यन्नामस्मृतिमात्रतोऽपरिमितं संसारवारांनिधिं
तीर्त्वा गच्छति दुर्जनोऽपि परमं विष्णोः पदं शाश्वतम्।
तस्यैव स्थितिकारिणस्त्रिजगतां रामस्य भक्ताः प्रिया
यूयं किं न समुद्रमात्रतरणे शक्ताः कथं वानराः॥

(अ० रा० ४। ८। ५५)

'वानरगण! जिनके नामके स्मरणमात्रसे महान् दुष्टजन भी इस अपार संसार-सागरको पार करके भगवान् विष्णुके सनातन परमपदको प्राप्त कर लेते हैं, तुमलोग त्रिलोकीकी स्थिति करनेवाले उन्हीं भगवान् श्रीरामके प्रिय भक्तगण हो। फिर इस क्षुद्र समुद्रमात्रको पार करनेमें तुम क्यों समर्थ न होंगे?'*

विनीतात्मा परमपराक्रमी पवनकुमार भाग्यवान् सम्पातिके एक-एक शब्द अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। माता सीताका सुस्पष्ट पता विदित हो जानेपर श्रीरामदूत हनुमानजीकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उनके रोम-रोम पुलकित हो गये।

उसी समय पक्षिश्रेष्ठ सम्पाति उस पर्वत-शिखरसे उड़कर चले गये।

समुद्रोल्लङ्घन और लंकामें प्रवेश

गृध्रराज सम्पातिके द्वारा श्रीजनकदुलारीका पता पाकर वानर-भालुओंका विशाल समुदाय हर्षातिरेकसे उछलने-कूदने लगा; किंतु जब वे लोग महान् जलधिके तटपर पहुँचे, तब उसका रोमाञ्चकारी स्वरूप देखकर सहम उठे। 'भयानक गर्जन करते हुए उत्तुङ्ग लहरोंवाले असीम सागरके पार कैसे जाया जाय?'—समस्त वानर-भालुओंको चिन्तित, उदास और विषादमें पड़ा देख युवराज अङ्गदने उन्हें अनेक युक्तियोंसे समझाकर आश्वस्त किया। सच तो यह है, महासागर-तुल्य वीर वानर-भालुओंकी महान् सेनाको अङ्गद और श्रीहनुमान ही सुस्थिर रख सकनेमें समर्थ थे।

वालिकुमार अङ्गदने समस्त वीर वानर-भालुओंसे कहा—'बन्धुओ! आप सब अन्यतम वीर हैं और आपलोगोंमेंसे कभी किसीकी गति कहीं नहीं रुकती। आपमें ऐसे कौन-कौन महान् वीर हैं, जो जगन्माता जानकीका पता लगानेके लिये इस अपार समुद्रको लाँघकर लंका पहुँच जायँगे?'

अङ्गदका वचन सुन पहले तो समस्त वानर-भालू चुप हो गये, किंतु कुछ देर बाद गजनामक वानरने कहा—'मैं दस योजनकी छलाँग मार सकता हूँ।' इसी प्रकार गवाक्षने बीस, शरभने तीस, ऋषभने चालीस, गन्धमादनने पचास, मैन्दने साठ, द्विविदने सत्तर और सुषेणने अस्सी योजनतक छलाँग मारनेकी बात कही।

वयोवृद्ध ऋक्षराज जाम्बवान्ने कहा—'पहले यौवनकालमें मैं भी बहुत लंबी छलाँग मार सकता था, किंतु अब वह शक्ति मुझमें नहीं रही; तथापि वानरराज सुग्रीव और श्रीकौसल्याकिशोरके कार्यकी उपेक्षा सम्भव नहीं। इस वृद्धावस्थामें मैं केवल नब्बे योजन दूरतक छलाँग मार सकता हूँ। पूर्वकालमें जब भगवान् त्रिविक्रमने अवतार लिया था, तब मैंने उन प्रभुके पृथ्वीके बराबर परिमाणवाले चरणकी इक्कीस बार परिक्रमा कर ली थी; परंतु अब इस महान् समुद्रको लाँघ जाना मेरे वशकी बात नहीं।'

अङ्गद बोले—'मैं समुद्र तो पार कर सकता हूँ, किंतु लौट पाऊँगा कि नहीं, यह कहना सम्भव नहीं।'

अङ्गदके वचन सुनकर वाक्यकोविद वृद्ध जाम्बवान्ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—'अङ्गद! यद्यपि तुम इस कार्यके करनेमें पूर्ण समर्थ हो, किंतु तुम हम सबके नायक हो; अतः तुम्हें भेजना हमारे लिये उचित नहीं है। तुम तो प्रत्येक रीतिसे रक्षणीय हो।'

अङ्गदने उदास होकर कहा—'तब तो समुद्रोल्लङ्घन सम्भव नहीं प्रतीत होता। फिर हमलोग प्रायोपवेशनका संकल्प करके बैठ जायँ।'

'नहीं बेटा! भगवान् श्रीरामका कार्य अवश्य होगा।' अङ्गदको आश्वस्त करते हुए जाम्बवान्ने श्रीअञ्जनानन्दनकी ओर देखा। वे सर्वथा मौन बैठे थे। ऋक्षराजको विदित था कि ये वज्राङ्ग श्रीहनुमान शापके कारण भस्माच्छादित

---

* मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा। राम कृपाँ कस भयउ सरीरा॥
पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई। राम हृदयँ धरि करहु उपाई॥ (रामचरितमानस ४। २८। १-२)

अग्नितुल्य शान्त हैं। इन्हें अपनी अपरिमेय शक्तिकी स्मृति नहीं है, अन्यथा ये अपने स्वामी सुग्रीवको संकटग्रस्त देखकर भी चुप कैसे रहते; ये निश्चय ही वालीको दण्डित करते। जाम्बवान्‌ने श्रीहनुमानको उनकी शक्तिका स्मरण दिलाते हुए कहा—'भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त वज्राङ्ग हनुमान! श्रीरामके कार्यके लिये ही तुमने अवतार धारण किया है, फिर चुप क्यों बैठे हो? महावीर! तुम पवनके पुत्र हो। तुमने माता अञ्जनाका दुग्ध पान किया है। बाल्यकालमें ही तुम सूर्यदेवको अरुण फल समझकर उन्हें भक्षण करनेके लिये एक ही छलाँगमें उनके पास पहुँच गये थे। ब्रह्मादि देवताओंने तुम्हें अलौकिक वरदान प्रदान किये हैं। महावीर केसरीकिशोर! तुम अपरिमित शक्ति-सम्पन्न हो। तुम्हारी गति अव्याहत है। यह विशाल जलधि तो तुम्हारे लिये नगण्य है। उठो और समुद्रको लाँघकर लंका पहुँच जाओ। वहाँ माता सीताके दर्शन कर तुरंत लौट आओ। हम वानर-भालुओंके जीवनकी रक्षा कर लो। विवेक और ज्ञानके निधान वायुपुत्र! देखो, ये चिन्तित और उदास असंख्य वानर-भालू तुम्हारी ओर देख रहे हैं।'

जाम्बवान्‌के वचन सुनते ही भगवान्‌की स्मृतिमें तल्लीन हनुमानजीको अपने बल और पराक्रमका स्मरण हो आया। तत्क्षण उनका शरीर पर्वताकार हो गया। उन्होंने अपनेमें अपार शक्तिका अनुभव कर भयानक गर्जना की। उस गर्जनासे धरती, आकाश तथा समस्त दिशाएँ काँप उठीं।

कनकभूधराकार पवनकुमारने गजरते हुए कहा—'वानरो! मैं भगवान्‌की कृपासे आकाशचारी समस्त ग्रह-नक्षत्र आदिको लाँघकर आगे बढ़ जानेके लिये तैयार हूँ। मैं चाहूँ तो समुद्रोंको सोख लूँ, पृथ्वीको विदीर्ण कर दूँ और कूद-कूदकर पर्वतोंको विचूर्ण कर डालूँ। यह तुच्छ समुद्र मेरे लिये कुछ नहीं है। बताओ, मुझे क्या करना है? कहो तो मैं लंकामें जाकर उसे उठाकर समुद्रमें डुबो दूँ और माता सीताको यहाँ ले आऊँ या कहो तो रावणसहित समूची लंकाको जलाकर राख कर दूँ अथवा कहो तो राक्षसराज रावणके कण्ठमें रस्सी बाँधकर उसे घसीटते हुए यहाँ लाकर भगवान् श्रीरामके चरणोंमें पटक दूँ या केवल जगन्माता जानकीको देखकर ही लौट आऊँ?'

परम शक्तिशाली पवनकुमारके वचन सुन जाम्बवान्‌ने प्रसन्न होकर कहा—'तात! तुम सर्वसमर्थ हो, किंतु तुम भगवान्‌के दूत हो। तुम केवल सीता-माताका दर्शन कर उनका समाचार लेकर चले आओ। इसके अनन्तर भगवान् श्रीराम वहाँ जाकर असुर-कुलका उद्धार करेंगे। उनकी पवित्र कीर्तिका विस्तार होगा और हम सभी प्रभु-कार्यमें सहायक होकर कृतार्थ होंगे। हम समस्त वानर-भालुओंके प्राण तुम्हारे अधीन हैं। हम सब आतुरतापूर्वक तुम्हारी प्रतीक्षा करते रहेंगे। तुम शीघ्र जाओ। आकाशमार्गसे जाते हुए तुम्हारा कल्याण हो!'

वृद्ध वानर-भालुओंके आशीर्वादसे प्रसन्न होकर महा-पराक्रमी, शत्रुमर्दन श्रीरामदूत हनुमान उछलकर महेन्द्रपर्वतके शिखरपर चढ़ गये। उनके चरणोंके आघातसे पर्वत नीचे धँसने लगा और वृक्षोंसहित पर्वत-शृङ्ग टूट-टूटकर गिरने लगे। उस समय समस्त प्राणियोंको वायुपुत्र महात्मा हनुमानजी महान् पर्वतके समान विशालकाय, सुवर्ण-वर्ण अरुण (बाल-सूर्य)-के समान मनोहर मुखवाले और महान् सर्पराजके समान दीर्घ भुजाओंवाले दिखायी देने लगे।*

समुद्र पार करनेके लिये प्रस्तुत आञ्जनेयने पूर्वाभिमुख होकर अपने पिता वायुदेवको प्रणाम किया; फिर उन्होंने भगवान् श्रीरामका स्मरण कर वानर-भालुओंसे कहा—'वानरगण! मैं परमप्रभु श्रीरामकी कृपासे उनके अमोघ वाणकी गतिसे लंका जाकर जगज्जननीके दर्शन कर पुनः लौट आऊँगा। प्राणान्तकालमें प्रभुके नामका स्मरण कर मनुष्य संसार-सागरसे पार हो जाता है, फिर मैं तो उनका दूत हूँ। उनकी अँगुलीकी दिव्य अँगूठी मेरे पास है और मेरे हृदयमें उनकी मूर्ति तथा वाणीमें उनका नाम विराजित है; फिर मैं इस तुच्छ समुद्रको लाँघकर कृतकार्य होऊँ, इसमें कौन बड़ी बात है? आपलोग मेरे लौटनेतक कंद-मूलका आहार करके यहीं मेरी प्रतीक्षा करें।'

उस समय श्रीवायुनन्दनमें तेज, बल और पराक्रमका अद्भुत आवेश था। देवगण जय-जयकार और ऋषि शान्तिपाठ करने लगे। श्रीआञ्जनेयने दक्षिणकी ओर अपनी दोनों भुजाएँ फैलायीं और बड़े वेगसे आकाशमें ऊपरकी ओर उछलकर गरुडकी भाँति तीव्रतासे उड़े। उनके वेगसे आकृष्ट होकर कितने ही वृक्ष उखड़कर अपनी डालियों-समेत उड़ चले। पुष्पित वृक्षोंके पुष्प उनके ऊपर गिरे, जैसे वे वायुपुत्रकी पूजा कर रहे हों।

* महानगेन्द्रप्रतिमो महात्मा सुवर्णवर्णोऽरुणचारुवक्त्रः। महाफणीन्द्राभसुदीर्घबाहुर्वातात्मजोऽदृश्यत सर्वभूतैः॥ (अ० रा० ४।९।२९)

पवनपुत्र श्रीहनुमानको पवनकी गतिसे श्रीराम-कार्यके लिये जाते देखकर सागरने सोचा—'इक्ष्वाकुवंशीय महाराज सगरके पुत्रोंने मुझे बढ़ाया था और ये अभय वज्राङ्ग हनुमान इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न श्रीरामके कार्यसे लंका जा रहे हैं; अत: इन्हें मार्गमें विश्राम देनेका प्रयत्न करना चाहिये।'

समुद्रने मैनाकपर्वतसे कहा—'शैलप्रवर! देखो, ये कपिकेसरी हनुमान इक्ष्वाकुवंशीय श्रीरामकी सहायताके लिये तीव्र वेगसे लंका जा रहे हैं। इस पावन वंशके लोग मेरे पूजनीय हैं और तुम्हारे लिये तो परम पूज्यनीय हैं। अतएव तुम श्रीहनुमानकी सहायता करो। तुम तुरंत जलसे ऊपर उठ जाओ, जिससे ये कुछ देर तुम्हारे शिखरपर विश्राम कर सकें।'

मैनाक अपने अनेक सुवर्ण एवं मणिमय शिखरोंसहित समुद्रसे अत्यधिक ऊपर उठ गया और एक शृङ्गपर मनुष्यके वेषमें खड़े होकर उसने हनुमानजीसे प्रार्थना की—'कपिश्रेष्ठ! आप वायुके पुत्र हैं और उन्हींकी भाँति अपरिमित शक्तिसम्पन्न हैं। आप धर्मके ज्ञाता हैं। आपकी पूजा होनेपर साक्षात् वायुदेवका पूजन हो जायगा।* इसलिये आप अवश्य ही मेरे पूज्यनीय हैं। पहले पर्वतोंके पंख होते थे। वे आकाशमें इधर-उधर वेगपूर्वक उड़ा करते थे। इस प्रकार उनके उड़ते रहनेसे देवताओं, ऋषियों एवं समस्त प्राणियोंके मनमें भय व्याप्त हो गया। इस कारण कुपित होकर सहस्राक्षने लाखों पर्वतोंके पंख काट डाले। वज्र लिये क्रुद्ध सुरेन्द्र मेरी ओर भी चले, किंतु आपके पिता महात्मा वायुदेवने मुझे इस समुद्रमें गिराकर मेरी रक्षा कर ली।'

मैनाकने अत्यन्त आदर एवं प्रीतिपूर्वक हनुमानजीसे आगे निवेदन किया—'वायुनन्दन! आपके साथ मेरा यह पवित्र सम्बन्ध है और आप मेरे माननीय हैं। दूसरे, समुद्रने भी आपको विश्राम देनेके लिये मुझे आज्ञा प्रदान की है। आप मेरे यहाँ विविध प्रकारके मधुर फल ग्रहण करें; कुछ देर विश्राम कर लें। तदनन्तर अपने कार्यके लिये चले जायँ।'

मैनाकके वचन सुनकर श्रीआञ्जनेयने अत्यन्त प्रेमपूर्वक उत्तर दिया—'मैनाक! आपसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा आतिथ्य हो गया। मुझे अपने प्रभुके कार्यकी शीघ्रता है, अतएव मेरे लिये विश्राम करना सम्भव नहीं।'

श्रीकेसरीकिशोरने हँसते हुए मैनाकका स्पर्श किया और तीव्रतासे आगे बढ़ गये। उस समय शैलप्रवर मैनाक और जलधि—दोनोंने उनकी ओर अत्यन्त आदर और प्रीतिपूर्वक देखकर उन्हें बार-बार आशीर्वाद प्रदान किया।

श्रीकेसरीकिशोरको श्रीरामचन्द्रजीके कार्यके लिये वेगपूर्वक लंकाकी ओर उड़कर जाते देख देवताओंने उनके बल और बुद्धिका पता लगानेके लिये नागमाता सुरसाको भेजा। देवताओंके आदेशानुसार सुरसाने अत्यन्त विकट, बेडौल और भयानक रूप धारण किया। उसके नेत्र पीले और दाढ़ें विकराल थीं। वह आकाशको स्पर्श करनेवाला विकटतम मुँह बनाकर श्रीहनुमानजीके मार्गमें खड़ी हो गयी।

श्रीहनुमानको अपनी ओर आते देख नागमाताने कहा—'महामते ! मैं तीव्र क्षुधासे व्याकुल हूँ। देवताओंने तुम्हें मेरे आहारके रूपमें भेजा है। तुम मेरे मुखमें आ जाओ। मैं अपनी क्षुधा शान्त कर लूँ।'

श्रीअञ्जनानन्दनने उत्तर दिया—'माता सुरसा! मेरा प्रणाम स्वीकार करो। मैं आर्तत्राण-परायण श्रीरघुनाथजीके कार्यसे लंका जा रहा हूँ। इस समय माता सीताका पता लगानेके लिये तुम मुझे जाने दो। वहाँसे शीघ्र ही लौटकर तथा श्रीरघुनाथजीको माता सीताका कुशल-समाचार सुनाकर मैं तुम्हारे मुखमें प्रविष्ट हो जाऊँगा।'

किंतु श्रीरामदूतके बल-बुद्धिकी परीक्षाके लिये आयी सुरसा उन्हें किसी प्रकार आगे नहीं जाने देती थी; तब श्रीहनुमानने उससे कहा—'अच्छा, तू मुझे भक्षण कर।'

सुरसाने अपना मुँह एक योजन विस्तृत फैलाया ही था कि श्रीवायुनन्दनने तुरंत अपना शरीर आठ योजनका बना लिया। उसने अपना मुँह सोलह योजन विस्तृत किया, तब श्रीपवनकुमार तुरंत बत्तीस योजनके हो गये। सुरसा जितना ही अपना विकराल मुँह फैलाती, बृहत्काय श्रीहनुमान उसके दुगुने आकारके विशाल हो जाते थे। जब उसने अपना मुँह सौ योजनका बनाया, तब श्रीवायुपुत्र अँगूठेके समान अत्यन्त छोटा रूप धारण कर उसके मुखमें प्रविष्ट हो गये।

सुरसा अपना मुँह बंद करने ही जा रही थी कि महामति श्रीआञ्जनेय उसके मुखसे बाहर निकल आये और विनयपूर्वक कहने लगे—'माता ! मैं तुम्हारे मुँहमें जाकर निकल आया। तुम्हारी बात पूरी हो गयी। अब मुझे अपने प्रभुके आवश्यक कार्यके लिये जाने दो।'

सुरसा तो श्रीरामदूतकी केवल परीक्षा करना चाहती थी। उसने कहा—'वायुनन्दन ! निश्चय ही तुम ज्ञाननिधि हो। देवताओंने तुम्हारी परीक्षाके लिये मुझे भेजा था। मैं तुम्हारे बल और बुद्धिका रहस्य समझ गयी; अब

* पूजिते त्वयि धर्मज्ञे पूजां प्राप्नोति मारुत:। (वा० रा० ५। १। १२१)

तुम जाकर श्रीराघवेन्द्रका कार्य करो। सफलता तुम्हें निश्चय वरण करेगी। मैं हृदयसे तुम्हें आशिष देती हूँ।'

सुरसा देवलोकके लिये प्रस्थित हुई और उग्रवेग श्रीमारुतात्मज गरुडकी भाँति आगे चले। मैनाकवन्दित वानर-शिरोमणि श्रीरामदूत पवनके वेगसे उड़ते हुए जा ही रहे थे, मार्गमें सिंहिका राक्षसी समुद्रमें मिली। वह आकाशसे उड़कर जानेवाले प्राणियोंको उनके प्रतिबिम्बके द्वारा खींचकर मार डालती थी। उस छायाग्राहिणी सिंहिका आसुरीने समुद्रसे श्रीपवनपुत्रकी भी छाया पकड़ ली। हनुमानजीकी गति अवरुद्ध हो गयी। आश्चर्यमें पड़े श्रीरामदूतने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी, पर उन्हें कहीं कोई दीख न पड़ा। जब उन्होंने नीचे दृष्टि डाली तो जलके ऊपर स्थूल शरीरवाली विकराल राक्षसी दीख पड़ी। बस, विशालकाय हनुमानजी वेगपूर्वक-सिंहिकाके ऊपर कूद पड़े। भूधराकार, महातेजस्वी, महाशक्तिशाली पवनपुत्रका भार वह राक्षसी कैसे सह पाती? पिसकर चूर्ण-चूर्ण हो गयी।

हनुमानजीका यह भयानक कार्य देखकर खेचर प्राणियोंने उनका स्तवन करते हुए कहा—'कपिवर! इस विशालकाय प्राणीको मार डालनेका अद्भुत कर्म कर लेनेपर अब आप निरापद आगे जा सकते हैं। वानरेन्द्र! जिस पुरुषमें आपके समान धैर्य, समझ, बुद्धि और कुशलता—ये चारों गुण होते हैं, उसे अपने कार्यमें कभी असफलता नहीं होती।'

आकाशमें विचरण करनेवाले प्राणियोंके वचन सुनते हुए श्रीपवनपुत्र दक्षिण दिशाकी ओर अत्यन्त वेगपूर्वक जा रहे थे। कुछ ही देरमें वे निर्विघ्न लंकाके उस समुद्र-तटपर पहुँचे, जहाँ विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्पों और फलोंसे लदे वृक्षोंके सुन्दर बगीचे थे। वे भौंरोंके गुञ्जार एवं अनेक प्रकारके सुन्दर पक्षियोंके कलरवसे निनादित थे। वहाँ मृग-शावक क्रीडा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक इधर-उधर दौड़ रहे थे। शीतल बयार बह रही थी। बड़ा ही मनोरम दृश्य था। वहाँसे त्रिकूट-पर्वतके शिखरपर बसी हुई चतुर्दिक् परकोटों एवं खाइयोंसे घिरी रावणकी लंकापुरी स्पष्ट दीख रही थी।

आञ्जनेयने एक बार चारों ओर देखा। फिर वे लंकामें प्रविष्ट होनेके लिये विचार करने लगे। उन्होंने सोचा—'दुर्धर्ष दशाननसे युद्ध अनिवार्य है। अतएव यहाँ अपरिमित वानर-भालुओंकी सेनाके साथ प्रभुके ठहरनेके स्थान और जल-फलके सुपासका भी पता लगा लेना चाहिये। यह दुर्ग अत्यन्त दुर्गम प्रतीत होता है। अतएव आक्रमणकी दृष्टिसे यहाँकी एक-एक बात जान लेना नितान्त आवश्यक है। किंतु इस विशाल वेषमें दिनके प्रकाशमें तो असुरोंको मेरे आगमनका रहस्य विदित हो जायगा; अतएव रात्रिमें सूक्ष्म वेषमें इस दुरूह दुर्गके भीतर मेरा प्रवेश करना हितावह होगा।'

आञ्जनेय उछलकर एक पर्वतपर चढ़ गये और वहींसे लंकापुरीको देखने लगे। वह पुरी अत्यन्त सुदृढ़ दुर्ग थी और उसकी सुन्दरता अनिर्वचनीय थी। उसके चारों ओर समुद्र थे और उसके परकोटे सोनेके बने थे। उसके सभी द्वार सुवर्ण-निर्मित थे। प्रत्येक द्वारपर नीलमके चबूतरे बने थे। वहाँके सुविस्तृत पथ स्वच्छ एवं आकर्षक थे। रावणद्वारा पालित लंकापुरीमें स्थान-स्थानपर सुरम्य वन एवं निर्मल जलपूरित जलाशय विद्यमान थे। उसके निर्माणमें जैसे विश्वकर्माने अपनी समस्त बुद्धि व्यय कर दी थी।

लंकामें सर्वत्र सशस्त्र विकराल सैनिकोंकी कठोर सुरक्षा-व्यवस्था थी। श्रीविदेहनन्दिनीको हरकर लानेके बाद रावणने वहाँकी रक्षा-व्यवस्था और सुदृढ़ कर दी थी। उसके चारों ओर विशाल धनुष-बाण धारण किये अनेक भयानक राक्षस सजग होकर अहर्निश घूमते रहते थे।

राक्षसराज रावणकी पुरी लंकाका यह दृश्य देखते हुए महावीर हनुमान सायंकालकी प्रतीक्षा कर रहे थे। धीरे-धीरे सूर्यास्त हुआ। श्रीपवननन्दनने अणिमा-सिद्धिके द्वारा अत्यन्त छोटा रूप धारणकर मन-ही-मन श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी पावनतम मूर्तिको हृदयमें धारण करके लंकामें प्रविष्ट हुए।

हनुमानजीके अत्यन्त लघु रूप धारण करनेपर भी लंकाकी अधिष्ठात्री देवी लंकिनीने उन्हें देख लिया। उसने उन्हें डाँटते हुए कहा—'अरे तू कौन है, जो चोरकी तरह इस नगरीमें प्रवेश कर रहा है। अपनी मृत्युके पूर्व तू अपना रहस्य प्रकट कर दे।'

कपिश्रेष्ठ श्रीहनुमानने सोचा—'पहले ही इससे विवाद करना उचित नहीं। यदि और राक्षस आ गये तो यहीं युद्ध छिड़ जायगा और माता सीताका पता लगानेके कार्यमें विघ्न पड़ेगा।' बस, उन्होंने उसे स्त्री समझकर उसपर बायें हाथकी मुष्टिसे धीरेसे प्रहार किया; पर वज्राङ्ग श्रीहनुमानका मुष्टि-प्रहार! लंकिनीके नेत्रोंके सम्मुख अँधेरा छा गया। वह रुधिर वमन करती हुई पृथ्वीपर गिरकर मूर्च्छित हो गयी; किंतु कुछ ही देर बाद वह पुनः सँभली और उठकर बैठ गयी।

अब लंकिनीने उन अम्भोधिलङ्घक वानरशिरोमणिसे कहा—"श्रीरामदूत हनुमान! तुमने लंकापुरीपर विजय प्राप्त कर ली। जाओ, तुम्हारा कल्याण हो! अब सीताके कारण दुरात्मा रावणके विनाशका काल अत्यन्त निकट आ गया है। बहुत पहले चतुर्मुख ब्रह्माने मुझसे कहा था कि 'त्रेतायुगमें साक्षात् क्षीरोदधिशायी अविनाशी नारायण दशरथकुमार श्रीरामरूपमें अवतीर्ण होंगे। उनकी सहधर्मिणी महामायारूपिणी सीतादेवीका रावण हरण करेगा। उन्हें ढूँढ़ते हुए जब रात्रिमें एक वानर लंकामें प्रवेश करेगा और उसके मुष्टि-प्रहारसे तू व्याकुल हो जायगी, तब समझना कि अब असुर-वंशके ध्वंस होनेमें विलम्ब नहीं।' पर मेरा परम सौभाग्य है कि दीर्घकालके अनन्तर आज मुझे उन भवाब्धिपोत श्रीरामके प्रिय भक्तका अति दुर्लभ सङ्ग प्राप्त हुआ है। आज मैं धन्य हूँ। मेरे हृदयमें विराजमान दशरथनन्दन श्रीराम मुझपर सदा प्रसन्न रहें।"*

परम बुद्धिमान् वानरशिरोमणि वायुनन्दनने अत्यन्त छोटा रूप धारण कर लिया और फिर वे करुणामय प्रभुका मन-ही-मन स्मरण कर विकट असुरोंसे सुरक्षित दुर्भेद्य लंकामें प्रविष्ट हुए।

श्रीकेसरी-किशोरके समुद्रोल्लङ्घन एवं लंका-प्रवेशके साथ ही जगज्जननी जानकी एवं लंकाधिपति रावणकी बायीं भुजा और बायें नेत्र तथा समस्त सुरवन्दित दशरथकुमार श्रीरामके दायें अङ्ग फड़क उठे।

विभीषणसे मिलन

कपिकुञ्जर श्रीपवनपुत्र त्रैलोक्य-वन्दनीया माता जानकीके दर्शनार्थ अत्यधिक व्याकुल और चिन्तित थे। इस कारण वे विकट असुरोंसे छिपते हुए विचित्र पुष्पमय आभरणोंसे अलंकृत लंकाके प्रमुख स्थलोंको अत्यन्त सावधानीपूर्वक देखने लगे। नगरके मध्यभागमें उन्हें रावणके बहुत-से गुप्तचर दिखायी दिये। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक लाख सशस्त्र रक्षकोंको रावणके अन्त:पुरके अग्रभागमें अत्यन्त सावधानीके साथ स्थित देखा। श्रीअञ्जनानन्दनने दशाननकी बृहत् अश्वशाला, गजशाला, अस्त्रागार, मन्त्रणा-गृह, छावनी आदिको अत्यन्त ध्यानपूर्वक देखा। उन्होंने माता सीताको ढूँढ़ते हुए असुरोंकी अट्टालिकाओंमें घूम-घूमकर उनके आहार-विहार, शयन तथा मनोरञ्जनादिके स्थल भी देखे। वहाँ वीरवर पवनपुत्रने कितने ही ऐश्वर्य-मदसे मत्त निशाचरों एवं मदिरा-पानसे मतवाले राक्षसोंको देखा। श्रीरामदूत हनुमानने उस त्रैलोक्यविजयी राक्षसराज रावणकी लंकामें बहुत-से उत्कृष्ट बुद्धिवाले, सुन्दर बोलनेवाले, सम्यक् श्रद्धा रखनेवाले, अनेक प्रकारके रूप-रंगवाले और सुन्दर नामोंसे विभूषित प्रख्यात असुर देखे। पर उन्हें श्रीजनकनन्दिनीके न तो कहीं दर्शन हुए और न कहीं किसीके वार्तालापसे ही उनका कुछ संकेत प्राप्त हुआ।

अतएव इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले एवं अमित बल-वैभव-सम्पन्न श्रीपवनकुमार माता सीताको ढूँढ़ते हुए सुवर्णमय परकोटोंसे घिरे राक्षसराज रावणके महलमें प्रविष्ट हुए। उस राजोचित सामग्रियोंसे पूर्ण, श्रेष्ठ एवं सुन्दर भवनको देखकर श्रीसमीरकुमार आश्चर्यचकित हो गये। उस भवनके द्वारपर चमचमाता सुवर्ण मढ़ा हुआ था और चाँदीसे मढ़े चित्रोंसे उसकी शोभा अद्भुत हो रही थी। उसकी रक्षाके लिये शस्त्र धारण किये लक्षाधिक प्रख्यात वीर सजग खड़े थे। समस्त सैनिकोंने अभेद्य कवच धारण कर रखे थे। हाथी, घोड़े और रथसे भरे उस महलके अनूप रूपको देखकर श्रीपवनकुमार अत्यन्त चकित हो रहे थे, किंतु उनके नेत्र श्रीजनकदुलारीके अन्वेषणमें ही लगे थे।

सर्वविद्याविशारद हनुमानजी उस भवनके आस-पासके भवनोंमें घूम-घूमकर माता सीताका पता लगाने लगे। वे महाकपि कूदकर कुम्भकर्णके भवनमें पहुँचे। वहाँसे उछलते हुए वे महोदर, विरूपाक्ष, विद्युज्जिह्व और विद्युन्मालीके घर गये। उन असुरोंकी अमित सम्पत्ति एवं महान् वैभव देखते हुए निर्भीक हनुमानजी उछलकर वज्रदंष्ट्र, शुक तथा बुद्धिमान् सारणके घरोंमें भी गये। वे माता सीताको ढूँढ़ते हुए इन्द्रजित्, जम्बुमाली तथा सुमालीके घर गये। वहाँ माता सीताको न देखकर अमित विक्रमशाली श्रीरामभक्त हनुमान रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु और वज्रकायके महलोंमें जा पहुँचे। माता जानकीका पता लगानेके लिये श्रीपवननन्दन अथक परिश्रम कर रहे थे। उन्होंने धूम्राक्ष, सम्पाति, विद्युद्रूप, भीम, घन, विघन, चक्र, शठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, लोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, द्विजिह्व, हस्तिमुख, कराल, पिशाच और शोणिताक्ष नामक प्रसिद्ध-प्रसिद्ध असुरोंके घरोंमें जाकर अत्यन्त सावधानीपूर्वक देखा, किंतु वहाँ कहीं भी श्रीजननीके दर्शन न होनेसे वे पुन: रावणके भवनके समीप शीघ्रतासे चले आये।

* तद्भक्तसङ्गोऽप्यतिदुर्लभो मम प्रसीदतां दाशरथि: सदा हृदि॥ (अ० रा० ५। १। ५७)

कपिश्रेष्ठ हनुमानजी कूदकर रावणके महलके भीतर पहुँचे। वहाँ उन्होंने हाथोंमें शूल, मुद्गर, शक्ति, गदा, पट्टिश, कोदण्ड, मूसल, परिघ, भिन्दिपाल, भाले, पाश और तोमर आदि अस्त्र-शस्त्र धारण किये अगणित राक्षस एवं राक्षसियोंको देखा। उन विशालकाय वीर राक्षस-राक्षसियोंमें अपार शक्ति थी। उनकी दृष्टि बचाते पिङ्गकेश श्रीहनुमान अत्यन्त छोटे रूपमें रावणके प्रत्येक कक्षको ध्यानपूर्वक देखते जा रहे थे। वहाँ उन्होंने सुवर्णके समान कान्तिवाला, अनेकानेक रत्नोंसे व्याप्त, भाँति-भाँतिके वृक्षोंके पुष्पोंसे आच्छादित तथा पुष्पोंके परागसे भरे हुए पर्वत-शिखरके समान अत्यन्त उत्तम और अनुपम पुष्पक-विमानको देखा। वह अपनी दिव्य कान्तिसे प्रज्वलित-सा हो रहा था। उस अद्भुत एवं परम मनोहर विमानको देखकर हनुमानजी अत्यन्त विस्मित हुए, किंतु चारों ओर घूमकर देखनेपर भी परम पूजनीया माता सीताको न पाकर उनकी चिन्ता बढ़ गयी।

चिन्तित श्रीहनुमान जनककिशोरीको ढूँढ़नेके लिये सशस्त्र-प्रहरी-राक्षसोंसे बचते राक्षसराज रावणके निजी आवासमें पहुँचे। रावणके उस निवासमें राक्षसजातीय पत्नियाँ एवं हरकर लायी हुई सहस्रों राजकन्याएँ रहती थीं। वहाँ पङ्क्तिबद्ध सुवर्णमय दीपक जल रहे थे। वहाँके फर्श स्फटिकमणिसे निर्मित थे और सीढ़ियाँ भी मणियोंसे ही बनी थीं। वहाँकी खिड़कियाँ सोनेकी थीं। रावणका वह आवास स्वर्गसे भी श्रेष्ठ प्रतीत हो रहा था।

रात आधीसे अधिक बीत चुकी थी। उस भवनमें श्रीपवनकुमारने रंग-बिरंगे वस्त्र और पुष्पमाला धारण किये अनेक प्रकारकी वेष-भूषासे विभूषित सहस्रों सुन्दरी स्त्रियाँ देखीं। वे मदपान एवं अत्यधिक जागरणके कारण यत्र-तत्र गाढ़ निद्रामें पड़ी थीं। उनके वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। उन्होंने माता सीताको पहले कभी देखा तो था नहीं किंतु परम सती जननीका परम सात्त्विक एवं तेजस्वी रूप स्वयं पहचानमें आ जाता, इस कारण श्रीअञ्जनाकुमार उन सुन्दरियोंको ध्यानपूर्वक देख रहे थे।

इधर-उधर देखते हुए श्रीकेसरी-किशोरने स्फटिकमणिसे निर्मित एक दिव्य एवं श्रेष्ठ वेदी देखी, जिसपर महान् ऐश्वर्यशाली राक्षसाधिप रावणका रत्नोंसे निर्मित अत्यन्त अद्भुत एवं परम सुखद पर्यङ्क था। पर्यङ्कके चारों ओर खड़ी हुई बहुत-सी स्त्रियाँ हाथोंमें चँवर लिये व्यजन डुला रही थीं। उस प्रकाशमान पर्यङ्कपर लंकाधिपति रावण सुखपूर्वक शयन कर रहा था। वहाँ ब्रह्मचारी हनुमानजीने उसकी पत्नियोंको भी देखा, जो उसके चरणोंके आस-पास ही सो रही थीं। समीप ही उसको प्रसन्न करनेवाली वीणावादिनी सुन्दरियाँ भी गम्भीर-निद्रामें पड़ी थीं और अब भी कुछके वक्षपर उनकी वीणा पड़ी थी तथा उनकी सुकोमल अँगुलियाँ वीणाके तारोंको स्पर्श कर रही थीं।

उन सबसे पृथक् अत्यन्त सुन्दर शय्यापर सोयी हुई एक अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्ना युवतीको हनुमानजीने देखा। उसके सुकोमल सुन्दर अङ्गोंपर मोतियों और मणियोंसे जड़े हुए विविध प्रकारके आभूषण सुशोभित थे। उसकी अङ्ग-कान्ति सुवर्णकी भाँति दमक रही थी। वह अनुपम रूपवती रावण-पत्नी मन्दोदरी थी। उसे देखकर हनुमानजीने अनुमान किया कि ये ही जनकदुलारी सीता हैं। फिर तो उनके हर्षकी सीमा न रही। हर्षोन्मत्त होकर वे अपनी पूँछ पटकने और उसे चूमने लगे। वे वानरोंकी प्रकृतिके अनुसार इधर-उधर दौड़ने लगे। वे कभी खंभोंपर चढ़ते तो फिर दूसरे ही क्षण कूदकर नीचे उतर आते।

किंतु कुछ ही देर बाद सद्गुणगणनिलय पवनकुमारने सोचा—'परम सती माता सीता परमप्रभु श्रीरामके वियोगमें कभी शृङ्गार करके वस्त्राभरण धारण नहीं कर सकतीं। वे न तो भोजन ही कर सकती हैं और न सुखपूर्वक शयन ही; मदिरा-पान तो वे स्वप्नमें भी नहीं कर सकतीं। परमप्रभु श्रीरघुनाथजीके सौन्दर्यकी तुलना देव, दानव, नाग, किंनर अथवा धरित्रीके किसी पुरुषसे नहीं की जा सकती, फिर माता सीता-जैसी पतिव्रता नारी पर-पुरुषके पास कैसे जा सकती हैं? अतएव निश्चय ही ये सीताजी नहीं हैं।'

फिर महामति हनुमानजीने रावणके उस महान् भवनमें घूम-घूमकर सोती हुई सहस्रों सुन्दरियोंको ध्यानपूर्वक देखा। सहसा उनके मनमें विचार उत्पन्न हुआ—'मैं यद्यपि बाल-ब्रह्मचारी हूँ और भगवान् श्रीरामका दूत हूँ। मैं जगदम्बाको ढूँढ़ने निकला हूँ, किंतु यहाँ मैंने जिस तरह गाढ़ निद्रामें सोयी हुई परायी स्त्रियोंको देखा है, वह मेरे लिये उचित नहीं। मेरी दृष्टि अबतक कभी अपनी माताको छोड़कर किसी भी नारीपर नहीं पड़ी है, किंतु आज मैं धर्मसे च्युत हो गया।'

धर्ममूर्ति वीरकर्मा हनुमानजी धर्मके भयसे शङ्कित हो उठे, किंतु उनके तन, मन और प्राणमें सर्वान्तर्यामी श्रीराघवेन्द्र विराजमान थे। अतएव दूसरे ही क्षण उनके मनका समाधान हो गया। वे विचार करने लगे—'इसमें संदेह नहीं कि रावणकी स्त्रियाँ निःशङ्क होकर सो रही

थीं और उसी अवस्थामें मैंने उन्हें ध्यानपूर्वक देखा है; किंतु मेरे मनमें किसी प्रकारका कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ है। शुभाशुभका प्रेरक तो मन है और मेरा यह मन पूर्णतया शान्त और स्थिर है; उसका कहीं राग या द्वेष नहीं है। इसलिये मेरे इस स्त्री-दर्शनसे धर्मका लोप सम्भव नहीं। मैं तो स्वेच्छया उन स्त्रियोंको देखना नहीं चाहता था, माता श्रीजानकीको ढूँढ़ने और पहचाननेके लिये ही उनपर दृष्टि डाली थी और स्त्री होनेके कारण माता जानकीजीको स्त्रियोंमें ही ढूँढ़ा जा सकता था। मैंने श्रीजनकनन्दिनीका अन्वेषण शुद्ध मनसे ही किया है, अतएव मैं सर्वथा निर्दोष हूँ।'

कामजित् श्रीहनुमानजी माता जानकीजीको अन्य स्थलोंमें ढूँढ़ने लगे। उन्होंने लंकाके बचे-खुचे गृह, वन, बाग, उपवन, वाटिका, वापी, कूप, मन्दिर, पशुशाला, अखाड़ा, सभा-भवन, सैन्य-क्षेत्र एवं गुप्त-से-गुप्त स्थानोंको भी देख लिया। इस प्रकार वे अत्यन्त सजग होकर सम्पूर्ण रात्रि माता सीताको ढूँढ़ते ही रहे, किंतु उनका कहीं पता न चला। वायुपुत्र उदास हो रहे थे और इधर रात्रि बीत रही थी। ब्राह्म-मुहूर्त समीप आ रहा था।

सहसा हनुमानजीकी दृष्टि एक अतिशय पवित्र भवनपर पड़ी, जहाँ श्रीभगवान्‌का एक मन्दिर भी सुशोभित था। उस भवनकी दीवालपर सर्वत्र अनेक अवतारों तथा लीलाओंके चित्र और राम-नाम अङ्कित थे एवं उसके द्वारपर श्रीराघवके आयुध—धनुष-वाण बने हुए थे। वहाँ मणियोंके प्रकाशमें केसर और पुष्पोंके साथ क्यारियोंमें तुलसीके पौधे स्पष्ट दीख रहे थे। यह देखकर हनुमानजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। अरे! यहाँ धर्म-कर्म, वेद-पुराण, यज्ञ-याग, गौ, द्विज, देव एवं श्रीभगवान्‌के सहज शत्रु राक्षसोंकी पुरीमें यह मन्दिर कैसे!

उसी समय रावणके अनुज महात्मा विभीषण शय्या त्यागकर भगवान् श्रीरामके नामका स्मरण करने लगे। उनके मुँहसे श्रीरामका नाम सुनते ही श्रीपवनपुत्रके मनमें विश्वास हो गया कि ये निश्चय ही भगवद्भक्त पुरुष हैं। शरणागतवत्सल हनुमानजी तुरंत ब्राह्मणका वेष धारण कर भगवान्‌का नाम लेने लगे।

'राम'-नाम सुनते ही विभीषण तुरंत बाहर निकले। उन्होंने ब्राह्मण-वेषधारी विश्व-पावन पवनपुत्रके चरणोंमें अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्होंने पूछा—'ब्राह्मण देवता! आप कौन हैं? मेरा मन कहता है कि आप श्रीभगवान्‌के भक्तोंमें कोई हैं। आपके दर्शन कर मेरे हृदयमें अतिशय प्रीति उत्पन्न हो रही है अथवा आप अपने भक्तोंको सुख प्रदान करनेवाले स्वयं मेरे स्वामी श्रीराम ही तो नहीं हैं, जो मुझे कृतार्थ करने यहाँ पधारे हैं ! कृपया मुझे अपना परिचय दीजिये।'

संसार-भय-नाशन श्रीअञ्जनानन्दनने अत्यन्त प्रेमपूर्ण मधुर वाणीमें उत्तर दिया—"मैं परमपराक्रमी पवनदेवका पुत्र हूँ। मेरा नाम 'हनुमान' है। मैं भगवान् श्रीरामकी पत्नी जगज्जननी जानकीजीका पता लगानेके लिये उनके आदेशानुसार यहाँ आया हूँ। आपको देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। कृपया आप भी अपना परिचय दीजिये।"

भगवान् श्रीरामकी स्मृतिसे एवं उनके दूत हनुमानजीको सम्मुख देखकर विभीषणकी विचित्र स्थिति हो गयी। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये, अङ्ग पुलकित हो गये और वाणी अवरुद्ध हो गयी। किसी प्रकार अपनेको सँभालकर उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा—'हनुमानजी! मैं राक्षसराज रावणका अनुज अधम विभीषण हूँ किंतु आज आपके दर्शन कर मैं अपने सौभाग्यकी प्रशंसा करता हूँ। मैं तो इस असुरपुरीमें दाँतोंके मध्य जीभकी भाँति जीवनके दिन व्यतीत कर रहा हूँ।'

विभीषणने हनुमानजीसे आगे कहा—'पवनपुत्र! मैं राक्षसकुलोत्पन्न तामसिक प्राणी हूँ। मुझसे भजन होता नहीं और अशरणशरण भवाब्धिपोत प्रभुके चरणोंमें मेरी प्रीति भी नहीं है। फिर क्या दयाधाम सीतापति श्रीराम कभी दीन-हीन, असहाय, निरुपाय और सर्वथा अनाथ जानकर मुझपर भी कृपा करेंगे? क्या मुझे भी उनके सुर-मुनि-सेवित चरण-कमलोंकी पावनतम रज प्राप्त हो सकेगी? इतना तो मेरे मनमें सुदृढ़ विश्वास हो गया कि भगवत्कृपाके बिना संतोंका दर्शन नहीं होता। आज जब करुणामय श्रीरामने मुझपर अनुग्रह किया है, तभी आपने कृपापूर्वक स्वयं मुझ अधमके द्वारपर पधारनेका कष्ट स्वीकार किया है।'

भक्तानुकम्पी श्रीपवनपुत्र भक्त विभीषणकी भगवत्प्रीति देखकर मन-ही-मन पुलकित थे। उन्होंने विभीषणसे अत्यन्त प्रीतिपूर्वक मधुर वाणीमें कहा—'विभीषणजी! आप बड़े भाग्यवान् हैं। जिन करुणावतार प्रभुकी भक्ति योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंको भी सुलभ नहीं, वह प्रभु-चरणोंमें अद्भुत भक्ति आपको सहज प्राप्त है। भगवान् श्रीराम जाति-पाँति, कुल, मान-बड़ाई आदिकी ओर भूलकर भी दृष्टि नहीं डालते। वे तो बस, निश्छल हृदयकी प्रीति—केवल शुद्ध प्रीति चाहते हैं और इस प्रीतिपर वे भक्तके हाथों बिक जाते हैं, उनके पीछे-पीछे डोलते हैं। आप देखिये न, भला मैंने किस श्रेष्ठ वंशमें जन्म

लिया है! सब प्रकारसे नीच चञ्चल वानर हूँ! यदि प्रात:काल कोई हमलोगोंका नाम भी ले ले तो उसे उपवास करना पड़े। इस प्रकारके मुझ अधमपर भी भक्तवत्सल प्रभुने कृपा की। उन्होंने मुझे स्वजन और सेवक बना लिया। फिर आप तो उन्हें अपना सर्वस्व समझ रहे हैं; निश्चय ही आपपर उनकी अद्भुत कृपा है। आप बड़े भाग्यवान् हैं। इस असुरपुरीमें आपसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, यह भी मेरे स्वामी श्रीरघुनाथजीकी ही कृपाका फल है।'

श्रीराघवेन्द्रके शील-स्वभावके गुण-गानमें दोनों भक्त इतने तल्लीन थे कि उन्हें समय तो क्या, अपने शरीरका भी भान नहीं था। दोनोंके अङ्ग पुलकित थे, दोनोंके नेत्र प्रेमाश्रुओंसे भरे थे। दोनों एक-दूसरेको पाकर अत्यन्त संतुष्ट-सुखी एवं आनन्द-विह्वल थे।

कुछ सावधान होकर श्रीपवनपुत्रने उनसे कहा—'भाई विभीषण! मैं तो प्रभुके आदेशानुसार माताका पता लगाने यहाँ आया हूँ। अब समय बहुत कम है। सूर्योदयके अनन्तर प्रकाशमें जननीके समीप पहुँचना कठिन होगा। उधर समुद्रके उस पार तटपर बैठे कोटि-कोटि वानर-भालू उत्सुकतासे मेरे लौटनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं स्वयं मातृ-दर्शनके लिये अधीर हो रहा हूँ। आप मुझे जननीका पता बतायें। उनके दर्शन कहाँ होंगे?'

विभीषणने बताया—'यहाँसे थोड़ी दूर राज-सदनके समीप रावणकी सर्वाधिक प्रिय अशोक-वाटिका है। उस वाटिकामें विविध प्रकारके सुगन्धित सुमनों एवं अनेक प्रकारके सुस्वादु फलोंसे लदे सहस्रों वृक्ष हैं। वाटिकामें सर्वत्र भ्रमर गुञ्जार एवं पक्षी कलरव करते रहते हैं।

'वाटिकाके मध्यमें निर्मल जलसे पूरित एक अतिशय सुन्दर सरोवर है। सरोवरके तटपर असुरोंके कुल-पूज्य भगवान् शंकरका एक विशाल एवं रमणीय मन्दिर है। वहाँ प्रख्यात सशस्त्र असुर योद्धा एवं प्रसिद्ध सशस्त्र राक्षसियाँ अहर्निश पहरा देती रहती हैं।

'शिव-मन्दिरसे कुछ ही दूर अत्यन्त सघन और ऊँचा एक अशोकका वृक्ष है। माता सीता उसी अशोक-तरुके नीचे बैठी हुई प्रभुके वियोगमें रोती रहती हैं। उनके लंबे काले केश उलझकर एक जटाके रूपमें बन गये हैं। अन्न-जलका त्याग करनेके कारण उनका शरीर सूख गया है। वे पीली पड़ गयी हैं। उनके शरीरपर एक मैली साड़ीके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

'अत्यन्त क्रूर राक्षसियाँ उन्हें रात-दिन डराया-धमकाया करती हैं। उनके पास पहुँचना भी कठिन है। मेरी पत्नी और ज्येष्ठ पुत्री कला कभी-कभी उनके दर्शनार्थ वहाँ जाकर उन्हें कुछ संतोष दे आती हैं। मैं तो माँकी करुण दशाकी स्मृतिसे ही सिहर उठता हूँ। सशस्त्र प्रहरी क्रूरतम राक्षस हैं। आप अत्यन्त सावधानीपूर्वक जाइये।'

जगज्जननी श्रीजानकीकी करुण दशा सुनकर दयामूर्ति श्रीअञ्जनानन्दन दु:खसे छटपटा उठे। उन्होंने विभीषणको गले लगाते हुए कहा—'विभीषणजी! आप चिन्ता न करें। उन सर्वसमर्थ प्रभुकी दयासे मैं जननीके दर्शन कर लूँगा।'

श्रीहनुमानजीने पुन: छोटा रूप धारण किया और अशोक-वाटिकाके लिये तीव्र गतिसे चल पड़े।

माता सीताके चरणोंमें

ब्रह्मवेला! असुर यत्र-तत्र निद्रामग्न थे। श्रीराम-परायण पवनपुत्रको अशोक-वाटिका पहुँचनेमें कोई विघ्न नहीं हुआ। वहाँ वे वाटिका, निर्मल सरोवर एवं अद्भुत देवालय आदिकी अमित शोभाकी ओर कैसे दृष्टिपात करते? वे तो माता सीताके दर्शनार्थ आतुर थे; सीधे अशोक-वृक्षपर पहुँचे और उसके सघन पत्तोंमें छिपकर बैठ गये। उन्होंने नीचे देखा—

करुणा एवं सतीत्वकी परम तेजस्विनी मूर्ति माता सीता चरणोंकी ओर नेत्र झुकाये चुपचाप बैठी थीं। उनके नेत्रोंसे रह-रहकर अश्रुपात हो रहा था।

जगज्जननी श्रीजानकीके दर्शन कर श्रीराम-भक्त अञ्जनानन्दन अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके आह्लादकी सीमा न थी। अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए उन्होंने मन-ही-मन कहा—'आज जानकीजीको देखकर मैं कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया। अहा! परमात्मा श्रीरामके कार्यकी सिद्धिमें मैं ही निमित्त बना।'*

माताकी दयनीय दशा देखकर हनुमानजी दूसरे ही क्षण अत्यन्त दु:खी हो गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि क्या करूँ? उसी समय कोलाहल सुनकर श्रीपवननन्दन अशोकके सघन पत्तोंमें सावधान होकर छिप गये और माता जानकीजी डरसे सिकुड़कर बैठ गयीं। श्रीपवनपुत्रने दूरसे देखा—अनेक सुन्दरी राक्षसियोंसे घिरा कज्जलगिरि-तुल्य दशमुख रावण चला आ रहा है। उन स्त्रियोंके साथ रावणकी महारानी मन्दोदरी भी थी।

* कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं दृष्ट्वा जनकनन्दिनीम्॥ मयैव साधितं कार्यं रामस्य परमात्मन:। (अ० रा० ५। २। ११-१२)

जनकदुलारीके समीप आकर रावण कहने लगा— 'जनकनन्दिनी! तुम मुझसे क्यों डरती हो? मैं तुम्हें प्राणोंसे भी अधिक चाहता हूँ; तुम व्यर्थ ही क्यों कष्ट सह रही हो? तुम्हारा दुःख मुझसे देखा नहीं जाता। उस वनवासी राममें क्या रखा है? उसमें यदि किसी प्रकारकी शक्ति होती तो वह अबतक कभी आकर तुम्हें ले गया होता; किंतु मैं त्रैलोक्य-विजयी हूँ। मनुष्य तो क्या, देवता, असुर, नाग और किंनरादि सभी मेरे नामसे काँपते हैं। इस त्रिकूटस्थित लंकाके दुर्भेद्य दुर्गमें एक पक्षीका भी प्रविष्ट होना सम्भव नहीं, फिर वह वनवासी राम शतयोजन सागर पार कर यहाँ कैसे आ सकेगा? वह तो सर्वथा असमर्थ, निर्मम, अभिमानी, मूर्ख और अपनेको बड़ा बुद्धिमान् माननेवाला है; पर अब उससे तुम्हें क्या लेना है? तुम मेरी बनकर रहो; फिर देव, गन्धर्व, नाग, यक्ष और किंनर आदिकी स्त्रियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी। मैं पूर्ण समर्थ हूँ। यदि चाहूँ तो तुम्हें बलपूर्वक ग्रहण कर सकता हूँ; किंतु मैं तुम्हें हृदयसे प्यार करता हूँ, इस कारण क्लेश देना उचित नहीं समझता। तुम स्वयं मान जाओ, इसीमें तुम्हारा कल्याण है।'

माता सीताके मनपर प्रलोभनका कोई प्रभाव होते न देख दशाननने आगे कहा—'सुन्दरी सीता! देख, जबतक मुझे रोष नहीं आता, तबतक मेरे पक्षमें निर्णय कर ले; अन्यथा यदि मुझे तनिक भी क्रोध उत्पन्न हुआ तो मैं अपनी तीक्ष्ण तलवारके एक ही वारसे तेरा मस्तक धड़से अलग कर दूँगा। तेरे शरीरका मांस गीध और कौए खायँगे या राक्षस और राक्षसियाँ तुझे कच्चा ही चबा जायँगी।'

क्रूरतम दशमुखकी विष-दग्ध शर-तुल्य वाणीसे माता जानकीजी तनिक भी भयभीत एवं विचलित नहीं हुईं। उन्होंने अपने सम्मुख एक तृण रख सिर नीचा किये कहा—'अधम राक्षस! तुझे जो कुछ करना है, शीघ्र कर ले। तेरे-जैसे पापीके द्वारा यन्त्रणा पानेकी अपेक्षा मृत्यु कहीं अच्छी है। अपनेको त्रैलोक्यविजयी बतानेवाले नीच कुत्ते! तू मेरे प्राणनाथकी अनुपस्थितिमें मुझे चुराकर ले आया और यहाँ अपने घरमें एक असहाय नारीके सामने डींग हाँक रहा है? तू तभीतक प्रलाप कर रहा है, जबतक श्रीराघवेन्द्र लंकामें पदार्पण नहीं करते। पर तू देखेगा, निकट भविष्यमें तेरी सोनेकी लंका अग्निमें जलकर राख हो जायगी और तू अपने बान्धवों एवं कुटुम्बियोंसहित मेरे स्वामीके अमोघ शरकी भेंट चढ़ जायगा। जिस समय श्रीकोसलेन्द्रकी वाण-वर्षासे विदीर्ण होकर तू यमलोकको जायगा, उसी समय उनके प्रतापको समझ सकेगा। वे प्रभु जबतक यहाँसे दूर हैं, तबतक तू पागलोंकी तरह इच्छानुसार प्रलाप कर ले।'

श्रीराम-वियोगिनी सती सीताजीके कठोर वचन सुनते ही दशाननके नेत्र लाल हो गये। क्रोधोन्मत्त रावण तलवार निकालकर श्रीजनककिशोरीकी ओर दौड़ा, किंतु उसे रोकती हुई उसकी पत्नी मन्दोदरीने प्रेमपूर्वक समझाया—'नाथ! आप इस दीना, क्षीणा, दुखिया एवं कातर मानवीको छोड़ दीजिये। इसमें क्या रखा है? आपको तो वरण करनेके लिये देव, गन्धर्व एवं नागादिकोंकी परम लावण्यवती स्त्रियाँ प्रतिक्षण प्रस्तुत हैं।'

मन्दोदरीके पैरों पड़ने एवं अनुनय-विनय करनेसे रावणने पुनः क्रोधपूर्वक भगवती श्रीसीतासे कहा— 'जानकी! देख, आज तो मैं तुझे छोड़ देता हूँ, किंतु यदि एक मासमें तू मेरी बात नहीं मानेगी तो मैं निश्चय ही तुझे अपने हाथों मार डालूँगा। अच्छा तो यही है कि तू यथाशीघ्र निर्णय कर ले।'

तदनन्तर दशाननने अत्यन्त भयानक वदनवाली राक्षसियोंको आदेश देते हुए कहा—'निशाचरियो! यह सीता आदर, प्रलोभन, भय या जिस प्रकारसे मेरे अनुकूल हो जाय, वही प्रयत्न करो। यदि एक मासके भीतर यह मेरे वशमें हो गयी, तब तो यह मेरे महान् राज्य-सुखका उपभोग करेगी और यदि इसने अपना निश्चय नहीं बदला तो इकतीसवें दिन इस मानवीको मारकर मेरा प्रातःकालीन कलेवा बना देना।'

रावण चला गया और उसके इच्छानुसार अनेक भयानक राक्षसियाँ दुःखिनी श्रीजनककिशोरीको विविध प्रकारसे डराने-धमकाने लगीं। यह दृश्य देखकर श्रीपवनात्मज क्षुब्ध हो उठे। उनके जीमें आया—इन नीच राक्षसियोंको अभी मसलकर फेंक दूँ; किंतु नीतिनिपुण मेधावी हनुमानजीने भगवान् श्रीरामका कार्य पूरा करनेके लिये धैर्यसे काम लिया।

उन अत्यन्त निर्मम एवं दुष्टा राक्षसियोंके द्वारा पति-वियोगिनी माता सीताको डरायी जाते देख बूढ़ी राक्षसी त्रिजटा, जो तत्काल सोकर उठी थी, उन सबसे कहने लगी—'अधम निशाचरियो! निश्चय ही तुमलोगोंके बुरे दिन समीप आ गये हैं; अन्यथा तुमलोग दौर्भाग्यनाशन श्रीरामकी पत्नी देवी सीताके सम्मुख इस प्रकारका दुःखद आचरण नहीं करतीं। देखो, मैंने अभी-अभी एक भयंकर और रोमाञ्चकारी स्वप्न देखा है, जो दशाननसहित समस्त राक्षस-वंशके विनाश एवं देवी

सीताके अभ्युदयका सूचक है।'

त्रिजटाकी बातोंको सुनकर राक्षसियाँ भयभीत हो गयीं और वे स्वप्नके सम्बन्धमें उससे आग्रहपूर्वक बार-बार पूछने लगीं। त्रिजटाने उन्हें बताया—'मैंने स्वप्नमें रावणको मूँड़ मुँड़ाये, तेलसे नहाकर लाल कपड़े पहने हुए देखा था। करवीरकी माला पहने हुए मदिरासे उन्मत्त रावणको मैंने पुष्पक-विमानसे धरतीपर गिरते हुए देखा। मुण्डित मस्तक रावणने काले वस्त्र पहन रखे थे और उसे एक स्त्री कहीं खींचे लिये जा रही थी। शरीरपर लाल चन्दनका लेप किये और लाल पुष्पोंकी माला धारण किये रावण तेल पीता, हँसता, नाचता गधेपर बैठकर दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा था। एकमात्र विभीषणको छोड़कर मैंने स्वप्नमें रावणके समस्त पुत्रों एवं सेनापतियोंको मुण्डित मस्तक और तेलमें नहाये देखा है। मैंने यह भी देखा है कि रावण सूअरपर, मेघनाद सूँसपर और कुम्भकर्ण ऊँटपर सवार होकर दक्षिण दिशाको गये हैं। इतना ही नहीं, मैंने स्वप्नमें यह भी देखा है कि एक मूँगेके समान लाल मुखवाले महातेजस्वी वानरने अनेक असुरोंको मृत्युके मुखमें ढकेलकर लंकामें आग लगा दी है। वह जलकर भस्म हो गयी। मेरे विचारानुसार प्रात:कालका यह स्वप्न शीघ्र ही सत्य सिद्ध होगा।'

बुद्धिमती वृद्धा त्रिजटाने अन्तमें राक्षसियोंको उपदेश देते हुए कहा—'निशाचरियो! जो चक्रवर्ती सम्राट्की पुत्रवधू सती सीता राज्यके समस्त सुख और वैभवको ठोकर मारकर अपने वीर पतिके साथ अरण्यमें चली आयी, श्रीरघुनाथजीके साथ कुश, कण्टक और कंकरीले बीहड़ पथमें कष्ट उठाती हुई सुखका अनुभव करती रही, उस अपनी पतिव्रता भार्या और परमादरणीया प्रियतमा सीताका इस प्रकार धमकाया और डराया जाना कौसल्यानन्दन श्रीराम किस प्रकार सहन कर सकेंगे? तुम सबकी दुर्दशा होगी। तुम्हें कहीं शरण नहीं मिलेगी। अत: इन्हें कठोर एवं दुर्वचन कहना छोड़कर इनका सम्मान करो। इनके साथ मधुर वाणीका व्यवहार करो और इन विदेहनन्दिनीसे कृपा तथा क्षमाकी याचना करो, इसीमें तुमलोगोंका हित है।'

वृद्धा राक्षसी त्रिजटाके वचन सुनकर राक्षसियाँ भयभीत हो गयीं और वे माता सीताके चरणोंमें सिर रखकर उनसे क्षमाकी प्रार्थना करके वहाँसे चली गयीं। माता सीताके दु:खकी सीमा न थी। उन्होंने व्याकुल होकर त्रिजटासे कहा—'माता! तुम इस विपत्तिकालमें मेरी सहायिका सिद्ध हुई हो; किंतु अब प्राणनाथके वियोगमें इन भयंकर राक्षसियोंके बीचमें जीवित रहनेसे कोई लाभ नहीं। तुम मेरी थोड़ी और सहायता करो। कुछ सूखी लकड़ियाँ जुटा दो और थोड़ी-सी आग ला दो, जिससे मैं चिता बनाकर उसमें अपना यह शरीर जला दूँ। मैं तुम्हारा यह उपकार कभी नहीं भूलूँगी। अब यह कष्ट मुझसे नहीं सहा जा रहा है!'

माता सीता फूट-फूटकर रो रही थीं। उनके दु:खसे दु:खी वृद्धा त्रिजटाने उन्हें अनेक युक्तियोंसे समझाया और फिर वह वहाँसे चली गयी। माताका रुदन सुनकर वृक्षपर छिपे बैठे वज्राङ्ग श्रीहनुमानका हृदय जैसे विदीर्ण होने लगा। उनके नेत्रोंमें अश्रु भर आये, पर उन्होंने माताके डर जानेकी आशङ्कासे सहसा उनके सम्मुख जाना उचित नहीं समझा।

माता सीताने दु:खके आवेगमें शरीर छोड़ देना ही उचित समझा। उन्होंने सोचा—फाँसी लगाकर मर जानेके लिये तो मेरी वेणी ही पर्याप्त होगी। प्राण त्याग देनेका निश्चय कर दु:खिनी श्रीविदेहनन्दिनी उठकर खड़ी हो गयीं; उनके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे।

माताको इस प्रकार प्राणान्त करनेका निश्चय करते देख सूक्ष्मरूपधारी पवनपुत्र अत्यन्त मधुर स्वरमें कहने लगे— 'प्रख्यात इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथ बड़े प्रतापी और धर्मात्मा थे। उनके त्रैलोक्य-विख्यात श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न देवताओंके समान शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न चार पुत्र हैं। उनमें बड़े भाई श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण तथा अपनी प्राणाधिका सहधर्मिणी जनकदुलारीके साथ पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये राज्य त्यागकर वनमें आये। वे ऋषि-मुनियोंका दर्शन करते दण्डकारण्यमें पहुँचे। वे करुणावतार श्रीराम गौतमी नदीके तटपर पञ्चवटी-आश्रममें रहते थे। श्रीरामकी अनुपस्थितिमें लंकाधिपति दुष्ट दशानन उनकी सती पत्नी सीतादेवीको छलपूर्वक हर ले गया। लौटनेपर कुटियामें श्रीसीताको न पाकर श्रीराम व्याकुल हो गये। लक्ष्मणके साथ श्रीसीताको ढूँढ़ते हुए शोकाकुल श्रीराम मार्गमें जटायुको परमधाम भेजकर ऋष्यमूकपर्वतपर आये। वहाँ कपिराज सुग्रीवसे उनकी मैत्री हुई। सुग्रीवका बड़ा भाई वाली उसका शत्रु था। प्रलम्बबाहु श्रीरामने वीरवर वालीको एक ही बाणसे मार डाला और सुमित्राकुमारने सुग्रीवको किष्किन्धाके राज्यपदपर अभिषिक्त किया। किष्किन्धाके राजा वानरराज सुग्रीवने विदेहनन्दिनी श्रीसीताका पता लगानेके लिये कोटि-कोटि वीर वानर-भालुओंको

चारों दिशाओंमें भेजा है। मैं उन्हीं कपिराज सुग्रीवका भेजा हुआ एक तुच्छ वानर हूँ। मार्गमें जटायुके भाई सम्पातिसे भेंट हुई। उन्होंने जनकनन्दिनीका पता बताया। उन्हींके निर्देशानुसार माता सीताको ढूँढ़ते हुए विभीषणसे भेंट हो गयी। उनके बताये अनुसार मैंने यहाँ महारानी सीताका दर्शन प्राप्त किया। उनका दु:ख देखकर मेरा धैर्य छूट रहा है; पर मेरी यात्रा सफल हो गयी।'

प्राणाराध्य श्रीरामका वृत्तान्त सुनकर माता जानकीके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे मन-ही-मन सोचने लगीं—यह सत्य है अथवा मैं स्वप्न देख रही हूँ; पर नींद तो मुझे आती नहीं, फिर स्वप्न कैसे देख सकती हूँ? जब मैं सुस्पष्ट वाणी सुन रही हूँ, तब यह भ्रम भी नहीं। माताने कहा—'जिन महाभागने मेरे प्राणनाथका अमृतोपम संवाद सुनाया है, वे मेरे सम्मुख आयें।'

माता सीताका आदेश पाते ही श्रीरामभक्त हनुमानजी धीरे-धीरे वृक्षसे उतरे। उन्होंने अत्यन्त श्रद्धा और विनय-पूर्वक माताके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया।

अत्यन्त कुटिला राक्षसियोंके बीच पति-वियोगसे दु:खिनी श्रीजनकनन्दिनीने अपने सम्मुख विद्युत्पुञ्जके समान, अत्यन्त पिङ्गलवर्णवाले एवं पक्षीके बराबर आकारके वानरको देखा तो वे सहम गयीं। वानरके नेत्र तपाये हुए सुवर्णके समान चमक रहे थे। उस टेढ़े मुखवाले नन्हे-से वानरको देखकर माताने सोचा—'मुझे छलपूर्वक फँसानेके लिये मायावी रावणने यह माया रची है।' अवनतवदना माता सीता व्याकुल होकर सिसकने लगीं।

भगवती सीताको नीचे मुख किये रोते देखकर श्रीअञ्जनानन्दनने व्याकुल होकर कहा—'माता! आप किसी प्रकारकी शङ्का न करें। मैं करुणा-निधान श्रीरामकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं प्रभु श्रीरामका दास और कपिराज सुग्रीवका सचिव हूँ। उनके भेजनेसे आपका पता लगानेके लिये ही मैं यहाँ आया हूँ। मेरे पिता परमपराक्रमी पवन देवता हैं।'

अपने सम्मुख श्रद्धापूर्वक सिर झुकाये बद्धाञ्जलि श्रीपवननन्दनको देखकर माता जानकीने कहा—'तुम अपनेको श्रीरघुनाथजीका दास कहते हो; किंतु मनुष्य और वानरका साथ कैसे सम्भव है?'

हाथ जोड़े हनुमानजीने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'माता ! शबरीकी प्रेरणासे सानुज श्रीराम ऋष्यमूक-पर्वतके समीप पहुँचे। गिरि-शिखरपर बैठे सुग्रीवने मुझे उनका पता लगानेके लिये भेजा। मैं ब्राह्मणके वेषमें प्रभुके समीप पहुँचा। परिचय हो जानेपर मैं लक्ष्मणसहित प्रभु श्रीरामको अपने कंधेपर बैठाकर सुग्रीवके पास ले गया। वहाँ मैंने प्रभुकी सुग्रीवसे मैत्री करा दी। राज्यसे बहिष्कृत सुग्रीव प्रभु-कृपासे ही राज्य-सुखका उपभोग कर रहे हैं। उन्हींकी आज्ञासे मैं यहाँ आया हूँ। आते समय प्रभुने पहचानके लिये अपनी मुद्रिका भी मुझे दी थी।'

हनुमानजीने माता जानकीको मुद्रिका दे दी। प्रभुकी प्रकाश बिखेरनेवाली रत्न-जटित राम-नामाङ्किता दिव्य अँगूठीको जानकीजीने ध्यानपूर्वक देखा। फिर तो उनके आनन्दकी सीमा न रही। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे।

श्रीरामदूत हनुमानपर पूर्ण विश्वास हो जानेपर माता जानकीने उनसे कहा—'पवनपुत्र! तुमने मेरा प्राण बचा लिया। निश्चय ही तुम मेरे स्वामीके अनन्य भक्त हो। मेरे स्वामी तुम्हारा पूर्ण विश्वास करते हैं; अन्यथा वे किसी पर-पुरुषको मेरे पास नहीं भेजते। हनुमान! तुमने मेरी विपत्ति देख ली है। इन क्रूरतम निशाचर-निशाचरियोंके बीच मैं किस प्रकार जीवित हूँ, यह तुम्हारे सामने है। तुम श्रीरघुनाथजीसे निवेदन करना कि आपके वियोगमें मैं किस प्रकार जीवन धारण करूँ? अवधि बीतनेपर पापी राक्षस मुझे मार डालेगा। यदि वे प्रभु मुझे जीवित देखना चाहते हों तो इस एक मासके भीतर ही यहाँ पधारकर राक्षस-वंशका संहार करें। अञ्जनानन्दन! तुम भी उनसे इस युक्तिसे बात करना, जिससे मेरे प्राणनाथ तुरंत यहाँ आकर असुरोंको मारकर मेरा उद्धार करें।'

भगवती सीताने व्याकुल होकर आगे कहा—'हनुमान! मुझ डूबती हुईके तुम बड़े सहायक सिद्ध हुए। मैं तो प्रभुके बिना जलहीन मीनकी तरह तड़प रही हूँ; पर क्या दयानिधान प्रभु भी कभी मेरा स्मरण करते हैं?'

बद्धाञ्जलि श्रीहनुमानने विनयपूर्वक उत्तर दिया—''जननी! आपके वियोगमें श्रीरघुनाथजीके दु:खका वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। आर्ये! आपको न देखनेके कारण श्रीरघुनाथजीका हृदय सदा शोकसे भरा रहता है। उनका चित्त सदा आपमें ही लगा रहता है, इस कारण उन्हें अपने शरीरपर चढ़े हुए डाँस, मच्छर और कीड़े आदिको हटानेकी भी सुध नहीं रहती। श्रीराम निरन्तर आपके वियोग-वह्निमें जलते रहते हैं। आपके अतिरिक्त वे अन्य कुछ सोचते ही नहीं। आपकी चिन्ताके कारण एक तो उन्हें नींद नहीं आती और कुछ देरके लिये नींद आयी भी तो वे 'सीता-सीता' कहते हुए जग जाते हैं। माता! आप प्रभुके सम्बन्धमें तनिक भी

ग्लानि मत कीजिये। उन प्रेममूर्ति प्रभुके हृदयमें आपके प्रति आपसे दूना प्रेम है। करुणा-निधान प्रभुने सजल नेत्रोंसे आपको संदेश भेजते हुए कहा है—'सीते! तुम्हारे बिना मुझे सृष्टिकी समस्त वस्तुएँ दुःखदायिनी हो गयी हैं। मनका दुःख कहनेसे कुछ कम हो जाता है; पर किससे कहूँ? मेरा दुःख जानेगा कौन? प्रिये! मेरे और तेरे प्रेमका तत्त्व (रहस्य) एक मेरा मन जानता है और वह मन सदा तेरे ही पास रहता है। बस, मेरे प्रेमका सार इतनेमें ही समझ लेना'।''*

जीवनधन श्रीरघुनाथजीका संदेश सुनकर श्रीसीताजी आनन्द-मग्न हो गयीं। उन्होंने हनुमानजीसे कहा—'सुव्रत! अब तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे प्रभु यथाशीघ्र मुझे यहाँसे ले जायँ। देर न हो।'

विनीतात्मा श्रीपवनपुत्रने उत्तर दिया—'माता! अब आप चिन्ता मत कीजिये। आप हृदयमें धैर्य धारण कीजिये और परमप्रभु श्रीरामका स्मरण करती रहिये। प्रभुके चरणोंमें केवल मेरे पहुँचनेमात्रकी देर है। आपका पता मिलते ही सर्वसमर्थ दयाधाम श्रीराम यहाँ आकर राक्षसोंको दण्ड देंगे और आपको अत्यन्त आदर तथा प्रीतिपूर्वक यहाँसे ले जायँगे। स्वामीने मुझे आज्ञा नहीं दी है; अन्यथा मैं अभी आपको अपनी पीठपर बैठाकर ले जाता और श्रीभगवान्‌के चरणोंमें पहुँचा देता।'

टेढ़े मुखवाले छोटे-से वानर हनुमानके मुखसे इस प्रकारकी वाणी सुनकर माता सीताको हँसी आ गयी। उन्होंने पूछा—'बेटा हनुमान! यहाँके वीर राक्षसोंको तो तुमने देख ही लिया है। उनकी शक्तिकी भी सीमा नहीं है! पर सुग्रीवके साथ क्या सभी वानर तुम्हारी ही तरह लघुकाय हैं? मेरे मनमें बड़ा संदेह हो रहा है।'

फिर क्या था? देखते-ही-देखते श्रीपवनकुमारका शरीर सुमेरुपर्वतके समान आकाशसे जा लगा। प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी, पर्वत-तुल्य विशालकाय, ताँबेके समान लाल मुख, वज्रके समान दंष्ट्रा और तीक्ष्ण नखवाले भयानक महाबली वानरवीर हनुमान विशालकाय होकर माता सीताके सामने खड़े हो गये और उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक श्रीजानकीजीसे कहा—'माता! मैं वन, पर्वत, अट्टालिका, चहारदीवारी और नगरद्वारसहित समूची लंकाको उसके स्वामी रावण-सहित उठाकर साथ ले जा सकता हूँ। अतएव आप अपने मनमें तनिक भी संदेह न करें। शाखामृगमें बुद्धि कहाँ, किंतु परमप्रभुकी कृपासे साँपका छोटा बच्चा भी गरुडको खा सकता है। फिर इस तुच्छतम कीट-तुल्य रावणकी क्या गणना है? जननी! मैं वानरराज सुग्रीवका एक तुच्छ सेवक हूँ। उनके यहाँ कोटि-कोटि महाशक्तिसम्पन्न विशालकाय और भयानक वानर-भालू हैं।'

वानरशिरोमणि विशालकाय हनुमानजीकी वाणी सुनकर माता जानकीके मनका संदेह तो दूर हुआ ही, वे अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं। उन्होंने श्रीराम-भक्तको आशीर्वाद प्रदान किया—'हे तात! तुम बल और शीलके निधान होओ। हे पुत्र! तुम अजर (जरारहित), अमर और गुणोंकी निधि होओ। श्रीरघुनाथजी तुमपर बहुत कृपा करें।'†

'प्रभु कृपा करें'—जगज्जननीके मुखारविन्दसे आशीर्वाद प्राप्त कर श्रीपवनपुत्र कृतार्थ हो गये; उन्हें जैसे निखिल सृष्टिकी बहुमूल्य निधि प्राप्त हो गयी! वे माता जानकीके चरणोंमें लोटने लगे। उनके प्रेमानन्दकी सीमा नहीं थी। उनके अङ्ग-अङ्गमें पुलक एवं नेत्रोंसे अश्रु-प्रवाह चल रहा था। भुवनपावनी माता जानकीकी चरण-रज उनके मुख-मण्डलमें लिपट गयी थी। हाथ जोड़कर गद्गद वाणीमें हनुमानजीने भगवती सीतासे कहा—'माता! मैं कृतार्थ हो गया। मेरा जीवन एवं जन्म—सब सफल हो गया। आपका आशीर्वाद अमोघ होता है, यह जगत्प्रसिद्ध है।'

हनुमानजीने फिर कहा—'माँ! मुझे भूख लगी है और मेरे सम्मुख इस वाटिकामें विविध प्रकारके मधुर फल लटके दीख रहे हैं। यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं इन्हें खाकर क्षुधा-निवारण कर लूँ।'

जानकीजीने कहा—'बेटा! तुम फल खाकर तृप्त हो जाओ, यह तो मैं चाहती हूँ, किंतु यहाँ बड़े बलवान् और शूरवीर सशस्त्र सैनिक सदा पहरा देते रहते हैं।'

अभय श्रीहनुमानने कहा—'माँ! यदि आप प्रसन्नमन मुझे आज्ञा दे दें तो मुझे इन असुरोंकी तनिक भी चिन्ता नहीं है।'

भगवती सीताने महावीर हनुमानको बल और बुद्धिसे सम्पन्न देखकर कह दिया—'बेटा! जाओ। श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हुए इच्छानुसार मधुर फलोंको खाकर पेट भर लो।'

---

* तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥ (मानस ५। १५। ३-३½)

† × × × । होहु तात बल सील निधाना॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥ (मानस ५। १६। १-१½)

अशोक-वाटिका-विध्वंस

समस्त शास्त्रोंके पारंगत विद्वान् श्रीसमीरकुमारने मन-ही-मन विचार किया—'दूतका कार्य स्वामीके हितके लिये मार्ग प्रशस्त करना है। राक्षसराज रावणका यह दुर्ग अभेद्य है। इसके प्रत्येक द्वारपर इतने अद्भुत और शक्तिशाली यन्त्र लगे हैं, जिनके रहते किसी भी वीर-वाहिनीका इसमें प्रवेश सम्भव नहीं। दूसरे, इस अगम लंकाको मैंने रात्रिमें देखा है। दशग्रीवके व्यक्तित्व एवं उसके योद्धाओंका कैसे पता चले? शत्रुकी सैन्य-शक्तिकी जानकारी आवश्यक है; इतना ही नहीं, रावणको आतङ्कित कर उसका मनोबल गिरानेसे भी लाभ होगा। माता सीता भी दिये गये आश्वासनका विश्वास दिलानेसे धैर्यपूर्वक अपने दिन काट सकेंगी। अतएव लंकाको भलीभाँति देखकर इसके अधिपति रावणसे मिलकर ही जाना अधिक उपयोगी होगा। पर दशमुखसे भेंट कैसे हो? यदि ये असुर किसी प्रकार उत्तेजित हो जायँ तो निश्चय ही मैं रावणके सम्मुख पहुँचा दिया जाऊँगा।'

बस, अपने मनमें इस प्रकारकी योजना बनाकर श्रीपवनपुत्र उछलकर एक वृक्षपर चढ़ गये। वे मधुर फलोंको खाने लगे। वे कुछ फलोंको कुतरकर और कुछको वैसे ही धरतीपर फेंक देते। किसी वृक्षकी डाल तोड़कर फेंकते तो कोई समूचा वृक्ष ही उखाड़ देते। इस प्रकार वे सम्पूर्ण अशोक-वाटिकाको नष्ट करने लगे। जिस शिंशपा (अशोक) वृक्षके नीचे माता सीता रहती थीं, उसके अतिरिक्त पवनपुत्रने वाटिकाके समस्त पुष्पों एवं फलोंके वृक्षोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अत्यन्त सुन्दर वाटिका कुछ ही देरमें उजाड़ हो गयी। इतना ही नहीं, परम शक्तिसम्पन्न महादेवात्मज श्रीहनुमान असुरोंके गगनचुम्बी चैत्य-प्रासादपर* उछलकर चढ़ गये। वे परम तेजस्वी शिवावतार कपीश्वर विशाल शरीर धारण करके लंकाको प्रतिध्वनित करते हुए उस प्रासादको तोड़-फोड़कर नष्ट करने लगे।

विशालकाय हनुमानजीकी गर्जना सुन तमोगुणी राक्षस भयभीत होकर जग पड़े। वे नाना प्रकारके प्रास, खड्ग, फरसे तथा अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर चैत्य-प्रासादकी ओर दौड़े। अत्यन्त मनोहर अशोक-वाटिकाकी दुर्दशा देखकर वे चकित हो गये। असुरोंने कुपित होकर नखदंष्ट्रायुध पवन पुत्रपर आक्रमण कर दिया, किंतु अनन्त शक्तिसम्पन्न श्रीहनुमानके सम्मुख वे क्षणभर भी टिक न सके। प्रासादके कंगूरों एवं वृक्षोंके आघातसे वहीं मर मिटे।

कुछ विकट मुखवाली भयानक राक्षसियोंने श्रीजनक-नन्दिनीके पास जाकर उनसे पूछा—'यह वानराकार विकट वीर कौन है?'

माता सीताने उत्तर दिया—'राक्षसोंकी माया तो तुम्हीं जानती हो। मैं दु:खिनी क्या बताऊँ?'

मृत्युसे बचे दो-चार असुर-प्रहरी और राक्षसियाँ रावणके समीप पहुँचीं। उन्होंने कहा—'प्रभो! एक वानराकार प्राणी पता नहीं, कहाँसे आकर अशोक-वाटिकामें प्रविष्ट हो गया है। उसने पहले तो सीताजीसे बात की और फिर हमारे देखते-ही-देखते सम्पूर्ण अशोक-वाटिकाको ध्वस्त कर दिया। वाटिकाका एक वृक्ष भी सुरक्षित नहीं रह पाया है। इतना ही नहीं, उस दुस्साहसीने हमारे मणिनिर्मित चैत्य-प्रासादको भी तोड़ डाला है और हमारे समस्त रक्षकोंको मारकर अब भी वहाँ सर्वथा निर्भय और निश्चिन्त बैठा हुआ है। प्रहरी-सैनिकोंमें हम दो-तीन ही किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर यहाँ आ सके हैं।'

रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने अभी-अभी दु:स्वप्न देखा था। स्वप्नमें भी एक विकट वानर उसे बुरी तरह तंग कर रहा था। उसने तुरंत सशस्त्र सैनिकोंकी एक विशाल वाहिनी भेजी।

उस समय स्वर्णशैलाभ कपिश्रेष्ठ लोहेके विशाल खंभोंको लेकर टूटे-फूटे मन्दिरके सामने बैठे असुरोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन महातेजस्वी श्रीपवनपुत्रका मुख अरुण-वर्ण और आकृति अत्यन्त भयानक थी। असुरोंकी विशाल वाहिनी आती देख उग्रवेग हनुमानजीने भयानक गर्जना की। मल्लविद्याके परमाराध्य श्रीआञ्जनेयकी विकट मूर्ति देखकर एवं उनकी भयानक गर्जना सुनकर राक्षस वीरोंका हृदय काँप उठा। उन्होंने वानरेश्वर हनुमानजीपर एक साथ ही अपने अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी; किंतु अमितविक्रम क्रोधसंरक्तलोचन श्रीपवनपुत्रके प्रहारके सम्मुख वे विवश होकर कुछ ही क्षणोंमें मृत्यु-मुखमें प्रविष्ट हो गये।

असुरोंकी विशाल वाहिनीके विनाशकी सूचना रावणके पास पहुँची। वह इस संवादसे अत्यन्त चकित हुआ। उसने अपने मन्त्री प्रहस्तके पुत्र जम्बुमालीको शत्रु वानरको

* लंकामें राक्षसोंके कुलदेवताका अत्यन्त रमणीय भवन 'चैत्यप्रासाद' कहा जाता था।

बंदी बनाकर या मृत रूपमें लानेके लिये भेजा। जम्बुमाली विशालकाय, क्रोधी और संग्राममें दुर्जय था। वह क्रोधमें उन्मत्त होकर अशोक-वाटिकाके लिये चला। चैत्य-प्रासादभञ्जक हनुमानजी फाटकके छज्जेपर खड़े थे। सशस्त्र असुर वीरको अपनी ओर आते देखकर वे प्रसन्नतापूर्वक गर्जना करने लगे। जम्बुमालीने श्रीपवनपुत्रपर तीक्ष्णतम शरोंकी वर्षा की। हनुमानजी घायल हुए, किंतु उन्होंने एक ही झटकेसे उसका गर्व खर्व कर दिया। असुरका प्राणहीन शरीर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

प्रहस्त-पुत्र जम्बुमाली और अपने किंकरोंकी मृत्युकी सूचना पाकर राक्षसाधिप रावण आश्चर्यमें डूब गया। उसने अपने मन्त्रीके अमित तेजस्वी, अत्यन्त बलवान्, धनुर्धर, अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा परस्पर होड़ लगाकर शत्रुपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छावाले सात पुत्रोंको भेजा। वे सातों अद्भुत वीर अपनी सशस्त्र वाहिनीके साथ एकाकी रुद्रांशको मारने चले। वे पराक्रमी मन्त्रिकुमार तपाये हुए सुवर्णसे चित्रित अपने धनुषोंकी टङ्कार करते हुए बड़े हर्ष और उत्साहसे आगे बढ़े। उधर सूर्यके समान तेजस्वी श्रीपवनकुमार प्रचण्ड लौह-स्तम्भ लिये असुर-सेनाकी प्रतीक्षामें बैठे थे। असुरोंने उनपर एक साथ भयानक वाण-वर्षा की। समरप्रिय परम पराक्रमी श्रीहनुमानजीने उनके तीक्ष्णतम शरोंसे अपनी रक्षा करते और घोर गर्जनाद्वारा उन्हें भयभीत करते हुए उनपर आक्रमण किया। कुछ ही देरमें सहस्त्रों सैनिकोंके साथ सातों मन्त्रिकुमार धराशायी हो गये। बची-खुची सेना भयाक्रान्त होकर भाग गयी।

पुनः रावणके पास सूचना पहुँची। इस संवादसे वह भयभीत हो उठा, किंतु उसने मनको संयमित कर अपने कर्तव्यका निश्चय किया। उसने अपने महान् वीर, नीति-निपुण एवं धैर्यवान् विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण नामक पाँच सेनापतियोंको श्रीहनुमानजीको पकड़ लानेकी आज्ञा दी।

दशग्रीवके पाँचों सेनापति अपनी विशाल सेनाके साथ अशोक-वाटिका पहुँचकर उग्रनेत्र हनुमानजीपर एक साथ ही टूट पड़े। उस समय हरांशज हनुमानजीका आकार भयानक पर्वत-तुल्य हो गया। उनकी भीषणतम आकृति एवं आकाशको विदीर्ण करनेवाले गर्जनसे असुर निष्प्राण-से हो गये। उनके अस्त्र-शस्त्र परम शक्ति-सम्पन्न श्रीअञ्जनानन्दनको खिलौने-तुल्य प्रतीत हुए। उन्होंने कुछ ही क्षणोंमें समूची सेनाके साथ पाँचों सेनापतियोंको रौंद डाला। उनकी लाशोंसे वहाँकी धरती पट गयी। वानराधीश श्रीपवननन्दन लौह-स्तम्भ लिये मुख्य फाटकपर खड़े होकर अन्य राक्षस-वीरोंके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। उस समय क्रोधसंरक्तलोचन कपिसत्तम असुरोंका संहार करनेके लिये उद्यत भयानकतम काल-तुल्य प्रतीत हो रहे थे।

राक्षसराज दशाननने अपने पाँचों सेनापतियोंके सैनिकों एवं वाहनोंसहित मारे जानेका दुःसंवाद सुनकर अपने वीरपुत्र अक्षकुमारकी ओर देखा। युद्धके लिये उत्कण्ठित रहनेवाला वीरवर अक्षकुमार अत्यन्त उत्साहपूर्वक उठ खड़ा हुआ। वह महापराक्रमी राक्षसशिरोमणि सुवर्ण-मण्डित रथपर आरूढ़ होकर कपीश्वरकी ओर चला। उसके रथमें धनुष, वाण, तरकस, तलवार, शक्ति, तोमर आदि समस्त अस्त्र-शस्त्र यथास्थान यथाक्रमसे रखे हुए थे।

अक्षकुमारने समर-शूर हनुमानजीपर प्रचण्ड वेगसे आक्रमण किया, किंतु भूधराकार श्रीमहादेवांशज आकाशसे सीधे उसके रथपर कूद पड़े। उसके रथ, अश्व और सारथि—सभी समाप्त हो गये। वीरवर अक्षकुमार रथसे कूदकर श्रीपवनपुत्रपर अस्त्र-प्रहार करना ही चाहता था कि वे पुनः आकाशमें उड़ गये। उनके पीछे राक्षस अक्षकुमार भी दौड़ा। हनुमानजीने अत्यन्त फुर्तीसे उसके दोनों पैर दृढ़तापूर्वक पकड़ लिये और उसे आकाशमें ही हजारों बार वेगपूर्वक घुमाकर जोरसे पृथ्वीपर पटक दिया। उच्चाकाशसे नीचे गिरनेपर असुरराजके प्राणप्रिय पुत्रके किसी भी अङ्गका पता नहीं चला। केवल यत्र-तत्र खूनकी क्षीण धारा बहती दीख पड़ी।

हनुमानजीके द्वारा अक्षकुमारके मारे जानेपर नक्षत्र-मण्डलमें विचरनेवाले महर्षियों, यक्षों, नागों, भूतों तथा इन्द्रसहित देवताओंने वहाँ एकत्र होकर विस्मयके साथ परम तेजस्वी साक्षात् काल-तुल्य श्रीरुद्रांशजका दर्शन किया। श्रीपवनपुत्र पुनः युद्धकी प्रतीक्षा करते हुए वाटिकाके उसी द्वारपर जा डटे।

अक्षकुमारकी मृत्युका अत्यन्त दुःखद समाचार रावणके पास पहुँचा। उसने बड़ी कठिनाईसे अपना मन स्थिर किया। प्रज्वलित रोषानलमें दग्ध होता हुआ महाकाय रावण स्वयं हनुमानजीको पकड़ने चला, किंतु इन्द्रजित्ने उसे रोककर कहा—'महाभाग! मेरे रहते आप क्यों दुःखी होते हैं? मैं अभी उस वानरकी चञ्चलता शान्त करता हूँ।'

इन्द्रजित्को वानरराज श्रीहनुमानके साथ युद्धार्थ जानेके लिये उद्यत देखकर रावणने उसे सावधान करते हुए कहा—'बेटा! उस वानरकी गति अथवा शक्तिका कोई माप-

तौल या सीमा नहीं है। वह अग्नितुल्य तेजस्वी वानर किसी साधन-विशेषसे मारा नहीं जा सकता।* अतएव तुम प्रतिपक्षीमें अपने समान ही पराक्रम समझकर अपने धनुषके दिव्य प्रभावको याद रखते हुए आगे बढ़ो और ऐसा पराक्रम कर दिखलाओ, जो अव्यर्थ सिद्ध हो।'

अपने पिताके ये वचन सुन वीरवर मेघनादने युद्धके लिये निश्चित विचार करके दशग्रीवकी परिक्रमा की और वह अपने अद्भुत रथकी ओर चला।

महापराक्रमी इन्द्रजित् अपने तेजस्वी रथपर बैठकर अनेक राक्षसोंके साथ पवनपुत्रके समीप पहुँचा। उसका भयंकर सिंहनाद सुन सर्वसमर्थ श्रीहनुमानजी लौह-स्तम्भ लिये आकाशमें उड़ गये। धनुर्धर मेघनादने अपने तीक्ष्ण शरोंसे हनुमानजीको बींध दिया। उनके शरीरसे रक्तकी धारा बह चली। बृहत्काय हनुमानजीने कुपित होकर लौह-स्तम्भके प्रबल प्रहारसे उसके सारथिको मारकर रथको चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। मेघनादके कितने ही वीर राक्षस रक्त वमन करते हुए यमलोक सिधारे।

महाकपीश्वरकी शक्तिके सम्मुख कोई वश चलता न देख इन्द्रजित्ने ब्रह्मपाश छोड़ा। नित्यमुक्त श्रीपवनकुमारको विधाताने ब्रह्मपाशसे मुक्त रहनेका वरदान पहले ही दे दिया था, किंतु श्रीअञ्जनानन्दन मर्यादाका अतिक्रमण करना नहीं जानते। वे ब्रह्मपाशको सम्मान प्रदान करनेके लिये उसमें बँध गये।

मायातीत पवनपुत्रके पृथ्वीपर गिरते ही सभी असुर उनके समीप आकर उन्हें डाँटने-फटकारने लगे; उन्होंने प्रसन्नात्मा हनुमानजीपर अपशब्दोंकी वर्षा करते हुए उन्हें वल्कलकी रस्सियोंसे अच्छी तरह कसकर बाँध दिया और श्रीराम-भक्त हनुमानजी ब्रह्मपाशसे स्वतः मुक्त हो गये। उन राक्षसोंको यह पता नहीं था कि ब्रह्मपाशका बन्धन दूसरे बन्धनके साथ नहीं रहता।

ब्रह्मपाशसे मुक्त वानरशिरोमणिको केवल वृक्षोंके वल्कलसे बँधा देखकर मेघनाद अत्यन्त उदास और चिन्तित हो गया। मन्त्र-शक्तिसे परिचित वीरवर इन्द्रजित् अच्छी प्रकार जानता था कि एक बार विफल होनेपर इसका प्रयोग दूसरी बार सम्भव नहीं। उसे अपनी विजय संदिग्ध-सी प्रतीत हुई।

अनन्त मङ्गलालय ज्ञानमूर्ति श्रीपवननन्दन यद्यपि ब्रह्मपाशसे मुक्त हो चुके थे, किंतु उन्होंने ऐसा बर्ताव किया, जैसे वे इस बातको जानते ही न हों। वे डरे हुए-से प्रतीत हो रहे थे। राक्षस श्रीपवनपुत्रको रावणके समीप ले चले। मार्गमें उन्हें देखकर पुरवासी दौड़े आते और उनके पीछे चलते हुए उन्हें घूँसे मारते, गालियाँ देते और उनके बाल नोच लेते थे। किंतु श्रीरामदूत हनुमानजी अपने स्वामीका कार्य-सम्पादन करनेके लिये सब कुछ सुन-सह रहे थे। वे लंकाके मार्गों एवं सैन्य-संचालनकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण स्थलोंको ध्यानपूर्वक देखते जा रहे थे। इस प्रकार मेघनाद उन्हें रावणके पास ले गया।

रावणकी सभामें

पिताके सम्मुख पहुँचकर मेघनादने कहा—'इस असाधारण वानरने हमारे अनेक वीर राक्षसोंके प्राण ले लिये हैं। मैं इसे ब्रह्माके वर-प्रभावसे बाँधकर ले आया हूँ। अब आप मन्त्रियोंसे परामर्श कर जैसा उचित समझें, करें।'

नीति-निपुण हनुमानजीने राक्षसराज रावणकी अद्भुत सभाको ध्यानपूर्वक देखा। तपते हुए सुवर्णके समान तेज और बलसे सम्पन्न राक्षसराज दशानन नाना प्रकारके रत्नोंसे चित्रित स्फटिकमणिके बने हुए विशाल एवं सुन्दर सिंहासनपर बैठा था। उसके मस्तक सोनेके बने हुए बहुमूल्य एवं दीप्तिमान् मुकुटोंसे उद्भासित हो रहे थे। मन्त्र-तत्त्वको जाननेवाले दुर्धर, प्रहस्त, महापार्श्व तथा निकुम्भ—ये चार राक्षसजातीय मन्त्री उसके पास बैठे थे।

महावीर श्रीहनुमान भयानक राक्षसोंसे पीड़ित होनेपर भी अत्यन्त आश्चर्यके साथ दशग्रीवको देख रहे थे। दीप्तिशाली राक्षसराजके तेजसे प्रभावित होकर धर्ममूर्ति श्रीपवनपुत्रने मन-ही-मन कहा—'इस अद्भुत रूप, अनुपम शक्ति और आश्चर्यजनक तेजसे सम्पन्न रावणमें यदि प्रबल अधर्म न होता तो यह दशानन इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवलोकका संरक्षक हो सकता था।'

दैत्यराज रावण अपने सम्मुख पिङ्गाक्ष, पिङ्गकेश और पिङ्गरोमा वानरशिरोमणि हनुमानजीको देखकर रोषसे जल उठा। उसने अपने सामने बैठे हुए कज्जल-गिरिके समान कृष्णवर्ण अपने मन्त्री प्रहस्तसे कहा—'प्रहस्त! इस बंदरसे पूछो तो सही, यह कौन है? कहाँसे आया है? इसके यहाँ आनेका उद्देश्य क्या है ? इसने अशोक-वाटिका क्यों ध्वस्त कर दी तथा इसने योद्धाओंके साथ मेरे प्राणप्रिय पुत्रको क्यों मार डाला?'

प्रहस्तने हनुमानजीसे कहा—'वानर! तुम घबराओ

* न मारुतस्यास्ति गतिप्रमाणं न चाग्निकल्पः करणेन हन्तुम्॥ (वा० रा० ५। ४८। ११)

मत; धैर्य रखो! तुम्हें डरनेकी आवश्यकता नहीं। तुम कौन हो? कहाँसे आये हो ? तुम्हें यहाँ किसने भेजा है? यदि तुम सच-सच बतला दो तो तुम्हारी कोई क्षति नहीं होगी। मैं तुम्हें छुड़ा दूँगा।'

श्रीराम-भक्त हनुमानजी त्रैलोक्य-विजयी रावणकी सभामें भी सर्वथा नि:शङ्क और निर्भय थे। उन्होंने मन-ही-मन परमप्रभु श्रीरामका स्मरण कर कहना प्रारम्भ किया—'लंकाधिपति रावण! जिन अनन्त महिमामय परमप्रभुका आश्रय ग्रहणकर माया निखिल सृष्टिकी रचना करती है, जिनकी शक्तिसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश क्रमश: सृष्टिका सृजन, पालन और संहार करते हैं, जिनके बलसे शेषजी वनों एवं पर्वतोंसहित समस्त ब्रह्माण्डको अपने सिरपर धारण करते हैं और जो प्रत्येक युगमें गो-ब्राह्मण, देव-समुदाय एवं धर्मकी रक्षा तथा तुम्हारे-जैसे धरतीके भारभूत राक्षसोंको दण्ड देनेके लिये पृथ्वीपर अवतरित होते हैं, मैं उन भगवान् श्रीरामका दूत हूँ। क्या तुम्हें पता नहीं, उन श्रीदशरथकुमारने भगवान् शंकरके उस कठोरतम धनुषको मृणाल-तुल्य तोड़ डाला, जिसे तुम हिलातक नहीं सके थे। खर-दूषण और त्रिशिराको चौदह हजार राक्षसोंके साथ अकेले मार डालनेवाले श्रीरामको तुम नहीं जानते? अरे! तुमको अपनी काँखमें दबा रखनेवाले वालीको उन्होंने एक ही वाणसे मार डाला। तुम उन्हें न जाननेका स्वाँग भले ही रच लो, पर वे तुम्हें कैसे भूल सकते हैं, जिनकी सती पत्नीको तुम चोरकी तरह चुराकर ले आये हो। रावण! तुम अच्छी प्रकार देख और समझ लो, मैं उन्हीं सर्वशक्ति-सम्पन्न परमप्रभु श्रीरामका दूत परम प्रतापी पवनदेवका पुत्र हनुमान हूँ।

'किष्किन्धाधिपति श्रीराम-सखा सुग्रीवने सीतादेवीकी खोजके लिये व्यग्र होकर कोटि-कोटि वीर वानर-भालुओंको चारों दिशाओंमें भेजा है। उन्हींका भेजा हुआ मैं शतयोजन सागर लाँघकर यहाँ आया हूँ। मैंने माता सीताका दर्शन कर लिया है। तुम भगवती सीताको लंकाका विनाश करनेवाली कालरात्रि ही समझो। सीताका शरीर धारण करके तुम्हारे पास कालकी फाँसी आ पहुँची है। रावण! तीनों लोकोंमें एक भी ऐसा प्राणी नहीं है, जो भगवान् श्रीरामका अपराध करके सुखी रह सके। महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके फिर उनका नये सिरेसे निर्माण करनेकी शक्ति रखते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा, त्रिनेत्र त्रिपुरारि, सहस्राक्ष इन्द्र, देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा यक्ष—ये सब मिलकर भी समराङ्गणमें श्रीरघुनाथजीके सम्मुख नहीं टिक सकते।

'मैं तो प्रभुके आदेशानुसार माता सीताका दर्शन करने गया था। मुझे जोरकी भूख लगी थी, इस कारण फल खाने लगा। अपने स्वभावके अनुसार मैंने वृक्षोंको तोड़ा, किंतु तुम्हारे सैनिक मुझपर प्रहार करने लगे। भला, अपना शरीर किसे प्रिय नहीं है ! अत: जिन्होंने मुझे मारा, मैंने भी उन्हें मार डाला। इसमें मेरा क्या दोष है? अपराध तो तुम्हारे पुत्रने किया है। तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो, मैं यहाँ अन्यायपूर्वक बाँधकर लाया गया हूँ।'

कपीश्वर हनुमानजीकी चतुरतापूर्ण निर्भीक वाणी सुनकर देवगण प्रसन्न हो उठे और राक्षसगण भयाक्रान्त हो काँपने लगे। श्रीरामकी शक्तिकी महिमा सुनकर उनका मनोबल गिर गया। रावण क्रोधपूर्वक दाँत पीसने लगा, परंतु परम बुद्धिमान् मङ्गलमूर्ति श्रीहनुमान दशग्रीवके यथार्थ हितके लिये अत्यन्त शान्तिपूर्वक उपदेश करते रहे—

''लंकाधिपति! तुम ब्रह्माजीके अति उत्तम वंशमें उत्पन्न हुए हो तथा पुलस्त्यनन्दन विश्रवाके पुत्र और कुबेरके भाई हो, अत: देखो, तुम तो देहात्मबुद्धिसे भी राक्षस नहीं हो; फिर आत्मबुद्धिसे राक्षस नहीं हो, इसमें तो कहना ही क्या है? तुम सर्वथा निर्विकार हो, इसलिये शरीर, बुद्धि, इन्द्रियाँ और दु:खादि—ये न तुम्हारे (गुण) हैं और न तुम स्वयं हो। इन सबका कारण अज्ञान है और स्वप्न-दृश्यके समान ये सब असत् हैं। यह बिलकुल सत्य है कि तुम्हारे आत्मस्वरूपमें कोई विकार नहीं है; क्योंकि अद्वितीय होनेसे उसमें कोई विकारका कारण ही नहीं है। जिस प्रकार आकाश सर्वत्र होनेपर भी (किसी पदार्थके गुण-दोषसे) लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार तुम देहमें रहते हुए भी सूक्ष्मरूप होनेसे उसके सुख-दु:खादि विकारोंसे लिप्त नहीं होते। 'आत्मा देह, इन्द्रिय, प्राण और शरीरसे मिला हुआ है'—ऐसी बुद्धि ही सारे बन्धनोंका कारण है और 'मैं चिन्मात्र, अजन्मा, अविनाशी तथा आनन्दस्वरूप ही हूँ'—इस बुद्धिसे जीव मुक्त हो जाता है। पृथ्वीका विकार होनेसे देह भी अनात्मा है और प्राण वायुरूप ही है; अत: यह भी आत्मा नहीं है। अहंकारका कार्य मन अथवा प्रकृतिके विकारसे उत्पन्न हुई बुद्धि भी आत्मा नहीं है। आत्मा तो चिदानन्दस्वरूप, अविकारी तथा देहादिके संघातसे पृथक् और उसका स्वामी है। वह निर्मल और सर्वदा उपाधिरहित है—उसका इस प्रकार ज्ञान होते ही मनुष्य संसारसे मुक्त हो जाता है। अत: हे महामते! मैं तुम्हें आत्यन्तिक मोक्षका साधन बतलाता हूँ; सावधान होकर सुनो! भगवान् विष्णुकी भक्ति बुद्धिको अत्यन्त

शुद्ध करनेवाली है; उसीसे अत्यन्त निर्मल आत्मज्ञान होता है। आत्मज्ञानसे शुद्ध आत्मतत्त्वका अनुभव होता है और उससे दृढ़ बोध हो जानेपर मनुष्य परमपद प्राप्त करता है। इसलिये तुम प्रकृतिसे परे, पुराण-पुरुष, सर्वव्यापक आदिनारायण लक्ष्मीपति हरिभगवान्का भजन करो; अपने हृदयमें स्थित शत्रुभावरूप मूर्खताको छोड़ दो और शरणागतवत्सल श्रीरामका भजन करो। सीताजीको आगे कर अपने पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित भगवान् श्रीरामकी शरणमें जाकर उन्हें नमस्कार करो। इससे तुम भयसे छूट जाओगे। जो पुरुष अपने हृदयमें स्थित अद्वितीय सुखस्वरूप परमात्मा श्रीरामका भक्तिपूर्वक ध्यान नहीं करता, वह दु:ख-तरंगावलिसे पूर्ण इस संसार-समुद्रका पार कैसे पा सकता है? यदि तुम भगवान् श्रीरामका भजन नहीं करोगे तो अज्ञानरूपी अग्निसे जलते हुए अपने-आपको शत्रुके समान सुरक्षित नहीं रख सकोगे और उसे अपने किये हुए पापोंसे उत्तरोत्तर नीचेकी ओर ही ले जाओगे; फिर तुम्हारे मोक्षकी कोई सम्भावना न रहेगी।*

''असुरराज! मैं तुमसे पुन:-पुन: विनीत प्रार्थना करता हूँ कि तुम माता सीताको अत्यन्त आदरपूर्वक आगे करके भगवान्के समीप चलो और उनके चरणोंमें गिरकर अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँग लो। विश्वास करो, वे दयाधाम श्रीराम तुम्हें निश्चय ही क्षमा कर देंगे। फिर तुम लंकामें निष्कण्टक राज्यका उपभोग करो। तुम्हारा लौकिक और पारलौकिक जीवन सुधर जायगा—सफल हो जायगा। तुम धन्य हो जाओगे।''

भक्तवर श्रीअञ्जनानन्दन दशग्रीवके परम कल्याणके लिये उसे अमृतोपम उपदेश दे रहे थे, किंतु भावीवश दुर्बुद्धि राक्षसराजको वह बहुत अप्रिय लगा। उसके नेत्र लाल हो गये। अत्यन्त कुपित होकर उसने कहा—'वानराधम! दुष्टबुद्धे!! मेरे सामने तू अनर्गल प्रलाप करनेका दुस्साहस कैसे कर रहा है? वनवासी राम और सुग्रीवकी क्या शक्ति है? पहले तो मैं यहीं तेरा वध करता हूँ और फिर सीताको मारकर तेरे राम-लक्ष्मण और सुग्रीवको भी उसकी सेनाके सहित मृत्यु-मुखमें झोंक दूँगा।'

दशाननकी मिथ्या दर्पोक्तिको विशुद्धात्मा श्रीमर्कटाधीशके लिये सह लेना सम्भव नहीं था। दाँत किटकिटाते हुए उन्होंने कहा—'अधम राक्षसराज! तेरे सिरपर मृत्यु नाच रही है, इसी कारण तू प्रलाप कर रहा है। मैं भगवान् श्रीरामका सेवक हूँ। मेरी शक्ति और पराक्रमकी तू कल्पना भी नहीं कर सकता। तेरे-जैसे कोटि-कोटि पापात्मा मेरी समानता करनेमें समर्थ नहीं हैं।'

दुरात्मा रावण प्रज्वलित क्रोधाग्निसे जल उठा। उस क्रोधोन्मत्त असुरने चिल्लाते हुए अपने असुरोंको आज्ञा दी—'राक्षसो! तुम इस दुष्ट वानरका वध कर डालो।'

अनेक वीर राक्षस कपीश्वरकी ओर झपटे ही थे कि वार्तालाप-कुशल विभीषणने अपने ज्येष्ठ भ्राता रावणको शान्तिपूर्वक समझाते हुए कहा—''वीरवर लंकेश्वर! धर्मकी व्याख्या करने, लोकाचारका पालन करने अथवा शास्त्रीय सिद्धान्तको समझनेमें आपके समान दूसरा कोई नहीं है। आप क्रोधको त्यागकर विचार करें—'सत्पुरुषोंका कथन है कि दूत कहीं, किसी समय भी वध करनेयोग्य नहीं होता।' वह भला हो या बुरा, शत्रुओंने इसे भेजा है; अत: यह उन्हींके स्वार्थकी बात करता है। दूत सदा पराधीन होता है; अत: उसे कभी मृत्यु-दण्ड नहीं दिया जाता। दूतके लिये अङ्ग-भङ्ग आदि अन्य प्रकारके बहुत-से दण्ड हैं; आप उनमेंसे किसीका उपयोग कर सकते हैं।''

* त्वं ब्रह्मणो ह्युत्तमवंशसम्भव: पौलस्त्यपुत्रोऽसि कुबेरबान्धव: । देहात्मबुद्ध्यापि च पश्य राक्षसो नास्यात्मबुद्ध्या किमु राक्षसो नहि ॥
शरीरबुद्धीन्द्रियदु:खसंततिर्न ते न च त्वं तव निर्विकारत: । अज्ञानहेतोश्च तथैव संततेरसत्त्वमस्या: स्वपतो हि दृश्यवत् ॥
इदं तु सत्यं तव नास्ति विक्रिया विकारहेतुर्न च तेऽद्वयत्वत: । यथा नभ: सर्वगतं न लिप्यते तथा भवान् देहगतोऽपि सूक्ष्मक: ॥
देहेन्द्रियप्राणशरीरसङ्गतस्त्वात्मेति बुद्ध्वाखिलबन्धभाग् भवेत् ॥
चिन्मात्रमेवाहमजोऽहमक्षरो ह्यानन्दभावोऽहमिति प्रमुच्यते । देहोऽप्यनात्मा पृथिवीविकारजो न प्राण आत्मानिल एष एव स: ॥
मनोऽप्यहंकारविकार एव नो न चापि बुद्धि: प्रकृतेर्विकारजा । आत्मा चिदानन्दमयोऽविकारवान् देहादिसंघाद्व्यतिरिक्त ईश्वर: ॥
निरञ्जनो मुक्त उपाधित: सदा ज्ञात्वैवमात्मानमितो विमुच्यते । अतोऽहमात्यन्तिकमोक्षसाधनं वक्ष्ये शृणुष्वावहितो महामते ॥
विष्णोर्हि भक्ति: सुविशोधनं धियस्ततो भवेज्ज्ञानमतीव निर्मलम् । विशुद्धतत्त्वानुभवो भवेत्तत: सम्यग्विदित्वा परमं पदं व्रजेत् ॥
अतो भजस्वाद्य हरिं रमापतिं रामं पुराणं प्रकृते: परं विभुम् । विसृज्य मौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनां भजस्व रामं शरणागतप्रियम् ॥
सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात् ॥
रामं परात्मानमभावयन् जनो भक्त्या हृदिस्थं सुखरूपमद्वयम् । कथं परं तीरमवाप्नुयाज्जनो भवाम्बुधेर्दु:खतरंगमालिन: ॥
नो चेत्त्वमज्ञानमयेन वह्निना ज्वलन्तमात्मानमरक्षितारिवत् । नयस्यधोऽध: स्वकृतैश्च पातकैर्विमोक्षशङ्का न च ते भविष्यति ॥
(अध्यात्मरामायण ५ । ४ । १६—२५)

अनुज विभीषणके देश-कालके उपयुक्त हितकर वचन सुनकर नीतिज्ञ रावणने कहा—'विभीषण! तुम्हारा कहना ठीक है; किंतु वधके अतिरिक्त इसे दूसरा कोई दण्ड अवश्य देना चाहिये। वानरोंको अपनी पूँछ बड़ी प्यारी होती है; वही इनका आभूषण है। अत: यथाशीघ्र इसकी पूँछ जला दी जाय। यह दुमकटा बंदर अपने वनवासी स्वामीके समीप जाकर उसे स्वयं कालके गालमें खींच लायगा।'

दुष्ट दशाननने पुन: आज्ञा दी—'असुरगण ! तिरस्कार करते हुए इसको लंकाकी सड़कों, चौराहों और गलियोंमें घुमाओ और अन्तमें इसकी पूँछमें आग लगा दो।'

लंका-दहन

सत्त्वगुणशाली, परमपराक्रमी, कपिकुञ्जर श्रीअञ्जना-नन्दवर्धनने प्रभुके कार्यकी सिद्धिके लिये अपने दिव्य आकारको छिपा रखा था। लंकाधिपति रावणका आदेश पाते ही मूढ़ राक्षस घृत और तेलमें डुबा-डुबाकर चिथड़े और वस्त्र उनकी पूँछपर लपेटने लगे। परम कौतुकी पवनात्मजने अपनी पूँछ लंबी कर दी। दुष्ट दशाननके आज्ञापालक असुर हनुमानजीकी पूँछमें जितने ही वस्त्र लपेटते, वह उतनी ही लंबी होती जाती। कपिकी इस क्रीड़ासे लंकामें वस्त्र एवं तेल-घृतका अभाव होने लगा। पर असुर कब माननेवाले थे। उक्त राक्षसपुरीमें जहाँसे जितना वस्त्र, तेल और घृत प्राप्त हुआ, सब एकत्र कर लिया गया। वस्त्रको पूँछमें अच्छी प्रकार लपेटकर उसे दृढ़ रज्जुसे बाँध दिया गया और फिर असुरोंने उसे अच्छी प्रकार भिगा देनेसे बचे-खुचे तेल और घीको भी ऊपरसे उँड़ेल दिया।

दृढ़ रज्जुमें जकड़े हुए कपिकुञ्जर श्रीकेसरीकिशोरको राक्षस पकड़कर प्रसन्नतापूर्वक ले चले। वे शङ्ख और भेरी बजा-बजाकर उनके अपराधोंकी घोषणा करते हुए उन्हें गली-गली घुमाने लगे। राक्षस और उनके बच्चे शत्रुदमन श्रीहनुमानजीके पीछे-पीछे ताली बजाते, उन्हें गाली बकते, घूँसा मारते, उनके बाल नोचते तथा उनपर कंकड़-पत्थर फेंकते हुए चल रहे थे, किंतु परम बुद्धिमान् हनुमानजी अपने प्रभुके कार्यकी सिद्धिके लिये मनमें तनिक भी दु:ख न मानकर सब कुछ प्रसन्नतापूर्वक सह रहे थे। उन्होंने रात्रिमें दुर्ग-रचनाकी विधिपर दृष्टि रखते हुए उस नगरीको अच्छी प्रकार नहीं देखा था और अब वे रावण-प्रदत्त इस दण्डसे राक्षसोंकी विशाल पुरीमें विचरते हुए उसे भलीभाँति देखने लगे। इस प्रकार उन्होंने अनेक अद्भुत विमान, सुन्दर चबूतरे, घनीभूत गृह-पङ्क्तियोंसे घिरी हुई सड़कें, चौराहे, छोटी-बड़ी गलियाँ, घरोंके मध्यभाग, गढ़, द्वार एवं प्रख्यात राक्षसोंके आवास आदि सब महत्त्वपूर्ण स्थान ध्यानपूर्वक देख लिये।

राक्षसोंने हनुमानजीको बाँधकर लंकामें सर्वत्र घुमाया और जी-भरकर उनका तिरस्कार किया। पीछे प्रमुख चौराहेपर आकर सब श्रीहनुमानजीको घेरकर खड़े हो गये। चारों ओर हर्षोल्लासकी ध्वनि होने लगी। उसी बीच रावणके एक प्रमुख वीरने पूँछमें आग लगा दी। अग्नि प्रज्वलित हुई और राक्षस-राक्षसियाँ—सब हर्षातिरेकसे ताली पीट-पीटकर नाचने लगे।

बल-बुद्धि-निधान हनुमानजीके उद्देश्यकी पूर्ति हो गयी। अब उन्होंने अपना आकार छोटा कर लिया। बस, असुरोंद्वारा बाँधा गया बन्धन ढीला पड़ गया। श्रीपवनपुत्र बन्धनमुक्त हुए और फिर उन्होंने बृहदाकाररूप धारण कर लिया। उन्होंने वेगपूर्वक अपनी पूँछ घुमायी ही थी कि राक्षस सहमे; किंतु रुद्रांशजने उन्हें अपनी पूँछसे ही मारना आरम्भ किया। हनुमानजीकी पूँछका आघात वज्रपातके सदृश हो रहा था। बालक, युवा एवं वृद्ध राक्षस नर-नारी भयभीत होकर भागने लगे; किंतु वे जहाँ-कहीं भी भागते, पूँछ वहीं उन्हें काल-सर्पकी भाँति लपेट लेती। अग्निकी ज्वालामें छटपटाते हुए असुर पृथ्वीपर जोरसे पटके जाते। तड़पने भी नहीं पाते, तुरंत मर जाते। इस प्रकार वहाँ एकत्रित समस्त असुरोंका वध कर हनुमानजी लंकाकी एक अत्यन्त विशाल गगनचुम्बी अट्टालिकापर चढ़ गये।

जिस समय पवननन्दन हनुमानजीकी पूँछमें आग लगायी जा रही थी, उसी समय एक भयानक राक्षसीने दौड़कर माता जानकीसे कहा—'सीते! तुम जिस बंदरसे बात कर रही थी, उसे बाँधकर उसकी पूँछमें आग लगा दी गयी है। उसे अत्यन्त अपमानके साथ लंकाकी गलियोंमें घुमाया गया है।'

माता जानकी सहसा काँप उठीं। उन्होंने दृष्टि उठाकर देखा—विशाल लंकापुरीमें अग्निकी प्रचण्ड ज्वाला फैली हुई है। उन्होंने अत्यन्त व्याकुल होकर अग्निदेवसे प्रार्थना की—'अग्निदेव! यदि मैं अपने प्राणनाथ पतिदेवकी विशुद्ध सेविका हूँ और यदि मुझमें

तपस्या तथा पातिव्रत्यका बल है तो तुम पवनपुत्र हनुमानके लिये शीतल हो जाओ!' एक तो पातिव्रत्यकी ही अमित शक्ति! पतिव्रता देवी इच्छा होनेपर सम्पूर्ण सृष्टिको उलट-पुलट कर सकती हैं, दूसरे निखिल सृष्टिकी स्वामिनी, जगज्जननी, मूल प्रकृति स्वयं शक्तिकी प्रार्थना! तीखी लपटोंवाले अग्निदेव श्रीहनुमानके लिये शान्तभावसे जलने लगे। उनकी शिखा प्रदक्षिणभावसे उठने लगी। स्वयं हनुमानजी चकित होकर सोचने लगे—'अरे! अग्नि तो प्रज्वलित है; इसके स्पर्शसे विशाल अट्टालिकाएँ धायँ-धायँ जल रही हैं; किंतु मैं बिलकुल सुरक्षित हूँ। निश्चय ही माता सीताकी दया, मेरे परमप्रभुके तेज तथा मेरे पिताकी मैत्रीके प्रभावसे अग्निदेव मेरे लिये शीतल बन गये हैं।'

'जय श्रीराम!' उस विशाल गगनचुम्बी अट्टालिकामें आग लगाकर भयानक-मूर्ति श्रीहनुमान दूसरे महलपर कूदे। उस समय उनकी भीषण गर्जनासे आकाश विदीर्ण हो रहा था। उस गर्जनमात्रसे कितने ही असुरोंका प्राणान्त हो गया, राक्षस-पत्नियोंके गर्भ गिर गये और बड़े-बड़े वीर राक्षसोंका हृदय काँप उठा।

'जय श्रीसीताराम'—रावणके महान् दुर्गका ध्वंस करते हुए मैनाकवन्दित महान् वेगशाली कपीश्वर उछलकर प्रहस्तके महलपर पहुँच गये और उसमें आग लगाकर महापार्श्वके घरमें आग लगाते हुए श्रीरामदूतने क्रमशः वज्रदंष्ट्र, शुक, बुद्धिमान् सारण, इन्द्रविजयी मेघनाद, जम्बुमाली और सुमालीके महलोंको फूँक दिया। उस समय अग्निकी भयानक लपटोंमें अरुणवर्ण श्रीमारुतात्मज प्रत्यक्ष कालकी मूर्ति प्रतीत हो रहे थे। अत्यन्त भयभीत असुर उनकी ओर देखनेका साहस भी नहीं कर पा रहे थे।

अमित वेगशाली कपीश्वरमें अद्भुत स्फूर्ति थी। वे एक महलपर जाकर अपनी प्रज्वलित पूँछसे उसके आँगन, द्वार और वातायनोंमें प्रवेश कर इतनी शीघ्रतासे आग लगाकर दूसरे महलपर कूद पड़ते कि विश्वास करना भी कठिन था कि यहाँ एक ही हनुमानजी हैं। राक्षसोंको सर्वत्र सभी महलोंपर मर्कटाधीश श्रीहनुमान ही आग लगाते हुए दीख रहे थे।

इस प्रकार श्रीहनुमानने अत्यन्त शीघ्रतासे रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, राक्षस रोमश, रणोन्मत्त ध्वजग्रीव, भयानक विद्युज्जिह्व, हस्तिमुख, कराल, विशाल, शोणिताक्ष, मकराक्ष, नरान्तक, कुम्भ, दुरात्मा निकुम्भ, यज्ञशत्रु और ब्रह्मशत्रु आदि समस्त प्रमुख राक्षसोंके भवन तथा अश्वशाला, गजशाला, अस्त्रागार, सैन्य-शिविर आदिमें आग लगा दी।

उसी समय अपने पुत्रके कार्यमें सहायता करनेके लिये पवनदेव तीव्र गतिसे बहने लगे। इस कारण आग और भी अधिक प्रज्वलित हो गयी। सोने, चाँदी तथा रत्नोंके महल पिघल-पिघलकर बहने लगे। लंकाके स्त्री-पुरुष और बालक-वृद्ध—सभी असुरोंमें त्राहि-त्राहि मच गयी। लाखों असुर इस अग्निदाहसे ही कालके गालमें चले गये। किसीको कुछ सूझ नहीं रहा था। सबको अपने प्राणोंके लाले पड़े थे। अन्न, वस्त्र, आभूषण, गज, अश्व, खच्चर, रथादि जहाँके तहाँ अग्निमें जल रहे थे; अपने प्राणके सम्मुख उनकी चिन्ता कौन करता? अनाथ और असहायकी भाँति रावणकी लंका प्रचण्ड अग्निमें धायँ-धायँ जल रही थी! पशु, स्त्री-बच्चे चीत्कार कर रहे थे; पर त्रैलोक्यविजयी असुर कुछ नहीं कर पा रहे थे। सर्वथा अवश और निरुपाय थे वे। उधर जिन घरोंमें अग्नि कुछ शान्त होती, मारुतनन्दन उनमें पुनः अग्नि प्रज्वलित कर देते। वे लंकाको उलट-पलटकर जला रहे थे।

अपने दुर्लभ अलौकिक भवनको जलते देखकर दशग्रीवका हृदय काँप उठा; पर अपना मनोगत भाव छिपाते हुए उसने राक्षसोंको आज्ञा दी—'वीरो! इस अधम वानरको पकड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दो।'

स्वामीका आदेश प्राप्त कर मेघनाद आदि वीर शस्त्र धारण कर एकत्र हुए; किंतु वे किसे पकड़ें। वे जिधर जिस अट्टालिकापर दृष्टि डालते, उन्हें उधर, उसी अट्टालिकापर हनुमानजीकी काल-तुल्य भयानक मूर्ति दीख पड़ती। हनुमानजीने अपनी वज्र-तुल्य प्रज्वलित पूँछ लंबी की। बस, कितने ही वीर उससे झुलस गये। कितने उस पूँछके आघातसे ही व्याकुल होकर गिर पड़े। प्रबल प्रभञ्जन और भयंकर ज्वाला—असुर वीर कुछ नहीं कर सके। उन्होंने रावणके सम्मुख अपनी विवशता व्यक्त की।

रावणके वशमें लोकपाल और यम थे। उसने उन्हें भेजा। लंकादाहक श्रीहनुमानजीने यमको तो अपने मुँहमें रख लिया और लोकपाल उनकी पूँछकी साधारण चोट भी सह न सके; वे प्राण लेकर भागे।

यमकी अनुपस्थितिमें सृष्टिका कार्य स्थगित हो गया। प्राणियोंकी मृत्यु कैसे हो? देवताओंसहित हंसारूढ़ चतुर्मुख ब्रह्माने आकाशसे कालमूर्ति श्रीहनुमानकी वन्दना की। मङ्गल-मोद-निधान हनुमानजीने यमको छोड़ दिया। यमने मन-ही-मन संकल्प किया कि अब मैं प्रभु-भक्तोंके समीप कभी नहीं जाऊँगा।

अन्तमें रावणने मेघोंको वृष्टिके द्वारा अग्नि बुझा देनेकी आज्ञा दी। उमड़ते हुए सजल जलद लंकापर

घिर आये। घनघोर वर्षा होने लगी; किंतु उस वर्षाका हनुमानजीद्वारा लगायी गयी आगपर उलटा ही प्रभाव पड़ा। जलकी बूँदें तप्त तैल और घृतकी तरह प्रज्वलित अग्निको और भी सहायता करने लगीं! जैसे-जैसे वर्षा होती, आग उतनी ही तीव्र होती जाती थी।

विचित्र दशा थी। बादल इधर तो अग्निकी लपटोंसे जले जाते हैं और उधर उनके शरीर ग्लानिसे गले जाते हैं। सब मेघ शुष्क हो सकुचाकर पुकारने लगे—'हमलोगोंने बारहों सूर्य देखे, प्रलयकी अग्नि देखी और कई बार शेषजीके मुखकी ज्वाला भी देखी, परंतु कभी जलको घृतके समान हुआ नहीं सुना। यह महान् आश्चर्य श्रीकेसरीनन्दनने कर दिखलाया!' मेघोंके वचन सुनकर मन्त्रीगण सिर घुमाने लगे और रावणसे बोले—'यह सब ईश्वरकी प्रतिकूलताका विकार—फल है!'*

सोनेकी लंका धायँ-धायँ जल रही थी; वहाँके समस्त प्राणी चीत्कार कर रहे थे, पर उनकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं था! मन्दोदरी आदि रानियाँ विलखती हुई चिल्ला रही थीं—'हमने पहले ही इस दसमुँहेको मना किया था कि सती जानकीको उनके पतिके यहाँ भेज दो; श्रीरामसे वैर मत करो; किंतु यह अहंकारके वश होकर हमारी एक नहीं सुनता था। अब उसका बल, उसकी सेना और उसका प्रताप कहाँ गया! कोनेमें चोरकी तरह वह मुँह छिपाकर बैठा है। अब हमारी रक्षा कैसे हो?' इसी प्रकार बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष—जो जहाँ थे, वहीं विलख रहे थे। उधर हाथी, घोड़े, रथ, पशु, पक्षी, वृक्ष तथा कितने ही राक्षसोंसहित लंकापुरी दग्ध हो रही थी। वहाँके निवासी दीन भावसे फूट-फूटकर रो रहे थे।

लंकाको फूँकते हुए परम पराक्रमी हनुमानजी मन-ही-मन अपने परमप्रभु श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण कर रहे थे। श्रीमर्कटाधीशके इस अद्भुत एवं अप्रतिम कार्यसे सभी देवता, मुनिवर, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त प्रसन्न हुए। देवताओंने श्रीपवनपुत्रकी स्तुति की।

कहते हैं, लंकाधिपति रावणने सूर्यपुत्र शनिदेवको बंदी बना लिया था। उस बंदी-गृहकी चहारदीवारी हनुमानजीके पैरके आघातसे टूटकर गिर गयी। हनुमानजीने शनिदेवका दर्शन किया और उन्हें रावणकी सारी करतूत बता दी। शनिदेवने मुक्तिदाता श्रीहनुमानजीको आशीर्वाद देते हुए कहा—'अब लंकाका सर्वनाश निकट है।' उन्होंने कनखीसे लंकाकी ओर देखा और एक विभीषणका घर छोड़कर बची-खुची लंका जलकर राख हो गयी।

अतुलित बलशाली श्रीपवनकुमारने जब देखा कि सारी लंका जल रही है; यहाँके सैन्य-केन्द्र, युद्धोपयोगी उपकरण तथा वाहन आदि नष्ट हो रहे हैं; यहाँके लोग आतङ्कित, भयभीत एवं त्रस्त हो गये हैं; तब उन्हें माता सीताकी चिन्ता हुई—'विभीषणका घर तो मैंने बचा लिया, किंतु माता सीता, पता नहीं कैसे हैं? यदि कहीं भूलसे अग्निकी ज्वालामें…?' श्रीपवनदेव काँप उठे। अत्यन्त चिन्तित हनुमानजी उछलकर समुद्रमें कूद पड़े। पूँछकी आग बुझाकर वे पानीसे निकल ही रहे थे कि चारणोंके मुखसे निकली हुई शुभ वाणी सुनकर उनकी सारी चिन्ता दूर हो गयी।

महात्मा चारण कह रहे थे—'पवनपुत्र हनुमानजीने सोनेकी लंकामें आग लगाकर बड़े दुस्साहसका कार्य किया है। घरमेंसे भागे हुए राक्षसों, स्त्रियों, बालकों और वृद्धोंका रुदन और चीत्कार सारी लंकामें छाया हुआ है। पर्वतकी कन्दराओं, अटारियों, परकोटों, सैन्य-स्थलों, गुप्तागारों और नगरके प्रमुख द्वारोंसहित समूची लंका जलकर भस्म हो गयी; किंतु अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि श्रीरामवल्लभा सीतापर आँच नहीं आयी!'

माता सीतासे बिदाई

'जय श्रीसीताराम!'—हर्षातिरेकसे हनुमानजीके मुँहसे जयध्वनि हो रही थी। वे अत्यन्त तीव्रगतिसे दौड़े जगज्जननी जानकीकी ओर! हनुमानजीकी कुशलताकी चिन्तामें माता उदास बैठी थीं; श्रीपवनपुत्रने दौड़कर 'माँ-माँ' कहते हुए उनके चरण-कमलोंपर सिर रख दिया। माँके हृदयमें वात्सल्य उमड़ पड़ा और नेत्र सजल हो गये। उन्होंने परम भाग्यवान् हनुमानजीके मस्तकपर अपना अभयद कर-कमल रख दिया।

अतिशय स्नेहसे माता जानकीने पूछा—'बेटा! तुझे सकुशल देखकर मेरा मन हलका हो गया। तेरा कोई

* इहाँ ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात, सूखे सकुचात सब, कहत पुकार हैं।
'जुग-षट भानु देखे, प्रलयकृसानु देखे, सेष-मुख-अनल बिलोके बार-बार हैं॥
'तुलसी' सुन्यो न कान सलिलु सर्पी-समान, अति अचिरिजु कियो केसरीकुमार हैं'।
बारिद-बचन सुनि धुने सीस सचिवन्ह, कहैं दससीस! 'ईस-बामता-बिकार हैं'॥ (कवितावली ५। २०)

अङ्ग जला तो नहीं?'

श्रीपवननन्दन तो माताका सहज स्नेह पाकर पुलकित हो गये थे। उन्होंने कहा—'माँ! जब आपका परम पावन अभयद कर-कमल मेरे मस्तकपर है, तब त्रिभुवनमें मेरा बाल भी बाँका कैसे हो सकता है? आपकी दयासे मेरे यहाँ आनेके उद्देश्यकी पूर्ति हो गयी। मैंने आपके चरणोंका दर्शन प्राप्त कर लिया, लंकाके रहस्य एवं राक्षसोंकी शक्तिसे मैं परिचित हो गया; साथ ही यहाँके प्रत्येक स्थलको भी मैंने अच्छी प्रकार देख लिया। अब आप कृपापूर्वक मुझे आज्ञा प्रदान करें, जिससे मैं प्रभुके चरणोंमें पहुँचकर आपका संदेश उन्हें सुना दूँ और सर्वसमर्थ करुणानिधान यथाशीघ्र लंकामें प्रवेश करके इन क्रूरतम असुरोंका संहार करें।'

माता वैदेहीके नेत्र बरस पड़े। उन्होंने अत्यन्त व्यथासे कहा—'बेटा! तुम्हारे यहाँ आनेसे मुझे सहारा मिल गया था। अब तुम भी जा रहे हो! तुम्हारे चले जानेके बाद मेरे लिये फिर वही दु:खके दिन और दु:खकी रात्रियाँ होंगी। पर यदि तुम थक गये हो तो एक दिन यहाँ किसी गुप्त स्थानमें ठहर जाओ। आज विश्राम करके कल चले जाना।'

अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक पवनकुमारने निवेदन किया—'माँ! प्रभुका कार्य सम्पन्न हुए बिना मुझे विश्राम कहाँ! आपका अमोघ आशीर्वाद मेरे साथ है। मैं जिस वेगसे यहाँ आया था, उसी वेगसे समुद्र पार कर जाऊँगा। वहाँ कोटि-कोटि वानर-भालू मेरी प्रतीक्षा करते होंगे। आपका समाचार पाकर उन सबके प्राण लौट आयँगे। फिर तो वानरी सेनाके साथ प्रभु यहाँ आयेंगे ही। आप दोनोंको दिव्य सिंहासनपर एक साथ विराजमान देखकर ही हमलोग सुखी होंगे।'

भगवती सीताने स्नेहपूर्वक पूछा—'बेटा! मेरे मनमें एक संदेह अभीतक बना हुआ है। मैं समझती हूँ, तीन ही प्राणियोंमें समुद्रको लाँघनेकी शक्ति है—तुममें, गरुडमें और पवनदेवतामें। फिर बड़े-बड़े वानरों और रीछोंके सहायक होनेपर भी महाबली सुग्रीव इस दुर्लङ्घ्य समुद्रको कैसे पार करेंगे? उनकी विशाल वाहिनीसहित सानुज प्रभु सागर कैसे लाँघ सकेंगे?'

हनुमानजीने विनयपूर्वक उत्तर दिया—'माता! बंदरोंकी शक्ति ही कितनी है! वे इस डालसे कूदकर उस डालपर चले जायँगे, बस! किंतु परमप्रभु श्रीरामकी अपरिसीम शक्तिसे सब सम्भव है। उनकी कृपाकी कोरसे अत्यन्त छोटा सर्प भी महाबली गरुडको खा सकता है; सर्वथा पङ्गु गगनस्पर्शी गिरिवरको लाँघनेमें समर्थ हो सकता है। उन मन-बुद्धिसे परे अचिन्त्य प्रभुके दर्शन कर समुद्र स्वयं मार्ग दे देगा। यदि उसने मार्ग देनेमें आनाकानी की तो उसे शुष्क कर देनेके लिये सुमित्राकुमारका एक ही शर पर्याप्त है। दूसरे, वानरराज सुग्रीव सहस्रों कोटि वानरोंसे घिरे हैं। उन शक्तिशाली कपिराजने आपके उद्धारकी प्रतिज्ञा कर ली है। उनके पास साधनोंका अभाव नहीं है। आप धैर्य रखें। अब मेरे स्वामी यहाँ यथाशीघ्र पहुँचकर आपका उद्धार करेंगे।'

श्रीअञ्जनानन्दवर्धनके उत्तरसे माताको संतोष हुआ। उन्होंने अवरुद्ध कण्ठसे हनुमानजीसे कहा—'बेटा! प्रभुके चरणोंमें मेरा प्रणाम निवेदन कर उन्हें मेरी दयनीय स्थिति बता देना और उनसे मेरी ओरसे बद्धाञ्जलि प्रार्थना करना कि वे तुरंत आयें। मैं प्रतिक्षण उन्हींकी प्रतीक्षा करती हुई जी रही हूँ; अवधि समाप्त होनेपर मेरे प्राण नहीं टिक सकेंगे।'

दु:खिनी माताके नेत्रोंसे आँसू बहते जा रहे थे। उन्हें पोंछ-पोंछकर वे धैर्यपूर्वक अपने प्राणनाथके लिये संदेश दे रही थीं—"बेटा! मेरे प्रिय देवर लखनलालसे कहना कि मुझसे अपराध हो गया; वे मुझे क्षमा कर दें। मेरा आशीर्वाद उन्हें देना। वानरराज सुग्रीव, जाम्बवान्, युवराज अङ्गद आदि सबको मेरा आशीर्वाद देना। उन सबसे कहना कि 'मैं आपलोगोंके साथ प्रभुके आगमनकी प्रतीक्षामें एक-एक पल बिता रही हूँ।'' इतना कहकर कमल-लोचना माता सीताने अञ्चलसे मुँह ढक लिया।

माताकी यह विवश अवस्था देखकर महावीर श्रीहनुमानका धैर्य जाता रहा। वे भी फफककर रो पड़े। बड़ी कठिनाईसे वे बोल सके—'माँ ! आप धैर्य धारण कीजिये; मेरे पहुँचते ही प्रभु यहाँके लिये प्रस्थित हो जायँगे।'

कुछ रुककर धैर्यपूर्वक हनुमानजीने कहा—'माता! प्रभुने जैसे आपके लिये अपनी मुद्रिका भेजी थी, उसी प्रकार आप भी मुझे अपना कोई चिह्न दे दें, जिसे मैं प्रभुको दिखा सकूँ।'

माता सीताने अपने केश-पाशसे चूड़ामणिको निकाला और उसे पवनकुमारको देते हुए कहा—"बेटा! इससे श्रीआर्यपुत्र और लक्ष्मण तुम्हारा विश्वास कर सकेंगे। उनके विश्वासके लिये मैं तुम्हें एक बात और बतला देती हूँ। तुम मेरे प्राणधनसे निवेदन कर देना—

'चित्रकूटपर्वतकी बात है। एक दिन मेरे जीवन-सर्वस्व एकान्तमें मेरी गोदमें सिर रखे सो रहे थे। उसी समय इन्द्र-पुत्र (जयन्त) काकवेषमें वहाँ आया और मांसके लोभसे उसने मेरे पैरके लाल-लाल अँगूठेको अपनी तीखी चोंच तथा पंजोंसे फाड़ डाला। निद्रासे उठते ही स्वामीने मेरे पैरका अँगूठा देखा तो व्याकुल होकर उन्होंने पूछा—'प्रिये! यह किस दुष्टकी करनी है?' और उसी समय उन्होंने सामने रक्तसे सनी चोंचवाले काकको बार-बार मेरी ओर आते देखा। फिर क्या था? क्रुद्ध प्रभुने एक तृण उठाया और उसपर दिव्यास्त्रका प्रयोग करके उस प्रज्वलित अस्त्रको लीलासे ही उस कौएकी ओर फेंक दिया।* भयभीत काक प्राण लेकर भागा। वह तीव्रतम गतिसे भागता हुआ जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ वह प्रज्वलित अस्त्र उसके पीछे लगा दीख पड़ता था। जयन्त इन्द्र और ब्रह्मादिके समीप गया, किंतु रामास्त्रके सम्मुख उसे किसीने आश्रय नहीं दिया। विवश होकर 'प्रभो! क्षमा करें। प्रभो! अपराध क्षमा हो'—कहता हुआ वह प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा। दयानिधान प्रभुने उससे कहा—'यह मेरा अस्त्र अमोघ है। अतएव तू अपनी एक आँख देकर चला जा।' उस काकने अपनी बायीं आँख दे दी और प्रभुसे बार-बार क्षमा-याचना करता हुआ वह चला गया। बेटा! उन अपरिसीम-अचिन्त्यशक्ति-सम्पन्न प्रभुसे कहना—'वे शीघ्र पधारें'।''

पवननन्दनने माताके चरणोंपर सिर रख दिया और कहा—'माँ! अब मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये।'

माताके नेत्र पुन: बरस पड़े। आँसू पोंछते हुए उन्होंने कहा—'बेटा हनुमान! जाओ, पर प्रभुके साथ शीघ्र लौटना। देर न करना। तुम्हारा सर्वविध मङ्गल हो!'

हनुमानजीने सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी जननीका आशीर्वाद प्राप्तकर मन-ही-मन श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उछलकर उत्तम अरिष्ट-गिरिपर चढ़ गये। उस शैलराजपर आरूढ हो वायुनन्दन कपिश्रेष्ठ श्रीहनुमानने अपना शरीर बहुत विशाल बना लिया। वे दक्षिणसे उत्तर दिशामें सागर पार करनेके लिये बड़े वेगसे उछले। हनुमानजीके पैरोंका दबाव पड़नेके कारण तीस योजन ऊँचा और दस योजन चौड़ा वह शोभाशाली महीधर वृक्षों और ऊँचे शिखरोंसहित तत्काल धरतीमें धँस गया।

अरिष्ट-गिरिसे उछलकर आकाशमें पहुँचते ही महाबली वज्राङ्ग श्रीहनुमानने भयानक गर्जना की, जिससे दिशाएँ थर्रा उठीं, आकाश जैसे फट गया, मेघ तितर-बितर हो गये, समुद्र उछलने लगा, गिरि-शृङ्ग टूट-टूटकर गिरने लगे और समूची लंका हिल उठी। असुरोंने समझा कि भूकम्प आया है। वीर राक्षस जहाँ थे, वहीं काँपकर गिर पड़े। गर्भवती राक्षसियोंका गर्भपात हो गया। सभासदोंसहित स्वयं दशग्रीव भी सिंहासनसे नीचे लुढ़क पड़ा। उसके बहुमूल्य मुकुट सिरसे खिसककर नीचे गिर गये। इस अपशकुनकी असुरोंमें सर्वत्र चर्चा होने लगी। सबमें भय और आतङ्क व्याप्त हो गया।

समुद्रके मध्यमें पर्वतराज सुनाभ (मैनाक)-को स्पर्श कर अत्यन्त वेगशाली पवनकुमार धनुषसे छूटे हुए वाण-तुल्य सागरके उत्तरी तटके समीप पहुँचे। महेन्द्रपर्वतपर दृष्टि पड़ते ही उन्होंने गम्भीर स्वरमें बार-बार गर्जना की।

समुद्रके इस ओर

लंका-दाहक कपीश्वरके सिंहनादको सुनकर समुद्रके उत्तरतटवर्ती कोटि-कोटि वानर-भालू प्रसन्नतासे किलकारी मारते हुए उछलने-कूदने लगे। उन्हें विश्वास हो गया कि हनुमानजी माता सीताके दर्शन कर वापस लौट रहे हैं। शूरवीर महाबली वानर और भालुओंका समुदाय उत्तर तटपर बैठा हुआ कन्दर्प-कोटि-लावण्य श्रीरामदूतकी अपलक नेत्रोंसे प्रतीक्षा कर रहा था। कपिप्रवर श्रीमारुतात्मजका सिंहनाद समझकर उन्हें देखनेकी इच्छासे वीर वानर-भालू एक वृक्षसे दूसरे वृक्षोंपर तथा एक शिखरसे दूसरे शिखरोंपर कूदने लगे। कुछ वानर सर्वोच्च गिरि-शिखरोंपर चढ़कर अतिशय प्रीति-पूर्वक स्पष्ट दिखायी देनेवाले वस्त्र हिलाने लगे। उसी

---

* यह प्रसङ्ग 'अध्यात्मरामायण' (५। ३)-के आधारपर लिखा गया है। श्रीरामचरितमानसमें यह इस प्रकार है—

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥ सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥
सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा॥ जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा॥
सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा॥ चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना॥
(३। ०। २—४)

समय परम वेगशाली बृहत्काय हनुमानजी महेन्द्रगिरिके शिखरपर उतरे।

× × ×

गो-द्विज-हितकारी परमप्रभु पाप-तापके निवारण, धर्मकी स्थापना एवं उसके अभ्युदयके लिये प्रत्येक युगमें अवतार धारण करते हैं। उन प्रभुकी मधुर एवं मङ्गलमयी लीलाएँ आश्चर्यजनक होती हैं; किंतु उनसे सम्पूर्ण धराका परम हित होता है। आनन्दरामायणमें भगवान् श्रीरामके किसी कल्पकी अवतार-लीलामें पवनपुत्रकी एक अद्भुत कथा उपलब्ध होती है, जो संक्षेपमें इस प्रकार है—

दशग्रीवकी सोनेकी लंका फूँककर श्रीकेसरीकिशोर जगज्जननी जानकीके समीप पहुँचे। उन्होंने माताके चरणोंमें प्रणाम निवेदन कर कहा—'माँ! आप मेरे कंधेपर बैठ जायँ। मैं आज ही समुद्र पार कर आपको प्रभुके दर्शन करा देता हूँ।'

वैदेहीने उत्तर दिया—'बेटा हनुमान! मेरे अनुपम शूर-वीर प्राणनाथको यह स्वप्नमें भी सह्य न होगा कि मुझे अन्य कोई मुक्त कर ले जाय। रावण-वध एवं मेरा उद्धार उन्हींके कर-कमलोंसे होनेमें उनकी और मेरी शोभा है। इससे तुम्हारे स्वामीकी कीर्ति भी बढ़ेगी। तुम यह चूड़ामणि और मुद्रिका ले जाकर प्रभुको दे देना और उनसे प्रार्थना करना कि वे यहाँ पहुँचनेमें तनिक भी विलम्ब न करें।'

श्रीआञ्जनेयने मातृ-प्रदत्त चूड़ामणि और मुद्रिका अत्यन्त आदरपूर्वक ले ली और माताके परम पावन पाद-पद्मोंमें प्रणाम कर लौट पड़े। हनुमानजी उछलकर समुद्र-तटवर्ती गिरि-शिखरपर चढ़ गये। पर्वत उनका वेग सह न सका, चूर्ण हो गया। उसी समय लोकपितामहने श्रीपवनात्मजके द्वारा लंकादाहके विस्तृत विवरणसे पूर्ण एक पत्र श्रीरामको देनेके लिये हनुमानजीको दिया। श्रीरामदूत चतुराननका पत्र एवं माता जानकीकी चूड़ामणि और मुद्रिका लेकर समुद्रके ऊपर वेगपूर्वक उड़ते हुए चले। वे भयानक सिंहनाद करते जा रहे थे।

उत्तर दिशामें समुद्रके पार जानेपर वे नीचे उतरे। वहाँ उन्होंने भजन करते हुए एक मुनिको देखा। हनुमानजीने उन विरक्त मुनिसे कहा—"मुनिवर! मैं भगवान् श्रीरामके आदेशानुसार उनकी प्राणप्रिया जनकदुलारीका पता लगाकर समुद्र-पारसे आ रहा हूँ। मैं तृषाधिक्यसे व्याकुल हूँ। कृपया कोई जलाशय बताइये।'

तपस्वी मुनिने जप करते हुए अपनी तर्जनी अँगुलीसे जलाशयकी ओर संकेत कर दिया।

जब हनुमानजी तपस्वी मुनिको अपनी लंका-यात्राका विवरण सुना रहे थे, तब अपनी उपलब्धियोंकी स्मृतिसे उनके हृदयमें बड़प्पनकी भावनाका स्फुरण हो आया। भगवान् ठहरे भक्त-गर्वापहारी! वे श्रीहनुमान-जैसे आदर्श सेवकके हृदयमें बड़प्पनकी भावनाका सूक्ष्म-से-सूक्ष्म स्फुरण भी कैसे सहन कर सकते थे! तत्काल उन्होंने उसके प्रशमनकी व्यवस्था कर दी।

श्रीपवनपुत्र चूड़ामणि, अँगूठी और विधाता-प्रदत्त पत्र जप करते हुए मुनिके समीप रखकर तृषा शान्त करनेके लिये जलाशयकी ओर चले गये। उसी समय मुनिके समीप उछलता-कूदता एक बंदर आया। उसने उस मुद्रिकाको उठाकर साधुके समीप रखे हुए कमण्डलुमें डाल दिया और फिर वहाँसे चला गया।

जल ग्रहण कर हनुमानजी लौटे। उन्होंने चूड़ामणि और पत्रके साथ मुद्रिका न देखकर मुनिसे पूछा—'मुनिनाथ! वह मुद्रिका क्या हुई?'

मुनिने कमण्डलुकी ओर संकेत किया। हनुमानजीने कमण्डलुमें हाथ डाला तो एक ही साथ उसी आकार-प्रकार एवं रूप-रंगकी श्रीराम नामाङ्कित शत-शत मुद्रिकाएँ निकल आयीं। श्रीपवनपुत्रने पुनः कमण्डलुमें हाथ डाला। फिर वैसी ही सैकड़ों मुद्रिकाएँ निकलीं। उन्होंने कमण्डलुसे सहस्रों अँगूठियाँ निकालीं, पर कमण्डलुकी अँगूठियाँ समाप्त ही नहीं हो रही थीं। उनकी लायी हुई अँगूठी कौन-सी थी, महावीर अञ्जनानन्दवर्धन समझ न सके। उनके आश्चर्यकी सीमा न रही।

चकित श्रीपवननन्दनने मुनिसे पूछा—'मुनिराज! इतनी मुद्रिकाएँ कहाँसे आयीं और इनमें मेरे द्वारा लायी हुई मुद्रिका कौन-सी है?'

वयोवृद्ध मुनिने उत्तर दिया—'प्रत्येक अवतारमें श्रीसीताहरणके उपरान्त जब-जब श्रीराघवेन्द्र सरकारने पवनकुमारको उनका पता लगानेके लिये भेजा है, तब-तब हनुमानने लंकामें सीतासे मिलकर यहाँ अँगूठियाँ रखी हैं और बंदरोंने उनको उठाकर इस कमण्डलुमें डाल दिया है। इनमें तुम अपनी अँगूठी पहचानकर ले लो।'

हनुमानजीका गर्वाङ्कुर नष्ट हो गया। आश्चर्यचकित हनुमानजीने मुनिसे पूछा—'मुनीश्वर! आजतक कितनी बार श्रीरामने अवतार ग्रहण किया है?'

मुनिने उत्तर दिया—'कमण्डलुसे मुद्रिकाएँ निकाल-कर गिन लो।'

हनुमानजी अञ्जलि भर-भरकर अँगूठियाँ निकालने लगे, किंतु उनका अन्त नहीं हुआ। उन्होंने मुनिके

चरणोंमें प्रणाम किया और फिर मन-ही-मन कहने लगे—'भगवान् श्रीरामकी लीला, गुण एवं शक्तिका अन्त नहीं। उनके अवतारोंकी भी संख्या नहीं। मेरे पूर्व भी प्रभु श्रीरामकी आज्ञासे सहस्रों हनुमान माता सीताका पता लगा चुके हैं, फिर मेरी क्या गणना है।'

गलित-अभिमान आञ्जनेयने मन-ही-मन श्रीसीतारामके चरणोंमें प्रणाम किया। × × × फिर हर्षोन्मत्त श्रीहरांशज पर्वत-शिखरसे पृथ्वीपर कूद पड़े। उन्हें देखते ही वानरोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया।

'मैंने माता सीताके दुर्लभ चरणोंका दर्शन और स्पर्श प्राप्त कर लिया!'—पवनकुमारने इतना कहा ही था कि जाम्बवान्‌ने उन्हें वक्षसे लगा लिया। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये। उन्होंने गद्गद-कण्ठसे कहा—'पवनपुत्र! तुमने हम सबके प्राणोंकी रक्षा कर ली!'

माता सीताका पता लग जानेके संवादसे वानर प्रसन्नतासे किलकारी मारते हुए कूदने लगे। हर्षातिरेकके कारण बहुत-से वानर अपनी पूँछ ऊपर उठाकर नाचने लगे। कितने ही अपनी लंबी और मोटी पूँछें घुमाने लगे। कुछ वानर हनुमानजीकी पूँछ चूमने लगे और कुछ उनके सम्मुख विविध प्रकारके मधुर फल-मूल रखकर उन्हें सुख पहुँचानेके लिये अनेक प्रकारसे उनकी सेवा करने लगे। हनुमानजीने किसीके चरणोंमें प्रणाम किया तो किसीका आलिङ्गन किया, किसीके सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया तो किसीकी पीठ ठोंककर उसकी प्रशंसा की। समर्थ श्रीरुद्रांश कुछ ही क्षणोंमें समस्त वानर-भालुओंसे मिल लिये।

शोकहर श्रीकपिसत्तमसे भगवती सीताके दर्शन, रावणसे वार्तालाप एवं लंका-दाहका समाचार सुनकर प्रसन्नतासे उल्लसित युवराज अङ्गदने हनुमानजीसे कहा—'वानरश्रेष्ठ! बल और पराक्रममें तुम्हारे समान कोई नहीं है; क्योंकि तुम इस विशाल समुद्रको लाँघकर फिर इस पार लौट आये। कपिशिरोमणे ! एकमात्र तुम्हीं हमलोगोंके जीवनदाता हो। तुम्हारे प्रसादसे ही हम सब लोग सफल-मनोरथ होकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिलेंगे। अपने स्वामी श्रीरघुनाथजीके प्रति तुम्हारी भक्ति अद्भुत है। तुम्हारा पराक्रम और धैर्य भी आश्चर्यजनक है!* अत्यन्त सौभाग्यकी बात है कि तुमने परम सती वैदेहीका दर्शन प्राप्त कर लिया। अब इस सुखद संवादसे श्रीराघवेन्द्रका वियोग-जनित शोक भी दूर हो जायगा।'

फिर जाम्बवान् एवं युवराजके परामर्शसे यशस्वी हनुमानसहित समस्त वानर-समुदाय भगवान् श्रीरामको सुखदायक समाचार सुनाने कपिराज सुग्रीवके पास चल पड़ा। हनुमानजी आगे-आगे चले और उनके पीछे प्रसन्नतामें भरा हुआ वानरोंका विशाल समुदाय उछलता-कूदता चलने लगा। उस समय सिद्ध आदि भूतगण अत्यन्त वेगशाली महाबली बुद्धिमान् पवननन्दनकी ओर अपलक नेत्रोंसे देखते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे।

आकाशमें छलाँग मारते हुए हर्षोन्मत्त वानर-भालू स्वर्गके नन्दनवनके तुल्य मनोहर मधुवनके समीप पहुँचे। किष्किन्धाधिपति सुग्रीवके मधुवनकी रक्षा उनके मामा महाबली दधिमुख नामक वानर सदा किया करते थे। उस मनोरम वनको देखकर वानर-समुदाय मधु पीने एवं फल खानेके लिये लालायित हो उठा। हर्षोन्मत्त वानरोंने इसके लिये युवराज अङ्गदसे आज्ञा माँगी। उन्होंने वृद्ध जाम्बवान्‌से पूछा। जाम्बवान् एवं महावीर श्रीहनुमानके अनुमोदनसे युवराजने उन्हें आज्ञा दे दी।

फिर क्या था? प्रसन्नतासे भरे हुए पिङ्गल वर्णवाले वानर मधुवनके सुगन्धित फल-मूलोंका भक्षण एवं मधुका पान करने लगे। वानर मधु पीकर मत्त हो गये। माता सीताका संवाद प्राप्त होनेकी प्रसन्नतासे मधुमत्त वानरोंकी बड़ी विचित्र स्थिति थी। आनन्दमग्न होकर कोई गाते, कोई हँसते, कोई नाचते, कोई गिरते-पड़ते, कोई जोरसे चलते, कोई उछलते-कूदते और कोई प्रलाप करते हुए मधु पीते तथा बचा हुआ मधु फेंक देते। कोई फलोंसे लदे वृक्षोंकी डालियाँ तोड़ते और कुछ मदमत्त वीर वानर समूचा वृक्ष ही उखाड़ फेंकते। इस प्रकार अत्यन्त रमणीय मधुवन तहस-नहस होने लगा।

दधिमुख और अन्य रक्षक दौड़े। युवराज अङ्गद और हनुमानकी आज्ञासे मधु पीकर मतवाले वानर उलटे रक्षकोंको ही डाँटने लगे। इतना ही नहीं, उन्होंने मधुवनके रक्षकोंको मारना-पीटना भी प्रारम्भ कर दिया।

विवशत: दधिमुखने वानरराज सुग्रीवके समीप जाकर निवेदन किया—'राजन् ! आपने जिस सुन्दरतम मधुवनकी चिरकालसे रक्षा की है, उसे अङ्गद और हनुमानजीकी

* सत्त्वे वीर्ये न ते कश्चित् समो वानर विद्यते॥
यदवप्लुत्य विस्तीर्णं सागरं पुनरागत:। जीवितस्य प्रदाता नस्त्वमेको वानरोत्तम॥
त्वत्प्रसादात् समेष्याम: सिद्धार्था राघवेण ह। अहो स्वामिनि ते भक्तिरहो वीर्यमहो धृति:॥ (वा० रा० ५।५७।४५—४७)

आज्ञासे वानरोंने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने रक्षकोंको बुरी तरह मारा-पीटा भी है।'

सुग्रीवके हर्षकी सीमा न रही। उन्होंने दधिमुखसे कहा—'मामाजी ! निश्चय ही हनुमानजी माता सीताका दर्शन कर चुके हैं, अन्यथा मधुवनके फल खाने और मधु पीनेका साहस वानरोंमें नहीं होता। युवराज ऐसी आज्ञा कदापि नहीं देते। मधुवन युवराजका ही है। आप उन्हें क्षमा कर दें।'

भगवान् श्रीरामने सुग्रीवसे पूछा—'राजन्! तुम यह सीता-सम्बन्धी क्या बात कर रहे थे?' सुग्रीवने विनयपूर्वक उत्तर दिया—'प्रभो ! लगता है, हनुमानजी माता सीताका दर्शन प्राप्त कर चुके हैं; अन्यथा वे लोग मधुवनके फल खाने और उसे तहस-नहस करनेका साहस नहीं कर सकते थे।'

सुग्रीवने दधिमुखसे कहा—'मामाजी! आप जाकर उन लोगोंसे कह दें कि वे माता सीताका समाचार सुनानेके लिये प्रभु-चरणोंमें यथाशीघ्र उपस्थित हों।'

दधिमुख चले गये। भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणके मुखपर प्रसन्नताकी लहर देखकर वानरराज सुग्रीव भी आनन्दमग्न हो गये।

श्रीहनुमानका परम सौभाग्य

महाबली दधिमुखके द्वारा वानरराज सुग्रीवका आदेश प्राप्त होते ही महामति जाम्बवान्, युवराज अङ्गद और श्रीहनुमानजी विशाल वानर-समुदायके साथ आकाशमें उड़ चले।

उस समय प्रस्रवणगिरिके शिखरपर श्रीराघवेन्द्रकी पर्णकुटी थी। प्रभु भाई लक्ष्मणके साथ कुटियाके बाहर स्फटिकशिलापर आसीन थे। समीप ही वानरराज सुग्रीव बैठे थे।

दूरसे ही प्रसन्न वानर-समूहोंके साथ अङ्गदको आकाशमार्गसे उड़ते हुए आते देखकर वानरराज सुग्रीवने कमल-नयन श्रीराघवेन्द्रसे कहा—'प्रभो! धैर्य धारण कीजिये। निस्संदेह पवननन्दनने श्रीसीतादेवीका पता लगा लिया है; अन्यथा अवधि समाप्त हो जानेपर युवराज इतने उल्लाससे नहीं लौटते। मतिसत्तम! इस कार्यको सिद्ध करनेमें हनुमानजीके सिवा और कोई कारण बना हो, ऐसा सम्भव नहीं है। वानरशिरोमणि हनुमानजीमें ही कार्य-सिद्धिकी शक्ति और बुद्धि है। उन्हींमें उद्योग, पराक्रम और शास्त्र-ज्ञान भी प्रतिष्ठित हैं।'*

इस प्रकार वानरराज सुग्रीव परम बुद्धिमान् रघुनन्दनको धैर्य बँधा ही रहे थे कि अङ्गद और हनुमानको आगे करके हर्षातिरेकसे सिंहनाद करते हुए वीर वानरोंका समुदाय निकट आ गया। उन्हें देखकर सुग्रीवने प्रसन्नतापूर्वक अपनी पूँछ ऊपर उठा दी।

अङ्गदादि वीर श्रीरघुनाथजीको देखकर हर्षोल्लासपूर्वक आकाशसे नीचे उतर आये। समस्त वानरोंने सानुज श्रीराम एवं सुग्रीवके चरणोंमें प्रणाम किया और पवनकुमार हनुमानजी दौड़कर राघवेन्द्रके भुवन-पावन चरण-कमलोंमें लेट गये! प्रभुके दर्शन कर उनके आनन्दकी सीमा न रही। उन्होंने कहा—'स्वामी! माता सीता सतीत्वके कठोर नियमोंका पालन करती हुई शरीरसे सकुशल हैं।'

'मैंने जगज्जननी जानकीका दर्शन किया है'—हनुमानजीके इस वचनसे श्रीराम, लक्ष्मण और किष्किन्धाधिपति सुग्रीवकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। श्रीरघुनाथजीने अतिशय प्रीति और आदरपूर्वक हनुमानजीकी ओर देखा। हनुमानजी प्रभु-चरणोंमें पुनः-पुनः प्रणाम कर, सुमित्रानन्दन एवं सुग्रीवको भी प्रणाम कर हाथ जोड़े परमप्रभुके मुखारविन्दकी ओर अपलक दृष्टिसे देखने लगे।

भगवान् श्रीरामने हनुमानजीसे पूछा—'वायुनन्दन! देवी सीता कहाँ हैं? वे कैसे हैं? मेरे प्रति उनका कैसा भाव है? तुम विदेहकुमारी सीताका पूरा समाचार सुनाओ।'

श्रीपवनकुमारने पहले दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके माता सीताके उद्देश्यसे श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्होंने अत्यन्त नम्रतापूर्वक निवेदन किया—'करुणामय प्रभो! सौ योजन विस्तृत समुद्रके पार दुरात्मा दशाननकी नगरी लंका समुद्रके दक्षिण-तटपर बसी हुई है। उस राक्षस-पुरीमें मैंने माता सीताको अशोक-वाटिकामें अशोक-तरुके नीचे अत्यन्त व्यथित अवस्थामें आपका निरन्तर स्मरण करते हुए देखा है। प्रभो! आपके वियोगमें जलहीन मीनकी भाँति छटपटानेवाली माता सीताका दुःख न कहनेमें ही भला है!'

श्रीआञ्जनेयके ये वचन सुन राघवेन्द्र अधीर हो

* नह्यन्यः कर्मणो हेतुः साधनेऽस्य हनूमतः। हनूमतीह सिद्धिश्च मतिश्च मतिसत्तम॥
व्यवसायश्च शौर्यं च श्रुतं चापि प्रतिष्ठितम्। (वा० रा० ५। ६४। ३३-३४)

उठे। उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। पवनपुत्रके नेत्र भी अश्रुपूरित थे, पर अपने अश्रुओंको रोककर वे माताका संदेश कहते जा रहे थे—'माता सीता इस समय अत्यन्त दु:खके दिन व्यतीत कर रही हैं। उन्हें दुष्ट दशाननने अशोक-वाटिकामें रोक रखा है और क्रूर राक्षसियाँ वहाँ रात-दिन पहरा दिया करती हैं। उनके शरीरपर एक मैली साड़ी है और उनके सुन्दर केश उलझकर जटाकी तरह बन गये हैं। इस प्रकार एक वेणी धारण किये वे सतत आपकी चिन्तामें डूबी रहती हैं। माता जानकी नीचे पृथ्वीपर सोती हैं। वे अन्न-जल छोड़ देनेके कारण अत्यन्त कृश-काय हो गयी हैं और शोकसे निरन्तर 'हा राम', 'हा राम' कहती रहती हैं। इस प्रकार माता सीताको मैंने आपकी भक्तिसे प्रेरित कठोर तपस्या करते एवं दु:सह कष्ट सहते देखा है। प्रभो! चलते समय माताने आपके विश्वासके लिये अपनी चूड़ामणि दी है। साथ ही उन्होंने चित्रकूटमें (इन्द्रपुत्र जयन्त) कौएकी घटनाका स्मरण कराते हुए कहा है कि 'स्वामी! इतनी महान् शक्तिके रहते हुए भी आप मौन क्यों हैं? मेरा अपराध क्षमा कर शीघ्र मेरा उद्धार करें।'

हनुमानजीके वचन सुनकर रघुनाथजीके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे सीताजीद्वारा प्रदत्त चूड़ामणिको हृदयसे लगाकर सुग्रीवसे कहने लगे—'मित्र! इस चूड़ामणिको देखकर मेरा हृदय द्रवित हो रहा है। यह सुरपूजित मणि जलसे प्रकट हुई थी और किसी यज्ञमें संतुष्ट होकर सुरेन्द्रने इसे मेरे श्वशुर राजा जनकको दिया था। इस मणिरत्नको उन्होंने विवाहके अवसरपर सीताको दिया, जो सदा मेरी प्रिया सीताके सीमन्तपर सुशोभित होती रही।'

श्रीपवनकुमारके द्वारा अपनी प्राणप्रिया सीताका समाचार पाकर प्रभुने अत्यन्त प्रसन्नतासे कहा—'हनुमान! तुमने जो कार्य किया है, वह देवताओंके लिये भी दुष्कर है, मैं नहीं जानता कि इसके बदले तुम्हारा क्या उपकार करूँ? पुत्र! मैंने मनमें खूब विचार करके देख लिया कि मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता।* तथापि लो, मैं अभी तुम्हें अपना सर्वस्व सौंपता हूँ।'

इतना कहकर करुणावतार परमप्रभु श्रीरामने पवित्रात्मा हनुमानजीको अपनी दोनों भुजाओंमें खींचकर अपने हृदयसे लगाते हुए कहा—'संसारमें मुझ परमात्माका आलिङ्गन मिलना अत्यन्त दुर्लभ है, वानरश्रेष्ठ ! तुम्हें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है; अत: तुम मेरे परमभक्त और प्रिय हो।'†

भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त श्रीमहादेवात्मजकी कामनापूर्ति हुई। उनके वानर-शरीर-धारणका उद्देश्य पूरा हो गया। वे आनन्दमग्न होकर प्रभुके चरण-कमलोंपर गिर पड़े। अधीर होकर उन्होंने बार-बार प्रार्थना की—'प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये!'

भक्तवत्सल प्रभु श्रीरामने हनुमानजीसे पूछा— 'हनुमान! तुम विशाल समुद्र लाँघकर लंकामें कैसे पहुँचे? वहाँ तुम देवी सीतासे कैसे मिले और उन्होंने क्या कहा? लंकाधिपति रावणका दुर्ग और उसकी शक्ति कैसी है? यह तुम मुझसे विस्तारपूर्वक कहो।'

लंका-यात्राका विवरण

प्रभुके मुखारविन्दकी ओर निहारते हुए हाथ जोड़े विनीतात्मा पवनपुत्रने कहा—"प्रभो! मैं सर्वथा पशु, और उसमें भी तुच्छ चञ्चल वानर हूँ। मुझमें विद्या, बुद्धि और शक्ति ही कितनी है! किंतु आपके प्रतापसे तो रूई भी बड़वाग्निको जला सकती है। इसी प्रकार किष्किन्धाधिपतिके आदेशसे माता जानकीके दर्शनार्थ मैं खेल-खेलमें ही उछला और आकाशमें उड़ता हुआ लंकाके सागर-तटपर पहुँच गया। वहाँ राक्षसोंकी दृष्टिसे बचनेके लिये रात्रिमें सूक्ष्मरूपसे माता जानकीको ढूँढ़ने लगा। दशाननकी प्रिय अशोक-वाटिकामें अशोक वृक्षके तले शोकमग्ना माताके दर्शन कर मैं अधीर हो गया। मैं वृक्षपर पत्तोंमें छिपकर बैठा ही था कि वहाँ क्रूर दशानन आ पहुँचा। उसने सतीत्वकी प्रज्वलित मूर्ति वियोगिनी माताको वशमें करनेके लिये उन्हें बहुत डराया-धमकाया; किंतु जब माताने उसे कुत्तेकी तरह दुत्कार दिया, तब वह अधम राक्षस माताको मारने दौड़ा। अपनी प्रिया मन्दोदरीके समझानेसे वह एक मासकी अवधि देकर वहाँसे चला गया। राक्षसियोंने भी माताको बहुत डराया। उन राक्षसियोंके चले जानेपर माताजी असह्य दु:खके कारण प्राण त्याग देनेके लिये प्रस्तुत हो गयीं।

* सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥ (मानस ५। ३१। ३-४)

† परिरम्भो हि मे लोके दुर्लभ: परमात्मन:। अतस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुंगव॥ (अ० रा० ५। ५। ६३)

"उस समय मैंने वृक्षके पत्तोंमें छिपे-छिपे आपके जन्मसे लेकर दण्डकारण्यमें जाने, सीता-हरण, सुग्रीवसे मैत्री, वाली-वध आदिकी संक्षिप्त कथा सुनाते हुए कहा कि 'किष्किन्धाधिपति सुग्रीवने आपका पता लगानेके लिये चारों दिशाओंमें करोड़ों वानरोंको भेजा है। मैं भी उन्हींका भेजा हुआ हूँ। आज आपका दर्शन प्राप्तकर कृतार्थ हो गया।'

"मेरे मुखसे आपकी मधुर लीला-कथा सुनकर माताने कहा—'जिन्होंने मुझे यह अमृत-तुल्य संवाद सुनाया है, वे मेरे सामने प्रकट क्यों नहीं होते?'

"मैंने नीचे उतरकर माताके चरणोंमें प्रणाम किया। मुझ वानरको देखकर पहले तो वे सहम गयीं, परंतु मैंने उन्हें क्रमशः सब बातें बतलायीं। इसके बाद मैंने आपकी मुद्रिका उन्हें दी, तब माताके मनमें मेरे प्रति विश्वास उत्पन्न हुआ।

"क्रूरतम रावणके यहाँ दुष्टा राक्षसियोंके बीच अत्यन्त कष्टपूर्वक जीवन व्यतीत करनेवाली वियोगिनी जननी पुत्रको देखकर रो पड़ीं। उन्होंने कहा—'बेटा! जिस प्रकार इन राक्षसियोंके द्वारा मैं अहर्निश सतायी जा रही हूँ, वह मेरे प्राणनाथको बता देना।'

"मैंने उन्हें अनेक प्रकारसे धैर्य बँधाया और कहा—'माँ! बस, मेरे प्रभुके समीप पहुँचनेकी ही देर है। अमित शक्ति-सम्पन्न श्रीराघवेन्द्र आपका संवाद पाते ही यहाँ पहुँचकर इस असुर-कुलका विध्वंस कर देंगे।'

"रोती हुई माता जानकीने अत्यन्त करुणापूर्वक आपके शीघ्र आनेकी प्रार्थना करते हुए लक्ष्मणके लिये कहा कि 'लक्ष्मण! तुम्हें मैंने अज्ञानवश कुछ कठोर वचन कह दिया था, उसके लिये तुम मुझे क्षमा करना और श्रीरघुनाथजीके साथ शीघ्र आकर मेरी रक्षा करना; अन्यथा एक मासके उपरान्त मैं जीवित नहीं रहूँगी।'

"इतना कहकर माता सीता रोने लगीं। उन्होंने वानरराज सुग्रीव, महामति जाम्बवान्, युवराज अङ्गद तथा समस्त वानरोंको आशीर्वाद देते हुए सबसे शीघ्र लंका पहुँचकर राक्षसोंको नष्ट करनेकी प्रार्थना की है।"

श्रीपवननन्दनके द्वारा भगवती जानकीका समाचार सुनकर श्रीराम अत्यन्त व्याकुल हो गये। लक्ष्मणके नेत्र बरसने लगे और समस्त वानरोंके भी नेत्र भर आये, पर हनुमानजी धैर्यपूर्वक कहते ज़ा रहे थे—'माताकी आज्ञासे मैं अशोक-वाटिकाके फल खाने चला, पर रावणसे मिलनेकी इच्छासे मैंने वह मनोरम वाटिका विध्वंस कर दी। रावणके पुत्र अक्षकुमारके साथ सहस्रों असुरोंको मारनेके बाद मैं इन्द्रजित्के ब्रह्मपाशमें बँधकर रावणके सम्मुख पहुँचाया गया। वहाँ उस दुष्टने दण्डस्वरूप मेरी पूँछ जलानेका आदेश दे दिया। बस, आपकी कृपासे सारी लंका जल गयी।'

भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव, महामति जाम्बवान्, अङ्गद, द्विविद, मैन्द, पनस, नल और नील आदि महान् वानरगण लंकामें घटित हुई घटनाओंको ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। हनुमानजी सहसा श्रीराघवेन्द्रके चरणोंपर गिर पड़े और बोले—'प्रभो ! यह सब कुछ मैंने नहीं किया है। अन्तर्यामी स्वामी ! मेरे अन्तरमें प्रविष्ट होकर अपनी शक्तिसे आपने जो लीला करायी है, मैं वही निवेदन कर रहा हूँ।'

हनुमानजी आगे कहने लगे—"करुणामय स्वामी! वहाँ मैंने त्रिकूटपर्वतपर बसी हुई दिव्य लंकापुरी देखी। उस पुरीके चारों ओर चार लंबे-चौड़े द्वार हैं। उनमें अत्यन्त मजबूत किवाड़ और मोटी-मोटी अर्गलाएँ लगी हैं। उन द्वारोंपर अत्यन्त विशाल एवं शक्तिशाली यन्त्र लगे हैं, जो वाण और पत्थरोंके गोलोंकी वर्षा करते हैं। उनके द्वारा लंकामें प्रविष्ट होना अत्यन्त कठिन है। पुरीके चतुर्दिक् सोनेका परकोटा है, जिसे तोड़ना अत्यन्त दुष्कर है। उसमें मणि, मूँगे, नीलम और मोतियोंका काम किया गया है। परकोटोंके चारों ओर ग्राह और विशाल मत्स्यपूरित अगाध जलवाली खाइयाँ हैं। उन चारों द्वारोंके सम्मुख खाइयोंपर लकड़ीके ऐसे यन्त्रमय विशाल एवं सुदृढ़ पुल बने हैं, जिनपर शत्रुसेनाके आते ही उसे यन्त्रोंद्वारा खाइयोंमें एवं चारों ओर फेंक दिया जाता है। लंकापर आक्रमण करनेका कोई मार्ग नहीं है। उसके चारों ओर दुर्गम नदी, पर्वत, वन, खाई और सुदृढ़ परकोटा आदि हैं। लंका विस्तृत समुद्रके दक्षिण तटपर बसी है। अतएव लक्ष्यका किसी प्रकार पता न मिल सकनेके कारण वहाँ जलयानसे जाना भी बड़ा कठिन है।

"लंकाके पूर्व द्वारपर दस सहस्र प्रचण्ड वीर राक्षस रहते हैं। उसके दक्षिण द्वारपर चतुरङ्गिणी सेनाके साथ एक लाख राक्षस योद्धा, पश्चिम द्वारपर दस लाख राक्षस और उत्तर द्वारपर दस करोड़ राक्षस तथा मध्यभागकी छावनीमें सैकड़ों सहस्र दुर्जय वीरवर निशाचर रहते हैं। हाथी, घोड़े, खाइयों और शतघ्नियों आदिसे दुष्ट दशाननकी लंका सुरक्षित है, किंतु आपकी कृपा-शक्तिसे मैंने प्रायः सारी कठिनाइयाँ समाप्त कर दी हैं—लंकाके सुदृढ़ द्वार नष्ट कर दिये, खाइयाँ पाट दीं,

परकोटोंको धराशायी कर दिया, विशालकाय राक्षसी सेनाका चतुर्थांश नष्ट कर दिया और समूची लंका फूँककर राख कर दी है। रावणके नागरिकों एवं उसके सैनिकोंमें ही नहीं, स्वयं उसके मनमें भी आपका भय और आतङ्क व्याप्त हो गया है। असुर-सैन्यका मनोबल तो समाप्त ही हो गया है। अतएव अब अविलम्ब शत्रुपर आक्रमण करना ही उचित प्रतीत होता है।''

दु:खशमन महावीर हनुमानजी सारा संवाद सुनाकर नव-नीरद-वपु प्रभु श्रीरामके मुखारविन्दकी ओर अपलक दृष्टिसे देखने लगे। हनुमानजीके वचन सुन प्रभुने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'हनुमानने जो कार्य किया है, उसका करना देवताओंके लिये भी कठिन है! पृथ्वीतलपर और कोई तो उसका मनसे भी स्मरण नहीं कर सकता। भला, ऐसा कौन है, जो सौ योजन विस्तारवाले समुद्रको लाँघने और राक्षसोंसे सुरक्षित लंकापुरीका ध्वंस करनेमें समर्थ हो? हनुमानने सुग्रीवके सेवक-धर्मको खूब निभाया। संसारमें ऐसा न कोई हुआ और न आगे होगा ही। उसने जानकीजीका पता लगाकर आज मुझको तथा रघुवंश, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि सभीको बचा लिया है।'*

इसके बाद सीतापति श्रीरामने किष्किन्धाधिपतिसे कहा—'मित्रवर सुग्रीव! इस समय विजय नामक मुहूर्त व्यतीत हो रहा है, अतएव तुम समस्त सैनिकोंको इसी समय प्रस्थान करनेके लिये आदेश प्रदान करो। इस मुहूर्तमें यात्रा करके मैं निश्चय ही समस्त राक्षसोंसहित दुर्जय दशाननको नष्ट करके देवी सीताको ले आऊँगा।'

फिर क्या था? सुग्रीवने तुरंत किष्किन्धाके शासन-प्रबन्धकी व्यवस्था की और अत्यन्त उल्लासपूर्वक उन्होंने समस्त यूथपतियों एवं वानरोंको कूच करनेकी आज्ञा दे दी। वीर वानरोंके मनमें लंकाको पीस डालनेका अत्यधिक उत्साह भरा था। वे सब एक स्वरमें बोल उठे—'श्रीसीतारामकी जय! सानुज श्रीरामकी जय!!'

सुग्रीवकी आज्ञासे कोटि-कोटि वीर वानरों और रीछोंकी महान् सेना प्रस्थित हुई। सबके मनमें हर्ष एवं उत्साह भरा था। उस विशाल सेनाके मध्य वल्कल पहने, जटाजूट बाँधे और तूणीर कसे वीरवर कमल-नयन श्रीराम परम सौभाग्यशाली हनुमानजीके कंधेपर बैठकर चले। वीरवर लक्ष्मण युवराज अङ्गदके कंधेपर बैठे थे। सुग्रीव दोनों भाइयोंके साथ चल रहे थे। गज, गवाक्ष, मैन्द, द्विविद, नल, नील, सुषेण और जाम्बवान् तथा अन्य शत्रुहन्ता समस्त सेनापतिगण सेनाके चारों ओर सावधानीपूर्वक देखते जा रहे थे। अत्यन्त चञ्चल वीर वानर यूथपतियोंके आदेश एवं सुग्रीवके भयसे सर्वथा अनुशासित, बड़े वेगसे उछलते-कूदते, गरजते, फल खाते और मधु पीते दक्षिण दिशाकी ओर चल रहे थे।

उन वानर वीरोंके सौभाग्यका क्या कहना, जो सुर-मुनि-दुर्लभ निखिल सृष्टिके स्वामी दयाधाम श्रीरामके कार्यके लिये उन्हींके साथ आनन्दपूर्वक प्रयाण कर रहे थे ! उनके सौभाग्यको देख-देखकर इन्द्रादि देवगण मन-ही-मन उनकी प्रशंसा कर रहे थे। भगवान् श्रीरामके प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान करते ही माता जानकीका वाम नेत्र और उनकी बायीं भुजा फड़कने लगी। उसी समय लंकामें अनेक प्रकारके अपशकुन प्रारम्भ हुए, जिन्हें देखकर असुरकुल मन-ही-मन चिन्तित हो उठा।

वानरोंकी वह विशाल वाहिनी तनिक भी विश्राम किये बिना रात-दिन चल रही थी। वे लोग श्रीराघवेन्द्रके साथ मलयाचल और सह्याद्रिके मनोरम वनोंका दृश्य देखते और उन पर्वतोंको पार करते हुए अन्तमें महान् नीलोदधिके तटपर जा पहुँचे। वहाँ वानरोंने अत्यधिक प्रसन्नतासे गर्जना की—'जय श्रीराम! जय श्रीसीताराम!!'

कोटि-कोटि वानरोंकी सामूहिक गर्जनाके सम्मुख महासमुद्रकी भयानक गर्जना मन्द पड़ गयी।

विभीषणपर अनुग्रह

'महान् वीर वानर-भालुओंकी विशाल वाहिनीके साथ सीतापति श्रीराम समुद्र-तटपर पहुँच गये।'—इस संवादसे लंकामें बेचैनी फैल गयी। राक्षस और राक्षसियाँ अत्यन्त चिन्तित होकर परस्पर कहने लगीं—'एक वानरने तो समूची लंकाकी भयानक क्षति कर दी थी, अब कोटि-कोटि वीर वानरोंके समुदायसे इस राष्ट्रकी क्या दशा होगी!' भयभीत तो दशग्रीव भी था, उसके भी मनमें आतङ्क व्याप्त था; किंतु वह उसे प्रकट नहीं होने देता था। उसने सभा-भवनमें जाकर सभासदोंसे कहा—'वीर राक्षसो! वानरोंकी सेना लेकर दशरथनन्दन

* कार्यं कृतं हनुमता देवैरपि सुदुष्करम्। मनसापि यदन्येन स्मर्तुं शक्यं न भूतले॥
शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत्कः पयोनिधिम्। लङ्कां च राक्षसैर्गुप्तां को वा धर्षयितुं क्षमः॥
भृत्यकार्यं हनुमता कृतं सर्वमशेषतः। सुग्रीवस्येदृशो लोके न भूतो न भविष्यति॥
अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च कपीश्वरः। जानक्या दर्शनेनाद्य रक्षिताः स्मो हनूमता॥ (अ० रा० ६।१।२—५)

राम और लक्ष्मण लंकापर आक्रमण करनेके उद्देश्यसे समुद्रके उस तटपर पहुँच गये हैं। अतएव आपलोग निर्णय करें कि इन तुच्छतम नर और वानरोंको किस प्रकार दण्डित किया जाय?'

राक्षसाधिपतिके इन वचनोंको सुनकर चाटुकार सभासद उसकी दुर्जयता, उसके अमित बल और पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे। प्रहस्त, दुर्मुख, वज्रदंष्ट्र, कुम्भकर्णकुमार, निकुम्भ, इन्द्रजित्, महापार्श्व, महोदर, कुम्भ, अतिकाय आदि राक्षसोंने रावणका अभिवादन किया और उसके शौर्यकी सराहना करते हुए कहा—'यह तो बड़े ही सौभाग्यकी बात है कि हम क्षुधार्तोंके प्रिय आहार नर और वानर कालकी प्रेरणासे स्वयं हमारे मुँहमें चले आ रहे हैं ! पवनपुत्र तो हमारी उदारता और असावधानीके कारण क्षति पहुँचाकर चला गया; किंतु अब तो वे वानर किसी प्रकार अपना प्राण बचाकर भी यहाँसे नहीं लौट सकेंगे। उन दशरथकुमारोंने समराङ्गणमें आपके धनुषसे छूटे हुए दो जीभवाले सर्पोंके समान तीक्ष्णतम विषाक्त शरोंका दर्शन नहीं किया है, इसी कारण वे प्रज्वलित दीपपर पतंग-तुल्य मर-मिटनेके लिये इधर आनेकी कुचेष्टा करने जा रहे हैं। चिन्ताकी तो कोई बात ही नहीं; आप आदेश दें, हमलोग अभी समुद्र-पार जाकर वानरोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर उन्हें पृथ्वीसे मिटा दें।'

रावणके सिरपर तो मृत्यु नाच रही थी, इसी कारण इस प्रकारकी चाटुकारिताभरी विपरीत बातें उसे प्रिय लग रही थीं। किंतु उसी समय परम नीतिज्ञ एवं शुभैषी उसके छोटे भाई विभीषणने उसके चरणोंमें सिर झुकाकर विनयपूर्वक कहा—"राजन्! आप बुद्धिमान्, विद्वान् और नीतिके मर्मज्ञ हैं। आप अच्छी प्रकार विचार कर देखें, ये सभासद आपके यथार्थ हितकी चिन्ता न कर केवल आपको संतुष्ट करनेके लिये प्रलाप कर रहे हैं। श्रीरामके दूत एक वानरने दुर्लङ्घ्य लंकामें प्रविष्ट होकर प्रमदावनसहित सम्पूर्ण लंकाको—सैन्य-स्थल, वाहन आदि महत्त्वपूर्ण स्थलोंको फूँक ही नहीं दिया, सहस्रों असुरोंसहित आपके वीर कुमारको भी मार डाला, तब यहाँ वैसे करोड़ों वानरोंके आ जानेपर क्या होगा? इन बुभुक्षित सभासदोंकी क्षुधा उस समय कहाँ चली गयी थी, जब हमारा नगर अनाथकी भाँति प्रज्वलित अग्निमें धायँ-धायँ जल रहा था?'

"भैया! श्रीराम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। वे साक्षात् अव्यक्त नारायणदेव हैं। उनकी यशस्विनी पत्नी सीताजी साक्षात् भगवती लक्ष्मी हैं। सीताजी लंकामें यमपाशकी भाँति आ गयी हैं। अतएव जबतक श्रीरामचन्द्रजीके तीक्ष्णतम व्याल-वाण धनुषसे नहीं छूटते और जबतक समरप्रिय नखदंष्ट्रायुधविशारद वानर लंकामें फैलकर इसे नष्ट-भ्रष्ट करना प्रारम्भ नहीं कर देते, तबतक आप विपुल रत्नराशिके साथ श्रीमिथिलेश-कुमारीको उनकी सेवामें सम्मानपूर्वक सौंप दें; अन्यथा विश्वास कीजिये, स्वयं कालकण्ठ शंकर भी यदि आपकी रक्षा करना चाहें, सुरपति एवं यमराज भी आपको अपनी गोदमें छिपा लें या आप पातालमें ही प्रविष्ट हो जायँ तो भी श्रीरामके अमोघ वाणसे आपके जीवनकी रक्षा नहीं हो सकती।"

विभीषणने अत्यन्त आदरपूर्वक रावणसे आगे कहा—'भैया! महामुनि पुलस्त्यने भी अपने शिष्यसे इसी बातको आपकी सेवामें निवेदन करनेके लिये कहलवाया है कि आप अहंकार त्यागकर माता जानकीको परमप्रभु श्रीरामकी सेवामें लौटाकर उनका स्मरण करें; मेरे विचारसे इसी प्रकार आपका, मेरा, इन राक्षसोंका तथा सम्पूर्ण लंका-निवासियोंका हित हो सकेगा।'

विभीषणका सत्परामर्श सुनकर उसके नाना माल्यवान्, जो बड़े बुद्धिमान् एवं उसके सचिव भी थे, बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दशग्रीवसे विनम्रतापूर्वक कहा—'स्वामी! आपके छोटे भाई परम नीतिज्ञ विभीषणने सर्वथा उचित बात कही है। इनकी बात स्वीकार कर लेनेमें ही मङ्गल है।'

किंतु काल-प्रेरित दशाननको हितके वचन प्रिय नहीं लगे। उसने क्रुद्ध होकर कहा—'अरे! शत्रुओंकी प्रशंसा करनेवाले इन दोनों मूढ़ असुरोंको यहाँसे निकाल बाहर करो।'

रावणके वचन सुन माल्यवान् तो अपने घर चले गये, किंतु विभीषणने अपने भाईके हितके लिये पुनः विनयपूर्वक निवेदन किया—'भैया! आप कृपापूर्वक अपने हितकी बात सोचें। आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि विदेहकुमारी सीताके लंका-प्रवेशके समयसे ही यहाँ बार-बार अमङ्गलजनक शकुन हो रहे हैं। उनकी सुस्पष्ट सूचना देनेमें आपके मन्त्री संकोच करते हैं। मैं बार-बार आपके चरणोंमें विनीत प्रार्थना करता हूँ कि श्रीराम बड़े धर्मात्मा और पराक्रमी हैं। आपके ये अन्यतम वीर इन्द्रजित्, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ, अतिकाय आदि समराङ्गणमें कोसलेन्द्रके सम्मुख नहीं टिक सकते। अतएव श्रीरामके साथ शत्रुता करना उचित नहीं है। उनके अमोघ वाणोंका स्मरण कर

मिथिलेशकुमारी सीताको उनके पास लौटाकर उनसे क्षमा माँग लेनेमें ही आपकी भलाई है।'

विभीषणके हितभरे वचन सुनकर रावण अत्यन्त क्षुब्ध हो गया। क्रोधसे काँपते हुए उसने कहा—'कुलकलङ्क निशाचर! तू मेरे ही दिये हुए भोगोंसे पुष्ट होकर तथा मेरे ही पास रहकर शत्रुके सम्मुख मुझे अपमानित देखना चाहता है। मेरे भयसे त्रैलोक्य काँपता है, किंतु तू मुझे सामान्य मनुष्यसे भयभीत करनेका प्रयत्न कर रहा है। धिक्कार है तुझे! यदि तेरे सिवा और कोई इस प्रकारका वचन बोलता तो मैं उसे तत्क्षण मार डालता।'

इतना कहते हुए क्रोधके वशीभूत रावण विभीषणपर जोरोंसे पाद-प्रहार कर बैठा और बोला—'तू भी जा, उन्हीं वनवासी मनुष्योंमें मिल जा।'

रावणके इतने कटुवचन और पाद-प्रहार सहकर भी परम बुद्धिमान् और महाबली विभीषणने उसके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथमें गदा ले सभासे निकलकर आकाशमें उड़े। अपने चार मन्त्रियोंके साथ आकाशमें स्थित होकर उन्होंने रावणसे कहा—'राजन् ! सदा प्रिय लगनेवाली मीठी-मीठी बातें कहनेवाले लोग तो सुगमतासे मिल सकते हैं, परंतु जो सुननेमें अप्रिय, किंतु परिणाममें हितकर हो, ऐसी बात कहने और सुननेवाले दुर्लभ होते हैं।* आप मेरे पिता-तुल्य हैं। आपके पाद-प्रहार एवं धिक्कारकी मुझे चिन्ता नहीं, किंतु आपका नाश न हो जाय, मैं इसीलिये व्याकुल हूँ। पर मैं देखता हूँ कि आप और आपकी यह विशाल सभा कालके वश हो गयी है, इसी कारण यहाँ सब कुछ विपरीत सोचा, समझा और करनेका निश्चय किया जा रहा है। मैं श्रीरामके द्वारा आपके पुत्र, सेना, वाहनादि, सम्पूर्ण राक्षसवंश और आपका मारा जाना नहीं देख सकता, इस कारण श्रीरघुनाथजीकी शरणमें जा रहा हूँ। मेरे चले जानेपर आप अपने महलमें सुदीर्घकालतक सांसारिक भोग भोगते रहियेगा, पर पीछे मुझे दोष मत दीजियेगा।'

बस, विभीषण अपने मन्त्रियोंसहित श्रीराघवेन्द्रके चरणोंकी शरण लेने चल पड़े। उनके हृदयमें आनन्दकी लोल लहरियाँ उठ रही थीं। श्रीराम-चरणोंके दर्शनकी तीव्र लालसासे वे आतुर हो रहे थे। वे मन-ही-मन सोचते जा रहे थे—'आज मेरे महान् सुकृतोंका उदय हुआ है, जो मैं परमप्रभु श्रीरामके उन लाल-लाल चरण-कमलोंके दर्शन प्राप्त करूँगा, जिनके लिये देवता और मुनि जन्म-जन्मान्तरोंतक कठोर तप करते हैं, फिर भी उन्हें वे भक्त-सुखदायक चरण प्राप्त नहीं होते। जिन चरण-कमलोंके स्पर्शसे गौतम-पत्नी तर गयी, जिन अरुण चरणोंको भगवती सीताने अपने हृदयमें धारण कर रखा है, कर्पूरगौर महादेव अपने अन्तर्हृदयमें जिनका ध्यान करते रहते हैं और जिन लोकपावन चरणोंकी पादुकाओंकी भाग्यवान् भरत श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निरन्तर पूजा करते हैं, आज मैं अधम राक्षस होकर भी उन चरणोंके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त करने जा रहा हूँ!'

इस प्रकार मनोरथ करते हुए वज्रधारी इन्द्रके समान तेजस्वी, उत्तम आयुधधारी, दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत विभीषण कवच और अस्त्र-शस्त्र धारण किये अपने चारों पराक्रमी मन्त्रियोंसहित समुद्रके इस पार आ गये। वानरोंने पर्वत-तुल्य महान् विभीषणको आते देखकर उन्हें रावणका दूत समझा। वे उन्हें वानरोंके पहरेमें ठहराकर निवेदन करनेके लिये सुग्रीवके समीप पहुँचे। वानरराज सुग्रीवने भगवान् श्रीरामसे विनयपूर्वक कहा—'प्रभो! रावणका भाई विभीषण आपसे मिलने आया है।'

भगवान् श्रीरामने किष्किन्धाधिपति सुग्रीवसे पूछा—'सखे! इस विषयमें तुम्हारी क्या सम्मति है?'

नीति-निपुण सुग्रीवने उत्तर दिया—'प्रभो! राक्षस अत्यन्त मायावी तो होते ही हैं, इनमें अन्तर्धान होनेकी भी शक्ति होती है। यह शूर-वीर विभीषण अत्यन्त क्रूर रावणका भाई है। अत: इसे कठोर दण्ड देकर मन्त्रियोंसहित मार डालना चाहिये।'

सुग्रीवके वचन सुनकर श्रीपवनकुमार व्याकुल हो गये। इनका सहज स्वभाव है कि ये अपने सम्पर्कमें आये हुए व्यक्तिको प्रभु-चरणोंमें पहुँचाकर ही संतुष्ट होते हैं। लंकामें ये विभीषणसे मिल चुके थे। ये उनकी निश्चला भक्तिसे प्रभावित हुए थे। माता सीताका पता उन्होंने ही बताया था और दुष्ट दशाननके सभा-भवनमें श्रीहनुमानजीका पक्ष विभीषणने ही लिया था और अब तो वे सब कुछ त्यागकर श्रीभगवान्के चरणोंमें आ गये। ऐसी स्थितिमें वानरराजने ऐसे वचन कहकर यह क्या अनर्थ कर दिया? पवनकुमार शरणागतवत्सल प्रभुके उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे।

भक्त-सर्वस्व प्रभु श्रीरामने सुग्रीवसे कहा—"सखे! तुमने नीतिकी तो बड़ी सुन्दर बात कही; किंतु शत्रु दु:खी हो या अभिमानी, यदि वह अपने विपक्षीकी

* सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः। अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥ (वा० रा० ६। १६। २१)

शरणमें जाय तो शुद्ध हृदयवाले श्रेष्ठ पुरुषको अपने प्राणोंका मोह छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिये। यदि शरणमें आया हुआ पुरुष संरक्षण न पाकर उस रक्षकके देखते-देखते नष्ट हो जाय तो वह उसके सारे पुण्योंको अपने साथ ले जाता है। इस प्रकार शरणागतकी रक्षा न करनेमें महान् दोष बताया गया है। शरणागतका त्याग स्वर्ग और सुयशकी प्राप्तिको मिटा देता है तथा मनुष्यके बल और वीर्यका नाश करता है।* अतएव जिसे करोड़ों ब्राह्मणोंकी हत्या लगी हो, शरण आनेपर मैं उसे भी नहीं छोड़ता! जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्यों ही उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। वानरराज सुग्रीव! मेरा यह व्रत है कि जो एक बार मेरी शरण आकर शुद्ध हृदयसे 'मैं आपका हूँ'—यह कहता है, मैं उसे सम्पूर्ण प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ।† मैं तो इच्छा होनेपर क्षणार्द्धमें ही लोकपालोंसहित सम्पूर्ण लोकोंको ध्वंस कर उन्हें पुनः रच सकता हूँ और पृथ्वीपर जितने असुर हैं, उन सबको मेरे भाई लक्ष्मण अकेले ही क्षणभरमें मार सकते हैं। अतएव तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो। विभीषणको ले आओ।''

भक्तिसुधापानेच्छु प्रभु श्रीरामके वचन सुन पवननन्दनके आनन्दकी सीमा न रही। उनके रोम-रोम पुलकित हो गये और नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये।

'भक्तवत्सल श्रीरामकी जय!' हनुमानजीने सिंहनाद किया और अङ्गदादि वानरोंके साथ अत्यन्त उल्लासपूर्वक उछलकर सबसे पहले विभीषणके समीप जा पहुँचे और उन्हें आदरपूर्वक प्रभुके समीप ले आये। विभीषणने जटाजूट धारण किये श्याम-गौर श्रीराम-लक्ष्मणके अलौकिक सौन्दर्यको देखा तो देखते ही रह गये। कुछ क्षणोंतक इस स्थितिमें रहनेके अनन्तर वे साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए कहने लगे—'पद्मपत्राक्ष प्रभो ! मैं आपकी सती पत्नी भगवती सीताको हरण करनेवाले राक्षसकुलोत्पन्न दुष्ट दशाननका छोटा भाई विभीषण हूँ। मैं अत्यन्त तामसिक प्रकृतिवाला अधम राक्षस हूँ। मैंने अपने भाई राक्षसराजसे विदेहनन्दिनी सीताको आपके पास भेजनेकी प्रार्थना की थी, किंतु वे कालवश मुझपर कुपित हो गये। तब मैं आपके यशका स्मरण कर अपने स्त्री-पुत्रोंको वहीं छोड़ अपने मन्त्रियोंके साथ संसार-पाशसे मुक्त होनेके लिये मुमुक्षुके रूपमें आपके भुवनपावन चरणोंकी शरण आ गया। करुणानिधान! आप मुझ अधमपर भी करुणाकी वृष्टि कर मेरा जीवन और जन्म सफल करें। मुझे अपने चरणोंकी छाँहमें रख लें!'

विभीषणकी भक्तिपूर्ण वाणी सुनते ही लक्ष्मणसहित भक्त-प्राणधन प्रभुने तुरंत उठकर उन्हें उठाया और अपनी लंबी भुजाओंको फैलाकर हृदयसे लगा लिया। फिर प्रभुने उन्हें अतिशय प्रीतिपूर्वक अपने समीप बैठाकर सर्वप्रथम सम्बोधित किया—'लंकेश!'

गद्गद-कण्ठसे भगवान्‌का स्तवन करते हुए विभीषणने निवेदन किया—'प्रभो! मैं आपके सुर-मुनि-दुर्लभ, त्रयताप-हर चरण-कमलोंका दर्शन करके ही कृतार्थ हो गया। मैं धन्य हो गया। मुझे सर्वस्व प्राप्त हो गया। राजराजेश्वर श्रीराम! मुझे विषयजन्य सुखकी इच्छा नहीं है, मुझे तो आपके चरण-कमलोंमें आसक्तिरूपा भक्ति ही अभीष्ट है।'

किंतु श्रीराघवेन्द्रने अनुज सौमित्रिसे कहा—'लक्ष्मण! मेरे दर्शनका फल इन्हें अभी प्राप्त होना चाहिये। तुम सिन्धुका जल ले आओ।'

सीतापति श्रीरामकी आज्ञा प्राप्त होते ही लक्ष्मण कलशमें समुद्रका जल ले आये और प्रभुके आदेशसे मुख्य-मुख्य वानरोंके बीच विभीषणको लंकाके राज्यपदपर अभिषिक्त कर दिया। जिस सम्पत्तिको रावणने अपने दसों सिर चढ़ाकर भगवान् शंकरसे प्राप्त किया था, वही महान् सम्पत्ति हनुमानजीके अनुग्रहसे भगवान् श्रीराघवेन्द्रने विभीषणको अत्यन्त संकोचपूर्वक प्रदान कर दी!

यह देखकर समस्त वानर-भालू प्रसन्न हो गये, किंतु हनुमानजीकी प्रसन्नताकी तो सीमा ही नहीं थी। सच तो यह है कि हनुमानजीकी कृपासे ही असुर विभीषण परमप्रभुके प्रीति-भाजन हुए। लंकाधिपति रावणसे तिरस्कृत, निराश्रित, विभीषण श्रीअञ्जनानन्दनकी कृपासे निखिल सृष्टिके स्वामी प्रभुके समीप ही नहीं पहुँचे, लंकाधीश ही नहीं हुए, प्रभुके सर्वथा आत्मीय और स्वजन बन गये। दयार्द्रहृदय हनुमानकी दयाका यह सजीव निदर्शन है।

---

* आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः। अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना॥
विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणं गतः। आनाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः॥
एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे। अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम्॥
(वा० रा० ६। १८। २८, ३०-३१)

† सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥ (वा० रा० ६। १८। ३३)

सेतु-निर्माण

सर्वसमर्थ भगवान् श्रीरामने लंकामें पहुँचनेका मार्ग माँगनेके लिये तीन दिनोंतक समुद्रसे प्रार्थना की, किंतु मूढ़ जलनिधिपर विनयका कोई प्रभाव न पड़ते देखकर वे कुपित हो गये। उनके विशाल नेत्रोंमें लालिमा छा गयी और उन्होंने ब्रह्मदण्डके समान भयंकर वाणको अभिमन्त्रित करके अपने श्रेष्ठ धनुषपर चढ़ाकर खींचते हुए कहा—'आज समस्त प्राणी रघुकुलोद्भव रामका पराक्रम देख लें। मैं समुद्रको अभी सुखा देता हूँ फिर हमारे कोटि-कोटि वीर वानर-भालू पैदल ही इसे पार कर जायँगे।'

अचिन्त्य-शक्ति-सम्पन्न महाबाहु श्रीरामके धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचते ही पृथ्वी काँपने लगी, पर्वत डगमगाने लगे और सूर्यदेवकी उपस्थितिमें ही आकाश तथा दसों दिशाओंमें अन्धकार फैल गया। अन्तरिक्षसे कर्कश ध्वनिके साथ वज्रपात होने लगे। समुद्र क्षुब्ध हो उठा और वह भयके कारण मर्यादा त्यागकर अपने तटसे एक योजन आगे बढ़ आया। मत्स्य और मकर आदि जल-जन्तु व्याकुल हो गये। तब जम्बूनद नामक सुवर्ण-निर्मित आभूषण धारण किये, स्निग्ध वैदूर्यमणिके समान दिव्य श्यामरूपधारी समुद्र हाथोंमें अपने ही अन्तस्तलमें स्थित दिव्य रत्नोंका उपहार लिये सीतापति श्रीरामके सम्मुख उपस्थित हुआ।

सागरने अपरिमित शक्ति-सम्पन्न प्रभुके चरणोंमें अनुपम उपहार रखकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर उसने अत्यन्त विनयपूर्वक स्तुति करते हुए कहा—'प्रभो! सृष्टिरचनाके समय आपने ही मुझे जड बनाया था। अतएव मेरी जडतापर दृष्टि न डालकर कृपापूर्वक मुझे क्षमा प्रदान करें। आपकी सेनामें समस्त शिल्पकलामें निपुण नल और नील दो वानर-बन्धु हैं। ऋषियोंके आशीर्वादसे इनके स्पर्श कर लेनेसे बड़े-बड़े पर्वत भी आपके प्रतापसे जलमें तैरने लगेंगे। ये सुन्दर और सुदृढ़ पुलका निर्माण करनेमें पूर्ण समर्थ हैं। साथ ही मैं भी अपनी ओरसे सहायता करूँगा। इस प्रकार मेरी मर्यादा तो सुरक्षित रहेगी ही, सब लोग अनन्तकालतक आपकी संसार-मलापहारिणी कीर्तिका गान करते रहेंगे।'

भगवान् श्रीरामने समुद्रके कथनानुसार अपना अमोघ वाण 'द्रुमकुल्य' नामक देशकी ओर छोड़ दिया। वह वाण एक क्षणमें ही वहाँका सर्वनाश करके पूर्ववत् उनके तूणीरमें लौट आया। प्रभुने सेतु-निर्माणकी आज्ञा दी।

'जय श्रीराम! जय श्रीसीताराम!!' और 'जय श्रीलक्ष्मण!!!' का उच्च घोष आकाशमें व्याप्त हो गया। उस समय हनुमानजीके उत्साहकी सीमा न थी। वे स्वयं तो वृक्षों और पर्वतोंको ला-लाकर नल-नीलको देते तथा उनके संकेतपर समुद्रमें डालते ही, अत्यन्त चञ्चल वानरोंसे भी संयम और उत्साहपूर्वक यही कार्य कराते। हनुमानजीके सङ्ग, उनकी दक्षता, उनके श्रम, उत्साह तथा प्रोत्साहनसे समस्त वानर-भालू उछलते-कूदते हुए जाते और शीघ्रतापूर्वक वृक्षों एवं पर्वतोंको ले आते। श्रीपवनकुमारकी अध्यक्षतामें उनके प्रोत्साहनसे वानरोंने बड़ा परिश्रम किया। नल और नीलने भी अथक श्रम करके पहले ही दिन चौदह योजन लंबा और दस योजन चौड़ा पुल तैयार कर दिया।

हनुमानजीको इतनेसे ही संतोष नहीं हुआ। दूसरे दिन उन्होंने वानर-भालुओंको और प्रोत्साहित किया। वृक्षों और पर्वतोंको लिये पवनपुत्र प्राय: समस्त वानरोंके शौर्य, वीर्य, लगन एवं श्रमकी प्रशंसा करते। फलस्वरूप दूसरे दिन बीस योजन सेतु और तैयार हुआ। हनुमानजीको अब भी संतोष नहीं था। जगज्जननी जानकीकी करुणमूर्ति उनके हृदयमें व्याकुलता उत्पन्न कर रही थी। इस कारण वे यथाशीघ्र माता सीताको प्रभु-चरणोंमें ले आने एवं लंकाधिपति दशाननकी मुक्तिके लिये अत्यन्त व्यग्र थे। नल-नील सेतु-निर्माणके कार्यमें अथक परिश्रम कर रहे थे और श्रीपवननन्दन उनकी कला एवं उनके श्रमकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते। फलत: तीसरे दिन सेतु इक्कीस योजन और बनकर तैयार हो गया। पर श्रीअञ्जनानन्दवर्धन पूर्ण संतुष्ट नहीं हुए। वे वनों और पर्वतोंमें इतनी शीघ्रतासे जाते और वानरों, भालुओं एवं नल-नील आदिके यहाँ इतनी त्वरित गतिसे पहुँचते कि सभी वानर-भालू समझते कि मारुतसुत मेरे ही पास हैं। इस कारण चौथे दिन एक योजन और अधिक—बाईस योजन पुल निर्मित हो गया।

बुद्धि, तेज, शक्ति एवं पराक्रमके सजीव विग्रह हनुमानजीने वानरोंको प्रोत्साहित करते हुए कहा—'परम भाग्यवान् वानर-भालुओ! निश्चय ही तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम जगन्नियन्ता श्रीराम एवं निखिल भुवनकी स्वामिनी माता जानकीके कार्यमें निमित्त बन रहे हो; अन्यथा भगवान् श्रीरामकी इच्छा-शक्तिसे ही राक्षसकुलका ध्वंस हो जाता। प्रभु-चरणोंमें हम सबका जीवन-जन्म सफल हो रहा है। यह सुअवसर इन्द्रादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। अब यह सेतु कुल तेईस योजन

और शेष रह गया है। अतएव आज इसे सागर-पार लंकाके तटतक अवश्य ही पूरा हो जाना चाहिये।'

उपकृत गोवर्धन

कोटि-कोटि वानरोंने गर्जना की—'जय श्रीराम!' हनुमानजीने पुनः सिंहनाद किया—'जय श्रीसीताराम!' और विशाल पर्वत लेने उड़ चले। दक्षिणके समस्त पर्वत सेतुमें डाल दिये गये थे, इस कारण वे उत्तराखण्डमें हिमालयके समीप पहुँचे। उन्हें वहाँ द्रोणाचलका सात कोसका सुविस्तृत शिखर अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत हुआ। शिखरका नाम था—गोवर्धन। जब भगवान् श्रीरामके अवतारके समय देवगण उनकी दुर्लभतम मङ्गलमयी लीलाका दर्शन करने एवं उसमें सहयोग प्रदान करनेके लिये पृथ्वीपर अवतरित हुए, उसी समय गोवर्धन भी गोलोकसे पृथ्वीपर आये।

श्रीपवनपुत्रने उन्हें उठाना चाहा, किंतु अत्यन्त आश्चर्य! इनकी सम्पूर्ण शक्ति लगनेपर भी द्रोणगिरिका वह शिखर टस-से-मस नहीं हुआ! श्रीरामभक्त हनुमानने अपने प्रभुका ध्यान किया ही था कि उन्हें उस श्रेष्ठ गिरि-शिखरकी महत्ता विदित हो गयी। 'अरे! ये तो साक्षात् श्रीभगवान्‌के विग्रह गोवर्धन हैं। इनकी प्रत्येक शिला शालग्राम-तुल्य है।'

तब तो हनुमानजीने महिमामय गोवर्धनके चरणोंमें अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम किया और हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा—'पावनतम गिरिराज! मैं आपको प्रभु-चरणोंमें उपस्थित करना चाहता हूँ, फिर आप क्यों नहीं चलते? वहाँ आप दयाधाम प्रभुकी मङ्गल-मूर्तिके दुर्लभ दर्शन ही नहीं करेंगे, प्रभु आपके ऊपर अपने सुख-शान्ति-निकेतन चरण-कमल रखते हुए सागर पारकर लंकामें जायँगे।'

श्रीरामप्रिय पवनकुमारके वचन सुनते ही गोवर्धन आनन्दमग्न हो गये। 'वहाँ श्रीभगवान्‌के दुर्लभ दर्शन ही नहीं होंगे, प्रभु मुझपर अपने त्रयतापहर चरण-कमलोंको रखते हुए समुद्र पार करेंगे'—इस कल्पनासे उनके सुखकी सीमा न रही। उन्होंने आञ्जनेयसे कहा—'पवनकुमार! मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। आपकी इस कृपासे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। आप दया करके मुझे यथाशीघ्र प्रभुके समीप ले चलें। आपकी इस अहैतुकी कृपाके लिये मैं आपका सदा ही उपकृत बना रहूँगा।'

अब तो हनुमानजीने उन्हें अत्यन्त सरलतासे उठा लिया। कपीश्वरके वामहस्तपर गोवर्धन पुष्प-तुल्य प्रतीत हो रहे थे। गोवर्धनकी प्रसन्नताकी सीमा न थी। वे मन-ही-मन सोच रहे थे—'आज इन महावीर हनुमानजीकी कृपासे कितने दिनोंके बाद मेरी लालसा पूरी होगी! मङ्गल एवं परोपकारकी मूर्ति इन पवननन्दनने इस प्रकार कितने प्राणियोंका हित किया है ? मेरा सौभाग्य है, जो आज मुझे इनके दर्शन और स्पर्शका सुअवसर प्राप्त हो गया। आज इनकी कृपासे मुझे मेरे जीवन-सर्वस्व कमल-नयन प्रभुके दर्शन हो जायँगे!'

इस प्रकार गोवर्धन मन-ही-मन प्रभु एवं उनके भक्तका स्मरण, चिन्तन एवं गुणगान करते जा रहे थे और उधर भक्तवाञ्छाकल्पतरु परम प्रभुने सोचा—'गोवर्धन गोलोकके मेरे मुरलीमनोहर श्रीकृष्णरूपके अनन्य भक्त हैं। यहाँ उन्होंने कहीं मुझसे उसी रूपमें दर्शन देनेका आग्रह किया तो उनके सच्चे शुभैषी हनुमानजीकी ओर देखकर मुझे मर्यादाका त्याग करना पड़ेगा। क्या किया जाय?'

प्रभु सोच ही रहे थे कि उस पाँचवें दिन शत योजन लंबा और दस योजन चौड़ा सुविस्तृत दृढ़तम सेतुका शेष तेईस योजन भाग भी पूर्ण हो गया। फिर क्या था? तत्क्षण श्रीराघवेन्द्रकी आज्ञा प्रचारित हुई—'सेतु-बन्धनका कार्य पूर्ण हो गया। अतएव अब पर्वत एवं वृक्षादिकी आवश्यकता नहीं। जिनके हाथमें जो पर्वत या वृक्ष जहाँ कहीं हों, वे वहीं उन्हें छोड़कर तुरंत प्रभुके समीप पहुँच जायँ।'

चञ्चल एवं वीर वानरोंने दौड़ते हुए सर्वत्र श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा सुना दी। उनके हाथमें जो पर्वत या वृक्ष जहाँ थे, वे उन्हें वहीं छोड़कर प्रभुके समीप दौड़ चले। आज दक्षिण भारतमें वीर वानरोंके छोड़े हुए वे ही पर्वत विद्यमान हैं। वहाँके पर्वत तो पहले सेतुके काम आ चुके थे। महामहिमामय गोवर्धनको अपने हाथमें लिये केसरीकिशोर उस समय व्रजधरातक पहुँचे ही थे कि उन्होंने प्रभुकी आज्ञा सुनी। हनुमानजीने गोवर्धनको तुरंत वहीं रख दिया, किंतु उन्हें अपने वचनका ध्यान था। उसी समय उन्होंने देखा, गोवर्धन अत्यन्त उदास होकर उनकी ओर आशाभरे नेत्रोंसे देख रहे हैं।

हनुमानजीने कहा—'आप चिन्ता मत कीजिये। मेरे भक्तप्राणधन स्वामी मेरे वचनोंकी रक्षा तो करेंगे ही।' और वे शीघ्रतासे प्रभुकी ओर उड़ चले।

हनुमानजीने प्रभुके समीप पहुँचकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उनके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये। दयामय सर्वज्ञ प्रभुने उनका अभीष्ट पूछा तो उन्होंने

अत्यन्त विनम्रतासे निवेदन किया—'प्रभो ! मैंने गोवर्धनको आपके दर्शन और परमपावन चरण-कमलोंके स्पर्शका वचन दे दिया था, किंतु वानरोंके द्वारा आपका आदेश प्राप्त होते ही मैंने उन्हें व्रज-भूमिमें रख दिया। वे अत्यन्त उदास हो गये। मैंने उन्हें पुनः आश्वासन भी दे दिया है।'

सर्वान्तर्यामी भक्तवत्सल श्रीरामने हनुमानजीके चुप होते ही कहा—'प्रिय हनुमान! तुम्हारा आश्वासन और तुम्हारा वचन मेरा ही आश्वासन और मेरा ही वचन है। गोवर्धनको मेरी प्राप्ति अवश्य होगी, किंतु उन्हें मेरा मयूरमुकुटी वंशीविभूषित वेष प्रिय है। अतएव तुम उनसे कह दो कि जब मैं द्वापरमें व्रजधरापर उनके प्रिय मुरली-मनोहररूपमें अवतरित होऊँगा, तब उन्हें मेरे दर्शन तो होंगे ही, मैं व्रज-बालकोंसहित उनके फल-फूल एवं तृणादि समस्त वस्तुओंका उपभोग करते हुए उनपर क्रीड़ा करूँगा। इतना ही नहीं, अनवरत सात दिनोंतक मैं उन्हें अपनी अँगुलीपर धारण भी किये रहूँगा।'

'कृपामूर्ति श्रीरामकी जय!' पवनकुमारके मुखसे स्वतः निकल पड़ा। आनन्दमग्न हनुमानजी अन्तरिक्षसे गोवर्धनके समीप पहुँचे। अत्यन्त उत्सुकतासे प्रतीक्षा करते हुए उनसे हनुमानजीने कहा—'गिरिराज! आप धन्य हैं। भक्त-पराधीन प्रभुने आपकी कामना-पूर्तिका वचन दे दिया। द्वापरमें मयूरमुकुटी वंशीधर (आपके आराध्य)-वेषमें वे आपके ऊपर बाल-क्रीड़ा करेंगे। वे प्रभु उस समय आपके जल, पत्र, पुष्प, फल, शिला एवं तृण-लतादि प्रत्येक वस्तुका उपभोग तो करेंगे ही, सात दिनोंतक निरन्तर आप उनके कर-कमलपर निवास भी करेंगे।'

गिरिराज आनन्दमग्न हो गये। नेत्रोंमें प्रेमाश्रुभरे उन्होंने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक श्रीरामभक्त हनुमानसे कहा—'आञ्जनेय! आपके इस महान् उपकारके बदले मैं आपको कुछ भी देनेकी स्थितिमें नहीं हूँ। मैं आपका सदा कृतज्ञ रहूँगा।'

सहस्राब्दियोंसे गिरिराज पूजित हैं। विरक्त महात्मा एवं भक्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी परिक्रमा कर अपने अभीष्टकी सिद्धि प्राप्त करते हैं। परमभाग्यवान् गिरिराजजीको यह गौरवशाली पद द्वापरमें अवतरित वंशीधररूपी श्रीरामने अपने भक्त आञ्जनेयके वचनकी रक्षाके लिये ही प्रदान किया था।

निश्चय ही जिस भाग्यवान्‌को हनुमानजीका दर्शन प्राप्त हो जाय, उसे प्रभु-प्राप्ति तो होकर ही रहेगी। करुणामूर्ति पवनकुमार अपने भक्तको प्रभुतक पहुँचाये बिना चैन नहीं लेंगे। गिरिराजसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक मिलकर परमोपकारी हनुमानजी अपने प्रभु श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें लौट आये।

× × ×

विशाल समुद्रपर सौ योजन लंबा और दस योजन चौड़ा सुविस्तृत सेतु निर्मित हो जानेपर लीलाविहारी भक्तवत्सल प्रभु श्रीरामने चकित होकर वानरोंसे पूछा—'अरे! ये पत्थर पानीपर कैसे तैरने लगे?'

वानरोंने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—"प्रभो! आपके 'राम'-नामकी महिमा है। उसीके प्रतापसे ये पर्वत और बड़े-बड़े शिलाखण्ड समुद्रपर तैर रहे हैं।"

कौतूहलवश श्रीरघुनन्दनने छोटे-छोटे दो-तीन पत्थर उठाकर समुद्रके जलपर रखे, पर वे सब-के-सब डूबकर नीचे चले गये। तब प्रभुने कहा—'यह कैसे सम्भव है? मैं स्वयं इन पत्थरोंको अपने हाथसे छोड़ रहा हूँ, किंतु ये पानीपर तैरनेके बदले डूबते जा रहे हैं।'

वानर-भालू एक-दूसरेका मुँह देखने लगे, किंतु उसी समय परमप्रभु श्रीरामके अनन्य भक्त पवनकुमारने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'स्वामी! आप जिसे अपने कर-कमलोंसे छोड़ देंगे, वह तो सहज ही डूब जायगा! आपके बिना प्राणीकी गति कहाँ?'

श्रीराघवेन्द्र मुस्कुरा उठे।

वानर-भालुओंकी विशाल वाहिनीके साथ श्रीरामने समुद्रको पार किया। वहाँ उन्होंने सुबेल पर्वतपर डेरा डाला। एक ऊँचे, सुन्दर एवं समतल शिखरपर सुमित्रानन्दनने वृक्षोंके कोमल पत्ते और सुन्दर सुमनोंको सजाया और फिर उसके ऊपर एक सुन्दर मृगछाला बिछा दी। उसी आसनपर करुणावतार परम प्रभु श्रीराम वानरराज सुग्रीवकी गोदमें अपना सिर रखकर लेट गये थे। उनकी बायीं ओर उनका विशाल धनुष तथा दाहिनी ओर अक्षय तूणीर पड़ा था। प्रभु एक दीप्तिमान् तीक्ष्णतम शरपर अपना कर-कमल फेर रहे थे और भाग्यवान् विभीषणजी उनसे धीरे-धीरे परामर्श कर रहे थे। अत्यन्त सौभाग्यशाली अङ्गद और हनुमान उनके परम दुर्लभ चरण-कमलोंको धीरे-धीरे दबा रहे थे और उनकी दृष्टि प्रभुके मुखारविन्दपर थी। वीरवर सौमित्रि धनुष-वाण धारण किये प्रभुके सिरहाने अत्यन्त सावधान होकर वीरासनसे बैठे थे।

उसी समय पूर्व आकाशमें उदित चन्द्रमाको देखकर भगवान् श्रीरामने कहा—'आपलोग अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार बतलाइये कि इस चन्द्रमामें यह श्याम रंग कैसा है?'

सबने अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार उत्तर दिये।

सबके अन्तमें हनुमानजीने उत्तर दिया—'प्रभो! चन्द्रमा आपका प्रिय दास है और आपकी सुन्दर श्यामल मूर्ति उसके हृदयमें निवास करती है, वही श्यामता सुधांशुमें झलक रही है।'*

सच तो यह है, पवन-तनयके रोम-रोममें उनके प्राणाराध्य श्रीराम ही बसे हुए थे। उन्हें सर्वत्र अपने प्रभुके ही दर्शन होते थे। अतएव शशि-मण्डलमें श्रीराम-दर्शन उनके लिये स्वाभाविक ही है।

समराङ्गणमें

दूसरे दिन भगवान् श्रीरामने अपने सचिव महामति जाम्बवान्‌के परामर्शसे दशग्रीवको समझानेके लिये दूतके रूपमें युवराज अङ्गदको लंका भेजा; किंतु रावणके सिरपर तो मृत्यु नाच रही थी, इस कारण उसपर किसी बातका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। युद्ध प्रारम्भ हो गया। राक्षस मायावी थे और वे भिन्दिपाल, खड्ग, शूल, परशु, शक्ति, तोमर, धनुष-वाण और गदा आदि विविध अस्त्र-शस्त्रोंसे युद्ध करते थे। वे वीर एवं पराक्रमी तो थे ही, पराजयकी स्थिति उत्पन्न होते ही अदृश्य हो जाते और आकाशसे धूल, अस्थि एवं रक्तादिकी वर्षा करने लगते। अपनी सेनाको व्याकुल देखकर मायापति श्रीराम अपने एक ही शरसे उन मायावी राक्षसोंकी मायाका विनाश कर देते, तब वानर-भालू पुन: अत्यधिक उत्साहसे युद्ध करने लगते।

भगवान् श्रीरामकी विशाल सेनामें सुग्रीव, मन्त्रियोंसहित विभीषण, हनुमान, अङ्गद, नील, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, पनस, कुमुद, हर, यूथपति रम्भ, जाम्बवान्, सुषेण, ऋषभ, दुर्मुख तथा शतबलि आदि प्रमुख योद्धा थे। इन परमपराक्रमी वीरोंके अधीन लाखों-लाखों योद्धा वानर-भालू थे। वानर-भालुओंके पास कोई अन्य अस्त्र-शस्त्र तो थे नहीं; ये गगनचुम्बी अट्टालिकाओंपर चढ़ जाते और उनके कंगूरोंको तोड़कर राक्षसोंपर प्रहार करते, क्रोधसे किटकिटाते हुए असुरोंपर कूद पड़ते, उन्हें थप्पड़ोंसे मारते, उनपर वज्र-तुल्य मुष्टिकासे प्रहार करते, उनको लातोंसे रौंदते और दाँतोंसे काटते। वानर असुरोंकी गर्दन तोड़ देते और नखोंसे उनका हृदय विदीर्ण कर देते। उनके गालोंको फाड़ डालते, उनकी भुजाएँ उखाड़कर फेंक देते। कुछ वानर-भालू राक्षसोंको पकड़कर उन्हें रेतमें गाड़ देते और कुछ उन्हें पकड़कर समुद्रमें डुबा देते।

समर-भूमिमें महापराक्रमी एवं महाबली पवनपुत्र तो राक्षसोंके लिये साक्षात् काल-तुल्य ही प्रतीत होते थे। उन्होंने अकेले ही लंकाके मनोरम प्रमदा-वनको तहस-नहस करके कितने ही शूरवीर असुरोंका संहार कर दिया था। उनके हाथों रावण-पुत्र अक्षकुमारकी मृत्यु एवं वैभवमयी अनुपम लंकाका सर्वनाश राक्षस देख चुके थे। आकाशको विदीर्ण करनेवाला श्रीहनुमानका सिंहनाद उन्हें क्षणार्धके लिये भी विस्मृत नहीं हुआ था, अतएव उनके हतोत्साह होनेके लिये मर्कटाधीशका नाम ही पर्याप्त था। जहाँ प्रज्वलित अग्निके समान दुर्धर्ष हनुमानजी स्वयं हाथोंमें विशाल शैल धारणकर मेघ-गर्जन करते हुए दीख जायँ, वहाँ तो राक्षसोंके प्राण-पखेरू ही उड़ जाते थे। ओज, तेज एवं स्फूर्तिके साकार विग्रह वज्राङ्गबली जहाँ पहुँचते, वहाँ राक्षस-सैन्यका सामूहिक संहार हो जाता। अधिकांश राक्षस उनकी चपेटसे रक्त-वमन करते हुए प्राण त्याग देते और कुछ भागकर लंकामें प्रवेश कर जाते।

श्रीहनुमानजी एक ही स्थानपर युद्ध करते हों, ऐसी बात नहीं, वे जब जहाँ वानर-सैन्यपर असुरोंका दबाव पड़ता देखते, वहीं 'जय श्रीराम' का गगन-भेदी घोष करते हुए सीधे राक्षसोंके मध्य उनके ऊपर कूद पड़ते। राक्षस-समूहका दलन हो जाता। वे अश्व, सारथि एवं रथसहित असुर वीरोंको आकाशमें इतने वेगसे फेंकते कि वे चक्कर काटते हुए समुद्रके जलमें गिरकर समाप्त हो जाते। वे असुरोंको उनकी टाँग, हाथ या सिर—जब जिसका जो अङ्ग हाथमें आया, पकड़कर समुद्रमें फेंक देते। इस प्रकार हनुमानजी त्वरित गतिसे सहस्रों असुरोंका संहार कर देते। वे छोटे-छोटे वृक्षोंको तो स्पर्श ही नहीं करते थे, सीधे छलाँग मारते और समीपका बड़ा पर्वत उठाकर विद्युत्-गतिसे लौटते और असुरोंपर फेंक देते। रह-रहकर कुछ पर्वत और विशाल शिलाखण्ड लंकामें भी फेंकते रहते। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच जाती।

पवनपुत्र श्रीहनुमान अविश्रान्त युद्ध-क्षेत्रमें राक्षसोंका इतना भयानक संहार करते कि रणमें उपस्थित असुर-गणोंके मनमें रावणके सर्वनाशका निश्चय हो ही जाता। हनुमानजी अत्यन्त तीव्र गतिसे युद्धके प्रत्येक स्थलपर पहुँचते। जहाँ वानर-भालू दुर्बल पड़ते, वहीं वे राक्षसोंपर टूट पड़ते; उनको समाप्त कर अपनी सेनामें उत्साह

* कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास। तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥ (मानस ६। १२)

बढ़ाते और फिर तुरंत दूसरी ओर चले जाते। उनमें इतनी स्फूर्ति थी कि एक होते हुए भी वे सभी वानरोंको अपने ही समीप एवं राक्षसोंको अपने ही सम्मुख दीखते।

रावणके प्रख्यात वीर धूम्राक्ष, अवनि, अकम्पन, अतिकाय, देवान्तक और त्रिशिरा आदि प्रमुख-राक्षस हनुमानजीके हाथों मारे गये, इस समाचारसे रावण अधीर हो गया। वज्रधारी इन्द्रपर विजय प्राप्त करनेवाले उसके प्रख्यात शूरवीर पुत्र मेघनादने उसे आश्वासन दिया और युद्ध-सामग्रीसे सम्पन्न वेगशाली रथपर आरूढ़ होकर वह युद्ध-क्षेत्रमें पहुँचा।

हनुमानजीकी वीरता, पराक्रम एवं रण-कौशलसे स्वयं इन्द्रजित् भी मन-ही-मन भयभीत रहता था और युद्धमें भरसक उनसे दूर ही रहनेका प्रयत्न करता था। उस दिन उसने वानर-सेनाका भयानक संहार किया। उसकी वाण-वर्षासे सुग्रीव, अङ्गद, नील, शरभ, गन्ध-मादन, जाम्बवान्, सुषेण, वेगदर्शी, मैन्द, नल, ज्योतिर्मुख तथा द्विविद आदि सभी प्रख्यात शूरवीर वानर घायल हो गये। इतना ही नहीं, उसके ब्रह्मास्त्रसे श्रीराम और लक्ष्मण भी मूर्च्छित हो गये।

अपने घायल सैनिकोंको देखते हुए विभीषण जब शरविद्ध वृद्ध जाम्बवान्के समीप पहुँचे तो उनका हृदय काँप उठा। उन्हें जाम्बवान्के जीवनके सम्बन्धमें संशय उत्पन्न हो गया था। विभीषणने उनके विशाल शरीरपर प्रेमपूर्वक हाथ फेरते हुए उनका समाचार पूछा, तब जाम्बवान्ने उत्तरमें कहा—'राक्षसराज ! मेरे सभी अङ्ग तीक्ष्ण वाणोंसे बिंधे हुए हैं; अत: कष्टके कारण मैं तुम्हें नेत्र खोलकर देख भी नहीं सकता, केवल स्वरसे तुम्हें पहचान रहा हूँ। तुम इतना ही बता दो कि वानरश्रेष्ठ अञ्जनानन्दन जीवित हैं या नहीं?'

विभीषणजीने चकित होकर उनसे पूछा—'ऋक्षराज! आपने वानरराज सुग्रीव, युवराज अङ्गदकी बात तो दूर रही, स्वयं भगवान् श्रीराम और सौमित्रितकका भी समाचार नहीं पूछा। पवनपुत्र हनुमानजीके प्रति आपका सर्वाधिक प्रेम दीख रहा है; इसका हेतु क्या है?'

वाणविद्ध जाम्बवान्ने अत्यन्त कष्टसे उत्तर दिया—'राक्षसराज! यदि वीरवर हनुमान जीवित हों तो वानरोंकी मरी हुई सेना भी जीवित ही है—ऐसा समझना चाहिये और यदि उनके प्राण निकल गये हों तो हमलोग जीते हुए भी मृतकके ही तुल्य हैं! तात! यदि वायुके समान वेगशाली और अग्निके समान पराक्रमी पवन-कुमार हनुमान जीवित हैं तो हम सबके जीवित होनेकी आशा की जा सकती है।'*

उसी समय हनुमानजी वहाँ पहुँच गये और उन्होंने बूढ़े जाम्बवान्के दोनों चरणोंको स्पर्श करके विनयपूर्वक प्रणाम किया। मारुतात्मजके स्पर्शसे पीड़ित जाम्बवान्का मुख दीप्तिमान् हो उठा। उन्होंने हनुमानजीसे कहा—'वानरसिंह ! आओ, सम्पूर्ण वानरोंकी रक्षा करो। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई पूर्ण पराक्रमसे युक्त नहीं है। तुम्हीं इन सबके परम सहायक हो। यह समय तुम्हारे ही पराक्रमका है। मैं दूसरे किसीको इसके योग्य नहीं देखता।'†

* * *

स्वयं कराल कालकी मूर्ति कज्जलगिरि-तुल्य कुम्भकर्ण रण-क्षेत्रमें उतरा। उसे देखते ही वानर-रीछ वृक्ष और पर्वत उखाड़कर उसके ऊपर डालने लगे। वे एक-एक बारमें करोड़ों पहाड़ोंके शिखरोंसे उसपर प्रहार कर रहे थे, परंतु उससे न तो कुम्भकर्णका मन ही विचलित हुआ और न शरीर ही टाले टला, जैसे मदारके फलोंकी मारसे हाथीपर कुछ भी असर नहीं होता। वानर-भालू भयभीत हो गये। उसी समय श्रीहनुमानजी वहाँ पहुँच गये। उन्होंने कुम्भकर्णको एक घूँसा मारा। आञ्जनेयकी वज्र-मुष्टिके एक ही प्रहारसे वह व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और सिर पीटने लगा। भाग्यवश वह एक ही दिनके युद्धमें भगवान् श्रीरामके वाणसे मुक्त हो गया।

* * *

विवशत: क्रुद्ध रावण स्वयं युद्ध-भूमिमें आया। उसके हाथमें अत्यन्त भयानक एवं दीप्तिमान् धनुष था। उसने अपने तीक्ष्णतम शरोंकी वर्षासे वानर-सैन्यको विचलित कर दिया। उस समय वज्राङ्गबली हनुमान कूदकर उसके रथके समीप पहुँच गये और अपना दाहिना हाथ उठाकर उन्होंने रावणको भयाक्रान्त करते हुए कहा—'देखो, पाँच अँगुलियोंसे युक्त यह मेरा दाहिना हाथ उठा हुआ है। तुम्हारे शरीरमें चिरकालसे

* अस्मिञ्जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम्। हनूमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि मृता वयम्॥
धरते मारुतिस्तात मारुतप्रतिमो यदि। वैश्वानरसमो वीर्ये जीविताशा ततो भवेत्॥ (वा० रा० ६।७४।२२-२३)

† आगच्छ हरिशार्दूल वानरांस्त्रातुमर्हसि॥
नान्यो विक्रमपर्याप्तस्त्वमेषां परमः सखा। त्वत्पराक्रमकालोऽयं नान्यं पश्यामि कंचन॥ (वा० रा० ६।७४।२६-२७)

जो जीवात्मा निवास करता है, उसे आज यह इस देहसे अलग कर देगा।'*

परमपराक्रमी रावणने अत्यन्त कुपित होकर कहा—'वानर! तुम निश्चिन्त होकर पहले मुझपर प्रहार कर लो, तब पराक्रम देखकर मैं तुम्हारा प्राण-हरण करूँगा।'

हनुमानजीने उत्तर दिया—'तुम यह क्यों भूल जाते हो कि मैंने पहले ही तुम्हारे प्राणप्रिय अक्षकुमारको मार डाला है।'

आञ्जनेयकी इस उक्तिसे रावणका हृदय जल उठा। उसने तुरंत हनुमानजीके वक्षपर हाथसे प्रहार किया।

बल-विक्रम-सम्पन्न महातेजस्वी रावणकी मुष्टिकाके आघातसे हनुमानजी क्षणभरके लिये विचलित हो गये, किंतु वे बड़े बुद्धिमान् और तेजस्वी थे। सुस्थिर होते ही उन्होंने भी अत्यन्त क्रोधपूर्वक राक्षसराजको कसकर एक घूँसा मारा।

परमपराक्रमी वज्राङ्ग महावीरका वज्र-तुल्य घूँसा लगते ही रावण काँप उठा। कुछ क्षणोपरान्त उसने सँभलकर कहा—'शाबाश वानर! पराक्रमकी दृष्टिसे तुम मेरे प्रशंसनीय प्रतिद्वन्द्वी हो!'

वीरवर पवनकुमारने उत्तर दिया—'अरे रावण! तुम अब भी जीवित हो, इसलिये मेरे पराक्रमको धिक्कार है!† अब तुम एक बार और मुझपर प्रहार करो। तुम्हारे प्रहारके अनन्तर जब मेरा मुक्का पड़ेगा, तब तुम यमलोक पहुँच जाओगे।'

श्रीमर्कटाधीशके वाग्वाणसे राक्षसराज रावणके नेत्र लाल हो गये। उसने अत्यन्त कुपित होकर हनुमानजीके वक्षपर अपना प्रचण्ड घूँसा मारा।

रावणके मुक्केसे हनुमानजी पुनः विचलित हो गये। धैर्यपूर्वक उनके सँभलते-सँभलते रावण वानर-सेनापति नीलपर चढ़ बैठा। हनुमानजी उधर दौड़े, किंतु रावणको नीलसे युद्ध करते देखकर उन्होंने कहा—'अरे निशाचर! इस समय तुम दूसरेसे युद्ध कर रहे हो, इस कारण मैं तुमपर प्रहार नहीं कर रहा हूँ!'

* * *

इस प्रकार हनुमानजीकी प्रचण्ड वीरताके कारण शत्रुओंके रक्तसे लिप्त उनका दर्शन होनेपर रावण भी मन-ही-मन काँप उठता था। एक बार वह सुमित्रानन्दनसे युद्ध करनेमें लगा था तथा लक्ष्मणके तीक्ष्णतम शरोंसे व्याकुल होकर भी वह उन्हें कोई क्षति नहीं पहुँचा पा रहा था। उसका सारा शरीर मेद और रक्तसे सन गया था। उस अवस्थामें उसने रणभूमिमें ब्रह्माजीकी दी हुई शक्ति बड़े वेगसे श्रीरामानुजपर छोड़ दी। वह शक्ति लक्ष्मणके विशाल वक्षःस्थलमें प्रविष्ट हो गयी और वे आहत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

रावण प्रसन्न होकर लक्ष्मणके समीप पहुँचा और उन्हें उठाने लगा; किंतु भगवान् शिवके कैलासपर्वतको उठा लेनेवाला रावण श्रीरामानुजके शरीरको हिला भी न सका! उस समय हनुमानजी दौड़े और अत्यन्त कुपित होकर उन्होंने रावणकी छातीमें वज्र-तुल्य मुक्केसे प्रहार किया।

उस मुक्केके भयानक प्रहारसे रावणको चक्कर आ गया। वह घुटनेके बल बैठ गया और काँपता हुआ गिर पड़ा। उसके मुख, नेत्र और कानोंसे रक्त बहने लगा। तड़पता, छटपटाता और चक्कर काटता हुआ रावण विवशतः अपने रथके पिछले भागमें निश्चेष्ट होकर जा बैठा और कुछ ही देरमें मूर्च्छित हो गया।

इधर हनुमानजी सुमित्राकुमारको अपने दोनों हाथोंसे उठाकर श्रीरघुनाथजीके समीप ले गये। शत्रुओंके लिये हिल न सकनेवाले शेषावतार लक्ष्मण आञ्जनेयके सौहार्द एवं उत्कट भक्तिभावके कारण उनके लिये सहज ही हलके हो गये।

कुछ ही देरमें लक्ष्मण सर्वथा नीरोग हो गये।

* * *

रावण वानरोंके प्रख्यात शूरवीरोंपर आक्रमण कर उन्हें धराशायी करने लगा। यह देखकर श्रीराघवेन्द्रने भी उसपर आक्रमण किया। उस समय भगवान् श्रीरामके अनन्य सेवक पवनकुमारने उनके समीप जाकर निवेदन किया—'प्रभो! जैसे भगवान् विष्णु गरुडपर चढ़कर दैत्योंका संहार करते हैं, उसी प्रकार आप मेरी पीठपर चढ़कर इस राक्षसको दण्ड दें।'‡

आञ्जनेयकी प्रार्थना सुनकर भगवान् श्रीराम उनकी पीठपर चढ़कर असुरराज रावणसे युद्ध करने लगे। आवश्यकतानुसार सुमित्राकुमार भी पवननन्दनके कंधेपर

* एष मे दक्षिणो बाहुः पञ्चशाखः समुद्यतः। विधमिष्यति ते देहे भूतात्मानं चिरोषितम्॥ (वा० रा० ६। ५९। ५६)

† धिगस्तु मम वीर्यस्य यत् त्वं जीवसि रावण। (वा० रा० ६। ५९। ६६)

धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौं तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही॥ (रामचरितमानस ६। ८३। २)

‡ मम पृष्ठं समारुह्य राक्षसं शास्तुमर्हसि॥ विष्णुर्यथा गरुत्मन्तमारुह्यामरवैरिणम्॥ (वा० रा० ६। ५९। १२४-२५)

बैठकर शत्रुसे युद्ध करते। इस प्रकार महावीर हनुमान युद्ध-भूमिमें सर्वत्र प्रमुख भूमिका अदा कर रहे थे। उन्होंने कितने राक्षसोंको जीवनसे मुक्त किया, इसकी संख्या नहीं। निश्चय ही युद्ध-भूमिमें असुरोंको साक्षात् कालके वेषमें दर्शन देनेवाले हनुमानजीके हृदयमें उनके प्रति अपार करुणा भरी थी। वे प्रत्येक असुरको यथासम्भव प्रभुके सम्मुख लाकर या प्रभुका स्मरण करते हुए उसका वध करके उसे सदाके लिये अक्षय सुख-शान्ति-निकेतन प्रभुके धाम भेज देनेके लिये प्रतिक्षण प्रयत्नशील थे।

संजीवनी-आनयन

युद्ध उत्तरोत्तर भयावह होता जा रहा था। रणाङ्गणमें मेघनाद आया। उसके सम्मुख विशाल धनुष-वाण धारण किये लक्ष्मण थे। भयानक संग्राम हुआ। इन्द्रजित्‌ने अपने वाणोंकी वर्षासे वानर-भालुओंको अधीर कर दिया। मेघनादका गर्जन-तर्जन देख महावीर हनुमानजीने तुरंत एक पर्वत-शिखर उखाड़कर उसके ऊपर फेंका। प्राण-रक्षाके लिये निशाचर आकाशमें चला गया, अन्यथा अपने रथ, सारथि और घोड़ोंके साथ वह भी वहीं पिस गया होता। हनुमानजी उसे बार-बार ललकारते थे, किंतु रावण-पुत्र उनसे दूर ही रहता था। वह अच्छी प्रकार समझ रहा था कि पवनपुत्रसे भिड़ना मृत्यु-वरणसे कम नहीं है।

मेघनाद और लक्ष्मणमें भयंकर युद्ध हुआ। मेघनादने सौमित्रिपर अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार किया, किंतु वे सभी व्यर्थ होते गये। असुरने अनेक छल-कपट एवं अनीतिपूर्ण कार्य किये, परंतु श्रीरामानुजने क्रुद्ध होकर अपने तीक्ष्ण वाणोंसे उसके रथको नष्ट कर दिया; सारथिकी मृत्यु हो गयी।

रावणकुमार क्रोधोन्मत्त होकर लक्ष्मणको मार डालना चाहता था, किंतु उसका कोई वश नहीं चल रहा था। उलटे वीरवर लक्ष्मणके युद्ध-कौशलसे उसीके प्राण संकटमें पड़ गये। अपनी रक्षाका कोई मार्ग न देखकर उस क्रूर असुरने लक्ष्मणजीपर ब्रह्मप्रदत्त अमोघ शक्ति फेंकी। शक्ति अत्यन्त तीव्र गतिसे सुमित्राकुमारके विशाल वक्षमें प्रविष्ट हो गयी। रक्तकी धारा फूट पड़ी और श्रीरामानुज अचेत होकर पृथ्वीपर गिर गये।

लक्ष्मणको मूर्च्छित देखकर मेघनाद उन्हें उठाने दौड़ा। उसीने नहीं, उसकी तरह अनेक वीर राक्षसोंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, किंतु शेषावतार लक्ष्मणको वे हिला भी न सके। राक्षस सिर झुकाकर लौट गये। उस समय हनुमानजी दूसरी ओर राक्षसोंके संहारमें लगे थे। सूचना प्राप्त होते ही वे उछलकर श्रीरामानुजके समीप आये। लक्ष्मणको मूर्च्छित देखकर वे साक्षात् यमकी तरह भयानक हो गये। उनके नेत्रोंसे आगकी ज्वाला निकलने लगी, फिर तो कुछ ही देरमें वहाँ असुर-सैनिकोंका सर्वनाश हो गया। कुछ ही असुर पलायन कर प्राण बचा सके। तब हनुमानजीने श्रीरामानुजको सहज ही अपने अङ्कमें उठा लिया। सुन्दरतम सुमित्राकुमारकी मलिन मुखाकृतिको देखकर वज्राङ्गबलीके नेत्रोंमें आँसू भर आये।

संध्याके अनन्तर श्रीरघुनाथजी लक्ष्मणजीकी चिन्ता कर ही रहे थे कि हनुमानजी उन्हें अपने हाथोंमें उठाये आ गये। उन्होंने मूर्च्छित सुमित्राकुमारको प्रभुके सम्मुख लिटा दिया। श्रीरामानुजको मूर्च्छित देखकर समस्त वानर-भालू चिन्तित हो गये और अपने भाई लक्ष्मणके वक्षमें इन्द्रजित्‌की प्रविष्ट हुई अमोघ शक्ति एवं उनके उदास मुखको देखकर भगवान् श्रीरामका हृदय भी व्यथासे भर गया।

श्रीरघुनाथजीको अधीर होते देखकर रुद्रावतार पवनपुत्रके नेत्र भी सजल हो गये, परंतु इस विषम परिस्थितिमें सबको सँभालनेका दायित्व भी उनपर ही था। अतएव अपने मनको दृढ़ करके वे सबको उत्साहित करते हुए बोले—'प्रभो! मेरे रहते आप छोटे भाईकी चिन्ता क्यों करते हैं? यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं अभी स्वर्गसे अमृत ले आऊँ या सुधांशुको वस्त्रकी भाँति निचोड़कर उसका अमृत सुमित्राकुमारके मुँहमें डाल दूँ। सुमित्राकुमारके जीवनकी रक्षाके लिये मैं पृथ्वीको भेदकर तुरंत पाताल चला जाऊँ और वहाँ नागोंको मारकर अमृतकुण्ड ही लाकर लक्ष्मणको उसमें स्नान करा दूँ—यही क्यों, आज मैं साक्षात् कालको ही ध्वंस कर देता हूँ, जिससे लक्ष्मणके लिये तो चिन्ता दूर हो ही जायगी, समस्त प्राणी भी सदाके लिये मृत्यु-भयसे मुक्त हो जायँगे।'

हनुमानजीका प्रलयंकर स्वरूप प्रकट होता जा रहा था, पर लीला-वपु श्रीरघुनन्दनको तो मनुष्योचित आचरण करना था। उन्हें रुद्रके इस वेषको देखकर चिन्ता हुई ही थी कि उसी समय विभीषणके परामर्शसे महाबुद्धिमान् जाम्बवान्‌ने कहा—'भैया हनुमान! निस्संदेह तुम सब कुछ कर सकते हो। तुम्हारे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है; किंतु तुम्हें यह सब कुछ नहीं करना है। केवल तुम लंकामें चले जाओ। पहले

तुमने उस नगरीको अच्छी प्रकार देख ही लिया है। वहाँ सुषेण[१] नामक योग्यतम चिकित्सक है। तुम उसे ले आओ। उसके बताये हुए उपचारसे निश्चय ही लक्ष्मणके घाव तुरंत भर जायँगे और ये पूर्ववत् शक्ति-सम्पन्न भी हो जायँगे।'

विभीषणने श्रीहनुमानको सुषेणके घरका ठीक-ठीक पता भी बता दिया। बस, हनुमानजी अत्यन्त छोटा रूप धारणकर लंकामें तुरंत प्रविष्ट हो गये। सुषेणके द्वारपर पहुँचकर उन्होंने सोचा—'सुषेण शत्रुपक्षके चिकित्सक हैं, कहीं ये चलना अस्वीकार न कर दें।' बस, पवनकुमारने अधिक समय नष्ट करना उचित नहीं समझा। उन्होंने उनका सम्पूर्ण भवन समूल ही उखाड़ लिया और उसे आकाश-मार्गसे लाकर श्रीरघुनन्दनके समीप कुछ दूरीपर रखकर खड़े हो गये।

सुषेण अपने भवनसे निकले तो श्रीरामकी सेनाको देखकर चकित हो गये। उन्हें समझते देर न लगी कि मुझे किसलिये लाया गया है? विभीषणने भी उन्हें स्थिति समझा दी।[२] सुषेणने तुरंत नाड़ी, हृदय एवं घावकी परीक्षा की और बोले—'घाव गम्भीर है, किंतु यदि संजीवनी बूटी यहाँ सूर्योदयके पूर्व आ जाय तो ये जीवित हो जायँगे और इनकी शक्ति भी पूर्ववत् लौट आयेगी।'

सुषेणने दृष्टि उठाकर देखा, सामने पवनकुमार सचिन्त-मुद्रामें खड़े थे। लंका-दहनके समयसे ही उनकी शक्तिसे परिचित होनेके कारण उन्होंने उनसे कहा—'पराक्रमी पवनकुमार! यह काम आप ही कर सकेंगे। आप तुरंत हिमालय-पर्वत चले जाइये। वहाँ पहुँचनेपर आपको अत्यन्त ऊँचाईपर सुवर्णमय पर्वत ऋषभका तथा कैलास-शिखरका दर्शन होगा। उन दोनों शिखरोंके बीच अत्यन्त दीप्तिमान् ओषधियोंका पर्वत द्रोण दिखायी देगा। उसकी दीप्ति अद्भुत है और वहाँ सभी ओषधियाँ सुलभ हैं। वहाँ संजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और संधानी नामक महौषधियाँ प्रकाशित रहती हैं। आप उन्हें शीघ्र लाकर लक्ष्मणको प्राण-दान करें। स्मरण रहे, ये ओषधियाँ सूर्योदयके पूर्वतक ही उपयोगी सिद्ध हैं। सूर्योदयके अनन्तर सुमित्राकुमारकी रक्षा असम्भव हो जायगी।'

'जय श्रीराम!' श्रीरघुनन्दनके चरणोंमें प्रणाम कर अञ्जनानन्दनने गर्जना की और वायुवेगसे उड़े। उन्हें हिमालयके समीप पहुँचते देर न लगी। उन्होंने हिमालयकी तराईमें एक अत्यन्त सुन्दर तपोवन देखा। वह तपोवन एक योजन विस्तृत था और उसमें पके हुए सुन्दर फलोंसे लदे कदली, शाल, खजूर और कटहल आदिके वृक्ष लगे थे। उक्त तपोवनके एक सुरम्य आश्रममें एक तेजस्वी मुनि भगवान् शंकरकी पूजा कर रहे थे।

हनुमानजी तृषाका अनुभव कर रहे थे। उन्होंने सोचा, यहाँ जल पीकर तब द्रोणगिरिपर चलूँ। उन्होंने मुनिके चरणोंमें नमस्कार कर कहा—'भगवन्! मैं भगवान् श्रीरामका दूत पवनपुत्र हनुमान हूँ। स्वामीके आवश्यक कार्यसे जा रहा हूँ। मुझे अत्यधिक प्यास लगी है। कृपया मुझे जल बता दीजिये।'

'तुम मेरे कमण्डलुका जल पी सकते हो।' मुनिके उत्तरमें हनुमानजीने कहा—'मुनीश्वर ! कमण्डलुके जलसे ही मेरा काम नहीं चलेगा। मेरी तृप्तिके लिये कोई जलाशय बतलाइये।'

मुनिने दाँत पीस लिये। हनुमानजीके कार्यमें देर करनेके लिये उसने कहा—'कपीन्द्र! मुझसे कुछ छिपा नहीं है। तपोबलसे मैं त्रिकालकी बात जानता हूँ। श्रीरामका लंकाधिपति रावणके साथ युद्ध छिड़ा हुआ है। यद्यपि लक्ष्मण इन्द्रजित्‌की अमोघ शक्तिसे मूर्च्छित हो गये हैं, किंतु अब सुमित्राकुमार और समस्त वानर-वृन्द सचेत होकर बैठ गये हैं। अतएव तुम यहाँ स्थिरतासे मधुर फलोंको खाकर जल पी लो और फिर विश्राम करो। तदनन्तर लौट जाना।'

हनुमानजी बोले—'मुनिवर! आप मुझे केवल जलाशय बतला दीजिये। मैं प्रभुके दर्शनके बिना एक क्षणके लिये भी विश्राम करना नहीं चाहता।'

श्रीरघुनाथजीके कार्यमें विघ्न उपस्थित करनेके लिये भेजे गये मुनिवेषधारी मायावी असुर कालनेमिके कमण्डलुका विष व्यर्थ गया। मुनिरूपधारी असुरने कहा—'वे ओषधियाँ सर्वसाधारणको नहीं दीखतीं, लुप्त हो जाती हैं; किंतु मैं तुम्हारी सहायता करूँगा, तुम जलाशयमें जल पीकर स्नान कर लो। फिर तुम्हारे

१. अन्यत्र वर्णन मिलता है कि भगवान् श्रीरामकी वानरी-सेनामें सुषेण नामक एक वानर सुयोग्य चिकित्सक थे। उनके द्वारा इस ओषधिका एक बार प्रयोग हो चुका था। इस बार महामति जाम्बवान्‌ने उसी ओषधिके लिये पवनपुत्रको भेजा। कल्पभेदसे यह कथा भी सत्य है; किंतु रामचरितमानसके अनुसार लंकाके चिकित्सक सुषेणके द्वारा लक्ष्मण-मूर्च्छा मिटनेकी बात अधिक प्रसिद्ध है।

२. यह घटना उन दिनोंकी है, जब चिकित्सक अपने पवित्रतम कर्तव्यको ही सर्वोपरि मानते थे। शत्रु हो या मित्र—चिकित्सकका काम तो रोगीका प्राण बचाना है। इस कारण सुषेणपर अविश्वासका कोई हेतु नहीं था।

आनेपर मैं तुम्हें एक मन्त्रका उपदेश कर दूँगा, जिससे तुम वह ओषधि सहज ही देख सकोगे।'

मायावी असुरने आगे कहा—'देखो, तुम नेत्र बंद करके जल पीना।' उसने जलाशय बता दिया।

हनुमानजीने नेत्र बंद करके जलाशयमें जल पीना प्रारम्भ ही किया था कि एक महामायाविनी घोररूपिणी मकरीने उनका पैर पकड़ लिया। नेत्र खोलकर पवनपुत्रने देखा, मकरी उन्हें निगलनेका प्रयत्न कर रही थी। बस, हनुमानजीने क्रुद्ध होकर उसका मुख फाड़ डाला। वह उसी समय मर गयी।

सहसा हनुमानजीने आकाशमें एक दिव्यरूपिणी स्त्रीको देखा। उसने उनसे कहा—'कपीश्वर! मैं शापग्रस्ता धान्यमाली नामक अप्सरा थी। आज आपकी कृपासे मैं शापमुक्त हो गयी। अनघ! वह सुरम्य आश्रम सर्वथा कृत्रिम है। मुनिके वेषमें कालनेमि नामक असुर रावणके आदेशानुसार आपके कार्यमें व्यवधान डालनेका प्रयत्न कर रहा है। आप इस दुष्टको मारकर शीघ्र द्रोणाचल चले जाइये। मैं आपके पावन स्पर्शसे कृतार्थ होकर ब्रह्मलोक जाती हूँ।'

अप्सरा अदृश्य हो गयी और हनुमानजी कालनेमिके समीप पहुँचे। मुनिवेषधारी असुरने कहा—'वानरश्रेष्ठ! आओ, अब मैं तुम्हें दीक्षा प्रदान करूँ।' उसने सोचा था कि लंबी-चौड़ी विधि बतानेमें ही सारी रात्रि व्यतीत हो जायगी।

'मुनिवर! पहले दक्षिणा ले लीजिये'—सहसा हनुमानजीके वचन सुन कालनेमि चौंका ही था कि वह पवनपुत्रकी विशाल पूँछमें बँधकर पिसने लगा और जब वज्राङ्गबलीने उसे विशाल शिलापर जोरसे पटका तो उसके किसी भी अङ्गका पता नहीं चला। मृत्युके समय वह असुरवेषमें प्रकट हो गया और 'राम-राम' कहते हुए उसने सद्गति प्राप्त कर ली।

'जय श्रीराम!' हनुमानजी प्रसन्नतापूर्वक द्रोणगिरिपर पहुँचे। वहाँ अनेक ओषधियाँ प्रकाशित हो रही थीं। वे सुषेणद्वारा बतायी हुई ओषधियोंको पहचान न सके। इस कारण उन्होंने वृक्षों, हाथियों, सुवर्ण, अन्य सहस्रों प्रकारकी धातुओं तथा ओषधियोंसहित पर्वतको ही सहसा उखाड़ लिया और उसे लेकर वे गरुड़के समान भयंकर वेगसे आकाशमें उड़ चले।

द्रोणाचलसहित आकाशमें वेगपूर्वक चलनेसे आँधी और तूफानकी तरह ध्वनि हो रही थी। उड़ते हुए हनुमानजी अयोध्याके ऊपर पहुँचे ही थे कि श्रीरामके स्मरणपरायण भरतजीने सोचा—'विशाल पर्वत लिये सम्भवत: यह कोई असुर जा रहा है।' उन्होंने अपना धनुष उठाया और उसपर बिना नोकका वाण रखकर उसे धीरेसे छोड़ दिया।

'श्रीराम! जय राम!! जय श्रीसीताराम!!!' कहते हुए हनुमानजी मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़े। उनकी मूर्च्छितावस्थामें भी पर्वत सुरक्षित था।

'अरे! यह तो कोई श्रीराम-भक्त है!'—भरतजीका हृदय काँप उठा! वे दौड़े। उन्होंने मूर्च्छित महाकाय मर्कटाधीशका कुम्हलाया हुआ मुँह देखा। उनके अधर हिल रहे थे और धीरे-धीरे सुनायी दे रहा था—'श्रीराम! जय राम!! जय श्रीसीताराम!!!'

जटाजूटधारी श्यामल भरतजीके नेत्र बहने लगे। उन्होंने हनुमानजीको सचेत करनेके अनेक प्रयत्न किये, किंतु सबको विफल होते देखकर अन्तमें कहा—'जिस निर्मम विधिने मुझे अपने प्रभु श्रीरामसे पृथक् किया, उसीने मुझे आज यह दु:खका दिन भी दिखाया है। किंतु यदि भगवान् श्रीरामके अमल चरण-कमलोंमें मेरी विशुद्ध निश्छल प्रीति है और श्रीरघुनाथजी मुझपर प्रसन्न हों तो यह वानर पीड़ामुक्त होकर पूर्ववत् सचेत और सशक्त हो जाय।'

'भगवान् श्रीरामकी जय !'—हनुमानजी तुरंत उठकर बैठ गये। उन्हें जैसे कुछ हुआ ही नहीं। वे पूर्णतया स्वस्थ एवं सशक्त थे। उन्होंने अपने सम्मुख भरतजीको देखा तो समझा कि मैं श्रीरघुनाथजीके ही समीप हूँ। उन्होंने तुरंत चरणोंमें प्रणाम किया और पूछा—'प्रभो! मैं कहाँ हूँ?'

'यह तो अयोध्या है।' आँसू पोंछते हुए भरतजीने कहा—'तुम अपना परिचय दो।'

'यह अयोध्या है?' हनुमानजी बोले—'तब तो मैं अपने स्वामीकी पवित्र पुरीमें पहुँच गया हूँ और जैसा मेरे प्रभु प्राय: गुण-गान किया करते हैं, लगता है कि आप भरतजी हैं।'

'हाँ भैया! अधम भरत यही है!' भरतजीने रोते हुए कहा—'इसी पातकीके कारण मेरे प्राणाधार श्रीरामको चौदह वर्षके लिये अरण्य-वास करना पड़ा है। मेरे ही कारण पिताको परलोक जाना पड़ा और जनकदुलारीको अनेक यातनाएँ सहनी पड़ रही हैं। मैं वही पापात्मा भरत हूँ! मैं तुम्हारा परिचय पानेके लिये व्यग्र हूँ।'

हनुमानजीने भरतजीके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'प्रभो! देवी अञ्जना मेरी माता हैं और मैं वायुदेवका पुत्र श्रीरामदूत हनुमान हूँ। लंकाधिपति रावणने माता जानकीका हरण कर उन्हें अशोक-वाटिकामें रख दिया है। प्रभुने समुद्रपर सेतु-निर्माण करवाया और फिर अपने वीर वानर-भालुओंकी असीम वाहिनीके साथ समुद्रके

पार उतर गये। युद्ध हो रहा है। आज मेघनादकी शक्तिसे लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये हैं। उन्हींके लिये मैं संजीवनी बूटी लेने द्रोणाचल गया था। बूटी न पहचाननेके कारण पूरा पर्वत-शिखर ही लिये जा रहा हूँ। अत्यन्त सौभाग्यकी बात है कि मार्गमें आपका भी दर्शन हो गया! प्रभु श्रीराम सदा ही आपका गुण-गान किया करते हैं। आज आपके दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया।'

'भैया हनुमान!' रोते हुए भरतजीने उन्हें अपने वक्षसे लगा लिया और रोते-रोते ही उन्होंने हनुमानजीसे कहा—'भाई पवनकुमार! मैं प्रभुके एक भी काम न आ सका। मुझ पातकीके ही कारण प्रभुको ये समस्त विपदाएँ झेलनी पड़ रही हैं और जब भाई लक्ष्मण मूर्च्छित पड़े हैं, तब मैंने और व्यवधान उत्पन्न कर दिया!'

उसी समय हनुमानजीका समाचार पाकर माता कौसल्या, देवी सुमित्रा और वसिष्ठजी तथा अन्य सभी गुरुजन वहाँ उपस्थित हो गये। माता सुमित्राने कहा—'हनुमान! श्रीरामसे कह देना, लक्ष्मणने अपने धर्मका पालन किया है, इस कारण मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। सेवकको तो स्वामीकी सेवामें प्राण-त्याग करना ही चाहिये। लक्ष्मण चाहे न रहे, पर सीताके बिना श्रीरामका यहाँ आगमन मैं सह न सकूँगी।'

माता कौसल्या बोल उठीं—"देखो, भैया पवनकुमार! तुम रामसे इनकी एक भी बात न कहना। ये तो रामको प्राणसे भी अधिक चाहती हैं, इस कारण इन्हें रामके बिना कहीं कुछ दीखता ही नहीं; पर तुम रामसे मेरा संवाद अवश्य कहना कि 'जिस प्रकार यहाँसे जाते समय तुम लक्ष्मणको अपने साथ ले गये थे, उसी प्रकार अयोध्या आते समय अपने साथ लक्ष्मणको अवश्य लेते आना। लक्ष्मणके बिना तुम्हें अयोध्या नहीं आना चाहिये'।"

इधर पवनात्मजको समाचार दिये जा रहे थे, उधर अयोध्याकी विशाल वाहिनी सेनापतिके आदेशसे लंका जानेके लिये प्रस्तुत हो गयी थी। सहसा शस्त्रास्त्रोंसे सजी विशाल वाहिनीको देखकर हनुमानजी चकित हो गये।

सेनापतिकी प्रार्थना सुनते ही कुलगुरु वसिष्ठजीने कहा—'चक्रवर्ती सम्राट्की सेना ऐसी ही होनी चाहिये, किंतु मर्यादाका उल्लङ्घन न हो। इस समय सेना तो क्या, शत्रुघ्नका भी वहाँ जाना उचित नहीं। श्रीरघुनन्दन ही अकेले धरतीके सम्पूर्ण राक्षसोंको समाप्त करनेमें सर्वथा समर्थ हैं।'

श्रीरघुनन्दनका संक्षिप्त समाचार सबने सुन लिया। सबके नेत्र आँसुओंसे भरे थे। उधर रात्रि बीत जानेकी आशङ्का थी। इस कारण भरतजीने कहा—'भाई हनुमान! तुम मेरे वाणपर बैठ जाओ। मेरा यह वाण तुम्हें तुरंत प्रभुके समीप पहुँचा देगा। कहीं देर न हो जाय?'

'यह वाण पर्वतसहित मेरा भार कैसे सह सकेगा!'—हनुमानजीके मनमें क्षणभरके लिये गर्व उत्पन्न हो गया, किंतु दूसरे ही क्षण उन्होंने सोचा—'अभी भी तो मैं इनके बिना नोकके वाणके आघातसे मूर्च्छित होकर गिर ही गया था। प्रभु-कृपासे सब सम्भव है।' यह सोचकर उन्होंने हाथ जोड़कर भरतजीसे कहा—'प्रभो! स्वामीके प्रतापसे आपका स्मरण करता हुआ मैं शीघ्र ही पहुँच जाऊँगा।'

हनुमानजीने भरतजीके चरणोंमें प्रणाम किया और पूर्ववत् वायुवेगसे आकाशमें उड़ चले।

उधर रात्रि अधिक व्यतीत होते देख भगवान् श्रीराम अत्यन्त दु:खसे अधीर हो गये और विलाप करते हुए कहने लगे—'जिस भाई लक्ष्मणने मेरे लिये माता-पिता-पत्नी ही नहीं, सम्पूर्ण राज्य-सुखको त्याग दिया, मेरे सुखके लिये वन-वन भटकता फिरा, उसके बिना मैं अब अयोध्यामें कौन-सा मुँह लेकर जाऊँगा! वैदेही मिल भी गयी तो अब लक्ष्मणके बिना मेरा क्या होगा? अपने प्राणप्रिय भाईके बिना मैं निश्चय ही अपना प्राण त्याग दूँगा; फिर हमारी तीनों माताएँ और भरत तथा शत्रुघ्न भी जीवित नहीं रह सकेंगे। इस प्रकार अब अयोध्याका सर्वनाश हो जायगा। मेरे न रहनेपर वानरराज सुग्रीव युवराज अङ्गदके साथ किष्किन्धामें और ये वीर वानर-भालू पर्वत और वनोंमें चले जायँगे; किंतु विभीषणको दिये गये मेरे वचनका क्या होगा? विभीषणने मेरा आश्रय ग्रहण किया है। ये मेरे शरणागत हैं। मेरा हृदय इसी चिन्ताग्निमें झुलस रहा है कि इन भक्त विभीषणका क्या होगा।'*

लीलावपु भगवान् श्रीराघवेन्द्रके नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था। उन्हें विलखते और करुण विलाप करते देखकर वानर-भालू अत्यन्त व्याकुल हो गये। सबके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे। रोते हुए वे रह-रहकर आकाशकी ओर देखते जाते थे। उनके मनमें महावीर हनुमानके आ जानेकी आशा लगी थी और वह आशा पूरी भी हो गयी।

* गिरि-कानन जैहैं साखामृग, हौं पुनि अनुज सँघाती। ह्वै है कहा बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती॥ (गीतावली ६।७)

'जय श्रीराम!' का घोष करते हुए हनुमानजीने द्रोणाचलको रघुनाथजीके कुछ ही समीप एक ओर रख दिया और उनके चरणोंपर गिर पड़े। वानरोंकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। हर्षावेगमें कोई वानर हनुमानजीका चरण दबाता तो कोई हाथ और कोई उनकी पूँछ सहला रहा था।

इधर वानर-भालू प्रसन्नता व्यक्त कर रहे थे, उधर सुषेणने बूटी लेकर लक्ष्मणको सुँघा दी। लक्ष्मणजी जैसे नींदसे जाग पड़े हों। उठते ही उन्होंने कहा—'मेघनाद कहाँ है?' कुछ देर बाद उन्हें परिस्थितिका ज्ञान हुआ।

कृतज्ञताकी मूर्ति श्रीरघुनाथजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर हनुमानजीको गले लगाते हुए कहा—'हे वत्स! हे महाकपे!! आज तुम्हारी कृपासे ही मैं अपने भाई लक्ष्मणको स्वस्थ-निरामय देख रहा हूँ।'*

श्रीसौमित्रिके पूर्ण स्वस्थ हो जानेपर सुषेणने श्रीरघुनन्दनके चरणोंमें प्रणाम किया। दयाधाम श्रीरामने उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कुछ माँगनेको कहा। सुषेणने प्रभुकी सुदृढ़ भक्तिकी याचना की, जिसे भक्तवत्सल श्रीरामने उन्हें सहज ही दे दी। सुषेणके इच्छानुसार महावीर हनुमानने उनके भवनको लंकामें ले जाकर पूर्ववत् यथास्थान रख दिया। तदनन्तर वे द्रोणाचलको भी यथास्थान रखकर सूर्योदयके पूर्व ही लौट आये।

वज्राङ्गबलीके इस महान् कार्यकी स्वयं भगवान् श्रीराम और पुनर्जीवन-प्राप्त लक्ष्मण तो प्रशंसा करते ही थे, समस्त वानर-भालू सर्वत्र उन्हींका गुण-गान कर रहे थे; किंतु अभिमान-शून्य आञ्जनेयके हृदयमें इसका तनिक भी विचार नहीं था, जैसे उन्होंने कुछ किया ही नहीं था। उनके हृदयमें यही भाव था मानो यह सब करनेवाले कोई अन्य हनुमान थे। वे तो सबसे पृथक् मन-ही-मन प्रभुके अरुण कमल-तुल्य सुकोमल चरणोंके ध्यानमें तल्लीन थे।

अहिरावण-वध

रावणके सहस्रों शूर-वीर तो प्रतिदिन श्रीरामके साथ होनेवाले युद्धकी भेंट चढ़ ही जाते थे, उसके चुने हुए परमपराक्रमी योद्धा भी कालके गालमें प्रवेश कर गये थे; किंतु जब उसका प्राणप्रिय पुत्र अजेय मेघनाद सुमित्राकुमारके शरसे विद्ध होकर मर गया, तब दशग्रीव धैर्य धारण न कर सका। वह व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गया। सचेत होनेपर वह अपनी निश्चित विजयके लिये उपाय सोचने लगा। उसे अपने सहयोगी अहिरावणकी स्मृति हो आयी; पर पातालके राक्षसराज अहिरावणको संदेश कैसे भेजा जाय? लंकासे बाहर जानेवाले द्वारोंपर तो शत्रुके सैनिकोंने अधिकार कर रखा था?

'अहिरावण देवी-भक्त है।'—रावणने विचार किया और वह सीधे देवी-मन्दिरमें पहुँचा। वहाँ उसने स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण किया और देवीकी पूजामें तल्लीन हो गया। दशाननकी आराधनासे आकृष्ट होकर अहिरावण वहाँ तुरंत आ पहुँचा। उसने आदरपूर्वक रावणके चरणोंमें प्रणाम कर उससे पूछा—'आपने मुझे कैसे स्मरण किया?'

'अहिरावण! मैं बड़ी विपत्तिमें उलझ गया हूँ। इस विपत्तिसे मुझे तुम्हीं उबार सकते हो?'—रावणने अहिरावणसे प्रार्थना की।

'क्या हुआ और मुझे क्या करना है, आज्ञा दीजिये।' अहिरावणने संक्षिप्त उत्तर दिया।

'अयोध्या-नरेश दशरथके दो पुत्र राम और लक्ष्मण वनमें आये थे।' दशाननने बताया—'उन्होंने मेरी बहन शूर्पणखाके नाक-कान काट डाले और खर-दूषणको मार डाला। इसपर क्रुद्ध होकर मैंने उनकी पत्नी सीताका हरण कर लिया। बस, युद्ध छिड़ गया। इस युद्धमें मेरे एक-से-एक वीर योद्धा मार डाले गये। यहाँतक कि कुम्भकर्ण और मेघनाद भी नहीं बचे। अब मैंने असहाय होकर तुम्हारा स्मरण किया है।'

'आपने सीताका हरण कर उचित कार्य नहीं किया।' अहिरावणने मनकी बात स्पष्ट कह दी—'आप वीरतापूर्वक श्रीरामसे युद्ध करते, यह तो शोभाकी बात थी; किंतु उनकी सहधर्मिणीका हरण कर आपने अनीतिपूर्ण कार्य किया है। इसका परिणाम तो शुभ हो ही नहीं सकता; दूसरे खर-दूषण, कुम्भकर्ण और इन्द्रजित्को मारनेवाला सामान्य पुरुष नहीं होगा। किंतु आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं क्या करूँ?'

रावणने कहा—'और कुछ नहीं, तुम किसी प्रकार केवल राम और लक्ष्मणको अपनी पुरीमें ले जाओ और वहाँ उनका वध कर डालो; फिर ये वानर-भालू तो स्वतः ही भाग जायँगे। इसी प्रकार मेरी रक्षा हो सकेगी।'

'आपके संतोषके लिये मैं यही करूँगा।' अहिरावणने

* मारुतिं प्राह वत्साद्य त्वत्प्रसादान्महाकपे। निरामयं प्रपश्यामि लक्ष्मणं भ्रातरं मम॥ (अ० रा० ६। ७। ३९)

राक्षसराज दशग्रीवको आश्वासन दिया—'आकाशमें प्रकाश देखते ही आप समझ लीजियेगा कि मैं निर्विघ्न दोनों भाइयोंको लिये जा रहा हूँ।' राक्षसकुलशिरोमणि रावणके चरणोंमें प्रणाम कर अहिरावण अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये चल पड़ा।

रात्रिका समय था। दिनभरके युद्धसे थकी श्रीरामकी सेना शयन कर रही थी। सर्वसिद्धिमय आञ्जनेयका पहरा था। उन्होंने अपनी पूँछ बढ़ाकर वानर-भालुओंकी विशाल वाहिनीको घेरेमें ले लिया था। पूँछकी प्राचीरको पारकर भीतर प्रवेश करना किसीके लिये सहज सम्भव नहीं था। अहिरावण सहम गया। कुछ क्षण सोचकर वह विभीषणका वेष धारण कर भीतर प्रविष्ट होने लगा।

'अरे भाई विभीषण! इतनी राततक बाहर कहाँ रहे?'—हनुमानजीने उससे पूछा। विभीषणका वेष बनाये हुए अहिरावणने तुरंत उत्तर दिया—'मैं संध्या-वन्दन करने समुद्र-तटपर चला गया था। वहाँसे लौटनेमें देर हो गयी।'

हनुमानजीके मनमें संशय तो हुआ, पर वे चुप ही रहे। अहिरावणने भीतर जाकर देखा कि सुग्रीव, अङ्गद, मयन्द, द्विविद, नल, नील, जाम्बवान् और विभीषण आदि प्रमुख सेनानायक श्रीराम और लक्ष्मणको अपने मध्य सुलाकर विश्राम कर रहे हैं। दिनभरके युद्धमें थके ये वीर सैनिक आञ्जनेय-जैसे प्रबल प्रहरीके संरक्षणमें सर्वथा निश्चिन्त गाढ़ निद्रामें शयन कर रहे थे।

भगवान् श्रीरामकी दाहिनी ओर उनका चमकता हुआ विशाल धनुष और शर-पूरित तूणीर था तथा बायीं ओर उनके प्रिय भाई लक्ष्मण थे। लक्ष्मणकी बायीं ओर उनका धनुष और त्रोण था। भगवान् श्रीरामका कर-कमल भाईके वक्ष:स्थलपर सुशोभित था।

भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणका चन्द्रविनिन्दक सुन्दर मुख! मुखारविन्दपर बिखरी अलकें!! निद्रालु प्रभुकी भुवनमोहिनी शान्त मुद्रा!!! सुग्रीवादि वानर-भालुओंके सौभाग्यका क्या कहना? जिन त्रिभुवनसुन्दर परमप्रभुकी एक झलक अनेक जन्मोंके कठोरतम तपश्चरणसे किसी-किसी महर्षि और मुनिपुंगवको ही प्राप्त होती है, उन्हीं करुणासिन्धु दशरथकुमारके साथ वे वानर-भालू खाते, पीते, सोते और युद्ध करते हैं; उन्हींके लिये संग्राममें प्राण-त्याग करते हैं!

उन दोनों अनन्त-सौन्दर्य-सुधा-सिन्धुको अहिरावणने देखा तो वह देखता ही रह गया। किंतु उसे अपने वचनका ध्यान था और लीलानायक श्रीराम-लक्ष्मणको मानवी-लीला करनी थी। उन्हें असुर भक्तोंका उद्धार करना था। समस्त सैनिकोंके जग जानेकी आशङ्कासे दुष्ट अहिरावणने उन्हें मोहित कर दिया, जिससे श्रीराम और अरण्य-वासमें सदा जागते रहनेवाले सुमित्राकुमार भी जैसे सोते ही रहे। महाशक्तिशाली अहिरावणने उन दोनों भाइयोंको उठाया और वह आकाशमार्गसे तीव्र-गतिसे भागा। सहसा आकाशमें प्रकाश छा गया। रावणकी प्रसन्नताकी सीमा न थी।

अब रावणका क्रोध पवनकुमारपर था, केवल श्रीपवनकुमारपर; क्योंकि साधारण-से-साधारण और भयानक-से-भयानक परिस्थितियों और कार्योंमें सफलताका श्रेय उन्हें ही प्राप्त होता था। श्रीभगवान्‌की तुच्छ-से-तुच्छ सेवा करनेमें उन्हें झिझक या लज्जाका अनुभव नहीं होता था, अपितु वे प्रभुकी सेवा करना अपना सौभाग्य समझते थे और सेवा करके ही संतुष्ट होते थे। रावणके पुत्र अक्ष, अन्यतम परमपराक्रमी असुर अकम्पन आदिका वध हनुमानजीने ही किया था। हनुमानजीके ही मुष्टि-प्रहारसे स्वयं दशानन भी मूर्च्छित हो गया था। लंकासे सुषेणको ले जाकर और सुदूर उत्तरसे द्रोणगिरि लाकर संजीवनीके द्वारा लक्ष्मणकी प्राण-रक्षा पवनपुत्रने ही की थी। किंतु अब श्रीराम और लक्ष्मणके मारे जानेपर राक्षसी मायासे उसे भी समाप्त किया जा सकता है—यह सोचकर दशानन आश्वस्त हुआ और हर्षातिरेकसे मन-ही-मन विजयोत्सव मनानेकी योजना बनाने लगा।

भगवान् श्रीरामके चरण-कमलोंमें सोये हुए सुग्रीव आकाशमें तीव्र प्रकाशके कारण जाग पड़े। उन्होंने अपने समीप प्रभुको नहीं देखा तो चिल्ला उठे—'प्रभु कहाँ गये? उन्हें कौन ले गया?' वानर-सेनामें अद्भुत कोलाहल मच गया। अङ्गद, विभीषण, मयन्द, द्विविद, नल, नील और जाम्बवान् आदि सभी आश्चर्यचकित थे। सबके हृदय काँप रहे थे। सभी चिन्तित और अशान्त हो पवनात्मजका मुँह देख रहे थे। बुद्धिमान् जाम्बवान्‌ने अञ्जनानन्दनसे कहा—'भैया! अब तुम्हीं हमलोगोंके प्राणोंकी रक्षा करो। चाहे जैसे प्रभुको लक्ष्मणसहित ले आओ। हमलोग तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये हैं।'

हनुमानजीने कहा—'इस पृथ्वीपर ही नहीं, आकाश और पातालमें कहीं भी प्रभु हों, मैं तुरंत उन्हें ले आऊँगा। प्रभुको लानेके लिये मैं कालका भी तत्काल संहार कर सकता हूँ; किंतु पता तो चले, वे कहाँ हैं?'

'रात्रिमें कोई अपरिचित तो नहीं आया था?' जाम्बवान्‌ने हनुमानजीसे पूछा।

'ना, रात्रिमें कोई नहीं आया। हाँ, विभीषणजी

अवश्य समुद्र-तटसे संध्या करके देरसे लौटे थे।' हनुमानजीका उत्तर सुनकर विभीषणजी अत्यन्त चकित हुए और बोले—'मैं तो सायंकालसे ही प्रभु-चरणोंके समीप था। क्षणार्धके लिये भी कहीं नहीं गया। अवश्य ही किसी मायावी असुरने षड्यन्त्र रचा है।'

कुछ क्षणोंके उपरान्त चिन्तित विभीषणने कहा—'लंकाके किसी मायावी असुरकी सामर्थ्य नहीं कि वह मेरा वेष धारण कर सके। निश्चय ही यह कुकृत्य अहिरावणने किया है। केवल वही मेरा वेष धारण करनेमें समर्थ है।'

'हनुमानजी!' विभीषणने मारुतात्मजकी ओर देखकर कहा—'असुर-वंशका प्रतापी राजा अहिरावण पातालपुरीमें रहता है। राक्षस-वंशका सर्वनाश होता देखकर रावणकी सहायता करनेके लिये वह सुमित्राकुमारके साथ प्रभुको उठा ले गया है। आप शीघ्र वहाँ जाइये और उस असुरका वध करके प्रभुको यहाँ ले आइये; अन्यथा हमारा जीवन नहीं रह पायेगा।'

'विभीषणसे पाताल-प्रवेशका मार्ग तथा अहिरावणकी राजधानी, उसके मार्ग, द्वार, राज-सदन आदिकी सभी आवश्यक जानकारी प्राप्त कर हनुमानजीने कहा—'आपलोग पूर्णतया सजग और सावधान रहिये। शत्रुको प्रभु तथा मेरी अनुपस्थितिकी गन्ध न लगने पाये और असुर-सेना तो क्या यदि स्वयं दुष्ट दशानन ही यहाँ युद्ध करने आ जाय तो उसका मुख-मर्दन करके ही रहियेगा।' हनुमानजीने सुग्रीवको प्रणाम किया और वे वायुवेगसे उड़े। उड़ते समय सहज ही उनके मुखसे निकला—'जय श्रीराम'।

पवननन्दनको पातालालोक पहुँचते कितनी देर लगती! वे पातालमें प्रविष्ट होकर सीधे अहिरावणके नगरके द्वारपर पहुँच गये। वहाँ ठीक उन्हींके आकार-प्रकारका एक महाकाय वानर नगरकी रक्षाके लिये नियुक्त था।

हनुमानजी सूक्ष्म रूप धारण कर द्वारके भीतर प्रवेश करने ही जा रहे थे कि गर्जते हुए वानरने कहा—'तुम कौन हो? सूक्ष्म रूप धारण कर चोरीसे कहाँ जा रहे हो? मेरे यहाँ रहते तुम द्वारके भीतर कदापि प्रवेश नहीं कर सकते। मेरा नाम मकरध्वज है और कान खोलकर सुन लो, मैं परमपराक्रमी वज्राङ्गबली हनुमानका पुत्र हूँ।'

'वज्राङ्गबली हनुमानका पुत्र?' हनुमानजीने चकित होकर पूछा—'अरे! हनुमान तो बालब्रह्मचारी हैं। तुम उनके पुत्र कहाँसे आ गये?'

मकरध्वजने उत्तर दिया—'मेरे पिता जब लंका-दहनके अनन्तर समुद्रमें पूँछ बुझाकर स्नान कर रहे थे, तब श्रमके कारण उनके शरीरसे स्वेद झर रहा था। वही स्वेदयुक्त जल एक मछली पी गयी। वह मछली पकड़कर मेरे स्वामी अहिरावणके भोजनागारमें लायी गयी थी। काटते समय उसके उदरसे मेरी उत्पत्ति हुई। अहिरावणने ही मेरा पालन-पोषण किया और अब उन्हींके आदेशसे मैं उनके इस वैभवशाली नगरकी रक्षा करनेमें तत्पर रहता हूँ।'

'बेटा! हनुमान तो मैं ही हूँ।' हनुमानजी अपने विशाल रूपमें प्रकट हो गये। मकरध्वजने उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

हनुमानजीने उससे पूछा—'बेटा! यह तो बता दो कि अहिरावण मेरे स्वामी श्रीराम और लक्ष्मणको यहाँ ले आया है क्या?'

मकरध्वजने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'नाम तो मुझे विदित नहीं, किंतु आज ही कुछ देर पहले वे कहींसे श्याम-गौर दो अत्यन्त सुन्दर राजकुमारोंको उठाकर ले आये हैं और अभी कुछ ही देरमें उन्हें देवीके सम्मुख बलि चढ़ानेवाले हैं।'

'अच्छा, अब मुझे जाने दो।' हनुमानजीके मुखसे निकलते ही मकरध्वजने उत्तर दिया—'नहीं पिताजी! आप भीतर नहीं जा सकते और जबतक मैं जीवित हूँ, आप मुझे पराजित किये बिना भीतर किसी प्रकार प्रवेश नहीं कर सकेंगे। यदि पिताके नाते मैंने आपको द्वारके भीतर जाने दिया तो मैं धर्मसे च्युत हो जाऊँगा। मैं अपने स्वामीके साथ विश्वासघात कदापि नहीं कर सकता।'

हनुमानजीको प्रभुके समीप पहुँचनेकी त्वरा थी। उन्होंने तुरंत अपने पुत्र मकरध्वजपर मुष्टिका-प्रहार किया, पर वह भी वीर पिताका वीर पुत्र था। युद्ध छिड़ गया। जैसा पिता, वैसा ही पुत्र। किसी प्रकार हनुमानजीने उसे पछाड़कर उसीकी पूँछसे उसे कसकर द्वारपर बाँध दिया और स्वयं द्रुत गतिसे भीतर चले गये।

हनुमानजी सूक्ष्मरूपसे देवी-मन्दिरमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा—चामुण्डाके सम्मुख प्रज्वलित अग्निकुण्डके समीप पाद्य, अर्घ्य, स्नानार्थ जल, रक्त चन्दन, रक्त पुष्प और रक्त पुष्पोंकी माला तथा धूप-दीपादि पूजोपकरण प्रस्तुत हैं। अहिरावण स्नान करके रक्त वस्त्र, रक्त चन्दन एवं रक्त पुष्पोंकी माला धारणकर वहाँ आ गया है। पूजा प्रारम्भ होनेवाली ही है। हनुमानजी सीधे देवीके पीछे चले गये। परमप्रभु श्रीरामके अनन्य सेवक पवनकुमारके स्पर्शसे देवी पातालमें प्रविष्ट हो गयीं और उनके स्थानपर स्वयं श्रीरामदूत देवीके रूपमें भयानक मुख फाड़कर खड़े हो गये।

अहिरावणने पूजा प्रारम्भ की। उसने गन्ध, अक्षत, पुष्प, पुष्पमाला, धूप और दीपके अनन्तर जब पक्वान्न देवीको अर्पण किया, तब हनुमानजीने उसे भक्षण कर लिया। लड्डू, खीर, पूरी, हलवा आदि जो भी पदार्थ अहिरावण देवीको अर्पित करता, हनुमानजी सब ग्रहण करते जाते।

'आज देवी अत्यन्त प्रसन्न हैं, तभी तो प्रत्यक्ष प्रकट होकर नैवेद्य स्वीकार कर रही हैं।'—अहिरावण मन-ही-मन प्रसन्न होकर प्रस्तुत समस्त नैवेद्य चढ़ा चुका और देवीरूपी मारुतात्मजने सबको उदरसात् कर लिया। अहिरावणने राज-सदनके सभी पक्वान्न और फलादि मँगवाये, हनुमानजीने उन्हें भी पा लिया।

अन्तमें असुरने श्रीराम और लक्ष्मणको मँगवाया। बलिके लिये ही राक्षसोंने परमप्रभु श्रीराम एवं लक्ष्मणको स्नान कराकर उन्हें मूल्यवान् नवीन वस्त्र और आभूषण धारण कराये थे। गन्ध, पुष्प, पुष्पमाला तथा धूप-दीपादिसे सविधि उनकी पूजा की थी। इस प्रकार उन्होंने श्रीरघुनाथजी एवं सुमित्राकुमारको सजाकर देवीके सम्मुख उपस्थित किया।

कालके गालमें पड़ा हुआ अहंकारी असुर बोला—'अब कुछ ही देरमें तुम दोनों भाई देवीकी भेंट चढ़ा दिये जाओगे। अपने त्राताका स्मरण कर लो।'

प्रभुको सर्वथा मौन देखकर लक्ष्मणजी अत्यन्त विस्मित थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि 'प्रभु कैसी लीला कर रहे हैं! ये स्वयं न तो असुरका संहार कर रहे हैं और न मुझे ही इसका वध करनेकी आज्ञा प्रदान करते हैं।'

उसी समय श्रीराघवेन्द्रने अपने अनुजसे कहा—'भाई लक्ष्मण! आपत्तिके समय समस्त प्राणी मेरा स्मरण करते हैं, किंतु मेरी आपदाओंका अपहरण करनेवाले तो पवनकुमार ही हैं। अतः हमलोग उन्हींका स्मरण करें।'

'यहाँ पवनपुत्र हनुमान कहाँ?' लक्ष्मणजीके कहते ही भगवान् श्रीरामने उत्तर दिया—'आञ्जनेय कहाँ नहीं हैं? धराके कण-कणमें वे विद्यमान हैं। मुझे तो देवीके रूपमें भी उन्हींके दर्शन हो रहे हैं।'

सुमित्राकुमारने देवीकी ओर दृष्टि उठायी ही थी कि वज्राङ्गबली हनुमानजीने घोर गर्जना की; ऐसा प्रतीत हुआ मानो उस गर्जनसे आकाश फट जायगा। सम्पूर्ण पातालपुरी काँप उठी। राक्षसोंसहित वीर अहिरावणके नेत्र मुँद गये। इतनी ही देरमें हनुमानजीने एक ही झटकेसे अहिरावणके हाथसे तलवार छीन ली और श्रीराम एवं लक्ष्मणको अपने कंधोंपर बैठाकर लगे असुरोंका वध करने।

सहसा कैसे क्या हो गया? असुर चकित हो ही रहा था कि वहाँके आधे राक्षस समाप्त हो गये। भयानकमूर्ति हनुमानजीसे प्राण बचाकर राक्षस भाग जाना चाहते थे, किंतु पवनकुमारने अपनी पूँछ लंबी कर चतुर्दिक् उसका इतना विशाल प्राचीर बना दिया था कि एक भी राक्षस भागकर अपना प्राण नहीं बचा सका। सभी मार डाले गये।

अहिरावणने कुपित होकर अपनी दूसरी तीक्ष्ण तलवारसे हनुमानजीपर आक्रमण किया, किंतु रुद्रके अवतार वज्राङ्गपर लगकर उसकी तलवार टूट गयी। अब क्रुद्ध हनुमानजीने अपने हाथकी तलवारके एक ही झटकेसे अहिरावणका मस्तक उतार लिया। रक्तका फव्वारा छोड़ता और नाचता हुआ उसका कबन्ध पृथ्वीपर और मस्तक प्रज्वलित अग्निकुण्डमें गिर पड़ा। इस प्रकार असुरका हवन पूर्ण हुआ!

अहिरावणका सारा परिवार मारा गया। वहाँसे चलते समय श्रीरघुनाथजीने अपनी ही पूँछमें आबद्ध मकरध्वजका परिचय पाया तो उन्होंने तुरंत हनुमानजीको आदेश दिया—'सर्वप्रथम मकरध्वजको पातालका राज्य प्रदान करो।'

हनुमानजीने मकरध्वजको राज-तिलक देकर कहा—'बेटा! तुम धर्मपूर्वक शासन करते हुए सदा-सर्वदा मेरे स्वामी श्रीसीतारामका स्मरण करते रहना।'

मकरध्वजने भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणके दुर्लभतम चरण-कमलोंकी रज माथे चढ़ायी और अपने पिताको प्रणाम कर उन्हें आदरपूर्वक बिदा किया। हनुमानजी अपने प्रभु श्रीराम और लक्ष्मणको अपने कंधोंपर बैठाकर तीव्रतम गतिसे लंकाकी ओर उड़े।

इधर वानर-भालुओंके दुःखका पार नहीं था। सभी चिन्तित, दुःखी और अशान्त थे। उनकी व्याकुलता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही थी कि सबने हनुमानजीका हर्षोल्लासपूर्ण स्वर सुना—'जय श्रीराम!'

वानर-भालुओंने प्रसन्न होकर देखनेके लिये अपने-अपने नेत्र ऊपर उठाये ही थे कि उग्रवेग हनुमानजी श्रीराम-लक्ष्मणके साथ उनके मध्य उपस्थित हो गये। वानर-भालू हर्षोल्लासमें गर्जन करने लगे—'भगवान् श्रीरामकी जय! सुमित्रानन्दनकी जय!! पवनपुत्र हनुमानकी जय!!!'

सुग्रीवकी सेनामें प्रसन्नताकी लहरें उमड़ रही थीं और उधर इस जयघोषको सुनकर दुष्ट दशाननका मुख मलिन हो गया।

मातृ-चरणोंमें

दशग्रीवके प्राय: सभी प्रमुख योद्धा समाप्त हो गये। विवशत: दशानन स्वयं युद्ध-भूमिमें आया। वह अद्भुत धीर, वीर एवं प्रबल पराक्रमी था, किंतु उसे भी कपिपुंगव आञ्जनेयकी वीरताकी प्रशंसा करनी पड़ी। रावणने भयानक युद्ध किया, किंतु श्रीरघुनाथजीके सम्मुख उसकी एक न चली। वह अमित सौन्दर्य-राशि त्रैलोक्य-त्राताका दर्शन करता हुआ उन्हींके पावनतम तीक्ष्ण शरकी भेंट चढ़ गया। दशाननका निर्जीव शरीर भू-लुण्ठित होते ही श्रीराम और रावणके युद्धकी पूर्णाहुति हो गयी!

'जय श्रीराम !' आनन्दातिरेकसे वानर-भालू उछलने-कूदने और परस्पर आलिङ्गन करने लगे। आकाशमें देवगण प्रभुका स्तवन करते हुए उनपर स्वर्गीय सुमनोंकी वृष्टि करने लगे। आञ्जनेयके भी हर्षकी सीमा नहीं थी। उस समय उनके हर्षाश्रुसे भरे नेत्रोंके सम्मुख निखिल भुवनेश्वरी माता सीताके अरुण अमल चरण-कमल थे।

उस समय भगवान् श्रीरामने विभीषण, हनुमान, अङ्गद, सुग्रीव और जाम्बवान् आदि वीरोंसे उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—'आपलोगोंके बाहु-बलसे आज मैंने रावणको मार दिया। आप सब लोगोंकी पवित्र कीर्ति जबतक सूर्य और चन्द्र रहेंगे, तबतक स्थिर रहेगी और जो लोग मेरेसहित आप सबकी कलि-कल्मष-नाशिनी त्रिलोकपावनी पवित्र कथाका कीर्तन करेंगे, वे परमपदको प्राप्त होंगे।'*

उसी समय मृत रावणको देखकर मन्दोदरी आदि रावणकी पत्नियाँ पछाड़ खाकर गिर पड़ीं और विलाप करने लगीं। स्वयं विभीषण अपने भाईका शव देखकर शोकसे व्याकुल हो गये। यह देखकर सुमित्रानन्दनने उन्हें संसारकी नश्वरताका वर्णन करते हुए प्रेमपूर्वक समझाया। उनके सदुपदेशसे विभीषणके शोक और मोहका निवारण हो गया। वे लक्ष्मणजीके साथ प्रभुके समीप पहुँचे। प्रभुने विभीषणको दु:खसे व्याकुल होकर विलाप करती हुई मन्दोदरी आदि रानियोंको समझाने और बन्धु-बान्धवोंसहित यथाशीघ्र दशाननका अन्त्येष्टि-संस्कार करनेकी आज्ञा दी। विभीषणने पिता-तुल्य बड़े भाई रावणका विधिपूर्वक अन्तिम संस्कार कर उसे जलाञ्जलि दी और फिर पृथ्वीपर सिर रखकर प्रणाम किया। इसके अनन्तर उन्होंने मन्दोदरी आदि रानियोंको समझा-बुझाकर राज-सदनमें भेज दिया और स्वयं प्रभुके समीप जाकर विनीतभावसे हाथ जोड़े खड़े हो गये।

भगवान् श्रीरामने विभीषणकी प्रथम भेंटमें ही उन्हें 'लंकाधीश' बना दिया था, किंतु अब प्रभुके आदेशानुसार लक्ष्मणजीने सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान और जाम्बवान् आदिके सहित लंकामें प्रवेश किया और वहाँ उन्होंने ब्राह्मणोंके द्वारा मन्त्रपाठपूर्वक समुद्रके जलसे भरे हुए सुवर्ण-कलशोंसे विभीषणका मङ्गलमय अभिषेक किया। विभीषण लंकाके अधीश्वर हुए, यह देखकर पवनपुत्रके हर्षकी सीमा न रही। सच तो यह है कि विभीषणको इस सुख-सौभाग्यकी प्राप्तिका मुख्य हेतु श्रीहनुमान-मिलन ही था। यह अहैतुक दयामय पवन-पुत्रकी दयामयी दृष्टिका ही सुफल था।

विभीषण लंकाके सम्भ्रान्त नागरिकोंके साथ विविध प्रकारके बहुमूल्य उपहार लेकर लक्ष्मणसहित प्रभुके चरणोंमें पहुँचे। उपहार प्रभुके सम्मुख रखकर उसने उन्हें सादर दण्डवत्-प्रणाम किया। उसको राज्य-पदपर अभिषिक्त देखकर श्रीरघुनाथजी अत्यन्त प्रसन्न थे।

प्रभुने देखा, उनके सम्मुख पर्वताकार हनुमानजी हाथ जोड़कर विनीतभावसे खड़े हैं। श्रीराघवेन्द्रने उनसे कहा—'पवनकुमार! तुम मिथिलेशकुमारीके स्नेह-भाजन हो। तुम महाराज विभीषणकी आज्ञा प्राप्त करके लंकामें प्रवेश करो और वहाँ सीताको रावण-वधका समाचार सुना दो। साथ ही वानरराज सुग्रीव, युवराज अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नल, नील, जाम्बवान्, विभीषण तथा अन्यान्य वीर वानर-भालुओंके साथ मेरा और लक्ष्मणका कुशल-समाचार बतला दो।'

'जय श्रीराम!' हनुमानजीने गर्जना की। हर्ष उनके हृदयमें समा नहीं रहा था। जगज्जननी जानकीजीको उन्होंने वचन दिया था और वह वचन रावण-वधके साथ पूरा हो गया, किंतु यह कुशल-समाचार! यह विजय-संदेश!! प्रभुके विरह-वह्निमें जलनेवाली अनुपम सती पत्नी सीताको प्रभुका विजय-संदेश!!! इससे अधिक सुखकी वस्तु और क्या होगी?

विभीषणके आदेशानुसार महावीर हनुमानजीके साथ

---

* भवतां बाहुवीर्येण निहतो रावणो मया॥
कीर्तिः स्थास्यति वः पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ। कीर्तयिष्यन्ति भवतां कथां त्रैलोक्यपावनीम्॥
मयोपेतां कलिहरां यास्यन्ति परमां गतिम्।　　(अ० रा० ६।१२।२—४)

प्रख्यात वीर असुर चल रहे थे। हनुमानजीका सर्वत्र उल्लासपूर्ण स्वागत एवं सादर अभिनन्दन हो रहा था, किंतु उन प्रभु-भक्तको तो मातृ-चरणोंके दर्शनकी, उन चरणोंमें दण्डकी भाँति लेट जानेकी उत्कट लालसा थी। हनुमानजी अशोकवाटिकामें पहुँचे।

माता सीता उसी अशोक-तरुके नीचे राक्षसियोंसे घिरी बैठी थीं, जहाँ पहले पवनतनयने उनका दर्शन किया था। उग्रवेग हनुमानजी दौड़े और 'माता !' कहते हुए उनके चरणोंमें लेट गये। हनुमानको देखते ही माता सीताका मुख हर्षसे खिल उठा।

कुछ देर बाद हनुमानजी उठे और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने गद्गद कण्ठसे कहा—'माता! असुरराज रावण मारा गया। विभीषणने लंकाका राज्य-पद प्राप्त कर लिया और श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण, सुग्रीव तथा वानरसेनासहित सकुशल हैं।'

जीवन-सर्वस्व प्रभुका संदेश कितना सुखद था, इसे वियोगिनी माता जानकी ही जानती हैं। उनके आनन्दकी सीमा नहीं थी। हर्षातिरेकके कारण कुछ क्षण तो वे बोल भी नहीं सकीं। फिर उन्होंने कहा—'वत्स हनुमान! इस संदेशके सदृश त्रैलोक्यकी अन्य कोई वस्तु मुझे सुख नहीं दे सकती! इस अवसरपर मैं तुम्हें क्या दूँ, मुझे नहीं सूझ रहा है। तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है, मैं तुमसे कभी उऋण नहीं हो सकती।'

विनीतात्मा हनुमानजी माताके चरणोंमें गिर पड़े। उन्होंने कहा—'माता! मैं शत्रुके नष्ट होनेपर स्वस्थ-चित्तसे विराजमान विजयशाली श्रीरामका दर्शन करता हूँ—यह मेरे लिये नाना प्रकारकी रत्नराशि और देवराज्यसे भी बढ़कर है।* और पुत्र तो मातासे कभी उऋण हो ही नहीं पाता। मैं आपके साथ परमप्रभुके चरणोंकी छाँहमें पड़ा रहूँ, मुझे आपकी सेवाका सुअवसर प्राप्त होता रहे, बस, मेरी यही लालसा है। मेरी इतनी ही कामना है।'

मारुतात्मजकी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण विनीत वाणी सुनकर जनकनन्दिनीने प्रसन्न होकर कहा—'वीरवर! तुम्हारी वाणी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न, माधुर्य-गुणसे भूषित तथा बुद्धिके आठ† अङ्गों (गुणों)-से अलंकृत है। ऐसी वाणी केवल तुम्हीं बोल सकते हो। तुम वायुदेवताके प्रशंसनीय पुत्र तथा परम धर्मात्मा हो। शारीरिक बल, शूरता, शास्त्रज्ञान, मानसिक बल, पराक्रम, उत्तम दक्षता, तेज, क्षमा, धैर्य, स्थिरता, विनय तथा अन्य बहुत-से सुन्दर गुण केवल तुम्हींमें एक साथ विद्यमान हैं, इसमें संशय नहीं है।‡

अनिलात्मजकी प्रशंसा करती हुई माता जानकीने उन्हें दुर्लभतम आशिष दे दी—'हे पुत्र! सुनो, समस्त सद्गुण तुम्हारे हृदयमें बसें और हे हनुमान! लक्ष्मणजीके साथ कोसलपति प्रभु सदा तुमपर प्रसन्न रहें।'$

निखिल भुवनेश्वरी जगदम्बासे शुभाशीर्वाद प्राप्तकर हनुमानजी पुनः मातृ-चरणोंमें गिर पड़े। कुछ क्षणोंके उपरान्त उन्होंने क्रूर दृष्टिवाली विकरालमुखी राक्षसियोंको देखकर निवेदन किया—'माता! इन विकराल, विकट आकारवाली, क्रूर और अत्यन्त दारुण राक्षसियोंने आपको बड़ी पीड़ा पहुँचायी है। इन्हें देखकर मेरा खून खौल रहा है। आप कृपापूर्वक आज्ञा प्रदान करें तो मैं इनके दाँत तोड़ दूँ, इनके नाक-कान काट लूँ और इनके बाल नोचकर मुक्कों और लातोंसे मार-मारकर इनका कचूमर निकाल दूँ।'

हनुमानजीकी कठोर वाणी सुनकर सीताजीको निरन्तर डराने-धमकानेवाली रावणकी दुष्ट दासियाँ अत्यन्त भयभीत होकर वैदेहीके मुखारविन्दकी ओर देखने लगीं। जनकदुलारीने कहा—'ना, बेटा! ये तो स्वयं रावणके अधीन थीं और उसके आदेशका पालन कर रही थीं। रावणकी मृत्युके बाद तो ये अत्यन्त विनयपूर्वक मुझे प्रत्येक रीतिसे संतुष्ट करनेका प्रयत्न कर रही हैं। मुझे तो अपने पूर्व-कर्मोंके कारण यह सारा दुःख निश्चितरूपसे भोगना ही था, इसलिये यदि इन राक्षसियोंका कुछ अपराध भी हो तो उसे मैं क्षमा करती हूँ। ये तो दयाकी पात्र हैं।'

'दयामयी जननी!' हनुमानजीने गद्गद कण्ठसे कहा—

---

* रत्नौघाद् विविधाद् वापि देवराज्याद् विशिष्यते। हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थिरम्॥ (अ० रा० ६। १२। ६२)

† शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा। ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः॥

'सुननेकी इच्छा, सुनना, ग्रहण करना, स्मरण रखना, ऊहा (तर्क-वितर्क), अपोह (सिद्धान्तका निश्चय), अर्थका ज्ञान होना तथा तत्त्वको समझना—ये आठ बुद्धिके गुण हैं।'

‡ अतिलक्षणसम्पन्नं माधुर्यगुणभूषणम्। बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं त्वमेवार्हसि भाषितुम्॥
श्लाघनीयोऽनिलस्य त्वं सुतः परमधार्मिकः। बलं शौर्यं श्रुतं सत्त्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम्॥
तेजः क्षमा धृतिः स्थैर्यं विनीतत्वं न संशयः। एते चान्ये च बहवो गुणास्त्वय्येव शोभनाः॥ (वा० रा० ६। ११३। २६—२८)

$ सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहु हनुमंत। सानुकूल कोसलपति रहहु समेत अनंत॥ (मानस ६। १०७)

'ऐसे वचन मेरे परमप्रभु श्रीरामकी सहधर्मिणी ही बोल सकती हैं!' फिर हनुमानजीने निवेदन किया—'माँ! अपनी ओरसे आप मुझे कोई संदेश दें। अब मैं अपने स्वामीके पास जाऊँगा।'

हनुमदीश्वर*

दशग्रीवके परमधाम-गमनके साथ ही लंका-विजयका कार्य पूर्ण हो गया। फिर विभीषणके राज्याभिषेकके अनन्तर श्रीरघुनन्दन अपनी सहधर्मिणी सीता, अनुज लक्ष्मण, पवनपुत्र हनुमान, वानरराज सुग्रीव, युवराज अङ्गद, महामतिमान् जाम्बवान् आदि वानर-भालुओंके साथ पुष्पक-विमानपर आरूढ़ हो आकाश-मार्गसे चलकर गन्धमादन पर्वतपर उतरे। वहाँ परमसती विदेह-नन्दिनी सीताकी अग्नि-परीक्षाद्वारा शुद्धि की गयी। उस समय महामुनि अगस्त्यजीके साथ दण्डकारण्य-निवासी ऋषि-मुनियोंने गद्गद कण्ठसे प्रभुकी स्तुति की।

श्रीराघवेन्द्रने उन तपस्वी मुनियोंके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर अत्यन्त विनयके साथ निवेदन किया—'तपस्वी ब्राह्मणो! मैं क्षत्रिय हूँ। दुष्टोंका शासन करना मेरा धर्म है। इस कारण मैंने लंकाधिपति रावणका तथा उसके भाइयों और पुत्रोंका ही नहीं, सम्पूर्ण पुलस्त्यकुलका संहार किया है, किंतु वह था तो ब्राह्मणकुलोत्पन्न ही। अतएव ब्राह्मण-वधके पापका प्रायश्चित्त क्या है? आपलोग कृपापूर्वक विचार करके मुझे यह बतानेका कष्ट करें।'

श्रीरघुनन्दनके वचन सुनकर मुनियोंके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—'मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम! आप यद्यपि स्वयं परब्रह्म परमेश्वर हैं, पाप-नामक कोई वस्तु आपका स्पर्श भी नहीं कर सकती, आपने तो उन असुरोंको मुक्ति प्रदान कर उनका परम मङ्गल ही किया है, किंतु मर्यादा-पालन और मर्यादा-रक्षा आपका धर्म है। अतएव आप यहाँ लोकसंग्रहकी दृष्टिसे शिव-लिङ्गकी स्थापना करें। उस शिव-लिङ्गकी असीम महिमा होगी और वह आपके ही नामसे प्रख्यात होगा। उसके दर्शन एवं पूजनसे मनुष्य तो परमपद प्राप्त करेंगे ही, रावण-वधका दोष भी दूर हो जायगा।'

लिङ्ग-स्थापनाका पुण्यमय समय दो ही मुहूर्तमें आनेवाला था। अतएव उसी कालमें प्रतिष्ठा करनेकी दृष्टिसे श्रीराघवेन्द्रने पवनकुमारको शिव-लिङ्ग लानेके लिये कैलास पर्वत भेजा।

परम पराक्रमी श्रीराम-भक्त हनुमानकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने अपने आराध्य श्रीसीतारामके चरणोंमें प्रणाम किया और वायुवेगसे उड़ चले। कैलास पहुँचते उन्हें देर न लगी; किंतु वहाँ लिङ्गरूपधारी महादेवजीका दर्शन नहीं प्राप्त हुआ, तब ज्ञानिनामग्रगण्य हनुमानने आशुतोष शिवको संतुष्ट कर उनसे शिव-लिङ्ग प्राप्त कर लिया और फिर विद्युत्-गतिसे लौट पड़े।

इधर हनुमानजीके न पहुँचनेसे स्थापनाका मुहूर्त्त व्यतीत होते देखकर तत्त्वदर्शी मुनियोंने धर्मपालक श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'रघुनन्दन! पुण्यकाल समाप्त होनेवाला ही है। अतः वैदेहीने लीलापूर्वक जो बालूका शिव-लिङ्ग बनाया है, इस समय आप उसीकी स्थापना कर दीजिये।'

मुनियोंका आदेश प्राप्त होते ही भगवान् श्रीरामने अपनी सहधर्मिणी सीता तथा ऋषियोंके साथ मङ्गलाचरण प्रारम्भ किया। उस समय ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी दशमी तिथि और बुधवार दिन था। हस्त नक्षत्रके साथ गद करण, एवं आनन्द और व्यतीपात योग थे। कन्याराशिपर चन्द्रमा तथा वृषराशिपर सूर्य विराजमान थे। ऐसे परम पुण्यमय उपर्युक्त दस योगोंकी उपस्थितिमें गन्धमादन पर्वतपर सेतुकी सीमामें भगवान् श्रीरामने लिङ्गरूपधारी पार्वतीवल्लभ भगवान् शिवकी स्थापना की। उस समय उक्त लिङ्गमें स्वयं सतीशिरोमणि पार्वतीसहित शशाङ्क-शेखर, कर्पूरगौर, आशुतोष शिव प्रकट हो गये। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीरामको वर प्रदान करते हुए कहा—'रघुनन्दन! आपके द्वारा प्रतिष्ठित इस रामेश्वर-लिङ्गके दर्शनार्थियोंकी समस्त पाप-राशि क्षणार्धमें ही ध्वंस हो जायगी।'

भगवान् शंकर अन्तर्धान हुए ही थे कि हनुमानजी कैलास पर्वतसे एक उत्तम शिव-लिङ्ग लिये वेगपूर्वक वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने वहाँ आते ही माता जानकी, परम प्रभु श्रीराम, सौमित्रि और वानरराज सुग्रीवके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया, किंतु जब उन्होंने भगवती सीता एवं मुनियोंके साथ श्रीरघुनाथजीको बालुकामय शिव-लिङ्गका पूजन करते देखा तो वे अत्यन्त दुःखी हो गये। खिन्नमन उन्होंने श्रीराघवेन्द्रसे कहा—'प्रभो! आपके आदेशानुसार मैं वायुवेगसे कैलास पर्वतपर गया।

* सेतु-बन्धके अनन्तर भगवान् श्रीरामके द्वारा अमित महिमामय 'रामेश्वर' की स्थापनाका उल्लेख हो चुका है, किंतु 'रामेश्वर' की स्थापनाके सम्बन्धमें एक और कथा 'आनन्दरामायण' तथा पुराण-ग्रन्थोंमें वर्णित है। प्रस्तुत कथा स्कन्दपुराणके 'ब्राह्मखण्ड, सेतु-माहात्म्य' के आधारपर लिखी गयी है।

वहाँ भगवान् शंकरका दर्शन न मिलनेसे उन्हें प्रसन्न करनेके लिये मैंने तपस्या प्रारम्भ की। फिर महादेवजीकी कृपासे यह उत्तम लिङ्ग लेकर मैं द्रुतगतिसे आ ही रहा था कि आपने यहाँ बालूका लिङ्ग स्थापित कर लिया। अब मैं इस शिव-लिङ्गका क्या करूँ?'

अपने अनन्य भक्त पवनपुत्र हनुमानको उदास देखकर प्रभुने उन्हें अत्यन्त स्नेहपूर्वक समझाया—'कपीश्वर! तुम शोक मत करो। तुम्हारी अनुपस्थितिमें शिव-लिङ्गकी स्थापनाका पुण्यकाल व्यतीत हो रहा था, इस कारण मैंने इस सीता-निर्मित बालुका-लिङ्गकी स्थापना कर दी। तुम गम्भीरतापूर्वक विचार करोगे तो प्रत्यक्ष देखोगे कि तुम्हारा किया हुआ प्रत्येक कर्म मेरा किया हुआ है और मेरा किया हुआ प्रत्येक कर्म तुम्हारा। मैंने जो यह शिव-लिङ्गकी स्थापना की है, वह तुमने ही की है, तुम यही समझो।

'वानरश्रेष्ठ! आज शुभ दिन है, अतः इसी समय अपना कैलाससे लाया हुआ श्रेष्ठ शिव-लिङ्ग यहाँ तुम्हीं स्थापित करो। 'हनुमदीश्वर'—तुम्हारे ही नामसे यह लिङ्ग त्रिलोकीमें प्रख्यात होगा। पहले हनुमदीश्वरका दर्शन करके तब रामेश्वरका दर्शन होगा।'

भगवान् श्रीरामने प्राणप्रिय हनुमानजीको समझाते हुए आगे कहा—'निष्पाप हनुमान! तुमने मेरी सेवाकी दृष्टिसे असंख्य ब्रह्मराक्षसोंका वध किया है, तुम्हारी दृष्टि उन्हें शीघ्र परमधाम भेजनेकी थी। तुम तो स्वयं परम पावन हो, अतएव पाप तो तुम्हें स्पर्श भी नहीं कर सकता; किंतु व्यवहारतः इस लिङ्गकी स्थापनासे तुम उस पापसे मुक्त हो जाओगे।'

भगवान् श्रीरामकी गहनतम आत्मीयता एवं प्रीतिसे प्रभावित पवननन्दन श्रीरघुनाथजीके सर्वमङ्गलमूल चरण-कमलोंमें दण्डकी भाँति लेट गये और फिर खड़ा होकर हाथ जोड़े गद्गद कण्ठसे स्तवन करने लगे—

नमो रामाय हरये विष्णवे प्रभविष्णवे।
आदिदेवाय देवाय पुराणाय गदाभृते॥
विष्टरे पुष्पके नित्यं निविष्टाय महात्मने।
प्रहृष्टवानरानीकजुष्टपादाम्बुजाय ते॥
निष्पिष्टराक्षसेन्द्राय जगदिष्टविधायिने।
नमः सहस्रशिरसे सहस्रचरणाय च॥
सहस्राक्षाय शुद्धाय राघवाय च विष्णवे।
भक्तार्तिहारिणे तुभ्यं सीतायाः पतये नमः॥
हरये नारसिंहाय दैत्यराजविदारिणे।
नमस्तुभ्यं वराहाय दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धर॥
त्रिविक्रमाय भवते बलियज्ञविभेदिने।
नमो वामनरूपाय नमो मन्दरधारिणे॥
नमस्ते मत्स्यरूपाय त्रयीपालनकारिणे।
नमः परशुरामाय क्षत्रियान्तकराय ते॥
नमस्ते राक्षसघ्नाय नमो राघवरूपिणे।
महादेवमहाभीममहाकोदण्डभेदिने ॥
क्षत्रियान्तकरक्रूरभार्गवत्रासकारिणे ।
नमोऽस्त्वहिल्यासंतापहारिणे चापहारिणे॥
नागायुतबलोपेतताटकादेहहारिणे ।
शिलाकठिनविस्तारवालिवक्षोविभेदिने ॥
नमो मायामृगोन्माथकारिणेऽज्ञानहारिणे।
दशस्यन्दनदुःखाब्धिशोषणागस्त्यरूपिणे ॥
अनेकोर्मिसमाधूतसमुद्रमदहारिणे ।
मैथिलीमानसाम्भोजभानवे लोकसाक्षिणे॥
राजेन्द्राय नमस्तुभ्यं जानकीपतये हरे।
तारकब्रह्मणे तुभ्यं नमो राजीवलोचन॥
रामाय रामचन्द्राय वरेण्याय सुखात्मने।
विश्वामित्रप्रियायेदं नमः खरविदारिणे॥
प्रसीद देवदेवेश भक्तानामभयप्रद।
रक्ष मां करुणासिन्धो रामचन्द्र नमोऽस्तु ते॥
रक्ष मां वेदवचसामप्यगोचर राघव।
पाहि मां कृपया राम शरणं त्वामुपैम्यहम्॥
रघुवीर महामोहमपाकुरु ममाधुना।
स्नाने चाचमने भुक्तौ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु॥
सर्वावस्थासु सर्वत्र पाहि मां रघुनन्दन।
महिमानं तव स्तोतुं कः समर्थो जगत्त्रये॥
त्वमेव त्वन्महत्त्वं वै जानासि रघुनन्दन।

(स्क० पु०, ब्रा० से० मा० ४६। ३१—४९)

'सबकी उत्पत्तिके आदि कारण, सर्वव्यापी, श्रीहरिस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है। आदिदेव, पुराणपुरुष, भगवान् गदाधरको नमस्कार है। पुष्पकके आसनपर नित्य विराजमान होनेवाले महात्मा श्रीरघुनाथजीको नमस्कार है। प्रभो! हर्षमें भरे हुए वानरोंका समुदाय आपके युगल चरणारविन्दोंकी सेवा करता है, आपको नमस्कार है। राक्षसराज रावणको पीस डालनेवाले तथा सम्पूर्ण जगत्का अभीष्ट सिद्ध करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है। आपके सहस्रों मस्तक, सहस्रों चरण और सहस्रों नेत्र हैं, आप विशुद्ध विष्णुस्वरूप राघवेन्द्रको नमस्कार है। आप भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेवाले तथा सीताके प्राणवल्लभ हैं। आपको

नमस्कार है। दैत्यराज हिरण्यकशिपुके वक्ष:स्थलको विदीर्ण करनेवाले आप नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। अपनी दाढ़ोंपर पृथ्वीको उठानेवाले भगवान् वराह! आपको नमस्कार है। बलिके यज्ञको भङ्ग करनेवाले आप भगवान् त्रिविक्रमको नमस्कार है। वामनरूपधारी भगवान्‌को नमस्कार है। अपनी पीठपर महान् मन्दराचल धारण करनेवाले भगवान् कच्छपको नमस्कार है। तीनों वेदोंकी सुरक्षा करनेवाले मत्स्यरूपधारी भगवान्‌को नमस्कार है। क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले परशुरामरूपी रामको नमस्कार है। राक्षसोंका नाश करनेवाले आपको नमस्कार है। राघवेन्द्रका रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। महादेवजीके महान् भयंकर महाधनुषको भङ्ग करनेवाले आपको नमस्कार है। क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले क्रूर परशुरामको भी त्रास देनेवाले आपको नमस्कार है। भगवन्! आप अहिल्याका संताप और महादेवजीका चाप हरनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाली ताड़काके शरीरका अन्त करनेवाले आपको नमस्कार है। पत्थरके समान कठोर और चौड़ी वालीकी छाती छेद डालनेवाले आपको नमस्कार है। आप मायामय मृगका नाश करनेवाले तथा अज्ञानको हर लेनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। दशरथजीके दु:खरूपी समुद्रको शोष लेनेके लिये आप मूर्तिमान् अगस्त्य हैं, आपको नमस्कार है। अनन्त उत्ताल तरंगोंसे उद्वेलित समुद्रका भी दर्पदलन करनेवाले आपको नमस्कार है। मिथिलेशनन्दिनी सीताके हृदयकमलको विकसित करनेवाले सूर्यरूप आप लोकसाक्षी श्रीहरिको नमस्कार है। हरे! आप राजाओंके भी राजा और जानकीके प्राणवल्लभ हैं, आपको नमस्कार है। कमलनयन! आप ही तारक ब्रह्म हैं, आपको नमस्कार है। आप ही योगियोंके मनको रमानेवाले 'राम' हैं। राम होते हुए चन्द्रमाके समान आह्लाद प्रदान करनेके कारण 'रामचन्द्र' हैं, सबसे श्रेष्ठ और सुखस्वरूप हैं। आप विश्वामित्रजीके प्रिय हैं, खर नामक राक्षसका हृदय विदीर्ण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। भक्तोंको अभयदान देनेवाले देवदेवेश्वर! प्रसन्न होइये। करुणासिन्धु श्रीरामचन्द्र! आपको नमस्कार है, मेरी रक्षा कीजिये। वेद-वाणीके भी अगोचर राघवेन्द्र! मेरी रक्षा कीजिये। श्रीराम! कृपा करके मुझे उबारिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ। रघुवीर! मेरे महान् मोहको इस समय दूर कीजिये। रघुनन्दन! स्नान, आचमन, भोजन, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि सभी क्रियाओं और सभी अवस्थाओंमें आप मेरी रक्षा कीजिये। तीनों लोकोंमें कौन ऐसा पुरुष है, जो आपकी महिमाका वर्णन या स्तवन करनेमें समर्थ हो सकता है। रघुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीराम! आप ही अपनी महिमाको जानते हैं।'

करुणामूर्ति श्रीरघुनाथजीकी इस प्रकार स्तुति करनेके अनन्तर अञ्जनानन्दन भक्तिपूर्ण हृदयसे जगज्जननी श्रीजानकीजीकी स्तुति करते हुए कहने लगे—

जानकि त्वां नमस्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम्॥
दारिद्र्यरणसंहर्त्रीं भक्तानामिष्टदायिनीम्।
विदेहराजतनयां राघवानन्दकारिणीम्॥
भूमेर्दुहितरं विद्यां नमामि प्रकृतिं शिवाम्।
पौलस्त्यैश्वर्यसंहर्त्रीं भक्ताभीष्टां सरस्वतीम्॥
पतिव्रताधुरीणां त्वां नमामि जनकात्मजाम्।
अनुग्रहपरामृद्धिमनघां हरिवल्लभाम्॥
आत्मविद्यां त्रयीरूपामुमारूपां नमाम्यहम्।
प्रसादाभिमुखीं लक्ष्मीं क्षीराब्धितनयां शुभाम्॥
नमामि चन्द्रभगिनीं सीतां सर्वाङ्गसुन्दरीम्।
नमामि धर्मनिलयां करुणां वेदमातरम्॥
पद्मालयां पद्महस्तां विष्णुवक्ष:स्थलालयाम्।
नमामि चन्द्रनिलयां सीतां चन्द्रनिभाननाम्॥
आह्लादरूपिणीं सिद्धिं शिवां शिवकरीं सतीम्।
नमामि विश्वजननीं रामचन्द्रेष्टवल्लभाम्।
सीतां सर्वानवद्याङ्गीं भजामि सततं हृदा॥

(स्क० पु०, ब्रा० से० मा० ४६। ५०—५७)

'जनकनन्दिनि! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप सब पापोंका नाश तथा दारिद्र्यका संहार करनेवाली हैं। भक्तोंको अभीष्ट वस्तु देनेवाली भी आप ही हैं। राघवेन्द्र श्रीरामको आनन्द प्रदान करनेवाली विदेहराज जनककी लाड़िली श्रीकिशोरीजीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप पृथ्वीकी कन्या और विद्यास्वरूपा हैं, कल्याणमयी प्रकृति भी आप ही हैं। रावणके ऐश्वर्यका संहार तथा भक्तोंके अभीष्टका दान करनेवाली सरस्वतीरूपा भगवती सीताको मैं नमस्कार करता हूँ। पतिव्रताओंमें अग्रगण्य आप श्रीजनकदुलारीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप सबपर अनुग्रह करनेवाली समृद्धि, पापरहित और श्रीविष्णुप्रिया लक्ष्मी हैं। आप ही आत्मविद्या, वेदत्रयी तथा पार्वतीस्वरूपा हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप ही क्षीरसागरकी कन्या और चन्द्रमाकी भगिनी कल्याणमयी महालक्ष्मी हैं, जो भक्तोंपर कृपा-प्रसादका अनुग्रह करनेके लिये सदा उत्सुक रहती हैं, आप सर्वाङ्गसुन्दरी सीताको मैं प्रणाम करता हूँ। आप धर्मका आश्रय और करुणामयी वेदमाता गायत्री हैं, आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आपका कमलवनमें

निवास है, आप ही हाथमें कमल धारण करनेवाली तथा भगवान् विष्णुके वक्ष:स्थलमें निवास करनेवाली लक्ष्मी हैं, चन्द्रमण्डलमें भी आपका निवास है, आप चन्द्रमुखी सीतादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ। आप श्रीरघुनन्दनकी आह्लादमयी शक्ति हैं, कल्याणमयी सिद्धि हैं और कल्याणकारिणी सती हैं। श्रीरामचन्द्रजीकी परम प्रियतमा जगदम्बा जानकीको मैं प्रणाम करता हूँ। सर्वाङ्गसुन्दरी सीताका मैं अपने हृदयमें सदैव चिन्तन करता हूँ।'*

इसके बाद आञ्जनेयने प्रभुके आदेशानुसार श्रीरामेश्वरके उत्तरी भागमें अपने द्वारा लाया हुआ शिव-लिङ्ग स्थापित कर दिया।

आनन्दरामायणके सारकाण्डकी इस कथासे थोड़ी भिन्नता पायी जाती है। उसके अनुसार सेतु-बन्धके समय श्रीराघवेन्द्रने हनुमानजीको काशी जाकर भगवान् शंकरसे एक उत्तम शिव-लिङ्ग माँगकर मुहूर्तमात्रमें ले आनेकी आज्ञा दी।

पवननन्दन तीव्रवेगसे काशी पहुँचे और शिवजीसे दो श्रेष्ठ लिङ्ग माँगकर उसी वेगसे लौट पड़े। उस समय उनके मनमें कुछ गर्व हो आया। सर्वान्तर्यामी भक्तवत्सल प्रभुने मुहूर्त बीतते देखकर बालूका शिव-लिङ्ग बनाकर सेतुके इस छोरपर स्थापित कर दिया।

बालूके शिव-लिङ्गकी स्थापनाका समाचार पवन-कुमारको मार्गमें ही मिल गया था। इस कारण उन्होंने प्रभुके समीप आते ही क्रोधसे पृथ्वीपर अपना पैर पटका। इससे उनके दोनों पैर धरतीमें धँस गये। अत्यन्त क्षुब्ध होकर उन्होंने प्रभुसे कहा—'प्रभो! आपने काशीमें भगवान् शिवसे एक उत्तम शिव-लिङ्ग ले आनेके लिये मुझे भेजा था, क्या यह आपको स्मरण नहीं था? आपने व्यर्थ ही मेरा उपहास किया। अब मैं इन दोनों शिव-लिङ्गोंका क्या करूँ?'

श्रीरघुनाथजीने अत्यन्त शान्तिपूर्वक हनुमानजीसे कहा—'कपे! अब यदि तुम मेरे द्वारा स्थापित बालुकामय शिव-लिङ्गको पूँछमें लपेटकर उखाड़ दो तो मैं तुम्हारे काशीसे लाये हुए इस शिव-लिङ्गको स्थापित कर दूँ।'

हनुमानजीने उक्त बालूके लिङ्गके ऊपरी भागमें पूँछ लपेटकर उसे जोरसे हिलाया। अनेक बार हिलानेपर भी जब वह टस-से-मस नहीं हुआ, तब महावीर हनुमानने अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसे खींचा। भगवान् श्रीरामके स्पर्शसे उक्त प्रतिष्ठित शिव-लिङ्ग वज्र-तुल्य हो गया था। महावीरकी अमित शक्तिसे वह बालूका लिङ्ग तो टस-से-मस नहीं हो सका, किंतु हनुमानजीकी पूँछ टूट गयी और वे दूर पृथ्वीपर मुँहके बल गिरकर मूर्च्छित हो गये। वह दृश्य देखकर वहाँ समस्त वानर-भालू हँस पड़े।

कुछ क्षणोपरान्त मूर्च्छा दूर हुई, पर साथ ही श्रीराम-भक्त हनुमानका गर्व भी नष्ट हो गया। उन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक प्रभुकी स्तुति करते हुए कहा—'कृपासिंधु श्रीराम! मेरे द्वारा जो अपराध हुआ हो, उसे आप क्षमा करें।'†

दयामय श्रीरामचन्द्रजीने पवननन्दनसे कहा—'हनुमान! तुम मेरे द्वारा स्थापित रामेश्वर शिव-लिङ्गसे उत्तरकी ओर इस विश्वनाथ-नामक लिङ्गको स्थापित कर दो।' फिर भगवान् श्रीरामने हनुमानजीके द्वारा स्थापित शिव-लिङ्गको वरदान देते हुए कहा—'हनुमान! तुम्हारे द्वारा स्थापित विश्वनाथ नामक उत्तम लिङ्गकी पूजा किये बिना जो मनुष्य सेतुबन्ध रामेश्वरकी पूजा करेंगे, उनकी पूजा व्यर्थ हो जायगी।'‡

इसके अनन्तर प्रभुने पवनकुमारसे आगे कहा—'मेरे लिये लाया हुआ विश्वनाथ शिव-लिङ्ग यहीं चुपचाप पड़ा रहने दो। यह लिङ्ग दीर्घकालतक पृथ्वीपर अपूजित ही रहेगा। भविष्यमें मैं स्वयं इसकी स्थापना

---

* य इदं वायुपुत्रेण कथितं पापनाशनम्॥
स्तोत्रं श्रीरामचन्द्रस्य सीताया: पठतेऽन्वहम्। स नरो महदैश्वर्यमश्नुते वाञ्छितं सदा॥ अनेकक्षेत्रधान्यानि गाश्च दोग्ध्री: पयस्विनी:। आयुर्विद्याश्च पुत्रांश्च भार्यामपि मनोरमाम्॥ एतत्स्तोत्रं सकृद्विप्रा: पठन्नाप्नोत्यसंशय:। एतत्स्तोत्रस्य पाठेन नरकं नैव यास्यति॥ ब्रह्महत्यादिपापानि नश्यन्ति सुमहान्त्यपि। सर्वपापविनिर्मुक्तो देहान्ते मुक्तिमाप्नुयात्॥ (स्क० पु०, ब्रा० से० मा० ४६। ५९—६३)

'जो मनुष्य वायुपुत्र हनुमानजीद्वारा वर्णित श्रीराम और सीताके इस पापनाशक स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करता है, वह सदा मनोवाञ्छित महान् ऐश्वर्यका उपभोग करता है। अनेक क्षेत्र, धान्य, दूध देनेवाली गौएँ, आयु, विद्या, मनोरमा भार्या तथा श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करता है। ब्राह्मणो! इस स्तोत्रका एक बार भी पाठ करनेवाला मनुष्य इन सब वस्तुओंको नि:संदेह प्राप्त कर लेता है। इसके पाठसे मनुष्य नरकमें नहीं पड़ता। उसके ब्रह्महत्या आदि बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। वह सब पापोंसे मुक्त हो देहावसान होनेपर मोक्ष पा लेता है।'

† मयापराधितं राम तत्क्षमस्व कृपानिधे। (आ० रा० सा० १०। १४०)

‡ असम्पूज्य विश्वनाथं मारुते त्वत्प्रतिष्ठितम्॥ ममादौ पूजयन्त्यत्र ये नरा लिङ्गमुत्तमम्। रामेश्वराभिधं सेतौ तेषां पूजा वृथा भवेत्॥ (आ० रा० सा० १०। १४३-१४४)

करूँगा। तुम्हारी पूँछ यहीं छिन्न हुई है, अतएव तुम यहीं धरतीपर छिन्नपुच्छ तथा गुप्तपाद होकर अपने गर्वका स्मरण करते रहना।'

फिर दयामूर्ति श्रीरघुनाथजीने अपने करकमलोंसे हनुमानजीकी पूँछका स्पर्श करके उसे पूर्ववत् सुदृढ़ एवं सुन्दर बना दिया।

हनुमानजीने प्रभुकी लीलासे शिक्षा ग्रहण की। अब सर्वथा गर्वरहित हनुमानजीकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने सीतापति श्रीरामके आदेशानुसार श्रीरामेश्वर-लिङ्गसे उत्तर अपना विश्वनाथ-लिङ्ग स्थापित कर दिया।

माताका दूध

भगवान् श्रीराम अपने प्राणप्रिय भाई भरतसे मिलनेके लिये अधीर हो रहे थे, इस कारण राक्षसराज विभीषणने रत्नादि उपहारोंके साथ उनकी सेवामें कुबेरका इच्छानुसार चलनेवाला, दिव्य एवं उत्तम पुष्पक विमान उपस्थित कर दिया। उक्त सूर्य-तुल्य तेजस्वी विमानपर श्रीरघुनाथजीकी आज्ञासे विभीषण, हनुमान एवं समस्त वानर-भालुओंके साथ सुग्रीव और युवराज अङ्गद भी चढ़ गये। फिर भगवान् श्रीरामकी प्रेरणासे वह पुष्पक विमान आकाश-मार्गसे तीव्र-गतिसे उड़ चला। भगवान् श्रीराम अपनी प्राणप्रियाको त्रिकूट पर्वतपर बसी विशाल लंका, मेघनाद, कुम्भकर्ण एवं रावण आदिके वधस्थल, सेतुबन्ध, शिव-स्थापना आदिको दिखाते तथा अपनी लीलाका विवरण सुनाते जा रहे थे कि वह अद्भुत विमान किष्किन्धाके ऊपर जा पहुँचा। श्रीरघुनाथजीने उसे वहाँ उतरनेकी आज्ञा दी।

विमानके किष्किन्धामें उतरते ही वानरराज सुग्रीवकी आज्ञासे उनकी तारा आदि सुन्दरी स्त्रियाँ वैदेहीके समीप पहुँच गयीं। माता सीताके इच्छानुसार सुग्रीवकी रानियाँ भी प्रभुके राज्याभिषेकका उत्सव देखने चलीं। उस समय पवननन्दन हाथ जोड़े टकटकी लगाये प्रभुके मुखारविन्दकी ओर ऐसे देख रहे थे, जैसे वे कुछ कहना चाहते हों। भक्तवत्सल प्रभुने उनकी ओर देखते ही तुरंत पूछा। तब हनुमानजीने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया—'प्रभो! माताजीके दर्शन हुए अधिक दिन बीत गये। यदि आज्ञा हो तो मैं उनके चरणोंका स्पर्श कर आऊँ।'

श्रीरघुनाथजीने हर्षोल्लासपूर्वक हँसते हुए कहा—'और हमलोग माताजीके दर्शनसे वञ्चित ही रहेंगे क्या?'

प्रभुकी आज्ञासे विमान अयोध्या-पथसे हटकर काञ्चनगिरिके लिये उड़ चला। विमानके उतरते ही हनुमानजीके साथ स्वयं जगज्जननी जानकी और परमप्रभु श्रीराम सबके साथ उतर पड़े। हनुमानजीके साथ निखिल भुवनपति श्रीराम एवं जगद्धात्री सीताके सहित सौमित्रि तथा वानर-भालुओंका विशाल समुदाय और वानर-पत्नियोंके साथ विभीषणकी पत्नियाँ हनुमानजीकी जननी अञ्जनाके दर्शनार्थ चलीं।

माताका दर्शन होते ही हनुमानजी दौड़कर अबोध शिशुकी भाँति उनके चरणोंमें गिर पड़े। उनका कण्ठ अवरुद्ध-सा हो गया था। नेत्रोंसे आँसू बह चले। उन्होंने बड़ी कठिनाईसे कहा—'माँ!'

'माँ'—माता अञ्जनाको उनका लाल—उनका प्राणखण्ड कितने दिनों बाद मिला था। वे सजल नेत्रोंसे हनुमानजीके सिरपर अपना हाथ फेरने लगीं। पुत्रको आशीर्वाद तो उनका रोम-रोम दे रहा था।

उसी समय वहाँ श्रीसीता और लक्ष्मणसहित प्रभु भी पहुँच गये। 'माँ ! ये मेरे प्राणनाथ प्रभु और ये माता जानकी तथा ये सौमित्रि हैं।'—हनुमानजीने उनका परिचय दिया।

अञ्जनाके सुख-सौभाग्यका क्या कहना ? स्वयं परमप्रभु चलकर उनके द्वारपर पधारे। देवी अञ्जना उनके चरणोंमें गिरने ही जा रही थीं कि श्रीरघुनाथजीने अपने पिताका नाम लेते हुए उनके चरणोंका स्पर्श कर उन्हें प्रेमपूर्वक बैठाया। भगवती सीता और लक्ष्मणने भी उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर सुग्रीव, युवराज अङ्गद, राक्षसराज विभीषण—असंख्य वानर-भालू, सुग्रीव एवं विभीषणकी पत्नियाँ—सबने एक साथ पृथ्वीपर मस्तक रखकर हनुमानजीकी माता अञ्जनाको अत्यन्त भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

माता अञ्जना अपने भाग्यपर गर्व कर रही थीं। निखिल सृष्टिके स्वामी एवं उद्भवस्थितिसंहारकारिणी जगदम्बाको मेरा लाल हनुमान मेरे द्वारपर ले आया। उन्होंने मुझे सम्मान दिया, यह सौभाग्य देवताओं एवं तपस्वी महर्षियोंको भी कहाँ प्राप्त होता है? उन्होंने बड़े ही प्यारसे प्रभुको, उनके मुखारविन्दको, उनके कर-कमलोंको एवं अरुण कमल-तुल्य लाल-लाल चरणोंको सहलाया। माता जानकीको हृदयसे लगाया और सबकी ओर देखती हुई माता अञ्जनाने कहा—'मैं जननी हूँ, मैं ही यथार्थ पुत्रवती हूँ। मेरे पुत्र हनुमानने भगवान्के चरणोंमें अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है और उसीके कारण जगदाधार स्वामीने स्वयं मेरे यहाँ पधारकर मुझे

अपना दुर्लभतम दर्शन प्रदान करनेकी कृपा की है। उन्होंने भी मुझे 'माँ' कहा है। अब मैं केवल अपने हनुमानकी ही नहीं, इन प्रभु श्रीरामकी, बेटी सीताकी, लखनलालकी और इन असंख्य परम पराक्रमी तेजस्वी वानर-भालुओंकी माता हूँ।'

फिर उन्होंने हनुमानजीसे कहा—'बेटा! कहते हैं, पुत्र मातासे कभी उऋण नहीं हो पाता, किंतु तू मुझसे उऋण हो गया। तूने अपना जीवन और जन्म तो सफल कर ही लिया, तेरे कारण मेरे भाग्यपर बड़े-से-बड़े सुर-मुनिपुंगवोंको भी ईर्ष्या हो सकती है।'

हनुमानजीने माता अञ्जनाके चरण दबाते हुए कहा—'माँ! इन करुणामूर्ति माता सीताको दशानन हर ले गया था। इन करुणानिधानकी आज्ञा एवं इन्हींकी कृपाशक्तिसे मैंने समुद्र-पार जाकर लंकामें माताजीका पता लगाया। फिर प्रभुने समुद्रपर पुल बँधवाया और लंकामें राक्षसोंके साथ भयानक संग्राम किया। मेघनाद, कुम्भकर्ण और रावण-जैसे प्रख्यात दुर्जय वीरोंका प्रभुने वध किया और फिर विभीषणजीको लंकाके राज्य-पदपर अभिषिक्त कर माता जानकीके साथ अयोध्या पधार रहे हैं।'

हनुमानजीके वचन सुनते ही माता अञ्जनाने कुपित होकर उन्हें अपनी गोदसे ढकेल दिया। उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने क्रोधपूर्वक कहा—'तूने व्यर्थ ही मेरी कोखसे जन्म लिया। मैंने तुझे व्यर्थ ही अपना दूध पिलाया।'

परम प्रभु श्रीरघुनाथजीके साथ विदेहनन्दिनी, सौमित्रि, समस्त वानर-भालू, विभीषण, वानरराज सुग्रीव एवं विभीषणकी पत्नियाँ तथा स्वयं पवननन्दन चकित थे कि अभी-अभी माताजीको क्या हो गया? ये सहसा क्रुद्ध क्यों हो गयीं? हनुमानजी हाथ जोड़े चुपचाप माताकी ओर टकटकी लगाये देख रहे थे और अञ्जना देवी उन्हें डाँटती हुई कह रही थीं—'तुझे और तेरे बल तथा पराक्रमको धिक्कार है। क्या तुझमें इतनी शक्ति नहीं थी कि तू लंकामें प्रवेश करनेपर त्रिकूट पर्वतको उखाड़कर समूची लंकाको समुद्रमें डुबा देता? तू दुष्ट दशाननको उसके सैनिकोंसहित नहीं मार सकता था और यदि तू उन्हें मारनेमें समर्थ नहीं था तो उनसे युद्ध करता हुआ स्वयं मर जाता, किंतु तेरे जीवित रहते परम प्रभुको सेतु-बन्धन एवं राक्षसोंसे युद्ध करनेका कष्ट उठाना पड़ा। तुझे मेरा दूध पिलाना व्यर्थ हुआ। तूने मेरे दूधको लज्जित कर दिया। धिक्कार है तुझे! अब तू मुझे अपना मुँह मत दिखाना।'

माता अञ्जना क्रोधसे काँप रही थीं। हाथ जोड़े हनुमानजीने कहा—''माँ! मैंने तेरे दूधको कभी लज्जित नहीं किया है और न भविष्यमें तेरे महिमामय दूधको कभी आँच ही आयेगी। यदि मैं स्वतन्त्र होता तो लंका क्या, इच्छा होनेपर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको क्षणार्द्धमें पीसकर रख देता। राक्षसोंको तो मच्छरोंकी तरह मसलकर मार डालता और उसी समय माता जानकीको प्रभुके श्रीचरणोंमें पहुँचा देता, किंतु जगज्जननी जानकीका पता लगानेके लिये समुद्रके पार जाते समय मेरे नायक जाम्बवन्तजीने मुझे आदेश दिया था कि 'तुम केवल माता सीताको देखकर उनका कुशल समाचार लेकर लौट आना'।''

हनुमानजीने महामतिमान् जाम्बवन्तजीकी ओर देखकर कहा—'माँ! तुम इनसे पूछ लो। मैं यदि इनकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर देता तो स्वामीकी परमपवित्र लीला एवं कीर्तिमें व्यवधान पड़ता। मैं तो अपने प्रभुकी सेवाके लिये केवल उनकी आज्ञाका पालन करना ही अपना प्रमुख कर्तव्य मानता हूँ।'

जाम्बवान्‌ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा—'माताजी! हनुमानजी सत्य कह रहे हैं, आपके दुग्धके प्रतापसे इनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है, किंतु ये मनमानी करते तो प्रभुके यशका विस्तार कैसे हो पाता?'

श्रीरघुनाथजीने भी जाम्बवान्‌के वचनका अनुमोदन किया, तब माता अञ्जनाका क्रोध-निवारण हुआ। उन्होंने शान्त होकर कहा—'अरे बेटा! यह सब मैं नहीं जानती थी। मुझे आश्चर्य हुआ कि मैंने जिस हनुमानको अपना दुग्ध पिलाकर पाला है, वह इतना कायर कैसे हो गया कि उसके रहते जगदाधार स्वामीको कष्ट उठाना पड़ा।'

माता अञ्जनाके द्वारा बार-बार अपने दुग्धकी प्रशंसामें सौमित्रि अतिशयोक्ति समझ रहे थे। माता अञ्जनाने उनके मुखारविन्दको देखकर अनुमान कर लिया कि 'लखनलालको मेरी बातोंपर संदेह हो रहा है।' उन्होंने कहा—'लखनलाल! आप समझ रहे हैं कि यह बुढ़िया बार-बार अपने दुग्धका क्या गुणगान कर रही है? पर मेरा दूध असाधारण है। आप स्वयं देख लीजिये।'

माता अञ्जनाने अपने स्तनको दबाकर दुग्धकी धार समीपस्थ पर्वत-शिखरपर छोड़ी। फिर तो जैसे वज्रपात हो गया। भयानक शब्दके साथ वह पर्वत फटकर दो भागोंमें विभक्त हो गया।

'माता अञ्जनाकी जय!' समस्त वानर-भालुओंने चकित होकर गर्जना की।

माता अञ्जनाने कहा—'लखनलाल! मेरा यही दूध हनुमानने पिया है। मेरा दूध कभी व्यर्थ नहीं जा सकता।'

प्रसन्नमन श्रीरघुनाथजी हाथ जोड़कर माता अञ्जनासे चलनेकी आज्ञा माँगने लगे, तब उन्होंने कहा—'प्रभो! आपने दर्शन देकर मुझे तो सर्वस्व दे दिया है, फिर भी मेरी एक प्रार्थना है कि आप मेरे हनुमानको अपना बनाकर इसे सदा अपने चरणोंकी छत्रच्छायामें रखियेगा।'

हनुमानजीने माताके चरणोंपर सिर रखा तो उन्हें आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा—'बेटा! तू सदा निष्कपटभावसे अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक परम प्रभु श्रीराम एवं जगज्जननी जानकीकी सेवा करते रहना।'

'माता अञ्जनाकी जय!' प्रभुके साथ सब लोग पुष्पक विमानपर आरूढ़ हुए और विमान तीव्रतम गतिसे अयोध्याके लिये उड़ चला।

सुखद संदेश

आकाशमें तीव्रतम गतिसे उड़ता हुआ पुष्पक विमान तीर्थराज प्रयागके ऊपर पहुँचा। भगवती सीताने प्रभुके इच्छानुसार त्रिवेणीके पवित्र चरणोंमें प्रणाम किया। वहींसे अयोध्याके दर्शन कर तो श्रीरघुनन्दन भाव-विभोर हो गये। उन्होंने सीतासहित पतितपावन अयोध्यापुरीको प्रणाम किया। तदनन्तर प्रभुके इच्छानुसार पुष्पक त्रिवेणी-तटपर उतर पड़ा।

वहाँ प्रभुने जनकदुलारी सीता और लक्ष्मण तथा समस्त वानर-भालुओंके साथ अत्यन्त प्रसन्न होकर स्नान किया और ब्राह्मणोंको पुष्कल दान देकर उन्हें संतुष्ट कर दिया।

तदनन्तर भक्तवत्सल प्रभुने पवननन्दनको बुलाकर कहा—'कपिश्रेष्ठ ! तुम शीघ्र ही अयोध्या जाकर वहाँका कुशल-समाचार ले आओ। शृङ्गवेरपुरमें जाकर वनवासी निषादराज गुहसे भी मिलकर उसे मेरे सकुशल लौटनेका संवाद सुना देना। वह मेरा मित्र है। वनसे मेरे कुशल-पूर्वक लौटनेके समाचारसे उसे बड़ी प्रसन्नता होगी। उससे तुम्हें भाई भरतका भी समाचार मिल जायगा। भाई भरतके पास जाकर उनके आरोग्य आदिका समाचार पूछकर वैदेही और लक्ष्मणके सहित मेरे कुशलपूर्वक लौटनेका समाचार उन्हें सुना देना। उनकी मुख-मुद्रा और चेष्टाओंका भी ध्यान रखना। यदि किसी प्रकार उनके मनमें राज्य-सुखकी तनिक भी कामना लक्षित हो तो वे निश्चिन्ततापूर्वक भूमण्डलका राज्य करें। ऐसी स्थितिमें मैं कहीं अन्यत्र रहकर तपोमय जीवन व्यतीत करूँगा। प्रत्येक रीतिसे मुझे भरतका ही सुख अभीष्ट है। उनसे मिलकर तुम यथाशीघ्र लौट आओ।'

'जय श्रीराम!' हनुमानजीने प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और ब्राह्मणका वेष धारण कर आकाशमार्गसे गरुड़-वेगसे उड़ चले। शृङ्गवेरपुर पहुँचकर हनुमानजीने निषादराज गुहसे प्रभुका समाचार सुनाया तो उनके हर्षकी सीमा न रही। वे हर्षोल्लासपूर्वक श्रीरघुनाथजीके स्वागतकी तैयारीमें जुट गये और हनुमानजी अयोध्याके लिये चल पड़े। मार्गमें परशुराम-तीर्थ, बालुकिनी नदी, वरूथी, गोमती और भयानक शालवनके दर्शन करते हुए पवनकुमारने अयोध्यासे एक कोसकी दूरीपर भरतजीके आश्रमको देखा।

श्रीभरतजीकी अत्यन्त करुण स्थिति थी। परम प्रभु श्रीरामके वियोगमें उन्होंने राज्य-सुखको तिलाञ्जलि दे दी थी। भगवान् श्रीराम अपनी प्रिया सीता और अनुज लक्ष्मणसहित अयोध्या त्यागकर वनमें क्या गये, भरतका तन, मन, प्राण और सारा सुख उनके साथ चला गया। वनवासी श्रीरामकी भाँति श्रीराम-चरण-चञ्चरीक भरतजी अयोध्यामें ही कठोर तपश्चरण कर रहे थे। वे अयोध्यासे एक कोस दूर नन्दिग्राममें एक पर्णशालामें निवास करते थे। वे शरीरमें भस्म रमाते तथा वल्कल और कृष्ण-मृगचर्म धारण करते थे। उनकी जटाएँ बढ़ गयी थीं। वे फल-मूलका आहार करके प्रभुकी चरण-पादुकाओंकी पूजा करते रहते और उन्हींके सम्मुख बैठकर पृथ्वीका शासन करते। उनके पास मन्त्री, पुरोहित और सेनापति भी योगयुक्त होकर रहते और गेरुए वस्त्र पहनते थे।

भगवान् श्रीरामके अनन्य प्रेमी भरतजीका अधिकांश समय अपने प्रभु अग्रजके स्मरण-चिन्तनमें ही व्यतीत होता। श्रीसीतारामके वियोगमें वे प्रायः रोते रहते। कठोर तपःपूर्ण जीवन व्यतीत करनेसे वियोगी भरतजीका शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया था। उन्होंने प्रभुके चौदह वर्षोंके अरण्य-वासकी अवधिको एक-एक दिन गिनकर व्यतीत किया था, प्रभुके आनेमें अब केवल एक दिन और शेष रह गया था। इस कारण भरतजी अत्यधिक अधीर हो गये थे। उनका एक-एक पल जैसे वर्ष-तुल्य हो गया था।

उन्होंने अयोध्यासे शृङ्गवेरपुरतक ऐसे अश्वारोहियोंको नियत करवा दिया था, जो गङ्गा-तटतक प्रभुके पधारते ही तुरंत अवधमें सूचना पहुँचा दें। इस कारण तनिक पत्ता भी खटकता तो भरतजी उत्सुक होकर कान लगा देते, पर कहींसे प्रभुके पधारनेकी कोई सूचना नहीं प्राप्त हो रही थी। अतएव वे मन-ही-मन व्याकुल हो रहे थे।

यद्यपि भरतजीकी दाहिनी भुजा और दाहिनी आँख बार-बार फड़ककर शुभकी सूचना दे रही थी, किंतु श्रीसीतारामके दर्शनके लिये आतुर उनके दु:खकी सीमा नहीं थी। वे सोचते थे—'अबतक मेरे प्राणाराम श्रीरामके आगमनकी सूचना क्यों नहीं आयी? क्या प्रभुने मेरी दुष्टताके कारण अयोध्या आनेका विचार तो नहीं त्याग दिया? सचमुच मैं बड़ा पातकी हूँ, जो मैंने प्रभुको कण्टकाकीर्ण पथसे वनों-पर्वतोंमें एकाकी चले जानेकी स्वीकृति दे दी। निश्चय ही मैं पाषाणहृदयी हूँ, अन्यथा मेरे प्राण तो उसी समय चले जाते। अहा ! भाई लक्ष्मण कितने भाग्यवान् हैं, जिन्होंने अपनी सहधर्मिणी, अपने माता-पिता और सम्पूर्ण राज्य-सुखको ठोकर मारकर प्रभुके चरणोंमें अपना जीवन समर्पित कर दिया। मेरे प्राणनाथने मेरा कपट एवं मेरी कुटिलता पहचान ली, इसी कारण वे मुझे अपने साथ नहीं ले गये। पर वे तो अहैतुक करुणामय हैं। प्राणिमात्रके सहज सुहृद् वे दयानिधान यदि मेरे कर्मोंकी ओर दृष्टिपात करेंगे तब तो सौ करोड़ कल्पोंतक भी मेरा उद्धार नहीं हो सकेगा। पर मेरे प्रभु श्रीरामका स्वभाव अत्यन्त कोमल है। वे दीनों और अनाथोंपर सदा ही दयादृष्टि रखते हैं। इस कारण वे अपने भक्तोंकी त्रुटियों और उनके अपराधोंकी ओर कदापि ध्यान नहीं देते।'

रघुकुलतिलक श्रीरामकी पादुकाओंके सम्मुख कुशासनपर बैठे भरतजी उन्हींकी स्मृतिमें विकल-विह्वल हो रहे थे। उनके नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था, अधरोंसे वे प्रभुके पावनतम 'राम' नामका जप कर रहे थे। उसी समय ब्राह्मण-वेषधारी हनुमानजी वहाँ पहुँच गये। अपने परमप्रभु नवनीरद-वपु श्रीरामकी प्रतिमूर्ति भरतजीकी विरह-व्यथा देखकर पवनपुत्रकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने हाथ जोड़कर अत्यन्त नम्रतापूर्वक मधुर वाणीमें भरतजीसे कहा—'प्रभो! आप जिन दण्डकारण्यवासी तपोनिष्ठ भगवान् श्रीरामका अहर्निश चिन्तन करते हैं तथा जिनके लिये अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं, वे ककुत्स्थनन्दन श्रीराम अपने शत्रु रावणको मारकर अपनी प्रिया वैदेही, भाई लक्ष्मण तथा अपने मित्र वानर-भालुओंके साथ कुशलपूर्वक आपसे मिलनेके लिये अधीर होकर आ रहे हैं। कल पुष्य नक्षत्रके योगमें आप उनका दर्शन प्राप्त करेंगे।'

भगवान् श्रीरामके सकुशल पधारनेका संदेश! अमृतमय सुखद संदेश!! भरतजीमें जैसे नवजीवनका संचार हो गया। उनके हर्षकी सीमा नहीं थी। उन्होंने आतुरतापूर्वक ब्राह्मणदेवको प्रणाम किया ही था कि हाथ जोड़े हुए पवनकुमार उनके चरणोंकी ओर झुके। भरतजीने उनसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक पूछा—'मुझे अतिशय आनन्द प्रदान करनेवाला संदेश सुनानेवाले आप कौन हैं? आप कहाँसे पधारे हैं?'

'प्रभो! मैं भगवान् श्रीरामका दास पवनपुत्र हनुमान हूँ। प्रभुने मुझे आपका कुशल-समाचार जानने और अपनी कुशलताका संवाद सुनानेके लिये आपकी सेवामें भेजा है।' हनुमानजीका उत्तर सुनते ही भरतजीने उन्हें अत्यन्त प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया। भरतजीके नेत्रोंसे वेगपूर्वक आँसू बहने लगे। उन्होंने अञ्जनानन्दनके शरीरपर हाथ फेरते हुए गद्गद कण्ठसे कहा—'हनुमान! आज तुम्हें देखकर मेरा सारा दु:ख दूर हो गया। मानो तुम्हारे रूपमें मुझे मेरे परमप्रभु श्रीराम ही मिल गये। भाई हनुमान! इस सुखद संदेशके समान मेरे लिये आनन्दप्रदायक और कुछ नहीं है। हे तात! मैं तुमसे किसी प्रकार उऋण नहीं हो सकता। अब तुम मुझे मेरे प्रभुका चरित्र सुनाओ।'*

श्रीभरतजीके आदेशानुसार हनुमानजीने उनके चरणोंमें सिर झुकाया और श्रीरामचन्द्रजीका क्रमश: सम्पूर्ण चरित्र सुना दिया। मारुतिसे श्रीराम-चरित्र सुनते हुए भरतजी मन-ही-मन आनन्दित हो रहे थे। हनुमानजीके चुप होनेपर उन्होंने पूछा—'कपिश्रेष्ठ! क्या प्रभु मुझे भी कभी दासकी तरह स्मरण करते थे?'

अत्यन्त विनीत भरतजीके वचन सुन मारुतिने उत्तर दिया—'प्रभो! मैं सर्वथा सत्य कहता हूँ, आप भगवान् श्रीरामके प्राण-तुल्य प्रिय हैं। वे सदा आपका गुणगान करते हुए आत्मविभोर हो जाते थे। अब आप कृपापूर्वक मुझे प्रभुके समीप पहुँचनेकी आज्ञा दीजिये।'

प्रेममूर्ति भरतजीने पुन: हनुमानजीको गलेसे लगा लिया। वे पवनकुमारका बार-बार आलिङ्गन कर रहे थे, उनके हृदयमें आनन्द समा नहीं पा रहा था।

पवनकुमारने भरतजीके चरणोंमें प्रणाम किया और प्रभु श्रीरामके समीप पहुँचनेके लिये तीव्र गतिसे चल पड़े।

हनुमानजीके अयोध्याके लिये प्रस्थित हो जानेपर श्रीरघुनाथजी पञ्चमी तिथिको मुनिवर भरद्वाजके आश्रममें पहुँचे और उनका दर्शन कर सीता तथा भाई लक्ष्मणसहित उनके चरणोंमें प्रणाम किया। सुग्रीव, अङ्गद और

* नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥ (मानस ७। १। ७)

विभीषणादिने भी महामुनिके चरणोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्ण हृदयसे प्रणाम निवेदन किया।

महर्षि भरद्वाजने श्रीरामको शुभ आशीर्वाद देकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक बैठाया। भगवान् श्रीरामने कहा—'मुनिनाथ! आपकी कृपासे चतुर्दश वर्षका वनवास-काल समाप्त होनेपर मुझे पुनः आपके चरणोंके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आपको यदि भाई भरतका कुछ कुशल-समाचार प्राप्त हुआ हो तो कृपया बतलाइये।'

मुनिवर भरद्वाजने उत्तर दिया—'धर्ममूर्ति श्रीराम! आपने पृथ्वीका भार उतारनेका महान् दायित्व पूर्ण कर लिया और शत्रुपर विजय प्राप्तकर सफलमनोरथ हो अपनी सती पत्नी, भाई लक्ष्मण एवं मित्रोंसहित कुशलतापूर्वक लौट आये, यह देखकर मैं आनन्दमग्न हो रहा हूँ। मेरी प्रसन्नताकी सीमा नहीं है।'

फिर अत्यन्त गद्गद कण्ठसे महर्षिने कहा—'श्रीराम! आप समस्त लोकोंसे वन्दित और सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं। आप साक्षात् विष्णुभगवान् हैं, जानकीजी लक्ष्मी हैं और ये लक्ष्मणजी शेषनाग हैं।* आप सर्वान्तर्यामी हैं, किंतु आपके पूछनेपर मैं बता रहा हूँ कि अयोध्यामें सब कुशल है। आपके भाई भरत आपके स्मरणमें रोते हुए किसी प्रकार एक-एक क्षण व्यतीत कर रहे हैं। वे अत्यन्त कृश हो गये हैं। आपके दर्शनकी आशामें ही उनके प्राण टिके हुए हैं। कौसल्यादि आपकी माताएँ तथा सभी अयोध्यावासी उत्सुकताके साथ आपके लौटनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

महामुनिके मुखसे भाई भरतकी प्रीति एवं उनका दुःख जानकर रघुकुलनन्दन श्रीराम व्याकुल हो गये। उनके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे। उन्होंने महामुनिके अनुरोधकी रक्षाके लिये उनका आतिथ्य स्वीकार किया। तबतक हनुमानजीने नन्दिग्रामसे लौटकर प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया। हनुमानजीके द्वारा अपने भाई भरतका समाचार सुनकर भ्रातृवत्सल प्रभु श्रीरामने महामुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और भाई भरतसे मिलनेके लिये आतुर होकर पुष्पक विमानमें जा बैठे। विमान वेगपूर्वक उड़ा।

इधर हनुमानजीके लौटते ही भरतजीने यह समाचार गुरु वसिष्ठ एवं माताओंको सुनाया तो उनके हर्षकी सीमा न रही। राजसदन ही नहीं, पूरी अयोध्यामें सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामके आगमनके संवादसे प्रसन्नताकी लहर दौड़ पड़ी। छोटे-बड़े सभी अत्यन्त उत्साहपूर्वक अपने घरों, द्वारों एवं मार्गोंको सजाने लगे। अनेक प्रकारके उज्ज्वल मोतियों और रत्नोंकी बंदनवारों एवं चित्र-विचित्र पताकाओंसे अवधपुरी सज उठी। गृह-गृह, गली-गली, राजमार्ग, राजसदन—सर्वत्र जैसे आनन्द मूर्तरूप होकर नृत्य कर रहा था। सर्वत्र हर्ष! सर्वत्र प्रसन्नता! सर्वत्र आनन्द! सर्वत्र उल्लास! सर्वत्र प्रभुके दर्शनकी उत्कट लालसा!!! अयोध्या आजतक ऐसी कभी नहीं सजी थी। उसकी शोभाके सम्मुख अमरावती भी लज्जित हो रही थी। बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री और पुरुष सभी नवीन एवं आकर्षक वस्त्राभरणोंसे सजे थे और सभी प्रभुके स्वागतार्थ उनके दर्शनार्थ सबसे आगे पहुँच जाना चाहते थे। कहीं बालकों, कहीं युवकों, कहीं वृद्धों, स्त्री-पुरुषोंका समुदाय भगवान् श्रीरामके दर्शनार्थ मङ्गल-गान करता हुआ चला जा रहा था। अयोध्यासे प्रभुके स्वागतार्थ एक लाख घोड़े, दस सहस्र हाथी और सुनहरी बागडोरोंसे विभूषित दस सहस्र रथ आदि अनेक ऐश्वर्यमयी वस्तुओंके साथ लोग चले। प्रभुके दर्शनके लिये पालकीमें माताएँ, राज-सदनकी स्त्रियाँ और शत्रुघ्नके साथ भरतजी सिरपर प्रभुकी पादुकाओंको रखकर पैदल ही चले। उस समय भरतजीके मनमें हर्ष नहीं समा रहा था। रह-रहकर उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू छलक पड़ते थे।

नगरके बाहर भरतजीके साथ शत्रुघ्नजी, महर्षि वसिष्ठ, माताएँ, राजमहिलाएँ और समस्त पुरवासी अत्यन्त आतुरतासे प्रभुके आगमनकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि उन्हें सहसा चन्द्रमाके समान कान्तिमान् और सूर्यके समान तेजस्वी पुष्पक विमान दिखायी दिया।

'भगवान् श्रीरामकी जय! जगज्जननी जानकीकी जय!! लखनलालकी जय!!!' से सम्पूर्ण वायुमण्डल गूँज उठा और उसी समय मनकी गतिसे चलनेवाला विमान धरतीपर उतर गया। सीता, लक्ष्मण एवं अपने समस्त परिकरोंके उतर जानेपर भगवान् श्रीरामने पुष्पकको कुबेरके पास चले जानेकी आज्ञा दी।

भगवान् श्रीरामने अपने सम्मुख वामदेव, वसिष्ठ आदि श्रेष्ठ मुनियोंको देखा तो अपना धनुष-वाण पृथ्वीपर रख दिया और लक्ष्मणसहित दौड़कर गुरुके चरण-कमलोंमें अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम किया। वसिष्ठजीने श्रीराम और लक्ष्मणको उठाकर अपने

* ……त्वं जगतामीशः सर्वलोकनमस्कृतः। त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शेषोऽयं लक्ष्मणाभिधः॥ (अ० रा० ६। १४। २३)

हृदयसे लगा लिया और उन्हें अनेक प्रकारके आशीर्वाद देने लगे। इसके बाद धर्ममूर्ति श्रीरामने समस्त ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

भरत, शत्रुघ्न और माताओंसहित समस्त पुरवासी प्रभुकी ओर अपलक दृष्टिसे देख रहे थे। भरतजीने अत्यन्त प्रेमपूर्वक प्रभु श्रीरामकी पादुकाएँ सिरसे उतारकर उनके सम्मुख रखीं और उनके चरण-कमलोंको पकड़ लिया। प्रीति-परवश श्रीरघुनाथजीकी भी बड़ी विचित्र स्थिति थी। भरतजीके प्रेमसे उनके नेत्र सजल हो गये थे। श्रीभगवान् उन्हें बार-बार उठानेका प्रयत्न कर रहे थे; किंतु भरतजी प्रभुके जन्म-जरा-मृत्यु-विरामदायी दुर्लभतम चरण-कमलोंसे उठानेपर भी नहीं उठ रहे थे। भक्तवत्सल प्रभु श्रीरामने उन्हें बरबस उठाकर हृदयसे लगा लिया।

नवनीरदवपु श्रीराम एवं नवघनश्याम भरतजी—दोनों जटाजूटधारी, दोनों तपस्वी, दोनों एक-दूसरेके प्राणाधिक प्रिय, दीर्घकालके बाद दोनों प्राणप्रिय भाइयोंका मिलन! श्रीराम भरतसे उनका कुशल-संवाद पूछ रहे हैं, पर प्रेमानन्दमें निमग्न होनेके कारण भरतजीका कण्ठ अवरुद्ध हो गया है। वे बोल नहीं पाते, उनकी स्थिति वे ही जानते हैं। बड़ी कठिनाईसे भरतजीने उत्तर दिया—'प्रभो! आपने मेरी रक्षा कर ली। आपका दर्शन प्राप्त हो गया। बस, इससे सब आनन्द-मङ्गल है।'

भगवान्ने प्रसन्न होकर शत्रुघ्नजीको हृदयसे लगाया और भरतजीने भाई लक्ष्मणको अपने वक्षसे सटा लिया। एक ओर वानरराज सुग्रीव और उनकी पत्नियाँ, युवराज अङ्गद, लंकेश विभीषण और उनकी पत्नियाँ, जाम्बवान्, मैन्द, द्विविद, नल और नीलादि वानर-भालुओंका अपरिसीम समुदाय, दूसरी ओर कुलगुरु वसिष्ठ, माता कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी तथा अन्य राजमहिलाएँ और उनके मध्य भगवान् श्रीराम और भरत, श्रीराम और शत्रुघ्न, लक्ष्मण और भरत तथा सुमित्राके पुत्रद्वय लक्ष्मण और शत्रुघ्नका परस्पर मिलन। उन चारों भाइयोंका अद्भुत प्रेम एवं उनकी पाप-ताप-नाशक अलौकिक सौन्दर्य-राशि! उनके समीप हाथ जोड़े चकित एवं पुलकित अञ्जनानन्दन।

निश्चय ही वे अत्यन्त भाग्यवान् हैं, जो अपने अन्तर्हृदयमें यह मङ्गल-मूल-निधान, परम सुखद, सुन्दरतम ध्यान धारण कर सकें।

महिमामय

जगज्जननी जानकी और जगत्त्राता प्रभु श्रीरामको अयोध्याके राजसिंहासनपर आसीन देखकर सर्वत्र हर्ष व्याप्त हो गया। अयोध्यामें तो आनन्दका पावन नर्तन हो ही रहा था, हर्षातिरेकसे मेदिनी पुलकित हो गयी और देवगण मुदित होकर स्वर्गीय सुमनोंकी वृष्टि करने लगे।

धर्म-विग्रह श्रीराघवेन्द्रने मुनियों एवं ब्राह्मणोंको पुष्कल दानादि—प्रत्येक रीतिसे प्रसन्नकर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। तदनन्तर उन्होंने अपने मित्र किष्किन्धाधिपति सुग्रीवको मणियोंसे युक्त सोनेकी एक दिव्य माला भेंट की, जो सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित हो रही थी। फिर प्रभु श्रीरामने युवराज अङ्गदको नीलमसे जटित दो अङ्गद (बाजूबंद) भेंट किये, जो चन्द्रमाकी किरणोंसे विभूषित प्रतीत होते थे। इसी प्रकार मैत्री-धर्मका मर्म समझनेवाले प्रभु श्रीरामने राक्षसराज विभीषण, परम बुद्धि-वैभव-सम्पन्न जाम्बवान्, द्विविद, मैन्द, नल और नील आदि वानर-भालुओंको मनोवाञ्छापूरक बहुमूल्य अलंकार एवं श्रेष्ठ रत्नादि प्रदान किये।

उस समय भगवान् श्रीरामने महारानी सीताको अनेक सुन्दर वस्त्राभूषण अर्पित किये। साथ ही उन्होंने चन्द्र-किरणोंके तुल्य प्रकाशित उस परमोत्तम मुक्ताहारको उनके गलेमें डाल दिया, जिसे उन्हें वायुदेवताने अत्यन्त आदरपूर्वक प्रदान किया था।

माता सीताने देखा, प्रभुने सबको अनेक बहुमूल्य उपहार अत्यन्त प्रेमपूर्वक प्रदान किये, किंतु पवनकुमारको अबतक कुछ नहीं मिला और पवनकुमार निरन्तर श्रीसीता-रामके चरणारविन्दकी ओर देख रहे थे। उन्हें त्रैलोक्यकी सम्पूर्ण सम्पत्ति उन चरणोंमें ही समायी दीख रही थी। माता सीताने प्रभुकी ओर देखकर अञ्जनानन्दनको कुछ भेंट देनेका विचार किया। उन्होंने प्रभु-प्रदत्त दुर्लभतम मुक्ताहार अपने गलेसे निकालकर हाथमें ले लिया और प्रभुकी ओर तथा समस्त वानरोंकी ओर देखने लगीं।

'महारानी सीताकी इच्छाका अनुमान कर प्रभुने कहा—'सौभाग्यशालिनि! तुम जिसे चाहो, इसे दे दो।'

अपने प्राणनाथका आदेश प्राप्त होते ही माता सीताने वह मुक्ताहार पवनपुत्रको दे दिया। उक्त बहुमूल्य हारको कण्ठमें धारण करनेपर हनुमानजीकी शोभा अद्भुत हो गयी। हनुमानजीकी भक्तिसे तो सभी प्रभावित थे और

सभी स्वीकार करते थे कि तेज, धृति, यश, चतुरता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और उत्तम बुद्धि*—ये दस गुण इनमें सदा विद्यमान रहते हैं। अतएव इस बहुमूल्य हारके यथार्थ पात्र हनुमानजी ही थे। किंतु इस हारके मिस श्रीरघुनाथजीने एक नयी लीला प्रारम्भ कर दी, जिससे हनुमानजीकी अद्भुत महिमा प्रकट हुई और उनकी अनन्य भक्तिके सम्मुख सबको नत होना पड़ा।

जहाँ हनुमानजीके उस बहुमूल्य मुक्ताहारको प्राप्त करनेके सौभाग्यकी प्रशंसा हो रही थी, वहीं श्रीहनुमानजीकी मुखाकृतिपर उसकी प्राप्तिके कारण हर्षका कोई चिह्न नहीं दीख रहा था। वे तो सोच रहे थे कि माता जानकी और प्रभु श्रीराम मेरी अञ्जलिमें अपने अनन्त सुखदायक चरण-कमल रख देंगे, किंतु यह मातृप्रदत्त मुक्ताहार! हनुमानजीने उस मुक्ताहारको गलेसे निकाल लिया और उसे उलट-पलटकर देखने लगे। कुछ देरतक तो वे हारको, उसके प्रकाश-विकीर्णकारी एक-एक मुक्तामणिको ध्यानपूर्वक देखते रहे, किंतु उनमें उनका अभीष्ट प्राप्त नहीं हुआ। उन्होंने सोचा, सम्भवत: इसके भीतर मेरे अभीष्ट—'श्रीसीता-राम'—मिल जायँ। बस, उन्होंने एक अनमोल रत्नको मुँहमें डालकर अपने वज्र-तुल्य दाँतोंसे फोड़ दिया, पर उसमें भी कुछ न था। वह तो निरा चमकता हुआ पत्थर ही था। हनुमानजीने उसे फेंक दिया।

यह दृश्य देखकर सबका ध्यान पवनतनयकी ओर आकृष्ट हो गया। भगवान् श्रीराम मन-ही-मन मुस्कुरा रहे थे और माता जानकी, भरत आदि भ्राता, राक्षसराज विभीषण, वानरराज सुग्रीव, युवराज अङ्गद, महाप्रबुद्ध जाम्बवान्, निषादराज, समस्त वानर-भालू एवं सभासद्गण यह दृश्य देखकर चकित हो रहे थे। हनुमानजीने दूसरे रत्नको भी मुँहमें डालकर फोड़ लिया और उसे भी देखकर फेंक दिया। इस प्रकार वे अनमोल मुक्तामणि और रत्नोंको मुखमें डालकर दाँतोंसे फोड़ते और उसे देखकर फेंक देते।

सभासदोंका धैर्य जाता रहा, पर कोई कुछ बोल न पा रहा था। कानाफूसी होने लगी—'आखिर हनुमानजी हैं तो बंदर ही न? बंदरको बहुमूल्य हार देनेका और क्या परिणाम होता?' विभीषणजीने तो पूछ ही लिया—'हनुमानजी! इस हारके एक-एक रत्नसे विशाल साम्राज्य क्रय किये जा सकते हैं और आप इन्हें तोड़-फोड़कर नष्ट कर दे रहे हैं?'

एक रत्नको फोड़कर ध्यानपूर्वक देखते हुए हनुमानजीने उत्तर दिया—'लंकेश्वर! क्या करूँ? मैंने देखा कि इस हारमें मेरे प्रभुकी भुवनपावनी मूर्ति है कि नहीं? किंतु इसमें उसे न पाकर मैं इसके रत्नोंको तोड़-फोड़कर देख रहा हूँ कि सम्भवत: इनमें मेरे सर्वेश्वरकी मूर्ति मिल जाय, पर अबतक तो एक रत्नमें भी मेरे प्रभुकी मूर्तिके दर्शन नहीं हुए। जिनमें मेरे स्वामीकी त्रयतापनिवारक मूर्ति नहीं, वे तो तोड़ने और फेंकने ही योग्य हैं। इनका उपयोग ही क्या?'

महामूल्यवान् रत्नोंके नष्ट होनेसे राक्षसराज विभीषणने कुछ क्षुब्ध होकर पूछा—'यदि इन अनमोल रत्नोंमें प्रभुकी झाँकी नहीं मिल रही है तो पहाड़-जैसी आपकी कायामें प्रभुकी झाँकी होती है क्या?'

'निश्चय!' हनुमानजीने दृढ़ विश्वासके साथ उत्तर दिया—'मेरे प्राणनाथ प्रभु मेरे हृदयमें भी विराजते हैं और यदि वे वहाँ नहीं हैं, तब तो इस शरीरका भी कोई उपयोग ही नहीं। मैं इसे अवश्य नष्ट कर दूँगा। आप स्वयं देख लीजिये।'—कहते हुए भगवान् श्रीरामके अनन्य चरणानुरागी पवनकुमारने दोनों हाथोंको अपने वक्षपर रखा और अपने तीक्ष्णतम नखोंसे उसे फाड़कर दो भागोंमें विभक्त कर दिया।

आश्चर्य! अत्यन्त आश्चर्य!! विभीषणजीने ही नहीं, भगवती सीतासहित भगवान् श्रीराम एवं समस्त सभासदोंने प्रत्यक्ष देखा, सम्मुख राजसिंहासनपर विराजित श्रीसीता-रामकी पावनतम मञ्जुल मूर्ति पवनपुत्र हनुमानके हृदयमें भी विराज रही थी और उनके रोम-रोमसे 'राम'-नामकी ध्वनि हो रही थी। लंकेश्वर उनके चरणोंपर गिर पड़े।

'भक्तराज हनुमानकी जय!' सभासदोंने जयघोष किया और भगवान् श्रीरामने सिंहासनसे सहसा उतरकर हनुमानजीको अपने हृदयसे लगा लिया (अन्यथा वे अपना सारा शरीर उधेड़कर रख देते)। निखिलभुवनपावन भक्तवत्सल श्रीरामके मङ्गलमय कर-स्पर्शसे उनका शरीर पूर्ववत् स्वस्थ और सुदृढ़ हो गया। राज-सभामें सबने हृदयसे स्वीकार किया कि हनुमानजी भगवान् श्रीसीतारामके अनन्य भक्त एवं बाह्याभ्यन्तर श्रीराममय हैं।

पवनकुमारको माता जानकी और परमप्रभु श्रीराम ही प्राणप्रिय समझते हों, ये श्रीसीतारामकी ही सम्पूर्ण ममता

* तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नय:। पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा॥ (वा० रा० ६।१२८।८२)

एवं स्नेहके केन्द्र हों, इतनी ही बात नहीं; इन्हें लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कौसल्यादि माताएँ तथा श्रीराम-चरणानुरागी सभी प्राणाधिक प्यार करते थे।

भगवान् श्रीरामकी आज्ञासे वानरराज सुग्रीव जब किष्किन्धाके लिये प्रस्थित हुए, तब उन्होंने पवनपुत्रसे अतिशय प्रीतिपूर्वक कहा—'पवनकुमार! तुम पुण्यकी राशि हो। जाकर दयाधाम श्रीरामजीकी सेवा करो।'*

हनुमानजी! अतिशय सरल और अन्यतम उदार हनुमानजी!—ये जीवमात्रको ही प्रभुके अक्षय सुख-शान्ति-निकेतन चरण-कमलोंमें पहुँचानेके लिये व्यग्र रहते हैं। भगवदुन्मुख प्राणियोंके अहैतुक सहायक हैं ये। युवराज अङ्गदने प्रभुसे विदा लेकर किष्किन्धा जाते समय हनुमानजीसे प्रार्थना की—'हे हनुमान! मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि प्रभुके चरणोंमें मेरा अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम निवेदन करना और उन्हें बार-बार मेरा स्मरण दिलाते रहना।'

प्रभुको उनके चरणोन्मुख प्राणीका स्मरण दिलानेके लिये तो वे प्रतिपल आतुर रहते हैं। सर्वथा निश्छल, अत्यन्त सरल हनुमानजीका यही तो स्वभाव है। हनुमानजीने लौटते ही अङ्गदके प्रेमकी प्रशंसा की, जिसे सुनकर भगवान् श्रीराम प्रेमनिमग्न हो गये।† यह देखकर हनुमानजीको अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ।

इतना ही नहीं, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी भगवान् श्रीरामके चरणोंमें कुछ निवेदन करना चाहते हैं तो प्रभुके सम्मुख बोल नहीं पाते, वे हनुमानजीका सहारा लेते हैं। हनुमानजीके द्वारा ही उनके कार्यकी सिद्धि होती है। देखिये न! तीनों भाइयोंने प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया, वे प्रभुसे कुछ पूछना चाहते हैं, पर संकोचवश कुछ कह नहीं पाते, हनुमानजीकी ओर देखने लगते हैं। अन्तर्यामी प्रभु सब जान गये और वे हनुमानजीसे पूछते हैं—'कहो हनुमान! क्या बात है?'‡

तब हनुमानजीने हाथ जोड़कर कहा—'हे दीनदयालु प्रभो! सुनिये। हे नाथ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, पर प्रश्न करनेमें संकोच करते हैं।'$ इस प्रकार भरतादि भ्राताओंके सहायक तो हुए ही; वे सहज ही उनके प्रीतिभाजन भी हैं।

जहाँ भगवान् श्रीरामके नामका जप होता है, जहाँ प्रभुके मङ्गलमय मधुर नामका कीर्तन होता है, जहाँ करुणामूर्ति श्रीसीतारामकी लीला-कथा एवं उनका स्मरण-चिन्तन होता है, वहाँ हनुमानजी सदा उपस्थित रहते हैं। वे भगवती सीतासहित भगवान् श्रीरामके नाम-जापक एवं उनके लीला-गुणगायकका हृदयसे आभार स्वीकार करते हैं। हनुमानजीके तनमें, मनमें, प्राणमें—यहाँतक कि उनके रोम-रोममें व्याप्त निखिलभुवनपावन परम प्रभुने लीला-संवरण कर साकेत पधारते समय उन्हें आदेश प्रदान किया था—'हरीश्वर! जबतक संसारमें मेरी कथाओंका प्रचार रहे, तबतक तुम भी मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो।'@

दयाधाम श्रीरामकी आज्ञा-प्राप्तिके लिये निरन्तर उनके मुखारविन्दकी ओर देखते रहनेवाले भक्तराज हनुमानजीने तुरंत हाथ जोड़कर विनयपूर्वक निवेदन किया—'भगवन्! संसारमें जबतक आपकी पावन कथाका प्रचार रहेगा, तबतक आपके आदेशका पालन करता हुआ मैं इस पृथ्वीपर रहूँगा।'#

परम प्रभु श्रीरामकी आज्ञाके पालनमें सतत जागरूक रहनेवाले हनुमानजीके भाग्यकी तुलना सम्भव नहीं। भगवान् श्रीरामने एक सघन अमराईमें कुछ देर विश्राम करनेका विचार ही किया था कि वहाँ भरतजीने अपना वस्त्र बिछा दिया। करुणामूर्ति श्रीराम उसपर बैठ गये और भरतादि भाई उनकी सेवा करने लगे। उस समय पवनपुत्र हनुमानजी उनपर पंखा झलने लगे। सजल-जलदवपु परम प्रभु श्रीरामके दर्शन कर हनुमानजीका शरीर पुलकित हो गया और उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये।

सच्चिदानन्दघन प्रभुकी इस झाँकीमें हनुमानजीकी सेवा एवं उनके भक्तिभावका स्मरण कर भगवान् शंकर गद्गद कण्ठसे जगन्माता पार्वतीसे कहते हैं—'गिरिजे!

---

* पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा॥ (मानस ७।१८।५)

† तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत। (मानस ७। १९ [ख])

‡ अंतरजामी प्रभु सभ जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना॥ (मानस ७।३५।२)

$ जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीनदयाल भगवंता॥
नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं॥ (मानस ७।३५।३)

@ मत्कथा: प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर॥ तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्। (वा० रा० ७। १०८। ३३-३४)

यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी॥
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्। (वा० रा० ७। १०८। ३५-३६)

हनुमानजीके समान न तो कोई बड़भागी है और न कोई श्रीरामजीके चरणोंका प्रेमी ही है, जिनके प्रेम और सेवाकी (स्वयं) प्रभुने अपने श्रीमुखसे बार-बार बड़ाई की है।'*

महिमामय भक्तराज हनुमानजीकी महिमाका बखान सम्भव नहीं। बस, यह मनोहारिणी झाँकी जिस बड़भागीके हृदयमें स्थान बना ले तो उसे निश्चय ही मनुष्य-जीवनका यथार्थ फल ही प्राप्त हो जाय।

भावुक भक्तोंमें

वज्राङ्गबली महावीर हनुमानजी सहज सरल और भोले हैं। इनके भोलेपन एवं श्रीरघुनाथजीके चरण-कमलोंमें इनकी अद्भुत प्रीतिकी अनेक कथाएँ भक्तोंमें प्रचलित हैं। उनका आधार तो विदित नहीं, किंतु वे कथाएँ हनुमानजीकी सरलता, उनके भोलेपन एवं उनकी अलौकिक श्रीराम-प्रीतिकी परिचायिका हैं, इस कारण यहाँ कुछ कथाओंका उल्लेख करना अनुचित नहीं प्रतीत होता।

भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त हनुमानजीकी माता जानकीके चरणोंमें भी अद्भुत भक्ति है और जगज्जननी जनकदुलारी इन्हें प्राण-तुल्य प्यार करती हैं, इस कारण ये माताजीके सम्मुख तनिक भी संकोच नहीं करते। मातासे संकोच भी कैसा ? बात है मंगलवार प्रातःकालकी। हनुमानजीको भूख लगी। वे सीधे माता जानकीके समीप पहुँचे और बोले—'माँ! मुझे भूख लगी है। कलेवाके लिये कुछ दीजिये।'

'बेटा! मैं अभी स्नान करके तुम्हें मोदक देती हूँ।' माताके वचन सुन हनुमानजी प्रभु श्रीरामका नाम-जप करते हुए माताके स्नान कर लेनेकी प्रतीक्षा करने लगे।

जगदम्बा सीताने स्नान करके शृङ्गार करना प्रारम्भ किया। माताकी माँगमें सिन्दूर देखकर भोले हनुमानजीने पूछा—'माताजी! आपने यह सिन्दूर क्यों लगाया है?'

माता जानकीको हँसी आ गयी। हँसते हुए उन्होंने हनुमानजीको उत्तर दिया। उत्तर क्या दिया, जैसे वे छोटे अबोध शिशुको बहला रही थीं। बोलीं—'इस लाल सिन्दूरको लगानेसे तुम्हारे स्वामीकी आयु-वृद्धि होती है।'

'सिन्दूर लगानेसे मेरे स्वामीकी आयु बढ़ती है।' हनुमानजी मन-ही-मन सोचने लगे और बहुत देरतक सोचते रहे। वे सहसा उठे और ढूँढ़कर अपने सर्वाङ्गमें तेल लगाये, तत्पश्चात् आपादमस्तक सिन्दूर पोत लिये। सर्वाङ्ग सिन्दुरारूप हो गया, जैसे उन्होंने सिन्दूरमें स्नान किया हो। मेरे इस सिन्दूर-लेपसे मेरे प्रभुकी आयु-वृद्धि हो जायगी, इस हर्षोल्लासमें उन्हें अपनी क्षुधाका भी ध्यान नहीं रहा।

हनुमानजी सीधे प्रभु श्रीरामकी राज-सभामें पहुँचे ही थे कि उन्हें इस सिन्दूरपूरिताङ्ग अद्भुत वेषमें देखकर वहाँ जोरका अट्टहास हुआ। स्वयं भगवान् श्रीराम भी मुस्कुरा उठे। वे हनुमानजीसे पूछ बैठे—'हनुमान! आज तुमने सर्वाङ्गमें सिन्दूर-लेप कैसे कर लिया?'

सरल हनुमानजीने हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'प्रभो! माताजीके तनिक-सा सिन्दूर लगानेसे आपकी आयुमें वृद्धि होती है, यह जानकर आपकी अत्यधिक आयु-वृद्धिके लिये मैंने समूचे शरीरमें सिन्दूर लगाना प्रारम्भ कर दिया है।'

श्रीराघव हनुमानजीके सरल भावपर मुग्ध हो गये। उन्होंने घोषणा कर दी—'आज मंगलवार है। इस दिन मेरे अनन्यप्रीतिभाजन महावीर हनुमानको जो तेल और सिन्दूर चढ़ायेंगे, उन्हें मेरी प्रसन्नता प्राप्त होगी और उनकी समस्त कामनाओंकी पूर्ति हो जाया करेगी।'

पवनात्मजने प्रभुके दोनों चरण-कमलोंको पकड़ लिया।

अतुलित बलधाम श्रीहनुमानजी विद्या-बुद्धि-सम्पन्न तो हैं ही, वे निरन्तर भगवान् श्रीरामकी सेवामें ही संलग्न रहना चाहते थे। प्रभुकी सेवामें ही उन्हें सुख-शान्तिका अनुभव होता। सेवाके लिये वे प्रतिक्षण अवसर देखा करते, प्रभुकी कोई आवश्यकता हो, प्रभु कोई भी आज्ञा प्रदान करें, उसके लिये हनुमानजी सदा सजग, सावधान और तत्पर रहते थे। प्रभुकी सेवाके लिये वे पृथ्वी ही नहीं, आकाश और पातालमें भी चला जानेके लिये सदा प्रस्तुत रहते थे। उनकी इसी सेवा-वृत्तिके कारण भरतादि बन्धुओंकी बात तो

* .... । गए जहाँ सीतल अवँराई॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥
मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई॥
हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥ (मानस ७। ४९। ३—५)

अलग रही, स्वयं जगज्जननी जानकीको भी प्रभुकी किसी सेवाका सुयोग प्रायः नहीं मिल पाता, इस कारण वे सभी उद्विग्न रहा करते।

एक दिनकी बात है, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—तीनों भाई माता जानकीके पास पहुँचे। माताजीने पूछा—'आज तीनों भाई एक साथ कैसे पधारे?'

भरतजीने कहा—'प्रभुकी छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी सभी सेवा हनुमानजी कर लेते हैं। हमलोग चाहते हैं कि कुछ सेवाका अवसर हमें भी मिले, किंतु हनुमानजी सेवाके लिये निरन्तर हाथ जोड़े प्रभुके मुखारविन्दकी ओर ही निहारा करते हैं। इस कारण हमें प्रभुकी सेवाका कोई सुयोग नहीं मिल पाता। आपके चरणोंमें यही निवेदन करने हमलोग यहाँ आये हैं।'

स्वयं माताजी भी प्रभुकी सेवाका सुयोग प्राप्त करनेके लिये व्यग्र थीं। उन्होंने तीनों भाइयोंसे कहा—'आपलोगोंको भी प्रभु-सेवाका सुअवसर प्राप्त होना चाहिये, यह तो मैं भी चाहती हूँ, किंतु हनुमानजीके कारण मैं भी प्रायः प्रभुकी सेवासे वञ्चित रह जाती हूँ। पर किया क्या जाय? आपलोग कोई उपाय बताइये।'

गम्भीर विचार-विमर्शके उपरान्त निश्चय हुआ कि प्रभुके शय्या-त्यागसे लेकर उनके पुनः शयन-कालतककी सेवाकी एक तालिका बनायी जाय और उन सेवाओंको हमलोग अपने-अपने इच्छानुसार बाँट लें। उस निर्णीत सेवाकी तालिकापर प्रभुके हस्ताक्षर कराकर उसपर राज-मुद्राकी छाप लगवा ली जाय, इस प्रकार हनुमानजी स्वतः सेवा-निवृत्त हो जायँगे और हमलोगोंको प्रभुकी सेवाका अवसर प्राप्त होता रहेगा।

तालिका बन गयी। अब प्रभुके हस्ताक्षरका प्रश्न था। माता जानकीने कहा—'हस्ताक्षर तो मैं करा लूँगी।'

बस, पूर्ण आश्वस्त होकर तीनों भाई वहाँसे चले आये। रात्रिमें माता जानकीने प्रभुसे निवेदन किया—'आप इस सेवा-तालिकापर हस्ताक्षर कर दें।'

'कैसी सेवा-तालिका?' प्रभुके पूछनेपर माता जानकीने उत्तर दिया—'आपकी सेवाके लिये आपके तीनों भाइयोंने मेरी सहमतिसे यह तालिका तैयार की है।'

प्रभुने ध्यानपूर्वक आद्योपान्त पूरी तालिका देखी। उसमें हनुमानजीका नाम न देखकर उन्हें षड्यन्त्रका अनुमान तो हुआ, किंतु उन्होंने मुस्कुराते हुए उसपर हस्ताक्षर कर दिया। फिर माताजीने निवेदन किया—'इसपर राज-मुद्राकी छाप लग जानी चाहिये।'

प्रभुने कहा—'कल राज-सभामें राज-मुद्राकी छाप भी लग जायगी।'

दूसरे दिन उस सेवा-सूचीपर राज-मुद्राकी छाप भी लग गयी तथा उसकी एक-एक प्रति राज-सभामें वितरण कर दी गयी। भरतादि बन्धुओंके साथ माताजीकी इस गोष्ठीमें निर्णीत प्रस्तावसे हनुमानजी सर्वथा अपरिचित थे। वे प्रभुकी सेवाके लिये आगे बढ़े ही थे कि उन्हें रोककर कहा गया—'आजसे प्रभुकी सेवा बाँट दी गयी है। अतएव आप इस सेवासे तो पृथक् ही रहें।'

'सेवा-वितरणका कार्य कब हुआ ?' हनुमानजीने पूछा ही था कि उनके हाथमें राजमुद्राङ्कित प्रभुकी सेवा-तालिका दे दी गयी।

अत्यन्त ध्यानपूर्वक तालिका देख लेनेके अनन्तर हनुमानजीने कहा—'अरे, इसमें तो मेरा कहीं नाम ही नहीं है।'

उत्तर मिला—'यह तालिका आपकी अनुपस्थितिमें बनी थी। हाँ, इस तालिकाके अतिरिक्त भी कोई सेवा हो तो आप उसे ले सकते हैं।'

ज्ञानिनामग्रगण्य हनुमानजीने कहा—'भगवान्‌को जँभाई आनेपर चुटकी बजानेकी सेवा इस तालिकामें नहीं है।'

लक्ष्मणजीने कहा—'चाहें तो आप यह सेवा ले लें।'

'ठीक है, पर इस तालिकाकी तरह मेरी सेवापर भी प्रभुके हस्ताक्षर हो जायँ और उसपर राज-मुद्रा भी अङ्कित कर दी जाय।'

इसमें किसीको कोई आपत्ति नहीं थी। भक्तवत्सल प्रभुने हनुमानजीकी सेवाके पत्रपर तुरंत हस्ताक्षर कर दिया और उसपर राज-मुद्राकी छाप भी लगा दी गयी। बस, हनुमानजी तुरंत चुटकी तानकर प्रभुके सम्मुख वीरासनसे बैठ गये। पता नहीं प्रभुको कब जँभाई आ जाय, इसलिये चुटकी बजानेकी सेवाके लिये उन्हें सतत सावधान रहना नितान्त आवश्यक था।

प्रभु उठे और सेवा-दक्ष हनुमानजी भी उनके साथ ही उठे। प्रभु चले और उनकी ओर मुँह किये चुटकी ताने हनुमानजी भी पीछेकी ओर बढ़े। प्रभु बैठे, हनुमानजी भी बैठे। हनुमानजी प्रतिक्षण चुटकी ताने परम प्रभुके मुखारविन्दकी ओर निहारते रहे।

श्रीरघुनाथजी भोजन करने बैठे और हनुमानजी उनके सामने चुटकी ताने बैठ गये। हनुमानजीको अपनी सेवाकी ही चिन्ता थी। यहाँतक कि भोजन और जल-पान भी प्रभुकी ओर चुटकी ताने हनुमानजीने बायें

हाथसे ग्रहण किया। एक क्षणके लिये भी उनकी दृष्टि प्रभुके मुखारविन्दसे नहीं हटती थी।

रात्रि आयी। हनुमानजी प्रभुकी शय्याके सम्मुख चुटकी ताने खड़े थे। अर्द्धरात्रि व्यतीत हो गयी, पर सेवाग्रगण्य हनुमानजी अपनी सेवासे चूकना नहीं जानते थे। किंतु माता जानकीकी आज्ञासे उन्हें रात्रिके समय प्रभुसे पृथक् होना पड़ा।

हनुमानजीने सोचा कि जँभाई आनेका समय तो निश्चित है नहीं, यदि मेरे परम प्रभुको रात्रिमें जँभाई आ जाय, तब तो मैं अपनी सेवासे वञ्चित रह जाऊँगा। वे प्रभुके शयनागारके समीप ऊँचे छज्जेपर बैठकर प्रभुका नाम लेते हुए चुटकी बजाने लगे। उनकी चुटकी बजती ही रही।

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'

—'जो मुझे जैसे भजता है, मैं भी उसे उसी प्रकार भजता हूँ।' प्रभुके परम भक्त हनुमानजी प्रभुको जँभाई आनेकी सम्भावनासे क्षुधा-तृषा एवं निद्राका परित्याग कर जब चुटकी बजाते जा रहे हैं, तब अपने वचनके अनुसार प्रभुको जँभाई भी आनी चाहिये।

फिर क्या था? श्रीरघुनाथजीको जँभाई आने लगी। एक बार, दो बार, तीन बार, चार बार, दस बार, पचास बार नहीं, अनवरत रूपसे उन्हें जँभाई-पर-जँभाई आने लगी। जब जँभाई लेते-लेते प्रभु थक गये तो कष्टसे उनका मुँह खुला ही रह गया।

यह दृश्य देखकर माता सीता घबरायीं। व्याकुल होकर उन्होंने माता कौसल्याजीको बुलाया। माता कौसल्या चिल्ला उठीं। फिर तो माता सुमित्रा, कैकेयी, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, उनकी पत्नियाँ—सभी एकत्र हो गये। सबने देखा, प्रभु श्रीरामका मुँह खुला-का-खुला पड़ा है। वह किसी प्रकार बंद ही नहीं हो पा रहा है।

राज्यके प्रमुख चिकित्सक दौड़े। उन्होंने बहुमूल्य ओषधियाँ दीं, किंतु भक्तानुकम्पी लीलानायक जगदाधार स्वामीको उन ओषधियोंसे तनिक भी लाभ नहीं हुआ। उनका मुँह खुला-का-खुला ही रहा। इतना ही नहीं, अब अधिक देरसे मुख खुला रहनेके कारण नेत्रोंसे धीरे-धीरे आँसू भी बहने लगे।

माता कौसल्या, माता सुमित्रा, माता कैकेयी, तीनों भाई, भगवती सीता आदि सभी व्याकुल होकर रुदन करने लगे। अत्यन्त करुण दृश्य उपस्थित हो गया। समाचार सुनकर गुरु वसिष्ठजी भी पहुँचे।

प्रभु श्रीरामने हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया, किंतु मुँह खुला होनेसे कुछ बोल न सके। नेत्रोंसे आँसू बहते ही जा रहे थे।

इस चिन्ताजनक करुण स्थितिमें प्रभुके अनन्य सेवक हनुमानजीको न देखकर वसिष्ठजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—'हनुमानजी कहाँ हैं?'

माता जानकीने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'प्रभो! हनुमानके साथ बड़ा अन्याय हुआ है ? उसकी सारी सेवा छीन ली गयी। तब उसने चुटकी बजानेकी सेवा ले ली। वह दिनभर प्रभुके सम्मुख चुटकी ताने खड़ा या वीरासनसे बैठा रहा। अपनी इस सेवाके लिये उसने भोजन और शयनकी भी चिन्ता त्याग दी। रात्रिमें अत्यन्त कष्टसे वह यहाँसे गया। वह दु:खसे व्याकुल होकर कहीं रुदन कर रहा होगा।'

वसिष्ठजी तुरंत दौड़े। देखा, प्रभु-शयनागारके सम्मुख ऊँचे छज्जेपर हनुमानजी प्रभुके ध्यानमें मग्न होकर उनके नामका कीर्तन कर रहे हैं और उनके दाहिने हाथसे निरन्तर चुटकी बजती जा रही है।

वसिष्ठजीने उन्हें पकड़कर हिलाया तो हनुमानजीके नेत्र खुले। अपने सम्मुख महामुनि वसिष्ठके दर्शन कर हनुमानजीने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। वसिष्ठजीके आज्ञानुसार हनुमानजी उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

हनुमानजीने प्रभुका खुला मुखारविन्द एवं उनके नेत्रोंसे बहते आँसू देखे तो वे अत्यन्त व्याकुल हो गये। अधीर वज्राङ्गबली हनुमानके नेत्रोंसे भी आँसू बहने लगे। चिन्ता और दु:खके कारण उनकी चुटकी बंद हो गयी और चुटकी बंद होते ही प्रभुका मुखारविन्द भी बंद हो गया।

हनुमानजीने प्रभुके युगल चरणोंमें अपना मस्तक रख दिया और वे अबोध शिशुकी भाँति सिसकने लगे।

माता सीताने हनुमानजीको उठाकर अतिशय स्नेहसे कहा—'बेटा हनुमान! अब प्रभुकी सारी सेवा तुम्हीं किया करो। तुम्हारी सेवामें कभी कोई किसी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं करेगा।'

सकलगुणनिधान सरलतम हनुमानजीने जगज्जननी जानकीके परम पावन चरणोंमें सिर रख दिया और अपने आँसुओंसे उनका प्रक्षालन करने लगे।

निखिलभुवनेश्वरी माता सीताका शाश्वत शान्ति-प्रदायक स्नेहपूर्ण करकमल स्वत: हनुमानजीके मस्तकपर चला गया।

'सुमिरि पवनसुत पावन नामू'

भावुक भक्तों और कथावाचकोंद्वारा कही जानेवाली यह तीसरी कथा भी मनोरञ्जक तो है ही, इससे भगवान् श्रीरामके नामकी महिमा भी प्रकट होती है और यह भी विदित होता है कि श्रीरामनाम-प्रेमी हनुमानजी अपने आराध्यके नाम-जापककी रक्षाके लिये प्रभु श्रीरामका अमोघ शर भी झेल लेनेके लिये प्रस्तुत हो जाते हैं। अत्यन्त संक्षेपमें कथा इस प्रकार है—

एक बार हनुमानजीने अपने प्रभु श्रीरघुनाथजीसे (राजभोगके अनन्तर) अपनी माता अञ्जनाके दर्शनार्थ जानेकी आज्ञा माँगी। प्रभुने उन्हें सहर्ष आज्ञा प्रदान कर दी।

हनुमानजी अपनी माताके दर्शनार्थ जानेवाले थे, उसी समय काशी-नरेश श्रीरघुनाथजीके दर्शनार्थ आ रहे थे। मार्गमें उनसे देवर्षि नारद मिल गये। काशी-नरेशने देवर्षिके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

'तुम कहाँ जा रहे हो?' नारदजीने पूछ लिया।

'प्रभो! मैं परम प्रभु श्रीरामके दर्शनार्थ उनकी राज-सभामें जा रहा हूँ।' काशी-नरेशका उत्तर सुनते ही देवर्षिने पूछा—'मेरा एक कार्य करोगे?'

'धरतीपर ऐसा कौन पुरुष है, जो आपकी आज्ञाके पालनके लिये तुरंत न दौड़ पड़े।' नरेशने तुरंत कहा—'आप आज्ञा प्रदान करें।'

कुछ मुस्कुराते हुए नारदजीने नरेशसे कहा—'तुम राजसभामें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम तो अवश्य करना, किंतु उन्हींके समीप सिंहासनपर बैठे वयोवृद्ध तपस्वी विश्वामित्रजीकी उपेक्षा कर देना। उन्हें प्रणाम मत करना।'

'ऐसा क्यों भगवन्!' नरेशने प्रश्न किया, तब नारदजीने उत्तर दिया—''इस 'क्यों' का उत्तर पीछे मिल जायगा।''

'नारायण हरि!' नारदजी चले गये और काशी-नरेश श्रीराघवेन्द्रकी राजसभामें पहुँचे। उन्होंने देवर्षिके आदेशानुसार श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया, किंतु महर्षि विश्वामित्रकी सर्वथा उपेक्षा करके बैठ गये।

काशी-नरेशकी उपेक्षासे महर्षि विश्वामित्रके हृदयपर चोट पहुँची, किंतु वे राजसभामें चुप रहे। पीछे उन्होंने सीतापति श्रीरामसे कहा—'श्रीराम ! तुम मर्यादापुरुषोत्तम कहलाते हो, इसलिये तुम्हारी राजसभामें तुम्हारे उपस्थित रहते मर्यादाकी अवहेलना उचित नहीं।'

'मेरे रहते कब और कहाँ मर्यादाका उल्लङ्घन हुआ, प्रभो!' आश्चर्यके साथ प्रभुने पूछा—'आप कृपापूर्वक बतलानेका कष्ट करें।'

'आज ही राजसभामें काशी-नरेशने तुम्हारे चरणोंमें तो प्रणाम किया, किंतु उसने मेरी सर्वथा उपेक्षा कर दी।' विश्वामित्रजी जैसे अशान्त हो गये थे—'यह कदापि उचित नहीं।'

'मेरी राजसभामें, मेरे ही सम्मुख आपकी उपेक्षा? यह तो मेरा भयानक तिरस्कार है।' मर्यादापुरुषोत्तम अवधनरेशकी भ्रुकुटि वक्र हो गयी। प्रतिज्ञा की उन्होंने—'आपके समक्ष मैं अपने तीन तीक्ष्णतम शर पृथक् रख दे रहा हूँ। इन तीन शरोंसे आज संध्यातक काशिराज मारा जायगा।'

'इन तीन शरोंसे आज संध्यातक काशिराज मारा जायगा।'—परम पराक्रमी सत्यव्रती रावणारिकी यह प्रतिज्ञा वायु-वेगसे सर्वत्र फैल गयी। काशी-नरेशने सुना तो उनका कण्ठ शुष्क हो गया। जीवनसे सर्वथा निराश, वे दौड़े देवर्षिके समीप और उनके चरणोंमें गिरकर गिड़गिड़ाते हुए बोले—'भगवन्! सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामने आज सायंकालतक मुझे मार डालनेकी प्रतिज्ञा की है।'

'प्रतिज्ञा तो मैंने भी सुनी है।' देवर्षि नारदने तटस्थकी भाँति उत्तर दिया—'और श्रीरामकी प्रतिज्ञा! सर्वविदित है कि रघुकुलमें प्रतिज्ञा-पूर्तिके लिये प्राणतक होम देनेमें आपत्ति नहीं होती।'

'प्रभो! मैंने तो आपके आदेशका पालन किया था।' काशिराज रो पड़े—'जैसे भी हो, आप मेरा प्राण बचाइये।'

'चिन्ताकी बात नहीं।' श्रीनारदजीने काशी-नरेशको समझाया—'मृत्यु तो निश्चित होती है। वह किसी प्रकार टलती नहीं। यदि भगवान् श्रीरामके शरसे प्राणपखेरू उड़ जायँ तो निश्चय ही जीवन सफल हो जाय, किंतु तुम एक काम करो।'

नारदजीने काशी-नरेशसे धीरे-धीरे कहा—'तुम हनुमानजीकी माता अञ्जनाके समीप जाकर उनके चरण पकड़ लो। जब वे चरण छुड़ाने लगें, तब तुम अपनी रक्षाके लिये उनसे वचन ले लेना। जबतक वे तीन बार तुम्हारी रक्षाके वचन न दे दें, तबतक तुम उनके चरण पकड़े रहना। बस, तुम्हारा काम बन जायगा।'

परमपावन देवर्षिके चरणोंमें प्रणाम करनेकी भी काशी-नरेशको सुधि न रही। वे भागे सीधे माता

अञ्जनाके यहाँ। माता अञ्जना बैठी हुई भगवन्नामका जप कर रही थीं। रोते-कलपते काशिराज माताके चरणोंपर गिर पड़े। उनके चरणोंको पकड़कर उन्होंने कहा—'माँ! मेरी रक्षा करो। आज सायंकालतक एक समर्थ व्यक्तिने मुझे मार डालनेका संकल्प किया है। तुम्हारे अतिरिक्त मेरा प्राण और कोई नहीं बचा सकता। रक्षा करो, माँ! रक्षा करो!'

'किसने और क्यों तुझे आज संध्याके पूर्व ही मार डालनेका प्रण कर लिया है?' माताने प्रश्न किया तो काशिराज और भी उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगे। बोले—'माँ! तुम मेरी रक्षाका वचन दे दो, अन्यथा मैं अभी तुम्हारे चरणोंमें ही प्राण-त्याग कर दूँगा।'

'मेरे रहते तेरा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा।' वात्सल्यमयी सरल जननीने कह दिया—'मैं तेरी प्राण-रक्षाका वचन देती हूँ।'

फूट-फूटकर रोते हुए नरेशने अधीर होकर पुनः प्रार्थना की—'माँ! मुझे संतोष नहीं हो रहा है। मेरे विश्वासके लिये तुम यही बात तीन बार कह दो।'

'मैं तेरी प्राण-रक्षाका वचन देती हूँ।' सर्वथा सरल दयामयी जननीने तीन बार कहते हुए पूछा—'अच्छा, अब तो बता, तुझे मारनेकी किसने प्रतिज्ञा की है?'

'भगवान् श्रीरामने।' नरेशने उत्तर दिया—'उन्होंने आज सायंकालतक मेरे वधकी प्रतिज्ञा की है और इसके लिये उन्होंने अपने तीन तीक्ष्ण वाण भी निकालकर अलग रख लिये हैं।'

'श्रीरघुनन्दनकी प्रतिज्ञा कैसे अन्यथा हो सकती है?' माता अञ्जना चिन्तित हो गयीं। बोलीं—'पर मैंने तुझे वचन दिया है, अतः प्रयत्न तो करूँगी ही।'

उसी समय हनुमानजीने वहाँ पहुँचकर माताका चरण-स्पर्श किया। आशीर्वाद देती हुई माताने कहा—'बेटा! तुम ठीक समयपर आये। अभी-अभी मैं एक आवश्यक कार्यसे चिन्तित होकर तुम्हारा स्मरण कर रही थी। वह कार्य हो जाय तो मेरा मन हलका हो जाय।'

'आज्ञा दीजिये, माताजी!' हनुमानजीने कहा—'आपका कार्य करनेके लिये तो मैं प्रतिक्षण प्रस्तुत हूँ।'

'पर काम तो कठिन है, बेटा! इसी कारण मैं चिन्तित हो गयी हूँ।' माता अञ्जनाके वचन सुनकर हनुमानजीने उन्हें आश्वस्त करनेके लिये कहा—'आपकी कृपासे आपका पुत्र विद्या-बुद्धि, बल-पौरुष और पराक्रमसे ही सम्पन्न नहीं, उसपर निखिल भुवनपति श्रीरघुनाथजीकी अपार करुणाकी वृष्टि भी निरन्तर हो रही है। आप आज्ञा प्रदान करें।'

'यह सब कुछ मैं जानती हूँ, मेरे लाल! किंतु काम अत्यन्त कठिन है, इसीलिये कहनेमें झिझक रही हूँ।' माताने कहा—'किंतु उसकी चिन्ता भी मुझे सता रही है।'

'माताजी! आपके पवित्रतम चरणोंके सम्मुख मैं एक बार नहीं, तीन बार प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपकी आज्ञा मिलनेपर काम चाहे जितना कठिन होगा, मैं उसे अवश्य पूर्णकर आपकी चिन्ता दूर कर दूँगा।' हनुमानजीने अपनी जननीके सम्मुख यों तीन बार कहा।

'तुमसे मुझे यही आशा थी और ऐसा ही विश्वास था, बेटा!' माता अञ्जनाने हनुमानजीके बल, पराक्रम और उनकी मातृ-भक्तिकी प्रशंसा करते हुए कहा—'बेटा! मैंने काशी-नरेशको उसकी प्राण-रक्षाका वचन दे दिया है। आज सायंकालतक श्रीरघुनन्दनने उसका वध करनेकी प्रतिज्ञा कर ली है और इसके लिये उन्होंने तीन तीक्ष्ण शर भी निकालकर रख लिये हैं।'

माता अञ्जना अपने पुत्रका मुँह देखने लगीं। हनुमानजी गम्भीर हो गये थे। बोले—'मेरे प्रभु श्रीरामकी प्रतिज्ञा····।'

'पर बेटा! मैं काशिराजको वचन दे चुकी हूँ।' माताने पुत्रको विचारमग्न देखकर कहा—'और तुमने मुझे तीन बार वचन दिया है। शरणागतकी रक्षा धर्म है, बेटा! और धर्मपालन तो·····।'

'कुछ करूँगा ही, माँ!' हनुमानजीने माताके चरणोंमें मस्तक रखकर कहा—'आज सायंकालतककी ही अवधि है। अतएव मुझे शीघ्र जानेकी अनुमति दीजिये।'

माताकी आज्ञा प्राप्त होते ही हनुमानजी काशी-नरेशके साथ अयोध्या पहुँचे। वहाँ उन्होंने राजासे कहा—'तुम सकल कलुषनाशिनी परम पावनी सरयूमें कमरतक जलमें खड़े होकर अविराम 'राम-राम' का जप करते रहो।'

नरेशने पवनपुत्रके आदेशका पालन करना प्रारम्भ किया और इधर हनुमानजी तुरंत श्रीरामके समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने भगवान् श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम कर उनके दोनों चरण पकड़ लिये। बोले—'स्वामी! आज मैं आपसे एक वरकी याचना करना चाहता हूँ।'

यह कैसे सम्भव है कि सर्वथा निःस्पृह और अत्यन्त संकोची हनुमानजी कभी कुछ माँगें और प्रभु अस्वीकार कर दें। श्रीरामजीने उत्साहपूर्वक कहा—'तुम्हारे लिये अदेय कुछ नहीं, हनुमान! तुम तो कभी कुछ चाहते ही नहीं। मैं तो सदा चाहता हूँ कि तुम मुझसे कुछ चाहो, कुछ माँगो, पर मेरी इस इच्छाकी

पूर्ति तुमसे नहीं हो पाती। बोलो, तुम क्या चाहते हो?'

प्रसन्न होकर हनुमानजीने प्रभुका चरण सहलाते हुए कहा—'करुणामय स्वामी! मैं चाहता हूँ कि आपके अमित महिमामय नामका जप करनेवालेकी सदा रक्षा किया करूँ और मेरी उपस्थितिमें आपके नाम-जापकपर कभी, कहीं, कोई किसी प्रकार प्रहार न करे। यदि दुर्भाग्यवश निखिल सृष्टिका सर्वसमर्थ स्वामी भी प्रहार कर बैठे तो उसका भी प्रहार व्यर्थ सिद्ध हो जाय।'

दयामूर्ति भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजीने तुरंत आशीर्वाद दिया—'तुम नाम-जापककी रक्षा करनेमें सर्वत्र सदा समर्थ होओगे और तुम्हारी उपस्थितिमें नाम-जापकपर किया गया अमोघ प्रहार भी व्यर्थ सिद्ध होगा।'

'जय श्रीराम!' हनुमानजीने प्रभु-चरणोंपर मस्तक रख दिया और फिर तुरंत सरयू-तटपर पहुँचे। वहाँ वे गदा तानकर अत्यन्त सावधानीसे खड़े हो गये और काशी-नरेशसे बोले—'तुम बिना रुके निरन्तर 'राम-राम' रटते रहो।'

स्थिति विचित्र हो गयी। एक ओर सर्वाधार स्वामी श्रीरामजीकी सायंकालतक नरेशके वधकी प्रतिज्ञा और दूसरी ओर अनन्य भक्त हनुमानजीका उनकी रक्षाके लिये परिकरबद्ध हो जाना। राजा सरयू-जलमें खड़े होकर प्राण-भयसे अनवरतरूपसे 'राम'-नामका जप कर रहे थे और वर-प्राप्त हनुमानजी उनकी रक्षाके लिये गदा ताने खड़े थे। बात विद्युद्‌गतिसे फैल गयी। अयोध्यावासी समस्त बाल-वृद्ध-युवा नर-नारी कौतूहलवश सरयू-पुलिनपर पहुँचे। प्रभु और सेवकके प्रतिज्ञा-पालनका दृश्य देखनेके लिये वहाँ विशाल जन-समुदाय एकत्र हो गया।

सायंकाल हो चला था। यह समाचार सत्यव्रती श्रीरघुनाथजीको भी मिला। भगवान् श्रीराम कुपित हो गये। उन्होंने अपने प्रणका पालन करनेके लिये पृथक् रखे गये तीन शरोंमेंसे एक शर उठाया और उसे अपने विशाल धनुषपर रखकर प्रत्यञ्चा कानतक खींची और शर छोड़ दिया। शर अत्यन्त शीघ्रतासे नरेशके समीप पहुँचा, किंतु उन्हें 'राम'-नामका जप करते देखकर वह उनका मस्तक छिन्न नहीं कर सका। वह नरेशके चुप होनेकी प्रतीक्षा करता रहा, किंतु हनुमानजीके द्वारा दीक्षित नरेश प्राण-भयसे अविराम पूरी शक्ति लगाकर 'राम-राम' जपते ही जा रहे थे।

निराश होकर वाण प्रभुके समीप लौट आया। उसने निवेदन किया—'प्रभो! नाम-जापककी सर्वत्र रक्षाके लिये आपने मारुतिको वर प्रदान कर दिया है और उसपर सभी प्रहार व्यर्थ सिद्ध होनेकी आपकी वाणी है। वह राजा निरन्तर आपके नामका जप कर रहा है और वज्राङ्गबली हनुमान गदा ताने उसकी रक्षामें संनद्ध हैं। इस कारण मैं अवश होकर लौट आया।'

भुवनपावन लीलावपु श्रीरामका क्रोध बढ़ा। उन्होंने दूसरा शर धनुषपर चढ़ाकर छोड़ा। वह वायुवेगसे चला और काशी-नरेशका प्राण हरण करनेके लिये उनके समीप पहुँचा भी, किंतु अब तो राजा हनुमानजीके आदेशानुसार सीतासहित नाम—'सीताराम-सीताराम' का जप कर रहे थे।

दूसरे शरको भी नरेशके कण्ठका स्पर्श करनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ। विवशत: वह भी प्रभुके समीप लौट आया। उसने भी राजाके 'सीताराम-सीताराम' रटने और गदाधर हनुमानजीके द्वारा उनकी रक्षाका वृत्तान्त सुना दिया।

'मैं स्वयं सरयू-तटपर चलकर उस धृष्ट नरेश और हनुमानको भी मार डालता हूँ।' सत्यप्रतिज्ञ भगवान् श्रीराम अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उन्होंने अपना विशाल धनुष तथा तीसरा वाण लिया और सरयू-तटकी ओर तीव्रगतिसे चल पड़े।

उधर हनुमानजीने सोचा—'प्रभु अपने मङ्गलमय नामकी विरद रखते हैं, भक्तोंके लिये वे अपना सर्वस्व त्याग देते हैं। भक्त उन्हें प्राणप्रिय हैं।' अतएव उन्होंने राजासे कहा—'अब तुम भगवती सीता और प्रभुके नामके साथ मेरे नामका भी जप करना प्रारम्भ कर दो।' राजा 'जय सियाराम जय जय हनुमान' का जप करने लगे। अत्यधिक देरसे जोर-जोरसे नाम-जप करते-करते नरेश थक गये थे और उनकी वाणी लड़खड़ाने लगी थी। वे तो मृत्यु-भयसे अत्यन्त साहसपूर्वक जैसे-तैसे नाम-जप चला ही रहे थे, किंतु मातृ-भक्त हनुमानजी भी अपने एक अंशसे काशिराजके कण्ठमें प्रविष्ट होकर 'जय सियाराम जय जय हनुमान' का अनवरतरूपसे जप करने लगे।

क्रोधारुणलोचन श्रीरामको शर-संधान किये आते देखकर वसिष्ठजी व्याकुल हो गये। उन्होंने सोचा—'भगवान् श्रीरामकी प्रतिज्ञा अन्यथा नहीं हो सकती और कहीं उन्होंने नरेशके साथ हनुमानजीको भी मार डाला तो महान् अनर्थ हो जायगा।' तब हनुमानजीके समीप पहुँचकर वसिष्ठजीने उन्हें समझानेका प्रयत्न किया—'पवनकुमार! श्रीरघुनाथजी तुम्हारे सर्वस्व हैं। उनकी प्रतिज्ञा पूरी हो जाने दो। दिनान्त समीप होनेके कारण

उनका क्रोध बढ़ता जा रहा है। यह राजा तो उन श्रीरामके पावन शर-स्पर्शसे जन्म-जरा-मरणसे सदाके लिये मुक्त हो जायगा। एक राजाके लिये अपने स्वामीके सम्मुख तनकर खड़ा हो जाना तुम्हारे-जैसे सेवकके लिये कथमपि उचित नहीं।'

'गुरुदेव! मैं त्रिकालमें भी अपने सर्वसमर्थ प्रभुके समीप तनकर खड़ा होनेकी कल्पना भी नहीं कर सकता।' हनुमानजीने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया— 'मैं तो अपने प्रभुके नाम और उनके वरदानकी रक्षाके निमित्त प्राणाहुति देनेके लिये प्रस्तुत हो गया हूँ। मेरा इससे अधिक सौभाग्य और क्या होगा कि मैं अपने प्राणाधिक प्रभु श्रीरामके नाम एवं उनके वरदानकी रक्षामें उनके ही करकमलोंसे छोड़े हुए उन्हींके शराघातसे शरीर त्यागकर उनमें ही विलीन हो जाऊँ।'

'इन ज्ञानमूर्तिको विचलित करना सम्भव नहीं।' वसिष्ठजीने देखा—'श्रीरघुनन्दन सरयू-तटपर पहुँचना ही चाहते हैं। महर्षि विश्वामित्र भी वहाँ उपस्थित होकर भगवान् और भक्तकी यह लीला देखकर चकित और चिन्तित हो रहे थे। तब वसिष्ठजीने काशिराजसे कहा— 'नरेश! तुम शीघ्र ही महर्षि विश्वामित्रके चरण पकड़ लो। वे सहज दयालु हैं।'

'जय सियाराम जय जय हनुमान।' का जप करते हुए काशिराजने दौड़कर महर्षि विश्वामित्रके दोनों चरण पकड़ लिये। उनके अश्रुओंसे महर्षिके चरण आर्द्र हो गये। वे रोते हुए कहते ही जा रहे थे—'जय सियाराम जय जय हनुमान।'

महर्षि द्रवित हो गये। उन्होंने शर-संधान किये क्रुद्ध श्रीराघवेन्द्रसे कहा—'श्रीराम! काशी-नरेशके अपराधका प्रायश्चित्त हो गया। मैंने इसे क्षमा कर दिया, अब तुम भी अपना अमोघ शर धनुषसे उतारकर त्रोणमें रख लो।'

महर्षिके संतुष्ट होते ही श्रीरामका क्रोध स्वतः शान्त हो गया। उन्होंने गुरुकी आज्ञाका पालन किया। तीसरा वाण धनुषसे त्रोणमें आ गया। राजाकी प्राण-रक्षा तो हुई ही, भगवान्‌के सम्मुख भक्त हनुमान विजयी हुए।

इस समाचारसे माता अञ्जनाकी प्रसन्नताकी सीमा न रही।

परमात्म-तत्त्वोपदेशकी प्राप्ति

जब प्रकृतिसे परे परमात्मा, अनादि, आनन्दघन, अद्वितीय और निखिल सृष्टिके स्वामी, मर्यादापुरुषोत्तम, कोटिसूर्यसमप्रभ भगवान् श्रीराम राज्याभिषेक हो जानेपर वसिष्ठ आदि ब्रह्मर्षियोंसे घिरे भगवती सीताके साथ सिंहासनासीन हुए, उस समय भोगेच्छारहित, प्रतिदानशून्य, परम सेवाके साकार विग्रह अञ्जनानन्दवर्धन पवनकुमारको करबद्ध अपनी ओर अनिमेष दृष्टिसे निहारते हुए देखकर परम प्रभु श्रीराघवेन्द्रने अपनी हृदयाधिकारिणी प्रियतमा भगवती सीतासे कहा—'विदेहनन्दिनि! यह हनुमान हम दोनोंमें अनन्य भक्ति रखनेके कारण सर्वथा निष्पाप और ज्ञान-प्राप्तिका योग्यतम पात्र है। अतः तुम इसे मेरे तत्त्वका उपदेश प्रदान करो।'

अपने प्राणाधार परम प्रियतमका आदेश प्राप्त कर सृष्टिस्थितिसंहारकारिणी जनकनन्दिनी शरणागत परम पावन आञ्जनेयको भगवान् श्रीरामका निश्चित तत्त्व बतलाने लगीं—

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्॥
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम्।
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्॥
मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य संनिधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता॥
तत्सांनिध्यान्मया सृष्टं तस्मिन्नारोप्यतेऽबुधैः।

(अ० रा० १। १। ३२—३४½)

'वत्स हनुमान! तुम श्रीरामको साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म समझो; ये निःसंदेह समस्त उपाधियोंसे रहित, सत्तामात्र, मन तथा इन्द्रियोंके अविषय, आनन्दघन, निर्मल, शान्त, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक, स्वयंप्रकाश और पापहीन परमात्मा ही हैं तथा मुझे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति एवं अन्त करनेवाली मूलप्रकृति जानो। मैं ही निरालस्य होकर इनकी संनिधिमात्रसे इस विश्वकी रचना किया करती हूँ तो भी इनकी संनिधिमात्रसे की हुई मेरी रचनाको बुद्धिहीन लोग इनमें आरोपित कर लेते हैं।'

इसके अनन्तर जगज्जननी जानकीने भगवान् श्रीरामके प्राकट्यसे लेकर राज्याभिषेकतककी समस्त परमपावनी लीलाका वर्णन करते हुए कहा—

एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि।
आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि॥
रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोच-
त्याकाङ्क्षते त्यजति नो न करोति किंचित्।
आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो
मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति॥

(अ० रा० १। १। ४२-४३)

'इस प्रकार ये समस्त कर्म यद्यपि मेरे ही किये हुए हैं तो भी अज्ञानी लोग उन्हें निर्विकार सर्वात्मा भगवान् श्रीराममें आरोपित करते हैं। ये श्रीराम तो (वास्तवमें) न चलते हैं, न ठहरते हैं, न शोक करते हैं, न इच्छा करते हैं, न त्यागते हैं और न कोई अन्य क्रिया ही करते हैं। ये आनन्दस्वरूप, अविचल और परिणामहीन हैं, केवल मायाके गुणोंसे व्याप्त होनेके कारण ही ये वैसे प्रतीत होते हैं।'

इसके अनन्तर भक्तप्राणधन लोकपति श्रीराम अपने अनन्य भक्त पवनकुमारको स्वयं उपदेश देने लगे—

(श्रीराम-हृदय)

शृणु तत्त्वं प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्मपरात्मनाम्॥
आकाशस्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान्।
जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि।
प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः॥
बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यमेकं पूर्णमथापरम्।
आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः॥
साभासबुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि।
साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्या जीवत्वं च तथाबुधैः॥
आभासस्तु मृषा बुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते।
अविच्छिन्नं तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पतः॥
अवच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते।
तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा॥
ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः।
तदाविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः॥
एतद्विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते।
मद्भक्तिविमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम्।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि॥
इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो
मयैव साक्षात्कथितं तवानघ।
मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया
दातव्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकम्॥

(अ० रा० १। १। ४४—५२)

'मैं तुम्हें आत्मा, अनात्मा और परमात्माका तत्त्व बताता हूँ, (सावधान होकर) सुनो। जलाशयमें आकाशके तीन भेद स्पष्ट दिखायी देते हैं—एक महाकाश[१], दूसरा जलावच्छिन्न आकाश[२] और तीसरा प्रतिबिम्बाकाश[३]। जैसे आकाशके ये तीन बड़े-बड़े भेद दिखायी देते हैं, उसी प्रकार चेतन भी तीन प्रकारका है—एक तो बुद्ध्यवच्छिन्न चेतन (जो बुद्धिमें व्याप्त है), दूसरा जो सर्वत्र परिपूर्ण है और तीसरा जो बुद्धिमें प्रतिबिम्बित होता है—जिसको आभास-चेतन कहते हैं। इनमेंसे केवल आभास-चेतनके सहित बुद्धिमें ही कर्तृत्व है अर्थात् चिदाभासके सहित बुद्धि ही सब कार्य करती है। किंतु अज्ञजन भ्रान्तिवश निरवच्छिन्न, निर्विकार, साक्षी आत्मामें कर्तृत्व और जीवत्वका आरोप करते हैं अर्थात् उसे ही कर्ता-भोक्ता मान लेते हैं। (हमने जिसे जीव कहा है, उसमें) आभास-चेतन तो मिथ्या है (क्योंकि सभी आभास मिथ्या ही हुआ करते हैं), बुद्धि अविद्याका कार्य है और परब्रह्म परमात्मा वास्तवमें विच्छेदरहित है, अतः उसका विच्छेद भी विकल्पसे ही माना हुआ है। (इसी प्रकार उपाधियोंका बाध करते हुए) साभास अहंरूप अविच्छिन्न चेतन (जीव)-की **'तत्त्वमसि'** (तू वह है) आदि महावाक्योंद्वारा पूर्ण चेतन (ब्रह्म)-के साथ एकता बतलायी जाती है। जब महावाक्यद्वारा (इस प्रकार) जीवात्मा और परमात्माकी एकताका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, उस समय अपने कार्योंसहित अविद्या नष्ट हो ही जाती है—इसमें कोई संदेह नहीं। मेरा भक्त इस उपर्युक्त तत्त्वको समझकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होनेका पात्र हो जाता है, पर जो लोग मेरी भक्तिको छोड़कर शास्त्ररूप गढ़ेमें पड़े भटकते रहते हैं, उन्हें सौ जन्मतक भी न तो ज्ञान होता है और न मोक्ष ही प्राप्त होता है। हे अनघ! यह परम रहस्य मुझ आत्मस्वरूप श्रीरामका हृदय है और साक्षात् मैंने ही तुम्हें सुनाया है। यदि तुम्हें इन्द्रलोकके राज्यसे भी अधिक सम्पत्ति मिले तो भी तुम इसे मेरी भक्तिसे हीन किसी दुष्ट पुरुषको मत सुनाना।'* परम कृतार्थ भक्तराज हनुमानने अपने परमाराध्य प्राणधन सीतावल्लभ श्रीरामके चरणोंपर अपना मस्तक रख दिया और भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभु राघवेन्द्रका त्रैलोक्यपावन स्नेहमय कर-कमल सहज ही उनके सिरको स्पर्श करने लगा।

---

१. जो सर्वत्र व्याप्त है। २. जो केवल जलाशयमें ही परिमित है। ३. जो जलमें प्रतिबिम्बित है।

* साक्षाद्रामेण कथितं सर्ववेदान्तसंग्रहम्। यः पठेत्सततं भक्त्या स मुक्तो नात्र संशयः॥
ब्रह्महत्यादिपापानि बहुजन्मार्जितान्यपि। नश्यन्त्येव न संदेहो रामस्य वचनं यथा॥
योऽतिभ्रष्टोऽतिपापी परधनपरदारेषु नित्योद्यतो वा स्तेयी ब्रह्मघ्नमातापितृवधनिरतो योगिवृन्दापकारी।
यः सम्पूज्याभिरामं पठति च हृदयं रामचन्द्रस्य भक्त्या योगीन्द्रैरप्यलभ्यं पदमिह लभते सर्वदेवैः स पूज्यम्॥ (अ० रा० १।१।५४—५६)

श्रीरामाश्वमेधके अश्वके साथ

कुछ समय बाद धर्मके साक्षात् विग्रह महामुनि अगस्त्यजीकी सत्प्रेरणासे भगवान् श्रीरामने अश्वमेध-यज्ञ करनेका संकल्प किया। महर्षि वसिष्ठने अत्यन्त पुष्ट, अरुण मुख, पीताभ पुच्छ, अत्यन्त शुभ्र श्यामकर्ण, परम सुन्दर एवं समस्त लक्षणोंसे लक्षित अश्वका सविधि पूजन करवाया। तदुपरान्त उन्होंने अश्वके चन्दन-चर्चित, कुङ्कुम आदि गन्धोंसे युक्त उज्ज्वल ललाटपर अत्यन्त चमकता हुआ स्वर्ण-पत्र बाँध दिया। उसपर राजाधिराज भगवान् श्रीरामके यशोगानके साथ अश्वके छोड़नेका उद्देश्य अङ्कित था। उस पत्रमें इसका भी स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया था कि 'जिन नरेशोंके मनमें हमसे अधिक शक्तिका अभिमान हो, वे इस रत्नालंकारोंसे विभूषित अश्वको पकड़नेका साहस करें। हम उनके हाथसे इस अश्वको बलात् छुड़ा लेंगे।'

भगवान् श्रीरामने अश्वकी रक्षाका दायित्व अपने भाई शत्रुघ्नको सौंपकर अपने प्राणप्रिय, शम्भुतेज अनिलात्मजसे कहा—'महावीर हनुमान! मैंने तुम्हारे ही प्रसादसे यह अकण्टक राज्य प्राप्त किया है। हमलोगोंने मनुष्य होकर भी जो महान् जलधिको पार किया तथा मेरी प्राणप्रिया वैदेहीके साथ मेरा जो मिलाप हुआ, यह सब कुछ मैं तुम्हारे ही बलका प्रभाव समझता हूँ। मेरी आज्ञासे तुम भी सेनाके रक्षक होकर जाओ। मेरे भाई शत्रुघ्नकी तुम्हें मेरी ही भाँति रक्षा करनी चाहिये। महामते! जहाँ-जहाँ भाई शत्रुघ्नकी बुद्धि विचलित हो, वहाँ-वहाँ तुम इन्हें समझा-बुझाकर कर्त्तव्यका ज्ञान कराना।'

अपने परम प्रभु भगवान् श्रीरामकी आज्ञा पाते ही समरप्रिय अञ्जनानन्दवर्धन पुलकित हो गये। उन्होंने यात्राके लिये उद्यत होकर अपने आराध्यके लोकपावन चरण-कमलोंमें अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। भगवान् श्रीरामके आदेशानुसार कालजित् नामक सेनापतिके साथ भरत-कुमार पुष्कल और जाम्बवान्के साथ अङ्गद, गवय, मैन्द, दधिमुख, वानरराज सुग्रीव, शतबलि, अक्षिक, नील, नल, मनोवेग तथा अधिमन्ता आदि वीराग्रणी वानर भी अश्वके पीछे चलनेके लिये प्रस्तुत हो गये। फिर श्रीराघवेन्द्रके श्रेष्ठ मन्त्री सुमन्त्रके परामर्शके अनुसार शस्त्रास्त्रमें निपुण, महान् विद्वान्, धनुर्धर तथा परम पराक्रमी वीरवर प्रतापाग्र्य, नीलरत्न, लक्ष्मीनिधि, रिपुताप, उग्राश्व और शस्त्रवित् कवच एवं शिरस्त्राणसे सुसज्जित अपने-अपने आयुध धारणकर चतुरङ्गिणी सेनाके साथ महायज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेको आगे करके उल्लासपूर्वक चले। उस समय अश्वकी रक्षामें चलनेवाले प्रत्येक योद्धाके मन और प्राण उत्साहसे भरे थे। वे सभी हर्षमग्न थे। ऐसे रथी, हयारूढ़ एवं गजारोही शूरवीरोंसे सम्पन्न उस विशाल वाहिनीका सौन्दर्य अत्यन्त अद्भुत था।

भगवान् श्रीरामकी अजेय चतुरङ्गिणी सेनाका सर्वत्र सादर अभिनन्दन होता था। श्रीरामानुज शत्रुघ्न, पुष्कल तथा पवनकुमारके दर्शन कर राजे-महाराजे अपना जीवन सफल समझते थे। इस प्रकार श्रीरामाश्वमेधके अनुपम सुन्दर अश्वके साथ दशरथनन्दन शत्रुघ्नकी विशाल वाहिनी पयोष्णी नदीके तटपर पहुँचकर द्रुतगतिसे आगे चलने लगी। कपिश्रेष्ठ हनुमानके साथ शत्रुघ्न तथा पुष्कल अपने समस्त वीरोंके साथ भाँति-भाँतिके आश्रम देखते तथा वहाँ जगत्पावन श्रीरघुनाथजीके गुणगान सुनते हुए यात्रा कर रहे थे। उस समय उन्हें चतुर्दिक् मुनियोंकी यह कल्याणकारिणी वाणी सुनायी पड़ती थी—'यह यज्ञका अश्व चला जा रहा है, जो श्रीहरिके अंशावतार श्रीशत्रुघ्नजीके द्वारा सब ओरसे सुरक्षित है। भगवान्का अनुसरण करनेवाले वानर तथा भगवद्भक्त भी उसकी रक्षा कर रहे हैं।'

निरन्तर भक्तिसे प्रभावित रहनेवाली चित्तवृत्तियोंवाले महर्षियोंके इन वचनोंसे प्रसन्न होते हुए सुमित्रानन्दन शत्रुघ्न मनुपुत्र शर्यातिके महान् यज्ञमें इन्द्रका मान भङ्गकर अश्विनीकुमारोंको यज्ञका भाग देनेवाले, तपस्या और योगबलसे सम्पन्न भृगुपुत्र महर्षि च्यवनके पावनतम आश्रममें पहुँचे। वैरशून्य जन्तुओंसे भरा हुआ वह आश्रम

'यह समस्त वेदान्तका सार-संग्रह साक्षात् श्रीरामचन्द्रजीका कहा हुआ है। जो कोई इसे भक्तिपूर्वक सदा पढ़ता है, वह निस्संदेह मुक्त हो जाता है। इसके पठनमात्रसे अनेक जन्मोंके संचित ब्रह्महत्यादि समस्त पाप निस्संदेह नष्ट हो जाते हैं; क्योंकि श्रीरामके वचन ऐसे ही हैं। जो कोई अत्यन्त भ्रष्ट, अतिशय पापी, परधन और परस्त्रियोंमें सदा प्रवृत्त रहनेवाला, चोर, ब्रह्महत्यारा, माता-पिताका वध करनेमें लगा हुआ और योगिजनोंका अहित करनेवाला मनुष्य भी श्रीरामचन्द्रजीका पूजन कर इस श्रीराम-हृदयका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह समस्त देवताओंके पूज्य उस परम पदको प्राप्त होता है, जो योगिराजोंको भी दुर्लभ है।'

सिद्ध तपस्वियोंसे सुशोभित था।

सुमित्रानन्दन शत्रुघ्नने तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप महर्षि च्यवनके सम्मुख अत्यन्त विनयपूर्वक अपना परिचय देते हुए उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

महर्षि च्यवनने शत्रुघ्नको यशस्वी होनेका आशीर्वाद प्रदान करते हुए समीपस्थ मुनियोंसे कहा—'ब्रह्मर्षियो! यह आश्चर्यकी बात देखो, जिनके नामका स्मरण और कीर्तन आदि मनुष्यके समस्त पापोंका नाश कर देते हैं, महान् पातकी और परस्त्री-लम्पट पुरुष भी जिनका नाम-स्मरण करके आनन्दपूर्वक परमगतिको प्राप्त होते हैं, वे भगवान् श्रीराम भी यज्ञ करनेवाले हैं। जिह्वा वही उत्तम है, जो श्रीरघुनाथजीके नामोंका आदरके साथ कीर्तन करती है। जो इसके विपरीत आचरण करती है, वह तो साँपकी जीभके समान है।* आज मुझे अपनी तपस्याका फल प्राप्त हुआ है; क्योंकि अब मैं उन निखिल सृष्टिपति परम करुणामय प्रभुके अनूप रूपका दर्शन प्राप्त करूँगा। उनके निखिलभुवनपावन चरणोंकी रजसे अपने शरीरको तथा उनकी अत्यन्त विचित्र वार्ताओंका वर्णन कर अपनी वाणीको पवित्र कर लूँगा।'

कल्याणमूर्ति श्रीरामके स्मरणसे महर्षि च्यवन प्रेममें निमग्न हो गये। प्रेमाश्रुओंसे पूर्ण महर्षि गद्गद कण्ठसे पुकारने लगे—'हे श्रीरामचन्द्र! हे रघुनन्दन!! हे धर्ममूर्ति!!! हे भक्तवाञ्छाकल्पतरु करुणामय प्रभो!!! आप अपने पावनतम चरणकमलोंकी रज प्रदान कर मेरा संसार-सागरसे उद्धार कर दीजिये।'

'स्व' और 'पर' के ज्ञानसे शून्य ध्यानमग्न महर्षिसे सुमित्रा-तनय शत्रुघ्नने अत्यन्त विनीत वाणीमें निवेदन किया—'मुनिराज! निश्चय ही सर्वपूज्य श्रीरघुनाथजी परम भाग्यशाली हैं, जो आप-जैसे तपस्वियोंके हृदयमें निवास करते हैं। ऋषिवर! आप अपने चरणकमलोंकी पवित्र धूलिसे हमारे यज्ञको पवित्र करनेकी कृपा करें।'

दशरथनन्दन शत्रुघ्नके वचन सुन महर्षि च्यवन सपरिवार अयोध्याके लिये प्रस्थित हुए। उन्हें पैदल यात्रा करते देखकर पवनकुमारने शत्रुघ्नसे विनीत वाणीमें कहा—'स्वामिन् ! यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो इन श्रीरामभक्त महर्षिको मैं अपनी पुरी पहुँचा आऊँ।'

श्रीरामानुजने तुरंत उत्तर दिया—'हाँ, आप इन्हें पहुँचा आइये।'

बस, परम पराक्रमी हनुमानजीने परिवारसहित महर्षि च्यवनको अपनी पीठपर बैठाकर तुरंत अयोध्या पहुँचा दिया। महर्षिकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। समर्थ महर्षिका सहज आशीर्वाद मारुतात्मजने प्राप्त कर लिया।

राजा सुबाहुपर कृपा

भगवान् श्रीरामके अश्वमेध यज्ञके अश्वके साथ दशरथनन्दन शत्रुघ्नकी सायुध चतुरङ्गिणी सेना चक्राङ्का नगरीके समीप पहुँची। उस सुन्दर एवं सम्पन्न नगरीके नरेश धर्मात्मा सुबाहु थे। एकपत्नीव्रती महाराज सुबाहु सर्वसद्‌गुणसम्पन्न, प्रजापालक, परम पराक्रमी, अनुपम योद्धा तो थे ही, क्षीराब्धिशायी लक्ष्मीपति विष्णुके अनन्य भक्त भी थे। वे दयामय विष्णुकी मधुर-मनोहर लीला-कथाके अतिरिक्त अन्य वार्ता सुनना भी नहीं चाहते थे। वे धर्मप्राण आदर्श नरपति सदा विष्णु-बुद्धिसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे। परधर्मसे विमुख वे महान् राजा स्वधर्म-पालनमें सतत तत्पर रहते थे।

आखेटके लिये निकले हुए राजाके वीराग्रणी कुमार दमनकी दृष्टि उस अश्वपर पड़ी। बस, वीरवर दमनने अश्वको पकड़ लिया। शत्रुघ्नकी विशाल वीर-वाहिनीके साथ राजकुमार दमनका भयानक संग्राम हुआ। सुबाहुनन्दन दमनके प्रबल पराक्रम एवं अद्भुत युद्धकौशलको देखकर शत्रुघ्नकी सेना चकित हो गयी। शत्रुघ्नकी सेनाका भीषण संहार हुआ, किंतु भरतनन्दन पुष्कलके साथ भयानक युद्धमें वीरताके सजीव विग्रह दमन मूर्च्छित हो गये।

फिर तो वीराग्रणी राजा सुबाहु स्वयं सुवर्णभूषित रथपर आरूढ़ होकर निकले। गदायुद्धमें प्रवीण राजा सुबाहुके भाई सुकेतु और उनके युद्धकलामें निपुण पुत्र चित्राङ्ग और विचित्र भी अपने-अपने आयुध धारण कर युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुए।

राजा सुबाहुने अपने वीर पुत्र दमनको रथमें बैठाकर अपनी सेना क्रौञ्च-व्यूहमें खड़ी कर दी। उसके मुखके स्थानपर सुकेतु और कण्ठकी जगह चित्राङ्ग सावधान होकर खड़े हो गये। पंखोंके स्थानपर नरेशके वीर पुत्र दमन और विचित्र डट गये। स्वयं वीरवर राजा सुबाहु पुच्छभागमें स्थित थे।

अत्यन्त भयानक युद्ध छिड़ गया। अतुल पराक्रमशाली

---

* महापातकसंयुक्ताः परदाररता नराः। यन्नामस्मरणे युक्ता मुदा यान्ति परां गतिम्॥
सा जिह्वा रघुनाथस्य नामकीर्तनमादरात्। करोति विपरीता या फणिनो रसनासमा॥
(पद्मपु०, पा० खं० १६। ३३, ३९)

राजकुमार चित्राङ्ग और भरत-पुत्र पुष्कल परस्पर एक-दूसरेको पराजित करनेका पूर्ण प्रयत्न कर रहे थे। राजकुमार चित्राङ्गकी वीरता एवं शस्त्र-कौशलसे वीरवर पुष्कल अत्यन्त चकित थे, किंतु उनके तीक्ष्णतम शरसे सुबाहु-पुत्र चित्राङ्गका किरीट और कुण्डलोंसहित मस्तक कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

क्षात्र-धर्मका पालन करते हुए वीरवर चित्राङ्गके स्वर्ग-प्रयाणसे राजा सुबाहुके भाई, उनके पुत्र और सशस्त्र सैनिक अतिशय क्रुद्ध होकर भयानक युद्ध करने लगे। स्वयं परम पराक्रमी श्रेष्ठ वीर धर्मात्मा सुबाहु भीषण युद्धमें तत्पर हो गये। उनके महान् संहारसे पार्श्वभागकी रक्षा करनेवाले अतुलित बलशाली वज्राङ्ग हनुमान उनकी ओर दौड़े। नखायुध महावीर पवन-पुत्र मेघकी भाँति विकट गर्जना कर रहे थे। महाराज सुबाहुने अपने सम्मुख समरप्रिय अञ्जनानन्दनको देखते ही उनपर तीक्ष्णतम दस शरोंसे प्रहार किया, किंतु महाशक्तिशाली वीरपुंगव हनुमानने उन शरोंको हाथसे पकड़कर उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दिया और तुरंत उन्होंने राजा सुबाहुको रथसहित अपनी लंबी पूँछमें लपेट लिया। हनुमानजीको रथ लेकर जाते हुए देखकर महाराज सुबाहु कपिश्रेष्ठ हनुमानपर बड़े वेगसे तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा करने लगे। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग राजा सुबाहुके शरोंसे विद्ध हो रहे थे और उनकी स्वर्ण-तुल्य विशाल देहपर जपा-पुष्पके तुल्य लाल-लाल रक्त-कण शोभा दे रहे थे। धर्मप्राण सुबाहुकी इस धर्ममय अर्चनासे मुदित होकर निखिल-पावन भगवान् श्रीरामके अनन्यतम प्रीतिभाजन भक्तोद्धारक हनुमान बड़े वेगसे उछले और उन्होंने उत्तम योद्धाओंसे परिवेष्टित परम भाग्यवान् राजा सुबाहुके विशाल वक्षपर अपने चरणोंसे प्रहार किया। वातात्माका भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाला पाद-प्रहार नरेश नहीं सह सके। वे मुखसे रक्त वमन करते हुए धरतीपर गिरकर मूर्च्छित हो गये।

सीतासमेत श्रीरामपादसेवाधुरंधर शिवपुत्र हनुमानका लोकपावन चरणस्पर्श! तत्क्षण चमत्कार हुआ। मूर्च्छितावस्थामें अमित धर्मानुरागी परम वैष्णव, वीरपुंगव नरेश सुबाहुने देखा—'परमपावन साकेत! वहाँ पुनीत सरयूके सुरम्य तटपर यज्ञ करनेवाले कौसल्यानन्दन श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे घिरे अलौकिक यज्ञ-मण्डपमें विराजमान हैं। चतुर्मुख ब्रह्मादि देवगण तथा कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके प्राणी उन पद्मपत्रलोचन प्रभुके सम्मुख बद्धाञ्जलि खड़े होकर उनका श्रद्धा-भक्तिपूर्ण हृदयसे स्तवन कर रहे हैं। नवनीरदवपु कमल-लोचन श्रीरामने अपने हाथमें मृगका सींग धारण कर रखा है। नारद आदि देवर्षिगण वीणादिके मधुर तानपर सकल गुणगणनिलय दयामय प्रभुका सुयश गान कर रहे हैं। चारों वेद मूर्तिमान् होकर सीतापति श्रीरामकी उपासना करते हैं। निखिल सृष्टिमें सुन्दरतम श्रेष्ठ वस्तुओंको प्रदान करनेवाले भक्ततापनिवारक करुणामूर्ति पूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीराम ही हैं।'

कृतार्थजीवन राजा सुबाहुकी मूर्च्छा दूर हुई तो उनके नेत्रोंसे आनन्दमय प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे। उन्होंने तुरंत अपने भाई तथा पुत्रोंको युद्ध बंद कर देनेका संकेत किया। उन्होंने सबको बताया—"आज हमारा पुण्यमय दिवस है। आज ही मेरा सौभाग्य-सूर्य उदित हुआ है। प्राचीनकालकी बात है। मैं तत्त्वज्ञानकी इच्छासे तीर्थोंमें गया था। सौभाग्यवश मैं असिताङ्ग मुनिकी सेवामें पहुँच गया। वे वीतराग महात्मा मुझे दशरथनन्दन श्रीरामको परब्रह्म परमात्मा एवं उनकी हृदयाधिकारिणी विदेहजाको चिन्मयी शक्तिके मूर्तिमान् विग्रह बताने लगे। संसार-सागरसे तरनेके लिये उन्हीं श्रीसीतारामकी उपासनाका उपदेश देने लगे; किंतु मुझे उनके वचनोंपर विश्वास नहीं हुआ। 'अजन्माका जन्म कैसे? अकर्ताका संसारमें आनेका प्रयोजन क्या?' मेरा सहज संदेह था।

"महर्षिने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया—'नीच! तू श्रीरघुनाथजीके यथार्थ स्वरूपको नहीं जानता, फिर भी प्रतिवाद कर रहा है। उन्हें साधारण मनुष्य बताकर उनका उपहास कर रहा है, इस कारण तू तत्त्वज्ञान तो प्राप्त ही नहीं कर सकेगा, केवल उदर-पोषणमें लगा रहेगा।'

"महामुनिके शाप-भयसे व्याकुल होकर मैंने उनके चरण पकड़ लिये। मुझे रोते देखकर दयामय मुनिने कहा—'राजन्! जब तुम भगवान् श्रीरामके अश्वमेध यज्ञके अश्वको पकड़कर उनके यज्ञमें विघ्न उपस्थित करोगे, तब ज्ञानमूर्ति सद्गतिभुक्तिमुक्तिदाता हनुमानजी बड़े वेगसे तुम्हारे वक्षपर पाद-प्रहार करेंगे। उन तत्त्वप्रकाशक पवननन्दनके स्पर्शसे ही तुम्हें तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होगी।'

महाराज सुबाहुने आगे कहा—"और आज उन दुर्मति-नाशन परमपावन कृपामय श्रीरामदूतने अपने लोकपावन चरण-कमलोंका प्रहारके मिससे मेरे वक्षसे स्पर्श करा दिया। आज मेरी बुद्धि शुद्ध हो गयी, मैं पवित्र हो गया और मेरा जीवन तथा जन्म सफल हो गया। मैं ही नहीं, तुम सभी धन्य हो गये।"

भगवान् श्रीरामके अश्वके साथ प्रचुर समृद्धि-सम्पन्न

कोष, हाथी, घोड़े, वस्त्र, रत्न, मोती तथा मूँगे आदि अगणित द्रव्य लेकर धर्मात्मा नरशिरोमणि सुबाहु विचित्र, दमन, सुकेतु तथा अन्यान्य शूरवीरोंके साथ पैदल ही चले। भगवान् श्रीरामके ध्यान एवं हनुमानजीकी कृपाकी स्मृतिसे उनका हृदय उपकृत एवं आनन्दमग्न था, उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी थी; पर उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रु-प्रवाह चल रहा था।

उद्भट राजा सुबाहुके प्रेमपूर्ण आगमनका संवाद प्राप्त होते ही श्रीरामानुज शत्रुघ्न उनसे बाँहें पसारकर मिले। अपना सर्वस्व समर्पित करनेकी कामना व्यक्त कर कुमार दमनके युद्धारम्भके लिये क्षमा-याचना करते हुए महाराज सुबाहुने अधीर होकर पूछा—'भगवान् श्रीरामके त्रैलोक्यवन्दित चरणकमलोंके अनन्य मधुकर भक्तानुरागी हनुमानजी कहाँ हैं? उन्हींकी कृपासे मुझ महामूढ़को त्रयतापनिवारक पद्मपलाशलोचन परम प्रभु श्रीरामके दर्शनकी तीव्रतम लालसा उत्पन्न हुई है।'

जब उन्होंने भक्ततापनिवारक स्वर्णवर्ण प्रसन्नात्मा हनुमानजीको देखा तो उनके मुक्तिदाता चरणोंपर गिर पड़े, किंतु विनीतात्मा महावीर हनुमानने उन्हें बीचसे ही उठाकर अपने अङ्कमें भर लिया।

महामुनि आरण्यकसे मिलन

वायुवंशोद्भव हनुमान शत्रुघ्नकी अक्षौहिणी सेनाके साथ भी उनकी रक्षाके लिये सतत सावधान रहते थे। अश्वके पीछे-पीछे विशाल सशस्त्र वाहिनी परमपावनी नर्मदाके तटपर पहुँची। वहाँ तपस्वी ऋषियोंका समुदाय निवास करता था। वहीं नर्मदाके तटपर पलाशके पत्तोंसे बनी एक पुरानी पर्णशाला थी। उसे नर्मदाका जल स्पर्श कर रहा था। उसमें भगवान् श्रीरामके ध्यानपरायण महामुनि आरण्यक निवास करते थे। हनुमान, पुष्कल और अपने नीतिकुशल मन्त्री सुमतिके साथ श्रीरामानुजने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। महर्षिने जब उन्हें यज्ञाश्वके रक्षकके रूपमें देखा तो वे भगवान् श्रीरामकी भुवनमङ्गलकारिणी मनोहर लीला-कथा सुनाते हुए कहने लगे—'स्थिर ऐश्वर्यपदको देनेवाले एकमात्र रमानाथ भगवान् श्रीरघुवीरजी ही हैं। जो लोग उन भगवान्को छोड़कर दूसरेकी पूजा करते हैं, वे मूर्ख हैं। जो स्मरण करनेमात्रसे मनुष्योंके पहाड़-जैसे पापोंका भी नाश कर डालते हैं, उन भगवान्को छोड़कर मूढ़ मनुष्य योग, याग और व्रत आदिके द्वारा क्लेश उठाते हैं। सकाम पुरुष अथवा निष्काम योगी भी जिनका अपने हृदयमें चिन्तन करते हैं तथा जो मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं, वे भगवान् श्रीराम स्मरण करनेमात्रसे सारे पापोंको दूर कर देते हैं।'*

फिर महामुनिने महर्षि लोमशका उपदेश सुनाते हुए आगे कहा—'एक ही देवता हैं—श्रीराम, एक ही व्रत है—उनका पूजन, एक ही मन्त्र है—उनका नाम तथा एक ही शास्त्र है—उनकी स्तुति। अत: तुम सब प्रकारसे परम मनोहर श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो, इससे तुम्हारे लिये यह महान् संसार-सागर गौके खुरके समान तुच्छ हो जायगा।'†

अपने परमाराध्य परम प्रभु श्रीरामका माहात्म्य सुनकर समीरात्मज मन-ही-मन पुलकित हो रहे थे, उनका हृदय आनन्दसे परिपूर्ण हो गया था और नेत्र प्रेमाश्रुओंसे भर गये थे। जब महामुनि आरण्यक भगवान् श्रीरामकी लीला-कथा सुनाने लगे तो उनके नेत्र बरसने लगे और जबतक श्रीराम-लीलाका वर्णन होता रहा, उनके नेत्रोंसे अनवरत अश्रुपात होता ही रहा।

परमपावन श्रीरामकी भवतापतारिणी एवं मुनिमनोहारिणी मधुर कथाका वर्णन कर लेनेके उपरान्त जब महर्षि आरण्यकको ज्ञात हुआ कि मेरे आराध्यदेव भगवान् श्रीरामने ही अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा ली है और मेरे आश्रमपर उनके अनुज शत्रुघ्नसहित उनका ही अश्व आया है, तब तो उनका मन-मयूर नृत्य कर उठा और जब उन्हें यह विदित हुआ कि संसार-भयनाशन, अनन्तमङ्गल, श्रीरामपरायण महावीर हनुमान मेरे सम्मुख हाथ जोड़े खड़े हैं, तब वे जोरसे बोल उठे—'आज मेरी जननीका जन्मदान सफल हो गया। आज मेरा ध्यान, जप, तप और अग्निहोत्र सब सफल हो गया।'

दूसरे ही क्षण वयोवृद्ध महामुनि आरण्यकने श्रीरामप्राण हनुमानजीको अपने हृदयसे सटा लिया। हनुमानजीने भी स्नेहातिरेकसे उन्हें अपने अङ्कमें भर लिया। उस

* मूढो लोको हरिं त्यक्त्वा करोत्यन्यं समर्चनम्। रघुवीरं रमानाथं स्थिरैश्वर्यपदप्रदम्॥
यो नरैः स्मृतमात्रोऽसौ हरते पापपर्वतम्। तं मुक्त्वा क्लिश्यते मूढो योगयागव्रतादिभिः॥
सकामैर्योगिभिर्वापि चिन्त्यते कामवर्जितैः। अपवर्गप्रदं नृणां स्मृतमात्राखिलाघहम्॥
(प० पु०, पा० खं० ३५। ३१-३२, ३४)

† एको देवो रामचन्द्रो व्रतमेकं तदर्चनम्। मन्त्रोऽप्येकश्च तन्नाम शास्त्रं तद्ध्येव तत्स्तुतिः॥
तस्मात्सर्वात्मना रामचन्द्रं भज मनोहरम्। यथा गोष्पदवत्तुच्छो भवेत्संसारसागरः॥
(प० पु०, पा० खं० ३५। ५१-५२)

समय महामुनिके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी, किंतु उनके आनन्दकी सीमा न थी। यही दशा हनुमानजीकी भी थी। महामुनि आरण्यक और हनुमान—जैसे प्रेमके दो विग्रह परस्पर आलिङ्गनबद्ध हो गये थे।

दोनोंके हृदयसे प्रेमकी धारा फूटकर बह रही थी। दोनों ही आनन्दामृतमें डूबकर शिथिल एवं चित्रलिखित-से प्रतीत हो रहे थे। जगत्कारण श्रीरामकी प्रीतिसे दोनोंके हृदय पूर्ण थे। अतएव दोनों ही बैठकर भगवान् श्रीरामके मधुर-मनोहर लीला-गुण-गानमें तन्मय हो गये।

भक्त और भगवान्

धर्मप्राण महाराज वीरमणि देवनिर्मित देवपुर नामक अमित वैभव-सम्पन्न नगरके नरेश थे। पूर्वकालमें पवित्र क्षिप्रा-तटस्थित महाकाल-मन्दिरमें उनके कठोर तपश्चरणसे संतुष्ट होकर देवाधिदेव महादेवने उन्हें वर प्रदान करते हुए कहा था—'देवपुरमें तुम्हारा राज्य होगा और भगवान् श्रीरामके अश्वमेध यज्ञके अश्वके आनेतक तुम्हारी रक्षाके लिये मैं वहीं निवास करूँगा।' देवपुर-वासियोंके घरोंकी दीवारें स्फटिक-मणिकी बनी हुई थीं। मणि-माणिक्य एवं अपरिमित धनसे सम्पन्न देवपुरमें समस्त भोग सदा सुलभ थे।

भगवान् श्रीरामके अश्वमेधका अश्व देवपुरके समीप पहुँचा ही था कि वीरवर वीरमणिके यशस्वी पुत्र रुक्माङ्गदने उसे पकड़ लिया और जब महाराज वीरमणिने सुना कि श्रीरामके अनुज शत्रुघ्नकी वाहिनी युद्धके लिये बढ़ती चली आ रही है, तब उन्होंने सशस्त्र चतुरङ्गिणी सेना तैयार करनेके लिये अपने प्रबल पराक्रमी सेनापति रिपुवारको आदेश दे दिया।

वीराग्रणी रिपुवारके सेनापतित्वमें महाराज वीरमणिके वीर सैनिक तो कुछ ही देरमें शस्त्रास्त्रसे सजकर तैयार हो ही गये, उनके भाई वीरसिंह, भानजा बलमित्र तथा राजकुमार रुक्माङ्गद और शुभाङ्गद भी युद्धके लिये रथपर आरूढ़ होकर प्रस्तुत हो गये। स्वयं शिव-भक्त वीरवर महाराज वीरमणि भी अस्त्र-शस्त्रोंसे भरे श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ होकर रणभूमिकी ओर अग्रसर हुए।

भयानक युद्ध छिड़ गया। पवनपुत्र हनुमान शत्रु-पक्षका संहार करते हुए पुष्कल और शत्रुघ्नकी रक्षाका सदा ध्यान रखते थे। उनकी महाराज वीरमणिके भाई वीरसिंहसे मुठभेड़ हो गयी। उनके तीक्ष्ण शरोंसे आकुल होकर हनुमानजीने उनकी छातीमें अपने वज्रके समान मुक्केसे आघात किया। वीरसिंह वज्राङ्ग हनुमानका वह प्रहार न सह सके और मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। अपने चाचाको मूर्च्छित होते देखकर रुक्माङ्गद और शुभाङ्गद—दोनों हनुमानजीसे भयंकर युद्ध करने लगे। महावीर हनुमानजीने उन्हें रथसहित अपनी पूँछमें लपेट लिया और रथको घुमाकर पृथ्वीपर इतने जोरसे पटका कि वह तो ध्वस्त हो ही गया, दोनों राजकुमार भी मूर्च्छित हो गये। इसी प्रकार बलमित्र भी रणस्थलमें मूर्च्छित होकर धराशायी हो गये। महाराज वीरमणिने वीर पुष्कलपर भयानक शरोंकी वर्षा की, किंतु पुष्कलने प्रतिज्ञापूर्वक उन्हें तीन वाणोंसे आहतकर मूर्च्छित कर ही दिया।

अपने भक्तोंको मूर्च्छित देखते ही स्वयं भगवान् शंकर युद्धभूमिमें उतर पड़े। उनके साथ उनके पार्षद और प्रमथगण भी शत्रुघ्नकी सेनाको तहस-नहस करनेमें जुट गये। सर्वदेव-शिरोमणि शिवके इच्छानुसार वीरभद्रने पुष्कलसे युद्ध किया। पुष्कलने अद्भुत वीरताका परिचय दिया, किंतु वीरभद्रने पुष्कलके पैर पकड़कर उन्हें वेगपूर्वक चारों ओर घुमाया और पृथ्वीपर पटककर मार डाला। कुपित वीरभद्रने अपने भयानक त्रिशूलसे मृत पुष्कलका मस्तक भी काटकर धड़से पृथक् कर दिया और फिर वे विकट गर्जना करने लगे।

पुष्कलकी मृत्युके संवादसे वीरवर शत्रुघ्न व्याकुल हो गये। वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर भगवान् शंकरसे युद्ध करने लगे। शत्रुघ्नने अद्भुत युद्ध किया, किंतु भगवान् शिवने शत्रुघ्नके वक्षमें एक अग्निके समान तेजस्वी वाण भोंक दिया। शत्रुघ्न अचेत होकर वहीं गिर पड़े।

उस समय शत्रुघ्नकी सेनामें हाहाकार मच गया। यह दृश्य देखकर हनुमानजीने तुरंत पुष्कल और शत्रुघ्नके शरीरको रथमें सुलाया और उनकी रक्षाकी सुदृढ़ व्यवस्था कर स्वयं प्रलयंकर शंकरसे युद्ध करनेके लिये वेगपूर्वक आगे बढ़े। हनुमानजी अपने पक्षके योद्धाओंका उत्साह बढ़ाते और अपनी पूँछ जोर-जोरसे हिलाते हुए भयानक कालकी भाँति सर्वलोक-महेश्वर शिवके समीप पहुँच गये। उन्होंने कुपित होकर महादेवजीसे कहा—'रुद्र! मैंने बहुधा ऐसा सुना है कि आप सदा श्रीरघुनाथजीके चरणोंका स्मरण करते रहते हैं, किंतु आज आपको श्रीराम-भक्तका वध करनेके लिये प्रस्तुत देखकर वे बातें मिथ्या सिद्ध हो गयीं। धर्मके प्रतिकूल आचरण करनेके कारण मैं आपको दण्ड देना चाहता हूँ।'

परम पराक्रमी पवनकुमारके वचन सुनकर महेश्वरने उनसे कहा—'कपिश्रेष्ठ! तुम वीरोंमें प्रधान और धन्य

हो। तुम्हारा कथन सर्वथा सत्य है। देव-दानव-वन्दित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे हृदय-धन और स्वामी हैं, किंतु भक्त अपना ही स्वरूप होता है और वीरवर वीरमणि मेरा अनन्य भक्त है; अत: जिस प्रकार भी हो, मुझे उसकी रक्षा करनी चाहिये। यही मर्यादा है।'

भक्तवत्सल शिवके वचन सुनते ही मारुतात्मज कुपित हो उठे। उन्होंने एक विशाल शिला लेकर उनके रथपर पटक दी। उसके आघातसे भगवान् शंकरका रथ घोड़े, सारथि और ध्वजासहित चूर्ण-विचूर्ण हो गया। रथके नष्ट होते ही भगवान् शिव नन्दीपर आरूढ़ होकर युद्ध करने लगे।

करुणामय भक्तवत्सल शिवकी अद्भुत लीला थी। वे अपने जीवनसर्वस्व भगवान् श्रीराम और प्राणप्रिय भक्त वीरमणि—दोनोंकी ओरसे युद्ध कर रहे थे। उमानाथको वृषभपर आरूढ़ होकर युद्ध करते देख हनुमानजीका क्रोध भड़क उठा। उन्होंने एक विशाल शालका वृक्ष उखाड़कर शिवके वक्षपर प्रहार किया ही था कि भगवान् भूतनाथने क्रुद्ध होकर अग्निकी ज्वालाकी भाँति जाज्वल्यमान अपना तीखा त्रिशूल फेंका। इस प्रकार शिव एवं पवनपुत्रमें भयानक संग्राम हुआ। अन्तमें हनुमानजीने सर्वलोक-महेश्वरको अपनी पूँछमें लपेटकर मारना प्रारम्भ किया। यह दृश्य देख नन्दी भयभीत हो गये। क्रुद्ध हनुमानजीके प्रहारसे व्याकुल होकर शिवजीने उनसे कहा—'भक्तप्रवर हनुमान! तुम धन्य हो। मैं तुम्हारे पराक्रमसे संतुष्ट हो गया। मैं दान, यज्ञ या थोड़े-से तपसे सुलभ नहीं हूँ। तुम कोई वर माँगो।'

भगवान् नीलकण्ठके वचन सुनकर हँसते हुए हनुमानजीने कहा—'महेश्वर! श्रीरघुनाथजीकी कृपासे मुझे कुछ भी अप्राप्त नहीं, किंतु मैं आपसे यही वर माँगता हूँ कि मेरे पक्षके पुष्कल आदि मृत एवं शत्रुघ्न आदि मूर्च्छित होकर धरतीपर पड़े वीरोंकी आप अपने गणोंके साथ रहकर रक्षा करें। मैं इन्हें जीवित करनेके लिये द्रोणगिरिपर ओषधियाँ लाने जाना चाहता हूँ।'

'तुम्हारे लौटनेतक मैं इनकी रक्षा अवश्य करूँगा।' भगवान् शंकरके स्वीकार करते ही हनुमानजी अत्यन्त वेगपूर्वक क्षीरोदधिके तटपर पहुँचे। वे द्रोण नामक पर्वतको ले चलनेके लिये तैयार हुए ही थे कि वह काँपने लगा। पर्वतके रक्षक देवताओंने हनुमानजीसे कहा—'तुम इसे क्यों ले जाना चाहते हो?'

अद्भुत शक्तिशाली हनुमानजीने अत्यन्त निर्भीक वाणीमें भगवान् रुद्रके साथ घटित हुए युद्धका वृत्तान्त सुनाते हुए देवताओंसे कहा—'मैं अपने पक्षके मृत वीरोंको जीवित करनेके लिये इस पर्वतको ले जाना चाहता हूँ। बलके घमंडमें आकर रोकनेवालोंको मैं जीवित नहीं छोड़ूँगा। अतएव तुमलोग यह समूचा द्रोण पर्वत अथवा नवजीवन प्रदान करनेवाली वह ओषधि ही मुझे दे दो, जिससे मैं अपने मरे हुए वीरोंके प्राण बचा लूँ।' पवनपुत्रके वचन सुनकर सबने उन्हें प्रणाम किया और अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मृतसंजीवनी ओषधि उन्हें दे दी। हनुमानजी अत्यन्त वेगपूर्वक युद्धभूमिमें पहुँचे। वहाँ गणोंसहित भगवान् शिव अपने वचनके अनुसार पुष्कल एवं शत्रुघ्नादि वीरपुंगवोंके शरीरोंकी रक्षा कर रहे थे।

हनुमानजीने पुष्कलके वक्षपर ओषधि रखी और उनके सिरको धड़से जोड़कर कहा—'यदि मैं मन, वाणी और क्रियाके द्वारा श्रीरघुनाथजीको ही अपना स्वामी समझता हूँ तो इस दवासे पुष्कल शीघ्र ही जीवित हो जायँ।'* पुष्कल तुरंत ही उठ बैठे। वे युद्ध करनेके लिये वीरभद्रको ढूँढ़ने लगे।

हनुमानजी तुरंत शिवके वाणसे मूर्च्छित शत्रुघ्नके समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने शत्रुघ्नकी छातीपर ओषधि रखकर कहा—'यदि मैंने प्रयत्नपूर्वक आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किया है तो वीर शत्रुघ्न क्षणभरमें जीवित हो उठें।'†

शत्रुघ्न तत्काल ही जीवित हो उठे और वे युद्धके लिये भगवान् शंकरको ढूँढ़ने लगे। पराक्रमी हनुमानजीने उस ओषधिके द्वारा अपने पक्षके समस्त मृत सैनिकोंको जीवित कर दिया। फिर तो सभी योद्धा कवचादिसे सुसज्जित हो अपने-अपने रथपर आरूढ़ होकर शत्रुका मान-मर्दन करनेके लिये वेगपूर्वक चले।

इस बार राजा वीरमणि स्वयं शत्रुघ्नसे युद्ध करनेके लिये डट गये। यद्यपि महाराज वीरमणिने शत्रुघ्नके साथ भयानक युद्ध किया, किंतु शत्रुघ्नके तीक्ष्ण वाणोंके असह्य आघातसे वे मूर्च्छित हो गये। यह देखकर भगवान् शंकर अत्यन्त कुपित हो गये और उन्होंने स्वयं शत्रुघ्नसे युद्ध प्रारम्भ कर दिया। शिव और शत्रुघ्नका समर अत्यन्त भयानक था। शत्रुघ्न प्रलयंकर शिवके प्रहारोंको नहीं सह पाते थे। उन्हें व्याकुल देखकर हनुमानजीने उनसे कहा—'अपनी रक्षाके लिये इस समय आप अपने अग्रज

* यद्यहं मनसा वाचा कर्मणा राघवं प्रति। जानामि तर्हि एतेन भेषजेनाशु जीवतु॥ (प० पु०, पा० खं० ४५। २३)

† यद्यहं ब्रह्मचर्यं च जन्मपर्यन्तमुद्यत:। पालयामि तदा वीर: शत्रुघ्नो जीवतु क्षणात्॥ (प० पु०, पा० खं० ४५। ३१)

श्रीरघुनाथजीका ही स्मरण करें, इसके अतिरिक्त प्राण-रक्षाका अन्य कोई मार्ग नहीं है।' हनुमानजीके सत्परामर्शसे शत्रुघ्नजी अपनी रक्षाके लिये श्रीरघुनाथजीसे अत्यन्त करुण स्वरमें प्रार्थना करने लगे।

फिर क्या था? नवदूर्वादल-श्याम कमलनयन भगवान् श्रीराम हाथमें मृग-शृङ्ग लिये यज्ञदीक्षित पुरुषके वेषमें वहाँ उपस्थित हो गये। युद्ध-स्थलमें उन्हें आया देखकर शत्रुघ्न अत्यन्त विस्मित किंतु सर्वथा निश्चिन्त हो गये।

हनुमानजीकी प्रसन्नताकी तो सीमा ही न थी। वे दौड़कर प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े। फिर उन्होंने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'स्वामिन्! आपकी भक्तवत्सलता धन्य है। हम अत्यन्त धन्य हैं, जो इस समय श्रीचरणोंका दर्शन पा रहे हैं। प्रभो! अब आपकी कृपासे हमलोग शत्रुको कुछ ही क्षणोंमें पराजित कर देंगे।'

उसी समय जब देवाधिदेव महादेवजीने अपने हृदयधन भगवान् श्रीरामको वहाँ उपस्थित देखा तो आगे बढ़कर उन्होंने उनके चरणकमलोंमें प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक कहा—'कृपामय प्रभो! आज मेरा परम सौभाग्य है, जो मैं यहाँ आपके दुर्लभतम दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ। कृपालो! मैंने अपने भक्तके हितके लिये आपके कार्यमें विघ्न उपस्थित किया है, कृपया मुझे क्षमा कीजिये। मैंने पूर्वकालमें इस नरेशको वरदान दिया था। उसी सत्यसे मैं इस समय बँधा हूँ। अब यह राजा अपना सम्पूर्ण जीवन आपके चरणोंकी सेवामें ही समर्पित कर देगा।'

कर्पूरगौर महेश्वरका कथन सुन भगवान् श्रीरामने कहा—'भगवन्! अपने भक्तोंका पालन करना तो देवताओंका धर्म ही है। आपने जो इस समय अपने भक्तकी रक्षा की है, आपके द्वारा यह बहुत उत्तम कार्य हुआ है। शिवजी! मेरे हृदयमें आप हैं और आपके हृदयमें मैं हूँ। हम दोनोंमें भेद नहीं है। जो मूर्ख हैं, जिनकी बुद्धि दूषित है, वे ही भेददृष्टि रखते हैं। हम दोनों एक रूप हैं। जो हमलोगोंमें भेद-बुद्धि करते हैं, वे मनुष्य हजार कल्पोंतक कुम्भीपाकमें पकाये जाते हैं। महादेवजी! जो सदा आपके भक्त रहे हैं, वे धर्मात्मा पुरुष मेरे भी भक्त हैं तथा जो मेरे भक्त हैं, वे भी बड़ी भक्तिसे आपके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं।'*

भगवान् श्रीरामचन्द्रके वचन सुन करुणामूर्ति शिवजीने अपने अमृतमय कर-स्पर्शसे मूर्च्छित राजा वीरमणिको जीवित कर दिया। इसी प्रकार उनके अन्य पुत्रादि भी मृत्युञ्जय शिवकी कृपासे जीवित हो गये। फिर तो महाराज वीरमणिने अत्यन्त आदरपूर्वक यज्ञाश्वको प्रभुके सम्मुख उपस्थित किया तथा अपने पुत्र, पशु और बान्धवोंसहित प्रभुकी सेवामें ही अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। यह देखकर परोपकारमूर्ति पवनकुमार आनन्दमग्न हो गये।

शापोद्धारक

भगवान् श्रीरामके अश्वमेधका अश्व घूमता हुआ हेमकूट पर्वतके एक विशाल उद्यानमें पहुँचा ही था कि वहाँ अकस्मात् उसका सारा शरीर अकड़ गया। वह हिल-डुल भी नहीं सकता था। अश्व-रक्षकोंके मुखसे यह संवाद सुनते ही शत्रुघ्नजी तुरंत अपने सैनिकोंके साथ अश्वके समीप पहुँचे। वहाँ पुष्कलने उसे हिलाने-डुलाने और उठानेका अत्यधिक प्रयत्न किया, किंतु अश्व तो जड-सा हो गया था। वह तनिक भी नहीं हिला।

अत्यन्त चिन्तित होकर शत्रुघ्नजीने अपने मन्त्री सुमतिसे पूछा—'मन्त्रिवर! अब क्या करना चाहिये?'

सुमतिने उत्तर दिया—'स्वामिन्! अब तो प्रत्यक्ष और परोक्ष समस्त बातोंको जाननेवाले किसी ऋषि-मुनिको ही ढूँढ़ना उचित प्रतीत होता है।'

महाराज शत्रुघ्नके आदेशानुसार सेवक तपस्वी ऋषिका पता लगाने दूर-दूरतक दौड़ पड़े। कुछ ही देरमें उन्हें परम तपस्वी शौनक ऋषिके पवित्र आश्रमका पता चला। शत्रुघ्नजीने हनुमान और पुष्कल आदिके साथ वहाँ जाकर अपना परिचय देते हुए तपोमूर्ति मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया।

प्रसन्नतापूर्वक अर्घ्य, पाद्य आदिसे शत्रुघ्नजीका स्वागत करनेके अनन्तर महामुनि शौनकने उनका समाचार पूछा तो शत्रुघ्नजीने अत्यन्त विनयपूर्वक यज्ञाश्वके आश्चर्यजनक गात्र-स्तम्भका समाचार सुनाते हुए उनसे प्रार्थना की—'मुनिनाथ! सौभाग्यवश हमें आपका दर्शन हो गया। आप कृपापूर्वक हमारी यह विपत्ति निवारण कीजिये।'

कुछ देरतक ध्यान करनेके अनन्तर शौनकजीने

* देवानामयमेवास्ति धर्मो भक्तस्य पालनम्। त्वया साधु कृतं कर्म यद् भक्तो रक्षितोऽधुना॥
ममासि हृदये शर्व भवतो हृदये त्वहम्। आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः। कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्॥
ये त्वद्भक्तास्त एवासन्मद्भक्ता धर्मसंयुताः। मद्भक्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिंकराः॥ (प० पु०, पा० खं० ४६। १९—२२)

कहा—"राजन्! अत्यन्त प्राचीन कालकी बात है। एक ब्राह्मणके अपराधपर ऋषियोंने उसे राक्षस होनेका शाप दे दिया। ब्राह्मणकी करुण प्रार्थनापर ऋषियोंने पुनः कहा—'जिस समय तुम श्रीरामचन्द्रजीके अश्वको अपने वेगसे स्तब्ध कर दोगे, उस समय तुम्हें श्रीरामकी कथा सुननेका अवसर मिलेगा। जिससे इस भयंकर शापसे तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।' उसी राक्षसने अश्वका गात्र-स्तम्भ किया है। अतएव तुमलोग कीर्तनके द्वारा अश्वके साथ उसे भी मुक्ति प्रदान करो।"

शत्रुघ्नजीने हनुमान, पुष्कल तथा अन्य सबके साथ महामुनिके चरणोंमें सादर प्रणाम किया और फिर वे हेमकूट-पर्वतके उद्यानमें अश्वके समीप चले।

वहाँ जाकर श्रीराम-भक्त हनुमानजी अश्वको अत्यन्त प्रीतिपूर्वक भयानक दुर्गतियोंका नाशक अपने आराध्य श्रीरघुनाथजीका पावन चरित्र सुनाने लगे। अन्तमें उन्होंने कहा—'देव! आप श्रीरामचन्द्रजीके कीर्तनके पुण्यसे अपने विमानपर सवार होइये और स्वेच्छानुसार अपने लोकमें विचरण कीजिये। अब आप इस कुत्सित योनिसे मुक्त हो जायँ।'*

हनुमानजीके वचनोंको सुनते ही देवताने प्रकट होकर उनका आभार स्वीकार किया और फिर वे विमानपर बैठकर स्वर्ग चले गये। साथ ही यज्ञके अश्वका भी गात्र-स्तम्भ निवारण हो गया और वह प्रसन्नतापूर्वक रमणीय उद्यानमें भ्रमण करने लगा।

श्रीराम-भक्तके बन्धनमें

श्रीरामाश्वमेधका अश्व भ्रमण करता हुआ प्रख्यात कुण्डलपुरके समीप पहुँचा। वहाँके अत्यन्त धर्मात्मा नरेशका नाम सुरथ था। वे वीर, धीर, बुद्धिमान् एवं परम पराक्रमी तो थे ही, भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके अनन्य भक्त थे। उनकी समस्त प्रजा भी श्रीरघुनाथजीकी भक्त और सद्धर्मपरायण थी। उनके राज्यमें घर-घर अश्वत्थ और तुलसीकी पूजा तथा भगवान् श्रीसीतारामकी कथा होती थी। अनीति और अधर्मके लिये वहाँ कोई स्थान नहीं था। पापपरायण नर-नारी उस राज्यमें रह ही नहीं सकते थे। एक बार विश्ववन्दित यमराजने उनकी श्रीराम-भक्तिसे प्रसन्न होकर उन्हें इच्छानुसार वर प्रदान किया था—'राजन्! भगवान् श्रीरामके दर्शनके बिना तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी और तुम मुझसे सदा निर्भय रहोगे।'

अपने नगरके समीप चन्दनसे चर्चित अत्यन्त मनोहर अश्वको देखकर सेवकोंने महाराज सुरथको सूचना दी। हरिभक्तिपरायण नरेशने अश्वको पकड़नेका आदेश देते हुए कहा—'अहा! हम सभी धन्य हैं; क्योंकि हमें भुवनपावन श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दका दर्शन प्राप्त होगा। इस अश्वको मैं तभी छोड़ूँगा, जब अनाथनाथ भक्तवत्सल श्रीराम यहाँ स्वयं उपस्थित होकर मुझे कृतार्थ करेंगे।'

अश्व पकड़ लिया गया। धर्मात्मा राजा सुरथकी श्रीराम-चरणारविन्दमें अनुपम भक्तिका परिचय पाकर शत्रुघ्नजीने उनके समीप दूतके रूपमें अङ्गदजीको भेजा। महाराज सुरथने अङ्गदजीसे स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया—'मैं अपने प्राणधन श्रीरामचन्द्रके मुखचन्द्रका दर्शन करना चाहता हूँ। इस अभिलाषाके पूर्ण हुए बिना मैं क्षत्रिय-धर्मका पालन करनेसे पीछे नहीं हटूँगा।'

अङ्गदजीने राजासे अपने पक्षके वीरोंकी वीरताका गुणगान सुनाते हुए कहा—'राजन्! त्रिकूट पर्वतसहित समूची लंकाको क्षणभरमें फूँक देनेवाले और दुष्टबुद्धि असुरराज रावणके परम पराक्रमी पुत्र अक्षकुमारका प्राण हरण कर लेनेवाले श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंके अनन्य मधुकर हनुमानजीके पराक्रमसे तो तुम परिचित ही होगे। वे इस अश्वके रक्षक हैं। हनुमानजीका चरित्रबल कैसा है, इस बातको श्रीरघुनाथजी ही जानते हैं, दूसरा कोई मूढबुद्धि मनुष्य नहीं जानता; इसीलिये अपने प्रिय सेवक इन पवनकुमारको वे अपने मनसे तनिक भी नहीं बिसारते।† तुम्हें यह सब भलीभाँति सोचकर निर्णय लेना चाहिये।'

महाराज सुरथने सम्मानपूर्वक अङ्गदको उत्तर दिया—'वानरराज! यदि मैं मन, वाणी और क्रियाद्वारा परम प्रभु श्रीरामका ही स्मरण, चिन्तन और पूजन करता हूँ तो वे करुणानिधान स्वयं पधारकर मुझे कृतार्थ करें, अन्यथा महाबली श्रीरामभक्त हनुमान, शत्रुघ्नजी और भरतनन्दन पुष्कल आदि मुझे बलपूर्वक बाँधकर अश्व ले जायँ। तुम मेरा यह निश्चय शत्रुघ्नजीकी सेवामें निवेदन कर दो।'

अङ्गदके लौटते ही युद्धकी तैयारी हो गयी। उधर महाराज सुरथ अपने अनन्य वीर सेनापतिके संरक्षणमें विशाल वाहिनी एवं अपने वीर चम्पक, मोहक, रिपुंजय, दुर्वार, प्रतापी, बलमोदक, हर्यक्ष, सहदेव, भूरिदेव तथा असुतापन नामक दस पुत्रोंके साथ, जो

* याहि देव विमानं स्वं रामकीर्तनपुण्यतः। स्वैरं चरस्व लोके त्वं मुक्तो भव कुयोनितः॥ (प० पु०, पा० खं० ४८। ७२)

† जानाति रामश्चारित्रं नान्यो जानाति मूढधीः। यं कपीन्द्रं मनाक् स्वान्तान्न विस्मरति सेवकम्॥ (प० पु०, पा० खं० ५१। ४५)

युद्धमें शत्रुका मान-मर्दन करनेवाले थे, डट गये। भयंकर संग्राम प्रारम्भ हो गया। भरतनन्दन पुष्कल सुरथकुमार चम्पकके साथ युद्ध करने लगे।

पुष्कल और चम्पक—दोनों वीर थे। दोनों ही एक-दूसरेकी वीरता एवं युद्धमें दक्षताकी प्रशंसा करते हुए युद्ध कर रहे थे, किंतु वीरवर चम्पकने पुष्कलको बाँधकर अपने रथपर बिठा लिया।

शत्रुघ्नजीकी सेनामें हाहाकार मचते देख हनुमानजी कुपित होकर चम्पकके सम्मुख पहुँच गये। उन्होंने चम्पकपर कितने ही वृक्ष एवं शिलाओंसे आक्रमण किया, किंतु श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हुए चम्पकने उन सबको तिलसरीखे काट गिराया। तब हनुमानजी अत्यधिक क्रुद्ध हो गये और चम्पकको पकड़कर आकाशमें उड़ गये। वहाँ उन्होंने उसका पैर पकड़कर पृथ्वीपर जोरसे पटक दिया। धर्मात्मा राजा सुरथका धार्मिक वीर पुत्र चम्पक धरतीपर गिरते ही घायल होकर मूर्च्छित हो गया।

हनुमानजी महाराज सुरथ और उनके पुत्रों तथा उनकी समस्त प्रजाकी श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दकी भक्तिसे परिचित थे। महाराज सुरथ श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रका दर्शन प्राप्त कर लें, यह वे हृदयसे चाहते थे; पर अश्वकी रक्षाके लिये कर्तव्य-पालन भी आवश्यक था। उन्होंने देखा, उनके सम्मुख महाराज सुरथ विशाल धनुषपर शर-संधान किये डट गये हैं। महाराज सुरथने हनुमानजीसे कहा—'कपीन्द्र! निश्चय ही तुम महावीर और मेरे प्रभुके अनन्य भक्त हो, किंतु मैं सत्य कहता हूँ कि मैं तुम्हें बाँधकर अपने नगर ले जाऊँगा। तुम सावधान हो जाओ।'

अपने जीवनसर्वस्वको प्राण समझनेवाले महाराज सुरथको देखकर हनुमानजी मन-ही-मन मुदित हुए। उन्होंने उत्तर दिया—'राजन्! तुम श्रीरघुनाथजीके चरणोंका चिन्तन करनेवाले हो और हमलोग भी उन्हींके सेवक हैं। यदि तुम मुझे बाँध लोगे तो मेरे प्रभु बलपूर्वक तुम्हारे हाथसे छुटकारा दिलायेंगे। वीर! तुम्हारे मनमें जो बात है, उसे पूर्ण करो। अपनी प्रतिज्ञा सत्य करो। वेद ऐसा कहते हैं कि जो श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करता है, वह दुःखसे पार हो जाता है।'*

महाराज सुरथने पवनकुमारकी प्रशंसा करते हुए अपने तीक्ष्णतम शरोंसे उन्हें घायल कर दिया। हनुमानजीने कुपित होकर राजाका धनुष पकड़कर तोड़ दिया। राजाने दूसरा धनुष उठाया ही था कि पवनपुत्रने उसे भी तोड़ डाला। इस प्रकार उन्होंने राजाके अस्सी धनुष और उनचास रथ नष्ट कर दिये। यह देखकर सुरथने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया, किंतु हनुमानजी हँसते हुए उसे भी निगल गये। तब महाराज सुरथने श्रीरघुनाथजीका स्मरण कर रामास्त्रका प्रयोग करके हनुमानजीको बाँध लिया। बँधते समय हनुमानजीने कहा—'राजन्! तुमने मेरे स्वामीके ही अस्त्रसे मुझे बाँध लिया है। मैं उसका आदर करता हूँ। अब तुम मुझे अपने नगरमें ले चलो।'

उदारशिरोमणि भक्तराज हनुमानने अपने प्रभुके अस्त्रके सम्मान एवं भक्ताग्रगण्य सुरथके हितके लिये बन्धन स्वीकार कर लिया। हनुमानजीको बँधते देखकर कुपित पुष्कल राजाके सम्मुख पहुँचकर युद्ध करने लगे, किंतु राजाके तीक्ष्ण शरोंसे वे भी मूर्च्छित हो गये। इसी प्रकार लवणासुरघाती शत्रुघ्नजी एवं सुग्रीव आदि भी राजाके तीक्ष्ण शरोंसे घायल होकर मूर्च्छित हो गये। महाराज सुरथ विजयी हुए। उन्होंने शत्रुघ्नजीके पक्षके प्रमुख वीरोंको रथमें बैठाया और प्रसन्न-मन नगरकी ओर चल पड़े।

राजसभामें बैठकर महाराज सुरथने बँधे हुए हनुमानजीसे कहा—'पवनकुमार! अब तुम अपनी मुक्तिके लिये दयामय श्रीरघुनाथजीका स्मरण करो।'

बन्धनयुक्त दयापरवश हनुमानजीने अपने समीप अपने पक्षके सभी प्रधान-प्रधान वीरोंको बँधा देखकर कमलनेत्र श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करते हुए मन-ही-मन उनसे अत्यन्त करुण प्रार्थना की—'हा नाथ! हा पुरुषोत्तम!! हा दयालु सीतापते!!! (आप कहाँ हैं? मेरी दशापर दृष्टिपात करें।) प्रभो! आपका मुख स्वभावसे ही शोभासम्पन्न है, उसपर भी सुन्दर कुण्डलोंके कारण तो उसकी सुषमा और भी बढ़ गयी है। आप भक्तोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं। मनोहर रूप धारण करते हैं। दयामय! मुझे इस बन्धनसे शीघ्र मुक्त कीजिये; देर न लगाइये। आपने गजराज आदि भक्तोंको संकटसे बचाया है, दानव-वंशरूपी अग्निकी तीव्र ज्वालामें जलते हुए देवताओंकी रक्षा की है तथा दानवोंको मारकर उनकी पत्नियोंके मस्तककी केश-राशिको भी बन्धनसे मुक्त किया है। (वे विधवा होनेके कारण कभी केश नहीं बाँधतीं।) करुणानिधे! अब मेरी भी सुध लीजिये। नाथ! बड़े-बड़े सम्राट् भी आपके चरणोंका पूजन करते

---

* त्वं रामचरणस्मारी वयं रामस्य सेवकाः। बध्नासि चेन्मां प्रसभं मोचयिष्यति मत्प्रभुः॥
कुरु वीर भवत्स्वान्तःस्थितं सत्यं प्रतिश्रुतम्। रामं स्मरन् वै दुःखान्तं याति वेदा वदन्त्यदः॥ (प० पु०, पा० खं० ५२। ९-१०)

हैं, इस समय आप यज्ञकर्ममें लगे हैं, मुनीश्वरोंके साथ धर्मका विचार कर रहे हैं और यहाँ मैं सुरथके द्वारा गाढ़ बन्धनमें बाँधा गया हूँ। महापुरुष! देव! शीघ्र आकर मुझे छुटकारा दिलाइये। प्रभो! सम्पूर्ण देवेश्वर भी आपके चरण-कमलोंकी अर्चना करते हैं। यदि इतने स्मरणके बाद भी आप हमलोगोंको इस बन्धनसे मुक्त नहीं करेंगे तो संसार प्रसन्न होकर आपकी हँसी उड़ायेगा, इसलिये अब आप विलम्ब न कीजिये, हमें शीघ्र छुड़ाइये।'*

प्राणप्रिय पवनकुमारके अन्तर्हृदयकी प्रार्थना सुनते ही परमप्रभु श्रीराम तुरंत पुष्पक विमानपर आरूढ़ होकर तीव्रतम गतिसे चलकर वहाँ आ पहुँचे। हनुमानजीने देखा, मेरे सर्वान्तर्यामी प्रभु श्रीराम आ गये। उनके पीछे लक्ष्मण, भरत एवं वीतराग ऋषियोंके समुदायको देखकर दयामय पवननन्दनने गद्गद कण्ठसे भाग्यवान् महाराज सुरथसे कहा—'राजन् ! देखो, भक्तोंको संकटसे मुक्त करनेवाले मेरे प्राण-सर्वस्व श्रीरघुनाथजी हमें बन्धन-मुक्त करने आ गये।'

हनुमानजीका संकेत प्राप्त होते ही महाराज सुरथ प्रभुके चरणोंमें लोटकर बारम्बार प्रणाम करने लगे। उन्होंने प्रभुके परम पावन चरणोंको अपने प्रेमाश्रुओंसे धो दिया और जब दयाधाम श्रीरामने चतुर्भुज रूप धारणकर राजा सुरथको छातीसे लगा लिया, तब हनुमानजीके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। प्रभुने राजासे कहा—'राजन्! तुमने यशस्वी क्षत्रिय-धर्मका पालन कर बड़ा उत्तम कार्य किया है।'

श्रीरघुनाथजीकी दयादृष्टिसे हनुमानजी आदि सभी वीर बन्धनसे मुक्त और समस्त मूर्च्छित तथा मृत योद्धा जीवित हो गये।

राजा सुरथके आनन्दकी सीमा न थी। उन्होंने पुत्रोंसहित हर्षोल्लासपूर्वक प्रभुकी अर्चना की। राजा, मन्त्री, राजाके पुत्र, सैनिक एवं समस्त नागरिक भगवान् श्रीराम एवं उनके अनन्य भक्त भक्तराज हनुमानके दर्शन कर धन्य हो गये। सबने अपना जन्म और जीवन सफल कर लिया।

श्रीरामात्मजके साथ युद्ध

यज्ञका अश्व भ्रमण करता हुआ महर्षि वाल्मीकिके पुनीत आश्रमके समीप पहुँचा। प्रातःकालका समय था। सीतापुत्र लव मुनिकुमारोंके साथ समिधा लेने वनमें गये थे। वहाँ उन्होंने यज्ञाश्वके भालपर स्वर्ण-पत्रपर अङ्कित पङ्क्तियाँ पढ़ते ही घोड़ेको तुरंत पकड़कर एक वृक्षसे बाँध दिया।

उसी समय शत्रुघ्नके सेवक वहाँ पहुँच गये। वे मुनि-बालकोंसे अश्व बाँधनेवाले व्यक्तिका पता पूछ ही रहे थे कि लवने कहा—'इस सुन्दर अश्वको मैंने बाँधा है। इसे छुड़ानेवाला मृत्युका ग्रास बनेगा। अतः इससे दूर ही रहो।'

'बेचारा बालक है'—यों कहते हुए शत्रुघ्नजीके सेवक घोड़ेको खोलनेके लिये आगे बढ़े ही थे कि लवने अपने वाणसे उनकी भुजाएँ काट डालीं। सेवक व्याकुल होकर महाराज शत्रुघ्नके पास भागे। उन्होंने शत्रुघ्नजीसे कहा—'राजन् ! प्रभु श्रीरामकी मुखाकृतिके तुल्य एक बालकने हमारी यह दुर्दशा की है और उसीने अश्वको भी बाँध लिया है।'

शत्रुघ्नजीने कुपित होकर बालकको दण्डित कर अश्व छुड़ा लानेके लिये चतुरङ्गिणी सेनाके साथ अपने सेनापति कालजित्को भेजा। सेनापति लवको देखकर समझानेका प्रयत्न करने लगे, किंतु लवने कहा—'मुझे इस घोड़ेकी आवश्यकता नहीं, किंतु इसके भालपर सुवर्ण-पत्रपर अङ्कित पङ्क्तियाँ मुझे युद्ध करनेके लिये विवश कर रही हैं। तुम सुवर्ण-पत्र यहाँ छोड़कर अश्वसहित सुरक्षित लौट सकते हो, अन्यथा युद्ध अनिवार्य है।'

कालजित्ने भयानक युद्ध किया, किंतु वे लवके द्वारा मार डाले गये। उनकी अजेय वाहिनीको भी लवके असंख्य नुकीले सायकोंसे व्याकुल होकर पीछे हट जाना पड़ा। पर लव युद्ध करते ही रहे। भीषण संग्राम हुआ। प्रायः सभी वीर मारे गये।

फिर तो हनुमान, पुष्कल आदिके साथ स्वयं शत्रुघ्नजी समर-भूमिमें उपस्थित होकर सीताकुमार लवसे युद्ध करने लगे। महावीरशिरोमणि भरतनन्दन पुष्कल कुछ ही देरमें लवके शरसे आहत होकर धराशायी हो गये। उन्हें मूर्च्छित देखते ही हनुमानजी लवसे युद्ध करने लगे।

* हा नाथ हा नरवरोत्तम हा दयालो सीतापते रुचिरकुण्डलशोभिवक्त्र। भक्तार्तिदाहक मनोहररूपधारिन् मां बन्धनात् सपदि मोचय मा विलम्बम्॥
सम्मोचितास्तु भवता गजपुंगवाद्या देवाश्च दानवकुलाग्निसुदह्यमानाः। तत्सुन्दरीशिरसि संस्थितकेशबन्धसम्मोचितासि करुणालय मां स्मरस्व॥
त्वं यागकर्मनिरतोऽसि मुनीश्वरेन्द्रैर्धर्मं विचारयसि भूमिपतीड्य पाद। अत्राहमद्य सुरथेन विगाढपाशबद्धोऽस्मि मोचय महापुरुषाशु देव॥
न मोचयस्यथ यदि स्मरणातिरेका त्वं सर्वदेववरपूजितपादपद्म। लोको भवन्तमिदमुल्लसितोऽहसिष्यत्तस्माद् विलम्बमिह माऽऽचर मोचयाशु॥
(प० पु०, पा० खं० ५३। १४—१७)

उन्होंने लवपर अनेक वृक्षों एवं शिलाओंसे प्रहार किया, किंतु लवने अपने शरोंसे उन सबको काटकर तिलके समान टुकड़े-टुकड़े कर दिया। तब हनुमानजीने लवको अपनी पूँछमें लपेट लिया और आकाशमें उड़ चले। लवने अपनी सर्वशक्तिमयी जननीका स्मरण कर हनुमानजीकी पूँछमें मुष्टि-प्रहार किया। उससे हनुमानजी अत्यन्त व्याकुल हो उठे और लव उनकी पूँछसे मुक्त हो गये। उन्होंने कुपित होकर हनुमानजीपर इतने तीक्ष्ण शरोंकी वृष्टि की, जिन्हें वे सह न सके और पीड़ासे व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गये।

यह देखकर स्वयं शत्रुघ्नजी रथपर आरूढ़ होकर सीतापुत्रसे लोहा लेनेके लिये आगे बढ़े। लवको पराजित करना अत्यन्त कठिन था, किंतु शत्रुघ्नजीका एक भयानक शर उनके वक्षमें प्रविष्ट हो गया, जिससे वे घायल होकर चेतना-शून्य हो गये। लवके धरतीपर गिरते ही शत्रुघ्नजीकी सेनामें हर्ष व्याप्त हो गया। शत्रुघ्नजीने लवको अपने रथमें डालकर बंदी बना लिया।

मुनिकुमारोंसे शत्रुद्वारा लवके पकड़े जानेका समाचार सुनकर माता सीता व्याकुल हो गयीं, किंतु लवके बड़े भाई कुशने उन्हें धैर्य बँधाया और वे मातासे समस्त अस्त्र-शस्त्र एवं उनका अमोघ आशीर्वाद लेकर अपने अनुज लवको मुक्त करने रणाङ्गणकी ओर चल पड़े।

रथपर बँधे लवकी चेतना लौट आयी थी। उन्होंने अपने बड़े भाईको समर-भूमिमें उपस्थित देखा तो अपनेको रथसे छुड़ाकर युद्धके लिये कूद पड़े। फिर तो कुशने पूर्व दिशासे और लवने पश्चिम दिशासे शत्रुघ्नकी सेनाको घेरकर मारना प्रारम्भ किया।

शत्रुघ्नजी अत्यन्त कुपित होकर कुशसे युद्ध करने लगे, किंतु कुशने प्रतिज्ञापूर्वक तीन वाणोंसे उन्हें मूर्च्छित कर दिया। अब महाराज सुरथ सम्मुख आये, पर वे भी कुशके शरोंसे मूर्च्छित हो गये।

यह देखकर हनुमानजीने अत्यन्त क्रोधसे एक विशाल शालका वृक्ष उखाड़कर कुशके वक्षपर प्रहार किया। वीरवर कुशने माता सीताका स्मरण कर एक भयानक संहारास्त्र उठाया और उसे हनुमानजीपर चला दिया। उस दुर्जय शस्त्रको हनुमानजी सह नहीं सके और मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

सीतापुत्र लव और कुशके भयानक प्रहारसे शत्रुघ्नजीकी चतुरङ्गिणी सेना व्याकुल होकर पलायन करने लगी, तब वानरराज सुग्रीव अपने सैनिकोंको प्रोत्साहित करते हुए कुशपर विशाल शिलाओं और वृक्षोंसे प्रहार करने लगे; किंतु वीर कुशने उन्हें भी शीघ्र ही वरुण-पाशसे दृढ़तापूर्वक बाँध लिया। सुग्रीव धरतीपर गिर पड़े। कुश विजयी हुए। उधर लवने भी पुष्कल, अङ्गद, प्रतापाग्रय और वीरमणि आदि वीरोंको पराजित कर दिया।

लव और कुश—दोनों भाई हनुमानजी और सुग्रीवको अच्छी तरह बाँधकर मनोरञ्जनके लिये अपने आश्रमपर ले चले।

माता सीताने अपने पुत्रोंको सकुशल लौटे देखा तो अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें हृदयसे लगा लिया, किंतु हनुमानजी और सुग्रीवपर दृष्टि पड़ते ही वे अधीर होकर कहने लगीं—'पुत्रो! ये दोनों वानर परम पराक्रमी एवं अत्यन्त सम्मानके पात्र हैं। ये लंकाको भस्म करनेवाले अञ्जनानन्दन हनुमान एवं ये वानर-भालुओंके अधिपति सुग्रीव हैं। तुमने इन्हें क्यों बाँध लिया? इन्हें अभी छोड़ो।'

परम पूजनीया जननी सीताके आदेशसे हनुमानजी और सुग्रीवका बन्धन खोलते हुए पुत्रोंने कहा—'माँ! अयोध्याके प्रसिद्ध राजा दशरथके श्रीराम नामक कोई पुत्र अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं। उन्होंने अश्व भी छोड़ा है, जिसके ललाटपर बँधे हुए सुवर्ण-पत्रपर लिखा है—'सच्चे क्षत्रिय इस अश्वको पकड़ें, अन्यथा मेरे सम्मुख नतमस्तक हों।' उस राजाकी धृष्टतासे हमने घोड़ेको पकड़ लिया और श्रीरामके भाई शत्रुघ्नसहित उनकी विशाल वाहिनीको भी मार डाला है।'

माता सीताने दु:खसे व्याकुल होकर कहा—'पुत्रो! तुमलोगोंने यह बड़ा अनुचित किया। तुम्हें पता नहीं, वह घोड़ा तुम्हारे पिताका ही है। तुम शीघ्र ही उस अश्वको भी छोड़ दो।'

पुत्रोंने विनयपूर्वक निवेदन किया—'माँ ! हमलोगोंने महर्षिके उपदेशानुसार क्षत्रिय-धर्मका ही पालन किया है। अब उस उत्तम अश्वको भी छोड़ देते हैं।'

परम सती जनकनन्दिनीने अपने जीवन-धन श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करते हुए कहा—'यदि मैं मन, वाणी और कर्मसे श्रीरघुनाथजीके अतिरिक्त अन्य किसीका स्मरण नहीं करती तो शत्रुघ्नसहित उनकी सारी सेना पुन: जीवित हो जाय।'

उसी समय शत्रुघ्नजीके साथ उनकी सारी सेना जीवित हो गयी। माता सीताने हनुमानजीसे पूछा—'हनुमान! तुम-जैसा अतुलित बलधाम एवं परम पराक्रमी वीर एक बालकसे कैसे पराजित हो गया?'

हनुमानजीने हाथ जोड़कर माता जानकीसे निवेदन किया—'माँ! हम पराजित कहाँ हुए! पुत्र पिताकी

आत्मा होता है। इस प्रकार ये दोनों कुमार तो मेरे स्वामी ही हैं। मेरे करुणानिधान भगवान्ने हमलोगोंका अहंकार देखकर ही यह लीला रची है।'

हनुमानजीने अश्वकी रक्षामें अनेक स्थलोंपर जितने आश्चर्यजनक पराक्रम किये हैं, उन सबका उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं, उनका विस्तृत वर्णन पद्मपुराण (पातालखण्ड) और जैमिनीयाश्वमेध आदि ग्रन्थोंमें ही देखना चाहिये।

रुद्र-रूपमें

सदा सौम्य रूपमें अवस्थित रहनेवाले उदारलोचन मारुतात्मज कभी-कभी अपने रुद्र-रूपमें भी दर्शन दे देते हैं। अमित महिमामयी माता जानकीका इनके प्रति अद्भुत वात्सल्य है। सहस्रों सेवक-सेविकाएँ जनकदुलारीकी सेवाके लिये प्रतिक्षण सजग और सावधान रहकर उनके आदेशकी प्रतीक्षा करती रहती थीं। माता जो चाहतीं, वह तत्काल हो जाता; किंतु इससे उन्हें तृप्ति नहीं होती। इस कारण एक दिन माता सीताने अपने प्राणप्रिय लाल हनुमानजीको भोजन करानेके लिये अपने ही हाथों विविध प्रकारके व्यञ्जन तैयार किये।

माताके आदेशानुसार हनुमानजी अत्यन्त प्रसन्न होकर भोजन करने बैठे। माताके हाथके बने भोजनकी तुलना कहाँ? यहाँ तो भगवती सीता-जैसी माता और हनुमानजी-जैसा पुत्र ! हनुमानजीने भोजन करना प्रारम्भ किया। उन्होंने माताके हाथों परोसा हुआ अमृतमय भोजन कितना खा लिया, इसका उन्हें ध्यान ही न रहा। वे आनन्दपूर्वक भोजन करते ही जा रहे थे।

माता सीताने हनुमानजीको इतना खाते कभी देखा नहीं था और वे अब भी खाते ही जा रहे थे। उधर माताजीके बनाये समस्त व्यञ्जन समाप्त हो गये। माता जानकी चकित थीं। विवशत: उन्होंने अपने प्राणनाथ भगवान् श्रीरामका स्मरण किया। अब तो माता सीताने स्पष्ट देखा कि हनुमानके वेषमें स्वयं भगवान् शंकर भोजन आरोग रहे हैं। प्रलयकालमें निखिल सृष्टिको उदरस्थ कर लेनेवाले प्रलयंकरकी क्षुधा कुछ व्यञ्जनोंसे कैसे शान्त हो पाती?

भगवती सीताने पीछेसे जाकर उनके सिरके पिछले भागमें लिख दिया—'**ॐ नमः शिवाय।**' साथ ही उन्होंने मन-ही-मन रुद्रदेवका स्तवन करते हुए उनसे तृप्त हो जानेकी प्रार्थना की। फिर क्या था? हनुमानजी तुरंत तृप्त हो गये।

एक बार हनुमानजीने अपने भाई भीमसेनको भी रौद्र-रूपका दर्शन कराया था। बात है द्वापरयुगकी। तब पाण्डव अरण्य-वास कर रहे थे। अर्जुनसे मिलनेकी इच्छासे वे द्रौपदीसहित उत्तराखण्डके पवित्रतम श्रीनर-नारायण-आश्रममें पहुँचे। वहाँ एक दिन ईशानकोणसे वायुके सहारे सौगन्धिक नामक एक सहस्रदल कमल उड़ आया। उस सूर्य-तुल्य तेजस्वी दिव्य कमलमें अद्भुत मनोमोहक गन्ध थी। उसे देखते ही मुग्ध होकर द्रौपदीने भीमसेनसे कहा—'आर्य! यदि आपके मनमें मेरे प्रति वास्तविक प्रेम है तो आप ऐसे ही अद्भुत सुगन्धित दिव्य कमल और ला दीजिये। मैं उन्हें काम्यकवनमें अपने आश्रमपर ले चलूँगी।'

अपनी प्रियतमा द्रौपदीकी प्रसन्नताके लिये भीमसेनने तुरंत अपने सुवर्ण-जटित पीठवाले विशाल धनुष और तीक्ष्णतम शरोंको उठाया और वायु जिस ओरसे उस अनुपम सुगन्धित दिव्य सहस्रदल कमलको उड़ाकर लाया था, उसी ओर तीव्र गतिसे चल पड़े। परम पराक्रमी भीमसेन मार्गमें भीषण गर्जना करते हुए जा रहे थे। उनकी गर्जनासे दिशाएँ गूँज उठती थीं और वनके व्याघ्र आदि हिंसक प्राणी भयभीत होकर मार्गसे दूर हटकर अरण्यमें छिप जाते थे।

इस प्रकार भीमसेन आगे बढ़ते गये। थोड़ी दूर आगे जानेपर उन्हें गन्धमादनके शिखरपर अत्यन्त विस्तृत एक कदलीवन मिला। वह कई योजन लंबा-चौड़ा था। वीरवर भीमसेनने गर्जना करते हुए उस कदलीवनमें प्रवेश किया।

उसी वनमें हनुमानजी रहते थे। उस भीषणतम गर्जनको सुनकर उन्हें समझते देर न लगी कि यह मेरा भाई भीमसेन ही है। 'भीमसेनका इस मार्गसे स्वर्ग जाना उचित नहीं'—यह सोचकर वे कदलीवनसे होकर जानेवाले सँकरे मार्गको रोककर लेट गये। हनुमानजी वहाँ जँभाई लेते हुए जब अपनी विशाल पूँछ फटकारते, तब दिशाएँ प्रतिध्वनित हो जातीं और पर्वतशिखर टूट-टूटकर लुढ़कने लगते। उस ध्वनिको सुनकर भीमसेनके रोंगटे खड़े हो गये। कारण ढूँढ़ते हुए वे वहाँ पहुँचे, जहाँ एक विशाल शिलापर उनके भाई हनुमानजी लेटे हुए थे।

विद्युत्पातके समान चकाचौंध पैदा करनेके कारण उनकी ओर देखना अत्यन्त कठिन हो रहा था। उनकी अङ्गकान्ति गिरती हुई बिजलीके समान पिङ्गल-वर्णकी थी। उनका गर्जन-तर्जन वज्रपातकी गड़गड़ाहटके समान था। वे विद्युत्पातके सदृश चञ्चल प्रतीत होते थे। उनके

कंधे चौड़े और पुष्ट थे। अत: उन्होंने बाँहके मूलभागको तकिया बनाकर उसीपर अपनी मोटी और छोटी ग्रीवाको रख छोड़ा था और उनके शरीरका मध्यभाग एवं कटिप्रदेश पतला था। उनकी लम्बी पूँछका अग्रभाग कुछ मुड़ा हुआ था। उसकी रोमावलि घनी थी तथा वह पूँछ ऊपरकी ओर उठकर फहराती हुई ध्वजा-सी सुशोभित होती थी।

उनके होंठ छोटे थे। जीभ और मुखका रंग ताँबेके समान था। कान भी लाल रंगके ही थे और भौंहें चञ्चल हो रही थीं। उनके खुले हुए मुखमें चमकते हुए श्वेत दाँत और दाढ़ें अपने सफेद और तीखे अग्रभागके द्वारा अत्यन्त शोभा पा रही थीं। इन सबके कारण उनका मुख किरणोंसे प्रकाशित चन्द्रमाके समान दिखायी देता था। मुखके भीतरकी श्वेत दन्तावलि उसकी शोभा बढ़ानेके लिये आभूषणका काम दे रही थी। सुवर्णमय कदली-वृक्षोंके बीच विराजमान महातेजस्वी हनुमानजी ऐसे जान पड़ते थे, मानो केसरोंकी क्यारीमें अशोकपुष्पोंका गुच्छ रख दिया गया हो।*

प्रज्वलित अग्निके समान कान्तिमान् हनुमानजीको देखकर वीरवर भीमसेन भीषण गर्जना करते हुए उनके पास पहुँच गये। हनुमानजीने उन्हें अपने मधुपिङ्गल नेत्रोंसे उपेक्षापूर्वक देखते हुए धीरे-धीरे कहा—'भैया! मैं तो पशु और रोगी हूँ। तुम बुद्धिमान् मनुष्य हो। मैं यहाँ सुखपूर्वक सो रहा था, तुमने मुझे क्यों जगा दिया? इसके आगे तो मनुष्यके जानेका मार्ग नहीं है। तुम कहाँ जाना चाहते हो?'

'तुमसे मार्ग कौन पूछता है?' चिढ़कर भीमसेनने उत्तर दिया—'तुम यहाँसे हटो और मुझे जाने दो।'

'देखो भैया! यहाँके कन्द-मूल-फल अत्यन्त मीठे हैं।' हनुमानजीने भीमसेनको समझाते हुए कहा—'तुम इन्हें खाकर विश्राम करो और यहींसे लौट जाओ। उत्तराखण्डमें इतनी दूरतक आनेवाले तुम कौन हो?'

'वानरराज! मैं तुमसे परामर्श नहीं माँगता।' क्रुद्ध होनेपर भी उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा—'मैं चन्द्रवंशके अन्तर्गत कुरुवंशमें उत्पन्न महाराज पाण्डुकी सहधर्मिणी कुन्तीका पुत्र भीमसेन हूँ। अब तुम उठकर मुझे आगे जानेका मार्ग दे दो।'

'मैंने पहले ही कहा कि यहाँसे आगे मनुष्योंके जानेका मार्ग नहीं है।' हनुमानजीने उन्हें मना करते हुए पुन: कहा—'इस पथसे जानेपर तुम्हारे प्राण संकटमें पड़ सकते हैं।'

भीमसेन अत्यन्त कुपित हो गये। उन्होंने कहा—'तुम मेरी चिन्ता छोड़कर उठ जाओ। मुझे जाने दो।'

हनुमानजीने कहा—'भैया! मैं तो रोगी हूँ। तुम मुझे लाँघकर चले जाओ।'

भीमसेनने उत्तर दिया—'कपिश्रेष्ठ ! निर्गुण परमात्मा समस्त प्राणियोंमें व्याप्त हैं। इस कारण मैं तुम्हारा लङ्घन नहीं कर सकता। शास्त्रोंके द्वारा यदि मुझे श्रीभगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान नहीं होता तो मैं तुम्हें तो क्या, इस गगन-स्पर्शी पर्वतको उसी प्रकार लाँघ जाता, जैसे महावीर हनुमान सौ योजन विस्तृत समुद्रको लाँघ गये थे।'

हनुमानजीने मुस्कुराते हुए भीमसेनसे पूछा—'अरे भैया! वह हनुमान कौन था, जो समुद्रको लाँघ गया था?'

'वे कपिपुंगव मेरे भाई हैं।' भीमसेनने उल्लासपूर्वक बताया—'वे अनुपम बल-विक्रम-सम्पन्न तो हैं ही, ज्ञानियोंमें भी अग्रगण्य हैं। वे भगवान् श्रीरामकी सती पत्नी जनकनन्दिनीका पता लगानेके लिये शत योजन विस्तृत सागरको एक ही छलाँगमें पार कर गये थे। मैं उन्हीं वीराग्रणी हनुमानजीका भाई हूँ। अब तुम मेरा मार्ग छोड़कर हट जाओ। यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो तुम्हें मृत्यु-मुखमें जाना पड़ेगा।'

'मुझ वृद्ध रोगीपर रोष मत करो, भैया!' हनुमानजीने धीरे-धीरे कहा—'अशक्तताके कारण मैं तो उठ नहीं पाऊँगा, अत: तुम मेरी पूँछ हटाकर चले जाओ।'

हनुमानजीकी बात सुनकर वायुपुत्र भीमसेन क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने बायें हाथसे पूँछ हटा देना चाहा, किंतु यह देखकर वे चकित हो गये कि पूँछ तो हिली भी नहीं। भीमसेनने जोर लगाकर उसे हटाना चाहा, पर वह टस-से-मस भी नहीं हुई। तब उन्होंने दोनों हाथोंसे अपनी पूरी शक्ति लगा दी। उनका मुख-मण्डल स्वेद-सिक्त हो गया, पर पूँछ अपने स्थानसे तिलभर भी न हट सकी। लज्जाके कारण वीरवर भीमसेनका सिर नत हो गया।

---

* विद्युत्सम्पातदुष्प्रेक्षं विद्युत्सम्पातपिङ्गलम्। विद्युत्सम्पातनिनदं विद्युत्सम्पातचञ्चलम्॥
बाहुस्वस्तिकविन्यस्तपीनह्रस्वशिरोधरम्। स्कन्धभूयिष्ठकायत्वात् तनुमध्यकटीतटम्॥
किंचिच्चाभुग्नशीर्षेण दीर्घरोमाञ्चितेन च। लाङ्गूलेनोर्ध्वगतिना ध्वजेनेव विराजितम्॥
ह्रस्वौष्ठं ताम्रजिह्वास्यं रक्तकर्णं चलद्भ्रुवम्। विवृत्तदंष्ट्रादशनं शुक्लतीक्ष्णाग्रशोभितम्॥
अपश्यद् वदनं तस्य रश्मिवन्तमिवोडुपम्। वदनाभ्यन्तरगतैः शुक्लैर्दन्तैरलंकृतम्॥
केसरोत्करसम्मिश्रमशोकानामिवोत्करम्। हिरण्मयीनां मध्यस्थं कदलीनां महाद्युतिम्॥ (महा० वन० १४६।७६—८१)

उन्होंने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक पूछा—'कपिश्रेष्ठ! आप मेरे दुर्वचनोंके लिये कृपया क्षमा कर मुझपर प्रसन्न हो जायँ। आप इस वेषमें कोई सिद्ध, देवता, गन्धर्व अथवा गुह्यक तो नहीं हैं ? मैं आपकी शरण हूँ। आप कृपापूर्वक मुझे अपना परिचय दीजिये।'

हनुमानजीने अपना परिचय देते हुए कहा—'पाण्डुनन्दन भीमसेन! मैं वानरराज केसरीके क्षेत्रमें वायुसे उत्पन्न वानर हनुमान हूँ।' इसके अनन्तर हनुमानजीने भगवान् श्रीरामकी संक्षिप्त कथा सुनाते हुए अपनी सेवाओंका वर्णन किया। फिर अन्तमें उन्होंने बताया—'भीमसेन! यहाँ गन्धर्व और अप्सराएँ मुझे मेरे प्रभुके चरित सुना-सुनाकर आनन्द प्रदान करते रहते हैं और माता सीताके अनुग्रहसे मुझे यहाँ इच्छित दिव्य भोग प्राप्त हो जाते हैं।'

हनुमानजीने आगे कहा—'इस मार्गमें देवगण निवास करते हैं और मनुष्योंके लिये अगम्य होनेके कारण मैंने इसे रोक लिया था। सम्भव है, इस मार्गसे जानेमें तुम्हारा तिरस्कार हो जाय या कोई तुम्हें शाप दे दे। तुम जहाँ जाना चाहते हो, वह सरोवर तो यहाँ समीप ही है।'

महावीर हनुमानसे उनका परिचय प्राप्तकर भीमसेनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वे अपने बड़े भाईके चरणोंपर गिर पड़े और फिर उन्होंने अत्यन्त प्रेमपूर्ण कोमल वाणीमें कहा—'आज मेरे सौभाग्यका क्या कहना, जो आपने कृपापूर्वक मुझे अपना दर्शन दे दिया। अब आप कृपापूर्वक मुझे अपने समुद्रोल्लङ्घनके समयके अनुपम स्वरूपको भी दिखा दीजिये। उसके दर्शनकी मेरी बड़ी इच्छा है।'

हनुमानजीने हँसकर उत्तर दिया—'भाई भीमसेन! तुम तथा अन्य कोई मनुष्य उस रूपको नहीं देख सकता।' तदनन्तर चारों युग, उनके आचार, धर्म, अर्थ और कामके रहस्य, कर्म-फलका स्वरूप तथा उत्पत्ति और विनाशका वर्णन करते हुए हनुमानजीने भीमसेनसे कहा—'तुम मेरे उस स्वरूपको देखनेका आग्रह मत करो। अब सुखपूर्वक लौट जाओ।'

किंतु भीमसेनने साग्रह प्रार्थना की—'आप कृपापूर्वक मेरी इस इच्छाकी पूर्ति तो कर ही दीजिये, आपके उस अद्भुत रूपका दर्शन किये बिना मैं यहाँसे नहीं लौटूँगा।'

'अच्छा, तुम नहीं मानते हो तो मेरे उस रूपको देखो।' इतना कहकर हनुमानजीने अपने भाग्यवान् भाई भीमसेनको अपना वह विशाल रूप दिखाया, जो उन्होंने समुद्रोल्लङ्घनके समय धारण किया था। वे अमित तेजस्वी हनुमानजी वृक्षोंसहित समूचे कदलीवनको आच्छादित करते हुए गन्धमादन पर्वतकी ऊँचाईको भी लाँघकर वहाँ खड़े हो गये।

'उनका वह उन्नत विशाल शरीर दूसरे पर्वतके समान प्रतीत होता था। लाल आँखों, तीखी दाढ़ों और टेढ़ी भौंहोंसे युक्त उनका मुख था। हनुमानजी तेजमें सूर्यके समान दिखायी देते थे। उनका शरीर सुवर्णमय मेरुपर्वतके समान था और उनकी प्रभासे सारा आकाश-मण्डल प्रज्वलित-सा जान पड़ता था।'*

अपने बड़े भाई हनुमानजीके उस विराट् रूपको देखकर भीमसेनके आश्चर्यकी सीमा न रही। उन्होंने अपनी आँखें बंद कर लीं। विन्ध्यगिरिके समान हनुमानजीके उस विशाल स्वरूपको देखकर उनके रोंगटे खड़े हो गये। तब हाथ जोड़कर भीमसेनने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा—'अद्भुत सामर्थ्य-सम्पन्न हनुमानजी! मैंने आपका वह भयानक रूप देख लिया। अब आप कृपापूर्वक अपने मैनाक पर्वतके समान अपरिमित और दुराधर्षरूपको समेट लीजिये। मैं आपकी ओर देख भी नहीं सकता, किंतु मैं सोच रहा हूँ कि आप-जैसे वीरपुंगवके रहते हुए एक तुच्छ असुरका संहार करनेके लिये स्वयं भगवान् श्रीरामको युद्ध क्यों करना पड़ा?'

हनुमानजीने अपने भाई भीमसेनको मधुर शब्दोंमें समझाया—'भाई भीमसेन! निश्चय ही मैं अकेले रावण क्या, समस्त राक्षसकुलका सर्वनाश करनेमें समर्थ था, किंतु वैसा करनेसे श्रीरघुनाथजीकी कीर्तिका विस्तार कैसे होता? उनका गुण गा-गाकर मनुष्य अपना उद्धार कैसे कर पाते?'

इतना कहकर हनुमानजीने पाण्डुनन्दनको सौगन्धिक वनका मार्ग बताते हुए उन्हें चारों वर्णोंके धर्मोंका भी उपदेश दिया और फिर अपने विशाल शरीरको समेटकर भाई भीमसेनको हृदयसे लगा लिया। रुद्रावतार हनुमानजीके स्पर्शसे भीमसेनकी सारी थकान दूर हो गयी। उन्होंने अपने शरीरमें अद्भुत शक्तिका अनुभव किया!

उसी समय हनुमानजीने अत्यन्त प्रेमपूर्वक भीमसेनसे

---

* समुच्छ्रितमहाकायो द्वितीय इव पर्वतः। ताम्रेक्षणस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भृकुटीकुटिलाननः॥

× × ×

तमर्कमिव तेजोभिः सौवर्णमिव पर्वतम्॥ प्रदीप्तमिव चाकाशं.......................। (महा० वन० १५०।५, ७)

कहा—'भैया भीमसेन! मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होना चाहिये। तुम कहो तो मैं दुर्योधनको उसके भाइयोंसहित मार डालूँ, या तुम्हारी इच्छा हो तो मैं उसे बाँधकर तुम्हारे चरणोंमें डाल दूँ अथवा विशाल पर्वत पटककर उसका सम्पूर्ण नगर ही नष्ट कर दूँ। तुम मुझसे कोई वर माँगो।'

अपने परमादरणीय भाईकी बात सुनकर वायुनन्दन भीमसेनने अत्यन्त प्रसन्न होकर उत्तर दिया—'वानरराज! आपकी कृपादृष्टि ही मुझे अभीष्ट है। आपकी दयासे शत्रु पराजित होकर रहेगा।'

'तुम मेरे भाई हो, इस कारण मैं तुम्हारा कुछ-न-कुछ प्रिय अवश्य करूँगा।' अत्यन्त सद्‌भावके कारण हनुमानजीने वचन दिया—'महाबली वीर ! जब तुम वाण और शक्तिके आघातसे व्याकुल हुई शत्रुओंकी सेनामें घुसकर सिंहनाद करोगे, उस समय मैं अपनी गर्जनासे तुम्हारे उस सिंहनादको और बढ़ा दूँगा। उसके सिवा अर्जुनकी ध्वजापर बैठकर मैं ऐसी भीषण गर्जना करूँगा, जो शत्रुओंके प्राणोंको हरनेवाली होगी, जिससे तुमलोग उन्हें सुगमतासे मार सकोगे।'*

फिर हनुमानजीने अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहा—'भाई भीमसेन! अब तुम सुखपूर्वक जाओ। कभी-कभी मेरा भी स्मरण कर लेना, किंतु मेरे यहाँ रहनेकी बात प्रकट मत करना।'

इतना कहकर हनुमानजी वहीं अन्तर्धान हो गये।

गर्व-हरणमें निमित्त

जिस प्रकार भगवद्भक्तोंके तन, मन, प्राण और जीवन-सर्वस्व श्रीभगवान् ही होते हैं, भगवान्‌के अतिरिक्त उन्हें कहीं कुछ भी प्रिय नहीं लगता, वे अहर्निश अपने प्रभुके ही स्मरण, चिन्तन एवं भजनमें लगे रहते हैं, उसी प्रकार भक्तवत्सल श्रीभगवान् भी अपने भक्तोंका शिशु-सरीखे निरन्तर ध्यान रखते हैं। भक्तका सुख-दु:ख प्रभु अपना ही समझते हैं। वे दयामय सर्वेश्वर अपने भक्तको प्रत्येक रीतिसे अन्तर्बाह्य शुद्ध और पवित्र रखते हैं। समस्त दु:खोंका मूल अभिमान होता है। अतएव भक्तके हृदयमें तनिक भी अभिमानका अङ्कुर उत्पन्न हुआ कि करुणावरुणालय प्रभु उसे शीघ्र मिटाकर भक्तका अन्त:करण निर्मल बना देते हैं।† उस समय भक्तको कुछ कष्टकी भी अनुभूति होती है; किंतु वह पीछे श्रीभगवान्‌की अद्भुत करुणा एवं प्रीतिका दर्शन कर आनन्द-विभोर हो जाता है।

भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके नाम और रूपमें ही अन्तर है, वस्तुत: वे दो नहीं, एक ही हैं। इसी प्रकार जनकनन्दिनी सीता और वृषभानुदुलारी राधा भी एक ही हैं। इनमें कोई भेद नहीं। ज्ञानमूर्ति पवननन्दन इस अभेद-तत्त्वसे अपरिचित हों, यह बात नहीं, किंतु उन्हें तो अवधविहारी नवजलधर-श्याम धनुर्धर श्रीराम एवं जनकदुलारी ही प्रिय लगती हैं। वे निरन्तर उन्हींके ध्यानमें आनन्दमग्न रहते हैं। प्रभु भी यह जानते हैं और उनके साथ वैसी ही लीला करके उन्हें सुख देते रहते हैं। वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित हुए थे। उस समय उन्होंने अपने भक्तोंके गर्वापहरणके लिये पवनकुमारको निमित्त बनाया था।

द्वारकाधीश श्रीकृष्णने अपनी प्राणप्रिया सत्यभामाकी प्रसन्नताके लिये स्वर्गसे पारिजात लाकर उनके आँगनमें लगा दिया। बस, सत्यभामाजीके मनमें अभिमानका अङ्कुर उत्पन्न हो गया कि मैं ही सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी और अपने स्वामीको सर्वाधिक प्रिय हूँ। इतना ही नहीं, एक दिन उन्होंने श्यामसुन्दरसे कह भी दिया—'क्या जनकदुलारी मुझसे अधिक सुन्दरी थीं, जो आप (श्रीरामावतारमें) उनके लिये वन-वन भटकते फिरे?' श्रीभगवान्‌ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे चुप हो गये।

परम तेजस्वी चक्रने सुरेन्द्रके वज्रको भी पराजित कर दिया था। महामुनि दुर्वासा उनके भयसे सर्वत्र भागते फिरे। लोकालोक पर्वतका गहन तम भी उन्होंने नष्ट कर दिया था। थोड़ी-सी कठिनाई उपस्थित होते ही श्रीभगवान् उनका स्मरण करते हैं, इस कारण उनके मनमें भी अपने अमित बलशाली एवं अतुल पराक्रमी होनेका अभिमान हो गया था।

---

* चमूं विगाह्य शत्रूणां शरशक्तिसमाकुलाम्। यदा सिंहरवं वीर करिष्यसि महाबल॥
तदाहं बृंहयिष्यामि स्वरवेण रवं तव। विजयस्य ध्वजस्थश्च नादान् मोक्ष्यामि दारुणान्॥
शत्रूणां ये प्राणहरा: सुखं येन हनिष्यथ। (महा० वन० १५१। १६—१८)

† संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥
ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी॥ (मानस ७। ७३। ३-४)

इसी प्रकार प्रभुके निजी वाहन गरुड़को भी अपनी शक्ति एवं वेगसे उड़नेका अभिमान हो गया था। उन्होंने एकाकी सुर-समुदायको परास्त कर अमृत-हरण किया था। सुरेन्द्रका वज्र भी उनका कुछ नहीं कर सका। देवताओं एवं दानवोंके युद्धमें उन्होंने अपनी चोंच, नखों एवं पंखोंके आघातसे अमितपराक्रमी राक्षसोंको मार डाला था। युद्धमें श्रीभगवान्‌को संतुष्ट कर उन्होंने प्रभुकी ध्वजामें स्थान प्राप्त कर लिया। वे श्रीभगवान्‌के आसन, वाहन, सेवक, सखा, ध्वजा और व्यजन आदि सब कुछ हो गये। अपने इन कार्योंकी स्मृतिसे एक दिन उनके मनमें भी अपने अप्रतिभट होनेका अहंकार उत्पन्न हो गया था।

अपने इन तीनों प्रीति-भाजनोंका गर्व दूर करनेके लिये लीलावपु प्रभुने हनुमानजीका स्मरण किया। भगवान्‌के मनमें संकल्प उदित होते ही हनुमानजी तत्काल द्वारका पहुँच गये। उन्होंने राजकीय उद्यानमें प्रवेश किया। प्रहरियोंने उन्हें रोकना चाहा, किंतु भूधराकार आञ्जनेयके आग्रेय नेत्रोंसे भयभीत होकर वे दुबक गये।

हनुमानजी उछलकर एक वृक्षपर चढ़ गये। वे उसके मधुर फल कुछ खाते, कुछ कुतरते, कुछ वैसे ही तोड़कर फेंक देते। फिर वे कच्चे फलोंको डालियोंसहित तोड़कर फेंकने लगे। इस प्रकार वे एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर कूदते, उसके फलों एवं डालियोंको तोड़-तोड़कर फेंकते हुए वाटिका ध्वंस करने लगे। कुछ ही देरमें समूची वाटिका तहस-नहस हो गयी। यह समाचार द्वारकाधीशके समीप पहुँचा।

वैनतेयको बुलाकर श्रीभगवान्‌ने कहा—'विनतानन्दन! कोई बलवान् वानर द्वारावतीके राजोद्यानमें बलात् प्रवेश कर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर रहा है। तुम सशस्त्र सैन्य लेकर जाओ और उसे पकड़कर ले आओ।'

गरुड़को जैसे आघात लग गया। एक क्षुद्र वानरको पकड़नेके लिये प्रभु सेना साथ ले जानेके लिये कह रहे हैं? उन्होंने कह भी दिया—'प्रभो! एक बंदरके लिये तो मैं ही पर्याप्त हूँ, सेनाकी क्या आवश्यकता?'

'जैसे भी हो, उस वानरको पकड़ लाओ।' मुस्कुराते हुए प्रभुने आदेश दिया।

परम शक्तिशाली गरुड़ राजोद्यानमें पहुँचे। उन्होंने देखा, हनुमानजी उनकी ओर पीठ किये कोई फल कुतर रहे हैं।

गरुड़जीने क्रोधपूर्वक कहा—'अरे धृष्ट वानर! तू कौन है? तूने यह वाटिका क्यों नष्ट कर डाली?'

हनुमानजीने उपेक्षासे उत्तर दिया—'तुम तो देख ही रहे हो कि मैं वानर हूँ और मैंने कोई नवीन काम तो किया नहीं। वानर जो कुछ करते हैं, वही मैंने भी किया है।'

'अच्छा, तो तू चल महाराजके पास!' गरुड़जीने अपने बलके अभिमानसे कहा।

'मैं किसी महाराजके पास क्यों जाऊँ?' हनुमानजीके इतना कहते ही विष्णुवाहनने कुपित होकर कहा—'तू सीधे चल, नहीं तो सुन ले, मेरा नाम गरुड़ है।'

'अरे! चलो, तुम्हारी तरह कितनी चिड़ियाँ देखी हैं मैंने। तुममें कुछ बल हो तो वह भी दिखा दो।' हनुमानजीके यों कहते ही बलाभिमानी वीर गरुड़ क्रोधाग्निमें जल उठे। उन्होंने हनुमानजीपर आक्रमण कर दिया। हनुमानजी पहले तो उनसे नन्हीं-नन्हीं चिड़ियोंकी तरह क्रीड़ा करते रहे, पर गरुड़जीका दुराग्रह देखकर उन्होंने उन्हें अपनी पूँछमें लपेट लिया। गरुड़जी छटपटाने लगे। वे अपनी पूँछ थोड़ी और कस देते तो गरुड़जी सहन भी नहीं कर पाते। विनम्रतापूर्वक उन्होंने कहा—'मुझे द्वारकाधीश श्रीकृष्णचन्द्रजीने भेजा है। मैं तुम्हें बुलाने आया हूँ।'

हनुमानजीने अपनी पूँछ ढीली कर उत्तर दिया—'मैं तो कोसलेश श्रीरामचन्द्रजीका भक्त हूँ। श्रीकृष्णचन्द्रके पास क्यों जाऊँ?'

'अरे! श्रीकृष्णचन्द्र और श्रीरामचन्द्र दो तो हैं नहीं। ये दोनों एक ही हैं। अतएव तुम्हें उनकी सेवामें उपस्थित होना ही चाहिये।' गरुड़जीका बलाभिमान दूर नहीं हुआ था। उन्होंने सोचा—'यदि मैं इस वानरकी पूँछकी पकड़में न आता तो यह मेरा कुछ भी नहीं कर सकता था।'

'तुम्हारा यह कथन सर्वथा सत्य है कि श्रीकृष्ण और श्रीराम एक ही हैं, किंतु मेरा मन तो धनुर्धर श्रीरामका चरणानुरागी है। इस कारण मैं अन्य किसीकी सेवामें नहीं जा सकता।' हनुमानजीने स्पष्ट उत्तर दे दिया।

गरुड़जी अत्यन्त क्रुद्ध हुए। बोले—'श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवामें तो तुम्हें चलना ही पड़ेगा।'

'देखो भैया गरुड़! मुझसे झगड़ो मत। मुझे शान्तिपूर्वक फल खाने दो। तुम यहाँसे चले जाओ।' हनुमानजीका उत्तर सुनते ही गरुड़जी उन्हें पकड़नेका प्रयत्न करने लगे।

'तुम नहीं मानोगे।' हनुमानजीने प्रभुके वाहनपर तीव्र आघात करना उचित नहीं समझा। उन्होंने गरुड़जीको

पकड़कर धीरेसे समुद्रकी ओर फेंक दिया और स्वयं मलयगिरिपर चले गये।

गरुड़ सीधे मुँहके बल समुद्रमें गिरे। वे क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गये। समुद्रका कुछ पानी भी पी गये। मूर्च्छानिवृत्तिके उपरान्त उन्हें दिग्भ्रम भी हो गया। उन्होंने मन-ही-मन प्रभुका स्मरण किया, तब उनकी बुद्धि स्थिर हो सकी।

भीगे पंख लज्जित गरुड़ प्रभुके समीप पहुँचे। व्यंग्यपूर्वक श्रीकृष्णने पूछा—'समुद्रमें स्नान करके आ रहे हैं क्या, गरुड़जी?'

आर्त होकर गरुड़जी प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े। बोले— 'प्रभो! वह वानर असाधारण है। उसीने मुझे पकड़कर समुद्रमें फेंक दिया था।' इतना कहते हुए भी उनके मनमें अपने वेगसे उड़नेका अहंकार अवशिष्ट ही था।

भगवान् मन-ही-मन मुस्कुरा उठे। उन्होंने कहा— 'वे श्रीरामके अनन्य भक्त हनुमानजी हैं। वे मलयगिरिपर चले गये हैं। अब तुम उनसे जाकर कहो कि 'तुम्हें श्रीरामचन्द्रजी बुला रहे हैं।'

गरुड़ने श्रीभगवान्के चरणोंमें मस्तक रखा और मलयगिरिके लिये प्रस्थित हुए। श्रीभगवान्ने सत्यभामाजीसे कहा—'तुम सीताका रूप धारणकर मेरे समीप बैठो; क्योंकि हनुमानको श्रीसीतारामका ही रूप प्रिय है।'

फिर प्रभुने चक्रको बुलाकर आदेश दिया—'तुम द्वारपर अत्यन्त सावधान रहना। मेरी अनुमतिके बिना कोई राजसदनमें प्रविष्ट न होने पाये।'

सुदर्शनके चले जानेपर प्रभु स्वयं धनुर्वाणधर श्रीरामरूपमें सिंहासनासीन हो गये।

गरुड़जी अत्यन्त वेगपूर्वक उड़े, किंतु वे हनुमानजीके समीप जानेमें मन-ही-मन डर रहे थे। प्रभुकी आज्ञासे वे मलयगिरिपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने हनुमानजीसे विनयपूर्वक कहा—'द्वारकामें तुम्हें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी बुला रहे हैं।'

'मेरे करुणामय प्रभुने मुझे बुलाया है, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।' हनुमानजीने हर्षपूर्वक कहा— 'तुम चलो, मैं आता हूँ।'

वेगशाली वैनतेयको मारुतात्मजका उत्तर प्रिय नहीं लगा। 'यह शाखामृग मुझसे बलवान् अवश्य है, किंतु गतिमें मुझ खेचरसे इसकी क्या तुलना? पता नहीं, यह द्वारावती कबतक पहुँचे?' किंतु भयवश उन्होंने हनुमानजीको कोई उत्तर नहीं दिया और प्रभुके सम्मुख अपनी तीव्रतम गतिके प्रदर्शनार्थ वेगपूर्वक उड़ चले।

पवनात्मज द्वारका पहुँचे। वे राजसदनमें प्रविष्ट होना ही चाहते थे कि सुदर्शनने उन्हें रोक दिया।

प्राणनाथके दर्शनमें व्यर्थ विलम्ब होते देख हनुमानजीने सुदर्शनको पकड़कर अपने मुखमें रख लिया और भीतर चले गये। वे भगवान् श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़े। फिर हाथ जोड़े प्रभुके मुखारविन्दकी ओर अपलक दृष्टिसे देखते हुए उन्होंने विनयपूर्वक पूछा— 'नाथ! माताजी कहाँ हैं ? आज आप किसी दासीको गौरव प्रदान कर रहे हैं?'

सत्यभामाजी लज्जित हो गयीं। उनका सौन्दर्याभिमान नष्ट हो गया। उसी समय अत्यन्त वेगपूर्वक उड़नेके कारण हाँफते-काँपते गरुड़जी प्रभुके समीप पहुँचे तो वहाँ पहलेसे ही हनुमानजीको विद्यमान देखकर उनका मुख नीचा हो गया। उनका वेगपूर्वक उड़नेका अभिमान भी गल गया।

मुस्कुराते हुए भगवान् श्रीराम-रूपधारी द्वारकेशने हनुमानजीसे पूछा—'तुम्हें राज-सदनमें प्रविष्ट होते समय किसीने रोका तो नहीं?'

हनुमानजीने विनयपूर्वक उत्तर दिया—'प्रभो! द्वारपर सहस्रार मुझे आपके चरणोंमें उपस्थित होनेमें व्यवधान उत्पन्न कर रहा था। व्यर्थ विलम्ब होते देखकर मैंने उसे अपने मुँहमें रख लिया।'

हनुमानजीने चक्रको मुँहसे निकालकर प्रभुके सामने रख दिया। चक्र श्रीहत हो गये थे।

तीनोंका गर्व चूर्णकर हनुमानजीने अपने परम प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी अनुमतिसे मलयाचलके लिये प्रस्थित हो गये।

इसी प्रकार एक बार हनुमानजीने महाधनुर्धर अर्जुनका भी गर्व-हरण किया था। वह कथा अत्यन्त संक्षेपमें इस प्रकार है—

बात है द्वापरके अन्तकी। एक दिन अर्जुन एकाकी ही सारथिके स्थानपर स्वयं बैठकर अपना रथ हाँकते अरण्यमें घूमते हुए दक्षिण दिशामें चले गये। मध्याह्नकाल हो जानेपर उन्होंने रामेश्वरके धनुष्कोटि-तीर्थमें स्नान किया और फिर कुछ गर्वपूर्वक इधर-उधर घूमने लगे। उसी समय उन्होंने एक पर्वतके ऊपर सामान्य वानरके रूपमें महावीर हनुमानजीको देखा। उनका शरीर सुन्दर

पीले रंगके रोएँसे सुशोभित था और वे राम-नामका जप कर रहे थे।*

उन्हें देखकर अर्जुनने पूछा—'अरे वानर! तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है?'

हँसते हुए हनुमानजीने उत्तर दिया—'मैं समुद्रपर शिलाओंका सौ योजन विस्तृत सेतु निर्माण करानेवाले प्रभु श्रीरामका सेवक हनुमान हूँ।'

अर्जुनने गर्वमें भरकर कहा—'समुद्रपर सेतु तो कोई भी महाधनुर्धर अपने वाणोंसे बना लेता। श्रीरामने व्यर्थ ही प्रयास किया।'

हनुमानजीने तुरंत कहा—'वाणका सेतु हमारे-जैसे वानरोंका भार नहीं सह सकता था, इसी कारण प्रभुने शर-सेतु-निर्माणका विचार नहीं किया।'

पाण्डुनन्दन अर्जुन बोले—'यदि वानर-भालुओंके आवागमनसे ही सेतु टूट जाय, तब तो धनुर्विद्या ही कैसी? तुम अभी मेरी धनुर्विद्याका चमत्कार देखो। मैं अपने वाणोंसे समुद्रपर शत योजन लंबा सेतु निर्माण कर देता हूँ। तुम उसपर आनन्दपूर्वक उछल-कूद करो।'

हनुमानजी हँस पड़े। बोले—'यदि तुम्हारा बनाया हुआ शर-सेतु मेरे अँगूठेके भारसे ही टूट जाय, तब तुम क्या करोगे?'

गर्वपूरित अर्जुन प्रतिज्ञा कर बैठे—'यदि तुम्हारे भारसे सेतु टूट गया तो मैं जीवित ही चिताकी अग्निमें जल मरूँगा। अब तुम भी कोई प्रण करो।'

हनुमानजीने कहा—'यदि तुम्हारे वाणोंसे निर्मित सेतु मेरे अङ्गुष्ठ-चापसे नहीं टूटा तो मैं जीवनभर तुम्हारे रथकी ध्वजाके समीप बैठकर तुम्हारी सहायता करता रहूँगा।'

'अच्छी बात है।' कहते हुए पार्थने अपना विशाल गाण्डीव धनुष हाथमें लिया और कुछ ही क्षणोंमें महान् नीलोदधिके ऊपर अपने वाणोंसे सौ योजन विस्तृत सुदृढ़ सेतु तैयार कर दिया। तब उन्होंने महावीर हनुमानसे कहा—'वानरराज! अब तुम इच्छानुसार इसपर उछल-कूदकर देख लो।'

हनुमानजीने हँसते हुए उस सेतुपर अपना अँगूठा रखा ही था कि वह विस्तृत शर-सेतु तड़तड़ाकर टूटा और समुद्रमें डूब गया।

महाधनुर्धरका मुख मलिन हो गया, किंतु हनुमानजीपर गन्धर्वों और देवताओंका समुदाय स्वर्गीय सुमनोंकी वृष्टि करने लगा।

दु:खी और उदास अर्जुनने वहीं समुद्र-तटपर चिता तैयार की और हनुमानजीके मना करनेपर भी वे उसमें कूदनेके लिये तैयार हो गये।

उसी समय वहाँ एक ब्रह्मचारीने आकर अर्जुनसे चितामें कूदनेका कारण पूछा। अर्जुनने उन्हें शर-सेतुके सम्बन्धमें अपनी प्रतिज्ञाके साथ पूरी घटना सुना दी।

ब्रह्मचारी बोले—'प्रतिज्ञा-पालन तो अनिवार्य ही है, किंतु साक्षीके बिना तुमलोगोंकी बाजीका कोई अर्थ नहीं। अब मैं यहाँ साक्षीके रूपमें उपस्थित हूँ। तुम अपने वाणोंसे सेतु निर्माण करो और ये कपिराज उसे अपने अङ्गुष्ठ-भारसे डुबा दें, तब मैं उचित निर्णय दूँगा।'

'ठीक है'—दोनोंने कहा और अर्जुनने अपने वाणोंसे तुरंत शत योजन विस्तृत सेतु निर्माण कर दिया। हनुमानजीने उसे अँगूठेसे दबाया,किंतु सेतुका कुछ नहीं बिगड़ा। हनुमानजी चकित हो गये। उन्होंने अपने पैरों, हाथों और घुटनोंके बलसे भी उसे दबाया, पर वह सुदृढ़ सेतु तिलभर भी टस-से-मस नहीं हुआ।

हनुमानजी सोचने लगे—'जो शर-सेतु मेरे अङ्गुष्ठका सामान्य भार भी नहीं सह सका था, वही अब मेरा सम्पूर्ण भार सह ले रहा है। निश्चय ही इसमें कोई-न-कोई हेतु है।' भगवान् श्रीरामके अनन्य सेवक ज्ञानिनामग्रगण्य हनुमानजीने अर्जुनसे कहा—'पाण्डुनन्दन! इन ब्रह्मचारीजीकी सहायतासे मैं आपसे पराजित हो गया। ब्रह्मचारीके वेषमें स्वयं श्रीभगवान्ने ही पधारकर तुम्हारी रक्षा की है। इन्होंने सेतुके नीचे अपना चक्र लगा दिया है। त्रेतामें इसी वेषमें मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्रजीने द्वापरके अन्तमें मुझे श्रीकृष्णके रूपमें दर्शन देनेका वरदान दिया था। आपके शर-सेतुके मिससे इन्होंने अपना वरदान भी पूरा कर दिया।'

सहसा वटुके स्थानपर वंशीविभूषित पीताम्बरधारी नवनीरदवपु श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होने लगा। हनुमानजीने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और मयूरमुकुटीने उन्हें आलिङ्गन-बद्ध कर लिया।

अर्जुन चकित होकर अपने रक्षक प्राणप्रिय सखाकी लीला देख रहे थे। उनके सम्मुख ही श्रीकृष्णके आज्ञानुसार चक्र शर-सेतुसे बाहर निकलकर अपने स्थानके लिये चला गया और अर्जुनके द्वारा निर्मित

* ददर्श मारुतिं वीर: सामान्यकपिरूपिणम्। राम रामेति जल्पन्तं पिङ्गलोमधरं शुभम्॥ (आनन्दरा०, मनो० का० १८। ७)

सेतु विशाल जलधिकी तरंगोंमें विलीन हो गया।

अर्जुनका गर्व नष्ट हो गया और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार हनुमानजी अर्जुनके रथपर ध्वजाके समीप रहने लगे। इसी कारण अर्जुन 'कपिध्वज' के नामसे प्रसिद्ध हुए।

महाभारतके युद्धमें महाधनुर्धर अर्जुनके वाणोंके आघातसे विपक्षी वीरोंके रथ अत्यधिक दूर जा गिरते थे, किंतु अर्जुनके रथको पीछे फेंकनेकी सामर्थ्य किसी योद्धाके वाणमें नहीं थी। एक बार वीरवर कर्णके शराघातसे अर्जुनका रथ थोड़ा ही पीछे खिसका था कि श्रीकृष्ण बोल उठे—'वाह ! निश्चय ही कर्ण शूर-वीर और महाधनुर्धर है।'

अर्जुन खिन्न हो गये। उन्होंने मधुसूदनसे पूछ भी लिया—'प्रभो! मेरे वाणके आघातसे शत्रुओंके रथ कितनी दूर चले जाते हैं, तब तो आप कुछ नहीं बोलते; किंतु कर्णके द्वारा मेरा रथ तनिक-सा पीछे सरका तो आप उसकी प्रशंसा करने लगे।'

जनार्दनने तुरंत उत्तर दिया—'पार्थ ! तुम्हारे रथपर महावीर हनुमान बैठे हैं। उनके रहते हुए भी तुम्हारे रथका पीछे हट जाना कर्णकी वीरताका ही द्योतक है। यदि आञ्जनेय आसीन न होते तो तुम्हारा रथ कभीका भस्म हो गया होता।'

भक्तवर हनुमान और शनि

भक्तवर हनुमान श्रीराम-कथाके अनन्य प्रेमी हैं। परम प्रभु श्रीरामकी मधुर लीला-कथा श्रवण करते ही उनका शरीर पुलकित हो जाता है, उनके नेत्र प्रेमाश्रुसे भर जाते हैं और उनकी वाणी गद्‌गद हो जाती है।* उन्हें अलौकिक आनन्दकी उपलब्धि होती है, इस कारण जहाँ भी श्रीराम-कथा होती है, श्रीराम-चरण-चञ्चरीक हनुमानजी वहाँ उपस्थित रहते हैं और जब अपने प्राणाराध्यकी कथामृत-सुधाके पानका अवसर नहीं रहता, तब वे अपने प्रभुके ध्यानमें तल्लीन हो जाते हैं।

एक बारकी बात है। दिनान्त समीप था। सूर्यदेव अस्ताचलके समीप पहुँच चुके थे। शीतल-मन्द समीर बह रहा था। भक्तराज हनुमान राम-सेतुके समीप ध्यानमें अपने परमप्रभु श्रीरामकी भुवनमोहन झाँकी करते हुए आनन्द-विह्वल थे। उनके रोम-रोम पुलकित थे। ध्यानावस्थित आञ्जनेयको बाह्य जगत्‌की स्मृति भी न थी।

उसी समय सूर्य-पुत्र शनि समुद्र-तटपर टहल रहे थे। उन्हें अपनी शक्ति एवं पराक्रमका अत्यधिक अहंकार था। वे मन-ही-मन सोच रहे थे—'मुझमें अतुलनीय शक्ति है। सृष्टिमें मेरी समता करनेवाला कोई नहीं है। समताकी बात तो दूर, मेरे आगमनके संवादसे बड़े-बड़े रणधीर एवं पराक्रमशील मनुष्य ही नहीं, देव-दैत्यतक भी काँप उठते हैं, व्याकुल होने लगते हैं। मैं क्या करूँ, किसके पास जाऊँ, जहाँ दो हाथ कर सकूँ? मेरी शक्तिका कोई उपयोग नहीं हो रहा है।'

इस प्रकार विचार करते हुए शनिकी दृष्टि ध्यानमग्न श्रीरामभक्त हनुमानपर पड़ी। उन्होंने वज्राङ्ग महावीरको पराजित करनेका निश्चय किया। युद्धका निश्चय कर शनि आञ्जनेयके समीप पहुँचे। उस समय सूर्यदेवकी तीक्ष्णतम किरणोंमें शनिका रंग अत्यधिक काला हो गया था। भीषणतम आकृति थी उनकी।

पवनकुमारके समीप पहुँचकर अतिशय उद्दण्डताका परिचय देते हुए शनिने अत्यन्त कर्कश स्वरमें कहा—'बंदर! मैं प्रख्यात शक्तिशाली शनि तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हूँ और तुमसे युद्ध करना चाहता हूँ। तुम पाखण्ड त्यागकर खड़े हो जाओ।'

तिरस्कार करनेवाली अत्यन्त कटुवाणी सुनते ही भक्तराज हनुमानने अपने नेत्र खोले और बड़ी ही शालीनता एवं शान्तिसे पूछा—'महाराज! आप कौन हैं और यहाँ पधारनेका आपका उद्देश्य क्या है?'

शनिने अहंकारपूर्वक उत्तर दिया—'मैं परम तेजस्वी सूर्यका परम पराक्रमी पुत्र शनि हूँ। जगत् मेरा नाम सुनते ही काँप उठता है। मैंने तुम्हारे बल-पौरुषकी कितनी गाथाएँ सुनी हैं। इसलिये मैं तुम्हारी शक्तिकी परीक्षा करना चाहता हूँ। सावधान हो जाओ, मैं तुम्हारी राशिपर आ रहा हूँ।'

अञ्जनानन्दनने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहा—'शनिदेव! मैं वृद्ध हो गया हूँ और अपने प्रभुका ध्यान कर रहा हूँ। इसमें व्यवधान मत डालिये। कृपापूर्वक अन्यत्र चले जाइये।'

* जयति रामायण-श्रवण-संजात-रोमांच, लोचन सजल, शिथिल वाणी। (वि० प० २९। ५)

मदमत्त शनिने सगर्व कहा—'मैं कहीं जाकर लौटना नहीं जानता और जहाँ जाता हूँ, वहाँ अपना प्राबल्य और प्राधान्य तो स्थापित कर ही देता हूँ।'

कपिश्रेष्ठने शनिदेवसे बार-बार प्रार्थना की—'महात्मन्! मैं वृद्ध हो गया हूँ। युद्ध करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। मुझे अपने भगवान् श्रीरामका स्मरण करने दीजिये। आप यहाँसे जाकर किसी और वीरको ढूँढ़ लीजिये। मेरे भजन-ध्यानमें विघ्न उपस्थित मत कीजिये।'

'कायरता तुम्हें शोभा नहीं देती।' अत्यन्त उद्धत शनिने मल्लविद्याके परमाराध्य वज्राङ्ग हनुमानकी अवमाननाके साथ व्यंग्यपूर्वक तीक्ष्ण स्वरमें कहा—'तुम्हारी स्थिति देखकर मेरे मनमें करुणाका संचार हो रहा है, किंतु मैं तुमसे युद्ध अवश्य करूँगा।'

इतना ही नहीं, शनिने दुष्टग्रहनिहन्ता महावीरका हाथ पकड़ लिया और उन्हें युद्धके लिये ललकारने लगे। हनुमानने झटककर अपना हाथ छुड़ा लिया। युद्धलोलुप शनि पुनः भक्तवर हनुमानका हाथ पकड़कर उन्हें युद्धके लिये खींचने लगे।

'आप नहीं मानेंगे।' धीरेसे कहते हुए पिशाचग्रहघातक कपिवरने अपनी पूँछ बढ़ाकर शनिको उसमें लपेटना प्रारम्भ किया। कुछ ही क्षणोंमें अविनीत सूर्य-पुत्र क्रोधसंरक्तलोचन समीरात्मजकी सुदृढ़ पुच्छमें आकण्ठ आबद्ध हो गये। उनका अहंकार, उनकी शक्ति एवं उनका पराक्रम व्यर्थ सिद्ध हुआ। वे सर्वथा अवश, असहाय और निरुपाय होकर दृढ़तम बन्धनकी पीड़ासे छटपटा रहे थे।

'अब राम-सेतुकी परिक्रमाका समय हो गया।' अञ्जनानन्दन उठे और दौड़ते हुए सेतुकी प्रदक्षिणा करने लगे। शनिदेवकी सम्पूर्ण शक्तिसे भी उनका बन्धन शिथिल न हो सका। भक्तराज हनुमानके दौड़नेसे उनकी विशाल पूँछ वानर-भालुओंद्वारा रखे गये शिलाखण्डोंपर गिरती जा रही थी। वीरवर हनुमान दौड़ते हुए जान-बूझकर भी अपनी पूँछ शिलाखण्डोंपर पटक देते थे।

शनिकी बड़ी अद्भुत एवं दयनीय दशा थी। शिलाखण्डोंपर पटके जानेसे उनका शरीर रक्तसे लथपथ हो गया। उनकी पीड़ाकी सीमा नहीं थी और उग्रवेग हनुमानकी परिक्रमामें कहीं विराम नहीं दीख रहा था। तब शनि अत्यन्त कातर स्वरमें प्रार्थना करने लगे—'करुणामय भक्तराज! मुझपर कृपा कीजिये। अपनी उद्दण्डताका दण्ड मैं पा गया। आप मुझे मुक्त कीजिये। मेरा प्राण छोड़ दीजिये।'

दयामूर्ति हनुमान खड़े हुए। शनिका अङ्ग-प्रत्यङ्ग लहूलुहान हो गया था। असह्य पीड़ा हो रही थी उनकी रग-रगमें। विनीतात्मा समीरात्मजने शनिसे कहा—'यदि तुम मेरे भक्तकी राशिपर कभी न जानेका वचन दो तो मैं तुम्हें मुक्त कर सकता हूँ और यदि तुमने ऐसा किया तो मैं तुम्हें कठोरतम दण्ड प्रदान करूँगा।'

'सुरवन्दित वीरवर! निश्चय ही मैं आपके भक्तकी राशिपर कभी नहीं जाऊँगा।' पीड़ासे छटपटाते हुए शनिने अत्यन्त आतुरतासे प्रार्थना की—'आप कृपापूर्वक मुझे शीघ्र बन्धन-मुक्त कर दीजिये।'

शरणागतवत्सल भक्तप्रवर हनुमानने शनिको छोड़ दिया। शनिने अपना शरीर सहलाते हुए गर्वापहारी मारुतात्मजके चरणोंमें सादर प्रणाम किया और वे चोटकी असह्य पीड़ासे व्याकुल होकर अपनी देहपर लगानेके लिये तेल माँगने लगे। उन्हें जो तेल प्रदान करता, उसे वे संतुष्ट होकर आशिष देते। कहते हैं, इसी कारण अब भी शनिदेवको तेल चढ़ाया जाता है।*

श्रेष्ठ संगीतज्ञ और महान् त्यागी

आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचारी हनुमानजी महान् संगीतज्ञ और गायक भी हैं। इनके मधुर गायनको सुनकर पशु, पक्षी, स्थावर और जङ्गम सभी मुग्ध हो जाते हैं। एक बारकी बात है। एक अतिशय सुन्दर स्वच्छ जलाशयके समीप महान् संगीत-सम्मेलनका आयोजन हुआ। देवता, ऋषि और दानव—सभी संगीत-प्रेमी वहाँ एकत्र थे। भगवान् पार्वतीवल्लभ एवं देवर्षि नारद आदि गायन कर रहे थे और अन्य देव, ऋषि तथा दैत्य भी उन्हें योग-दान दे रहे थे। उसी समय पवनकुमार हनुमानजीने अत्यन्त मधुर स्वरमें गाना प्रारम्भ किया। हनुमानजीने संगीत क्या आरम्भ किया, मानो अमृत-वृष्टि होने लगी। फिर तो अन्य गायकों

* मराठी 'आञ्जनेय' के आधारपर।

एवं वाद्यकोंके मुख म्लान हो गये। वे हनुमानजीकी स्वर-लहरीपर मुग्ध होकर स्वयं चुप हो गये और अत्यन्त शान्तिपूर्वक उस मधुरिम स्वर-लहरीमें झूम उठे। उनके तन, मन, प्राण ही नहीं, रोम-रोम हनुमानजीके सुधा-सदृश गीतके श्रवण करनेमें तल्लीन हो गये। हनुमानजीका मधुरिम स्वर गूँज रहा था।

म्लानमम्लानमभवत् कृशाः पुष्टास्तदाभवन्।
स्वां स्वां गीतिमतः सर्वे तिरस्कृत्यैव मूर्च्छिताः॥
तूष्णीम्भूतं समभवद्देवर्षिगणदानवम्।
एकः स हनुमान् गाता श्रोतारः सर्व एव ते॥

इन महामहिम हनुमानजीके जीवनमें त्याग-ही-त्याग भरा है। अपने आराध्य श्रीरघुनाथजीकी विशुद्ध प्रीति, उनकी लीला-कथाका श्रवण एवं उनके मङ्गलमय नाम-कीर्तनके अतिरिक्त इन्हें और कुछ अभीष्ट नहीं।

यश:कामनाका त्याग कितना कठिन होता है? स्त्री-पुत्र, घर-द्वार, अपार सम्पत्ति ही नहीं, यशके लिये प्राणका भी त्याग किया जा सकता है, किंतु उस यशका त्याग सहज नहीं।

गौराङ्ग महाप्रभु—नाम-संकीर्तनके प्राण चैतन्यदेवके मित्रने महाप्रभुकी कृति देखी तो वे दु:खी ही नहीं हुए, उनके नेत्रोंसे आँसू बह चले। बोले—'इस महान् ग्रन्थके सम्मुख मेरी न्यायबोधिनी सर्वथा नगण्य सिद्ध हो जायगी। इसे कोई नहीं पूछेगा।'

तत्क्षण महाप्रभुने अपना अनमोल ग्रन्थ गङ्गा मैयाके अङ्कमें विसर्जित कर दिया। उनका यह महान् त्याग आजतक उनके ग्रन्थसे भी अधिक उनकी उज्ज्वल कीर्तिको बढ़ा रहा है। किंतु इस महत्तम आदर्शकी स्थापना श्रीरघुनाथजीके अमलकमल-चरणानुरागी पवन-कुमारने युगोंपूर्व ही कर दी थी।

कथाश्रवणरूपा भक्तिके प्रथम एवं प्रधान आचार्य अञ्जनानन्दनको जब थोड़ा-सा भी अवकाश मिलता, तब वे समीपस्थ पर्वतपर चले जाते और वहाँके स्फटिक-तुल्य उज्ज्वल शिलाओंपर अपने परम प्रभुका स्मरण-चिन्तन करते हुए स्वान्त:सुखाय उनका चरित्र लिखते जाते। चरित्र पूरा हो गया। कहते हैं, हनुमानजीके आशीर्वाद एवं पद-पदपर उनके सहयोगसे श्रीतुलसीदासजीने लोकप्रिय रामचरितमानसकी रचना की थी, फिर स्वयं हनुमानजी-जैसे श्रीरघुनाथजीके ज्ञानमूर्ति सेवकके द्वारा तन्मयतापूर्वक लिखा गया अपने आराध्यका चरित्र किस कोटिका रहा होगा, सोचना भी सहज नहीं।

यह समाचार महर्षि वाल्मीकिजीको मिला। हनुमानजीके समीप पहुँचकर उन्होंने निवेदन किया—'आपके द्वारा रचित रामचरितको देखनेकी मेरी इच्छा है।'

संकोची हनुमानजी क्या उत्तर देते? वे महर्षिको अपने कंधेपर बैठाकर पर्वतपर पहुँचे। पवनकुमार एक ओर खड़े होकर हाथ जोड़े अपने प्रभुके स्मरणमें तल्लीन हो गये और महर्षि उनके द्वारा लिखे गये रामचरितका प्रत्येक शब्द ध्यानपूर्वक देखने लगे। महर्षि वाल्मीकि जैसे-जैसे उस रामचरितको देखते जाते, उनका मुख मलिन होता जाता और सम्पूर्ण रामचरित पढ़ लेनेपर तो वे अत्यन्त उदास हो गये।

उन्होंने श्रीरामभक्त हनुमानजीकी ओर देखकर कहा—'पवनपुत्र! भगवान् श्रीरामका श्रेष्ठतम पावन चरित्र है यह! अब इससे उच्चकोटिका श्रीरामचरित्र त्रिकालमें भी सम्भव नहीं। मैं आपसे एक वरकी याचना करना चाहता था।'

'आज्ञा करें। सेवक प्रस्तुत है।' हनुमानजीका उत्तर सुनते ही महर्षि वाल्मीकिने नतमस्तक होकर धीरे-धीरे कहा—'मेरी रामायणका सर्वत्र प्रचार हो गया है और यश:कामनाके कारण मुझे घृणित स्वार्थ अशान्त कर रहा है। आपके इस रामायणके सम्मुख मेरी रामायण व्यर्थ सिद्ध.....।'

'इतनी-सी बातके लिये चिन्ता उचित नहीं'—महर्षिका वाक्य पूरा होनेके पूर्व ही हनुमानजी बोल उठे।

हनुमानजीने तुरंत शिलाओंपर लिखे गये सम्पूर्ण रामचरितको एकत्र किया और फिर उन्हें लेकर एक कंधेपर महर्षिको बैठाया और समुद्रकी ओर चल पड़े। हनुमानजीने अपने आराध्यके उस महत्तम लीला-चरित्रको महर्षिके देखते-ही-देखते समुद्रमें डुबाते हुए कहा—'अब इसे कभी कोई नहीं पढ़ सकेगा।'

यह सर्वथा नि:स्पृह हनुमानजीका सहज त्याग था। उन्होंने इसे कभी त्याग नहीं समझा, किंतु महर्षिके नेत्र भर आये। रुँधे कण्ठसे उन्होंने कहा—'मारुतात्मज! मेरी इस घृणित स्वार्थान्धताको जगत् अनादरपूर्वक स्मरण करेगा, किंतु आपका धवल यश आपकी निर्मल भगवद्भक्तिके साथ उत्तरोत्तर बढ़ता ही जायगा।'

महर्षि वाल्मीकि गद्गद कण्ठसे भक्तराज हनुमानका स्तवन करने लगे।

यत्र-यत्र

परम भागवत श्रीहनुमानजी किम्पुरुषवर्षमें विराजित सीताहृदयाभिराम श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंके समीप अत्यन्त श्रद्धापूर्वक बैठते हैं और किंनरोंके साथ अनन्य भक्तिपूर्ण हृदयसे उनकी उपासना करते हैं। वहाँ अन्य गन्धर्वोंके साथ आर्ष्टिषेण दयाधाम श्रीरामका मङ्गलमय गुणगान किया करते हैं। उसे हनुमानजी अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्रवण करते हैं। वे स्वयं इस मन्त्रका जप करते हैं—

'ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षण-शीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति।'

(श्रीमद्भागवत ५। १९। ३; देवीभागवत ८। १०। १४)

'हम ॐकारस्वरूप, पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीरामको नमस्कार करते हैं, आपमें सत्पुरुषोंके लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं, आप बड़े ही संयतचित्त, लोकाराधन-तत्पर, साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीके समान और अत्यन्त ब्राह्मणभक्त हैं। ऐसे महापुरुष महाराज श्रीरामको हमारा पुनः-पुनः प्रणाम है।' और वे पवनपुत्र भाव-विभोर होकर इस प्रकार स्तवन करते रहते हैं—

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं
स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं
ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये॥
मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥
न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः
सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत
न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति॥
न जन्म नूनं महतो न सौभगं
न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस-
श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः॥
सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं
य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति॥

(श्रीमद्भा० ५। १९। ४—८; देवीभाग० ८। १०। १४१—८)

'भगवन्! आप विशुद्ध बोधस्वरूप, अद्वितीय, अपने स्वरूपके प्रकाशसे गुणोंके कार्यरूप जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओंका निरसन करनेवाले सर्वान्तरात्मा, परम शान्त, शुद्ध-बुद्धिसे ग्रहण किये जाने योग्य, नाम-रूपसे रहित और अहंकारशून्य हैं; मैं आपकी शरणमें हूँ।

'प्रभो! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है। अन्यथा अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वरको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था?

'आप साधु पुरुषोंके आत्मा और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं, त्रिलोकीकी किसी भी वस्तुमें आपकी आसक्ति नहीं है। आप न तो सीताजीके लिये मोहको ही प्राप्त हो सकते हैं और न लक्ष्मणका त्याग ही कर सकते हैं।

'आपके ये व्यापार केवल लोक-शिक्षाके लिये ही हैं। लक्ष्मणाग्रज! उत्तम कुलमें जन्म, सुन्दरता, वाक्-चातुरी, बुद्धि और श्रेष्ठ योनि—इनमेंसे कोई भी गुण आपकी प्रसन्नताका कारण नहीं हो सकता, यह बात दिखानेके लिये ही आपने इन सब गुणोंसे रहित हम वनवासी वानरोंसे मित्रता की है।

'देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य—कोई भी हो, उसे सब प्रकारसे श्रीरामरूप आपका ही भजन करना चाहिये; क्योंकि आप नररूपमें साक्षात् श्रीहरि ही हैं और थोड़े कियेको भी बहुत अधिक मानते हैं। आप ऐसे आश्रितवत्सल हैं कि जब स्वयं दिव्यधामको सिधारे थे, तब समस्त उत्तर कोसलवासियोंको भी अपने साथ ही ले गये थे।'

यद्यपि परम विनीतात्मा महादेवात्मज हनुमानजीका किम्पुरुषवर्ष और साकेत-धाम प्रिय स्थायी निवास है, किंतु कथाश्रवणरूपा भक्तिके सर्वप्रथम एवं प्रधान आचार्य, जगत्पावन, तत्त्वप्रकाशक, परम तत्त्वज्ञ एवं महायोगी हनुमानजीने विपत्तिके अवसरका उल्लेख करते हुए प्रभुसे निवेदन करते हुए कहा था—

'**…बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥**'

इस कारण भक्तिसुधापानेच्छु हनुमानजीकी भक्तिसे प्रसन्न होकर जब श्रीराघवेन्द्रने उनसे कहा—'हनुमान! मैं तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वरकी याचना करो। तुम त्रैलोक्य-दुर्लभ वर भी माँगो तो मैं उसे निश्चय दूँगा।'

प्राणधन श्रीरघुनाथजीकी प्रसन्नतासे हनुमानजी पुलकित हो गये। उन्होंने प्रभुके सम्मुख अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए कहा—'हे श्रीरामजी! आपका नामस्मरण करते हुए मेरा चित्त तृप्त नहीं होता। अत: मैं निरन्तर आपका नाम स्मरण करता हुआ पृथ्वीपर रहूँ। हे राजेन्द्र! मेरा मनोवाञ्छित वर यही है कि जबतक संसारमें आपका नाम रहे, तबतक मेरा शरीर भी रहे।'*

प्रसन्न नयनाभिराम श्रीरामने कह दिया—'ऐसा ही हो, तुम जीवन्मुक्त होकर संसारमें सुखपूर्वक रहो। कल्पका अन्त होनेपर तुम मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे, इसमें संदेह नहीं।'†

कन्दर्पकोटिलावण्य भद्ररूप श्रीरघुनाथजीके हनुमानजीको वर प्रदान करते ही निखिलभुवनेश्वरी माता सीताने भी अपने लाल पवनपुत्रको वर प्रदान करते हुए कहा—'हे मारुते! तुम जहाँ कहीं भी रहोगे, वहीं मेरी आज्ञासे तुम्हारे पास सम्पूर्ण भोग उपस्थित हो जायँगे।'‡

समस्त सुरवन्दित, ज्ञानमय, प्रेममय, रुद्रांश, कपिसत्तम माता सीता और परम प्रभु श्रीरामके वचन सुन अपरिसीम आनन्द-सिन्धुमें निमग्न हो गये। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये और वे श्रीसीतारामके भुवनपावन चरणोंमें लोट गये।

करुणावारिधि परम प्रभु जगतीके मनुष्योंको सर्वथा निराधार, असहाय और निरुपाय नहीं छोड़ सकते थे, इस कारण उन्होंने अव्यक्त होते समय श्रीहनुमानजीकी इच्छापूर्तिके साथ-साथ उन्हें भक्तोंकी सेवा, सहायता एवं रक्षाके लिये भी नियुक्त किया। इस प्रकार ये कपिसत्तम निखिल भुवनपति भगवान् श्रीरामके प्रतिनिधि हुए—सच्चे प्रतिनिधि। समस्त सुरवन्दित मुक्तिदाता प्रभुका प्रतिनिधि सामान्य सुर या नर तो हो ही नहीं सकता। उस महनीय पदके सर्वथा अनुरूप तो अनन्त-मङ्गल, संसृतिनाशन, अचलोद्धारक, दयामूर्ति, हेमवर्ण हनुमानजी ही हैं। ये हनुमानजी भक्तोंकी, दु:खियोंकी, पीड़ितोंकी, आर्तोंकी पुकार सुनते ही दौड़ पड़ते हैं—यह कहना भी उचित नहीं; क्योंकि ये सर्वसमर्थ, करुणासिन्धु, भक्तवत्सल तो सर्वत्र विद्यमान एवं घट-घटवासी हैं, अत: तुरंत सहायता करते हैं! इनकी गदा समस्त पाप-तापको नष्ट कर देती है। इनके 'महावीर हनुमान'-नामके उच्चारणमात्रसे ही शाकिनी, डाकिनी, भूत, प्रेत और पिशाच आदि पलायित हो जाते हैं।

ये सर्वकलुषनाशक आञ्जनेय यद्यपि सर्वव्यापक हैं, किंतु जहाँ-जहाँ श्रीभगवान्‌का नाम-कीर्तन होता है, जहाँ श्रीरघुनाथजीकी कथा होती है, वहाँ-वहाँ वे तत्क्षण उपस्थित हो जाते हैं—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

'जहाँ-जहाँ श्रीरघुनाथजी (के नाम, रूप, गुण, लीला आदि)-का कीर्तन होता है, वहाँ-वहाँ मस्तकसे बँधी हुई अञ्जलि लगाये और नेत्रोंमें आँसू भरे हनुमानजी उपस्थित रहते हैं, राक्षसवंशके कालरूप उन मारुतिको नमस्कार करना चाहिये।'

कथा और कीर्तन—विद्वत्ता, मधुर स्वर और लय आदिसे मारुतिको कुछ लेना-देना नहीं, उन्हें तो बस, श्रीराघवेन्द्रकी लीला-कथा या उनके नाम-गुणका कीर्तन होना चाहिये, वहाँ वे अवश्य ही उपस्थित हो जायँगे। इस कारण कथा और कीर्तनमें काम, क्रोधादि वासनाओंको त्यागकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सम्मिलित होनेमें ही यथार्थ लाभ है। वहाँ शान्तिपूर्वक कथा-श्रवण करें, कीर्तनमें सहयोग दें और प्रत्येक दृष्टिसे अव्यवस्थासे बचें। ध्यान रखें, परमाराध्य हनुमानजी आपके सम्मुख बैठे हुए हैं।

शरणागतवत्सल हनुमानजीकी उपासना शीघ्र फल प्रदान करती है। ये यथाशीघ्र संकट दूर कर देते हैं। इनका 'संकट-मोचन' नाम प्रसिद्ध ही है। पीड़ितोंके

* त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम॥
अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन् स्थास्यामि भूतले। यावत् स्थास्यति ते नाम लोके तावत् कलेवरम्॥
मम तिष्ठतु राजेन्द्र वरोऽयं मेऽभिकाङ्क्षित:। (अ० रा० ६। १६। १२—१४)

† रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम्॥
कल्पान्ते मम सायुज्यं प्राप्स्यसे नात्र संशय:। (अ० रा० ६। १६। १४-१५)

‡ तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते॥
स्थितं त्वामनुयास्यन्ति भोगा: सर्वे ममाज्ञया। (अ० रा० ६। १६। १५-१६)

एकमात्र आश्रय हनुमानजीके वीर और दास—दोनों रूपोंकी उपासना होती है। विपत्ति-निवारणार्थ वीर-रूपकी और सुख-प्राप्त्यर्थ दास-रूपकी आराधना की जाती है। दोनों प्रकारकी उपासना-आराधनाके पृथक्-पृथक् नियम और विधान हैं। वीर-रूपके लिये राजस तथा दास-रूपके लिये सात्त्विक उपचार कहे गये हैं। मन्त्रानुष्ठानके 'अनुष्ठान-प्रकाश', 'मन्त्रमहोदधि', 'मन्त्र-महार्णव', 'मन्त्रसंग्रह' और 'हनुमत्-उपासना-कल्पद्रुम' आदि अनेक ग्रन्थ हैं।

हनुमानजीकी सकामभावसे तान्त्रिक पद्धतिके अनुसार उपासना करनेवालोंको निम्नलिखित सावधानी अवश्य रखनी चाहिये—

१-उपासना-कालमें यथासाध्य उन्हें पूर्ण ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना चाहिये, अन्यथा उपासकोंके लिये अनिष्टकी सम्भावना रहती है। ऐसे अनेक उदाहरण आज भी प्रत्यक्ष देखे गये हैं कि इस नियमकी अवहेलना करके जिन्होंने हनुमानजीकी सकाम उपासना की है, वे इष्टकी प्राप्तिमें सफल तो हुए ही नहीं, भयंकर शारीरिक व्याधिसे पीड़ित हुए अथवा दैवी प्रकोपसे ग्रस्त हो गये हैं।

२-तान्त्रिक मन्त्रोंका केवल पुस्तक पढ़कर अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। किसी सच्चे श्रीरामभक्त अथवा हनुमानजीके भक्तकी आज्ञा प्राप्तकर इस दिशामें अग्रसर होना उपयोगी होता है।

निश्चय ही हनुमानजी सिद्धिदाता हैं। उनकी उपासनासे सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, किंतु जो इस भवाटवीसे पार जानेके लिये व्यग्र हैं, जो जन्म-मरणसे भयभीत होकर आत्यन्तिक शान्तिके लिये आतुर हैं, जो मुक्ति-पथके पथिक हैं, उन्हें सिद्धियाँ अभीष्ट नहीं। वे तो आयी हुई सिद्धियोंको भी लौटा देते हैं। वे भलीभाँति जानते हैं कि ये सिद्धियाँ सुखद नहीं, अपितु आत्मसाक्षात्कारमें, प्रभुपद-प्राप्तिमें तथा जीवनके चरम और परम उद्देश्यकी प्राप्तिमें भयानक विघ्नरूप हैं। अतएव वे इनसे सदा सावधान रहते हैं। यहाँतक कि उनकी ओर देखना भी अपराध मानते हैं।

निश्चय ही हनुमानजी वाञ्छा सिद्ध करते हैं। वे दुःखी, पीड़ित एवं आर्तके आह्वानपर तुरंत दौड़ पड़ते हैं। वे हृदयसे चाहते हैं कि प्राणियोंके दुःख-दारिद्र्य, आधि-व्याधि तथा समस्त विपत्तियाँ सदाके लिये मिट जायँ। वे परम प्रभुके शाश्वत सुख-शान्ति-निकेतन चरणकमलोंके दर्शन कर निहाल हो जायँ, किंतु जब वे उन्हें तुच्छतम नश्वर सांसारिक कामनाओं और वासनाओंकी पूर्तिके लिये आतुर और व्यग्र देखते हैं तो निराश और उदास हो जाते हैं। अतएव सर्वोत्तम तो यही है कि सत्यरूप, जयप्रद, पवननन्दनकी उपासना आत्म-कल्याणके लिये, प्रभु-प्राप्तिके लिये ही की जाय और जो इसके लिये हनुमानजीका आश्रय ग्रहण करते हैं, उन्हें उनकी कृपासे यथाशीघ्र सफलता प्राप्त होती है और वे निहाल हो जाते हैं। उनका जीवन और जन्म सफल हो जाता है।

कृपामूर्ति

सकल सद्गुणगणनिलय अञ्जनानन्दन दयाधाम हैं। कृपाकी मूर्ति हैं। जो पवनकुमार अपने परम प्रभुका दर्शन करते ही आनन्दसिन्धुमें निमग्न हो जाते हैं, वे श्रीरामचरणानुरागी कल्पान्ततक इस भूतलपर क्यों रहना चाहते? निश्चय ही वे श्रीरामके मङ्गलमय नाम एवं चरित्र-कथाके अनुपम प्रेमी हैं, किंतु इसके साथ ही पृथ्वीके नर-नारियोंके प्रति उनकी सहज कृपा ही इसमें हेतु है। पाण्डुनन्दन भीमसेनने अपने अग्रज हनुमानजीकी कथा ही सुनी थी। उनके दर्शनकी उन्हें कल्पना भी नहीं थी, किंतु श्रीकृष्ण-प्रीति-भाजन भीमसेनके अनिष्टकी कल्पनासे ही हनुमानजीने उन्हें उत्तराखण्डके देव-मार्गमें जानेसे रोका और उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर भी कृतार्थ कर दिया।

पाण्डुनन्दन भीमसेन तो उनके अनुज थे, त्रेतामें श्रीरघुनाथजीके अव्यक्त होनेके समयसे ही दयामय हनुमानजी भगवद्भक्त नर-नारियोंका उपकार करते आ रहे हैं। प्रभु-पथ-पथिकोंको तो वे अहर्निश सहयोग देते रहते हैं, उनकी साधनाकी बाधाओंका निवारण करते रहते हैं। उन्होंने कितने भाग्यवान् भक्तोंको सर्वलोकेश्वर श्रीभगवान्‌का दर्शन कराकर उनका जीवन सफल कर दिया, इसकी गणना सम्भव नहीं।

हिंदूमात्रका प्रिय ग्रन्थ श्रीरामचरितमानस—कहते हैं, श्रीहनुमानजीकी प्रेरणासे ही श्रीतुलसीदासजीने उसकी रचना प्रारम्भ की और वे पद-पदपर उनकी सहायता करते गये। श्रीतुलसीदासजीने स्वयं कृपामूर्ति श्रीआञ्जनेयके सम्बन्धमें कहा है कि 'जिसपर सब प्रकारके कल्याणोंकी खानि श्रीहनुमानजीकी कृपादृष्टि है, उसपर पार्वती, शंकर, लक्ष्मण, श्रीराम और जानकीजी सदा कृपा

किया करती हैं।'*

श्रीतुलसीदासजीका जीवन भी इसका साक्षी है। प्रसिद्ध है कि वे नित्य शौचसे लौटते समय शौचका बचा जल एक बेरके वृक्ष-मूलमें डाल देते थे। उस वृक्षपर एक प्रेत रहता था। प्रेतयोनिकी तृप्ति ऐसी ही निकृष्ट वस्तुओंसे होती है। प्रेत उस अशुद्ध जलसे प्रसन्न हो गया। एक दिन उसने प्रकट होकर श्रीतुलसीदासजीसे कहा—'मैं आपपर प्रसन्न हूँ। बताइये, आपकी क्या सेवा करूँ?'

'मुझे श्रीरघुनाथजीके दर्शन करा दो।' श्रीतुलसीदासजीके कहनेपर प्रेतने उत्तर दिया—'यदि मैं प्रभुका दर्शन करा सकता तो अधम प्रेत ही क्यों रहता, किंतु मैं आपको एक उपाय बता सकता हूँ। अमुक स्थानपर श्रीरामायणकी कथा होती है। वहाँ सर्वप्रथम वृद्ध कुष्ठीके वेषमें श्रीहनुमानजी नित्य पधारते हैं और सबसे दूर बैठकर कथा सुनकर सबसे पीछे जाते हैं। आप उनके चरण पकड़ लें। उनकी कृपासे आपकी लालसा पूर्ण हो सकती है।'

तुलसीदासजी उसी दिन श्रीरामायणकी कथामें पहुँचे। उन्होंने वृद्ध कुष्ठीके वेषमें श्रीहनुमानजीको पहचान लिया और कथाके अन्तमें उनके चरण पकड़ लिये। श्रीहनुमानजी गिड़गिड़ाने लगे, किंतु श्रीतुलसीदासजीकी निष्ठा एवं प्रेमाग्रहसे दयामूर्ति पवनकुमारने उन्हें मन्त्र देकर चित्रकूटमें अनुष्ठान करनेकी आज्ञा दी। उन्होंने श्रीतुलसीदासजीको प्रभु-दर्शन करानेका भी वचन दे दिया।

भवाब्धिपोत महावीर हनुमानकी कृपाका प्रत्यक्ष फल उदित होने लगा। श्रीतुलसीदासजी चित्रकूट पहुँचे और अञ्जनानन्दनके बताये मन्त्रका अनुष्ठान करने लगे। एक दिन उन्होंने अश्वपर आरूढ़ श्याम और गौर दो कुमारोंको देखा, किंतु देखकर भी उन्होंने ध्यान नहीं दिया। श्रीहनुमानजीने प्रत्यक्ष प्रकट होकर श्रीतुलसीदासजीसे पूछा—'प्रभुके दर्शन हो गये न?'

'प्रभु कहाँ थे?' श्रीतुलसीदासजीके चकित होकर पूछनेपर हनुमानजीने कहा—'अश्वारोही श्याम-गौर कुमार, जो तुम्हारे सामनेसे निकले थे।'

'आह! श्रीतुलसीदासजी अत्यन्त व्याकुल हो गये—'मैं प्रभुको पाकर भी उनसे वञ्चित रहा।' वे छटपटाने लगे। उनके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे और उन्हें अपने शरीरकी सुध नहीं थी।'

कृपामूर्ति श्रीहनुमानजीने उन्हें प्रेमपूर्वक धैर्य बँधाया—'तुम्हें पुनः प्रभुके दर्शन हो जायँगे।' और दयाधाम श्रीमारुतिकी कृपासे उन्हें परम प्रभु श्रीरामके ही नहीं, राज्य-सिंहासनपर आसीन भगवती सीतासहित श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्नके साथ सुग्रीव और विभीषणादि सखा तथा वसिष्ठ आदि समस्त प्रमुख जनोंके भी दर्शन प्राप्त हो गये।

कृपामूर्ति हनुमानजीकी कृपासे प्रभुकी इस अपूर्व छटाका ही दर्शन कर श्रीगोस्वामीजी कृतार्थ नहीं हुए, अपितु मन्दाकिनीके पावन तटपर उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मणको अपने हाथों चन्दन घिसकर तिलक भी कराया—

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसैं तिलक करैं रघुबीर॥

मानस-मर्मज्ञ कहते हैं कि श्रीरामचरितमानसकी रचनाके समय श्रीतुलसीदासजीको कठिनाईका अनुभव होते ही भक्ति-सुधापानेच्छु कृपामूर्ति श्रीहनुमानजी स्वयं प्रकट होकर उनकी सहायता किया करते थे। दो स्थल तो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—

(१) श्रीशंकरजीके तपके समय कामदेवके व्यापक प्रभावका वर्णन करते हुए श्रीतुलसीदासजीने लिखा—***'धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।'*** आधा सोरठा लिख लेनेपर चिन्ता हुई। ***'काहूँ'*** और ***'सब के'*** में तो श्रीनारदादि देवर्षि और विरक्त भक्त भी आ गये, जिन्हें काम-विकार स्पर्श भी नहीं करता। श्रीतुलसीदासजीने आञ्जनेयका स्मरण किया और उन्होंने प्रकट होकर सोरठेके दूसरे चरणकी पूर्ति कर दी—***'जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ।'***

और—

(२) धनुष-यज्ञका वर्णन करते समय श्रीतुलसीदासजीने सोरठा लिखा—

'संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबल। बूड़ सो सकल समाज'—श्रीतुलसीदासजी रुके। ***'सकल समाज'*** में तो महर्षि विश्वामित्र और धनुषको स्पर्श भी न करनेवाले नरेश तथा न जाने कितने लोग आ गये। श्रीतुलसीदासजीकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी, उनकी प्रार्थना सुनते ही हनुमानजीने कृपा की और प्रकट होकर उन्होंने सोरठा पूरा कर दिया—***'चढ़ा जो प्रथमहिं मोहबस।'***

इतना ही नहीं, श्रीतुलसीदासजीने जब-जब कठिनाई अनुभव की, तब-तब मङ्गलमूर्ति पवननन्दनका स्मरण किया। बाहु-पीड़ाके समय महावीर हनुमानजीसे प्रार्थना

* तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लखन, राम अरु जानकी। तुलसी कपिकी कृपा बिलोकनि खानि सकल कल्यानकी॥ (वि० प० ३०। ३)

करते हुए उन्होंने 'हनुमानबाहुक' की रचना की। श्रीरामचरितमानस, विनय-पत्रिका और कवितावलीमें तो उनका स्तवन एवं गुणगान हुआ ही है, 'हनुमान-चालीसा' और 'संकटमोचन' आदि स्वतन्त्र पुस्तिकाओंमें भी श्रीतुलसीदासजीने अन्तर्हृदयसे कृपामय महावीर हनुमानजीकी वन्दना की है।

परम प्रभु श्रीरामका दर्शन समस्त लौकिक-पारलौकिक सुखोंका मूल है। अनिर्वचनीय सुख-शान्तिप्रदायक है वह। वह दर्शन श्रीरामकी प्रेमा-भक्तिके बिना सम्भव नहीं और उस प्रेमा-भक्तिकी प्राप्ति काम-क्रोधादिसे ग्रस्त हम सांसारिक जीवोंको सहज नहीं। यह साधन-साध्य नहीं। दयामय प्रभुकी अहैतुकी कृपासे ही यह सम्भव है। किंतु जिसपर आञ्जनेयकी अहैतुकी कृपादृष्टि पड़ जाती है, वह प्रभु एवं उनकी प्रेमा-भक्तिको प्राप्त कर लेता है और कृपामूर्ति श्रीहनुमानजी इसके लिये प्रतिक्षण प्रस्तुत हैं। जीवमात्रको प्रभुके मङ्गलमय चरण-कमलोंमें पहुँचाकर उसका कल्याण करनेके लिये वे आतुर रहते हैं, किंतु हमारी ही प्रभु-प्राप्तिकी इच्छा नहीं होती। हम वासनाओंके प्रवाहमें आकण्ठमग्न होकर सुखका अनुभव कर रहे हैं। इनसे पृथक् होना ही नहीं चाहते। गदाधारी कृपामय हनुमानजीकी ओर झाँकना भी नहीं चाहते, इसी कारण वे दयाधाम विवश हो जाते हैं। उनकी इच्छा अपूर्ण रह जाती है।

संतुष्ट होनेपर हनुमानजीको जीवका परम कल्याण करते देर नहीं लगती, पर उन्हें संतुष्ट करनेकी इच्छा हो तब न। आजन्म ब्रह्मचारी हनुमानजी सदाचार, धर्म-पालन, ब्रह्मचर्य-पालन, दीन-दु:खियोंकी सेवा-सहायता, शास्त्रों, संतों, महापुरुषों, भक्तों एवं भगवान्के प्रति श्रद्धा, विश्वास एवं प्रीतिसे सहज ही तुष्ट हो जाते हैं और अपने नित्य सहचर श्रीहनुमानजीके संतुष्ट होते ही श्रीरघुनाथजी तत्क्षण प्रसन्न हो जाते हैं। मारुतिकी प्रसन्नतामें ही जीवन और जन्मकी सार्थकता तथा सफलता है।

अनन्त मङ्गलालय कृपामूर्ति अञ्जनानन्दनका पावन चरित्र वाल्मीकिरामायण, अध्यात्मरामायण और पुराणोंमें विस्तारपूर्वक गाया गया है। यहाँ तो उसका संक्षिप्त संकलनमात्र ही है, पर जो भी है, वह निश्चय ही मारुतिका कृपा-प्रसाद है। वे कृपामूर्ति महावीर हनुमानजी कृपा करें, उनके सर्वाभीष्टप्रदाता चरणकमलोंमें यही विनीत निवेदन है।

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

अञ्जनानन्दनका अभिनन्दन!

माँ अञ्जनी-पद-पद्मका,
आनन्द, विक्रम सद्मका,
वन्दन करूँ, पद-पद्म-रज सिरपर धरूँ।
जिनके तनुज हनुमान हैं,
साक्षात जो भगवान हैं,
धर ध्यान उनका चित्तको पावन करूँ।
कादम्बिनी जो क्षेमकी,
वात्सल्य, करुणा, प्रेमकी,
उनके तनयका क्यों न अभिनन्दन करूँ।
जय जयति मारुति वीर जय,
रणधीर सुवन-समीर जय,
कर दो कृपा भव-ज्वालको चन्दन करूँ।
यदि नाथ तुम होते नहीं,
कलि-दु:ख कम होते नहीं,
जन तड़पते रहते पड़े भव-जाल में।
उद्धार दीनोंका किया,
निर्बल जनोंको बल दिया।
अवलम्ब दुखियोंके बने कलिकालमें।
सब देव अन्तर्हित हुए,
बल तेज अथवा हृत हुए,
अशरण-शरण तव चरण केवल रह गये।
तेरी शरणमें जो गया,
भव-तापसे वह बच गया,
तव नाम ले निर्बल बली हैं हो गये।
कलिकालके भगवान हो,
सब आर्त जनके त्राण हो,
खल-वन-दहनके हेतु भीष्म कृशानु हो।
कलिकालकी क्या बात है,
त्रेता नहीं अपवाद है,
उस समय भी सबके बने परित्राण हो॥

—ठाकुर श्रीवासुदेवनारायणजी सिनहा

रोम-रोममें राम

श्रीहनुमानजी

जिस वस्तुमें श्रीराम-नाम नहीं, वह वस्तु तो कौड़ीकी भी नहीं। उसके रखनेसे लाभ? श्रीहनुमानजीने अयोध्याके भरे दरबारमें यह बात कही।

स्वयं जानकी मैयाने बहुमूल्य मणियोंकी माला हनुमानजीके गलेमें डाल दी थी। राज्याभिषेक-समारोहका यह उपहार था—सबसे मूल्यवान् उपहार। अयोध्याके रत्नभण्डारमें भी वैसी मणियाँ नहीं थीं। सभी उन मणियोंके प्रकाश एवं सौन्दर्यसे मुग्ध थे। मर्यादापुरुषोत्तमको श्रीहनुमानजी सबसे प्रिय हैं—सर्वश्रेष्ठ सेवक हैं पवनकुमार, यह सर्वमान्य सत्य है। उन श्रीआञ्जनेयको सर्वश्रेष्ठ उपहार प्राप्त हुआ—यह न आश्चर्यकी बात थी, न ईर्ष्याकी।

असूयाकी बात तो तब हो गयी, जब हनुमानजी अलग बैठकर उस हारकी महामूल्यवान् मणियोंको अपने दाँतोंसे पटापट फोड़ने लगे।

एक दरबारी जौहरीने टोका तो उन्हें बड़ा विचित्र उत्तर मिला।

आपके शरीरमें श्रीराम-नाम लिखा है ? जौहरीने कुढ़कर पूछा था। किंतु मुँहकी खानी पड़ी उसे। हनुमानजीने अपने वज्रनखसे अपनी छातीका चमड़ा उधेड़कर दिखा दिया। श्रीराम हृदयमें विराजित थे और रोम-रोममें श्रीराम लिखा था उन श्रीराम-दूतके।

'जिस वस्तुमें श्रीराम-नाम नहीं, वह वस्तु तो दो कौड़ीकी है। उसे रखनेसे लाभ?' श्रीहनुमानजीकी यह वाणी। उन केसरीकुमारका शरीर श्रीराम-नामसे ही निर्मित हुआ। उनके रोम-रोममें श्रीराम-नाम अङ्कित है।

उनके वस्त्र, आभूषण, आयुध—सब श्रीराम-नामसे बने हैं। उनके कण-कणमें श्रीराम-नाम है। जिस वस्तुमें श्रीराम-नाम न हो, वह वस्तु उन पवनपुत्रके पास रह कैसे सकती है?

श्रीराम-नाममय है श्रीहनुमानजीका श्रीविग्रह—

राम माथ, मुकुट राम, राम सिर, नयन राम,
राम कान, नासा राम, ठोढ़ी राम-नाम है।
राम कंठ, कंध राम, राम भुजा बाजूबंद,
राम हृदय अलंकार, हार राम-नाम है॥
राम उदर, नाभि राम, राम कटी, कटी-सूत,
राम बसन, जंघ राम, जानु-पैर राम-नाम है।
राम मन, वचन राम, राम गदा, कटक राम,
मारुति के रोम रोम व्यापक राम-नाम है॥

अञ्जनीकुमारकी गुण-गाथा

(रचयिता—पं० श्रीजनार्दनजी झा 'जनसीदन')

विपद-विनाशिनी, विकासिनी सुबुद्धिकी
है, दारिनी समूल दृढ़ दारिद-पहारकी।
शान्ति-सुखदायिनी, विधायिनी सुकर्मकी
है, धर्मकी सुभूमि, निधि विशद-विचारकी॥
पापमर्दिनी, त्यों 'जनसीदन' रमेश-पद-
प्रेम-वर्द्धिनी है, नाव बूड़े मझधारकी।
मोह गंजिनी है, भव-भीतिभंजनी है, गुण-
गाथा मनरंजनी है, अंजनीकुमारकी॥

वेद-मन्त्रोंमें श्रीहनुमानका चरित्र-चित्रण

श्रीहनुमानजीका स्वरूप चिन्मय अथवा दिव्य है। वे विज्ञानस्वरूप हैं। उनके रूप, गुण और चरित्र यद्यपि वेदोंमें वर्णित हैं, तथापि विज्ञानस्वरूप होनेके कारण वे अरूप हैं—अप्रत्यक्ष हैं। निगमागमसम्मत रामचरितमानसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजीने सीताराम-गुणग्रामके पुण्यारण्यमें विहार करनेवाले कपीश्वर श्रीहनुमानको विशुद्ध विज्ञान—सम्पूर्ण चिन्मय स्वीकार किया है। रामचरितमानसके प्रारम्भिक मङ्गल-श्लोकमें उनके द्वारा की गयी श्रीवाल्मीकिजी और श्रीहनुमानजीकी वन्दना उपर्युक्त तथ्यकी परिचायिका है—

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥

(रामचरितमानस, बाल० श्लोक ४)

वेद श्रीरामके चरित्र और लीलाका वर्णन करते हैं, इसलिये उनके द्वारा श्रीरामभक्त हनुमानजीके चरित्रका भी चित्रण किया जाना सर्वथा स्वाभाविक है। हनुमानके लीला-चरित्र-चिन्तनके बिना भगवान् श्रीरामका चरित्र-वर्णन पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

जिस प्रकार श्रीरामके अपार चरित्रका पार पाना किसीके लिये भी सम्भव नहीं है, ठीक इसी तरह श्रीहनुमानका चरित्र भी अपार है। श्रीहनुमानके परब्रह्म तो श्रीराम हैं। प्रभुकी सेवामें उनका जीवन पूर्णरूपसे समर्पित निरूपित किया गया है। वानररूपमें अवतरित देवताओंद्वारा की गयी अपनी सेवाके प्रति श्रीरामने जो कृतज्ञता प्रकट की है, उसमें श्रीहनुमानके यशपर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। श्रीनीलकण्ठद्वारा उद्धृत 'मन्त्ररामायण'-में एक ऋचाके भाष्यमें कहा गया है कि वानररूपमें अवतरित देवताओंने मेरा (भगवान्‌का) कार्य पूरा किया—

क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो
वेनन्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो
देवेषु मे अधि कामा अयंसत॥

(ऋग्वेद १०।६४।२)

मन्त्रका भाष्य

'क्रतवः साक्षात् सत्यसंकल्पा इत्यर्थः। क्रतूयन्ति क्रियामात्मन इच्छन्ति अस्मत्सेवां कर्तुमिच्छन्ति। हृत्सु धीतयः हृदयेषु धीमन्तः वेनन्ति शोभन्ते। वेनाः कमनीयाः। आसमन्ताद् दिशः पतयन्ति गच्छन्ति। एभ्यो वानररूपेभ्यो देवेभ्योऽन्यो न मर्डिता सुखयिता न विद्यते। मे मम कामाः मनोरथाः देवेषु एषु अयंसत अपूर्यन्त।'

(मन्त्ररामायण ६८)

इस भाष्यमें नीलकण्ठने भगवान् श्रीरामको यह कहते हुए अभिव्यक्त किया है कि 'वानररूपमें अवतरित सत्यसंकल्प देवता मेरी सेवा करनेकी इच्छा करते हैं। ये हृदयके बड़े सरस हैं, अथवा पूर्ण भक्तके रूपमें शोभित हैं तथा जनकनन्दिनी सीताकी खोजमें ये चारों ओर समस्त दिशाओंमें जाते हैं। इन वानररूप देवताओंसे बढ़कर दूसरा कोई भी मेरे लिये सुखदाता नहीं है। मेरे मनोरथ इन्हीं देवताओंके द्वारा (सदा) पूर्ण हुए हैं।'

इस कथनमें हनुमानजीके पराक्रमयुक्त यशका अङ्कन उपलब्ध होता है। प्रभु स्वयं उनके यशका बखान करते हैं—

राम जासु जस आपु बखाना॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड १७। १०)

'मन्त्ररामायण' के मङ्गलाचरणमें वेदमय मूल, गायत्रीरूप बीज तथा रामरक्षारूपी नूतन अङ्कुरसे युक्त मोक्षरूप महाफलदायक रामायण-वृक्षकी वन्दना करते हुए महामति नीलकण्ठकी उक्ति है—

रामायणद्रुमं नौमि रामरक्षानवाङ्कुरम्।
गायत्रीबीजमाम्नायमूलं मोक्षमहाफलम्॥

आम्नायमूल रामायणमें श्रीरामके अनन्य तथा अप्रतिम सेवक श्रीहनुमानका वृत्तान्त इस तरह स्वाभाविक रूपसे ही वेदसम्मत सिद्ध होता है। वाल्मीकि आदि काव्यरचना-समर्थ कवि भगवद्गुणगणकीर्तनसे अपनी वाणी पवित्र करते हैं। साक्षात् सीताके अन्वेषणमें तत्पर हनुमानजीके रूपमें प्रकट रुद्रने रामायणकी रचना की। ऋग्वेदसे उद्धृत एक मन्त्रमें सीतान्वेषणमें तत्पर हनुमानजीका प्रसङ्ग प्रस्तुत करते हुए टीकाकार नीलकण्ठने 'मन्त्ररामायण' (८) -में इस आशयकी बात कही है। यथा—

सहस्रधारे वितते पवित्र आ
वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः।
रुद्रास एषामिषिराषो अद्रुहः
स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः॥

(ऋग्वेद ९। ७३। ७)

उपर्युक्त मन्त्रके भाष्यमें नीलकण्ठके शब्द हैं—

'……सहस्रेति। आ समन्ताद् वितते व्याप्ते महाविष्णौ सहस्रधारे सोमांशुरूपेण तत्तदिन्द्रियवृत्त्यभिव्यक्तिचिदा सा

सरूपेण वानन्तप्रवाहे पवित्रे पावने निमित्तभूते सति मनीषिणो जितचेतसः कवयः काव्यरचनसमर्थाः वाचं स्वीयां पुनन्ति भगवद्गुणगणकीर्तनेन पवित्रीकुर्वन्ति वाल्मीकिप्रभृतयः। एषां कवीनां मध्ये रुद्रासः—बहुत्वं पूजायां रुद्रो हनूमान् इषिराषः, इषिरोऽद्भुतगतिः, अद्रुहः अद्रोही स्पशः चारः सीतान्वेषकः चरोऽभूदित्यर्थः। स च स्वञ्चः शोभनगमनः। सुदृशः सम्यक्परीक्षकः। नृचक्षसः नरं सीतारूपं चष्टे पश्यतीति नृचक्षाः सीतां ददर्शेत्यर्थः। वम्रवत् रुद्रोऽपि रामायणमकरोत्तत्र च रामदास्यमधिकम्।' एवमन्योऽपि रामस्तोत्रेण वाचं दास्येन देहं च पुनीयादित्यर्थः।

उपर्युक्त भाष्यका आशय है कि सोम-किरणोंके रूपमें सुधाकी सहस्र-सहस्र धाराएँ अथवा स्वरूपसे ही सच्चिदानन्दमय अनन्त प्रवाह प्रकट करनेवाले, सर्वत्र व्यापक, परम पवित्र महाविष्णु (श्रीराम)-के निमित्त मनीषी कवि वाल्मीकि आदि उनके गुणगानके द्वारा अपनी वाणीको पवित्र करते हैं। इन्हीं कवियोंमें रुद्र (के अवतार) हनुमानजी भी हैं, जो स्वभावतः अद्रोही (किसीके साथ द्वेष न रखनेवाले) हैं। ये इषिर—अद्भुत गतिवाले, स्पश—गुप्तचर (अर्थात् सीताका अन्वेषण करनेवाले दूत), स्वञ्च—बहुत सुन्दर संचरणवाले और नृचक्षा-मानवमूर्ति सीताके प्रत्यक्षदर्शी हैं। इन्होंने सीताको लंकामें ढूँढ़ निकाला और उनका साक्षात् दर्शन किया। वाल्मीकिकी भाँति रुद्र (हनुमान) भी रामायण (हनुमन्नाटक आदि)-की रचना करनेवाले हैं, किंतु उनमें श्रीरामके प्रति दास्यभावकी अभिव्यक्ति अधिक हुई है। इसी तरह दूसरे लोगोंको भी चाहिये कि वे श्रीरामके स्तवनसे वाणीको तथा दास्य—सेवासे अपने शरीरको पवित्र करें।

जिस तरह श्रीरामका चरित्र वेदोंमें वर्णित हुआ है, उसी तरह उनके लीलाचरित्रके प्रमुखतम आधारस्तम्भ श्रीहनुमानका भी वृत्तान्त वेदोंमें परिलक्षित होता है। दोनोंके चरित्रोंमें अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध है। रामचरितमानसके बालकाण्डकी ***'सूझहिं रामचरित मनि मानिक'*** चौपाईमें रामचरितके गुप्त और प्रकटरूपके सम्बन्धमें 'मानस-मयंक' के रचयिता सुखलाल पाठककी सारगर्भित उक्तिमें 'मन्त्ररामायण' के उपर्युक्त भाष्यमें वर्णित श्रीराम-रूपमें अवतरित विष्णु और हनुमान-रूपमें अवतरित रुद्रकी वैदिकताका स्पष्टीकरण हो जाता है—

गूढ़ चराचर चरित मणि, गूढ़ राम जस बेद।

(मानसमयंक, बालकाण्ड ४०)

श्रीरामकी कीर्तिका वर्णन ब्रह्माकी बुद्धिमें भी पूर्णरूपसे नहीं समा पाता। शेषनाग भी अपने सहस्र मुखोंसे उसे गाते-गाते थक जाते हैं। उनकी उक्ति है कि 'जहाँ ब्रह्मा आदि देवता भी मोहित होकर कुछ नहीं जान पाते, उस श्रीरामरूपी कथा-महासागरकी थाह लगानेके लिये मेरे-जैसे मशकके समान तुच्छ जीवकी कितनी शक्ति है। श्रीरामका चरित्र करोड़ों श्लोकोंमें वर्णित है, जिनकी जैसी बुद्धि है, वे उसका वैसा ही वर्णन करते हैं।'—

रावणारिकथावार्धौ मशको मादृशः कियान्।
यत्र ब्रह्मादयो देवा मोहिता न विदन्त्यपि॥
चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
येषां वै यादृशी बुद्धिस्ते वदन्त्येव तादृशम्॥

(पद्मपुराण, पाताल० १।१२, १४)

श्रीरामके गुण-वैभवके कीर्तनमें श्रीहनुमान-जैसे परम भागवतकी विरुदावलीका वर्णन सहज-सुलभ है। उनकी वन्दना करते हुए श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने 'विनय-पत्रिका' में कहा है कि 'हे आञ्जनेय! विद्वान् और वेद अपनी विमल वाणीमें आपकी स्तुति करते हैं—

.....विदुष बरनत वेद विमल बानी।

(विनय-पत्रिका २५)

गोस्वामी तुलसीदासकी उक्ति है कि 'हे हनुमानजी! आप बन्धनोंसे छुड़ानेवाले हैं—आपका ऐसा यश वेद-शास्त्र गाते हैं।'—

बंदिछोर बिरुदावली निगमागम गाई॥

(विनय-पत्रिका ३५)

श्रीहनुमान समस्त अभीष्ट फलोंको प्रदान करनेवाले परम देवता हैं—

हनुमान् देवता प्रोक्तः सर्वाभीष्टफलप्रदः॥

(श्रीविद्यार्णव २८।११)

वेदों और उपनिषदों आदिमें उनके सर्वाभीष्टफलप्रद रूपके महत्त्वका अङ्कन किया गया है तथा भगवद्भक्तके विशिष्टतम रूपमें उनके नाम, रूप, लीला और गुणोंके अन्तर्गत पराक्रम, भगवत्सेवा, भजनमें तत्परता आदिका यथाप्रसङ्ग यथास्थान निरूपण भी उपलब्ध होता है। उपनिषद्-प्रतिपादित श्रीराम और श्रीहनुमानकी स्वरूपगत अभिन्नता इस प्रकार है—'ॐ जो सुप्रसिद्ध श्रीरामचन्द्र हैं, वे अवश्य ही भगवान् हैं तथा जो ग्यारह रुद्र और भू आदि तीनों लोक हैं, वे भी उन्हींके स्वरूप हैं। उन भगवान् श्रीरामको मेरा बारम्बार नमस्कार है।'—

'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्। ये चैकादश रुद्रा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः।'

(रामोत्तरतापनीय-उपनिषद् ३३)

श्रीब्रह्माके उपर्युक्त नमस्कारात्मक कथनमें ग्यारहवें रुद्र—श्रीहनुमानका श्रीरामके स्वरूपभूत तत्त्वके रूपमें अङ्कन सहज-सुलभ है। श्रीहनुमानके स्वरूप-तत्त्वकी मर्यादा भी यही है कि वे सर्वथा श्रीरामसे अभिन्न हैं। श्रीराम और शिवकी अभिन्नताका प्रतिपादन शास्त्रोंमें उपलब्ध होता है। ग्यारहवें रुद्र—हनुमानके सम्पूर्ण स्वरूप शिवका वाचक प्रणव है, ॐ श्रीरामचन्द्र हैं—यह उपर्युक्त औपनिषद उद्धरणसे स्पष्ट ही है। शिवपुराणमें शिवजीकी स्वीकृति है कि 'वेदोंका आदिकारण मैं ही हूँ और ॐकार मेरा वाचक है।'—

तस्माद्वेदादिरेवाहं प्रणवो मम वाचकः।

(शिवपुराण, कैलाससं० १। २०)

आशय यह है कि श्रीशिव, श्रीराम और ग्यारहवें रुद्र हनुमान—सब-के-सब स्वरूपकी दृष्टिसे तत्त्वतः अभिन्न हैं और ॐकार तीनोंका वाचक है।

भगवान् शिवके वानराकार-विग्रह श्रीहनुमानकी प्रशस्ति है—

जयति मंगलागार संसारभारापहर वानराकार विग्रह पुरारी॥

(विनय-पत्रिका २७)

मन्त्रद्रष्टा ऋषिके द्वारा ऋग्वेदमें सर्वाभीष्टफलप्रद, वानराकार-विग्रह शिवका संस्तवन है कि 'हम रुद्रोंके एक रूप हनुमानका जो रुद्रकर्मा—शत्रु-संहारमें समर्थ हैं; अपने इष्टकी सिद्धिके लिये आवाहन करते हैं।'—

'…आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे।'

(१०। ६४। ८)

इस मन्त्रके भाष्यमें उपर्युक्त कथनकी सत्यता चरितार्थ होती है। महामति नीलकण्ठका कथन है—

'…रुद्रस्तं हनुमद्रूपं रुद्रेषु मध्ये रुद्रियं रुद्रकर्मार्हं शत्रुसंहारक्षमं हवामहे ऊतये स्वकार्यसमृद्धये स्वेष्ट-सिद्ध्यर्थमित्यर्थः।' (मन्त्ररामायण ७१)

हनुमानजी श्रीरामके पार्षद हैं। वेदमन्त्र है—

स स नीळेभिः प्रसहानो……मायाः।

(ऋग्वेद १०।९९।२)

उपर्युक्त वेद-मन्त्रके नीलकण्ठकृत भाष्यमें श्रीहनुमानके पार्षदरूपपर प्रकाश पड़ता है—

'…हनुमदादिभिः स रामः सनीडेभिः समाननीडैः स्वलोकवासिभिः पार्षदैः……' (मन्त्ररामायण २)

महाकवि सेनापतिने श्रीहनुमानके चरित्रके वर्णनमें कहा है कि 'उनकी कीर्ति वेदोंमें निरूपित है और उन्होंने जो कुछ भी किया, उससे श्रीरामका ही प्रताप प्रकट होता है।'—

'सेनापति' वेद मैं बखानैं, तीन लोक जानैं,
सो तो महाराजा रामचन्द्र कौं प्रताप है।

(कवित्तरत्नाकर ५। ५०)

श्रीहनुमानजीके रूप, चरित्र और लीलामें विशेष बात यह है कि वे सदा श्रीरामके सम्मुख उनके ध्यान, भजन और सेवामें तत्पर रहते हैं। इसका स्वरूप बुधकौशिक ऋषिद्वारा की गयी श्रीरामकी वन्दनामें परिलक्षित होता है—

पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम्।

(श्रीरामरक्षास्तोत्र ३१)

श्रीरामकी आज्ञाके पालनमें हनुमानजी सदा तत्पर रहते हैं। उपनिषदोंमें वर्णन मिलता है कि द्विभुज-रूपधारी श्रीरघुनाथजी अयोध्याके राजसिंहासनपर विराजमान हैं। वे धनुष धारण किये हुए हैं और उनका चित्त स्वभावतः प्रसन्न है।…श्रीरामके उत्तर और दक्षिणभागमें क्रमशः शत्रुघ्न और भरत स्थित हैं। श्रीहनुमान श्रोताके रूपमें भगवान्‌के सम्मुख हाथ जोड़कर त्रिकोण-मण्डलमें खड़े हैं—

हनूमन्तं च श्रोतारमग्रतः स्यात् त्रिकोणगम्॥

(श्रीरामपूर्वतापनीय-उप० ४। ३२)

श्रीहनुमानजीका यश वेद-विदित है। गोस्वामी तुलसीदासजीकी वाणी है—

'बाँकी बिरदावली बिदित बेद गाइअत।'

(हनुमानबाहुक ३१)

हनुमानजीके सम्बन्धमें वेदरूपी बन्दीजन कहते हैं कि आप पूरी प्रतिज्ञावाले हैं—

'बेद-बंदी बदत पैज पूरो।'

(हनुमानबाहुक ३)

श्रीरामपूर्वतापनीय-उपनिषद्‌में उल्लेख है कि (सीतान्वेषणकालमें) श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंके आगे बढ़नेपर उन्हें वायु-पुत्र भक्तवर हनुमानजी मिले, जिन्होंने कपिराज सुग्रीवको बुलाकर उनके साथ दोनों भाइयोंकी मैत्री करवायी—

पूजितो वीरपुत्रेण भक्तेन च कपीश्वरम्।
आहूय शंसता सर्वमाद्यन्तं रामलक्ष्मणौ॥

(४। २०)

श्रीनारायणविरचित 'दीपिका' टीकामें उपर्युक्त श्लोकका भाष्य है—

'पूजितौ सन्तौ ईरो वायुस्तस्य पुत्रेण भक्तेन भजनपरेण हनुमता.....।'

श्रीहनुमानने सुग्रीवकी आज्ञासे श्रीरामकी अँगूठी लेकर समुद्रको पार करके लंकामें जाकर अशोकवनमें भगवती सीताका दर्शन किया और फिर लंकाको जलाकर श्रीरामके पास वापस आ गये। श्रीरामपूर्वतापनीय-उपनिषद्में इसका संक्षिप्त विवरण मिलता है—

ततस्ततार हनुमानब्धिं लङ्कां समाययौ॥
सीतां दृष्ट्वासुरान् हत्वा पुरं दग्ध्वा तथा स्वयम्।
स्वयमागत्य रामाय न्यवेदयत तत्त्वतः॥

(श्रीरामपूर्वता० उप० ४। २५-२६)

'हनुमानजीने (अशोक-वाटिकामें) सीताजीका दर्शन किया और राक्षसोंका संहार करके लंकापुरीको भस्म कर दिया। पुनः लौटकर उन्होंने श्रीरामजीसे सारी बातें यथार्थरूपमें निवेदित कर दीं।'

ऋग्वेदकी एक ऋचामें श्रीहनुमानके समुद्र-लङ्घनकी इच्छाका अभिव्यञ्जन मिलता है—

प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन् कुमारो न वीरुधः प्रसर्पदुर्वीः।
ससं न पक्वमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः॥

(१०। ७९। ३)

उपर्युक्त ऋचापर नीलकण्ठका भाष्य इस प्रकार है—

'....प्रमातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्नित्युत्तरमन्त्रे प्रकर्षेण तीर्त्वा मातुर्गुह्यमिच्छन्निति लिङ्गाद्धनू गुहा शिर इत्यादि लिङ्गाच्च सीतान्वेषणार्थं समुद्रं तरितुकामस्य हनुमत एवैतद्रूपं वर्ण्यत इति सहृदयैरेव ज्ञेयम्।' (मन्त्ररामायण ७४)

इसी प्रकार ऋग्वेदकी एक अन्य ऋचामें मैनाकका स्पर्श करते हुए समुद्र लाँघनेका उल्लेख है—

अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मती।
स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि॥

(९। ७१। ३)

इस मन्त्रका भाष्य है—

'अद्रिभिरिति—स हरिः मध्येमार्गम् अद्रिभिः मैनाकपर्वतेन समुद्रमध्यादुद्गतेन सुतः प्रसुतो मयि विश्रमस्वेति आज्ञप्तः सन् तं गभस्त्योः बाहुभ्यां पवते गच्छति। हस्तस्पर्शमात्रेण तं सम्भावयति, न तु तस्य पृष्ठे तिष्ठतीत्यर्थः। यतः वृषायते वृषवद्बलं स्वीयं प्रकाशयति, अत एव नभसा आकाशेन वेपते सर्वत्र गच्छति'...।'

(मन्त्ररामायण ८८)

'यहाँ समुद्र-लङ्घनके समय श्रीहनुमानद्वारा मैनाक-पर्वतके स्पर्शमात्रका वर्णन है। मैनाकने समुद्रके मध्यसे उद्गत होकर उनसे विश्राम करनेका संकेत किया, किंतु श्रीहनुमानने हाथसे छूकर उसको सम्मानित किया, उसके पृष्ठभागपर विश्राम नहीं किया।'

श्रीहनुमानजीने समुद्रको पार किया और अत्यन्त रमणीय लंकामें पहुँच गये। उन्होंने अशोक-वाटिकामें सीताजीका दर्शन कर उनके श्रवणोंको अमृत-तुल्य मधुर वचनोंसे सींचना आरम्भ किया—

उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि। (ऋग्वेद ९। ६९। २)

श्रीनीलकण्ठने उपर्युक्त मन्त्रका भाष्य यों किया है—

'उपो—उपैव समीपे एव मतिर्मेधावी हनुमान् पृच्यते संयुज्यते, तेन च मातुः कर्णे मधु मधुरम् अमृततुल्यं वाक्यम्—'जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः'—इत्यादिकं सिच्यते श्राव्यते।' (मन्त्ररामायण ७६)

श्रीराम-दास अथवा विष्णु-भक्तके रूपमें उन्होंने भगवती सीताको अपना परिचय दिया। ऋग्वेद १०। ६३। ५ का भाष्य है—

'विवासं प्रवासमपि कृतवानस्मि रामदासोऽहं त्वामुपागतोऽस्मि'...। विष्णुभक्तोऽहं यज्ञादीनामनित्यफलतां ज्ञात्वा शुद्धबोधोल्लासिनीं श्रद्धां त्वां प्राप्तोऽस्मीत्यर्थः।'

(मन्त्ररामायण ७७)

श्रीहनुमानने कहा कि मैंने श्रीरामके अनुग्रहसे आपका दर्शन किया है। बिना भगवदनुग्रहके उनकी तेजोमयी शक्तिका दर्शन किसीके भी द्वारा सम्भव नहीं है।

....नेन्द्रादृते पवते धाम किंचन॥

(ऋग्वेद ९। ६९। ६)

उपर्युक्त मन्त्रका भाष्य है—

'इन्द्रादृते इन्द्रानुग्रहं विना किंचन किमपि सत्त्वं धाम इन्द्रस्यैव गृहं सीतारूपं न पवते न शोधनायवा गच्छति। रामानुग्रहात्त्वामहं दृष्टवानस्मीत्यर्थः।'

(मन्त्ररामायण ८१)

राक्षसोंद्वारा श्रीहनुमानकी पूँछमें आग प्रज्वलित किये जानेपर भगवती सीताने वायु (हनुमानजीके पिता)-के मित्र अग्निसे हनुमानजीकी रक्षाके लिये प्रार्थना की—

रक्षोहणं वाजिनमाजिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा सरिषः पातु नक्तम्॥

(ऋग्वेद १०। ८७। १)

महामति नीलकण्ठका इसपर भाष्य है—

'एवं बद्धस्य हनुमतः पुच्छे लापितमग्निं सीता प्रार्थयते—रक्षोहणमिति। रक्षोहणं रक्षसाम् अक्षादीनां हन्तारं वाजिनं हरिं वानरं दृष्ट्वा आजिघर्मि क्षरामि शोकेनाश्रूणि निवर्तया-मीत्यर्थः। अतो मित्रं हनुमत्पितुर्वायोः सखायं प्रथिष्ठं प्रथमानम् अग्निं शर्म हनूमते कल्याणम् उपयामि उपेत्य याचामि। ......शिशानो दीप्यमानोऽग्निः क्रतुभिः यज्ञैः पूर्वम् अस्माभिः समिद्धः संदीपितः स इदानीं नोऽस्मत्सम्बन्धिनं जनं दिवा नक्तं च सरिषः हिंसातः पातु।' (मन्त्ररामायण १०४)

भगवान् श्रीराम रावणका वध कर तथा भगवती सीताकी अग्नि-परीक्षा कर श्रीहनुमान आदिके साथ सपत्नीक अयोध्या वापस आ गये—

स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गयमारे अवद्य आगात्। (ऋग्वेद १०।९९।५)

उपर्युक्त मन्त्रका भाष्य है—

'स रुद्रेभिरिति स रामः रुद्रेभिः हनुमदादिभिः सहायैः ऋभ्वा ऋतेन भासनया देव्या सीतया सह गयं स्वस्थानं आगात् आगतवान्। कीदृश आरे अवद्य दूरनिरस्तदोषः सीतां रावणहृतां सर्वदेवसंनिधौ संशोध्येत्यर्थः किं कृत्वा गयम् आगात् अशस्तवारो हित्वी प्रतिकूलकाले गृहं त्यक्त्वा पुनर्देव्या सहागादित्यर्थः।' (मन्त्ररामायण ५)

महाभारतमें उल्लेख है कि भगवती सीताकी आज्ञा—आशीर्वाद और वरदानसे देवता—यक्ष आदि हनुमानजीकी सेवा-अर्चामें तत्पर रहते हैं। ऋग्वेदका मन्त्र है—

अत्राण्यस्मै पड्भिः सं भरन्त्युत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु। (ऋग्वेद १०। ७९। २)

उपर्युक्त मन्त्रके एक अंशके भाष्यमें महामति नीलकण्ठकी उक्ति है—

'देवाः सीताज्ञया खलु यक्षा एनं सेवन्त इति भारते दृष्टम्। विक्षु प्रजासु अधि उपरि स्थिताः गन्धर्वादयः नमसा नमस्कारेण निमित्तेन उत्तानहस्ताः बद्धाञ्जलयो भरन्तीति सम्बन्धः।' (मन्त्ररामायण ७३)

'बृहद्भागवतामृत' में श्रीनारदजीने गोपकुमारको वेद-शास्त्र-वर्णित हनुमत्प्रियेश्वर श्रीरामके गुण-वैभवके स्मरणपूर्वक कीर्तन करनेकी जो सीख दी है, उससे यह स्पष्ट है कि श्रीहनुमानजीका पुण्य-चरित वेद-शास्त्रवर्णित है; क्योंकि स्वामी श्रीरामके कार्यसम्पादनमें हनुमानके सहयोगकी प्रमुखता तथा अभिन्नता है—

सीतापते श्रीरघुनाथ लक्ष्मण-
ज्येष्ठ प्रभो श्रीहनुमत्प्रियेश्वर।
इत्यादिकं कीर्तय वेदशास्त्रतः
ख्यातं स्मरंस्तद्गुणरूपवैभवम्॥

(२। ४। २४३)

श्रीहनुमानका वेदगत चरित्र उन्हींकी प्रसन्नता और कृपासे ही समझमें आ सकता है।

—(श्रीरामलाल)

महावीर हनुमान!

(रचयिता—श्रीगोपीनाथजी उपाध्याय, साहित्यरत्न)

रामसे है नेह, स्वर्ण-शैलके समान देह,
ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, गुणके निधान हैं।
महाबलशाली हैं, अखण्ड ब्रह्मचारी, यती,
वायुके समान वेग, शौर्यमें महान हैं॥
राघवके दूत बन लंकमें निशंक गये,
सीता-सुधि लाये, कपि-यूथके प्रधान हैं।
भक्ति-प्रतिपाल, क्रूर दानवोंके काल-व्याल,
अञ्जनीके लाल महावीर हनुमान हैं॥

वाल्मीकिरामायण, हनुमन्नाटक एवं मानसमें श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० श्रीसुरेशव्रत राय, एम्० ए०, डी० फिल्० एल्-एल्० बी०)

लंका-अभियान ही श्रीराम-लीलाका आधारभूत घटनाचक्र है और इस घटनाचक्रके सूत्रधार रामायणके नायक श्रीरामकी अपेक्षा अञ्जनी-पुत्र श्रीहनुमान ही अधिक उपयुक्त दीखते हैं। दास्यभावकी प्रधानताके कारण तुलसीदासजीके रामचरितमानसमें श्रीहनुमानका प्रथम दर्शन दासके रूपमें ही होता है। रावण-दरबारमें पकड़कर लाये गये श्रीहनुमान अत्यन्त निर्भीक एवं स्पष्टवक्ता हैं। इस बातकी पुष्टि होती है *'भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥'*-जैसे आतङ्कपूर्ण रावणके सामने *'देखि प्रताप न कपि मन संका।'* से पवनपुत्रके चातुर्य एवं पराक्रमपर रीझकर भगवान् श्रीरामने अत्यन्त विह्वल एवं कृतज्ञतापूर्ण स्वरमें कहा—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥

(रामचरितमानस ५।३१।२½)

परंतु तेजस्वी एवं पराक्रमी पवनपुत्र अपनी प्रशंसा सुनकर भावुक सेवककी भाँति प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ते हैं। शालीनता एवं नम्रताके आदर्श श्रीहनुमानने अपनी प्रशंसाके उत्तरमें—

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

(रामचरितमानस ५।३२।४½)

—केवल इतना ही कहते हैं और पुरस्कारस्वरूप याचना करते हैं—श्रीराम-भक्तिकी। यही भक्तिमार्ग और भक्ति-भावना तुलसीके मानसका प्रतिपाद्य विषय है। श्रीहनुमानके पराक्रम एवं निःसीम क्षमतासे दूरवर्ती प्रदेशके लोग भी परिचित थे। लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर सुषेण वैद्यने ओषधि बतलानेके साथ ही सीधे श्रीहनुमानसे उसे लानेके लिये भी कहा और उन्होंने उसे पूरा किया। जगाये जानेपर कुम्भकर्णने रावणसे कहा—'जिनके हनुमान-जैसे सेवक हों, उन श्रीरामको कौन जीत सकता है।' राज्याभिषेकके उपरान्त श्रीरामने समस्त वानरोंको सम्मानसहित विदा किया, केवल श्रीहनुमान ही एकमात्र अपवाद थे।

श्रेष्ठ, अद्वितीय एवं उदात्त चरितके धनी श्रीहनुमान तुलसीदासजीके रामचरितमानसमें सर्वत्र आदर्श श्रीराम-सेवकके रूपमें चित्रित हुए हैं।

चौदह अङ्कोंवाले 'हनुमन्नाटक' की कथावस्तु रामचरितमानस-जैसी ही है। उसका नाम तो 'हनुमन्नाटक' अवश्य है, परंतु उसके नायक श्रीराम ही हैं। जन्म, वंशपरिचय आदिकी अपेक्षा श्रीहनुमानका प्रथम परिचय पम्पापुरसे भेजे गये दूतके रूपमें मिलता है। सीताकी खोजके लिये प्रस्थान करते समय उपस्थित संवादमें पवनपुत्रका पराक्रमी व्यक्तित्व प्रथम बार मुखरित होता है। उस समय वे कहते हैं—'प्रभो! आज्ञा दीजिये, क्या मैं समुद्रको सोख लूँ या रावण और जानकी-सहित लंकाको ही यहाँ उठा लाऊँ अथवा पर्वतोंद्वारा समुद्रको ही पाट दूँ?'

देवाज्ञां देहि राज्ञां त्वमसि कुलगुरुः शोषये किं पयोधिं
किं वा लङ्कां सलङ्काधिपतिमुपनये जानकीं मानकीर्णाम्।
सेतुं बध्नामि मत्तः स्फुटितगिरितटीभूतभङ्गातरंगा-
दुद्भ्राम्यन्नक्रचक्रोऽपि च मकरकुलग्राहचीत्कारघोरम्॥

(हनुमन्नाटक ६।५)

इसमें अन्य प्रचलित कथाओंकी भाँति श्रीहनुमानकी लंकामें न तो विभीषणसे भेंट होती है और न अशोक-वाटिकाकी खोजमें वे किसीकी सहायता ही लेते हैं। अशोक-वाटिका-विध्वंसके अनन्तर अपने दरबारमें रावण श्रीहनुमानको दुर्वचन कहता हुआ डींगें अवश्य मारता है, परंतु पराक्रमी पवनपुत्रसे वह भयभीत एवं चकित भी होता है। उसकी भरी सभामें अकेले हनुमानने उसकी भर्त्सनापूर्ण स्वरमें प्रताडना की।

लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर जब श्रीरामसहित सारी वानर-सेना हताश हो जाती है, तब पवनपुत्र अपनी ओजस्वी वाणीसे सबके मनमें आशाका संचार करते हैं और द्रोणगिरिपर पहुँचकर संजीवनीयुक्त शैल-खण्डको उखाड़कर तीरकी भाँति चलते हुए शिविरमें आ पहुँचते हैं। अन्तमें नम्र एवं विनयशील अञ्जनीपुत्र अपने बल, प्रताप एवं पराक्रमका सारा श्रेय प्रभु श्रीरामको ही देते हैं। इस अर्चनाके साथ 'हनुमन्नाटक' का समापन होता है।

स्पष्टतः 'रामचरितमानस' एवं 'हनुमन्नाटक' में श्रीहनुमानका चरित्र-चित्रण लगभग एक-जैसा ही मिलता है। तटस्थ एवं समालोचनात्मक विज्ञजन जानते हैं

कि 'सीताकी खोज', 'अहिरावणके पाशसे श्रीराम-लक्ष्मणकी मुक्ति', 'सुषेण वैद्य और तदनन्तर संजीवनी ओषधिको लाना'-जैसी कतिपय महत्त्वपूर्ण घटनाएँ एकमात्र अञ्जनी-पुत्रके शौर्य एवं पराक्रमका ही प्रतिफल थीं। जिनके अभावमें श्रीरामकथाका सौन्दर्य इतना कभी न निखर पाता।

वाल्मीकिने पवनपुत्रकी निर्णायक भूमिकाको केवल अच्छी प्रकार परखा ही नहीं, बल्कि उनके नेतृत्व-गुणयुक्त, साहसी एवं उदात्त चरित्रको भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपनी रामायणके अन्तमें हनुमानजीके वंशपरिचयके पूर्व उनके अतुलित बलका भी उल्लेख किया है—

अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च।
न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम॥
शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः॥

(वा० रा० ७।३५।२-३)

अपने युगके प्रख्यात शक्तिशाली रावण एवं वालीका सम्मिलित बल भी हनुमानजीके बलकी तुलना नहीं कर सकता था। शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम एवं प्रभाव-जैसे समस्त सद्‌गुण पवनपुत्रके भीतर घर कर रखे हैं। ऐसे श्रीहनुमानकी शिशु-लीलाका वर्णन करते हुए बताया गया है कि किस प्रकार वे सूर्यको ग्रास बनानेके लिये गये, कैसे उनका नाम 'हनुमान' पड़ा और किस प्रकार उन्हें देवताओंसे अमोघ आशीर्वाद मिले।

श्रीहनुमानने व्याकरण, सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, महाभाष्य, छन्दःशास्त्र एवं अन्यान्य शास्त्रोंका भी गहन अध्ययन किया था। अपनी शङ्काओंके समाधानके लिये वे सूर्यके पास जाते थे। पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, नीति, गम्भीरता, धैर्य, ज्ञान और तपस्याके अनुष्ठानमें हनुमानजीसे बढ़कर भला और कौन है?

किष्किन्धाके पास सुग्रीवकी ओरसे ब्राह्मण-वेषमें जाकर हनुमानजीने अपनी प्रथम भेंटमें ही श्रीराम एवं लक्ष्मणको अपने सम्भाषण, अपनी विद्वत्ता, उच्चारण-शुद्धता आदिसे प्रभावित कर दिया। हनुमान केवल चारों वेदों और व्याकरणके ही नहीं, अपितु भारतके विभिन्न भागोंमें बोली जानेवाली अनेक भाषाओंके भी ज्ञाता थे। इसका परिचय अशोक-वाटिकामें सीता-संवादके लिये भाषा-चयनसम्बन्धी उनके अन्तर्द्वन्द्व एवं निर्णयसे मिलता है—

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता॥

(वा० रा० ५।३०।१८-१९)

'यदि मैं द्विजकी भाँति संस्कृत-वाणीका प्रयोग करूँगा तो सीताजी मुझे रावण समझकर भयभीत हो जायँगी। ऐसी दशामें अवश्य ही मुझे सार्थक भाषाका प्रयोग करना चाहिये, जिसे अयोध्याके आसपासकी साधारण जनता बोलती है, अन्यथा इन सती-साध्वी सीताको मैं उचित आश्वासन नहीं दे सकता।'

ऐसा विचारकर श्रीहनुमानने सामान्य भाषामें ही वार्तालाप किया। भाषाविद् होनेके साथ-साथ पवनपुत्र तत्त्वज्ञ एवं अनुभवशील दार्शनिक भी थे। उन्होंने पतिके निधनसे शोकार्त वालीकी पत्नी ताराको सान्त्वना देते हुए कहा कि 'अपने शुभाशुभ कर्म तदनुसार ही फल देनेवाले होते हैं। पानीके बुलबुलेके समान इस शरीरमें रहकर कौन जीव किसके लिये शोचनीय है। प्राणियोंके जन्म और मृत्युका कोई समय निश्चित नहीं है, अतः उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये।'

सीताकी खोजमें वानर विभिन्न दिशाओंमें भेजे गये; परंतु श्रीहनुमानको दक्षिण दिशाकी ओर जानेवाले दलमें भेजा गया; क्योंकि सुग्रीवको यह विश्वास था कि केवल हनुमान ही सीताकी खोज करनेमें सफल हो सकेंगे—'**स हि तस्मिन् हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थोऽर्थसाधने॥**' (वा० रा० ४।४४।१) अद्वितीय क्षमता एवं गुणोंके कारण श्रीरामको भी ऐसा ही विश्वास था। यही कारण है कि जानकीजीके लिये अभिज्ञानके रूपमें श्रीरामने अपनी मुद्रिका इन्हें ही दी, भले ही उस दलके नेता अङ्गद थे तथा उस दलमें जाम्बवान्, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द और द्विविद-जैसे पराक्रमी वानर थे, किंतु इन्हें वह सौभाग्य प्राप्त न हुआ। लौटनेकी अवधि बीत जानेपर कार्य सिद्ध न होनेसे हताश वानरोंने सुग्रीवके दण्डके भयसे जब स्वयम्प्रभावाली गुफामें ही स्थायी रूपसे रहनेका निश्चय किया तथा तार नामक वानरने अङ्गदको यहाँतक समझाया कि इसी बहाने तुम्हें समाप्त करनेके लिये सुग्रीवका यह एक षड्यन्त्र-मात्र है, ऐसे समय श्रीहनुमान अङ्गदको सुग्रीव और

लक्ष्मणके पातालभेदी वाणोंका भय दिखलाकर उन्हें तथा समस्त वानरोंको न्याय्य मार्गपर ले आये।

सभी रामायणोंका 'सुन्दरकाण्ड' वस्तुतः श्रीहनुमानके सच्चरित्र, वाक्-चातुर्य, बुद्धिमत्ता एवं अन्यान्य गुणोंसे सम्पन्न उदात्त चरित्रका स्वर्णिम अध्याय है।

प्रचलित श्रीराम-कथाओंमें श्रीहनुमानको बलशाली, परंतु सामान्य चपल वानरके रूपमें प्रस्तुत किया गया है, जिसे अशोक-वाटिकाके रसीले फलोंको देखकर भूख लग जाती है और वह सीतासे आज्ञा लेकर वानर-स्वभावके कारण तोड़-फोड़ करता हुआ फल खाने लगता है; किंतु वाल्मीकिके हनुमान इससे सर्वथा भिन्न, धीर एवं गम्भीर हैं। पवनपुत्रके स्वगत-कथनसे स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि अशोक-वाटिका-विध्वंस करनेमें इनके तीन उद्देश्य थे— १. साम, दाम एवं भेदसे अभेद्य शत्रुको अपने पराक्रम-प्रदर्शनद्वारा मुख्य आक्रमणके पूर्व आतङ्कित करना, २. रावणकी सैन्य-शक्तिका अनुमान लगाना और ३. जानकीको दिये गये आश्वासनोंका उन्हें विश्वास दिलाना। अशोक-वाटिका-विध्वंस ही संघर्षका एकमात्र मार्ग था। इस 'मिनी'-युद्धमें ही किंकर नामक राक्षस, प्रहस्तपुत्र जम्बुमाली, मन्त्रियोंके सात पुत्र, विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण नामक सेनापति, रावणपुत्र अक्षकुमार तथा असंख्य योद्धा मारे गये। इसी संघर्षके कारण श्रीहनुमानजी रावणके राजदरबारमें पहुँचकर वहाँ निर्भीकतापूर्वक रावणको प्रताडित कर सके और उसकी सैन्य-शक्तिकी जानकारी भी प्राप्त कर सके। लंकासे लौटनेपर श्रीरामने श्रीहनुमानसे वहाँकी सैन्य-व्यवस्थाके विषयमें जो प्रश्न पूछा और उसका जो सही और विस्तृत विवरणात्मक उत्तर उन्होंने दिया, उससे उनकी सूक्ष्म निरीक्षणशक्ति एवं स्मृतिका पूर्ण परिचय मिलता है। अकेले अपने बलपर विवरणात्मक गुप्तचर-कार्य करना श्रीहनुमानद्वारा ही सम्भव था।

संजीवनी ओषधिको न पहचाननेके कारण समूचे पर्वत-शृङ्गको ही उखाड़ लानेकी अज्ञतासूचक कथा वाल्मीकिको स्वीकार नहीं है। उनके अनुसार सुषेण वैद्यकी रातों-रात हिमालयतक जाकर संजीवनी लानेकी टेढ़ी शर्तको पूरा करना श्रीहनुमानके अतिरिक्त अन्य किसीके द्वारा सम्भव न था। ऋषभ एवं कैलासके बीच दीप्तिमान् ओषधि-पर्वतपर मृतसंजीवनी, विशल्य-करणी, सुवर्णकरणी और संधानी ओषधियाँ श्रीहनुमानके वहाँ पहुँचते ही तत्काल अदृश्य हो गयीं। ओषधियोंको न देखकर हनुमानजी रोषसे गर्जना करने लगे और विपत्तिके समय श्रीरामकी सहायता करनेकी अपेक्षा उसमें और बाधा उपस्थित करनेवाले उस धातुयुक्त पर्वतको ही उखाड़ लिया। उसकी चोटियाँ टूट-टूटकर इधर-उधर बिखर गयीं।

रावण-वधके पश्चात् श्रीरामकी आज्ञासे वैदेहीको संदेश देनेके लिये विजयी योद्धाके रूपमें सीधे चले जानेकी अपेक्षा पवनपुत्रने विभीषणसे आज्ञा माँगकर लंकामें प्रवेश किया, यह थी उनकी नम्रता और शिष्टता तथा अनुशासन-परायणता। इन्होंने ही शोकमग्न एवं श्रीरामकी प्रतीक्षामें व्याकुल भरतको भी शुभ संवाद सुनाया था। श्रीराम-कथामें हनुमानकी निर्णायक भूमिकाका समापन-परिचय श्रीरामद्वारा अवरुद्ध-कण्ठयुक्त कृतज्ञता-ज्ञापनसे मिलता है।

हनुमानजी केवल श्रीरामकालीन ही नहीं, अपितु रामायणकालसे आजतक जन-जीवनकी भक्ति, शक्ति, पराक्रम और विश्वासके स्रोत रहे हैं। चाहे पहलवान हो चाहे दुर्बल, चाहे बच्चे-बूढ़े हों चाहे धनी-निर्धन— आप सबके आराध्य हैं। रामचरितमानस, हनुमन्नाटक एवं वाल्मीकिरामायण—ये सभी ऐसे ग्रन्थ हैं, जो समाजको दिशा-ज्ञान कराते हैं। इन सभी ग्रन्थोंमें श्रीराम-भक्त श्रीहनुमानका ऐसा अनोखा स्वरूप अङ्कित हुआ है कि ये श्रीरामके समान ही आराध्य एवं आदर्श रूपमें प्रतिष्ठित हो गये।

संस्कृतके प्रमुख नाटकोंमें श्रीहनुमानकी श्रीराम-भक्ति

(लेखक—श्रीबापूलालजी आंजना)

अनेक संस्कृत-नाटकोंमें श्रीहनुमानके अद्वितीय पराक्रमकी सर्वाधिक प्रशस्ति है। इसके अतिरिक्त संस्कृत-नाटककारोंने श्रीहनुमानके चरित्रमें सेवा-परायणता, स्वामिभक्ति, धैर्यशीलता, निरभिमानता, प्राणिमात्रके प्रति प्रेम, भ्रातृ-प्रेम आदि गुणोंका भी निरूपण कर उनके चरित्रको उत्कर्ष प्रदान किया है और उनके श्रीराम-भक्ति-पक्षको सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत किया है। श्रीराम-भक्तिका भाव समस्त मध्यकालीन श्रीराम-साहित्यमें व्याप्त है। श्रीहनुमान-की श्रीराम-भक्तिका सर्वप्रथम उल्लेख हमें वाल्मीकि-रामायण (उत्तरकाण्ड, सर्ग ४०)-में मिलता है।

श्रीभासकृत 'अभिषेक-नाटक' में श्रीरामके लिये रावणद्वारा 'शृगाल' सम्बोधन हनुमानजीको सहन नहीं होता। वे रावणको 'राक्षसाधम,' 'प्रक्षीणपुण्य,' 'अभागा' और 'समाप्तबल' कहते हैं। उनके श्रीराम 'वीराग्रणी', 'इन्द्र-तुल्य' बली एवं 'भुवनैकनाथ' हैं। वे कहते हैं—

नक्तंचरापसद रावण राघवं तं
वीराग्रगण्यमतुलं त्रिदशेन्द्रकल्पम्।
प्रक्षीणपुण्य भक्ताभुवनैकनाथे
वक्तुं किमेवमुचितं गतसार नीचैः॥

(३। २१)

श्रीरामके पैरोंको श्रीहनुमान भक्तिके साथ दबाते हैं (**'पादमक्षस्य हन्तुः'**—दूताङ्गद नाटक २७)। वे स्थल-स्थलपर श्रीरामके चरणारविन्दोंमें प्रणाम करते हैं (**'सपादपङ्कजस्पर्शं प्रणम्य'**—महावीरचरित नाटक पृ० ३२१)। श्रीसीताकी पवित्रताका वर्णन वे इस प्रकार करते हैं—'जैसे आकाशगङ्गा हिमालयसे उद्गत होकर समुद्रको पवित्र करती हुई सभी लोगोंकी वन्दनीया हैं, उसी प्रकार आप भी अपने पिता जनक एवं क्षत्रियवंशके अलंकारस्वरूप प्रियतम श्रीरामको पवित्र करती हैं। (पवित्रको भी पवित्र करनेके कारण आप पूजाके योग्य हैं।) (आश्चर्यचूडामणि नाटक ६। ६) यहाँ श्रीहनुमानकी श्रीसीताविषयक भक्ति प्रकट हुई है।

जहाँ-कहीं भी श्रीराम उनके पराक्रमोंका वर्णन करते हैं, भक्तिके कारण हनुमानजीके नेत्र लज्जासे नीचे झुक जाते हैं। लंकासे श्रीसीताविषयक समाचारको लेकर लौटनेपर जब श्रीराम उनका प्रेमसे आलिङ्गन करते हैं, तब 'मैंने तो मात्र आपका दौत्य किया है'—यह कहते हुए उनके नेत्र लज्जासे झुक जाते हैं—

आश्लेषार्पणपारितोषिकमहं नार्हामि वार्ताहरो
जल्पन्नित्यनिलात्मजः स जयति व्रीडाजडो राघवे॥

(हनुमन्नाटक ६। ३६)

पराक्रमपूर्ण कृत्योंमें भी वे नतमस्तक हो जाते हैं और उनका कर्ता श्रीरामको ही मानते हैं—'भगवन्! लंका तो जानकीजीके निःश्वासों एवं आपकी क्रोधाग्निसे पहले ही भस्म हो गयी थी, मैं तो मात्र एक निमित्त बना हूँ'—

निःश्वासेनैव सीताया राजन् कोपानलेन ते।
दग्धपूर्वा तु सा लङ्का निमित्तमभवत् कपिः॥

(हनुमन्नाटक ६। ४३)

आपके ही प्रभावसे मैंने समुद्र-संतरण किया। वानरका बल ही कितना, वह तो केवल एक डालसे दूसरी डालपर उछल सकता है—

यत्पुनर्लङ्घितोऽम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव॥

(हनुमन्नाटक ६। ४४)

गन्धमादनपर्वतपर किंनरगणोंद्वारा गीयमान भगवान् श्रीरामके अद्भुत चरित्रोंको सुनते हुए, मानो अमृतके सागरमें गोता लगाते हुए, बहुत समय बीत जानेपर भी उन्हें उस कालका कुछ आभास नहीं होता—

अत्र स्थितो रघुपतेश्चरिताद्भुतानि
देवस्य किंनरगणैरुपवर्णितानि।
आकर्णयन्नमृतसिन्धुमिवावगाहः
कालं महान्तमपि यातमहं न जाने॥

(सौगन्धिकाहरण २१)

यहाँ श्रीविश्वनाथ कविराज भागवतपुराणसे प्रभावित प्रतीत होते हैं, जहाँ यह उल्लेख किया गया है कि श्रीहनुमान हिमालयके उत्तरवर्ती किम्पुरुषवर्षमें अन्य किंनरोंके साथ अविचल भक्तिभावसे श्रीरामकी उपासना करते एवं गन्धर्वोंद्वारा गीयमान उनके चरित्रको सुनते रहते हैं (श्रीमद्भागवत ५। १९। १—५)।

भगवान् श्रीरामविषयक उनकी भक्तिके साथ-साथ भगवान् श्रीराम तथा जगदम्बा जानकीजीकी उनपर अगाध कृपाका निदर्शन भी दिया गया है। राज्याभिषेकके उत्सवमें इन्द्रद्वारा प्रेषित सर्वश्रेष्ठ हार भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने वैदेहीको दिया। उसे भगवती जगदम्बा जानकीजीने वानरी सेनाके प्रमुख सुग्रीव आदि प्रधान वीरोंके रहते हुए भी अत्यन्त सम्मान एवं स्नेहके साथ श्रीहनुमानजीको दे दिया (सौगन्धिकाहरण ६। २२)। यह प्रसङ्ग वाल्मीकि-

रामायण (६। १२८। ७८-७९)-में भी मिलता है। परवर्ती साहित्यमें यह घटना श्रीहनुमानकी श्रीरामभक्तिविषयक उद्देश्यसे विशेष उत्कर्षके साथ प्रस्तुत की गयी है।

'कल्याण-सौगन्धिक' में भीम एवं श्रीहनुमानके द्वन्द्व-युद्धके बीच एक विद्याधर उपस्थित होकर कहता है—'मुझे इन्द्रने आपलोगोंके पास भेजा है। उनका संदेश है—आप दोनों श्रीराम-लक्ष्मणके समान परस्पर भ्रातृभाव प्रतिष्ठित रखें।' हनुमानजी श्रीरामका नाम सुनते ही श्रीरामविषयक भक्तिभावसे विह्वल हो उठे। उन्होंने भीमको श्रीरामका चरित सुनाया—

हित्वा राज्यसुखं पितुर्वचनतो नक्तंचरान् कानने
हत्वा शूर्पणखानिकारमुषितामन्विष्य सीतां हृताम्।
कृत्वा वालिवधार्जितेन सुहृदा सेतुं व्यतीताम्बुधि-
र्लङ्केशं हतवांस्तमन्यमकरोत् प्रायादयोध्यां पुनः॥

(कल्याण-सौगन्धिक)

नीलकण्ठने उपर्युक्त प्रसङ्गमें श्रीहनुमानकी श्रीरामविषयक भक्तिका वर्णन किया है। नाटककार उक्त प्रसङ्गके लिये महाभारत (वनपर्व, अध्याय १४८)-से प्रभावित हैं, जहाँ श्रीहनुमान भीमको संक्षिप्त श्रीराम-चरित सुनाते हैं।

ऊपरके विवरणसे स्पष्ट है कि संस्कृत-नाटककार श्रीहनुमानकी श्रीरामविषयक भक्तिके लिये वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, भागवतपुराण या अन्यान्य श्रीरामकथा-विषयक ग्रन्थोंके ऋणी हैं। ऐसा होते हुए भी नाटकोंमें उन्हें आदर्श श्रीराम-भक्तके ही रूपमें उपस्थित किया गया है। उनके श्रीराम 'इन्द्र-तुल्य भुवनैकनाथ' (अभिषेक ३। २१) हैं। उनके द्वारा अद्भुत पराक्रमपूर्ण—दिव्य अलौकिक कृत्य—उन्हीं भगवान् श्रीरामकी कृपासे सम्पन्न होते हैं। भगवान् श्रीराम एवं जगदम्बा जानकीजीकी उनपर अगाध अनुकम्पा है।

अपभ्रंश-रामायण 'पउमचरिउ' के श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीश्रीरंजन सूरिदेवजी, एम०ए० [प्राकृत, जैनशास्त्र एवं संस्कृत] साहित्य-आयुर्वेद-पुराण-पालि-जैनदर्शनाचार्य, व्याकरण-तीर्थ, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

भारतीय जन-भावनामें श्रीरामभक्त हनुमानकी प्रतिष्ठा वीरता, जितेन्द्रियता और परिनिष्पन्न ज्ञानके आगारके रूपमें हुई है। अन्तर केवल इतना ही है कि वैदिक साहित्यमें हनुमानको दिव्य व्यक्तित्वसे विभूषित बतलाया गया है और वैदिकेतर जैन-साहित्यमें उनके विभूतिमान् लोकोत्तर व्यक्तित्वको मानवीय धरातलपर प्रतिष्ठित किया गया है। किंतु जहाँतक आदर-भावका प्रश्न है, सम्पूर्ण भारतीय साहित्यमें उन्हें समानरूपसे समादरणीय स्थान प्राप्त है। वे जन-जनको विभिन्न संकटोंसे मुक्त करनेकी क्षमता रखते हैं, इसीलिये लोक-जीवनमें उनका 'संकटमोचन' नाम सर्वप्रथित है। इस प्रकार अपनी गुणातिशयताके कारण ही वे सदा लोकाराध्य बने हुए हैं। हम यहाँ अतुलितबलधाम हनुमानजीके व्यक्तित्व-वैशिष्ट्यके संदर्भमें बहुप्रसिद्ध अपभ्रंश-कवि स्वयम्भूकी रामायण 'पउमचरिउ' के आधारपर संक्षिप्त चर्चा उपन्यस्त करेंगे।

जैन कवि स्वयम्भूके अनुसार चैत्रमासके कृष्णपक्षकी श्रवणनक्षत्रयुक्त अष्टमीको, रात्रिके अन्तिम प्रहरमें, पवनंजयकी पत्नी अञ्जनाने हनुमानको जन्म दिया था। नवजात शिशुके हाथ-पैरमें हल, कमल, वज्र, मछली आदिके शुभ चिह्न अङ्कित थे। फलित ज्योतिषके अनुसार ये चिह्न किसी शिशुके भावी महिमाशाली राजोचित जीवनके संकेतक माने जाते हैं। कहना न होगा कि प्रतापी हनुमानने अपनी उत्कृष्ट रागानुगा भक्तिके द्वारा अपने परम सेव्य मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामको भी वशंवद बना लिया था और स्वयं 'वानराधीश' पदवीको अलंकृत किया था। साथ ही हनुरुह द्वीपमें लालन-पालन होनेके कारण ही उनका 'हनुमान' नाम पड़ा था।

'पउमचरिउ' के रचयिता कवि स्वयम्भूने हनुमानजीका 'भटश्रेष्ठ' के रूपमें स्मरण किया है। हनुमानजीकी पूँछ बड़ी मायामयी थी, जिससे प्रचण्ड पराक्रमी शत्रु भी भय-कम्पित हो जाते थे। 'पउमचरिउ' के श्रीहनुमानकी ध्वजामें उनका अपना ही रूप चित्रित था। श्रीराम जानते थे कि हनुमान जिसके पक्षमें रहेंगे, विजयलक्ष्मी उसीका वरण करेगी। सच पूछिये तो श्रीरामकी सेनामें 'बलवान्' शब्दको अन्वर्थ करनेवाला कोई था तो वे हनुमान ही थे, दूसरा नहीं।

पवनपुत्र हनुमानके 'हनुरुह' द्वीपमें निवास करनेके कारण वह द्वीप धरतीपर अवतीर्ण स्वर्गके एक खण्डकी तरह प्रतीत होता था। हनुरुह द्वीपमें रहनेवाले हनुमान

शिशिरकालीन नयनानन्दकारी दिवाकरकी भाँति सबकी आँखोंके प्रिय थे। किंतु जब वे क्रुद्ध होते थे, तब गजकी भाँति निरंकुश, सिंहकी भाँति रोषपूर्ण और शनिकी भाँति भयावह बन जाते थे। सूर्यकी भाँति दुर्निवार वेगशाली, यमके समान निष्ठुर-दृष्टि, अष्टमीके चन्द्रमाकी नाईं वक्र एवं बुद्धिमें बृहस्पतिके समान श्रीहनुमानके कुपित होनेपर श्रीराम-लक्ष्मण भी विस्मित हो जाते थे। फड़कती हुई लाल-लाल आँखोंवाले श्रीहनुमानका दर्पदीप्त व्यक्तित्व उपमा-प्रयोग-पटु स्वयम्भू कविके शब्दोंमें द्रष्टव्य है—

समुट्ठिओऽरि भद्दणो। समीरणस्स णन्दणो॥
पलंववाहु-पञ्जरो। णिरंकुसो व्व कुञ्जरो॥
महीहरस्स उप्परी। विरुद्धउ व्व केसरी॥
पुरन्तरत्त-लोयणो। सणि व्व सावलोयणो॥
दुवारसो व्व भक्खरो। जमो व्व दिट्ठि-णिट्ठुरो॥
विहिव्व किंचिदुट्ठिओ। ससि व्व अट्ठमो ठिओ॥
विहफ्फइ व्व जम्मणे। अहि व्व कूर-कम्मणे॥

(पउमचरिउ, सुन्दरकाण्ड, संधि ४५)

'पउमचरिउ' के अनुसार श्रीरामके हृदयमें हनुमानजीके प्रति अत्यधिक सम्मानकी भावना रहती थी। यही कारण था कि वे श्रीहनुमानको आधे आसनपर बैठाते थे। जब आसनके एक ओर हनुमान एवं दूसरी ओर श्रीराम बैठते तो वे दोनों मनोमोहक वसन्त और कामदेवकी तरह शोभित होते थे। स्वयम्भू कविने श्रीरामके मुखसे हनुमानकी प्रशंसामें ये शब्द कहलवाये हैं—'आज ही मेरा मनोरथ सफल हुआ है, आज ही मेरा भाग्योदय हुआ है, आज ही मेरी सेना प्रचण्ड हुई है; क्योंकि आज ही चिन्ता-सागरमें निमग्न मुझे श्रीहनुमानरूपी नाव मिली है। पवनपुत्रके मिलनेपर मुझे त्रिलोकीका राज्य ही मिल गया। शत्रुकी सेनामें हनुमानका भार कोई भी नहीं सँभाल सकता?'*

विमानमें बैठकर हनुमानजी जिस समय सीताकी खोजके लिये प्रस्थित हुए, उस समयका जो वर्णन कवि स्वयम्भूने उपस्थित किया है, वह हनुमानके प्रभावशाली महामहिम व्यक्तित्वको बड़ी अलंकारिताके साथ व्यक्त करता है—

'चन्द्रकान्तमणिकी किरण-कान्तिके सदृश चमकते विमानपर समासीन हनुमान आकाशमें रथसहित जानेवाले सूर्यकी तरह भास्वर प्रतीत होते थे। उनका विमान चन्द्रशालाकी भाँति विशाल था तथा वह घण्टाकी ध्वनिसे मुखरित हो रहा था। वह 'घव-घव' और 'घर-घर' शब्दसे अनुगुञ्जित होता हुआ रुन-झुन करती हुई किंकिणियोंके मधुर-स्वरसे झंकृत था। हवामें उड़ती हुई सफेद ध्वजाओंके विस्तृत आटोपसे वह नाचता हुआ-सा लग रहा था। वह छत्रदण्डसे उन्नत और श्वेत सुन्दर चामरोंके भारसे भासमान था। उसमें मणियोंके झरोखे, छज्जे, किंवाड़ और तोरणद्वार थे एवं मूँगा-मोतियोंके झूमर लटक रहे थे। मँडराते हुए भ्रमरोंका समूह उसको चूम रहा था।'†

स्वयम्भू कविने हनुमानके युद्धवीर रूपका विन्यास बड़े मनोयोगसे किया है। इस क्रममें कविने अपभ्रंश भाषाकी समृद्धिकी पराकाष्ठाका प्रदर्शन करते हुए हनुमानको 'विजयलक्ष्मीसे विभूषित', 'शत्रुसंहारक', 'शत्रुसेनाविध्वंसक', 'अस्खलितमान', 'सौभाग्यराशि', 'सत्पुरुषरत्न', 'साक्षात् कामदेव', 'कंदर्पदर्पदलनकारी', 'दृढ़विशालवक्षःस्थल', 'प्रचण्डबाहुदण्ड', 'तनुतेज-पिण्ड' आदि अनेक विस्मयकारी वीरोचित विशेषणोंसे समलंकृत किया है।

हनुमान जिस समय रावणके उद्यानमें बंदिनी सीताकी आज्ञा लेकर लंकासे वापस जानेको उद्यत हुए, उस समय उनके मनमें उद्यानको रौंद डालनेका संकल्प उदित हुआ। हनुमानके वीरोचित संकल्पको कवि स्वयम्भूने सातिशय चमत्कार उत्पन्न करनेवाली नामघात-बहुल भाषामें लिपिबद्ध किया है।

नागपाशमें आबद्ध हनुमानने रावणके दरबारमें उपस्थित होकर सीताके संदर्भमें जिन शब्दोंके द्वारा रावणकी भर्त्सना की, उनसे उनकी परिष्कृत शास्त्रज्ञताका पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। 'जिन'-शासनकी बारह 'अनुप्रेक्षाओं' के रूपमें उनके द्वारा रावणसे कही गयी ज्ञान और वैराग्यकी बातें पर्याप्त उद्बोधक हैं। उनमेंसे दो-एक उद्धरणोंकी बानगी देखिये—

'हे रावण! शरीर अन्य है और जीवका स्वभाव अन्य। धन-धान्य और यौवन—ये सब पराये हैं। घरके स्वजन-परिजन भी पराये हैं। स्त्री भी अपनी नहीं होती। पुत्र भी पराया हो जाता है। इन सबके साथ मेल-मिलाप कुछ ही दिनोंका होता है, फिर मरकर सब एकाकी भटकते फिरते हैं। लोग स्वार्थवश मुँहके मीठे और प्रियभाषी होते हैं। अपने इष्टदेवका धर्म छोड़कर

* पउमचरिउ, सुन्दरकाण्ड, संधि ४५, १३। १०, १४। १
† पउमचरिउ, सुन्दरकाण्ड, संधि, ४६, १। १—७

इस जीवका कोई भी अपना नहीं है।*

अपने प्रबोधन-प्रवाहको जारी रखते हुए स्फुरिताधर हनुमानजीने बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें रावणसे कहा—

'हे रावण! मैं स्नेहपूर्वक कह रहा हूँ कि तुम पर-स्त्रीको असार समझो। अपने मनमें संवर-तत्त्वका ध्यान करो और पर-स्त्रीसे बचते रहो। त्रिभुवन-लक्ष्मीके निकेतन हे रावण! तुम 'संवर-अनुप्रेक्षा' सुनो—राग-रहित होकर इस जीवको इस प्रकार रखना चाहिये कि इसे किसी तरहका कलङ्क न लगे। जो जिसका प्रतिद्वन्द्वी है, उससे उसकी रक्षा करो—कामसे अकामको, शल्यसे अशल्यको, दम्भसे अदम्भको, दोषसे अदोषको, पापसे अपापको, रोषसे अरोषको, हिंसासे अहिंसाको, मोहसे अमोहको, मानसे अमानको, लोभसे अलोभको, अज्ञानसे दृढ़ ज्ञानको, मत्सरसे दर्पनाशक अमत्सरको, दुर्निवार वियोगसे अवियोगको, अपथसे दुष्प्रवेश्य सत्पथको और मिथ्यात्वसे दृढ़ सम्यक्त्वको बचाओ, जिससे देहरूपी नगर नष्ट न होने पाये। हे नवनीलकमलनयन रावण! यह सब जानकर तुम जाकर श्रीरामको जनकसुता अर्पित कर दो।'†

इस प्रकार स्वयम्भू कविने अपनी अपभ्रंश-रामायण '**पउमचरिउ**' अर्थात् 'पद्मचरित' में श्रीहनुमानके जिस विराट् व्यक्तित्वकी अवतारणा की है, उससे उनकी लोकोत्तर श्रेष्ठताका प्रतिपादन होता है। यही कारण है कि सीताके अनुसंधानके बाद उनकी चूड़ामणिके साथ हनुमानके किष्किन्धानगर वापस आनेपर स्वयं राघवसिंह श्रीरामने बरगदकी तरह विशाल हनुमानको अपनी भुजाओंमें भर लिया।

स्वयम्भू (८वीं शती) और तुलसीदास (१६वीं शती)—दोनों श्रीरामकथाके समर्थ भाषा-कवि हुए हैं। यद्यपि इन दोनोंके तथ्य-कथ्य और दार्शनिक उपस्थापनाओंमें पर्याप्त पार्थक्य है, तथापि कई बातोंमें वे समान भी हैं। अपभ्रंश और हिंदी—दोनों रामायणोंमें कवियोंकी भावनाओंके अनुरूप ही क्रमशः मानव और अतिमानवके प्रतीकरूपमें श्रीहनुमानके व्यक्तित्व और कृतित्वका विनियोग हुआ है।

जैन-मान्यताके अनुसार श्रीहनुमानजी

(लेखक—श्रीताराचंदजी पाण्ड्या)

जैन-मान्यताके अनुसार प्रत्येक कल्पमें चौबीस तीर्थंकर (आध्यात्मिक नेता), बारह चक्रवर्ती (छः खण्डभूमिके स्वामी), नौ प्रतिनारायण (तीन खण्डपृथ्वीके स्वामी), नौ नारायण (प्रतिनारायणसे तीन खण्डपृथ्वीको जीतनेवाले) और नौ बलभद्र (नारायणके बड़े भाई)—इस तरह तिरसठ शलाका (उत्तम पदधारी) पुरुष होते हैं। इनके अतिरिक्त तीर्थंकरोंके चौबीस-चौबीस माता-पिता, नौ नारद, ग्यारह रुद्र, चौबीस कामदेव (अत्यन्त सुन्दर पुरुष)—ये विशिष्ट पुण्यशाली व्यक्ति भी प्रत्येक कल्पमें होते हैं। ये सभी उत्तम पदधारी उसी जन्ममें या थोड़ेसे जन्म लेकर परमात्मा बननेवाले होते हैं। इनमेंसे चौबीस कामदेव उसी जन्ममें मुक्त परमात्मा बन जाते हैं। इनके-जैसा सुन्दर मनोमोहक रूप स्वर्गमें भी नहीं होता। श्रीहनुमान अठारहवें कामदेव थे। ये बंदर नहीं थे, किंतु वानर-वंशी थे, अर्थात् जैन-मतानुसार इनके वंशके राज्य-ध्वजमें बंदरका चिह्न था, इसलिये इनका कुल (वंश) वानर-वंशके तौरसे विख्यात था। इनके पिता राजकुमार पवनकुमार थे और इनकी माता अञ्जना थीं। बचपनमें एक दिन जब श्रीहनुमान अपने मामाके विमानमें बैठकर आकाश-मार्गसे जा रहे थे, तब खेलमें उछलकर ये नीचे पहाड़पर गिर पड़े, इससे इनकी कोई हानि नहीं हुई, बल्कि वह पहाड़ ही टूट गया। इनकी हड्डियाँ वज्रकी थीं और वज्रके ही बैठन और वज्रका ही संहनन था। ये रावण प्रति-नारायणके निकट सम्बन्धी थे; किंतु जब उसने इनकी नीति-सम्मत सलाह नहीं मानी तो ये श्रीराम (बलभद्र)-के परम सहायक बन गये और उनकी हर प्रकारसे सहायता की। ये विद्याधर थे, इसलिये जन्मजात, कुलजात और मन्त्र-सिद्ध सिद्धियोंसे सम्पन्न थे। जैन-मान्यताके अनुसार ये बाल-ब्रह्मचारी नहीं थे। गृहस्थाश्रमके अन्तमें राज-पाट-परिग्रह-स्त्री आदिका त्याग कर साधु हो गये और तपस्या करके श्रीरामकी भाँति उसी जन्ममें त्रैलोक्य-पूजित अनन्तकालीन परमात्मा बन गये।

* पउमचरिउ, सुन्दरकाण्ड, संधि ५४, ८। ३—१०, † पउमचरिउ, सुन्दरकाण्ड, संधि ५४, १३। १—१०

संगीत-शास्त्रमें श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० श्रीशिवशंकरजी अवस्थी, एम्०ए० (हिंदी, संस्कृत), पी-एच्०डी०)

उद्यन्मार्तण्डतेजःप्रसरपरिगतारक्तमेरुप्रभाभं
वज्रप्रान्तानुकारिप्रखरनखमुखाघातसंदारितारिम्।
लोलल्लाङ्गूललीलालुलितखलदलोद्दामदर्पान्धजालं
कालं क्रूरग्रहाणां शतभयशमनं नौमि वायोः सुबालम्[१]॥
धीरं धीरं धरित्रीं पदकमलमुखन्याससम्पीडयन्तं
निष्काणैर्नाशयन्तं निखिलकलिमलं तालिजैः कङ्कणानाम्
गायन्तं रामरामेत्यतिरतिरभसै राघवं संस्मरन्तं
संगीताचार्यवर्यं कपिकुलतिलकं मारुतिं नौमि वीरम्[२]॥

भक्ताग्रगण्य, अञ्जनासूनु महावीर हनुमानको 'सर्वविद्या-विशारद' कहा गया है। वेद, वेदाङ्ग एवं तत्त्वविद्याके पारगामी होनेके कारण वे ज्ञानियोंमें अग्रणी तो प्रसिद्ध ही हैं, कर्मयोगी भी हैं।[३] धैर्य, सूक्ष्म-दृष्टि, निर्णयात्मक शक्ति और निपुणता—ये उनके स्वाभाविक गुण हैं, जिससे उन्हें कभी भी कर्मोंमें अवसाद नहीं होता। उनका एक नाम 'कलाधर' है, नृत्य, गीतादि कलाओंके भी वे ज्ञाता हैं। राघवेन्द्रको रिझानेके लिये अथवा सरलतासे भगवत्प्राप्तिके उपायका उपदेश देनेके लिये ही मानो उन्होंने संगीत-विद्याके आचार्यत्वको अपनाया है।

संगीत-शास्त्रके ग्रन्थोंमें श्रीहनुमानजीका मत मारुति और आञ्जनेयके नामसे उपलब्ध होता है। इनके मतोंका प्रतिपादक ग्रन्थ 'आञ्जनेयसंहिता' या 'हनुमत्संहिता' है, जो आज सहज उपलब्ध नहीं है। तंजौरके राजा रघुनाथने अपने 'संगीतसुधा' नामक ग्रन्थमें नन्दीश्वरादि संहिताओंके साथ-साथ 'अञ्जनानन्दनसंहिता' के भी देखनेकी बात लिखी है—

समीक्ष्य नन्दीश्वरसंहितां तामालोक्य शास्त्रं भरतप्रणीतम्।
ग्रन्थं बृहद्देश्यभिधं मतङ्गमुनिप्रणीतं निपुणं विलोक्य॥
विचार्य तां याष्टिकसंहितां च ज्ञात्वाञ्जनानन्दनसंहितां च।
उमापतेराधुनिकस्य तन्त्रमुद्वीक्ष्य नन्दीशमतानुसारि॥

राजा रघुनाथने '**आञ्जनेयभारतम्**' नामक ग्रन्थका भी उल्लेख किया है, जिसमें याष्टिकमुनिके प्रति आञ्जनेयके द्वारा गान-विद्याका उपदेश दिया गया है। 'संगीतरत्नाकर'-जैसे विशाल ग्रन्थके रचयिता शार्ङ्गदेव (विक्रमकी १३वीं शती)-ने प्राचीन संगीताचार्योंके साथ आञ्जनेयका उल्लेख किया है—

सदाशिवः शिवो ब्रह्मा भरतः काश्यपो मुनिः।
मतङ्गो याष्टिको दुर्गा शक्तिः शार्दूलकोहलौ॥
विशाखिलो दन्तिलश्च कम्बलोऽश्वतरस्तथा।
वायुर्विश्वावसू रम्भार्जुनो नारदतुम्बुरू॥
आञ्जनेयो मातृगुप्तो रावणो नन्दिकेश्वरः।
स्वातिर्गणो देवराजः क्षेत्रराजश्च राहलः॥

—इत्यादि। शारदातनय (१३वीं शती विक्रमीयका अन्त)-ने भी 'भावप्रकाशन' ग्रन्थके प्रारम्भमें दिवाकर नामक नाट्याचार्यसे जिन संगीताचार्योंके मतोंका ज्ञान प्राप्त किया था, उनका इस प्रकार वर्णन किया है—

नाट्यशालापतिः कश्चिद् दिवाकर इति द्विजः।
तयैव नाट्यवेदस्य नियुक्तोऽध्यापने तदा॥
प्रीतः सोऽपि सदाशिवस्य शिवयोर्गौर्या मतं वासुके-
र्वाग्देव्या अपि नारदस्य च मुनेः कुम्भोद्भवव्यासयोः।
शिष्याणां भरतस्य यानि च मतान्यध्याप्य तान्यञ्जना-
सूनोरप्यथ नाट्यवेदमखिलं सम्यक् तमध्यापयत्॥

इसके अतिरिक्त 'भावप्रकाशन'— के पञ्चमाधिकार एवं अष्टमाधिकारमें क्रमशः अनुरागचिह्न एवं रूपकविशेषसे सम्बद्ध मारुति-मतका निर्देश मिलता है—

१-उदयकालीन सूर्यके तेजःप्रसारसे व्याप्त होनेके कारण रक्तिम मेरु पर्वतके सदृश आकारवाले, वज्रकी नोकके समान तीक्ष्ण नखोंके अग्रभागके प्रहारसे शत्रुओंको विदीर्ण कर देनेवाले, चञ्चल पूँछकी लीलासे दुष्टजनोंके उद्दाम दर्पके अन्धजालको तोड़ देनेवाले, क्रूर ग्रहोंके काल, सैकड़ों विभीषिकाओंके शमन करनेवाले वायुपुत्र हनुमानकी मैं वन्दना करता हूँ।

२-धीरे-धीरे चरणकमलोंके अग्रभागके विन्याससे धरतीको दबाते हुए, ताली बजानेसे उत्पन्न कङ्कणोंकी ध्वनिसे सम्पूर्ण कलिमलोंको नष्ट करते हुए, अत्यन्त प्रेमके आवेगसे 'राम-राम' इस प्रकार गायन करते हुए, भगवान् राघवेन्द्रका ध्यान करते हुए, संगीताचार्योंमें श्रेष्ठ, कपिकुलतिलक महावीर मारुतिको मैं नमन करता हूँ।

३-यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव। धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति॥ (वा० रा० ५। १। २०१)

ये भावा रागचिह्नानि (नाम्) स्त्रीणामुक्ताः पृथक् पृथक्।
साधारणास्ते सर्वासां स्त्रीणामित्याह मारुतिः॥
(भावप्रकाशन, पृ० ११४)

'जो विविध प्रकारके भाव या चेष्टाएँ पृथक्-पृथक् स्त्रियोंके अनुराग-चिह्नके रूपमें बतायी गयी हैं, वे समस्त स्त्रियोंमें मिलती हैं—स्त्री-साधारणमें सुलभ हैं, यह मारुतिका मत है।'

रूपकोंकी विद्याओंका विश्लेषण करते हुए शारदातनयने 'उत्सृष्टिकाङ्क' नामक रूपकके सम्बन्धमें लिखा है—

अस्याङ्कमेकं भरतो द्वावङ्काविति कोहलः॥
व्यासाञ्जनेयप्रमुखाः प्राहुरङ्कत्रयं यदा।
(भावप्रकाशन, पृ० २५१)

'भरतके मतसे 'उत्सृष्टिकाङ्क' में एक ही अङ्क होना चाहिये, कोहल दो अङ्कोंके पक्षमें हैं तथा व्यास और आञ्जनेय—ये दोनों गुरु तीन अङ्कोंका समर्थन करते हैं।'

'संगीतरत्नाकर' के टीकाकार कल्लिनाथ (विक्रमकी १५वीं शतीका अन्त)-ने देशी-रागके सम्बन्धमें आञ्जनेयका मत इस प्रकार संकलित किया है—

तथा चाह आञ्जनेयः—
येषां श्रुतिस्वरग्रामजात्यादिनियमो न हि।
नानादेशगतिच्छाया देशीरागास्तु ते स्मृताः॥

'जिन रागोंमें श्रुति, स्वर, ग्राम,[१] जाति आदिका नियम नहीं होता और जिनपर नाना प्रदेशोंकी परम्पराका प्रभाव रहता है, वे देशी-राग कहलाते हैं।'

संगीतशास्त्रमें सामान्यतया बाईस श्रुतियाँ मानी गयी हैं—'**तत्र वा द्वाविंशति श्रुतयः**'—(भरतकृत नाट्यशास्त्र) किंतु हनुमन्मते[२]में अठारह श्रुतियाँ ही स्वीकृत हैं। यों तो श्रुतियोंकी अनन्तताकी भी बात कही जाती है—

आनन्त्यं हि श्रुतीनां च सूचयन्ति विपश्चितः।
यथा ध्वनिविशेषाणामानन्त्यं गगनोदरे॥
उत्तालपवनोद्वेलजलराशिसमुद्भवाः।
इयत्तां प्रतिपद्यन्ते न तरंगपरम्पराः॥
(कोहल)

राजा रघुनाथने 'संगीतसुधा' में लिखा है—

एक बार आञ्जनेय कदलीवनमें पहुँचे। वहाँ याष्टिकमुनि अपने दक्षादि शिष्योंको संगीतकी शिक्षा दे रहे थे। देशी-रागों तथा उनके स्वरोंकी श्रुतियोंमें शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार वैपरीत्य देखकर दक्षादि शिष्योंने याष्टिकमुनिसे पूछा कि 'सात शुद्ध तथा बारह विकृत स्वरोंमें एक स्वरकी अधिक-से-अधिक चार एवं कम-से-कम दो श्रुतियाँ होती हैं, किंतु देशी-रागोंमें पञ्चश्रुतिक, षट्श्रुतिक एवं सप्तश्रुतिक स्वर भी देखे जाते हैं। इन स्वरोंका शास्त्रोंमें विरोध है, परंतु इनके परित्यागसे राग-लाभ नहीं होता।'

इस प्रकार विरोध-सम्बन्धी शङ्का किये जानेपर याष्टिकमुनिने ऐसा समाधान प्रस्तुत किया कि उससे शास्त्रविरोध तो दूर हो ही गया, राग-प्राप्ति भी सम्भव हो गयी। याष्टिकके शिष्योंकी गानशैली और याष्टिक-मुनिद्वारा उपदिष्ट पद्धतिके अनुसार आञ्जनेयने लक्ष्याविरुद्ध शास्त्रकी रचना की।

तंजौरके राजा रघुनाथ नायक विक्रमकी सत्रहवीं शतीके मध्योत्तरकालमें शासन कर रहे थे। उन्होंने 'संगीत-सुधा' में जिन प्राचीन संहिताओंका उल्लेख किया है, उनमें 'हनुमत्संहिता' भी एक है।

---

१. व्यवस्थितश्रुतियुता यत्र संवादिनः स्वराः। मूर्च्छनाद्याश्रयो नाम स ग्राम इति संज्ञितः॥

मेवाड़के महाराणा कुम्भके 'संगीतराज' से भरतकोशमें उद्धृत संवादी स्वरोंके उस समूहको ग्राम कहते हैं, जिसमें श्रुतियाँ व्यवस्थितरूपसे विद्यमान हों और जो मूर्च्छना आदिका आश्रय हो।

ग्राम तीन होते हैं—षड्ज, मध्यम और गान्धार। भरतने आदिम दो ग्रामोंकी ही चर्चा की है। नारदका मत है कि गान्धार-ग्रामका प्रयोग स्वर्गमें ही होता है।

राग—षड्ज आदि स्वरों और स्थायी आदि वर्णोंसे विभूषित ध्वनिविशेषको राग कहते हैं। उससे मनुष्योंके मनका रञ्जन होता है।

योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविशेषितः। रञ्जको जनचित्तानां स च राग उदाहृतः॥ जाति—रञ्जन एवं अदृष्ट तथा अभ्युदयको उत्पन्न करनेवाले विशिष्ट स्वर ही विशेष प्रकारके संनिवेशसे युक्त होनेपर 'जाति' कहलाते हैं।

'स्वरा एव विशिष्टसंनिवेशभाजो रक्तिमदृष्टाभ्युदयं च जनयन्तो जातिरित्युक्ताः।'—अभिनवगुप्त।

श्रुति—षड्जादि स्वरोंका आरम्भकावयव शब्दविशेष श्रुति कहलाता है। भाषामें इसे शोरत कहते हैं।

'श्रुतिर्नाम स्वरारम्भकावयवः शब्दविशेषः'—कल्लिनाथ।

२. द्रष्टव्य 'भरतकोश'—श्रीरामकृष्ण कवि।

संगीताचार्य श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीव्रजकिशोरप्रसादजी साही)

'संगीतपारिजात' में श्रीहनुमानजी संगीतशास्त्रके प्रमुख प्रवर्तक कहे गये हैं—

कर्ता संगीतशास्त्रस्य हनूमांश्च महाकपिः।
शार्दूलकाहलावेतौ संगीतग्रन्थकारिणौ॥

(१। ९)

अर्थात् हनुमानजी, शार्दूल और काहल—ये तीन व्यक्ति संगीत-शास्त्रके निर्माता आचार्य हैं।

इसके भाष्यकार कलिन्दजीके मतानुसार शिवजीने जो संगीत-शास्त्र बनाया, उसे 'शिवमत', भरतने जो संगीत-शास्त्र बनाया, उसे 'भरतमत' एवं श्रीहनुमानजीने जो संगीत-शास्त्र बनाया, उसे 'हनुमन्मत' कहते हैं—

शास्त्रं चकार शवभालविभूषिताङ्गः
पूर्वं च तच्छिवमतं भरतस्तदन्ते।
तद् भारतं कपिवरश्च विलीलिखद् यत्
पश्चादिदं हनुमतो मतमीरितं तम्॥

'संगीतपारिजात' 'हनुमन्मत' का ग्रन्थ है। इसलिये इसके भाष्यके मङ्गलाचरणमें कलिन्दजीने बड़े ही भावपूर्ण शब्दोंमें हनुमानजीका स्मरण किया है—

संगीतेन वशीकरोति वरदं क्ष्माजाधवं राघवं
यश्चामीकरचारुगात्रसुषमां विस्तारयत्यद्भुताम्।
नानातालकलाकलापनिपुणः कौशल्यवद् गीयते।
स प्रीणातु प्रशस्तगानरसिकव्यामोदिशाखामृगः॥

अर्थात् जो अपने संगीतके द्वारा वरदायक सीतापति राघव श्रीरामको वशमें कर लेते हैं, जो भक्तोंके समक्ष अपने शरीरकी सोने-जैसी सुन्दर एवं अत्यन्त अद्भुत शोभाका विस्तार करते हैं, भाँति-भाँतिके ताल और उनके कलाके समूहको एक साथ उच्चारण करनेमें निपुण हैं और बड़ी कुशलतासे गान करते हैं, वे प्रशंसनीय संगीत-रसिकोंको अतिशय आनन्दित करनेवाले कपिश्रेष्ठ हनुमानजी मुझपर प्रसन्न हों।

'संगीतपारिजात' के अध्ययनसे श्रीहनुमत्संगीत-शास्त्रकी महत्ता एवं स्वरूप ज्ञात होता है।

संगीतमर्मज्ञ भावभट्टविरचित 'अनूपसंगीतविलास'-में श्रीहनुमानजीके नामपर अनेक संगीतालंकारोंका वर्णन उपलब्ध होता है। यथा—

भद्र

भद्रसंज्ञमलंकारमाञ्जनेयोऽवदत् सुधीः।
एकैकस्य स्वरस्यात्र हननाच्च क्रमो भवेत्॥

'भद्र' नामक संगीतालंकारको विद्वद्वर श्रीहनुमानजीने इस प्रकार कहा है कि इसका क्रम एक-एक स्वरके हनन-संघर्षसे उत्पन्न होता है।

ग्रीव—

स-गौ-रि-गौ समुच्चार्य म-गौ-रि-सौ तथैव च।
ग्रीवं लघुद्वयेनात्र हनुमानवदत् सुधीः॥

स, गौ, रि, गौका उच्चारण करनेके पश्चात् म, गौ, रि, सौका उच्चारण करे, पुनः उसे दो लघु मात्राओंसे संयुक्त करे तो 'ग्रीव' नामक संगीतालंकार बनता है। बुद्धिमान् हनुमानजीका ऐसा कथन है।

भाल—

स-गौ-रि-गौ समुच्चार्य म-गौ-रि-सौ तथैव च।
द्रुताभ्यां लघुकालेन भालं वदति मारुतिः॥

मारुतिका कथन है कि स, गौ, रि, गौका उच्चारण कर, म, गौ, रि, सौका उच्चारण करे और शीघ्र ही दो द्रुत स्वरोंसे संयुक्त करे तो 'भाल' नामक संगीतालंकार बनता है।

प्रकाश—

सौ-री-गौ-मो-ग-री-गश्च रि-साविति स्वरैश्च तैः।
हनुमानडतालेन प्रकाशाख्यं तमब्रवीत्॥

सौ, री, गौ, मो, ग, री, ग, रि और सौ तथा इन्हीं स्वरों एवं अडतालके संयोगसे 'प्रकाश' नामक संगीतालंकार बनता है, ऐसा हनुमानजीका मत है।

बिन्दु—

आद्यं दीर्घत्रयं प्राह द्वितीयं ह्रस्वमेव च।
बिन्दुर्बिन्दुत्रयेणापि हनूमान् सार्धबिन्दुना॥

पहले तीन दीर्घ स्वर, पुनः दो ह्रस्व स्वर, फिर तीन एवं आधे बिन्दुओंके योगसे 'बिन्दु' नामक अलंकार बनता है, ऐसा हनुमानजीका मत है।

संधिप्रच्छादन—

ह्रस्वमाद्यद्वयं कृत्वा दीर्घं कृत्वा तृतीयकम्।
हनुमानाह सर्वज्ञः संधिप्रच्छादनं परम्॥

जिसमें पहले दो स्वर ह्रस्व और तीसरा दीर्घ

उच्चारण किया जाता है, उसे सर्वज्ञ हनुमानजीने 'संधिप्रच्छादन' नामक संगीतालंकार बतलाया है।

उद्वाहित—

आद्यं स्वरं चतुर्वारं द्विवारं च द्वितीयकम्।
सकृदुक्तं तृतीयं तु तथा सकृच्चतुर्थकम्।
उद्वाहितस्त्वलंकारो हनूमता प्रकीर्तितः॥

जिसमें प्रथम स्वर चार बार, दूसरा दो बार, तीसरा एक बार और चौथा भी एक ही बार उच्चारण किया जाता हो, वह 'उद्वाहित' नामक संगीतालंकार बनता है, ऐसा हनुमानजी कहते हैं।

इस प्रकार अभी भी अनेकों संगीतालंकार श्रीहनुमानजीके नामसे उपलब्ध हो रहे हैं।

'अनूपसंगीतरत्नाकर' के मङ्गलाचरणमें भट्टजीने श्रीहनुमानजीको संगीताचार्यके रूपमें इस प्रकार स्मरण किया है—

आञ्जनेयो मातृगुप्तो रावणो नन्दिकेश्वरः।
स्वातिर्गणो बिन्दुराजः क्षेत्रराजश्च काहलः॥

अर्थात् अञ्जनी-पुत्र श्रीहनुमानजी, मातृगुप्त, रावण, नन्दिकेश्वर, स्वातिर्गण, बिन्दुराज, क्षेत्रराज और काहल—ये आठ संगीतशास्त्रके प्रवर्तक परमाचार्य कहे गये हैं।

इस प्रकार श्रीहनुमानजी सुप्रसिद्ध संगीताचार्य हैं, ये शास्त्रीय संगीतके प्रवर्तक हैं और भक्ति-संगीतके तो मानो मूल स्रोत ही हैं।

वैखानस-सम्प्रदायमें श्रीहनुमदुपासना

(लेखक—श्रीचल्लपल्लि भास्कर रामकृष्णमाचार्युलु, बी०ए०, बी०एड्०)

ज्ञानानन्दमयं देवं निर्मलस्फटिकाकृतिम्।
आधारं सर्वविद्यानां हयग्रीवमुपास्महे॥
श्रौतस्मार्तादिकं कर्म निखिलं येन सूत्रितम्।
तस्मै समस्तवेदार्थविदे विखनसे नमः॥

'जो ज्ञान तथा आनन्दके स्वरूप हैं, जिनकी निर्मल स्फटिक-जैसी शरीर-कान्ति है, जो समस्त विद्याओंके आधार हैं, उन हयग्रीवजीकी हम उपासना करते हैं। जिनके द्वारा सम्पूर्ण श्रौत तथा स्मार्त कर्म सूत्रित हुए हैं, उन समस्त वेदार्थविद् विखनस् (ब्रह्माजी)-को हमारा नमस्कार है।'

शास्त्रका ऐसा कथन है कि भगवान् विष्णुके संकल्पसे श्रीविखनस् (ब्रह्मा)-जीका आविर्भाव हुआ। उनके द्वारा प्रवर्तित यह सम्प्रदाय स्वायम्भुव मन्वन्तरसे ही चला आ रहा है। इस वैखानस-सम्प्रदायमें वैदिक ढंगसे भगवान् विष्णुकी उपासना की जाती है, जिससे लोक-परलोक-परमार्थ—सभी सिद्ध होते हैं। अन्य ग्रन्थ भी इसका समर्थन करते हैं। इस सम्प्रदायमें भगवान् ब्रह्माके पुत्र एवं शिष्य महर्षि मरीचिद्वारा रचित 'विमानार्चनकल्प' नामक ग्रन्थमें श्रीहनुमानजीकी उपासनाके विषयमें निम्नाङ्कित वर्णन मिलता है—

'(रामस्य) दक्षिणे पुरतोऽऽञ्जनेयः श्वेतवस्त्रधरः कपिरूपः सर्वाभरणभूषितो द्विभुजो दक्षिणहस्तेनास्यं पिधाय वामहस्तेन वस्त्रं पिधायावनतगात्रः स्थितो वार्ताविज्ञापनपरो मृगवाहनो दण्डध्वजो महानादः श्रावणे मासि श्रवणजातः कलाद्यक्षरबीजो हनुमान्''''कपिराजं हनूमन्तं शब्दराशिं महामतिमिति।'

इसके अनुसार श्रीहनुमानजीके शरीरका वर्ण काला तथा उनके वस्त्रका रंग श्वेत है और दक्षिण हस्तसे मुख तथा वाम हस्तसे वस्त्रको आच्छादित करके वे श्रीरामजीको संदेश सुना रहे हैं; ऐसे श्रीहनुमानका ध्यान करना चाहिये। यह वर्णन अपूर्व तथा विशिष्ट है। इसके अनुसार निर्मित हनुमानजीका एक चित्र 'कल्याण' के 'हिंदू-संस्कृति-अङ्क' में प्रदर्शित है। इससे सिद्ध होता है कि वैखानस-आगमकी रीतिसे निर्मित हनुमानजीकी उपासना प्राचीनकालसे की जाती रही है। उक्त वर्णनमें एक और ध्यान देनेयोग्य अंश है—हनुमानजीकी जन्म-तिथि। यह '**श्रावणे मासि श्रवणजातः**' के अनुसार श्रावणमासकी पूर्णिमा सिद्ध होती है। यह मत वाल्मीकि-रामायणसे भिन्न है। उसमें श्रीहनुमानजीके आश्विनमासके स्वाती नक्षत्रमें जन्म लेनेका वर्णन है। इससे अनुमान होता है कि महर्षि वाल्मीकिके द्वारा ग्रथित रामावतारके अतिरिक्त पूर्व कल्पके श्रीराम, लक्ष्मण एवं हनुमानजीके विषयमें ही उक्त वैखानस भगवच्छास्त्रमें उल्लेख किया गया है। इससे भी इस सम्प्रदायकी प्राचीनता सिद्ध होती है। इस सम्प्रदायमें हनुमानजीकी अर्चना तथा उत्सव करनेकी विधिका स्वरूप विशिष्ट है, जो

'श्रीहनुमदर्चनोत्सवविधि' नामक ग्रन्थमें ग्रथित है। इस ग्रन्थमें वैखानस-सम्प्रदायके अनुसार 'पञ्चधा'—पञ्चात्माके अनुसार अभिव्यक्त भगवान्‌की उपासना स्वयं करके या अन्यके द्वारा कराकर लौकिक और पारलौकिक लाभ-प्राप्तिके उद्देश्यसे अर्चना तथा ब्रह्मोत्सव आदि करनेकी समग्र विधिका वर्णन है।

मध्व-सम्प्रदायमें श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीभाऊ आचार्य टोणपे)

प्रथमो हनुमान् नाम द्वितीयो भीम एव च।
पूर्णप्रज्ञस्तृतीयस्तु भगवत्कार्यसाधकः॥

मध्व-सम्प्रदायमें हनुमानजीको वायुदेवका अवतार माना जाता है। वायुदेव अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त हैं। परमशक्तिमान् विष्णुकी सेवाके लिये वायुदेव सदा तत्पर रहते हैं और उनको वे अपनी विभिन्न चेष्टाओंद्वारा प्रसन्न रखते हैं।

द्वैत-मतके अनुसार वायुदेवने भगवान् विष्णुके कार्योंके साधना-हेतु तथा उनकी सेवाको दृष्टिमें रखते हुए तीन विशिष्ट अवतार लिये हैं, जिनमें उन्होंने श्रीहनुमानके रूपमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी, महाबली भीमके रूपमें श्रीकृष्णभगवान्‌की और महाज्ञानी मध्वाचार्यके रूपमें भगवान् वेदव्यासकी सेवा की। वायुदेवद्वारा उपर्युक्त तीनों अवतारोंके लिये जानेका एक अन्य महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है—'धर्म-रक्षा'। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है कि भगवान् विष्णुद्वारा संचालित 'धर्म' की सुरक्षाके लिये वायुदेवने इन तीनों अवतारोंको ग्रहण किया—

'बाह्वोर्बलाज्ज्ञानबलाच्च रक्ष्यो धर्मः।'

हनूमानजी वायुदेवके प्रथम अवतार हैं। मध्व-मतमें इन्हें **'बुद्धिमतां वरिष्ठः'** कहा गया है। श्रीमन्मध्वाचार्यजी-विरचित 'ऐतरेय-भाष्य' में हनुमान एवं हनूमान—इन दोनों नामोंको पर्यायवाची कहा गया है। मध्व-सम्प्रदायके अनुसार 'हनु'-शब्द परम-ज्ञानके अर्थमें प्रयुक्त होता है और इस 'परम-ज्ञान' का जो अधिकारी देवता है, उसे 'हनुमान' या 'हनूमान' के नामसे सम्बोधित किया जाता है। उपर्युक्त कथन 'ऐतरेय-भाष्य' में वर्णित निम्नलिखित उद्धरणसे स्पष्ट हो जाता है—

'हनुशब्दो ज्ञानवाची हनूमानितिशब्दितः।'

एक अन्य मध्व-ग्रन्थ 'सुमध्व-विजय' महाकाव्य—जो श्रीनारायणपण्डिताचार्यद्वारा लिखा गया है—के अनुसार संसारमें जिन-जिन धर्मोंको गुणकी संज्ञा दी जाती है, वे सभी गुण 'हनु'-शब्दके अन्तर्गत आ जाते हैं अर्थात् 'हनु'-शब्दके अन्तर्गर्भमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि—सभी गुण निवास करते हैं। इस प्रकार (मध्व-मतमें) 'हनु'-शब्दका अर्थ है—ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि गुण। वायुदेवके पुत्रमें ये सभी गुण पूर्णरूपसे समाविष्ट हैं, अतः इनका नाम 'हनुमान' पड़ा। दूसरे शब्दोंमें भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ, अत्यन्त ज्ञानी एवं सभी गुणोंसे युक्त देवताको 'हनुमान' के नामसे सम्बोधित किया जाता है—

ये ये गुणा नाम जगत्प्रसिद्धा
यं तेषु तेषु च विनिर्दिशन्ति।
साक्षान्महाभागवतप्रवाहं
श्रीमन्तमेनं हनुमन्तमाहुः॥

(सुमध्वविजय)

द्वैत-मतमें हनुमानजीको एक आदर्श देवताके रूपमें देखा जाता है। श्रीराममें अनन्य विश्वास और उनके प्रति 'सेवक' की भावना ही इनका परम आदर्श है। यद्यपि हनुमानजी श्रीरामके अत्यन्त प्रिय पात्र थे तथा श्रीराम-राज्यमें इनके लिये कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं था, तथापि श्रीरामके चरणोंकी सेवामें अनुरक्त हनुमानको किसी प्रकारकी उपाधि या सुख-भोगकी अपेक्षा न थी। सम्भवतः इसी कारण मध्व-सम्प्रदायमें हनुमानजीको 'आदर्श रूप' माना जाता है—

प्रेष्ठो न रामस्य बभूव तस्मा-
न्न रामराज्येऽसुलभं च किंचित्।
तत्पादसेवारतिरेष नैच्छत्
तथापि भोगान्ननु सा विरक्तिः॥

(सुमध्वविजय)

श्रीरामके प्रति हनुमानजीकी अद्वितीय भक्ति **'न भूतो न भविष्यति'**—इस कहावतको पूर्णतया चरितार्थ करती है। श्रीरामके साथ प्रवासकालमें ये सदा श्रीराम-नामका ही जप करते थे। 'हे नाथ! तुम्हें प्रणाम है, हे श्रीराम! तुम्हें प्रणाम है, हे प्रभो! तुम्हारे चरणोंमें सेवकका प्रणाम है'—इस प्रकारके शब्दोंका बारम्बार

उच्चारण करते हुए हनुमान सदा-सर्वदा श्रीराम-भक्तिमें तल्लीन रहते थे—

नमो नमो नाथ नमो नमस्ते
नमो नमो राम नमो नमस्ते।
पुनः पुनस्ते चरणारविन्दं
नमामि नाथेति नमन् स रेमे॥

(सुमध्वविजय)

हनुमानजीकी '**बुद्धिमतां वरिष्ठः**' उपाधिकी सत्यता 'सुमध्व-विजय' के निम्नलिखित श्लोकसे प्रमाणित की जा सकती है—

निबध्य सेतुं रघुवंशकेतु-
भ्रूभङ्गसम्भ्रान्तपयोधिमध्ये।
मुष्टिप्रहारं दशकाय सीता-
संतर्जनाग्र्योत्तरमेषकोऽदात्॥

अर्थात् रघुवंशकेतु श्रीरामके भ्रूभङ्गमात्रसे उद्विग्न होकर हनुमानने समुद्रपर अन्य सेनापतियोंकी सहायतासे सेतुकी रचना कर वानरसेनाके लिये लंकातक जानेका मार्ग प्रशस्त किया। इनके इस कार्यने रावणके हृदयमें एक विशेष पीड़ाको जन्म दिया। उसके हृदयपर यह प्रहार मानो सीताको दिये गये कष्टोंका समुचित उत्तर था।

मध्व-सम्प्रदायके अनुसार महावीर हनुमान आज भी हमारा मार्ग-दर्शन करनेके लिये इस लोकमें निवास कर रहे हैं। वे सभी आदर्शोंके आदर्श हैं। श्रवण-मनन आदिद्वारा भगवत्सेवा करनेवाले तथा मुक्तिजीवियोंके बीच आत्मानन्दप्राप्ति-हेतु श्रीरामके कथामृतमें सदा लीन रहनेवाले हनुमानजी आज भी हमारे लोक-हृदयमें विराजमान हैं—

स्वानन्दहेतौ भजतां जनानां
मग्नः सदा रामकथासुधायाम्।
असाविदानीं च निषेवमाणो
रामं पतिं किम्पुरुषे किलास्ते॥

(सुमध्वविजय)

मध्व-मतमें श्रीहनुमानकी सर्वशक्तिशाली एवं अभिलाषापूरक देवताके रूपमें पूजा की जाती है। विद्या, धन, राज्यश्री, शत्रुनिग्रह आदि सभी कामनाओंकी पूर्ति हनुमानजीके पूजनसे सम्भव है। श्रीमन्मध्वाचार्यजीने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तन्त्रसार' में लिखा है—

विद्या वापि धनं वापि राज्यं वा शत्रुनिग्रहम्।
तत्क्षणादेव चाप्नोति सत्यं सत्यं सुनिश्चितम्॥

मारुतिद्वारा माता सीताको सान्त्वना

हौं रघुबंसमनिको दूत।
मातु मानु प्रतीति जानकि! जानि मारुतपूत॥ १॥
मैं सुनी बातैं असैली, जे कही निसिचर नीच।
क्यों न मारै गाल, बैठो काल-डाढ़नि बीच॥ २॥
निदरि अरि, रघुबीर-बल लै जाउँ जौ हठि आज।
डरौं आयसु-भंगतें अरु बिगरिहै सुरकाज॥ ३॥
बाँधि बारिधि, साधि रिपु, दिन चारिमें दोउ बीर।
मिलहिंगे कपि-भालु-दल सँग, जननि! उर धरु धीर॥ ४॥
चित्रकूट-कथा, कुसल कहि सीस नायो कीस।
सुहृद-सेवक नाथको लखि दई अचल असीस॥ ५॥
भये सीतल स्त्रवन-तन-मन सुने बचन-पियूष।
दास तुलसी रही नयननि दरसहीकी भूख॥ ६॥

(गीतावली, सु० का० ६)

गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय और श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० श्रीरासमोहन चक्रवर्ती, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

वङ्गमण्डलमें गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायमें श्रीहनुमान दास्य-भक्तिके आदर्शके रूपमें पूजित होते हैं। इस सम्प्रदायके प्रवर्तक श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रधान परिकर श्रीमुरारिगुप्त श्रीहनुमानजीके अवतार माने जाते थे। कवि कर्णपूर (सोलहवीं शताब्दी) 'गौरगणोद्देश-दीपिका' नामक ग्रन्थमें लिखते हैं—

मुरारिगुप्तो हनूमानङ्गदः श्रीपुरंदरः।
यः श्रीसुग्रीवनामासीद् गोविन्दानन्द एव सः॥

पूर्व त्रेतायुगमें जो हनुमान थे, श्रीचैतन्य-लीलामें वे ही मुरारिगुप्त नामसे अभिहित हैं, अङ्गद भी पुरंदर हैं और जो सुग्रीव थे, वे ही इस समय गोविन्दानन्द हैं।

वैष्णव-वन्दनामें लिखा है—

वन्दिबो मुरारि गुप्त भक्तिशक्तिमन्त।
पूर्व अवतार याँर नाम हनूमन्त॥

श्रीमुरारिगुप्तमें प्रायः श्रीहनुमानजीका आवेश होता रहता था, उस समय उनके शरीरमें अपार बल आ जाता था। जिस समय जगाई-मधाई नवद्वीपमें उद्दण्डताकी चरम सीमापर थे, उस समय उनके मनमें यह गर्व था कि नवद्वीपमें उनके समान बलवान् दूसरा कोई नहीं है। किंतु जिस दिन श्रीगौराङ्गने उनका उद्धार किया, उसी दिन महाप्रभुके आदेशसे श्रीमुरारिगुप्तने उन दोनों भाइयोंको दोनों कक्षमें दबाकर उनके प्राङ्गणमें लाकर उपस्थित किया था।

श्रीमन्मुरारिगुप्तप्रणीत 'श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत' नामक काव्यके द्वितीय प्रकाशके सप्तम सर्गमें ऐसा उल्लेख मिलता है कि एक दिन श्रीगौराङ्गने श्रीमुरारिसे कहा कि "तुम अपने द्वारा रचित 'श्रीरघुनाथाष्टक' नामक स्तोत्रका पाठ करो।" श्रीमुरारि भक्ति-गद्गद-कण्ठसे स्वरचित श्लोकोंका पाठ करने लगे, जिसे सुनकर प्रभु अत्यन्त संतुष्ट हुए और उनके कपालमें उन्होंने 'रामदास' नाम लिख दिया। तत्पश्चात् उनको हृदयसे लगाकर उन्हें प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान किया।

प्रसिद्ध गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीमद्रूपगोस्वामिद्वारा संगृहीत 'पद्यावली' नामक सुभाषित काव्य-ग्रन्थमें (सोलहवीं शताब्दी) '**भक्तानां माहात्म्यम्**'-प्रकरणमें निम्न श्लोक मिलता है, जहाँ उन्होंने श्रीहनुमानजीको दास्य-भक्तिके आदर्शके रूपमें स्वीकार किया है—

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकिः कीर्तने
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम्॥

(पद्यावली ६३)

श्रीविष्णुकी कथा सुननेमें परीक्षित्, महिमा-कीर्तनमें व्यासपुत्र श्रीशुकदेव, भगवत्स्मरणमें प्रह्लाद, चरण-सेवामें लक्ष्मी, भगवत्पूजनमें पृथु, वन्दनामें अक्रूर, दास्य-भावकी साधनामें हनुमान, सख्य-भावकी साधनामें अर्जुन तथा सर्वस्व आत्मनिवेदनमें महाराज बलि श्रीकृष्णको प्राप्त करके कृतार्थ हुए थे।

गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीजीवगोस्वामी भी श्रीमद्रूप-गोस्वामिपादके समान ही श्रीहनुमानजीको आदर्श दासरूप मानते हैं तथा 'दास्य-भाव' की व्याख्या करते हुए श्रीमद्भागवतकी अपनी 'क्रम-संदर्भ' टीकामें लिखते हैं—

'अस्तु तावत् तद्भजनप्रयासम्। केवलं तादृशत्वाभिमानेनापि सिद्धिर्भवति।' (७। ५)

'मैं प्रभुका दास हूँ'—इस प्रकारके अभिमानके साथ उपास्यकी सेवा करनेसे ही भजन सिद्ध होता है। श्रीरामावतारमें हनुमानजीने दास्य-भावकी साधनासे सिद्धि प्राप्त की।

महर्षि शाण्डिल्यने अपने 'भक्तिसूत्र'(४४)-में भगवान्‌के प्रति भक्तके अनुरागकी परीक्षाके लिये कुछ विशेष लक्षण बतलाये हैं। यथा—

'सम्मानबहुमानप्रीतिविरहेतरविचिकित्सामहिमाख्याति-तदर्थप्राणस्थानतदीयतासर्वतद्भावाप्रातिकूल्यादीनि च स्मरणेभ्यो बाहुल्यात्।'

(१) सम्मान, (२) बहुमान, (३) प्रीति, (४) विरह, (५) इतर विचिकित्सा, (६) महिमाख्याति, (७) तदर्थप्राणस्थान, (८) तदीयता, (९) सर्वतद्भाव, (१०) अप्रातिकूल्य आदि।

शाण्डिल्य-भक्ति-सूत्रके भाष्यकार श्रीस्वप्नेश्वरने प्रत्येक लक्षणके विशेष दृष्टान्त दिये हैं। सातवें लक्षणके लिये उन्होंने श्रीहनुमानजीका ही उदाहरण प्रस्तुत किया है। हनुमानजी 'तदर्थप्राणस्थान' हैं अर्थात् श्रीरामके लिये ही वे जीवन धारण करते हैं। श्रीरामचन्द्रजीसे उन्होंने यह प्रार्थना की थी—

यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी॥
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्।

(वा० रा० ७। १०८। ३५-३६)

'जबतक आपकी पवित्र कथा संसारमें प्रचलित रहेगी, तबतक आपके आदेशका पालन करते हुए मैं पृथ्वीपर रहूँगा।'

श्रीमद्भागवत (५। १९। १—८)-में परमभागवत श्रीहनुमानद्वारा की गयी 'श्रीरामचन्द्र-स्तुति' देखनेमें आती है। गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीजीवगोस्वामीने अपने 'क्रम-संदर्भ' टीकामें इसके गम्भीर तात्पर्यको उद्घाटित किया है। वे कहते हैं कि 'श्रीरामचन्द्रकी लीला केवल माधुर्यमयी है। हनुमानजी केवल माधुर्यमय दास्यभाव-स्वरूप हैं और ऐश्वर्य आदिके ज्ञानके साथ मिले होनेपर भी अन्तमें उसका पर्यवसान माधुर्यभावमें ही होता है।'

गौड़ीय सम्प्रदायमें श्रीहनुमानजी दास्य-भक्तिके आदर्श माने जाते हैं। इस मान्यताकी प्रतिष्ठा श्रीचैतन्यमहाप्रभुने स्वयं अपनी मानवी लीलामें श्रीमन्मुरारिगुप्तके माध्यमसे तथा परवर्ती वैष्णवाचार्योंने अपनी टीकाओंमें दृष्टान्तोंके माध्यमसे की है।

~~o~~

वल्लभ-सम्प्रदायमें श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीप्रभुदासजी वैरागी, एम्०ए०)

भारतवर्ष देवभूमि है। यहाँ समय-समयपर देवता अपनी लीला करनेके लिये अवतरित होते रहते हैं। स्वयं नारायण भी नर-रूप धारणकर इसी पुण्य भूमिपर पधारते हैं और अपनी दिव्यातिदिव्य लीलाओंसे संसारको आश्चर्यचकित कर धर्मकी स्थापना करते हुए पुन: अपने श्रीविग्रहको तिरोहित कर लेते हैं। इस प्रकार जितने भी देवता हैं, वे सब सनातन-धर्ममें पूजनीय हैं। वैष्णव-धर्म भी सनातन-धर्मका ही एक अङ्ग है; अत: अन्यान्य देवताओंके साथ वल्लभ-सम्प्रदायमें श्रीहनुमानजीकी पूजा भी एक विशेष स्थान रखती है, जो सम्प्रदायाचार्योंद्वारा विशिष्ट अवसरोंपर निरन्तर होती चली आ रही है।

वल्लभ-सम्प्रदायका प्रारम्भ भगवान् श्रीपुरुषोत्तमसे आरम्भ होकर भगवान् शंकरके द्वारा आगे-से-आगे बढ़ाया गया है। भगवान् आशुतोष इस सम्प्रदायमें वैष्णवाग्रगण्य हैं और मारुतिराय शंकर-सुवन होनेके कारण इस सम्प्रदायमें यथाविधि पूजित एवं अर्चित हैं।

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्॥

वल्लभ-सम्प्रदायमें उपर्युक्त चार प्रमाणोंको ही प्रधानता दी गयी है। इनमें समाधि-भाषाके अन्तर्गत श्रीमद्भागवतकी गणना है, जो वल्लभ-सम्प्रदायमें दीक्षित प्रत्येक वैष्णवका जीवन-प्राण है। इस सम्प्रदायमें इसे भगवान् श्रीकृष्णका वाङ्मयस्वरूप माना जाता है। इसके विभूति-योगमें—'**किम्पुरुषाणां हनुमान् विद्याध्राणां सुदर्शनः।**' (११। १६। २९) कहा गया है तथा पञ्चम स्कन्धके उन्नीसवें अध्यायमें—'**किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते।**'—कहकर भगवान् बादरायणने श्रीहनुमानजीकी स्तुति की है। ऐसी दशामें इसी श्रीमद्भागवतको आधार-ग्रन्थ माननेवाला वल्लभ-सम्प्रदाय हनुमानजीकी आराधना एवं पूजासे वञ्चित कैसे रह सकता है?

यह तो सर्वविदित ही है कि इस सम्प्रदायके आद्याचार्य श्रीमद्वल्लभमहाप्रभुने अनेक बार भारत-भ्रमण किया और प्रत्येक भ्रमणके पश्चात् वे गोवर्धन पधारकर गिरिराजधरण प्रभु श्रीनाथजीकी सेवा सँभालते रहे हैं। इसी भ्रमणके बैठक-विवरणोंसे पता चलता है कि श्रीआचार्य भ्रमणके अन्तर्गत जब चित्रकूट पधारे, तब वहाँ उन्होंने लोकमङ्गलकारी श्रीमद्वाल्मीकि-रामायणका पारायण पाठ वातात्मज श्रीहनुमानजीको सुनाया, जिसे पवनकुमार कई दिनोंतक गद्गद हृदयसे सुनते रहे (बैठक-चरित्र २४)। आज भी श्रीहनुमानजी तथा श्रीवल्लभाचार्यजीके मिलनकी स्मृति दिलानेवाली चित्रकूट एवं अयोध्याकी बैठकें सम्प्रदायकी पुण्य थाती बनी हुई हैं, जो वैष्णवोंको श्रीहनुमानजीकी आराधनाका अमर संदेश देती रहती हैं।

इधर 'चौरासी वैष्णवोंकी वार्ता' की संख्या ७६ के अनुसार इस बातका भी पता चलता है कि आचार्यने अपने जन्म-दिवसपर मार्कण्डेय-पूजा आरम्भ की। उस पूजामें सप्त चिरंजीवियोंके पूजन एवं वन्दनका विधान है—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

इसमें भी अश्वत्थामा, राजा बलि, भगवान् वेदव्यास, महाराज विभीषण, रणरंगी कृपाचार्य और वीरशिरोमणि

परशुरामजीके साथ अतुलित-बलधाम श्रीराम-भक्त श्रीहनुमानजीकी पूजा की जाती है। यही नहीं, इस पूजनके पश्चात् महाप्रभु वल्लभाचार्यजीने निम्न श्लोकद्वारा केसरीनन्दन श्रीहनुमानजीकी स्तुति भी की है—

अञ्जनिगर्भसम्भूत कपीन्द्र सचिवोत्तम।
रामप्रिय नमस्तुभ्यं हनुमन् रक्ष सर्वदा॥

मार्कण्डेय-पूजा आज भी इस सम्प्रदायमें विशिष्ट महत्त्व रखती है। प्रत्येक गोस्वामी बालक अपने जन्म-दिवसपर अन्य देवताओंके साथ महावीर श्रीहनुमानजीकी पूजा करता ही है। इतना ही नहीं, श्रीमद्‌वल्लभाचार्यके जीवनका अन्तिम लीला-केन्द्र भी काशीका हनुमानघाट ही रहा है। इसी घाटपर महावीर श्रीहनुमानजीके समक्ष ही उन्होंने मौन संन्यास धारण किया, अपने पुत्रद्वयको अन्तिम उपदेश दिया तथा भगवान् श्रीनाथजीके साक्षात् दर्शन कर अपने शरीरको तरण-तारणी गङ्गामें अन्तर्हित कर लिया। इससे स्पष्ट होता है कि इस सम्प्रदायके आचार्य महाप्रभु श्रीमद्‌वल्लभने यथासमय अञ्जनीकुमार श्रीहनुमानजी-की अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्तिके साथ पूजा की है। उसीको आदर्श मानकर इन्हीं आचार्यद्वारा प्रवर्तित इस सम्प्रदायमें पवनतनय श्रीहनुमानजीकी सर्वविध अर्चना होती है।

श्रीमद्‌वल्लभाचार्यकी श्रीहनुमानजीके प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी, जिसका प्रभाव उनके शिष्यों एवं वंशजोंपर भी पड़ा। इसी कारण उनके शिष्योंने भी श्रीहनुमानजीका गुण-गान किया। श्रीवल्लभ-सुत गुसाईंजी श्रीविट्ठलनाथजीने जब 'अष्टछाप' की स्थापना की, तब उन्होंने भी कीर्तनोंमें श्रीहनुमानजीकी स्तुतिको उचित स्थान और महत्त्व दिया। यद्यपि इस सम्प्रदायमें यशोदा-कुमार नन्दनन्दन गोवर्धनोद्धरण आनन्दकन्द प्रभु श्रीकृष्ण ही सेव्य हैं, तथापि श्रीकृष्ण और श्रीराममें अभेद मानकर अष्टयाम-सेवा-विधानमें भगवान्‌के समक्ष शारदीय नवरात्रमें चार दिन श्रीराम और श्रीहनुमानजीके सम्बन्धमें कीर्तन गाये जाते हैं, जिन्हें इस सम्प्रदायमें 'कररवा' कहते हैं और जो 'मारू'-रागमें निनादित होते रहते हैं। 'अष्टछाप' के सिरमौर कवि, श्याम-सखा तथा महान् गायक श्रीसूरदासजीने श्रीहनुमानजीका भव्य गुण-गान भावभरे हृदयसे अपने पदोंमें किया है। श्रीनन्ददास, श्रीकृष्णदास आदि 'अष्टछाप' के भक्त-कवियोंकी वाणी भी श्रीहनुमद्‌गुणगानसे अलंकृत है।

अतः यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि 'अष्टछाप' के परमभगवदीय गायक कवियोंने श्रीहनुमानजीके प्रति अपनी श्रद्धाके शब्द-सुमन पद-कीर्तनोंके माध्यमसे अपने परमाराध्य भगवान् श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें ज्यों-के-त्यों सादर समर्पित कर दिये हैं, जिससे एक ओर अन्याश्रय भी नहीं हो और दूसरी ओर वीराग्रगण्य श्रीहनुमानजीका अमर गुण-गान भी हो जाय। आज भी महावीर श्रीहनुमानजीके सम्बन्धमें रचित अष्टछाप-कवियोंके पदोंसे नवरात्रमें भारतके समस्त पुष्टिमार्गीय मन्दिर प्रतिध्वनित होते रहते हैं।

इस सम्प्रदायमें गुरु-आज्ञा ही प्रधान मानी जाती है। गुरु ही परम ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णसे जीवका 'ब्रह्म-सम्बन्ध' करवाते हैं। इन सम्प्रदायाचार्योंमें गुरु तिलकायत श्रीमुकुटमणि कहलाते हैं। इन तिलकायतोंने इस सम्प्रदायमें श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसाईंजीकी हनुमत्-आराधनाको वैसा-का-वैसा ही बनाये रखा और साथ ही अपने-अपने स्थानोंपर श्रीहनुमानजीके श्रीविग्रहोंकी प्राण-प्रतिष्ठा करवायी। औरंगजेबके क्रूर शासनमें जब भगवान् श्रीनाथजी मेदपाठ-मेवाड़में पधारे और श्रीनाथद्वाराकी स्थापना हुई, तब भगवद्विग्रहके साथ पधराये गये श्रीहनुमानजीके श्रीविग्रहकी स्थापना सिंहाड़ नामक ग्राममें तिलकायतश्रीने की, जो आज भी अनेक भावुक भक्तोंकी मनःकामना पूर्ण करते हुए उसी ग्राममें विराजमान है। तिलकायतोंद्वारा आयोजित हनुमज्जयन्तीका आयोजन और रोग-शोकादिके निवारणार्थ श्रीहनुमानजीकी पूजा सर्वत्र श्रीहनुमत्प्रेमका द्योतक बनी हुई है। जब श्रीहनुमानजीमें तिलकायतोंकी अटूट श्रद्धा है, तब अन्य वैष्णवाचार्योंमें वह किसी भाँति कम कैसे हो सकती है? सभी वैष्णवाचार्योंने भी यथासमय केसरीनन्दन मारुति श्रीहनुमानजीकी सेवा किसी-न-किसी रूपमें करके अपने जीवनको कृतकृत्य किया ही है।

आचार्य, सम्प्रदाय और ठाकुरजीकी सेवामें श्रीहनुमानजीका वैशिष्ट्य है, तब फिर वल्लभ सम्प्रदायाश्रयी भावुक वैष्णव भक्त श्रीहनुमानजीकी आराधनासे क्यों दूर रहें? किंतु इस सम्प्रदायमें अन्याश्रय वर्जित है। खुले रूपसे श्रीकृष्णभगवान्‌के साथ अन्य देवी-देवताओंकी आराधना नहीं की जा सकती। अतः वैष्णवजन अपने ठाकुरजीके साथ ही प्रच्छन्नरूपसे श्रीहनुमानजीका जयघोष कर अपनी भक्ति-भावना दास्य-भक्त श्रीहनुमानजीके पास भी पहुँचा देते हैं। यह सभी जानते हैं कि प्रत्येक वैष्णव अपने इष्टदेवके जय-जयकारके साथ ही 'पूँछड़ीके लौंटेकी हूप—वाह

प्यारे'-की आवाज भी बुलन्द करता है। समवेत स्वरोंसे गुञ्जायमान इस जयघोषमें मारुतिरायका ही जय-निनाद छिपा हुआ है। गिरिराज गोवर्धनके एक छोरपर जो बस्ती है, उसका नाम है 'पूँछड़ीका लौंटा' और वहाँपर जो सर्वकामनापूरक श्रीहनुमानजी विराजमान हैं, उन्हें 'हूप' कहकर सम्बोधित किया जाता है। अत: प्रत्येक वैष्णव अपने इष्टदेवके जय-जयकारके साथ इस पङ्क्तिको उच्चारित करना नहीं भूलता और प्रतिदिन प्रभञ्जन-सुत श्रीहनुमानजीका स्मरण कर ही लेता है।

इस प्रकार श्रीकृष्ण-भक्तिका सुदृढ़ गढ़ यह वल्लभ-सम्प्रदाय श्रीकृष्णकी विभिन्न लीलाओंके नयनाभिराम दृश्योंसे आच्छादित होते हुए भी श्रीहनुमत्-आराधनाको आदरपूर्वक उचित स्थान देता है, जो बारम्बार स्तुत्य है।

सूरदासके हनुमान

(लेखक—क० श्रीगोकुलानन्दजी तैलंग, बी०ए०, साहित्यरत्न)

श्रीहनुमान कोसलाधीश श्रीरामके संतत सेवक, सहचर और अनुचर हैं, किंतु किष्किन्धामें दूतत्व-ग्रहण, फिर सागर-संतरण, संजीवनी बूटी-आनयन—ये सब चरित्र सूरकाव्यमें अनुपद वर्णित हैं। वस्तुत: देखा जाय तो श्रीहनुमानका व्यक्तित्व एक 'संजीवनी-सम्पुटित' चरित्र है। प्रारम्भमें श्रीरामके लिये उनके द्वारा लायी हुई 'सीताकी सुध' संजीवनी-रूप ही है, उधर लंकाके भीषण युद्ध-प्रसङ्गमें उनके द्वारा लायी हुई श्रीलक्ष्मणको पुनर्जीवनदायिनी बूटी भी प्रत्यक्ष 'संजीवनी' है ही। रामायणके चरितनायक श्रीराम और उनके अनुज श्रीलक्ष्मण—दोनोंको संजीवनी प्रदान करनेका श्रेय श्रीहनुमानको ही है।

समस्त वानरदलको एकत्र करके सुग्रीव श्रीजनकनन्दिनीकी खोज करनेकी योजनापर मन्त्रणा कर रहे हैं। सभी दिशाओंमें दूत भेजे जाने सम्भव हैं, किंतु समुद्रोल्लङ्घन करके लंकाका दूतत्व कौन स्वीकार करे? श्रीहनुमानजी तो अपनी अतुल शक्तिको विस्मृत किये बैठे हैं, शापगत होकर कहिये या अपनी सहज प्रकृतिके अनुसार। तब जाम्बवान् उन्हें उनके सामर्थ्यका स्मरण दिला रहे हैं—

या दल मध्य प्रगट केसरि-सुत जाहि नाम हनुमंत।
वहै ल्याइहैं सिय-सुधि छिन मैं, अरु आइहैं तुरंत॥
उन प्रताप त्रिभुवन कौ पायौं, वाके बलहि न अंत।

(सूरसागर ९। ७४)

कितनी अलौकिक अनुपम शक्ति है? और लीजिये, श्रीहनुमानके अदृष्ट एवं अव्यक्त विक्रमकी अभिव्यक्ति कितनी स्पष्ट है। आत्म-विस्मरणकी हलकी परत हट गयी और उनका प्रच्छन्न ओज उद्योतित हो उठा—

चढ़ि गिरि-सिखर सब्द इक उचर्‌यो गगन उठ्यौ आघात।
कंपत कमठ-सेष-बसुधा-नभ, रबि-रथ भयौ उतपात॥
मानौ पच्छ सुमेरहिं लागे, उड्यौ अकासहिं जात।
चक्रित सकल परस्पर बानर, बीच परी किलकात॥

(सूरसागर ९। ७४)

अब सागर-संतरण 'समस्या' नहीं रह गयी। किष्किन्धा और लंकाके बीचकी दूरी श्रीहनुमानके लिये अब अपरिमेय, अनुल्लङ्घ्य न रही। वे तत्काल ही जगज्जननी जनकनन्दिनीके समक्ष अशोक-वाटिकामें जाकर खड़े हो गये—विनीत और समर्पित मुद्रामें—

जननी हौं अनुचर रघुपति कौ।
मति माता करि कोप सरापै, नहिं दानव ठग मति कौ॥
आग्या होइ, देउँ कर-मुँदरी, कहौं संदेसौं पति कौ।
मति हिय बिलख करौ सिय, रघुबर हतिहैं कुल दैयत कौ॥
कहौ तौ लंक उखारि डारि देउँ जहाँ पिता संपति कौ।
कहौ तौ मारि-सँहारि निसाचर, रावन करौं अगति कौ॥
सागर तीर भीर बनचर की, देखि कटक रघुपति कौ।
अबै मिलाऊँ तुम्हें 'सूर' प्रभु, राम रोष डर अति कौ॥

(सूरसागर ९। ७४)

श्रीरघुनाथजीका सेवक—अनुचर होना उनके लिये एक बहुत बड़े गौरव और स्वाभिमानका विषय है। स्वामीके कृपा-बलपर ही तो वे लंकाका समूलोन्मूलन, समस्त निशाचरोंका संहार और रावणकी गतिको कुण्ठित कर उन्हें पातालमें डाल देनेका दम भरते हैं। केवल एक आज्ञाकी ही आवश्यकता है। फिर तो श्रीरामका वानर-कटक समुद्रके उस पार उपस्थित है—स्वामीसे सीताका मिलाप एक क्षणमें ही सम्भव है। किंतु यह सब भावावेश है—× × ***डरपत हौं आज्ञा अपमानहिं।*** (सूरसागर ९। ७५) × ×—ऐसा वे आगे कहते हैं। वे अपने दौत्य-धर्मकी मर्यादाको जानते हैं। श्रीरामकी परिचयात्मिका मुद्रिकाके साथ उनका संदेश सीताको

देनेतक ही उनके कर्तव्यकी सीमा है—इतनेतक ही स्वामीकी आज्ञा है। ठगमति दानवोंकी मायिक कपटरूपताका संदेह सीताके मनसे निवृत्त करनेके लिये ही वे यह सब वातावरण उपस्थित कर रहे हैं। दूत और सेवकके धर्मका कितना सुन्दर समन्वय है यह।

शरीरमें प्रस्वेद-कम्पनादि सात्त्विक भावोंके उदयके साथ वे निर्द्वन्द्व, स्वच्छन्द और निर्बन्ध हो गये। शौर्य और भक्तिका एकत्र विनियोग एवं निदर्शन श्रीहनुमानके चरित्रकी विशेषता है।

श्रीराम स्वयं पवनपुत्रके इस विक्रमसे विस्मित हो रहे हैं। परम तेजस्वी, त्रिभुवनविजयी रावण और उसके अनुचर योद्धा निशाचरोंका पराभव, अशोक-वाटिका-उन्मूलन और सोनेके सुदृढ़ लंकागढ़का दहन श्रीहनुमानकी अचिन्त्य-अपरिमित शक्ति—उनके क्रोधानलकी विनाश-विप्लवकारिणी वीर-शक्तिका प्रमाण है। श्रीहनुमानका तद्विषयक संवाद कितना प्रभावोत्पादक है—

कैसें पुरी जरी कपिराइ ?
बड़े दैत्य कैसैं कै मारे, अंतर आप बचाइ?
प्रगट कपाट बिकट दीन्हे, हे बहु जोधा रखवारे।
तैंतिस कोटि दैव बस कीन्हे, ते तुम सौं क्यौं हारे॥
तीनि लोक डर जाकें काँपै, तुम हनुमान न पेखे।
तुम्हरैं क्रोध स्त्राप सीता कैं, दूरि जरत हम देखे॥
हौं जगदीस कहा कहौं तुम सौं, तुम बल-तेज मुरारी।
'सूरदास' सुनौ सब संतौ ! अविगत की गति न्यारी॥

(सूरसागर ९। १०५)

इन समस्त विस्मयकारी घटनाओं और इनमें अधिगत सफलताका श्रेय श्रीहनुमान स्वयं नहीं लेते, अपितु ***'तुम बल-तेज मुरारी'***—यह श्रीरामकी ही अव्यक्त प्रेरणा, शक्ति और आशीर्वादका प्रतिफल है—यह स्वीकार करते हैं। सूरदास भी उनका समर्थन करते हैं—***'अविगत की गति न्यारी।'*** श्रीराम तो त्रिभुवनपति 'जगदीश' हैं, श्रीजनकसुता उनकी आद्या शक्ति स्वामिनी हैं और श्रीहनुमान उनके परमभक्त, सेवकाग्रगण्य और मन-वचन-कर्मसे दास हैं। फिर विजय क्यों न हो। श्रीहरिकी अवमानना, भगवद्भक्तके प्रति अपराध और नारी-शक्तिका तिरस्कार (त्रिकोणात्मक अपमान)—ये लंकापुरीके विनाश और उसकी पराजयके मूलकारण हैं।

श्रीराम पवनतनयकी इस अलौकिक शक्तिको जानते हैं। श्रीहनुमानको जिस प्रकार अपनी प्रभुप्रदत्त अन्त:शक्ति और आत्मबलपर विश्वास है, उसी प्रकार प्रभु भी अपने भक्तकी क्षमता, प्रतिभा और सामर्थ्यमें दृढ़ विश्वास रखते हैं और इसीलिये जब-जब विषम स्थिति, अपरिहार्य आपदा आती है, तब श्रीराम अपने अनन्य प्रिय भक्तका स्मरण करते हैं उनके निवारणके लिये। अनुज लक्ष्मणको लंकाके भीषण युद्धमें शक्ति लगती है और वे अचेत पड़े हैं। इस समय उनके प्राणरक्षणार्थ संजीवनी—आनयन-सरीखे दुस्तर कार्यके लिये विह्वल होकर वे श्रीहनुमानका ही आह्वान करते हैं—

कहाँ गयौ मारुत-पुत्र कुमार।
है अनाथ रघुनाथ पुकारे, संकट-मित्र हमार॥
× × ×
नाहिन और बियौ कोउ समरथ, जाहि पठावौं दूत।
को अब है पौरुष दिखरावै, बिना पौन के पूत॥

(सूरसागर ९। १७४)

मारुतिको प्रभु 'संकट-मित्र' नामसे पुकार रहे हैं। इतना पुरुषार्थी दूत कोई इस भूतलपर जन्मा ही नहीं, जो इस असह्य प्राण-संकटके समय संजीवनी ला सके। इधर श्रीहनुमान भी प्रभुकी सेवाके लिये तत्क्षण तत्पर हैं।

निस्संदेह वे अपने 'संजीवनी-अभियान' में कृतकार्य होंगे, यह उनकी अडिग निष्ठा है। यथासमय यह सब दिव्य चमत्कार भी श्रीराम देख लेते हैं—

हनूमान संजीवनि ल्यायौ।
महाराज रघुबीर धीर कौं, हाथ जोरि सिर नायौ॥
परबत आनि धर्‌यौ सागर-तट, भरत सँदेस सुनायौ।
'सूर' सँजीवनि दै लछिमन कौं, मूर्च्छित फेरि जगायौ॥

(सूरसागर ९। १५६)

संजीवनी श्रीलक्ष्मणको ही नहीं मिली, मानो समग्र श्रीराम-दलको प्राप्त हो गयी। स्वयं हेमशैलाभदेह पवनपुत्र श्रीहनुमान, फिर उनके वाम करपर दिव्यज्योतिष्मान् कान्तिमान् शैलखण्ड, कितना कुतूहलमय दृश्य है। सागरतटपर संजीवन-पर्वतको प्रस्थापित कर श्रीरघुवीरके चरणोंमें श्रीहनुमान विनयावनत हो रहे हैं, साथ ही अयोध्या-मार्गसे आते हुए श्रीभरतका प्राप्त संदेश भी सुना रहे हैं। प्रभु गद्‌गद हो उठे। समग्र निराशा, उद्वेग और अन्त:पीडा, जो प्रभुको आकुलित कर रही थी, निरस्त हो गयी। भक्त कवि सूरदासके वीर हनुमान, संजीवनी-सम्पुटित व्यक्तित्वसे समन्वित श्रीहनुमानको बारम्बार प्रणाम है।

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीवैदेहीकान्तशरणजी)

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम्॥

(श्रीरामरक्षास्तोत्र ३१)

समस्त हिंदू-परिवारोंमें संकटमोचन श्रीहनुमानजीकी पूजा विभिन्न प्रकारसे होती है; परंतु श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें श्रीहनुमानजीका एक अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। सामान्य हिंदू-जगत् इन्हें देवता अथवा भगवान् श्रीरामके दूतके रूपमें ही मानता और पूजता है; परंतु श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें इनकी साकेताधीश श्रीरामके नित्य परिकर और श्रीराम-मन्त्रके प्रधान आचार्यके रूपमें उपासना की जाती है।

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके अनुसार सप्तावरण-संज्ञक प्रकृति-मण्डलके ऊपर परम प्रकाशमय 'महावैष्णव'-संज्ञक लोक है। उसके मध्यमें 'साकेत'-संज्ञक दिव्य लोक है, जो नित्य है और वहाँ परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीराम अपने समस्त परिकर, परिच्छद एवं परिजनोंके साथ सदा विराजमान रहते हैं। वहाँ श्रीहनुमानजी सदा उनकी सेवामें तत्पर रहते हैं। वहीं श्रीरामतारक-मन्त्रका उपदेश श्रीरामजीने श्रीसीताजीको दिया और श्रीसीताजीने हनुमानजीको। फिर श्रीहनुमानजीने ब्रह्माको दिया और ब्रह्माके द्वारा यह मन्त्र परम्परारूपसे विस्तृत हुआ—

भगवान् रामचन्द्रो वै परं ब्रह्म श्रुतिश्रुतः।
दयालुः शरणं नित्यं दासानां दीनचेतसाम्॥
इमां सृष्टिं समुत्पाद्य जीवानां हितकाम्यया।
आद्यां शक्तिं महादेवीं श्रीसीतां जनकात्मजाम्॥
तारकं मन्त्रराजं तु श्रावयामास ईश्वरः।
जानकी तु जगन्माता हनूमन्तं गुणाकरम्॥
श्रावयामास नूनं हि ब्रह्माणं सुधियां वरम्।
तस्मादेव वसिष्ठर्षिः क्रमादस्मादवातरत्॥

(वाल्मीकिसंहिता)

इस प्रकार ये श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके सम्प्रदायाचार्यके रूपमें मान्य और पूजित हैं। सम्प्रदायाचार्य श्रीमदनन्ताचार्यजीने अपने ग्रन्थ 'सिद्धान्तदीपक' में इन्हें श्रीराम-मन्त्र-प्रवर्तकके रूपमें नमन किया है—

मारुतिं वीरवज्राङ्गं भक्तरक्षणदीक्षितम्।
हनूमन्तं सदा वन्दे राममन्त्रप्रचारकम्॥

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें आचार्य श्रीहनुमानजीकी उपासना आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी है—

आचार्यं हनूमन्तं त्यक्त्वा ह्यन्यमुपासते।
क्लिश्यन्ति चैव ते मुग्धा मूलहाः पल्लवाश्रिताः॥
हनुमत्परमाचार्यं विनाऽऽचार्यो न कोऽपि च।
इति पद्धतिनिर्णीतं पूर्वोक्तं च मयोदितम्॥

(महाशिवसंहिता)

श्रीहनुमानजी भक्तिके आचार्य माने गये हैं—

इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भया एकमताः कुमारव्यास-शुकशाण्डिल्यगर्गविष्णुकौण्डिन्यशेषोद्धवारुणिबलिहनुमद्विभीषणादयो भक्त्याचार्याः॥ (नारदभक्तिसूत्र ८३)

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें श्रीरामजीकी उपासनाके साथ श्रीहनुमानजीकी उपासना अनिवार्यरूपसे प्रतिपादित है। श्रीराम-मन्त्र (**रां रामाय नमः**)-के साथ ही हनुमान-मन्त्र (**हं हनुमते नमः**)-का जप होता है तथा श्रीराम-गायत्री (**दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्**)-के साथ ही हनुमद्गायत्री (**आञ्जनेयाय विद्महे महाबलाय धीमहि तन्नो हनुमान् प्रचोदयात्**)-का भी जप होता है।

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके अनुसार श्रीरामजीके द्वारपर श्रीहनुमानजी सतत विराजमान रहते हैं और बिना उनकी आज्ञाके कोई श्रीरामजीकी ड्योढ़ीमें प्रवेश नहीं कर सकता। अतः श्रीरामजीकी प्राप्तिके लिये सर्वप्रथम श्रीहनुमानजीकी कृपा आवश्यक है—

'राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे॥'

(हनुमानचालीसा)

श्रीहनुमानजीकी कृपासे जब जीव श्रीरामजीके भवनमें पहुँच जाता है, तब वहाँ वात्सल्यमयी माँ मैथिली उसे भगवान्के सम्मुख कर देती हैं। बिना माँ मैथिलीकी कृपाके जीवको श्रीराम-रूपका दर्शन नहीं हो सकता। अतः श्रीरामजीकी प्राप्तिमें श्रीहनुमानजी और श्रीजानकीजी सोपान-स्वरूप हैं।

अन्य सम्प्रदायोंमें श्रीहनुमानजीकी पूजा स्वतन्त्ररूपसे होती है; परंतु श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके अनुसार श्रीरामजीका प्रसाद ही श्रीहनुमानजी ग्रहण करते हैं, अतः श्रीरामजीको अर्पित की गयी वस्तु ही श्रीहनुमानजीके पूजोपचारमें प्रयुक्त होती है—

श्रीरामस्य प्रसादो हि भुङ्क्ते श्रीमारुतात्मजः।
अतः कपीशपूजायां हरेरर्पितमर्पयेत्॥

कुछ लोग अज्ञानवश श्रीहनुमानजीके पूजनमें गाँजाका

प्रयोग करते हैं, किंतु यह सर्वथा अनुचित है; क्योंकि गाँजा न तो श्रीरामजीको स्वीकार है और न श्रीहनुमानजीको ही।

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें श्रीराम-जन्मोत्सवके समान श्रीहनुमानजीका जन्मोत्सव भी मनाया जाता है। कुछ लोग श्रीहनुमानजीका जन्म चैत्र मासमें मानते हैं—

चैत्रे मासि सिते पक्षे पौर्णमास्यां कुजेऽहनि।
मौञ्जीमेखलया युक्तः कौपीनपरिधारकः॥
कर्णयोः कुण्डले प्राप्तस्तथा यज्ञोपवीतकः।
प्रवालसदृशो वर्णो मुखे पुच्छे च रक्तकः॥
एवं वानररूपेण प्रकटोऽभूत् क्षुधातुरः॥

(तन्त्रसार)

परंतु श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें श्रीहनुमानजीका जन्म कार्तिक मासमें माना जाता है—

स्वात्यां कुजे शैवतिथौ तु कार्तिके
कृष्णेऽञ्जनागर्भत एव साक्षात्।
मेषे कपीट् प्रादुरभूच्छिवः स्वयं
व्रतादिना तत्र तदुत्सवं चरेत्॥

(श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर ८१)

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें श्रीहनुमानजी ब्राह्मण माने गये हैं। ऐसा उपर्युक्त तन्त्रसार-वचन '**कर्णयोः कुण्डले प्राप्तस्तथा यज्ञोपवीतकः**' के अतिरिक्त श्रीरामचरितमानसकी चौपाइयोंसे भी सिद्ध है। अतः इस सम्प्रदायमें श्रीहनुमानजीको यज्ञोपवीत भी अर्पित किया जाता है।

श्रीहनुमानजीका दूसरे आचार्योंके रूपमें भी अवतार धारण करनेका उल्लेख है—

भविष्यन्ति कलौ घोरे जीवा हरिबहिर्मुखाः।
रामाज्ञा हनुमांश्चैव मध्वाचार्यः प्रभाकरः॥
शंकरः शंकरः साक्षाद् व्यासो नारायणः स्वयम्।
शेषो रामानुजो रामो रामदत्तो भविष्यति॥

(सदाशिवसंहिता)

श्रीहनुमानजी उपनिषदोंके उपदेष्टा ऋषि या आचार्य हैं। उन्होंने 'श्रीरामोपनिषद्' और 'श्रीरामरहस्योपनिषद्' का उपदेश किया है। 'हनुमत्संहिता' भी इन्हींका उपदेश है। 'मुक्तिकोपनिषद्' के जिज्ञासु श्रीहनुमानजी ही हैं तथा उपदेशक श्रीरामजी।

श्रीहनुमानजी श्रीरामजीके अङ्ग बतलाये गये हैं, इसीलिये हनुमानजीकी पूजा किये बिना श्रीरामजी विघ्नकारक कहे गये हैं—

'**वायुपुत्रं विघ्नेशं वाणीं दुर्गां क्षेत्रपालकं सूर्यं चन्द्रं नारायणं नारसिंहं वायुदेवं वाराहं तान् सर्वान् समात्रान् सीतां लक्ष्मणं शत्रुघ्नं भरतं विभीषणं सुग्रीवमङ्गदं जाम्बवन्तं प्रणवमेतानि रामस्याङ्गानि जानीथाः। तान्यङ्गानि विना रामो विघ्नकरो भवति।**' (रामरहस्योपनिषद्)

श्रीहनुमानजीको अष्टदल कमलमें स्थापित करनेका उपदेश है—

'**अष्टदलमूले हनुमदादि द्वितीयावरणम्॥**' (रा० र० उ०)

श्रीहनुमानजीके रोम-रोममें श्रीराम विराजमान हैं और वे सतत उनकी भक्तिमें तल्लीन रहते हैं। इसलिये वे श्रीरामजीके अतिशय प्रिय हैं। उनके हृदयमें सतत श्रीरामजी निवास करते हैं। संत श्रीतुलसीदासजीने इनकी इसी रूपमें वन्दना की है—

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥
प्रनवउँ पवन कुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायानुसार श्रीहनुमानजीका जन्म नहीं होता, वे तो श्रीरामके नित्य-परिकर हैं। उनका केवल अवतार होता है—

गर्भजन्मादिदुःखं मेऽननुभूय स्थिताः सदा।
सीतारामप्रियाः शश्वत्ते हनुमन्मुखा मताः॥

(श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर १३८)

दिव्यदेहधरा धीराः सुग्रीवादिकपीश्वराः।
सुग्रीवो हनुमान्नीलो नलश्च पनसस्तथा॥

श्रीहनुमानजी श्रीराम-मन्त्र और श्रीराम-भक्तिके आचार्य होनेके साथ ही अहंकारशून्य श्रीराम-सेवक हैं। उनका समस्त जीवन श्रीरामके कार्य-सम्पादनके लिये ही है। वे सभी कार्य श्रीरामजीको हृदयमें रखकर ही करते हैं। प्रभुका कार्य कर लेनेपर भी उनके मनमें अभिमान या अहंकार नहीं होता; क्योंकि वे तो उस कार्यकी पूर्ति होना श्रीरामजीकी कृपासे ही मानते हैं। इस प्रकारके दिव्य आचरणके द्वारा वे सभी श्रीराम-भक्तोंको कर्तव्य-पालनका उपदेश देते हैं।

जिस प्रकार श्रीविष्णुमहायज्ञ, श्रीरुद्रमहायज्ञ आदि महायज्ञ होते हैं, उसी प्रकार श्रीरामानन्द-सम्प्रदायानुसार श्रीमारुतिमहायज्ञ भी होता है। जैसे मन्दिरोंमें अर्चावतार भगवद्विग्रहोंके धनुषधारी, श्रीराम, श्रीरघुनाथजी, श्रीकोसलकिशोर आदि नाम होते हैं, वैसे ही मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित श्रीहनुमानजीके विग्रहोंके भी बाला-हनुमान, मनःकामना-सिद्ध हनुमान, पञ्चमुखी हनुमान, संकटमोचन हनुमान आदि नाम प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जहाँ अन्य सम्प्रदायोंमें श्रीहनुमानजी केवल देवता और अष्टसिद्धिप्रदाता आदि माने जाते हैं, वहीं श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें ये सम्प्रदायाचार्य, भगवत्-परिकर और नित्य उपास्य हैं। अन्य सम्प्रदायोंमें इनकी उपासना ऐच्छिक हो सकती है, परंतु श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें वह अनिवार्य है। तभी तो श्रीरामके आवाहनके साथ ही इनका भी आवाहन करनेकी विधि है—

आगच्छ जानकीनाथ जानक्या सह राघव।
गृहाण मम पूजां च वायुपुत्रादिभिर्युतः॥

तुलसीके हनुमान

(लेखक—श्रीभिक्षु आनन्द)

भारतका अशिक्षित हिंदू भी जानता है कि ईश्वर एक ही है। वही विभिन्न रूपोंमें अवतरित होता है और विभिन्न रूपोंमें उसी एककी ही उपासना होती है। फिर भी भारतमें बहुसंख्यक देवी-देवताओंकी पूजा होती है और इसीसे प्रेरित होकर विदेशी तथा अन्य धर्मावलम्बी ऐसा समझ लेते हैं कि हिंदू-धर्ममें ईश्वर भी अनेक हैं। वस्तुतः सहस्रों देवता एक ही ब्रह्मकी सहस्रों शक्तियाँ हैं, उनमेंसे जिसको जो जचे, जो अनुकूल पड़े, उसको भजे। हजारों देवता एक ही सच्चिदानन्दकी हजारों भुजाओंके समान हैं। उन भुजाओंसे भगवान् हमें अपने वक्षः-स्थलसे लगा लेते हैं—यदि हममें प्रेम, भक्ति और सचाई हो।

भारतमें यह एक मान्यता व्याप्त है कि हनुमानजी भगवान् शंकरके अवतार हैं। गोस्वामीजीने लिखा है कि भगवान् श्रीरामके अवतारका आश्वासन पाकर सभी देवता वानररूपमें पृथ्वीपर अवतरित हुए—

निज लोकहिं बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ॥

(बाल० १८७)

परंतु मानसमें कहीं ऐसा स्पष्ट नहीं किया गया है कि कौन-से देवता किस वानरके रूपमें अवतरित हुए। सम्भव है, कहीं अन्यत्र उन्होंने इसका उल्लेख किया हो। जाम्बवान् सम्भवतः बृहस्पति और नल-नील अश्विनीकुमारोंके अवतार थे। हनुमानजीको तो शंकरका अवतार माना ही जाता है।

भले ही गोस्वामीजीने स्पष्ट नहीं लिखा कि स्वयं साक्षात् शिव ही वानरदेहमें अवतरित हुए थे, परंतु लगता है कि यह बात उनके मनमें सदा बनी रही। प्रस्तुत निबन्धमें यही बताना है।

भगवान् श्रीराम और हनुमानजीकी प्रथम भेंटका वर्णन किष्किन्धाकाण्डमें है, जब सुग्रीवने दो नरपुंगवोंको आते देखा और उन्हें संदेह हुआ कि वालीके भेजे हुए शत्रु आ रहे हैं। थोड़े-से संवादके पश्चात् हनुमानजी भगवान्‌के चरणोंमें गिर पड़ते हैं और इस सुखका अनुभव करते हैं—

आशुतोष शंकर—

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥

(किष्किन्धा० २। ५)

इस प्रकारकी अनेकों घटनाएँ हैं। जहाँ-कहीं श्रीराम और हनुमानके स्नेहालापका वर्णन है, वहाँ गद्गद हुए हैं स्वयं शंकर और उस आनन्दका वर्णन किया है उन्होंने भवानीसे।

और देखिये—सुन्दरकाण्डमें वर्णन आता है। हनुमानजी सीताकी सुधि लेकर आये हैं। श्रीराम और हनुमानका वहाँपर संवाद है।

हनुमानजीने कहा—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी॥

(सुन्दर० ३२। ३-४)

राजीवलोचन श्रीराम कृतज्ञता प्रदर्शित करके हनुमानजीको विचलित कर देते हैं। श्रीरामने कहा—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥

(वही ३२। ५-६)

हद हो गयी। परंतु इतना ही नहीं, आगे कहते हैं—

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥

पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता।
लोचन नीर पुलक अति गाता॥

(वही ३२। ७-८)

परिणाम इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता था—

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥

(वही ३२)

अब आगे सुनिये—

बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा।
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥

(३३। १-२)

स्पष्ट है, वह 'कर-पंकज' स्वयं शंकरजीके शीशपर ही फेरा गया था। तब भला, वे क्यों नहीं उस सुखका स्मरण करके मगन होते?

सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर॥

(३३। ३)

हनुमानजीने अपनी प्रशस्तिके उत्तरमें इतना ही कहा—

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

(३३।९)

ता कहँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल॥

(३३)

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥

(३४।१-२)

अब कहिये! भगवान्ने वरदान दिया हनुमानजीको और आशुतोष यह रहस्य किस आनन्दके साथ अन्नपूर्णाको बतला रहे हैं।

वे आगे कहते हैं—

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा॥

(३४।३-४)

यह है सदाशिवका निष्कर्ष, जो स्वयं अपने अनुभवपर आधारित है। एक संकेत लंकाकाण्डमें रावण-अङ्गद-संवादमें मिलता है। अङ्गद कहते हैं—

सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि॥

(२६)

अङ्गद जानते थे कि हनुमानजी क्या हैं?

गोस्वामीजी श्रीरामके बाद सबसे अधिक श्रीशंकरकी ही भक्ति करते थे। हनुमानजीकी स्तुतिमें उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। काशीमें 'संकटमोचन' की स्थापना उन्हींके द्वारा हुई है—ऐसा माना जाता है और इसके साथ ही सारे देशमें हनुमानजीकी पूजाका प्रचार हुआ। किसी अन्य वानरकी पूजाका विधान नहीं है। वस्तुतः वह सदाशिवकी पूजा है, जो देशभरमें व्याप्त है। भगवान् श्रीरामने हनुमानजीको जो प्रेमदान दिया, वह अन्य वानर नहीं प्राप्त कर सके। अयोध्यामें श्रीरामका सांनिध्य केवल हनुमानजीको ही प्राप्त हुआ। इसका कारण यही था कि भगवान् श्रीरामका कोई भक्त शंकरके समान नहीं था। भगवान्ने स्वयं कहा है—

कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें॥

(बाल० १३८।६)

जो सत बार पाठ कर कोई। छूटहिं बंदि महा सुख होई॥
जो यह पढ़ै हनुमानचलीसा। होय सिद्धि साखी गौरीसा॥

हनुमानजीकी उपासना अकारण नहीं की जाती। श्रीरामकी भक्ति करनेवाले हनुमानके भी भक्त हैं। इसका कारण यह है—

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥

(उत्तर० ४५)

तुलसीदासजी द्वारा वर्णित हनुमानजीका चरित्र अत्यन्त उदात्त और पवित्र है। श्रीरामके अतिरिक्त उनका कोई आश्रय, कोई परिग्रह नहीं है। श्रीरामके कार्यके अतिरिक्त उनका कोई व्यक्तिगत कार्य नहीं है। श्रीरामका प्रेम ही उनका साधन है। वही उनकी सिद्धि है। कहीं भी उनका व्यक्तिगत अस्तित्व नहीं दिखायी देता। वे श्रीराममय हैं। स्वयं श्रीराम ही उनके माध्यमसे कार्य कर रहे हैं। सुग्रीवके समान उनका राज्य, पुत्र, कलत्र आदि प्रपञ्च नहीं है। अपने बलका अभिमान तो क्या, उसका उन्हें बोध भी नहीं है। जब याद दिलाया जाता है, तभी उन्हें उसका स्मरण होता है। उन्होंने भक्तिके चरम मापदण्डको स्थापित किया है। अपने विषयमें उन्होंने कहा है—

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥

(सु० ७।७-८)

और भी—

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥

(सु० ३३। ७)

गोस्वामीजीने जो यह कहा है—

राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आग्या बिनु पैसारे॥

—उसमें मुझे यह अर्थ दिखायी देता है कि बिना हनुमानजीका उदाहरण समझे श्रीरामको नहीं पाया जा सकता। उनकी प्राप्तिके लिये हमें अपने व्यक्तित्वका सर्वथा विलय करना होगा, अपनेको सर्वथा श्रीरामके चरणोंमें समर्पित करना होगा और अपनेको उनका सर्वाङ्ग यन्त्र बना देना होगा। जब हम न होंगे, तब केवल श्रीराम होंगे। जब हमारा कार्य नहीं होगा, तभी श्रीरामका कार्य होगा। जब हमारा पूर्ण समर्पण होगा, तभी श्रीरामकी पूर्ण विजय होगी। श्रीरामकी पूर्ण विजय भक्तकी पूर्ण विजय है। यह है हनुमानजीका दर्शन।

श्रीसमर्थ-सम्प्रदायमें श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० श्री के० वि० मुले)

भारतीय संतोंमें राष्ट्रगुरु श्रीसमर्थ रामदास स्वामीका स्थान वैशिष्ट्यपूर्ण है। वे एक ऐसे संत हैं, जिन्होंने मनकी साधनाके साथ-साथ तनकी साधनाका भी समर्थन और प्रचार किया था। आध्यात्मिक उन्नतिके साथ-साथ शारीरिक शक्तिका संचय भी उनकी उपासना-पद्धतिका एक आवश्यक अङ्ग कहा जा सकता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि स्वयं श्रीहनुमानजी ही श्रीसमर्थके गुरु थे—

आदिनारायणं विष्णुं ब्रह्माणं च वसिष्ठकम्।
श्रीरामं मारुतिं वन्दे रामदासं जगद्गुरुम्॥

श्रीसमर्थ-सम्प्रदायकी यह गुरु-परम्परा है। श्रीहनुमानजीकी श्रीसमर्थपर प्रत्यक्ष और असीम कृपा थी। श्रीसमर्थके चरित्र-लेखकोंने ऐसा संकेत किया है कि श्रीराम-नामका गुरु-मन्त्र देकर श्रीहनुमानजीने श्रीसमर्थको उनकी बीस वर्षकी अवस्थामें ही प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका साक्षात्कार करा दिया था।

नासिक-क्षेत्रके निकट गोदावरीके तटपर 'टाकली' गाँव स्थित है। यहाँ श्रीसमर्थने बारह वर्षतक श्रीराम-नामका तेरह करोड़ जप करते हुए उग्र तपश्चर्या की थी। ऐसा कहा जाता है कि उस अवधिमें उनके प्रवचनोंको सुननेके लिये स्वयं श्रीहनुमानजी भी वामनरूपमें उपस्थित रहा करते थे। टाकलीकी तपश्चर्या उन्हें फलदायी हुई और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी उनपर कृपा हो गयी। बारह वर्षकी तपश्चर्या पूरी करनेके बाद टाकलीमें वे जिस कुटीमें निवासकर तप करते थे, उसमें गोबरकी श्रीहनुमान-मूर्ति स्थापित करके अपने शिष्य श्रीउद्धवजी गोस्वामीको वहाँकी देखभालके लिये नियुक्त कर वे तीर्थाटन करने निकल पड़े। कहा जाता है कि तीर्थाटनके पूर्व उनकी और बालक शिवाजीकी भेंट नासिकमें हुई थी।

तीर्थाटनके बारह वर्षोंकी अवधिमें उन्होंने प्राय: समस्त भारतमें पैदल ही भ्रमणकर सामाजिक जीवनका दीन-हीन चित्र निकटसे देखा। यवनोंद्वारा दलित होते हुए हिंदुओंके 'त्राहि-त्राहि'-स्वरसे उनके तन-मन तिलमिला उठे। हिंदू-धर्म और हिंदू-समाजका दुर्दशामय चित्र देखकर उन्होंने श्रीहनुमानजीकी उपासनाका संजीवन-महामन्त्र प्रवर्तित किया और इसके द्वारा हिंदुओंमें आत्मविश्वासकी भावना जाग्रत् की एवं उन्हें हिंदू-धर्मके संरक्षण करनेकी प्रेरणा प्रदान की। उनकी प्रेरणासे धर्म-संरक्षणार्थ हजारों स्थानोंपर शक्तिके प्रतीक श्रीहनुमानजीकी भव्य मूर्तियोंकी स्थापना हुई तथा स्थान-स्थानपर उनकी उपासना चल पड़ी। श्रीहनुमानजी केवल शारीरिक शक्तिके ही प्रतीक नहीं थे, अपितु उससे भी अधिक वे श्रीराम-'कार्य' के प्रतीक थे। श्रीराम-कार्यका अर्थ है—रावणत्वपर रामत्वकी विजय, अधर्मके स्थानपर धर्मकी स्थापना तथा देवत्वद्वारा असुरताका दमन। समर्थ श्रीरामदासद्वारा स्थापित मूर्तियोंमें पाँवतले राक्षसको दबाकर खड़े हुए विजयी वीर श्रीहनुमानजीका रुद्ररूप ही प्रदर्शित किया गया है। उनके द्वारा स्थापित मूर्तियोंकी यह एक पहचान-सी बन गयी है।

भारतके सुदूर प्रान्तोंमें भी स्वयं श्रीसमर्थके द्वारा स्थापित श्रीहनुमान-मन्दिर प्रसिद्ध हैं, जिनमें काशीके हनुमानघाटपर स्थापित मूर्ति, दिल्लीके कनॉट-प्लेस तथा शिमलाके मन्दिर विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके कार्योंका विशेष प्रचार महाराष्ट्रमें हुआ। सारे महाराष्ट्रमें उनके शिष्योंकी संख्या-वृद्धि द्रुतगतिसे हुई तथा स्थान-स्थानपर उनकी प्रेरणासे शक्तिदेवता वीर हनुमानकी स्थापना और उपासना बढ़ने लगी। 'जय जय रघुवीर समर्थ' का घोष सारे महाराष्ट्रके गाँव-गाँवमें गूँज उठा।

आज महाराष्ट्रकी तो ऐसी स्थिति है कि वहाँ एक भी गाँव ऐसा नहीं है, जिसमें श्रीहनुमान-मन्दिर न हो।

ऐसी मान्यता है कि श्रीसमर्थ-भक्तोंकी प्रार्थनापर श्रीहनुमानस्वामीजी महाराजने प्रवचनके रूपमें श्रीसमर्थ-चरित्रका वर्णन चाफलमें किया था। उनके इन प्रवचनोंको किसीने 'श्रीहनुमंतस्वामिकृत श्रीसमर्थाची बखर' नामक ग्रन्थमें संगृहीत किया है। इस बखरका संशोधन तथा प्रकाशन धुलियाके 'समर्थ वाग्देवता-मन्दिर' के द्वारा किया गया है। इस ग्रन्थमें श्रीसमर्थ रामदास स्वामीद्वारा स्थापित श्रीहनुमानजीके अनेकों मन्दिरोंका विवरण है, जिनमें महाराष्ट्रके ग्यारह मारुति-मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। ये ग्यारह विग्रहस्थल श्रीसमर्थ-सम्प्रदायके महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थान माने जाते हैं। तत्कालीन धर्म-संरक्षणके कार्यमें उनका असाधारण महत्त्व रहा है। कहा जाता है कि श्रीसमर्थके संकेतपर श्रीछत्रपति शिवाजी महाराजने इन मन्दिरोंके व्यवस्था-हेतु प्रत्येक मन्दिरके लिये ग्यारह एकड़ जमीन पुरस्काररूपमें प्रदान की थी। इन मन्दिरोंकी स्थापनाका क्रम तथा स्थान इस प्रकार है—(१) शहापुर, (२) मसूर, (३) चाफल, (४) उंब्रज, (५) शिराले, (६) मनपाडले, (७) पारगाँव, (८) मानेगाँव, (९) शिगणवाडी और (१०) बहेषोरगाँव। ये स्थान श्रीसमर्थ-सम्प्रदायके नितान्त श्रद्धास्थान हैं।*

श्रीसमर्थ रामदासजी श्रीहनुमानके महान् उपासक थे। उनके साहित्यमें श्रीहनुमानजी ब्रह्मचारी, प्रतापी, बुद्धिमान्, ज्ञानी, आदर्श श्रीराम-भक्तके रूपमें चित्रित हुए हैं। श्रीसमर्थद्वारा रचित 'मनोबोध' के श्लोक ८७में, श्री 'दासबोध' के सोलहवें दशकके छठे समासमें तथा किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्डमें श्रीहनुमानजीके विविध एवं सरस वर्णन प्रस्तुत किये गये हैं। उपरिनिर्दिष्ट ग्यारह मन्दिरोंकी श्रीहनुमान-उपासना-हेतु उन्होंने अलग-अलग ग्यारह स्तोत्र लिखे हैं। इनमें पहला और पाँचवाँ स्तोत्र अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रचलित है। श्रीहनुमानजीके वर्णनमें उनके चौदह अभङ्ग, ग्यारह पद और कई सवाइयाँ उपलब्ध हैं, जिनमें कुछ हिंदी-भाषामें भी प्राप्त हुई हैं। श्रीसमर्थद्वारा रचित श्रीहनुमानजीकी चार आरतियाँ भी उपलब्ध हैं, उनमेंसे दोका प्रचलन आज भी महाराष्ट्रमें प्रायः सर्वत्र दिखायी देता है। उनकी सरस शैली, प्रवाहपूर्ण वाक्य-रचना तथा ओजस्वी भाषाके कारण श्रीहनुमानजीका श्रीरघुवीर-सेवा-परायण, परमप्रतापी वीरतायुक्त सर्वाङ्गीण चित्र आँखोंके सामने अनायास खिंच जाता है। श्रीसमर्थ-सम्प्रदायमें इस समूचे साहित्यका बड़ी श्रद्धा और सम्मानके साथ पठन-मनन होता है।

विजय तथा सफलताकी प्राप्तिके लिये कवचके रूपमें ताबीजको भुजापर या गलेमें धारण करनेकी प्रथा भी उन्होंने आरम्भ की थी। इस ताबीजको पहले सिद्ध करना पड़ता है, जिसके लिये विधि-मन्त्र श्रीसमर्थजीने बताया है।

श्रीसमर्थद्वारा संचालित उपासनामें श्रीहनुमानजीका स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। यह तथ्य इस बातसे स्पष्ट हो जाता है कि नित्यकर्मके अन्तमें श्री 'दासबोध' का पाठ करनेके पश्चात् छः अन्य श्लोकोंके कहनेकी प्रथा रही है। इन श्लोकोंका भावार्थ यह है कि 'हमारी वंश-वेलि' श्रीहनुमानजीसे प्रस्फुटित हुई है, जो प्रभु श्रीरामरूपी मण्डपतक पहुँच गयी है। इस वेलिमें श्रीराम-भक्तिके फल लगे हैं। श्रीहनुमान ही हमारे कुल-पुरुष हैं। वे ही हमारे मुख्य देवता हैं। उनके बिना हमारा परमार्थ सिद्ध नहीं हो सकता। श्रीहनुमानजी ही हमारे सहायक हैं और प्रभु श्रीरघुनाथजी हमारे परमाराध्य हैं। जब हमें श्रीहनुमानजी-जैसे समर्थ गुरुकी कृपा प्राप्त हुई है, तब हम दासोंको किस बातकी कमी है? जब श्रीरघुनन्दन-जैसे दाता हैं, तब अन्य कोई हमें इनसे बढ़कर क्या दे सकता है? अतः इन्हें छोड़कर हमलोग किससे क्या माँगें? इसलिये हम श्रीरामके दास हैं। प्रभु श्रीरामचन्द्रके चरणोंमें ही हमारा विश्वास है। यदि आकाश भी टूट पड़े तो भी हम किसी औरके पास नहीं जायँगे। श्रीरामका स्वरूप हमारा सम्प्रदाय है, अयोध्या हमारा मठ है, माता जानकी तथा श्रीरघुनाथजी हमारे देवता हैं और श्रीहनुमानजीकी उपासना ही हमारा नियम है। इस प्रकार श्रीसमर्थ रामदास परमार्थ सिद्ध करते हैं।

---

* श्रीसमर्थने चाफलमें (१) प्रताप-मारुति तथा (२) दास-मारुति—दो विग्रहोंकी स्थापना की थी। उपर्युक्त दस स्थानोंमें उन्होंने ग्यारह मारुति-विग्रह स्थापित किये थे।

श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायमें श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीपुरुषोत्तमदासजी शास्त्री, श्रीखेड़ापा रामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य)

'हनूमान हरि चरणां लाया।'

(भक्तमाल, श्रीरामदासजी महाराज)

परब्रह्म परमेश्वर श्रीरामके चरणोंकी प्राप्ति करानेवाले परम वैष्णव भक्तवर श्रीहनुमानजीका नाम कौन नहीं जानता। श्रीराम-प्रेमी भक्तजन अनन्य श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक 'हनुमान'-नामका उच्चारण करते हैं।

'रामस्नेही'-शब्दमें व्यापकता, आस्था एवं महत्ता संनिहित है। 'राम'-नाम कल्याणकारी एवं महिमासंवलित है। इस 'राम'-नामकी महिमाका बखान करते हुए वेद, पुराण, इतिहास, भक्त, संत, कवि आदि अन्ततोगत्वा **'एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः'** (यजुर्वेद) आदि वाक्योंद्वारा पूर्णरूपसे उसका वर्णन करनेमें अपने-आपको असमर्थ बताकर मौन धारण कर लेते हैं। उस वर्णनातीत महिमामय नाम 'राम'-के साथ स्नेह (अनन्य प्रेम या आत्मीयता) हो जाना ही 'रामस्नेह' है और जिस प्राणीका 'राम' के साथ ऐसा प्रगाढ़ स्नेह हो जाता है, वही वास्तविक 'रामस्नेही' है। श्रीहनुमानजीका 'राम' के साथ ऐसा ही अनन्य प्रगाढ़ स्नेह है। अतः भक्तवर श्रीहनुमानजीका नाम संत-मतसे 'राम-स्नेही'-की श्रेणीमें एक समादरणीय विशिष्ट स्थान रखता है।

'रामस्नेही' का कौन-सा साध्य एवं साधन-पथ है, श्रीहनुमानजीने कैसी एवं क्या साधना की थी, इसका निरूपण करनेके लिये श्रीखेड़ापा रामस्नेही-सम्प्रदायके संतसाधन-मतको संक्षेपसे निम्न पङ्क्तियोंमें प्रस्तुत किया जाता है।

इस चराचर जगत्का मूल कारण केवल 'राम-नाम' ही है और यही हमारे जीवनका इष्ट, आधार, बल, विश्वास, आशा आदि सर्वस्व है। इसीके सहारे हम इस संसारमें निर्भय होकर मोक्ष-पदके भागी हो सकते हैं—

राम-नाम निज मूल है और सकल बिस्तार।
जन हरिया फल मुक्ति को लीजै सार सँभार॥

(श्रीहरिरामदास)

राम इष्ट आधार बल राम आस विस्वास।
राम भरोसे रम रह्या निरभै रामादास॥

(श्रीदयालुदास)

यह कल्याणकारी तारक-मन्त्र 'राम'-नाम हमें सुयोग्य गुरुकी कृपासे प्राप्त हो सकता है। विधिसहित निरन्तर नाम-जप करनेसे यह 'राम'-शब्द सर्वप्रथम पूर्वमार्गके द्वारा विपरीत दिशामें (मुखसे कण्ठ, हृदय और नाभिमार्गद्वारा पायुमूलाश्रित मूलाधार चक्रकी ओर) तत्तत्स्थानीय चक्रों (कमलदलों)-का भेदन करते हुए गमन करता है और तत्पश्चात् पश्चिम मार्गके द्वारा (कुण्डलिनी या मेरुदण्डके माध्यमसे) शून्य स्थान ब्रह्मरन्ध्रको पारकर ब्रह्मतत्त्वको प्राप्त हो जाता है। इस नाम-साधनके समय भिन्न-भिन्न स्थानोंसे शब्दके गमन करनेपर नाना भाँतिके विभिन्न अद्भुत लक्षण (चिह्न) प्रतीत होते हैं। हमें 'संत-वाणी' में इस विषयका बहुत विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। साध्य-साधनका यह संक्षिप्ततम वर्णन है। भगवान् श्रीरामसे मिलनेसे पूर्व निरन्तर ऋषि-आश्रममें निवास करते हुए श्रीहनुमानजीने ऋषियों (संतों)-की कृपासे प्राप्त इसी नाम-साधनको पूर्ण किया और इस प्रकार 'राम-स्नेही' बनकर उन्होंने अपने जीवनको सफल बनाया—

हनूमान लछमण इण मारग कतर साम इण माई।
गोरख गोपीचन्द भरथरी शुन में नाद बजाई॥

(श्रीरामदास)

इस प्रकार नाम-साधनकी पूर्णता तो श्रीहनुमानजीने शीघ्र ही प्राप्त कर ली थी। किंतु—

'राम काज लगि तव अवतारा' (श्रीतुलसीदास)

और—**'राम हेत तन धार, मनस बच राम-सनेही'**

(श्रीदयालुदास)

—आदि वचनोंके अनुसार जो केवल अपने प्रभु 'राम' की सेवाके लिये ही पृथ्वीपर प्रकट हुए हों, उनका वह सेवा-कार्य अभी अवशिष्ट ही था। अतः श्रीहनुमानजी नाम-जप और प्रभु-चिन्तन करते हुए श्रीरामके दर्शन एवं उनकी सेवाके सुअवसरकी प्रतीक्षा करने लगे। जब निरञ्जन परब्रह्म पृथ्वीपर 'राम' रूपसे अवतीर्ण हो दुष्टजन-विनाशार्थ वनमें गये, तब किष्किन्धाकी तलहटीमें चिरकालसे उनकी प्रतीक्षा एवं ध्यानमें लीन श्रीहनुमानजी उनसे जा मिले और इस प्रकार अपने साकार प्रभुसे निश्छल प्रगाढ़ स्नेह करके प्रथमतः

'रामस्नेही' बने। इनके इस स्नेहकी स्वीकृतिके लिये भगवान् श्रीरामका निम्न वाक्य कितनी विशेषता लिये हुए है—

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना।
तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥

(रामचरितमानस ४। ३। ७)

'रामस्नेही' बन जानेके बाद श्रीहनुमानजी तन-मन-वचनसे निरन्तर अपने स्वामीकी सेवामें तल्लीन हो गये।

अपने स्वामीके लिये समुद्रको लाँघकर लंका जला देनेवाले, जनकनन्दिनी श्रीसीताको श्रीरामका संदेश पहुँचानेवाले, द्रोणाचल पर्वत लाकर लक्ष्मणको जीवनदान दिलानेवाले, युद्धमें असंख्य दुर्जेय राक्षसोंका दमन करनेवाले तथा ऐसे ही अनेकानेक अत्यन्त दुष्कर कार्य करनेवाले सेवारत श्रीहनुमानजीको बारम्बार प्रणाम करते हुए हमारे आचार्य श्रीदयालुदासजी महाराजने उनके बल, वीर्य, प्रताप, साहस, आज्ञा, सेवा-परायणता तथा निष्ठा आदिका कैसा प्रभावशाली वर्णन किया है—

बीर धीर रघुबीरके, नमो नमो हनुमान बल॥
राम हेत तन धार, मनस बच राम सनेही।
बिजै सिद्ध पर सिद्ध काज कारन बैदेही॥
उदधि उलंघ पर लंक, सूर-दूणागर लायक।
जती दास भज दास, पुत्र मारुत इधकायक॥
केतान काज महाराज के भगत स्याय चिरजीव कल।
वीर धीर रघुवीरके नमो नमो हनुमान बल॥
कहाँ लूँ बरणूँ अगम अत, रामदास प्रिये चरित नित॥
राम धरम दृढ़ सेवसू बचन इग्या-ब्रत-पालक।
एक समै रघु संग, जीमकर गंग पखालक॥
माँहे नहीं रकार माल मुगता तज दीनी।
पिंड प्राण ररकार, तुचा डारत पत भीनी॥
हर इच्छा कारण प्रबल, नारद मुन उवतार चित।
कहाँ लूँ बरणूँ अगम अत, रामदास प्रिये चरित नित॥

श्रीहनुमानजी सदा केवल अपने स्वामी 'राम' की प्रियताके लिये ही सारा कार्य करते रहे। अत: ये सच्चे 'रामदास' भी हैं। श्रीतुलसीदासजीके कथन ***'सबतें सेवक धरमु कठोरा।'*** तथा संत कबीरके वचन ***'सामी होणो सोहरो, दोरो होणो दास'*** को पूर्णतया चरितार्थ करनेवाले परमदास हैं—भक्तवर हनुमानजी।

'हणवन्त भगत परतापीक, पदबी दास नहपापीक।'

(श्रीदयालुदास—चेतावणी)

हमारे शास्त्र एवं नीतिकार भी श्रीहनुमानजीको एक मतसे श्रीरामका सच्चा दास स्वीकार करते हुए नवधा भक्तिके अन्तर्गत 'दास्य'-भक्तिके लिये उन्हींका नाम दर्शाते हैं—

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकिः कीर्तने
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम्॥

(पद्यावली ६३)

एक बार लंकेश विभीषणने एक अमूल्य रत्नगुम्फित हार भगवान् श्रीरामचन्द्रको भेंट किया। भक्तवत्सल श्रीरामने वह रत्नहार चरणावनत श्रीहनुमानजीके गलेमें पहना दिया। पर श्रीहनुमान ठहरे विचित्र 'रामस्नेही' भक्त। वे सोचने लगे—'जिसे मेरे प्रभुने त्याग दिया, वह वस्तु मेरे लिये किस कामकी? पर नहीं, सम्भवत: मेरे समान ही इन रत्नोंके हृदयमें भी श्रीरामका वास हो। यदि ऐसा ही हुआ तो मैं इन्हें अवश्यमेव धारण करूँगा।' ऐसा निश्चय कर मालाके रत्नोंको दाँतोंतले तोड़ने एवं उन्हें श्रीरामसे रहित देखकर फेंकने लगे। उनके समीप-स्थित विभीषणने इस घटनाको देखा तो कुछ रुष्ट होकर श्रीहनुमानजीसे पूछा—'अरे भाई! तुमने यह क्या किया? इन अमूल्य रत्नोंको इस तरह क्यों नष्ट कर दिया? क्या इसीलिये श्रीरामने यह बहुमूल्य हार तुम्हें दिया था?' इसपर श्रीहनुमानजीने कहा—'मैं इनमें अपने इष्टदेव श्रीरामको देख रहा था, किंतु वे इनमें नहीं मिले तो ये कंकड़-पत्थर मेरे लिये किस कामके?' उत्तर सुनकर विस्मित हुए विभीषणने पुन: प्रश्न किया—'यदि श्रीरामके न मिलनेसे तुमने इन रत्नोंको कंकड़-पत्थर मानकर फेंक दिया तो पाँच तत्त्वसे निर्मित इस मिट्टीके पुतले शरीरको क्यों धारण कर रखा है? क्या इसमें भी श्रीराम विद्यमान हैं?'

इतना सुनते ही पूर्ववर्णित नाम-साधनासे जिनका सम्पूर्ण शरीर 'राम' मय ही बना हुआ है, उन भक्तराज श्रीहनुमानजीने नाखूनोंसे अपनी त्वचाको विदीर्ण कर सभामें उपस्थित सम्पूर्ण समाजको अपने रोम-रोममें व्याप्त श्रीरामके प्रत्यक्ष दर्शन कराकर आश्चर्य-चकित कर दिया। इसपर सभी एक स्वरसे कहने लगे—वास्तवमें श्रीहनुमानजीकी समानता करनेवाला

दूसरा कोई नहीं है—

रतन अमोलख माल, करी प्रभु भेंट बिभीषण।
सभा दिखावण साच, कपि गल, डारी तह क्षण॥
सुध कर हनुमत फोर, नाम बिन राखी नाही।
कह्यो देह मध कहाँ, खोल तुच सबै दिखाही॥
ररकार रोम प्रति देख कर, तबै जाण लीनी सही।
हनुमत दास सत राम को इन सम को दूजो नहीं॥

(सागरटीका, श्रीअर्जुनदास)

तदनुसार 'रामस्नेही' भक्त एवं साधकके दिव्य शृङ्गारके लिये महापुरुषोंने एक दिव्य मालाका निरूपण किया है, जो निम्न प्रकारसे ज्ञातव्य है—

जन लक्षण भजमस पुसप, राम सुगंध अपार।
शब्द ब्रह्म सूतर अजब, सतगुर पोवणहार॥
श्यान्त दास बाछ्ल सखा, पंचम रस सिंगार।
पंच पुष्प रस रंग यह, ध्यान सिमरणा सार॥
तूटे खूटे नाम कद, रंग बिरंग न होय।
भगत माल भगती हृदै, जम डंड लगे न कोय॥
नित नवीन भगवद पियै, सोभा अगम अनूप।
ब्रह्म परायण ब्रह्म पद, द्याल बाल जन स्रूप॥

(श्रीदयालुदास—भक्तमाल)

अर्थात् भक्तोंके लिये श्रीराम-सौरभसे सुवासित शान्ति, दास्य, वात्सल्य, सख्य एवं शृङ्गाररूपी पाँच रंगोंसे रञ्जित, संत-लक्षण-रूपी पाँच प्रकारके पुष्पोंको शब्द-ब्रह्मरूपी सूत्रमें पिरोकर श्रीसद्गुरु महाराजने एक अत्यन्त सुन्दर माला तैयार की है, जो सदा अटूट एवं अम्लान (एकरूप) रहनेवाली है। जिस भक्तवर्यको ऐसी अनुपमेय 'राम-भक्त-माला' मिल जाय तो क्या वह उसे छोड़कर 'रत्नमाला'-को स्वीकार करेगा? जो माला नित्यप्रति नवीनता प्रकट करे, भगवान्‌को परम प्रिय हो, यमदण्डको नष्ट कर सके, ब्रह्मतत्त्वकी प्राप्ति करा सके और जिसके धारण करनेसे शरीर एवं आत्माकी सुन्दरता नित्यप्रति निखरती रहे, ऐसी सौन्दर्यमयी 'नाममाला' को छोड़कर कौन भक्त इस नष्ट होनेवाली 'मणिमाला' को धारण करेगा?

ऐसी दिव्य मालाको धारण करनेसे जब साधारण प्राणी भी पूज्य पद पा सकते हैं, तब भगवान्‌के नित्य-परिकर सेवापरायण 'चिरंजीव रामस्नेही' तथा अनन्य दास श्रीहनुमानजीके लिये तो कहना ही क्या है? इतना ही नहीं, श्रीहनुमानजी उस दिव्य मालाके पुष्परस (रंगों)-मेंसे एक रस (रंग) 'दास' स्वयं ही हैं। ऐसे भक्तोंके सहायक सच्चे रामस्नेही एवं रामदासकी महिमा अपार है।

जब श्रीहनुमानजीको 'राम' इतने प्रिय हैं तो श्रीरामको भक्त श्रीहनुमान कितने प्रिय होंगे? इसके लिये स्वयं भगवान् श्रीरामका यह वचन द्रष्टव्य है—

'तुम्ह मम प्रिय भरतहि सम भाई।'

इस प्रकार स्वयं भगवान् श्रीरामने श्रीहनुमानजीको अद्वितीय प्रेममूर्ति भाई भरतके समान स्वीकार किया है। इसीलिये—

शून्य मरे अजपा मरे अनहदहू मर जाय।
रामसनेही ना मरे कह कबीर समझाय॥
भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम रामु जप जेही॥

—के अनुसार भरत भगवान् श्रीरामके अनन्य प्रेमी 'रामस्नेही' हैं और रामस्नेहीकी तुलना केवल रामस्नेहीसे ही की जा सकती है। अत: भगवान् श्रीरामने श्रीहनुमानजीको भरतके समान बतलाकर अपना परम प्रिय 'रामस्नेही' होना स्वीकार किया है।

'आपु सरिस सबही चह कीन्हा।' इस सिद्धान्तके अनुसार जो जैसा होता है, वह दूसरोंको भी अपने समान बनानेकी चेष्टा करता है; अत: श्रीहनुमानजी भी स्वयं 'रामस्नेही' होनेके कारण अपनी कृपादृष्टिसे अन्य भक्तोंको भी श्रीराम-रंगमें रञ्जित कर उनका कल्याण करते हैं। श्रीहनुमानजीकी शरण हो जानेवाला प्राणी भी अन्ततोगत्वा नि:स्संदेह 'रामस्नेही' बन जाता है। इसीलिये हमारे सम्प्रदायाचार्य श्रीरामदासजी महाराज तथा संत तुलसीदासजी महाराजने वर्णन किया है—

हनूमान हरि चरणां लाया। (श्रीरामदास)
तुमरे भजन राम को पावै। (श्रीतुलसीदास)

रामस्नेही भक्तमालमें श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीरामस्नेही-सम्प्रदाय (दरियावनगर) रेण-पीठाचार्य श्रीहरिनारायणजी शास्त्री)

संतोंका परिवार अपने ढंगका निराला ही होता है। उनके मतानुसार ब्रह्ममें लीन रहनेवाले गुरु, श्रीरामजीको भजनेवाले नाती और श्रीरामकथाके रसिक ही पड़ोसी होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य किसीसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता—

ब्रह्म मिल्या सो गुरू हमारा राम भजे सो नाती।
कथनी कथे सो पाड़-पड़ोसी 'सुखिया' संग न साती॥

(भक्तमाल—संत श्रीसुखरामदासजी महाराज)

इस संत-परिवारके परम आत्मीय श्रीहनुमानजी हैं, जो शूरवीर हैं, श्रीरामजीके अनन्य सेवक हैं, उनकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करनेके लिये सदैव उद्यत रहते हैं और जीवन-मरणसे अतीत होकर सदैव परब्रह्म श्रीरामजीमें वास करते हैं—

सूर बीर सम्मुख सदा एक राम का दास।
जीवन मरन थिति मेट कर किया ब्रह्म में बास॥

(रामस्नेही-धर्माचार्य श्रीदरियावजी महाराज)

श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायके भक्तमालमें ऐसे ही आदर्श भक्तोंका वर्णन है। श्रीहनुमानजीका वर्णन करते हुए रामस्नेही-भक्तमालकार श्रीहरखारामजी कहते हैं कि श्रीहनुमानजीने श्रीराम-नाम रटते हुए श्रीरघुनाथजीके चरणोंका आश्रय लिया। तन-मनसे दास बननेके पश्चात् उनकी किसी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं किया। सौ योजन विस्तृत समुद्रको लाँघकर उस पार लंकाके दुर्गम गढ़को उलट (जला) कर आये। माँ सीताको धैर्य बँधाया और बंदरोंके प्राण बचाये। चरणाश्रित जन (श्रीहनुमानजी)-ने ऐसे कितने ही कार्य किये। उन अञ्जनापुत्र श्रीहनुमानके अलौकिक सुयशका स्वयं श्रीरघुनाथजी वर्णन करते हुए अघाते नहीं।

हनूमान रट राम, चरण-रघुपति का भेट्या।
दासा तन मन झाल, स्वाल कबहूँ नहिं मेट्या॥
मार फलाँग उण पार, उलट लंका गढ़ आयो।
सीताँ धीर बँधाय, बंदराँ प्राण बचायो॥
इस्या काम केता किया, चरण सरण जन आय।
अंजनी सुत हनुमान की, रघुपति कहे सुणाय॥

(भक्तमाल—संत श्रीहरखारामजी महाराज)

संत सुखसारणजीकृत 'बृहद् रामस्नेहीभक्तमाल'-में श्रीहनुमच्चरित्रका सविस्तर वर्णन मिलता है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—"श्रीहनुमानजीने रत्नोंकी अमूल्य माला तोड़कर फेंक दी और अपने रोम-रोममें व्याप्त 'राम-राम' दिखा दिया। इसपर लक्ष्मणजीने पूछा—'हे हनुमान! यह सार-तत्त्व आपको कहाँसे मिला?' हनुमानजीने कहा—'मैं गुप्त रीतिसे नाम-जप करता हूँ। मैया श्रीसीताने मेरे मस्तकपर अपना करकमल रखते हुए यह मन्त्र (राम-नाम) मुझे दिया है।' उस समय मैयाने कहा—'हनुमान! मैं तुम्हें एक मन्त्र बताती हूँ, जिसके प्रभावसे तुम किसीके भी मारनेसे मरोगे नहीं। मुझे विश्वास है कि तुम (हनुमान) सब कार्य सिद्ध करोगे।' तत्पश्चात् उन्होंने मैया सीताका दिया हुआ दो अक्षरका मन्त्र 'रकार-मकार' सबको सुनाया। वही बीज-मन्त्र 'रं-रंकार' श्रीहनुमानजीके रोम-रोमसे प्रकट हुआ। संत सुखसारणजी कहते हैं—इस प्रकार लक्ष्मणजीको बंदर-सेनाके समक्ष यह बात श्रीहनुमानजीने सुनायी, जिससे सबने उनके गुणोंको ग्रहण किया तथा उनका (मुक्ताहारको खण्डित करनारूप) अवगुण भुला दिया'—

उत्तर प्रसंग सुण लछमण बूज्यो हनु,
मोय तो बतावो भेद योहि ततसार ही।
लुक्यो छिप्यो छाने मैं तो राम नाम जपूँ बाला,
सीता माता कह्यो सती पंजो सिर धार ही॥
मंतर सुनाऊँ तोहि मार्‌यो हू न मरै कोई,
मोय तो भरोसो काज करे सिद्धकार ही॥
रकार मकार उभे आखर सुणाया आय,
रग रग रोम रोम हुयो रं-रंकार ही।
'सुखसारण' ऐसी धुन सेना कूँ सुणाई हनु,
सेना सुण गह्यो गुण औगुण बिसार ही॥

इस प्रकार रामस्नेही-सम्प्रदायके भक्तमालमें संतोंने श्रीहनुमानजीको ब्रह्मज्ञानी गुरु, नाम-प्रेमी नाती, कथारसिक पड़ोसी, आदर्श सेवक, आज्ञापालक, शक्तिप्रदाता और तत्त्व-प्रेमीके रूपमें स्मरण किया है।

श्रीस्वामिनारायण-सम्प्रदायमें श्रीहनुमानजीकी उपासना

(लेखक—परमपूज्यपाद ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुवर्य स्वामी श्रीनारायणसेवादासजीके सेवक वेदान्तशास्त्री निर्गुणव स्वामी)

भक्त या साधकद्वारा अपने इष्टदेवकी की जानेवाली आराधना-सेवाको 'उपासना' कहते हैं। प्रत्येक सम्प्रदायमें उपासनाका कोई-न-कोई रूप होता ही है। इसके दो मुख्य भेद हैं—निर्गुण और सगुण। स्वामिनारायण-सम्प्रदायमें सगुणोपासना स्वीकृत है। परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण श्रीकृष्णचन्द्र ही परम उपास्य हैं। श्रीकृष्ण नारायणके अवतार हैं। उनकी प्रतिमाकी पूजा मन और देहसे तथा चन्दन, पुष्प, तुलसी आदि सामग्रियोंद्वारा करनी चाहिये। भगवान्‌में सीता एवं रुक्मिणीके समान भक्ति रखनी चाहिये और भगवान्‌का ही ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार स्वामिनारायण-सम्प्रदायमें परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम नारायण श्रीकृष्णभगवान्‌की उपासनाका प्रतिपादन किया गया है। स्वयं भगवान् सहजानन्द स्वामी 'शिक्षापत्री' (१०९)-में लिखते हैं—

स श्रीकृष्णः परं ब्रह्म भगवान् पुरुषोत्तमः।
उपास्य इष्टदेवो नः सर्वाविर्भावकारणम्॥

'वे भगवान् श्रीकृष्ण ही परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं तथा वे ही हमारे इष्टदेव हैं, उपासना करने योग्य हैं और सभी अवतारोंके कारण हैं।'

श्रीस्वामिनारायण-सम्प्रदायमें श्रीकृष्णभगवान्‌के अतिरिक्त किसी अन्य देव या सिद्धकी मान्यता नहीं है। इसके बाद भी श्रीरघुनाथजीके परम भक्त और रुद्रके अंशावतार श्रीहनुमानजीके स्तोत्र-मन्त्रादिका जप करनेकी आज्ञा भगवान् स्वामिनारायणने 'शिक्षापत्री' (८५)-में स्वयं अपने श्रीमुखसे इस प्रकार दी है—

भूताद्युपद्रवे क्वापि वर्म नारायणात्मकम्।
जप्यं च हनुमन्मन्त्रो न जप्यः क्षुद्रदैवतः॥

'यदि कभी भूत-प्रेतादिका उपद्रव हो तो नारायण-कवचका जप करें अथवा श्रीहनुमानजीके मन्त्रका जप करें। इसके अतिरिक्त किसी दूसरे क्षुद्र देवके स्तोत्र या मन्त्रका जप नहीं करना चाहिये।' इस रूपमें श्रीहनुमानजीकी उपासनाको महत्त्व दिया गया है। वे सर्वसमर्थ हैं। उनकी उपासनासे उपासकोंकी कामना पूर्ण होती है। श्रीस्वामिनारायण-सम्प्रदायमें श्रीहनुमानजीकी सकाम उपासनाका विधान है। उनके कुछ स्तोत्र एवं मन्त्र भी इस सम्प्रदायमें प्रचलित हैं, जिनका सविधि अनुष्ठान करनेसे साधकको सम्पूर्ण मनःकामनाओंकी पूर्ति होती है।

श्रीहनुमानजीकी अनन्य भक्तिका भी श्रीस्वामिनारायण-सम्प्रदायमें बड़ा आदर है। स्वयं भगवान् स्वामिनारायण उनकी भक्तिकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—'जैसे श्रीहनुमानजी श्रीरघुनाथजीके भक्त थे, इसीलिये उस रामावतारके बाद दूसरे कितने ही भगवान्‌के अवतार हुए हैं, परंतु उनकी भक्ति श्रीरामचन्द्रजीमें ही पतिव्रता नारी-जैसी बनी रही। भगवान्‌के भक्तोंको इसी प्रकारकी दृढ़ भक्ति करनी चाहिये।'

श्रीस्वामिनारायण-सम्प्रदायके योगिराज श्रीशतानन्द-स्वामिकृत 'श्रीसत्सङ्गी-जीवनम्' नामक ग्रन्थरत्नमें आये हुए हनुमत्स्तोत्रका ग्यारह सौ जप विधिसहित करनेसे शत्रुका नाश होता है और मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है।

श्रीस्वामिनारायण-सम्प्रदायके छोटे या बड़े मन्दिर जहाँ-कहीं भी होते हैं, वहाँ नित्य संध्याके समय भक्तलोग श्रीहनुमानजीकी मूर्तिके सामने स्तोत्र-पाठद्वारा प्रार्थना करते हैं। इतना ही नहीं, श्रीप्रेमानन्दस्वामिकृत निम्नलिखित हनुमानजीकी आरती संध्या और प्रातःकालकी आरतीके समय गायी जाती है—

जय कपि बलवंता, जय कपि बलवंता।
सुर-नर-मुनिजन-बंदित पदरज, हनुमंता॥
प्रौढ़ प्रताप, पवनसुत, त्रिभुवन-जयकारी।
असुर-रिपु-मद-गंजन, भय-संकटहारी॥
भूत पिशाच विकट ग्रह, पीडत नहीं जपे।
हनुमंत हाँक सुणीने, थर-थर कँपे॥
रघुबीर साहे, बोलग्यो, सागर अति भारी।
सीता-शोध लीयारा कपि लंका जारी॥
रामचरण रतिदायक, शरणागत-त्राता।
'प्रेमानन्द' कहे हनुमंत वांछित फलदाता॥

कंबन-रामायणका एक हनुमत्स्तवन

(लेखक—श्रीर० वेंकटरत्नम्)

महाकवि कंबनने तमिळ-भाषामें श्रीरामकथाको 'रामावतारम्' नामक ग्रन्थके रूपमें प्रस्तुत किया है। उस महाकाव्यके प्रारम्भमें ध्यानके छन्दोंमें एक रसपूर्ण एवं रहस्यपूर्ण वर्णन मिलता है, जो श्रीहनुमानपरक है। श्रीमारुतिका गगनमार्गसे समुद्र पार करके लंका पहुँचना, भगवती सीतादेवीसे मिलना और लंकामें आग लगाना—ये तीन वृत्तान्त छन्दमें कहे गये हैं। संकेतसे कहकर भी श्रीहनुमानके पराक्रम, असीम ज्ञान, भक्ति या किसी वीरतासूचक वृत्तान्तको इस तमिळ छन्दमें नहीं कहा गया है, यह सांकेतिकता ही इस छन्दका सौन्दर्य है। छन्दकी अन्तिम पङ्क्तिमें 'वे हमारी रक्षा करें'—कहकर संरक्षण-हेतु प्रार्थना की गयी है—

आञ्जिले ओन्रु पेट्रान आञ्जिले ओनैत्तावि
आञ्जिले ओन्रु आराग आरियरक्काग एगि।
आञ्जिले ओन्रु पेट्र अणंगु कण्डु अयलार ऊरिल्
आञ्जिले ओन्रै वैत्तान् अवन् एम्मै अलित्तुक्काप्पान्॥

इस तमिळ छन्दकी एक विशेषता यह है कि श्रीहनुमानके नामका इसमें कहीं भी उल्लेख नहीं है। भगवती सीतादेवी तथा लंकाका नाम भी नहीं आया है। समुद्र-शब्द भी इस छन्दमें नहीं मिलता। किसीका भी नाम न कहते हुए कविने यहाँ सारे वृत्तान्तका वर्णन कर दिया है। इस तमिळ छन्दके भावार्थको हिन्दी-भाषामें इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

'अञ्जु' शब्द यहाँ पाँच बार आया है। इस शब्दका अर्थ है—'पाँच'। 'ओन्रु' का अर्थ 'एक' है। प्रत्येक पङ्क्तिमें आनेवाला 'अञ्जु'-शब्द पञ्चभूतको इङ्गित करता है। प्रत्येक जगह 'आञ्जिले ओन्रु' से पञ्चभूतोंमेंसे एक-एक करके क्रमशः वायु, जल, आकाश, पृथ्वी एवं अग्नि संकेतित होते हैं। इसी क्रमसे ये पाँचों भूत आते हैं। श्रीहनुमान तो **वायुकुमार हैं।** वे **जल**—समुद्रको पार करके उस पारके तटपर पहुँचते हैं। किस मार्गसे होकर जाते हैं? आकाश ही मार्ग बन जाता है। आर्य श्रीरामके दूत बनकर वे भगवती सीतादेवीकी खोजमें निकले हुए हैं। वे लंकामें जाकर उधर **पृथ्वीसे** उत्पन्न श्रीसीताजीका दर्शन करते हैं। क्षितिजा भगवती श्रीसीतासे मिलनेके बाद (पञ्चभूतोंका वह अंश, जो अबतक वर्णन करनेसे रह गया था, उस) **आगसे** श्रीहनुमान लंका-दहन करते हैं। लंकाका भाव हमें यहाँ 'अयलार ऊर' शब्दोंसे मिलता है, जिसका अर्थ है—'पर-जनोंके क्षेत्रमें'। ये सब कार्य जिन्होंने किये, वे अपनी कृपासे हमारी रक्षा करें।

इस छन्दमें श्रीहनुमानकी सम्पूर्ण वीर-गाथा हमें संक्षेपमें मिलती है। इन चार पङ्क्तियोंमें एक प्रकारसे पूरा सुन्दरकाण्ड ही प्रस्तुत माना जा सकता है। इसका हिंदी-रूपान्तर इस प्रकार है—

पाँचोंमें एकका पुत्र, पाँचोंमें एकको लाँघके
पाँचोंमें एकके मार्गसे, आर्योंके नाते पहुँचके
पाँचोंमें एककी पुत्री देखके विजनोंके क्षेत्रमें
पाँचोंमें एक लगाया, वह हमारी रक्षा करे।

इन पङ्क्तियोंके लेखकके हृदयका मूल उद्देश्य सम्भवतः यह वर्णित करना रहा हो कि जितेन्द्रिय श्रीहनुमानके सामने पाँचों भूत नत-मस्तक थे, सतत उनके सेवक थे। ऐसा था श्रीहनुमानजीका पञ्चभूतव्यापी प्रभाव और ऐसे थे श्रीहनुमानके महिमामय दिव्य कार्य। उन श्रीहनुमानकी आत्म-हित एवं सर्व-हितके लिये अव्यर्थ कृपा सतत अपेक्षित है।

'वन्दे लङ्काभयंकरम्'

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम्।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयंकरम्॥

'जो प्रचण्ड वीर, श्रीजानकीजीका शोक दूर करनेवाले, अक्षकुमारको मारनेवाले और लंकाको भयभीत करनेवाले हैं, उन अञ्जनानन्दन कपीश्वर (श्रीहनुमानजी)-की मैं वन्दना करता हूँ।'

तेलुगु रामायणोंमें श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीचल्लपल्लि भास्कर रामकृष्णमाचार्युलु, बी० ए०, बी० एड्०)

दक्षिण भारतकी प्रमुख भाषा तेलुगुमें भी श्रीरामचरितपर प्रभूत साहित्य उपलब्ध है। श्रीहनुमानजीका चरित्र श्रीरामचरितका ही एक अङ्ग है। श्रीराम-साहित्यके सभी ग्रन्थ काव्य-कौशल, भाषा, शैली आदिकी दृष्टिसे अपनी-अपनी विशिष्टता रखनेपर भी सभीमें श्रीरामकथाके कथानकका प्रवाह लगभग समान ही है। उन सभी ग्रन्थोंकी तुलनात्मक समीक्षा एक लेखमें सम्भव नहीं। अत: कालक्रमानुसार प्राचीन एवं काव्य-दृष्टिसे उत्कृष्ट कतिपय तेलुगु रामायणोंमें जैसा हनुमच्चरित आया है, उसका संक्षिप्त सिंहावलोकन ही यहाँ दिया जा रहा है। चौदहवींशतीके पूर्वार्धमें रचित 'भास्कर-रामायण' तथा उत्तरार्धमें रचित 'रंगनाथ-रामायण' एवं चौदहवीं या सोलहवीं शतीमें रचित 'मोल्ल-रामायण' का तेलुगु-साहित्यमें विशिष्ट स्थान है। इनमें 'गौनबुद्धाराजु' द्वारा विरचित 'रंगनाथ-रामायण' स्पष्टरूपसे वाल्मीकिरामायणका लगभग अनुवाद कहा गया है।

हुलक्कि भास्करडुद्वारा विरचित 'भास्कर-रामायण' और आतुकूरि मोल्ला (कवयित्री)-द्वारा विरचित 'मोल्ल-रामायण' का भी प्रेरणास्रोत वाल्मीकिरामायण ही है। इन दोनों रामायणोंमें वाल्मीकिका पर्याप्त अनुसरण किया गया है। इन तीनों मुख्य रामायणोंमें श्रीहनुमानजीके चरित्रोंका तुलनात्मक स्वरूप इस प्रकार है—

(१) श्रीहनुमानजीका जन्म—'रंगनाथ-रामायण'-के अनुसार अञ्जनादेवीने पुत्र-प्राप्तिके लिये वायुदेवसे प्रार्थना की। वायुदेवकी कृपासे भगवान् शंकरका शुक्र साध्वी अञ्जनाके गर्भमें प्रतिष्ठित हुआ और बीस हजार वर्षोंतक माँ अञ्जनाके गर्भमें वास करनेके बाद शिशु हनुमानका प्राकट्य हुआ। 'मोल्ल-रामायण' में इतना ही वर्णन है कि वायुदेवकी कृपासे श्रीहनुमानजीका जन्म हुआ।

(२) श्रीहनुमानजीकी तपस्या—'भास्कर-रामायण'-में आया है कि परमदेव ब्रह्माजीके लिये तपस्या करनेपर ब्रह्माजी श्रीहनुमानको वर-प्रदान करते हुए कहते हैं कि 'जो तुम्हारे शरीरपर रहनेवाले आभूषणोंको देख सकेगा, वही तुम्हारा स्वामी तथा मुक्तिदाता होगा।'—

'ओनरंग नीमेनि वुरु भूषणमुलु
कनुगोन्नयातंडे गतियुनु बतियु।'
(किष्कि० १४५वीं पङ्क्ति)

(३) श्रीहनुमान-श्रीराम-मिलन—सुग्रीवकी प्रेरणासे श्रीहनुमानजी विप्ररूप धारण करके श्रीराम-लक्ष्मणके पास जाते हैं और श्रीरामजी उनका कपिरूप तथा शरीरपर धारण किये गये उनके आभूषणोंको देखकर उनके विषयमें पूछते हैं, इससे श्रीहनुमानजी उन्हें अपने स्वामीके रूपमें पहचान लेते हैं और उनके शरणापन्न हो जाते हैं। यह बात 'रंगनाथ-रामायण' के अतिरिक्त 'भास्कर-रामायण' में भी वर्णित है, किंतु 'मोल्ल-रामायण' में स्पष्टरूपसे ऐसा वर्णन नहीं पाया जाता।

(४) मुद्रिका-ग्रहण—'रंगनाथ-रामायण' में श्रीराम श्रीहनुमानजीको अपना अङ्गुलीयक देते हुए कहते हैं कि 'तुम अवश्य ही सीताजीका दर्शन-लाभ करोगे।' 'मोल्ल-रामायण' में कहा गया है कि 'सीताजीको यह अङ्गुलीयक देकर उनसे उनका शिरोरत्न लेते आना।' 'भास्कर-रामायण' में तो श्रीरामचरितमानस-जैसी ही बात कही गयी है कि 'सीताको अँगूठी देकर उन्हें समझाना।'

(५) लंका-प्रवेशार्थ समुद्रोल्लङ्घन—सभी वानर दक्षिणी समुद्र-तटपर पहुँचकर समुद्र पार करनेकी क्षमताके अभावमें दु:खित हैं। उस समय श्रीजाम्बवान्‌की प्रेरणासे हनुमानजी समुद्र लाँघते हैं। यह बात 'रंगनाथ-रामायण', 'भास्कर-रामायण' एवं 'रामचरितमानस' में भी स्पष्टरूपसे कही गयी है; किंतु 'मोल्ल-रामायण'-में कहा गया है कि सारे वानर-समुदायने हनुमानजीसे प्रार्थना की। हनुमानजीद्वारा समुद्र पार करते समय मैनाकका आतिथ्य, सुरसाद्वारा उनकी परीक्षा, सिंहिकाका वध आदि प्रसङ्ग तीनों रामायणोंमें एक-से ही पाये जाते हैं।

हनुमानजीने लंकामें प्रवेश करते ही लंकिनीको दण्ड दिया। ऐसा 'रंगनाथ-रामायण,' 'रामचरितमानस' आदि रामायणोंमें पाया जाता है, किंतु 'मोल्ल-रामायण' में तो अशोक-वाटिका-विध्वंस एवं लंका-दहनके पश्चात् लंकिनीके वधका प्रसङ्ग आता है।

(६) श्रीसीता-दर्शन—'रंगनाथ-रामायण' में भगवती सीताका दर्शन कर लेने, उन्हें मुद्रिका दे देने तथा उनसे चूड़ामणि ग्रहण कर लेनेके बाद श्रीहनुमानजी अशोक-वनके फल खानेकी अनुमति प्राप्त करते हैं तथा वनमें प्रवेश करते हैं—

तल्लि ने नाकोंटि दनरग वनमु। नेल्लेड फलमुलु नेनु गैकोन्दु॥

(७) अशोक-वन-विध्वंस— यह अंश सभी रामायणोंमें वर्णित है तथा मेघनादद्वारा प्रयोगमें लाये गये वायव्य, रौद्र एवं आग्नेयास्त्र— इन सभीके शान्त होनेका कारण 'मोल्ल' तथा 'रंगनाथ' रामायणोंमें चमत्कारपूर्ण कहा गया है।

(८) लंका-दहन— विभीषणके द्वारा प्रबोध कराये जानेपर रावणने श्रीहनुमानजीको मारना छोड़कर उनकी पूँछ जलानेका आदेश दिया। तब राक्षसोंने श्रीहनुमानजीकी पूँछके छोरपर कपड़े लपेटकर आग लगा दी। यह बात मालूम होनेपर सीताजीने अग्निसे प्रार्थना की। इसपर अग्निकी दाहिका-शक्ति श्रीहनुमानजीके लिये शान्त हो गयी। पूँछकी आगसे लंका जला चुकनेके पश्चात् उन्होंने समुद्रके जलमें उसे बुझा दिया। 'रंगनाथ-रामायण' और 'मोल्ल-रामायण' में लंका-दहनके वर्णनका सादृश्य होते हुए भी 'मोल्ल-रामायण' में श्रीहनुमानजीद्वारा पूँछमें आग लगाये जानेपर 'अग्निसूक्त' का पाठ करनेका उल्लेख किया गया है।

(९) संजीवनी-पर्वत लाना— इन्द्रजित्के ब्रह्मास्त्रसे मूर्च्छित वानर-सेनाके रक्षार्थ श्रीजाम्बवान्जी श्रीहनुमानजीको संजीवनी-पर्वत लानेकी आज्ञा देते हैं और वे उसे ले आते हैं। दूसरी बार जब लक्ष्मणजी रावणके शक्ति-प्रहारसे मूर्च्छित होते हैं, तब सुषेणकी सलाहपर श्रीहनुमानजी संजीवनी-पर्वतको लानेके लिये प्रस्थित होते हैं। उस समय श्रीहनुमानजीकी यात्रामें विघ्न उपस्थित करनेके लिये रावणकी प्रेरणासे कालनेमि प्रयत्न करता है तथा श्रीहनुमानजीद्वारा शापविमुक्त (मकरी) अप्सरा कालनेमिका वास्तविक परिचय देती है। तब हनुमानजी उस राक्षसको मारकर आगे जाते हैं और लौटते समय भरतजीसे मिलकर और वार्ता सुनाकर संजीवनी-पर्वत ले आते हैं। ये अंश 'रंगनाथ-रामायण', 'मोल्ल-रामायण' और 'भास्कर-रामायण' में समानरूपसे पाये जाते हैं; किंतु संजीवनी-बूटीके प्रयोगसे लक्ष्मणजीके जीवित हो जानेके पश्चात् श्रीहनुमानजी संजीवनी-पर्वतको यथास्थान रख आना चाहते हैं। उस समय भी रावण मार्गमें बाधा डालता है, किंतु वे सभी राक्षसोंका वध करके अपना काम पूरा करते हैं। यह बात 'रंगनाथ-रामायण' और 'मोल्ल-रामायण' में है।

(१०) श्रीराम-सीता-मिलन एवं राज्याभिषेक— रावण-वधका समाचार श्रीहनुमानजी ही सीताजीको सुनाते हैं। अग्नि-परीक्षिता सीताजीके साथ सपरिवार श्रीरामजी सेतुबन्धपर लिङ्ग-प्रतिष्ठा करना चाहते हैं तो श्रीहनुमानजी इनके लिये काशीसे शिव-लिङ्ग लाते हैं। फिर भरद्वाजाश्रममें ठहरे हुए श्रीरामजीका समाचार भरतजीको सुनाकर वे भरतकी प्राण-रक्षा करते हैं। श्रीराम-राज्याभिषेकके लिये श्रीहनुमानजी ही समुद्र-जल लाते हैं और उनके अभिषेकके पश्चात् उनसे बधाई पाते हैं। वे ही श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामजीकी ही सेवामें अपना जीवन समर्पित कर जगत्के कल्याणके लिये आज भी विद्यमान हैं।

'रंगनाथ', 'भास्कर' और 'मोल्ल' रामायणोंके रचयिता चौदहवीं शतीके ही हैं। इन तीनों ही रामायणोंमें श्रीहनुमानके श्रीरामभक्त-स्वरूपकी अभिव्यक्ति बड़े भावपूर्ण ढंगसे की गयी है, जिसका प्रभाव आज भी जन-मानसपर है और लोग बड़ी भक्ति-भावनासे श्रीहनुमानजीकी आराधना करते हैं।

~~ o ~~

जय हो केसरी-किसोर!

जय हो, जय हो, हनुमान! जय हो केसरी-किसोर!!
ध्यावत जन सुखद, वज्र-अंग, बिकट दंत-बदन,
नखगन-भुजदंड, कदन दुष्टन, बरजोर॥
मारुत के पूत, गुननिधि, एकै प्रभुदूत,
भूतनाथ के अवतारी, खल-दल-गंजन रनरोर॥
अंजनी के नंद, देवन दायक आनंद,
जयति नाम हरन द्वंद्व-बिपति भव भय दुख घोर॥
मानद सौमित्र, सोक नासकार सीय,
मोददायक रघुबीर, हेरु 'नेहलता' ओर॥

—संतप्रवर श्रीजानकीशरणजी 'स्नेहलता'

~~ o ~~

कन्नड-साहित्यमें श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० एम्० एस्० कृष्णमूर्ति 'इंदिरेश')

कर्नाटक महावीर एवं भक्ताग्रणी श्रीहनुमानकी जन्मभूमि है। रामायण-वर्णित पम्पा-क्षेत्र तथा किष्किन्धा वर्तमान कर्नाटकके बल्लारी जिलेके हम्पीमें भग्नावशेषके रूपमें विद्यमान हैं। यहाँ अञ्जनाद्रि, ऋष्यमूक-पर्वत आदि आज भी अपने अस्तित्वकी मौन घोषणा कर रहे हैं। कर्नाटकमें ऐसा कोई भी गाँव नहीं है, जहाँ मारुति-मन्दिर न हो। प्रत्येक अखाड़ेमें बजरंगबलीकी मूर्ति विराजमान है। कर्नाटकका प्रत्येक पहलवान अपने गले या कटिमें श्रीहनुमानजीकी मूर्तिसे अङ्कित पदक या ताबीज पहनता है, जो 'हनुमन्ती' कहलाता है। साधारण आँकड़ोंके अनुसार यहाँके प्रति दस लोगोंमेंसे एकका नाम होता है—हनुमन्त, हनुमन्तय्या, हनुमन्तप्पा, हनुमन्तराम, आञ्जनेय आदि। कन्नड-भाषामें श्रीहनुमानके लिये 'हुच्चुराम' (पागल बाबा), 'हुच्चप्पा', 'अडवीराम' आदि नाम प्रचलित हैं।

कर्नाटकमें श्रीहनुमान ग्रामके रक्षक देवता माने जाते हैं। कहावत भी है—**ऊरु हत्ति उरिमुत्तिद्दरू हनुमंतराम होरगे।**' चाहे गाँव जलता रहे, किंतु श्रीहनुमान तो बाहर रहते हैं। (यहाँ लंका-दहनकी ओर भी संकेत है।) कर्नाटकमें मुलुबागलु, बोम्मघट्ट, हुलिकुंट, हनुमंतरामन् गुडि आदिके श्रीहनुमान-मन्दिर विशेष प्रसिद्ध हैं। यहाँ हनुमज्जयन्ती बड़ी धूमधामसे मनायी जाती है।

कर्नाटकमें श्रीहनुमानजीके महत्त्वका एक और कारण यह है कि यहाँ ही जन्म धारण करनेवाले द्वैतमत-संस्थापक मध्वाचार्यजी श्रीहनुमानके अवतार माने जाते हैं। कहा भी गया है—

प्रथमो हनुमान् नाम द्वितीयो भीम एव च।
पूर्णप्रज्ञस्तृतीयस्तु भगवत्कार्यसाधकः॥

द्वैतमतके अनुसार वायुके तीन अवतार हुए—त्रेतायुगमें श्रीहनुमान, द्वापरमें श्रीभीम तथा कलियुगमें श्रीमध्व। वैष्णव-मतको श्रीहनुमानका मत घोषित करते हुए पुरंदरदास (१५५० ई०)-ने कहा है—'**हनुमन मतवे हरिम् मतवु**'—श्रीहनुमानका मत ही श्रीहरिका मत है। मध्व-मतानुयायियोंका विश्वास है कि श्रीहनुमान भविष्यके ब्रह्मा हैं।

इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि मारुतिकी पूजा मध्वमतमें अत्यन्त मान्य है। कहा जाता है कि विजयनगर साम्राज्यके शासक कृष्णदेवरायके गुरु श्रीव्यासराय या व्यासतीर्थजीने पूरे भारतमें भ्रमण कर सात सौ बत्तीस हनुमद्विग्रहोंकी प्रतिष्ठा की थी। विद्यारत्नाकरने इसका उल्लेख यों किया है—

मूर्तीः सप्तशतं प्लवङ्गमपतेर्द्वात्रिंशदप्यञ्जना-
सूनोर्निर्मम ईशतोषणकृते रौद्राह्वयाब्दे शके।
शालीवाहननाम्नि युग्मयुगलं चत्वारि चैकं लिखन्
यां संख्यां मनसा दधाति तदिमं संख्यायतः पूर्यते॥

अर्थात् शालीवाहन शक १४२२ के रौद्र नामक संवत्सरमें (१५०० ई०) श्रीव्यासतीर्थजीने सात सौ बत्तीस आञ्जनेय-मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा की।

मध्वाचार्यजीके अनुयायियोंमें आगे चलकर वैष्णवोंको हरिदास कहा गया। इन हरिदासोंने सूरदास आदि हिंदीके कृष्ण-कवियोंके गेय पदोंकी भाँति कन्नडमें भी पद-रचनाद्वारा हरिभक्तिका प्रचार किया। 'दास्य-भक्ति' इनका प्रतिपाद्य विषय है और श्रीहनुमान दास्य-भक्तिके मूर्तिमन्त उदाहरण हैं। कन्नड-साहित्यमें इन हरिदासोंका साहित्य 'दास-साहित्य' और वह युग, जिसमें यह प्रणीत हुआ, 'वैष्णव-युग' (१५वीं शती ई० से १९वीं शतीतक)-के रूपमें प्रसिद्ध है।

इसके पूर्वके कन्नड-साहित्यमें श्रीहनुमानका निरूपण कैसा हुआ है, यह अब हमें देखना है। कन्नड-साहित्यका आदिकाल (४५० ई० से १२वीं शती ईसवीतक) जैनयुग या पम्पयुग कहलाता है। कन्नडका आदि ग्रन्थ 'कविराजमार्ग' नामक एक लक्षण-ग्रन्थ है, जिसके रचयिता राष्ट्रकूट सम्राट् नृपतुंग (८१४—८७७) माने जाते हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थमें किसी रामायणके कुछ अनुष्टुप् छन्द उद्धृत किये हैं। उनमेंसे एक द्रष्टव्य है—

ताराजानकियं पोगि तारा तरल नेत्रेयम्।
ताराधिपति तेजस्वि तारादि विजयोदय॥

(२।१२८)

'हे तेजस्वि ताराधिपति तरलनेगा जानकीको ढूँढ़ ला।' इन्हीं उद्धृत पद्योंमें 'अनुव' के नामसे श्रीहनुमानका भी उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि नृपतुंगके पूर्व ही कन्नडमें कोई रामायण ग्रन्थ था, जो आज अनुपलब्ध है। पोठा (९५० ई०)-का 'भुवनैक रामम्पुरम्,' नागचन्द्र (११०० ई०)-का 'रामचन्द्रचरितपुराण', कुमुदेन्दु (१२७५ ई०)-की 'कुमुदेन्दु-रामायण' आदि प्रसिद्ध जैन रामकाव्य हैं, जिनमें वैदिक रामायणके पात्र तोड़े-

मरोड़े गये हैं और श्रीहनुमानके चरित्रका चित्रण दूसरे प्रकारसे हुआ है। आगे चलकर वीरशैव-युग (१२०० ई० से १५००ई० तक) आया, जिसमें वीरशैवोंने रामायणको छुआतक नहीं। अत: भक्त श्रीहनुमानका चरित्र हमें वैष्णव-युगमें ही देखनेको मिलता है।

कन्नडमें वैदिक परम्पराके अनुसार रामायणकी रचना करनेवालोंमें तोरवे नरहरि अथवा कुमार वाल्मीकि (१५०० ई०) अग्रगण्य हैं। 'तोरवे-रामायण' तथा 'मैरावणन काळग' इसके दो ग्रन्थ हैं। 'तोरवे-रामायण' में वाल्मीकीय रामायणकी ही कथा निरूपित है। षट्पदी छन्दोंमें लिखे गये इस काव्यमें श्रीहनुमानके युद्धोंका विस्तृत वर्णन है। वास्तवमें इस काव्यका आधेसे अधिक भाग युद्ध-वर्णनके लिये ही निवेदित है।

इसमें श्रीहनुमान जब संजीवनी लाने जाते हैं, तब मार्गमें कालनेमि नामक राक्षस तापस-वेषमें उन्हें रोक रखनेका प्रयास करता है। अन्तमें श्रीहनुमान उसे मार देते हैं। रणमें पराजित होकर रावण एक यज्ञ करता है। अन्तमें श्रीहनुमान उस यज्ञका भी विध्वंस करते हैं। श्रीहनुमानको यहाँ 'शिवांश-सम्भूत' कहा गया है।

कुमार वाल्मीकिका दूसरा काव्य है—'मैरावणन काळग'। इसमें रावण श्रीरामको जीतनेके लिये पातालमें जाकर वहाँके अधिपति महिरावणकी सहायता माँगता है। मैरावण निद्रालीन श्रीराम एवं लक्ष्मणको चुरा ले जाता है और पाताल-लंकामें अपनी कुलदेवता कङ्कणादेवीके सामने उनकी बलि चढ़ानेका प्रयत्न करता है। विभीषणके द्वारा श्रीहनुमानको इसका पता चलता है और वे पाताल-लंका जाते हैं। वहाँ पहुँचकर वे मैरावणको मारते हैं और श्रीराम-लक्ष्मणको कंधोंपर उठाकर लाते हैं। श्रीहनुमानकी महिमाका गान करना ही इस काव्यका मुख्य उद्देश्य है। इसमें कविने स्पष्टरूपसे श्रीहनुमानको शिवरूप कहा है।

कुमार वाल्मीकिके लगभग समकालीन हैं—बत्तलेश्वर (१५०० ई०) और उनकी रामायण है—'बत्तलेश्वर-रामायण', जो षट्पदी छन्दमें है। युद्धमें रावण श्रीराम-लक्ष्मण आदिको मायासे नाग-पाशमें बाँध लेता है, किंतु श्रीरामसे भी 'राम'-नाम बड़ा है, अत: श्रीराम-नामका जप करनेवाले श्रीहनुमानजीको वह बाँध न सका। यहाँ भी अहिरावणका प्रसङ्ग है। वह श्रीराम-लक्ष्मणको चुराकर पाताल-लंका ले जाता है। तब श्रीहनुमान वहाँ जाकर उस राक्षसको मारकर श्रीराम-लक्ष्मणको उठा लाते हैं। उस संदर्भका चित्र कविने इस प्रकार खींचा है—

वानरनु घनतरद तेजदि
वैनतेयन होतुतिर्दनु
माननिधि राघवनु हेगललि विष्णुरूपदलि॥
भानुकोटिगळते होळेदा
जानुमुख मंडलद किरणदि
हानिमिल्लदे बंदनिनकुल तिलकरोडगूडि॥

(ब० रा० ४०। ३२)

श्रीराम-लक्ष्मणको कंधोंपर उठाकर लानेवाले श्रीहनुमान वैनतेयकी भाँति तथा श्रीराम विष्णुरूपमें सुशोभित हो रहे थे।

ऊपर हरिदासोंकी चर्चा हुई है। प्रत्येक हरिदासने श्रीहनुमानकी स्तुति की है। दासश्रेष्ठ पुरंदरदासजी (१५४० ई०)-ने तो श्रीहनुमान-सम्बन्धी बीसों पद रचे हैं। व्यासरायजी (१५३० ई०)-ने श्रीहनुमानपरक एक सुन्दर गेय पदकी रचना की है, जिसका आरम्भ यों होता है—

जाण नीनहुदो गुरु मुख्य प्राण नीनहुदो॥ टेक॥
राणि भारतीरमन निनगेणे
काणे त्रिभुवनोलगे सर्व
प्राणिगल हृदयदति मुख्य
प्राणनेंदेनिसि देयोधिट्ट॥

इसका हिंदी-भाषान्तर इस प्रकार है—

तुम हो सुजान, गुरु मुख्य प्राण
राणी भारती का रमण है तुम्हारे समान
नहीं है, कोई तुम्हारे समान
प्राणियोंके हृदयमें तुम हो मुख्य प्राण॥

पुरंदरदासजीने भी श्रीहनुमानपरक बहुत-से फुटकर पदोंकी रचना की है, जो बहुत ही लोकप्रिय हैं। उनका एक उदाहरण देखिये—

हनुमन मतवे हरिम मतवो।
हरिम मतवे हनुमन मतवो॥
हनुमनु ओलिदरे हरि ताजो लिवनु।
हनुमनु मुनिदरे हरि मुनिव॥
हनुमनु ओलियलु सुग्रीवनु गेद्द।
हनुमनु मुनिदके वालियु बिद्द॥
हनुमनु ओलिद विभीषण गेद्द।
हनुमनु मुनिदके रावण बिद्द॥
हनुमनु पुरंदर विठलन दास।
पुरंदर विठलनु हनुमनोसवास॥

'श्रीहनुमानका मत ही श्रीहरिका मत है। श्रीहरिका

मत ही श्रीहनुमानका मत है। श्रीहनुमान प्रसन्न होंगे तो श्रीहरि अवश्य प्रसन्न होंगे। यदि श्रीहनुमान अप्रसन्न होंगे तो श्रीहरि भी अप्रसन्न होंगे। श्रीहनुमान सुग्रीवपर प्रसन्न हुए तो वे विजयी हुए। श्रीहनुमान अप्रसन्न हुए तो वालीका पतन हुआ। श्रीहनुमानके प्रसन्न होनेपर विभीषणकी जीत हुई। श्रीहनुमानके अप्रसन्न होनेके कारण रावणका नाश हुआ। श्रीहनुमान हमारे भगवान् पुरंदर विट्ठलके दास हैं और हमारे पुरंदर विट्ठलका श्रीहनुमानमें निवास है।'

स्थानाभावके कारण हम यहाँ अन्यान्य हरिदासोंके श्रीहनुमत्-सम्बन्धी गीतोंका उल्लेख नहीं कर सकते, जिनकी संख्या सैकड़ोंतक है। दास-पन्थके ही अनुयायी तिप्पनार्य (१८वीं शती)-ने श्रीहनुमानपरक 'हनुमद्विलास' नामक एक यक्षगान (लोकनाटक) लिखा है। यह एक प्रकारका गेय रूपक है, जिसमें पदोंकी प्रधानता है। बीच-बीचमें गद्य भी है। इसमें श्रीहनुमानके जन्मसे लेकर श्रीराम-समागम, समुद्र-लङ्घन, लंका-दहन, मैरावणके साथ युद्ध, भरतको श्रीरामागमनकी सूचना देना, साकेतमें श्रीरामकी प्रशंसा, शतकण्ठ रावणका सीताद्वारा मारा जाना और उसकी सेनाका श्रीहनुमानद्वारा संहार एवं श्रीरामद्वारा उन्हें द्वापरमें भीम तथा कलियुगमें मध्व बनकर जन्म लेनेका आदेश देने आदिकी बातें निरूपित हैं। कविता बहुत ही सरस है। जब श्रीहनुमान सीताको अशोक-वनमें देखकर उन्हें श्रीरामका अभिज्ञान देते हैं, तब वे श्रीहनुमानकी प्रशंसा करती हैं।

श्रीराम तो उन्हें दशरथका पाँचवाँ पुत्र कहकर अपना भाई मानते हैं और उनपर अपना प्रेम लुटाते हैं तथा उनकी यों प्रशंसा करते हैं—

श्रीमरुत्पुत्रशाश्वतचारुचारित्रसज्जनस्तोत्र सद्वज्रगात्र॥
शाखामृगाकार सतताश्रितोद्धार संग्रामधीर दुर्जनविदार।
भक्ताम्बुनिधिसोम परिपूर्णतरकाम गुणगणार्णव
रोमकोटिभीम अक्षाद्यसुरभंग अमितदयापांग
कपिलोकसिंग मंगलतरांग आमिषीकृतदशाननमित्र
अतिपवित्र गोष्पदीकृतभुवनेश कुजननाश घनतृणीकृत
दशकंठ कंबुकंठ परम शुभवंत हनुमंत भाग्यवंत॥

'हनुमद्विलास' कथावाचकोंके कारण अत्यन्त लोकप्रिय बना है। आधुनिक युगके महान् कवि श्रीकुर्वेपुजीने अपने 'रामायणदर्शनम्' महाकाव्यमें श्रीहनुमानका अत्यन्त भव्य चित्रण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार श्रीहनुमान नरचेतन एवं नारायणत्वके बीच चित्-सेतुका, प्राण-प्रणालीका निर्माण करनेवाले महायोगी हैं। श्रीहनुमान समुद्र-लङ्घन करते समय कुण्डलिनीको जगाकर सहस्रारमें पहुँचते हैं। वहाँसे पञ्चभूतसम्बन्धी नियमोंका उल्लङ्घन कर जडदेहसे केवल चेतन रूप बनते हैं। तब जाम्बवान् श्रीहनुमानसे यों कहते हैं—

निनगलौकिक जन्म गुणमल्लदये,
योगिनीनम्मासदिंदेयुं तपदिंदे, मेन्
ब्रह्मचर्यज महिमेयिंरष्ट सिद्धिगल
निनगिष्ट किंकररला, हनुमंतदेव, नीं
ध्यानदिंदिच्छिसिदरावुदागदो निनगे,
निन्ननरिगे, सृष्टि तां दृष्टि सूत्रजमलते॥

'हे हनुमान! जन्म और गुणसे तुम अलौकिक हो, तुम योगी हो, अभ्यास, तप एवं ध्यानसे तुम चाहे जो कुछ कर सकते हो, तुम्हें और तुम-जैसोंके लिये सृष्टि दृष्टिसूत्रजमात्र है।'

कन्नडके महान् लेखक श्री डी० बी० गुण्डप्पाजीने अपने 'वालिगोंदु नविके' नामक ग्रन्थमें श्रीहनुमानको भारतीयोंका आदर्श गुरु घोषित करते हुए इस प्रकार लिखा है—'जीवनोत्साह, पौरुषप्रकाश, लोकस्नेह, प्रगति, विज्ञान, सौजन्य—ये सभी हमारे तारक मन्त्र हैं। इसका निदर्शन हमें आदिकवि वाल्मीकिने आञ्जनेयावतारमें दिया है। स्वार्थत्यागपूर्ण स्वामिभक्ति, निरालस पौरुषसंधान, उत्साहपूर्वक लोकधर्ममें श्रद्धा—ये तीनों गुण श्रीहनुमानके जीवनमें जितने स्पष्ट हैं, उतने अन्यत्र नहीं। इसलिये वे हनुमन्त भारतीयोंके गुरु तथा धर्मादर्श बने।' उन्होंने ठीक ही गाया है—

देखो हनुमानको, धीर गुरुको,
माँगो उससे पौरुषके वरको॥
एक है पौरुषका हाथ, एक है धर्मके साथ।
एक पद विज्ञान, एक सौजन्य॥
यों विराजित मारुति ही गुरु है हमारा।
निश्चित हो चल उसके पथमें॥
मनमें स्थित करो रामको सन्मतिसे
जनम को करने दे सार्थक हे हनुमद्गुरु॥

(वालिगोंदु नबिके पृ० ९०—९२)

वङ्गीय स्मृति एवं तान्त्रिक निबन्धोंमें श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० श्रीरासमोहन चक्रवर्ती, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

वङ्गदेशके स्मृति-निबन्धकारोंमें महामहोपाध्याय श्रीरघुनन्दन भट्टाचार्यका नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उनका आविर्भाव सोलहवीं शताब्दीमें हुआ था। अपने प्रसिद्ध स्मृति-निबन्ध 'अष्टाविंशति तत्त्व' में उन्होंने जिस असाधारण शास्त्र-ज्ञान, स्वतन्त्र-चिन्तन-पद्धति और सूक्ष्म विचार-विश्लेषणका परिचय दिया है, वह अत्यन्त विस्मयप्रद है। महामहोपाध्याय श्रीरघुनन्दन भट्टाचार्यने अपने 'कृत्य-तत्त्व' निबन्धके चैत्रकृत्यमें श्रीरामनवमीव्रतका उल्लेख किया है और उसमें अङ्गदेवताके रूपमें श्रीहनुमानकी पूजाका विधान है। चैत्रमासकी शुक्ला नवमी तिथिके दिन श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए थे। इस तिथिपर श्रीरामनवमी-व्रत करनेसे सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं। यह व्रत वङ्गप्रदेशमें सुप्रसिद्ध है। श्रीरघुनन्दनने ' कृत्य-तत्त्व'-निबन्धमें श्रीरामचन्द्रजीके जिस ध्यानका उल्लेख किया है, उसमें अग्रस्थित श्रीरामानुग्रहकाङ्क्षी श्रीहनुमानका भी उल्लेख है। श्रीरामनवमी-व्रतानुष्ठानमें अङ्ग-देवताके रूपमें '**ॐ हनुमते नमः**'—इस मन्त्रके द्वारा श्रीहनुमानकी पूजाका विधान है।

महामहोपाध्याय श्रीकृष्णानन्द आगमवागीशके प्रसिद्ध तान्त्रिक ग्रन्थ 'तन्त्रसार' के तृतीय परिच्छेदमें श्रीहनुमानकी उपासना-विधि (हनुमत्कल्प) तथा श्रीहनुमानकी अति गुह्य वीरसाधना-पद्धतिकी विवृति हुई है। इससे यह प्रमाणित होता है कि वङ्गप्रदेशमें मध्ययुगमें श्रीहनुमदुपासना प्रचलित थी और इसका साधकसम्प्रदाय सक्रिय था। श्रीकृष्णानन्द आगमवागीश श्रीचैतन्यमहाप्रभुके समकालीन या कुछ परवर्ती सोलहवीं शताब्दीमें हुए थे।

'तन्त्रसार' में श्रीहनुमानके विभिन्न मन्त्रोंद्वारा विशेष-विशेष रूपोंमें विभिन्न प्रकारकी पूजाका विधान है। भगवान् महादेव इस सम्बन्धमें पार्वतीदेवीसे कहते हैं—'हे देवि! अब मैं हनुमत्साधन कहूँगा। तुम सावधान होकर सुनो। यह साधन महान् पुण्यप्रद तथा महापातक-नाशक है। यह साधन-प्रणाली अति गुह्य और शीघ्र सिद्धिप्रद है। इसीके प्रसादसे अर्जुन त्रिलोक-विजयी हुए थे। मनुष्यके लिये जो शीघ्र सिद्धिप्रद है, उसी साधन-विधिको मैं तुमसे कहता हूँ। श्रीहनुमानजीका द्वादशाक्षर मन्त्र है—'**हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्।**' इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना। यह द्वादशाक्षर हनुमन्मन्त्र अति गोपनीय और शीघ्र सिद्धिप्रद है। रुद्ररूपी श्रीहनुमानका ध्यान करके इस मन्त्रका जप करना चाहिये। एक लक्ष मन्त्र पूर्ण होनेपर श्रीहनुमानजी उस साधकपर प्रसन्न हो जाते हैं। हे देवि! मैंने तुमसे यह सत्य कह दिया।'

'तन्त्रसार' ग्रन्थमें श्रीहनुमानजीकी अति गुह्य वीरसाधन-पद्धति वर्णित है। पद्धतिके अनुसार साधना करते रहनेपर रात्रिके चतुर्थ याममें श्रीहनुमानजी साधकके सामने उपस्थित होकर महाभय प्रदर्शित करते हैं। यदि इस अवस्थामें भी साधक भय और मायाका परित्याग कर अविचलित रूपसे जप करता रहता है तो वह विद्या, धन, राज्य या शत्रुनिग्रह, जो कुछ भी चाहता है, उसे तत्काल सब प्राप्त होता है और वह धन्य हो जाता है—

विद्यां वापि धनं वापि राज्यं वा शत्रुनिग्रहम्।
तत्क्षणादेव चाप्नोति सत्यं सत्यं सुनिश्चितम्॥

(तन्त्रसार, तृतीय परिच्छेद)

'गोविन्द-रामायण' में श्रीहनुमान

(ले०—श्रीमती सावित्रीदेवी त्रिपाठी, बी० ए०, बी० एड्०)

गौरवशाली सिक्ख-सम्प्रदायके परम श्रद्धेय दसवें और अन्तिम गुरु श्रीगोविन्दसिंहजी त्याग, बलिदान एवं पराक्रमकी मूर्ति तो थे ही, वे परमादर्श धर्म-प्राण एवं अद्भुत भगवद्भक्त थे। सर्वाधार जगदीश्वरके प्रति उनकी अनुपम निष्ठा थी। शस्त्र और शास्त्र—दोनोंके धनी श्रीगुरु गोविन्दसिंहजी सुस्पष्ट शब्दोंमें कहते हैं—

सबै मंत्रहीनं सबै अंत कालं।
भजो एक चित्तं सुकालं कृपालं॥

'जब अन्त निकट आता है, तब सभी मन्त्र निष्फल हो जाते हैं, इसलिये मन लगाकर उन कृपामय प्रभुका भजन करो।'

दशरथ-नन्दन श्रीरामको वे साक्षात् परब्रह्म परमेश्वरका अवतार मानते थे। उन्हींके शब्दोंमें—

नृदेव देव राम हैं। अभेद धर्म धाम हैं॥
अबुद्ध नारि तैं मनै। अशुद्ध बात को भनै॥
अगाध हैं अनंत हैं। अभूत सोभवंत हैं॥
कृपालु कर्म-कारणं। बिहाल द्यालु तारणं॥
अनेक संत तारणं। अदेव देव कारणं॥
सुरेश भाय रूपणं। समृद्ध सिद्ध भूपनं॥

इस प्रकार श्रीगुरु गोविन्दसिंहजी दशरथकुमार श्रीरामको साक्षात् परमात्मा, अनादि, अनन्त, सौन्दर्यसम्पन्न, परम कृपालु, सर्वत्र, सर्वसमर्थ एवं साधु-पुरुषोंके त्राता मानते हैं। भगवान् श्रीरामका गुणगान करनेके लिये उन्होंने अपने अत्यन्त व्यस्त जीवनमें भी 'गोविन्द-रामायण' की रचना की। इस रामायणमें आपने अपनी भक्तिपूर्ण मनोभावना इस प्रकार व्यक्त की है—

सकल द्वार कौ छाँड़ि के गह्यो तुम्हारो द्वार।
बाँह गहे की लाज अस गोविंद दास तुम्हार॥

'सभी द्वार छोड़कर केवल तुम्हारे द्वारका आश्रय लिया है। प्रभो! बाँह गहेकी लाज तुम्हारे हाथ है। यह गोविन्द (श्रीगुरु गोविन्दसिंह) तुम्हारा दास है।'

श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीने अपनी 'गोविन्द-रामायण' नयनादेवी पहाड़के नीचे सतलजके तटपर (आनन्दपुर साहबमें) आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा विक्रमाब्द १७५५में पूरी की थी। इसका उन्होंने उल्लेख भी कर दिया है—

संमत सत्रह सहस पचावन। हाड़ बदी प्रथमा सुख-दावन॥
तव प्रसाद करि ग्रन्थ सुधारा। भूल परी लहू लेहु सुधारा॥

दोहा

नेत्र तुंग के चरण तर शतद्रव तीर तरंग।
श्रीभगवत पूरन कियो रघुवर कथा प्रसंग॥

जहाँ 'रघुवर-कथा-प्रसंग' है, वहाँ रघुवरके प्रियभक्त श्रीहनुमानजी रहेंगे ही। अतएव श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीकी 'गोविन्द-रामायण' में श्रीहनुमानजीके तेज, बल, विक्रम, अमित धैर्य एवं पराक्रमका संक्षेपमें ही सही, पर अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है।

जब पक्षिराज जटायुसे अपनी प्राणप्रिया सीताके हरणका संवाद प्राप्तकर भगवान् श्रीराम अनुज लक्ष्मणके साथ आगे बढ़े, तब उनसे अञ्जनीनन्दन श्रीहनुमानसे भेंट हुई और उनसे मित्रता हो गयी—

हनुवन्त मारग मो मिले तब मित्रता तासों करी॥

और फिर श्रीहनुमानजीने अपने साथी कपिपति सुग्रीवको लाकर श्रीरामके चरणोंपर डाल दिया—

तिन आन श्री रघुराज के कपिराज पायन डारयो।

जनकनन्दिनी सीताका पता लगानेके लिये श्रीराम-सखा सुग्रीवने अपने बुद्धिमान् और वीर अनुचरोंको सर्वत्र भेजा। पवन-पुत्र लंकाकी ओर भेजे गये। उन्होंने जिस प्रकार सीताका पता लगाकर श्रीरामको सूचना दी, उसका वर्णन श्रीगुरु गोविन्दसिंहजी इस प्रकार करते हैं—

दल बाँट चार दिशा पठयो हनुवंत लंक पठै दए।
लै मुद्रिका लँघ बारिधैं जहँ सिय हुती तहँ जात भे॥
पुर जारि अच्छ-कुमार छै वन टारि कै फिरि आइयो।
कृत चार जो अमरारि को सब राम वीर जताइयो॥

'सुग्रीवने सीताका पता लगानेके लिये अपने वीरोंका दल विभक्त कर उन्हें चारों दिशाओंमें भेज दिया और श्रीहनुमानजीको लंकाकी ओर भेजा। श्रीहनुमानजी श्रीरामकी अँगूठी लेकर और समुद्र लाँघकर वहाँ पहुँचे, जहाँ सीताजी थीं। श्रीहनुमानजी लंकापुरीको जलाकर तथा अक्षकुमार (रावणके पुत्र)-को मारकर लौट आये और उन्होंने रावणकी पुरीमें पहुँचकर जो-जो काम किये थे, वे सब श्रीरामको सुनाये।'

समुद्रपर पुल बाँधा गया और भगवान् श्रीरामकी सेना सागरके उस पार लंकामें जा पहुँची। यह समाचार सुनकर रावण अत्यन्त कुपित हुआ। उसने अपने दूतोंके परामर्शसे अपने वीर योद्धा धूम्राक्ष और जम्बुमाली आदिको बुलाकर श्रीरामकी सेनाको खदेड़ देनेके लिये भेजा। असुरोंको अपने सम्मुख आते देखकर श्रीहनुमानजी अत्यन्त कुपित हुए—

रोस कै हनुवंत था पर रोप पाँव प्रहारियं।
जूझ भूम गिर्यो बली सुरलोक माँझ विहारियं॥

'तब श्रीहनुमानने क्रोधमें आकर अपना पैर जमाकर उन्हें मारना प्रारम्भ किया। जो शूरवीर युद्ध करता हुआ पृथ्वीपर गिरा, वह सीधे देवलोक पहुँच गया।'

इस कारण लंकापति रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने श्रीरामकी सेनाका विनाश करनेके लिये विशाल वाहिनीके साथ वीरवर त्रिमुण्डको भेजा। भयानक युद्ध करनेवाला त्रिमुण्ड क्रूरता और क्रोधकी मूर्ति था।

बकै मार मारं। तजै बाण धारं॥
हनूमंत कोपे। रणं पाँय रोपे॥

''वह 'मारो-मारो' चिल्लाता हुआ आया और आते ही उसने वाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। यह देखकर श्रीहनुमान क्रुद्ध हुए और उन्होंने स्वयं रणमें पैर जमाया।''

असं छीन लीनो। तिसी कंठ दीनो॥
हन्यो षष्ठ नैनं। हँसे देव गैनं॥

'श्रीहनुमानने उसकी तलवार छीन ली और उसीके गलेमें भोंक दी। त्रिमुण्ड मारा गया। यह देखकर देवगण प्रसन्न हुए।'

रण-भूमिमें मेघनादकी शक्तिसे सुमित्रानन्दन मूर्च्छित हो गये। उन्हें देखकर प्रभु श्रीराम दुःखसे व्याकुल हो उठे। सुग्रीव आदि सभी वीर योद्धा क्रुद्ध होकर एक-दूसरेकी ओर देखने लगे। उस समय—

हागड़दंग हनुअ कागड़दंग कोपा।
वागड़दंग वीरान मों पाँव रोपा॥
सागड़दंग सूरा हागड़दंग हारे। तागड़दंग तै के हनु तऊ पुकारे॥

'तब श्रीहनुमानने क्रोधित होकर वीरोंमें अपना पाँव रोप दिया। (यह प्रसङ्ग उस समयका है, जब श्रीरामने सुषेण वैद्यको बुलाया था और उसने आकर संजीवनी-बूटी लानेके लिये कहा था। तब श्रीहनुमानने सबसे पूछा कि कौन वीर वह बूटी ला सकता है?) परंतु जब सभी वीर चुप रहे, तब हनुमानजीने क्रोधमें भरकर उनकी ओर देखते हुए कहा—

सागड़ सुनहू रागड़दंग रामं। दागड़दं दीजै पागड़दंग पानं॥
पागड़दंग पीठं ठागड़दंग ठेको। हरौं आज पानं सुरं मोहे लोको॥

'हे श्रीराम! सुनिये। आप मुझे पयानकी आज्ञा दीजिये और मेरी पीठ ठोंकिये (अर्थात् मेरी पीठपर अपना मङ्गलमय वरद-हस्त रख दीजिये)। मैं आज देवताओंका पान (पेय) अमृत भी ला सकता हूँ, आप देख लीजिये।'

इस प्रकारके वचन कह पवन-पुत्र श्रीहनुमानजी आकाशमें पहुँच गये। श्रीहनुमानजीके आश्वासनमय वचन एवं शौर्यको देखकर श्रीरामकी अधीरता कम हुई। और—

रागड़दंग रामं आगड़दंग आसं। बागड़दंग बैठे नागड़दंग निराशं॥

'तब श्रीरामको, जो निराश हो बैठे थे, लक्ष्मणके बचनेकी आशा हो गयी।'

इसके अनन्तर महावीर आञ्जनेयकी वीरता एवं पौरुषका संक्षिप्त, किंतु अत्यन्त सुन्दर वर्णन इस प्रकार है—

आगड़दंग आगे कागड़दंग कोऊ।
मागड़दंग मारे सागड़दंग सोऊ॥
नागड़दंग नाकी तागड़दंग तालं।
मागड़दंग मारे वागड़दंग विशालं॥

'उधर श्रीहनुमानके आगे जो कोई विघ्नरूपमें आया, वही मार डाला गया। (चलते-चलते जब श्रीहनुमान एक तालाबपर पहुँचे तो वहाँ एक राक्षस नाक (मगर)-के रूपमें रहता था।) श्रीहनुमानजीने उस मगरको मार डाला।'

आगड़दंग एकं दागड़दंग दानो।
चागड़दंग चीरा दागड़दंगदुरानो॥
दागड़दंग देखी बागड़दंग बूटी।
आगड़दंग हैं एक तैं एक जूटी॥

'(इस प्रकार जब श्रीहनुमान बूटीके पास पहुँचे, तब) वहाँ जो दानव छिपा बैठा था, उसे चीर डाला। इसके बाद उस बूटीको देखा, परंतु वहाँ एक-से-एक बूटियाँ आपसमें गुँथी पड़ी थीं।'

फिर तेजस्वी योद्धा श्रीहनुमानके बल, पौरुष एवं बुद्धि-चातुरीके सम्बन्धमें संकेत करते हुए कथा आगे चलती है—

चागड़दंग चौंका हागड़दंग हनुमंता।
जागड़दंग जोधा महातेजवंता॥
ऊगड़दंग उखारा पागड़दंग पहारं।
आगड़दंग औषधि को लै सिधारं॥

'तब श्रीहनुमान चकित हो गये। उन महातेजस्वी योद्धाने सारा पहाड़ ही उखाड़ लिया और इस प्रकार ओषधि लेकर वे लौट पड़े।'

श्रीरामके प्राणप्रिय अनुजकी प्राण-रक्षा हुई। उनकी व्याकुलता दूर हुई और श्रीराम-सैन्यमें उत्साह एवं उल्लासकी लहर दौड़ गयी।

आगड़दंग आए जहाँ राम खेतं।
बागड़दंग वीरं जहाँ ते अचेतं॥
बागड़दंग विशल्या मागड़दंग मुख्यं।
दागड़दंग डारी सागड़दंग सुख्यं॥

'बूटी लेकर महावीर श्रीहनुमान वहाँ आ पहुँचे, जहाँ रण-क्षेत्रमें श्रीराम बैठे थे और जहाँ लक्ष्मण अचेत पड़े थे। वह विशल्यकरणी* बूटी लक्ष्मणके मुखमें डाली गयी। उसी समय वे सुखी हो गये (अर्थात् जीवित हो गये)।'

लंकाधिपति रावण श्रीहनुमानजीसे अत्यन्त भयभीत रहता था। युद्ध-क्षेत्रमें जब उसकी दृष्टि श्रीरामदूत श्रीहनुमानपर पड़ती तो उसका उत्साह शिथिल पड़ जाता था।

पँचएँ हनुमंतं लख दुतमंतं सुबल दुरंतं तजि कलिनं।

'रावण अपने पाँचवें मुँहसे द्युतिमान् और बलशाली श्रीहनुमान महावीरको देखकर शान्ति या धैर्य छोड़ रहा था।'

लंकाधीश रावणने भगवान् श्रीरामके पवित्रतम

* शल्यों (विकारों, विषों आदि)-को नष्ट करनेवाली।

शरसे उनके दुर्लभ धामके लिये प्रयाण किया, तब प्रभुने अपनी प्राणप्रिया सीताको ले आनेके लिये विभीषणके साथ वीरवर हनुमानको भेजा। प्रसन्न आञ्जनेय तुरंत जनकनन्दिनीके समीप पहुँचे।

पर्‌यो जाइ पायं। सुनो सीय मायं॥
रिपं राम मारे। खरो तोहि द्वारे॥
चलो बेगि सीता। जहाँ राम जीता॥
सबै शत्रु मारे। भुवं भार तारे॥
चली मोद कै कै। हनू संग लै कै॥

'श्रीहनुमानजीने सीताके चरणोंमें प्रणाम कर कहा—हे माता! शत्रु (रावण)-को श्रीरामने मार डाला। वे आपको ले जानेके लिये आपके द्वारपर आकर खड़े हैं। हे माता (सीता)! वहाँ शीघ्र चलो, जहाँ श्रीरामने युद्ध जीता है और सभी शत्रुओंको मारकर पृथ्वीका भार उतारा है। श्रीसीताजी मुदित होकर हनुमानजीके साथ चल पड़ीं।'

'गोविन्द-रामायण' में लव-कुशके साथ युद्धके प्रसङ्गमें भी सेनाओंके साथ महावीर श्रीहनुमानका उल्लेख है।

परमहंस श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी श्रीविवेकानन्दकी श्रीहनुमद्धारणा

(लेखक—डॉ० श्रीरासमोहन चक्रवर्ती, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

परमहंस श्रीरामकृष्णका साधन-जीवन विश्वकी एक आश्चर्यजनक घटना है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान् रोम्याँ रोलाँने कहा है कि 'श्रीरामकृष्ण परमहंस भारतवर्षके तीन हजार वर्षकी आध्यात्मिक उन्नतिके प्रतीकस्वरूप हैं।' विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने श्रीपरमहंसदेवके प्रति प्रणति निवेदन करते हुए कहा है—

बहु साधकेर बहु साधनार धारा।
धेयाने तोमार मिलित हये छे तारा॥
तोमार जीवने असीमेर लीलापथे।
नूतन तीर्थरूप निल ए जगते॥
देश-विदेशे प्रणाम आनिल टानि।
सेधाय आमार प्रणति दिलाम आनि॥

श्रीरामकृष्णने पहले शाक्त-मतकी साधना की और श्रीजगन्माताका दर्शन प्राप्त कर कृतार्थ हुए। उसके बाद एक-एक करके वैष्णवमतसे पञ्च भावोंकी अर्थात् शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भावकी साधनामें भी उन्होंने सिद्धि प्राप्त की तथा अद्वैत वेदान्तमतकी साधनामें निर्विकल्प समाधि प्राप्त की। इसके सिवा मुसलमानी और ईसाई-धर्मके अनुसार साधना करके भी उन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी। इस प्रकार उनकी अभूतपूर्व साधनाका क्षेत्र व्यापक और सुदूर-प्रसरित था। उनकी दिव्य साधनासे साधक-जगत्‌को यही संदेश मिला—**'यत मत तत पथ'**, **'शिय ज्ञाने जीव-सेवा'**, **'कामिनी-काञ्चन त्याग।'** उनकी इन सारी महद्वाणियोंके सुगम्भीर तात्पर्यका उनके सुयोग्य शिष्य वेदान्तकेसरी स्वामी श्रीविवेकानन्दने प्राच्य और पाश्चात्त्य देशोंमें बहुत सफल प्रचार किया। इस साधना तथा रूपान्तरणमें श्रीहनुमानजीके भावादर्शकी एक विशिष्ट भूमिका रही है। इस बातको श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव तथा स्वामी श्रीविवेकानन्दने विशेषरूपसे उपलब्ध एवं अभिव्यक्त किया था।

श्रीरामकृष्ण साधनकालके प्रथम चार वर्ष (१८५७—६० ई०)-में जगदम्बाका दर्शनमात्र करके निश्चेष्ट नहीं हुए, अपितु भावमयी श्रीकालीजीका दर्शन प्राप्त करनेके बाद अपने कुलदेवता श्रीरघुनाथजीकी ओर उनका मन आकर्षित हुआ। श्रीहनुमानजीकी-सी अनन्य भक्तिसे ही श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन सम्भव है—यह जानकर दास्य-भक्तिमें सिद्धि प्राप्त करनेके लिये उन्होंने अपनेमें श्रीमहावीरजीका भावारोप करके कुछ समयके लिये साधना प्रारम्भ कर दी। निरन्तर श्रीहनुमानजीका चिन्तन करते-करते वे इस आदर्शसे इतना अधिक तन्मय हो गये कि कुछ समयके लिये अपने पृथक् अस्तित्व और व्यक्तित्वकी बात पूर्णतया भूल ही गये। इस विषयमें उन्होंने स्वयं अपने शिष्योंसे कहा था—''उस समय आहार-विहार आदि सब कार्य श्रीहनुमानजीके समान किये जाते थे। उन्हें मैं जान-बूझकर करता था—ऐसी बात नहीं थी, प्रत्युत वे स्वयं अपने-आप होते थे। पहननेके कपड़ेको पूँछके समान बाँधकर कमरको कस लेता था, कूदता हुआ चलता था, फल-मूल आदिके सिवा और कुछ नहीं खाता था, उनका छिलका निकालकर नहीं फेंकता था, अधिक समय वृक्षके ऊपर ही व्यतीत होता था तथा निरन्तर 'रघुवीर, रघुवीर' कहकर गम्भीर स्वरमें चीत्कार करता था। उस समय दोनों नेत्रोंमें चञ्चलता आ गयी थी और आश्चर्यकी बात है कि

मेरुदण्डका अन्तिम भाग लगभग एक इंच बढ़ गया था।'' 'श्रीरामकृष्ण-लीला-प्रसङ्ग' नामक ग्रन्थके रचयिता स्वामी शारदानन्दजीने लिखा है कि उपर्युक्त बात सुनकर हमने पूछा था कि 'महाशय! क्या आपके शरीरका वह अङ्ग अब भी वैसा ही है?' उन्होंने उत्तरमें कहा था—'नहीं, मनके ऊपरसे उस भावका प्रभुत्व निवृत्त हो जानेपर उसने धीरे-धीरे पहलेके समान स्वाभाविक आकार धारण कर लिया है।'

श्रीरामकृष्ण परमहंस दक्षिणेश्वरमें आये हुए भक्तोंको बातचीतके प्रसङ्गमें उनके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए नाना प्रकारके उपदेश देते थे। छोटी-छोटी कहानियों और दृष्टान्तोंके माध्यमसे अमूल्य धर्मोपदेश सहज ढंगसे दे देना उनकी अनोखी विशेषता थी। श्रीरामकृष्णने श्रीहनुमानके भावादर्शके सम्बन्धमें जो अमूल्य उपदेश दिये हैं, उन सबको उन्होंने अपने जीवनमें साधनाके द्वारा उपलब्ध किया था। उनमेंसे कुछ प्रसङ्ग नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१) श्रीहनुमानजीका एक चित्रपट दक्षिणेश्वर-मन्दिरकी दीवालपर टँगा था। ठाकुर श्रीरामकृष्णने कहा—'देखो, श्रीहनुमानका क्या भाव है? वे धन-मान, देह-सुख कुछ भी नहीं चाहते, केवल भगवान्‌को चाहते हैं। जब वे स्फटिक-स्तम्भसे उछलकर ब्रह्मास्त्र लिये हुए भागने लगते हैं, तब मन्दोदरी नाना प्रकारके फल लेकर उन्हें लोभ दिखाने लगती है, यह सोचकर कि ये फलके लोभसे नीचे आकर अस्त्र फेंक दें; किंतु श्रीहनुमानजी भुलावेमें आनेवाले साधारण वानर नहीं थे। उस समय वे मन्दोदरीसे कहते हैं—

आमार कि फ्लेर अभाव?
पेयेछि जे फल, जनम सफल,
मोक्षफ्लेर वृक्ष राम हृदये।
श्रीरामकल्पतरुमूले बसे रई।
जखन जे फल वाञ्छा, सेइ फल प्राप्त हई॥

'मुझे क्या फलकी कमी है? मुझे जो फल प्राप्त है, उससे मेरा जन्म सफल हो गया है। मोक्ष-फलके वृक्ष श्रीराम मेरे हृदयमें हैं। मैं श्रीरामरूपी कल्पवृक्षके मूलमें बैठा हूँ। जब जिस फलकी इच्छा होती है, वह फल मुझे उसी समय प्राप्त हो जाता है।'

(२) श्रीहनुमानजीका श्रीराम-नामपर दृढ़ विश्वास था, इस सम्बन्धमें ठाकुर भक्तोंको उपदेश देते हुए कहते हैं—'मनके गुणसे श्रीहनुमान समुद्र पार हो गये। मैं श्रीरामका दास हूँ और श्रीराम-नाम जपता हूँ, अतः मैं क्या नहीं कर सकता?' ऐसा श्रीहनुमानजीका सहज विश्वास है।

(३) ईश्वरमें तन्मय हो जानेके सम्बन्धमें उपदेश देते समय ठाकुर श्रीरामकृष्ण श्रीहनुमानजीका दृष्टान्त दिया करते थे। वे कहते थे कि श्रीहनुमानजी यही सोचा करते थे—'उन प्रभु श्रीरामकी कृतिको मनुष्य क्या समझेगा? उनके कार्य अनन्त हैं, इसी कारण मैं उनको समझनेकी बिलकुल ही चेष्टा नहीं करता। मैंने सुन रखा है कि संसारमें वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। इसलिये उन सब कार्योंका चिन्तन न करके मैं केवल उनका ही चिन्तन करता हूँ।' श्रीहनुमानजीसे मैंने पूछा था कि 'आज कौन-सी तिथि है?' वे बोले—'मैं तिथि-नक्षत्र आदि कुछ नहीं जानता, मैं तो केवल एक श्रीरामका चिन्तन करता हूँ।'

(४) श्रीहनुमानजीकी दिव्य साधनाकी उपलब्धिमें द्वैत और अद्वैत—दोनों भावोंका समन्वय होनेपर भी वे दास्यभावको ही विशेषरूपसे प्रतिष्ठित कर गये हैं। इस विषयमें ठाकुर श्रीरामकृष्ण कहते थे—''भगवान् श्रीरामने पूछा कि 'हनुमान! तुम मुझको किस भावसे देखते हो?' श्रीहनुमानजी बोले—'प्रभो! जब मुझमें 'मैं' का बोध होता है, तब देखता हूँ कि आप पूर्ण हैं और मैं अंश हूँ, आप प्रभु हैं तो मैं दास हूँ और जब तत्त्वका बोध होता है, तब देखता हूँ कि आप ही मैं हूँ और मैं ही आप हैं।''

सेव्य-सेवक-भाव ही अच्छा है। जब 'मैं' विशेषरूप नहीं है, तब वह दुष्ट 'मैं' रहे; किंतु रहे 'दास मैं' बनकर। श्रीहनुमानजीने साकार-निराकारके प्रपञ्चमें न पड़कर 'दास मैं' को ही रखा था।

(५) श्रीहनुमानजीकी शुद्धा भक्ति और शरणागतिके सम्बन्धमें ठाकुर श्रीरामकृष्ण कहते हैं—'हनुमानजीने कहा था कि हे श्रीराम! मैं शरणागत हूँ। आप मुझे यही आशीर्वाद दें कि आपके पादपद्मोंमें मेरी शुद्धा भक्ति हो और आपकी भुवनमोहिनी मायासे मैं भ्रमित न होऊँ।'

श्रीरामकृष्ण परमहंसके प्रधान शिष्य स्वामी विवेकानन्द बाल्यकालसे ही श्रीहनुमानजीके प्रति भक्तिमान् थे। श्रीराम-कार्यमें उत्सर्गीकृत जीवनकी गाथाका—वीर भक्त श्रीहनुमानजीके क्रिया-कलापका श्रवण बालक नरेन्द्रनाथ (भावी विवेकानन्द)-को बहुत प्रिय था। अपनी मातासे जब उन्होंने सुना कि महावीर श्रीहनुमान अमर हैं और इस समय भी जीवित हैं, तबसे उनका

दर्शन करनेके लिये नरेन्द्रके प्राण आकुल हो गये। एक बार बालक नरेन्द्रनाथ गाँवमें रामायणकी कथा सुनने गये। कथावाचक महाशय नाना प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत करके हास्यरसके साथ श्रीहनुमानजीके चरित्रका वर्णन कर रहे थे, उसी समय नरेन्द्र धीरेसे उनके समीप जाकर पूछ बैठे—'महाशय! आपने कहा है कि श्रीहनुमानजी केला खाना पसंद करते हैं और केलेके बगीचेमें रहते हैं तो क्या मैं वहाँ जाकर उनको देख सकता हूँ?' कैसा गम्भीर विश्वास है! कितनी पूर्ण आन्तरिकताके साथ बालकने ऐसा प्रश्न किया! आकुल प्राणोंके प्रश्नकी गम्भीरताको समझनेकी शक्ति कथावाचक महाशयमें न थी। वे हँसकर बोले—'हाँ बच्चा! केलेके बगीचेमें खोजनेपर तुम उनको पा सकते हो।' बालक नरेन्द्रनाथ घर नहीं लौटे, वे सचमुच ही घरके पासके बगीचेमें घुसकर, केलेके पौधोंके नीचे बैठकर श्रीहनुमानजीकी प्रतीक्षा करने लगे। बहुत समय बीत गया, तथापि श्रीहनुमानजी नहीं आये, अन्तमें अधिक रात बीत जानेपर निराश होकर नरेन्द्र घर लौटे। बालकने अपनी सारी बातें मातासे खोलकर कह दीं और श्रीहनुमानजीके न आनेका कारण पूछा। बालकके विश्वासपर आघात करना बुद्धिमती माता भुवनेश्वरीदेवीने संगत नहीं समझा। उन्होंने पुत्रके विषादयुक्त वदनका चुम्बन करते हुए कहा—'तुम दुःख मत करना, आज हो सकता है श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामके कार्यसे कहीं अन्यत्र चले गये हों, पर किसी दिन वे अवश्य मिल जायँगे।' आशासे मुग्ध बालक शान्त हो गया। उसके मुँहपर फिर हँसी फूट पड़ी।

आगे चलकर स्वामी विवेकानन्दजी ब्रह्मचर्यव्रत-ग्रहणाभिलाषी युवकमात्रको महावीर श्रीहनुमानजीके चरित्रको आदर्श बनानेका उपदेश देते थे। पर-हितार्थ आत्मत्याग करनेका संकल्प करनेवाले शिष्यवृन्दसे दास्य-भक्तिके जीवन्त विग्रह श्रीहनुमानजीकी कथा कहते-कहते उनका मुख-मण्डल दीप्त आवेगमें रक्तिम हो उठता था। एक बार स्वामीजी सिंहके समान गरजते हुए बोले—'देशके कोने-कोनेमें महावीर श्रीहनुमानकी पूजा चलाओ। दुर्बल जातिके सामने इन महावीरका आदर्श उपस्थित करो। देहमें बल नहीं, हृदयमें साहस नहीं तो फिर क्या होगा इस जड पिण्डको धारण करनेसे। मेरी इच्छा है कि घर-घर महावीर श्रीहनुमानकी पूजा हो।' एक बार उन्होंने बेलूरमठमें महावीरजीकी एक पाषाण-प्रतिमा स्थापित करनेका संकल्प किया; परंतु उसे सम्पन्न न कर सके।

१९०१ ई० में बेलूर-मठमें शिष्य श्रीशरच्चन्द्र चक्रवर्तीने स्वामी विवेकानन्दसे प्रश्न किया था—'हमलोगोंको इस समय कैसा आदर्श ग्रहण करना उचित है?' इसके उत्तरमें स्वामीजीने कहा था—'महावीर श्रीहनुमानके चरित्रको ही तुमलोगोंको अपना आदर्श बनाना पड़ेगा। देखो, श्रीरामकी आज्ञासे वे सागर पार करने चले गये। जीवन-मरणकी ओर उनकी दृष्टि न थी। महान् जितेन्द्रिय, महान् बुद्धिमान्, महान् दास्य-भावादर्श, इन महावीरके अनुरूप तुमलोगोंको अपना जीवन गठित करना पड़ेगा। ऐसा होनेपर अन्यान्य महान् भावोंका स्फुरण समय-समयपर अपने-आप हो जायगा। दुविधासे मुक्त होकर गुरुकी आज्ञाका पालन करना और ब्रह्मचर्यकी रक्षा करना ही कृती होनेका एकमात्र गूढ़ उपाय है। श्रीहनुमानका एक ओर जैसे सेवा-भाव है, वैसे ही दूसरी ओर त्रिलोकप्रकम्पी सिंह-विक्रम है। श्रीरामके लिये अपना जीवन अर्पण करनेमें वे तनिक भी नहीं हिचकते। श्रीरामकी सेवाके अतिरिक्त अन्य सभी विषय उनके लिये उपेक्षणीय हैं, यहाँतक कि ब्रह्मत्व-शिवत्वकी प्राप्तिकी भी उपेक्षा है। केवल श्रीरघुनाथका आदेश-पालन ही उनके जीवनका एकमात्र अनुष्ठेय व्रत है। इस प्रकार एकनिष्ठ होना चाहिये। ऐसे आदर्शका अनुकरण करनेसे ही इस समय जीवका और देशका कल्याण होगा, अन्यथा कोई उपाय नहीं है।'

श्रीरामकृष्ण-मठ और मिशनके प्रथम प्रेसिडेंट स्वामी श्रीब्रह्मानन्द (१८६०—१९२२)-ने दक्षिण-भ्रमणके समय बंगलोरमें श्रीराम-नाम-कीर्तन सुनकर बंगालमें भी उसका प्रवर्तन करनेके लिये विशेषरूपसे आग्रह किया था। एक बार स्वामी विवेकानन्दने बंगालमें घर-घर त्याग, भक्ति और ज्ञानकी आदर्श मूर्ति श्रीमहावीरकी पूजा प्रचलित करनेकी इच्छा प्रकट की थी। इसी कारण श्रीराम-नाम-कीर्तनके साथ श्रीमहावीरजीके पूजा-प्रचलनकी इच्छा स्वामी ब्रह्मानन्दके मनमें उदय हुई।

बेलूर-मठ हावड़ासे १९१० ई० में 'श्रीराम-नाम-संकीर्तनम्' नामक पुस्तिका पहले-पहल प्रकाशित हुई। उस पुस्तिकाके निवेदनमें स्वामी ब्रह्मानन्द कहते हैं कि 'कतिपय वर्ष पूर्व जब मैं दक्षिण भारतमें भ्रमण कर रहा था तो वहाँ दाक्षिणात्य लोगोंसे श्रीराम-नाम-संकीर्तन सुनकर मुग्ध हो गया। हमारे बंगालमें उसका अभ्यास और प्रचार हो, इस उद्देश्यसे सर्वप्रथम ग्रन्थके रूपमें उस संकीर्तनके प्रवर्तनका प्रयास किया गया है। आनन्दकी बात है कि आज बंगालमें अनेक स्थानोंपर

इसका आदरपूर्वक श्रीगणेश हो गया है। अतएव मूल उद्देश्य पूर्णरूपसे सिद्ध न होनेपर भी अंशतः सफलता मिली है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

'पूज्यपाद श्रीमत्स्वामी विवेकानन्दजीकी बड़ी साध थी कि बंगालमें ब्रह्मचर्य-मूर्ति श्रीमहावीरजीकी उपासना प्रचलित हो। इसीलिये हमलोगोंने मठमें श्रीराम-नाम-संकीर्तनके पूर्व श्रीमहावीरजीकी आराधनाका नियम बना रखा है। अनुरोध करनेपर सभी इसका अनुवर्तन करते हैं। अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए भगवत्प्रीतिके अधिकारी बनकर सब लोग जन्म-भूमिको कृतार्थ और पवित्र करें, यही हृदयकी निष्कपट प्रार्थना है।'

'श्रीराम-नाम-संकीर्तनम्' पुस्तिकाके प्रारम्भमें महावीर श्रीहनुमानजीका एक चित्र है। उस चित्रमें श्रीमहावीरजी घुटनेके बल बैठे हैं, पूँछ ऊपर उठी है, दोनों हाथोंसे वक्षःस्थलको विदीर्ण करके हृदयमें विराजित श्रीराम-सीताकी मूर्ति दिखला रहे हैं और कण्ठमें सीतादेवीद्वारा दी हुई उपहारस्वरूप मणिमाला धारण किये हैं। इस मूर्तिके नीचे यह श्लोक है—

श्रीनाथे जानकीनाथे ह्यभेदः परमात्मनि।
तथापि मम सर्वस्वं रामः कमललोचनः॥

'यद्यपि परमात्मदृष्टिसे लक्ष्मीनाथ नारायण और जानकीनाथ श्रीराममें कोई भेद नहीं है, तथापि कमललोचन श्रीराम ही मेरे सर्वस्व हैं।'

राज-मुद्राओंपर श्रीहनुमदाकृतिका अङ्कन

(लेखक—डॉ० श्रीविश्वम्भरशरणजी पाठक तथा कु० श्रीमञ्जु भारती)

साधारणतः यही माना जाता है कि उत्तर भारतमें स्वामी श्रीरामानन्दजीके कारण श्रीहनुमदुपासनाका विशेष प्रचार हुआ। किंतु इस तथ्यके पुरातात्त्विक साक्ष्य यथेष्टरूपमें पर्याप्त हैं कि इससे काफी पहले दशम शताब्दीमें ही श्रीहनुमानजीकी महत्ता उत्तर भारतमें प्रतिष्ठित थी। दशम शताब्दीके पूर्वकी श्रीहनुमानकी स्वतन्त्र प्रतिमा उपलब्ध नहीं होती। अवश्य ही श्रीरामके साथ अथवा श्रीराम-कथाके प्रसङ्गमें श्रीहनुमानजीकी प्रतिमाओंका अङ्कन हुआ है। तत्पश्चात् बुन्देलखण्डसे लेकर छत्तीसगढ़तकके क्षेत्रमें श्रीहनुमानकी स्वतन्त्र आकृतियोंके अङ्कनके विस्तृत प्रमाण मुद्राओं और मूर्तियोंके रूपमें उपलब्ध होते हैं।

श्रीहनुमानकी ऐसी प्राचीनतम स्वतन्त्र मूर्ति खजुराहोकी एक मठियामें प्रतिष्ठित है, जिसकी तिथि अभिलेखसे ज्ञात हुई है। इसका अद्यावधि पूजन भी होता है। साढ़े सात फीटकी इस विशाल प्रतिमाके पादपीठपर एक छोटा-सा लेख उत्कीर्ण है, जिसमें संवत् ३१६ दिया गया है। यह संवत् निश्चय ही 'हर्ष-संवत्' होना चाहिये; अतः यह मूर्ति ९७९ विक्रम-संवत् अथवा ९२२ ईसवी-सन्की है। मूर्ति स्थानक-मुद्रामें द्विभुज हनुमानका चित्रण प्रस्तुत करती है। ऊपर उठा हुआ दाहिना हाथ सिरपर स्थित है और बायाँ वक्षःस्थलके निकट है। पाद-संस्थान आदि वराह-मूर्तिके समान ही 'उत्साह' के स्थायी भावकी व्यञ्जना करता है। दाहिना पद भूमिपर स्तम्भवत् खड़ा है तथा बायाँ उठा हुआ है और इस प्रकार उनके वीर रूपकी सफल अभिव्यक्ति हुई है। मुख एक ही है और विग्रह एक लम्बी वनमाला एवं केयूर, अङ्गद आदि आभरणोंसे सज्जित प्रतीत होता है। इतना अवश्य है कि चिरकालसे पूजित होते रहनेके कारण उसपर सिन्दूरका इतना मोटा लेप चढ़ गया है कि मूर्तिके अलंकरण छिप-से गये हैं।

स्वतन्त्र मूर्तिके अङ्कन होनेके बाद मुद्राओंमें भी श्रीहनुमानका अङ्कन होने लग गया। रत्नपुर छत्तीसगढ़के कलचुरि-नृपति कलिङ्गराज अथवा उनके पुत्र कमलराजने श्रीहनुमान-मुद्राकी परम्परा एकादश शतीमें प्रारम्भ की और इस राजवंशमें जाजल्लदेव 'प्रथम' और पृथ्वीदेवने यह परम्परा बनाये रखी। जाजल्लदेवकी ताम्र-मुद्रापर राक्षसको पददलित करते हुए द्विभुज हनुमानका अस्पष्ट अङ्कन है; किंतु पृथ्वीदेवकी मुद्राओंपर श्रीहनुमानका चतुर्भुजरूप है तथा ऊर्ध्ववाम बाहुमें गदा और अधःस्थवाम एवं दक्षिण हाथोंमें राक्षसका मर्दन करते हुए दिखाये गये हैं।

इसी प्रकार चन्देल राज-मुद्राओंपर भी श्रीहनुमानका अङ्कन है। इसका प्रारम्भ चन्देल-नरेश सल्लक्षणवर्माने किया और उनके पश्चात् जयवर्मा, पृथ्वीवर्मा और मदनवर्माकी मुद्राओंमें यह प्रकार जारी रहा। सल्लक्षणवर्माकी मुद्राओंपर चन्द्रातपके नीचे श्रीहनुमानकी अस्पष्ट आकृति अङ्कित है और वही प्रकार पृथ्वीवर्मा,

मदनवर्माकी मुद्राओंपर भी दिखायी देता है। किंतु जयवर्माकी मुद्राओंमें श्रीहनुमानका द्विविध अङ्कन हुआ है— प्रथमत: चन्द्रातपके नीचे स्थानक रूपमें और द्वितीय पवन-वेगसे कम्पन करते हुए।

इन चन्देल मुद्राओंमें श्रीहनुमानकी आकृतिका अस्पष्ट अङ्कन है, अत: उसकी अङ्कन-शैलीके सम्बन्धमें विशेष कुछ कह सकना सम्भव नहीं, किन्तु चन्देलकालीन और चन्देल-क्षेत्रमें उपलब्ध खजुराहोकी मठियामें उपरिवर्णित मूर्तिकी शैली और स्थानक-मुद्रामें निश्चित ही आदिवराह-प्रतिमा-विधानका प्रभाव परिलक्षित होता है। यह स्मरणीय है कि प्रतिहार-नरेश मिहिरभोजकी ताम्र-मुद्राओंमें आदिवराहका अङ्कन हुआ है और चन्देलराज प्रारम्भमें प्रतिहारोंके सामन्त थे। अत: यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हनुमान-मूर्तिकी शैली और विधानपर आदिवराहका प्रभाव प्रतिहारोंके माध्यमसे आया होगा।

एक स्वाभाविक प्रश्न यह है कि श्रीहनुमानकी आकृतिका अङ्कन मुद्राओंपर क्यों और कैसे आरम्भ हुआ? ऊपर वर्णन हो चुका है कि कलचुरि-नरेश कलिङ्गराज अथवा उसके पुत्र कमलराजने छत्तीसगढ़-क्षेत्रमें प्रवर्तित मुद्राओंमें श्रीहनुमानका अङ्कन चन्देलीय हनुमान-मुद्राओंके पहले ही प्रारम्भ कर दिया था। कलचुरि-नरेशों और समीपवर्ती क्षेत्रके अधीश्वर चन्देल-नरेशोंमें संधि और विग्रह—दोनों प्रकारके राजनयिक सम्बन्ध थे। अत: यह निष्कर्ष अनुचित न होगा कि चन्देल-क्षेत्रमें 'श्रीहनुमान-मुद्रा' के प्रवर्तनका कारण कलचुरि-नरेशोंद्वारा प्रचलित 'श्रीहनुमान-मुद्रा' होगी, यद्यपि चन्देल-क्षेत्रमें प्रतिहार-प्रभाव होनेके कारण श्रीहनुमानके आकृति-विधानपर आदिवराह-मूर्तिकी छाप पड़ी थी।

जिस प्रकार कलचुरि और चन्देल सिक्कोंपर हनुमानका अङ्कन मिलता है, उसी प्रकार कर्नाटक-महाराष्ट्र-क्षेत्रके देवगिरिके यादवोंका राजाङ्क भी 'गरुड़सहित हनुमान' है। ये यादव नृपति अपनेको 'द्वारावती-पुरवरेश्वर' और विष्णुवंशोद्भव कहते थे। इनके ताम्र-शासनमें लग्न जो राजमुद्राएँ हैं, उनमें प्राय: 'गरुड़-हनुमान' अङ्कित हैं, किंतु एक राजमुद्रापर केवल हनुमान ही अङ्कित हैं। इस वंशके प्रवर्तक 'दृढप्रहर' की तिथि निश्चित करनेके लिये निस्संदिग्ध साक्ष्य उपलब्ध नहीं है; किंतु ईसाके पश्चात् नवम शतीका उत्तरार्ध साधारणतया इनका काल माना जाता है। मध्यकालमें कर्नाटक श्रीहनुमान-भक्तिका प्रमुख क्षेत्र दिखायी पड़ता है। यहाँके राजाओं एवं राजप्रासादोंमें वानर-आकृति प्रयुक्त होती थी। यादव-नरेशोंकी राजमुद्रा हनुमानकी आकृतिवाली है।

रत्नपुर-छत्तीसगढ़के कलचुरि-नरेशोंका सम्पर्क कर्नाटक-महाराष्ट्र-क्षेत्रसे था। उदाहरणार्थ सेउणदेशके समीपवर्ती दण्डकपुरका राजा कलचुरि-नृपति जाजल्लदेव 'प्रथम' का करद शासक था। अत: इस अनुमानके लिये यथेष्ट आधार है कि कलचुरि-क्षेत्रमें श्रीहनुमानकी आकृतिका राज-मुद्राओंपर जो अङ्कन हुआ, उसका कारण कर्नाटक-क्षेत्रसे आगत प्रभाव ही होगा।

मङ्गलागार श्रीहनुमानजी

जयति मंगलागार, संसारभारापहर, वानराकारविग्रह पुरारी।
राम-रोषानल-ज्वालमाला-मिष ध्वांतचर-सलभ-संहारकारी॥
जयति मरुदंजनामोद-मंदिर, नतग्रीव सुग्रीव-दुःखैकबंधो।
यातुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालाग्निहर, सिद्ध-सुर-सज्जनानंदसिंधो॥
जयति रुद्राग्रणी, विश्व-वंद्याग्रणी, विश्वविख्यात-भट-चक्रवर्ती।
सामगाताग्रणी, कामजेताग्रणी, रामहित, रामभक्तानुवर्ती॥
जयति संग्रामजय, रामसंदेसहर कौशला-कुशल-कल्याणभाषी।
राम-विरहार्क-संतप्त-भरतादि-नर-नारि-शीतलकरण कल्पशाषी॥
जयति सिंहासनासीन सीतारमण, निरखि निर्भरहरष नृत्यकारी।
राम संभ्राज शोभा-सहित सर्वदा तुलसिमानस-रामपुर-विहारी॥

(विनय-पत्रिका २७)

स्थापत्य एवं मूर्ति-कलामें श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० श्रीव्रजेन्द्रनाथजी शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, एफ्० आई० ए० एस्०;
अध्यक्ष (पुरातत्त्व) राष्ट्रीय-संग्रहालय, नयी दिल्ली)

श्रीहनुमानजी वायुदेवताके प्रसादसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमाको उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम वानरराज केसरी तथा माताका नाम अञ्जनी था। जन्मके समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यम, वरुण, कुबेर, अग्नि, वायु तथा इन्द्र आदिने इन्हें अजर-अमर बना दिया तथा अनेकों प्रकारके और भी वर प्रदान किये।

श्रीहनुमानजी अत्यन्त पराक्रमी, तेजस्वी एवं विद्वान् थे। इनके अनेक नामोंमें अञ्जनीनन्दन, महावीर तथा मारुति विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं। वे भगवान् श्रीरामके परम भक्त थे और उनकी अनेकों प्रकारसे सेवा करते थे। वाल्मीकीय रामायण तथा गोस्वामी तुलसीदासकी रामायणमें अनेक स्थलोंपर इनके नामका उल्लेख बड़े आदरसे हुआ है। स्वयं इनकी रामायण-रचना 'नाटक-रामायण' या 'हनुमन्नाटक' के नामसे प्रसिद्ध है। इनके जीवनकी अनेक घटनाओंमें सीताकी खोज करना, लंका-दहन करना, लक्ष्मणजीको जीवित करनेके हेतु द्रोणाचल लाना, रावणका गर्व नष्ट करना, गरुड़का गर्वहरण करना, भीम-गर्व-भञ्जन और महाभारत-युद्धके समय अर्जुनके रथके ध्वजपर बैठना विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं।

भारतवर्षमें श्रीहनुमानजीकी पूजा अत्यन्त प्राचीन कालसे होती आ रही है। प्राचीन साहित्य एवं शिला-लेखोंमें इनका उल्लेख मिलता है। साथ-ही-साथ स्थापत्य एवं मूर्तिकला-सिक्कों एवं लघु चित्रोंमें भी इनके जीवनसे सम्बन्धित अनेक घटनाओंका अङ्कन प्राप्त है। यहाँपर केवल स्थापत्य एवं मूर्ति-कलामें श्रीहनुमानके चित्रणका संक्षेपमें उल्लेख किया जाता है।

श्रीहनुमानकी अबतक प्राप्त प्राचीनतम प्रतिमाएँ गुप्तकाल (५वीं-६ठी शताब्दी)-की हैं। उत्तर प्रदेशके झाँसी जिलेमें स्थित देवगढ़के प्रसिद्ध दशावतार-मन्दिरकी बाह्य दीवारोंपर अनेक पौराणिक कथाओंके दृश्य मिलते हैं। यहींसे प्राप्त एक पाषाण-खण्डपर युद्धमें मेघनादद्वारा लक्ष्मणके मूर्च्छित हो जानेपर श्रीहनुमान द्रोणाचल पर्वत, जिसपर मृत-संजीवनी बूटी लगी है, लाते हुए दिखाये गये हैं। एक अन्य मूर्तिमें वे श्रीरामसे मिलते हुए दिखलाये गये हैं। ऐसे ही वाली-सुग्रीवके युद्धके समय वे पीछे खड़े हैं। मध्य प्रदेशके नचना नामक स्थानसे प्राप्त एक शिलाखण्डपर श्रीहनुमान सुग्रीवके साथ श्रीरामके सामने खड़े हैं और श्रीरामके पीछे लक्ष्मणजी स्थित हैं।

शृङ्गवेरपुरसे प्राप्त तथा प्रयाग-संग्रहालयमें प्रदर्शित एक प्रतिमामें श्रीराम-लक्ष्मणके साथ श्रीहनुमान एवं सुग्रीव भी खड़े चित्रित किये गये हैं। रामवनसे प्राप्त एक मूर्तिपर, जो अब काशीके भारत-कला-भवनमें रखी है, सेतुबन्धकी रचनाके समय श्रीहनुमान भी अन्य वानरोंके साथ दिखाये गये हैं। इनके सम्मुख श्रीराम और लक्ष्मण एक शिलापर बैठे हैं। ये दोनों मूर्तियाँ भी ५वीं शतीकी हैं।

गुप्तकालमें ही बनी अनेक मिट्टीकी मूर्तियोंपर भी श्रीहनुमानका अङ्कन मिलता है। इस प्रकारकी सम्भवतः सबसे कलात्मक प्रतिमा चौसा (बिहार)-से प्राप्त हुई है, जो अब पटना-संग्रहालयमें प्रदर्शित है। इसमें युद्धके स्कन्धावारमें वानर-सेनाके मध्य श्रीराम, लक्ष्मण और हनुमान बैठे हैं। कानपुर जिलेके 'भीतरगाँव' के मन्दिरपर जड़ी मूर्तिमें श्रीहनुमान पर्वत उठाये दिखलाये गये हैं। उत्तर प्रदेशसे प्राप्त एक मूर्तिमें जो लखनऊ-संग्रहालयमें सुरक्षित है, श्रीहनुमान अपने घुटनोंपर हाथ रखे हुए बैठे हैं। बिहारमें अंटीचकसे प्राप्त पालकालीन (८वीं शतीकी) मृण्मयी मूर्तिमें भी हनुमान पर्वत उठाये हुए दिखलाये गये हैं।

पूर्वी गोदावरी जिलेके भीमावरम् नामक स्थानपर निर्मित माण्डव्यनारायणके मन्दिरपर बनी एक मूर्तिमें श्रीराम और लक्ष्मण एक वृक्षके नीचे विराजमान हैं और उसके ऊपर हनुमान बैठे हैं। यह सम्भवतः उस समयका दृश्य है, जब सुग्रीवके आग्रहपर श्रीहनुमान दोनों भाइयोंके पास आये थे। इसीसे साम्य रखती एक मूर्ति जावामें प्राम्बननमें भी देखी जा सकती है। इलोराके सुप्रसिद्ध कैलास-मन्दिर (८वीं शती ई०)-पर भी रामायणके अनेकों दृश्योंमें हनुमानका भी अङ्कन मिलता है।

उड़ीसामें कटक जिलेके मणिकेश्वर-मन्दिरपर, जो लगभग ७वीं शती ई० में निर्मित हुआ था, श्रीराम, लक्ष्मण एवं हनुमानकी सुन्दर मूर्तियाँ बनी हैं।

उत्तरी भारतमें प्रतिहार-सम्राटोंके शासनकालमें भी श्रीहनुमानकी पूजाके लिये अनेक पाषाण-प्रतिमाओंका

निर्माण किया गया था। आठवीं शती ई० में चित्तौड़गढ़में बनी ऐसी ही एक मूर्ति कुछ वर्ष पूर्व राष्ट्रीय-संग्रहालय, नयी दिल्लीको स्थानान्तरित की गयी है।

प्रतिहारयुगीन श्रीहनुमानकी दो मूर्तियाँ मथुरा-संग्रहालयमें भी रखी हैं। इनमेंसे प्रथम मूर्ति शीशरहित है तथा काफी खण्डित है। दूसरी आदमकदमूर्ति, जो परखमसे मिली थी, काफी अच्छी दशामें है। ये दोनों मूर्तियाँ ९वीं शती ई०की बनी प्रतीत होती हैं।

खजुराहोके चन्देल-शासकोंके राज्यकालमें श्रीहनुमानको अधिक मान्यता प्राप्त थी और वे 'भुम्बकदेव' के नामसे पूजे जाते थे। यहाँके प्रसिद्ध पार्श्वनाथ-मन्दिरपर एक ओर श्रीराम और सीता खड़े हैं तथा श्रीराम अपने दाहिने हाथसे समीप खड़े हुए हनुमानको आशीर्वाद दे रहे हैं। इसीसे साम्य रखती एक मूर्ति राजस्थानमें ओसियाँके अम्बामाता-मन्दिरपर भी उत्कीर्ण है; परंतु वहाँ श्रीराम-सीताकी जगह भगवान् विष्णु एवं लक्ष्मी हैं और निकट ही श्रीहनुमान भी खड़े हैं। खजुराहोके पार्श्वनाथ-मन्दिरपर ही एक अन्य दृश्यमें सीता लंकाके अशोक-वनमें बैठी हैं तथा उनके सामने विविध आयुधधारी राक्षसोंसे घिरे श्रीहनुमान दिखाये गये हैं। केरलसे प्राप्त एक लकड़ीकी मूर्तिमें भी अशोक-वनमें बैठी सीताके सामने खड़े हनुमानका सुन्दर अङ्कन मिलता है।

खजुराहो ग्राममें स्थित अनेक मन्दिरोंमें भी श्रीहनुमानजीकी प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण मूर्ति एक आधुनिक देवालयमें है, जिसकी पीठिकापर हर्ष-संवत् ३१६ (९२२ ई०)-का लेख उत्कीर्ण है। इन सभी मूर्तियोंकी आज भी पूजा होती है। श्रीहनुमानकी एक शीशरहित मूर्ति दुधईके अवशेषोंमें 'बनियाकी बारात' नामक स्थानपर भी मिली है। कालंजरके किलेके समीप ही प्रसिद्ध हनुमान-कुण्ड है, जिसके बगलमें पर्वत काटकर बनायी गयी हनुमानकी एक विशाल प्रतिमा स्थित है। इस मूर्तिको देखते ही जोधपुरके दुर्गके बाहर पहाड़में काटकर बनी लगभग १८ फीट ऊँची मूर्तिका स्मरण हो आता है, परंतु जोधपुरवाली मूर्ति पञ्चमुखी है।

चन्देलोंके समकालीन चेदि-सम्राटोंके शासनकालमें बनी मूर्तियाँ बिल्हरीके लक्ष्मी-नारायण-मन्दिर एवं मेड़ाघाटके चौंसठ-योगिनी-मन्दिरोंके अतिरिक्त जबलपुर जिलेके बड़गाँव नामक स्थानसे भी प्राप्त हुई हैं। इन सभी मूर्तियोंमें उनका दाहिना हाथ सिरके ऊपर उठा है तथा वे एक पैरसे मांस-रहित नारीको कुचलते दिखाये गये हैं, जिसे कुछ विद्वानोंने भ्रान्तिसे कंकाली चामुण्डा माना है। परंतु हमें पौराणिक कथाओंमें कहीं भी इसका वर्णन नहीं प्राप्त होता। अतः उसे राक्षसी मानना अत्यधिक न्यायसंगत होगा। उपर्युक्त सभी मूर्तियाँ चेदिकला (११वीं-१२वीं शती)-की बनी प्रतीत होती हैं।

उत्तर प्रदेशमें गहड़वाल राजाओंके समय (१२वीं शती ई०)-की बनी एक कलात्मक मूर्ति प्रयाग-संग्रहालयमें प्रदर्शित है, परंतु अभाग्यवश इसका अधोभाग खण्डित है। इसी संग्रहालयमें फाफामऊसे मिली एक शीशरहित मूर्ति भी रखी है। इसी कालकी कंकड़ और बलुए पत्थरकी बनी हुई एक आदमकदमूर्ति लखनऊ-संग्रहालयमें प्रदर्शित है। ये सभी मूर्तियाँ अवश्य ही प्राचीन कालमें पूजी जाती रही होंगी।

राजस्थानके विभिन्न स्थानोंपर बने मध्ययुगीन मन्दिरोंपर उत्कीर्ण रामायणके अनेकों दृश्योंमें भी श्रीहनुमानका अङ्कन किया गया है। केकिन्दके प्रसिद्ध नीलकण्ठ-मन्दिरपर बने निम्नलिखित दृश्य विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं—

१—श्रीहनुमान पर्वत उठाये आकाश-मार्गसे जा रहे हैं।

२—श्रीहनुमान वानरोंसहित खड़े हैं।

३—श्रीहनुमान पर्वत लाकर उसे वैद्यराज सुषेणको भेंट कर रहे हैं।

४—श्रीहनुमान हाथ जोड़े खड़े हैं।

राजस्थानमें किराडके एक मन्दिरपर सीताजी अशोक-वनमें चिन्ताजनक मुद्रामें बैठी हैं और साथ ही अशोकवृक्षपर श्रीहनुमान अपना परिचय देनेसे पूर्व विराजमान हैं। उपर्युक्त मन्दिरके पास शिवका एक अन्य मन्दिर है। इसपर श्रीहनुमान संजीवनी-बूटीसहित पूरा पर्वत उठाये लिये आ रहे हैं। इसीके समीप एक अन्य दृश्यमें मेघनादकी शक्तिके प्रहारसे मूर्च्छित लक्ष्मण अचेत पड़े हैं और उनका सिर श्रीरामकी गोदमें रखा है। श्रीराम तथा उनके सामने बैठे वानरगण लक्ष्मणकी इस दशापर अत्यन्त दुःखी दिखायी दे रहे हैं।

राजस्थानकी भूतपूर्व रियासत बाँसवाड़ासे लगभग तीस मील दक्षिण-पश्चिममें अपूर्णाका प्राचीन नगर है। यहाँके प्राचीन मन्दिरोंके समूहमें श्रीहनुमानगढ़ी नामक देवालय बड़ा प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त श्रीहनुमानका एक छोटा अन्य मन्दिर भी है। इस मन्दिरमें श्रीहनुमानकी

एक विशाल मूर्ति है, जिसकी चरण-चौकीपर विक्रम संवत् ११६५ का परमार राजा विजयराजके समयका नौ पङ्क्तियोंका लेख उत्कीर्ण है, जिससे परमार-कालमें श्रीहनुमानकी पूजाका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। भूतपूर्व जोधपुर रियासतमें जूना-खेड़ा नामक स्थानपर बने अनेक मन्दिरोंमें श्रीहनुमानका मन्दिर सबसे प्राचीन माना जाता है। नाडोलमें भी श्रीहनुमानका एक प्राचीन देवालय है। मध्यप्रदेशमें सुहानियाँ नामक ग्रामसे लगभग दो फर्लांगकी दूरीपर श्रीहनुमानकी एक विशाल मूर्ति विद्यमान है। यह मूर्ति लगभग १०वीं शताब्दीमें किसी देवालयमें स्थापित की गयी होगी, जिसके उस स्थानपर अब केवल भग्नावशेष रह गये हैं। इसी प्रदेशमें गन्धावलसे प्राप्त ५ फीट ऊँची मूर्ति ग्वालियर-संग्रहालयमें रखी है, जो १६वीं शतीकी बनी प्रतीत होती है।

प्राचीन कालकी बनी श्रीहनुमानकी एक अद्वितीय मूर्ति काठियावाड़की भूतपूर्व रियासत तलजासे मिली है। यह चतुर्भुजी है। इस पञ्चमुखी मूर्तिमें सिंह, वानर, गरुड़, शूकर तथा मुकुटके ऊपर अश्वके मुख हैं। यह मूर्ति अपने ऊपरवाले दो हाथोंमें पर्वत एवं गदा लिये है तथा निचले दो हाथोंमें धनुष और वाण पकड़े है।

प्राचीन उत्कलके गंगनरेश अनंगभीम तृतीयकी चन्द्रिकादेवी नाम्नी पुत्रीद्वारा १२७८ ई० में बनवाये गये भुवनेश्वरके सुप्रसिद्ध अनन्त-वासुदेव-मन्दिरके ऊपर श्रीराम, सीता, लक्ष्मणके अतिरिक्त अन्य वानरोंसहित श्रीहनुमानका अङ्कन भी प्राप्त होता है।

आसाममें देवपर्वत नामक स्थानपर दसवीं शतीके शिवमन्दिरके भग्नावशेषोंमेंसे एक पल्लेपर आगे श्रीराम और उनके पीछे लक्ष्मण विराजमान हैं। सुग्रीव श्रीरामके आगे आदरपूर्वक झुके हैं तथा श्रीहनुमान इस दृश्यको अन्य वानरोंसहित बड़े ध्यानसे देख रहे हैं। यह दृश्य सम्भवत: उस समयका है, जब श्रीहनुमानने सुग्रीवकी वालीसे रक्षाके लिये श्रीरामसे मैत्री करवायी थी। आसाममें ही त्रिपुरा नामक स्थानसे श्रीहनुमानकी एक विशाल प्रतिमा भी मिली है, जिसमें वे एक खण्डित स्त्री-मूर्तिको लाँघते हुए दिखाये गये हैं। यह मध्यकालीन मूर्ति अपने उठे दाहिने हाथमें एक गदा लिये प्रतीत होती है।

उत्तर भारतकी ही भाँति दक्षिण भारतमें भी श्रीहनुमानकी पूजा समानरूपसे प्रचलित थी, अत: रामायणके दृश्योंमें श्रीहनुमानका भी अङ्कन मिलता है। पट्टडकलके आठवीं शती ई० के पापनाथ-मन्दिरमें सेतुबन्धके निर्माणका दृश्य है, जिसमें श्रीराम, लक्ष्मण, हनुमान तथा अन्य वानर आदि दिखाये गये हैं। इसी मन्दिरपर बने एक अन्य दृश्यमें श्रीरामका लंका-विजयके बाद सीतासे पुनर्मिलन दिखाया गया है और साथमें श्रीहनुमान भी दिखाये गये हैं।

श्रीहनुमानकी एक पृथक् पाषाण-मूर्ति बेलूरसे प्राप्त हुई है। १२वीं शती ई० की इस मूर्तिमें हनुमानजी हाथ जोड़े प्रदर्शित किये गये हैं। हाम्पीमें १६वीं शती ई०में निर्मित हजारा रामास्वामीके मन्दिरकी बाहरी दीवारपर श्रीराम आसनपर बैठे हैं और लक्ष्मण उनके पीछे खड़े हैं। सामने श्रीहनुमान सीतासे अशोक-वाटिकामें मिलनेके बादका कुशल-समाचार सुना रहे हैं। उनके हाथ अञ्जलि-मुद्रामें हैं।

दक्षिण भारतसे श्रीहनुमानकी अनेक सुन्दर कांस्य-प्रतिमाएँ भी मिली हैं, जिनमें सम्भवत: सबसे महत्त्वपूर्ण तंजौर जिलेके वडक्कुपणयूर नामक स्थानकी है। इस चोलकालीन १०वीं शती ई० की मूर्तिमें वे श्रीराम, सीता और लक्ष्मणके साथ खड़े प्रदर्शित किये गये हैं। इस समय यह कलात्मक समुदाय नेशनल आर्ट गैलरी, मद्रासमें देखा जा सकता है। मद्रास-संग्रहालयमें सुरक्षित श्रीहनुमानकी अन्य मूर्तियोंमें उन्हें एक हाथमें ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि लिये अथवा हाथ जोड़कर वन्दना करते भी दिखाया गया है। लंदन-स्थित विक्टोरिया एंड अल्वर्ट-संग्रहालयमें श्रीहनुमानकी उत्तर चोलकालीन (१२वीं-१३वीं शती ई० की) एक स्थानक मूर्ति है, जिसमें उनका दाहिना हाथ मुँहके समीप दिखाया गया है।

श्रीहनुमानकी एक प्रस्तर-प्रतिमा टोरंटोके रायल अंटोरियों-संग्रहालयमें भी है। इस उत्तर मध्ययुगीन मूर्तिमें वे एक दानवके ऊपर खड़े हैं। उनका दाहिना हाथ ऊपर उठा है तथा बायाँ हाथ, जो जाँघपर रखा है, एक कटार पकड़े हुए है।

भारतके पड़ोसी हिंदू-राज्य नैपालमें भी श्रीहनुमानकी पूजाके प्रमाण मिलते हैं। नैपालकी श्रीहनुमान-मूर्तियोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण सम्भवत: भक्तपुरके दरबार स्कायरमें प्रतिष्ठित प्रतिमा है, जिसपर नेवाड़ी संवत् ८१८ अर्थात् १६९८ ई० का लेख उत्कीर्ण है। यह चतुर्भुजी मूर्ति एक मूँछयुक्त दानवकी हथेलियोंके ऊपर खड़ी है। इनके चार हाथ हैं। ऊपरके दो हाथोंमें ये हथौड़ा और सम्भवत: गदा पकड़े हुए हैं और नीचेके दो

हाथोंमें वृक्षकी डाल तथा त्रिशूल लिये हुए हैं। इन्होंने विभिन्न आभूषण तथा छन्नवीर धारण कर रखा है। श्रीहनुमानकी चतुर्भुजी प्रतिमाएँ भारतमें सामान्य रूपसे प्राप्त नहीं होतीं। यहाँ द्विभुजी मूर्तियोंके बनानेका अधिक प्रचलन था।

जावामें प्राम्बनन नामक स्थानपर ९वीं शती ई० में निर्मित्त विशाल चण्डी लोरो जोनरंगपर रामायणके अनेक दृश्य देखनेको मिलते हैं। इनमें श्रीहनुमानसे सम्बन्धित कुछ दृश्य निम्नलिखित हैं—

१—लंकासे लौटनेपर हनुमानजी श्रीराम-लक्ष्मणको सीताका कुशल-समाचार सुना रहे हैं।

२—श्रीहनुमानद्वारा लंका-दहन।

३—श्रीहनुमानकी सीतासे अशोक-वनमें भेंट।

४—राक्षस श्रीहनुमानकी पूँछमें आग लगा रहे हैं।

५—श्रीहनुमान अपनी पूँछमें आग लगी देखकर रावणके महलके ऊपर छलाँग मार रहे हैं।

६—सेतुबन्ध-निर्माण—पासमें श्रीराम, लक्ष्मण और हनुमान हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहनुमानकी पूजा न केवल सम्पूर्ण भारतमें ही थी, अपितु नेपाल और जावातक भी उसका प्रसार हुआ। आज भी भारतके प्रत्येक नगर एवं ग्राममें श्रीहनुमानजीका छोटा-बड़ा मन्दिर अवश्य है, जहाँ नित्य-प्रति सैकड़ों भक्त उनके दर्शनार्थ जाते हैं और पुण्य-लाभ करते हैं।

मूर्ति-कलामें श्रीहनुमानका संकटमोचक रूप

(लेखक—प्रो० श्रीकृष्णदत्तजी वाजपेयी)

श्रीरामके अनन्य भक्तके रूपमें श्रीहनुमानका नाम प्रख्यात है। अत्याचारके प्रतिनिधि रावण तथा उसके सहयोगियोंके दमनमें श्रीहनुमानजीने निस्संदेह अतुलितबलका परिचय दिया। इस कार्यमें श्रीरामके नेतृत्वमें उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही। उनको जो प्रभूत सम्मान प्राप्त हुआ, उसके मूलमें यही तत्त्व विद्यमान है।

रावणकी दुर्दान्त पाशविक शक्तिका उन्मूलन सहज सम्भव न था। इसके लिये श्रीरामको वानरों तथा ऋक्षोंका विशेषरूपसे सहयोग लेना पड़ा। राक्षसोंके साथ महायुद्धमें श्रीहनुमानका शौर्य तथा कौशल महान् था। उनके इन गुणों तथा अपने प्रति असीम निष्ठाके कारण ही श्रीराम उन्हें अपना अनन्य भक्त मानते थे। गोस्वामी तुलसीदासजीने उनके महत्त्वको विशेषरूपसे बढ़ाया। उनकी पूजा व्यापक-रूपमें भारतके विभिन्न भागोंमें प्रचलित है।

प्राचीन भारतीय साहित्य और कलामें श्रीहनुमानजीका यशोगान विविध रूपोंमें उपलब्ध है। संस्कृत, प्राकृत, हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओंमें उनका गुणगान अनुपम श्रीराम-भक्तके रूपमें मिलता है। साथ ही उन्हें अत्याचारका विध्वंसक और असीम शक्तिवाला देव माना गया है; क्योंकि उनमें असम्भवको भी सम्भव बनानेकी क्षमता है।

मूर्ति-कलामें ईसवी ७००के लगभग वीरभावमें श्रीहनुमानकी विशाल प्रतिमाएँ बननी प्रारम्भ हुईं। उनके मन्दिरोंका भी निर्माण पूर्वमध्यकालसे होने लगा। मध्यप्रदेशके गुना जिलेमें इंदौर (प्राचीन इन्द्रपुर)-में श्रीहनुमानजीके मन्दिरके अवशेष मिले हैं। वहाँ उनकी विशाल प्रतिमा सुरक्षित है। मूर्तिकी चरण-चौकीपर उत्कीर्ण लेखसे ज्ञात होता है कि मूर्तिका निर्माण ई० नवीं शतीमें हुआ था। मूर्तिमें दायाँ हाथ ऊपर उठा है और बायाँ भग्न है। उनका बायाँ पैर अपस्मार पुरुषके ऊपर रखा है। कमरका कटिबन्ध दर्शनीय है।

श्रीहनुमानजीकी एक महाकाय मूर्ति मथुरामें मिली थी, जो अब वहाँके संग्रहालयमें सुरक्षित है। इसमें श्रीहनुमानजीका वीरभाव बड़े प्रभावोत्पादक ढंगसे प्रदर्शित हुआ है। यह मूर्ति लाल बलुए पत्थरकी है और इसका निर्माणकाल ई० आठवीं शती है।

खजुराहोमें श्रीहनुमानजीकी तीन उल्लेखनीय स्वतन्त्र प्रतिमाएँ मिली हैं। पहली महाकाय मूर्ति खजुराहोके पश्चिमी मन्दिर-समूहसे गाँवकी ओर जाती हुई सड़कके किनारे बनी हुई मठियामें प्रतिष्ठापित है। यहाँ पहले श्रीहनुमानका मन्दिर रहा होगा। यह प्रतिमा विशेष महत्त्वकी है। इसकी चरण-चौकीपर हर्ष-संवत् ३१६ (९२२ ई०)-का लेख उत्कीर्ण है। खजुराहोमें उपलब्ध लेखोंमें यह सबसे अधिक प्राचीन माना जाता है। मूर्तिमें वानरमुख श्रीहनुमानका दायाँ पैर पादपीठपर रखा है। कुछ ऊपर उठा हुआ बायाँ चरण पद्मपत्रपर टिका है।

नीचे अपस्मार पुरुष दिखाया गया है। ऊपर उठा हुआ दायाँ हाथ सिरपर है, मुड़ा हुआ बायाँ हाथ वक्षःस्थलपर रखा है, लंबी लाङ्गूल ऊपर मुड़ी हुई दिखायी गयी है। उनके गलेमें लंबी वनमाला सुशोभित है। उनकी दार्यी ओर कटिके समीप अञ्जलि-मुद्रामें हाथ जोड़कर बैठे हुए भक्तकी लघु आकृति है। खजुराहोमें श्रीहनुमानकी दूसरी मूर्ति वर्तमान 'वनखण्डी महादेव'-मन्दिरके भीतर है। इस मूर्तिका भी निर्माण-काल ई० दसवीं शती है। पहली मूर्तिके समान यह भी वीरभावमें है। इसमें नीचे अपस्मार पुरुष सपत्नीक न होकर अकेला है। मूर्तिमें लंबी लाङ्गूल नहीं दिखायी गयी है। उनका मुख सामनेकी ओर है और पृष्ठभाग नहीं दिखाया गया है। तीसरी प्राचीन मूर्ति खजुराहो गाँवके पास निनोरा तालके किनारेपर बनी एक मठियामें सुरक्षित है। इसकी रचना पहली दोनों प्रतिमाओं-जैसी ही है। इन तीनों प्रतिमाओंकी पूजा अभी भी होती है। उनपर चढ़ी हुई सिंदूरकी परतोंसे इनकी प्राचीनताका अनुमान लगाया जा सकता है। श्रीहनुमानकी इन स्वतन्त्र मूर्तियोंके अतिरिक्त खजुराहोके शिलापट्टपर श्रीराम तथा श्रीसीताजीके साथ श्रीहनुमान दिखाये गये हैं। यह शिलापट्ट मठियाके बहिर्भागमें लगा है। इसमें श्रीरामके पार्श्वमें श्रीसीता खड़ी हैं। दार्यी ओर खड़े हुए लक्ष्मणजीकी लघु आकृति बनी है। वे करण्ड-मुकुट धारण किये हुए हैं। उनके मस्तकपर श्रीराम अपना दक्षिण कर पालित-मुद्रामें रखे हुए हैं। इस शिलापट्टका निर्माण-काल ईसवी दसवीं शती है।

मध्यप्रदेशमें मल्लार (जि० बिलासपुर) एक उल्लेखनीय कला-केन्द्र है। वहाँ शुंगकालसे लेकर तेरहवीं शतीतक विभिन्न धर्मोंसे सम्बन्धित कलाकृतियोंका निर्माण बृहद् रूपमें हुआ। श्रीहनुमानजीकी एक विशेष प्रतिमा यहाँसे मिली है, जिसमें उनका भङ्गिमायुक्त वीरभाव दर्शनीय है। दायाँ हाथ अभयमुद्रामें ऊपर उठा हुआ है और बायाँ कमरमें खोंसी हुई कटारके ऊपर स्थित है। उनका बायाँ पैर अपस्मार नारीकी पीठपर है और नारी-आकृतिके नीचे अपस्मार पुरुष बैठा है। श्रीहनुमानजीका नीचे गिरता हुआ उत्तरीय आकर्षक ढंगसे दिखाया गया है। वे करण्ड-मुकुट, हार, एकावली, चौलड़ी मेखला तथा दुहरे नूपुर पहने हैं। मेखलासे लटकती हुई क्षुद्र घंटिकाएँ दिखायी गयी हैं। कानोंमें गोल कुण्डल तथा हाथोंमें अङ्गद और कटक हैं। मस्तकके पीछे दुहरा प्रभामण्डल दिखाया गया है। उनकी मूँछें विजयी योद्धाकी तरह ऊपर तनी हुई हैं।

हालमें इन पङ्क्तियोंके लेखकको सागर जिलाके कानगढ़ नामक स्थानमें श्रीहनुमानजीकी एक विशाल मूर्ति देखनेको मिली। मूर्ति-भञ्जकोंद्वारा तोड़कर इसके दो भाग कर दिये गये हैं। उनके बायें पैरके नीचे अपस्मार पुरुष है। श्रीहनुमानजीका मुख खुला हुआ है, जिससे उनकी दुहरी दन्तपङ्क्ति स्पष्ट दिखायी देती है। सिरपर मुकुट शोभायमान है। दायाँ हाथ वक्षःस्थलके सामने है। मुकुटके अतिरिक्त वे अन्य अनेक आभूषण धारण किये हैं।

भारतके अन्य अनेक स्थलोंमें श्रीहनुमानजीकी कला-कृतियाँ मिली हैं। ये पत्थर, हाथीदाँत, काँसा, चाँदी आदिकी हैं। दक्षिण भारतमें धातु, चन्दन तथा हाथीदाँतकी बनी हुई श्रीहनुमानकी बहुसंख्यक मूर्तियाँ पायी गयी हैं, जो देशके अन्य भागोंमें भी भेजी जाती थीं।

राजस्थानी तथा पहाड़ी चित्रकलामें श्रीरामचरितका अङ्कन प्रचुररूपमें मिलता है। वहाँ श्रीहनुमानजीको उचित स्थान प्रदान किया गया है।

श्रीहनुमानजीकी अनेक मूर्तियाँ भारतके बाहर स्याम, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा आदिमें मिली हैं। वहाँके जिन प्राचीन मन्दिरोंमें श्रीरामकथाका अङ्कन मिलता है, उनमें श्रीहनुमानजीकी आकृतियाँ निश्चितरूपसे उत्कीर्ण हैं। उन देशोंमें होनेवाली श्रीरामलीलाओंमें श्रीहनुमान बननेवाले पात्र अपनेको बहुत गौरवान्वित मानते हैं।

वीरभावमें श्रीहनुमानजीकी पूजा-परम्परा आजतक व्यापकरूपमें विद्यमान है। राक्षसोंके संहारक, असम्भव कार्योंको भी पूरा करनेकी सामर्थ्यवाले, नैष्ठिक श्रीराम-भक्त श्रीहनुमानको भारतीय देवमण्डलमें प्रमुख स्थान प्रदान किया गया। भीषण संकटोंसे भी त्राण प्रदान करनेवाला उनका वीर रूप जन-मानसको विशेष मान्य हुआ। इसी कारण भारतीय संस्कृतिके प्रबल रक्षकके रूपमें वे आदृत हुए।

पूर्वी द्वीपोंमें श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० श्रीलोकेशचन्द्रजी, निर्देशक-सरस्वती-विहार)

इंडोनीसियामें दसवीं शतीमें महाराजाधिराज बलितुङ्ने प्राम्बानन् ग्राममें विराट् शिवालयका निर्माण किया। इसका शिखर १४० फुट ऊँचा है और यह कभी २२४ मन्दिरोंसे घिरा हुआ भी था। इस शिवालयके प्रदक्षिणा-पथमें सम्पूर्ण रामायण उत्कीर्ण है। आज यह विश्वकी प्राचीनतम श्रीरामाश्रित कलाका भव्य निदर्शन है। श्रीरामभक्त कपीन्द्र हनुमानजीका इसमें अनेक बार चित्रण हुआ है। प्रस्तुत चित्रमें हनुमानजी सीताजीके पास भगवान् श्रीरामकी अँगूठी लेकर पहुँचे हैं।

इंडोनीसियामें आजतक रामायणका उदात्त अभिनय प्रचलित है। यहाँ चर्मपुत्तलिकाओंकी छाया यवनिकापर डालकर दिखाये जानेवाले छाया-नाटकोंकी परम्परा बहुत लोकप्रिय है। इनमें शुभ्र-वेषधारी हनुमानजी बच्चोंसे लेकर वयोवृद्धतक अपनी लीलाओं और श्रीरामभक्तिके लिये आह्लादक हैं। इन छाया-नाटकोंको वायाङ् कहा जाता है। हनुमानजीकी वायाङ् छाया-पुत्तलिका ही प्रचलित है। यह छाया-पुत्तलिकाका अभिनय कलिंगके तटोंसे इंडोनीसिया पहुँचा था, जो आज उड़ीसामें लुप्तप्राय और इंडोनीसियामें सर्वव्याप्त है।

इंडोनीसियाके काष्ठशिल्पोंमें भी हनुमानजी वज्राङ्गबलीके रूपमें विख्यात हैं। चित्रमें हनुमानजी नागका दमन करते हुए प्रदर्शित हैं। यह काष्ठाकृति आधुनिक है। इसकी परिचायिका यह है कि आज भी बजरंगबली बालिद्वीपवासी हिंदुओंको शौर्यकी प्रेरणा देते हैं।

कम्बोडिया (संस्कृतमें—कम्बुज)-में भी रामायणका व्यापक प्रसार है। यहाँ 'रामकीर्ति' के नामसे श्रीराम-कथा सौ खण्डोंमें प्रकाशित हुई है। जहाँ भगवान् श्रीराम हैं, वहाँ हनुमानजी भी रहेंगे। तदनुरूप ही कम्बुजदेशमें हनुमानजी घरोंको सुशोभित करते हैं।

थाईलैंडमें १३वीं शतीमें तत्कालीन महाराजाने थाई-भाषामें काव्य लिखकर रामायणको थाई-साहित्यका अभिन्न अङ्ग बना दिया। अनेक थाई-नरेशोंने श्रीराम-कथाके थाई-रूपान्तर लिखे हैं। आज भी हनुमानजीसे सम्बन्धित प्रसङ्गोंका थाईदेशमें सामान्यत: प्रतिदिन अभिनय होता है।

जय महावीर हनुमान

जब कलियुगकी ये घोर निशा, दिग्भ्रांत करेगी मानवता।
यम नियम मिटाये जायेंगे, सब ओर बढ़ेगी दानवता॥
महलोंका राम न ढूँढ़ेगा, जबतक किष्किन्धाकी घाटी।
हा ! पवनपुत्रके सम्बल बिन, ना निखर सकेगी यह माटी॥
वीरत्व देशका गर ना जगा, अहिरावणकी बन आयेगी।
रख पायें गौरव हम कैसे? हनुमत गाथा सिखलायेगी॥
हम शान्ति चाहते हैं लेकिन, वह रावणके घर बंद आज।
नुक्ता चीनीका गया समय हनुमान बने तब बचे लाज॥
मानवता मुखरित हो कैसे, हम सबके कैसे काज सरे।
नत मस्तक होकर सभी अगर उस महावीरका ध्यान धरे॥

—स्वामी श्रीओंकारानन्दजी

दक्षिण-पूर्वी एशियामें श्रीहनुमान

(लेखक—आयुर्वेद-चक्रवर्ती, प्राणाचार्य पं० श्रीदुर्गाप्रसादजी शर्मा, आयुर्वेदाचार्य)

मुझे लंका, बर्मा, मलेशिया, हिंदेशिया, बाली द्वीप, थाईलैंड, कम्बोडिया, लाओस आदि देशोंकी यात्रा करनेका अवसर मिला है, परंतु इनमेंसे प्रत्येक देशसे मैं श्रीहनुमानजीकी मान्यताके स्वरूपका यथेष्ट संग्रह न कर सका। निकटसे देखनेपर यह तो पता चल ही जाता है कि इन सभी देशोंमें श्रीरामलीला तथा श्रीराम-कथाका प्रचलन है। अत: इसीके साथ श्रीहनुमानजीका प्रचार भी स्वाभाविक है, किंतु देश-भेदके अनुसार तत्तत्स्थानीय प्रभावके कारण देश-देशमें श्रीहनुमानजीके स्वरूपमें किंचित् परिवर्तन पाया जाता है।

जिस प्रकार देश-देशकी श्रीराम-कथामें कुछ-न-कुछ परिवर्तन मिलता ही है, उसी प्रकार श्रीहनुमान-कथामें भी यत्र-तत्र परिवर्तनका प्राप्त होना अस्वाभाविक नहीं है। उदाहरणार्थ, लाओसकी 'फलकफालाभ' नामक रामायणमें श्रीहनुमानजीको श्रीरामका पुत्र बताया गया है।

भारतसे उत्तर न केवल नेपालमें, अपितु चीनमें भी रामायण और श्रीहनुमानजीका प्रचार है। नेपाल तथा भारतमें तो श्रीहनुमानजीके स्वरूपोंमें भेद होनेका कोई प्रश्न नहीं है, परंतु चीनमें कुछ भेद होनेका अनुमान लगाया जा सकता है, इसलिये कि वहाँ रामायण भी 'दशरथजातक' के नामसे ही प्रचलित है। नेपालके सदृश ही लंकामें भी मुझे श्रीहनुमानजीके स्वरूपमें कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं प्रतीत हुआ। मॉरीशसमें श्रीहनुमानजीका स्वरूप भारत-जैसा ही पाया जाता है और उनकी आकृतिसे अङ्कित झंडे तो प्राय: प्रत्येक हिंदूके घरमें देखनेको मिलते हैं।

श्रीहनुमानजीकी सेवा-परायणता एवं समर्पण-भावनाके प्रति सभी नत-मस्तक हैं। सर्वत्र वे सेवाके आदर्श रूपमें माने जाते हैं और लोग उनसे सेवा तथा समर्पणकी प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

भारतसे बाहर प्राय: उन्हें पौराणिक एवं ऐतिहासिक व्यक्तिके रूपमें स्वीकार किया गया है। श्रीरामलीलाके क्रममें भी सर्वत्र भगवान् श्रीरामकी लीलाके साथ-साथ श्रीहनुमानलीला भी होती ही है। उनकी लीलाओंमें लंका-दहन-लीलाको अत्यन्त रोमाञ्चकारी माना जाता है। उनके अद्भुत सीतान्वेषण-कार्यको सभी परम पावन दृष्टिसे देखते हैं। हम भारतीयोंके लिये तो उनकी प्रत्येक लीला अत्यन्त प्राणदायिनी एवं प्रेरणाप्रसविनी है, यही बात विदेशी श्रीहनुमान-भक्तोंके लिये भी कही जा सकती है।

~~ o ~~

विदेशोंमें श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास)

श्रीराम-कथाके साथ-साथ श्रीराम-भक्त श्रीहनुमानकी कथा भी भारतकी सीमाओंको लाँघकर महासागरोंके उस पार सुदूर देशोंमें व्याप्त हो गयी है, जो आज भी किसी-न-किसी रूपमें विद्यमान है। भारतके बाहर श्रीराम-कथाकी दो धाराएँ प्रवाहित हुईं—एक तो वह, जिसमें श्रीरामका रूप भगवान्‌का है और दूसरी वह, जिसमें वे एक अद्वितीय महापुरुष हैं। भगवद्रूप धारा वस्तुत: भारतकी है, जो भारतीयोंके माध्यमसे ही वहाँ गयी है और आज भी उसका रूप वैसा ही बना हुआ है। दूसरी धारा श्रीराम-कथाकी अद्वितीय सशक्तता और मानव-जीवनकी सर्वोच्च प्रभावोत्पादकतासे प्रभावित हुई।

प्रथम धारा अपेक्षाकृत नवीन है, जिसकी अवधि डेढ़-दो सौ वर्षोंसे अधिक नहीं। यह धारा भारतके परतन्त्रताकालके उस दुर्भाग्यकी द्योतक है, जब मॉरीशस, फिजी, गायना, ट्रिनिडाड, सूरीनाम आदि सुदूर द्वीपोंके गोरे उद्योगपति बिहार, उत्तर प्रदेश आदि प्रदेशोंके भोले-भाले और निर्धन निवासियोंको रोजी-रोटी देनेकी लालच दिलाकर यहाँसे ले जाते थे और वहाँ उनसे पशुओंकी तरह काम लेते थे तथा उनके साथ अत्यन्त निर्दयतापूर्ण व्यवहार करते थे। इन अनपढ़ और निर्धन भारतीयोंको गोरेलोग अपने एजेंटोंके माध्यमसे सुदूर द्वीपोंको ले जाते थे। उस समय उनके पास और कुछ नहीं, एकमात्र तुलसी-कृत रामायण३ण और श्रीहनुमानचालीसाकी एक-एक प्रति रहती थी। इसीके पठन-पाठनसे निजीरूपमें इनकी भक्ति और सामूहिकरूपमें इनका मनोरञ्जन होता था। हजारों मीलकी समुद्र-यात्राके दौरान आँधी-तूफानोंकी

भयानकताका सामना ये भारतीय रामायण और हनुमानचालीसासे प्राप्त शक्तिके द्वारा ही करते थे।

इसके बाद ये ही भारतीय जब कुली और मजदूर बनकर सुदूर द्वीपोंकी विदेशी भूमिपर गुलामके रूपमें समस्त अन्याय और अत्याचारोंका सामना करते, तब वहाँ भी भगवान् श्रीराम और श्रीहनुमानजी ही उनके एकमात्र सहायक बनते। उस समय उनके स्मरण और सामूहिक कीर्तन-भजनसे वे अपने मनकी व्यथा और शरीरकी वेदना भूल जाते। इन दीन-हीन एवं निरीह भारतीयोंने इसी प्रकार शताब्दी-दो-शताब्दी बिता दी, जिनमें तीन-चार पीढ़ियाँ व्यतीत हो गयीं। किंतु फिर भी इस सम्पूर्ण व्यथा और वेदनाके बीच ये जीवित रहे और इनकी भारतीयता सजीव बनी रही, जिसका सम्पूर्ण श्रेय रामायण और हनुमानचालीसाको है।

अब तो ये द्वीप स्वतन्त्र देश हैं और उनके साथ हमारे ये भारतीय बन्धु भी स्वतन्त्र हैं। कुछ देशोंमें तो इन भारतीय कुलियोंकी संतानें प्रधानमन्त्री, मन्त्री और बड़े-बड़े अधिकारी भी हैं, किंतु वे रामायण और हनुमानचालीसाको भूले नहीं हैं। आज भी मॉरीशसके गाँव-गाँवमें और शहरोंके मकानोंपर लाल रंगकी झंडियाँ फहराती हुई दिखायी पड़ती हैं, जो श्रीहनुमानजीकी पताका ही हैं। अनेक स्थानोंपर मन्दिरोंमें हनुमानजीकी विशालकाय मूर्तियोंके दर्शन किये जा सकते हैं।

दूसरी धारा है दक्षिण-पूर्व एशियाके देशोंकी, जिन्होंने सैकड़ों नहीं, सहस्रों वर्ष पूर्व श्रीराम-कथाकी श्रेष्ठतासे प्रभावित होकर उसे अपने साहित्यमें स्वीकार किया, जो स्थानीय संस्कृतिके रंगमें रँगकर उनके सामाजिक जीवनमें प्रविष्ट हो गयी। अतएव विभिन्न देशोंकी श्रीराम-कथापर अपने-अपने देशके स्थानीय रंग चढ़ गये। थाईलैंड, बर्मा, कम्बोडिया, लाओस, मलेशिया और इंडोनीसियाकी अपनी-अपनी श्रीराम-कथाएँ पर्याप्त भिन्नता लिये हुए हैं।

श्रीराम-कथाकी इस भिन्नताके कारण श्रीहनुमान-कथामें भी भिन्नता आ गयी है। इन देशोंमें श्रीहनुमानके जन्म और जीवन-कार्योंमें पर्याप्त अन्तर मिलता है। अनेक देशोंमें हनुमान-चरित उत्कृष्टता और श्रेष्ठताके उस बिन्दुको स्पर्श नहीं करता, जहाँ भक्त भगवान्‌का ही रूप बन जाता है, जैसा रामचरितमानसमें दिग्दर्शित होता है। परंतु वे प्राय: सभी देशोंमें श्रीरामके संदेशवाहक और दूत अवश्य हैं, पर श्रीराम-कार्यमें साधन और साध्यकी पवित्रताका आग्रह नहीं दिखाया गया है। किंतु यह अन्तर भारत और इन देशोंके बीचके जीवन-दर्शनका अन्तर है। श्रीराम और उनके भक्तका मर्यादा-पुरुषोत्तमरूप भारतकी परम पावन धरतीकी अपनी विशेषता है। हम दूसरे देशोंसे यही अपेक्षा नहीं कर सकते। उन्होंने श्रीराम-कथा अपनायी और उसे अपने साहित्य तथा संस्कृतिका अभिन्न अङ्ग बनाया, इतना ही हमारे लिये प्रशंसनीय है।

थाईलैंड, कम्बोडिया, लाओस और इंडोनीसियामें श्रीराम-लीला नृत्य-नाटकोंके माध्यमसे प्रदर्शित होती है, जिसमें श्रीहनुमानजीका वही वानररूप है और श्रीरामके सैनिकके रूपमें वही ओजस्वी और तेजस्वी स्वरूप है। कम्बोडियाके अंगकोर, इंडोनीसियाके प्राम्बानन् और थाईलैंडके शाही बौद्ध मन्दिरकी दीवारोंपर श्रीहनुमानजीका यह स्वरूप देखा जा सकता है। प्रवासी भारतीयोंने भी अपने मन्दिरोंमें श्रीहनुमानजीकी प्रतिष्ठा की है। इस प्रकार भगवान् श्रीराम जहाँ भी हैं, उनके भक्तश्रेष्ठ श्रीहनुमानजी भी वहाँ अवश्य हैं।

'बंदौं नाम हनुमान को'

ऐसो ओज सुजस बिराजै महि-मंडल में
परम प्रचंड तनु तेज भूरि भान को।
जाकी कल कीरति बखानैं राम आप मुख
सेष हू न गाय सकैं जाके गुन-गान को॥
'रसिकबिहारी' सुखदायक सदा ही बीर
दूजो जनपाल दानी करुनानिधान को।
दीनन को त्राता, मोद-मंगल-बिधाता
बहु रिधि-सिधि दाता, बंदौ नाम हनुमान को॥

—कविवर श्रीरसिकबिहारीजी

श्रीहनुमान-सम्बन्धी प्रमुख तीर्थस्थलों एवं मन्दिरोंके विषयमें निवेदन

भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण विश्वके एक महान् आदर्श हैं और हिंदुओंके तो वे सर्वस्व ही हैं। श्रीराम हिंदू-जातिके तन, मन, प्राण ही नहीं—रोम-रोममें व्याप्त हैं और उन मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके अत्यन्त प्रीति-भाजन हैं—पवनपुत्र श्रीहनुमानजी। ये अञ्जनानन्दन अपने प्राणाराध्य श्रीरामके बिना एक क्षण भी नहीं रह पाते; इसी कारण जहाँ-जहाँ श्रीसीतारामका मन्दिर है, वहाँ श्रीहनुमानजी उनके रक्षक और सेवकके रूपमें अवश्य उपस्थित मिलेंगे। यही हेतु है कि पवनकुमारसे रहित श्रीसीतारामका प्राय: कोई भी मन्दिर नहीं है और विद्या, बुद्धि, सत्य, तेज, वीरता, पराक्रम आदिके मूर्तस्वरूप, आदर्श-सेवक, आजन्म ब्रह्मचारी श्रीहनुमानजीके प्रति हिंदुओंमें इतना आकर्षण, इतनी निष्ठा, इतनी श्रद्धा और इतनी भक्ति है कि सर्वथा स्वतन्त्ररीतिसे भी वे श्रीहनुमानजीकी पूजा-अर्चा करते हैं। वहाँ भक्त श्रीसीतारामको श्रीहनुमानके हृदयमें अनुभव करते हैं। करुणावतार श्रीहनुमानजीके मन्दिर उत्तरभारतमें तो सर्वत्र हैं ही, दक्षिणभारतमें भी गाँव-गाँवमें इनके मन्दिर हैं। श्रीहनुमानजीके बिना दक्षिणभारतके गाँवकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इन संकटमोचनके मन्दिर इस आर्यधरापर ही नहीं—जावा, सुमात्रा, इंडोनीसिया, थाईलैंड आदि देशोंमें भी पाये जाते हैं। भक्तप्राण-धन श्रीहनुमानजीके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पावन स्थलों एवं मन्दिरोंका विवरण संक्षेपमें यहाँ दिया जा रहा है।

कुछ प्रदेशोंका विवरण किंचित् विस्तारसे, कुछका संक्षिप्तरूपमें प्राप्त हुआ है और किसी-किसी प्रदेशका विवरण तो प्रयास करनेपर भी प्राप्त नहीं हो पाया है। इस विवशताके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं। जिन प्रदेशोंका विवरण प्राप्त हुआ है, वहाँके भी अनेक महत्त्वपूर्ण स्थलोंका विवरण संतोषजनकरूपमें प्राप्त नहीं हो सका और कुछ स्थलोंका विवरण विस्तृतरूपमें प्राप्त हुआ है, जो स्थानाभावके कारण संक्षिप्त किया गया है। ये विवरण 'कल्याण'-प्रेमी अनेक महानुभावोंद्वारा प्राप्त हुए हैं, अतएव सम्भव है, उनमें कहीं त्रुटि रह गयी हो; पर यह निश्चय है कि इससे पाठकोंको श्रीहनुमदुपासनाकी व्यापकताकी एक झाँकी अवश्य प्राप्त हो जायगी।

विवरण भेजकर इस कार्यमें सहयोग प्रदान करनेवाले महानुभावोंके हम हृदयसे आभारी हैं। इस विवरणको तैयार करनेमें विभिन्न भाषाओंकी अनेक पुस्तकों एवं पत्रिकाओंसे भी पर्याप्त सहायता ली गयी है। हम उन पुस्तकों एवं पत्रिकाओंके लेखक एवं सम्पादक महानुभावोंके भी कृतज्ञ हैं। —सम्पादक

उत्तरप्रदेशके प्रमुख श्रीहनुमान-मन्दिर

अयोध्या—(क) हनुमानगढ़ी— भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी यह नगरी सरयू नदीके दाहिने किनारेपर बसी है। यहाँका सबसे प्रमुख श्रीहनुमान-मन्दिर 'हनुमानगढ़ी'-के नामसे विख्यात है। वह राजद्वारके सामने ऊँचे टीलेपर चतुर्दिक् प्राचीरके भीतर है। उसमें साठ सीढ़ी चढ़नेपर श्रीहनुमानजीका मन्दिर आता है। मन्दिर बड़ा है और उसमें श्रीहनुमानजीकी स्थानक मूर्ति है। श्रीमारुतिकी एक और मूर्ति यहाँ है, वह केवल छ: इंच ऊँची है और सदा पुष्पाच्छादित रहती है। श्रीहनुमानजीके भक्तोंके लिये यह स्थान विशेष श्रद्धास्पद है। मन्दिरके चारों ओर निवासयोग्य स्थान बने हैं, उनमें साधु-संत रहते हैं। हनुमानगढ़ीके दक्षिण सुग्रीव-टीला और अङ्गद-टीला नामक स्थान हैं।

हनुमानगढ़ीकी स्थापना लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व स्वामी श्रीअभयारामदासजीने की थी। आपने समाजकी श्रद्धा-भावनाके संरक्षणार्थ पहले यहाँ श्रीनिर्वाणी अखाड़ाकी स्थापना की और फिर यहीं श्रीहनुमानजीकी विधिवत् पूजा-आराधना एवं भोग-रागकी व्यवस्था मर्यादित रूपसे की।

एक बार लखनऊ तथा फैजाबादके प्रशासक नवाब श्रीमंसूरअलीका पुत्र किसी भयंकर रोगसे अत्यन्त पीड़ित हो गया। सुयोग्य वैद्यों और हकीमोंके उपचारोंसे भी जब उनकी व्याधि नहीं मिटी, तब वे हनुमानगढ़ीके श्रीहनुमानजीकी शरणमें आये और अविलम्ब उन्हें उस भीषण रोगसे मुक्ति मिल गयी। इसके प्रतिफलस्वरूप नवाबके मनमें हनुमानजीके प्रति श्रद्धा अङ्कुरित हो गयी। श्रद्धावनत नवाबने हनुमानजीके निकटतम स्थानकी ५२ बीघा भूमि मन्दिरको दान कर दी तथा साधुओंकी

सुविधाके लिये विशाल इमलीका बाग लगवा दिया और उसी समय श्रीअभयारामदासजीसे प्रार्थना करके हनुमानजीका एक विशाल, भव्य एवं सुदृढ़ मन्दिर बनवा दिया, जो आज भी हनुमानगढ़ीके नामसे विख्यात है। नवाबकी श्रद्धासे प्रभावित हो आज भी मुसलमान बन्धु यहाँ आकर श्रद्धापूर्वक पूजा-भेंट अर्पित करते हैं। अनेक मुसलिम संत श्रीहनुमानजीकी कृपा प्राप्तकर कृतकृत्य हुए और अवधवासी बन गये। प्रतीकरूपमें स्थित उनके मजार आज भी श्रद्धालु भक्तोंद्वारा पूजे जाते हैं।

हिंदू भक्तों एवं दर्शनार्थियोंके कारण यहाँ नित्य ही मेला-सा लगा रहता है। मंगलवार तथा शनिवारको तो अपार भीड़ होती है। यह कहनेमें अत्युक्ति न होगी कि अयोध्यामें हनुमानगढ़ीके हनुमानजीकी जितनी पूजा होती है, उतनी युगल-सरकारकी भी नहीं होती।

(ख) हनुमन्निवास—यहाँ अयोध्याके प्रसिद्ध संत बाबा श्रीगोमतीदासजी निवास करते थे। वे प्राचीन ऋषियोंकी भाँति यज्ञानुष्ठानमें तत्पर रहते, साधु-सेवा करते और उत्सव-समैया बड़े समारोहके साथ करते थे। वे सिद्धान्त और मन्त्रके आचार्य थे। आर्तजन अपना दुखड़ा विनयपत्रद्वारा उनके समक्ष उपस्थित करते और बाबाजी रात्रिमें अनुष्ठानसे निवृत्त होकर उसपर आज्ञा देते थे। उसके अनुसार जप आदि करनेसे कार्यकी सिद्धि होती थी। प्रख्यात महात्मा श्रीरूपकलाजी इसी हनुमन्निवासके उत्तरी कोठेपर निवास करते थे।

(ग) पहाड़पुर—एक दूसरी हनुमानगढ़ी फैजाबादमें मुजफरा नाकापर स्थित है, जो पहाड़पुर नामक ग्राममें है। श्रीराम-रावण-युद्धके अवसरपर संजीवनी लाते समय श्रीहनुमानजीके पहाड़सहित श्रीभरतके समक्ष यहाँ गिरनेसे इस स्मरणीय स्थानका नाम लोकमें पहाड़पुर हुआ। यह अयोध्यासे पाँच मील दूर इलाहाबाद-रोडपर अवस्थित है। —श्रीभगीरथरामजी मिश्र, 'ब्रह्मचारी'

(घ) ज्ञानमुद्रामें श्रीहनुमानजी—पवनपुत्रका यह सुन्दरतम विग्रह अवधके हनुमान-बागमें प्रतिष्ठित है। यह मूर्ति इतनी चित्ताकर्षक है कि इसके सम्मुख जानेपर फिर वहाँसे हटनेका मन नहीं करता। करुणामय अञ्जनानन्दनका यह विग्रह बरबस हृदयमें स्थान बना लेता है। यही कारण है कि अयोध्यामें निवास करनेवाले संत-महात्मा प्रायः हनुमान-बाग जाया करते हैं। इस सिद्ध विग्रहकी यह विशेषता तो प्रत्यक्ष ही है कि यहाँ आयका कोई निश्चित स्रोत या साधन न होनेपर भी श्रीहनुमानजीकी पूजा-अर्चा तो विधिपूर्वक सुचारुरूपसे होती ही है, शताधिक महात्मा प्रतिदिन प्रसाद भी पाते हैं।

(ङ) दास-भावमें हनुमानजी—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

'जहाँ-जहाँ श्रीरघुनाथजीका कीर्तन होता है, वहाँ-वहाँ मस्तकपर अञ्जलि बाँधे और नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भरे राक्षसोंको मारनेवाले हनुमानजी विराजमान रहते हैं, ऐसे मारुतिको हम नमन करते हैं।'

श्रीराम-भक्त हनुमानजीके इस भावका यह श्रीविग्रह अत्यन्त रमणीय है। इसका दर्शन करके मन मुग्ध हो जाता है। अयोध्याके विद्वान्, संत एवं श्रीहनुमानजीके प्रेमी भक्त इसके दर्शनार्थ प्रायः जाया करते हैं। यह अद्भुत मूर्ति श्री श्री १०८ स्वामी श्रीसार्वभौम स्वामी वासुदेवाचार्यजी महाराजके द्वारा स्थापित की गयी थी। यह स्थान जानकीघाटपर श्रीवेदान्तीजीके मन्दिरके अत्यन्त समीप ठीक सामने ही है।

कुछ महात्माओंका कहना है कि श्रीहनुमानजीका यह विग्रह भगवान् भुवनभास्करसे उनके विद्या प्राप्त करनेकी श्रद्धा-भक्तिमयी विनीत मुद्रामें प्रतिष्ठित है। जो हो, इस विग्रहकी आराधनासे यथाशीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

एक ऐसा प्रसङ्ग भी सुननेमें आता है कि एक महंतजी कुष्ठरोगसे ग्रस्त हो गये थे। उनका यह असाध्य रोग जब किसी प्रकार दूर न हो सका, तब उन्होंने इन दासभावके श्रीहनुमानजीकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक आराधना प्रारम्भ की। कुछ ही समयमें श्रीहनुमानजी प्रसन्न हो गये और महंतजी महाराज इस व्याधिसे सर्वथा मुक्त हो गये।

(च) व्यास हनुमान—

भरत सत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपबन जाईं॥
बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा॥

(मानस ७। २५। २-३)

चतुर्दश वर्षके बाद अरण्यसे लौटनेपर भगवान् श्रीराम राज्यसिंहासनपर आसीन हुए। राज्य-कार्य अत्यन्त सुखपूर्वक निर्विघ्न चल रहा था। उस समय श्रीभरतजी और श्रीशत्रुघ्नजी प्रायः एकान्त उपवनमें पवनकुमारके साथ बैठकर भगवान् श्रीरामका लीला-गुण-गान श्रवण किया करते थे। वक्ता थे सकलगुणनिधान ज्ञानिनामग्रगण्य भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त वायुपुत्र श्रीहनुमानजी। ये दोनों भाई अतिशय भक्तिपूर्वक पवनकुमारसे भगवान्

श्रीसीतारामकी मधुर एवं मनोहर लीलाओंका रहस्य आदि पूछते और श्रीहनुमानजी गद्गद कण्ठसे उन्हें प्रभुका नाम, गुण और यश सुनाया करते थे। इसी भावमें मारुतिकी यह मूर्ति प्रतिष्ठित है। यह प्रतिमा अत्यन्त मनोहर एवं विलक्षण शक्ति-सम्पन्न है। इस विग्रहके आराधनसे कुछ महानुभावोंने अपनी दुर्लभ कामनाओंकी पूर्ति की है और कुछके जीवनमें तो अद्भुत चमत्कार देखनेमें आये हैं। इस विषयका विस्तृत विवरण वहाँके विद्वान् पुजारी महोदय गद्गद कण्ठसे सुनाया करते हैं।

व्यास-वेषमें मारुतिका यह श्रीविग्रह अयोध्याके रघुवीरनगर (रायगंज) मुहल्लेमें प्रतिष्ठित है। यह मुहल्ला मणिपर्वतके निकट पड़ता है। कहते हैं कि यह स्थान वही है, जहाँ पवनपुत्र भरतादि बन्धुओंके सम्मुख भगवान् श्रीरामकी कथा सुनाया करते थे। श्रीहनुमानजीके प्रेमी भक्त अयोध्या जानेपर इनका दर्शन करना आवश्यक समझते हैं। —श्रीश्रीराम दुबे, बी०एस्-सी०

वाराणसी—(क) श्रीसंकटमोचन-मन्दिर—श्रीसंकटमोचन हनुमानजीका मन्दिर शहरके दक्षिण हिंदू-विश्वविद्यालयके समीप लंकामें स्थित है। मन्दिरके चारों ओर एक छोटा-सा वन है। यहाँका वातावरण एकान्त, शान्त एवं उपासकोंके लिये दिव्य साधना-स्थलीके योग्य है। मन्दिरके प्राङ्गणमें श्रीहनुमानजी दिव्य विग्रहके सम्मुख श्रीराघवेन्द्र सरकार श्रीकिशोरीजी एवं श्रीलखनलालजीके साथ विराजमान हैं। श्रीहनुमानजीके मन्दिरमें अलग एक ओर भगवान् विश्वनाथजीकी लिङ्गमयी एक मूर्ति भी विराजमान है। श्रीसंकटमोचन हनुमानजीके समीप ही श्रीठाकुरजी भगवान् श्रीनृसिंहके रूपमें विराजमान हैं।

भगवान्के परम कृपापात्र श्रीतुलसीदासजीको कर्ण-घण्टास्थलपर कथाके समय जब श्रीहनुमानजीका दर्शन कोढ़ी-वेषमें हुआ, तब गोस्वामीजी उनके पीछे-पीछे चलने लगे। असी मुहल्लेसे दक्षिण घोर जंगल (वर्तमान लंका)-में पहुँचकर तुलसीदासजी उनके चरणोंपर गिर पड़े। अत्यन्त विनम्र प्रार्थना करनेपर श्रीहनुमानजी प्रकट हो गये और बोले—'तुम क्या चाहते हो?' गोस्वामीजीने कहा—'मैं श्रीराम-दर्शन चाहता हूँ।' श्रीहनुमानजीने अपना दक्षिण बाहु उठाकर कहा—'जाओ, चित्रकूटमें प्रभु-दर्शन होगा।' पुनः वाम बाहुको अपने हृदयपर रखकर बोले—'हम दर्शन करा देंगे।' गोस्वामीजीने कहा—'प्रभो! आप इसी रूपसे भक्तोंके लिये यहींपर निवास करें।' श्रीहनुमानजीने 'तथास्तु' कहा और वे वहीं विराजमान हो गये। यह मूर्ति गोस्वामी तुलसीदासजीके तप एवं पुण्यसे प्रकट हुई स्वयम्भू मूर्ति है। इस मूर्तिमें श्रीहनुमानजी दक्षिण भुजासे भक्तोंको अभयदान कर रहे हैं एवं वाम भुजा उनके हृदयपर स्थित है, जिसका दर्शन केवल पुजारीजीको सर्वाङ्ग-स्नानके अवसरपर होता है। श्रीविग्रहके नेत्रोंसे भक्तोंपर अनवरत कृपाकी वर्षा-सी होती रहती है।

श्रीसंकटमोचन हनुमानजीके स्थानका निर्माण समय-समयपर वहाँके योग्य महंतोंने करवाया है। बहुत पहले यह स्थान एक मढ़ीके रूपमें था, किंतु अब धीरे-धीरे मन्दिरका विस्तार होता जा रहा है। आजकल मन्दिरके समीप भक्तोंके रहनेके लिये स्नानादि साधनोंसे युक्त कुछ कमरे और कीर्तन एवं अन्य अनुष्ठान करनेवालोंके लिये ठहरनेके साधन भी उपलब्ध हैं। मन्दिर-क्षेत्रमें जल, प्रकाश आदिकी भी अच्छी व्यवस्था हो रही है।

मन्दिरका पट प्रतिदिन प्रातः पाँच बजे खुलता है और प्रातःकालीन आरती प्रारम्भ होती है। बहुत-से भक्तजनोंका प्रतिदिन प्रातःकालीन आरतीमें सम्मिलित होनेका नियम है। प्रतिदिन रात्रिमें लगभग साढ़े आठ बजे भगवान्की जो आरती होती है, उसमें भी प्रातःकालीन आरती-जैसे ही दिव्य अनुभव भक्तोंको होते हैं। रात्रिमें दस बजे प्रतिदिन शयन-आरती होती है। (मंगलवार और शनिवारको यह समय साढ़े ग्यारह बजे हो जाता है।) शयन-आरतीके उपरान्त मन्दिरका पट बंद होते समय अखण्ड दीपके क्षीण प्रकाशमें भगवान्का मनोहारी दर्शन अपनेमें एक दिव्य अनुभव है। प्रतिदिन दिनमें बारहसे तीन बजेतक मन्दिरके पट भोग लगनेके बाद बंद रहते हैं। प्रतिदिन सायंकाल पाँच बजेसे मानसकी कथा होती है।

प्रत्येक मंगलवार एवं शनिवारको भक्तवृन्द अनेक प्रकारसे पूजा कराते हैं। समय-समयसे अखण्ड नाम-संकीर्तन, रामचरितमानस-पाठ, किष्किन्धा और सुन्दर-काण्डके पाठ एवं अन्य अनुष्ठान चलते रहते हैं। प्रत्येक कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीको श्रीहनुमानजीकी सूर्योदयके समय विशेष आरती एवं पूजन-समारोह होता है। प्रत्येक चैत्र शुक्ल पूर्णिमाको श्रीहनुमज्जयन्ती-महोत्सव होता है। इस अवसरपर श्रीहनुमानजीके बैठककी झाँकी होती है और चार दिनतक सार्वभौम रामायण-सम्मेलन-महोत्सव एवं विराट् संगीत-सम्मेलन होता है।

श्रीसंकटमोचन हनुमानजी सदा ही अपने भक्तोंपर कृपा करते रहते हैं। एक बार काशीनिवासी एक गरीब ब्राह्मणको, जो नित्य श्रीसंकटमोचनजीका दर्शन करते

थे, परिवार-पोषणकी समुचित व्यवस्था न होनेसे उनकी धर्मपत्नीने ताना मारा (व्यंग्य किया) कि 'केवल हनुमान-दर्शन ही करते रहोगे तो ऐसे ही भूखों मरोगे।' उस ब्राह्मणने कहा—'सावधान! हमें जो कुछ कहो, पर हमारे इष्टदेवके विरुद्ध एक शब्द भी मुखसे मत निकालना।' उस ब्राह्मणकी दीन दशा देखकर करुणानिधान हनुमानजी द्रवीभूत हो गये। जिसके फलस्वरूप ब्राह्मणको एक स्थलपर गड़े हुए कई बर्तनोंमें द्रव्यराशि मिल गयी, जिससे उन्होंने अपने स्थानपर काशीमें ही श्रीमारुतिकी एक मूर्ति पधराकर पूजन-भजन प्रारम्भ कर दिया। घर-परिवारमें सर्वत्र आनन्द-मङ्गल छा गया। गोस्वामी तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है—

'को नहिं जानत है जग में कपि संकटमोचन नाम तिहारो।'

(ख) तुलसी-मन्दिर—श्रीसंकटमोचन हनुमानजीसे सम्बद्ध यह स्थान गङ्गा-किनारे तुलसीघाटपर स्थित है। यह गोस्वामी तुलसीदासजीकी साधना-स्थली है। तुलसीघाटका तुलसी-मन्दिर गोस्वामीजीद्वारा अनुप्राणित है। गोस्वामीजीकी चरणपादुका, उनकी नौकाका एक खण्ड और उनकी साधना-स्थली यहाँ आज भी सुरक्षित है। गोस्वामीजीके इस स्थानका भवन चार सौ वर्षोंसे भी अधिक प्राचीन है।

संवत सोलह सौ असी असी गंगके तीर।
श्रावण श्यामा तीज शनि तुलसी तज्यौ शरीर॥

—यह घटना इसी स्थानकी है।

तुलसीघाटके इस पवित्र स्थानपर एक बालरूप श्रीहनुमानजी हैं, जो 'गुफाके हनुमानजी'—नामसे प्रसिद्ध हैं। ये गोस्वामीजीको जैसे दर्शन दिये थे, उसी रूपमें विराजमान हैं। दक्षिणाभिमुख होनेसे ये अधिक प्रतापी माने जाते हैं। इन्हीं हनुमानजीके समक्ष एक बीसा यन्त्र है, जिसका चरणामृत लगातार चालीस दिनोंतक पान करनेसे बहुत लाभ होता है। मन्दिरके ऊपरी भागमें भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकार श्रीकिशोरीजी एवं लखन-लालजीके साथ विराजमान हैं। मन्दिरके क्षेत्रमें हनुमानजीकी तीन और मूर्तियाँ हैं, जो क्रमशः पूर्वाभिमुख, पश्चिमाभिमुख एवं उत्तराभिमुख हैं। इस स्थानपर नित्य कथा होती है। अन्य उत्सवोंके अतिरिक्त श्रीतुलसीदासजीकी जयन्ती एवं निधन-तिथि-महोत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया जाता है।

'गुफाके हनुमानजी' श्रीराम-नाम एवं श्रीरामका मङ्गल-चरित सुननेसे अतीव प्रसन्न होते हैं। अनेक लोगोंने यहाँ रामचरितमानसके किष्किन्धाकाण्डके पाठका अनुष्ठान कर आशातीत लाभ प्राप्त किया है।

(ग) हनुमानघाट—हनुमानघाट यहाँका एक प्रसिद्ध घाट है। यहाँ श्रीहनुमानजीका मन्दिर है। मन्दिरके श्रीविग्रहकी स्थापना समर्थ स्वामी श्रीरामदासजी महाराजद्वारा हुई थी। तीर्थाटन करते हुए जब श्रीसमर्थ यहाँ पधारे, तब उन्होंने इस मूर्तिको स्थापित किया था।—श्रीवीरभद्रजी

(घ) बालरूप श्रीहनुमान-मन्दिर—भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त अञ्जनानन्दनका बाल-विग्रह कहीं देखनेमें नहीं आता; किंतु वाराणसीके उत्तराञ्चल मुहल्ला हनुमानफाटकमें बालरूप श्रीहनुमानजीका अत्यन्त मनोरम विग्रह है। ऐसा तपाकसे उछलकर भागनेकी मुद्राका बाल-विग्रह अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। इस मनोहर विग्रहकी विशेषता यह है कि इसकी स्थापना गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने अपने करकमलोंद्वारा की थी। इतना ही नहीं, कुछ वर्षोंतक यहीं रहकर उन्होंने श्रीरामचरितमानसके कुछ काण्डोंकी रचना भी की थी। यहाँ श्रीतुलसीदासजी जिस कमरेमें रहते थे, वह कमरा अभीतक सुरक्षित तो है, किंतु उन महापुरुषकी यह गौरवमयी साधना-स्थली उपेक्षित पड़ी है।*

—श्रीशिवनाथ दुबे

प्रयाग—यहाँका त्रिवेणी-सङ्गम सुप्रसिद्ध है। इसके पास ही एक विशाल किला है। उस किलेके समीप श्रीहनुमानजीका मन्दिर है। मन्दिरमें श्रीहनुमानजीकी विशाल मूर्ति है। मूर्तिकी विशेषता यह है कि वह भू-शायिनी है। जब वर्षाके दिनोंमें बाढ़ आती है और सारा स्थान जलमग्न हो जाता है, तब हनुमानजीकी वह मूर्ति कहीं अन्यत्र ले जायी जाती है।

चित्रकूट—हनुमानधारा—कोटितीर्थसे पहाड़के ऊपर-ही-ऊपर करीब दो मील जानेपर हनुमानधारा मिलती है। कुछ यात्री कोटितीर्थ न जाकर सीतापुरसे सीधे हनुमानधारा आते हैं। सीतापुरसे हनुमानधारा तीन मील है। यह स्थान पर्वतमालाके मध्यभागमें स्थित है। पहाड़के सहारे हनुमानजीकी एक विशाल मूर्तिके ठीक सिरपर दो जलके कुण्ड हैं, जो सदा भरे रहते हैं और उनमेंसे निरन्तर पानी बहता रहता है। इस धाराका जल हनुमानजीको स्पर्श करता हुआ बहता है। इसीलिये इसे

* कहते हैं कि वाराणसीमें बालरूप श्रीहनुमानजीके चार विग्रहोंकी स्थापना श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने की थी, जिनमें दो विग्रहोंका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा सका है। प्रयत्न करनेपर भी शेष दो विग्रहोंका संतोषजनक विवरण हमें नहीं प्राप्त हो सका। —सम्पादक

हनुमानधारा कहते हैं। धाराका जल पहाड़में ही विलीन हो जाता है। उसे लोग प्रभाती नदी या पातालगङ्गा कहते हैं। यह स्थान बड़ा ही रमणीक है। लगभग साढ़े तीन सौ सीढ़ियाँ चढ़नेके बाद हनुमानजीके दर्शन होते हैं। यह स्थान वृक्षोंसे आच्छादित और शीतल है। कुछ धर्मात्मा लोगोंने यात्रियोंके विश्रामार्थ श्रीहनुमानजीके समीप एक चौड़ी दालान बनवा दी है।

इस स्थानके बारेमें एक कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है—श्रीरामके अयोध्यामें राज्याभिषेक होनेके उपरान्त एक दिन हनुमानजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'महाराज! मुझे कोई ऐसा स्थान बतलाइये, जहाँ लंका-दहनसे उत्पन्न मेरे शरीरका ताप मिटे।' तब भगवान्‌ने हनुमानजीको यह स्थान बतलाया। यह स्थान सचमुच बड़ा ही सुन्दर है।

लखनऊ—यहाँ अलीगंजका श्रीहनुमान-मेला विख्यात है। कभी लक्ष्मणपुर कहलानेवाली इस नगरीसे होकर प्रवाहित होती हुई गोमतीके उस पार १९वीं शतीके आरम्भमें नवाब शुजाउद्दौलाकी पत्नी, नवाब वाजिद अली शाहकी दादी तथा दिल्लीके मुगलिया खानदानकी बेटी आलिया बेगमद्वारा बसाये गये अलीगंज मुहल्लेमें एक श्रीहनुमान-मन्दिर है, जिसपर पूरे ज्येष्ठ मासके प्रत्येक मंगलवारको मुख्यत: हिन्दुओं और मुसलमानोंकी ओरसे तथा कुछ ईसाइयोंकी ओरसे भी श्रद्धापूर्वक मनौतियाँ मानी जाती हैं, चढ़ावा चढ़ाया जाता है और उन्हें प्रसाद दिया जाता है। लखनऊमें मुहर्रम और अलीगंजका महावीर-मेला—ये ही दो सबसे बड़े मेले होते हैं। मेलेसे लगभग एक सप्ताह पहलेसे ही शहरके दूर-दूर भागोंसे आकर हजारों लोग केवल एक लाल लंगोटा पहने सड़कोंपर पेटके बल लेट-लेटकर दण्डवती परिक्रमा करते हुए मन्दिर जाते हैं। हनुमानजीके इस मन्दिरका महत्त्व या 'मान्यता' इतनी अधिक है कि लखनऊमें ही नहीं, दूर-दूरतक जहाँ भी हनुमानजीका कोई नया मन्दिर बनता है, वहाँ उसकी मूर्तिके लिये पोशाक, सिंदूर, लंगोटा, घंटा और छत्र आदि यहाँसे बिना मूल्य दिये जाते हैं और तभी वहाँकी मूर्ति-स्थापना प्रामाणिक मानी जाती है।

इस मन्दिरका इतना महत्त्व होनेसे आम तौरपर लोगोंमें आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है। विशेषकर इसलिये कि एक तो यह नया मन्दिर है, दूसरे, इसकी स्थापना, जीर्णोद्धार तथा रख-रखाव एवं देखभालमें अवधके उदार मुसलमानोंका मुख्य हाथ रहा है और तीसरे, इससे थोड़ी ही दूरपर अलीगंजके अन्तिम छोरपर हनुमानजीका ही एक बहुत पुराना मन्दिर है, उसकी इतनी मान्यता नहीं है।

कुछ पौराणिक तथ्योंके अनुसार रामायणकालमें इसका आदिस्रोत महानगर कालोनीमें हीवेट पालिटेक्निकके निकट स्थित इस्लामबाड़ीमें था। कहते हैं, जब अयोध्या लौटनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीको त्यागनेका निश्चय कर लिया और श्रीलक्ष्मणजी श्रीहनुमानजीके साथ श्रीसीताजीको लेकर कानपुर जिलेके बिठूर, जहाँ वाल्मीकि-आश्रम था, के वनमें छोड़ने जा रहे थे, तब वर्तमान अलीगंजके पास आते-आते काफी अँधेरा हो गया और रातभर रास्तेमें ही विश्राम करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। अत: वे तीनों रास्तेमें ही सोच-विचारके लिये रुक गये। जिस स्थानपर वे रुके थे, वहाँ हीवेट पालिटेक्निककी बगलसे पुराने अलीगंज-मन्दिरको जानेवाली सड़कपर एक बड़ा-सा बाग था। यद्यपि लक्ष्मणजी चाहते थे कि कुछ दूर और चलकर गोमतीके उस पार (शहरकी ओर) बनी अयोध्याराज्यकी चौकीमें विश्राम करें, जिसे बादमें लक्ष्मणटीलाकी संज्ञा दी गयी; किंतु सीताजी अब किसी भी राजभवनमें पैर रखनेको तैयार न थीं। फलत: लक्ष्मणजी तो उस चौकी अर्थात् अपने महलको चले गये और सीताजी उसी बागमें रुक गयीं, जहाँ हनुमानजी रातभर उनका पहरा देते रहे। बादमें दूसरे दिन वे लोग वहाँसे बिठूरके लिये चल दिये।

कालान्तरमें उसी बागमें एक मन्दिर बन गया, जिसमें हनुमानजीकी मूर्ति स्थापित थी और उस बागको हनुमानबाड़ी कहा जाने लगा। यह मन्दिर शताब्दियोंतक बना रहा। १४ वीं शतीके आरम्भमें बख्तियार खिलजीने इस बाड़ीका नाम बदलकर इस्लामबाड़ी कर दिया, जो आजतक चला आ रहा है।

इसके बहुत दिन बाद (सन् १७९२ से १८०२ के बीच) अवधके तत्कालीन नवाब मुहम्मद अली शाहकी बेगम रबियाके जब कई वर्षोंतक कोई संतान नहीं हुई और बहुत-से हकीम-वैद्योंकी दवाइयों तथा पीर-फकीरोंकी दुआओंने भी जवाब दे दिया, तब कुछ लोगोंने उन्हें इस्लामबाड़ीके बाबाके पास जाकर दुआ माँगनेकी सलाह दी। कहते हैं, एक दिन उन्हें स्वप्नमें हनुमानजीने दर्शन देकर कहा कि 'यदि वे इस्लामबाड़ी जायँ और संतानकी कामना करें तो उनकी अभिलाषा अवश्य पूरी होगी।' ऐसी किंवदन्ती है कि जब वे गर्भवती थीं, तब उन्हें फिर स्वप्न हुआ, जिसमें उनके (गर्भस्थ) पुत्रने उनसे कहा कि 'इस्लामबाड़ीमें उसी

जगह हनुमानजीकी मूर्ति गड़ी है, उसे निकलवाकर किसी मन्दिरमें प्रतिष्ठित किया जाय।'

फलत: बच्चेके जन्मके बाद रबिया बेगम वहाँ गयीं और नवाबके कारिन्दोंने टीला खोद डाला तथा नीचेसे मूर्ति निकाल ली गयी। बादमें उसे साफ-सुथरा करके, नवाबी आदेशसे सोने-चाँदी तथा हीरे-जवाहरातसे मण्डित एक हौदेपर बैठाकर हाथीपर रखा गया, जिससे आसफुद्दौलाके बड़े इमामबाड़ेके पास ही उसे प्रतिष्ठापित करके मन्दिर बनवाया जाय। इस हाथीको लेकर जब सब लोग वर्तमान अलीगंजकी सड़कसे जा रहे थे (जो उस समय एक गलियारा था),तब सड़कके अन्तिम छोरपर पहुँचकर उस हाथीने आगे बढ़नेसे इनकार कर दिया। महावतने लाख चेष्टाएँ कीं, किंतु हाथी ज्यों-का-त्यों अड़ा रहा। अन्तमें बेगम साहिबाने उसकी पीठसे हौदा उतरवा दिया, तब वह चलने लगा; किंतु बादमें जब वह हौदा फिर उसपर रखा गया तो वह पुन: बैठ गया। अन्तमें जब उस बाड़ीके साधुने कहा कि 'रानी साहिबा! हनुमानजी गोमतीके उस पार नहीं जाना चाहते; क्योंकि वह लक्ष्मणजीका क्षेत्र है।' तब बेगम साहिबाने वहीं सड़कके किनारे, गोमती-तटके निकट (तब गोमती अपनी वर्तमान स्थितिसे हटकर अलीगंजके निकटसे बहती थी) मूर्ति स्थापित करा दी और उसपर एक छोटा-सा मन्दिर भी बनवा दिया। साथ ही उसी साधुको सरकारी खर्चपर मन्दिरका महंत नियुक्त कर दिया गया और उसकी व्यवस्थाके लिये भी सरकारी रकम नियुक्त कर दी गयी। मन्दिरके लिये उसके आसपासकी अधिकांश जमीन महमूदाबाद रियासतकी ओरसे मुफ्तमें दे दी गयी।

किंतु मेला अभी नहीं आरम्भ हुआ था। कहते हैं, उपर्युक्त मन्दिर-स्थापनाके दो-तीन वर्ष बाद ही उस क्षेत्रमें एक बार बहुत दूर-दूरतक प्लेग महामारी फैली और सैकड़ों-हजारों लोग इस घातक रोगसे बचनेके लिये पुराने मन्दिरके हनुमानजीकी शरणमें गये, तभी वहाँके पुजारीको स्वप्न हुआ, जिसमें हनुमानजीने कहा कि 'ये लोग यहाँ नहीं, उस नये मन्दिरमें जायँ, मैं वहाँ वास करता हूँ, मेरी शक्ति वहाँकी मूर्तिमें है।' फलत: वह पूरी भीड़ नये मन्दिरमें चली आयी और उनमेंसे बहुतोंको स्वास्थ्य लाभ हुआ। तभीसे इस नये मन्दिरपर मेला लगने लगा। किंतु इसी सम्बन्धमें एक दूसरी किंवदन्ती यह है कि एक बार नवाब वाजिदअली शाहकी दादी आलिया बेगम बहुत बीमार पड़ीं। उन्होंने दुआ की और वह रोग समाप्त हो गया। इसके फलस्वरूप उन्होंने यहाँ बहुत बड़ा उत्सव मनाया, लाखोंकी खैरात बाँटी और तभीसे मेलेकी परम्परा चालू हो गयी। इसीके साथ-साथ आलिया बेगमके नामपर इस पूरे मुहल्ले (अर्थात् तत्कालीन गाँव)-का नाम अलीगंज रख दिया गया।

इन दोनोंके अतिरिक्त एक तीसरी किंवदन्ती और भी है—नवाब वाजिदअली शाहके समयमें कस्तूरी या केसरका एक मारवाड़ी व्यापारी जटमल लखनऊ आया और चौकके निकटकी तत्कालीन सबसे बड़ी सआदतगंजकी मंडीमें कई दिनतक पड़ा रहा, किंतु अधिक महँगी होनेके कारण उसके दर्जनों ऊँटोंपर लदी कस्तूरी ज्यों-की-त्यों पड़ी रह गयी, कोई खरीदार ही नहीं मिला। ज्ञातव्य है कि इस मंडीकी प्रशंसा बड़ी दूर-दूरतक थी, फारस, अफगानिस्तान तथा कश्मीर आदिसे मेवों, फलों तथा जेवरात आदिके बड़े-बड़े व्यापारी वहाँ आते थे। मारवाड़ी व्यापारी बड़ा निराश हुआ और लोगोंसे कहने लगा कि 'अवधके नवाबोंका मैंने बड़ा नाम सुना था, किंतु वह सब झूठ निकला।' इतनी दूर आकर भी खाली हाथ लौटनेके विचारमात्रसे वह बड़ा दु:खी हुआ और अयोध्याकी ओर चल दिया। रास्तेमें इसी नये मन्दिरके पास आकर जब वह विश्रामके लिये रुका, तब लोगोंके कहनेसे उसने हनुमानजीसे अपने मालकी बिक्रीके लिये मनौती मानी।

संयोगवश उन्हीं दिनों नवाब वाजिदअली शाह अपनी कैसर बेगमके नामपर कैसरबागका निर्माण करा रहे थे। किसीने उनको राय दी कि यदि इस कैसरबागकी इमारतको केसर-कस्तूरीसे पुतवा दिया जाय तो सारा इलाका ही अत्यन्त सुवासित हो जायगा? और फिर कैसर और केसरकी तुक भी मिल गयी। नवाबसाहबको यह सलाह जँच गयी और जटमलकी सारी कस्तूरी उसके मुँहमाँगे दामपर खरीद ली गयी। स्वभावत: जटमलके हर्षका कोई ठिकाना नहीं रहा, उसने हृदय खोलकर मन्दिरके लिये खर्च किया। आज भी मन्दिरके भीतर मूर्तिपर सोनेका जो छत्र लगा है, वह इसी व्यापारीका बनवाया हुआ है। उसने पूरे मन्दिरको ही नये सिरेसे बनवाया। वर्तमान स्तूप (गुंबद) भी तभीका है। तभीसे यहाँ मेला भी लगने लगा।

—श्रीसूरजनारायणजी निगम

गोरखपुर— यहाँ राप्ती नदीके तटपर 'श्रीहनुमानगढ़ी' के नामसे हनुमानजीका प्रसिद्ध स्थान है। प्रसिद्ध श्रीगोरक्ष-

पीठमें श्रीगोरखनाथजीके मन्दिरके उत्तरमें हनुमानजीका प्राचीन मन्दिर था; अब उसको नया रूप दिया गया है और उसमें बहुत ही भव्य एवं विशाल प्रतिमाकी प्रतिष्ठा हुई है। बेतियाहातामें कुछ वर्ष पूर्व एक सुन्दर श्रीहनुमान-मन्दिरका निर्माण हुआ है, जिसका शिलान्यास हमारे परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके कर-कमलोंद्वारा हुआ था। शहरमें और भी अनेक प्रसिद्ध हनुमान-विग्रह हैं।

वृन्दावन—श्रीसिंहपौर हनुमानजीका मन्दिर इतिहास-प्रसिद्ध श्रीगोविन्ददेवजीके पास है। धर्मान्ध औरंगजेब जब श्रीगोविन्ददेवजीके मन्दिरको तोड़वा रहा था, उस समय सिद्ध संत श्रीबिहारिनीदेवजीने प्रार्थना की और श्रीहनुमानजीकी प्रेरणासे तत्काल असंख्य बंदर इकट्ठे हो गये। इस वानरी-सेनाकी किलकिलाहटसे यवन-सेनाको श्रीधामसे दूर हट जाना पड़ा। श्रीहनुमानजीकी कृपासे श्रीगोविन्ददेवजीके मन्दिरका एकतला बच गया, जो यवन-धर्मान्धताकी गाथा सुना रहा है। यहाँ श्रीवृन्दावनके प्राचीन आचार्य श्रीभट्टदेवजी महाराजद्वारा निर्मित श्रीवृन्दादेवीका मन्दिर पहले था। उस मन्दिरके सिंहपौरपर उनके द्वारा ही श्रीहनुमानजी विराजमान किये गये थे। कालचक्रसे मन्दिरका तो नाम भी मिट गया, किंतु 'श्रीसिंहपौर हनुमानजी' अब भी हैं।

—आचार्य स्वामी श्रीराधाब्रजेशशरणदेवजी महाराज

कौंच—जालौन जिलेमें यह क्रौञ्च ऋषिकी तपोभूमि है। यहाँका 'श्रीमन्दिर बजरंग धोहर' बड़ा विख्यात है। यहाँपर वैरागी, साधु-महात्माओंने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की है। कहा जाता है कि यह मन्दिर 'आल्हा-ऊदल' के समयमें बना था। अब इसका जीर्णोद्धार करा दिया गया है। यहाँपर प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी (अनन्त-चतुर्दशी)-को मेला लगता है।

—श्रीबाबूरामजी बाजपेयी

बदरीनाथ-धाम—मन्दिरकी परिक्रमामें गणेशजीके समीप ही हनुमानजीकी मूर्ति है तथा मन्दिरके पृष्ठभागमें भी हनुमानजीकी संगमरमरकी बनी हुई विशाल प्रतिमा है। यात्रियोंके लिये यह एक आकर्षक एवं आराधनाका केन्द्र है। —स्वामी श्रीॐकारानन्दजी महाराज

हनुमानचट्टी—पण्डुकेश्वरसे सात मीलकी दूरीपर हनुमानचट्टी है। यहाँ हनुमानजीकी मूर्ति है। यह हनुमानजीकी तपोभूमि बतलायी जाती है। यहाँ अलकनन्दाके किनारे सुन्दर वृक्षोंकी पङ्क्तियाँ बड़ी मनोरम हैं।

पवाली—हिमालयमें बारह हजार फीटकी ऊँचाईपर टेहरी जनपदमें त्रियुगीनारायणके मार्गमें यात्रियोंका यह एक विश्राम-स्थल है। पर्वतके एक बगलमें छोटा-सा मन्दिर वीर हनुमानका है। इस मन्दिरकी मूर्ति वैशिष्ट्यपूर्ण है। दो फुट ऊँची इस मूर्तिके बायें हाथमें नंगी तलवार और दाहिने हाथमें गदा है। श्रीमारुतिका मुख सामने नहीं है, दाहिना अङ्ग देखनेमें आता है।

अञ्जनी (हरद्वार)—हनुमानजीकी माँ अञ्जनीदेवीका मन्दिर चण्डीदेवीके मन्दिरके पास ही पहाड़के दूसरी ओर है।

व्रजके प्रसिद्ध श्रीहनुमान-विग्रह

(लेखक—पं० श्रीरामदासजी शास्त्री)

चौरासी कोस व्रज और उसके आसपासका विस्तृत क्षेत्र श्रीहनुमानजीके प्रति श्रद्धा एवं विश्वासपूर्ण भक्तिसे ओत-प्रोत है। यहाँके आबालवृद्ध नर-नारी बजरंगबलीको इष्टदेवताकी भाँति पूजते हैं। व्रज-भूमि-क्षेत्रके शिक्षित समाजमें तो हनुमानजीकी घर-घर पूजा होती ही है, यहाँकी ग्रामीण जनतामें भी इस चमत्कारपूर्ण देवके प्रति अटूट श्रद्धा देखते ही बनती है। व्रजका कौन ऐसा ग्राम है, जहाँ श्रीहनुमानके दो-चार छोटे-बड़े मन्दिर न हों। व्रजवासी प्रातः-सायं इन दिव्य मन्दिरोंपर पहुँचकर अपनी साधना-आराधना करते हैं और मनोकामना-पूर्तिकी मनौती मानते हैं।

व्रजमें बालकोंके मनमें बाल्यकालसे ही श्रीहनुमानजीके प्रति एक विशिष्ट श्रद्धा-भावना जाग्रत् की जाती है। माताएँ अपनी गोदीके शिशुकी आधि-व्याधिको दूर करनेके लिये अन्य किसी भूत-प्रेत या पीर-पैगम्बरको न मानकर श्रीहनुमान-मन्दिरके पुजारीसे मोरपंखका झारा लगवाती हैं और चमत्कारके साथ नन्हा-सा शिशु भयंकर पीड़ासे मुक्त हो खेलने-कूदने लगता है।

व्रजके छोटे बालक जब प्रथम बार पाठशालामें प्रवेश करते हैं, तब पट्टी-पूजनके अवसरपर श्रीहनुमानके नामकी सिन्नी (मिठाई) बाँटते हैं। व्रजवासियोंमें एक और भी उत्तम बात पायी जाती है—जब बच्चेका अन्न-

प्राशन-संस्कार कराया जाता है, तब भी श्रीहनुमानके भोगकी भावनासे उस अन्नको पहले बंदर और लंगूरोंको खिलाकर तत्पश्चात् शिशुको खिलाते हैं। नववधूके गृह-प्रवेशके समय जहाँ अन्य देवी-देवताओंकी पूजा होती है, वहाँ प्रथम बार पड़नेवाले मंगलवार या शनिवारको व्रत रखकर वर-वधू श्रीहनुमानका पूजन करते हैं।

व्रजके युवकवर्गको कुश्ती-कसरत करनेका बड़ा शौक होता है, इसलिये प्रत्येक श्रीहनुमान-मन्दिरपर एक अखाड़ा अवश्य बना होता है, अधिक नहीं तो प्रत्येक अखाड़ेपर एक छोटे-से आलेमें श्रीहनुमानजी अवश्य बैठे होंगे और एक छोटी गदा उनके पार्श्वमें रखी होगी। कोई भी पहलवान अखाड़ेमें उतरनेसे पहले श्रीहनुमानजीपर चोला चढ़ाकर धूप-दीप-नैवेद्य अर्पित करनेके बाद मनौती मानेगा और बजरंगबलीकी 'जय-जयकार' बोलकर लंगोट घुमायेगा। आश्चर्य यह है कि अखाड़ेकी कुश्तीमें हारनेवाला पहलवान भी पुनः श्रीहनुमानकी साधनामें लग जाता है।

इस तरह व्रज-संस्कृतिमें श्रीहनुमानके प्रति श्रद्धा-भक्ति जन-जनमें व्याप्त दीखती है। श्रीहनुमदुपासनाकी संस्कृतिके पीछे सृष्टिके प्रारम्भका एक समुज्ज्वल इतिहास है।

श्रीहनुमानको व्रजके लोग तबसे पहचानते हैं, जब मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने समुद्रपर पुल बाँधा था। कथा प्रसिद्ध है—पुल बाँधते समय श्रीहनुमान हिमालयकी गोदसे एक विशाल पर्वतको उठाकर ला रहे थे, तभी भगवान्‌की आज्ञा हो गयी कि सभी वानर पर्वतोंको जहाँ-का-तहाँ स्थापित कर दें। तब श्रीहनुमानने इस पर्वतराज (गिरिराज)-को व्रजभूमिमें स्थापित कर दिया। गिरिराज अत्यन्त दु:खी होकर कहने लगे—'पवनपुत्र ! तुमने तो मुझे कहींका भी नहीं रहने दिया, इधर तो भगवान् शिवकी संनिधि छूटी और उधर भगवान् श्रीरामकी सेवा एवं दर्शनसे भी मैं वञ्चित रह गया।' तब श्रीहनुमानने कहा—'गिरीश! तुम चिन्ता न करो, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम्हें भगवान्‌का दर्शन अवश्य कराऊँगा। श्रीरामरूपमें नहीं तो श्रीकृष्णरूपमें भगवान् तुम्हें अपने हाथोंपर उठायेंगे।' गिरिराजने फिर कहा—'अञ्जनीनन्दन! आपका आशीर्वाद स्वीकार है, किंतु एक प्रार्थना और है, श्रीकृष्णके साथ आप भी रहेंगे, तभी मेरी आत्माको शान्ति मिलेगी।' श्रीहनुमान वचनबद्ध हो गये और बोले—'पर्वतराज! क्या यह भी कहनेकी बात है? जहाँ-जहाँ श्रीराम और श्रीकृष्ण होंगे, वहाँ-वहाँ हनुमान तो अवश्य रहेंगे ही। मैं भी तुम्हारी कन्दराओंमें श्रीकृष्णकी लीलाका दर्शन करूँगा।'

ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीहनुमानके ऋणसे मुक्त होनेके लिये ही भगवान् श्रीरामने श्रीकृष्णावतारमें श्रीहनुमानको सखा बना लिया था; क्योंकि श्रीरामरूपमें तो वे इतना ही कहकर चुप हो गये थे—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥

(मानस ५।३२।५—७)

—तो श्रीकृष्णावतारमें वानर ही उनके सच्चे सखा थे; खान-पान और क्रीड़ा-कौतुकमें श्रीहनुमानकी मण्डली सदा उनके साथ बनी रहती थी।

व्रजवासियोंके कथानकोंमें कहा जाता है कि श्रीगिरिराजकी सात कोसकी परिक्रमामें दस स्थानोंपर श्रीहनुमान विराजमान हो गये थे, इसलिये कि जिस किसी दिशासे श्रीकृष्ण पधारेंगे, श्रीहनुमान उन्हें गिरिराजपर ले आयँगे। आज भी गिरिराजके चारों ओर दस चमत्कारपूर्ण हनुमान-विग्रह विराजमान हैं। वानरोंकी सेना तो पूरे पर्वतराजको घेरे ही रहती है। श्रीकृष्णकी बालक्रीड़ा और माखन-चोरीमें ये श्रीहनुमान-सखा ही साथ देते हैं।

व्रजमें ऐसे अनेक आख्यान प्रचलित हैं, जिनमें श्रीकृष्ण और श्रीहनुमानका परस्पर प्रगाढ़ प्रेम प्रकट होता है। व्रजमें दीपावलीका महोत्सव सुप्रसिद्ध है। उस दिन व्रजके घर-घरमें गौके गोबरका गोवर्धन बनाकर उसकी पूजा होती है। जिस समय गोबरका गोवर्धन बनाया जाता है, उसीके साथ ही गोबरके 'लांगुरिया' की मूर्ति बनाकर उसकी भी पूजा होती है। यह 'लांगुरिया' हनुमानका ही प्रतीक है। 'लाङ्गूली', 'पुच्छवान्'-का अपभ्रंश 'लंगूर' या व्रज-बोलीमें 'लांगुरिया' हो गया है। लांगुरियाकी पूजाके उपरान्त पूजन-सामग्रीको बंदर—लंगूरोंको ही खिला दिया जाता है।

व्रजके अनेक चमत्कारी श्रीहनुमान-विग्रहोंका सम्बन्ध श्रीकृष्णके साथ जुड़ा हुआ है। गोकुलके पास वनमार्गमें एक 'हनुमान हठीलो' नामसे प्रसिद्ध स्थान है। यहाँकी प्राचीन श्रीहनुमान-मूर्तिके सम्बन्धमें ख्याति है कि जब श्रीयशोदा मैया लालाको प्रातः माखन-मिश्री खिलाती थीं, तब एक वानर हठपूर्वक श्रीकृष्णके पास बैठकर उनके मुखसे गिरे शीथ-कणोंको उठा-उठाकर खाता था, माँके हजार चेष्टा करनेपर भी वह वानर हटता नहीं था। मैयाने उसका नाम 'हठीलो हनुमान' रख दिया था।

मथुरासे वृन्दावन जाते समय वृन्दावनके पास 'लुटेरिया

हनुमान' प्रसिद्ध हैं। श्रीकृष्णने इनको वृन्दावनके द्वारपर इसलिये बिठा दिया था कि मथुराकी दधि बेचनेवाली गोपियोंका पता ये देते थे और दधि लूटनेमें सहयोग करते थे। भावुक जनोंकी एक धारणा यह भी है कि ये हनुमान चित्तके विकारोंको लूट लेते हैं।

गोवर्धनमें 'पूँछरीका लौंठा' भी हनुमानका ही रूप है, उसे भी भगवान्ने दधि लूटनेको ही बिठाया था। कथा-वार्ताओंमें यह भी कहा जाता है कि भगवान् व्रजसे बाहर मथुरा-द्वारकामें अपने साथ केवल एक सखा श्रीहनुमानको ही ले गये थे। महाभारतमें भी अर्जुनके रथकी सुरक्षामें श्रीकृष्णके साथ श्रीहनुमानजीका पूर्ण दायित्व है।

इस प्रकार व्रज-संस्कृतिमें श्रीकृष्ण-लीलाके साथ श्रीहनुमानका नित्य सम्बन्ध है।

बिहार-प्रान्तके कुछ प्रसिद्ध श्रीहनुमान-मन्दिर

आँजन—राँची मण्डलान्तर्गत गुमला थानेमें आँजन नामक एक ग्राम है, जिसके विषयमें कहा जाता है कि यहाँ महावीर हनुमानजीका जन्म हुआ था। हनुमानजीकी माता अञ्जनादेवीका स्थान गाँवसे पश्चिम तीन मील दूर एक वन्य-गुफामें है। उस गुफामें माता अञ्जनादेवी और बाल हनुमानकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। यहाँ प्रतिवर्ष देशके कोने-कोनेसे दर्शनार्थी आकर अपनी मनोकामनाओंकी सिद्धिके लिये प्रार्थना करते हैं। माता अञ्जनाके नामपर ही इस स्थानका नाम 'आँजन' रखा गया है।

इस ग्राममें मुख्यत: 'उराँव' जातिके आदिवासी लोग बसते हैं, जो अपनेको हनुमान-भक्त मानते हैं। यही नहीं, वे अपनेको हनुमानजीका वंशज भी मानते हैं। 'उराँव' शब्द 'ओ! राम' का ही अपभ्रंश है। त्रेतायुगमें श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन कर ये वनवासी भक्त 'ओ राम, ओ राम' कहकर नाचते-कूदते रहे। इसी कारण तभीसे ये जातियाँ 'उराँव' कही जाने लगीं। अभी भी इनका जीवन बहुत ही सीधा-सादा है तथा शाक, कन्द, मूल, फल इनका प्रधान आहार है। पुरुषवर्ग अपने पहनावेमें लंगोटी लगाते हैं एवं पूँछकी तरह लंगोटीका एक सिरा लटकाये रहते हैं। —श्रीपरशुरामजी मिश्र

जनकपुर—जनकपुरधामके समीप परिक्रमा-मार्गमें हनुमाननगर नामक एक गाँव है। वहाँकी हनुमानगढ़ीके हनुमानजीका श्रीविग्रह प्रसिद्ध है। स्वयं जनकपुरधाममें संकटमोचन-मन्दिर भी प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त श्रीरामानन्द-आश्रममें मनोकामना-सिद्ध हनुमानजीकी मूर्ति है। ये भक्तोंकी मनोकामना पूर्ण करते हैं।

—श्रीवैदेहीकान्तशरणजी

सीतामढ़ी—इसी स्थानको जगज्जननी भगवती सीताकी प्राकट्य-स्थली होनेका चिर गौरव प्राप्त है। यहीं मिथिला-नरेश जनकको यज्ञार्थ हल जोतते हुए मही (पृथ्वी)-से सीताजीकी प्राप्ति हुई थी। इसीलिये इस स्थानका नाम सीतामही (सीतामढ़ी) है। यह भूमि सिद्धों, भक्तों और संतोंकी सदासे साधना-स्थली और निवास-स्थली रही है।

यहाँका मुख्य मन्दिर श्रीजानकी-मन्दिर है। इस मन्दिरके श्रीविग्रहके समक्ष श्रीहनुमानजीकी विनयावनत मनोज्ञ लघुमूर्ति और दक्षिण पार्श्वमें विशाल वीरमूर्ति भक्ताभीष्टदाताके रूपमें अत्यन्त विख्यात है। श्रीजानकीजीके मन्दिरसे कुछ ही दूर पूर्वभागमें दक्षिणामूर्ति लघुमूर्ति हनुमानजी प्रतिष्ठित हैं। कहा जाता है कि उक्त हनुमन्मूर्ति काशीमें किसी श्रीराम-भक्त संतको मिली थी। उन्होंने श्रीअवधमें किसी वैष्णव महात्माको अर्पित कर दी। कुछ काल व्यतीत होनेपर उन महात्माको हनुमानजीने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा कि 'मुझे श्रीजानकी-जन्मभूमि सीतामही (सीतामढ़ी)-में पहुँचा दो।' संयोगवश उन दिनों सीतामढ़ीके सात्त्विक गौड़ ब्राह्मण पण्डित बलदेवजी तामड़ा कर्मकाण्डी तीर्थाटन-क्रमसे श्रीअवध गये हुए थे। पूर्वोक्त महात्माने इनको योग्य अधिकारी समझकर वह मूर्ति इन्हें प्रदान कर दी। महात्माका प्रसाद जानकर इन्होंने उनके संकेतानुसार निजी व्ययसे निजी भूमिमें उस मूर्तिकी स्थापना की और अद्यावधि नियमितरूपसे इनकी विशेष अर्चा इन्हींके वंशज करते आ रहे हैं।

दक्षिणामूर्ति श्रीहनुमानजीका छोटा-सा दिव्य मन्दिर बड़ा ही सुहावना है। इसे संतजन सिद्ध-पीठ-भूमि कहते हैं। यहाँ नाम-जप, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, श्रीरामचरितमानस और हनुमानचालीसाके पाठसे सद्य:-सिद्धि प्राप्त होती है। श्रीजानकी-मन्दिर जानेवाले भक्तजन पहले इनका दर्शन करके ही वहाँ जाते हैं।

—पं० श्रीउपेन्द्रनाथजी मिश्र 'मञ्जुल', काव्यतीर्थ

बंगाल-प्रान्तके प्रमुख श्रीहनुमान-मन्दिर एवं उनके विग्रह

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश', साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

कलकत्ता—हनुमान-गलीका सुप्रसिद्ध हनुमान-मन्दिर एवं सिद्ध-पीठ—महानगरी कलकत्तामें पदार्पण करते ही हावड़ाका पुल पार करनेके बाद हरीसन-रोडमें प्रवेश करके एक फर्लांग आगे बढ़नेपर सड़ककी बायीं ओर एक छोटी-सी गली है, जो 'हनुमान-गली' के नामसे प्रसिद्ध है। उसी गलीमें यह मन्दिर स्थापित है। केवल कलकत्तेका ही नहीं, अपितु सारे बंगालका अत्यन्त प्राचीन हनुमान-स्थल होनेके कारण यह एक प्रकारसे सिद्ध-पीठ माना जाता है। यहाँ दूर-दूरसे आये हुए दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़ बराबर लगी रहती है। इस सिद्ध-पीठके हनुमानजी बड़े ही चमत्कारपूर्ण एवं फलदाता माने गये हैं, जो अपने श्रद्धालु भक्तोंकी कामना सदैव पूरी करते रहते हैं। असंख्य लोगोंको इनकी कृपाकी अनुभूति हुई है। इनकी स्थापना आजसे लगभग ३०० वर्ष पहले जब कलकत्ता एक छोटा-सा गाँव था, तब एक संन्यासी महात्माद्वारा हुई थी। उन महात्माको हनुमानजी सिद्ध थे और अपने भक्तके इच्छानुसार स्वयं वसुन्धराके अन्तस्तलसे विग्रहरूपमें प्रकट हुए थे। ये संन्यासी अन्यप्रान्तीय थे एवं उनका शरीर पंजाबीका-सा लगता था। सारे तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए जब वे यहाँ आये तो हनुमानजीने इन्हें यहीं अपनेको स्थापित करनेका स्वप्नादेश दिया। ये संन्यासी महात्मा जबतक जीवित रहे, तबतक उसी जगह उन्हींकी साधनोपासनामें लगे रहे।

तदनन्तर लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व इस मन्दिरका निर्माण स्थानीय खत्रीबन्धुओंके सहयोगसे हुआ एवं हनुमानजीकी नित्य अर्चना-पूजा, भोग आदिकी समुचित व्यवस्था सुचारु ढंगसे की गयी, जो आज भी उसी रूपमें चल रही है। यों कलकत्तेमें खत्रियोंके अलग-अलग कई संगठन हैं—जैसे पूर्वी, पश्चिमी, पंजाबी; पर इन हनुमानजीका कुछ ऐसा चमत्कार है, जो यहाँ सबको एक करके एक ही धागेमें पिरो दिया है। हनुमानजीकी सेवा-आराधनाके लिये समस्त खत्री-समाज एकमत हो गया—यह विलक्षण बात आज भी देखी जाती है।

मन्दिरमें हनुमानजीका 'संकट-मोचन'-विग्रह है, जो सर्वाभीष्टदायक है। विग्रहमें हनुमानजीके मुखका ही दर्शन होता है। यह विग्रह किस धातु या प्रस्तरका बना है, आजतक अनेकों चेष्टाएँ होनेपर भी ज्ञात न हो सका। स्वयं प्रकट हुए विग्रहोंमें प्रायः यही विशिष्टता रहती है। मूर्ति प्रसन्न-मुद्रामें है एवं दर्शकोंको अपूर्व आत्मबल, साहस, शक्ति, अभय एवं शान्ति प्रदान करती है। बादमें इस मन्दिरमें अन्यान्य देवी-देवताओंके विग्रह भी स्थापित किये गये। जैसे—शीतलाजी, शेषशायी विष्णु, गणेशजी आदि।

सन् १९२८ ई० में मन्दिरकी निरन्तर उन्नति एवं सुचारु स्थायी प्रबन्धके लिये 'हनुमान टेम्पल ट्रस्ट, १, हनुमानगली कलकत्ता—७' की स्थापना हुई, जिसमें योग्य एवं अधिकारी व्यक्तियोंको ही चुना जाता है।

यही नहीं, हनुमानजीकी असीम कृपासे इस मन्दिर एवं सिद्ध-पीठकी इतनी ख्याति एवं लोकप्रियता बढ़ गयी है कि आठ-दस वर्षोंसे हनुमान्न्यासद्वारा प्रवर्तित हनुमान-मन्दिर-साहित्य-अनुसंधान-संस्थानद्वारा भारतके अनेक धर्मों, भाषाओं तथा बहुविध विकीर्ण शक्तियोंके समन्वयके द्योतक रूपमें हनुमदीय प्रतीकसे अङ्कित विद्यावृत्ति-प्रपत्र देशके तीन श्रेष्ठ साहित्य-शिरोमणियोंको साढ़े बारह हजार रुपयेकी राशिके साथ प्रतिवर्ष अर्पित किये जाते हैं। यही नहीं, यह सिद्ध-पीठ और भी कई प्रकारके जनहित-कार्योंमें संलग्न है। जैसे—

(१) अनुसंधान-विभाग—जिसके द्वारा यहाँ साहित्यके अङ्गोंपर अनुसंधान करानेकी समुचित व्यवस्था है। इससे पी-एच्०डी० आदिके निमित्त शोधकार्यमें संलग्न बहुत-से व्यक्ति लाभान्वित हुए हैं एवं हो रहे हैं।

(२) निःशुल्क शिक्षालय—बी० ए० तथा एम्० ए० के हिंदी-विद्यार्थियोंको निःशुल्क शिक्षा देनेकी व्यवस्था।

(३) निःशुल्क पुस्तकालय।

(४) प्रकाशन और चित्र-संचय।

(५) कवि-सत्र—जिसके द्वारा राष्ट्रोन्मुख तथा धर्मोन्मुख काव्य-प्रतिभाओंका चयनादि किया जाता है।

(६) प्रतिमास किसी विद्वान्द्वारा निबन्ध-पाठ और बादमें उसकी पुस्तकाकार छपाई।

(७) सुधी-वन्दना—इसके द्वारा प्रख्यात साहित्यकारोंकी अभ्यर्थना एवं प्रवचनकी व्यवस्था की जाती है।

(८) विद्यार्थी-सत्र—जिसमें साहित्यिक रुचि-निर्माणके लिये छात्र-छात्राओंको चार पुरस्कार दिये जाते हैं।

(९) महिला-सत्र—इसकी समय-समयपर बैठक होती है, जिसमें अन्त्याक्षरी, वाद-विवाद और भाषण-प्रतियोगिता आदिके आयोजन होते हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध-पीठ अपने नामको सार्थक करते हुए जनता-जनार्दनकी महती सेवासे अपनेको धन्य किये हुए है। इसी कारण यह मन्दिर केवल खत्री-समाजका ही नहीं, अपितु समस्त श्रद्धालु भक्तजनोंके प्रबल आकर्षण एवं श्रद्धाभावका केन्द्र बना हुआ है।

राजाकटराका सुप्रसिद्ध पञ्चमुखी हनुमान-मन्दिर—हावड़ा-पुलके सामने सुप्रसिद्ध राजाकटरामें सड़कके किनारे यह सुन्दर मन्दिर स्थित है, जिसमें श्रीहनुमानजीका पञ्चमुखी विग्रह स्थापित है। मूर्तिकी विशेषता यह है कि हनुमानजीका एक मुखारविन्द ऊपर आकाशकी ओर है एवं एक पीछे है, जो परिलक्षित नहीं होते; शेष तीनके दर्शन होते हैं। यह मूर्ति बड़ी ही भव्य, चित्ताकर्षक और नयनाभिराम है। इसके दर्शनमात्रसे अपूर्व बल एवं साहसका संचार होता है। यद्यपि इसे स्थापित हुए १२५ वर्षोंसे भी अधिक समय व्यतीत हो चुका है, तथापि दर्शन करनेसे ऐसा आभास होता है मानो अभी-अभी यह विग्रह कहींसे प्रकट हुआ है। विग्रहमें सदा एकरस नवीनता बनी रहती है, यह इसकी सबसे विलक्षण एवं चमत्कारपूर्ण बात है। यह मूर्ति ऐसे प्रस्तरकी बनी हुई है, जो आजकल कहीं देखनेमें नहीं आता। यह विलक्षण मूर्ति जयपुरके एक कुशल शिल्पीद्वारा निर्मित हुई थी, जिसके दाहिने हाथकी तीन अँगुलियाँ बेकाम थीं। पहले तो उसने मूर्ति-निर्माणके लिये अपनी असमर्थता प्रकट की, परंतु बादमें हनुमानजीने उसे स्वप्नादेश देकर कहा कि 'तुम काम आरम्भ करो। जबतक विग्रह प्रस्तुत नहीं हो जायगा, तबतक तुम्हारी अँगुलियाँ काम करेंगी एवं विग्रहके सम्पूर्ण होते ही पुनः वे बेकाम हो जायँगी।' और ऐसा ही हुआ भी।

यह विग्रह उस समय स्थापित हुआ, जब आजकी यह महानगरी कलकत्ता एक मामूली छोटा-सा गाँव था। मन्दिरके किनारे ही गङ्गा नदी बहती थी। गङ्गाका किनारा होनेसे रेती एवं दलदलके कारण दर्शनार्थियोंको कुछ असुविधा होती थी। जिसके लिये मन्दिरके तत्कालीन पुजारीने हनुमानजीसे प्रार्थना की। रातमें ही हनुमानजीने उन्हें स्वप्नमें दर्शन देकर कहा कि 'घबरानेकी बात नहीं है। गङ्गा मैया स्वयं ही मन्दिरसे सदाके लिये एक-डेढ़ फर्लांग दूर हट जायँगी।' दूसरे ही दिनसे गङ्गाजी शनैः-शनैः पीछे हटने लगीं और एक मासके भीतर ही लगभग डेढ़ फर्लांग पूर्वकी ओर बढ़ गयीं एवं सारा किनारेका भाग छोड़ दिया, जिसपर कालान्तरमें पक्की सड़क एवं मकानात बन गये। बादमें ही राजाकटरा बना। प्रारम्भमें श्रीविग्रहको हटवानेके लिये अधिक चेष्टाएँ हुईं, पर हनुमानजीकी इच्छा भक्तोंके हितार्थ वहीं रहनेकी थी। अन्ततोगत्वा सबको झुकना ही पड़ा। यहाँ श्रद्धालु दर्शकोंकी सदैव भीड़ लगी रहती है। मंगल और शनिवारको विशेष रूपसे तो मेला-सा लग जाता है। अपने भक्तोंको मनोवाञ्छित फल देनेमें ये सारे कलकत्तामें विख्यात हैं। इनकी पूजा-अर्चना आदिकी भी व्यवस्था सुन्दर है। मन्दिरके एक कोनेमें एक प्राचीन शिव-लिङ्ग भी स्थापित है।

नवाब लेनस्थित संकटमोचन एवं पञ्चमुखी हनुमानजीके अलग-अलग मन्दिर—स्टान्ड-रोड-स्थित राजाकटराके उत्तरकी ओर लगभग एक-डेढ़ फर्लांग आगे सड़ककी दाहिनी ओर नवाब लेनमें प्रवेश करते ही ये दोनों मन्दिर प्राप्त होते हैं। पहले मन्दिरमें हनुमानजीका संकट-मोचन-विग्रह लगभग ८०-८५ वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था। यह विग्रह लाल सिन्दूरसे बराबर आच्छादित रहता है एवं इसके दर्शनसे अपूर्व उमङ्ग और उत्साहकी वृद्धि होती है। ये हनुमानजी भी अपने भक्तोंकी कामनाओंकी पूर्ति करनेमें विख्यात हैं एवं प्रत्येक संकट दूर करते हैं, ऐसा बहुधा देखा गया है। मन्दिरके एक कोनेमें श्रीकालीजीकी भी भव्य प्रस्तर-प्रतिमा विराजमान है।

इस मन्दिरके बगलमें ही एक अन्य पञ्चमुखी हनुमानजीका सुप्रसिद्ध मन्दिर है, जिसमें हनुमानजीका अत्यन्त सुन्दर, आकर्षक, मनोहर एवं भव्य विग्रह लगभग ५० वर्षोंसे स्थापित है। मैंने भारतके बहुत-से हनुमान-मन्दिरोंके दर्शन किये हैं, पर ऐसा भव्य विग्रह आजतक अन्यत्र कहीं नहीं देखा। विग्रहमें हनुमानजीके पाँचों मुखारविन्द स्पष्टरूपसे परिलक्षित होते हैं।

यहाँ हयग्रीव, नरसिंह, वराह, कपिस्वरूप, गरुड़ एवं दशभुजाकी सुन्दर मकरानेकी देव-प्रतिमा है। इनके हाथोंमें तलवार, त्रिशूल, चक्र, मन्दराचल पर्वत, अभयमुद्रा, माला, कमण्डलु, तीर, कमान, कमल आदि हैं। हनुमानजीका यह विग्रह उस भावका परिचायक है, जब वे श्रीराम-लक्ष्मणको पातालसे अहिरावणके चंगुलसे छुड़ाकर लाये, जो उन्हें अपनी इष्ट देवीकी बलि चढ़ा

रहा था। हनुमानजीके चरणारविन्दके नीचे देवी भी स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। ये हनुमानजी अपने साधक भक्तोंकी सर्वकामना-पूर्ति करते हैं, अत: इनके दर्शनार्थ दूर-दूरसे भी बहुसंख्यक लोग आते रहते हैं। इनके दर्शनमात्रसे दर्शकमें अपूर्व मानसिक बल, साहस एवं वीरता आदिका भाव-संचार होता है एवं वह आत्म-विभोर हो उठता है। इस चित्ताकर्षक एवं मनोरम विग्रहका निर्माण जयपुरके एक विख्यात शिल्पीने किया था, जो अन्धा था। उसके निर्देशानुसार जब कोई अन्य शिल्पी वैसी मनचाही प्रतिमाका निर्माण करनेमें समर्थ न हो सका, तब वह एवं भक्तगण—सभी निराश हो गये; क्योंकि दूसरा कोई वैसा निपुण कारीगर उस समय नहीं था और वह स्वयं लाचार था। तब भक्तोंके आग्रहपर हनुमानजीने उसे स्वप्नमें यह आदेश दिया कि 'जबतक तुम विग्रहके निर्माण-कार्यमें संलग्न रहोगे, तबतक तुम्हारी आँखोंकी ज्योति बराबर कायम रहेगी। जब इस कामको छोड़कर अन्य काममें लगोगे तो वह ज्योति चली जायगी।' उसने जी-जानसे परिश्रम करके यह विलक्षण विग्रह प्रस्तुत किया।

विग्रहके स्थापित होनेके कुछ ही दिनों बाद एक चमत्कारपूर्ण घटना घटी। मन्दिरके तत्कालीन पुजारीको हनुमानजीने स्वप्नादेश दिया कि 'उनके विग्रहपर यज्ञोपवीत नहीं है, अत: स्वर्णका जनेऊ पहना दिया जाय।' स्वर्णके जनेऊमें अधिक सोना लगता, जिसका प्रबन्ध ब्राह्मण पुजारी निर्दिष्ट समयपर न कर सका। अत: उसने दीन एवं आतुरभावसे हनुमानजीसे प्रार्थना की कि 'प्रभो! यह गरीब ब्राह्मण पुजारी कहाँसे इतना स्वर्ण प्राप्त कर सकेगा। आप ही बतायें, मैं क्या करूँ?' हनुमानजी अपने भक्तकी शुद्ध भक्तिसे प्रसन्न होकर बोले—'चिन्ता मत करो। यज्ञोपवीत अपने-आप मेरे विग्रहसे प्रकट हो जायगा।' दूसरे दिन यही हुआ—विग्रहमें अपने-आप यज्ञोपवीत प्रकट हो गया। विग्रहपर एकाएक ऐसे जनेऊका बन जाना मानवीय शक्तिसे परे है। दूसरी महान् विस्मयकारी बात यह भी थी कि मूर्तिका वर्ण दूसरा एवं यज्ञोपवीतका वर्ण दूसरा। ऐसा यज्ञोपवीत यथास्थान प्रकट होकर एक महान् आश्चर्य उत्पन्न करता है।

श्रीजबरेश्वर हनुमानजीका मन्दिर—कलकत्ताके बड़ाबाजार एरियाके सुप्रसिद्ध सत्यनारायण पार्कके सामने जैन-कटराके बगलमें हनुमानजीका यह प्रसिद्ध मन्दिर लगभग ५० वर्षोंसे स्थापित है। विग्रह बहुत ही विशाल, भव्य एवं मनोहारिणी झाँकी उपस्थित करता है, जिसके दर्शनसे दर्शकको अपूर्व बल एवं साहस प्राप्त होता है। विग्रहके कंधोंपर भगवान् श्रीराम-लक्ष्मण विराजमान हैं।

हनुमानजीका यह विग्रह अत्यन्त चित्ताकर्षक है एवं सोनेके वर्क (पत्रों)-से बड़े आकर्षक ढंगसे सदैव भलीभाँति आच्छादित रहता है। प्रतिवर्ष वर्क (स्वर्ण-पत्र) बदल दिये जाते हैं। इनकी भी भक्तलोगोंमें बड़ी मान्यता एवं आस्था है। यहाँ भी दर्शनार्थियोंकी अधिक भीड़ रहती है एवं मन्दिरमें पाठादिका कार्यक्रम बराबर चलता रहता है। बहुत पहलेसे यहाँ महादेवजीके दो लिङ्ग 'जबरेश्वर महादेव' नामसे विराजमान हैं। बादमें जब यहाँ ५० वर्षों पूर्व हनुमानजीके विग्रहकी स्थापना हुई, तबसे यह मन्दिर 'जबरेश्वर हनुमानजी' के नामसे प्रसिद्ध हो गया।

यह विग्रह राजस्थानके सुप्रसिद्ध सालासरवाले हनुमानजीका ही प्रतिरूप प्रतीत होता है। यहाँ भूत-प्रेतादि जनित बाधासे पीड़ित लोग भी आते हैं और कष्ट-मुक्त होकर लौटते हैं।*

असम-प्रदेशके कुछ श्रीहनुमान-मन्दिर

श्रीकमलावारी-सत्र—जोरहाटसे लगभग २५ किलोमीटर दूर ब्रह्मपुत्र नदीके उस पार महात्मा श्रीकमलाकान्तद्वारा संस्थापित कमलावारी-सत्र है। यहाँ एक श्रीविष्णु-मन्दिर और विशाल कीर्तन-गृह है। इसमें सिंहासनपर भगवान्का वाङ्मय-स्वरूप श्रीमद्भागवतपुराण स्थापित है। इस वाङ्मय-विग्रहके सम्मुख लगभग ६ फुट ऊँचा श्रीहनुमानजीका एक दारुमय श्रीविग्रह है। यह विग्रह लगभग दो-ढाई सौ वर्ष पूर्वका निर्मित है और अत्यन्त प्रसिद्ध है।

—श्रीधर्मेश्वर हाजरिकाजी नामलगवा

मणिपुर—यहाँ एक महाबली-आश्रम है, जो पुष्प एवं फलोंसे लदे हुए वृक्ष-लता आदिसे सुशोभित है। उसीमें एक अत्यन्त प्रसिद्ध एवं प्रत्यक्ष फलदायक हनुमानजीका प्राचीन मन्दिर है, जिसका निर्माण राजर्षि

* बंगालके अन्य हनुमान-मन्दिरोंके विषयमें प्रयास करनेपर भी उनका परिचय प्राप्त न हो सका।—सम्पादक

भूपतिराजद्वारा हुआ है। यहाँ बहुत-से साधु निवास करते हैं एवं यह सदा वानरोंसे घिरा रहता है। प्रति मंगलवारको एवं प्रत्येक पर्वके अवसरपर इन रुद्रात्मक श्रीहनुमानजीकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा-अर्चना होती है। इससे श्रद्धालु उपासकोंकी मनोकामनाएँ शीघ्र ही सिद्ध हो जाती हैं।

—श्रीदाऊजी शर्मा, धर्ममार्तण्ड

चूंगाजान-नागालैंड—यह स्थान असम-प्रदेशके डीमापुर जिलेमें है। यहाँ बहुत वर्षों पहले बाबा शंकरदासजी त्यागी नामक एक प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। कहते हैं, इनको श्रीहनुमानजीके दर्शन हुए थे। जहाँ बाबाको दर्शन प्राप्त हुआ था, उसी स्थानपर आज श्रीहनुमानजीका विशाल मन्दिर बना हुआ है। यह सिद्ध स्थान है। यहाँ मनौती माननेसे लोगोंके दु:ख दूर होते हैं।

उत्कल-प्रदेशके प्रमुख श्रीहनुमान-मन्दिर

श्रीजगन्नाथपुरी—(क) श्रीजगन्नाथ-मन्दिर— उड़ीसामें हनुमानजीकी उपासना बहुत दिनोंसे प्रचलित है। 'इन्द्रनील-मणि' पुराण श्रीजगन्नाथजीका मुख्य पुराण है, उसमें भगवान्‌ने श्रीहनुमानजीको यह वर दिया है कि 'तुम्हें सदा पुरुषोत्तम-क्षेत्र श्रीजगन्नाथपुरीमें मेरे अन्तरङ्ग भक्तके रूपमें स्थान मिलेगा और इस क्षेत्रके घर-घरमें तुम्हारी पूजा होगी। केवल इतना ही नहीं, वहाँकी ध्वजापर भी कपिचिह्न बना रहेगा।' इसीलिये श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके पूर्व द्वारपर 'फते हनुमान', पश्चिम द्वारपर 'वीर हनुमान', उत्तर द्वारपर 'तपस्वी हनुमान' और दक्षिण द्वारपर 'बाराभाई हनुमान' विद्यमान हैं। मन्दिरमें आनेवाले यात्रीगण हनुमानजीके इन विग्रहोंका दर्शन करते हुए भीतर आते हैं।

(ख) श्रीमकरध्वज हनुमान—श्रीजगन्नाथपुरीके मुख्य मार्गपर श्रीमकरध्वज हनुमानजीका अत्यन्त विशाल मन्दिर है। इसके विषयमें एक किंवदन्ती है कि जब कामदेव इस क्षेत्रमें प्रवेश करने लगे, तब उन्हें हनुमानजीसे युद्ध करना पड़ा तथा अन्तमें श्रीहनुमानजी विजयी हुए। इसलिये इनका नाम 'मकरध्वज हनुमान' पड़ गया। इनकी एक मुख्य विशेषता यह है कि मूर्तिके एक हाथमें तलवार तथा दूसरेमें काम-विजय-प्रतीक-स्वरूप विजय-ध्वज है। यहाँके श्रीहनुमानजीका दर्शन करनेसे हृदयका काम-भाव निवृत्त होता है।

(ग) माता अञ्जना—श्रीजगन्नाथजीके प्रिय उद्यानमें, जिसे 'जगन्नाथवल्लभ-उपवन' कहा जाता है, हनुमानजीकी माता अञ्जनादेवीका एक स्वतन्त्र मन्दिर है। उसमें माता अञ्जनाकी एक पाषाण-मूर्ति स्थापित है। उनका ध्यान-मन्त्र इस प्रकार है—

तप्तकाञ्चनवर्णाभां वानरास्यां शुभाननाम्।
नानाभरणभूषाढ्यां वराभयकरान्विताम्॥
सर्वसौभाग्यदां देवीं पद्मासनाधरां सदा।
मर्कटजननीं वन्दे महाकाननवासिनीम्॥

'तपाये हुए सुवर्णके समान जिनकी शरीर-कान्ति है, जिनका अत्यन्त सुन्दर वानराकार मुख है, जो विभिन्न प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं, जिनके हाथ वरद एवं अभय-मुद्रासे युक्त हैं, जो सम्पूर्ण सौभाग्यको देनेवाली, विशाल काननमें निवास करनेवाली और सदा पद्मासनसे स्थित रहती हैं, उन हनुमानजीकी माता अञ्जनादेवीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

(घ) श्रीसुरंग हनुमान—कहावत है कि श्रीजगन्नाथ-मन्दिरसे अञ्जनादेवीजीतक एक गुप्त सुरंग है। उसी सुरंगके द्वारपर प्राय: आठ फुट ऊँची आञ्जनेय हनुमानजीकी भव्य मूर्ति है। ये हनुमानजी श्रीजगन्नाथजीके उद्यानके रक्षक हैं। अक्षयतृतीयाके दिन जिस समय श्रीजगन्नाथजीकी प्रतिमूर्ति नौका-विहारके लिये उद्यानमें आती है, उस समय वे श्रीसुरंग हनुमानजीकी अनुमति लेकर ही उस उद्यानमें प्रवेश करते हैं। भगवान् सर्वशक्तिमान् होते हुए भी इन हनुमानजीकी मर्यादाको सुरक्षित रखनेके लिये इस प्रथाका पालन करते हैं।

(ङ) श्रीकानपाता हनुमान—समुद्रका भीषण गर्जन श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके दर्शकोंके भजन तथा स्मरणमें बाधा दिया करता था। गर्जनकी उस भीषण ध्वनिको रोकनेके लिये भगवान्‌ने हनुमानजीको आदेश दिया। आदेश पाकर हनुमानजीने अपना विशाल रूप धारण किया और उस भीषण शब्दको रोक दिया। विशालकाय हनुमानजीके उस शरीरको भेदकर समुद्रका गर्जन-स्वर मन्दिरके भीतर प्रवेश न कर सका। यह एक सत्य बात है कि नगरके चारों ओर समुद्रका गर्जन होते हुए भी श्रीजगन्नाथजीके प्राचीरके अंदर यह शब्द सुनायी नहीं पड़ता। ये हनुमानजी श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके दक्षिण

द्वारपर अवस्थित हैं और इनके विग्रहकी ऊँचाई लगभग १८ फुट है। इन्हीं बृहदाकार हनुमानजीको 'कानपाता हनुमान' या 'शब्दभेदी हनुमान' कहा जाता है।

(च) श्रीबेड़ी हनुमान (शृङ्खला हनुमान)— पुरीके 'बेड़ी-हनुमान' की बड़ी प्रसिद्धि है। इनको पुरीके लोग 'दरिया (ह्रद) हनुमान' कहते हैं। इनका इतिहास भी बड़ा अनोखा एवं रमणीय है। पहले समुद्रकी उत्ताल तरंग-मालाएँ बारम्बार श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्र पुरीमें प्रवेश करके प्राचीन बस्तियोंको नष्ट कर देती थीं। इन बस्तियोंमें आथर्वण आङ्गिरसोंके प्रसिद्ध आश्रम थे। बार-बार समुद्रद्वारा क्षतिग्रस्त होनेपर उन्होंने श्रीजगन्नाथजीसे अपने संरक्षणार्थ प्रार्थना की। यह सुनते ही भगवान्ने हनुमानजीसे आनेवाली लहरोंको रोकनेके लिये कहा। महाविक्रमी हनुमानके चक्रतीर्थपर दण्डायमान होते ही समुद्र उनका उल्लङ्घन न कर सका। परंतु हनुमानजी कभी-कभी श्रीजगन्नाथजीके दर्शनार्थ चले जाते थे। उनके चले जानेपर समुद्र आङ्गिरसोंके स्थानको जलमग्न कर दिया करता था। इसपर उन्होंने भगवान्से पुनः प्रार्थना की। तब श्रीजगन्नाथजीने एक स्वर्ण-शृङ्खला देते हुए उनसे कहा कि 'इससे आपलोग श्रीहनुमानजीको बाँध लें।' वास्तवमें श्रीहनुमानजीको कोई भी बाँध नहीं सकता; परंतु बेड़ीके प्रत्येक भागमें 'राम-नाम' लिखा रहनेके कारण श्रीहनुमानजी उसे तोड़ न सके, जिससे चिरकालके लिये समुद्रकी सीमा निर्धारित हो गयी। चक्रतीर्थके निकट इन्हीं 'बेड़ी हनुमानजी' का स्थान है।

(छ) श्रीसिद्ध हनुमान—इन सिद्ध हनुमानजीका इतिहास श्रीजगन्नाथजीके इतिहाससे ही गुम्फित है। 'इन्द्रनील-मणि' पुराणके वर्णनानुसार राजा इन्द्रद्युम्न जिस समय श्रीजगन्नाथ-क्षेत्रके उन्मोचनके लिये आये, उस समय वे अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। यहाँतक कि वे श्रीजगन्नाथजीके दर्शन पा सकनेकी आशातक छोड़ चुके थे। उसी समय सहसा एक उज्ज्वल प्रकाश दिखायी पड़ा और उसी प्रकाशके बीच हनुमानजीने प्रकट होकर कहा—'मैं युग-युगसे इस मन्दिरकी रक्षा करता आ रहा हूँ। मेरे बलसे बलवान् होकर आप एक हजार हाथ ऊँचे एक मन्दिरका निर्माण कीजिये और उसीमें श्रीजगन्नाथजीकी प्रतिष्ठा कीजिये। मैं 'सिद्ध हनुमान' के रूपमें विख्यात होऊँगा। मेरे सिद्धाश्रममें रहकर आप पुरुषोत्तम-क्षेत्रके निर्माण-हेतु यत्न कीजिये। जो लोग विपत्तिकालमें यहाँ सुन्दरकाण्डका पाठ करेंगे, उनके सब कार्य सिद्ध होंगे।' आज पुरी-क्षेत्रकी उत्तर दिशामें इन्द्रद्युम्न-सरोवर है। वहाँ सिद्ध महावीरजीका मन्दिर है। इसका निर्माण-कौशल तथा कारीगरी भी दर्शनीय है। इन्हीं हनुमानजीकी पूजा करके श्रीजगन्नाथ-मन्दिरका निर्माण किया गया था।

(ज) उड़न्ता (उड़ते हुए) हनुमान—ईसाकी सोलहवीं शताब्दीमें श्रीसंतदास नामक एक श्रेष्ठ हनुमद्भक्त विद्यमान थे। उनकी उपासनासे एक महान् कार्य चमत्कारिक रीतिसे सम्पन्न हो गया। एक समयकी घटना है, भयंकर आँधी-तूफानके कारण श्रीजगन्नाथजीका विशाल नीलचक्र टेढ़ा हो गया। किसी भी कारीगरद्वारा उस नीलचक्रको पूर्ववत् कर सकना असम्भव-सा था। महात्मा श्रीसन्तदासने कहा कि इस क्षेत्रके रक्षक श्रीहनुमानजीसे प्रार्थना करनी चाहिये। इसपर मन्दिरके सभी पुजारी तथा भक्तगणने हनुमानजीसे प्रार्थना की। तब अकस्मात् एक विशालकाय वानर कहींसे आया और उस वक्र नीलचक्रको मुहूर्तभरमें पूर्ववत् सीधा करके हुंकार करते हुए मन्दिरकी दक्षिण दिशाकी ओर कूद पड़ा। जिस स्थानपर वे हनुमानजी कूदकर अन्तर्धान हुए थे, उसी स्थानपर राजा श्रीप्रतापरुद्रने 'उड़न्ता हनुमानजी' की स्थापना कर दी।

वस्तुतः सारे जगन्नाथधाममें श्रीजगन्नाथजीके सेवकके रूपमें श्रीहनुमानजी पूजित होते हैं एवं यहाँका प्रत्येक व्यक्ति श्रीहनुमानका भक्त ही है।

—पद्मभूषण श्रीसदाशिवजी रथ शर्मा

सिरुली—भुवनेश्वर-पुरी-सड़कपर स्थित चन्दनपुरसे लगभग १२ किलोमीटरकी दूरीपर सिरुली ग्राम है। इस ग्रामके पश्चिम भागमें महावीर हनुमानजीका मन्दिर अवस्थित है। 'सिरुली महावीर-मन्दिर' उड़ीसामें हनुमानजीका प्रसिद्ध मन्दिर एवं तीर्थ है। उड़ीसाके विभिन्न भागोंसे तीर्थयात्री एवं भक्त प्रायः प्रतिवर्ष हनुमानजीके दर्शन-पूजन एवं मनौतीके लिये यहाँ आते रहते हैं। लोगोंमें ऐसी दृढ़ आस्था एवं श्रद्धा है कि 'सिरुली महावीरजी' के दर्शनका अत्यन्त मङ्गलदायक प्रभाव होता है। इनकी प्रतिमा १० फुट ऊँची है। कहा जाता है कि यह प्रतिमा बहुत पुरानी है। ऐसी जनश्रुति भी है कि यह प्रतिमा स्वयं ही पृथ्वीको विदीर्ण करके प्रकट हुई है तथा प्रचण्ड प्राणस्पन्दनसे युक्त सजीव स्वयम्भू-मूर्ति है।

श्रीमहावीरजीकी यह द्विभुजी प्रतिमा कई दृष्टियोंसे विलक्षण है। इसकी दोनों भुजाओंके बीचकी चौड़ाई

आठ फुट है। इसकी दाहिनी जाँघपर सीता-खोजके लिये जाते समय श्रीरामद्वारा हनुमानको दी गयी अभिज्ञानस्वरूप मुद्रिकाकी प्रतिकृति अङ्कित है एवं उसी प्रकार सीतान्वेषणके बाद लंकासे लौटते समय सीताजीद्वारा संदेश-सहिदानीके रूपमें दी गयी सिरकी चूड़ामणिकी छबि भी दर्शनीय है। दोनों जाँघोंपर इस प्रकार इन दोनों भूषणाकृतियोंके अङ्कनसे श्रीहनुमानके सीताराममय होनेका तथा *'श्रीरामदूत अतुलित बलधामा'* होनेका संकेत मिलता है। इस प्रतिमाके नेत्रोंकी ओर देखें तो वे समानान्तरमें न होकर ऊपर-नीचेकी ओर उठे हुए विषम एवं दो विपरीत दिशाओंमें देखते हुए प्रतीत होते हैं। इस महावीर-मन्दिरकी दक्षिण दिशाकी दीवालमें पश्चिमाभिमुख एक छोटा-सा झरोखा है। इस झरोखेसे श्रीमहावीरजी पुरी-स्थित श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके शिखरपर स्थापित नीलचक्रको अपनी बायीं आँखसे देखते रहते हैं। प्रात:काल सूर्योदयके समय महावीरजीकी मूर्तिके पास खड़ा होकर देखनेसे दर्शकको श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके शिखरका नीलचक्र दिखायी पड़ता है। अत: मूर्तिकी यह दृष्टि-भङ्गिमा ठीक ही है। महावीरजीका दक्षिण नेत्र यहाँसे दक्षिण दिशामें स्थित लंकापर टिका हुआ है, जिससे राक्षसी शक्तियाँ उस दृष्टिके नियन्त्रणमें रहते हुए कोई उपद्रव न कर सकें।

—श्रीसोमचैतन्य श्रीवास्तव, शास्त्री, एम्०ए०, एम्०ओ० एल्०

कटक—तिनकोणिया बगीचामें श्रीहनुमानजीका एक मन्दिर है। वहाँ श्रीसम्प्रदायके वैष्णवद्वारा हनुमानजीकी पूजा होती है। यह नगरका एक प्रधान मन्दिर है। मन्दिरमें श्रीहनुमानजीके विग्रहके अतिरिक्त श्रीरामजी तथा श्रीशिवजीके भी विग्रह हैं। —श्रीविश्वम्भरदास बाबाजी

दक्षिण-भारतके प्रसिद्ध श्रीहनुमान-मन्दिर

ऋष्यमूक पर्वत—यह स्थान हम्पीके पास है। बेल्लारी जनपदमें हम्पी हास्पेटसे ९ मील दूर है। हम्पीके मध्यमें विरूपाक्ष-मन्दिर है। इस मन्दिरके सम्मुख जो सड़क है, उससे सीधे चले जायँ तो वह मार्ग ऋष्यमूक पर्वतके निकटतक ले जाता है। इसी ऋष्यमूक पर्वतपर वालीके भयसे श्रीहनुमानजीसहित सुग्रीव निवास करते थे और इसी पर्वतके पद-प्रान्तमें श्रीहनुमानजीने भगवान् श्रीरामसे प्रच्छन्न-वेषमें भेंट की थी। यहाँ तुङ्गभद्रा नदी धनुषाकार बहती है, अत: वहाँ नदीमें चक्रतीर्थ माना जाता है। चक्रतीर्थके पास पहाड़ीके नीचे श्रीराम-मन्दिर है, जिसमें श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीताजीकी बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं।

किष्किन्धा—विट्ठलस्वामी-मन्दिरसे लगभग एक मील पूर्व आकर मार्ग उत्तरकी ओर मुड़ता है। स्फटिक-शिलासे आनेवाला मार्ग यहाँ विट्ठलस्वामी-मन्दिर जानेवाले मार्गसे मिलता है। इस मार्गसे कुछ ही दूरीपर सामने तुङ्ग-भद्रा नदी है। नदीके उस पार लगभग आधे मीलपर अनागुंदी ग्राम है। इसीको प्राचीन किष्किन्धा कहा जाता है।

इससे कुछ आगे सप्ततालवेधका स्थान है, जहाँ भगवान् श्रीरामने सप्ततालका लक्ष्यवेध किया था और इसी लक्ष्यवेधके पश्चात् श्रीसुग्रीव भगवान् श्रीरामके सामर्थ्यपर विश्वास कर सके थे। यहाँ एक शिलापर भगवान् श्रीरामके वाण रखनेका चिह्न है। इस स्थानके सामने तुङ्गभद्राके उस पार वाली-वधका स्थान कहा जाता है। वहाँकी शिलाएँ उज्ज्वल हैं, जिन्हें वालीकी हड्डियाँ कहते हैं। सप्तताल-वेधसे पश्चिम एक गुफा है। कहते हैं कि भगवान् श्रीरामने वहाँ वाली-वधके पश्चात् विश्राम किया था। गुफाके पीछे हनुमान-पहाड़ी है। तुङ्गभद्राके उसी पार तारा, अङ्गद एवं सुग्रीव नामक तीन पर्वत-शिखर हैं। हास्पेटके पास कमलापुर नामक स्थानमें मधुवन एक ग्राम है। लोगोंका अनुमान है कि यहींपर सुग्रीवका मधुवन नामक अनुपम उद्यान था, जिसके मधुर फलोंको बंदर-भालुओंने उस समय खाया था, जब वे भगवती सीताका अनुसंधान करके जाम्बवान्, अङ्गद और हनुमानजीसहित लंकाकी ओरसे लौट रहे थे। यहाँ श्रीहनुमानजीका मन्दिर है। कुछ विद्वानोंका मत है कि पम्पासर वहाँ था, जहाँ आज हास्पेट नगर है।

अञ्जनी पर्वत—पम्पासरोवरसे एक मील दूर अञ्जनी पर्वत है। यह पर्वत पर्याप्त ऊँचा है और इसके ऊपर चढ़नेका मार्ग अच्छा नहीं है। पर्वतपर एक गुफा-मन्दिर है, जिसमें माता अञ्जनी तथा हनुमानजीकी मूर्तियाँ हैं। कहते हैं कि माता अञ्जनीका निवास यहीं था।

माल्यवान् पर्वत (स्फटिकशिला)—विरूपाक्ष-मन्दिरसे ४ मील पूर्वोत्तर माल्यवान् पर्वत है। इसके एक भागका नाम प्रवर्षणगिरि है। इसीपर स्फटिकशिला-मन्दिर है। हास्पेटसे यहाँतक सीधी सड़क आती है। मोटरबससे सीधे स्फटिकशिला आ सकते हैं। श्रीराम-

लक्ष्मणने वर्षाके चार महीने यहीं व्यतीत किये थे। इसी पर्वतपर लंकासे लौटकर श्रीहनुमानजीने अशोक-वाटिकाकी बंदिनी भगवती सीताके अनुसंधानका विवरण तथा उनका संदेश भगवान् श्रीरामको सुनाया था।

वाई—यह तीर्थ कृष्णानदीके किनारेपर है। यहाँ कृष्णानदीपर अनेक घाट हैं। पेशवाघाटपर यज्ञेश्वर-शिव तथा मारुति-मन्दिर हैं। मानुघाटके पास ही मण्डपमें सिंहासन है, जिसमें उत्सवके समय श्रीकृष्णा (नदीकी अधिष्ठात्री देवी)-की मूर्ति स्थापित की जाती है। इस स्थानके पीछे मारुति-मन्दिर है। धर्मपुरी मुहल्लेमें घाटपर रामेश्वर-मन्दिर है। रामेश्वर-मन्दिरके उत्तर मारुति-घाट तथा मारुति-मन्दिर हैं। यहाँसे उत्तर हरिहरेश्वर तथा दत्तात्रेय—ये दो मन्दिर और हैं। दत्त-मन्दिरके पश्चिम पञ्चमुख मारुति-मन्दिर और नागोब-मन्दिर हैं।

अवढ़ा नागनाथ (नागेश)—द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें नागेश-लिङ्ग यही है। बहुत-से विद्वान् सौराष्ट्रमें द्वारका (गोपीतालाब)-के समीप स्थित नागनाथ-मन्दिरको नागेश-ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं, किंतु नागेश-लिङ्गका 'दारुकावन' में होना वर्णित है। दारुकावन यही है। इस क्षेत्रमें ६८ तीर्थ थे, जिनमेंसे बहुत-से लुप्त हो गये हैं। जितने तीर्थ आजकल प्राप्त हैं, उनमेंसे एक तीर्थ श्रीहनुमानतीर्थ भी है।

भद्राचलम्—भद्राचलम् आन्ध्रप्रदेशमें वाड़ीसे १५ मील दूर स्थित है। यह स्थान राजमहेन्द्रीसे ८० मीलपर गोदावरीके तटपर है। गोदावरीके तटके समीप एक प्राचीन श्रीराम-मन्दिर है, जो समर्थ श्रीरामदास स्वामीके द्वारा निर्मित हुआ बताया जाता है। श्रीरामके मुख्य मन्दिरके पास ही श्रीहनुमानजीका एक विशाल मन्दिर है। उसमें श्रीमारुतिकी स्थापना श्रीसमर्थके हाथसे हुई है, ऐसा कहा जाता है।

कूर्मक्षेत्र—यह स्थान आन्ध्रप्रदेशके श्रीकाकुलपट्टणसे नौ मीलकी दूरीपर है। यहाँ शालग्रामरूपमें भगवान् श्रीकूर्मराजकी अर्चना-उपासना होती है। इस मन्दिरको कूर्मविमान भी कहा जाता है। श्रीशंकराचार्यजी, श्रीरामानुजाचार्यजी एवं श्रीमध्वाचार्यजी यहाँ आ चुके हैं। इस क्षेत्रके चारों ओर आठ तीर्थ हैं। तीसरे तीर्थ श्रीचक्रतीर्थमें श्रीकूर्मराजका अवतार हुआ था। श्रीचक्रतीर्थमें श्रीहनुमानजीका मन्दिर है। पद्मपुराणमें ऐसा उल्लेख आया है कि श्रीब्रह्माजीने श्रीनारदजीको यहाँ तप करनेके लिये कहा था; क्योंकि यह तीर्थ हनुमानजीद्वारा सुरक्षित है। कूर्मग्रामसे पुजारी नित्य यहाँ आकर श्रीहनुमानजीकी सेवा-पूजा करते हैं। —श्री पी० वराहालु

गुत्तेनदीवि—यह क्षेत्र पूर्व गोदावरी जिलेके मुम्भिडिवरम् तालुकामें गोदावरी नदीकी एक शाखा भारद्वाजीके तीरपर स्थित है। यह छोटा-सा गाँव है। यहाँ आञ्जनेयजीका अत्यन्त प्रभावशाली विग्रह है। पहले जब उनके सिरपर श्रीसीतारामजी प्रतिष्ठित नहीं थे, तब वृद्धजनोंको ऐसा अनुभव होता था कि वे ताण्डव-नृत्य कर रहे हैं। उस समय दो या तीन माससे अधिक कोई भी पुजारी वहाँ पूजा नहीं कर पाता था। आजसे २५ वर्ष पूर्व श्रीसीतारामजीकी स्थापना करनेके बादसे अब श्रीहनुमानजी वहाँ शान्त होकर विराज रहे हैं। कहा जाता है कि यहाँपर इन हनुमानजीकी प्रतिष्ठा महर्षि गौतमने की थी। इनकी उपासना करनेसे भक्तोंको श्री एवं विद्याकी प्राप्ति होती है। —चल्लपल्लि भास्कर श्रीराम कृष्णमाचार्युलु

औरंगाबाद—नगरके बिलकुल मध्य बस्तीमें 'श्री-सुपारी हनुमान' का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसमें श्रीहनुमानजीकी बैठी हुई पूर्वाभिमुखी मूर्ति है। मारुतिके नेत्र चक्राकार होनेके कारण मुँहपर दीप्ति छायी रहती है, जिससे मूर्ति अत्यन्त भव्य लगती है। ऐसा कहा जाता है कि ये मारुति स्वयम्भू होनेके कारण पहले सुपारीके आकारके थे और धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते वर्तमान आकारको प्राप्त हो गये हैं। अत: ये 'श्रीसुपारी मारुति' कहलाते हैं। ऐसी भी सम्भावना है कि भावुक भक्तोंको पूजाके बाद प्रसादरूपमें सुपारीकी प्राप्ति होती थी, इस कारण इनका 'श्रीसुपारी मारुति' नाम पड़ गया। इनके प्रभावशाली होनेके कारण परीक्षा-स्थलमें जानेवाले दर्शनार्थी छात्रोंकी भीड़ यहाँ अधिक संख्यामें होती है।

खुलताबाद—औरंगाबादसे लगभग ग्यारह मीलकी दूरीपर यह एक ऐतिहासिक महत्त्वका स्थान है। खुलताबादकी दक्षिणी सीमाके पास एक खुली पथरीली जगहमें 'भद्र मारुति' का स्थान है। दर्शनार्थी व्यक्तिको इस स्थानके समीप जाकर भी मूर्तिका दर्शन नहीं होता; क्योंकि ये श्रीमारुति लेटे हुए हैं। चट्टानपर खुदी हुई यह मूर्ति ऐसी नक्काशीदार है कि सिन्दूरसे लिप्त होनेपर भी उसके अवयव सहज ही पहचाने जाते हैं। केवल मूर्तिका मुख सुस्पष्ट नहीं होता—यही इसकी विशेषता है। मूर्तिके विषयमें स्थानीय मार्गदर्शक यह परिचय देते हैं कि श्रीभद्र मारुतिकी यह मूर्ति स्वयम्भू है, औंधी लेटी हुई है। इन्होंने अनेक लोगोंकी मनोकामनाएँ पूर्ण की हैं।

पलगूर—द्वैतमतके संस्थापक आचार्य आनन्दतीर्थ

अर्थात् श्रीमध्वाचार्य श्रीहनुमानजीके अवतार माने जाते हैं। कर्नाटकमें श्रीहनुमानजीकी सर्वाधिक मान्यता है। प्राय: १३वीं शताब्दीसे श्रीमध्वाचार्यके पट्टशिष्योंने समस्त कर्नाटकमें जगह-जगह श्रीमारुतिकी स्थापना की। इनमें कुछ मन्दिरोंमें मूर्तिकी स्थापना श्रीव्यासरायने की—ऐसा माना जाता है। इन मारुति-मूर्तियोंकी विशेषता यह है कि उनकी पूँछ नक्काशी की हुई है। विजयनगरके श्रीयन्त्रोद्धार मारुतिके अतिरिक्त इस प्रकारके श्रीमारुति-विग्रह बीजापुरके पास अचनूर, धारवाड़ जिलेमें भंडीवाड़, बागलकोटके पास तुलसीगिरी और बेलगाँव जिलेमें कल्लालीमें भी हैं। ये मारुति-विग्रह भी प्रभावशाली हैं।

पलगूर कर्नाटकका एक छोटा-सा गाँव है। यहाँके देव-विग्रहकी भक्ति करनेवालोंकी संख्या गणनातीत होनेके कारण इस क्षेत्रका बड़ा महत्त्व है। यह क्षेत्र शोलापुर-हुबली-रेलमार्गपर आलमट्टी स्टेशनसे ६ मीलपर है। यहाँकी मूर्ति अत्यन्त भव्य है और वह आठ फुट ऊँची है। इस देवलके अत्यन्त प्राचीन होनेका उल्लेख बम्बई गजेटियरमें मिलता है। आदिलशाहके समयमें इस मूर्तिके सात अङ्ग भङ्ग कर दिये गये—ऐसा कहा जाता है। इस मन्दिरके पड़ोसमें श्रीसूर्यनारायण और गणपतिके भी मन्दिर हैं।

इंदुरबौधन—यह गाँव तेलंगानामें है। यहाँ समर्थ श्रीरामदास स्वामीके द्वारा स्थापित मठ और श्रीराम-मन्दिर हैं। पास ही श्रीहनुमान-मन्दिर भी है। शकाब्द १५७५ में श्रीसमर्थ तेलंगाना प्रान्तके इंदुरबौधन गाँवमें पधारे। वहाँ उन्होंने ब्राह्मणोंको कोई अनुष्ठान करते हुए देखा। पूछनेपर ब्राह्मणोंने बतलाया कि 'वर्षा-ऋतुमें भी पानी न बरसनेसे सब लोग त्रस्त और चिन्ताग्रस्त हैं। अत: वरुणदेवताको प्रसन्न करनेके लिये वे अनुष्ठान करा रहे हैं।' इतना कहकर वे ब्राह्मण श्रीसमर्थके शरणापन्न हुए। तब श्रीसमर्थने एक पत्थरपर कोयलेसे श्रीहनुमानजीकी मूर्ति बनायी और उसको अपनी दाढ़ीसे लगाया। फिर ब्राह्मणोंके द्वारा उस कोयलेसे बनाये गये मारुतिका अभिषेक कराया। इसके बाद उस प्रान्तमें तीन दिनतक लगातार मूसलाधार वृष्टि हुई। सब लोग सुखी हो गये। तत्पश्चात् गाँववालोंने उस पत्थरको केन्द्रित करके एक मारुति-मन्दिर बनवा दिया। इसी प्रकार समर्थने वहाँ श्रीराम-मन्दिर बनवाकर मठ स्थापित किया। वहाँके मठ और मन्दिरकी व्यवस्था श्रीसमर्थने अपने शिष्य श्रीउद्धव स्वामीको सौंप दिया। उस मारुति-मन्दिरमें मूर्ति न होनेके कारण श्रीहनुमानजीका एक चित्र लगा दिया गया है।

उडुपी—मध्व-सम्प्रदायमें हनुमदुपासना एवं पूजाको विशेष महत्त्व दिया जाता है। श्रीमन्मध्वाचार्यने उडुपीमें एक विशाल 'उडुपीकृष्ण' के मन्दिरकी स्थापना की थी। इसी मन्दिरके एक भागमें श्रीहनुमानजीकी मूर्ति भी स्थापित है। आज भी उडुपीमें यह परम्परा है कि सर्वप्रथम श्रीहनुमानजीकी पूजा की जाती है, तदनन्तर 'उडुपीकृष्ण' की। दक्षिण-भारतके कई श्रीहनुमान-मन्दिरोंमें श्रीहनुमदर्चना आज भी मध्व-सम्प्रदायकी इसी पूजा-पद्धतिके अनुसार ही होती है।

यलगुरु—मध्व-सम्प्रदायमें हनुमानजीको मुख्य प्राण या प्राणदेवके रूपमें भी सम्बोधित किया जाता है। बीजापुर जिलेके यलगुरु ग्राममें यलगुरेश मुख्य प्राणका मन्दिर स्थित है। इन श्रीहनुमानजीके विषयमें यह प्रसिद्धि है कि सेवक जो भी मनोकामना अपने हृदयमें रखकर इनकी सेवा करता है, वह निश्चितरूपसे पूर्ण होती है। श्रीरामनवमीके दिन इस मन्दिरमें एक उत्सव होता है, जिसमें भजन-कीर्तन, रथोत्सव आदि कार्यक्रम होते हैं।

तुलसीगिरी—बीजापुर जिलेके तुलसीगिरी कस्बेमें स्थित हनुमान-मन्दिरकी प्रसिद्धि 'तुलसीगिरी मुख्य प्राण' के नामसे है। ये हनुमानजी वाञ्छित कामनाकी पूर्ति करते हैं। यहाँ हनुमज्जयन्ती मार्गशीर्ष त्रयोदशीके दिन बृहत् उत्सवके रूपमें मनायी जाती है। ग्रामवासी बड़ी संख्यामें इस उत्सवमें भाग लेते हैं।

हम्पी—बेल्लारी जिलेके हम्पी नामक नगरमें एक हनुमान-मन्दिर स्थापित है। इस मन्दिरमें प्रतिष्ठित हनुमानजीको 'यन्त्रोद्धारक हनुमान' कहा जाता है। विद्वानोंके मतानुसार यही क्षेत्र प्राचीन किष्किन्धा है। यह श्रीरामचन्द्रजीके समयमें वानरोंका आवास-स्थान था। आज भी वे गुफाएँ प्राप्त हैं। इस मन्दिरमें श्रीरामनवमीके दिनसे लेकर तीन दिनतक विशाल उत्सव होता है तथा गरीबोंको भोजन कराया जाता है।

कोरवार—यह हनुमान-मन्दिर कोरवार-क्षेत्रमें स्थित है। यह है तो एक छोटा मन्दिर, किंतु यहाँका उत्सव बहुत बृहत् होता है। श्रीरामनवमी तथा हनुमज्जयन्ती—दोनों अवसरोंपर ग्रामवासी बड़ी संख्यामें एकत्र होते हैं और उत्सव मनाते हैं।

कोल्हार—बीजापुर जिलेके कोल्हार ग्राममें

कृष्णानदीके तटपर 'ग्वायिन्दिनी हनुमान' स्थित हैं। यद्यपि यहाँका दृश्य वन्यप्रदेशके समान है, तथापि इस मन्दिरमें नित्य माध्व-पूजापद्धतिके अनुसार श्रीहनुमानजीकी पूजा होती है।

मणूर—यहाँके श्रीहनुमान-मन्दिरकी स्थापना श्रीकृष्ण-द्वैपायनाचार्यने की थी। यह मन्दिर मणूर-क्षेत्रमें भीमानदी (जिसे चन्द्रभागानदी भी कहा जाता है)-के तटपर अवस्थित है। यहाँ भी हनुमज्जयन्तीके अवसरपर रथोत्सव आदि कार्यक्रम होते हैं।

मन्त्रालय—कर्नाटकके मन्त्रालय नामक अति प्रसिद्ध ग्राममें 'श्रीपञ्चमुखी हनुमान' का एक भव्य मन्दिर है। स्वामी श्रीराघवेन्द्रतीर्थजीने इस मन्दिरको स्थापित किया था। यहाँका पूजा-महोत्सव बहुत आकर्षक होता है। ये श्रीहनुमानजी इष्टफलप्रदायक कहे जाते हैं।

अगरखेड़ क्षेत्र—कर्नाटकके अगरखेड़ ग्राममें भीमानदीके तटपर एक मारुति-मन्दिर है। मन्दिर अत्यन्त छोटा है, किंतु यहाँ दर्शनार्थियोंका जमघट लगा रहता है।

दोड़दारापुरम्—कोयम्बटूर जिलेके दोड़दारापुरम् ग्राममें एक आञ्जनेय-मन्दिर है। यह मन्दिर अपने-आपमें एक विशेष स्थान रखता है। इसमें श्रीहनुमानजीकी जो मूर्ति प्रतिष्ठित है, वह इतनी विशाल है कि सीढ़ी लगाकर अभिषेक करना पड़ता है। इस विशाल मूर्तिकी पूजा माध्व-पद्धतिके अनुसार ही होती है। यहाँ हनुमज्जयन्तीके अवसरपर दश दिवसीय उत्सव मनाया जाता है और नित्य प्रसाद वितरण होता है। यहाँका रथोत्सव बड़ा ही मनोरम होता है।

बसवनगुड़ी क्षेत्र—कर्नाटकके बसवनगुड़ी ग्राममें हनुमानजीका एक मन्दिर है। इस मन्दिरकी स्थापना द्वैताचार्य स्वामी श्रीव्यासरायजीके द्वारा हुई है। इसमें जो मूर्ति प्रतिष्ठित है, उसका मुँह दक्षिणकी ओर है और उसकी पूँछमें स्वर्णकी घंटी लगी हुई है। यहाँ भी श्रीरामनवमीको बृहत् उत्सव होता है।

शोलंगीपुरम् क्षेत्र—तमिळनाडु प्रदेशके शोलंगीपुरम् क्षेत्रमें एक पहाड़ीपर हनुमानजीका मन्दिर है। इन हनुमानजीको 'योग हनुमान' के नामसे सम्बोधित किया जाता है।

शियाली क्षेत्र—चिदम्बरम् जिलेसे यह स्थान बारह मील दूर है। यहाँका हनुमान-मन्दिर अति प्रसिद्ध है। इस मन्दिरकी पूजा-व्यवस्था आदि माध्वलोगोंद्वारा ही होती है।

कुत्तालम—मायवरम् जिलेके कुत्तालम ग्राममें हनुमानजीकी एक प्राचीन प्रतिमा है। किंवदन्तियाँ हैं कि इस प्रतिमाकी स्थापना श्रीमन्मध्वाचार्यने ही की थी। मन्दिरमें नित्य माध्व-रीतिसे पूजा होती है और हनुमज्जयन्तीपर विशेष शृङ्गार किया जाता है।

मध्यार्जुनम्—तंजौर जिलेके तिरिविडैमरदूर कस्बेमें एक छोटा-सा हनुमानजीका मन्दिर है। इस मन्दिरकी पूजा द्वैत-सम्प्रदायानुसार होती है। यहाँ भी श्रीरामनवमीको उत्सव आदि होते हैं। —भाऊ आचार्य टोणपे

मंजरथ—श्रीहनुमानजीने अपनी विमाताको मार्जारी-रूपसे यहाँ विमुक्ति दिलायी थी, इसी कारण यह मार्जारक्षेत्र कहलाता है। यहाँ फेना तथा गोदा नदियोंके संगमपर वृषाकपि, सोमेश्वर, हनुमदीश्वर, गणेश तथा त्रिविक्रमजीके विशाल मन्दिर हैं। मन्दिरमें मार्जारी प्रतिमा है। मार्जार-हत्या दूर करनेवाला यही एक क्षेत्र है। औरंगाबादसे माजलगाँवके लिये बस मिलती है। माजलगाँवसे मंजरथ उत्तर दिशामें ६ मील दूर है। यह एक महत्त्वपूर्ण हनुमत्तीर्थ है। —श्रीगोविन्द राजारामजी जोशी

स्वयंप्रभा-तीर्थ—शंकरनयर्ना-कोइलसे १३ मील आगे कडयनल्लूर स्टेशन है। स्टेशनसे लगभग आधा मीलपर श्रीराम-मन्दिर है। वहाँ श्रीहनुमानजीकी एक विशाल मूर्ति है। मन्दिरके पास सरोवर है। पास ही पर्वतमें एक गुफा है, जो ३० फुट लंबी है। कहा जाता है, सीतान्वेषणके समय वानर-समूह जब प्याससे व्याकुल हो गया, तब इसी स्थानपर एक गुफासे जलपक्षियोंको निकलते देख उसके भीतर गया था। गुफामें वानरोंको तपस्विनी स्वयंप्रभाके दर्शन हुए। उसने वानरोंको अपनी योगशक्तिसे समुद्र-तटपर पहुँचा दिया।

नामक्कल—यह स्थान तमिळनाडुके शेलम जिलेमें है। यहाँकी श्रीहनुमानजीकी मूर्ति बारह फुट ऊँची है। सहस्रों आस्तिक इनकी उपासनासे लाभ उठाते हैं।

—श्री ए० वी० शौरिराजन्

शुचीन्द्रम्—यह स्थान कन्याकुमारीसे उत्तर लगभग ८ मीलकी दूरीपर है। यहाँ एक विशाल मन्दिर है, जिसमें ब्रह्मा-विष्णु-महेशके अलग-अलग मन्दिर हैं। इस मन्दिरमें श्रीहनुमानजीकी एक भव्य मूर्ति है। सिंहासनसहित इस मूर्तिकी ऊँचाई लगभग बीस फुट होगी। इस तरहकी भव्य और विशाल हनुमान-मूर्ति अन्यत्र कहीं देखने-सुननेमें नहीं आती। मूर्तिका आकार विशाल होनेपर भी वह आकर्षक और अत्यन्त भव्य है। श्रीहनुमानजीने भगवती सीताके समक्ष अशोक-वाटिकामें जो अपना कनकभूधराकार स्वरूप प्रकट किया था, यह श्रीविग्रह उसीकी स्मृति दिलाता है।—श्री वी० मीना

कन्याकुमारी— भारतभूमिके दक्षिणतम छोरपर अवस्थित प्राचीन तीर्थस्थान देवी कन्याकुमारीके मन्दिरके प्रवेश-प्राकारके अंदर उत्तर-पूर्वकी ओर एक प्रस्तर-स्तम्भके निचले भागपर श्रीराम-भक्त श्रीहनुमानकी संजीवनी-पर्वतधारी एक छोटी-सी आकृति उत्कीर्ण है। मन्दिरके दर्शनार्थी भक्तगण श्रीहनुमानजीकी इस मूर्तिको प्रणाम करके आगे बढ़ते हैं। प्रत्येक शुक्रवार तथा पूर्णिमाके दिन भक्तगण इस मूर्तिपर मक्खनका लेप करवाते हैं।

मरुत्वा मलै— तिरुअनन्तपुर-कन्याकुमारी-राजमार्गके किनारे 'मरुत्वा मलै' नामक एक छोटी-सी लगभग १६०० फुट ऊँची पहाड़ी है। इस पहाड़ीका शुद्ध नाम 'मरुन्दुवाडुम मलै' है। इस तमिळ शब्दका अर्थ है— ओषधियोंसे फूली-फली पहाड़ी। इसके ऊपर चढ़नेपर कन्याकुमारीके आसपासके अन्य स्थल तथा तीनों दिशाओंमें स्थित समुद्रका अति सुन्दर दृश्य एक साथ दृष्टिगोचर होता है। इस पहाड़ीके विषयमें ऐसा कहा जाता है कि श्रीहनुमानजी जब हिमालयसे संजीवनी-पर्वत लेकर आकाशमार्गसे आ रहे थे, उस समय उसका एक टुकड़ा यहाँ गिर पड़ा, वही 'मरुत्वा मलै' अथवा 'मरुन्दुवाडुम मलै' कहा जाता है। इस पहाड़ीपर महत्त्वपूर्ण जड़ी-बूटियाँ मिलती हैं।

यह पहाड़ी साधुओंकी साधना-स्थली भी रही है। प्रत्येक कार्तिक मासके कृत्तिका-नक्षत्रकी रात्रिमें पहाड़ीकी चोटीपर सारी रात अग्नि प्रज्वलित करनेकी परिपाटी अभीतक चली आ रही है। यह अग्नि दूर-दूरतक दिखायी पड़ती है।

पहाड़ीपर चढ़ाईके लिये बने हुए मार्गके प्रारम्भमें किनारेपर अवस्थित एक चट्टानपर संजीवनी-पर्वतधारी श्रीहनुमानजीकी एक छोटी-सी (लगभग २ फुट लंबी) मूर्ति उत्कीर्ण है। —श्रीपद्मनाभन्‌जी

नन्दी दुर्ग— यह मैसूरके कोलर जिलेमें है और नन्दी रेलवे-स्टेशनसे कुल ३ मीलकी दूरीपर है। आसपासकी जनतामें इसका नाम शृङ्गी पर्वत तथा कूष्माण्ड पर्वत भी विख्यात है। पर्वतकी उपत्यकामें अरुणाचलेश्वर तथा भोग-नन्दिकेश्वरके दो मन्दिर हैं। दोनों ही मन्दिर नवीं शतीके बने हैं। इनकी दीवालोंपर हनुमानजीका वीणा बजाते तथा (रामेश्वरकें) सैकतलिङ्गको उखाड़ते, विष्णुभगवान्‌का सोमकको वध करते तथा श्रीकृष्णभगवान्‌की माखन-चोरीके चित्र अङ्कित हैं।

रामेश्वरम्—श्रीविश्वनाथ (हनुमदीश्वर)— श्रीरामेश्वरम् तमिळनाडुके श्रीरामनाथपुरम् जनपदका भारत-प्रसिद्ध पवित्र धाम है। चारों दिशाओंके चार धामोंमें रामेश्वरम् दक्षिण दिशाका धाम है और यह एक समुद्री द्वीपमें स्थित है। श्रीरामेश्वरजीके मन्दिरके सम्मुख विस्तृत सभा-मण्डप है। श्रीरामेश्वर-मन्दिरके उत्तरकी ओर सटा हुआ श्रीविश्वनाथ (हनुमदीश्वर)-मन्दिर है। यह लिङ्ग हनुमानजीका लाया हुआ है। नियम यही है कि पहले श्रीविश्वनाथका दर्शन-पूजन करके तब श्रीरामेश्वरम्‌का दर्शन करना चाहिये।

श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामके आदेशसे कैलाससे शिव-लिङ्ग लाये थे, जो श्रीरामेश्वरम्‌के समीप विश्वनाथ-लिङ्ग नामसे स्थापित है। उसके पश्चात् अपने एक अंशसे श्रीविग्रह-रूपसे हनुमानजी यहाँ स्थित हुए। यह मूर्ति अत्यन्त विशाल है।

भगवान् श्रीराम लंका-युद्धमें विजयी होकर पुष्पक विमानके द्वारा जब अयोध्याकी ओर चले, तब उनके मनमें यह खेद था कि 'रावण ब्राह्मण था। उसे और उसके कुलके लोगोंको मारना ब्रह्महत्याके पापके समान ही हुआ।' इसका प्रायश्चित्त जाननेके लिये भगवान्‌ने समुद्र-पार अगस्त्यजीके आश्रमके पास विमानको उतार दिया। अगस्त्यजीके आदेशसे रावण-वधके प्रायश्चित्तस्वरूप प्रभुने शिव-लिङ्गके स्थापनका निश्चय किया और हनुमानजीको कैलासपर दिव्य लिङ्ग-मूर्ति लानेके लिये भेजा। हनुमानजी कैलास गये, किंतु उन्हें भगवान् शंकरके दर्शन नहीं हुए। इससे वे तप करते हुए भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे। अन्तमें भगवान् शंकर प्रकट हुए और उन्होंने हनुमानजीको अपनी दिव्य लिङ्ग-मूर्ति दी।

इधर मूर्ति-स्थापनाका मुहूर्त बीता जा रहा था। श्रीजानकीजीने क्रीड़ापूर्वक बालूका एक लिङ्ग बना लिया था। ऋषियोंके आदेशसे श्रीरघुनाथजीने उसीको स्थापित कर दिया। वही श्रीरामेश्वर-लिङ्ग है, जिसे स्थानीय लोग श्रीरामनाथलिङ्गम् भी कहते हैं।

श्रीहनुमानजी लौटे तो उन्हें एक अन्य लिङ्गकी स्थापनासे बड़ा खेद हुआ। इससे प्रभुने कहा—'तुम यदि मेरे द्वारा स्थापित लिङ्गको हटा सको तो मैं तुम्हारा लाया लिङ्ग-विग्रह ही यहाँ स्थापित कर दूँ।' हनुमानजीने श्रीरामेश्वर-लिङ्गको अपनी पूँछसे लपेटकर उसे उखाड़नेका पूरा प्रयत्न किया, किंतु वे सफल नहीं हुए। उलटे पूँछका बन्धन खिसक जानेसे वे दूर जा गिरे और मूर्च्छित हो गये। श्रीजानकीजीने उन्हें सचेत किया।

भगवान् श्रीरामने कहा—'जानकीजीद्वारा निर्मित और मेरे द्वारा स्थापित मूर्ति तो अविचल है, वह हटायी नहीं जा सकती। तुम अपनी लायी मूर्ति उसीके पास स्थापित कर दो। जो तुम्हारे द्वारा लायी हुई मूर्तिका दर्शन नहीं करेगा, उसे श्रीरामेश्वर-दर्शनका फल नहीं प्राप्त होगा।' हनुमानजीने कैलाससे लायी हुई मूर्ति वहीं स्थापित कर दी। भगवान्ने उसका पूजन किया। वही मूर्ति काशी-विश्वनाथ (हनुमदीश्वर)-के नामसे प्रसिद्ध है।

हनुमत्कुण्ड—गन्धमादन-पर्वतपर श्रीरामेश्वर-मन्दिरसे उत्तर-पश्चिम तीन फर्लांगपर हनुमत्कुण्ड है। इसको श्रीहनुमानजीने बनाया था। भगवान् श्रीरामचन्द्र रावणका वध करके लंकासे यहींपर आये थे। उनकी सेनाने इसी स्थानपर युद्धजनित श्रम दूर करनेके लिये विश्राम किया था। ऐसी जनश्रुति है कि जो स्त्री पुत्रकी कामनासे इस पवित्र कुण्डमें स्नान करती है, वह अवश्य ही पुत्र-रत्न प्राप्त करती है। इस सम्बन्धमें एक लोकविश्रुत प्राचीन आख्यान है—

प्राचीन कालकी बात है। अत्यन्त नीतिज्ञ, प्रजापालक, शत्रुविजयी एवं परम धार्मिक एक धर्मसख नामक प्रख्यात नरेश राज्य करते थे। नरेशने सौ विवाह किये, किंतु उन्हें कोई संतान न हुई। धीरे-धीरे राजाकी आयु ढलने लगी और राज्यके उत्तराधिकारीके बिना वे अत्यधिक चिन्तित रहने लगे।

एक दिन नरेशने विद्वान् ब्राह्मणों एवं दैवज्ञोंको बुलाकर उनके सम्मुख अपनी चिन्ता इस प्रकार व्यक्त कर दी—'पूज्यचरण द्विजवरो ! संतान-प्राप्तिकी कामनासे मैंने सौ विवाह किये, किंतु मेरी किसी भी पत्नीसे कोई संतान नहीं हुई। अब मेरी वृद्धावस्था आ चली है और राज्यका कोई उत्तराधिकारी नहीं है। अतएव मेरी प्रत्येक पत्नी एक-एक योग्यतम पुत्र प्राप्त कर ले, इसके लिये कृपापूर्वक कोई यत्न बतलाइये। एतदर्थ मैं प्रत्येक व्रत, उपवास एवं कठोरतम तपश्चरणके लिये प्रस्तुत हूँ।'

समस्त ऋत्विज् एवं पुरोहितोंने गम्भीर मन्त्रणाके अनन्तर राजा धर्मसखसे कहा—'राजन् ! दक्षिण सागरके मध्य सेतुके रूपमें गन्धमादन नामक पर्वत है। वहाँ दु:ख-दारिद्र्यका नाश एवं समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला मोक्ष-प्रदाता हनुमत्कुण्ड है। वहाँ मन एवं इन्द्रियोंको संयमितकर स्नानोपरान्त सविधि पुत्रेष्टि-यज्ञ करनेसे तुम्हारी पत्नियोंको एक-एक पुत्रकी प्राप्ति हो सकती है। उस कुण्डकी अमित महिमा है।'

महाराज धर्मसख अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे यज्ञोपयोगी सामग्रियोंसहित अपनी पत्नियों, मन्त्रियों और सेवकोंके साथ गन्धमादन-पर्वतके लिये प्रस्थित हुए। वहाँ जाकर उन्होंने श्रद्धा-विश्वासपूर्वक हनुमत्कुण्डमें स्नान किया। वे अपनी स्त्रियों आदिके सहित उस पवित्र कुण्डमें प्रतिदिन स्नानकर श्रीपवनकुमारका स्मरण एवं उनके चरणोंकी वन्दना करने लगे। चैत्र मास आनेपर नरेशने विधिपूर्वक पुत्रेष्टि-यज्ञका संकल्प ग्रहण किया। पुरोहित और ऋत्विजोंके शुभ सहयोगसे यज्ञ-कर्म विधिवत् सम्पन्न हुआ। तदनन्तर पुरोहितने हवनसे बचे हुए हविष्यको नरेशकी समस्त पत्नियोंको ग्रहण करनेके लिये दे दिया। धर्मपरायण नरेश धर्मसखने अपनी स्त्रियोंके साथ यज्ञान्त स्नानकर ऋत्विजोंको पुष्कल दक्षिणा एवं ब्राह्मणोंको अत्यन्त आदरपूर्वक दान देकर संतुष्ट कर दिया। फिर वे प्रसन्न-मन अपनी राजधानी लौटे।

दसवाँ मास व्यतीत होते ही प्रजापालक धर्मसख नरेशकी समस्त पत्नियोंने एक-एक सुन्दर एवं सद्गुण-सम्पन्न पुत्र उत्पन्न किये। उन पुत्रोंके यौवनमें प्रवेश करते ही नरेशने उनमें राज्य-वितरण कर दिया और स्वयं पत्नियोंसहित तपश्चरणार्थ गन्धमादन-पर्वतपर चले गये। वे वहाँ प्रतिदिन नियमपूर्वक हनुमत्कुण्डमें स्नानकर परमकारुणिक भगवान् सतीपति शिवका ध्यान करते हुए तपश्चरण करने लगे। उनकी सौ पत्नियाँ भी अपने पतिका अनुसरण करती हुई तपस्यामें संलग्न थीं। इस प्रकार राजा धर्मसख अपनी स्त्रियोंसहित गन्धमादन-पर्वतपर जीवनान्त तपश्चरण करते ही रहे। शरीर-त्यागके पश्चात् उन्होंने अपनी पत्नियोंसहित परम सुखमय वैकुण्ठ-लोक प्राप्त कर लिया।

श्रीरामेश्वरम्-मन्दिरसे एक मीलपर सीताकुण्डके पास ही श्रीहनुमानकी पञ्चमुख-मूर्तिवाला मन्दिर है। इसके अतिरिक्त रामझरोखेके रास्तेमें एक मन्दिरमें श्रीहनुमानके बालरूपकी सुन्दर मूर्ति है। कहते हैं कि श्रीहनुमानजीने समुद्र पार करनेका अनुमान यहींसे किया था।

महाराष्ट्रके प्रमुख श्रीहनुमान-मन्दिर

पूना—(क) डुल्या मारुति—गणेशपेठके ये मारुति अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। श्रीडुल्या मारुतिका मन्दिर सम्भवत: ३५० वर्ष पूर्वका है। सम्पूर्ण मन्दिर पत्थरका बना हुआ है एवं अतिशय आकर्षक और भव्य है। वस्तुत: डुल्या मारुतिकी मूर्ति एक काले पत्थरपर उत्कीर्ण है। यह श्रीमूर्ति पाँच फुट ऊँची, ढाईसे तीन फुट चौड़ी तथा अत्यन्त भव्य और पश्चिमाभिमुख है। इस भव्य काली मूर्तिके लावण्यके साथ शुभ्र नेत्रकी ज्योति सजीव हो गयी है। मूर्तिके दाहिने पार्श्वमें श्रीगणेशजीकी एक छोटी-सी मूर्ति है। इस मूर्तिकी स्थापना श्रीसमर्थ रामदास स्वामीने की थी, ऐसा वहाँके पुजारीका कथन है। सभामण्डपमें गर्भागारके द्वारके ठीक सामने छतसे टँगा एक मध्यम आकारका पीतलका घंटा है। उसके ऊपर शक-संवत् १७०० खुदा हुआ है।

(ख) सोन्या मारुति—लक्ष्मी-मार्गपर स्थित यह मन्दिर सर्वत्र प्रसिद्ध है। सोन्या मारुतिका मन्दिर बिलकुल छोटा—प्राय: तीन फुट चौड़ा और पाँच-छ: फुट ऊँचा है तथा रास्तेसे तीन फुट ऊँचे चबूतरेपर बना है। मन्दिर और श्रीमूर्ति पश्चिमाभिमुख है। इस मूर्तिके नीचे बगलमें देव-मन्दिरकी भूमिपर ही एक दूसरी प्राय: ९-१० इंच ऊँची सिन्दूरसे ढकी हुई मूल मूर्ति है।

सज्जनगढ़—सतारासे सज्जनगढ़को मोटर-बस जाती है। यहाँ श्रीसमर्थ स्वामी रामदासजीकी समाधि है। श्रीसमर्थ-मठ अत्यन्त विस्तृत है। इसमें श्रीराम-मन्दिर तथा श्रीसमर्थ स्वामी रामदासजीका समाधि-मन्दिर—ये दो मुख्य मन्दिर हैं। श्रीराम-मन्दिरमें श्रीरामके सम्मुख दास-हनुमानकी सुन्दर मूर्ति है। ये मूर्तियाँ श्रीसमर्थद्वारा प्रतिष्ठित एवं पूजित हैं। श्रीराम-मन्दिरके उत्तर श्रीसमर्थका समाधि-मन्दिर है। श्रीसमर्थकी समाधि कुछ सीढ़ियाँ नीचे उतरनेपर मिलती है।

श्रीजरंडेश्वर—पूना-सतारा-मार्गपर सतारारोड स्टेशनसे लगभग दो मीलपर जरंडेश्वर पहाड़ी है। उस पहाड़ीपर श्रीहनुमानजीका पुराना स्थान है। जाँव, माहुली, कोरेगाँव और पाडली—इन चार स्थानोंसे जरंडेश्वरपर चढ़नेका रास्ता है। श्रीमारुतिका मन्दिर भव्य होनेपर भी यहाँके सभा-मण्डपका काम अव्यवस्थित है। श्रीमारुतिकी मूर्ति स्वयम्भू है और ३-४ फुट ऊँची है तथा आसपास छत्र-चामर होनेके कारण प्रभावपूर्ण है। यह स्थान अत्यन्त प्राचीन है। मन्दिरके पास ही श्रीरामका भव्य मन्दिर है। बाहरी मैदानमें दाहिनी ओर एक छोटा-सा मन्दिर है, जो नरसिंहका चबूतरा कहलाता है। उस चबूतरेके सामने अन्नपूर्णादेवीका मन्दिर है। इस मन्दिरके पीछे कोरेगाँव-मार्गका उतार पड़ता है, जहाँसे श्रीसमर्थ रामदास स्वामीकी तपश्चर्याकी गुहा दीख पड़ती है। माहुलीसे आकर श्रीसमर्थ रामदास स्वामीने कुछ दिनतक जरंडीके मारुति-मन्दिरमें निवास किया था। इस मन्दिरके आगे भव्य दीपमाल है। इस स्थानके सम्बन्धमें एक पौराणिक कथा है—श्रीराम-रावण-युद्धमें जब लक्ष्मणजी शक्ति लगनेसे मूर्च्छित हो गये, तब जाम्बवान् और सुषेणने श्रीमारुतिको धवलागिरिसे ओषधि लानेके लिये प्रेरित किया। श्रीमारुतिने धवलागिरिको ही उखाड़ लिया। उसे लेकर आते समय उसका एक भाग यहाँ गिर पड़ा, वही यह जरंडेश्वरकी पहाड़ी है। इस पहाड़ीपर अनेक ओषधियाँ मिलती हैं, यहाँके मुख्य देवता श्रीहनुमानके होनेका यही कारण है। कालान्तरमें श्रीराम-मन्दिर भी बन गया।

सुर्जी-अंजनगाँव—विदर्भमें अमरावती नगरीसे पश्चिम पचास मीलकी दूरीपर यह गाँव है। इस गाँवमें शहानूर नदीके तटपर देवनाथ-मठ है। १७०० शक-संवत्के लगभग श्रीदेवनाथ महाराज नामक एक सिद्ध महापुरुषने इस मठको स्थापित किया था। श्रीदेवनाथ महाराजके महाबली हनुमानजी आराध्य देव थे। इन्हें मारुतिका अवतार माना जाता था। मारुतिके आदेशानुसार उन्होंने संत एकनाथ महाराजकी गद्दीके तत्कालीन महापुरुष श्रीगोविन्दनाथ महाराजपर अनुग्रह किया था। वहाँके मठमें श्रीवीर मारुतिकी स्थापना इन्होंने ही की थी। इस क्षेत्रमें हनुमानजीका यह स्थान तभीसे प्रसिद्ध है। मठमें और भी कई देव-विग्रह हैं।

सांगली—सांगली रेलवे-स्टेशनसे दो मीलकी दूरीपर कृष्णा नदीके विष्णुघाटपर हनुमानजीका एक मन्दिर है, इसका नाम तपोवन हनुमानजी-मन्दिर है। यह मन्दिर प्राय: ३०५ वर्ष पूर्वका है। इसका द्वार पूर्वाभिमुख है और सामने कृष्णाका प्रवाह है। श्रीहनुमानजीकी मूर्ति लगभग १५ इंच ऊँची है। इस मूर्तिकी स्थापना श्रीरामदास-पञ्चायतनके श्रीआनन्दमूर्तिजीने १९९१ शकाब्दके भाद्रपद मासमें की थी। श्रीरामदास-पञ्चायतनमें १-श्रीसमर्थ रामदास स्वामी, २-जयराम स्वामी, ३-रंगनाथ स्वामी, ४-केशव स्वामी और ५-आनन्दमूर्ति थे।

अष्टे—सांगलीसे १८ किलोमीटरकी दूरीपर अष्टे (या अष्टा) है। यहाँके मन्दिरमें हनुमानजीकी मूर्ति प्राचीन होते हुए भी भव्य है। वह दक्षिणाभिमुख है और लगभग साढ़े पाँच फुट ऊँची, साढ़े तीन फुट चौड़ी और खड़ी है। मूर्तिका दाहिना हाथ कमरसे कुछ ऊपर स्थित है, बायाँ हाथ अभय-मुद्रामें है, मानो मारुति भक्तजनोंको अभय वरदान दे रहे हैं। श्रीमूर्तिकी मुद्रा तेजस्वी और गोलाकार है। इस मूर्तिकी स्थापना लगभग ७५० वर्ष पूर्व की गयी होगी। हनुमानजीका मन्दिर अत्यन्त विशाल आकारका है, इसकी बनावट चौकोर है और सम्पूर्ण मन्दिर पत्थरका बना हुआ है। मन्दिरका ऊपरी भाग छताकार होनेके कारण उसके ऊपर कलश नहीं है। लोगोंका विश्वास है कि ग्यारह शनिवारतक इनकी प्रदक्षिणा करने और रुईकी माला चढ़ानेसे मनुष्यकी मनोकामना पूरी होती है।

बेलगाँव—यहाँसे चार-पाँच मीलकी दूरीपर श्रीमाल-मारुतिका सुप्रसिद्ध हनुमान-मन्दिर है। इस मन्दिरमें हनुमानजीकी पुरानी स्वयम्भू मूर्ति है। ये मारुति मनौती ग्रहण करते हैं, ऐसी लोगोंकी दृढ़ धारणा है। बेलगाँव और आसपासकी बड़ी-बड़ी मण्डलियाँ नित्य नियमसे इन मारुतिके दर्शनके लिये जाती हैं।

चण्डकापुर—हुमणाबाद (गुलबर्गा)-के समीप चण्डकापुरगाँवमें, जहाँ बस खड़ी होती है, हनुमानजीकी एक खुली मूर्ति है। यह मूर्ति इतनी विशाल एवं आकर्षक है कि एक मीलकी दूरीसे ही दीख पड़ती है। मूर्ति अत्यन्त प्राचीन है।

वारामती, मलद और गुणवडी—इन तीन गाँवोंकी सीमापर श्रीमारुतिका स्थान होनेसे यहाँके श्रीहनुमानजी 'सिवानेके मारुति' या 'मलद मारुति' के नामसे पुकारे जाते हैं। यहाँ पूनासे आनेमें सुविधा है। श्रीहनुमानकी यह मूर्ति लगभग दो फुट ऊँची एवं पूर्वाभिमुखी है। इनके एक हाथमें गदा है और दूसरा हाथ ऊपर उठा हुआ है। मूर्ति छोटी होनेपर भी आकर्षक है। यह मारुति-मन्दिर अत्यन्त प्राचीन जान पड़ता है। मन्दिरमें पीपल-वृक्षके नीचे एक गुफा है, जिसमें एक नाग रहता है। यात्रियोंका कथन है कि महाराज ही नागरूपमें प्रकट होते हैं। इसके पीछे कन्हा नदी दक्षिण-वाहिनी होकर आगे जाती है।

सिवानेपर (शिवेदर)-के इन मारुतिकी स्थापना श्रीसमर्थ रामदास स्वामीके पट्टशिष्य श्रीकल्याण स्वामीने की थी। श्रीकल्याण स्वामीके पट्टशिष्य श्रीरामानन्द स्वामीने इस देवस्थानका निर्माण कराया था। इन स्वामीजीकी समाधि गाँवके श्रीराम-मन्दिरमें है। 'मलद मारुति' के मन्दिरमें एक सुरङ्ग होनेके कारण वे सीधे श्रीराम-मन्दिरमें निकलते थे, ऐसा कहा जाता है। यह स्थान प्रभावशाली है। कुसंस्कारयुक्त व्यक्तियोंका इस मन्दिरमें रहना असम्भव है। इतना ही नहीं, पवित्रतापूर्वक आकर रहनेवालोंके लिये भी तीन दिनसे अधिक रहना सम्भव नहीं होता। यहाँ प्रत्येक रातको १२ बजेसे ४ बजेके बीच घंटी और पञ्चवाद्यकी ध्वनि सुननेमें आती है, ऐसा गाँववाले कहते हैं और बहुतोंको इसका प्रत्यक्ष भी हुआ है। मारुति-मन्दिरकी सुरङ्गका दूसरा मुख, जो श्रीराम-मन्दिरमें निकलता है, वारामती गाँवमें होनेके कारण इसी मन्दिरके अधीन है। यह श्रीराम-मन्दिर उत्तराभिमुख है, उसमें शुभ्र संगमरमरकी प्रायः डेढ़ फुट ऊँची श्रीराम-लक्ष्मण-सीताकी मूर्तियाँ हैं। बगलमें दास-मारुतिकी छोटी-सी मूर्ति है। मन्दिरमें रातको १२ से ३ बजेके बीच कोई पूजा करने आता हुआ जान पड़ता है। उस समय धूपबत्तीकी सुगन्ध फैलती है और श्रीराम-श्रीरामका शब्द सुनायी देता है। लोगोंका मत है कि श्रीरामानन्द स्वामी ही समाधिसे बाहर आकर पूजा करते हैं।

'साँप' गाँव—रहिमतपुरसे लगभग दो-ढाई मीलपर यह गाँव बसा हुआ है। इस गाँवमें श्रीमारुतिका एक मन्दिर है, जो इस प्रदेशमें बहुत प्रसिद्ध है। इस मारुति-मन्दिरकी स्थापनाके विषयमें जो कथा सुनी जाती है, उससे इस गाँवके नामकरणका वैचित्र्य समझा जा सकता है।

आजकल हनुमान-मन्दिर जिस जगहपर है, वहाँ पहले एक बड़ी बाँबी थी और वर्तमान गाँवके स्थानपर चरागाह एवं जंगल-झाड़ था, गाँव कुछ अन्तरपर बसा था। इस जंगलमें चरवाहे अपने पशु चरानेके लिये ले जाते थे। वहाँ एक चरवाहेकी एक गायने दूध देना बंद कर दिया। इससे चरवाहेके मनमें यह शङ्का हुई कि कोई नित्य चोरीसे दूध पी जाता होगा। अतएव उस गायके ऊपर एक रखवाला नियत कर दिया गया। एक दिन ऐसा देखनेमें आया कि वह गाय एक बाँबीके ऊपर खड़ी हो जाती है और उसपर दूधकी धार छोड़ती है। उस दूधको बाँबीके भीतरका साँप पी जाता है। यह देखनेके बाद उस चरवाहेने उस साँपको मार डालनेका प्रयत्न किया; परंतु इसमें उसे सफलता न मिली। वह साँप अदृश्य हो गया। उसी रातमें चरवाहेको

स्वप्न हुआ—'सर्पको मारनेका प्रयास मत करो, इस बाँबीके स्थानपर हनुमान-मन्दिर बनवाओ।'—इस आदेशके अनुसार उसने मन्दिर बनवाकर उसमें श्रीमारुतिकी मूर्ति स्थापित की। तब मारुति-विग्रहको उस गायके दूधसे स्नान कराया जाने लगा। मारुति-महिमाकी यह कथा सुनकर धीरे-धीरे लोगोंने मन्दिरके समीप बसना प्रारम्भ कर दिया। यह स्थान प्रभावशाली माना जाता है। यहाँ श्रीहनुमज्जयन्ती बड़ी धूमधामसे मनायी जाती है।

अम्बाझरी—यह स्थान नागपुरसे लगभग सात मीलकी दूरीपर है। इसके समीप पहाड़ीपर एक बहुत पुराना और विशाल हनुमान-मन्दिर है। मन्दिरमें श्रीहनुमानजीकी मूर्ति भी पाँच-साढ़े पाँच फुट ऊँची है। इस स्थानकी विशेषता यह है कि इस मन्दिरमें मूर्तिके सामने भक्त दीन-भावसे जो कुछ माँगेगा, वह उसे प्राप्त होगा। भावुक जनोंकी इच्छित वस्तुके प्रदाता होनेके कारण ये श्रीमारुति इस क्षेत्रमें कल्पवृक्षके समान माने और पूजे जाते हैं।

कन्हेरी—यह गाँव पूना-सतारा-मार्गपर शिरवलसे सात मीलपर है। यहाँका मारुति-मन्दिर पत्थरसे बना हुआ है और ऐसा कहा जाता है कि यह पाण्डवोंके समयका है। श्रीहनुमानजीकी मूर्ति भी उतनी ही पुरानी और दर्शनीय है। इस मन्दिरके सामने ही श्रीवासुदेव स्वामीका श्रीराम-मठ है। वहाँका श्रीराम-मन्दिर भी दर्शनीय है। श्रीवासुदेव स्वामी श्रीसमर्थ रामदास स्वामीके शिष्य थे और विद्वत्तामें उनके सब शिष्योंमें श्रेष्ठ थे। वे बड़े विद्वान् थे, पूर्वाश्रममें उनका नाम सदाशिव शास्त्री मेवलेकर था। वे सदाचारी, सत्यवादी और ईश्वरभक्त थे, उन्होंने अपनी विद्वत्ताके अहंकारको सर्वथा त्याग दिया था। सदाशिव शास्त्री श्रीहनुमानजीके परम भक्त थे। श्रीसमर्थका शिष्यत्व ग्रहण करनेके बाद वे ही वासुदेव स्वामीके नामसे प्रसिद्ध हुए और कन्हेरीमें रहने लगे। यहाँके मारुति-मन्दिरकी व्यवस्था कन्हेरीके श्रीराम-मठके द्वारा होती है। प्रतिवर्ष श्रीरामनवमी और हनुमज्जयन्तीके दिन बड़े समारोहसे उत्सव मनाया जाता है।

खेड—यह गाँव आलन्दी-मार्गपर है। इस गाँवकी सीमापर एक मारुति-मन्दिर है। मन्दिर छोटा है तथापि यहाँकी हनुमान-मूर्ति भव्य और प्राय: पाँच-साढ़े पाँच फुट ऊँची है। मूर्तिके सिरपर कील ठोंकी हुई है। इस विषयमें एक विचित्र कथा सुननेको मिलती है। पहले यह मूर्ति छोटी और खुली जगहमें थी। गाँवके लोगोंने उसके चारों ओर मन्दिर बनवाना आरम्भ किया। मन्दिरकी दीवालें बन जानेपर उसके ऊपर छत बनानेका काम इसलिये पूरा नहीं हो पाता था कि मूर्ति बड़ी हो जाती थी। तब किसीने राय दी कि यदि श्रीहनुमानजीकी मन्दिरपर छत बनानेकी इच्छा न हो तो रहने दो। पर बढ़ई हठ कर गया। उसने बढ़नेवाले हनुमानके सिरपर कील ठोंक दी। तबसे श्रीहनुमानजीका ऊँचा बढ़ना रुक गया। इससे उद्देश्य तो सफल हो गया और मन्दिर भी पूर्ण हो गया; परंतु उसके बाद उस बढ़ईके घर तरह-तरहके उपद्रव होने लगे और अन्तमें उसका वंश ही समाप्त हो गया।

पुलसा—अमरावती जिलेके मोर्शी तालुकामें यह एक गाँव है, जो बेल नदीके किनारे बसा है। वहाँ बेल नदीके तटपर ही श्रीहनुमानकी विशिष्ट मूर्ति है। मूर्ति लगभग पाँच फुट ऊँची, गदाधारी और भव्य है। यह मूर्ति सन् १९०८ ई०में बेल नदीसे प्राप्त हुई थी। मूर्तिको नदीके किनारेसे गाँवमें लानेके लिये गाँववालोंने बहुत प्रयत्न किया, पर उन्हें सफलता न मिली। कितना भी प्रयत्न करनेपर मूर्ति अपनी जगहसे न हिली। उसे रखनेके लिये १०—१२ फुट ऊँचा एक चबूतरा बनवाया गया था। अन्तमें सायंकाल हो जानेपर मूर्तिको छोड़कर वे लोग वापस चले गये। दूसरे दिन प्रात:काल गाँववालोंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि अनेक आदमियोंके सम्मिलित प्रयत्नसे भी जो मूर्ति अपनी जगहसे टस-से-मस नहीं हो रही थी, वह आज चबूतरेपर विराजमान है। यह चमत्कार देखकर गाँववाले आनन्दित हो उठे तथा विधिपूर्वक मूर्तिकी पूजा-अर्चा की। तत्पश्चात् एक और चमत्कार गाँववालोंके देखनेमें आया। श्रीमारुतिकी भव्य मूर्तिकी कमरसे ऊपरका भाग प्रत्येक ३-३ मिनटपर हिलता हुआ दीखने लगा। केवल कमरसे नीचेका भाग स्थिर था। इस चमत्कारका रहस्य खुल न सका; परंतु इस समाचारसे श्रद्धालुओंकी श्रद्धा और संख्या—दोनों बढ़ गयीं।

भाणगाँव—इस स्थानको श्रीवासुदेवानन्द सरस्वती तथा श्रीठेंबे स्वामीके जन्मस्थान और निवासभूमि होनेका गौरव प्राप्त है। यहीं ठेंबे स्वामीका बनवाया हुआ दत्त-मन्दिर है। इसीके अहातेमें मन्दिरके सामने ही पीपल-वृक्षके नीचे श्रीआजरेकर बुवाद्वारा स्थापित श्रीहनुमानजीकी मूर्ति विराजित है। पहले वह मूर्ति छोटी होनेके कारण उघड़ी हुई थी; परंतु पीछे श्रीठेंबे स्वामीने पर्दा खड़ा कर दिया। श्रीआजरेकर बुवाको श्रीहनुमानजीका अवतार माना जाता है। वे भावावेशमें एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर कूद जाते थे और सिन्दूर प्राशन करते थे। श्रीठेंबे स्वामीके ऊपर उनका बड़ा प्रेम था। उन्हींके लिये

उन्होंने श्रीमारुति-मन्दिरकी स्थापना की और संकट-निवारणका भार भी उन्हींको सौंप दिया।

रामपायली—भण्डारा जिलेमें तुमसर-वाराशिवनी-मार्गपर चनई नदीके किनारे यह एक छोटा-सा गाँव है। इस गाँवमें नदीके किनारे भगवान् श्रीरामका पुराना मन्दिर है, उसके निकट हनुमानजीका अति प्राचीन मन्दिर है। कहा जाता है कि इसी भूभागमें श्रीरामचन्द्रजीने शबरीको दर्शन दिया था। भगवान् श्रीरामके पाद-स्पर्शसे पुनीत होनेके कारण यह गाँव पहले 'राम-पायावली' नामसे प्रसिद्ध था। यहाँकी हनुमान-मूर्ति अत्यन्त प्रभावशाली है। इसकी विशेषता यह है कि मूर्तिका एक पैर लँगड़ा है और दूसरा पैर भूमिमें गहराईतक धँसा हुआ है। इसका पता लगानेके लिये लोगोंने उसके पासकी भूमि खोदी थी, परंतु कुछ पता न लग सका। इसी कारण यहाँके मारुतिको लोग 'लँगड़ा मारुति' के नामसे पुकारने लगे।

मालशिरस—यह स्थान सोलापुर जिलेमें है। यहाँ श्रीमारुतिका भव्य और प्रख्यात मन्दिर है। इसमें स्थापित श्रीहनुमानजीकी मूर्ति लगभग साढ़े चार फुट ऊँची है। मन्दिरके पास ही कुआँ है। इस गाँवके पाटील हनुमानजीके परम भक्त थे। कहा जाता है कि तत्कालीन किसी वरिष्ठ सरकारी अधिकारीने अधिक रात्रि व्यतीत हो जानेपर पाटीलसे एक लोटा दूधकी माँग की। उस समय दूधका मिलना सम्भव न था। अन्तमें पाटीलने श्रीमारुतिके बलपर कुएँसे एक लोटा पानी निकालकर अधिकारीके पास भेज दिया। आश्चर्यकी बात है कि वह पानी दूध हो गया। इससे प्रभावित होकर उस अधिकारीने मन्दिरपर स्वर्ण-कलश लगवा दिया और पूजा-अर्चाके निमित्त कुछ वृत्ति भी नियत कर दी। यहाँ हनुमज्जयन्तीका उत्सव बड़े समारोहसे मनाया जाता है।

निंबरगी—पंढरपुर रेलवे-स्टेशनसे लगभग चालीस मीलकी दूरीपर यह स्थान है। पंढरपुरसे यहाँतक बस जाती है। गाँवके पास नदीके किनारे एक परकोटा है। उसके भीतर मन्दिर है। मन्दिरमें भगवान् श्रीरामकी मूर्ति है। उसके समीप ही शिव-लिङ्ग स्थापित है। लोगोंकी धारणा है कि यह स्वयम्भू-लिङ्ग है। कहा जाता है कि श्रीरामकी मूर्ति और शिव-लिङ्ग—दोनों एक ही शिलामें हैं। इस स्थानको हरिहरात्मक माना जाता है। मन्दिरके आस-पास धर्मशालाएँ बनी हैं।

कहते हैं, यहाँ हनुमानजीने बहुत समयतक तपस्या करके भगवद्दर्शन प्राप्त किया था। उस समय भगवान् श्रीराम तथा शिव—दोनों रूपोंमें प्रकट हुए थे। इसीलिये यह श्रीमारुति-क्षेत्र कहा जाता है। यहाँके श्रीविग्रह बहुत लोगोंके कुल-देवता हैं। यहाँकी सब सेवा-पूजा मारुतिके नामसे—उन्हीं लोगोंकी ओरसे होती है।

बेलगाँव— शहरके मध्यभागमें मारुति-गलीमें स्थित श्रीहनुमानजीका यह देवस्थान अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह मन्दिर प्राय: ३०० से, ३५० वर्ष पूर्वका है। देवस्थानके दक्षिण और उत्तर—दोनों ओर शिवलिङ्ग हैं तथा दक्षिण-पूर्वभागमें एक पञ्चमुखी मारुतिका छोटा-सा देवल है। श्रीहनुमानजीकी मूर्ति काले पत्थरकी और दक्षिणाभिमुख है। मन्दिरको सरकारसे अनुदानस्वरूप कुछ रुपये मिलते हैं। बीजापुरके मुसलमान शासकने भी इस देवस्थानके पुजारीको कुछ जमीन वृत्तिके रूपमें प्रदान की थी।

टाकली—नासिकसे लगभग तीन मीलकी दूरीपर यह एक छोटी-सी किसानोंकी बस्ती है, परंतु समर्थ श्रीरामदास स्वामीसे सम्बद्ध होनेके कारण इस स्थानका धार्मिक और ऐतिहासिक महत्त्व अत्यधिक है।

टाकलीमें मठकी जगह श्रीसमर्थने पृथ्वीके भीतर खोदकर दो गुफाएँ तैयार कीं। वे उन्हींमें रहते थे।

वहाँ १३ करोड़ जपका पुरश्चरण करके जब वे तीर्थाटनके लिये निकले, तब उन्होंने अपनी गुफाके पास ईशानकोणमें अपने हाथों गोमयकी श्रीमारुतिकी मूर्ति बनाकर उसकी स्थापना की और श्रीउद्धवको उसकी उपासना करनेकी आज्ञा दी। यही गोबरके हनुमानजी टाकलीके श्रीहनुमान हैं। श्रीसमर्थ-सदृश अवतारी पुरुषके हाथोंद्वारा इस मूर्तिका निर्माण होनेके कारण इसकी बड़ी पवित्रता और बड़ा महत्त्व है। यह मूर्ति चार-साढ़े चार फुट ऊँची और खड़ी है। मुँह दाहिनी ओर फिरा हुआ है। दाहिना हाथ छातीपर और बायाँ मस्तककी ओर है। दाहिना पैर ऊपर उठा हुआ है।

मूल मूर्ति सुन्दर और सुडौल थी, परंतु अब उसके ऊपर सिन्दूरके अनेक आवरण पड़ जानेके कारण उसकी आकृति स्पष्ट नहीं झलकती; केवल अवयवोंका ढाँचा दीख पड़ता है। मूर्तिकी आँखके ऊपर सुवर्णका पत्र है, जिसे श्रीछत्रपति शिवाजीने भेंटके रूपमें भेजा था, ऐसा सुना जाता है। गोमयकी मूर्ति होनेके कारण इसपर तेल-सिन्दूरका लेप न देकर गायके शुद्ध दूध और सिन्दूरका लेप दिया जाता है। आज स्वर्ण-पत्रका ऊपरी भाग सिन्दूरके लेपसे ढक गया है तथापि कुछ भाग चमकता है।

नासिक—नासिक-पंचवटीमें गोदावरीके घाटपर अहल्याकुण्ड और शार्ङ्गपाणिकुण्ड हैं। इन कुण्डोंके

दक्षिणभागकी खुली जगहमें दो मुँहवाले हनुमानजीकी एक विशाल मूर्ति है। यह मूर्ति लगभग आठ फुट ऊँची और ढाई-तीन फुट चौड़ी है। हनुमानजीका एक मुख पूर्वकी ओर और दूसरा पश्चिमकी ओर है। एक हाथमें गदा है और दूसरा हाथ ऊपर उठा है। पैरके नीचे राक्षस या अपस्मार पुरुष पड़ा है। सामने ही हनुमानकुण्ड है। कुछ लोगोंके मतसे यह मूर्ति श्रीअग्निदेवताकी है।

त्र्यम्बकेश्वर—यह स्थान नासिकसे १९ मील दूर है। यहाँसे गङ्गाद्वारकी ओर जाते समय पहाड़ीकी सीढ़ीके पास दाहिनी ओर एक छोटा-सा हनुमान-मन्दिर है। मन्दिर छोटा होनेपर भी सुव्यवस्थित है। इसके पास एक छोटी-सी वाटिका भी है। मन्दिरमें श्रीमारुतिकी एक-डेढ़ फुट ऊँची मूर्ति है। इस मूर्तिकी विशेषता यह है कि इसके दस हाथ हैं। हनुमानजीकी दशभुजी मूर्ति अन्यत्र कहीं देखनेमें नहीं आती।

बम्बई—केलकर-मार्ग तथा बोले-मार्ग जहाँ मिलते हैं, वहीं श्रीहनुमानजीका भव्य मन्दिर है। इस मन्दिरके स्थानपर पहले एक पुराना और विशाल वटवृक्ष था। उस वटवृक्षके नीचे हनुमानजीकी पाषाण-मूर्ति थी। कालान्तरमें वह वटवृक्ष गिर पड़ा। तत्पश्चात् लगभग १९३५ ई०में स्थानीय श्रद्धालु भक्तोंने ट्रस्ट बनाकर श्रीहनुमानजीका भव्य मन्दिर बनवाया तथा मूल पाषाण-मूर्तिके स्थानपर रजत-प्रतिमा प्रतिष्ठित कर दी गयी। मन्दिरमें अन्य देवी-देवताओंके भी विग्रह हैं। पिकेट-रोडपर भी ऐसा ही एक भव्य हनुमान-मन्दिर है। उसके दरवाजेपर चाँदीके पत्र मढ़े हुए दीखते हैं। प्रत्येक शनिवारको यहाँ छोटा-सा मेला लग जाता है। स्थानीय मुम्बादेवीके मन्दिरमें भी श्रीहनुमानजीका विग्रह प्रतिष्ठित है।

माँटुगाके हनुमानजी—दादर-बडाला-बसडीपो बम्बई ३१ पर स्थित यह मन्दिर श्रीअलबेला हनुमानजीके नामसे भी पुकारा जाता है। कहते हैं, यह मन्दिर तीन सौ वर्ष पुराना है। मूर्ति विलक्षण चमत्कारपूर्ण है। हिंदुओंके अतिरिक्त पारसी, मुसलमान, सिख और ईसाई भी इनकी आराधना करते हैं। चैत्र पूर्णिमा, रामनवमी और दीपावलीको यहाँ विशेष उत्सव मनाया जाता है।

हनुमान टेकरी—शान्ताराम तालाबके सामने (वेस्टर्न एक्सप्रेस हाई वे-मलाड बम्बई ईस्ट (६४) यह स्थान 'संकट-मोचन विजय हनुमान टेकरी' के नामसे विख्यात है। इस मन्दिरकी स्थापना १९४२ ई० के लगभग हुई थी। यहाँका वातावरण शान्त है। ३०-४० साधु-संत प्राय: यहाँ सदा रहते हैं। मासमें एक-दो बार सौ-डेढ़ सौ व्यक्तियोंको भोजन भी कराया जाता है। बम्बईमें पञ्चमुखी हनुमान, चिंचोली हनुमान आदि कई अन्य प्रसिद्ध मन्दिर भी हैं। —श्रीभँवरलाल लोहिया

समर्थ श्रीरामदासद्वारा स्थापित एकादश श्रीहनुमान-मन्दिर

(लेखक—श्री म० स० घोलप)

समर्थ श्रीरामदास स्वामीने सम्पूर्ण भारतवर्षकी पद-यात्रा की थी। अपने इस बारह वर्षकी पद-यात्रामें उन्होंने स्थान-स्थानपर श्रीरामजी तथा श्रीहनुमानजीके मन्दिरोंकी स्थापना करते हुए विधर्मी शासनके दमनसे हतप्रभ तथा निराश हिंदू जनताको श्रीहनुमानजीकी उपासनामें लगाकर उसमें शौर्य-सम्पादनकी भूमिका प्रशस्त कर दी तथा स्वधर्म, स्वराष्ट्र, स्वतन्त्रताका साक्षात्कार कराया। स्थान-स्थानपर श्रीहनुमान-मन्दिरों एवं मठोंकी स्थापना करनेका अभियान महाराष्ट्रमात्रके लिये ही सीमित नहीं था, अपितु आसेतु-हिमाचल व्यापी था। अपने परिभ्रमणमें समर्थ श्रीरामदासजीने यद्यपि अयोध्यासे लेकर 'रामेश्वरम्' तक अनेक श्रीहनुमान-मन्दिरोंकी स्थापना की है, तथापि महाराष्ट्रके अन्तर्गत उनके द्वारा स्थापित मन्दिरोंकी संख्या बहुत अधिक है। उनमेंसे निम्नलिखित एकादश श्रीहनुमान-मन्दिर विशेष प्रसिद्ध हैं—१-श्रीमारुति-शहापुर, २-श्रीमारुति-मसूर, ३-श्रीप्रतापमारुति-चाफल, ४-श्रीदास-मारुति-चाफल, ५-श्रीमारुति-उंब्रज, ६-श्रीमारुति-शिराले, ७-श्रीमारुति-मनपाडले, ८-श्रीमारुति-पारगाँव, ९-श्रीमारुति-माझगाँव, १०-श्रीमारुति-शिंगड़वाड़ी, ११-श्रीमारुति-बहे-बोरगाँव। ये सभी श्रीहनुमान-मन्दिर महाराष्ट्रके सतारा जिलेमें हैं। इन मन्दिरोंकी स्थापना शक १५६७से लेकर १५७१ तककी कालावधिमें ही हुई है।

श्रीसमर्थद्वारा स्थापित एकादश श्रीहनुमान-मन्दिरोंमें टाकली, सज्जनगढ़, मिरज, महाबलेश्वर, वाई, तंजावर, टेम्भू, शिरगाँव, इन्दौर आदि स्थानोंके श्रीहनुमान-मन्दिरोंकी गणना नहीं है; फिर भी इनका अपना निजी महत्त्व है।

१-चुनयाके श्रीहनुमान—शहापुर—बाजीपंत

कुलकर्णीकी पत्नी सईबाईकी निष्ठाको देखते हुए १५६७ शक-संवत्‌में श्रीसमर्थने शहापुरके अन्तर्गत चुनयाके श्रीहनुमानकी स्थापना की। इसके पीछे एक संक्षिप्त इतिहास भी है। समर्थ श्रीरामदास शहापुर स्थानपर ठहरे हुए थे। एक दिन उन्होंने बाजीपंत कुलकर्णीके द्वारपर जाकर 'जै जै रघुवीर समर्थ' का उद्घोष करते हुए भिक्षा माँगी। इसके प्रत्युत्तरमें सईबाईने कहा—'भरे-पूरे घरके सम्मुख आप इस आशयके अशिष्ट उद्गार व्यक्त न करें।' यह क्रम सतत कई दिनोंतक चलता रहा। एक दिन उस घरके अंदर चिन्ताजनक वातावरण देखकर श्रीसमर्थने पूछताछ की। तब उन्हें पता चला कि लगानके हिसाबके प्रश्नको लेकर यवन शासक बाजीपंतको पकड़कर बीजापुर ले गया है, इसके कारण परिवारमें घबराहट परिव्याप्त है। श्रीसमर्थने सईबाईसे इस आशयका आश्वासन माँगा कि यदि बाजीपंत छूटकर आ गये तो वह श्रीरामचन्द्रजीकी उपासना करेगी। सईबाईके वचन देनेपर उन्होंने पाँच दिनके भीतर पंतके कारागारसे मुक्त हो जानेका उसे आश्वासन दिया। उसीके अनुसार बाजीपंतको छुटकारा भी मिल गया। घर लौटनेपर बाजीपंतको सब वृत्तान्त ज्ञात हुआ। यह सुनकर बाजीपंतने अपनी पत्नीसे कहा कि जबतक हम समर्थ श्रीरामदासके दर्शन नहीं कर लेंगे, तबतक अन्न ग्रहण नहीं करेंगे। इस प्रकार उनके तीन दिन निराहार ही बीत गये। चौथे दिन श्रीसमर्थने भिक्षाके निमित्त उनके द्वारपर स्वयं पहुँचकर बाजीपंतकी इच्छा पूर्ण की। सभीने उनके चरण पकड़ लिये। उसी अवसरपर श्रीसमर्थने उन्हें चुनयाके इन श्रीहनुमानको प्रसादरूपमें प्रदान किया। इन श्रीहनुमानके वामकोणपर स्थित एक गुफामें श्रीसमर्थ अनेक बार जप-अनुष्ठानके लिये बैठा करते थे।

२-श्रीहनुमान-मसूर—समर्थ श्रीरामदास बढ़ते हुए लोक-संग्रह एवं शिष्य-सम्प्रदायको देखकर उन्हें उत्सवों और उपासनाके निमित्त एक स्थानपर एकत्र करने एवं परस्पर आत्मीयताकी वृद्धि करनेकी आवश्यकता अनुभव करने लगे थे। लोक-शिक्षणके साथ-साथ संगठनका कार्य भी इस उपक्रमसे सहज रूपमें हो सकेगा, यह विचारकर उन्होंने इस कार्यके लिये बीजापुरसे संलग्न मसूर गाँवको चुना। मसूरके अन्तर्गत ब्रह्मपुरी भागमें निवास करनेवाले कुलकर्णी-परिवारपर समर्थ श्रीरामदासने विशेष कृपा की एवं १५६७ शक-संवत्‌की रामनवमीके पूर्व वीर हनुमानकी स्थापना की। यहाँपर उन्होंने सर्वप्रथम श्रीराम-जन्म एवं श्रीहनुमान-जन्मका उत्सव आयोजित किया।

३-४ श्रीप्रताप-मारुति एवं श्रीदास-मारुति-चाफल—चाफल ग्राममें श्रीप्रताप-मारुति एवं श्रीदास-मारुतिमेंसे श्रीदास-मारुतिका मन्दिर श्रीराम-मन्दिरके सम्मुख होनेके कारण श्रीप्रताप-मारुतिकी स्थापना श्रीराम-मन्दिरके पिछले भागमें की गयी है। मसूरसे लौटते समय समर्थ श्रीरामदासके मनमें समर्थ-सम्प्रदायका मुख्य मठ स्थापित करनेका विचार हुआ। सब दृष्टिसे विचार करनेके उपरान्त चाफल ग्रामको ही उन्होंने उपयुक्त समझा। अनुमानत: १५६७—७०के मध्यमें ही इन दोनों हनुमान-मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा हुई होगी।

५-श्रीहनुमान-मन्दिर—उंब्रज—समर्थ श्रीरामदास स्वामी नित्यप्रति स्नानके लिये चाफलसे कृष्णा-तटपर स्थित उंब्रज जाया करते थे। उस स्थानपर उन्हें नित्य ही कुछ समयके लिये रुकना पड़ता था। शक १५७० में उन्हें यहाँकी कुछ भूमि प्राप्त हुई थी। इन सब कारणोंसे यहाँ १५७०के आसपास श्रीहनुमान-मन्दिरकी स्थापना हुई। उंब्रजमें स्थित हनुमान-मूर्ति अत्यन्त भव्य है।

६-श्रीहनुमान—शिराले—यहाँके अनेक व्यक्ति समर्थ श्रीरामदासके शिष्य बन गये थे। उनमें देशपाण्डेय नामके व्यक्ति प्रमुख थे। इन शिष्योंके आग्रहपर १५७० के आस-पास इस मन्दिरकी स्थापना करते हुए उसकी पूजा-अर्चनाका काम उन्होंने श्रीदेशपाण्डेयको ही सौंप दिया।

७-८-मनपाडलेके श्रीहनुमान एवं पारगाँवके श्रीहनुमान—बीजापुरके आदिलशाही शासनाधीन पारगाँव एवं मनपाडले—दोनों पनहालाके निकट हैं। स्वराज्यके लिये पनहाला दुर्गका महत्त्व देखते हुए श्रीसमर्थने इन ग्रामोंमें अपने शिष्य-सम्प्रदायकी अभिवृद्धि की एवं दोनों ग्रामोंमें श्रीहनुमान-मन्दिरोंकी स्थापना की। इनकी स्थापना भी शक १५६७ से १५७१के बीचमें हुई।

९-माजगाँवके श्रीहनुमान—चाफलसे उंब्रज जाते हुए डेढ़ मीलकी दूरीपर माजगाँव ग्राम पड़ता है। इस ग्रामके एक कोणमें एक घोड़ा था, जिसकी पूजा-अर्चा ग्रामवासी श्रीहनुमानजी कहकर किया करते थे। ग्रामवासियोंके लिये यह सामान्य घोड़ा न था, अपितु साक्षात् श्रीहनुमानजी ही थे। ग्रामीणोंने उसे समर्थ श्रीरामदासजीको दिखलाते हुए उनसे प्रार्थना की कि आप अपने पवित्र हाथोंसे इसकी स्थापना कर दीजिये। यह सुनकर समर्थ श्रीरामदासजीने उस घोड़ेपर श्रीहनुमानजीकी प्रतिमा अङ्कित करके उसकी वहीं प्रतिष्ठा कर दी।

१०-शिंगड़वाड़ीके श्रीमारुति—चाफलसे आधा मीलकी दूरीपर शिंगणवाड़ीकी पहाड़ी है। उसकी एक

गुफामें समर्थ श्रीरामदास स्नान-संध्याके लिये जाया करते थे। इसलिये श्रीसमर्थने अपने आराध्यदेवकी एक छोटी-सी परंतु सुन्दर मूर्ति निर्माण कराकर इस पहाड़ीपर उसकी स्थापना कर दी। चाफलके श्रीप्रताप-मारुतिसे शिंगणवाड़ीके श्रीहनुमानजीके दर्शन हो सकते हैं।

शक-संवत् १५७१ (सन् १६४९ ई०)-में समर्थ श्रीरामदासजीने इसी शिंगड़वाड़ीमें स्थित इमलीके पेड़के नीचे शिवाजीपर कृपा की थी और उनकी गुरुदक्षिणा भी उन्होंने इसी स्थानपर स्वीकार की थी।

११-श्रीमारुति-बहे-बोरगाँव—कृष्णा-नदीके किनारे बोरगाँवकी संनिधिमें बहे अथवा बाहे ग्राम है, इसीलिये इसका उल्लेख बहे-बोरगाँव नामसे किया जाता है। कृष्णा-माहात्म्यमें इस स्थानका उल्लेख बाहुक्षेत्रके रूपमें किया गया है। यहाँ कृष्णा-नदी दो धाराओंमें विभक्त होकर बहती है। दोनों धाराओंके बीच एक छोटा टापू-सा बन गया है। इसी टापूपर समर्थ श्रीरामदासने अपने ग्यारहवें श्रीहनुमान-विग्रहकी प्रतिष्ठा की थी।

इस हनुमान-मूर्तिकी प्रतिष्ठाके पीछे एक विशिष्ट इतिहास है, जो समर्थ श्रीरामदासके जीवनकी अनुभूतियोंके साथ जुड़ा हुआ है। उसका वर्णन उन्होंने अपने ५३वें अष्टकमें स्वयं किया है। उसका संक्षिप्त भाव इस प्रकार है—

रावणका वध करनेके पश्चात् श्रीराम-लक्ष्मणने सीताजीके साथ कृष्णा-नदीके तटपर स्थित इसी बाहे ग्राममें निवास किया था। माता सीता निकटस्थ शिष्ट नामक ग्राममें थीं। कृष्णा-नदीके किनारेपर श्रीरामचन्द्रजी ध्यानस्थ बैठे थे कि एकाएक नदीमें भयंकर बाढ़ आयी, जिसके कारण उनके ध्यानमें विघ्न उपस्थित होते देखकर भीम हनुमान प्रकट हुए और अपनी बलिष्ठ भुजाओंको फैलाकर श्रीरामजीकी ओर आनेवाले कृष्णा-नदीके प्रवाहको रोक रखनेके लिये खड़े हो गये, इससे कृष्णा-नदीका जल दो भागोंमें विभक्त होकर आगे बढ़ गया एवं कुछ दूर जाकर पुनः एक धारा होकर बहने लगा। इससे श्रीरामचन्द्रजीके ध्यानमें उपस्थित विघ्न टल गया एवं उनके चरण-प्रान्तमें एक छोटा-सा टापू तैयार हो गया।

ऐसे स्थानपर श्रीहनुमानजी अवश्य अवस्थित होंगे ही—इस विश्वासके साथ बाहे ग्राममें दर्शनके लिये जानेपर श्रीसमर्थको वहाँ हनुमानजी दिखायी नहीं दिये। उन्हें महान् आश्चर्य हुआ, इसलिये उन्होंने हनुमानजीका आवाहन करना आरम्भ किया। उसी समय उन्हें अपनी पीठके पीछे स्थित प्रचण्ड डोहेमेंसे आवाज सुनायी दी। हनुमानजी वहींपर थे। समर्थ श्रीरामदासने उस डोहेमें डुबकी लगायी और उसमेंसे हनुमानजीको बाहर निकालकर उसी टापूपर उनकी स्थापना कर दी। उन्होंने इस सारे प्रसङ्गका वर्णन अपने अष्टकमें किया है।

प्रायः उपर्युक्त सभी स्थानोंपर आजकल वाहन जा सकनेकी सुविधा है। यहाँकी यात्रा प्रायः चाफलसे श्रीराम-दर्शन करके क्रमानुसार दास-मारुति, प्रताप-मारुति, शिंगड़वाड़ी, माजगाँव, उंब्रज, मसूर एवं शहापुरके हनुमानके दर्शन करनेके बाद बहे-बोरगाँव, शिराला, पारगाँव तथा मनपाडलेमें हनुमान-दर्शनके अनन्तर सम्पन्न होती है।

मध्यप्रदेशके प्रसिद्ध श्रीहनुमान-मन्दिर

उज्जैन—(क) रणजीत और गिरनारीके हनुमान—ये दोनों स्थान उज्जैनमें शिप्रा नदीके पूर्वी और पश्चिमी तटपर स्थित हैं। पौष कृष्णा अष्टमीको यहाँ हनुमानजीकी सवारी बड़ी धूमधामसे निकाली जाती है। रणजीतमें प्रतिवर्ष इस दिन सैकड़ों ब्राह्मणों और भक्तोंको भोजन कराया जाता है।

(ख) समर्थ श्रीरामदासके हनुमान—कार्तिक चौकमें स्थित यह मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस मन्दिरमें प्रतिष्ठित श्रीहनुमद्विग्रहकी स्थापना श्रीसमर्थ रामदासजीने उज्जैनकी यात्राके समय की थी।

(ग) पञ्चमुखी हनुमानजी—बड़े गणेशके समीप ही पञ्चमुखी हनुमानका मन्दिर है। यह पञ्चमुखी मूर्ति ढाई-तीन फुट ऊँची है। इसके ये मुख हनुमत्कवचके वर्णनानुसार ही हैं। मूर्तिकी बायीं ओरका मुख कपिका है, दक्षिण ओरका मुँह नरसिंहका है, पश्चिमका मुख गरुड़का और उत्तरका मुँह वराहका है। ऊपरकी ओर हयवदन है। यहाँपर श्रीहनुमानजीकी सप्तधातुमयी मूर्ति भी है।

(घ) नीलगङ्गाके हनुमान—यह स्थान उज्जैन रेलवे-स्टेशनके दक्षिणमें है। यहाँ एक तलैया है। स्कन्दपुराणके अवन्तीखण्डके अनुसार माता अञ्जनीके साथ श्रीहनुमानजीने यहाँ तप किया था। भागीरथी गङ्गा जब भक्तोंके पातकोंका प्रक्षालन करते-करते नीलवर्णकी हो गयीं, तब ब्रह्मदेवकी आज्ञासे वे शिप्रामें आकर

गुप्तरूपसे मिलीं और इस स्थानपर प्रकट हुई थीं, तभीसे इसको 'नीलगङ्गा' कहा जाता है। यहाँके मुख्य तीर्थाधिपति श्रीहनुमानजी ही हैं। —श्रीनाथूशंकरजी शुक्ल

धार—विद्यानुरागी सम्राट् भोजकी धारा नगरीको आजकल धार कहा जाता है। इंदौरसे १३ मीलपर महू रेलवे-स्टेशन है। वहाँसे ३३ मीलपर धार नगर है। धारमें कुम्हार-बावड़ीके सिद्धेश्वर हनुमानका मन्दिर विख्यात है। यहाँ हनुमानजी उत्तराभिमुख हैं, जो प्रभु श्रीरामका कार्य सम्पन्न करके सहर्ष लौट रहे हैं। यह स्थान एक सिद्धपीठ है। भक्तोंका विश्वास है कि यहाँ मनोकामना सहज ही पूर्ण होती है। श्रावण मासमें बालस्वरूप हनुमानके झूलोंके शृङ्गार एवं दर्शन होते हैं।

—श्रीभगवत्स्वरूपजी जोशी

खंडवा ओंकारेश्वर—यह खंडवा-इंदौरके बीचका स्टेशन है। यहाँ ज्योतिर्लिङ्ग है। पर्वतके शिखरपर विशाल लिङ्ग-मूर्तिका मन्दिर है। इस मन्दिरके सामने हनुमानजीकी लेटी हुई विशाल मूर्ति है। श्रीहनुमानजीकी ऐसी मूर्ति मालवामें अन्य स्थानपर नहीं है।

—श्रीबापूलाल भँवरलाल

टीकमगढ़—टीकमगढ़ मध्यप्रदेशका प्रसिद्ध स्थान है। नयी कलक्टरी कचहरीके पास 'हनुमानचालीसा' के नामसे मीनारके आकारका एक मन्दिर स्थित है। इसे टीकमगढ़-नरेश महाराज श्रीवीरसिंहजीने बनवाया था। यह चालीस फुट ऊँचा है। इसके अंदर करीब ढाई सौ चक्करदार सीढ़ियाँ हैं। ऊपर अञ्जनीकुमारकी सुन्दर प्रतिमा है। मन्दिरकी कला आश्चर्यजनक है।

बड़ागाँव—टीकमगढ़से १५ मील पूर्व बड़ागाँव नामक स्थानपर स्वत: प्रकट मारुति-प्रतिमा स्थित है। यह प्रतिमा एक विशाल पीपल-वृक्षके नीचे है। इनका एक चरण ऊपर है एवं दूसरा चरण नीचे पृथ्वीमें धँसा हुआ। जो चरण पृथ्वीमें धँसा है, उसका आजतक पता नहीं चल पाया कि वह कितनी गहराईमें है। कुछ मनचले युवकोंने इस गहराईका पता लगानेके निमित्त चरणके आसपास खुदाई करनी प्रारम्भ की। ४०-४५ फुटकी गहराईतक खोद भी डाला, किंतु उसका पता न लग सका। —श्रीलखनलाल भारती रामटौरिया

दतिया—झाँसीसे १६ मीलपर दतिया स्टेशन है। इसीके पास ही उड़नू टौरिया नामक एक ऊँचा स्थान है। उस टौरियापर श्रीहनुमान-मन्दिर है। टौरियाको हनुमानकिला भी कहते हैं। मन्दिरमें जानेके लिये लगभग ३६० सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। श्रावणीसे लेकर तीजतक वहाँ बड़ी भीड़ होती है। स्वयं दतिया गाँवमें भी हनुमानजीका एक सुन्दर मन्दिर है।

घाटकोटरा—यह झाँसी जिलेका एक गाँव है। यहाँ बाहुवीर बजरंगका भव्य मन्दिर है। मन्दिरमें श्रीहनुमानजीकी पाँच फुट ऊँची भव्य मूर्ति है। कहा जाता है कि इस मूर्तिका एक हाथ मस्तकसे चिपका हुआ था, किंतु सन् १९५३ ई० के लगभग वह अपने-आप बिलग हो गया और अबतक उसी अवस्थामें है। इस चमत्कारके घटित होनेपर प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ला पूर्णिमाको वहाँ बड़े समारोहके साथ उत्सव मनाया जाने लगा और यात्रियोंकी बड़ी भीड़ होने लगी।

गताके बजरंग—यह स्थान घाटकोटरा, जिला झाँसीसे एक मील पूर्व धसान नदीके निकट है। यहाँ हनुमानजीकी मूर्ति पहले पृथ्वीमें दबी हुई थी। दो सौ वर्ष पहले इन्होंने एक पण्डितजीको, जो बादल-वंशके थे, स्वप्नादेश दिया कि तुम हमारे लिये मन्दिर बनवा दो। उसी दिन हल जोतते समय हलकी नोक लग जानेसे उस स्थानसे रुधिरकी धारा फूट निकली। यह देखकर गाँववाले एकत्र हुए, पण्डितजीकी आज्ञासे वह स्थान खोदा गया। उसमेंसे हनुमानजीकी एक मूर्ति निकली। तभीसे महावीरजीके ऊपर औषधरूपमें घीका फाहा चढ़ने लगा, जो कई वर्षोंतक चढ़ता रहा। आज उस स्थानका ऐसा प्रभाव है कि दो फर्लांगके घेरेमें कोई कैसा भी निर्भीक शिकारी क्यों न हो, उसके द्वारा जीवघात नहीं होने पाता।

ग्वालियर—इस शाखाका अन्तिम स्टेशन शिवपुरी है। यह प्रख्यात नगर है। इस नगरके अनेक प्रतिष्ठित मन्दिरोंमें नगरसे छ: मीलपर बाँकड़े श्रीहनुमानजीका मन्दिर प्रसिद्ध है।

—श्रीबाबूलालजी गोयल

विलासपुर—(क) इस जिलेके प्रसिद्ध शहर शबरी-नारायणसे कुछ दूरपर श्रीहनुमानजीका भव्य मन्दिर है। इस स्थानको जनकपुर नामसे पुकारते हैं।

(ख) इसी जिलेमें रतनपुर है, जिसे छोटी काशी कहते हैं। यहाँ बाढ़ा पहाड़ीपर स्थित विशाल श्रीराम-मन्दिरके पास एक भव्य हनुमान-मन्दिर है। यहाँ माघ-पूर्णिमाको मेला लगता है।

गुजरातके प्रमुख श्रीहनुमान-मन्दिर

सारंगपुर—अहमदाबाद-भावनगर रेलवे लाइनपर स्थित बोटाद जंकशनसे सारंगपुर लगभग १२ मील दूर है। यहाँ एक प्रसिद्ध मारुति-प्रतिमा है। महायोगिराज गोपालानन्द स्वामीने इस शिला-मूर्तिकी प्रतिष्ठा विक्रम-संवत् १९०५ आश्विन कृष्णा पञ्चमीके दिन की थी। प्रतिष्ठाके समय मूर्तिमें श्रीहनुमानका आवेश हुआ और यह हिलने लगी। तभीसे इन कष्टभञ्जन श्रीहनुमानजीकी सर्वत्र मान्यता हो गयी तथा अब भी सहस्रों हिंदू-मुसलमान इस सिद्ध विग्रहके चमत्कारोंसे चकित होते रहते हैं। —श्रीरमणलालजी

अहमदाबाद—अहमदाबाद कैंट विभागमें साभ्रमती (साम्बरमती)-के तटपर विशाल हनुमान-मन्दिर है। यह लगभग दो सौ वर्ष पुराना है। इसमें मूर्ति भव्य एवं आकर्षक है। प्रत्येक शनिवार एवं मंगलवारके सायंकाल यहाँ अच्छा मेला-सा लग जाता है। आजसे प्रायः २२ वर्ष पूर्व रातके बारह बजे इस मन्दिरमें एक चमत्कार हुआ। आसपासके लोग सो रहे थे। आश्विन कृष्णचतुर्दशी, मंगलवारकी रातके बारह बजे एक भयंकर आवाज हुई, मानो तोपसे गोला छूट रहा हो! लोग एकत्र हो गये, किंतु कुछ भी दिखायी न पड़ा। प्रातः छः बजे पुजारीजीने जब मन्दिर खोला तो वे देखते क्या हैं कि हनुमानजीके अङ्गपरसे प्रायः ८—१० इंचकी चौड़ी आँगी (आवरण) छिन्न-भिन्न होकर नीचे गिर पड़ी है और भव्य एवं सुन्दर साकार मूर्ति प्रत्यक्ष हो गयी है। आवरणको दूर करके देखनेसे पता चला कि यह आवरण वर्षानुवर्ष चढ़ते हुए तैल और सिन्दूरकी जमती हुई पर्त था। लोग दर्शनार्थ उमड़ पड़े। यह प्राचीन मूर्ति बड़ी भव्य है। उसके बाद जनताकी ओरसे वहाँ विशाल श्रीरामयज्ञ किया गया।

सूरत—यहाँके श्रीखाण्डनिया हनुमान प्रसिद्ध हैं। वि० सं० १९३२में तापी नदीमें बड़ी भयंकर बाढ़ आयी। सारा सूरत शहर बाढ़ग्रस्त हो गया। निराधार लोग मकानोंकी छतपर अथवा पहाड़के ऊपर आश्रय लेने लगे। कुछ लोगोंने शहरके बीचमें स्थित एक टीलेके ऊपर भी आश्रय लिया। तीसरे दिन प्रातःकाल लोगोंको हनुमानजीकी एक विशाल शिलामयी मूर्ति दिखायी दी, जो बाढ़के जलसे बहकर वहाँ आ गयी थी। आश्चर्य तो यह था कि मूर्तिके एक भागमें ऊखल बँधा था। लोगोंने उन्हें उठाकर एक पुरानी झोंपड़ीमें प्रतिष्ठित किया।

उसके बाद वि० सं० १९५० में सूरतमें भयंकर अग्निकाण्ड हुआ। आसपासके सभी मकान भस्मसात् हो गये, किंतु बाँससे बने हुए इस मन्दिरको तनिक भी आँच न आयी। उस समयके अंग्रेज जिलाधीशने हनुमानजीको मस्तक झुकाकर उसी स्थानपर मन्दिर बनवानेकी अनुज्ञा दे दी। मन्दिर तैयार होनेपर मूर्तिको मन्दिरमें पधरानेके लिये दस-बीस आदमी इकट्ठे होकर उठाने लगे, किंतु मूर्ति उठ न सकी। उसी समय मन्दिरके पुजारी श्रीनरोत्तमजीने आकर *'जय बजरंग'* के घोषके साथ अकेले ही उसे उठाकर मन्दिरमें प्रतिष्ठित कर दिया। सूरतके भक्तलोग इस श्रीविग्रहका अत्यन्त श्रद्धापूर्वक दर्शन-पूजन करते हैं।

हनुमानधारा—सौराष्ट्रके जूनागढ़के समीप गिरनार पर्वतके ऊपर वायव्य कोणमें १५०० सीढ़ियाँ चढ़नेपर नीचेके भागमें यह ऐतिहासिक प्राचीन स्थान है। यह प्रदेश जंगलमें होनेसे अत्यन्त रमणीय और बड़ा आकर्षक लगता है। अब रास्ता सरल बन जानेके कारण गिरनारके बहुत-से यात्री इस स्थानका दर्शन करने आते रहते हैं। यहाँ एक विशाल कुण्ड भी है। इस कुण्डका सम्पूर्ण जल किनारेपर स्थित श्रीहनुमानजीके मुखसे ही निकलता है। इसी कारण इस स्थानका नाम 'हनुमानधारा' पड़ा है। आजसे लगभग ४२५ वर्ष पूर्व इस स्थानपर एक गोवर्धनदासजी नामक खाकी संत निवास करते थे। कहते हैं कि बाबाजी प्रायः ३-४ मन लोहेके आभूषण धारण करके एक हाथमें ७ फुटका लोहेका चिमटा लिये हुए सायं-प्रातः आरती करते थे। आज भी बाबाजीके वे आभूषण (कटिप्रदेशमें धारण करनेकी एक मनकी लोहेकी जंजीर, हाथ-पैरके कड़े और चिमटा) वहाँ यथावत् मौजूद हैं।

पोरबंदर—सौराष्ट्र प्रदेशान्तर्गत सुदामापुरी (पोरबंदर)-के श्रीसुदामा-मन्दिरसे पश्चिमकी ओर अति प्राचीन एकादशमुखी श्रीहनुमानजीका मन्दिर है। मूर्तिके दो चरण, बाईस हाथ एवं ग्यारह मुख हैं। सारे गुजरातमें ऐसा यह एक ही मन्दिर है। पौराणिक प्रसङ्गानुसार अहिरावण-वधके समय देवी-मन्दिरमें श्रीहनुमानजीने ग्यारह मुख प्रकट किये थे। उसके बाद अहिरावणका वध होनेपर श्रीहनुमानजीने पाताल नगरीका राज्य अपने औजस पुत्र मकरध्वजको प्रदान किया था। आज भी यहाँके महाराणा लोग अपनेको मकरध्वजका वंशज मानते हैं।

जामनगर—जूनागढ़के प्रसिद्ध पर्वत गिरनारकी वन्य-स्थली हनुमानधाराके हनुमानजीकी कृपासे ही जामनगर-राज्यके संस्थापक श्रीजामराओलको जामनगरका राज्य प्राप्त हुआ था। श्रीहनुमानधाराके मारुतिदेवके प्रत्यक्ष दर्शनके बाद श्रीजामराओलने श्रीहनुमानजीसे जामनगर पधारनेकी प्रार्थना की। वे ही श्रीहनुमानजी जामनगर पधारे और उसकी चारों दिशाओंमें क्रमशः प्रतिष्ठित हुए। जहाँ-जहाँ उन्होंने विश्राम किया, वहाँ-वहाँ लोगोंने श्रीहनुमानजीके विभिन्न मन्दिरोंका निर्माण कराकर उनमें विभिन्न नामोंसे उनकी प्रतिष्ठा की। इस प्रकार श्रीहनुमानजी दाण्डिया हनुमान, फुलिया हनुमान, भीड़ भञ्जन हनुमान आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुए। इनमें दाण्डिया हनुमानका मन्दिर भव्य एवं चमत्कारिक माना जाता है।

—पं० श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री

बेट द्वारका—यहाँसे चार मीलकी दूरीपर मकरध्वजके साथमें हनुमानजीकी मूर्ति स्थापित है। कहते हैं कि पहले मकरध्वजकी मूर्ति छोटी थी, परंतु अब दोनों मूर्तियाँ एक-सी ऊँची हो गयी हैं। अहिरावणने भगवान् श्रीराम-लक्ष्मणको इसी जगहपर छिपा रखा था। जब हनुमानजी श्रीराम-लक्ष्मणको लेनेके लिये आये, तब उनका मकरध्वजके साथ घोर युद्ध हुआ। अन्तमें हनुमानजीने उसे परास्त कर उसीकी पूँछसे उसे बाँध दिया। जब मकरध्वजने अपनी पहचान बतायी, तब उन्होंने उसे मुक्त कर दिया। उनकी स्मृतिमें यह मूर्ति स्थापित है।

यहाँ हनुमान टेकरी और हनुमान अन्तरीपमें भी श्रीहनुमानजीके प्रसिद्ध मन्दिर हैं।

—काव्यशास्त्री श्रीहिम्मतलाल भालूशंकर झाबड़ी

भूरखिया—सौराष्ट्रके लाठी शहरसे ६ मीलपर प्रसिद्ध भूरखिया हनुमानजीका मन्दिर है। इसी नामपर यहाँ गाँव बस गया है। प्राचीन कालमें रामानन्द-सम्प्रदायके प्रभावशाली महंत श्रीरघुवीरदासजीके शिष्य दामोदरदासजीको स्वप्नमें श्रीहनुमानजीने आदेश दिया कि चैत्र शुक्ला पूर्णिमाको आधी रातके समय मैं सभाड़ तथा लाठी शहरके बीच निर्जन वनमें प्रकट होऊँगा। महात्मा दामोदरदासजी अपने पूज्य गुरुदेवसे आज्ञा लेकर पूजन-सामग्रीसहित कुछ लोगोंके साथ पैदल चल पड़े। वि० सं० १६४२ मंगलवार चैत्र शुक्ला पूर्णिमाकी आधी रातके समय उस जनशून्य जंगलमें बड़े जोरसे धमाकेके साथ एक टीलेसे धूल उड़ी। कुछ क्षणोंके बाद उपस्थित जनोंको वहाँ श्रीहनुमानजीकी मूर्ति दिखायी पड़ी। सभीने जय-जयकारके साथ उनका पूजन-अर्चन किया। तभीसे इनका नाम 'भूरखिया' पड़ गया, जिसका अर्थ है—भूमिकी रक्षा करनेवाला। सभी प्रकारकी मनोकामनाएँ पूर्ण करनेवाले होनेके कारण इस क्षेत्रमें भूरखिया हनुमानजीकी बड़ी प्रसिद्धि है।

—गोस्वामी श्रीभोजगिरि वल्लभगिरिजी

लंबे हनुमान—जूनागढ़ गिरनारका दरवाजा कहा जाता है। गिरनार पर्वत अत्यन्त पवित्र है। इसकी तलहटीमें भवनाथसे आगे लंबे हनुमानजीका मन्दिर है। मन्दिरमें यात्रियोंके ठहरनेकी भी व्यवस्था है। यहाँ हनुमानजीके महोत्सव होते ही रहते हैं। योगियोंकी यह अत्यन्त सम्मान्य तपोभूमि है। योगी राजा मुचुकुन्द-महादेवकी परिक्रमामें पञ्चमुखी श्रीहनुमानका मन्दिर है तथा सातपुड़ा कुण्डसे आगे भी श्रीहनुमानजीका एक स्थान है।

राजस्थानके प्रसिद्ध श्रीहनुमान-मन्दिर

सवाई माधोपुर—आजसे लगभग ढाई सौ वर्ष पहले एक कुएँका निर्माण करते समय तीस फुटकी गहराईपर महावीर हनुमानजीकी एक अत्यन्त दिव्य प्रतिमा मिली। श्रद्धालु भक्तोंने कुएँके पास ही चबूतरा बनवाकर उसीपर प्रतिमाको प्रतिष्ठित कर दिया। विधर्मियोंने इस विग्रहको तथा इस चबूतरेको भी हटानेके लिये कई बार प्रयत्न किये, परंतु भक्तोंकी देवनिष्ठासे यह स्थान सुरक्षित ही रहा। सन् १९५० ई० में तो यहाँ एक भव्य मन्दिर बन गया। —श्रीरघुनाथदासजी शाण्डिल्य

भावी—जोधपुरसे जयपुर जानेवाली सड़कपर यह ग्राम बिलाड़ा तहसीलमें है। इस ग्रामके पूर्वकी ओर 'टुंवानाडा' है, उसके तटपर बने हुए स्थानके हनुमानजी बड़े चमत्कारी एवं प्रसिद्ध देवता हैं। आजसे लगभग दो सौ वर्ष पूर्व इस ग्रामके श्रीसीरवी टुवाजी आकलेचाके कोई संतान नहीं थी। किन्हीं महात्माके कहनेपर उन्होंने इन स्थानीय हनुमानजीकी कई दिनोंतक बड़ी श्रद्धापूर्वक आराधना की। अन्तमें कई वर्ष बीत जानेके बाद उन्हें पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हुई। उसके उपलक्ष्यमें टुवाजीने हनुमानजीका देवालय बनवाया और पास ही नाडा खुदवा दिया। इस नाडेको लोग 'टुंवानाडा' के नामसे पुकारने लगे। —श्रीशिवसिंह चोयल

मेहंदीपुर—यह स्थान जयपुर-बान्दीकुई-बसमार्गपर

जयपुरसे लगभग पैंसठ किलोमीटर दूर है। दो पहाड़ियोंके बीचकी घाटीमें स्थित होनेके कारण इसे 'घाटा मेहंदीपुर' भी कहते हैं। मेहंदीपुरके श्रीबालाजी मनौतीको पूर्ण करनेवाले हैं। मुख्यत: भूत-प्रेत, पिशाच, वन्ध्यत्व, लकवा आदि बाधाओंसे तो वे मुक्त कर ही देते हैं—लोगोंकी ऐसी दृढ़ श्रद्धा होनेके कारण यहाँ पूरे वर्ष भक्तों, पीड़ितों तथा यात्रियोंका आना-जाना लगा रहता है। यहाँके प्रमुख देवता तो श्रीबालाजी ही हैं, परंतु साथ ही प्रेतराज श्रीभैरवनाथजी भी वैसे ही महत्त्वपूर्ण हैं।

जनश्रुतिके अनुसार यह देवस्थान लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। बहुत पहले वहाँ कोई मन्दिर न था, एक बार मन्दिरके महंतोंमेंसे किसी पूर्वज महंतको श्रीबालाजीने स्वप्नमें दर्शन देकर वहाँ मन्दिर स्थापित करके उपासना करनेका आदेश दिया। तदनुसार उन महंतने वहाँ मन्दिर बनवाया। कहा जाता है कि मुगल साम्राज्यमें इस मन्दिरको तोड़नेके अनेक प्रयास हुए, परंतु सफलता न मिली। वर्तमान नया मन्दिर सौ वर्षोंसे अधिक पुराना प्रतीत नहीं होता। राजस्थानमें यह मन्दिर विशेष प्रसिद्ध है। —श्रीवासुदेव भास्कर घाणेकर

कोटा—हनुमानजीके पूजन तथा चिन्तनसे कैसे विस्मयजनक चमत्कार होते हैं तथा कैसी भी पुरानी भूत-प्रेत-बाधा दूर हो जाती है—यह प्रत्यक्षरूपसे कोटाके गोदावरीधाम, अमरनिवास-स्थित हनुमानजीके मन्दिरमें देखा जा सकता है। श्रीहनुमानजीकी यह प्राचीन मूर्ति चम्बल नदीकी सतहमें, जहाँ आज सैकड़ों फुट जल लहरा रहा है, स्थित थी। चम्बल-बाँध बननेके उपरान्त नयी परिस्थितियोंमें इसे कोटा नगरके अमरनिवास नामक स्थानपर वेद-मन्त्रोंद्वारा पुन: प्रतिष्ठापित किया गया है। यहाँ प्रति मंगलवार तथा शनिवारको दूर-दूरसे अनेक भक्त, मानसिक रोगी, मन्दबुद्धि, निराश एवं जिज्ञासु दर्शनार्थी आते हैं, जिनकी संख्या सैकड़ोंमें नहीं, अब हजारोंमें है।

कई मानसिक रोगी जो पूर्णरूपसे ठीक हो गये हैं, उन्होंने अपना अनुभव सुनाते हुए बतलाया है कि हनुमानजी अपनी गदा लिये उतरे और हमारे ऊपर चढ़े हुए भूत-प्रेतोंको मार-मार कर भगा दिया। इस प्रकार हमारी भूत-बाधा सदा-सर्वदाके लिये जाती रही। प्राय: देखा जाता है कि आरती होनेतक भूत-बाधावाले रोगी विभिन्न शारीरिक क्रियाएँ करते-करते शान्त और संतुलित हो जाते हैं तथा उनके मनमें आत्मबल जाग्रत् हो जाता है। —डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र

नाथद्वारा—वैसे तो नाथद्वारा वल्लभ-सम्प्रदायका प्रधान पीठ और भारत-प्रसिद्ध भगवान् श्रीनाथजीका परम पवित्र पुष्टिमार्गीय वैष्णव धाम है। फिर भी श्रीनाथजीके यहाँ विराजमान होनेके साथ ही स्थानीय तिलकायत-नरेशोंने नगरके चारों ओर श्रीहनुमानजीकी स्थापना की। आज भी पूर्वमें सिंहाड़के हनुमानजी, पश्चिममें बड़ी बाखरके हनुमानजी, उत्तरमें छावनी दरवाजाके हनुमानजी और दक्षिणमें चौबेजीकी बगीचीके व्यङ्कट हनुमानजी विराजमान हैं। श्रीकृष्णोपासनाके साथ-साथ श्रीरामोपासनाके समन्वयका यह एक सुन्दर प्रमाण है। भारतवर्षमें यही एक ऐसा नगर है, जिसमें शीतला-सप्तमीपर अथवा विवाहादि उत्सवोंमें शीतलामाताकी पूजाके साथ-साथ श्रीहनुमानजीकी पूजा करना अनिवार्य होता है। —श्रीप्रभुदासजी बैरागी

पुराबंकी—सीकरसे छ: मील दक्षिण यह एक छोटा-सा गाँव है, इसीके पास ही एक छोटी-सी पहाड़ी है, जिसके उत्तरमें श्रीहनुमानजीका मन्दिर है। हनुमानजीकी यह मूर्ति पहाड़ीसे निकली हुई है। मूर्तिके नीचेका पत्थर पहाड़ीसे जुड़ा हुआ है। प्रति मंगलवारको दर्शनार्थियोंकी भीड़ प्रात:से लेकर सायंतक लगी ही रहती है। प्रत्येक पूर्णिमाको गाँवकी भजनमण्डली रात्रि-जागरण करती है। मन्दिरके बाहर एक छोटा-सा चबूतरा है। उसपर उत्कीर्ण अक्षरोंसे पता चलता है कि संवत् १६४३ वि०में यहाँपर एक ही मन्दिर था। आसपासके गाँवोंमें इस मूर्तिकी विशेष मान्यता है। —श्रीसीतारामजी शर्मा

विराटनगर—यह नगर जयपुर-अलवर-मार्गपर स्थित है। यह वही विराटनगर है, जहाँ पाण्डवोंने अपने वनवासका तेरहवाँ वर्ष अज्ञातवासके रूपमें बिताया था और जहाँ सैरन्ध्रीरूपा द्रौपदीको छेड़नेका प्रयत्न करनेपर पराक्रमी भीमद्वारा कीचकका वध किया गया था। कीचककी वधस्थलीके पासकी गुफा आज भी भीमसेनकी गुफाके नामसे पुकारी जाती है। इसी 'भीम-गुफा' के पासकी पाँच विशाल पर्वतचोटियोंकी संधिस्थलीपर ही श्रीरामचन्द्रजी 'वीर महाराज' ने श्रीवज्राङ्ग प्रभुका विशाल मन्दिर बनवाया, जो भूमितलसे १००० फुटसे भी अधिक ऊँचा है। इसमें भगवान् वज्राङ्गदेवका श्रीविग्रह है, जो ७।। फुट ऊँचा एवं श्वेत संगमरमरका बना हुआ है तथा चित्ताकर्षक प्रसन्नमुद्रासे युक्त है। महाराज 'वीर' ने इस दिव्य एवं भव्य विग्रहके निर्माणकालमें मूर्तिकारोंको समय-समयपर महत्त्वपूर्ण निर्देश दिये थे। माघ शुक्ल त्रयोदशीको प्राणप्रतिष्ठा-पर्वके रूपमें प्रतिवर्ष यहाँ विशाल

मेला लगता है। इसमें दंगल भी होते हैं।

—श्रीजमनाप्रसादजी गुप्त, एम्०ए०, सा० र०, बी०एड्०

श्रीबालाजी (बड़ागाँव)—यहाँका यह सुविख्यात ऐतिहासिक श्रीहनुमान-मन्दिर नागौर जिलेमें नागौर-बीकानेर रेलवे-लाइनपर स्थित श्रीबालाजी रेलवे-स्टेशनसे तीन फर्लांग पश्चिमकी ओर एक पहाड़ीपर स्थित है। यह मन्दिर ऐतिहासिक दृष्टिसे प्रायः साढ़े तीन सौ वर्ष प्राचीन माना जाता है। आजसे लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व एक महान् तपस्वी संत श्री १०८ श्रीशुकदेवपुरीजी महाराज हुए थे। वे उच्चकोटिके भक्त थे। उन्हें साधनाद्वारा अनेकानेक सिद्धियाँ भी प्राप्त थीं। आपने अपने जीवनके पूर्वार्धमें सर्वप्रथम चूरू जिलाके गोपालपुरा ग्रामकी पहाड़ीपर रहकर बारह वर्ष अनवरत घोर तप किया था। उसी डूँगरीमें एक अति प्राचीन श्रीहनुमानजीकी मूर्ति है, वह आज भी ज्यों-की-त्यों विद्यमान है। उस स्थानपर पूज्य स्वामीजी महाराजको श्रीहनुमानजीके दिव्य दर्शन हुए।

कुछ समय बाद वहाँसे पूज्य श्रीस्वामीजी महाराज श्रीबालाजीमें आये और उन्होंने इस पहाड़ीको अपनी साधनाके लिये चुना तथा यहीं रहते हुए अपने जीवनके बहुमूल्य क्षण बिताये। आपने भावविभोर हो दीर्घकालतक श्रीहनुमानजीकी भक्ति की, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने स्वामीजीको अपना दिव्य दर्शन दिया और कहा—'वर माँगो।' तब स्वामीजीने प्रार्थना की—'देव! यदि आपकी मुझपर पूर्ण अनुकम्पा है तो आप गोपालपुराके अपने दिव्य विग्रहको यहाँ अवस्थापित कर दें, जिससे मुझे अब योगशक्तिद्वारा अलक्षित होकर वहाँ न जाना पड़े।' यह सुनकर भक्तवत्सल श्रीहनुमानजीने यहीं प्रकट होनेका वर दिया। इसके पश्चात् स्वामीजी महाराजने इस क्षेत्रके आसपासकी जनताको बुलाकर कहा कि इस पहाड़ीपर भगवान् अञ्जनीनन्दन श्रीहनुमानजी चैत्र शुक्ला पूर्णमासीको प्रकट होंगे।

स्वामीजीद्वारा ऐसी सूचना पाकर हजारों नर-नारी श्रीहनुमानजीके दर्शनार्थ उक्त स्थानपर एकत्र हो गये। चैत्र शुक्ला पूर्णिमाके दिन मध्याह्नमें किंचिन्मात्र भूकम्प-सा हुआ, जिससे पहाड़ीमें दरार पड़ गयी और उसमेंसे श्रीहनुमानजी पाषाण-स्तम्भके रूपमें प्रकट हुए। तदनन्तर पूज्य स्वामीजीने उक्त पहाड़ीके उपर्युक्त स्थानपर उस मूर्तिको प्रतिष्ठापित कर दिया। वह शिलामयी मूर्ति आज भी भक्त-जनोंके चित्तको हठात् अपनी ओर आकर्षित करती रहती है। —पं० श्रीहजारीरामजी शर्मा

रैनवाल—जयपुरसे अठारह मीलपर चित्तौरा-रैनवालके श्रीहनुमानजीका प्रसिद्ध चमत्कारी हनुमान-मूर्तियोंमें एक विशिष्ट स्थान है। मन्दिरके पास एक सरोवर है। यहाँ वैसे तो सदा ही भीड़ लगी रहती है, परंतु वैशाख शुक्ला षष्ठीको विशाल मेला लगता है, जिसमें दूर-दूरके यात्री आते हैं। —श्रीचौथमल, भँवरीलाल लखेरा

खेड़—(क्षीरपुर) यह स्थान जिला बाड़मेर-बालोत्तरासे पाँच मील पश्चिम लूणी नदीके तटपर है। यहाँके अनेकों मन्दिरोंमें श्रीहनुमानजीका मन्दिर प्रमुख एवं प्रसिद्ध है। मन्दिरमें श्रीहनुमानजीकी विशाल एवं भव्य मूर्ति है। प्रत्येक पूर्णिमाको यहाँ मेला लगता है। माघ मासमें 'रबारी' जातिके लोग (जिनको देवासी भी कहते हैं) यहाँ अपने बालकोंका मुण्डन-संस्कार कराने आते हैं। ये लोग श्रीहनुमानजीको 'खोड़िया बाबा' कहकर पुकारते हैं। —श्रीरामकरणजी गुप्त, बी० काम०, एडवोकेट

पूनरासर—दिल्ली-बीकानेर-रेलवेलाइनपर स्थित सूडसर स्टेशनसे दस मील पूर्व श्रीहनुमानजीका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँके हनुमानजीकी मान्यता इस प्रदेशमें अधिक है। इन हनुमानजीकी उपासना जैन-समाजमें विशेष मान्य है। यहाँ वर्षमें एक बार विशाल मेला लगता है। वैसे साधारण भीड़ तो सदैव होती रहती है। —सीतारामजी सोनी

बड़ू—जिला नागौरके डेगाना तहसीलमें यह प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ हनुमानजीका विशाल मन्दिर है, जिसमें श्रीहनुमानजीकी तीन मूर्तियाँ हैं—१-दास हनुमान, २-वीर हनुमान और ३-भक्त हनुमान। कहते हैं, यहाँ जो मनौती मानी जाती है, वह अवश्य सिद्ध होती है। वर्षमें एक बार विशाल मेला भी लगता है।

बीकानेर—श्रीरतनबिहारीजीके प्रसिद्ध मन्दिरके पास श्रीहनुमानजीकी एक विशाल प्रतिमा है। प्रतिदिन सैकड़ों भावुक भक्त इस विग्रहके दर्शन करते हैं। यहाँ घटित हुए कई चमत्कार भी सुने जाते हैं। यहाँ प्रति मंगलवारको दर्शनार्थियोंका मेला-सा लग जाता है।

सालासर—श्रीरामपायक हनुमानजीका यह मन्दिर राजस्थानके चूरू जिलेमें है। गाँवका नाम सालासर है, इसलिये 'सालासरवाले बालाजी' के नामसे इनकी लोक-प्रसिद्धि है। बालाजीकी यह प्रतिमा बड़ी प्रभावशाली और दाढ़ी-मूँछसे सुशोभित है। मन्दिर पर्याप्त बड़ा है। चारों ओर यात्रियोंके ठहरनेके लिये धर्मशालाएँ भी बनी हुई हैं, जिनमें हजारों यात्री एक साथ ठहर सकते हैं। दूर-दूरसे भी यात्री अपनी मनःकामनाएँ लेकर यहाँ आते हैं और इच्छित वर पाते हैं। यहाँ सेवा-पूजा तथा

आय-व्यय-सम्बन्धी सभी अधिकार स्थानीय दायमा ब्राह्मणोंको ही है, जो श्रीमोहनदासजीके भानजे उदयरामजीके वंशज हैं।

श्रीमोहनदासजी ही इस मन्दिरके संस्थापक थे। ये बड़े वचनसिद्ध महात्मा थे। असलमें श्रीमोहनदासजी रूल्याणी ग्रामके, जो सालासरसे लगभग सोलह मील दूर है, निवासी थे। इनके पिताश्रीका नाम लच्छीरामजी था। लच्छीरामजीके छः पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रीका नाम कानीबाई था, मोहनदासजी सबसे छोटे थे। कानीबाईका विवाह सालासर ग्रामके निवासी श्रीसुखरामजीके साथ हुआ था, पर विवाहके पाँच साल बाद ही (उदयराम नामक पुत्र-प्राप्तिके बाद) सुखरामजीका देहान्त हो गया। तब कानीबाई अपने पुत्र उदयरामजीसहित अपने पीहर रूल्याणी चली गयी, किंतु कुछ पारिवारिक परिस्थितियोंके कारण अधिक समयतक वहाँ न रह सकी और सालासर वापस आ गयी। यह सोचकर कि 'विधवा बहन कैसे अकेली जीवन-निर्वाह करेगी', मोहनदासजी भी उसके साथ सालासर चले आये। इस प्रकार कानीबाई, मोहनदासजी और उदयरामजी साथ-साथ रहने लगे।

श्रीमोहनदासजी आरम्भसे ही विरक्त वृत्तिवाले व्यक्ति थे और श्रीहनुमानजी महाराजको अपना इष्टदेव मानकर उनकी पूजा करते थे। यही कारण था कि यदि वे किसीको कोई बात कह देते तो वह अवश्य सत्य हो जाती। इस कारण उन्हें सभी लोग जानने लगे थे। इसी प्रकार दिन बीत रहे थे। एक दिन मोहनदासजी और उदयरामजी—दोनों अपने खेतमें काम कर रहे थे कि मोहनदासजी बोले, 'उदयराम! मेरे पीछे तो कोई देव पड़ा है, जो मेरा गँड़ासा छीनकर फेंक देता है।' उदयरामजीने भी देखा कि बार-बार मोहनदासजीके हाथसे गँड़ासा दूर जा पड़ता है। उदयरामजीने पूछा—'मामाजी! कौन देव हैं?' मोहनदासजी बोले—'बालाजी प्रतीत होते हैं।' यह बात ठीकसे उदयरामजीकी समझमें न आयी। घर लौटनेपर उदयरामजीने कानीबाईसे कहा—'माँ! मामाजीके भरोसे तो खेतमें अनाज नहीं हो सकता।' यह कहकर खेतवाली सारी बात भी कह सुनायी। उसे सुनकर कानीबाईने सोचा—'कहीं भाई मोहनदासजी संन्यास न ले लें।' अन्तमें उसने एक स्थानपर मोहनदासजीके लिये लड़की तय करके सम्बन्ध पक्का करनेके लिये नाईको कुछ कपड़े एवं जेवर देकर लड़कीवालेके यहाँ भेजा। पीछे थोड़ी देर बाद ही जब मोहनदासजी घर आये तो कानीबाईने विवाहकी सारी बात उनसे कही। तब वे हँसकर बोले, 'पर बाई! वह लड़की तो मर गयी।' कानीबाई सहम गयी; क्योंकि वह जानती थी कि मोहनदासजी वचनसिद्ध हैं। दूसरे दिन नाई लौटा तो उसने भी बताया कि वह लड़की तो मर गयी। इस तरह मोहनदासजीने विवाह नहीं किया और वे पूर्णरूपसे श्रीबालाजी बजरंगबलीकी भक्तिमें प्रवृत्त हो गये।

एक दिन मोहनदासजी, उदयरामजी और कानीबाई—तीनों अपने घरमें बैठे थे कि दरवाजेपर किसी साधुने आवाज दी। कानीबाई जब आटा लेकर द्वारपर गयी तो वहाँ कोई दृष्टिगोचर न हुआ, तब इधर-उधर देखकर वह वापस आ गयी और बोली, 'भाई मोहनदास! दरवाजेपर तो कोई नहीं था।' तब मोहनदासजी बोले—'बाई! वे स्वयं बालाजी थे, पर तू देरसे गयी।' तब कानीबाई बोली—'भाई! मुझे भी बालाजीके दर्शन करवाइये।' मोहनदासजीने हामी भर ली। दो महीनेके बाद ही उसी तरह द्वारपर फिर वही आवाज सुनायी दी। इस बार मोहनदासजी स्वयं द्वारपर गये और देखा कि बालाजी स्वयं हैं और वापस जा रहे हैं। मोहनदासजी भी उनके पीछे हो लिये। अन्ततोगत्वा बहुत निवेदन करनेपर बालाजी वापस आये। तो वह भी इस शर्तपर कि 'खीर-खाँड़के भोजन कराओ और सोनेके लिये काममें न ली हुई खाट दो तो मैं चलूँ।' मोहनदासजीने स्वीकार कर लिया। बालाजी महाराज घर पधारे। दोनों बहन-भाईने उनकी बहुत सेवा की। कुछ दिन पूर्व ही ठाकुर सालमसिंहजीके लड़केका विवाह हुआ था। उनके दहेजमें आयी हुई खाट बिलकुल नयी थी। वही बालाजीको सोनेके लिये दी गयी।

एक दिन मोहनदासजीके मनमें आया कि यहाँ श्रीबालाजीका एक मन्दिर बनवाना चाहिये। यह बात ठाकुर सालमसिंहजीतक पहुँची। बात विचाराधीन ही चल रही थी कि उसी समय एक दिन गाँवपर किसीकी फौज चढ़ आयी। अचानक ऐसी स्थिति देखकर सालमसिंहजी व्याकुल हो गये। तब मोहनदासजी बोले—'डरनेकी कोई बात नहीं है। एक तीरपर नीली झंडी लगाकर फौजकी ओर छोड़ दो, बजरंगबली ठीक करेंगे।' यही किया गया और वह आपत्ति टल गयी। इस घटनासे मोहनदासजीकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी। सालमसिंहजीने भी श्रीबालाजीकी प्रतिमा स्थापित

करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। अब समस्या यह आयी कि मूर्ति कहाँसे मँगवायी जाय। तब मोहनदासजीने कहा—'आसोटा'* से मँगवा लो।' आसोटाके सरदारके यहाँ सालमसिंहजीका पुत्र ब्याहा गया था। तुरंत ही वहाँ समाचार दिया गया कि आप श्रीबालाजीकी एक प्रतिमा भिजवाएँ।

उधर आसोटामें उसी दिन एक किसान जब खेतमें हल चला रहा था तो अचानक हल किसी चीजसे उलझ गया। जब किसानने खोदकर देखा तो वह बालाजीकी मनोमोहक प्रतिमा थी। वह तुरंत उसे लेकर ठाकुरके पास गया और मूर्ति देकर बोला, 'महाराज! मेरे खेतमें यह मूर्ति निकली है।' ठाकुर साहबने वह मूर्ति महलमें रखवा ली। उसे देखकर वे भी विस्मित थे। उन्होंने मूर्तिकी यह विशेषता देखी कि उसपर हाथ फेरनेसे वह सपाट पत्थर मालूम पड़ती है और देखनेपर मूर्ति है। यह घटना सं० १८११ वि० श्रावण शुक्ल ९ शनिवारकी है। अचानक आसोटाके ठाकुरको उस प्रतिमामेंसे आवाज सुनायी दी कि 'मुझे सालासर पहुँचाओ।' यह आवाज दो बार आयी, अबतक तो ठाकुर साहबने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया था, पर तीसरी बार बहुत तेज आवाज आयी कि 'मुझे सालासर पहुँचाओ।' उसी समय सालमसिंहजीद्वारा भेजा हुआ आदमी वहाँ पहुँच गया। इस तरह थोड़ी ही देरमें मूर्ति बैलगाड़ीपर रखवा दी गयी और गाड़ी सालासरके लिये रवाना हो गयी।

इधर दूसरे दिन सालासरमें जब मूर्ति पहुँचनेवाली ही थी कि मोहनदासजी, सालमसिंहजी तथा सारे गाँवके लोग हरिकीर्तन करते हुए स्वागतके लिये पहुँचे। चारों ओर अत्यन्त उत्साह और उल्लास उमड़ रहा था। अब समस्या यह खड़ी हुई कि प्रतिमा कहाँ प्रतिष्ठित की जाय। अन्तमें मोहनदासजीने कहा कि 'इस गाड़ीके बैलोंको छोड़ दो, ये जिस स्थानपर अपने-आप रुक जायँ, वहीं प्रतिमाको स्थापित कर दो।' ऐसा ही किया गया। बैल अपने-आप चल पड़े और एक तिकोने टीलेपर जाकर रुक गये। इस तरह इसी टीलेपर श्रीबालाजीकी मूर्ति स्थापित की गयी। यह स्थापना वि० सं० १८११ श्रावण शुक्ल १० रविवारको हुई। मूर्तिकी स्थापनाके बाद यह गाँव यहीं बस गया। इससे पूर्व यह गाँव वर्तमान नये तालाबसे उतना ही पश्चिममें था, जितना अब पूर्वमें है। चूँकि सालमसिंहजीने इस नये गाँवको बसाया, अतः इसका (सालमसरसे अपभ्रंश होकर) सालासर नाम पड़ा। इससे पहलेवाले गाँवका नाम क्या था, यह पता नहीं चल सका। कुछ लोगोंका विचार है कि यह नाम पुराने गाँवका ही है, पर इस विषयमें कोई तर्कसम्मत प्रमाण नहीं है।

प्रतिमाकी स्थापनाके बाद तुरंत ही तो मन्दिरका निर्माण सम्भव न था, अतः ठाकुर सालमसिंहजीके आदेशपर सारे गाँववालोंने मिलकर एक झोंपड़ी बना दी। जब उसे बनाया जा रहा था तो पासके रास्तेसे ही जूलियासरके ठाकुर जोरावरसिंहजी जा रहे थे। उन्होंने जब यह नयी बात देखी तो पास ही खड़े व्यक्तियोंसे पूछा, 'यह क्या हो रहा है?' उन लोगोंने उत्तर दिया, 'बावलिया स्वामी' ने† बालाजीकी स्थापना की है, उसीपर झोंपड़ी बनवा रहे हैं।' जोरावरसिंहजी बोले—'मेरी पीठमें अदीठ (एक प्रकारका फोड़ा) हो रहा है, उसे यदि बालाजी मिटा दें तो मन्दिरके लिये मैं पाँच रुपये चढ़ा दूँ।' यह कहकर वे आगे बढ़ गये। अगले स्थानपर पहुँचकर जब उन्होंने स्नानके लिये कपड़े उतारे तो देखा कि पीठमें अदीठ नहीं है। उसी समय वापस आकर उन्होंने गठजोड़ेकी (पत्नीसहित) जात दी और पाँच रुपये भेंट किये। यह पहला परचा—चमत्कार था।

अब मन्दिरका काम चलानेके लिये मोहनदासजी और उदयरामजी प्रयत्न करने लगे और अन्तमें एक छोटा-सा मन्दिर बन गया। इसके अनन्तर समय-समयपर विभिन्न श्रद्धालु भक्तोंके सहयोगसे मन्दिरका वर्तमान विशाल रूप हो गया। इस तरह थोड़े ही दिनोंमें श्रीबालाजी एवं मोहनदासजीकी ख्याति दूर-दूर फैल गयी। सुनते हैं, श्रीबालाजी एवं मोहनदासजी आपसमें बातें भी किया करते थे। मोहनदासजी तो सदा भक्ति-भावमें ही डूबे रहते थे, अतः सेवा-पूजाका कार्य उदयरामजी करते थे। उदयरामजीको मोहनदासजीने एक चोगा दिया था, पर उसे पहननेसे मनाकर पैरोंके नीचे रख लेनेको कहा। तभीसे पूजामें यह पैरोंके नीचे रखा जाता है। मन्दिरमें अखण्ड ज्योति (दीप) है, जो उसी समयसे जल रही है। मन्दिरके बाहर धूणाँ है। मन्दिरमें मोहनदासजीके पहननेके कड़े भी रखे हुए

* आसोटा गाँव मारवाड़में लाडनूं और जसवंतगढ़के बीच है। इसे आसोटा खानपुर भी कहते हैं।

† आसपासके लोग मोहनदासजीको ही 'बावलिया स्वामी' कहा करते थे।

हैं। मन्दिरके सामनेके दरवाजेसे थोड़ी दूरपर ही मोहनदासजीकी समाधि है, जहाँ कानीबाईकी मृत्युके बाद उन्होंने जीवित-समाधि ले ली थी। पास ही कानीबाईकी भी समाधि है।

ऐसा बताते हैं कि यहाँ मोहनदासजीके रखे हुए दो कोठले थे, जिनमें कभी समाप्त न होनेवाला अनाज भरा रहता था, पर मोहनदासजीकी आज्ञा थी कि इनको खोलकर कोई न देखे। बादमें किसीने इस आज्ञाका उल्लङ्घन कर दिया, जिससे कोठलोंकी वह चमत्कारिक स्थिति समाप्त हो गयी।

इस प्रकार यह श्रीसालासर बालाजीका मन्दिर लोक-विख्यात है, जिसमें श्रीबालाजीकी भव्य प्रतिमा सोनेके सिंहासनपर विराजमान है। सिंहासनके ऊपरी भागमें श्रीराम-दरबार है तथा निचले भागमें श्रीरामचरणोंमें हनुमानजी विराजमान हैं। मन्दिरके चौकमें एक जालका वृक्ष है, जिसमें लोग अपनी मनोवाञ्छा-पूर्ति-हेतु नारियल बाँध देते हैं। भाद्रपद, आश्विन, चैत्र एवं वैशाखकी पूर्णिमाओंको यहाँ मेले लगते हैं। सालासरके प्रसिद्ध संत मोहनदासजीकी एक रचना है, जिसे 'मोहनदास-वाणी' कहते हैं। उसीका कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

हणमत थारे हरख पछें आयो मंगलवार।
ऊँचा म्हानें राखज्यो अँजनी राजकुँवार॥
माया मोहनदास नैं दई बंकड़ैं बीर।
मंगल जीमो मेदनी दही चूरमा खीर॥
मोहन माया मोहनी थानैं देसी दुःख।
साँचे दिल साहिब रटो सिमरां होसी सुख॥
माया मद्यम बताय दो तो हाथ नं भेड़ां म्हे।
अंजनी-सुत की आण खड़ास्यां म्हानें खेसी के॥
मोहन हल कर सांतरो बैल भलेरा जोय।
मंदर में दीपक जगै मत रही जो सोय॥
धान ओबरै घालद्यो गाढ़ो देवो निपाय।
ज्यूं चावै ज्यूं काड़ज्यो थारै कदे निमड़ नाय॥

—श्रीशिवप्रसादजी पारीक

हरियाणा एवं पंजाबके कुछ हनुमान-मन्दिर

कैथल—करनालके पास स्थित कैथलका पुराणोंमें 'कपिस्थल' के नामसे वर्णन प्राप्त होता है—कपिस्थल अर्थात् बंदरोंका स्थान। यह भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके परम भक्त श्रीमहावीर हनुमानजीकी भूमि है। यहाँ कई मारुति-मन्दिर हैं। महाभारत-ग्रन्थमें भी इस स्थानका वर्णन मिलता है। महाराज युधिष्ठिरने युद्धको रोकने तथा शान्ति-स्थापनकी इच्छासे समझौता करते हुए दुर्योधनसे जो पाँच गाँव माँगे थे, उनमें यह कपिस्थल भी था।

सिरसा—यह दिल्ली-रेवाड़ी-भटिण्डा लाइनपर उत्तरी रेलवेका स्टेशन है। यहाँके श्रीआशीर्मुखी हनुमानजी बड़े विख्यात हैं। सिरसानिवासी श्रीशान्तिस्वरूपजीको एक बार बहुत कष्टका सामना करना पड़ा। उस समय एक संतने उन्हें श्रीहनुमानजीकी मूर्तिकी स्थापना और उसकी अर्चना करनेका आदेश दिया था। प्रभु-कृपासे जयपुरमें सुन्दर मूर्तिका निर्माण हो गया तथा सं २०२६ वि० कार्तिक शु० ११ को समारोहके साथ श्रीहनुमानजीके श्रीविग्रहकी प्राण-प्रतिष्ठा हो गयी। इस जाग्रत् विग्रहने न केवल श्रीशान्तिस्वरूपजीको कष्ट-विमुक्त किया, अपितु इसके द्वारा अनेक शरणागत आर्त्त भी त्राण पा चुके हैं।

—पं० श्रीरमेशचन्द्र शान्त 'शालिहास', शास्त्री, प्रभाकर

पटियाला—इस नगरमें सरहिंदी दरवाजेसे बाहर श्रीमहावीरजीका एक प्राचीन मन्दिर है। पंजाबमें श्रीहनुमानजीके भक्तोंका एक वर्ग है, जो 'महावीर-दल'-के नामसे अभिहित है। दीपावलीसे एक दिन पहले (कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीके दिन) आज भी पटियालाके महावीर-दलकी ओरसे हनुमान-जयन्ती-उत्सव बड़े ठाट-बाटके साथ मनाया जाता है।

—डॉ० श्रीनवरत्न कपूर, एम्०ए०, पी०-एच्०डी०

फिरोजपुर—यहाँ स्टेशनके समीप ही एक मारुति-मन्दिर है, जो 'श्रीदेवीसहाय हनुमान-मन्दिर' के नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ प्रत्येक मंगलवारको सामूहिक सुन्दरकाण्डका पाठ होता है। बाहरसे आनेवाले यात्रियोंके लिये भी मन्दिरकी ओरसे पूरी व्यवस्था है। प्राय: सत्सङ्ग यहाँ नियमसे हुआ करता है। कार्तिकमें हनुमज्जयन्ती-उत्सव विशेष समारोहसे मनाया जाता है। कहते हैं, इस मन्दिरको बने लगभग डेढ़ सौ वर्ष हो गये।

—स्वामी शिवानन्द-विजयानन्दजी

राजस्थानी लोक-साहित्यमें महावीर श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० श्रीमनोहरजी शर्मा, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

राजस्थान धर्मप्राण प्रदेश है, परंतु साथ ही वह वीरपूजक भी है। ऐसी स्थितिमें यहाँकी जनताके हृदयमें महावीर श्रीहनुमानके प्रति विशेष भक्ति-भावनाका होना सर्वथा स्वाभाविक ही है।

राजस्थानके गाँव-गाँवमें महावीर श्रीहनुमानके बुंगले (छोटे आकारके देवालय) दीख पड़ते हैं। कुएँके पास तो महावीरजीका 'थान' (देवस्थान) अनिवार्यरूपसे होता ही है। पेड़के ऊपर लाल ध्वजा फहराती रहती है और उसके नीचे छोटा-सा मन्दिर अथवा मिट्टीका चबूतरा होता है, जिसपर लघुशिलाके रूपमें बजरंगबली विराजमान रहते हैं। कुएँसे पानी निकालते समय सामान्यतया यह पद भक्तिपूर्वक गाया जाता है—

जय हणमान बलाकारी बाल-वंध्याल्या पाणी।
पाणी ल्या पतालका जीवै तेरा बालका॥

'हे बलशाली हनुमान! मेरी डोरी बालके समान कमजोर है, परंतु तुम इसीके सहारे पातालका पानी ऊपर ला दो, जिससे तुम्हारे बालक अर्थात् हमलोग जीवित रह सकें।'

राजस्थानमें श्रीहनुमानजीकी मनौती मानी जाती है, उनकी 'जात' दी जाती है और उनके नामपर 'रातिजगा' किया जाता है। उनके 'थान' पर शिशुओंके 'जड़ूले' (मुण्डन) भी उतारे जाते हैं। 'चूरमा' श्रीहनुमानजीका विशेष 'भोग' (प्रसाद) है। चैत्र मासकी पूर्णिमाको बालाजीके मेले जगह-जगह लगते हैं और उनमें दूर-दूरसे यात्री आकर सम्मिलित होते हैं। कई स्थानोंके मेलोंने अत्यधिक ख्याति प्राप्त कर रखी है, जिनमें 'सालासर' गाँवके हनुमानजीकी विशेष मान्यता है। मंगलवार और शनिवार—ये दोनों 'बालाजीके वार' कहे जाते हैं। इन दोनों दिनोंमें भक्तलोग हनुमानजीके 'थान' पर नारियल अथवा 'प्रसाद' चढ़ाकर अपनेको कृतार्थ मानते हैं।

इस सम्बन्धमें राजस्थानी महिला-समाजमें गाया जानेवाला एक लोक-गीत देखिये—

हणमत, कोठै तो बाजा बालाजी थारै बाजिया,
हणमत, कोठै तो घोर्‌या छै नीसाण,
बाबै बजरंगजी रो बुंगलो हद बण्यो॥
हणमत, सालासर बाजा बालाजी थारै बाजिया,
हणमत, बिसाऊं में घोर्‌या छै नीसाण॥
बाबै हणमत, बाग बिधूंस्यो जी लंका दलमली,
हणमत, सार्‌या राजा रामचंदरका काज,
बाबै बजरंगजी रो बुंगलो हद बण्यो॥

इस लोक-गीतमें महावीर श्रीहनुमानके मन्दिर और वहाँ मनौती पूरी करनेके लिये आनेवाले यात्रियोंकी चर्चा है। अन्तकी दो पङ्क्तियोंमें बजरंगबलीके पराक्रमका संकेत किया गया है। इसी क्रममें महिला-समाजका एक अन्य लोक-गीत भी द्रष्टव्य है, जिसमें देवस्थानकी यात्राका बड़ा ही भावनापूर्ण चित्रण है—

सुसरोजी म्हारा थे छो धरम का बापजी,
थारा हस्तीड़ा सिणगारो म्हे बालाजी नैं धोकस्यां।
काहे तो खातर बहवड़ बोली छै जात जी,
थे तो काहे रै खातर बालाजी नैं धोकस्यो?
कँवरां रै खातर म्हे तो बोली छै जात जी,
म्हारै चुड़लै रै खातर बालाजी नैं धोकस्यां।
साहेब म्हारा सेजां रा सिणगार जी,
थारी बैलड़ियाँ जुपावो म्हे बालाजी नैं धोकस्यां।
कहतां तो सुणतां मारूजी बैलड़ियाँ जुपाई जी,
म्हारै हुकमां रै साहै जात पधारिया।
रलक्या पनां मारू ढलती सी रात जी,
कोई दीप उगायो सालासर रै गोरवै।
दीनी पनां मारू गंठजौड़ै की जात जी,
कोई रोक रुपैयो बालाजी की भेंट में।
टूठ्यो हणमत सरब सुहागजी,
कोई गोद जड़ूलै दीन्यो गीगलो।
करस्यां बालाजी हरिये मूंगां री दालजी,
कोई दल को तो करस्यां बजरंग चूरमो।

इस गीतमें 'जात देने' (देवस्थानकी यात्रा करने)-का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। राजस्थानी महिला-समाजको ऐसे गीत अत्यन्त प्रिय हैं। इनसे महावीर श्रीहनुमानजीके प्रति उनकी तीव्र भक्तिभावना प्रकट होती है।

राजस्थानी भक्त-मण्डलियोंमें श्रीहनुमानजीसे सम्बन्धित भजन भी बड़े प्रेमसे गाये जाते हैं। ध्यान रखना चाहिये कि महिला-वर्गके गीतों और पुरुष-समाजके भजनोंमें विशेष अन्तर है। यद्यपि ये भजन महिला-वर्गमें भी बड़े प्रेमसे गाये जाते हैं; परंतु महिला-वर्गके गीत पुरुष-

समाजमें नहीं गाये जाते। इन भजनोंमें महावीर श्रीहनुमानकी जीवन-गाथाके विशिष्ट प्रसङ्ग पाये जाते हैं। उदाहरणस्वरूप 'अशोकवाटिकामें हनुमान' तथा 'लक्ष्मण-मूर्च्छाके समय हनुमान' का वर्णन देखिये—

जाय मिल्यो सीता माता सूँ, अंजनीको पुत्र बलाकारी जी॥ टेक॥
पणघट घाटां बैठ्यो है बांदर, मनमें तो धीरज धारी जी॥
पाणी की पणिहारी उठ बोली, रावण ल्यायो हर नारी जी॥
बाग नौलखै हींडो भी घाल्यो, हींड रही आमां की डाली जी॥
छोटी सी देह बणी बांदर की, जाय बैठ्यो आमां की डाली जी॥
चित्त उदास देख माता को, ऊपर सूं मुंदड़ी डाली जी॥
देख मूंदड़ी कलपण लागी, या मुंदड़ी किण तो डारी जी॥
के कोई ल्यायो उडण पंखेरू, के कोई राखस है भारी जी॥
या मुंदड़ी राजा रामचंदर की, या मुंदड़ी किण तो डारी जी॥
नां कोई ल्यायो उडण पंखेरू, नां कोई राखस है भारी जी॥
अंजनी को पुत्र राम को पायक, सुध लेवण आयो थारी जी॥
जाय कहूँ राजा रामचंदर नैं, मेटै सा बिपदा थारी जी॥
हुकम होय तो बनफल खावूं, मो तन भूख लगी भारी जी॥
पड्या-रिळ्या फल चुग खा बांदर, रावण को डर है भारी जी॥
नौ खोयणी सेन चढी बांदर पर, फिर आई डाली डाली जी॥
तुलसीदास भजो भगवाना, ऊपर पेड़ तलै डाली जी॥

उपर्युक्त भजनमें हनुमान-चरित गाया गया है; परंतु इसमें किसी प्रकारका काव्य-कौशल नहीं है, अपितु लोकहृदयकी सरलता व्याप्त है। भजन श्रीरामकथाका अङ्ग है, अत: जनताने इनके अन्तमें अन्य अनेक भजनोंकी तरह *'तुलसीदास भजो भगवाना'* का प्रयोग करके संतोष मान रखा है; क्योंकि महाकवि तुलसीदासजी श्रीरामकथाके अनन्य गायक हैं। जन-साधारणको साहित्यिक प्रामाणिकतासे कोई मतलब नहीं, वहाँ तो केवल भगवान्‌की भक्तिसे ही प्रयोजन रहता है। साथ ही ऐसे अवसरपर जनसाधारणको काव्यरस नहीं; परंतु भक्तिरस चाहिये, जो इन भजनोंमें भरपूर है।

लोक-साहित्यका दूसरा विशिष्ट अङ्ग लोक-कथा है। राजस्थानी लोक-कथाओंमें भी महावीर श्रीहनुमानकी महिमा व्याप्त है। व्रतोत्सवोंसे सम्बन्धित कथाओंके वर्गमें 'बालाजी' का प्रभाव वर्णित है। ये कथाएँ भी श्रीगणेशजीकी कथाओंसे लगभग मिलती-सी ही हैं। इन सबमें महावीरजीकी सामर्थ्य और उनकी भक्त-वत्सलताका वर्णन देखते ही बनता है। उदाहरणस्वरूप एक लघु कथा देखिये—

किसी गाँवमें एक स्त्री नियमसे चूरमेका लड्डू और दहीका कटोरा लेकर बालाजीके स्थानपर जाती और उन्हें भोग चढ़ाकर कहती—*'मैं देवूं तरणापै में, तूं देई बुढ़ापै में।'* अर्थात् मैं तुझे जवानीमें भोग चढ़ाती हूँ तो तू मुझे बुढ़ापेमें भोजन देना।

इसी प्रकार अधिक समय व्यतीत हो गया और वह स्त्री बूढ़ी हो गयी। अब वह बालाजीके स्थानपर जानेमें भी असमर्थ थी। उसके बहू-बेटोंने उससे भोजन करनेके लिये कहा तो वह यह कहकर नट गयी कि उसके इष्ट-देवता बालाजीको भोग चढ़ाये बिना वह भोजन नहीं कर सकती। इस प्रकार बुढ़िया भूखी ही लेटी रही, तब श्रीमहावीरजी वहाँ स्वयं प्रकट हुए और बुढ़ियाको चूरमेका लड्डू तथा दहीभरा कटोरा देते हुए कहा—*'तूं दियो तरणापै में, मैं देवूं बुढ़ापै में।'* तब बुढ़ियाने बालाजीका दिया हुआ 'प्रसाद' ग्रहण किया।

इस प्रकार 'बालाजी' प्रतिदिन बुढ़ियाके सामने प्रकट होकर उसे 'प्रसाद' देने लगे। पड़ोसिनने यह देखकर बुढ़ियाके बेटे-बहुओंसे शिकायत की, तब बालाजीने प्रकट होना बंद कर दिया। बुढ़ियाने फिर अनशन धारण किया, जिससे बालाजी पुन: प्रकट हुए। इस बार उन्होंने बुढ़ियाका घर सब प्रकारसे सम्पन्न कर दिया। उसमें धन-धान्यकी कोई कमी नहीं रह गयी।

ऐसी कहानियोंका प्रचार महिला-समाजमें अधिक है। बहुत-सी महिलाएँ तो इन कथाओंको नियमपूर्वक प्रतिदिन स्वयं ही कहकर पुण्य-लाभ करती हैं। अपने समयको भक्तिमय बनानेकी यह एक सरल शैली है कि स्वयं ही कथा कह लें और स्वयं ही उसे सुन लें। कहना न होगा कि ये कथाएँ पुराणादि प्राचीन ग्रन्थोंमें तो नहीं मिलतीं किंतु लोकमुखपर ही अवस्थित रहकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती आ रही हैं। ऐसी स्थितिमें यह अनुमान लगाना कठिन है कि ये कितने प्राचीन कालसे प्रचलित हैं और इनकी रचना किस प्रकार हुई थी।

लोकगीतों और लोककथाओंके अतिरिक्त लोक-प्रचलित दोहोंमें भी अनेकश: श्रीहनुमानजीका स्मरण किया गया है। वे 'आरक्ष देव' के रूपमें लोकपूजित हैं। राजस्थानमें श्रीगणेशके समान ही श्रीबजरंगबलीकी भी मान्यता है। वे हर समय अपने भक्तोंकी सहायता करनेके लिये प्रस्तुत रहते हैं और भक्तजन उनको स्मरण करके शक्ति प्राप्त करते हैं। यथार्थ ही कहा गया है—

लाल लंगोटो हद बण्यो, तिलक बण्यो असमान।
सारां पहली सुमरिये, अंजनी को हणमान॥

हनुमान-पञ्चक

(रचयिता—महाकवि श्रीचतुरसिंहजी*)

दोहा

संचक सुख कंचक कवच पंचक पूरन बान।
रंचक रंचक कष्ट ना हनमत पंचक जान॥

(मत्तगयंद छन्द)

ग्राहि नसाहिं पठाहि दई
दिबदेव महाहि सराहि सिधारी।
बीर समीरज श्रीरघुबीरन
धीर हि पीर गंभीर बिदारी॥
कंद अनंद सु अंजनि नंद
सदा खल वृंदन मंदज हारी।
भूधर को धर के कर ऊपर
निर्जर के जुद की जर जारी॥ १॥

बालि सहोदर पालि लयो
हरि कालि पतालिहु डालि दई है।
भालि मरालिसि सीय करालि
बिडालि निशालि बिहालि भई है॥
टालि डरालि महालिय राय
गजालिन चालि चपेट लई है।
ख्यालिहिं शालि दई गंध कालि
कपालि उतालि बहालि गई है॥ २॥

आसु विभावसु पासु गये
अरु तासु सुहांसु गरासु धर्‌यो है।
अच्छ सु वच्छन तच्छन तोरि
स रच्छन पच्छन पच्छ कर्‌यो है॥
आर अपार कु कार पछार
समीर कुमार सुमार भर्‌यो है।
को हनुमान समान जहान
बखानत आज अमान अर्‌यो है॥ ३॥

अंजनि को सुत भंजन भीरन
संजन रंजन पंज रहा है।
रुद्र समुद्रहि छुद्र कियो
पुनि क्रुद्ध रसाधर ऊर्द्ध लहा है॥
मोहि न ओप कहो पतऊ
तुब जोप दया करु तोप कहा है।
गथ्थ अकथ्थ बनत्त कहा
हनुमत्त तु हथ्थ समथ्थ सहा है॥ ४॥

भान प्रभानन कै अनुमान
गये असमान बिहान निहारी।
खान लगे मघवानहु को
सु कियो अपमान गुमानहिं गारी॥
प्रान परान लगे लछ्मान तु
आनन गानपती गिरधारी।
बान निबाय सुजान महान सु
है हनुमान करान हमारी॥ ५॥

(दोहा)

बसु दिशि औं पौराण दृग इक इक आधे आन।
सित नवमी इष इन्दु दिन पंचक जन्म जहान॥

—प्रेषिका—श्रीमती कमला अग्रवाल, बी०ए०, बी०एड्०, आर०ई०एस्०

---

* महाकवि महाराज चतुरसिंहजी संस्कृत, हिंदी, राजस्थानी आदि अनेक भाषाओंके सुज्ञाता और मर्मज्ञ तथा मेवाड़ी बोलीके कवि थे। मेवाड़ीमें रचित इनकी रचनाओंका मेवाड़के घर-घरमें प्रचार है। मीराँके बाद मेवाड़में यही इतने लोकप्रिय कवि हुए हैं। इन्होंने मेवाड़ीमें अधिक रचना की है, अत: इन्हें 'मेवाड़ी बोलीका महाकवि' भी कहते हैं। इनके लगभग डेढ़ दर्जन ग्रन्थ प्रकाशित एवं पाण्डुलिपियोंके रूपमें उपलब्ध हैं।—प्रेषिका

मालवी लोक-साहित्यमें श्रीहनुमान

(लेखक—पं० श्रीरामप्रतापजी व्यास, एम्०ए०, एम्०एड्०, साहित्यरत्न)

लोक-साहित्य लोक-जीवनका दर्पण है। इसमें हमें लोक-संस्कृति एवं सभ्यताके दर्शन होते हैं। भारतीय लोक-साहित्यमें हमें जन-जीवनकी झाँकी देखनेको मिलती है। मालवी लोक-साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। भारतीय लोक-गीतोंमें बहुदेववादकी अभिव्यक्ति पर्याप्त मात्रामें दीख पड़ती है। लोक-वार्ताकी प्रकृति प्राय: लौकिक मान्यताओंके कारण देवी-देवताओंके सम्बन्धमें अभिप्रायोंकी सूचक है। गीतोंमें वर्णित लोक-देवियाँ और लोक-देवोंके चरित्रका सम्बन्ध कल्याणके उद्देश्यसे युक्त है।*

मालवी लोक-गीतोंमें भी अनेक देवी-देवताओंका उल्लेख किया गया है। मालवाकी काली मिट्टीने जहाँ एक ओर अपने आराध्य देव लोकनायक भगवान् श्रीरामके गुणोंका बखान किया है, वहीं श्रीरामभक्त हनुमानकी सेवा-भक्ति, शौर्यशील कार्यों आदिका भी गान किया है।

मालवाकी गहन गम्भीर धरती हजारों वर्षोंसे भक्त श्रीहनुमानको श्रीरामके एक सच्चे सेवकके रूपमें मानती आयी है तथा उनके साहसिक कार्योंका उल्लेख अपनी लोक-कथाओं, लोक-वार्ताओं एवं लोक-गीतोंमें करती आ रही है। यहाँ एक लोकगीत देखिये, जिसमें श्रीहनुमानकी अनोखी झाँकी दिखायी गयी है—

जे श्रीबालाजी माराज, अनोखी थाँकी झाँकी।
थारे माथे मुकुट बिराजे, राजे कानामें कुण्डल।
राजे बाबा गले बेजन्तीमाल, अनोखी थाँकी झाँकी॥
थारे केसर तिलक बिराजे, नैनामें सुरमों छाजे।
बाबा मुखमें नागर पान, अनोखी थाँकी झाँकी॥
थारे अंगज चोलो सोवे, चोला पे झलक बिराजे।
बाबा रोम रोममें राम, अनोखी थाँकी झाँकी॥
थारे बइयाँ बाजू बंध, सोहे हाथामें घड़ियाँ।
बाबा घोंटा की बलिहारी, अनोखी थाँकी झाँकी॥
थारे पाँव पंजनीयाँ सोहे, हाथोंमें लडुवा सोहे।
बाबा चलगत की बलिहारी, अनोखी थाँकी झाँकी॥
लछ्मण ने मूरछा आई, सरजीवण बूँटी लाया।
बाबा लायो पहाड़ उठाय, अनोखी थाँकी झाँकी॥
रावण ने मार गिरायो, विभिषण ने राज्य दिलायो।
बाबा लायो सीता माय, अनोखी थाँकी झाँकी॥
थारे दूर दूर का जातरी आवे, चरणामें सीस नमावे।
बाबा सबकी सुनो पुकार, अनोखी थाँकी झाँकी॥
तुलसीदास जस गावे, जरण, मरण छुट जावे।
बाबा नैया कर दो पार, अनोखी थाँकी झाँकी॥

मालवाकी ग्राम-नारीद्वारा गाये हुए इस लोक-गीतमें जहाँ वीर हनुमानकी छबिका वर्णन किया गया है, वहीं उनके साहसपूर्ण कार्योंका भी उल्लेख हुआ है। बीच-बीचमें उनको 'बाबा,' 'बाबा,' 'बालाजी माराज' आदि नामोंसे सम्बोधित किया गया है। गीतके अन्तमें 'तुलसीदास' के नामकी छाप लगी हुई है, जिसमें उनके द्वारा इस संसार-सागरको पार करानेकी बात कही गयी है।

हनुमानजीने श्रीरामचन्द्रजीकी समय-समयपर जो सहायता की, वह किसीसे छिपी नहीं है। विशेषकर लंका-युद्धके समय उन्होंने जिस रण-कौशल, बुद्धि-चातुर्य एवं दूरदर्शिताका परिचय दिया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। लक्ष्मणको शक्ति-बाण लगा हुआ है। श्रीराम घबराये-से हैं। सभी वानर आकुल-आतुर हैं। श्रीरामचन्द्रजी सभाके बीच बीड़ा फेंकते हैं—संजीवनी-बूटी आनयनार्थ। यह दुष्कर कार्य कौन करे? किसमें इतनी सामर्थ्य है। अन्तमें हनुमानजीने बीड़ा उठाया—हिमालय पर्वत जाकर संजीवनी-आनयनका। वे अनेक कठिनाइयोंको पार करते हुए संजीवनी-बूटी लानेमें सफल हो जाते हैं। श्रीरामचन्द्रजी बूटी घिसते हैं और घूँट पिलाते हैं—हनुमान। श्रीलक्ष्मण होशमें आ जाते हैं। श्रीराम-दलमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ जाती है। निम्नाङ्कित लोक-गीतमें इन्हीं भावोंको दर्शाया गया है—

पाँच पानको बिड़लो, ओ बजरंग बाला वीर।
हनुमत बाला वीर, पड़ो सभाके बीच।
बाला जे कोई बिड़लो उठाय, शिव बजरंग बाला।

* 'मालवी लोक-साहित्य—एक अध्ययन'—ले० डॉ० श्यामपरमार—पृष्ठ २७३

वीर लछमनके लागी शक्ति बाण, बाला वीर।
हनुमत बिड़लो उठाय सी।
ओ हनुमत बाला, लक्ष्मणने देवो बूंटी लाय।
बालाजी बिड़लो उठाय मुख धर्‌यो,
राम राम कर चल दिया हनुमत बाला वीर।
पोंहच्या बालागढ़, पहाड़ा की परिकरमा देय चलीया।
कठेयन बूंटी लादी ओ बालाजी।
पहाड़ उठाय चल दिया ओ बालाजी।
पोंहच्या अयोध्या आय बालाजी।
बांण ताक भरत मार्‌यो बालाजी।
लाग्यो बांया अंगने ओ बालाजी।
ऐसो बांण लाग्यो ओ बालाजी—
परा धरण माय ओ बालाजी।
भरत मनमें कलपाय, ओ कोई भगत सताय बालाजी।
बैठो मारा बाण पर ओ बालाजी, देऊ पहुँचाय—
लंकागढ़ बालाजी।
नहीं ओ बैठूँ थारा बांण पर, ओ भरत, मारा—
वीर हनुमत पैदल जाय,
राम राम कर चल पड़ा ओ बालाजी, पोंहच्या—
लंकागढ़ ओ बालाजी।
रामचन्द्र बूंटी घसे ओ हनुमत घूंट पिलाय,
उठो ना लक्ष्मण बालाजी।
नगरीमें हो रह्यो कोकाट बालाजी, उठ्या छे—
लछमण लाड़ला ओ बालाजी।
नगरीमें आनंद मचाय हो, नगरीमें हो रही—
जे जे कार ओ बालाजी॥

रावणसे युद्ध करनेके पूर्व भगवान् श्रीराम हनुमानजीको लंकामें सीताजीकी खोजके निमित्त भेजते हैं। श्रीहनुमान लंकामें जाकर माता सीतासे मिलते हैं और अशोक-वाटिकाको उजाड़कर, लंकाको जलाकर एवं सीताजीकी खबर लेकर लौटते हैं तो उनसे माता अञ्जनी पूछती हैं—'बेटा! तूने मेरा दूध क्यों लजाया? तुझे तो सीताजीको लेकर ही लौटना था, तू लंकासे अकेला ही क्यों आया?' प्रत्युत्तरमें हनुमानजी हाथ जोड़कर कहते हैं—'हे माता! मुझे सीताजीको लानेके लिये श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा नहीं मिली थी।' इस प्रकारका प्रसङ्ग कथोपकथन-शैलीमें मालवीके इस गीतमें अवतरित किया गया है—

बजरंग बाला थे मारो दूध लजायो।
लंका में जाता सुन बजरंग, लंका जलाय घर आता॥
माता जानकी ने सिर धर लाता,
तो अंजनीका पुतर केवाता।
बजरंग बोला लंकामें जाता—'सुन मेरी माता'
रामचंद्र का हुकुम नहीं था,
तो सीता को सिर पर धर कैसे लाता॥
माताजी कोप हुआ पुत्तर पर, दूधा से पर्वत ढायो।
या आँ रे दूधा का पिबा रे बाला, ये बल काँसे गमायो॥
जल थल देख डरो मत पुत्तर, जल थल भरत उपायो।
जारे घड़ी थे जनम लियो,
थारा पिताजी रो नाम छिपायो।
राम, लक्ष्मन, भरत, शत्रुघन,
चारों मिल अयोध्या बुलायो।
मात कौसल्या और अंजना मुखड़ा से भारत गायो॥
बजरंग बाला थे मारो दूध लजायो॥

लोक-संस्कृति एवं लोक-संस्कारोंको जीवित रखनेमें जितना अधिक हाथ नारियोंका रहा है, उतना पुरुषोंका नहीं। तीज-त्यौहार मनाना, व्रत-उपवास करना एवं विधिपूर्वक देवी-देवताओंकी पूजा करना आदि कार्योंमें मालवी रमणियाँ सबसे आगे रही हैं। एक स्त्री भलीभाँति सज-धजकर श्रीहनुमान बाबाकी पूजा करने जा रही है। वह किन-किन वस्तुओंसे हनुमानकी पूजा-अर्चना करती है, यह निम्नलिखित गीतमें द्रष्टव्य है। श्रीराम और हनुमान, स्वामी और सेवककी पूजामें किस प्रकारकी विभिन्नता रखी जा सकती है—वह भी इस गीतका विषय है—

छमाछम पूजन चली हनुमान को,
ताता पानी से मारा राम ने निलाऊं॥
तेल उबटन हनुमान को॥ छमाछम०॥
केसरीया पागा मारा राम ने पेनावुं,
पन्नी, सिंदूर हनुमान को॥ छमाछम०॥
छप्पन भोग मारा राम ने जिमावुं,
और जाडा सा रोट हनुमान को॥ छमाछम०॥
सीता तो नारी मारा राम ने परनाउं,
बाल ब्रह्मचारी हनुमान है॥ छमाछम०॥

मालवाके गाँव-गाँवमें पीपलके वृक्षके नीचे चबूतरेपर प्रस्तर-खण्डोंकी बनी श्रीहनुमानकी मूर्तियाँ पन्नी एवं सिन्दूरसे चमकती हुई दूरसे ही दिखायी देती हैं। इन मूर्तियोंकी प्रमुख विशेषता यह है कि हनुमानजीके एक हाथमें पर्वत तथा दूसरेमें गदा है। वे वीर-वेषमें हैं तथा संजीवनी-पर्वत लेकर लंका पहुँचनेके लिये

आतुर-से दीख रहे हैं। ये मूर्तियाँ या तो खुले चबूतरेपर होती हैं, या बड़े अथवा छोटे मन्दिरमें। भक्तगण एवं यात्री लोग प्रति मंगलवारको यहाँ आते हैं तथा बजरंगबलीका पूजन-ध्यान करते हैं। कोई धूप देता है तो कोई घृत और सिंदूर चढ़ाता है। इस प्रकार बड़े विधि-विधान एवं आन्तरिक शुद्धतासे ये लोग बाला बजरंगजीकी स्तुति करते हैं। इन ग्रामीणोंकी धारणा है कि 'यद्यपि हमारे पास फटी धोती, फटे कपड़े और फटी हुई जूतियाँ हैं, तथापि यदि बाबा बजरंगबलीकी आज्ञा हो जाय तो बेड़ा पार हो सकता है।' लीजिये इस अन्तिम गीतमें यह तथ्य सुनिये—

मारा चित चरण के मायने, सुमरु बजरंग ने।
धूप देसां थावर का थरपना सांजोजी॥
देश देश का आवे जातरी,
लावेगा घिरत, सिंदूर।
लंका जाय गमागम मची, गिर के उड़ी असमान॥
हनुमान जाय हुंकार भरीयो,
लछमणके लागो शक्ति बाण।
आठ घाट अंगद ने रोक्या, कूद पड्या हनुमान।
माता कौसल्या पूछन लागी, केवो लंका की बात॥
किस विध तो रावण मारीया,
किस विध लाया सीता नार।
फाटी धोती, फाटा कपड़ा,
फाटी जूत्यां की जोड़ी॥
हुकुम हुयो बजरंग बली को,
कर देसी बाबो बेड़ा पार॥
सुमरु बजरंग ने॥

इस प्रकार मालवाके इन लोक-गीतोंमें श्रीरामभक्त हनुमानकी झाँकी विविधरूपोंमें दिखायी गयी है। मालवा-निवासी श्रीरामके इस लाड़ले भक्तकी पूजा-अर्चा एवं पराक्रमोंका बखान एक लोक-देवताके रूपमें हजारों वर्षोंसे करते आ रहे हैं। केवल लोक-गीतमें ही नहीं, मालवाकी लोक-कथाओं, लोक-वार्ताओं एवं जनश्रुतियोंमें भी हनुमानकी कीर्ति-पताका फहरा रही है। ये लोक-कथाएँ आज भी मालवाके गाँवोंमें जन-जनके मुँहसे सुनी जा सकती हैं।

बुन्देली लोक-साहित्यमें श्रीहनुमान

(लेखक—पं० श्रीरमावल्लभजी पाण्डेय)

भारतके अन्य भूभागोंकी तरह बुन्देलखण्डमें भी श्रीमारुतिभगवान्की पूरी मान्यता है। ***'हर खेरे हनुमान'***-की यह कहावत यहाँ अत्यन्त प्रसिद्ध है। प्रत्येक कार्यारम्भमें, चाहे वह विवाह, उत्सव, पर्व या कथा-कीर्तन ही क्यों न हो, मारुतिकी मनौती अवश्य मानी जाती है। उदाहरणार्थ—

सुमिर शारदा मैहर वारी अरु खेरेके हनुमान।
कीर्तनमें आ जा बजरंगी, ढोलक पै बिराजो बजरंगी।
'जानकीसरन' जासें बुलावें तु हो पुराने सतसंगी।

कहाँतक कहा जाय, बच्चेसे लेकर बूढ़ेतक प्रत्येक व्यक्तिका यही अटल विश्वास है कि श्रीमारुतिभगवान्का स्मरण विघ्न-बाधाओंका प्रशमन करता है। हनुमज्जयन्ती तो यहाँका प्रमुख पर्व है। उस दिन गाँव-गाँवमें धूम मच जाती है और सोहरे एवं बधाइयोंके स्वर गूँज उठते हैं। बुन्देली कवि मारुतिभगवान्का गुण-गानकर अपनेको धन्य मानता है। जयन्तीपर गाये जानेवाले गीतोंमेंसे एक गीत यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। देखिये, कितनी मधुरता है इस गीतमें—

आज केसरी भौन सुहानें सोहरे महाराज।
आज भई सोनें की रात जय जय होई महाराज॥
भारतके सिरताज प्रगट भये मारुती महाराज।
सुर सोहरे सुनाँय असुर सब सोखे महाराज॥
किलकत में कंय राम अंगन बिच खेलते महाराज।
उछल लियो रवि लील फल जानकें महाराज॥
लंका कर दई छार दुष्ट दल मार कें महाराज।
सिय सुध दे प्रिय बने अवध सरकार के महाराज॥
बनें फूल बजरंग राम हिय हार के महाराज।
धाय भयो 'घनश्याम' सोहरो गायके महाराज॥

(गोस्वामी घनश्यामदास रामायणी)

यहाँ विवाह आदिके मङ्गल-अवसरोंपर भी श्रीमारुति-भगवान्का पूजन, अर्चन और निमन्त्रण देनेकी पावन परम्परा है। कहा जाता है, उनकी सहायताके बिना यह मङ्गल-कार्य निर्विघ्न हो ही नहीं सकता। अपने इष्टदेवके निवास-स्थानकी कल्पना ऊपर स्वर्गलोकमें की जाती है, इसलिये स्त्रियाँ पाटकी सरग-नसेनीपर चढ़कर उन्हें निमन्त्रण देती हैं, जिससे उनका निमन्त्रण बेरोक-टोक

उनतक पहुँच जाय।

अपनी भूल-चूककी क्षमा माँगती हुई वे मारुति-भगवान्‌की मनौती करती हैं। देखिये एक भावभीना निमन्त्रण-गीत—

हनुमान वा तुमई निमन्ते हो!
सरग-नसेनी पाट की थारी जे चढ़ नेवतो देय
तुम मेरे नेवते पवनसुत, तुम मेरे आइयो हो
साज सजूते आइयो कारज समाँरन आइयो
कहूँ भूला परे कहुँ चूका परे तो बिसरियो हो॥

इतनेपर भी जब विवाहमें आँधी-तूफानका प्रकोप होते दिखायी देता है तो 'इस संकटको बिना मारुतिभगवान्‌के कौन टाल सकता है।'—इस प्रकारकी पुकार मचाती हुई ये बुन्देलखण्डकी नारियाँ धन्य हैं! मारुतिभगवान्‌के प्रति यह उनकी निष्ठाका द्योतक है। जो भी उन गीतोंको सुनता है, उसका हृदय भाव-विभोर हो जाता है और बरबस आँखें बरस पड़ती हैं। अक्षरश: यही हालत है उन स्त्रियोंकी—

पौन के हनुमत हैं रखवारे
हमारे पवनसुत ऐसें गजत है जैसें इन्द्र अखारे॥
किसें करे निहोरे रखैया गाँव के
घटियो विन्ती कान, कै बेटा बा के॥
बिगरे ना काज हमारे
पौन के हनुमत है रखवारे॥

फाल्गुनमें गाये जानेवाले गीतोंमें अशोक-वाटिकाके प्रसङ्गका मोहक चित्र देखते ही बनता है—

जितने हते बाग रखवारे, इक बंदरा ने मारे।
जो फल पाय भाय सो खाये कतर कतर के डारे॥
बाराबाद बाग कर डारो बिरवा बिरछ उखारे।
'ईसुर' हुकुम दियो दशकंधर अच्छैकुमार सिधारे॥

अगले गीतमें भगवान् राघवेन्द्र लक्ष्मण-शक्तिके अवसरपर अपनी दु:खभरी कहानी हनुमानजीको सुना रहे हैं—'भैया! यदि रात्रि बीत गयी तो मुझे लोग न जाने क्या-क्या कहेंगे, अयोध्यापर विपत्ति आ पड़ेगी, सीता मुझे त्याग देगी। तुम अपनी वीरताका पुन: परिचय दो, अभी रात्रि अवशेष है।'

जो कऊँ बीत जामनी जैहैं, का मोसें कोऊ कै है
मरे धरे लक्ष्मन हम देखें, जियत रामका रै है
सुनतन बिपत अवध पै पर हैं, जनकसुता तज दै है
'ईसुर' हनुमान दे हूँ कें, थोरी रात अबै है॥

हनुमानजीकी वीरताकी छाप शत्रुपक्षपर भी पड़ गयी है। मन्दोदरी भी रावणको समझाती है—

मोरे राज न ठानों रार, राम रघुराई सों
जिनके नैक नैकसे बंदरा, तुमै रये ललकार
छै छै मइनाँ नों सोवे निशाचर, कैसें पर है पार
वरवट केचुरियाँ फराव न मोरी, तोरो ना सुहागन हार।
सिय सुकमारि राम ढिग भेजा, 'घनश्याम' है जइ में सार॥

हनुमानजीकी वीरता लोक-विख्यात भले ही थी; परंतु सीताजीको ले आने-जैसे छोटे कामके लिये श्रीरामचन्द्रजीको लंकामें भटकानेके कारण वीरमाता अञ्जना उन्हें कैसे फटकार रही हैं, इसका भी दर्शन कीजिये—

तैंने मेरो दूध लजाये पवन सुत
काहे सजीं तैंने रीछ बंदरिया काहे वे कटक सजाओ
सात समुन्दर तैने नाके काहे सेत बंदाओ
लंका बात तनक सी कैयें रामचन्द्र भटकाओ
बोलन न मारो मात अंजना सेंट पिअन नईं पाओ
'जानकीसरन' आस रघुबर की हरि चरनन चित लाओ॥

इन गीतोंके अतिरिक्त बुन्देलखण्डमें 'लगुरियाँ' गीत हनुमत्-उपासनाके लिये सर्वाधिक प्रचलित है। 'लगुर' हनुमानजीका ही नाम है। इन गीतोंके माध्यमसे माता दुर्गा और महावीर हनुमानकी संयुक्त मनौती की जाती है, जो शास्त्रसम्मत भी है। ऐसी प्रतिमाओंका पूजन स्त्रियाँ भी करती हैं। एक 'लगुर' गीत द्रष्टव्य है—

अनरित के बरस गय मेव हम तुम भीजें गेला में
कौनाँ की भीजै रंग चूनरी, कौना की भीजै पाग
दुरगा की भीजै रंग चूनरी, लाँगुर की पचरँग पाग
वारी बेस बाबा भये हंस हंस पूछें शारदा माय
कौन गुरु के चेला भये कौनानें फूँके कान
राम जू के चेला भये शिव शंकर ने फूँके कान
वे चरन छोड़ को जाय वारे लाँगुरिया॥

धन्य हैं बुन्देल-धराकी नारियाँ, जो मातृभावसे भगवान् मारुतिकी मनौती करती हैं और अपने लाडले हनुमंत लालको 'लंगुरियारूपमें' लोरी सुनाया करती हैं। दोनों ही जयन्तियाँ निष्ठाकी द्योतक हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मंगलवार और शनिवारको सिन्दूर-तेल आदिसे प्रपूजित भगवान् मारुतिजीकी प्रतिमाएँ देखनेको मिलती हैं—जैसे ध्यानस्थ हनुमान, पातालविजयी हनुमान, सरवीके हनुमान, मनसा हनुमान आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि बुन्देलखण्डकी जनताके रोम-रोममें मारुतिके प्रति अपार श्रद्धा है।

हनुमानजीकी अनूठी आराधना

(लेखक—साहित्य-वारिधि डॉ० श्रीहरिमोहनलालजी श्रीवास्तव, एम्०ए०, एल्०टी०, एल्-एल्० बी०)

शक्ति-पूजाका इतिहास अत्यन्त पुरातन है। वैदिक सभ्यताके प्रकाशमें भी शक्तिका अपना सम्मान था। आदिमें अन्धकारयुगीन मानवने भी शक्ति-पूजाके रूपमें ही 'उपासना' का प्रकाश देखा। फलस्वरूप आज भी संसारके सभी देशोंमें किसी-न-किसी रूपमें शक्ति-पूजापर आस्था प्रकट की गयी है। कहना तो यह चाहिये कि शक्तिकी उपासनामें मत-मतान्तरके विवादको समाप्त कर देनेके बीज निहित हैं। विभिन्न धर्मोंका सफल समन्वय करते हुए लोकमें शान्तिका गजर बजानेमें वह सर्वथा समर्थ है। महामाया जगदम्बा आदिशक्ति, महादेव प्रलयंकर शंकर (जो 'शिव' रूपसे भी समन्वित हैं) तथा शंकर-सुवन केसरी-नन्दन हनुमान (जो सेवक-धर्मके महान् बलसे सम्पन्न हैं)—ये तीन शक्तिके महान् आधार-स्तम्भ हैं, जिन्हें विश्वने साधनाके लिये सर्वाधिक समीचीनरूपसे ग्रहण किया है।

हनुमानजीके स्वरूप-ज्ञान और उनकी भक्तिके लिये 'हनुमान-चालीसा' नामक अत्यन्त लोकप्रिय रचना 'बिन्दुमें सिन्धु' के समान है। दो सौ वर्षोंसे अधिक पुरानी 'हनुमत्-पचासा' नामक एक कृति यद्यपि बहुत कम विख्यात रही है, तथापि वह हनुमानजीकी अनूठी आराधनाके रूपमें एक अमर कृति है। भक्ति-काव्यमें यह विशिष्ट गुण बुन्देलखण्डके सुप्रसिद्ध कवि मानकी वाणीका प्रसाद है। भूतपूर्व चरखारी राज्यमें राजा अमानसिंहके दरबारी कवि मान हनुमानजीके परम भक्त थे। काकनी नामक छोटे-से ग्रामके निवासी इस कविने गाँवकी पहाड़ीपर स्थित हनुमानजीकी सिद्ध मूर्तिके समक्ष जो पचास कवित्त सुनाये, वे भक्तोंके लिये अमूल्य निधि बन गये।

वर्तमान वैज्ञानिक युगमें जहाँ आस्थाका अवमूलन होता जा रहा है, कितने लोग विश्वास करना चाहेंगे कि कालिदास और दण्डीकी भाँति मान भी केवल साधनाके भरोसे ही बहुत बढ़े-चढ़े थे। किसी भी अच्छे साहित्यकार या कलाकारसे ईर्ष्या रखनेवाले दस-बीस व्यक्ति प्रत्येक नगरमें मिल जायँगे। प्रसिद्ध है कि मानके राजकीय सम्मानके प्रतिद्वन्द्वी एक मैथिल पण्डित ओक्राको अपने कवित्वका बड़ा गुमान था। दोनोंके बीच श्रेष्ठता निर्धारित किये जानेके लिये यह तय पाया गया कि दोनों काकनीके हनुमानजीकी मूर्तिके समक्ष अपने-अपने काव्योंका पाठ करें और जिसके पाठसे प्रतिमामें कुछ भी परिवर्तन परिलक्षित होगा, उसीको श्रेष्ठतर स्वीकार किया जायगा। कहा जाता है कि प्रथम दिन विशाल जन-समूहके समक्ष ओक्राजीका पाठ हुआ और दूसरे दिन मान कविका। ज्यों ही मानने निम्नलिखित पचासवाँ-कवित्त सुनाया, हनुमानजीकी प्रस्तर-प्रतिमामें कम्पन उत्पन्न हुआ और उनकी गर्दन भक्त मानकी ओर झुकी हुई दिखायी दी। मूर्ति आज भी ज्यों-की-त्यों टेढ़ी है और श्रद्धालुओंकी सिद्धि-प्रदाता बनी हुई है। मानके 'हनुमत्-पचासा' का वह अन्तिम कवित्त इस प्रकार है—

बाचे डेढ़ मासा सोक संकट बिनासा तपै,
तप को तमासा बासा मंगल अनन्त को।
बिभव बिकासा मन बांछित प्रकासा दसों
दिस सुख संपत्ति बिलासा सुर संत को॥
महाबीर सासा पूज बीरा ओ बतासा करे,
बिपत को ग्रासा तन त्रासा अरि अंत को।
सिख नख खासा रिद्ध सिद्ध को निवासा यह,
दास आसा पूरक पचासा हनुमंत को॥

नियमपूर्वक डेढ़ मासतक इस पचासाका पाठ अनेक प्रकारके अभीष्ट फलोंको देनेवाला होगा—कविकी यह कामना उसको तो अक्षय यश देनेवाली बनी ही, परंतु बीड़ा-बतासेके साथ महावीरकी अर्चनाका उसने जो कल्याणकारी मार्ग जनताको सुझाया, वह भी एक दिव्य संदेश है। कविका कथन है कि ऋद्धि-सिद्धिका मुख्य स्थल शिख-नख ही है अर्थात् हमारा शरीर ही समृद्धि और सफलताके निवासका मुख्य स्थल है।

यहाँ श्रीहनुमानजीकी स्तुतिके पाँच सुन्दर कवित्त इस विलक्षण आराधनाके परिचयात्मकरूपमें यथेष्ट व्याख्यासहित प्रस्तुत हैं—

महाकाय महाबल महाबाहु महानख,
महानद महामुख महा मजबूत है।
भनै कवि 'मान' महाबीर हनुमान महा-
देवन को देव महाराज रामदूत है॥
पैठ के पाताल कीन्हों प्रभुको सहाय महि,
रावन दहायवे को प्रौढर-सपूत है।

डाकिनी को काल, शाकिनी को जीवहारी सदा,
काकिनी के गिरि पै बिराजै पौन-पूत है॥

मान कवि हनुमानजीके बलशाली रूपका वर्णन करते हुए कहते हैं कि वे शूरवीरोंमें अग्रणी हैं, देवाधिदेव श्रीरामके दूत हैं और अपने आराध्यकी सहायता करते हुए अहिरावणके विरुद्ध उन्होंने अपनी प्रौढ़ सपूतीका परिचय दिया। डाकिनी और शाकिनीके प्रबल शत्रु ये हनुमानजी काकिनीके पर्वतपर अचलरूपमें आसीन हैं।

बज्र की झिलन, भानु मंडली गिलन,
रघुराज कपिराज को मिलन मजबूत को।
सिन्धु मग झारबो उजारबो बिपिन लंक
बारबो उबारबो बिभीषण के सूत को॥
भनै कवि 'मान' ब्रह्म-शक्ति ग्रसन जान,
राम भ्रात प्राण दान द्रोणगिरि ले अकूत को।
रंजन धनंजय, सोक गंजन सिया को लखो,
भाल खल भंजन, प्रभंजन के पूत को॥

मान कवि कहते हैं कि मारुतनन्दन इन्द्रके वज्र-प्रहारको सहनेवाले, सूर्यमण्डलको निगलनेवाले, श्रीराम-सुग्रीवको मैत्री-सूत्रमें बाँधनेवाले, सिन्धु-मार्गको निष्कण्टक बनानेवाले, लंका एवं अशोकवाटिकाको उजाड़नेवाले, विभीषण एवं इन्द्रके सारथिके प्राणोंकी रक्षा करनेवाले, ब्रह्मशक्तिको आत्मसात् करनेवाले, विशाल द्रोणाचलको धारण करते हुए लक्ष्मणजीको प्राणदान देनेवाले तथा अर्जुन और सीताको आनन्ददायी परंतु दुष्टोंका मान-मर्दन करनेवाले हैं।

रौद्र रस रेले रन खेले मुख भेजे भार,
असुर उसेले जो उबीले सुर गाढ़ तें।
चपल निसाचर चमून चक चूरे महि,
पूरे लंक भाजन जरूरी जाड़ पाढ़ तें॥
जानत को डाढ़ैं शोक सागर तें काढ़ैं सान,
साढ़े गुन बाढ़े खल बाढ़ तें।
परे प्रान पाड़े दल दुष्टन को ढाढे धन्य,
पौन पुत्र डाढ़े जे उखाड़े यम दाढ़ तें॥

कविने एक-एक कवित्तमें हनुमानजीकी दृष्टि, नासिका, कपोल, अधर आदिका वर्णन करते हुए उनके हुंकारका विशद वर्णन किया है। उपर्युक्त कवित्तमें हनुमानजीकी दाढ़ोंको कविने रणभूमिमें रौद्र-रसका संचार करनेवाली बताया है। उनकी दाढ़ोंके प्रबल प्रतापसे राक्षस भली प्रकार परिचित हैं। उनकी चपेटमें आनेवालोंके प्राणोंके लाले पड़ जाते हैं। दुष्टोंको उनके कर्मोंका दण्ड देनेवाली पवनपुत्रकी दाढ़ें यमराजकी दाढ़ोंके महत्त्वको उखाड़ फेंकनेवाली हैं।

अरुण ज्यों भौम सोम दृग लौं असीम लोम,
कोमल ज्यों छेम करे कर सिय कंत के।
महा प्रलयोंमें मुनि लोमस के लोमन लौं,
बैरिन बिलोम अनलोम सुर संत के॥
बज्र मुद मोम छबि 'मान' संत सोम जे,
अ-सोम ग्रह सोम कर अरिन के अंत के।
खलन के खोम जोम होत है अजोम जोम,
ज्वालिन के तोम बंदौं रोम हनुमंत के॥

हनुमानजीकी रोम-राशिकी वन्दना करते हुए कवि कहता है कि वह मंगल ग्रहकी लालिमासे अनुरञ्जित है, चन्द्रमाके समान कोमल है तथा श्रीरामके कर-कमलोंके समान संतापहारी है। लोमश मुनिकी भाँति वह महाप्रलयमें भी नष्ट नहीं होती। शत्रुओंके लिये प्रतिकूल तथा देवों एवं संतोंके अनुकूल यह रोमावली दुष्टोंके उत्साहको तिरोहित कर देनेवाली अग्नि है। जिसके समक्ष वज्र और मुद्गर भी मोम-तुल्य प्रतीत होते हैं।

और अन्तमें उनके सम्पूर्ण शरीरका वर्णन करनेवाला कवित्त देखिये—

ज्वाल सों जले न जलजोर सों जले ना अस्त्र,
अरि को धले न जो चले ना जिमी जंग की।
काल दंड ओट सत कोट की न लागे चोट,
सात कोटि महामंत्र मंत्रित अभंग की॥
कहे कवि 'मान' मघवान मिल गीरवान,
दीनो बरदान मान पानके प्रसंग की।
जीत मोह माया मार कीन्हो छार छाया राम,
जाया कर दाया धन्य काया बजरंग की॥

सूर्यको एक फल समझकर निगल जानेवाले हनुमानजीकी ठोढ़ीपर इन्द्रने वज्र-प्रहार किया था। पवनदेवने क्रुद्ध होकर सम्पूर्ण प्राणियोंका श्वासोच्छ्वास अवरुद्ध कर दिया। तब अग्नि, वरुण, विश्वकर्मा, यम, इन्द्र, शिव आदि देवताओंने हनुमानजीको वरदान दिया कि उनका कभी भी कोई अनिष्ट न होगा।

कवि मानका कथन है कि जिन हनुमानजीने मोह-माया एवं मार (कामदेव)-को निर्जीव कर दिया है और जो श्रीरामजीके कर-कमलोंसे पोषित हैं, उनकी दिव्य देहका वर्णन कैसे सम्भव है। धन्य हैं वे बलशाली हनुमान, जिनपर उनके स्वामी सदैव सानुकूल हैं।

इस प्रकार हनुमानजीकी भक्तिसे सम्बन्धित

साहित्यमें 'हनुमत्-पचासा' का अनूठा महत्त्व है। कविकी अनन्य भक्ति-भावनासे नि:सृत ये प्राञ्जल कवित्त काव्य-कौशल, ओजस्विता एवं चित्रोपमतासे परिपूर्ण हैं। साधारण पाठकोंके लिये हिंदी-भाषाका यह काव्य विलक्षण वरदाता है—चाहिये केवल तन्मयता-पूर्ण निष्ठा।

आदिवासी लोक-जीवनमें श्रीहनुमानजी

(लेखक—श्रीसुशीलकुमारजी)

ज्ञान और पराक्रमके देवता श्रीहनुमानजीकी उपासना अनादिकालसे होती आयी है। इनकी पूजा आदिवासी लोक-जीवनमें प्रारम्भ-कालसे ही होती चली आ रही है। प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ला नवमी तिथिको मारुतनन्दन महावीरकी जयन्ती मनायी जाती है। इस अवसरपर छोटा नागपुर-क्षेत्रके आदिवासी भी पीछे नहीं रहते। आदिवासियोंके इष्टदेवता भी हनुमानजी ही हैं। बहुत-सी आदिवासी जातियोंका विश्वास है कि हनुमानजीका जन्म राँची जिलेके गुमला-प्रमण्डल-स्थित आंजन ग्राममें ही हुआ था। उनकी माता अञ्जनी यहीं निवास करती थीं। माता अञ्जनीके नामपर ही उस गाँवका नाम बादमें आंजन पड़ा। आंजन ग्राममें खुदाई करनेपर पुरानी ईंटें भी प्राप्त हुई हैं।

श्रीराम-जन्मोत्सवके दिन श्रीरामके अनन्य भक्त एवं सेवक श्रीहनुमानजीकी भी विशेष पूजा-अर्चना की जाती है और पूर्ण उत्साह एवं गौरवपूर्वक श्रीमहावीर-झंडेका जुलूस निकाला जाता है। यह जुलूस तो लगभग पचास वर्ष पूर्वसे राँचीमें निकाला जाना प्रारम्भ किया गया है; परंतु श्रीहनुमानके प्रति श्रद्धा-भक्ति तो बहुत पूर्वसे ही अर्पित की जाती है। श्रीहनुमानजी मनोकामना पूर्ण करनेवाले देवता हैं। आदिवासी-समाजकी 'स्वयंसार'-जातिके लोग हनुमदुपासनाको अपना गौरव समझते हैं। 'हो' जातिमें एक उपाधि है—'पाट'। 'पाट' एक देवताको कहा जाता है। इस सम्बन्धमें जानकारी देते हुए प्रो० बलराम पाटपिंगुआने बताया कि वास्तवमें एक रूपमें 'पाट' देवता श्रीहनुमान ही हैं।

श्रीहनुमान-जयन्ती राँची जिलेमें बड़ी धूमधामसे मनायी जाती है। चैत्र शुक्ला अष्टमीकी रात्रिमें विशेष 'झाँकी-प्रतियोगिता' श्रीमन्दिर-शृङ्गार-समितिके तत्त्वा-वधानमें आयोजित की जाती है। प्रधानतया धार्मिक कथानकपर आधारित झाँकियाँ नगरकी विभिन्न मण्डलियोंद्वारा निकाली जाती हैं। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पुरस्कार उसी रात्रिमें ही प्रदान किये जाते हैं। इसके लिये पुरस्कार-निर्णायक-समिति गठित की जाती है और प्राय: जिलाधिकारी पुरस्कार वितरण करते हैं। प्रोत्साहन-पुरस्कार देनेकी भी व्यवस्था रहती है। अष्टमीकी रातमें सारी रात जागरण होता है। 'महावीर-मण्डल' के सदस्य इस रात्रिको विभिन्न खेल दिखाते हैं। तीर-तलवार, लाठी, गदका-बनेठी आदिके खेल भी खेलाड़ी लोग दिखाते हैं। प्रात: चार बजे पुरस्कार-वितरण होता है। उस समय 'बजरंगबलीकी जय,' 'लाल-लँगोटेवालेकी जय', 'महावीर स्वामीकी जय' के घोषसे वातावरण मुखरित हो उठता है। चैत्र मासके प्रारम्भसे ही प्रति मंगलवारको ऊपर-बाजार-चौक, चर्चरोड-चौकस्थित महावीर-मन्दिरोंमें प्रसाद चढ़ानेके लिये हनुमान-भक्तोंकी बड़ी भीड़ होती है। अब तो राँचीकी प्रधान सड़कपर भी दो नये भव्य महावीर-मन्दिरोंकी स्थापना हो गयी है, जहाँ संध्याके समय दर्शनार्थियोंकी भीड़ लग जाती है। इस छोटानागपुर प्रमण्डलमें पुराने महावीर-मन्दिर भी बहुत हैं। चैत्र मासमें श्रीराम-भक्ति और श्रीहनुमान-भक्ति तो देखते ही बनती है। यहाँकी आदिवासी विभिन्न जातियाँ भी अपनी भक्ति दिखानेमें किसीसे कम नहीं। रामनवमीके दिन महावीर-झंडेके जुलूसमें भाग लेने आदिवासी आबाल-वृद्ध नर-नारी अत्यन्त सज-धजकर दूर-दूरके गाँवोंसे आते हैं। वे अपनी मण्डलीसे महावीरी पताका भी जुलूसमें लाते हैं। चैत्र नवमीके दिन ऊपर-बाजार-चौकसे जुलूस प्रारम्भ होता है और डोरण्डा-स्थित तपोवनमें जाकर वह मेलेके रूपमें परिवर्तित हो जाता है। इस बीच दूर-दूर मुहल्लेके झंडे भी बाजा-गाजा, खेल-तमाशेके साथ मिलते जाते हैं और तपोवन पहुँचते-पहुँचते कोई ५०० से ७०० बड़ी-बड़ी महावीरी पताकाओंका मेला-सा लग जाता है। भजन-कीर्तनमण्डली, खेलाड़ियोंके खेल, बजरंगबलीका स्वाँग बनाकर नृत्यरत नर्तकोंकी मण्डली और दर्शकोंकी भीड़—सभी एक अनोखा परिवेश संघटित करते हैं। एक दिनका यह आयोजन अपने ढंगका अनूठा होता है। एक-एक पताका

१०० से १००० रुपये तककी होती है। यहाँ विभिन्न मुहल्लोंमें महावीर-मण्डलकी स्थापना की गयी है।

छोटानागपुरमें महावीरी झंडेके उत्सवकी विशेष प्रतिष्ठा है। यहाँके लोक-कवियों एवं लोक-गायकोंने श्रीराम तथा श्रीहनुमानकी भक्तिपर आधारित बहुत-से गीतों और भजनोंकी रचना की है। जनजातियोंकी विभिन्न बोलियोंमें श्रीराम-भक्ति एवं हनुमान-भक्तिके गीत रचे गये हैं। 'विरहोड़' नामक आदिवासी जाति अपनी ही 'विरहोड़ रामायण' का पाठ करती है। उस रामायणके अनुसार हनुमान महान् पराक्रमी थे। उन्होंने समुद्रको उछलकर पार किया, समुद्रके किनारे पहुँचकर तोतेका रूप बनाया और सीताजीके स्नानहेतु पानी लानेवाली एक पनिहारिनके घड़ेमें अँगूठी डाल दी तथा स्वयं उस ओर उड़ चले। वहाँ माता सीताको अशोक-वाटिकामें अपना स्वरूप दिखाया और सारी बातें बतायीं। उन्होंने लंका-दहन किया और वहाँसे पुनः समुद्रमें गोता मारकर अपनी पूँछकी आग बुझायी—हाथसे रगड़कर। उन्होंने उसी हाथसे अपना मुँह भी पोछ लिया, जिससे उनका मुँह काला पड़ गया। अन्यथा पहले उनका मुख काला नहीं था। इसी तरहकी अनेकों विचित्र बातें 'विरहोड़ रामायण' में उल्लिखित हैं।

सादरी और मुण्डारी बोलीमें भी अनेक गीत-भजन बनाये गये हैं। भक्त जब उन्हें गाने लगते हैं तो वे तन्मय होकर अपनी सुधि भूल जाते हैं। मुण्डारी बोलीके यशस्वी कवि बुदूबाबूने रामायणको आधार बनाकर छोटे-छोटे गीतोंकी रचना की है, जो मुण्डा आदिवासी क्षेत्रमें अधिक लोकप्रिय हैं। इन्होंने श्रीराम, लखन, सीता, अङ्गद, हनुमान, जामवंत और नल-नीलकी वीरता, सेवा-भक्ति एवं श्रद्धाके भावपूर्ण गीतोंकी रचना की है। सादरीमें 'हनुमान-शतक' की भी रचना की गयी है। फुटकर रूपसे तो बहुसंख्यक गीत लिखे गये हैं। मुण्डा लोक-कथाके आधारपर 'छाउ-नृत्य' की उत्पत्तिका कारण श्रीहनुमान ही बताये गये हैं। श्रीहनुमानने बचपनमें सूर्यको खिलौना समझकर उसे प्राप्त करनेके निमित्त धरतीपरसे छलाँग लगायी (उन्हें वरदान प्राप्त था कि वे चाहे जितनी ऊँचाईतक उछलकर जा सकेंगे)। देवताओंने देखा कि सूर्यके पास पहुँचते ही हनुमान तो भस्म हो जायगा, अतः इसकी रक्षा करनी ही चाहिये। तत्काल उन्होंने रंगारंग परिधान पहन, मुँहपर मुखौटा लगाकर धरतीपर ऊँचे स्वरके वाद्यके साथ नृत्य प्रारम्भ कर दिया। हनुमानजीने वह आवाज सुनी तो वे नीचेकी ओर आकृष्ट हुए और तड़ककर धरतीपर आ गये तथा नृत्यमें सम्मिलित हो गये। धरतीके लोगोंने जब उस नृत्यको देखा, तभीसे वे भी उसी तरह नृत्य करने लगे।

श्रीहनुमानके प्रति आदिवासियोंकी श्रद्धा-भक्ति देखते बनती है। श्रीराम-भक्तिका ही प्रभाव है कि आज सदानी (नागपुरी) बोलीमें रामायणकी कथा लिखी गयी है और हनुमानचरित गीतोंमें आबद्ध किया गया है। पापामणि नामक एक आदिवासी वृद्धाने तो बालकाण्डका सादरी बोलीमें पद्यानुवाद भी मौखिक ही किया था और हनुमानचरित भी वह गाकर सुनाया करती थी।

श्रीहनुमानकी पूजा केवल नगरोंमें ही नहीं, ग्रामीणोंके बीच भी प्रख्यात है। गाँवोंमें भी महावीर-मण्डलकी स्थापना की गयी है।

इन लोक-गीतों और लोक-कथाओंके पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है कि आदिवासी-क्षेत्रमें श्रीहनुमान कितने लोकप्रिय एवं पराक्रमी देवता हैं। मुण्डारीके लोककवि बुदूके कुछ गीतोंका हिंदी-भावार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

'प्रभु, राम लखनकी आज्ञासे
कोइ-कोई वीर
चलो-चलो कहकर उछल रहा है
सरपर ढोकर
पहाड़-पत्थर लानेके लिये
उत्तर दिशाकी ओर चलें।
प्रभु राम-लखनकी आज्ञासे
वीर हनुमान राम-राम नाम लेते हुए
उत्तर दिशासे पहाड़ लानेको उठे।
इसीलिये बुदूबाबू गीत बना रहे हैं
प्रभु, राम लखनकी आज्ञासे—'

हनुवीर आयुम केन, सोड़ेको दोरे तेयार जना
होयो होन एन रे तिगुन जान खीसते सिरमारे चंकी केन—
चंकी जनते कोटन बुरु चेतन बुरु थेर तान
सोवेन गुंडा गिड़ी जान।
हुकार शब्दों केन अयोम तेको तोब्धो जना
बोगा बिड़ जोको राकलातान
चमत्कार सुइन साड़ी जान
लुतुर थाली गिड़ी जान
जतय जेतय काजी तान
बुरु बाँगा हाँड़ा जान
चौला जंग रे अयगे नामा कान
जेतय जतय काजी तान
ओको वीरे-ए गर्जन केन

जेतय-जेतय सुड़गे साड़ी जान
मेन्दे सोवेन काजी तान
नेया काजी कुली मेन्ते सेनो गाबु राजदुवार ते
बामड़े मुनि राजा को दुबा कान
लेल तना को पोती-पंजी
अयुये याबु-काजी मेन्ते
बुदू बाबू काजी तान
दिल रे मौन रे खुशी जान

जब वीर हनुमानने सुना कि रास्ता तैयार हो गया है, तब वे पवनपुत्र उस पार खड़े हो गये और क्रोधसे आकाशमें उछल पड़े। उछलकर झूम पड़े, जिससे पहाड़ पहाड़पर फेंका जाने लगा और सब टूट-फूट गया। हनुमानने जब हुंकार किया, तब उसे सुनकर सब स्तब्ध हो गये। सभी देवता और नाग डर गये। चमत्कारपूर्ण आवाज आकाशमें होने लगी, जिससे कान सुन्न हो गये। कोई-कोई कह रहा है कि बुरु बोंगा (पर्वतके देवता) ही बिगड़ गये हैं और कोई-कोई कह रहा है (ओझा मती उसीका नाम ले रहे हैं) कौन वीर गर्जन कर रहा है, जिससे आकाशमें आवाज हो रही है। इस बातको पूछनेके लिये राजद्वार चलेंगे। वहाँ ब्राह्मण, मुनि, राजा आदि देखनेके लिये बैठे हैं। वहाँ कौन-कौन-सी बात कहेंगे, यह सोचकर (कवि) बुदूबाबू मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे हैं।

एक और गीतका भावार्थ देखिये—

राम-लखन बैठे हैं और मन्त्री जामवन्त देख रहे हैं। सभी वीर बहुत प्रसन्न हैं और कह रहे हैं—हमलोग श्रीराम-श्रीराम पुकारेंगे। हमलोग हरे-हरे बोलते हुए सीधे चलेंगे। सभी वीर तैयार हो गये। वीर हनुमान भी उठ गये। हे भाई! श्रीराम-श्रीराम कहते हुए लंकाको चलो। सभी वीर आगे-पीछे चल रहे हैं और उनके बीचमें श्रीरामचन्द्रजी हैं। हे भाई! श्रीरामका नाम लेते हुए माता सीताकी खोजमें चलो। कोई-कोई वीर उछल रहा है, कोई-कोई कुछ धरे हुए हैं। वे श्रीराम-श्रीराम कहकर उछल रहे हैं। श्रीराम-श्रीराम कहकर एक साथ गीत गा रहे हैं। रामायणमें जो कुछ लिखा हुआ है, उसीको बुदूबाबू गा रहा है। वे वीर श्रीराम-श्रीराम कहते हुए लंकाको चले।

मुण्डारी बोलीके ये गीत ही प्रमाणित करनेमें समर्थ हैं कि आदिवासी गीतकार वीर हनुमानके प्रति कितना निष्ठावान् एवं भक्त है। एक नागपुरी गीत यहाँ प्रस्तुत है—

गिलो लंका हनुमान सीताके खोजने गो
अशोक के गछ तरे उदासल मन सीता राम-राम करे
नाम नयनेते बहे लोर राम-राम करे नाम।
रामेर दिलो पहिचान मंदिरका वजरन बिलखी गो
लिलो सीता प्रभु को कैं हनुमान शिघ्र करो—
श्रवण सोची मने बहे तो नयन राम
राम रटिछे अगम
बिपति देखिए हनु बिलखी बोलिए
सुनु धरु माता धीर
तनी की दशा होवे
लंका होयबे बड़ा तुल तो
तूफान भवन सोंची लिखत अछन्द!

(जोड़ रंग)

गद्द-वृक्ष हनु तुलिए फेलि छे
जुनु अशोक बगीचा तो उजार देखु
रावण घेरले चाइरो भट
खने हनु गछे गहु खनु हनु पाते पात
देखी राकस होवत हतास
अन्ते में धरालें हनु निजे
हाथोहाथ।
कोई कहे मार-मार
कोई कहे धरी-काट
निजे हनु बोलैं सहज बात
पोंछियामें देहूँ तेल ढारू गो
'भवन' सोची लिखे दिन-रात

'भवन' नागपुरीके कवि हैं और इस तरह कितने ही कवियोंने वीर हनुमानका चरित गीतोंके माध्यमसे लिखा है।

इसी तरह आदिवासियोंकी बोलीमें अनेक गीतोंकी रचना की गयी है—श्रीहनुमानजीकी एवं श्रीरामजीकी भक्तिसे सराबोर होकर।

श्रीहनुमानजी बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाले हैं। वे शीघ्र ही उत्तम सिद्धि प्रदान करते हैं। इनके प्रसादसे मन्त्र-साधक पुरुष तीनों लोकोंमें विजयी होता है। श्रीहनुमानजी किसी भी संकटसे शीघ्र ही उबार देते हैं और अति जाग्रत् देवता हैं। नियमपूर्वक श्रीहनुमानजीका ध्यान करनेसे सम्पूर्ण कष्टोंका निवारण होता है।

उदयकालीन करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हनुमानजी सम्पूर्ण जगत्को क्षुब्ध कर डालनेकी शक्ति रखते हैं। सुग्रीव आदि प्रमुख वानर-वीर उनका समादर करते हैं। वे राघवेन्द्र श्रीरामके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें निरन्तर संलग्न रहते हैं और अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण राक्षसोंको भयभीत कर रहे हैं। ऐसे पवनकुमार हनुमानजीका भजन करना चाहिये। यह भावार्थ इस श्लोकका है—

उद्यत्कोट्यर्कसंकाशं जगत्प्रक्षोभकारकम्।
श्रीरामाङ्घ्रिध्याननिष्ठं सुग्रीवप्रमुखार्चितम्।
वित्रासयन्तं नादेन राक्षसान् मारुतिं भजेत्॥

परम तेजस्वी, बाल-ब्रह्मचारी, प्रसन्नचित्त वीरवर हनुमानकी आराधना अति फलदायक होती है। श्रीरामकी आराधनाके साथ श्रीहनुमानकी आराधना भी सर्वत्र की जाती है; क्योंकि धारणा है कि श्रीहनुमानकी आराधनासे श्रीराम प्रसन्न होते हैं और मोक्षकी प्राप्ति होती है। श्रीरामभक्त हनुमानकी उपासना सकल कष्ट-निवारणके लिये अचूक सिद्ध मन्त्र बतायी गयी है। लोकधारणामें भी गीतोंके माध्यमसे यह बात व्यक्त की गयी है।

श्रीहनुमान श्रीरामभक्त हैं। अतएव छोटानागपुरका आदिवासीसमाज भी श्रीहनुमानकी सात्त्विक पूजा करता है। वे बजरंगबलीकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक आराधना करते हैं और चैत्र मासकी शुक्ल नवमी तिथिको महावीरी झंडेके जुलूसमें भाग लेते हैं। कुछ लोग इसे बाह्य प्रभाव भी कहते हैं, किंतु यदि वैसा हो भी तो भी हनुमानकी अर्चनाका सम्बन्ध इनके समाजमें अति प्राचीनकालसे चला आ रहा है। इस आधारपर यह कहा जा सकता है कि श्रीहनुमान भी आदिवासियोंके इष्टदेव हैं।

नागपुरी भाषामें श्रीहनुमान-सम्बन्धी लोक-गीत

(रचयिता—कविवर पौराणिक श्रीगौरीनन्दनजी शर्मा)

नागपुरी भाषामें भी श्रीहनुमानजीकी स्तुति आदिसे सम्बन्धित रचनाएँ लोक-गीतोंके रूपमें प्राप्य हैं, जिनमें इन्हें बुद्धि-विद्याके आगार एवं दातार, रोग-शोक-नाशक, भव-हरण, महावीर आदि शब्दोंसे सम्बोधित किया गया है। झूमर और फगुआमें भी इनके गीत मिले हैं, जो शब्द-सौन्दर्य एवं भाव-लालित्यसे परिप्लुत हैं। यहाँ कुछ नमूने प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

झूमर—

जय जय हनुमान, अतुलित बलवान, जयति अंजनि-लाल।
जय महावीरे गै साजैन, भजु सदा मगने अमरे॥ ध्रु०॥
जय पवननन्दन, श्रीराम-शत्रु-शमन, कंचन बरन देव गुन के।
सागरे गै साजैन, भजु सदा मगने अमरे॥ १॥
केंस कुंचित, भाला तिलक सोह बिसाल, कुंडल कान, जनेव—
माला कण्ठ धरे गे साजैन, भजु सदा मगने अमरे॥ २॥
जय गदा धजा धार, विद्या-बुद्धिके आगार, जय केसरी—
कुमार, मंगल मन्दिर रे गे साजैन, भजु सदा मगने अमरे॥ ३॥
भागत प्रेत-भूत, सुमिरने रामदूत, दु:ख-दंद रोग शोक नासे।
कपिवरे गे साजैन, भजु सदा मगने अमरे॥ ४॥
गौरी शंकर तात, राम प्रेमे हरखात, उरे सिया रघुवीर—
धारे निरन्तरे गै साजैन, भजु सदा मगने अमरे॥ ५॥

जोड़ा—

बुधि विद्या के दातार, बल गुनके आगार, भव सरुज हर।
नीलकंठ के सुवने गे साजैन, भजु मन अंजनी-नन्दने॥ ध्रु०॥
भये सुकण्ठ सहाय, श्रीजानकी सुधि लाय, हरिप्रेम सरसाय।
अंगद जीवने गे साजैन, भजु मन अंजनी-नन्दने॥ १॥
रिधि-सिधि दाता सियावर दये सत हिया-भगति भरल।
भेल नेहाल मगने गे साजैन, भजु मन अंजनी-नन्दने॥ २॥
द्रोण पर्वत लाय, सजीवन हित जाय, लखन लेल जियाय।
केसरी के धने गे साजैन, भजु मन अंजनी-नन्दने॥ ३॥
दशमुख नागपास, अहिरावन कुहास, एहि ते उबारे बीर।
राम लछुमनने गे साजैन, भजु मन अंजनी-नन्दने॥ ४॥
हिय बसु रघुनाथ, सदा सिय-बन्धु साथ, हरु दास दु:ख।
आसरे गौरी नन्दने गे साजैन, भजु मन अंजनी-नन्दने॥ ५॥

फगुआ—

नौमि सदा पद अंजनी-लालके, नौमि सदा पद अंजनि-लाल॥ ध्रु ०॥

जे गुन आगर, ग्यान के सागर,
राम सियाधर, जे हिया अन्तर
जे बलधाम अमंगल कालके,
नौमि सदा पद अंजनी-लाल॥ १॥
दुख के नासत, सुख सरसावत,
नाम जे प्रेत-पिशाच भगावत,
निधि सिद्धि दायक, संतन पालके,
नौमि सदा पद अंजनी-लाल॥ २॥
केसरी नन्दन, शंकरके धन,
राम सिया प्रिय, से चिर जीवन,
अमित पराक्रम तेज दयालके,
नौमि सदा पद अंजनी-लाल॥ ३॥
पाप निवारि के ताप नसावत,
दारिद भंजि के संकट टारत,
छेदहु नाथ गौरी भव जाल के,
नौमि सदा पद अंजनी-लाल॥ ४॥

[प्रेषक—श्रीराधागोविन्दजी]

आधुनिक काव्यमें हनुमानजीका स्वरूप

(लेखक—डॉ० श्रीपरमलालजी गुप्त, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

आधुनिक युग विज्ञानका युग है। इसमें अप्राकृत और अस्वाभाविक बातोंपर विश्वास नहीं किया जाता। साथ ही प्रत्येक पहलूको तार्किक दृष्टिसे परखा जाता है। इसलिये आधुनिक श्रीराम-काव्यमें चरित्रकी अप्राकृतताको हटा दिया गया है और पात्रोंको स्वाभाविक मानवीय रूपमें रखा गया है। वानरोंमें हनुमान, सुग्रीव, अङ्गद आदिके चरित्रमें देवताओंका अवतार अथवा बंदरकी आकृतिको स्वाभाविक नहीं माना गया। उनको मानवरूपमें ही स्वीकार किया गया, भले ही प्रवृत्तियोंमें वे बंदर हों। (साकेत, पृष्ठ ४२७) हनुमानजीके असम्भावित कृत्योंमें अध्यात्म-शक्ति और योगका आधार रखा गया। (राम-राज्य, पृष्ठ ७९) हनुमानजीके चारित्रिक निर्माणमें कवियोंके मानवतावादी जीवन-दर्शनने भी पर्याप्त प्रभाव डाला है। श्रीराम पीड़ित मानवताका उद्धार करनेवाले नेता हैं। हनुमानजी श्रीरामको मानवीय कल्याणके कार्योंमें अपना सहयोग देते हैं।

हनुमानजीके चरित्रमें दो प्रमुख गुण हैं—१-श्रीराम-भक्ति और २-वीरता। हनुमानजीकी वीरता उनके द्वारा समुद्र-लङ्घन, लंकामें अनेक वीरोंका नाश और लंका-दहन, सीता-खोज, श्रीराम-रावण-युद्ध, लक्ष्मण-शक्ति आदि प्रसङ्गोंमें व्यक्त हुई है। यह वीरता विवेकसम्मत भी है। लंकामें प्रविष्ट होकर सीताका पता लगाना बिना विवेकके सम्भव नहीं था। यह सत्य है कि हनुमानजी-जैसे सहायकको पाकर भी सुग्रीव असहाय थे; क्योंकि हनुमानजीको स्वयं अपनी शक्तियोंका ज्ञान नहीं रहता था। वे बुद्धि-विद्या-शील-बल-सम्पन्न होनेपर भी अपनेको नगण्य समझनेवाले, राज्य-निरपेक्ष और अध्यात्म-साधक थे। श्रीराम कहते हैं—

सब कुछ होकर कुछ न समझते अपने को, तुम इतने सादे,
योजकत्व यदि मिले तुम्हारा, स्वर्ग राज्य वह भूपर छा दे।
तुम्हें प्रेरणा मेरी मिल ले, मुझे शक्ति मिल जाय तुम्हारी,
तो फिर कितनी सुखी न होगी उत्तर दक्षिण भूमि हमारी॥

(रामराज्य, डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र, पृष्ठ ८८)

वाल्मीकिरामायणमें कपिराज सुग्रीव हनुमानजीके गुणोंका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः।
देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित॥

(४। ४४। ७)

'हनुमान! तुम नीति-शास्त्रके पण्डित हो। एकमात्र तुम्हींमें बल, बुद्धि, पराक्रम, देश-कालका अनुसरण तथा नीतिपूर्ण बर्ताव एक साथ देखे जाते हैं।'

श्रीराम हनुमानजीकी शक्तियोंको प्रेरित करके विश्व-कल्याणके लिये नियोजित करते हैं। अध्यात्म (हनुमान) और भौतिकता (रावण)—इन दो शक्तियोंमें संघर्ष होता है। दोनों एक-दूसरेसे कम नहीं—

दोनों विकट महा मानव थे, दोनोंमें थी शक्ति अमोघ।
किंतु एक यदि मूर्त पुण्य, तो अपर मूर्तिधारी था पाप॥

(रामराज्य, पृष्ठ १०४)

अन्तमें हनुमानजीकी सहायतासे श्रीरामकी विजय होती है।

इस प्रकार आधुनिक श्रीराम-काव्यमें हनुमानजीको भक्तिकाव्योंकी भाँति देवताका अवतार, पवन-पुत्र अथवा अन्य कोई अलौकिक पुरुष न मानकर उन्हें अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा आदि शक्तियोंसे युक्त एक मानव ही चित्रित किया गया है, जो अपनी अध्यात्म-साधनाके कारण साधारण मानवोंसे कहीं ऊपर उठ चुके थे। वे महामानव थे और उनमें अपार शक्ति थी। यह शक्ति अध्यात्मकी शक्ति थी, जो श्रीराम-भक्तिका बीज पड़नेसे प्रस्फुटित हुई। आधुनिक श्रीराम-काव्यमें हनुमानजीकी श्रीराम-भक्ति भी विवेकसम्मत और गहरी है। वह एक तरहसे आध्यात्मिक उत्कर्ष और विश्व-कल्याणकी पर्याय है। अत: श्रीराम-भक्ति और वीरता—दोनों गुण अन्योन्याश्रित बन गये हैं।

आधुनिक कवियोंने हनुमानजीका जो स्वरूप दिखाया है, वह अत्यन्त दिव्य है, मानवीय गुणोंसे युक्त होनेपर भी वन्दनीय है और गोस्वामी तुलसीदासकी उक्ति ***'राम तें अधिक राम कर दासा'*** को सार्थक करता है।

उपासना-अनुष्ठानके सम्बन्धमें निवेदन

(नित्यलीलालीन परम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

प्राकृत जगत् अनित्य, अपूर्ण और विनाशी है, अतएव दुःखालय है। अतः प्राकृतिक वस्तुओं और स्थितियोंमें सुखकी खोज करना वास्तवमें मूर्खता ही है। यहाँ मनुष्य जो कुछ भी प्राप्त करता है, वह स्थायी नहीं होता, अधूरा ही होता है और उसका वियोग अवश्यम्भावी है। यहाँ वास्तविक सुख उसीको मिलता है, जो सारे जगत्को भगवान्में और भगवान्को जगत्में भरा देखता है। वही नित्य और पूर्ण परमानन्दस्वरूप भगवान्को देखता हुआ आनन्दमय बना रहता है।

भगवान्के श्रीमुखके वचन हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

'जो सर्वत्र मुझको देखता है और सबको मुझमें देखता है, मैं उससे कभी अलग नहीं होता और वह मुझसे कभी अलग नहीं होता।'

फिर यहाँ जो कुछ भी हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि भोगरूपमें प्राप्त होते हैं, वे सब प्रारब्धके ही फल हैं।

परंतु कुछ ऐसे 'प्रबल कर्म' भी होते हैं—जैसे सकाम भगवदाराधन या देवाराधन, किसी कारणवश शाप या वरदान—जो तत्काल 'प्रारब्ध' बनकर फलदानोन्मुख प्रारब्धके फलको रोककर बीचमें अपना फल भुगता देते हैं। जैसे किसीके प्रारब्धमें पुत्र-प्राप्तिका योग नहीं है, पर विधिपूर्वक 'पुत्रेष्टि-यज्ञ' का अनुष्ठान करनेपर नवीन प्रारब्ध-निर्माणके द्वारा वह पुत्र प्राप्त कर सकता है। ऐसे बहुत-से उदाहरण प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलते हैं। 'मृत्युञ्जय' आदिका सविधि अनुष्ठान करनेपर अल्पायु मनुष्य भी 'दीर्घ-जीवन' लाभ कर सकते हैं। मार्कण्डेयजीका भगवान् शंकरकी उपासनाके फलस्वरूप अमरत्व प्राप्त करना प्रसिद्ध ही है। इसीलिये हमारे शास्त्रोंमें 'सकाम उपासना' का विस्तृत उल्लेख है।

यद्यपि सकाम उपासना बुद्धिमानीका काम नहीं है; क्योंकि उसके द्वारा प्राप्त होनेवाला फल अनित्य, अपूर्ण और दुःखप्रद ही होता है, तथापि सात्त्विक सकाम उपासनासे भी उसके स्वरूपानुसार न्यूनाधिक रूपमें अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, जिसका फल अन्तमें निष्कामताकी प्राप्ति होता है।

यह भी सत्य है कि भगवान् अपनी मङ्गलमयी सर्वज्ञता और इच्छासे हमारे लिये जो कुछ भी फल-विधान करते हैं, चाहे वह हमारी सीमित एवं अदूरदर्शिनी बुद्धिके कारण हमें अशुभ या दुःखप्रद ही जान पड़े, परंतु वास्तवमें वह परम शुभ और मङ्गलकारी ही होता है। इसलिये भगवान्पर और उनकी मङ्गलमयतापर विश्वास करनेवाले भक्त यही चाहते हैं कि उनकी 'मङ्गलमयी इच्छा' ही सदा सर्वत्र अपना काम करती रहे। हमारी कोई भी इच्छा उस मङ्गलमयी इच्छामें कभी बाधक हो ही नहीं। तथापि जो लोग भोग-कामना और भोग-वासनाको छोड़ नहीं सकते और कामना एवं आसक्तिसे अभिभूत होकर 'अन्याय और असत्-मार्ग' का अवलम्बन करके भोग-सुखकी आशा रखते हैं, उनके लिये तो भगवदाराधन और देवाराधन अवश्य ही सेवन करनेयोग्य है। इसमें लाभ-ही-लाभ है। यदि श्रद्धा और विधिका निर्वाह पूर्णरूपसे हो जाय तो 'नवीन प्रारब्ध' का निर्माण होकर मनोरथकी पूर्ति हो जाती है। कदाचित् प्रतिबन्धकरूप प्रारब्धके अत्यन्त प्रबल होनेके कारण मनोरथ-पूर्ति न भी हो तो पुण्यकर्मका अनुष्ठान तो बनता ही है। इसके विपरीत सांसारिक साधन चाहे जितने भी किये जायँ, उनके द्वारा प्रारब्धका फल बदल नहीं सकता। अतएव वे वैध होनेपर भी व्यर्थ हो जाते हैं। आजकल तो सारा जगत् ही विवेकभ्रष्ट होकर भोग-सुखकी आशा-आकाङ्क्षामें उन्मत्त हो रहा है; वह किसी भी पापसे बचना नहीं चाहता। 'अर्थ' और 'अधिकार' की अदम्य लालसासे उन्मत्त होकर वह अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार, पापाचार, व्यभिचार, अत्याचार और असदाचार आदिके द्वारा सफलता प्राप्त करनेकी भ्रान्त चेष्टा कर रहा है। इसका फल तो निश्चय ही सब प्रकारसे 'अधःपात' और 'दुःख' ही होगा। आजका मनुष्य दूसरे जीवोंके दुःख-सुखको भूल गया है, वह केवल अपने ही सुखकी लालसामें उन्मत्त है। इसीलिये जगत्में नये-नये 'भोगवाद' उत्पन्न होकर नये-नये द्वेष-कलहकी अवाञ्छनीय सृष्टि कर रहे हैं और इसीलिये मनुष्य नये-नये पापोंका आयोजन करनेमें 'प्रगति' मान रहे हैं। भारतवर्ष भी इस 'पापकी आँधी' में फँस रहा है। इसीसे आज देशमें अनेक प्रकारके वाद, दलबंदियाँ, परस्पर एक-दूसरेको मिटाने और

दुःख पहुँचानेकी चेष्टा, जीव-हिंसाके नये-नये कारखाने और वैज्ञानिक हत्यालय आदिके निर्माणके प्रयत्न बढ़ते जा रहे हैं। खाद्य पदार्थोंके लिये भी मांसाहारी देशोंकी देखा-देखी मांस-निर्मित पदार्थोंका प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। सत्य, ईमानदारी, चारित्रिक पवित्रता आदि तो आज मानो कहनेकी वस्तु बनते जा रहे हैं। दम्भ, दर्प और अभिमान बेहद बढ़ते चले जा रहे हैं। यही स्थिति चलती रही तो पता नहीं हमारा पतन कहाँ जाकर रुकेगा। इस अवस्थामें भोग-सुखके साधनके रूपमें ही यदि हम अन्याय एवं असत्-मार्गका सर्वथा परित्याग करके भगवदाराधन और देवाराधनमें प्रवृत्त हों तो पतनसे बचनेकी और जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी निश्चित आशा की जा सकती है।

× × × ×

किसी दूसरेके अनिष्टकी इच्छासे कोई भी अनुष्ठान कभी नहीं करना-कराना चाहिये, इसमें परिणाममें बहुत बड़ी हानि होती है। अमुक कार्य सफल हो जानेपर अमुक देवताके लिये अमुक कार्य किया जायगा या उसको अमुक वस्तु भेंट चढ़ायी जायगी अथवा अमुक देवस्थानकी यात्रा की जायगी—इस प्रकार मनौती मानना अत्यन्त निम्न श्रेणीकी आराधना है। उचित तो यह है कि पहले सेवा करके तब फल माँगना या स्वीकार करना चाहिये। 'देवता हमारा अमुक काम कर देंगे, तब हम उनकी सेवा-पूजा करेंगे'—यह वृत्ति अत्यन्त नीची है। इसमें देवतापर पूर्ण विश्वासका अभाव है। यद्यपि इसमें भी प्रयास होता है, अतः देवता अपने स्वभाववश प्रायः अप्रसन्न नहीं होते, तथापि है तो यह अविश्वासपूर्ण 'व्यापार' ही। सच्ची बात तो यह है कि देवाराधन निष्कामभाव एवं प्रेमसे होना चाहिये। सेवा करके बदलेमें कुछ भी लेना सेवा नहीं, अपितु वह एक प्रकारका व्यापार हो जाता है। प्रह्लादने भगवान् नृसिंहसे कहा था—'जो सेवा करके बदलेमें कुछ ले लेता है, वह सेवक नहीं; अपितु लेन-देन करनेवाला व्यापारी है—**'न स भृत्यः स वै वणिक्।'** (श्रीमद्भा० ७।१०।४) पर जो सेवाके पहले ही फल चाहते हैं, वे तो कुशल व्यापारी भी नहीं, उन्हें तो निम्न श्रेणीका स्वार्थी ही कहना चाहिये।

अन्तमें यह नम्र निवेदन है कि मानव-जीवनका लक्ष्य 'भगवत्प्राप्ति' ही है। अन्य जितनी भी लोक-परलोककी वस्तुएँ या स्थितियाँ हैं, वे सभी अनित्य तथा परिणाम-दुःखद हैं। अतएव सकाम कर्मोंमें प्रवृत्त न होकर निष्काम कर्म, तत्त्वविचार, भगवत्सेवा, भगवत्प्रेम आदि पारमार्थिक साधनोंमें ही लगना चाहिये, उसीमें जीवनकी सार्थकता है। पर जो सकामभावका त्याग नहीं कर सकते, उनकी विविध कामनाओंकी पूर्तिके लिये सकाम उपासनाका विधान है। सकामभाववाले लोग उन दैवी साधनोंका सेवन करके लाभ उठा सकते हैं।

श्रीहनुमानजीसे भक्ति-भावकी याचना

(रचयिता—श्रीजेठमलजी व्यास 'मास्टर')

(१)

दीनोंके सँगाती सदा, वीर हनुमान जति, भक्तोंकी पुकार लख, आतुर तें धावे है।
भयो ना हतास बजरंगकी सरण पाय, अभय बनाय राम-रंगमें रँगावे है॥
मरकटाधीस, राम-नाम बसे रग-रग, रामसे सनेह-सरण रामकी संभावे है।
केसरीके नन्द बाहूबलको निधान जान, काटे फन्द-द्वन्द्व नाम लेत ही बिलावे है॥

(२)

कृपाके निधान हनुमान! सुनो महरबान, कहूँ मैं सुजान ध्यान मेरी ओर दीजिये।
दीनोंके जीवन-प्रान, दूसरो न देख्यो आन, संकट महान जान, मेरी सुध लीजिये॥
भगतोंकी राखो शान, हृदय प्रकाशो ज्ञान, गाऊँ गुण-गान राम-रंग रँग दीजिये।
स्वयं विराजमान, सकल गुणोंकी खान, 'जेठू' कहे हनुमान! भक्ति-भाव दीजिये॥

श्रीहनुमानजीकी उपासना कब करनी चाहिये ?

(लेखक—स्व० पं० श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)

शङ्का—सर्वसाधारण और अधिकतर महात्माओंके मुखारविन्दसे सुननेमें आता है कि 'सवा पहर दिन चढ़ जानेके पहले श्रीहनुमानजीका नाम-जप तथा हनुमान-चालीसाका पाठ नहीं करना चाहिये।' क्या यह बात यथार्थ है ?

समाधान—आजतक इस दासको न तो किसी ग्रन्थमें ऐसा कहीं प्रमाण ही मिला है, न अभीतक किसी महात्माके ही मुखारविन्दसे सुननेको मिला है कि उपासकको किसी उपास्यदेवके स्तोत्रोंका पाठ या उसके नामका जप आदि प्रात:काल सवा पहरतक न करके उसके बाद करना चाहिये। अपितु प्रत्येक स्थलपर इसी बातका प्रमाण मिलता है कि सदा और निरन्तर तैलधारावत् अजस्र, अखण्ड भजन-स्मरण करना चाहिये। यथा—

'रसना निसि बासर राम रटौ!' (कवित्तरामायण)

'सदा राम जपु राम जपु।'

'जपहि नाम रघुनाथको चरचा दूसरी न चालु।'

'तुलसी तू मेरे कहे रट राम नाम दिन राति।'

(विनय-पत्रिका)

इसी प्रकार श्रीहनुमानजीके सम्बन्धमें भी सदा-सर्वदा भजन करनेका ही प्रमाण मिलता है। यथा—

मर्कटाधीस मृगराज बिक्रम महादेव मुद मंगलालय कपाली।

× × ×

सिद्ध सुर बृंद जोगींद्र सेवित सदा, दास तुलसी प्रनत भय तमारी।

(विनय० पद २६)

पुन:—

मंगलागार संसारभारापहर बानराकारबिग्रह पुरारी।

× × ×

राम संभ्राज सोभा सहित सर्बदा, तुलसि मानस रामपुर बिहारी।

(विनय० पद २७)

कदाचित् किसीको श्रीहनुमानजीके इस वचनका ध्यान आ गया हो—

प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥

—परंतु इसका भावार्थ लेना चाहिये। यहाँ 'हमारा'-शब्दका सम्बन्ध ऊपरकी चौपाईके 'कपिकुल' अर्थात् वानर-योनिसे है, न कि अपने शरीर (श्रीहनुमान-विग्रह)-से। वहाँ आप कहते हैं—

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥

अर्थात् 'विभीषणजी! आप अपनेको राक्षसकुलका मानकर भय मत करें। बताइये, मैं ही कौन-से बड़े श्रेष्ठ कुलका हूँ। वानर-योनि तो चञ्चल और पशु होनेसे सभी प्रकारसे हीन है। हमारे कुल (वानर)-का अगर कोई प्रात:काल नाम ले ले तो उस दिन उसे आहारका ही योग नहीं लगता—

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥

—ऐसे अधम कुलका मैं हूँ, किंतु सखा! सुनिये, मुझपर भी श्रीरामजीने कृपा की है।' इस विरदको स्मरण कर कहते-कहते श्रीहनुमानजीके नेत्रोंमें आँसू भर आये। अत: 'हमारा'-शब्दका भाव यह है कि कुल तो हमारा ऐसा नीच है कि 'वानर'-शब्दका ही सबेरे मुँहसे निकलना अच्छा नहीं माना जाता, परंतु उसी योनिमें उत्पन्न मैं जब प्रभुका कृपापात्र बना लिया गया, तब तो—

राम कीन्ह आपन जब ही तें। भयउँ भुवन भूषन तबही तें॥

मेरे हनुमान, महावीर, बजरंगी, पवनकुमार आदि नाम प्रात:स्मरणीय हो गये। इसका प्रमाण इस प्रकार है—

असुभ होइ जिन्हके सुमिरन तें बानर रीछ बिकारी।
बेद बिदित पावन किए ते सब महिमा नाथ तिहारी॥

(विनय० पद ११६)

अतएव श्रीरामायणजीके उपर्युक्त पदोंसे श्रीहनुमानजीका नाम प्रात:काल जपनेका निषेध कदापि सिद्ध नहीं होता, उसका तात्पर्य 'वानर'-शब्दसे ही है, जो कुलकी न्यूनताका द्योतक है, स्वयं श्रीहनुमानजीकी न्यूनताका नहीं। कहीं-कहीं लोग ऐसा तर्क करते हैं कि श्रीहनुमानजी रातमें जगनेके कारण सबेरे सोते रहते हैं अथवा सबेरे श्रीरामजीकी मुख्य सेवामें रहते हैं, इसलिये सवा पहर वर्जित है, सो न तो इसका कोई प्रमाण अभीतक इस दीनको मिला है और न यह बात उचित ही मालूम होती कि योगिराज, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य श्रीहनुमानजी पहरभर दिन चढ़नेतक सोते रहते हैं अथवा उनका अमित दिव्य विग्रह और अमोघशक्ति वपु एक रूपसे सरकारी सेवामें तत्पर रहते हुए दूसरे

अनेक रूपोंसे अपने भक्तोंकी सेवा स्वीकार करनेमें असमर्थ रहता है। जहाँ प्रेमपूर्वक श्रीरामनामका जप और श्रीरामायणजीका पाठ होता है, वहाँ तो श्रीमारुतिजी सदा विद्यमान रहते हैं—चाहे वह प्रात:काल हो या और कोई काल हो। फिर इस झगड़ेमें पड़कर तो श्रीहनुमानजीके आराम-विश्रामके लिये सवा पहर भगवद्भजन भी छोड़ना पड़ेगा, जिसका छूटना ही उनकी दृष्टिमें विपत्तिजनक है—

कह हनुमान बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

अतएव इस दीनके तुच्छ विचारसे तो सवा पहर क्या, एक क्षण भी भाग्यवानोंको श्रीहनुमत्-नाम-भजन और पाठादिसे विमुख नहीं रहना चाहिये। प्रात:कालका समय तो भजनके लिये है ही। श्रीमारुतिजी सदा और सब कालमें वन्दनीय हैं।

श्रीहनुमानजीकी उपासना

(लेखक—स्व० पं० श्रीहनूमान्‌जी शर्मा)

१—पुराणोंसे ज्ञात होता है कि हनुमानजी पवनके पुत्र और रुद्रके अवतार हैं। दैवी, दानवी और मानवी सृष्टिमें इनका मान और महत्त्व सर्वोच्च है। जिस समय इन्होंने जन्म लिया, उसी समय ब्रह्मा-विष्णु-महेश-यम-वरुण-कुबेर-अग्नि-वायु-इन्द्रादिने इन्हें अजर-अमर बना दिया था और अनेक प्रकारके वर भी दिये थे।

२—जिस प्रकार ध्यान, धारणा और समाधिके प्रभावसे रुद्रादिका सर्वाधिक सम्मान है, उसी प्रकार हनुमानजी अखण्ड ब्रह्मचर्यके पालनसे अधिक पूजित और प्रसिद्ध हुए हैं और इसी कारण इनकी उपासना सर्वत्र होती है।

३—पुराणों और रामायणोंमें अनेक स्थानोंपर इनके अद्भुत चरित्रोंका वर्णन आया है। धर्मशास्त्रोंमें इनकी सेवा-पूजा और स्तोत्र-पाठादिका महान् फल बतलाया गया है तथा आराधनाके ग्रन्थोंमें इनकी उपासनाके लोकोत्तर फल देनेवाले विधान हैं।

४—उपासकलोग अपनी भावनाके अनुसार हनुमानजीको वीर और दास—दोनों रूपोंमें मानते हैं और आपद्विघ्नविनाशार्थ वीररूपकी तथा सुखलाभार्थ दासरूपकी आराधना करते हैं। शास्त्रोंमें दोनोंके ध्यान और विधान हैं तथा वीरके लिये राजस और दासके लिये सात्त्विक उपचारोंका उल्लेख है।

५—वास्तवमें हनुमानजीने समुद्रके लाँघने, सुरसा, लंकिनी और अक्षादिका क्षय करने, लंका जलाने, रावणादिका तिरस्कार करने और अपहृत हुए श्रीराम-लक्ष्मणको पातालसे लाने आदिमें सर्वोत्कृष्ट वीरत्व और स्वामीकी सेवा तथा भक्तोंकी अभीष्ट-सिद्धि आदिमें सर्वाधिक दासत्व दरसाया था। ऐसे सर्वोत्तम देवकी उपासना अवश्य ही हितकारिणी होती है।

६—अनुष्ठान-प्रकाशादिमें हनुमानजीकी उपासनाके अद्भुत और अनुभूत अनेकों अनुष्ठान हैं, जिनसे वे शीघ्र प्रसन्न होते हैं। इसके सिवा 'मन्त्रमहोदधि', 'मन्त्रमहार्णव' और 'मन्त्रसंग्रह' आदिमें इनके प्रत्यक्ष होनेके उपाय भी हैं तथा 'हनुमदुपासना-कल्पद्रुम' तो इस विषयका सर्वोत्तम ग्रन्थ है ही। उपासकोंको चाहिये कि उनका अनुशीलन करें।

७—हनुमानजीकी उपासनामें पूजा, जप, पाठ और ध्वजा-पताकादिका होना मुख्य है एवं भक्ति, श्रद्धा, समर्पण तथा संलग्नताका होना भी आवश्यक है। इन सबके विधान उपर्युक्त ग्रन्थोंमें भलीभाँति लिखे हैं, अत: यहाँ उनकी पुनरावृत्ति आवश्यक नहीं।

८—पूजा—पञ्चोपचार, दशोपचार और षोडशोपचार आदि उपचारोंका उपयोग कामनाके अनुसार किया जाता है। विशेषता यह है कि जो उपचार आरम्भमें हो, उसीको समाप्तितक रखना चाहिये। अधिकांश उपासक शीघ्रतामें पञ्चोपचार, अवकाशमें षोडशोपचार, अनुपलब्धिमें मानसोपचार और स्वार्थसिद्धिमें राजोपचारसे पूजा करते हैं; परंतु ऐसा करनेमें क्रममें व्यतिक्रम—विलोम होना सम्भव है।

९—आराधनाके सभी ग्रन्थोंमें षोडशोपचार पूजाका उल्लेख है। इसमें १ आवाहन, २ आसन, ३ पाद्य, ४ अर्घ्य, ५ आचमन, ६ स्नान, ७ वस्त्र (यज्ञोपवीत), ८ गन्ध, ९ अक्षत, १० पुष्प, ११ धूप, १२ दीप, १३ नैवेद्य, १४ पुनराचमन, १५ ताम्बूल और १६ दक्षिणा-प्रदक्षिणा या नीराजन किया जाता है। पूजा-पद्धतिमें इन सबके विधान हैं, उन्हींके अनुसार पूजन करना चाहिये।

१०—स्नानमें कूपादिका शुद्ध, ताजा और गन्धादियुक्त जल लिया जाय; पर्वोत्सवादिमें दूध, दही, घी, मधु और चीनीके पञ्चामृतसे स्नान कराकर फिर शुद्धोदकसे स्नान

कराया जाय। 'उद्वर्तन' की जगह तिलके तेलमें मिले हुए सिन्दूरका सर्वाङ्गमें लेपन किया जाय। इससे हनुमानजी प्रसन्न होते हैं। कारण यह है कि लंका-विजयके बाद जब श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवादिको पारितोषिक दिया था, उस समय सीताजीने हनुमानजीको एक बहुमूल्य मणियोंकी माला दी थी, किंतु उसमें श्रीराम-नाम न होनेसे वे उदासीन ही रहे। तब सीताजीने उन्हें अपने सीमन्तका 'सिन्दूर' देकर कहा कि 'यह मेरा मुख्य सौभाग्यचिह्न है, इसको मैं धन-धाम और रत्नादिसे भी अधिक प्रिय मानती हूँ; अतः तुम इसको सहर्ष स्वीकार करो।' तब हनुमानजीने सिन्दूरको अङ्गीकार कर लिया। इसी हेतुसे उपासकलोग हनुमानजीके अङ्गमें तैल-मिश्रित सिन्दूरका लेप करते हैं और मन्त्र-शास्त्रोंके मतसे यह आकर्षक भी है।

११—गन्धमें शुद्ध केसरके साथ घिसा हुआ मलया-गिरिचन्दनका उपयोग करे या लालचन्दनका। पुष्पोंमें पुरुषवाची नामवाले लाल-पीले, गम्भीर और दीर्घकाय पुष्प (यथा— कमल, केवड़ा, हजारा और सूर्याभिमुख—सूर्यमुखी आदि) अर्पण करे। यह विशेष है कि 'देवशयनी' (आषाढ़ शुक्लैकादशी)-से 'देवप्रबोधिनी' (कार्तिक शुक्लैकादशी)-तक (१२१ दिनोंमें) प्रतिदिन १०८ तुलसीपत्रोंपर कदम्बकी कलम और अष्टगन्ध (चन्दन, अगर, कपूर, तमाल, नेत्रवाला, केसर, रक्तचन्दन और कूट)-से 'राम' नाम लिखकर उन्हें गन्धादिसे पूजित कर '**ॐ हनुमते नमः**'—इस मन्त्रोच्चारणके साथ एक-एक पत्र हनुमानजीके मस्तकपर चढ़ाये। इस प्रयोगसे अनेक अनिष्ट दूर होते हैं।

१२—नैवेद्य—प्रातःपूजनमें गुड़, नारियलका गोला और मोदक; मध्याह्नमें गुड़, घी और गेहूँकी रोटीका चूरमा या स्निग्ध रोट और रात्रिमें आम, अमरूद या केला आदि अर्पण करना चाहिये। चूरमा प्रतिदिन न हो सके तो मंगलवारको अवश्य बनाये और उसी प्रसादका भोजन करके एकभुक्त 'भौमव्रत' करे। यदि मौन रहकर वाम करसे भोजन किया जाय तो यह व्रत ऋणमोचनमें अधिक उपयोगी होता है।

१३—नीराजन—घीमें भीगी हुई एक या पाँच बत्तियोंसे करना चाहिये और पर्वोत्सव या महापूजामें ५, ११, ५० या १०८ बत्तियोंसे करना चाहिये। उस अवसरपर शङ्ख, रणसिंगा, विजयघंट और नगारा आदिकी ध्वनि हो तो और भी अच्छा है। प्रायः सभी देव-मन्दिरोंमें 'चरणामृत'-वितरण किया जाता है। सम्भवतः रुद्रावतार होनेसे हनुमानजीके चरणामृतका प्रचार कम है; परंतु उपासकके लिये उपास्यका चरणोदक त्याज्य नहीं माना जाता।

१४—पूजनके पश्चात् उपास्यदेवका जप किया जाता है। उसके तीन प्रकार हैं—वाचिक, उपांशु और मानसिक। इनमें जिसका उच्चारण दूसरेको सुनायी दे, वह 'वाचिक', जिसमें जीभ और होंठ हिलते रहें, किंतु उच्चारण सुनायी न दे, वह 'उपांशु' और होंठ बंद रहें, जीभ चिपकी रहे और जप मनमें होता रहे, वह 'मानस' है। इनमें मानस जपके साथ आराध्यदेवके स्वरूपका ध्यान करना आवश्यक है।

१५—त्रिकालदर्शी तत्त्वज्ञ महर्षियोंने आराध्यदेवोंके विज्ञानमय ध्यान नियत किये हैं। उनके स्वरूपको हृदयंगम करना चाहिये। हनुमानजीके अनेक ध्यान हैं। कारण यह है कि ये अजर-अमर हैं, ब्रह्मस्वरूप माने गये हैं, रुद्रावतार हैं, इन्होंने अनेकों बड़े-बड़े काम किये हैं, समय-समयपर इनके अनेक स्वरूप हुए हैं। परंतु सकाम उपासनामें कामनाके अनुकूल स्वरूपका तथा निष्काम उपासनामें व्यापक स्वरूपका ध्यान करना चाहिये।

१६—**उद्यन्मार्तण्डकोटिप्रकटरुचियुतं चारुवीरासनस्थं**
मौञ्जीयज्ञोपवीतारुणरुचिरशिखाशोभितं कुण्डलाङ्कम्।
भक्तानामिष्टदं तं प्रणतमुनिजनं वेदनादप्रमोदं
ध्यायेद्देवं विधेयं प्लवगकुलपतिं गोष्पदीभूतवार्धिम्॥

उदय होते हुए करोड़ों सूर्य-जैसे तेजस्वी, मनोरम वीरासनसे स्थित, मूँजकी मेखला तथा यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, लालवर्णकी सुन्दर शिखावाले, कुण्डलोंसे शोभित, भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाले, मुनियोंद्वारा वन्दित, वेदनादसे प्रहर्षित, वानरकुलके स्वामी और समुद्रको गोपदके समान लाँघ जानेवाले देवतारूप श्रीहनुमानजीका ध्यान सर्वानुकूल प्रतीत होता है।

१७—दूसरा प्रकार यह है कि जहाँ-कहीं, जिस मूर्तिके देखनेसे चित्त आकर्षित हो, उसे अनेक बार देखकर ऐसा अभ्यास कर लेना चाहिये कि नेत्र बंद करनेपर भी वह स्वरूप यथावत् दीखता रहे। इस प्रकार बाह्य मूर्तियोंको हृदयंगम करके जप करते समय अन्तर्दर्शन करते रहना चाहिये और जपकी संख्या मनियोंकी माला या अँगुलियोंकी करमालाके बदले वर्णमालात्मक मानसिक मालासे करनी चाहिये। इस क्रियासे हाथसे फिरनेवाली माला, मुँहसे होनेवाले जप और अन्तस्तलमें रहनेवाला मन—सभी इधर-उधर भटकनेके बदले संयमित रहेंगे।

१८—इस प्रकार जप, ध्यान और संख्या—इस 'मानसकी त्रिवेणी' में उपस्थित होकर साधन करनेसे

तामस, राजस और सात्त्विक—सभी साधनाएँ शीघ्र सफल होती हैं और यदि इस प्रकारका जप निष्काम किया जाय तो फिर अकेले हनुमानजी ही नहीं, अपितु वे और उनके स्वामी—दोनों प्रत्यक्ष होकर उपासकके समीप बैठे रहें और उससे बात करनेकी बाट देखते रहें।

१९—मनको एकाग्र करना मनुष्यके लिये असाध्य नहीं है। अभ्याससे दूसरे काम करते हुए भी मनको हम अपने लक्ष्यपर आरूढ़ रख सकते हैं। जैसे—१-अधिकांश अश्वारोही सेनासमूहके एकाधिक आक्रमणोंसे आक्रान्त होकर भी वृक्षशाखामें अटके हुए साथीको हठात् निकाल ले जाते हैं। २-पचास फुट ऊँचे बाँसके सिरेपर निराधार सीधे सोये हुए नट-बालक अपने सिरपर रखे हुए पाँच बर्तनोंको गिरने नहीं देते। ३-अनुभवी न्यायाधीश कई अभियोगोंकी अलग-अलग अपील एक बारमें सुनते हुए भी अपना आज्ञापत्र निर्दोष लिख देते हैं। ४-भारतमार्तण्ड पण्डित गहूलालजी विभिन्न भाषाओंमें पूछे हुए अनेक प्रश्नोंका यथायोग्य उत्तर एक ही बारमें दे देते थे और ५-सिरपर नीचे-ऊपर रखे हुए जलपूर्ण दो घड़े तथा बगलमें भी एक घड़ा और डोरी लिये मुँहसे वार्तालाप तो अनेक ग्रामीण स्त्रियाँतक करती हैं। अतएव अभ्यास होनेपर जिस प्रकार ये सब काम होते हैं, उसी प्रकार उपासकोंका मन भी एकाग्र हो सकता है।

२०—इष्टदेवको प्रसन्न करनेके लिये तदनुकूल आचरणोंकी भी आवश्यकता होती है। हनुमानजी श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रोंसे प्रसन्न होते हैं। अतएव वाल्मीकि-रामायण, तुलसीकृत रामायण, मूलरामायण और सुन्दरकाण्ड आदिके सादे, सार्थ या सम्पुटसहित पाठ करने चाहिये। इनके अतिरिक्त कथा-वार्ता, पुराण-पाठ या श्रीरामलीलाका अभिनय आदि जो भी अनुकूल हों, करने चाहिये।

२१—प्रयोगादिके प्रारम्भमें '**प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविश्य**' के अनुसार पूर्वाभिमुख होनेमें कई जगह स्थानविशेषके कारण असुविधा हो जाती है। ऐसी स्थितिमें '**पूज्यपूजकयोर्मध्ये पूर्वाशां चिन्तयेत् सुधीः।**' (पूजकको ऐसी भावना कर लेनी चाहिये कि उसके आराध्यदेव पूर्व दिशामें ही स्थित हैं)-के अनुसार पूज्य (गौ-गुरु-द्विज-देवादि)-के सम्मुख बैठना चाहिये और '**देवो भूत्वा देवं यजेत्**'—देवके समान होकर देवताका यजन करना चाहिये अर्थात् त्रिनयन, चतुर्भुज, षण्मुखादिके अर्चनमें अपनेमें तत्तुल्य विधान (न्यास, मुद्रा और उपचारादि) करने चाहिये। साथ ही '**यथा देहे तथा देवे**'—जिस प्रकार पूजा आदिमें अपने शरीरमें गन्धादि लेपन या अङ्गन्यासादि करते हैं, उसी प्रकार देवताके भी होने चाहिये। '**वित्तशाठ्यं न कारयेत्**'—धर्माचरणादिमें वित्त (या सामर्थ्य)-की शठता नहीं करनी चाहिये। अर्थात् धन, मन और समय जितना लगाया जा सके, उसमें संकोच नहीं होना चाहिये।

अन्तमें सम्पुटित पाठके कुछ मन्त्र सूचित कर देना प्रसङ्गके अनुकूल प्रतीत होता है—

(१) उपर्युक्त रामायणादिमें किसी भी श्लोकके '**रां रामाय नमः**' का सम्पुट लगानेसे हनुमानजी प्रसन्न होते हैं।

(२) '**ॐ हनुमते नमः**' से कार्य-सिद्धि होती है।

(३) **अञ्जनागर्भसम्भूत कपीन्द्रसचिवोत्तम।**
रामप्रिय नमस्तुभ्यं हनूमन् रक्ष सर्वदा॥

'हे अञ्जनाके गर्भसे उत्पन्न हुए, सुग्रीवके श्रेष्ठ मन्त्री, श्रीरामके प्यारे हनुमान! आपको प्रणाम है। आप मेरी सदा रक्षा करें।'

—से रक्षा और अभीष्ट-लाभ होता है।

(४) **मर्कटेश महोत्साह सर्वशोकविनाशन।**
शत्रून् संहर मां रक्ष श्रियं दापय मे प्रभो॥

'हे वानराधीश, महान् उत्साही, सब प्रकारके शोकका नाश करनेवाले प्रभो ! मेरे शत्रुओंका नाश कर दो, मेरी रक्षा करो और अपनी लक्ष्मी मुझे प्रदान करो।'

—से शत्रुनिवारण, आत्मसंरक्षण और सम्पत्प्राप्ति होती है।

(५) **जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।**
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥

(वा० रा० ५। ४२। ३३—३५)

'अत्यन्त बलवान् भगवान् श्रीराम तथा महाबली लक्ष्मणकी जय हो। श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीवकी भी जय हो। मैं अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले कोसलनरेश श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ। मेरा नाम हनूमान है। मैं वायुका पुत्र तथा शत्रुसेनाका संहार करनेवाला हूँ। जब मैं हजारों वृक्ष और पत्थरोंसे प्रहार करने लगूँगा, उस समय सहस्रों रावण मिलकर भी युद्धमें मेरे बलकी समानता अथवा मेरा सामना नहीं कर सकते।'

—से राष्ट्रविप्लव, महामारी-भय, महाशत्रुके आक्रमण, अनेक प्रकारकी असह्य आपत्तियाँ और देशोपद्रवादि शान्त होते हैं।

(६)

स देवि नित्यं परितप्यमान-
स्त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः।
धृतव्रतो राजसुतो महात्मा
तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः॥

(वा० रा० ५। ३६। ४६)

"देवि! राजकुमार महात्मा श्रीराम आपके लिये सदा दुःखी रहते हैं, 'सीता-सीता' कहकर आपकी ही रट लगाते हैं तथा उत्तम व्रतका पालन करते हुए वे आपकी ही प्राप्तिके प्रयत्नमें लगे हुए हैं।"

—से उद्वाह या स्त्री-प्राप्ति होती है।

उक्त मन्त्र, विशेषकर वाल्मीकिरामायण 'सुन्दरकाण्ड' और 'मूलरामायण' के पाठमें सम्पुटरूपमें लगानेके लिये उपयोगी है। सम्पुटित पाठमें पहले मन्त्र, पीछे मूल, फिर मन्त्र, फिर मन्त्र, पीछे मूल और फिर मन्त्र—इस क्रमसे पाठ किया जाय। पाठारम्भके पहले हनुमानजीका पूजन, प्रार्थना और ध्यानादि किये जायँ। इस प्रकार प्रीति, उदारता और शान्तिके साथ पाठ करनेसे सब प्रकारके अभीष्ट सिद्ध होते हैं।

विविध मन्त्रोंद्वारा श्रीहनुमानजीकी उपासना

(तन्त्रोंमें 'हनुमदुपासना' पर शोधकर्ता जिज्ञासुको एक विचित्र स्थितिका भान होगा। 'कुलार्णव', 'शारदातिलक' आदि तन्त्रोंकी मूल प्रतियोंमें इस विषयपर विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है—'शारदातिलक' की 'अर्थद्योतनिका' व्याख्यामें कुछ ही पङ्क्तियाँ मिलती हैं। 'प्रपञ्चसार' में भी अत्यल्प ही सामग्री है। १५वीं शतीके प्रसिद्ध तान्त्रिक आगमवागीश श्रीकृष्णानन्दजीके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तन्त्रसार' के तृतीय परिच्छेदमें केवल सुदर्शनसंहितोक्त 'हनुमत्कल्प' मात्र ही प्राप्त है। हाँ, नारदपुराणके 'भागवत-तन्त्रमें' इस विषयपर विपुल सामग्री उपलब्ध होती है। इसके पूर्वखण्डके ७४, ७५, ७८ तथा ७९ अध्यायोंमें, प्रायः एक हजार श्लोकोंमें श्रीनारद-सनत्कुमार-संवादके रूपमें हनुमानजीके विषयमें बड़ी रम्य सामग्री सँजोयी हुई है। इसी प्रकार आनन्द-रामायण, सुदर्शनसंहिता एवं रुद्रयामलमें भी पर्याप्त सामग्री मिलती है, किंतु पिछली दो पुस्तकें अप्राप्य हैं। केवल किन्हीं-किन्हीं पुस्तकालयोंमें हस्तलिखित अवस्थामें ही खण्डितरूपमें उपलब्ध हैं। अतः नारदपुराणकी सामग्री ही सर्वोत्तम प्रतीत होती है। उसीसे साधकोंके कामकी कुछ अत्यन्त आवश्यक सामग्री लेकर यहाँ दी जा रही है। —सम्पादक)

सनत्कुमारजी कहते हैं—विप्रवर! अब हनुमानजीके मन्त्रोंका वर्णन किया जाता है, जो समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाले हैं और जिनकी आराधना करके मनुष्य हनुमानजीके ही समान आचरणवाले हो जाते हैं। मनुस्वर (औ) तथा इन्दु (अनुस्वार)-से युक्त गगन (ह्) अर्थात् 'हौं'—यह प्रथम बीज है। ह् स् फ् र् और अनुस्वार—ये भग (ए)-से युक्त हों; अर्थात् 'हस्फ्रें' यह दूसरा बीज है। ख् फ् र्—ये भग (ए) और इन्दु (अनुस्वार)-से युक्त हों अर्थात् 'ख्फ्रें' यह तीसरा बीज कहा गया है। वियत् (ह्), भृगु (स्), अग्नि (र्), मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार)—इन सबका संयुक्त रूप 'ह्स्त्रौं' यह चौथा बीज है। भग (ए) और चन्द्र (अनुस्वार)-से युक्त वियत् (ह्) भृगु (स्), ख् फ तथा अग्नि (र्) हों; अर्थात् 'ह्स्ख्फ्रें' यह पाँचवाँ बीज है। मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार)-से युक्त ह् स् अर्थात् 'ह्सौं' यह छठा बीज है। तदनन्तर ङे-विभक्त्यन्त हनुमत् शब्द (हनुमते) और अन्तमें हृदय (नमः)—यह '**ह्रौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्त्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं हनुमते नमः**' बारह अक्षरोंवाला महामन्त्रराज कहा गया है। इस मन्त्रके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि हैं और जगती छन्द कहा गया है। इसके देवता हनुमानजी हैं। 'ह्सौं' बीज है, और 'ह्स्फ्रें' शक्ति। उपर्युक्त छः बीजोंसे षडङ्गन्यास करना चाहिये। मस्तक, ललाट, दोनों नेत्र, मुख, कण्ठ, दोनों बाहु, हृदय, कुक्षि, नाभि, लिङ्ग, दोनों जानु, दोनों चरण—इनमें क्रमशः मन्त्रके बारह अक्षरोंका न्यास करे। छः बीज और दो पद—इन आठोंका क्रमशः मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, ऊरु, जङ्घा और चरणोंमें न्यास करे। तदनन्तर अञ्जनी-नन्दन कपीश्वर हनुमानजीका इस प्रकार ध्यान करे—

उद्यत्कोट्यर्कसंकाशं जगत्प्रक्षोभकारकम्।
श्रीरामाङ्घ्रिध्याननिष्ठं सुग्रीवप्रमुखार्चितम्॥
वित्रासयन्तं नादेन राक्षसान् मारुतिं भजेत्।

(९४। ९-१०)

'उदयकालीन करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हनुमानजी सम्पूर्ण जगत्‌को क्षोभमें डालनेकी शक्ति रखते हैं, सुग्रीव आदि प्रमुख वानर वीर उनका समादर करते हैं। वे राघवेन्द्र श्रीरामके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें निरन्तर संलग्न हैं और अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण राक्षसोंको भयभीत कर रहे हैं। ऐसे पवनकुमार हनुमानजीका भजन—ध्यान करना चाहिये।'

इस प्रकार ध्यान करके जितेन्द्रिय पुरुष बारह हजार मन्त्र-जप करे। फिर दही, दूध और घी मिलाये हुए धानकी दशांश आहुति दे। पूर्वोक्त वैष्णव-पीठपर मूल-मन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना करके उसमें हनुमानजीका आवाहन-स्थापनपूर्वक पाद्यादि उपचारोंसे पूजन करे। केसरोंमें हृदयादि अङ्गोंकी पूजा करके अष्टदल कमलके आठ दलोंमें हनुमानजीके निम्नाङ्कित आठ नामोंकी पूजा करे—श्रीरामभक्त, महातेजा, कपिराज, महाबल, द्रोणाद्रिहारक, मेरुपीठार्चनकारक, दक्षिणाशाभास्कर तथा सर्वविघ्नविनाशक। (**श्रीरामभक्ताय नमः, महातेजसे नमः, कपिराजाय नमः, महाबलाय नमः, द्रोणाद्रिहारकाय नमः, मेरुपीठार्चनकारकाय नमः, दक्षिणाशाभास्कराय नमः, सर्वविघ्नविनाशकाय नमः**)—इस प्रकार नामोंकी पूजा करके दलोंके अग्रभागमें क्रमशः सुग्रीव, अङ्गद, नील, जाम्बवान्, नल, सुषेण, द्विविद तथा मैन्दकी पूजा करे। तत्पश्चात् लोकपालों तथा उनके वज्र आदि आयुधोंकी पूजा करे। ऐसा करनेसे मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जो मानव लगातार दस दिनोंतक रातमें नौ सौ मन्त्र-जप करता है, उसके राजभय और शत्रुभय नष्ट हो जाते हैं। एक सौ आठ बार मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया हुआ जल विषका नाश करनेवाला होता है। भूत, अपस्मार (मिरगी) और कृत्या (मारण आदिके प्रयोग)-से उत्पन्न ज्वर हो तो उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्म अथवा जलसे क्रोधपूर्वक ज्वरग्रस्त पुरुषपर प्रहार करे। ऐसा करनेपर वह मनुष्य तीन दिनमें ज्वरसे छूट जाता और सुख पाता है। हनुमानजीके उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित औषध या जल खा-पीकर मनुष्य सब रोगोंको मार भगाता और तत्क्षण सुखी हो जाता है। उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्मको अपने अङ्गोंमें लगाकर अथवा उससे अभिमन्त्रित जलको पीकर जो मन्त्रोपासक युद्धके लिये जाता है, वह शस्त्रोंके समुदायसे पीड़ित नहीं होता। किसी शस्त्रसे कटकर घाव हुआ हो या फोड़ा फूटकर बहता हो, लूता (मकरी)-रोग फूटा हो तो भी तीन बार मन्त्र जपकर अभिमन्त्रित किये हुए भस्मसे उनपर स्पर्श कराते ही वे सभी घाव सूख जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। ईशानकोणमें स्थित करंज नामक वृक्षकी जड़को ले आकर उसके द्वारा हनुमानजीकी अँगूठे-बराबर प्रतिमा बनाये, फिर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करके सिन्दूर आदिसे उसकी पूजा करे। तत्पश्चात् उस प्रतिमाका मुख घरकी ओर करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसे दरवाजेपर गाड़ दे। उससे ग्रह, अभिचार, रोग, अग्नि, विष, चोर तथा राजा आदिके उपद्रव कभी उस घरमें नहीं आते और वह घर दीर्घकालतक प्रतिदिन धन-पुत्र आदिसे अभ्युदयको प्राप्त होता रहता है।

विशुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष अष्टमी या चतुर्दशीको मंगलवार या रविवारके दिन किसी तख्तेपर तैलयुक्त उड़दके बेसनसे हनुमानजीकी सुन्दर तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित एक प्रतिमा बनाये। वाम भागमें तेलका और दाहिने भागमें घीका दीपक जलाकर रखे। फिर मन्त्रज्ञ पुरुष मूलमन्त्रसे उक्त प्रतिमामें हनुमानजीका आवाहन करे। आवाहनके पश्चात् प्राण-प्रतिष्ठा करके उन्हें पाद्य, अर्घ्य आदि अर्पण करे। लाल चन्दन, लाल फूल तथा सिन्दूर आदिसे उनकी पूजा करे। फिर धूप और दीप देकर नैवेद्य निवेदन करे। मन्त्रवेत्ता उपासक मूलमन्त्रसे पूआ, भात, साग, मिठाई, बड़े, पकौड़ी आदि भोज्य पदार्थोंको घृतसहित समर्पित करके फिर सत्ताईस पानके पत्तोंको तीन-तीन आवृत्ति मोड़कर उनके भीतर सुपारी आदि रखकर मुख-शुद्धिके लिये मूलमन्त्रसे ही अर्पण करे। मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार भलीभाँति पूजा करके एक हजार मन्त्रका जप करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष कपूरकी आरती करके नाना प्रकारसे हनुमानजीकी स्तुति करे और अपना अभीष्ट मनोरथ उनसे निवेदन करके विधिपूर्वक उनका विसर्जन करे। इसके बाद नैवेद्य लगाये हुए अन्नद्वारा सात ब्राह्मणोंको भोजन कराये और चढ़ाये हुए पानके पत्ते उन्हींको बाँटकर दे दे। विद्वान् पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार उन ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देकर विदा करे। तत्पश्चात् इष्ट-बन्धुजनोंके साथ स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। उस दिन पृथ्वीपर शयन और ब्रह्मचर्यका पालन करे। जो मानव इस प्रकार आराधना करता है, वह कपीश्वर हनुमानजीके कृपा-प्रसादसे शीघ्र ही सम्पूर्ण कामनाओंको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

भूमिपर हनुमानजीका चित्र अङ्कित करे और उनके अग्रभागमें मन्त्रका उल्लेख करे। साथ ही साध्य वस्तु या व्यक्तिका द्वितीयान्त नाम लिखकर उसके आगे '**विमोचय विमोचय**' लिखे, उसे बायें हाथसे मिटा दे, उसके बाद फिर लिखे। इस प्रकार एक सौ आठ

बार लिख-लिखकर उसे पुनः मिटाये। ऐसा करनेपर महान् कारागारसे वह शीघ्र ही मुक्त हो जाता है। ज्वरमें दूर्वा, गुरुचि, दही, दूध अथवा घृतसे होम करे। शूल रोग होनेपर करंज या वातारि (एरंड)-की समिधाओंको तैलमें डुबोकर उनके द्वारा होम करे अथवा शेफालिका (सिंदुवार)-की तैलसिक्त समिधाओंसे प्रयत्नपूर्वक होम करना चाहिये। सौभाग्यसिद्धिके लिये चन्दन, कपूर, रोचना, इलायची और लवंगकी आहुति दे। वस्त्रकी प्राप्तिके लिये सुगन्धित पुष्पोंसे हवन करे। विभिन्न धान्योंकी प्राप्तिके लिये उन्हीं धान्योंसे होम करना चाहिये। धान्यके होमसे धान्य प्राप्त होता है और अन्नके होमसे अन्नकी वृद्धि होती है। तिल, घी, दूध और मधुकी आहुति देनेसे गाय-भैंसकी वृद्धि होती है। अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता है? विष और व्याधिके निवारणमें, शान्तिकर्ममें, भूतजनित भय और संकटमें, युद्धमें, दैवी क्षति प्राप्त होनेपर, बन्धनसे छूटनेमें और महान् वनमें पड़ जाने आदि सभी अवस्थाओंमें यह सिद्ध किया हुआ मन्त्र मनुष्योंको निश्चय ही कल्याण प्रदान करता है।

द्वादशाक्षर-मन्त्रमें जो अन्तिम छः अक्षर (**हनुमते नमः**) हैं, उनको और आदि बीज (**हौं**)-को छोड़कर शेष बचे हुए पाँच बीजोंका जो पञ्चाक्षर-मन्त्र बनता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है। इसके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि, गायत्री छन्द और हनुमान देवता कहे गये हैं। सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसके पाँच बीजों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे षडङ्ग-न्यास करे। रामदूत, लक्ष्मण-प्राणदाता, अञ्जनीसुत, सीताशोक-विनाशन तथा लंकाप्रासादभञ्जन—ये पाँच नाम हैं, इनके पहले 'हनुमत्' यह नाम और है। हनुमत् आदि पाँच नामोंके आदिमें पाँच बीज और अन्तमें 'ङे' विभक्ति लगायी जाती है। अन्तिम नामके साथ उक्त पाँचों बीज जुड़ते हैं, ये ही षडङ्ग-न्यासके छः मन्त्र हैं।* इसके ध्यान-पूजन आदि कार्य पूर्वोक्त द्वादशाक्षर-मन्त्रके समान ही हैं।

प्रणव (ॐ), वाग्भव (**एं**), पद्मा (**श्रीं**), तीन दीर्घ स्वरोंसे युक्त मायाबीज (**ह्रां ह्रीं ह्रूं**) तथा पाँच कूट (**ह्स्फ्रें, ख्फ्रें, ह्स्त्रौं, ह्स्ख्फ्रें ह्सौं**)—यह ग्यारह अक्षरोंका मन्त्र सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। इसके भी ध्यान-पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् होते हैं। इस मन्त्रकी आराधना की जाय तो यह समस्त अभीष्ट मनोरथोंको देनेवाला है। '**नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा**'। यह अठारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ईश्वर ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, पवनकुमार हनुमान देवता, हं बीज और स्वाहा शक्ति है, ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है। '**आञ्जनेयाय नमः**' का हृदयमें, '**रुद्रमूर्तये नमः**' का सिरमें, '**वायुपुत्राय नमः**' का शिखामें, '**अग्निगर्भाय नमः**' का कवचमें, '**रामदूताय नमः**' का नेत्रोंमें तथा '**ब्रह्मास्त्राय नमः**' का अस्त्रस्थानमें न्यास करे। इस प्रकार न्यास-विधि कही गयी है।

ध्यान

तप्तचामीकरनिभं भीघ्नं संविहिताञ्जलिम्।
चलत्कुण्डलदीप्तास्यं पद्माक्षं मारुतिं स्मरेत्॥

'जिनकी दिव्य कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है, जो भयका नाश करनेवाले हैं, जिन्होंने अपने प्रभु (श्रीराम)-का चिन्तन करके उनके लिये अञ्जलि बाँध रखी है, जिनका सुन्दर मुख हिलते हुए कुण्डलोंसे उद्भासित हो रहा है तथा जिनके नेत्र कमलके समान शोभायमान हैं, उन पवनकुमार हनुमानजीका ध्यान करे।'

इस प्रकार ध्यान करके दस हजार मन्त्र-जप करे। तत्पश्चात् घृतमिश्रित तिलसे दशांश होम करे। पूर्वोक्त रीतिसे वैष्णव-पीठपर पूजन करे। प्रतिदिन केवल रातमें भोजनका नियम लेकर जितेन्द्रियभावसे एक सौ आठ बार जप करे तो मनुष्य छोटे-मोटे रोगोंसे छूट जाता है, इसमें संशय नहीं है। असाध्य रोगोंसे मुक्त होनेके लिये तो प्रतिदिन एक हजार जप करना चाहिये। सुग्रीवके साथ श्रीरामकी मित्रता कराते हुए हनुमानजीका ध्यान करके जो दस हजार मन्त्र-जप करता है, वह परस्पर द्वेष रखनेवाले दो विरोधियोंमें संधि करा सकता है। जो यात्राके समय हनुमानजीका स्मरण करते हुए मन्त्र-जप करता है, उसके बाद यात्रा करता है, वह शीघ्र ही अपना अभीष्ट-साधन करके घर लौट आता है। जो अपने घरमें मन्त्र-जप करते हुए सदा हनुमानजीकी आराधना करता है, वह आरोग्य, लक्ष्मी तथा कान्ति पाता है और किसी प्रकारके उपद्रवमें नहीं पड़ता। वनमें यदि इस मन्त्रका स्मरण किया जाय तो यह व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं तथा चोर-डाकुओंसे रक्षा करता है। सोते समय शय्यापर एकाग्रचित्त होकर इस मन्त्रका स्मरण करना चाहिये। जो ऐसा करता है,

* यथा ह्स्फ्रें हनुमते नमः, हृदयाय नमः। ख्फ्रें रामदूताय नमः, शिरसे स्वाहा। ह्स्त्रौं लक्ष्मणप्राणदात्रे नमः, शिखायै वषट्। ह्स्ख्फ्रें अञ्जनीसुताय नमः, कवचाय हुम्। ह्सौं सीताशोकविनाशनाय नमः, नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्त्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं लङ्काप्रासादभञ्जनाय नमः, अस्त्राय फट्।

उसे दु:स्वप्न और चोर आदिका भय कभी नहीं होता।

वियत् (ह्) इन्दु (अनुस्वार)-से युक्त हो, उसके बाद '**हनुमते रुद्रात्मकाय**'—ये दो पद हों, फिर वर्म (**हुं**) और अस्त्र (**फट्**) हो तो (**हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्**) यह बारह अक्षरोंका महामन्त्र होता है, जो अणिमा आदि अष्ट सिद्धियोंको देनेवाला है। इसके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि, जगती छन्द, श्रीहनुमानजी देवता, हं बीज और 'हुम्' शक्ति कही गयी है। छः दीर्घ-स्वरोंसे युक्त बीज (हां हीं हूं हैं हौं हः)-के द्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

महाशैलं समुत्पाट्य धावन्तं रावणं प्रति॥
लाक्षारसारुणं रौद्रं कालान्तकयमोपमम्।
ज्वलदग्निसमं जैत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥
अङ्गदाद्यैर्महावीरैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम्।
तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट सृजन्तं घोरनि:स्वनम्॥
शैवरूपिणमभ्यर्च्य ध्यात्वा लक्षं जपेन्मनुम्॥

(७४। १२२—१२५)

"हनुमानजी एक बहुत बड़ा पर्वत उखाड़कर रावणकी ओर दौड़ रहे हैं। वे लाक्षा (महावर)-के रंगके समान अरुणवर्ण हैं तथा काल, अन्तक एवं यमके समान भयंकर जान पड़ते हैं। उनका तेज प्रज्वलित अग्निके समान है। वे विजयशील तथा करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हैं। अङ्गद आदि महावीर उन्हें चारों ओरसे घेरकर चलते हैं। वे साक्षात् रुद्रस्वरूप हैं। भयंकर सिंहनाद करते हुए वे रावणसे कहते हैं—'अरे ओ दुष्ट! युद्धमें खड़ा रह, खड़ा तो रह!' इस प्रकार शिवावतार भगवान् हनुमानजीका ध्यान और पूजन करके एक लाख मन्त्रका जप करे।"

तदनन्तर दूध, दही, घी मिलाये चावलसे दशांश होम करे। विमलादि शक्तियोंसे युक्त पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर मूल-मन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना करके हनुमानजीकी पूजा करनी चाहिये। एकमात्र ध्यान करनेसे भी मनुष्योंको सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें संशय नहीं है। अब मैं लोकहितकी इच्छासे इस मन्त्रका साधन बतलाता हूँ। हनुमानजीका साधन पुण्यमय है, वह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। यह लोकमें अत्यन्त गुह्यतम रहस्य है और शीघ्र उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला है। इसके प्रसादसे मन्त्र-साधक पुरुष तीनों लोकोंमें विजयी होता है। प्रात:काल स्नान करके नदीके तटपर कुशासनपर बैठे और मूल-मन्त्रसे प्राणायाम तथा षडङ्ग-न्यास आदि कार्य करे। फिर सीतासहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करके उन्हें आठ बार पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। तत्पश्चात् घिसे हुए लाल चन्दनसे उसीकी शलाकाद्वारा ताम्रपात्रमें अष्टदल कमल लिखे। कमलकी कर्णिकामें मन्त्र लिखे। उसमें कपीश्वर हनुमानजीका आवाहन करे। मूल-मन्त्रसे मूर्ति-निर्माण करके ध्यान तथा आवाहनपूर्वक पाद्य आदि उपचार अर्पण करे। गन्ध, पुष्प आदि सब सामग्री मूल-मन्त्रसे ही निवेदन करके कमलके केसरोंमें छः अङ्गों (हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र तथा अस्त्र)-का पूजन करके आठ दलोंमें सुग्रीव आदिका पूजन करे। सुग्रीव, लक्ष्मण, अङ्गद, नल, नील, जाम्बवान्, कुमुद और केसरीका एक-एक दलमें पूजन करना चाहिये। तदनन्तर इन्द्र आदि दिक्पालों तथा वज्र आदि आयुधोंका पूजन करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक पुरुष अपनी अभीष्ट कामनाओंको सिद्ध कर सकता है। (इसकी पूरी विधि इस प्रकार है—)

नदीके तटपर, किसी वनमें, पर्वतपर अथवा कहीं भी एकान्त प्रदेशमें श्रेष्ठ साधक भूमि-ग्रहणपूर्वक साधन प्रारम्भ करे। आहार, श्वास, वाणी और इन्द्रियोंपर संयम रखे। दिग्बन्ध आदि करके न्यास और ध्यान आदिका सम्यक् सम्पादन करनेके पश्चात् पूर्ववत् पूजन करके उक्त मन्त्रराजका एक लाख जप करे। एक लाख जप पूर्ण हो जानेपर दूसरे दिन सबेरे साधक महान् पूजन करे। उस दिन एकाग्रचित्तसे पवननन्दन हनुमानजीका सम्यक् ध्यान करके दिन-रात जपमें लगा रहे। तबतक जप करता रहे, जबतक उनका दर्शन न हो जाय। साधकको सुदृढ़ जानकर आधी रातके समय पवननन्दन हनुमानजी अत्यन्त प्रसन्न हो उसके सामने जाते हैं। कपीश्वर हनुमानजी उस साधकको इच्छानुसार वर देते हैं, वर पाकर वह श्रेष्ठ साधक अपनी मौजसे इधर-उधर विचरता रहता है। यह पुण्यमय साधन देवताओंके लिये भी दुर्लभ है; क्योंकि अत्यन्त गूढ़ रहस्यरूप है। मैंने सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे इसे यहाँ प्रकाशित किया है।

इसी प्रकार साधक अपने लिये हितकर अन्यान्य प्रयोगोंका भी अनुष्ठान करे। इन्दु (अनुस्वार)युक्त वियत् (ह्) अर्थात् 'हं' के पश्चात् ङे-विभक्त्यन्त पवननन्दन शब्द हो और अन्तमें वह्निप्रिया (स्वाहा) हो तो (**हं पवननन्दनाय स्वाहा**) यह दस अक्षरका मन्त्र होता है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। इसके ऋषि आदि भी पहले बताये अनुसार हैं। षडङ्ग-न्यास भी पूर्ववत् करने चाहिये।

ध्यान

ध्यायेद्रणे हनूमन्तं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम्॥
लक्ष्मणं च महावीरं पतितं रणभूतले।
गुरुं च क्रोधमुत्पाद्य ग्रहीतुं गुरुपर्वतम्॥
हाहाकारैः सदर्पैश्च कम्पयन्तं जगत्त्रयम्।
आब्रह्माण्डं समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम्॥

(७४। १४५—१४७)

'लंकाकी रणभूमिमें महावीर लक्ष्मणको गिरा देख हनुमानजी तुरंत उठ खड़े हुए हैं, वे हृदयमें महान् क्रोध भरकर एक विशाल एवं भारी पर्वतको उठाने तथा रावणको मार गिरानेके लिये वेगसे दौड़ पड़े हैं। उनका तेज करोड़ों सूर्योंकी प्रभाको लज्जित कर रहा है। वे ब्रह्माण्डव्यापी भयंकर एवं विराट् शरीर धारण करके दर्पपूर्ण हुंकारसे तीनों लोकोंको कम्पित कर रहे हैं। इस प्रकार युद्ध-भूमिमें हनुमानजीका चिन्तन करना चाहिये।'

ध्यानके पश्चात् विद्वान् साधक एक लाख जप और पूर्ववत् दशांश हवन करे। इस मन्त्रका भी विधिवत् पूजन पहले-जैसा ही बताया गया है। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक अपना हित-साधन कर सकता है। इस श्रेष्ठ मन्त्रका साधन भी गोपनीय रहस्य ही है। सब तन्त्रोंमें इसे अत्यन्त गोप्य बताया गया है। इसका उपदेश हर एकको नहीं करना चाहिये। ब्राह्म-मुहूर्तमें उठकर शौचादि नित्यकर्म करके पवित्र हो नदीके तटपर जाकर तीर्थके आवाहनपूर्वक स्नान करे। स्नानके समय आठ बार मूलमन्त्रकी आवृत्ति करे। तत्पश्चात् बारह बार मन्त्र पढ़कर अपने ऊपर जल छिड़के। इस प्रकार स्नान, संध्या, तर्पण आदि करके गङ्गाजीके तटपर, पर्वतपर अथवा वनमें भूमिग्रहणपूर्वक अकारादि स्वरवर्णोंका उच्चारण करके पूरक, 'क' से लेकर 'म' तकके पाँच वर्गके अक्षरोंसे कुम्भक तथा 'य' से लेकर अवशेष वर्णोंका उच्चारण करके रेचक करना चाहिये। इस प्रकार प्राणायाम करके भूत-शुद्धिसे लेकर पीठन्यासतकके सब कार्य करे। फिर पूर्वोक्त रीतिसे कपीश्वर हनुमानजीका ध्यान और पूजन करके उनके आगे बैठकर साधक प्रतिदिन आदरपूर्वक दस हजार मन्त्र-जप करे। सातवें दिन विशेषरूपसे पूजन करे। उस दिन मन्त्र-साधक एकाग्रचित्तसे दिन-रात जप करे। रातके तीन पहर बीत जानेपर चौथे पहरमें महान् भय दिखाकर कपीश्वर पवननन्दन हनुमानजी साधकके सम्मुख अवश्य पधारते हैं और उसे अभीष्ट वर देते हैं। साधक अपनी रुचिके अनुसार विद्या, धन, राज्य अथवा विजय तत्काल प्राप्त कर लेता है। यह सर्वथा सत्य है, इसमें संशयका लेश भी नहीं है। वह इहलोकमें सम्पूर्ण कामनाओंका उपभोग करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है। सद्योजात (ओ)-सहित दो वायु (य् य्—यो यो) 'हनूमन्त' का उच्चारण करे। फिर 'फल' के अन्तमें 'फ' तथा नेत्र (इ) युक्त क्रिया (ल) एवं कामिका (त)-का उच्चारण करे। तत्पश्चात् 'धग्धगिति' बोलकर 'आयुराष' पदका उच्चारण करे, तदनन्तर लोहित (प) तथा 'रुडाह'-का उच्चारण करना चाहिये। (पूरा मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ यो यो हनूमन्त फलफलित धगधगिति आयुराष परुडाह**') यह पचीस अक्षरका मन्त्र है। इसके भी ऋषि आदि पूर्वोक्त ही हैं। 'प्लीहा' रोग दूर करनेवाले वानरराज हनुमानजी इसके देवता कहे गये हैं। 'प्लीहा' रोगसे युक्त पेटपर पानका पत्ता रखे, उसके ऊपर आठ पर्त लपेटा हुआ वस्त्र रखकर उसे ढक दे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक हनुमानजीका स्मरण करके उस वस्त्रके ऊपर एक बाँसका टुकड़ा डाल दे। इसके बाद बेरके वृक्षकी लकड़ीसे बनी हुई छड़ी लेकर उसे जंगली पत्थरसे प्रकट हुए आगमें उक्त मन्त्रसे सात बार तपाये, फिर उस छड़ीसे पेटपर रखे हुए बाँसके टुकड़ेपर सात बार प्रहार करे। इससे मनुष्योंका प्लीहा-रोग अवश्य ही नष्ट हो जाता है।

ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय अमुकस्य शृङ्खलां त्रोटय त्रोटय बन्धमोक्षं कुरु कुरु स्वाहा॥

यह एक अन्य मन्त्र है। इसके ईश्वर ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, शृङ्खलामोचक पवनपुत्र श्रीमान् हनुमान देवता, हं बीज और स्वाहा शक्ति है। बन्धनसे छूटनेके लिये इसका विनियोग किया जाता है। छः दीर्घ स्वर तथा रेफयुक्त बीजमन्त्रसे षडङ्ग-न्यास करे (यथा—**ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा** इत्यादि)।

ध्यान

वामे शैलं वैरिभिदं विशुद्धं टङ्कमन्यतः॥
दधानं स्वर्णवर्णं च ध्यायेत् कुण्डलिनं हरिम्।

(७४। १६९-१७०)

'बायें हाथमें वैरियोंको विदीर्ण करनेवाला पर्वत तथा दायें हाथमें विशुद्ध टंक (पत्थर तोड़नेकी टाँकी) धारण करनेवाले, सुवर्णके समान कान्तिमान्, कुण्डल-मण्डित वानरराज हनुमानजीका ध्यान करना चाहिये।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख मन्त्रका जप तथा आम्रपल्लवसे दशांश हवन करे। विद्वानोंने इसके पूजन आदिकी विधि पूर्ववत् बतायी है। महान् कारागारमें पड़ा हुआ मनुष्य भी यदि इसका दस हजार जप करे तो उससे मुक्त हो अवश्य सुखका भागी होता है।

अब मैं बन्धनसे छुड़ानेवाले शुभ हनुमत्-मन्त्रका वर्णन करता हूँ। साधक अष्टदल कमलके भीतर षट्कोण बनाये। उसकी कर्णिकामें साध्य पुरुषका नाम लिखे। छः कोणोंमें '**ॐ आञ्जनेयाय**' का उल्लेख करे। आठों दलोंमें '**ॐ वातु वातु**' लिखे। गोरोचन और कुङ्कुमसे यह उत्तम मन्त्र लिखकर मस्तकपर धारण करके बन्धनसे छूटनेके लिये उक्त मन्त्रका दस हजार जप करे। इस मन्त्रको प्रतिदिन मिट्टीपर लिखकर मन्त्रज्ञ पुरुष अपने दाहिने हाथसे मिटाये। बारह बार लिखने और मिटानेसे मन्त्राराधक महान् कारागारसे छुटकारा पा जाता है। गगन (ह) नेत्र (इ) युक्त ज्वलन (र्) अर्थात् 'हरि' पदके पश्चात् दो बार 'मर्कट' शब्द बोलकर शेष (आ) सहित तोय (व) अर्थात् 'वा' का उच्चारण करके 'मकरे' पद बोले। फिर '**परिमुञ्चति मुञ्चति शृङ्खलिकाम्**' का उच्चारण करे। (पूरा मन्त्र इस प्रकार है—'**हरि मर्कट मर्कट वामकरे परिमुञ्चति मुञ्चति शृङ्खलिकाम्।**') यह चौबीस अक्षरोंका मन्त्र है। विद्वान् पुरुष इस मन्त्रको दायें हाथपर बायें हाथसे लिखकर मिटा दे और एक सौ आठ बार इसका जप करे। ऐसा करनेपर बंदीगृहमें पड़ा हुआ मनुष्य तीन सप्ताहमें छूट जाता है। इसमें संशय नहीं है। इसके ऋषि आदि पूर्ववत् हैं। पूजन आदि कार्य भी पूर्ववत् करे। इसका एक लाख जप और शुभ द्रव्योंसे दशांश हवन करना चाहिये। जो मन्त्रसाधक पुरुष इस प्रकार वायुपुत्र हनुमानजीकी आराधना करता है, वह उन सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं। अञ्जनीनन्दन हनुमानजीकी उपासना की जाय तो वे धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, अतुल सौभाग्य, यश, मेधा, विद्या, प्रभा, राज्य तथा विवादमें विजय प्रदान करते हैं एवं सिद्धि तथा विजय भी देते हैं।

अब मैं तत्त्वज्ञान प्रदान करनेवाले दूसरे मन्त्रका वर्णन करूँगा। साधक '**तार (ॐ) नमो हनुमते**' इतना कहकर तीन बार जाठर (**म**)-का उच्चारण करे। फिर '**दनक्षोभम्**' कहकर दो बार '**संहर**' यह क्रियापद बोले। उसके बाद '**आत्मतत्त्वम्**' बोलकर दो बार '**प्रकाशय**' का उच्चारण करे। उसके बाद वर्म (**हुं**), अस्त्र (**फट्**) और वह्निजाया (**स्वाहा**)-का उच्चारण करे। (पूरा मन्त्र यों है—'**ॐ नमो हनुमते मम मदनक्षोभं संहर संहर आत्मतत्त्वं प्रकाशय प्रकाशय हुं फट् स्वाहा**') यह साढ़े छत्तीस अक्षरोंका मन्त्र है। इसके वसिष्ठ ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और हनुमानजी देवता हैं। सात-सात, छः, चार, आठ तथा चार मन्त्राक्षरोंद्वारा षडङ्ग-न्यास करके कपीश्वर हनुमानजीका इस प्रकार ध्यान करे—

जानुस्थवामबाहुं च ज्ञानमुद्रापरं हृदि।
अध्यात्मचित्तमासीनं कदलीवनमध्यगम्॥
बालार्ककोटिप्रतिमं ध्यायेज्ज्ञानप्रदं हरिम्।

(७५। ९५-९६)

'हनुमानजीका बायाँ हाथ घुटनेपर रखा हुआ है और दाहिना ज्ञानमुद्रामें स्थित हो हृदयसे लगा है। वे अध्यात्म-तत्त्वका चिन्तन करते हुए कदलीवनमें बैठे हुए हैं। उनकी कान्ति उदयकालके कोटि-कोटि सूर्योंके समान है। ऐसे ज्ञानदाता श्रीहनुमानजीका ध्यान करना चाहिये।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप करे और घृतसहित तिलकी दशांश आहुति दे, फिर पूर्वोक्त पीठपर पूर्ववत् प्रभु श्रीहनुमानजीका पूजन करे। यह मन्त्र जप किये जानेपर निश्चय ही कामविकारका नाश करता है और साधक कपीश्वर हनुमानजीके प्रसादसे तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेता है।

अब मैं भूत भगानेवाले दूसरे उत्कृष्ट मन्त्रका वर्णन करता हूँ। '**ॐ श्रीं महाञ्जनाय पवनपुत्रावेशयावेशय ॐ श्रीहनुमते फट्।**' यह पचीस अक्षरका मन्त्र है। इस मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, हनुमान देवता, श्रीं बीज और फट् शक्ति कही गयी है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजद्वारा षडङ्ग-न्यास करना चाहिये।

ध्यान

आञ्जनेयं पाटलास्यं स्वर्णाद्रिसमविग्रहम्।
पारिजातद्रुमूलस्थं चिन्तयेत् साधकोत्तमः॥

(७५। १०२)

'जिनका मुख लाल और शरीर सुवर्णगिरिके सदृश कान्तिमान् है, जो पारिजात (कल्पवृक्ष)-के नीचे उसके मूलभागमें बैठे हुए हैं, उन अञ्जनीनन्दन हनुमानजीका श्रेष्ठ साधक चिन्तन करे।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप करे और मधु, घी एवं शक्कर मिलाये हुए तिलसे दशांश होम करे। विद्वान् पुरुष पूर्वोक्त पीठपर पूर्वोक्त रीतिसे पूजन करे। मन्त्रोपासक इस मन्त्रद्वारा यदि ग्रहग्रस्त पुरुषको झाड़ दे तो वह ग्रह चीखता-चिल्लाता हुआ उस पुरुषको छोड़कर भाग जाता है। इन मन्त्रोंको सदा गुप्त रखना चाहिये। जहाँ-तहाँ सबके सामने इन्हें प्रकाशमें नहीं लाना चाहिये। खूब जाँचे-बूझे हुए शिष्यको अथवा अपने पुत्रको ही यह इनका उपदेश करना चाहिये। (ना० पूर्व० तृ० ७४-७५)

हनुमानजीके लिये 'दीपदान-विधि'

सनत्कुमारजी कहते हैं—अब मैं हनुमानजीके लिये रहस्यसहित दीपदान-विधिका वर्णन करता हूँ, जिसको जान लेनेमात्रसे साधक सिद्ध हो जाता है। दीपपात्रका प्रमाण, तैलका मान, द्रव्य-प्रमाण तथा तन्तु (बत्ती)-का मान—इन सबका क्रमशः वर्णन किया जायगा। स्थानभेद-मन्त्र, पृथक्-पृथक् दीपदान-मन्त्र आदिका भी वर्णन होगा। पुष्पसे वासित तैलके द्वारा दिया हुआ दीपक सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला माना गया है। किसी पथिकके आनेपर उसकी सेवाके लिये तिलका तैल अर्पण किया जाय तो वह लक्ष्मी-प्राप्तिका कारण होता है। सरसोंका तेल रोग नाश करनेवाला है, ऐसा कर्मकुशल विद्वानोंका कथन है। गेहूँ, तिल, उड़द, मूँग और चावल—ये पाँच धान्य कहे गये हैं। हनुमानजीके लिये सदा इनके दीप देने चाहिये। पञ्चधान्यका आटा बहुत सुन्दर होता है। वह दीपदानमें सदा सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला कहा गया है।

संधिमें तीन प्रकारके आटेका दीप देना उचित है, लक्ष्मी-प्राप्तिके लिये कस्तूरीका दीप विहित है, कन्या-प्राप्तिके लिये इलायची, लौंग, कपूर और कस्तूरीका दीपक बताया गया है। सख्य-सम्पादन करनेके लिये भी इन्हीं वस्तुओंका दीप देना चाहिये। इन सब वस्तुओंके न मिलनेपर पञ्चधान्य श्रेष्ठ माना गया है। आठ मुट्ठीका एक किंचित् होता है, आठ किंचित्का एक पुष्कल होता है, चार पुष्कलका एक आढक बताया गया है, चार आढकका एक द्रोण और चार द्रोणकी एक खारी होती है। चार खारीको प्रस्थ कहते हैं अथवा यहाँ दूसरे प्रकारसे मान बताया जाता है। दो पलका एक प्रसृत होता है, दो प्रसृतका एक कुडव माना गया है, चार कुडवका एक प्रस्थ और चार प्रस्थका एक आढक होता है। चार आढकका द्रोण और चार द्रोणकी खारी होती है। इस क्रमसे षट्कर्मोपयोगी पात्रमें ये मान समझने चाहिये। पाँच, सात तथा नौ—ये क्रमशः दीपकके प्रमाण हैं, सुगन्धित तेलसे जलनेवाले दीपकका कोई मान नहीं है। उसका मान अपनी रुचिके अनुसार ही माना गया है। तैलोंके नित्यपात्रमें केवल बत्तीका विशेष नियम होता है। सोमवारको धान्य लेकर उसे जलमें डुबाकर रखे। फिर प्रमाणके अनुसार कुमारी कन्याके हाथसे उसको पिसाना चाहिये। पीसे हुए धान्यको शुद्ध पात्रमें रखकर नदीके जलसे उसकी पिण्डी बनानी चाहिये। उसीसे शुद्ध एवं एकाग्रचित्त होकर दीपपात्र बनाये। जिस समय दीपक जलाया जाता हो, हनुमत्कवचका पाठ करे। मंगलवारको शुद्ध भूमिपर रखकर दीपदान करे। कूट बीज ग्यारह बताये गये हैं, अतः उतने ही तन्तु ग्राह्य हैं। पात्रके लिये कोई नियम नहीं है। मार्गमें जो दीपक जलाये जाते हैं, उनकी बत्तीमें इक्कीस तन्तु होने चाहिये। हनुमानजीके दीपदानमें लाल सूत ग्राह्य बताया गया है। कूटकी जितनी संख्या हो उतना ही पल तेल दीपकमें डालना चाहिये। गुरुकार्यमें ग्यारह पलसे लाभ होता है। नित्यकर्ममें पाँच पल तेल आवश्यक बताया गया है। अथवा अपने मनकी जैसी रुचि हो उतना ही तेलका मान रखे। नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके अवसरपर हनुमानजीकी प्रतिमाके समीप अथवा शिव-मन्दिरमें दीपदान कराना चाहिये।

हनुमानजीके दीपदानमें जो विशेष बात है, उसे मैं यहाँ बता रहा हूँ। देव-प्रतिमाके आगे, प्रमोदके अवसरपर, ग्रहोंके निमित्त, भूतोंके निमित्त, गृहोंमें और चौराहोंपर—इन छः स्थलोंमें दीप दिलाना चाहिये। स्फटिकमय शिवलिङ्गके समीप, शालग्राम-शिलाके निकट हनुमानजीके लिये किया हुआ दीपदान नाना प्रकारके भोग और लक्ष्मीकी प्राप्तिका हेतु कहा गया है। विघ्न तथा महान् संकटोंका नाश करनेके लिये गणेशजीके निकट हनुमानजीके उद्देश्यसे दीपदान करे। भयंकर विष तथा व्याधिका भय उपस्थित होनेपर हनुमद्विग्रहके समीप दीपदानका विधान है। व्याधिनाशके लिये तथा दुष्ट ग्रहोंकी दृष्टिसे रक्षाके लिये चौराहेपर दीप देना चाहिये। बन्धनसे छूटनेके लिये राजद्वारपर अथवा कारागारके समीप दीप देना उचित है। सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धिके लिये पीपल और वटके मूलभागमें दीप देना चाहिये। भय-निवारण और विवाद-शान्तिके लिये, गृहसंकट और युद्धसंकटकी निवृत्तिके लिये और विष, व्याधि तथा ज्वरको उतारनेके लिये, भूतग्रहका निवारण करने, कृत्यासे छुटकारा पाने तथा कटे हुए घावको जोड़नेके लिये, दुर्गम एवं भारी वनमें व्याघ्र, हाथी तथा सम्पूर्ण जीवोंके आक्रमणसे बचनेके लिये, सदाके लिये बन्धनसे छूटनेके लिये, पथिकके आगमनमें, आने-जानेके मार्गमें तथा राजद्वारपर हनुमानजीके लिये

दीपदान आवश्यक बताया गया है। ग्यारह, इक्कीस और पिण्ड—तीन प्रकारका मण्डलमान होता है। पाँच, सात अथवा नौ—इन्हें लघुमान कहा गया है। दीप-दानके समय दूध, दही, मक्खन अथवा गोबरसे हनुमानजीकी प्रतिमा बनानेका विधान किया गया है। सिंहके समान पराक्रमी वीरवर हनुमानजीको दक्षिणाभिमुख करके उनके पैरको रीछपर रखा हुआ दिखाये। उनका मस्तक किरीटसे सुशोभित होना चाहिये। सुन्दर वस्त्र, पीठ अथवा दीवारपर हनुमानजीकी प्रतिमा अङ्कित करनी चाहिये। कूटादिमें तथा नित्य दीपमें द्वादशाक्षरमन्त्रका प्रयोग करना चाहिये।

गोबरसे लिपी हुई भूमिपर एकाग्रचित्त हो षट्कोण अङ्कित करे। उसके बाह्यभागमें अष्टदल कमल बनाये तथा उसके भी बाह्यभागमें भूपुर-रेखा खींचे। उस कमलमें दीपक रखे। शैव अथवा वैष्णव पीठपर अञ्जनीनन्दन हनुमानजीकी पूजा करे। छः कोणोंके अन्तरालमें '**ह्रौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्रुं स्त्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं**'—इन छः कूटोंका उल्लेख करे। छहों कोणोंमें बीजसहित छः अङ्गोंको लिखे। मध्यमें सौम्यका उल्लेख करे और उसीमें पवननन्दन हनुमानजीकी पूजा करके छः कोणोंमें छः अङ्गों तथा छः नामोंकी पहले बताये अनुसार पूजा करे। कमलके अष्टदलोंमें क्रमशः इन वानरोंकी पूजा करनी चाहिये—**सुग्रीवाय नमः, अङ्गदाय नमः, सुषेणाय नमः, नलाय नमः, नीलाय नमः, जाम्बवते नमः, प्रहस्ताय नमः, सुवेषाय नमः**। तत्पश्चात् षडङ्गमें देवताओंका पूजन करे—**अञ्जनापुत्राय नमः, रुद्रमूर्तये नमः, वायुसुताय नमः, जानकीजीवनाय नमः, रामदूताय नमः, ब्रह्मास्त्रनिवारणाय नमः**। फिर पञ्चोपचार (गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य)-से इन सबका पूजन करके कुश और जल हाथमें लेकर देश-कालके उच्चारणपूर्वक दीपदानका संकल्प करे। उसके बाद दीप-मन्त्र बोले। श्रेष्ठ साधक उत्तराभिमुख हो उस मन्त्रको कूट-संख्याके बराबर (छः बार) जपकर हाथमें लिये हुए जलको भूमिपर गिरा दे। तदनन्तर दोनों हाथ जोड़कर यथाशक्ति मन्त्र-जप करे। फिर इस प्रकार कहे—'हनुमानजी! उत्तराभिमुख अर्पित किये हुए इस श्रेष्ठ दीपकसे प्रसन्न होकर आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे सारे मनोरथ पूर्ण हो जायँ।'

इस प्रकार तेरह द्रव्य उपयुक्त होते हैं—गोबर, मिट्टी, मषी, आलता, सिन्दूर, लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, मधु, कस्तूरी, दही, दूध, मक्खन और घी। गोबर दो प्रकारके बताये गये हैं—गायका और भैंसका। खोये हुए द्रव्यकी पुनः प्राप्तिके लिये दीपदान करना हो तो उसमें भैंसके गोबरका उपयोग आवश्यक माना गया है। मुने! दूर देशमें गये हुए पथिकके आगमन, महादुर्गकी रक्षा, बालक आदिकी रक्षा, चोर आदिके भयका नाश आदि कार्योंमें गायका गोबर उत्तम कहा गया है। वह भी भूमिपर पड़ा हो तो नहीं लेना चाहिये। जब गाय गोबर कर रही हो तो किसी पात्रमें ऊपर-ही-ऊपर उसे रोप लेना चाहिये।

मिट्टी चार प्रकारकी कही गयी है—सफेद, पीली, लाल और काली। उनमें गोपीचन्दन, हरिताल, गेरू आदि ग्राह्य हैं, अन्य सब द्रव्य प्रसिद्ध एवं सबके लिये सुपरिचित हैं। विद्वान् पुरुष गोपीचन्दनसे चौकोर मण्डल बनाकर उसके मध्यभागमें भैंसके गोबरसे हनुमानजीकी मूर्ति बनाये। मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त हो बीज और क्रोध (हूं)-से उनकी पूँछ अङ्कित करे। फिर ऐसी मूर्तिको नहलाये और गुड़से तिलक करे तथा कमलके समान रंगवाला धूप, जो शालवृक्षकी गोंदसे बना हो, निवेदन करे। पाँच बत्तियोंके साथ तेलका दीपक जलाकर अर्पण करे। इसके बाद (हाथ धोकर) श्रेष्ठ साधक दही-भातका नैवेद्य निवेदन करे। उस समय वह तीन बार शेष (आ) सहित विष (म्)-का उच्चारण करे।* ऐसा करनेपर खोयी हुई भैंसों, गौओं तथा दास-दासियोंकी भी प्राप्ति हो जाती है। चोर एवं सर्प आदि दुष्ट जीवोंका भय प्राप्त होनेपर 'हरताल' से चार दरवाजेका सुन्दर गृह बनाये। पूर्वके द्वारपर हाथीकी मूर्ति बिठाये और दक्षिण द्वारपर भैंसेकी, पश्चिम द्वारपर सर्प और उत्तर द्वारपर व्याघ्र स्थापित करे। इसी प्रकार क्रमसे पूर्वादि द्वारोंपर खड्ग, छुरी, दण्ड और मुद्गर अङ्कित करके मध्य भागमें भैंसके गोबरसे मूर्ति बनाये। उसके हाथमें डमरू धारण कराये और यत्नपूर्वक यह चेष्टा करे कि मूर्तिसे ऐसा भाव प्रकट हो मानो वह चकित नेत्रोंसे देख रही है। उसे दूधसे नहलाकर उसके ऊपर लाल चन्दन लगाये। चमेलीके फूलोंसे उसकी पूजा करके शुद्ध धूपकी गन्ध दे। घीका दीपक देकर खीरका नैवेद्य अर्पण करे। गगन (ह), दीपिका (उ) और इन्दु (अनुस्वार) अर्थात्

* 'मा मा मा' इस प्रकार उच्चारण करना चाहिये।

'हुं' और शस्त्र (फट्)—यह आराध्यदेवताके आगे जपे। इस प्रकार सात दिन करके मनुष्य भारी भयसे मुक्त हो जाता है। उक्त दोनों प्रयोगोंका प्रारम्भ मंगलवारको आदरपूर्वक करना चाहिये। शत्रु-सेनासे भय प्राप्त होनेपर गेरूसे मण्डल बनाकर उसके भीतर थोड़ा झुका हुआ ताड़का वृक्ष अङ्कित करे। उसपरसे लटकती हुई हनुमानजीकी प्रतिमा गोबरसे बनाये। उनके बायें हाथमें ताड़का अग्रभाग और दाहिनेमें ज्ञान-मुद्रा हो। ताड़की जड़से एक हाथ दूर अपनी दिशामें एक चौकोर मण्डल बनाये। उसके मध्यभागमें मूर्ति अङ्कित करे। उसका मुख दक्षिणकी ओर हो, वह हनुमन्मूर्ति बहुत सुन्दर बनी हो, हृदयपर अञ्जलि बाँधे बैठी हो। उसे जलसे स्नान कराकर यथासम्भव गन्ध आदि उपचार अर्पण करे। फिर घृतमिश्रित खिचड़ीका नैवेद्य निवेदन करे और उसके आगे 'किलि-किलि' का जप करे। प्रतिदिन ऐसा करनेपर पथिकोंका समागम अवश्य होता है।

जो प्रतिदिन विधिपूर्वक हनुमानजीको दीप देता है, उसके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी असाध्य नहीं है। जिसके हृदयमें दुष्टता भरी हो, जिसकी बुद्धि दुष्टताका ही चिन्तन करती हो, जो शिष्य होकर भी विनयशून्य और चुगलखोर हो, ऐसे मनुष्यको कभी इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। कृतघ्नको कदापि इस रहस्यका उपदेश न दे। जिसके शील-स्वभावकी भलीभाँति परीक्षा कर ली गयी हो, उस साधु पुरुषको ही इसका उपदेश करना चाहिये। (नारदपुराणसे)

हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठान-पद्धति

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड)

सन् १९४९ ई० में मैं श्रीबदरीनाथ धाम (उत्तराखण्ड) गया था। बदरीनाथ धामसे १९ या २० मील पूर्व आद्य शंकराचार्यद्वारा संस्थापित 'ज्योतिर्मठ' (ज्योतिष्पीठ) है। मैंने एक दिन उस ज्योतिर्मठमें विश्राम किया। संयोगवश उस समय ज्योतिर्मठके तत्कालीन शंकराचार्य श्री १००८ स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती महाराज वहाँ उपस्थित थे, जो कुछ कालके लिये विश्रामार्थ आये हुए थे। रात्रिमें मैं उनके दर्शनार्थ जब सेवामें उपस्थित हुआ तो वे मुझे देखकर अत्यन्त संतुष्ट हुए। कुशल-मङ्गलके पश्चात् उन्होंने मुझसे कहा—"तुम प्रतिष्ठित वेदज्ञ-परिवारके वेदज्ञ विद्वान् हो, अतः हम तुम्हें आशीर्वादरूपमें अत्यन्त प्राचीन हस्तलिखित 'हनुमन्मन्त्र-चमत्कारानुष्ठान-पद्धति' नामकी यह लघुपुस्तिका दे रहे हैं, तुम इसे स्वीकार करो।" मैंने उनसे पुस्तिका प्राप्तकर अपना परम सौभाग्य समझा। तत्पश्चात् श्रीशंकराचार्यजीने बतलाया कि 'हमने जो पुस्तिका तुम्हें दी है, यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सिद्धिप्रदा है। इसमें २० मन्त्र हैं। प्रत्येक मन्त्रका ग्यारह-ग्यारह हजार बार रुद्राक्षकी मालापर हनुमानजीके किसी भी प्राचीन मन्दिरमें ब्रह्मचर्यपूर्वक जप करनेसे सभी मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। मन्त्रोंको सिद्ध कर लेनेके पश्चात् उनका प्रयोग करनेपर कठिन-से-कठिन कार्य सुसाध्य हो जाते हैं।'

'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठान-पद्धति' के मन्त्रोंकी अनुष्ठान-विधि इस प्रकार है—शुभ मुहूर्तमें उक्त पद्धतिके प्रत्येक मन्त्रको अलग-अलग ग्यारह-ग्यारह हजार बार जप करके सिद्ध कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् आवश्यकता पड़नेपर मनुष्यको स्वयं अपने अथवा दूसरेके कार्यके लिये 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठान-पद्धति'-के प्रत्येक मन्त्रका ग्यारह-ग्यारह हजार जप करके पीछे प्रत्येक मन्त्रका दशांश ग्यारह सौ (११००) हवन करना चाहिये।

श्रीशंकराचार्यजीद्वारा प्रदत्त 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठान-पद्धति' का मैंने स्वयं कई बार अनुष्ठान करके चमत्कारपूर्ण लाभ उठाया है और अपने तीन-चार विपद्ग्रस्त परिचितोंको भी उक्त पद्धतिका अनुष्ठान बतलाया है, जिसके द्वारा उन्हें भी अद्भुत लाभ हुआ है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो मनुष्य श्रद्धा-भक्ति और विश्वासके साथ विपत्ति-निवारणार्थ 'हनुमन्मन्त्र-चमत्कारानुष्ठान-पद्धति' के मन्त्रोंका सविधि अनुष्ठान करेगा, वह अवश्य सफलीभूत होगा।*

* अनुष्ठानकर्ताको चाहिये कि वह जिस कार्यके लिये जप और हवन करे, उस कार्यका नामोच्चारण संकल्पमें अवश्य करे।

'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठान-पद्धति' के ये मन्त्र इस प्रकार हैं—

१-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय वायुसुताय अञ्जनीगर्भसम्भूताय अखण्डब्रह्मचर्यव्रतपालनतत्पराय धवलीकृतजगत्त्रितयाय ज्वलदग्निसूर्यकोटिसमप्रभाय प्रकटपराक्रमाय आक्रान्तदिङ्मण्डलाय यशोवितानाय यशोऽलंकृताय शोभिताननाय महासामर्थ्याय महातेजःपुञ्जविराजमानाय श्रीरामभक्तितत्पराय श्रीरामलक्ष्मणानन्दकारणाय कपिसैन्यप्राकाराय सुग्रीवसख्यकारणाय सुग्रीवसाहाय्यकारणाय ब्रह्मास्त्रब्रह्मशक्तिग्रसनाय लक्ष्मणशक्तिभेदनिवारणाय शल्यविशल्यौषधिसमानयनाय बालोदितभानुमण्डलग्रसनाय अक्षकुमारच्छेदनाय वनरक्षाकरसमूहविभञ्जनाय द्रोणपर्वतोत्पाटनाय स्वामिवचनसम्पादितार्जुनसंयुगसंग्रामाय गम्भीरशब्दोदयाय दक्षिणाशामार्तण्डाय मेरुपर्वतपीठिकार्चनाय दावानलकालाग्नि रुद्राय समुद्रलङ्घनाय सीताऽऽश्वासनाय सीतारक्षकाय राक्षसीसंघविदारणाय अशोकवनविदारणाय लङ्कापुरीदहनाय दशग्रीवशिरःकृन्तकाय कुम्भकर्णादिवधकारणाय वालिनिबर्हणकारणाय मेघनादहोमविध्वंसनाय इन्द्रजिद्वधकारणाय सर्वशास्त्रपारंगताय सर्वग्रहविनाशकाय सर्वज्वरहराय सर्वभयनिवारणाय सर्वकष्टनिवारणाय सर्वापत्तिनिवारणाय सर्वदुष्टादिनिबर्हणाय सर्वशत्रुच्छेदनाय भूतप्रेतपिशाचडाकिनीशाकिनीध्वंसकाय सर्वकार्यसाधकाय प्राणिमात्ररक्षकाय रामदूताय स्वाहा।

२-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय विश्वरूपाय अमितविक्रमाय प्रकटपराक्रमाय महाबलाय सूर्यकोटिसमप्रभाय रामदूताय स्वाहा।

३-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय रामसेवकाय रामभक्तितत्पराय रामहृदयाय लक्ष्मणशक्तिभेदनिवारणाय लक्ष्मणरक्षकाय दुष्टनिबर्हणाय रामदूताय स्वाहा।

४-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय सर्वशत्रुसंहरणाय सर्वरोगहराय सर्ववशीकरणाय रामदूताय स्वाहा।

५-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकतापत्रयनिवारणाय रामदूताय स्वाहा।

६-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय देवदानवर्षिमुनिवरदाय रामदूताय स्वाहा।

७-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय भक्तजनमनःकल्पनाकल्पद्रुमाय दुष्टमनोरथस्तम्भनाय प्रभञ्जनप्राणप्रियाय महाबलपराक्रमाय महाविपत्तिनिवारणाय पुत्रपौत्रधनधान्यादिविविधसम्पत्प्रदाय रामदूताय स्वाहा।

८-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय वज्रदेहाय वज्रनखाय वज्रमुखाय वज्ररोम्णे वज्रनेत्राय वज्रदन्ताय वज्रकराय वज्रभक्ताय रामदूताय स्वाहा।

९-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय परयन्त्रमन्त्रतन्त्रत्राटकनाशकाय सर्वज्वरच्छेदकाय सर्वव्याधिनिकृन्तकाय सर्वभयप्रशमनाय सर्वदुष्टमुखस्तम्भनाय सर्वकार्यसिद्धिप्रदाय रामदूताय स्वाहा।

१०-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय देवदानवयक्षराक्षसभूतप्रेतपिशाचडाकिनीशाकिनीदुष्टग्रहबन्धनाय रामदूताय स्वाहा।

११-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पञ्चवदनाय पूर्वमुखे सकलशत्रुसंहारकाय रामदूताय स्वाहा।

१२-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पञ्चवदनाय दक्षिणमुखे करालवदनाय नारसिंहाय सकलभूतप्रेतदमनाय रामदूताय स्वाहा।

१३-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पञ्चवदनाय पश्चिममुखे गरुडाय सकलविघ्ननिवारणाय रामदूताय स्वाहा।

१४-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पञ्चवदनाय उत्तरमुखे आदिवराहाय सकलसम्पत्कराय रामदूताय स्वाहा।

१५-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय ऊर्ध्वमुखे हयग्रीवाय सकलजनवशीकरणाय रामदूताय स्वाहा।

१६-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय सर्वग्रहान् भूतभविष्यद्वर्तमानान् समीपस्थान् सर्वकालदुष्टबुद्धीनुच्चाटयोच्चाटय परबलानि क्षोभय क्षोभय मम सर्वकार्याणि साधय साधय स्वाहा।

१७-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय परकृतयन्त्रमन्त्रपराहंकारभूतप्रेतपिशाचपरदृष्टिसर्वविघ्नतर्जनचेटकविद्यासर्वग्रहभयं निवारय निवारय स्वाहा।

१८-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय डाकिनीशाकिनीब्रह्मराक्षसकुलपिशाचोरुभयं निवारय निवारय स्वाहा।

१९-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय भूतज्वरप्रेतज्वरचातुर्थिकज्वरविष्णुज्वरमहेशज्वरं निवारय निवारय स्वाहा।

२०-ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय अक्षिशूलपक्षशूलशिरोऽभ्यन्तरशूलपित्तशूलब्रह्मराक्षसशूलपिशाचकुलच्छेदनं निवारय निवारय स्वाहा।

(२)

कुछ अन्य अनुभूत मन्त्र

श्रीइष्टदेवकी कृपासे कुछ अनुभूत मन्त्र नीचे दिये जा रहे हैं। समुत्सुक लोग इनसे लाभ उठायें—

(१) प्रेत-बाधा-निवारणके लिये—

ॐ दक्षिणमुखाय पञ्चमुखहनुमते करालवदनाय नारसिंहाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सकलभूतप्रेतदमनाय स्वाहा।

(पञ्चमुखहनुमत्कवचम् २८)

यह मन्त्र कम-से-कम दस हजार जप करनेपर सिद्ध हो जाता है। मन्त्र-जापके बाद अष्टगन्धसे हवन करना चाहिये।

(२) विष उतारनेके लिये—

ॐ पश्चिममुखाय गरुडाननाय पञ्चमुखहनुमते मं मं मं मं मं सकलविषहराय स्वाहा। (पञ्चमुखहनुमत्कवचम् २९)

यह मन्त्र दीपावलीके दिन अर्धरात्रिमें घीका दीपक जलाकर हनुमानजीको साक्षी करके दस हजार जप लेनेसे सिद्ध हो जाता है। पुनः बिच्छू, बर्रे आदि विषधारी जीवोंद्वारा त्रस्त होनेपर इस मन्त्रको उच्च स्वरसे उच्चारण करते हुए उस अङ्गका स्पर्श करे। कई बार ऐसा करनेपर विष उतर जाता है।

(३) शत्रु-संकट-निवारणके लिये—

ॐ पूर्वकपिमुखाय पञ्चमुखहनुमते टं टं टं टं टं सकलशत्रुसंहरणाय स्वाहा। (पञ्चमुखहनुमत्कवचम् २७)

इस मन्त्रके सिद्ध कर लेनेपर शत्रु-भय दूर हो जाता है। यह केवल १५००० मन्त्र-जपसे सिद्ध हो जाता है। आवश्यकता है—विश्वास और श्रद्धाकी।

(४) महामारी, अमङ्गल, ग्रह-दोष एवं भूत-प्रेतादि-नाशके लिये—

ॐ ऐं श्रीं ह्रां ह्रीं ह्रं ह्रौं ह्रः ॐ नमो भगवते महाबलपराक्रमाय भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनी-यक्षिणीपूतनामारीमहामारीराक्षसभैरववेतालग्रहराक्षसादिकान् क्षणेन हन हन भञ्जय भञ्जय मारय मारय शिक्षय शिक्षय महामाहेश्वररुद्रावतार ॐ ह्रं फट् स्वाहा। ॐ नमो भगवते हनुमदाख्याय रुद्राय सर्वदुष्टजनमुखस्तम्भनं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रं ठं ठं ठं फट् स्वाहा।

यह मन्त्र मंगलवारको दिनभर व्रत रखनेके बाद अर्धरात्रिमें हनुमानजीके मन्दिरमें सात हजार जप करनेसे सिद्ध हो जाता है। सिद्धिके बाद हनुमानजीके समक्ष दशांश हवन करना चाहिये।

विशेष—हनुमानजीके उपासकोंको चाहिये कि उपर्युक्त मन्त्रोंमेंसे जिस मन्त्रकी सिद्धि करनी हो, उसे तत्क्षण भोजपत्रपर लाल चन्दन या स्याहीसे लिख लें, पुनः उसे अभिमन्त्रित करके ताबीजमें भरकर धारण कर लें। यदि यह काम विश्वास और श्रद्धासे किया गया तो अवश्य ही रामवाण सिद्ध होगा।

१. विद्यार्थियोंके लिये हनुमानजीकी सिद्धि विशेष सहज है; क्योंकि उनपर मारुति शीघ्र कृपा करते हैं। उनसे पवित्रता तथा श्रद्धाकी अपेक्षा की जाती है।

२. शनिवारके दिन हनुमानजीको तेल चढ़ानेसे शनैश्चरका प्रकोप शान्त हो जाता है। शनिकी कुदृष्टिसे ग्रस्त महानुभाव अवश्य इसका सेवन करें।

उपर्युक्त सभी सिद्धियाँ स्वतः अनुभवकी हैं। इनसे मुझे जो शान्ति प्राप्त हुई है, वह असीम है।

—पं० श्रीसभापतिजी मिश्र, साहित्यरत्न

(३)

वाराणसीके श्रीरामनारायणसिंह महात्माने मुझे श्रीहनुमानके कुछ जप-पाठ तथा सर्वसिद्धि-कवच एवं मन्त्र बतलाये थे, वे 'कल्याण'के पाठकोंकी सेवामें सविधि दिये जा रहे हैं। विश्वास है, पाठक इनसे लाभ उठायेंगे।

न्यास

ॐ ह्रां अञ्जनीसुताय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं रुद्रमूर्तये तर्जनीभ्यां नमः। ॐ ह्रूं रामदूताय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ ह्रैं वायुपुत्राय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रौं अग्निगर्भाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रः ब्रह्मास्त्रनिवारणाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। ॐ अञ्जनीसुताय हृदयाय नमः। ॐ रुद्रमूर्तये शिरसे स्वाहा। ॐ रामदूताय शिखायै वषट्। ॐ वायुपुत्राय कवचाय हुम्। ॐ अग्निगर्भाय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ब्रह्मास्त्रनिवारणाय अस्त्राय फट्।

ध्यान

ध्यायेद् बालदिवाकरद्युतिनिभं देवारिदर्पापहं
देवेन्द्रप्रमुखं प्रशस्तयशसं देदीप्यमानं रुचा।
सुग्रीवादिसमस्तवानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियं
संरक्तारुणलोचनं पवनजं पीताम्बरालंकृतम्॥

(आनन्दरामा० मनोहर० १३)

'प्रातःकालीन सूर्यके सदृश जिनकी शरीर-कान्ति है, जो राक्षसोंका अभिमान दूर करनेवाले, देवताओंमें एक प्रमुख देवता, लोक-विख्यात यशस्वी और अपनी असाधारण शोभासे देदीप्यमान हो रहे हैं, सुग्रीव आदि सभी वानर जिनके साथ हैं, जो सुव्यक्त तत्त्वके प्रेमी

हैं, जिनकी आँखें अतिशय लाल-लाल हैं और जो पीले वस्त्रोंसे अलंकृत हैं, उन पवनपुत्र श्रीहनुमानजीका ध्यान करना चाहिये।'

नीचे जो मन्त्र दिये जा रहे हैं, सबका या तो एक बार पाठ कर ले या उनमेंसे एक मन्त्र चुनकर अपने कार्यके अनुसार पाठ करके शेष मन्त्रोंको पढ़कर हवन करे।

कार्यसिद्धिके लिये—

ॐ नमो हनुमते सर्वग्रहान् भूतभविष्यद्वर्तमानान् दूरस्थ-समीपस्थान् छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि सर्वकालदुष्टबुद्धीनुच्चाटयोच्चाटय परबलान् क्षोभय क्षोभय मम सर्वकार्याणि साधय साधय। ॐ नमो हनुमते ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं फट्। देहि ॐ शिव सिद्धिं; ॐ ह्रां ॐ ह्रीं ॐ ह्रूं ॐ ह्रैं ॐ ह्रौं ॐ ह्रः स्वाहा।

सर्वविघ्ननिवारणके लिये—

ॐ नमो हनुमते परकृतयन्त्रमन्त्रपराहंकारभूतप्रेतपिशाच-परदृष्टिसर्वविघ्नटार्जनचेकुविद्यासर्वोग्रभयान् निवारय निवारय वध वध लुण्ठ लुण्ठ पच पच विलुञ्च विलुञ्च किलि किलि किलि सर्वकुयन्त्राणि दुष्टवाचं ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं फट् स्वाहा।

सर्वदुष्टग्रहनिवारणके लिये—

ॐ नमो हनुमते पाहि पाहि एहि एहि सर्वग्रहभूतानां शाकिनीडाकिनीनां विषमदुष्टानां सर्वेषामाकर्षयाकर्षय मर्दय मर्दय छेदय छेदय मृत्युं मारय मारय भयं शोषय शोषय प्रज्वल प्रज्वल भूतमण्डलपिशाचमण्डलनिरसनाय भूतज्वर-प्रेतज्वरचातुर्थिकज्वरविष्णुज्वरमाहेश्वरज्वरान् छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि अक्षिशूलपक्षशूलशिरोऽभ्यन्तरशूलगुल्मशूल-पित्तवातशूलब्रह्मराक्षसकुलपिशाचकुलप्रबलनागकुलच्छेदनं-विषं निर्विषं कुरु कुरु झटिति झटिति ॐ ह्रां सर्वदुष्ट-ग्रहान्निवारणाय स्वाहा।

ॐ नमो हनुमते पवनपुत्राय वैश्वानरमुखाय पापदृष्टि-चोरदृष्टिपाषण्डदृष्टि हनुमदाज्ञा स्फुर ॐ स्वाहा॥

इस प्रकार मन्त्र-जप पूर्ण होनेपर दशांश जप या हवन करके ब्राह्मणोंको भोजन भी कराना चाहिये।

—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा

~~~ o ~~~

श्रीहनुमानका अतुल प्रभाव

सुमिरन करे तें तेरे विगत कलेश होत,
'हनू' के कहत भूत-व्याधियाँ नसावहीं।
पूजन करे तें तेरे मनःकाम सिद्ध होत,
भवसागर पार बिन बोहितके जावहीं॥
जन तेरो होय जोइ अटल विश्वास करे,
बिनहि प्रयास नर सुरपुर पावहीं।
अतुल प्रभाव जग तेरो कह 'बेनीराम'
कालकी कराल गति हाँकते नसावहीं॥

—पं० श्रीबेनीप्रसादजी तिवारी

~~~ o ~~~

आयुर्वेद-शास्त्र और श्रीहनुमान-सम्बन्धी कुछ मन्त्र

(लेखक—पं० श्रीकौशलकिशोरजी पाठक, एम्०ए०, आयुर्वेदरत्न)

आयुर्वेद-शास्त्रकी गणना उपवेदोंमें है। महर्षि शौनकरचित 'चरणव्यूह'-ग्रन्थमें इसे ऋग्वेदका तथा 'सुश्रुत' (पृ० ४)-में अथर्ववेदका उपवेद बतलाया गया है। इसमें आयुके संरक्षण एवं उसकी वृद्धिके विविध उपाय वर्णित हैं। श्रीरामदूत श्रीहनुमानजी शास्त्रोंमें अमर माने गये हैं। शास्त्रोंमें आठ चिरंजीवियोंका वर्णन मिलता है, जिनमें श्रीहनुमानजीका एक प्रमुख स्थान है। हनुमानजीके अमर होनेमें एक कारण श्रीसीताजीके द्वारा उन्हें दिया हुआ वरदान भी है। मानसमें ऐसा उल्लेख है—*'अजर अमर गुननिधि सुत होहू।'* दूसरा कारण उनका ब्रह्मचर्यव्रत-पालन है, जिसके सम्बन्धमें शास्त्रोंका मत है—**'मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात्'**।

इसके अतिरिक्त ज्ञानियोंमें अग्रगण्य श्रीहनुमानजी आयुर्वेदके भी उत्तम ज्ञाता हैं, अत: उसका भी उपयोग कर उन्होंने अपनेको चिरंजीवी बना लिया है। रामचरितमानसमें आया है कि जब लक्ष्मणजीको ब्रह्मशक्ति लग जाती है, तब भगवान् श्रीराम हनुमानजीको ही 'सुषेण' वैद्यको बुलानेके लिये भेजते हैं; क्योंकि वे इस बातसे भलीभाँति परिचित हैं कि हनुमानजी महान् ज्ञानी और आयुर्वेदके ज्ञाता हैं, अत: ये ही इस कार्यके योग्य हैं। तत्पश्चात् वैद्यराज सुषेण एवं भगवान् श्रीराम 'संजीवनी-बूटी' के आनयनार्थ भी हनुमानजीको ही भेजते हैं। इन दो उदाहरणोंसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि हनुमानजीका ओषधि-विज्ञानसे विशेष सम्बन्ध है।

पवनकुमार हनुमानजी ग्यारहवें रुद्रके अवतार हैं तथा पवनपुत्र होनेके कारण उनका वायुसे भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। एकादश रुद्रोंके सम्बन्धमें शास्त्रोंका एक मत यह भी है कि आत्मा सहित दसों वायु—(१) प्राण, (२) अपान, (३) व्यान, (४) समान, (५) उदान, (६) देवदत्त, (७) कूर्म, (८) कृकल, (९) धनंजय और (१०) नाग—भी ग्यारह रुद्र हैं।

इन वायुओंपर जो विजय प्राप्त कर लेता है, वह योगी प्राणवायुको ब्रह्माण्डमें स्थिर कर लेनेमें समर्थ हो जाता है। तभी उसे अष्टसिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं। हनुमानजी अष्टसिद्धियोंके दाता हैं। उनके द्वारा समय-समयपर प्रदर्शित किये गये अष्टसिद्धियोंके उदाहरण भी गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने रामचरितमानसमें विभिन्न स्थलोंपर दिये हैं।

आयुर्वेदके आचार्य—चरक, वाग्भट, सुश्रुत आदि महर्षियोंने इस शास्त्रको मुख्यत: तीन तत्त्वों या दोषोंपर अवलम्बित बताया है—(१) वात, (२) पित्त और (३) कफ। ये तीनों दोष आयुर्वेदके मुख्य स्तम्भ हैं। इनकी विषमता ही रोगोत्पत्तिका कारण है। इन तीनोंमें भी 'वात' ही प्रधान है। संसारके सारे कार्य वायुद्वारा ही होते हैं। जीवधारियोंके शरीरका सम्पूर्ण पोषण-क्रम वायुद्वारा ही होता है। मनुष्यके शरीरमें उचितरूपमें वात-तत्त्वके होने अर्थात् वायुकी स्थिति आयुर्वेदानुसार पर्याप्त मात्रामें होनेपर ही उसे स्वस्थ कहा जा सकेगा। शरीरमें दसों वायुओंके कार्य भिन्न-भिन्न हैं। श्रीहनुमानजी पवन-पुत्र हैं, अत: वे वायुस्वरूप और प्रधान वायुके अधिष्ठाता हैं।

वातके अधिष्ठाता होनेके कारण हनुमानजीकी आराधनासे सम्पूर्ण वात-व्याधियोंका नाश होता है। श्रीरामभक्त श्रीहनुमानजी सभी रोगोंको नष्ट करनेवाले हैं; क्योंकि प्रत्येक रोगका दोष वायुके माध्यमसे ही उत्पन्न होता है। यदि वात शुद्धरूपमें स्थित है तो मनुष्य प्राय: नीरोग रह सकेगा। आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे सम्पूर्ण रोगोंके मूल कारण प्राणीके पूर्व या इसी जन्मके पाप ही होते हैं, अत: आयुर्वेदके ज्ञाता महर्षियोंने अपनी संहिताओंमें स्पष्ट किया है कि देवार्चनपूर्वक ओषधि-सेवनसे ही मानसिक और शारीरिक व्याधियाँ दूर होती हैं—

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधप्राशैर्जपहोमसुरार्चनै: ॥

जप, हवन, देवार्चन—ये भी रोगोंकी ओषधियाँ हैं, ऐसी भी आयुर्वेदकी मान्यता है।

जो असाध्य रोगी हों और जीवनसे हताश हो गये हों, उन्हें हनुमानजीकी आराधना अवश्य करनी चाहिये। वात-व्याधिके लिये श्रीपवनकुमारकी उपासना एवं उनके मन्त्रोंका जप विशेषरूपसे लाभप्रद होता है। श्रीतुलसीदासजीकी भुजाओंमें वायु-प्रकोपसे भीषण पीड़ा हो रही थी। उसी समय उन्होंने 'हनुमानबाहुक'-

की रचना करके उसका चमत्कारी प्रभाव अनुभव किया। यह हनुमानजीकी कृपाका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अब यहाँ पाठकोंके लाभार्थ श्रीहनुमानजीसे सम्बन्धित कुछ प्रयोग जो रोग-क्लेश-व्याधि-निवारक तथा आशु फलप्रद हैं, दिये जा रहे हैं। इन प्रयोगोंको दृढ़ विश्वासके साथ करनेपर निश्चय ही कष्ट और वात-व्याधिसे छुटकारा मिल जाता है—

सर्वप्रथम श्रीहनुमानजीका चित्रपट सामने रखकर पवित्रतापूर्वक पूर्वाभिमुख आसनपर बैठ जाय और पञ्चोपचार (चन्दन, अक्षत, फूल, धूप, दीप)-से हनुमानजीका पूजन करे। इसके बाद निम्नलिखित मन्त्रका यथाशक्ति जप करे, किंतु यह जप कम-से-कम ५ माला प्रतिदिन होना आवश्यक है। सम्भव हो तो ईशानकोणमें शुद्ध घीका एक दीपक भी जलाकर रख दे—

हनूमन्नञ्जनीसूनो वायुपुत्र महाबल।
अकस्मादागतोत्पातं नाशयाशु नमोऽस्तु ते॥

इस मन्त्रका जप अनुष्ठान-विधिसे भी कर सकते हैं। उसके लिये ११ दिनोंतक नित्य ३ हजार मालाका जप होना आवश्यक है। बादमें दशांश जप या हवन करके ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इससे व्याधि शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। परंतु इस अनुष्ठान-विधिके साधन कुछ कठोर हैं। इसमें ब्रह्मचर्य, अक्रोध, सत्यभाषण और सात्त्विक आहार या फलाहार आवश्यक है। इस विधिसे जप करनेपर सफलता निश्चित है। इस मन्त्रके जपकी एक तीसरी विधि और भी है, जो सभी अवस्थाओंके नर-नारियोंके लिये सुलभ है। इसमें साधनकी आवश्यकता नहीं है, अपितु दिन-रातमें जब भी अधिक-से-अधिक अवसर प्राप्त हो सके, इस मन्त्रका मानसिक जप करना चाहिये। यह जप जबतक रोग शान्त न हो जाय, तबतक दृढ़ विश्वास और उत्साहके साथ नियमितरूपसे करता रहे। इस प्रकार चलते-फिरते और काम करते हुए भी यह जप किया जा सकता है।

२-**नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा॥**

यह घोर वात-व्याधिका शामक है। इसका जप यथाशक्ति अधिक-से-अधिक करनेका प्रयत्न करे तो कष्ट शीघ्र ही दूर हो जाता है।

३-**बुद्धिहीन तनु जानिके सुमिरौं पवन-कुमार।**
बल बुधि बिद्या देहु मोहिं हरहु कलेस बिकार॥

इस दोहेका जप कलह, क्लेश, रोग एवं शारीरिक दुर्बलता दूर करनेमें विशेष लाभप्रद है।

इस प्रकार ये तीनों मन्त्र शारीरिक एवं मानसिक व्याधिके विनाशक हैं। जबतक रोग नष्ट न हो जाय, तबतक इनका जप करते रहना चाहिये।

इस प्रकार आयुर्वेद-शास्त्रमें रोगनिवारणार्थ श्रीहनुमानजीकी आराधनाका महत्त्वपूर्ण एवं चमत्कारी वर्णन है। एक विशेष महत्त्वपूर्ण बात यह है कि श्रीहनुमानजीके उपासकको चरित्रवान् होना परम आवश्यक है। सदाचारसे श्रीहनुमानजी विशेष प्रसन्न होते हैं और शीघ्र ही मनोकामनाको पूर्ण कर देते हैं।

(२)

प्लीहा (तिल्ली)-रोगनिवारक मन्त्र

प्लीहा—एक प्रकारकी उदरग्रन्थि, जो पेटके पार्श्वभागमें होती है, अत्यन्त छोटी उत्पन्न होकर रोगके कारण यथाक्रम बहुत बड़ी हो जाती है। आयुर्वेदके अनुसार बहुत दाह करनेवाले तथा उदरगत रक्त-छिद्रको रोकनेवाले अन्नादि पदार्थोंके निरन्तर खाते रहनेसे प्लीहा (तिल्ली)-रोग होता है। शनैः-शनैः यह ग्रन्थि बेर-तुल्यसे बढ़कर तरबूजके तुल्य भी हो जाती है। इसको घटानेके लिये अति पवित्रताके साथ ब्रह्मचर्यका पालन करके '**ॐ यो यो हनुमन्त फलफलित धगधगित आयुराष परुडाह**'—इस मन्त्रका दस हजार जप करे और फिर प्लीहा-रोगसे आक्रान्त मनुष्यको सीधा लिटाकर उसके उदरपर नागवल्लीदल (नागरबेलके पत्ते) रखे। पत्तोंके ऊपर आठ तह किया हुआ कपड़ा रखे और कपड़ेके ऊपर सूखे बाँसके पतले-पतले टुकड़े रख दे। इसके बाद बेरकी सूखी लकड़ी लेकर उसको जंगली पत्थरसे उत्पन्न की हुई आगसे जलाये और रोगीके पेटपर रखे हुए वंश-शकल (बाँसके टुकड़ों)-को उपर्युक्त हनुमन्मन्त्रके उच्चारणके साथ (उस जलती हुई लकड़ीसे) सात बार ताड़ित करे। इससे उदरगत प्लीहा शान्त होती है। इसे सात बार करना चाहिये। उपर्युक्त विधान नारदपुराणमें वर्णित है। श्रीबल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश'—

श्रीहनुमान-सम्बन्धी मानस-सिद्धमन्त्र

(प्रेषक—एक 'रामायणप्रेमी')

मानस-सिद्ध-मन्त्रका विधान यह है कि पहले रातको १० बजेके बाद अष्टाङ्ग-हवनके द्वारा मन्त्र सिद्ध करना चाहिये। फिर जिस-जिस कार्यके लिये मन्त्र-जपकी आवश्यकता हो, उसके लिये नित्य जप करना चाहिये। वाराणसीमें भगवान् शंकरने मानसकी चौपाइयोंको मन्त्र-शक्ति प्रदान की है, इसलिये वाराणसीकी ओर मुख करके ही बैठना चाहिये। शंकरजीको साक्षी बनाकर शपथ करनेकी आवश्यकता नहीं है।

विविध कामना-सिद्धिके मन्त्र—

१-मस्तिष्ककी पीड़ा दूर करनेके लिये—

हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे॥

२-भूतको भगानेके लिये—

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

३-मुकदमेमें विजय-प्राप्तिके लिये—

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥

श्रीहनुमानजीकी प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

अष्टाङ्ग-हवनकी सामग्री—

(१) चन्दनका बुरादा, (२) तिल, (३) शुद्ध घी, (४) शुद्ध शक्कर (५) अगर, (६) तगर, (७) कपूर, (८) शुद्ध केसर, (९) नागरमोथा, (१०) पञ्चमेवा, (११) जौ और (१२) चावल।

कुछ ज्ञातव्य बातें—

जिस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये जिस चौपाई या सोरठेका जप बतलाया गया है, उसको सिद्ध करनेके लिये एक दिन अष्टाङ्ग-हवनकी सामग्रीसे उसी चौपाई या सोरठेके द्वारा १०८ बार हवन करना चाहिये। यह हवन केवल एक ही दिन करना चाहिये। इसके लिये कोई अलग कुण्ड बनानेकी आवश्यकता नहीं है। साधारण शुद्ध मिट्टीकी बेदी बनाकर उसपर अग्नि प्रज्वलित करके आहुति देनी चाहिये। प्रत्येक आहुतिमें चौपाई आदिके अन्तमें 'स्वाहा' का उच्चारण करना चाहिये। यह हवन रातको १० बजेके बाद ही करना उपयुक्त होगा।

प्रत्येक आहुति लगभग पौन तोलेकी (सभी वस्तुएँ मिलाकर) होनी चाहिये। इस प्रकार १०८ आहुतियोंके लिये एक सेर (८० तोले)-की सामग्री सम्मिलित बना लेनी चाहिये। कोई पदार्थ कम-ज्यादा हो तो कोई आपत्ति नहीं। पञ्चमेवामें पिश्ता, बादाम, किसमिस (द्राक्षा), अखरोट और काजू ले सकते हैं। इनमेंसे कोई मेवा न मिले तो उसके बदले नौजा या मिश्री मिला सकते हैं। शुद्ध केसर चार आने भर ही डालनेसे काम चल सकता है, अधिकको आवश्यकता नहीं है।

हवन करते समय माला रखनेकी आवश्यकता एक सौ आठकी संख्या गिननेभरके लिये है। इसलिये दाहिने हाथसे आहुति देकर फिर दाहिने हाथसे ही मालाका एक मनका सरका देना चाहिये। फिर माला या तो बायें हाथमें ले ले या आसनपर रख दे। पुनः आहुति देनेके बाद उसे दाहिने हाथमें लेकर मनका सरका देना चाहिये। माला रखनेमें असुविधा प्रतीत हो तो गेहूँ, जौ या चावल आदिके १०८ दाने रखकर उनसे गिनती की जा सकती है। बैठनेके लिये आसन ऊन अथवा कुशका होना चाहिये। सूती कपड़ेका हो तो वह धुला हुआ एवं पवित्र होना चाहिये।

मन्त्र सिद्ध करनेके लिये यदि लंकाकाण्डकी चौपाई या दोहा हो तो उसे शनिवारको हवन करके करना चाहिये। दूसरे काण्डोंके चौपाई-दोहे किसी भी दिन हवन करके सिद्ध किये जा सकते हैं। सिद्ध की हुई रक्षा-रेखाकी चौपाई एक बार बोलकर जहाँ बैठे हों, वहाँ अपने आसनके चारों ओर चौकोर रेखा जल या कोयलेसे खींच लेनी चाहिये। फिर उस चौपाईको भी ऊपर लिखे अनुसार एक सौ आठ आहुतियाँ देकर सिद्ध कर लेना चाहिये। पर रक्षा-रेखा न भी खींची जाय तो भी आपत्ति नहीं है। दूसरे कामके लिये दूसरा मन्त्र सिद्ध करना हो तो उसके लिये अलग हवन करके पूर्ववत् कार्य करना होगा।

एक दिन हवन करनेसे मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इसके बाद जबतक कार्य सफल न हो, तबतक उस मन्त्र (चौपाई, दोहे आदि)-का प्रतिदिन कम-से-कम एक सौ आठ बार प्रातःकाल या रात्रिको, जब सुविधा हो, जप करते रहना चाहिये, अधिक कर सके तो

और उत्तम है। कोई चाहे तो नियमित जपके अतिरिक्त दिनभर चलते-फिरते भी उस चौपाई या दोहेका जप कर सकता है।

कोई दो-तीन कार्योंके लिये दो-तीन चौपाइयोंका अनुष्ठान एक साथ करना चाहें तो कर सकते हैं, पर उन चौपाइयोंको पहले अलग-अलग हवन करके सिद्ध कर लेना चाहिये।

स्त्रियाँ भी इस अनुष्ठानको कर सकती हैं, परंतु रजस्वला होनेकी स्थितिमें जप बंद रखना चाहिये। हवन भी उस समय नहीं करना चाहिये।

जप करते समय मनमें यह विश्वास अवश्य रखना चाहिये कि श्रीहनुमानजीकी अहैतुकी कृपासे मेरा कार्य अवश्य-अवश्य सफल होगा। विश्वासपूर्वक जप करनेपर सफल होनेकी पूरी आशा है।

अनुभवसिद्ध प्रयोग

(प्रेषक—एडवोकेट श्रीश्यामसुन्दरजी कसेरा, 'कुल-सेवक', एम्०ए०, बी०काम्०, एल्-एल्०बी०, साहित्यविशारद, अणुव्रत-विशेषज्ञ)

हमारे कुलदेवता श्रीहनुमानजीकी उपासनासे सम्बन्धित एक अनुभवसिद्ध अचूक प्रयोग लेखरूपमें लिपिबद्ध किया जा रहा है। आशा है, सहृदय आस्तिक पाठकगण श्रद्धा-विश्वासपूर्वक इससे अवश्य लाभ उठायेंगे। प्रस्तुत प्रयोग मेरी पूजनीया स्व० दादी श्रीजीको लगभग २५ वर्ष पूर्व मेरी जन्मभूमि रामगढ़ (शेखावाटी), राजस्थानमें एक सिद्ध महात्माजीसे आशीर्वादस्वरूप प्राप्त हुआ था, जिसका प्रत्यक्ष चमत्कार अचूक रामवाणकी तरह मैं आजतक देखता आ रहा हूँ। कई बार मेरे परिवारके तथा कई अन्य व्यक्तियोंने इससे लाभ उठाया है।

किसी भी परोपकार-भावना या उचित एवं योग्य स्वकार्यकी सिद्धिके लिये इसका प्रयोग किया जा सकता है। किसी भी मासमें शुक्लपक्षके मंगलवारको इसका श्रीगणेश कर सकते हैं, परंतु उस दिन रिक्ता (४। ९। १४) तिथि एवं प्रयोग-कर्ताकी राशिसे ४ थे, ८ वें या १२ वें चन्द्रमाका होना निषिद्ध है। जननाशौच या मरणाशौचमें भी इसका प्रारम्भ नहीं करना चाहिये। यदि प्रयोग-कालमें ऐसा कोई संयोग आ ही जाय तो किसी कर्मनिष्ठ कुलीन ब्राह्मणके द्वारा इसे पूर्ण कराना चाहिये, बीचमें छोड़ना उचित नहीं है।

पुरुषोंके अतिरिक्त ऐसी स्त्रियाँ भी इसका अनुष्ठान कर सकती हैं, जिनका प्रौढावस्थाके बाद प्राकृतिक रूपसे मासिक धर्म सदाके लिये बंद हो चुका हो। प्रयोगके समय क्षौरादि कर्मका त्याग एवं सात्त्विक आहारके साथ ब्रह्मचर्यका पालन करना अनिवार्य है। एक ही समय भोजन किया जाय तो अति उत्तम है, पर यह अनिवार्य नहीं है; परंतु दो बारसे अधिक अन्न ग्रहण करना वर्जित है।

प्रयोग-कालके बीचमें ही यदि देव-कृपावश संकल्पित कार्यकी सिद्धि हो जाय तो भी प्रयोगको पूरा करना ही चाहिये; अन्यथा बने हुए कार्यके बिगड़नेकी सम्भावना रहती है।

प्रयोगविधि—

प्रयोग-प्रारम्भके लिये शुक्लपक्षके जिस मंगलवारका निश्चय किया जाय, उसके पहले दिन सोमवारको सवा पाव अच्छा गुड़, एक छटाँक भूने हुए अच्छे चने और सवा पाव गायका शुद्ध घी संग्रह कर ले। गुड़के छोटे-छोटे इक्कीस टुकड़े कर ले, शेष वैसे ही रहने दे। स्वच्छ रूईकी २२ फूल-बत्तियाँ बनाकर घीमें भिगो दे। तीनों वस्तुएँ अर्थात् गुड़, चने और बत्तीसहित घी अलग-अलग तीन स्वच्छ एवं शुद्ध पात्रोंमें रखकर घरके किसी एक स्वच्छ ऊँचे स्थान या आलमारीमें ढककर रख दे, जहाँ बच्चोंके हाथ न पहुँच सकें। उनके पास ही एक दियासलाई और एक अन्य छोटा पात्र-छन्नी आदि, जिसमें प्रतिदिन उपर्युक्त वस्तुएँ ले जायी जा सकें, भी रख दे, जिससे प्रतिदिन इधर-उधर पात्रकी खोज न करनी पड़े। बस, सामग्री तैयार है। शेष रहा केवल एक स्वच्छ पवित्र श्रीहनुमानजीका मन्दिर, जो गाँव या शहरके कोलाहलसे दूर जितने भी निर्जन एवं एकान्त स्थानमें हो, उतना ही अच्छा है; अन्यथा अपने निवास-स्थानसे कम-से-कम सवा-डेढ़ फर्लांग दूर होना तो अनिवार्य ही है।

जिस मंगलवारसे प्रयोग आरम्भ करना हो, उस दिन हो सके तो ब्राह्म-मुहूर्तमें अन्यथा सूर्योदयके पहले

अवश्य उठ जाना चाहिये। फिर शौचादिसे निवृत्त हो स्नान कर कपड़े पहन ललाटपर रोली-चन्दन आदि लगाकर सबसे पहले वहाँ जाय जहाँ तीनों पात्रोंमें गुड़, चने और घी-बत्ती रखी है। वहाँ पहलेसे ही रखे हुए छन्नी आदि खाली पात्रमें एक गुड़की डली, ११ चने, एक घृत-बत्ती और दियासलाई लेकर पवित्र धुली हुई रूमाल आदि किसी स्वच्छ पवित्र वस्त्रसे उसे ढक ले। वहाँसे लौटते समय मन्दिरमें श्रीहनुमानजीकी मूर्तिके सम्मुख पहुँचनेतक न तो पीछे न दायें-बायें ही घूमकर देखे और न छन्नी उठानेके बाद घरमें, रास्तेमें या मन्दिरमें किसीसे एक शब्द भी बोले, चाहे कोई कितने भी आवश्यक कार्यके लिये आवाज क्यों न देता हो। इस प्रकार पूर्णरूपसे एकदम मौन रहे।

बिना जूता-चप्पल पहने श्रीहनुमानजीके सम्मुख पहुँचकर बिना इधर-उधर देखे मौन धारण किये हुए ही पहले घी-बत्ती जलाये, फिर ११ चने और १ गुड़की डली श्रीहनुमानजीके सामने रखकर साष्टाङ्ग प्रणाम कर हाथ जोड़ पूर्वसंकल्पित अपनी मनोकामनाकी सिद्धिके लिये मन-ही-मन श्रद्धा, विश्वास, भक्ति एवं प्रेमपूर्वक उनसे प्रार्थना करे। फिर यदि कोई अन्य प्रार्थना, स्तुति, श्रीहनुमानचालीसा आदिका पाठ करना चाहे तो मौन ही रहकर करे। घरकी ओर जानेके लिये मूर्तिके सामनेसे हटनेके बाद जबतक अपने घर पहुँचकर वह खाली पात्र निश्चित स्थानपर न रख दे, तबतक पीछे या दायें-बायें घूमकर न तो देखे और न किसीसे एक शब्द भी बोले, मौनी ही बना रहे। फिर छन्नी रखकर सात बार 'राम-राम' कहकर मौन भङ्ग करे। इसी क्रमसे २१ दिनोंतक लगातार एक-सा प्रयोग करता रहे। रात्रिमें सोते समय श्रीहनुमानचालीसाका ११ पाठ करके अपनी मनोकामनासिद्धिके लिये प्रार्थना करना अनिवार्य है।

बाईसवें दिन मंगलवारको नित्यकर्मसे निवृत्त हो सवा सेर आटेका एक रोट बनाकर गोबरकी अग्निमें सेंककर पका ले, यदि असुविधा हो तो पाव-पावकी पाँच रोटी बनाकर उनमें आवश्यकतानुसार गायका शुद्ध घी और अच्छा गुड़ मिलाकर उनका चूरमा बना ले। २१ डलियोंके बाद जो गुड़ बचा हो, उसे चूरमेमें मिला दे। फिर चूरमेको थालीमें रखकर बचे हुए सारे चने तथा शेष घीसहित २२वीं अन्तिम बत्ती लेकर प्रतिदिनकी तरह ही मौनपूर्वक बिना पीछे या दायें-बायें देखे मन्दिरमें जाय और बत्ती जलाकर श्रीहनुमानजीको चने एवं चूरमेका भोग लगाकर उसी प्रकार घरको वापस आये और घरमें प्रवेश करनेके बाद ही मौन भङ्ग करे। प्रयोगकर्ता उस दिन दोनों समय केवल उसी चूरमेका भोजन करे। शेष चूरमेको प्रसादरूपमें बाँट दे।

ऐसा करनेसे श्रीहनुमानजीकी कृपासे मनोरथ अवश्य सिद्ध होता है। किसी कारणवश प्रयोगमें भूल भी हो जाय तो निराश न हो, उसे फिर करे। श्रीहनुमानजी श्रद्धालु, विश्वासी, आस्तिक, सच्चे साधककी मनोकामना अवश्य पूर्ण करते हैं, यह परीक्षित अनुभवसिद्ध अचूक प्रयोग है।

'कोई ग्राम है नहीं, जहाँ न हनुमान हो'

(रचयिता—कविभूषण श्रीजगदीशजी साहित्यरत्न)

शीश पै अहीश ने तो 'जगदीश' धारी धर
कर पै भूधर धर उड़े आसमान हो।
सेवक-संदेशक हो राम के महान, किंतु
कष्ट वक्त भक्त का भी करते कल्यान हो॥
अर्चना-आराधना के अनोखे हो देव तुम,
सब जाति मानती है, ऐसे दयावान हो।
घर-घर पूजते हैं चित्र भी पवित्र मान,
कोई ग्राम है नहीं, जहाँ न हनुमान हो॥

प्रेत-बाधा-निवारणके सम्बन्धमें अनुष्ठान

(परम श्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा निर्दिष्ट)

(१) **प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।**
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

प्रतिदिन ११ मालाके हिसाबसे ४९ दिनोंतक इसका जप करना चाहिये।

(२) श्रीहनुमानजीकी मूर्ति या चित्रके सामने बैठकर पञ्चोपचारसे उनकी पूजा करके कम-से-कम सात शनिवारतक प्रत्येक शनिवारको हनुमानचालीसाके एक सौ पाठ करें।

(३) इस (६४) यन्त्रको भोजपत्रपर लाल चन्दनसे लिखकर, मँढ़वाकर सभी कमरोंमें टाँग दें।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

ॐ ॐ ॐ

ॐ					ॐ
ॐ	२४	३१	२	७	ॐ
ॐ	६	३	२८	२७	ॐ
ॐ	३०	२५	८	१	ॐ
ॐ	४	५	२६	२९	ॐ

ॐ ॐ ॐ

(४) प्रेतकी सद्गतिके लिये भागवतका सप्ताह-अनुष्ठानके रूपमें एक पाठ और श्रीविष्णुसहस्रनामके १०८ पाठ कराने चाहिये।

'कहाँ हनुमानु-से बीर बाँके'

(१)

मत्त-भट-मुकुट, दसकंठ-साहस-सइल-
सृंग-बिद्दरनि जनु बज्र-टाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज, कमठु,
सेषु संकुचित, संकित, पिनाकी॥
चलत महि-मेरु, उच्छलत सायर सकल,
बिकल बिधि बधिर दिसि-बिदिसि झाँकी।
रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत,
सुनत हनुमानकी हाँक बाँकी॥

(२)

कौनकी हाँकपर चौंक चंडीसु, बिधि,
चंड-कर थकित फिरि तुरग हाँके।
कौनके तेज बलसीम भट भीम-से
भीमता निरखि कर नयन ढाँके॥
दास-तुलसीसके बिरुद बरनत बिदुष,
बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके।
नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन,
कहाँ हनुमानु-से बीर बाँके॥

(कवितावली ६। ४४-४५)

अद्भुत राम-भजन-रसिक हनुमान

भए हैं भगत भगवंत के भजन-रस,
ह्वै रहे विवेकी, जग जान्यौ जिन सपनौ॥
सेवा ही के बल, सेवा आपनी कराई, पुनि
पायौ मनोरथ, सब काहू अप-अपनौ।
यह अदभुत 'सेनापति' है भजन कोई
कह्यौ न बनत तन-मन कौं अरपनौ॥
जैसौ हनूमान जान्यौ भजन कौं रस, जिन
राम के भजन ही लौं जीब्यौ माँग्यौ अपनौ॥

—महाकवि सेनापतिः (कवित्तरत्नाकर ४। ६९)

श्रीहनुमानजीका स्वप्नमें दर्शन—एक अनुष्ठान

(प्रेषक—श्री दे० कलसे)

मैं साधकोंके लाभार्थ श्रीहनुमानजीके एक अनुष्ठानके विषयमें लिख रहा हूँ। यह अनुष्ठान मेरे एक सज्जन मित्रने मुझे बतलाया था और उन मित्र महोदयको यह एक विद्वान् तथा वृद्ध ब्राह्मणद्वारा प्राप्त हुआ था। यह मेरे मित्रद्वारा अनुभूत है।

इस अनुष्ठानके नियम बहुत सरल हैं। यह अनुष्ठान कुल ८१ दिनका है। अच्छा मुहूर्त देखकर इसे प्रारम्भ करना चाहिये। अनुष्ठानकालमें ब्रह्मचर्य-पालन अनिवार्य है तथा क्षौर, नख-कृन्तन, मद्यपान और मांसाहार सर्वथा निषिद्ध हैं। अनुष्ठानारम्भके दिन प्रात:काल उठकर शौच, मुखमार्जन और स्नानके अनन्तर शुद्ध वस्त्र पहनकर एक लोटा जल लेकर हनुमानजीके मन्दिरमें जाय और उस जलसे हनुमानजीकी मूर्तिको स्नान कराये। प्रथम दिन एक दाना उड़द हनुमानजीके सिरपर रखकर ग्यारह प्रदक्षिणा करे। बादमें नमस्कार करके मन-ही-मन अपनी कामना श्रीहनुमानजीके सामने रखे तथा उड़दका दाना लेकर घर लौट आये और उसे अलग रख दे। दूसरे दिनसे एक-एक उड़दका दाना बढ़ाते रहना चाहिये। ४१वें दिन ४१ दानेतक रखकर बादमें ४२वें दिनसे एक-एक दाना कम करते जाना चाहिये। जैसे—४२वें दिन ४०, ४३वें दिन ३९ और ८१वें दिन १ दाना। ८१ दिनका यह अनुष्ठान पूर्ण होनेपर उसी दिन रातको श्रीहनुमानजी स्वप्नमें दर्शन देकर साधककी कामनापूर्ति करते हैं। ८१ दिनतक जो उड़दके दाने अलग जमा किये गये थे, उन्हें नदीमें बहा देना चाहिये।

शाबर-मन्त्र* और उनके प्रभाव

'बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।'

यह सम्पूर्ण विश्व भगवान्‌का स्वरूप है—भगवान् ही हैं। उसी प्रकार शब्दमात्र भगवन्नाम है। जगत्‌का मूल कारण शब्द है—यह बात 'स्फोटवाद' प्रतिपादित करता है। प्रत्येक शब्द एक कम्पन उत्पन्न करता है और प्रत्येक कम्पन एक रूप व्यक्त करता है। ग्रामोफोनके रेकार्डपर कुछ रेखाएँ मात्र होती हैं, जो आँखोंसे नहीं दीखतीं। इन्हीं रेखाओंपर सूई घूमती है तो शब्द उत्पन्न होता है। ये रेखाएँ गानेवालेके शब्दके कम्पनसे रेकार्डपर बनी हैं।

वर्षों-पहले 'कल्याण' में कभी छपा था कि फ्रान्समें किसीने एक ऐसा यन्त्र बनाया था कि उसके सम्मुख कोई गीत या स्तुति गानेपर यन्त्रमें लगे पर्देपर रखे रेतके कण उछलकर एक आकृति बना देते थे। एक भारतीय सज्जनने जब उस यन्त्रके सम्मुख कालभैरवकी स्तुति गायी तो यन्त्रके पर्देपर रेतके कणोंसे कालभैरवका रूप बन गया।

शब्दसे कम्पन होता है। सृष्टिके सब पदार्थ कम्पनसे बनते-बिगड़ते हैं, यह भी विज्ञान मानता है। इसलिये मन्त्रोंकी शक्तिको समझना कठिन नहीं होना चाहिये। किंतु शब्दोंमें क्या शक्ति है, यह सर्वज्ञ ऋषि जानते थे। उन्होंने ऐसे शब्दोंकी योजना की तथा उनके प्रयोगकी ऐसी विधि निश्चित की, जिससे उन मन्त्रोंको निर्दिष्ट विधिसे काममें लेकर अभीष्ट फल प्राप्त किया जा सके। इनमें वेद, पुराण तथा तन्त्रोंके बहुत-से मन्त्र ऐसे हैं, जिनके प्रयोगमें पर्याप्त सावधानी आवश्यक है। सविधि करनेपर ही वे फल देते हैं। थोड़ी-सी त्रुटि हो तो अनुष्ठान निष्फल हो जाता है अथवा देवता उग्र हों तो अनुष्ठान उलटा दुष्प्रभाव भी दिखला सकता है। कुछ शाबर-मन्त्र ऐसे हैं, जो उच्चारणमात्रसे अपना प्रभाव प्रकट करते हैं। इन्हें उज्जीवित करनेके लिये बहुत थोड़ी प्रक्रिया आवश्यक होती है।

शाबर-मन्त्रोंकी वर्ण-योजना प्राय: बड़ी अटपटी होती है। उनका कोई अर्थ हो ही, यह आवश्यक नहीं है। फिर भी उनका प्रभाव तो प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

—ठा० श्रीसु० सिं०

* प्रत्येक शाबर-मन्त्रका चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहणके समय तथा प्रत्येक अमावास्याको भी कम-से-कम १०८ बार जप करना चाहिये।

श्रीहनुमानजीके अनन्य भक्त

(लेखक—महंत श्रीनृत्यगोपालदासजी महाराज)

लगभग दो सौ वर्ष पूर्व स्वामी श्रीमणिरामदासजी महाराज श्रीहनुमानजीके कृपा-प्राप्त एक विशिष्ट संत हो गये हैं। उन्हींके नामपर श्रीअयोध्याजीमें 'श्रीमणिराम-दासजीकी छावनी' नामक एक सुप्रसिद्ध अतिथि-अभ्यागत-संतसेवी स्थान है।

श्रीमणिरामदासजी चित्रकूटमें 'दास हनुमान' नामक स्थानपर तपस्या करते थे। उनका विशेषरूपसे अनुष्ठेय विषय था—श्रीमद्वाल्मीकिरामायणके पाठद्वारा श्रीहनुमानजीकी कृपा-प्राप्ति। सतत श्रीरामनाम-स्मरण, श्रीकामदनाथजीकी परिक्रमा एवं अनुष्ठेय पाठका क्रम चलता रहता था। श्रीमहाराजजी कंद-मूल-फलका ही आहार करते और सदा श्रीहनुमत्प्रेममें पगे रहते थे। यह क्रम कई वर्षोंतक चला।

अन्तमें श्रीहनुमानजी महाराजने उन्हें दर्शन देकर मणि प्रदान करते हुए आदेश दिया कि 'श्रीअयोध्याजीमें श्रीसरयूतटपर रहकर संत-सेवा करो।' श्रीमहाराजजीने कहा कि 'मुझे तो मणिस्वरूपा आपकी कृपादृष्टि चाहिये, मैं मणि लेकर क्या करूँगा।' कहते हैं, इसीलिये इनका श्रीमणिरामदास नाम पड़ा। आगे श्रीमहाराजजीने कहा—'मैं अकिंचन हूँ, संत-सेवा कैसे करूँगा?' इसपर श्रीहनुमानजीने कहा—'तुम चलो, हम आते हैं।' साथ ही यह भी कहा कि 'जबतक तुम्हारेद्वारा संत-सेवा होती रहेगी, तबतक कोई कमी न पड़ेगी।'

श्रीहनुमानजीकी आज्ञा मानकर श्रीमहाराजजी अयोध्यामें आकर श्रीसरयू-तटके श्रीवासुदेवघाटपर झोंपड़ी बनाकर भजन करने लगे एवं समागत-सामग्रीद्वारा संत-सेवा भी होने लगी।

कुछ समय बीतनेपर कोई सज्जन श्रीहनुमानजीकी प्रतिमा प्रतिष्ठा-हेतु नौकाद्वारा ले जा रहे थे। श्रीमहाराजजीकी झोंपड़ीके समीप नाव रुक गयी, अधिक चेष्टा करनेपर भी वह आगे बढ़ न सकी; तब श्रीमहाराजजीने कहा—'श्रीहनुमानजी यहीं रहना चाहते हैं।' वे सज्जन भी मान गये और उस प्रतिमाको वहीं छोड़कर अपने गन्तव्य स्थानको चले गये।

अद्यावधि श्रीहनुमानजी महाराज छावनीमें विराजमान रहकर भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करते रहते हैं एवं छावनीकी सर्वतोभावसे उन्नतिमें निरत हैं। श्रीहनुमानजीकी प्रसन्नताके लिये यहाँ नित्य श्रीमद्वाल्मीकिरामायणका पाठ होता है।

पवनपुत्रके कृपापात्र भक्त श्रीरामअवधदासजी

स्वामी रामअवधदासजी एक विरक्त साधु थे। वे वर्षोंसे मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी राजधानी अयोध्यापुरीमें रहते थे। सरयूजीके तटपर एक वृक्षके नीचे उनका निवास था। अहर्निश श्रीसीताराम-नामका कीर्तन करना ही उनका सहज स्वभाव हो गया था। वे रातको कठिनतासे दो घंटे सोते। उनकी धूनी रात-दिन जलती रहती। बरसातके मौसममें भी वे कोई छाया नहीं करते थे। आश्चर्य तो यह कि मूसलाधार वर्षामें भी उनकी धूनी ठंडी नहीं होती थी।

× × ×

स्वामी रामअवधदासजी जौनपुरके समीपके रहनेवाले ब्राह्मण थे। इनका नाम था रामलगन। ये अपने पिताके इकलौते पुत्र थे। इनकी माता बड़ी साध्वी और भक्तिमती थीं। माताने बचपनसे ही इन्हें 'सीताराम' का कीर्तन करना सिखाया था और प्रतिदिन वे इन्हें भगवान्‌के चरित्रोंकी मधुर कथा भी सुनाया करती थीं। एक बारकी बात है, जब ये आठ वर्षके थे, तब एक दिन रातको दस-पंद्रह डाकू इनके घरमें आ पहुँचे। इनके पिता पण्डित सत्यनारायणजी अच्छे विद्वान् थे और पुरोहितीका काम करते थे। सम्पन्न घर था। जिस दिन डाकू आये, उस दिन इनके पिता घरपर नहीं थे। दोनों माता-पुत्र घरके अंदर आँगनमें सो रहे थे। गरमीके दिन थे, इसलिये किवाड़ खुले थे। एक ओर गौएँ खुली खड़ी थीं। इनकी माँ इन्हें हनुमानजीके द्वारा लंका-दहनकी कथा सुना रही थीं। इसी समय डाकू आये। उन्हें देखकर इनकी माँ डर गयीं, पर इन्होंने

कहा—'माँ! तू डर क्यों गयी? देख, अभी हनुमानजी लंका जला रहे हैं। उनको पुकारती क्यों नहीं। वे तेरे पुकारते ही हमारी सहायताके लिये अवश्य आयेंगे।' इन्होंने बिलकुल निडर होकर यह बात कही; परंतु माँ तो काँप रही थीं। उन्हें इस बातका विश्वास न था कि सचमुच श्रीहनुमानजी हमारी पुकारसे आ जायँगे। जब माँ कुछ नहीं बोलीं, तब इन्होंने स्वयं पुकारकर कहा—'हनुमानजी! ओ हनुमानजी!! हमारे घरमें ये कौन लोग लाठी लेकर आ गये हैं। मेरी माँ डर रही है। आओ, जल्दी आओ, लंका पीछे जलाना।' इतनेमें ही सबने देखा—सचमुच एक बहुत बड़ा बंदर कूदता-फाँदता चला आ रहा है। डाकू उसकी ओर लाठी तान ही रहे थे कि उसने आकर दो-तीन डाकुओंके तो ऐसी चपत लगायी कि वे गिर पड़े। डाकुओंका सरदार आगे बढ़ा तो उसकी दाढ़ी पकड़कर इतने जोरसे खींचा कि वह चीख मारकर गिर पड़ा और बेहोश हो गया। डाकुओंकी तनी हुई लाठियाँ गिर पड़ीं। बंदरपर एक भी लाठी न लगी। डाकुओंके हो-हल्लेसे आसपासके लोग दौड़कर आ गये। सरदार अभी बेहोश था, उसे तीन-चार डाकुओंने कंधेपर उठाया और भाग निकले। बालक रामलगनजी और उनकी माँ बड़े आश्चर्यसे इस दृश्यको देख रहे थे। पड़ोसियोंके आते ही बंदर जिधरसे आया था, उधरको ही कूदकर लापता हो गया। रामलगन हँसकर कह रहे थे—'देखा न, माँ! तूने, हनुमानजी मेरी आवाज सुनते ही आ गये और उन दुष्टोंको मार भगाया।' माँके भी आश्चर्य और हर्षका पार न था। गाँववालोंने यह घटना सुनी तो सब-के-सब आश्चर्यमें डूब गये।

दो-तीन दिनोंके बाद पण्डित सत्यनारायणजी घर लौटे और उन्होंने जब यह बात सुनी तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। डाकू घरसे चले गये, यह आनन्द तो था ही, सबसे बड़ा हर्ष तो उन्हें इस बातसे हुआ कि साक्षात् श्रीहनुमानजीने पधारकर घरको पवित्र किया और ब्राह्मणी तथा बच्चेको बचा लिया। वे भगवान्‌में श्रद्धा तो पहलेसे ही रखते थे, अब उनकी भक्ति और भी बढ़ गयी। वे दिनभर भजन-साधनमें तत्पर रहने लगे। बालक रामलगनको व्याकरण और कर्मकाण्ड पढ़ानेका काम उन्हींके गाँवके पण्डित श्रीविनायकजीके अधिकारमें था। वे प्रात:काल तीन-चार घंटे पढ़ते और शेष समय माता-पिताके साथ भगवान्‌का भजन करते।

× × ×

रामलगनजीकी आयु ज्यों-ज्यों बढ़ने लगी, त्यों-त्यों उनका भगवत्प्रेम भी बढ़ने लगा। कुछ वर्षोंके बाद उनके माता-पिताका स्वर्गवास हो गया। दोनोंका एक ही समय ठीक रामनवमीके दिन प्राणान्त हुआ। दोनों ही अन्त समयतक सचेत थे और भजनमें निरत थे। श्रीरामलगनजी इस समय साढ़े उन्नीस सालके थे। माता-पिताकी श्राद्ध-क्रिया भलीभाँति सम्पन्न करनेके बाद इन्होंने अवधके एक भजनानन्दी संतसे दीक्षा ले ली। तबसे इनका नाम स्वामी रामअवधदासजी हुआ।

स्वामीजीमें उत्कट वैराग्य था। ये अपने पास कुछ भी संग्रह नहीं रखते थे। योगक्षेमका निर्वाह श्रीसीतारामजी अपने-आप करते थे। इन्होंने न कोई कुटिया बनवायी, न चेला बनाया और न किसी अन्य आडम्बरमें रहे। दिन-रात कीर्तन करना और भगवान्‌के ध्यानमें मस्त रहना, यही इनका एकमात्र कार्य था।

इन्हें जीवनमें बहुत बार श्रीहनुमानजीके प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी भी इनपर अपार कृपा थी। अन्तकालमें भगवान् श्रीराघवेन्द्रकी गोदमें सिर रखकर इन्होंने शरीर छोड़ा। लोगोंका विश्वास है कि ये बहुत उच्च श्रेणीके भक्त थे और बहुत ही गुप्तरूपसे रहा करते थे।

श्रीहनुमानजीके नैष्ठिक भक्त श्रीरामगुलामजी द्विवेदी

(साकेतवासी महात्मा श्रीअञ्जनीनन्दनशरणजी महाराज)

पं० श्रीरामगुलामजी द्विवेदी मिर्जापुरके गणेशगंज मुहल्लेमें रहते थे। वे 'करुणासिन्धु', पं० शिवलालजी पाठक तथा श्रीपंजाबीजी आदि रामायणियोंके समकालीन ही प्रसिद्ध रामायणी थे। बाल्यकालसे ही उनपर संकट आते रहे, परंतु श्रीहनुमानजीकी कृपासे सब कष्ट दूर होते गये। श्रीद्विवेदीजीने स्वयं लिखा है—

बारे ते बिदेस बस्यों देखि दसा देस दस्यो,
पेट भरबेके काज कहौं जस रामको।

तऊ न 'गुलाम राम' सकल बिलोकि कलि
हाथ हनुमान मोसों दूसरो निकाम को॥
(कवित्त प्रबन्ध)

यह तो समस्त मानसविज्ञोंमें सुप्रसिद्ध ही है कि श्रीद्विवेदीजीको श्रीहनुमानजीका इष्ट था, उनपर हनुमानजीकी बड़ी कृपा थी। आपकी रामचरितमानसकी कथा प्रसिद्ध थी और साथ-ही-साथ अनन्यता भी।

मिर्जापुर नगरसे बाहर नदीके उस पार हनुमानजीका एक मन्दिर था। वहाँ नित्य जानेका द्विवेदीजीका दृढ़ नियम था। एक बार दैवयोगसे वे दिनमें वहाँ जाना भूल गये, रात्रिमें स्मरण आते ही आप तुरंत उठकर चल दिये। घोर वर्षा हो रही थी, गङ्गाजी खूब बढ़ी हुई थीं। कोई पार उतारनेवाला केवट वहाँ न था। वे तैरकर पार जानेके विचारसे साहस कर नदीमें कूद पड़े और पानीके प्रवाहमें बहने लगे। तब श्रीहनुमानजीने उनका हाथ पकड़कर डूबनेसे बचाया और दर्शन देकर उनको किनारे किया तथा यह आशीर्वाद भी दिया कि 'रामायणकी कथामें तुम्हारे नवीन-नवीन भाव निकलते रहेंगे' इत्यादि*।

जिस चबूतरेपर वे कथा कहते थे, वह अभी भी विद्यमान है। सुना गया है कि उनके कोई शिष्य, वे जो कथा कहते उसे कैथी लिपिमें गुप्तरूपसे चुपचाप नित्य लिख लिया करते थे। बात मालूम हो जानेपर उन्होंने शाप दे दिया कि 'जो इसे पढ़ेगा, वह अंधा हो जायगा।' वह शापित ग्रन्थ पूर्व-चौका घाटपर था, अब वह कहीं काशीजीमें है। द्विवेदीजीके शिष्योंकी परम्परामें बड़े-बड़े रामायणी भी हुए हैं। इन्हींमेंसे छक्कनलालजी मानसके बड़े ही मर्मज्ञ और सुबोध ज्ञाता हुए।

श्रीद्विवेदीजीने रसिक परमहंस श्रीरामप्रसादजीसे दीक्षा ग्रहण की थी। उन्होंने द्विवेदीजीको वाल्मीकि-रामायणका गम्भीर अध्ययन कराया था।

जनश्रुति है कि श्रीहनुमानजीके परमप्रेमी भक्त श्रीरामगुलामजी द्विवेदीने उसी दिन अपने शरीरका त्याग किया, जिस दिन रसिकाचार्य श्रीरामशरणदासजीने साकेतधामकी यात्रा की। उस दिन सं० १८८८ वि० माघ शुक्लकी नवमी तिथि थी।

श्रीहनुमानचालीसा

दोहा

श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि॥
बुद्धिहीन तनु जानिके, सुमिरौं पवन-कुमार।
बल बुधि बिद्या देहु मोहिं, हरहु कलेस बिकार॥

चौपाई

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर। जय कपीस तिहुँ लोक उजागर॥
राम दूत अतुलित बल धामा। अंजनि-पुत्र पवनसुत नामा॥
महाबीर बिक्रम बजरंगी। कुमति निवार सुमति के संगी॥
कंचन बरन बिराज सुबेसा। कानन कुंडल कुंचित केसा॥
हाथ बज्र औ ध्वजा बिराजै। काँधे मूँज जनेऊ साजै॥
संकर सुवन केसरीनंदन। तेज प्रताप महा जग बंदन॥
बिद्यावान गुनी अति चातुर। राम काज करिबे को आतुर॥

* यह भी प्रसिद्धि है कि "नदीमें उतरनेपर एक आदमीने उन्हें रोका और कहा—'कहाँ जाते हो ? आगे खतरा है।' द्विवेदीजीने कहा—'महावीरजीके दर्शन करना है।' तब उस व्यक्तिने अपनेको ही महावीर बताया और नित्य दर्शनवाली मूर्तिके रूपमें उनको वहीं दर्शन दिया तथा विश्वास दिलाकर आज्ञा दी कि 'आजसे अब दर्शनको न आना, घरपर ही एक मूर्ति स्थापित कर लो।' वह मूर्ति अभीतक मौजूद है। उन हनुमानजीका नाम 'लोंहदी महावीर' है।"

प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया। राम लषन सीता मन बसिया॥
सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा। बिकट रूप धरि लंक जरावा॥
भीम रूप धरि असुर सँहारे। रामचंद्र के काज सँवारे॥
लाय सजीवन लखन जियाये। श्रीरघुबीर हरषि उर लाये॥
रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई। तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई॥
सहस बदन तुम्हरो जस गावैं। अस कहि श्रीपति कंठ लगावैं॥
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा। नारद सारद सहित अहीसा॥
जम कुबेर दिगपाल जहाँ ते। कबि कोबिद कहि सके कहाँ ते॥
तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा। राम मिलाय राज पद दीन्हा॥
तुम्हरो मंत्र बिभीषन माना। लंकेस्वर भए सब जग जाना॥
जुग सहस्र जोजन पर भानू। लील्यो ताहि मधुर फल जानू॥
प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं। जलधि लाँघि गये अचरज नाहीं॥
दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते॥
राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे॥
सब सुख लहै तुम्हारी सरना। तुम रच्छक काहू को डर ना॥
आपन तेज सम्हारो आपै। तीनों लोक हाँक तें काँपै॥
भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै॥
नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा॥
संकट तें हनुमान छुड़ावै। मन क्रम बचन ध्यान जो लावै॥
सब पर राम तपस्वी राजा। तिन के काज सकल तुम साजा॥
और मनोरथ जो कोइ लावै। सोइ अमित जीवन फल पावै॥
चारों जुग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा॥
साधु संत के तुम रखवारे। असुर निकंदन राम दुलारे॥
अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता। अस बर दीन जानकी माता॥
राम रसायन तुम्हरे पासा। सदा रहो रघुपति के दासा॥
तुम्हरे भजन राम को पावै। जनम जनम के दुख बिसरावै॥
अंत काल रघुबर पुर जाई। जहाँ जन्म हरि-भक्त कहाई॥
और देवता चित्त न धरई। हनुमत सेइ सर्ब सुख करई॥
संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा॥
जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरु देव की नाईं॥
जो सत बार पाठ कर कोई। छूटहि बंदि महा सुख होई॥
जो यह पढ़ै हनुमान चलीसा। होय सिद्धि साखी गौरीसा॥
तुलसीदास सदा हरि चेरा। कीजै नाथ हृदय महँ डेरा।

दोहा

पवनतनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप।
राम लषन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप॥

आरती

आरती कीजै हनुमान लला की। दुष्टदलन रघुनाथ कला की॥
जाके बल से गिरिवर काँपै। रोग दोष जाके निकट न झाँपै॥
अंजनि पुत्र महा बलदाई। संतन के प्रभु सदा सहाई॥
दे बीरा रघुनाथ पठाये। लंका जारि सीय सुधि लाये॥
लंका सो कोट समुद्र-सी खाई। जात पवनसुत बार न लाई॥
लंका जारि असुर संहारे। सियारामजी के काज सँवारे॥
लक्ष्मण मूर्च्छित पड़े सकारे। आनि सजीवन प्रान उबारे॥
पैठि पताल तोरि जम-कारे। अहिरावन की भुजा उखारे॥
बायें भुजा असुर दल मारे। दहिने भुजा संतजन तारे॥
सुर नर मुनि आरती उतारे। जै जै जै हनुमान उचारे॥
कंचन थार कपूर लौ छाई। आरति करत अंजना माई॥
जो हनुमान (जी) की आरति गावै। बसि बैकुंठ परमपद पावै॥

श्रीहनुमानसे प्रार्थना

पवन-सुवन हनुमान सों, बिनय करौं कर जोरि।
अपनी ओर निहारि कै, छिमेव चूक सब मोरि॥
संकट-मोचन नाम तव, संकट में मम प्रान।
सुमिरत संकट नसत हैं, हरु संकट हनुमान!!

—रामायणी रामावतारदास

शरणागत-रक्षक श्रीहनुमान

(१)

संकट-मोचन नाम भयो जग, काके न संकट दूर किये हैं।
शेष कपीश सुरेशहुँ आदि सहाय भये, तब जाइ जिये हैं॥
रामहुँ रावन जीतिबेको दल साजि जिन्हें निज संग लिये हैं।
'बिष्नु' भये तिनके सरनागत, जाके बसे सियराम हिये हैं॥

(२)

जाहि भजे भय रोग नसावत, पावत हैं मनको फल चारी।
जा ढिंग जात मिटै भव-फंद औ होत सबै दिसि मंगलकारी॥
जाको सुनाम भयो जगतीतल भूत-पिसाचनको भयकारी।
'बिष्नु' भये सरनागत ताहिके, जे भय भूत भगावनहारी॥

—श्रीविष्णुदत्तजी गुप्त, बी०ए०, एल्-एल्०बी०, साहित्यरत्न

श्रीहनुमत्-वज्राङ्गी

(लेखक—पं० श्रीसूरजचन्दजी शाह 'सत्यप्रेमी' [डाँगीजी])

एक समयकी बात है—किसीने पूछा कि ''हिंदू' शब्दकी ठीक-ठीक व्याख्या क्या है।' मैंने जो उत्तर दिया उससे प्रश्नकर्ताको परम संतोष हुआ—'जो हनुमानजीको माने, वही हिंदू।' जहाँ भी हिंदू होगा वहाँ हनुमानकी मूर्ति तो अवश्य होगी। चाहे श्रीराम, श्रीकृष्ण या श्रीमहादेवकी प्रतिमा या श्रीविग्रहकी स्थापना न भी हो, पर प्रत्येक हिंदू-ग्राममें श्रीहनुमानजीकी मूर्ति अवश्य होगी। हमारे जीवनमें सबसे बड़ा आदर्श श्रीहनुमानजी ही हैं। उनमें शक्ति और भक्तिका पूर्ण समन्वय है। भक्ति-शून्य शक्ति शैतानियतकी ओर जाती है और शक्ति-शून्य भक्ति नादानी कहलाती है। इतना ही नहीं, हनुमानजी '**ज्ञानिनामग्रगण्य**' और '**बुद्धिमतां वरिष्ठ**' भी कहलाते हैं।

भगवान् श्रीराम, श्रीलक्ष्मण, श्रीभरत, श्रीसीताजी और श्रीसुग्रीव आदि सबकी रक्षा करके भी वे सदा विनम्र रहे। इसे प्रभुकी कृपा ही मानते रहे।

बालपनमें सूर्यनारायणको निगल जानेके बाद जब सबकी प्रार्थनासे उनको उगल दिया, तब देवताओंने समझा कि भक्तिके मुखारविन्दसे निकलनेवाला ज्ञान ही मङ्गलकारी है। भक्ति यदि ज्ञानको निगल जाय तो व्यवहार बंद हो जायगा, इसीलिये दया करके उन्होंने भक्तिपूर्वक व्यवहारका आदर्श उपस्थित किया है।

एक बार मैंने एक सज्जनसे कहा था कि श्रीहनुमानजीने रावणका घर जला दिया और बगीचा उजाड़ दिया, यह क्रान्तिकारी आदर्श तो हमारे यहाँ पहलेसे भी है; परंतु आजकी क्रान्ति और हनुमानजीकी क्रान्तिमें यह अन्तर है कि उनकी क्रान्ति सिन्दूरी और आजकी क्रान्ति खूनी है। खूनी क्रान्तिमें हिंसा है—स्वार्थ है, लोभ है; परंतु श्रीहनुमानजीकी क्रान्तिमें स्नेह है, प्रेम है और सिन्दूरका जोश भी है—अन्यायका दमन है, निःस्वार्थ श्रीराम-सेवाकी भावना है। उस क्रान्तिके फलस्वरूप सोनेकी लंका जली नहीं, वह शुद्ध हो गयी। उसका मल दूर हो गया।

लंका-विजयके बाद जब प्रभु श्रीराम अयोध्या पधारे, तब श्रीभरतजीसे बोले कि 'भैया भरत! हम श्रीहनुमानजीसे उऋण नहीं हैं। इनका कर्जा कैसे चुकाया जाय, यह मुझे सूझता नहीं है।' तब भरतजी बोले—'श्रीसीताम्बाके भण्डारमें क्या कमी है? वे जो चाहें, वह दे दें।' तब प्रभु बोले—'वे तो अनुत्तीर्ण हो गयीं। उन्होंने हार दिया उसे तो श्रीहनुमानजीने तोड़ फेंका कि इसमें श्रीराम कहाँ?—हनुमानजीको ऐसा हार पसंद नहीं!' तब श्रीभरतजीने तत्कालीन राज्याधिकारी श्रीचरण-पादुकाजीसे पूछकर कहा—'प्रभो! जैसे आपके श्रीचरण हनुमानजी दबाते हैं, उसी प्रकार आप भी अगले अवतारमें इनके चरण दबायें, तभी ऋण उतर सकता है। जैसे लक्ष्मणजीको बड़ा भाई बनाकर अगले अवतारमें आप उनकी सेवा करेंगे, उसी प्रकार इनका भी चरण दबाकर इनके उपकारको चुकायें; श्रीराधिकाजी गोपिकाओंको लेकर रासमण्डलमें तभी प्रवेश करेंगी, जब ब्रह्मचारी हनुमानको मुरली बनाकर होठोंपर सुलाकर आप उनके चरण दबायेंगे।' यह बात प्रभुको जँच गयी और द्वापरमें मुरलीके रूपमें श्रीहनुमानजीके चरण दबाये और ब्रह्मचारीकी साक्षीमें ही रासलीलाको साक्षात् मन्मथ-मन्थन करनेवाली सिद्ध किया। मुरलीमें भी अपना मान नहीं और हनुमानजीमें भी मान नहीं, तभी प्रभुकी मधुर ध्वनि उसमेंसे प्रादुर्भूत हुई और सभी ऋषि-महर्षि-रूपधारिणी गोपिकाओंका आकर्षण हो सका।

आज भी श्रीहनुमानजीका आदर्श अपनाये बिना भारतवर्ष सुखी नहीं हो सकता। ज्ञान, शक्ति और भक्तिका समन्वय ही सम्पूर्ण आनन्द और वैभवका भण्डार है।

श्रीहनुमद्वन्दना

जयति वात-संजात, विख्यात विक्रम, बृहद्बाहु, बलबिपुल, बालधिबिसाला।
जातरूपाचलाकारविग्रह, लसल्लोम विद्युल्लता ज्वालमाला॥ १ ॥
जयति बालार्क वर-वदन, पिंगल-नयन, कपिश-कर्कश-जटाजूटधारी।
विकट भृकुटी, वज्र दशन नख, वैरि-मदमत्त-कुंजर-पुंज-कुंजरारी॥ २ ॥
जयति भीमार्जुन-व्यालसूदन-गर्वहर, धनंजय-रथ-त्राण-केतू।
भीष्म-द्रोण-कर्णादि-पालित, कालदृक सुयोधन-चमू-निधन-हेतू॥ ३ ॥
जयति गतराजदातार, हंतार संसार-संकट, दनुज-दर्पहारी।
ईति-अति-भीति-ग्रह-प्रेत-चौरानल-व्याधिबाधा-शमन घोर मारी॥ ४ ॥
जयति निगमागम व्याकरण करणलिपि, काव्यकौतुक-कला-कोटि-सिंधो।
सामगायक, भक्त-कामदायक, वामदेव, श्रीराम-प्रिय-प्रेम-बंधो॥ ५ ॥
जयति घर्मांशु-संदग्ध-संपाति-नवपक्ष-लोचन-दिव्य-देहदाता।
कालकलि-पापसंताप-संकुल सदा, प्रणत तुलसीदास तात-माता॥ ६ ॥

(विनय-पत्रिका २८)

क्षमा-प्रार्थना

मंगल-मूरति मारुत-नंदन। सकल-अमंगल-मूल-निकंदन॥
पवनतनय संतन हितकारी। हृदय बिराजत अवध-बिहारी॥
महाबीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥
प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

भगवान् शंकरके अवतारस्वरूप श्रीहनुमानजीमें अनन्य भगवद्भक्ति, अखण्ड ब्रह्मचर्य, विवेक-विज्ञान, बुद्धिमत्ता-विद्वत्ता, धीरता-वीरता, चतुरता, बल-पौरुष, साहस और सदाचार आदि अनन्त गुण-गण अभिव्यक्त हैं, जो हम सभीके लिये परम आदर्श और अनुकरणीय हैं, इसीलिये उनकी उपासना सम्पूर्ण भारतमें प्रचलित और व्यापक है। जिस प्रकार एक भगवद्भक्तके रूपमें श्रीहनुमानजीकी उपासना की जाती है, वैसे किसी अन्य भक्तकी उपासना होती नहीं देखी जाती। भगवान् श्रीरामके अनन्य और अप्रतिम सेवक होनेके नाते ही श्रीहनुमानजीकी श्रीराम-भक्तके रूपमें पूजा-अर्चना होती है। तत्त्वत: वे परात्पर परिपूर्णतम सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा हैं। परमात्मा एक हैं। वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी, निराकार भी हैं साकार भी तथा वे ही श्रीविष्णु, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीशिव, श्रीशक्ति, श्रीसूर्य, श्रीगणेश, श्रीहनुमान आदि-रूप हैं; अत: भगवान्के किसी भी स्वरूपकी उपासना, पूजा-अर्चना की जाय, वह उन्हीं पूर्णतम सच्चिदानन्द परमात्माकी ही उपासना है। वास्तवमें कोई भी स्वरूप उनसे भिन्न नहीं है, इसलिये कोई बड़ा-छोटा नहीं है। इस तत्त्वके ज्ञानपूर्वक जो उपासना की जाती है, वही वास्तविक, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सर्वोच्च उपासना है। भगवान्के कई रूपोंकी एक साथ उपासना न तो की जा सकती है और न वैसा करना उचित ही है; क्योंकि साधकके लिये उसकी रुचि, योग्यता, परिस्थिति और अधिकारके अनुसार मनको एकरूपमें एकाग्र करके एकनिष्ठ उपासना करनेका ही विधान है। ऐसा करनेपर ही साधक शीघ्र सिद्धि-लाभ कर सकता है। भगवान् सर्वव्यापक हैं। साधककी कल्पना, धारणा, भावनामें भी वे हैं ही; वे देश, काल, वस्तु, भाव और धारणा—सभीमें अविच्छिन्नरूपसे सदा ही विद्यमान हैं। उन भगवान्की प्राप्तिके लिये साधन करनेवाले मनुष्यका लक्ष्य भगवान् हों और वह उनके परमभावको—तत्त्व, रहस्य, गुण, प्रभाव एवं माहात्म्यको समझकर उपासना करे तो फिर निर्गुण-निराकार, सगुण-साकार किसी भी स्वरूपकी किसी भी शास्त्रोक्त विधिसे उपासना क्यों न की जाय, उसका फल सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति ही होती है। इसी उद्देश्यको लेकर इस अङ्कका प्रकाशन हुआ है।

इस समय सम्पूर्ण विश्वमें अशान्तिकी काली घटाएँ छायी हुई हैं। मानवताका ह्रास अत्यन्त तीव्रतासे हो रहा है। झूठ-कपट, राग-द्वेष, वैर-विरोध, हिंसा-कलह, मतवाद-दलबंदी, व्यभिचार-इन्द्रियलोलुपता, कामोपभोग-परायणता, स्वार्थपरायणता आदि आसुरी प्रवृत्तियोंका विस्तार मानवसमाजमें बड़े जोरोंसे हो रहा है। हमारी यह लक्ष्यच्युति बड़े दुःखका विषय है। आज हम केवल भौतिक बलको ही बल मानकर उसके द्वारा अपने विकासका स्वप्न देख रहे हैं। भगवत्कृपा एवं भगवच्छक्तिको भूल-सा गये हैं। फलतः हो रहा है—विकासके स्थानपर भीषण विनाश और उन्नतिके स्थानपर आत्मपतन। इतना ही नहीं, आज तो इस सर्वतोमुखी पतनको ही उत्थानकी संज्ञा दी जा रही है। इस 'उत्थान' के बदलेमें मिलते हैं—दुःख, अशान्ति एवं कलह आदि।

इस संकटके समयमें संकटमोचन श्रीहनुमानजीके चरित्रका श्रवण, मनन एवं अनुशीलन विश्वहितके लिये निश्चय ही कल्याणप्रद होगा। स्वयं परात्पर लीला-वपुधारी भगवान् श्रीरामने भी संकट-समुद्रको बजरंगबलीकी सहायतासे ही पार किया था। अस्तु!

इस वर्ष भी लेख अधिक संख्यामें आये; किंतु उनमेंसे बहुत-से लेखोंको तो हम अङ्कमें सीमित स्थान होनेके कारण दे ही नहीं पाये, कुछ लेखोंको परिवर्तन-परिवर्धन या संक्षिप्तरूपमें करके प्रकाशित किया गया है। जिनके लेख प्रकाशित नहीं हुए तथा जिनके लेखोंको घटाने-बढ़ानेमें हमसे कोई भूल हो गयी हो, उनके मनमें विचार या दुःख होना तो स्वाभाविक ही है, किंतु हमारी परिस्थितिको देखकर वे अपने सहृदय-स्वभावसे हमें क्षमा प्रदान करें—यही विनम्र प्रार्थना है।

इस अङ्कमें श्रीहनुमानजीके नाम, स्वरूप, लीला, गुण, प्रभाव, तत्त्व एवं रहस्यका विशद वर्णन तो किया ही गया है, उनकी उपासनाके लिये उपयोगी अनेक साधनोंका भी प्रतिपादन किया गया है। साथ ही हनुमदुपासना-सम्बन्धी देश-विदेशमें प्रकाशित ग्रन्थोंकी संक्षिप्त सूची भी इसमें दी जा रही है, जिससे अध्ययनशील पाठक-पाठिकागण उन ग्रन्थोंका यथारुचि स्वाध्याय करके ज्ञानवर्धन कर सकें। जो श्रीहनुमानजीको ही अपना सर्वोपरि इष्ट या उपास्यदेव मानते हैं, उन हनुमद्भक्तोंके लिये तो इसमें उपासनाकी परम उपादेय सामग्री संनिविष्ट है ही, जिसमें सकाम-अनुष्ठानोंके अनेकानेक प्रयोग भी संकलित हैं। इनकी विशेष जानकारी इस अङ्कके प्रारम्भमें दी गयी विषय-सूचीसे प्राप्त की जा सकती है। यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि यदि उपासकका कोई प्रबल प्रारब्ध प्रतिबन्धक नहीं हो और विधिपूर्वक अनुष्ठान किया गया हो तो उसे अपने श्रद्धा-विश्वास और भाव-भक्तिके अनुरूप इन अनुष्ठानोंके द्वारा अभीष्ट-सिद्धि-लाभ न्यूनाधिकरूपमें होता ही है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें स्वयं भगवान्के वचन हैं—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान्॥

(७।२१-२२)

'जो-जो सकाम भक्त जिस-जिस देवताके स्वरूपको श्रद्धासे पूजना चाहता है, उस-उस भक्तकी श्रद्धाको मैं उसी देवताके प्रति स्थिर करता हूँ। वह पुरुष उस श्रद्धासे युक्त होकर उस देवताका पूजन करता है और उस देवतासे मेरे द्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगोंको निस्संदेह प्राप्त करता है।'

परंतु इस लोक या परलोकके स्त्री-पुत्र, धन-सम्पत्ति, वैभव-विलास, ऐश-आराम, सुख-सुविधा, मान-कीर्ति, स्वास्थ्य एवं जितने भी भोग्य पदार्थ हैं, वे सभी नश्वर हैं, क्षणभङ्गुर हैं; अतः वे प्राणीको स्थायी सुख कदापि नहीं दे सकते। ऐसी अवस्थामें उनकी प्राप्तिके लिये मानव-जीवनका अमूल्य समय लगाना बुद्धिमानी तो नहीं कही जा सकती; किंतु इन सकाम-अनुष्ठानोंके द्वारा भी सिद्धि-लाभ होनेपर मनुष्यका भगवान्के प्रति श्रद्धा-विश्वास उत्पन्न होता है और वह भगवान्की ओर अग्रसर एवं अभिमुख हो सकता है, इसलिये इनको प्रकाशित किया जाता है। वस्तुतः मानव-जीवनका एकमात्र परम उद्देश्य है—भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेमकी प्राप्ति। अतः कल्याण चाहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको इन अनुष्ठानोंको निष्कामभावसे ही करना चाहिये, जिससे भगवान्की या भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो और मानव-जीवन सफल—सार्थक हो जाय।

यद्यपि भगवान् और उनके अनन्य भक्तोंके चरित्र, गुण और प्रभाव आदि सभी दिव्य, अलौकिक, अनन्त और असीम होते हैं, उनका कोई पार नहीं पा सकता, तथापि अपने-अपने भावोंके अनुसार उपासकोंके लिये उनके परम कल्याणकारक गुणोंका गान करना परम कर्तव्य है। इसी रूपमें हमारा यह क्षुद्र प्रयास है।

हनुमत्सम्बन्धी (एक-सा ही) विषय होनेके कारण विभिन्न लेखकोंद्वारा लिखित लेखोंमें कुछ पुनरुक्तियाँ आ गयी हैं, जो स्वाभाविक ही है। परंतु सद्वस्तुका बारम्बार स्मरण-चिन्तन भी लाभदायक ही होता है।

इस विशेषाङ्कके लिये जिन पूज्य महात्माओं, आचार्यों, विद्वानों तथा साहित्यिकोंने लेखादि लिखकर हमें सहयोग दिया है, उन सबके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। 'कल्याण' सबकी अपनी वस्तु है और इसपर सभीका अधिकार है। इस बार अङ्कको तैयार करनेमें अनेक कठिन परिस्थितियोंका सामना करना पड़ा एवं कई महात्माओं, आचार्यों और विद्वान् लेखक-महोदयोंके प्रति हमसे बड़ा अपराध भी हुआ है कि हम उनके अमूल्य लेख इस अङ्कके लिये मँगवाकर भी छाप नहीं सके। इस अपराधके लिये हम उन सबसे विनम्र क्षमा-याचना करते हैं। लेखोंके चयन, मुद्रण, संशोधन आदि कार्योंका गुरुत्व और बाहुल्य तो कारण है ही, इसके साथ कुछ अन्य विशेष कारणोंसे चाहते हुए भी हम 'कल्याण' समयपर प्रकाशित नहीं कर सके, इसके लिये हम अपने कृपालु पाठकोंसे करबद्ध क्षमा-प्रार्थी हैं। आशा है महात्मा, आचार्यगण एवं विद्वज्जन परिस्थितिवश हुई भूलोंके लिये हमें क्षमा करेंगे और सदाकी भाँति इस 'कल्याण' वृक्षको स्नेहाम्बुसे सिञ्चित करते रहेंगे।

लेखोंके चुनाव, सम्पादन एवं छपाई आदिमें कई जगह भूलें रहना सम्भव है। वस्तुतः इस अङ्कमें जो कुछ अच्छापन है, वह सब विद्वान् लेखकोंकी कृपाका प्रसाद है और जो त्रुटियाँ हैं, वे सब हमारी हैं।

कागज एवं मुद्रण-सम्बन्धी अन्य ख़र्च बड़ी तेजीसे बढ़े एवं बढ़ रहे हैं, फिर भी 'कल्याण' की पृष्ठ-संख्या उतनी ही रखी गयी है। रंगीन एवं सादे चित्र भी गतवर्षानुसार ही देनेकी चेष्टा की गयी है। इस निमित्तसे कुछ महीने महावीर श्रीहनुमानजीके परम पावन चरित्रके पठन, स्मरण एवं मननमें बीते हैं— यह हमारा सौभाग्य है।

गीताप्रेस एवं 'कल्याण' के संस्थापक-प्रवर्तक परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका एवं आदिसम्पादक नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अथक सत्प्रयाससे लगा पौधा 'कल्याण' भगवान्‌की इच्छा, कृपा एवं आप महानुभावोंके स्नेहपूर्ण सहयोगसे ही उत्तरोत्तर पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हुआ है। हमारे पूर्ववर्ती सम्पादक गोलोकवासी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीने भी 'कल्याण' की सेवाका जो व्रत निबाहा, वह उनके सात्त्विक हृदय और भगवद्विश्वासपूर्ण मनोबलका परिचायक है।

भक्तशिरोमणि श्रीहनुमानजी उपमारहित हैं। उनकी कहीं तुलना है ही नहीं। उनके समान वे ही हैं। उनकी प्रशंसा करना सूर्यको दीपक दिखानेके समान है। वज्राङ्गबली आञ्जनेयके विषयमें कुछ भी कहा जाय, वह उनके वास्तविक स्वरूपका एक दिग्दर्शनमात्र ही होगा। अखिल ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीराम भी जिनकी महिमा कहते नहीं अघाते एवं अपने-आपको जिनका सदैव ऋणी मानते हैं, उन पवनपुत्र भगवान् मारुतिकी महिमाका वर्णन करनेकी शक्ति इस क्षुद्र लेखनीमें कहाँ?

श्रीराघवेन्द्र सरकार एवं जगज्जननी माँ श्रीजानकीजीके लाड़ले पवननन्दनके श्रीचरणोंमें शत-शत प्रणाम! कोटि-कोटि नमन!!

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये॥

विनीत—

स्वामी श्रीरामसुखदास

सम्पादक

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

सीतारामपदाम्बुजे मधुपवद् यन्मानसं लीयते सीतारामगुणावली निशि दिवा यज्जिह्वया पीयते॥
सीतारामविचित्ररूपमनिशं यच्चक्षुषोर्भूषणं सीतारामसुनामधामनिरतं तं मारुतिं सम्भजे॥

(श्रीरामायणरसायन)

वर्ष ४९ } गोरखपुर, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५२००, फरवरी १९७५ { संख्या २ पूर्ण संख्या ५७९

भक्तकी चाह

कदा सीताशोकत्रिशिखजलदं चाञ्जनिसुतं
चिरञ्जीवं लोके भजकजनसंरक्षणकरम्।
अये वायोः सूनो रघुवरपदाम्भोजमधुप
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥

(सूक्तिसुधाकर ४। ३९)

जो सीताजीकी शोकाग्निको बुझानेके लिये मेघ-सदृश, जगत्में भक्तजनोंकी रक्षा करनेवाले और चिरंजीवी हैं, उन अञ्जनीनन्दन हनुमानके प्रति 'हे पवननन्दन! हे श्रीरामके चरणारविन्दोंके भ्रमर! आप प्रसन्न होइये'—इस प्रकार गिड़गिड़ाता हुआ मैं कब अपने दिनोंको क्षणके समान बिताऊँगा!

महावीर श्रीहनुमानका जय-घोष

महावीर हनुमानजी समुद्र-लङ्घन कर लंकामें पहुँच गये थे। उन्होंने अशोक-वाटिकामें श्रीजानकीजीके दर्शन कर लिये थे और उनको श्रीराघवेन्द्रका कुशल-संवाद भी सुना दिया था। अब तो वे श्रीविदेहनन्दिनीकी अनुमति प्राप्तकर अशोक-वाटिकामें पहुँच गये थे।

त्रिभुवनविजयी राक्षसराज रावणकी परमप्रिय वाटिका ध्वस्त हो रही थी। कुछ वृक्ष धराशायी हो गये थे और कुछकी शाखाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी थीं। वे जहाँ-तहाँ ठूँठकी भाँति खड़े थे और उनके मध्य हेमाभ, पर्वताकार-देह, प्रचण्डमूर्ति श्रीपवनकुमार बारंबार हुंकार करते हुए उछल-कूद मचा रहे थे और गिराते-तोड़ते जा रहे थे वृक्षोंको। यह देखकर उस उपवनकी रक्षामें नियुक्त राक्षसियाँ दौड़कर रावणके समीप गयीं और उसे यह सूचना दीं—'राजन्! अशोक-वाटिकामें एक वानर आया है, जिसका शरीर बड़ा भयंकर है। उसने सीतासे बातचीत की है। वह अभी वहीं मौजूद है। अद्भुत रूपधारी उस वानरने आपके प्रमदावनको, जो नाना प्रकारके पशु-पक्षियोंसे व्याप्त था, उजाड़ दिया। प्रमदावनका कोई भी भाग ऐसा नहीं है जिसको उसने नष्ट न कर डाला हो। केवल सीताके रहनेका स्थान ही बचा है।'

राक्षसियोंकी बात सुनकर उस महातेजस्वी निशाचरने हनुमानजीको कैद करनेके लिये अपने किंकर नामक राक्षसोंको आज्ञा दी। वे अस्सी हजार राक्षस अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर वहाँ पहुँचे और हनुमानजीको घेर लिया। उस समय हनुमानजीने अपनी पूँछ फटकारते हुए उच्च स्वरसे इस प्रकार घोषणा की—

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमान् शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥

(वा० रा० ५।४२।३३—३६)

'अमित पराक्रम श्रीराघवेन्द्रकी जय हो। महाबलशाली कुमार लक्ष्मणकी जय हो। श्रीरघुनाथजी द्वारा रक्षित वानरराज सुग्रीवकी जय हो। मैं अद्भुतकर्मा कोसलेन्द्र श्रीरामका दास हूँ। मैं शत्रुसेनाका संहारक और पवनका पुत्र हूँ। मेरा नाम हनुमान है। जब मैं सहस्रों पर्वतशिखरों और वृक्षोंसे प्रहार करने लगूँगा, तब संग्राममें एक सहस्र रावण भी मेरा सामना नहीं कर सकेंगे। मैं लंकापुरीको चौपट कर डालूँगा और श्रीजानकीको प्रणाम करनेके अनन्तर तुम सब राक्षसोंके देखते-देखते ही अपना कार्य पूर्ण करके यहाँसे भलीभाँति चला जाऊँगा।'

यह निर्भय गर्जना गर्वकी नहीं थी। यह था अपने सर्वसमर्थ स्वामीके प्रति विश्वासका अभय जयघोष।

बजरंगबली

अवधेस बिहारि को प्यारो सदा
जन को रखिया अरु दुष्ट-दली है।
ऐसो नहीं बलवान कोई,
जाकी हाँक सों ही यम छोड़ गली है॥
मम चित्त की आश को जानत हो,
तव नेक कृपा सब भाँति भली है।
सुन आयो हूँ लोगन के मुख से
प्रभु दानि बड़े बजरंगबली है॥

श्रीहनुमानजीके पाँच सगे भाई

(प्रेषक—श्रीब्रह्मचारी शिवचैतन्यजी)

पुराणोंमें बहुत-सी ऐसी आश्चर्यजनक बातें मिलती हैं, जिन्हें सामान्य पाठकोंकी तो कौन कहे, बड़े-बड़े शास्त्रमर्मज्ञ विद्वानोंको भी पढ़ और सुनकर चकित रह जाना पड़ता है। पाठकोंको यह जानकर बड़ा आश्चर्य होगा कि जैसे मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके तीन भाई थे, वैसे ही श्रीहनुमानजीके भी पाँच सगे भाई और थे। यह वर्णन ब्रह्माण्डपुराण (एवं वायुपुराणके भी पाठ-भेदवाली प्रति)-में प्राप्त होता है। (वहाँ सभी वानरोंकी विस्तृत वंशावली भी दी गयी है।) उन भाइयोंके नामादिका उल्लेख वहाँ इस प्रकार है—

केसरी कुञ्जरस्याथ सुतां भार्यामविन्दत॥
अञ्जना नाम सुभगा गता पुंसवने शुचिः।
तस्यां जातस्तु हनुमान् वायुना जगदायुना।
ये ह्यन्ये केसरिसुता विख्याता दिवि चेह वै॥
ज्येष्ठस्तु हनुमांस्तेषां मतिमांस्तु ततः स्मृतः।
श्रुतिमान् केतुमांश्चैव गतिमान् धृतिमानपि॥
हनुमद्भ्रातरो ये वै ते दारैः सुप्रतिष्ठिताः।
स्वानुरूपैः सुताः पित्रा पुत्रपौत्रसमन्विताः॥
ब्रह्मचारी च हनुमान् नासौ दारैश्च योजितः।
सर्वलोकानपि रणे यो योद्धुं च समुत्सहेत्॥
जवे जवे च वितते वैनतेय इवापरः।

(ब्रह्माण्डपुराण ३। ७। २२३—२२८ १/२)

केसरीने कुञ्जरकी पुत्री अञ्जनाको भार्यारूपमें ग्रहण किया। अञ्जना परम सुन्दरी थी। (गर्भाधानके अनन्तर) अञ्जनाका पुंसवन-संस्कार हुआ और उसके गर्भसे जगत्के प्राणस्वरूप वायुके अंशसे हनुमानका जन्म हुआ। इनके अतिरिक्त केसरीके जो अन्य पुत्र स्वर्गलोक तथा भूतलपर विख्यात थे, उनमें हनुमान ज्येष्ठ थे। इनके बाद क्रमशः—मतिमान्, श्रुतिमान्, केतुमान्, गतिमान् और धृतिमान् थे। ये जो हनुमानके भाई हैं, ये सभी स्त्रियोंसे संयुक्त अर्थात् विवाहित थे। ये सभी अपने ही अनुरूप पुत्री, पुत्र और पौत्रसे संयुक्त थे। परंतु हनुमान ब्रह्मचारी थे, इन्होंने दार-परिग्रहण नहीं किया था। ये संग्राममें सम्पूर्ण लोकोंसे लोहा लेनेका उत्साह रखते थे और वेगमें तो मानो दूसरे गरुड ही थे।

आदर्श भक्त श्रीहनुमानजीका प्रभाव

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डमें श्रीहनुमानजीके प्रभावका बड़ा सुन्दर वर्णन है; यहाँ उसका दिग्दर्शनमात्र कराया जाता है—

एक दिन भयानक युद्धमें रावणके प्रधान-प्रधान सेनापति मारे गये, राक्षसलोग हताश हो गये। पुत्र और भाइयोंके मारे जानेका समाचार सुनकर रावणको बड़ी चिन्ता हुई। यह देखकर मेघनादको बड़ा क्रोध आया। वह पिताके सामने अपने बल-पौरुषका वर्णन करके उसे धैर्य देकर भयानक युद्ध करनेके लिये युद्धक्षेत्रमें आया। वहाँ पहुँचकर उसने बड़ा ही घमासान युद्ध किया तथा बहुत-से वानरोंको प्राणहीन कर दिया। उसके ब्रह्मास्त्रके प्रभावसे श्रीराम और लक्ष्मण भी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। बचे हुए प्रधान-प्रधान रीछ और वानर चिन्तामग्न हो गये। तब विभीषणने सबको धैर्य बँधाया और वे हनुमानको साथ लेकर वहाँ गये, जहाँ जाम्बवान् पड़े थे। वहाँ जाकर जब विभीषणने जाम्बवान्का हाल पूछा, तब वे अपनी पीड़ाका वर्णन करते हुए कहने लगे कि मैं तुम्हें केवल आवाजसे ही पहचान सका हूँ, देखनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। तुम सबसे पहले मुझे यह बताओ कि 'वानरश्रेष्ठ हनुमान जीवित हैं या नहीं।' इसपर विभीषणने कहा—'ऋक्षराज! आपने श्रीराम और लक्ष्मणको छोड़कर पहले केवल हनुमानजीकी ही कुशल कैसे पूछी? राजा सुग्रीव, अङ्गद तथा श्रीराम और लक्ष्मणपर भी आपने

उतना स्नेह प्रकट नहीं किया जितना गाढ़ प्रेम आपका पवनकुमारके प्रति लक्षित हो रहा है। इसका क्या कारण है?'

तब जाम्बवान् बोले—

शृणु नैर्ऋतशार्दूल यस्मात् पृच्छामि मारुतिम्॥
अस्मिञ्जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम्।
हनूमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि मृता वयम्॥

(६। ७४। २१-२२)

'राक्षसराज! सुनो, मैं हनुमानके लिये इसलिये पूछ रहा हूँ कि यदि इस समय वीरवर हनुमान जीवित हों तो यह मरी हुई सेना भी जी सकती है और यदि उनके प्राण निकल गये हों तो हमलोग जीते हुए भी मृतक-तुल्य ही हैं।'

इसके बाद श्रीहनुमानजीने उनको प्रणाम किया। हनुमानकी आवाज सुनकर जाम्बवान्‌में नया जीवन आ गया। उन्होंने हनुमानको संजीवनी ओषधिके लक्षण बताकर हिमालयपर भेजा। उनके आज्ञानुसार हनुमानजीने वहाँ जाकर ओषधिकी खोज की, पर ओषधि लुप्त हो जानेके कारण मिली नहीं। तब आप उस पर्वतको ही उखाड़कर ले आये और समस्त वानर-सेनाको पुनः प्राण-दान दिया तथा श्रीराम और लक्ष्मण भी स्वस्थ हो गये। इत्यादि।

जब रावणद्वारा छोड़ी हुई अमोघ शक्ति श्रीलक्ष्मणजीने विभीषणजीकी रक्षाके लिये अपने ऊपर ले ली और मानुषी लीला करनेके लिये आप मूर्च्छित हो गये, तब रावण श्रीलक्ष्मणके पास जाकर उन्हें उठाने लगा; परन्तु समस्त जगत्‌के आधारभूत श्रीलक्ष्मणको वह कैसे उठा सकता था।

अध्यात्मरामायणमें लिखा है—

ग्रहीतुकामं सौमित्रिं रावणं वीक्ष्य मारुतिः॥
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना।
तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद् भुवि॥

(६। ६। १२-१३)

'उस समय हनुमानजीने देखा कि रावण लक्ष्मणजीको उठाकर ले जाना चाहता है तो वे कुपित हो गये और अपनी वज्र-तुल्य मुट्ठीसे उसकी छातीपर प्रहार किया। उस मुष्टि-प्रहारसे रावण घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़ा। इधर हनुमानजी लक्ष्मणको उठाकर भगवान् श्रीरामके पास ले गये।

इस समय भी श्रीहनुमानजी द्रोण-पर्वतपर ओषधि लानेके लिये गये और उसी तरह पर्वतको उखाड़ लाये थे। इस प्रसङ्गका वर्णन करते हुए सभी रामायणोंमें श्रीहनुमानजीका अद्भुत बल-पौरुष, बुद्धि-कौशल और प्रभाव दिखाया गया है।

रामचरितमानसमें मेघनादकी शक्तिसे श्रीलक्ष्मणजीके मूर्च्छित होनेकी बात आती है। वहाँ हनुमानजी ही जाम्बवान्‌के कहनेसे पहले घरसहित सुषेणको उठाकर लाये हैं, फिर सुषेणके कहनेसे संजीवनी लाने गये हैं और पर्वतको उखाड़ लाये हैं। श्रीहनुमानजीका सेवाभाव बड़ा ही विचित्र था। इनकी सेवाके कारण भगवान् श्रीरामने अपनेको ऋणी माना। माता सीताने भी वही बात कही। लक्ष्मण और समस्त वानरोंके प्राण बचे। इसी प्रकार विरह-व्याकुल भरतको श्रीरामचन्द्रजीके आनेकी सूचना देकर उनके प्राण बचानेका काम भी श्रीहनुमानजीने ही किया।

रामचरितमानसका वर्णन है—

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

(७। १ (क))

वहाँ श्रीहनुमानजी भरतकी प्रेम-दशा देखकर कहते हैं—

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥

इस प्रकार श्रीरामके आनेका कुशल-समाचार सुनते ही श्रीभरतजीमें नये जीवनका संचार हो आया। उनके पूछनेपर अपना परिचय देते हुए हनुमानजी कहते हैं—

मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना॥
दीनबंधु रघुपति कर किंकर। * * * * ॥

कितना विनयभाव है! यह बात सुनते ही भरतजी उठकर बड़े हर्ष और आदरके साथ उनसे मिले। अपने आनन्दका वर्णन करते हुए अन्तमें उन्होंने यहाँतक कह दिया—

नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥

इस प्रकार श्रीहनुमानजीने सबकी सेवा की, जिसके कारण सभीने अपनेको उनका ऋणी माना।

भगवान् श्रीरामके राज्यसिंहासनपर आरूढ़ हो जानेके बाद भी आप सदा उनकी सेवामें ही रहे। अन्य सब वानर और राक्षस अपने-अपने घर लौट गये, पर श्रीहनुमानजी नहीं गये। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने जब अश्वमेध यज्ञ किया था, उस समय श्रीहनुमानजी भी घोड़ेकी रक्षाके लिये शत्रुघ्नके साथ गये थे।

पद्मपुराणके पातालखण्डमें रामाश्वमेध यज्ञकी कथाका विस्तृत वर्णन है। वहाँ भी श्रीहनुमानजीके महत्त्वका बड़ा सुन्दर वर्णन आता है। जब श्रीरामाश्वमेधका घोड़ा अनेक देशोंमें भ्रमण करता हुआ राजा सुबाहुकी राजधानी चक्राङ्का (आरा) नगरीके पास पहुँचा, तब राजाके पुत्र दमनने उस घोड़ेको पकड़ लिया। उस राजाके और भी कई पुत्र और भाई बड़े शूरवीर थे तथा वह स्वयं भी बड़ा ही वीर योद्धा था। वहाँ दोनों ओरसे बड़ा घमासान युद्ध हुआ। अन्तमें राजा सुबाहुके साथ श्रीहनुमानजीका भयानक युद्ध हुआ। उसमें कपिवर हनुमानजीने बार-बार राजाको व्यथित किया। उसके रथको घोड़ोंसहित चूर्ण कर डाला और बड़े जोरसे राजाकी छातीमें एक लात मारी। उसके लगते ही राजा सुबाहु मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। श्रीहनुमानजीके पदाघातसे उसका मोह नष्ट हो गया। उसके मनमें श्रीरामकी भक्ति प्रकट हो गयी। वह स्वप्नमें देखता है—

रामचन्द्रस्त्वयोध्यायां सरयूतीरमण्डपे।
ब्राह्मणैर्याज्ञिकश्रेष्ठैर्बहुभिः परिवारितः॥
तत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र ब्रह्माण्डकोटयः।
कृतप्राञ्जलयस्तं वै स्तुवन्ति स्तुतिभिर्मुहुः॥

(२८। ४९-५०)

'अयोध्यापुरीमें सरयू नदीके तीरपर श्रीरामचन्द्रजी यज्ञमण्डपके भीतर विराजमान हैं। यज्ञ करानेवालोंमें श्रेष्ठ अनेकों ब्राह्मण उन्हें घेरकर बैठे हुए हैं। करोड़ों ब्रह्माण्डोंके ब्रह्मादि देवता हाथ जोड़े खड़े हैं और बारंबार श्रीरामकी स्तुति कर रहे हैं'—इत्यादि।

इस प्रकारका अद्भुत स्वप्न देखते ही राजाको श्रीरामतत्त्वका ज्ञान हो गया। वह तुरंत ही मूर्च्छासे उठा और शत्रुघ्नके चरणोंकी ओर पैदल ही चल पड़ा। युद्ध बंद करनेकी घोषणा करते हुए उसने अपने पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसे कहा—

एष रामः परं ब्रह्म कार्यकारणतः परम्।
चराचरजगत्स्वामी न मानुषवपुर्धरः॥
एतद्धि ब्रह्मविज्ञानमधुना ज्ञातवानहम्।

(२८। ५९-६०)

'ये श्रीरामचन्द्रजी कार्य और कारणसे परे साक्षात् परब्रह्म हैं। ये चराचर जगत्के स्वामी हैं। मानव-शरीर धारण करनेपर भी ये वास्तवमें मनुष्य नहीं हैं। इनको इस रूपमें जान लेना ही ब्रह्मज्ञान है। इस तत्त्वको मैं अब समझ पाया हूँ।' इतना कहकर उसने अपने पुत्रोंसे असिताङ्ग मुनिके द्वारा अपनेको शाप प्राप्त होनेकी सब कथा कह सुनायी और घोड़ेको लेकर अपने बन्धु-बान्धवोंके सहित शत्रुघ्नजीकी शरणमें जा पड़ा। वहाँ उसने कृतज्ञता प्रकट करते हुए श्रीहनुमानजीके विषयमें कहा है—

क्वासौ हनूमान् रामस्य चरणाम्भोजषट्पदः।
यत्प्रसादादहं प्राप्स्ये राजराजस्य दर्शनम्॥
साधूनां सङ्गमे किं किं प्राप्यते न महीतले।
यत्प्रसादादहं मूढो ब्रह्मशापमतीतरम्॥

(२९। ३२-३३)

'श्रीरामके चरण-कमलोंके मधुकर वे हनुमान कहाँ हैं? उन्हींकी कृपासे मैं राजाधिराज श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करूँगा। साधुसङ्ग मिल जानेपर इस पृथ्वीपर मनुष्यको क्या-क्या नहीं मिल जाता। मैं महामूढ़ था, किन्तु सत्संगके प्रभावसे आज घोर ब्रह्मशापसे मेरा उद्धार हो गया।'

उसके बाद अनेक देशोंको विजय करते-करते जब घोड़ा राजा सत्यवान्के नगरसे आगे जा रहा था, उस समय विद्युन्माली नामके राक्षसने रास्तेमें उस घोड़ेको चुरा लिया और अपने सैनिक राक्षसोंके सहित विमानमें बैठकर आकाशमें जाकर प्रकट हुआ। वहाँ उस राक्षसके साथ शत्रुघ्नकी सेनाका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। उस समय श्रीहनुमानजीने उस राक्षसके साथ युद्धमें अपना पराक्रम दिखलानेकी जो प्रतिज्ञा की है, उससे इस बातका पता लगता है कि श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामपर कितना भरोसा रखते थे। वे भगवान् श्रीरामकी कृपाके भरोसेपर अपनी अद्भुत शक्ति मानते थे। उन्होंने पहले जैसी प्रतिज्ञा की, उसी प्रकार युद्धमें भी अपना अद्भुत पराक्रम दिखाया। वे आकाशमें जाकर

विमानपर शत्रुपक्षके महान् दैत्योंको नखोंसे विदीर्ण करके मौतके घाट उतारने लगे। किन्हींको पूँछसे मार डाला, किन्हींको पैरोंसे कुचल डाला और किन्हींको हाथोंसे चीर डाला। जब क्रोधमें भरकर राक्षसराज विद्युन्मालीने अत्यन्त तेजस्वी भयानक त्रिशूलका प्रहार किया, तब उसे हनुमानजीने अपने मुँहमें पकड़ लिया और दाँतोंसे चबाकर चूर-चूर कर डाला तथा उस दैत्यराजको थप्पड़ोंकी मारसे व्याकुल कर दिया। इसके बाद श्रीशत्रुघ्नजीने विद्युन्माली और वज्रदंष्ट्रको मार गिराया। बचे-खुचे राक्षस उनकी शरणमें आ गये।

वहाँसे जाकर वे आरण्यक मुनिसे मिले। इसके बाद वह घोड़ा देवपुरके पास पहुँचा। वहाँ राजा वीरमणि और उसके पुत्रोंसे शत्रुघ्नकी सेनाका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। राजा वीरमणि भगवान् शंकरका परम भक्त था। अत: वहाँ उसकी सहायताके लिये स्वयं भगवान् शंकर भी अपने गणोंके सहित रणक्षेत्रमें युद्ध करनेके लिये पधारे थे। उस भयानक युद्धमें जब राजकुमार पुष्कल मारे गये और शत्रुघ्न भी मूर्च्छित हो गये, उस समय श्रीहनुमानजीने अद्भुत पराक्रम दिखाया। साक्षात् भगवान् शंकरके साथ उन्होंने घोर युद्ध किया तथा सारथि और घोड़ोंके सहित शिवजीके रथको चूर-चूर कर डाला। जब भगवान् शिवजी नन्दीपर सवार होकर युद्ध करने लगे, तब श्रीहनुमानजीने शालवृक्षका प्रहार करके शिवजीको व्याकुल कर दिया। अब भगवान् शंकरने उनपर अपना त्रिशूल चलाया। हनुमानजीने उसे पकड़ लिया और क्षणभरमें तोड़कर तिल-तिल कर डाला। नाना प्रकारके प्रहारोंसे शिवजीको व्यथित करके अन्तमें भूतनाथ भगवान् शिवको अपनी पूँछमें लपेट लिया। यह देखकर नन्दी भयभीत हो गये। इस प्रकार जब हनुमानजीने शिवजीको अत्यन्त व्याकुल कर दिया तब हनुमान्‌जीके युद्धसे प्रसन्न होकर शंकर कहने लगे—'श्रीरघुनाथजीके सेवक हनुमान! तुम धन्य हो। आज तुमने महान् पराक्रम कर दिखाया। इससे मुझे बड़ा संतोष हुआ। अत: तुम मुझसे वर माँगो।'

इसपर हनुमानजीने हँसकर निर्भय वाणीसे कहा—'महेश्वर! रघुनाथजीकी कृपासे मुझे सब कुछ प्राप्त है; तथापि आपकी प्रसन्नताके लिये मैं यही वर माँगता हूँ कि जबतक मैं द्रोणपर्वतपर जाकर औषध ले आऊँ, तबतक आप अपने गणोंसहित हमारे पक्षके मरे हुए वीरोंके शरीरकी रक्षा करते रहें। उन्हें कोई खण्ड-खण्ड न करने पाये।' शिवजीने उनकी माँग स्वीकार कर ली। उसके बाद हनुमानजी जिस प्रकार लंकापुरीमें संजीवनी बूटी लाये थे, उसी प्रकार तुरंत ही द्रोणपर्वतसे संजीवनी बूटी ले आये। पहले उन्होंने राजकुमार पुष्कलको जिलाया, उसके बाद शत्रुघ्नकी मूर्च्छा दूर की और फिर समस्त वीरोंको जीवन-दान दिया। इस प्रकार उस भयानक युद्धमें श्रीहनुमानजीके ही पराक्रमसे सबके प्राण बचे। अन्तमें वहाँ भगवान् श्रीराम स्वयं पधारे। भगवान् शिवजीने राजा वीरमणिको समझाकर श्रीरामका भक्त बना दिया।

इसके बाद वह घोड़ा अनेक देश-देशान्तरोंमें घूमता हुआ राजा सुरथसे रक्षित कुण्डलनगरके पास पहुँचा। राजा सुरथ भगवान् श्रीरामका परम भक्त था। उसने भगवान् श्रीरामके दर्शनार्थ उनके घोड़ेको पकड़ लिया। वहाँपर राजा सुरथके साथ शत्रुघ्नका बड़ा ही भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्धमें जब राजा सुरथका पुत्र चम्पक राजकुमार पुष्कलको बाँधकर अपने नगरमें ले जाने लगा, उस समय शत्रुघ्नकी प्रेरणासे श्रीहनुमानजी वहाँ गये। जाते ही उन्होंने रथसे चम्पकको उठा लिया और वे उसे लेकर आकाशमें चले गये। वह आकाशमें ही हनुमानजीसे बाहुयुद्ध करने लगा। राजकुमार चम्पकका अद्‌भुत पराक्रम देखकर हँसते-हँसते हनुमानजीने उसका पैर पकड़ लिया और उसे सौ बार घुमाकर हाथीके हौदेपर दे मारा। राजकुमार गिरते ही मूर्च्छित हो गया।

अपने पुत्रको मूर्च्छित हुआ देख राजा सुरथ स्वयं हनुमानजीसे युद्ध करनेके लिये आये। उन्होंने श्रीहनुमानजीके बल और पराक्रमकी तथा श्रीराम-भक्तिकी सच्चे हृदयसे प्रशंसा की और साथ ही यह प्रतिज्ञा भी की कि 'मैं तुम्हें बाँधकर अपने नगरमें ले जाऊँगा।' उसकी बातका उत्तर देते हुए श्रीहनुमानजीने कहा कि 'राजन्! आप श्रीरघुनाथजीके चरणोंका चिन्तन करनेवाले हैं और मैं भी उन्हींका सेवक हूँ। यदि आप मुझे बाँध लेंगे तो मेरे स्वामी मुझे बलपूर्वक छुड़ा लेंगे। वीर! तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। जो श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करते हैं, उन्हें कभी दु:ख नहीं होता।'

इस प्रकार बातचीत होनेके बाद राजा सुरथके साथ हनुमानजीका भयंकर युद्ध हुआ। हनुमानजीने उस

युद्धमें राजा सुरथके एक-एक करके उनचास रथ तोड़ डाले। राजाकी समस्त सेना व्याकुल हो गयी और स्वयं राजाको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। राजाने श्रीहनुमानजीके बलकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। राजाने पाशुपतास्त्रसे हनुमानजीको बाँधनेकी चेष्टा की। एक बार तो लोगोंने समझा कि हनुमान बँध गये; परंतु श्रीहनुमानजीने अपने मनमें भगवान् श्रीरामका स्मरण करके क्षणमात्रमें उस अस्त्रके बन्धनको तोड़ डाला। राजाने ब्रह्मास्त्र चलाया तो उसे भी श्रीहनुमानजी निगल गये। अन्तमें राजाने भगवान् श्रीरामका स्मरण करके श्रीरामास्त्रको अपने धनुषपर चढ़ाया और उसका प्रयोग करके श्रीहनुमानजीसे कहा कि 'कपिश्रेष्ठ! अब तुम बँध गये।' हनुमानजीने कहा—'राजन्! तुमने मुझे मेरे स्वामी श्रीरामके ही अस्त्रसे बाँधा है, दूसरे किसी प्राकृत अस्त्रसे नहीं। इसलिये मैं उसका आदर करता हूँ। अब तुम मुझे अपने नगरमें ले जा सकते हो।'

राजा सुरथके साथ जो हनुमानजीकी बातें हुईं, उनमें अद्भुत प्रेम भरा है। श्रीहनुमानजीको भला कौन बाँध सकता है। वे तो स्वयं अपनी इच्छासे ही भगवान्‌के परम भक्त सुरथकी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये और अपने स्वामीके अस्त्रका सम्मान रखनेके लिये बँध गये।

इसके बाद वहाँ श्रीहनुमानजीके बुलानेपर स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी पधारे और उन्होंने राजा सुरथको दर्शन देकर उसे कृतार्थ किया। इस प्रकार पद्मपुराणके पातालखण्डमें श्रीहनुमानजीके महत्त्वका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। यहाँ वह बहुत ही संक्षेपमें लिखा गया है।

परम धाम पधारते समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कपिवर श्रीहनुमानजीको जगत्‌का कल्याण करनेके लिये यहीं रहनेकी आज्ञा दे गये। वाल्मीकीय रामायणमें श्रीराम परम धाम पधारते समय हनुमानजीसे कहते हैं—

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर॥
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्।

(७। १०८। ३३-३४)

'वानरश्रेष्ठ! संसारमें जबतक मेरी कथाओंका प्रचार रहे, तबतक तुम भी मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो।' महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर हनुमानजीको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने कहा—

यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी॥
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्।

(७। १०८। ३५-३६)

'प्रभो! संसारमें जबतक आपकी पावन कथाका प्रचार रहेगा, तबतक आपके आदेशका पालन करता हुआ मैं इस पृथ्वीपर ही रहूँगा।'

द्वापरयुगमें श्रीहनुमानजीने भीमसेन और अर्जुनको भी दर्शन दिये थे। कलियुगमें भी आपके प्रकट होनेकी कई कथाएँ मिलती हैं। आपके गुण, प्रभाव और माहात्म्यका बड़ा विस्तार है। यहाँ बहुत ही संक्षेपमें उसका दिग्दर्शनमात्र कराया गया है। श्रीहनुमानजीके अतुलित गुणोंका चिन्तन करके लाभ उठाना चाहिये। उन्हें आदर्श बनाकर अखण्ड ब्रह्मचर्य, अटल भगवद्भक्ति, वीरता, धीरता, बल-पौरुष, विद्या, साहस और बुद्धिमानी आदि गुण धारण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

छत्र लिये हनुमान

राम दरस करि भरत मुदित मन अति हरषाये।
गहकि मिले रघुनाथ सु-पुष्पक माहिं बिठाये॥
छत्र लिये हनुमान विभीषन चँवर हिलावें।
लिये पादुका भरत कपीश्वर व्यजन डुलावें॥
अंगद कर करबाल लै, जाम्बवान लै ढाल वर।
शोभित निज परिकर सहित, पुष्पक में मनु दिवाकर॥

—श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

पवनतनय संतन-हितकारी

(नित्यलीलालीन परम श्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

'कल्याण' के आदि सम्पादक नित्यलीलालीन परम श्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने गोस्वामी तुलसीदासजीके अधिकांश ग्रन्थोंका हिंदी-भाषान्तर किया है। उन्हें तुलसी-ग्रन्थावलीके बहुत-से पद कण्ठस्थ हो गये थे, जिन्हें वे प्रायः अपने प्रवचनोंमें कहा करते थे। उनकी श्रीहनुमानजीके प्रति विशेष निष्ठा थी; अतः वे कभी-कभी हनुमत्सम्बन्धी पदोंको भी कहा करते थे। कुछ हनुमत्परक पदोंका संकलन नीचे दिया जा रहा है—

जिसे सब प्रकारसे केसरी-नन्दन श्रीहनुमानजीका भरोसा है, उसकी ओर भला क्रोधभरी दृष्टिसे कौन ताक सकता है?॥ १॥ हनुमानजीके समान भक्तोंको प्रसन्न करनेवाला, शत्रुओंका नाश करनेवाला, दुष्टोंका मुँह तोड़नेवाला बड़ा बलवान् संसारमें और कौन है? इनका पुरुषार्थ वेदों और पुराणोंमें प्रकट है। इनके समान समस्त शूरवीरोंमें शिरोमणि दूसरा कौन है?॥ २॥ इनके समान (सुग्रीव, विभीषण आदि) राज्य-बहिष्कृतोंको पुनः स्थापित करनेवाला, सिंहासनपर स्थित (बालि, रावण आदि) राजाधिराजोंको राज्यच्युत करनेवाला, देवताओंको प्रण करके रावणके बन्धनसे छुड़ानेवाला, समुद्र लाँघकर लंकाको जलानेवाला और बड़े-बड़े बलवान् भयानक राक्षसोंके बलका नाश करनेवाला दूसरा कौन है?॥ ३॥ जिनके बाल-विनोदको याद करके अब भी प्रातःकालके सूर्यदेव डरा करते हैं, जिनकी ठोड़ीकी चोटने कठोर वज्रके दाँतोंका घमंड चूर कर दिया॥ ४॥ बड़े-बड़े लोकपाल भी जिनका कृपाकटाक्ष चाहते हैं, ऐसे रणबाँकुरे हनुमानजीकी जो सेवा करता है, वह सदा निडर रहता है, शत्रुओंपर विजयी होता है और संसारके सभी सुख तथा कल्याणरूप मोक्षको प्राप्त करता है॥ ५॥ पूर्णकला-सम्पन्न चन्द्रमा-जैसे श्रीरामचन्द्रजीके मुखको अनिमेष-दृष्टिसे देखनेवाले चकोररूप हनुमानजीका नाम भक्तोंके लिये कल्पवृक्षके समान है। हे तुलसीदास! गयी हुई वस्तुको फिरसे दिला देनेवाले श्रीहनुमानजीका जो गुण गाता है, अर्थ, धर्म, काम, मोक्षरूप चारों फल सदा उसकी हथेलीपर धरे रहते हैं॥ ६॥

ताकिहै तमकि ताकी ओर को।
जाको है सब भाँति भरोसो कपि केसरी-किसोरको॥ १॥
जन-रंजन अरिगन-गंजन मुख-भंजन खल बरजोरको।
बेद-पुरान-प्रगट पुरुषारथ सकल-सुभट-सिरमोरको॥ २॥
उथपे-थपन, थपे उथपन पन, बिबुधबृंद बँदिछोरको।
जलधि लाँघि दहि लंक प्रबल बल दलन निसाचर घोरको॥ ३॥
जाको बालबिनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोरको।
जाकी चिबुक-चोट चूरन किय रद-मद कुलिस कठोरको॥ ४॥
लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत बिलोचन-कोरको।
सदा अभय, जय, मुद-मंगलमय जो सेवक रनरोरको॥ ५॥
भगत-कामतरु नाम राम परिपूरन चंद चकोरको।
तुलसी फल चारों करतल जस गावत गई बहोरको॥ ६॥ (वि० प० ३१)

* * *

हे हठीले (भक्तोंके कष्ट बरबस दूर करनेवाले) हनुमान! तुझे ऐसा नहीं चाहिये। श्रीराम-सरीखे तो कहीं स्वामी नहीं हैं और तेरे समान कहीं सहायक नहीं है॥ १॥ यह होते हुए भी आज तेरे देखते-देखते मुझ सिंहके बच्चेको (तुझ सिंहरूप सहायकके शरणागत मुझ बालकको) कलियुगरूपी मेंढक (जिसकी तेरे सामने कोई हस्ती

नहीं है) निगले लेता है। मालूम होता है, इस कलियुगने तेरे भक्तवत्सलता, शरणागतकी रक्षाके लिये हठकारिता, उदारता आदि गुणोंको कील दिया है॥ २॥ एक दिन तेरी हुंकार सुनते ही रावणके अङ्ग-अङ्गके जोड़ ढीले पड़ गये थे, वह तेरा बल-पराक्रम आज कहाँ गया? अथवा क्या तू अब दयालुके बदले घमंडी हो गया है?॥ ३॥ आज तेरे सेवकका पर्दा फट रहा है, उसे तू सी दे,—जाती हुई इज्जतको बचा दे, तू बड़ा समर्थ है, पहले तो तू सेवकको अपनेसे अधिक मानता, उसकी सुनता और सहता था, पर अब क्या हो गया?॥ ४॥ इस तुलसीदासके संकटको सुनकर उसे दूर करके यह सुयश तू ही ले ले। वास्तवमें तो जो रामके रँगीले भक्त हैं, उनका तीनों कालोंमें कल्याण ही है॥ ५॥

ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले।
साहेब कहूँ न रामसे, तोसे न उसीले॥ १॥
तेरे देखत सिंहके सिसु मेंढक लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मन गुनगन कीले॥ २॥
हाँक सुनत दसकंधके भये बंधन ढीले।
सो बल गयो किधौं भये अब गरबगहीले॥ ३॥
सेवकको परदा फटे तू समरथ सीले।
अधिक आपुते आपुनो सुनि मान सही ले॥ ४॥
साँसति तुलसीदासकी सुनि सुजस तुही ले।
तिहूँकाल तिनको भलौ जे राम-रँगीले॥ ५॥ (वि० प०३२)

* * *

हे सर्वशक्तिमान् पवनकुमार! हे श्रीरामजीके प्यारे! तुझे मुझपर जो कुछ करना हो सो भैया अभी कर ले॥ १॥ तेरे प्रतापसे इमलीके चियें भी (रुपये-अशरफीकी जगह) चल सकते हैं; अर्थात् यदि तू चाहे तो मेरे-जैसे निकम्मोंकी भी गणना भक्तोंमें हो सकती है। फिर मेरे लिये, हे त्रिभुवन-उजागर! इतना अँधेरा क्यों कर रखा है?॥ २॥ पहले मेरी कौन-सी अच्छी करनी जानकर तूने मुझे अपना दास समझा था तथा मेरा सम्मान किया था और अब किस पाप तथा अवगुणसे मुझे हाथसे फेंक दिया, अपनाकर भी त्याग दिया॥ ३॥ मैंने तो सदासे ही तेरे नामपर टुकड़ा माँगकर खाया है, तेरी बलैया लेता हूँ, मैं तो तेरे ही बलके भरोसेपर जगत्‌में उजागर होकर अबतक जीता रहा हूँ॥ ४॥ जो मैं तुझसे विमुख होता तो मेरा हृदय ही उसमें कारण होता, फिर मैं निज परिवारके मनुष्यकी तरह भली-बुरी सुनाकर तुझे अपना मुँह कैसे दिखाता॥ ५॥ तू मेरे मनकी सब कुछ जानता है; क्योंकि तेरे समान ज्ञानकी खानि और सबके मनकी जाननेवाला दूसरा कौन है? यह तो मैं भी समझता हूँ कि स्वामीके साथ द्रोह करनेवालेको नष्ट-भ्रष्ट हो जाना पड़ता है॥ ६॥ तेरे स्वामी श्रीरामजी और स्वामिनी श्रीसीताजी-सरीखी हैं, वहाँ तुलसीदासका तेरे सिवा और किस मनुष्यका और किस वस्तुका सहारा है? इसलिये तू ही मुझे वहाँतक पहुँचा दे॥ ७॥

समरथ सुअन समीरके, रघुबीर-पियारे।
मोपर कीबी तोहि जो करि लेहि भिया रे॥ १॥
तेरी महिमा ते चलैं चिंचिनी-चिया रे।
अँधियारो मेरी बार क्यों, त्रिभुवन-उजियारे॥ २॥
केहि करनी जन जानिकै सनमान किया रे।
केहि अघ औगुन आपने कर डारि दिया रे॥ ३॥
खाई खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे।
तेरे बल, बलि, आजु लौं जग जागि जिया रे॥ ४॥

जो तोसों होतौ फिरौं मेरो हेतु हिया रे।
तौ क्यों बदन देखावतो कहि बचन इयारे॥ ५॥
तोसो ग्यान निधान को सरबग्य बिया रे।
हौं समुझत साईं-द्रोहकी गति छार छिया रे॥ ६॥
तेरे स्वामी राम से, स्वामिनी सिया रे।
तहँ तुलसीके कौनको काको तकिया रे॥ ७॥ (वि० प० ३३)

* * *

हे हनुमानजी! अति पीड़ित, अति स्वार्थी, अति दीन और अति दुःखीके कहेका बुरा नहीं मानना चाहिये; क्योंकि ये घबराये हुए रहनेके कारण भले-बुरेका विचार करके नहीं बोलते॥ १॥ संसारमें यह प्रत्यक्ष देखा-सुना जाता है कि वर्षा अधिक होने या बिलकुल न होनेपर व्याकुल हुए स्त्री-पुरुष दैवको गालियाँ सुनाया करते हैं; परंतु इसका परमेश्वर कोई ख्याल नहीं करता॥ २॥ जब कलियुगके कष्ट और भवसागरके भारी भयसे मेरे नाकों दम आ गया, तभी मैं भली-बुरी कह बैठा। अब तुम अपनी भक्तवत्सलताकी ओर देखकर मुझे क्षमा कर दो॥ ३॥ संकटके समय लोग समर्थ और अपने हितकारीको ही याद करते हैं और वह भी उनके सारे अपराधोंको भुलाकर उनकी सब प्रकारसे रक्षा करता है॥ ४॥ सेवककी भूलोंको सदासे स्वामी ही सुधारते आये हैं। फिर इस तुलसीदासपर तो तुम्हारी एक निराली एवं निश्छल कृपा है॥ ५॥

अति आरत, अति स्वारथी, अति दीन-दुखारी।
इनको बिलगु न मानिये, बोलहिं न बिचारी॥ १॥
लोक-रीति देखी सुनी, व्याकुल नर-नारी।
अति बरषे अनबरषेहूँ, देहिं दैवहिं गारी॥ २॥
नाकहि आये नाथसों, साँसति भय भारी।
कहि आयो, कीबी छमा, निज ओर निहारी॥ ३॥
समै साँकरे सुमिरिये, समरथ हितकारी।
सो सब बिधि ऊबर करै, अपराध बिसारी॥ ४॥
बिगरी सेवककी सदा, साहेबहिं सुधारी।
तुलसीपर तेरी कृपा, निरुपाधि निरारी॥ ५॥ (वि० प० ३४)

* * *

जब संकट पड़ता है, तभी अपने स्वामीको भला-बुरा कहा जाता है और अच्छे स्वामी यह समझ-बूझकर अपनी भलाईसे उस बुरे सेवकका भी भला कर देते हैं॥ १॥ समर्थ, कल्याणकारी और ऐसे शूरवीरको पाकर जो दूसरोंकी विपत्तिमें सहायता देता है, सब लोग उस ओर ऐसे देखा करते हैं, जैसे समुद्रके पास नदियाँ बिना बुलाये ही दौड़-दौड़कर जाती हैं॥ २॥ संसारमें सभी स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी भलाई चाहते हैं, शुभ-अशुभके नातेसे जो (देवता) जिसको अच्छा लगता है, वह उसी (देवता)-को भजता है। मुझे तो एक तुम्हारा ही भरोसा है॥ ३॥ जिसे जबरदस्ती अपने बलका भरोसा देकर रख लिया, वह यदि तुम्हारी सेवा नहीं करता तो भी उसे सेवककी तरह पालना चाहिये॥ ४॥ भूल और चञ्चलता तो सब मेरी ही है, पर तुम बड़े हो, मुझ-जैसे अपराधियोंको क्षमा करनेमें ही तुम्हारी बड़ाई है। यह तो सभी जानते हैं कि आदर करनेसे नीच भी ढीठ हो जाता है और नीचता करने लगता है॥ ५॥ तुम बन्धनोंसे छुड़ानेवाले हो—तुम्हारा ऐसा सुयश वेद-शास्त्र गाते हैं। मुझ तुलसीदासका भला अब तुम्हारी भलाईसे ही होगा; अन्यथा मैं तो किसी भी योग्य नहीं हूँ॥ ६॥

कटु कहिये गाढ़े परे, सुनि समुझि सुसाईं।
करहिं अनभलेउ को भलो, आपनी भलाई॥ १॥
समरथ सुभ जो पाइये, बीर पीर पराई।
ताहि तकें सब ज्यों नदी बारिधि न बुलाई॥ २॥
अपने अपनेको भलो, चहैं लोग लुगाई।
भावै जो जेहि तेहि भजै, सुभ असुभ सगाई॥ ३॥
बाँह बोलि दै थापिये, जो निज बरिआई।
बिन सेवा सों पालिये, सेवककी नाई॥ ४॥
चूक-चपलता मेरियै, तू बड़ो बड़ाई।
होत आदरे ढीठ है, अति नीच निचाई॥ ५॥
बंदिछोर बिरुदावली, निगमागम गाई।
नीको तुलसीदासको, तेरियै निकाई॥ ६॥ (वि० प० ३५)

* * *

पवनकुमार हनुमानजी कल्याणकी मूर्ति हैं। वे सारी बुराइयोंकी जड़ काटनेवाले हैं॥ १॥ पवनके पुत्र हैं, संतोंका हित करनेवाले हैं। अवधविहारी श्रीरामजी सदा इनके हृदयमें विराजते हैं॥ २॥ इनके तथा माता-पिता, गुरु, गणेश, सरस्वती, पार्वतीसहित शिवजी, शुकदेवजी, नारद॥ ३॥ इन सबके चरणोंमें प्रणाम करके मैं यह विनती करता हूँ कि श्रीरघुनाथजीके चरण-कमलोंमें मेरा प्रेम सदा एक-सा निभता रहे, यह वरदान दीजिये॥ ४॥ अन्तमें मैं श्रीराम, लक्ष्मण और जानकीजीको प्रणाम करता हूँ, जो तुलसीदासके परमप्रेमी और सर्वस्व हैं॥ ५॥

मंगल-मूरति मारुत-नंदन। सकल-अमंगल-मूल-निकंदन॥ १॥
पवनतनय संतन-हितकारी। हृदय बिराजत अवध-बिहारी॥ २॥
मातु-पिता-गुरु, गनपति, सारद। सिवा-समेत संभु, सुक, नारद॥ ३॥
चरन बंदि बिनवौं सब काहू। देहु रामपद-नेह-निबाहू॥ ४॥
बंदौं राम-लखन-बैदेही। जे तुलसीके परम सनेही॥ ५॥ (वि० प० ३६)

प्राणरक्षक श्रीहनुमानका सत्कार

आयो हनुमानु प्रानहेतु, अंकमाल देत,
लेत पगधूरि एक, चूमत लँगूल हैं।
एक बूझैं बार-बार सीय-समाचार, कहैं
पवनकुमारु, भो बिगत-स्त्रम-सूल हैं॥
एक भूखे जानि, आगें आनैं कंद-मूल-फल,
एक पूजैं बाहु बलमूल तोरि फूल हैं।
एक कहैं 'तुलसी' सकल सिधि ताकें जाकें
कृपा-पाथनाथ सीतानाथु सानुकूल हैं॥

(कवितावली, सु० ३०)

भक्तराज हनुमानकी अलौकिक ज्ञाननिष्ठा

श्रीहनुमानजी केवल उत्तम भक्त ही नहीं, अपितु 'ज्ञानिनामग्रगण्य' भी हैं। ऐसी एक श्रोत्र-परम्परा है कि श्रीहनुमानजी महाराजने भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकारसे कहा—

देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
वस्तुतस्तु त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥

वास्तवमें हनुमानजीका सम्पूर्ण जीवन ही उपर्युक्त श्लोककी एक आचरणात्मक व्याख्या है, जो मानवमात्रके लिये अत्यन्त उपयोगी एवं जीवनमें धारण करने योग्य है। ऐसा प्रतीत होता है मानो इस श्लोकमें श्रीहनुमानजीने अपने कथनमें एक साथ ज्ञान एवं भक्तिका सम्पूर्ण निचोड़ भर दिया हो। कहा भी गया है—

पारमार्थिकमद्वैतं द्वैतं भजनहेतवे।
तादृशी यदि भक्तिः स्यात् सा तु मुक्तिशताधिका॥
द्वैतं मोहाय बोधात्प्राग् जाते बोधे मनीषया।
भक्त्यर्थं भावितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्॥

(बोधसार)

अर्थात् 'पारमार्थिक अद्वैत ज्ञान होनेपर यदि उसे भजनोपयोगी द्वैत मानकर भगवान्‌में भक्ति की जाती है तो ऐसी भक्ति सैकड़ों मुक्तियोंसे भी कहीं बढ़कर है। प्रत्यक्‌चैतन्याभिन्न परब्रह्मका ज्ञान होनेके पहले द्वैत बन्धनका कारण होता है, किंतु ज्ञानके बाद भेद-मोहके निवृत्त हो जानेपर भक्तिके लिये भावित द्वैत अद्वैतसे भी सुन्दर है।'

जिस आत्मीयता एवं भगवत्कार्य-दक्षतापूर्वक तत्परतासे उन्होंने इस सम्बन्धका अपने जीवनमें आद्योपान्त निर्वाह किया है, वह देखते ही बनता है। उनकी विनम्रतासे परिपूर्ण दास्यरति सबके मनको बरबस आकृष्ट कर लेती है। हनुमानजी नवों व्याकरणों एवं सम्पूर्ण वेद-शास्त्रोंके वेत्ता श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ हैं, अतएव 'ज्ञानिनामग्रगण्य' के रूपमें उनकी सर्वत्र प्रसिद्धि है। ऐसा विशिष्ट विद्वान् होते हुए भी उनके जीवनमें अभिमानकी गन्ध भी नहीं है। श्रीराघवेन्द्रकी छोटी-सी-छोटी सेवा करनेमें उन्हें किंचिन्मात्र भी संकोच नहीं होता, अपितु उनके हृदयमें सदैव सेवा करनेका उत्साह भरा रहता है। वे भगवत्कार्यके लिये लंकामें राक्षसोंके द्वारा किया गया अपमान सहते हैं, बन्धन स्वीकार करते हैं एवं उन क्षुद्र प्राणियोंकी गाली, लात, दुत्कार एवं अनादर भी सहन करते हैं, किंतु उनके मनमें अपमानादिका जरा भी असर नहीं होता। उनकी यह दृढ़ निष्ठा और आचरण मानवमात्रको यह शिक्षा दे रहा है कि बिना सेवा किये देहाभिमान दूर नहीं हो सकता और भगवत्प्राप्तिमें सबसे बड़ी बाधा देहाभिमान ही है, अतः इसे दूर करनेके लिये सबसे सुगम उपाय है—भगवत्प्रदत्त तन, मन, धन आदि सम्पूर्ण सामग्रीद्वारा साक्षात् भगवान् एवं भगवत्स्वरूप जनताकी सेवा करना। हमें शरीर, मन, बुद्धि, विद्या, योग्यता, शक्ति, समय, सामर्थ्य, सामग्री आदि समस्त वस्तुएँ जनता-जनार्दन अर्थात् माता, पिता, गुरुजन, शिक्षक एवं समाज आदिसे ही प्राप्त हुई हैं। अतः उचित यही है कि सबको भगवत्स्वरूप समझकर उन्हींकी वस्तु उन्हींकी सेवामें लगा दें एवं बदलेमें उनसे अपने लिये कुछ भी (सुख, सेवा, सम्मान, प्रत्युपकार आदि) न चाहें। जब उन्हींकी वस्तु उन्हींको दी जा रही है, तब अपने लिये कुछ भी चाह कैसी? जीवनमें कठिनाई, अशान्ति, असंतोष, दुःख, संताप और चिन्ताएँ आदि तभीतक हैं जबतक हम यह सोचते हैं कि 'हम तो सभी प्रकारसे लोगोंकी सेवा एवं उनके साथ अच्छा व्यवहार करते हैं, परंतु वे लोग हमारे साथ वैसा नहीं करते, प्रत्युत विपरीत ही आचरण करते हैं।' साधकको अपने हृदयमें कभी भी इस विपरीत भावनाको स्थान नहीं देना चाहिये। उसकी दृष्टि तो अविचल रूपसे केवल अपने कर्तव्य-पालनकी ओर ही रहनी चाहिये, दूसरोंके कर्तव्यकी ओर ध्यान जाना तो अपने कर्तव्यसे च्युत होना है।

'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।'

(गीता १८। ४५)

—कर्मयोगी किसी भी अवस्थामें अपने लिये कुछ भी नहीं चाहता और जो मिला है, उसे भी अपना नहीं मानता।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(गीता २। ४७)

इस प्रकार श्रीहनुमानजीके जीवनके अनुशीलनसे हमें यह एक बड़ी रहस्यपूर्ण प्रेरणा मिलती है कि हम जहाँ, जिस समय, जैसी भी परिस्थितिमें हों, उसी स्थितिमें रहकर स्वतः प्राप्त अपने कर्तव्योंका भलीभाँति पालन

करनेसे परम सिद्धिको प्राप्त कर सकते हैं, अर्थात् कृतकृत्य हो सकते हैं।

'जीवदृष्ट्या त्वदंशकः' से हनुमानजीका यह तात्पर्य था कि जीव-दृष्टिसे मैं आपका अंश हूँ और आप अंशी हैं। आप समुद्र हैं और मैं उसका एक बिन्दु हूँ।

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।'

(गीता १५। ७)

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

अपनेको भगवान्‌का अंश मानकर उपासना करना **'भक्तियोग'** है। इसके दो प्रकार हो सकते हैं—१-भगवान् मेरे लिये हैं और २-मैं भगवान्‌के लिये हूँ।

सूक्ष्म विचारानुसार प्रथम प्रकारमें भगवान्‌को अपना मानकर उनपर (एक तरहसे) भक्तके अधिकारका वैसा ही भाव अभिव्यक्त होता है, जैसा अपनी वस्तुपर सभीको होता है। इसके अनुसार भक्त भगवान्‌से अपने अनुकूल जो चाहे करा ले, उनसे जो चाहे ले ले, ऐसी भावना हो सकती है। दूसरा प्रकार उत्कृष्ट भक्तिका है। इसमें भक्त सर्वथा भगवान्‌का यन्त्र बनकर रहता है। कठपुतलीकी भाँति भगवान् उसे जैसे चाहें नचावें; क्योंकि वह दृढतापूर्वक यह मानता है कि शरीर, मन, बुद्धि—यहाँतक कि वह स्वयं भी भगवान्‌की ही वस्तु है। भगवान्‌का जो भी, जैसा भी विधान होता है, उसमें वह हर प्रकारसे प्रसन्न रहता है। वह अपनी अहंता और ममताको पूर्णरूपसे भगवान्‌में विलीन कर देता है, अतः उसके सब कार्य भगवदिच्छासे ही होते हैं। हनुमानजीका जीवन इसी भक्ति-भावनासे पूर्णतया ओत-प्रोत है। उनकी प्रत्येक चेष्टा, उद्योग, क्रिया-कलाप आदि श्रीरामजीके संकल्प एवं प्रेरणासे होते हैं। जिस साधकके जीवनमें यह भावना सर्वथा प्रतिष्ठित हो जाती है, उसे भगवत्प्राप्तिमें देर नहीं लगती। उसे कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता।

'वस्तुतस्तु त्वमेवाहम्' कहनेमें श्रीहनुमानजीका बहुत गूढ़ भाव है। वास्तवमें श्रीराम सच्चिदानन्दघन परब्रह्मस्वरूप हैं और मैं भी वही हूँ। मैं शरीरादि नहीं हूँ और न ये मेरे हैं। साधकद्वारा इस अहंता और ममताका त्याग होते ही उसे परमात्मतत्त्वका ज्ञान हो जाता है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि इसलिये मेरे नहीं हैं; क्योंकि ये सब प्रकृतिके कार्य हैं। मैं प्रकृतिसे सर्वथा अतीत हूँ और इनपर मेरा आधिपत्य भी नहीं।

यदि ये वास्तवमें अपने होते तो अपनी वस्तु मिल जानेपर और मिल जाय ऐसा भाव नहीं रहता। जब साधकको अपनी वास्तविक वस्तु—अर्थात् स्वरूपकी प्राप्ति हो जाती है, तब फिर जीवनमें कोई अभाव शेष नहीं रह जाता अर्थात् पूर्णता प्राप्त हो जाती है। अतः यथार्थतः ये शरीर, इन्द्रिय, मन या बुद्धि आदि न तो मेरे हैं और न 'मैं' हूँ। मात्र व्यवहारके लिये ये मेरे कहलाते हैं।

जो मेरा होता है, वह 'मैं' से अलग होता है—ऐसा नियम है। जैसे—मेरा घर, मेरी पुस्तकें, उसी प्रकार मेरा शरीर आदि। सुषुप्ति-कालमें 'मैं' कहलानेवाला 'अहं' भी नहीं रह जाता, केवल सत्ता ही रहती है, परंतु साथमें लेशमात्र जड़ता भी रहती है। जागते ही 'मैं' उसके साथ मिलकर कहता है कि 'मैं' सुखसे सोया। यह बोधस्वरूप साक्षी आत्मा जीवका वास्तविक स्वरूप है और वही सच्चिदानन्दघन परमात्मा है। उपनिषदोंमें उसी तत्त्वका—**'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च'** (श्वेता० उ० ६। ११)-के रूपमें वर्णन किया गया है।

अपने उस परमानन्दमय आत्मस्वरूपकी विस्मृतिसे जीवका इतना अधिक पतन हो जाता है कि वह अपने वास्तविक स्वरूपसे च्युत होकर प्रकृतिके कार्य एकदेशीय 'अहं' को अपना स्वरूप मान बैठता है और इसका क्रमशः अधःपतन होते-होते वह इतना मोहित हो जाता है कि बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, शरीर, धन, विषयभोग—इन प्राकृतिक पदार्थोंमें आसक्त होकर उनका दास बन जाता है। इतना ही नहीं, संग्रह तथा भोगके लिये निःसंकोच शास्त्र-निषिद्ध आचरण भी करने लगता है। इस प्रकार वह अपने स्वरूप (परमात्मतत्त्व)-से अत्यन्त विमुख हो जाता है, किंतु भगवान् इतने दयालु हैं कि इतनेपर भी यदि जीव उनकी ओर अभिमुख हो जाय तो वे इसे उस अधोगतिसे भी तुरंत ऊपर उठानेके लिये लालायित हैं—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

प्रकृतिकी वस्तुएँ—शरीर, मन, बुद्धि, अहं (मैं) आदि सब बदलनेवाली हैं। (१) मैं, तू, यह, वह—ये चारों ही एक ज्ञान (प्रकाश)-के अन्तर्गत दीखते हैं। वह ज्ञान 'मैं' और 'तू', 'यह', 'वह'—सबको समानरूपसे

प्रकाशित करता है, फिर भी यह जीव एकदेशीय 'मैं' में स्थित होकर उससे अपना सम्बन्ध मान लेता है। तटस्थ होकर देखें तो व्यवहारमें भी 'मैं' कहनेवाले आप अकेले ही हैं, इससे 'तू' कहनेवाले अधिक हैं तथा 'यह' और 'वह' कहनेवाले तो बहुत अधिक संख्यामें मिलेंगे। इस विषयमें मत लिया जाय तो 'मैं' हूँ—ऐसा एक ही मत मिलेगा। फिर भी 'मैं' को तो दृढ़कर अपना लिया गया तथा 'तू', 'यह' और 'वह' की उपेक्षा कर दी गयी। वास्तवमें तो मैं, तू, यह, वहकी आधारभूत सत्ता ही 'अपना स्वरूप' है; इस व्यापक सत्ताको जड, विकारी, तुच्छ एवं एकदेशीय व्यक्तित्वमें संकुचित करना ही शुद्ध, बुद्ध एवं नित्य-मुक्त चेतनका जीवमात्रको प्राप्त होना है। वस्तुत: ये (मैं, तू, यह, वह) बदलनेवाले हैं तथा इनके परिवर्तनको देखनेवाला एक अपरिवर्तनशील साक्षी तत्त्व है। वही जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओं, उनकी संधियों और उनके अभावोंको जानता है तथा सबसे निर्लिप्त रहता हुआ भी सबमें अनुस्यूत रहता है। वही बाल्य, युवा और वृद्ध आदि सभी अवस्थाओंका ज्ञाता एवं प्रकाशक भी है। वह इस शरीरके मिलनेसे पूर्व भी था और मरनके बाद भी रहेगा। वह सभी कालों, सभी देशों एवं सभी वस्तुओं और व्यक्तियोंमें नित्य-निरन्तर ज्यों-का-त्यों एकरस रहता है।

प्रकृति और उसके समस्त कार्य उस तत्त्वके अन्तर्गत उसके किसी एक अंशमें रहते हैं। याज्ञवल्क्य, गार्गी, मदालसा, अष्टावक्र, दत्तात्रेय, व्यास, वसिष्ठ, जनक, शुक, शंकराचार्य आदि ऋषियों, महर्षियों, आचार्यों एवं संतोंको जो ज्ञान प्राप्त हुआ था, वही आज हम सबको भी मिल सकता है; क्योंकि उसका कभी परिवर्तन या अभाव नहीं होता—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(गीता २। १६)

उस अचल एवं नित्य तत्त्वके अस्तित्वसे ही प्रकृतिजन्य पदार्थोंमें सत्ता प्रतीत होती है। यह सबको अनुभव होता है कि 'मैं हूँ।' अपना कभी भी अभाव नहीं होता, अत: 'मैं नहीं हूँ'—यह कहना नहीं बन सकता। उसमें 'हूँ' अस्तित्वका वाचक है। 'मैं' तो बदलता रहता है। यह 'हूँ' 'है' का ही एक रूप है। देश-काल और व्यक्तिका सङ्ग करनेके कारण ही 'है', जो एक व्यापक सत्ता एवं अस्तित्वका वाचक है, वह 'हूँ' में परिच्छिन्न (संकुचित) हुआ-सा प्रतीत होता है। अत: जब साधक सूक्ष्मातिसूक्ष्म अहंकारको भी त्याग देता है, तब उसका संकीर्ण 'हूँ' पना 'है' अर्थात् व्यापक सच्चिदानन्दघन ब्रह्मस्वरूपमें लौट जाता है। इसे ही 'स्वरूपका बोध' होना कहते हैं। यह अनुभव जिस साधकको हो जाता है, उसके जीवनमें कुछ जानना शेष नहीं रह जाता अर्थात् वह सर्वज्ञ हो जाता है। इस ज्ञानके अनुसार जो हनुमान हैं, वही श्रीरामजी हैं और जो श्रीरामजी हैं, वही हनुमान हैं। उनमें कोई वास्तविक भेद न था, न है और न कभी हो ही सकता है। हनुमानजीका ऐसा स्वत: सिद्ध अनुभव है। यह है उनकी ज्ञाननिष्ठाकी अलौकिकता! —स्वामी रामसुखदास

अञ्जनीकुमारका दिव्य-कीर्तन

अञ्जनी-कुमार, करतार दोऊ हाथनमें,
रोम-रोम राम-ध्वनि तिहुँ लोक छा रही।
थिरकत प्रति-अङ्ग, बहु भाव भङ्गिमामें,
हृदय-कमल बिच राम-छवि छा रही॥
चलि है सुगङ्ग द्वय-नेत्र सौं प्रेमाश्रुओंकी,
राम-प्रेम-अम्बुधि समाने द्रुत जा रही।
'भीकम' निहार भक्त मारुतिका दिव्य-प्रेम,
राम खिंचे आ रहे औ भक्ति सरसा रही॥

—भीकमचन्द व्यास

'ऐसो को उदार जग माहीं'

(लेखक—श्रीब्रह्मेशजी भटनागर, एम्० ए०)

पट्टमहिषी सत्यभामा चित्रशालामें दर्शिकासे प्रत्येक चित्रका परिचय मनोयोगसे सुनती जाती थीं। सहसा वे एक चित्रके सामने रुकीं। चित्रको देखकर विस्मय-विमुग्ध वे हठात् बोलीं—'प्रभुके समीप बैठी हुई ये देवी कौन हैं, चित्रा? मैंने इन्हें कभी नहीं देखा था। साथ ही यह चरणोंमें कौन बैठा है?'

'सच कहती हैं, महारानी! आपने इन्हें कभी नहीं देखा होगा। ये द्वारकाधीश नहीं हैं, ये तो मर्यादापुरुषोत्तम अयोध्यानरेश भगवान् श्रीराम हैं और इनके वामाङ्गमें सुशोभित ये महारानी सीता हैं। इनके चरणोंमें अर्चना करते हुए श्रीरामके अनन्य सेवक अञ्जनीनन्दन हनुमान हैं।'

मैं विस्मित थी, वंशीधारीको धनुषधारीके रूपमें देखकर; किंतु कितनी अभिन्नता है दोनोंके रूपोंमें—वही गठन, वही कुण्डलोंकी मधुर हिलन, वही अधरोंपर क्रीड़ा करती हुई मृदु मुसकान, दीनजनोंपर कृपादृष्टि निक्षेप करते हुए वे ही राजीवनयन, वही विशाल वक्ष:स्थल, वे ही अभय प्रदान करनेवाले वरदहस्त........' कहते-कहते महारानी ध्यानावस्थित हो गयीं और उनका स्वर अवरुद्ध हो गया।

'आप भी तो महारानी सीताकी ही अनुहार हैं। वही रूप-लावण्य, वही सुडौल अवयव, अरुण कपोल, खञ्जनके-से नेत्र, जगज्जननीके पदसे गौरवान्वित, उदारहृदया, अधरोंपर थिरकनेवाला अपूर्व माधुर्य—सभी कुछ तो महारानी सीताके अनुरूप ही है।' महारानीके कर्ण-कुहरोंमें दर्शिकाके शब्द पड़े। वे चेतन हो गयीं और उन्मीलित नेत्र किये हुए सुनने लगीं। महारानी बोलीं—'मिथ्या है'।

चित्रा मुस्कुरायी और बोली—'मेरी दृष्टिसे देखिये।'

'कहीं भी तो संगति नहीं लगती, चित्रा!' फिर विषय बदलती हुई हनुमानकी ओर संकेत करती हुई सत्यभामा बोलीं—'मारुतनन्दनका सिंदूर-वर्ण क्यों है, चित्रा!'

'बड़ी सुन्दर कथा है, महारानी!' प्रभात हो रहा था। दिनेशकी स्वर्णिम किरणें महारानी सीताके प्रकोष्ठमें प्रकाश बिखेर रही थीं। महारानी सीता राघवेन्द्र सरकारकी अर्चना करके निकलीं। अञ्जनीनन्दनने चरणोंमें अभिवादन किया। महारानीने आशीर्वाद दिया, 'प्रभुके प्रेम-भाजन बनो—आञ्जनेय!' पवनसुत गद्गद होकर माँके मुखकी ओर निहारने लगे। उनकी माँगमें सिन्दूरकी लाली देखकर वे चकित रह गये और पूछ बैठे।

'माँ! एक जिज्ञासा है।'

'क्या!'

'अनुचित न समझें तो कहूँ। माँगमें लाली कैसी, माँ!'

'तुम समझ सकोगे ब्रह्मचारी!' महारानी मुस्कुरायीं। 'यह नारियोंके सौभाग्यका प्रतीक है। प्रभु इससे प्रसन्न होते हैं।'

'फिर कहो, माँ! प्रभु इससे प्रसन्न होते हैं?'

'हाँ, प्रभु इससे प्रसन्न होते हैं।'

'प्रसन्न होते हैं, प्रसन्न होते हैं.......' कहते हुए मारुति भागे।

दूसरे दिन वे प्रभुकी सेवामें उपस्थित हुए। युगल-सरकार उनके रूप-वैचित्र्यको देखकर हँस पड़े—यह कैसा वेष बनाया है, बजरंगी!'

'प्रभु धृष्टता क्षमा करें। स्वभावसे चञ्चल कपिमें अनुकरणकी प्रवृत्ति होती है। वन्दनीया माँकी माँगमें सिन्दूर देखकर मेरे मनमें ऐसी स्फुरणा हुई कि जब माँकी इतनी-सी सिन्दूर-लालिमासे प्रभु प्रसन्न होते हैं, तब समस्त शरीरमें लगानेसे तो प्रभुका असीम अनुग्रह मिल सकेगा। अत: यह चपलता दाससे हो गयी है, मेरे नाथ!' मारुतनन्दन प्रभुके चरणोंमें गिर गये।

भगवान् उनके भोलेपनपर मुस्कुराये और अपना वरदहस्त उनके मस्तकपर रखते हुए बोले—'मुझे तुम्हारा यह वेष विशेष रुचिकर प्रतीत हो रहा है।'

'जैसी मेरे प्रभुकी इच्छा।' हनुमान बोल उठे।

मैथिलीने भी मुस्कुराते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया—

'राम रसायन तुम्हारे पासा। सदा रहो रघुपति के दासा॥'

हनुमानका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और वे गद्गद स्वरमें बोले—'मैं धन्य हो गया, माँ! आशीर्वाद दो, जननी—

'सीताराम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥'

कथा सुनकर सत्यभामा हँस पड़ीं।

'महारानी!' चित्राने कहा—'इधर आइये, आपको पवनकुमारकी झाँकी दिखाऊँ।'

महारानीने चित्र देखा। उन्होंने जिज्ञासाके स्वरमें पूछा—'चित्रा! कीर्तनरत पवनसुतके समक्ष प्रभुका मुख क्यों खुला हुआ है।'

चित्राने सहास्य कहा—'बड़ी सुन्दर घटना है, महारानी!'

रात्रिका समय था। राघवेन्द्र सरकार शयन-कक्षमें थे। द्वार बंद हो गया था। कुछ समय पश्चात् अप्रत्याशित स्वर सुनकर महारानी मैथिली जाग उठीं। देखा, प्रभुको निरन्तर उबासी आ रही थी। प्रभुकी व्यग्रता देखकर वे कातर हो गयीं। प्रभुकी रुग्णताका समाचार विद्युद्गतिसे समस्त महलमें फैल गया। जिसने सुना, वही उसी दशामें शयन-कक्षकी ओर दौड़ा। माताएँ अपने दुलारे रामकी व्यथा देखकर दुःखी हो गयीं। वे अपने सुकृतका स्मरण कर देवी-देवताओंको मनाने लगीं। सभी कुमार प्रभुकी सेवामें संलग्न थे। चिकित्सकोंके उपचार व्यर्थ सिद्ध हो रहे थे। उबासीका क्रम त्वरित वेगसे बढ़ता ही जा रहा था। निराश मुद्रामें सब प्रभुके मुखकी ओर निहार रहे थे। सहसा वातावरणमें कोलाहल गूँज उठा—'गुरुदेव आ गये!'

महर्षि वसिष्ठको देखकर कैकेयी अम्बा रो उठीं—'गुरुदेव! राघवको क्या हो गया? बढ़ती हुई उबासियोंने प्रसन्नतासे विकसित रहनेवाले इनके मुख-कमलको व्यथासे कुम्हला दिया है। आशीर्वाद दीजिये, गुरुदेव!'

सुमित्रा अम्बाने अश्रु पोंछते हुए कहा—'मेरा राम शीघ्र स्वस्थ हो जाय।'

महर्षि मनमें प्रार्थना करने लगे—'यह कैसा अभिनय है, नटनागर! आपकी इस अकल्पित लीलासे विमोहित परिजन एवं पुरजन व्यथित हो रहे हैं, प्रभो! अपनी लीलाका संवरण कर सब मनोविनोदको बढ़ाइये।'

कुछ क्षणके लिये महर्षि ध्यानावस्थित हो गये। त्रिकालज्ञ महर्षिके मुखपर प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी। उन्होंने चारों ओर देखा, 'हनुमान कहाँ हैं?' उनका प्रश्न गूँजा। इस प्रश्नने सभीको झकझोर दिया। सभीकी दृष्टि जन-समुदायमें हनुमानको खोजने लगी। लक्ष्मण कक्षसे बाहर निकलकर हनुमानको खोजने लगे। सहसा उनकी दृष्टि परकोटेपर आसीन हनुमानकी ओर गयी। वे चुटकी बजाते हुए ***'श्रीराम जय राम जय जय राम'*** का जप कर रहे थे। उनके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। प्रभुके अनन्य भक्त हनुमानकी विचित्र स्थिति देखकर लक्ष्मण भाव-विभोर हो गये। परिस्थितिका भान होनेपर उन्होंने पुकारा—'आञ्जनेय! प्रभु रुग्ण हैं।' उनका जप चल ही रहा था। 'प्रभु अस्वस्थ हैं, बजरंगबली!' वैसे ही जपमें संलग्न रहे वे। लक्ष्मणने तीव्र स्वरमें कहा—'प्रभु स्मरण कर रहे हैं, हनुमान!'

हनुमान चौंके—'प्रभु स्मरण कर रहे हैं? कहाँ हैं मेरे प्रभु? वे दासपर कैसी कृपा करते हैं!' उनका हृदय प्रसन्नतासे पुलकित हो उठा। वे कूदकर लक्ष्मणके पास आये—'प्रभु बुला रहे हैं?' शयन-कक्षके द्वार खुल गये। 'प्रभुके कक्षमें यह भीड़ कैसी है?'

'प्रभु रुग्ण हैं।' उदासीके स्वरमें लक्ष्मणने कहा। हनुमान क्षुब्ध हो गये।

राघवकी उबासी एकाएक बंद हो चुकी थी। प्रभुके मुखपर सौम्य मुसकान थिरक रही थी। सभीने प्रसन्नताकी साँस ली। हनुमानको कक्षमें प्रवेश करते देखकर प्रभुने मुस्कुराते हुए कहा—'आओ, हनुमान!'

हनुमान प्रभुके चरणोंमें लोट गये।

'प्रभो! आप अस्वस्थ हैं?'

'मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ, मारुति! चिन्ता न करो।'

'तुमने क्या चमत्कार कर दिया, बजरंगी! तुम्हारे आते ही प्रभु स्वस्थ हो गये।'—कैकेयी अम्बा बोल उठीं।

लक्ष्मणने कहा—'परिजनों और पुरजनोंके बीचमें तुम्हें न देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा था।'

गुरुदेवने कहा—'अवश्य ही तुम्हारी अनुपस्थितिमें कोई रहस्यभरी विवशता होगी।'

'क्या कहूँ गुरुदेव।' हनुमानने पीड़ित स्वरमें कहा—''आज प्रातःकालसे ही प्रभुके परिकरोंने प्रभुकी समस्त सेवाका दायित्व परस्पर बाँट लिया था। मेरे लिये कोई सेवा शेष नहीं रही। प्रभुकी सेवासे इस प्रकार वञ्चित होते देखकर मेरी आत्मा रो उठी। मुझे अपना जीवन भार लगने लगा। मैं कातर स्वरसे प्रभुसे

प्रार्थना करने लगा—'मेरे नाथ! जहाजके कागकी तरह मेरी दौड़ तो आपतक ही है। आपके अतिरिक्त मैं किसीको नहीं जानता। मेरे सर्वस्व तो आप ही हैं।' सहसा मेरे हृदयमें प्रेरणा हुई कि प्रभुको उबासी आनेपर चुटकी बजानेका कार्य तो किसीने नहीं लिया। अब मेरी यही सेवा रहेगी। हृदयका विक्षेप मिट गया। मैं प्रभुके मुखको निहारने लगा। जब प्रभुको उबासी आती, तब मैं चुटकी बजा देता। रात्रि हुई, प्रभु शयनागारमें चले गये। द्वार बंद हो गये। अपने कर्तव्यमें व्यवधान देखकर मैं दुःखी हुआ। प्रभुका मुख देखे बिना चुटकी कैसे बजेगी? पुनः प्रेरणा हुई—प्रभुको उबासी अवश्य आयेगी। क्यों न मैं निरन्तर चुटकी बजाता रहूँ, जिससे क्रममें व्याघात न पड़े। मैं कँगूरेपर बैठकर प्रभुकी ओर मुख करके निरन्तर चुटकी बजाने लगा।''

लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। प्रभु भी सेवकके भोलेपनपर मुस्कुराये।

'ओह! यही रहस्य था राघवकी रुग्णताका।मुस्कुराती हुई कौसल्या अम्बाने कहा। 'तुम्हारी चुटकीकी गतिके साथ-साथ राघवकी उबासी बढ़ने लगी तो मैं व्यग्र हो उठी।'

'प्रभो! आपको मेरे कारण कष्ट हुआ!' रो पड़े बजरंगी—'क्षमा कर दो मेरी अनजानी चूकको, मेरे नाथ!' हनुमान प्रभुके पाद-पद्मोंसे लिपट गये। प्रभुने उठाकर हृदयसे लगा लिया उन्हें और सबको सम्बोधित करते हुए बोले—'हनुमानको मेरी सेवा करनेमें कोई व्यवधान न होगा।'

हनुमानजी प्रसन्नतासे झूम-झूमकर गाने लगे—***'श्रीराम जय राम जय जय राम'।*** हनुमानको नृत्य करते देख सब लोग हँस पड़े।

महारानी सत्यभामा खिलखिला उठीं—'बड़ी सुन्दर कथा है, चित्रा!'

वन्दनाको देखकर सत्यभामाने कहा—'क्या है, वन्दना।'

'कुमार जाग गये हैं, महारानी!'

'आती हूँ, शेष चित्र फिर देखूँगी, चित्रा!' कहकर महारानी चली गयीं।

× × ×

गरुड़को वन्दना करते हुए देखकर सुदर्शन रुके और ध्यानसे सुनने लगे। वे कह रहे थे—

मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये॥

सुदर्शनने पूछा—'अरे! आज हनुमानका स्तवन कैसा, पक्षिराज!'

गरुड़ने नेत्र खोले और मुस्कुराकर कहा—'प्रभुकी आज्ञासे पवनसुतको लेने गन्धमादनपर्वतपर जा रहा हूँ।'

'हनुमान तो पवनसे भी अधिक गतिशील हैं, गरुड़!'

'उनकी गति तो त्रिभुवनमें अबाध है' यही बात मेरे बुद्धिगम्य नहीं हो रही है। जिस समय मेघनादकी शक्तिसे कुमार लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये थे, उस समय हनुमानजी प्रभुकी आज्ञासे संजीवनी लाने गये थे तथा रात्रिमें यथासम्भव शीघ्र आनेका वचन देकर भी अर्धरात्रितक नहीं लौटे। राघवेन्द्र सरकार निराश हो गये थे और वे करुण विलाप करते रहे। उस समय श्रीहनुमानकी अबाध गतिशीलता कहाँ लुप्त हो गयी थी, सुदर्शन!'

सुदर्शनने हँसते हुए कहा—'यदि प्रभु तुम्हें संजीवनी लानेका आदेश देते तो ऐसी करुण स्थिति उपस्थित न होती। वास्तवमें तुम्हारे तीव्रवेगकी कोई समानता नहीं।'

अपनी प्रशंसा सुनकर गरुड़ने पंख फुलाये—'मुझे भी ऐसी शङ्का है। हनुमान तो अतुलित बलके धाम तथा दनुजवनके लिये कृशानुके समान हैं; किंतु उनका अमित बल तथा अतुल पराक्रम कहाँ अन्तर्धान हो गया, जब मेघनादने अशोक-वाटिकामें उन्हें नागपाशमें बंदी बना लिया था, साधारण कपिकी भाँति वे राक्षसोंके पद-प्रहार सहते रहे और शान्तिसे अपनी लांगूलमें अग्निदाह करा लिया उन्होंने, सुदर्शनजी! तुम तो एक राक्षसको भी नहीं छोड़ते।'

सुदर्शन हँस पड़े। गरुड़ विचारोंमें खो गये। 'क्या सोच रहे हो, पक्षिराज!' सुदर्शनने पूछा।

'महाबली भीमके साथ घटित एक घटनाका स्मरण हो रहा है।' सुदर्शन दत्तचित्त होकर सुनने लगे।

''एक बार पाण्डुकुमार भीमने आञ्जनेयसे प्रार्थना की कि 'प्रभो! मुझे अपने उस रूपका दर्शन कराइये,

जो आपने राम-रावण-युद्धके समय ग्रहण किया था।''

पवनसुत मुस्कुराये और स्नेहसे बोले—'निःसंदेह तुम अत्यन्त बलशाली हो, बक-जैसे महाभयंकर विकट राक्षसोंका लाघवसे वध कर चुके हो, किंतु तुम उस रूपको न देख सकोगे।'

भीम न माने। वे पुनः आग्रह करने लगे। विवश हो हनुमानजीने एक तीव्र अट्टहास किया जिससे त्रिभुवन कम्पित हो गया। धरा हिल उठी। सागरोंमें ज्वार आ गया और महावीर अपना विशाल विराट् रूप बढ़ाने लगे। उनके ***'कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥'*** रूपको देखकर भीम थर-थर काँपते हुए मूर्च्छित हो गये। पवनसुत अपने सामान्य रूपमें आ गये। उन्होंने स्नेहसे भीमके मस्तकपर करसे स्पर्श किया। भीम प्रकृतिस्थ हुए और लज्जित हो उनके चरणकमलोंमें गिरकर क्षमा-याचना करने लगे। अभय प्रदान करते हुए करुणामय हनुमानने उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया। मेरे अहोभाग्य हैं, सुदर्शन! मुझे सदा मङ्गलागार श्रीरामदूतके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा। गरुड़ अपने पथपर आरूढ़ हुए और सुदर्शन सिंहद्वारपर स्थित हो गये।

× × ×

महारानी रुक्मिणीदेवी मन्दिरसे लौटीं। रथसे उतरकर वे महारानी सत्यभामाके प्रकोष्ठकी ओर चली गयीं। सत्यभामाने चरण-स्पर्श किया और उनका हाथ पकड़कर वे उन्हें अपने कक्षमें ले गयीं तथा 'कुशल तो है, जीजी!' मुस्कुराते हुए बोलीं।

'चिन्ता न करो। तुमसे गोपनीय बात कहने आयी हूँ, सत्यभामा!' सत्यभामा उत्सुकतासे सुनने लगीं।

''महाराज प्रगाढ़ निद्रामें थे। मुझे एक विचित्र-सा नाद सुनायी दिया। मैं उसे ध्यानसे सुनने लगी। उनके रोम-रोमसे 'हनुमान', 'हनुमान' स्वर निकल रहा था। मैं स्तब्ध-सी रह गयी। जब प्रभु जाग्रत् हुए, तब उन्होंने अपना विचित्र स्वप्न सुनाया।'

''वे कहने लगे—'लंकाधीश रावणपर विजय प्राप्त करनेके बाद श्रीराम-दलमें हर्षोल्लासके साथ जय-घोष गूँज रहा था। हास्य और विनोदके वातावरणमें राघवेन्द्र वानरों तथा भालुओंको यथायोग्य पुरस्कार दे रहे थे। तभी जनकनन्दिनीने अपनी मणियोंकी माला गलेसे उतारकर अञ्जनीनन्दनके गलेमें पहना दी। माँका अमूल्य उपहार पाकर वे फूले न समाये। कुछ व्यक्तियोंने उन्हें ईर्ष्यासे देखा और कुछने उनके भाग्यकी सराहना की। कुछ क्षण पश्चात् अञ्जनीनन्दनने मालाको ध्यानसे देखा; वे निराश होकर एक-एक माणिकको दाँतसे तोड़ते और खीझकर फेंक देते। उपस्थित समुदायमें रोषकी भावना फैल गयी। माँकी अमूल्य मालाको विकृत करना उन्हें रुचिकर न लगा।

'ब्रह्मचारी हैं। ज्ञानिनामग्रगण्य भले ही हों, किंतु कपि-संस्कार नहीं जा सकता; यह जगज्जननी मैथिलीका अपमान है।' विभीषण यह अनर्थ न देख सके। उन्होंने आगे बढ़कर मारुतिका हाथ पकड़ लिया—'यह क्या कर रहे हो, बजरंगी? बहुमूल्य माला क्यों तोड़ रहे हो?'

'बहुमूल्य आपके लिये होगी, लंकेश! मेरे लिये तो यह व्यर्थ है।' सबने आश्चर्य एवं जिज्ञासासे उनकी ओर देखा।

'जिसमें राम-नाम अङ्कित न हो, वह मेरे लिये अनुपयोगी है। जिस क्षण मेरे श्रवण प्रभु-लीला सुननेसे, मेरी रसना प्रभु-नाम जपनेसे, मेरे नेत्र प्रभु-दर्शन करनेसे तथा मेरा हृदय प्रभुके वाससे वंचित हो, हनुमान जीवित न रहेगा', कहकर उन्होंने नखसे अपने वक्षःस्थलको विदीर्ण कर दिया। सबने आश्चर्यचकित हो उनके हृदयमें मैथिलीसहित श्रीराघवेन्द्रके दर्शन किये। वायु-मण्डलमें 'परमभक्त अञ्जनीनन्दनकी जय! अनन्य श्रीरामोपासक हनुमानकी जय!' का घोष गूँजने लगा।

''इस प्रकार कहते-कहते प्रभु गम्भीर हो गये। आर्द्रवाणीसे फिर बोले—'विद्या-बुद्धि-विवेकके आगार, अजेय बल-पौरुषके भण्डार, सर्वसमर्थ एवं सर्वशक्तिमान् होते हुए भी निरीह तथा निरभिमान इस संसारमें केवल हनुमान ही हैं। ऐसे परम संत निःस्वार्थ सेवकसे मिलनेकी उत्कट इच्छा हो रही है, देवि!'

'बाधा क्या है, प्रभु?'

'वह अनन्य रामोपासक है, मुझे इस रूपमें कैसे स्वीकार करेगा?'

'भक्तोंके इच्छानुसार अमित रूप, नाम तथा शरीरधारीको धनुर्धारी बननेमें क्या विलम्ब लगेगा?'

प्रभु मुस्कुराये—समस्या मैथिलीकी है।'

'वह तो महारानी सत्यभामा हैं ही। मैथिलीके

पूर्णतया अनुरूप हैं।'

तभी सत्यभामाके कानोंमें चित्राके शब्द गूँज उठे—'आप भी तो महारानी सीताकी अनुहार हैं।' वे मुस्कुरा उठीं।

'अब तुम शीघ्र प्रस्तुत हो जाओ—प्रभु आते ही होंगे।' कहती हुई महारानी रुक्मिणी चली गयीं।

सत्यभामा दर्पणके समक्ष शृङ्गार करने लगीं। वे दर्पणमें अपनी छवि देखकर मुग्ध हो गयीं और उन्होंने रूपगर्विता नायिकाकी भाँति अपने कक्षमें चारों ओर देखा। उसी समय वन्दनाने अभिवादन करके प्रभुके आनेकी सूचना दी।

दासियाँ प्रभुके मार्गमें पुष्प बिखेरती आ रही थीं। कक्षके द्वारपर महारानी सत्यभामाने प्रभुकी आरती करके उन्हें सिंहासनपर आसीन कराया।

'अरे! तुम तो वास्तवमें मैथिली बन गयी।'

सत्यभामाने मुस्कुराते हुए प्रभुकी ओर देखा। वे श्रीरामरूपको देखकर मुग्ध हो गयीं। देखती ही रह गयीं और बोलीं—'राघवेन्द्र सरकारके चरणोंमें सत्यभामा प्रणाम करती है।'

प्रभुने मुस्कुराकर कहा—'सत्यभामा नहीं, मैथिली कहो, देवि!' वे मुस्कुरायीं। द्वारपर खड़खड़ाहट हुई। प्रभुने कहा—सम्भव है, हनुमान आ गया।'

द्वार खुला। महारानी सत्यभामा करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी, मस्तकपर रत्नजटित मुकुट, विशाल स्कन्धपर मूँजका यज्ञोपवीत, करोंमें वज्र तथा ध्वजा धारण किये हुए और कञ्चन-वर्णसे सुशोभित हनुमानको देखकर प्रसन्न हो गयीं।

'**पाहि माम्, पाहि माम्**' कहते हुए हनुमान प्रभुके चरणोंमें गिर गये।

'सकुशल हो, महावीर!'

'प्रभु! कुशलता श्रीचरणोंमें है।'

सहसा उन्होंने चारों ओर देखा।

'क्या देख रहे हो, बजरंगी?'

'माँ कहाँ हैं, प्रभो!'

सत्यभामाकी ओर संकेत करते हुए प्रभुने कहा—'मैथिलीको भूल गये, हनुमान!'

'क्षमा करें, प्रभु' मस्तक नीचा करके हनुमानने कहा—'मुझे इनमें वात्सल्यमूर्ति माँके दर्शन नहीं हो रहे हैं।'

सत्यभामा संकोचसे गड़ गयीं। उनकी आत्मा ग्लानिसे गलने-सी लगी। वे उठकर अपने कक्षमें चली गयीं। क्रोधसे उनका मुख रक्तवर्ण हो रहा था। तभी उन्हें ऐसा लगा मानो प्रभु खड़े हुए समझा रहे हैं—'दु:खी हो, सत्यभामा! मैं अनुभव कर रहा था, तुम्हें अपने रूपका अभिमान बढ़ता जा रहा है। अहंकार दुर्गतिका कारण होता है। मैं अपने जनमें गर्वके बिरवेको पनपते नहीं देख सकता। तुम्हारे अभिमानको समूल नष्ट करनेके लिये ही मैंने यह योजना बनायी थी। सच मानो, सत्यभामा! तुम अपनी स्वाभाविक वेशभूषामें अत्यधिक सुन्दर लगती हो। उठो, सत्यभामा! परम भक्त हनुमानके दर्शन करो। मुझसे बढ़कर मेरे दास होते हैं। हनुमानकी भक्तिसे ही मुझे प्राप्त किया जा सकता है।'

वे क्रोधावेशसे मुक्त हो चुकी थीं। 'धन्य हैं प्रभु! मुझे उबार लिया।' वे आभूषण पहनने लगीं।

हनुमानको अपनी भूल ज्ञात हुई। उनका मन पश्चात्तापसे भर गया। प्रभुकी अनन्य प्रियाकी कोमल भावनाको आहत करके मैंने घोर अपराध किया है। इसके लिये प्रभु भी मुझे कभी क्षमा नहीं करेंगे। तभी प्रभुने पुकारा—'हनुमान!'

'मेरे प्रभु, करुणामय! इस दीन, मलीन, साधनहीन, अज्ञ कपिको कैसे बिसरा दिया था, मेरे नाथ?' हनुमानजी कातर स्वरमें कहने लगे।

'तुम्हें भीतर आनेसे किसीने निषेध तो नहीं किया?'

''एक अशिष्ट व्यक्तिसे मैंने प्रवेश करनेकी अनुमति माँगी, किंतु उसने कर्कश स्वरमें कहा—'प्रभुकी आज्ञाके बिना तुम्हारा प्रवेश नहीं हो सकेगा।' मैंने समझाया—'मैं हनुमान हूँ, मुझे प्रभुके दर्शनसे वंचित न करो।' मेरी अनुनय-विनयका उसपर कोई प्रभाव नहीं हुआ; अतएव उसे अपनी लाङ्गूलमें बाँधकर यहाँ लेता आया हूँ।''

प्रभु मुस्कुराये—'सुदर्शनको मुक्त कर दो, हनुमान! ये अब अपने बलाभिमानका प्रायश्चित्त कर चुके हैं, अतुलितबलधाम!'

हनुमानने सुदर्शनको मुक्त कर दिया। वे हनुमानके चरणोंमें गिर पड़े और बोले—'मेरी धृष्टता क्षमा कर दें।'

मुस्कुराते हुए हनुमानने सुदर्शनको छातीसे लगा लिया और कहा—'क्षमा तो मुझे अपने दुर्व्यवहारके लिये माँगनी चाहिये।'

'अरे हाँ, हनुमान! गरुड़ तुम्हारे साथ नहीं आये?'

'नहीं प्रभु! मैं ध्यानमें माँके सहित आपके साक्षात्कारका आनन्द ले रहा था कि कड़कड़ाहटसे मेरा ध्यान भंग हो गया। मैंने नेत्र खोले तो सामने गरुड़ दिखायी दिये। उन्होंने अभिवादन किया। मैंने उनसे पूछा—'कैसे आये, पक्षिराज?'

''द्वारकाधीश प्रभुने आपको बुलाया है।' गरुड़ बोले।

''मेरे हृदयमें द्वन्द्व उठा, 'द्वारकाधीशसे मुझे क्या प्रयोजन?' मैं मौन रहा। थोड़ी देर बाद ही मेरी हृत्तन्त्री झंकृत हो उठी—'साकेतविहारी राघवेन्द्र सरकार द्वारकामें स्मरण कर रहे हैं।' प्रभुकी असीम अनुकम्पाका ध्यान करके मैं आनन्द-विह्वल हो गया। प्रभु अपने जनकी सुधि लेते हैं। मैंने प्रार्थना की—'गरुड़! प्रभुसे निवेदन करना, मैं शीघ्र आ रहा हूँ।'

''वे बोले—'प्रभुकी आज्ञा है, आपको तुरंत ही अपनी पीठपर आरूढ़ कर उनके समीप ले चलूँ।'

''मैं पूजा समाप्त करते ही आ जाऊँगा।'' मैंने विनम्र स्वरमें कहा।

''नहीं, आप मेरे साथ शीघ्र चलें। विलम्ब होनेसे रुष्ट होंगे प्रभु।'

''मेरा आग्रह व्यर्थ हुआ। वे मुझे शीघ्र ले जानेका दुराग्रह करने लगे। 'तुम नहीं मानोगे, गरुड़!' कहकर मैंने उन्हें उठाकर पर्वतसे नीचे फेंक दिया। मेरा मन साधनामें नहीं लगा।''

इतनेमें ही पीड़ासे कराहते हुए गरुड़ आ गये और प्रभुको अभिवादन करते हुए बोले—'श्रीहनुमान अभी आ रहे हैं।' किंतु हनुमानको वहाँ उपस्थित देखकर वे संकुचित हो गये। उनका तीव्रगामिताका घमंड चूर हो गया।

'हनुमानको आये हुए पर्याप्त समय हो गया, पक्षिराज! किंतु तुम्हें विलम्ब कैसे हुआ?'

'मेरे निरन्तर दुराग्रहसे परम संत महावीरको क्रोध आ गया। इन्होंने मुझे लाघवसे उठाकर सागरमें फेंक दिया। पीड़ासे मेरी अस्थियाँ चरचरा उठीं। मैं सागरमें मूर्च्छित हो गया। चैतन्य होते ही आया हूँ, प्रभो!'

हनुमानने करबद्ध हो गरुड़से प्रार्थना की—'मेरे इस उद्दण्ड व्यवहारको क्षमा कर दो, प्रभुके प्रिय वाहन! मैं इस धृष्टताके लिये लज्जित हूँ।' वे चरण छूनेको झुके ही थे कि गरुड़ने बीचमें रोककर कहा—'क्षमाप्रार्थी तो मैं हूँ, अञ्जनीनन्दन! मेरे तीव्रगामिताके अभिमानको चूरकर आपने मुझे उबार लिया।'

अपने सहज स्वरूपमें महारानी सत्यभामा बाहर आ गयीं। उनका मुख शान्त था। पवनपुत्र दौड़कर उनके चरणोंमें गिर पड़े—'क्षमा कर दो, माँ! अपने अशिष्ट एवं अभद्र व्यवहारपर मैं लज्जित हूँ।'

माँने हनुमानके मस्तकपर हस्त रखकर वात्सल्यभरे स्वरमें कहा—'पश्चात्ताप न करो, हनुमान! प्रभुकी ऐसी ही इच्छा थी।'

'आशीर्वाद दो, माँ! प्रभुके चरण-कमलोंमें मेरा प्रेम सतत बढ़ता रहे।'

'ऐसा ही होगा, हनुमान!'

माँने मुस्कुराते हुए कहा—'एकमात्र तुम्हीं हो, हनुमान! जिनपर प्रभु अनन्य कृपा एवं दुलार करते हैं। प्रभु निरन्तर तुम्हारा ही ध्यान करते हैं।'

माँने आगे कहा—'हनुमान! तुम्हारी कृपासे अष्टसिद्धियाँ प्राप्त हो जायँ, तुम्हारे भजनसे प्रभु मिलें और तुम्हारे स्मरणमात्रसे जन्म-जन्मके दु:ख, रोग, शोक, संकट तथा विघ्नोंका नाश हो।'

हनुमानने कृतज्ञताके स्वरमें कहा—'मैं कृतकृत्य हो गया, माँ! आपका स्नेह पाकर।'

'हनुमान!' माँने आग्रह किया—'प्रभुके दर्शनके लिये सदा आते रहोगे न?'

'हम सबकी यही इच्छा है, अञ्जनीनन्दन!' सुदर्शनने करबद्ध विनय की।

'हम सब द्वारकावासी कृतार्थ हो जायँगे, पवनपुत्र!' गरुड़ने अनुनय की।

'मेरी भी यही इच्छा है।' प्रभु बोले।

'मेरे प्रभु!' रो पड़े हनुमान, उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी। कुछ क्षण पश्चात् वे बोले—'इतनी करुणा, इतनी अनुकम्पा, इतनी कृपा, ऐसी ममता, ऐसी भक्तवत्सलता, ऐसी जनहितकातरता और ऐसा अनुग्रह

आपके अतिरिक्त दीनोंपर कौन कर सकता है! मुझे भय था, प्रभुके परम प्रिय भक्तोंके प्रति अमर्यादित अपमानजन्य व्यवहार करके मैंने ऐसा जघन्य अपराध किया है, जिसके लिये प्रभु मुझे अवश्य दण्डित करेंगे; किंतु धन्य हैं, मेरे नाथ कैसे क्षमाशील हैं, जो अपने जनकी भयंकर त्रुटियोंकी उपेक्षा करके सात्त्विक भावोंकी अर्चनापर कोमलचित्त कृपालु रघुनाथ रीझ जाते हैं! अपने जनपर अहैतुकी कृपा करनेवाले कितने उदार हैं, मेरे प्रभु।' प्रभुकी अगाध भक्तवत्सलताका स्मरण करके उनके नेत्रोंसे अश्रु-वर्षा होने लगी। वे झूम-झूमकर गा उठे—

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥

उधर वायुमण्डलमें जयकार गूँज रहा था—'पवनपुत्र हनुमानकी जय, श्रीरामभक्त अञ्जनीनन्दनकी जय'। तभी सुदर्शन तथा गरुड़ने भी उच्च स्वरसे स्तवन किया—

पवनतनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप।
राम लखन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप॥

अञ्जनानन्दनका यशोगान

(रचयिता—श्रीरामजी पाण्डेय, बी० ए०, काव्यरत्न)

(१)

अञ्जना-नन्दन तुम्हारी कर सकूँ, मैं वन्दना।
देख अपनी ओर सम्भव है न ऐसी कल्पना॥
किंतु तुमको देख कुछ अन्तःकरण है साहसी।
चाह-सी मनमें उठी है, बुद्धि लेती थाह-सी॥

(२)

वज्र-हनु, वज्राङ्ग तन-मुख, वज्र नख-दन्तावली।
प्रेम-पारावार-पुलकित उर, प्रखर-रोमावली॥
भीमकाय अकाय किंनरकाय अतुलित-बल महा।
सब गुणोंके धाम अनुपम अद्वितीय कपे अहा॥

(३)

आजतक तुम-सा अलौकिक ब्रह्मचारी कौन है?
शास्त्र भी असमर्थ वर्णनमें, इसीसे मौन है॥
क्यों न हो, शिव-वायुके सहयोगसे सम्भूत थे।
दूत थे श्रीरामके, सुर-कार्यसे अभिभूत थे॥

(४)

शत्रु विद्वेषी कभी भी भय दिखा सकते नहीं।
भूत-प्रेत-पिशाच-राक्षस पास आ सकते नहीं॥
दुष्ट-ग्रह दुःस्वप्नका उसको नहीं आतङ्क है।
प्राप्त है हनुमत्कृपाका लेश, वह निःशंक है॥

(५)

युक्त-योगिन्! ब्रह्मचारिन्! सिद्धियाँ अनुगामिनी।
रिद्धियाँ-निधियाँ तुम्हारे चरण-नखकी कामिनी॥
भग्न-हनु वज्राङ्ग पाकर दन्त-द्युतिकी दामिनी।
सुख-विहीना दुःख-दीना दूर भवकी यामिनी॥

(६)

आप लीला-धाम, लीला-काम, लीला-नाम भी।
रामके ही दास भी हैं, अंश भी हैं, राम भी॥
ज्ञानि-जनके हैं मुकुट-मणि, भक्त-जनके प्राण भी।
आर्त्त-जनकी हैं शरण भी, भीत-जनके त्राण भी॥

(७)

आपकी गाथा अलौकिक शुचि अनुत्तम पावनी।
शम्भु-प्रिय श्रीराम जग-अभिरामकी मनभावनी॥
श्रुति-पुराण मनोहरा त्रैलोक्य सुयश सुहावनी।
दैन्य-दुख-दुर्भाग्य-पातक-रोग-कलुष-नसावनी॥

(८)

भरतमें भी भाव भर दे राम-पदमें भक्ति है।
लगन ला दे लखनमें भी गाढ़ सेवासक्ति है॥
कौन-सा दुर्भाग्य भीषण तुम मिटा सकते नहीं।
कौन-सा संकट भयंकर तुम हटा सकते नहीं॥

श्रीहनुमानजीके चरित्रसे शिक्षा

(लेखक—साकेतवासी वैष्णवाग्रणी पं० श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)

श्रीरामचरितमानसमें श्रीहनुमत्-चरितका आरम्भ किष्किन्धाकाण्डके आदिमें 'मारुति-मिलन'-प्रसङ्गसे हुआ है। वहाँ आप ऋष्यमूक पर्वतपर सुग्रीवके सचिवरूपमें दर्शन देते हैं। वस्तुतः श्रीरामावतारकी भाँति आपका भी वानरवपु भगवान् शिवका अवतार था। गोस्वामीजीने दोहावलीके निम्नलिखित दोहोंमें इस बातको स्पष्ट कर दिया है—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥
जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।
पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान॥

(१४२-१४३)

रामायणमें इस गूढ़ तत्त्वको मङ्गलाचरणके श्लोकोंमें बड़ी विचित्रताके साथ दर्शाया है। बालकाण्डसे अरण्यकाण्डतक भगवान् शंकरकी वन्दना पहले करके पीछे रघुनाथजीकी वन्दनाके श्लोक रखे गये हैं; परंतु किष्किन्धाकाण्डमें जब स्वयं शंकरजी हनुमानरूपसे श्रीरामकी सेवामें अवतरित हो जाते हैं, तब वहाँसे उत्तरकाण्डपर्यन्त श्रीरामवन्दनाके श्लोकोंको प्रथम स्थान दिया गया है और दास्यभावानुसार शिव-वन्दना पश्चात् की गयी है। लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्डमें तो यह बात स्पष्ट दीख पड़ती है, किंतु सुन्दरकाण्डमें तो शंकरके स्थानमें श्रीहनुमानजीकी ही वन्दना की गयी है। इस वन्दना-क्रमके द्वारा श्रीहनुमानजीका शंकरावतार होना प्रत्यक्ष सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त आपका बल, पराक्रम और आश्चर्यमयी घटनाओंसे पूर्ण चरित्र ही आपको एक प्राकृत कपिसे सर्वथा भिन्न बता रहा है, अतः रामायणमें आपका चरित्र भी सर्वथा ध्येय, शिक्षा ग्रहण करने योग्य तथा अनुकरणीय है। उपर्युक्त वर्णनके अनुसार श्रीहनुमानजीका चरित्र—***'तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा'***—सुग्रीव-सचिवत्वसे आरम्भ होता है।

सचिव कैसा होना चाहिये और उसे सचिव-धर्मका पालन किस प्रकार करना चाहिये, इसका उत्तम उदाहरण श्रीहनुमानजीने दिखाया है। महाबली वालीके दुरत्यय आघातके कारण सुग्रीवको त्रैलोक्यमें कहीं ठिकाना नहीं रह गया था। ऐसे दीन, निराश्रय जनका साथ देकर महाबली वालीसे वैर मोल लेना साधारण बात नहीं थी। ऐसी दुरवस्थामें भी आप उनके मन्त्रित्व-पदपर दृढ़ रहकर सदा उनकी सहायता करनेमें लगे रहे। यह परम साहसिकता और सच्ची प्रीतिकी पहली शिक्षा है। इतना ही नहीं, अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीसे सुग्रीवकी मैत्री स्थापित कराकर आपने उसको निर्भय कर दिया और इस प्रकार नीतिके एक उच्च सिद्धान्तको कार्यरूपमें परिणत करके दिखा दिया कि राजाके सात अङ्गोंमेंसे यदि एक सर्वप्रधान अङ्ग मन्त्री बचा रहे तो शेष सब नष्ट हो जानेपर भी राज्यको पुनः प्राप्त कर सकना असम्भव नहीं है। रामायणमें सुग्रीव और विभीषण—दोनों ही दीन पात्रोंके केवल मन्त्री ही बच रहे थे—***'तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा।', 'सचिव संग लै नभ पथ गयऊ,'*** इससे अन्तमें दोनोंके ही मनोरथ सफल हुए।

श्रीहनुमानजी जब सुग्रीवके संकेतसे वटुरूप धारणकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिलते हैं और उनसे बातचीत करते हैं, तब आपकी ज्ञान-गरिमा तथा अनन्य भक्तिका बड़ा सुन्दर शिक्षाप्रद परिचय प्राप्त होता है। आप तपस्वीरूप भगवान् श्रीराम-लक्ष्मणजीसे पूछते हैं—

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥
मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता॥

इन तीनों अर्धालियोंमें 'बन' शब्द एकमें भी नहीं छूटने पाया है। बार-बार 'बन' शब्दका मुँहसे निकालना इस बातका प्रमाण है कि आपके हृदयमें उन कोमल चरणोंसे स्वाभाविक प्रेम है और उन कोमल चरणोंका या कोमल चरणवालेका 'वन' में फिरना आपके हृदयमें शूल-सा खटक रहा है। कहाँ वे 'मृदुल मनोहर सुन्दर गात' और कहाँ वनके 'दुसह आतप बात' को सहनेका कष्ट! कैसा असामञ्जस्य है! कुछ इसी प्रकार श्रीभरतलालजीके मनमें भी उन कोमल चरणोंका 'बिनु पनहीं' वनमें भटकना खटका था। उन्होंने भी कहा था—

राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं॥
एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती॥

यहाँ भी 'बन-बन' शब्द असह्य दु:खका सूचक है। चरण-सेवक श्रीहनुमानजीने इस मिलनके पश्चात् भगवान्‌को कभी 'बन-बन' नहीं फिरने दिया। उन्होंने सेवक-भावका उच्च आदर्श दिखाया। *'लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई'*—दोनों भाइयोंको अपने कंधेपर उठाकर सुग्रीवके पास ले गये। यही तो उनके प्रगाढ़ गूढ़ प्रेमका ज्वलन्त प्रमाण है। प्रभुकी लंकाकी यात्रा भी श्रीमारुतिके कंधोंपर विराजित होकर ही हुई थी।

हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥

उधर इसी कार्यद्वारा संकेतसे सुग्रीवको भी भगवान्‌के अपने मित्र होनेका प्रमाण दे दिया; क्योंकि शत्रु होते तो कंधेपर कैसे चढ़ाते? दोनों प्रभुओंको पीठपर चढ़ाकर श्रीराम-चरण-निष्ठाका निर्वाह तो किया ही गया, अब आपका भक्तिपूर्ण दूसरा चमत्कार देखिये! जब आप श्रीराम-लक्ष्मणकी 'युगल जोड़ी' से पहले-पहल मिलते हैं तो उनका परिचय प्राप्त करनेके लिये कैसे समानार्थक विकल्पोंका प्रयोग करते हैं—'आप दोनों क्षत्रिय ही नहीं हैं, किंतु क्षत्रियरूपमें आप या तो त्रिदेवोंमेंसे कोई हैं, या नर-नारायण हैं, या अखिलभुवन-पति (साक्षात् परब्रह्म) हैं।' यदि विचार किया जाय तो हनुमानजीके तीनों अनुमान अवतार-अवतारी-भेदसे ईश्वरके ही सम्बन्धमें थे। तात्पर्य, श्रीरघुनाथजी जिस परब्रह्मके अवतार हैं, उसी पर-स्वरूपके अवतार नर-नारायण भी हैं। उन्हीं परवासुदेवके अंश गुणावतार त्रिदेव हैं। इस प्रकार तीनों स्वरूप परब्रह्मके ही हैं और तीनों ही पूज्य और नमस्कारके योग्य हैं, इसलिये *'माथ नाइ पूछत अस भयऊ'* का व्यवहार किया गया था; क्योंकि वेष बदले हुए वैभववान् पुरुषको जाननेवाले तो उसके वैभवके अनुसार ही उसका सम्मान किया करते हैं। बजरंगबलीकी इस यथार्थ पहुँचसे हमें उनके परम योगी होनेका परिचय मिलता है और साथ ही यह भी पता लगता है कि योगियोंके अन्त:करण सत्यकी किस तहतक पहुँच जाते हैं। रामायणमें इस विषयके और भी उदाहरण मिलते हैं। सच्चे जौहरी श्रीजनकजीने भी इसी प्रकार इस श्रीराम-रत्नको परखा था—

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥

भक्तराज विभीषणजीने भी श्रीमारुतिजीसे ऐसा ही कहा था।

की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥

विभीषणजीने विप्र-वेषधारी हनुमानके सम्बन्धमें दो ही अनुमान किये कि या तो आप राम हैं या रामके दास! अस्तु।

श्रीहनुमानजीने भगवान् श्रीरामको उन्हींके दिये हुए बुद्धिबलसे ही पहचाना था। सतत प्रेमपूर्वक भजन करनेवालेको भगवान् बुद्धियोग देते हैं (गीता १०।१०)—गीताके इस सिद्धान्तको श्रीहनुमानजीने प्रत्यक्ष प्रकट कर दिया।

सच्चे अधिकारी भक्तके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए श्रीरघुनाथजी अपने नाम, रूप और धामका निर्देश करते हुए कहते हैं—

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥

इसमें *'नाम राम लछिमन दोउ भाई'* से नाम, *'कोसलेस दसरथ के जाए'* से धाम तथा रूप एवं *'हम पितु बचन मानि बन आए'* और *'इहाँ हरी निसिचर बैदेही'* से लीलाका वर्णन किया है। तदनन्तर भगवान् भक्तवर श्रीहनुमानजीसे पूछते हैं—

आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥

'हमने तो अपना हाल सुना दिया, अब विप्रवर! आप कौन हैं, सो तो बताइये।' इस मर्म-वचनके उत्तरमें श्रीहनुमानजीने जो कुछ कहा और किया, उससे उनकी सच्ची दीनता, यथार्थ शरणागति, अलौकिक अनुरक्ति, असाधारण निर्भरता और गम्भीर ज्ञानका पता लगता है। स्वामी श्रीरामको पहचानकर मारुतिजी चरणोंमें गिरकर परमानन्दमें मग्न हो जाते हैं।' शिवजी कहते हैं—*'सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥'* इसके बाद उनके व्यवहार और वचनोंका आदर्श देखिये—

पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही॥
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥
तव माया बस फिरउँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें॥
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥
ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई॥
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥
अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥

(रा० च० मा० ४। २। ६—९; दो० २; ४। ३। १—५)

इस स्तुतिमें श्रीहनुमानजीने पाँचों स्वरूपोंका रहस्य बड़ी विलक्षणतासे खोल दिया है। जीवस्वरूप, परस्वरूप, विरोधस्वरूप, उपायस्वरूप और फलस्वरूप—इन पाँचोंका ही निचोड़ इसमें आ गया, जो सर्वशास्त्रोंका साररूप है और जिसको जानना अत्यन्त आवश्यक है। कहा है—

प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च तत्र चात्मनः।
प्राप्त्युपायं फलप्राप्तिं तथा प्राप्तिविरोधि च॥
वदन्ति सकला वेदाः सेतिहासपुराणकाः।
मुनयश्च महात्मानो वेदवेदान्तवेदिनः॥

समस्त वेद, इतिहास, पुराणादि और वेद-वेदान्तके ज्ञाता मुनि-महात्माओंका सिद्धान्त है कि जबतक इन पाँचोंका बोध नहीं होता, तबतक जीव संसारसे पार नहीं हो सकता। '**मोर न्याउ मैं पूछा साईं**' से 'जीवस्वरूप' का बोध होता है, जिसका लक्षण गोस्वामीजीने '**हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥**' बतलाया है। '**तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं,**' '**तव माया बस फिरउँ भुलाना**' '**सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा,**' '**पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान**' इत्यादिसे यहाँ 'ईश्वर-स्वरूप' प्रकट होता है। जैसे कहा है—'**ग्यान अखंड एक सीताबर,**' '**बंध मोच्छपद सर्बपर माया प्रेरक सीव॥**'

'**नाथ जीव तव मायाँ मोहा**' से 'विरोधस्वरूप' अर्थात् मायाको दिखलाया, जो भक्तिमें बाधक हो रही है। '**सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥**' से 'उपायस्वरूप' अर्थात् दास और छोटे बच्चेकी भाँति सब साधनोंसे रहित होकर केवल प्रपत्तिसे ही उद्धार होना बतलाया। '**अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥**' से 'फलस्वरूप'—'भगवत्-चरणकी प्राप्ति तथा प्रेमाभक्ति ही परम फल है, यह दिखलाया है। इसी प्रकार '**ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई॥**' कहकर सच्चे भक्तोंकी दीनतारूप मुख्य धारणाका मर्म भी समझा दिया। सच्चे भक्तोंके हृदयमें यह भाव कदापि स्वप्नमें भी नहीं आता कि 'मैं भी कुछ हूँ या मुझमें भी कुछ गुण है।' श्रीभरतजी कहते हैं—

× × × **मैं सठु सदा सदोस।**
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस॥

प्रेमीवर सुतीक्ष्णजी महाराजने कहा है—

'**भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥**'
नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥

गोस्वामीजी तो शपथ ही खा रहे हैं—

कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें॥

सारांश यह है कि भगवान्के सच्चे शरणागत जन 'अहं', 'मम' आदि समस्त सम्बन्धोंको निश्चितरूपसे प्रभुकी वस्तु समझ लेते हैं। वे अपनेको भी अपना नहीं समझते। भक्तवर श्रीयामुनाचार्यजीने कहा है—

मम नाथ यदस्ति योऽस्म्यहं सकलं तद्धि तवैव माधव।
नियतस्वमिति प्रबुद्धधीरथवा किं नु समर्पयामि ते॥

(आलवन्दारस्तोत्र)

'माधव! मेरे नाथ! मेरा जो कुछ है और जो कुछ मैं हूँ, सब आपकी ही नियत सम्पत्ति है—मेरी इस बुद्धिने यह निश्चय कर लिया है। ऐसी दशामें मेरे पास है ही क्या, जो आपको समर्पित करूँ।'

जब स्वामीके प्रति मन-वचन-कर्म—तीनोंसे शुद्ध प्रपन्नता हो जाती है, तभी प्रभु उसे स्वीकार करते हैं—

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥

इस चौपाईमें श्रीहनुमानजीने शुद्ध प्रपत्ति सिद्ध कर दी। '**अस कहि**' से वचनकी, '**प्रीति उर छाई**' से मनकी तथा '**परेउ चरन अकुलाई**' से तनकी प्रपन्नता सिद्ध हुई। इतना ही नहीं, वटु-वेषरूपी कपटको दूरकर '**निज तनु**' भी प्रकट कर दिया। अब तो भगवान्से नहीं रहा गया, उन्होंने हनुमानजीको उठाकर हृदयसे लगा लिया और लगे प्रेमाश्रु-धाराओंसे उनका अभिषेक करने!

तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥

श्रीहनुमानजी कृतार्थ हो गये। स्वयं ही कृतार्थ नहीं हुए; इसके बाद सुग्रीव-विभीषण आदि जिन-जिन लोगोंने आपसे सम्बन्ध रखा या किया, उन सबको भी प्रभुकी प्राप्तिद्वारा कृतार्थ करा दिया। यही तो संतोंकी महिमा है!

श्रीहनुमानजीके सङ्गसे उपलब्ध श्रीराम-कृपासे

सुग्रीवजी राज्यासनपर विराजते हैं, परंतु जब वे राजमदके कारण 'रमाविलास' में रम जाते हैं, तब श्रीहनुमानजी बड़ी ही दूरदर्शितासे आदर्श विनयपूर्वक सुग्रीवको सब प्रकारसे सचेत कर देते हैं—

इहाँ पवनसुत हृदयँ बिचारा। राम काजु सुग्रीवँ बिसारा॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥

इस काममें आपकी बुद्धिमत्ता, सुग्रीवके प्रति हितैषिता और 'राम-काजु' की चिन्ता तथा मन्त्रित्वके नाते कर्तव्यपरायणता और नम्रता—सभी एक साथ प्रकट हो जाते हैं। आप इतना ही करके शान्त नहीं हो जाते। सुग्रीवकी अनुमति लेकर स्वयं दूतोंको सम्मानपूर्वक बुलाते हैं और भय तथा प्रीति दिखाकर वानरोंको बुलानेके लिये उन्हें तुरंत भेज देते हैं। यदि आपने ऐसा न किया होता तो सुग्रीवपर कितना बड़ा कोपाक्रमण होता।

जब वानरयूथ इकट्ठे हो गये और श्रीसीताजीकी खोजमें भेजे जाने लगे, तब आपका दल भी दक्षिण दिशाकी ओर चला। उस समय सबसे पीछे आपने श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया। श्रीरामजीने इनको निकट बुलाकर अपने भक्तभयहारी कोमल कर-कमल इनके मस्तकपर रख दिये और अपना ही जन जानकर सहिदानके निमित्त अपनी मुद्रिका दे दी। फिर श्रीरघुनाथजी बोले—

बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥

आज श्रीहनुमानजीका जीवन सफल हो गया। उन्होंने सोचा कि मेरे समान बड़भागी कौन होगा, जिसके मस्तकपर मेरे नाथने आज पाप, ताप और माया—तीनोंको एक साथ मिटा देनेवाले कर-कमल रख दिये। कहा भी है—

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक! धरिहौ नाथ सीस मेरे।
जेहि कर अभय किये जन आरत, बारक बिबस नाम टेरे॥

× × ×

सीतल सुखद छाँह जेहि करकी, मेटति पाप, ताप, माया।
निसि-बासर तेहि कर सरोजकी, चाहत तुलसिदास छाया॥

वस्तुत: लंका-यात्रामें श्रीहनुमानजीको तीनों ही फल प्राप्त भी हो गये। तीनोंका पृथक्-पृथक् विवेचन सुनिये। श्रीहनुमानजी लंका-दहन करते हैं। वहाँ चारों ओर हाहाकार मच जाता है। अगणित जीव जलकर भस्म हो जाते हैं। इनकी गर्जनाको सुनकर अनेक राक्षस-नारियोंके गर्भपात हो जाते हैं—यह सब हुआ, परंतु आजतक किसीने स्वप्नमें भी ऐसी शंका नहीं की कि हनुमानजीको ऐसा करनेमें कोई पाप लगा। करते भी कैसे? जिसके मस्तकपर परम कारुणिकका अभय-हस्त फिर गया, उसमें पाप कहाँ? यह तो हुई पापकी बात। अब तापकी बात सुनिये! यों तो आप स्वाभाविक ही त्रिविध तापसे मुक्त हैं; परंतु यहाँ उस तापके सम्बन्धमें कहना है, जिससे आपने सारी लंकाको तप्त कर दिया था। आपकी पूँछमें लगायी हुई अग्नि जिस समय करोड़ों लाल-लाल लपटोंसे लंकाको दग्ध कर रही थी, उस समय प्रलयाग्नि या बड़वानल भी उसके सामने तुच्छ थे। अग्नि-शिखाएँ मानो काल-रसनाके सदृश सबको चाट रही थीं। मूसलाधार वृष्टि भी उस समय घृताहुतियोंके सदृश अग्निको अधिकाधिक प्रचण्ड कर रही थीं। समुद्रका जल भी उबल रहा था। ऐसी विकट स्थितिमें आप सहज ही एक महलसे दूसरे महलपर उछल रहे हैं, सारा शरीर रोमसे आवृत है, परंतु अग्निकी आँचसे आपका बाल भी बाँका नहीं होता। कैसा आश्चर्य है! बात यह है कि ***'गोपद सिंधु अनल सितलाई'*** की प्रभुतावाले प्रभुका अभय-हस्त जिनके सिरपर रखा गया उनके लिये तापकी सम्भावना ही नहीं रहती।

अब रही मायाकी बात, श्रीहनुमानजीको तीनों प्रकारकी गुणमयी मायाका सामना करना पड़ा, परंतु आप सबका पराभव करते हुए आगे बढ़े हैं। सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी—तीनों ही मायाओंसे सामना करना पड़ा। देवलोकसे आयी हुई सुरसा सत्त्वगुणी, अधोनिवासिनी सिंहिका, जो उड़ते हुए पक्षियोंकी छायाको पकड़कर उन्हें खींच लेती थी, तमोगुणी और मध्यलोकस्थ लंकानिवासिनी लंकिनी रजोगुणी थी। उच्च, मध्य और नीच स्थानोंमें रहनेवाली होनेके कारण उपनिषन्मयी गीताके सिद्धान्तानुसार इनका क्रमश:—सात्त्विकी, राजसी और तामसी होना सिद्ध है—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसा:।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसा:॥

(गीता १४। १८)

इनमें सुरसा तो देवलोकसे श्रीहनुमानजीके बुद्धि-बलकी परीक्षाके लिये आयी थी।

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा॥

सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥
आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥
तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥

सुरसाने कहा—'आज तो देवताओंने खूब भोजन भेजा।' इसपर श्रीहनुमानजी हँसे। इस हँसमुख मुद्रासे यह सूचित होता है कि आपको संधि स्वीकार है। इसके बाद मारुतिजीने 'राम' शब्दका उच्चारण किया; क्योंकि श्रीराम-नाम सर्वविघ्न-विनाशक और शत्रुको भी अनुकूल करनेमें समर्थ है। यथा—

धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति,
आई मीचु मिटति जपत रामनामको॥
(कवितावली ७। ७५। ४)

पर इस श्रीराम-नामसे भी सुरसाने मार्ग नहीं छोड़ा। यहाँ यह शंका हो सकती है कि हनुमान-सरीखे नामनिष्ठका यह प्रयोग निष्फल क्यों हुआ? इसका उत्तर यह है कि सुरसा तो प्रतिकूल थी ही नहीं, जो अनुकूल होती। वह तो प्रारम्भसे ही अनुकूल थी, केवल योग्यताकी परीक्षाके लिये आयी थी। इसीलिये वह नहीं हटी। इसके बाद आपने यह सूचित किया कि मैं *'राम काजु'*से जा रहा हूँ। बड़ेका काम सुनकर मामूली लोग भय खा जाते हैं *('राम रजाइ सीस सबही कें)॥'* इसका भी कोई फल न हुआ; क्योंकि अभी परीक्षाके बहुत-से विषय शेष थे। अब हनुमानजीने सोचा कि स्त्रीजातिकी स्त्रीजातिके प्रति स्वाभाविक सहानुभूति होगी, इससे *'सीता कइ सुधि'* प्रभुको सुनानेकी बात कही। इसपर भी सुरसा न हटी। तब प्रतिज्ञा करके समय लेना उचित समझा और *'तब तव बदन पैठिहउँ आई'* कहा। इसपर भी जब वह न मानी, तब उसे 'माता' (माई) कहकर सम्बोधन किया। स्त्रियोंमें अपत्य-स्नेह स्वाभाविक होता है। कहीं मातृभावसे बालक समझकर ही छोड़ दे। हनुमानजी किसी प्रकार भी *'राम काजु'* करनेकी चिन्तामें मग्न थे, उन्हें दूसरी कोई बात सूझती ही न थी। इसपर भी जब वह न मानी, तब आपने कहा कि 'फिर खा ही क्यों नहीं डालती *('ग्रससि न मोहि')?'* इतना सुनते ही सुरसाने एक योजन मुँह फैलाया, श्रीहनुमानजी 'रा', 'म'—'राम' रूपी दो अक्षरोंके बलसे उससे दूने बढ़ गये। तब सुरसाने नारी-प्रकृतिके अनुसार उनसे आठगुना—सोलह योजनमें मुखका विस्तार किया। मारुतिजीको तो (**'प्रीति प्रतीति है आखर 'दू' की,' 'तुलसी हुलसै बलु आखर 'दू' को'**) दो अक्षरोंका ही भरोसा था, इसीलिये वे फिर दूने—बत्तीस योजन बढ़े। तब तो सुरसाने किसी नियमको न मानकर सौ योजनमें मुँह फैलाया। श्रीहनुमानजीने सोचा कि सौ ही योजन समुद्र पार करनेकी बात थी, अवधि आ पहुँची, अतएव अब इसे भी पार करना ही चाहिये। तब '**अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा**'—छोटा-सा रूप बनाकर उसके मुँहमें घुस गये और झटपट बाहर निकलकर आज्ञा माँगी—

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरु नावा॥

श्रीहनुमानजीके बुद्धि-बलका मर्म समझकर संतुष्ट हो सुरसाने आशीर्वाद दिया—

'राम काजु' सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥

श्रीहनुमानजीने अपने बुद्धि-कौशलसे बाधकको साधक बनाकर आशीर्वाद प्राप्त कर लिया। कर्तव्य-पथमें विघ्न करनेवालेके साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, इस बातकी हमें इससे अच्छी शिक्षा मिलती है। इसके बाद क्रमश: सिंहिका और लंकिनीको भी स्वभावानुसार पुरस्कृत कर आप लंका पहुँचे।

आध्यात्मिक दृष्टिसे इस लंका-यात्राका अभिप्राय यह है कि जब जीव भक्तिकी खोजमें परमार्थ-पथपर चलता है, तब उसके लिये तीन प्रकारकी गुणमयी मायाएँ बाधक होती हैं। इन तीनोंके साथ श्रीहनुमानजीके सदृश ही व्यवहार करना चाहिये। सत्त्वगुणीसे विशेष विरोध न करे; क्योंकि शुभ कर्मोंकी प्रवृत्तिसे विरोध करना उचित नहीं प्रत्युत उन्हें तो निष्कामभावसे करते रहना चाहिये और निवृत्तिके लिये भजनके हेतुसे उसका सङ्ग-निर्वाह भी असम्भव है। अत: उसके अनुकूल होते हुए भी अपनेको छोटा बनाकर उससे छुटकारा पानेका प्रयत्न करे, उसमें प्रवृत्त न हो; क्योंकि शुभाशुभ—दोनों ही प्रकारकी प्रवृत्तियोंका त्याग करना ही भगवत्प्रेमियोंके लिये श्रेयस्कर है।

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक॥

श्रुति भी कहती है—

न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।
(तै० आ० प्र० १० अ० १०)

इस प्रकार सत्त्वगुणी मायासे बचे।

तमोगुणी मायाको सिंहिकाकी भाँति जानसे मार डाले, तात्पर्य यह कि उसे निःशेष त्याग दे; क्योंकि पापकर्मोंका लेश भी परमार्थके लिये अत्यन्त विरोधी है। अतः ***'भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥'*** तमोगुणी माया बड़ी ही घातक और तीव्र होती है, इसलिये उसको अपनी छाया भी नहीं छूने देना चाहिये; नहीं तो वह छायामात्रको ही पकड़कर हमारा जीवन नष्ट कर देगी। इससे सदा सचेत रहना चाहिये और जहाँ किंचित् भी संदेह हो, वहीं—***'तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा'*** के अनुसार तुरंत पहचानकर झटपट उसका काम तमाम कर ही डालना चाहिये। ***'रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥'***

रजोगुणी मायाको अधमरा करके छोड़ दे; क्योंकि इसका सर्वथा निराकरण कर देनेसे शरीर-रक्षार्थ अवलम्बनहीन हो जाना पड़ेगा। शरीर-यात्राभरके लिये अन्न-वस्त्र ग्रहण करना धर्म है; परंतु उतना ही जितना प्रारब्धानुसार प्राप्त हो—**'यदृच्छालाभसंतुष्टः'** (गीता ४। २२)। अतः रजोगुणी मायाको लंकिनीकी भाँति न प्रबल रहने दे और न नष्ट ही करे; अपितु कमजोर बनाकर अपने काबूमें करके उससे काम निकाले—**'नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः'** (गीता ६। १६), जिससे वह बाधक न होकर साधक ही रहेगी। इसी प्रकार त्रिगुणमयी मायासे छूटकर सीतारूपी भक्ति-माताकी खोजमें आगे बढ़ना चाहिये।

इसके बाद श्रीहनुमानजी लंकामें आकर विभीषणजीसे मिलते हैं और उनको अन्तर-बाहरसे भक्त समझकर उनके बतलाये हुए मार्गसे अशोक-वाटिकामें पहुँच माता सीताका साक्षात्कार करते हैं।

भक्ति-माताकी खोजमें निरत साधकको सद्गुरुकी आवश्यकता पड़ती है। यहाँ हनुमानरूपी जीवको विभीषणरूप सद्गुरुकी प्राप्ति हुई। तदनन्तर भक्तिरूपी सीताके दर्शन हुए। इस प्रसङ्गमें विशेष ध्यान देनेयोग्य बात यह है कि मायासे छुटकारा पानेपर भी संत-समागमके बिना यथार्थ भक्तिकी प्राप्ति नहीं होती। इसके अतिरिक्त साधकको खोटा-खरा भलीभाँति पहचानकर ही किसीको गुरु बनाना चाहिये। इसकी विधि भी यहीं बतला दी है। घरके बाहर श्रीराम-नाम-अंकित और तुलसीका वृक्ष देखकर ही हनुमानजीने तुरंत विश्वास नहीं कर लिया; जब विभीषण जगकर 'राम-राम' कहने लगे, तब विश्वास किया; क्योंकि रामायणान्तर्गत प्रतापभानुकी कथासे ही यह प्रकट है कि जगत्में साधुवेषमें घोर असाधु भी स्वार्थ-साधनके निमित्त निवास करते हैं। कहा है—

तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि॥

अतः जिस प्रकार श्रीहनुमानजीने विभीषणके बाहरी और भीतरी सब लक्षणोंको देखकर ही उन्हें संत समझा तथा उनपर विश्वास किया, संत-समागमके अभिलाषी भक्तोंको वैसे ही परीक्षा करके किसीपर विश्वास करना चाहिये। शास्त्रसम्मत संतोंके लक्षण सांगोपांग मिल जानेपर उस पुरुषसे कार्य-हानिकी शंका नहीं रह जाती—

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥

दो संतोंका सत्संग हुआ। दोनों ही श्रीरामानुरागियोंके तन-मन-वचन एकाकार हो भगवान्‌के गुणानुवादमें तल्लीन हो गये। परंतु इस अवस्थामें भी साक्षात्कार किये बिना पूर्ण शान्ति नहीं। तभी तो वे बोले—***'देखी चहउँ जानकी माता॥'*** फिर विभीषणोपदिष्ट मार्गसे वे अशोक-वाटिकामें पहुँचे। भक्तराज विभीषणकी शिक्षासे सीताजीकी संनिधि प्राप्त कर उन्होंने अपने स्वामीकी मुद्रिका उन्हें प्रदान की।

मुद्रिका-प्रदानमें भी एक रहस्य है। साधक भक्तिके लिये जो कुछ भेंट करता है, वह वस्तु होती क्या है? केवल प्रभुकी दी हुई ही! अन्यथा बेचारा जीव प्रभु-प्रसादके अतिरिक्त किसी वस्तुको कहाँसे पाता? इसीलिये तो **'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये'** का संकल्प है। इस प्रकार जब भक्तिके निमित्त प्रभु-प्रदत्त वस्तु समर्पित की जाती है और श्रीराम-यशकी पुष्पाञ्जलि चढ़ने लगती है—***'रामचंद्र गुन बरनैं लागा।'*** तब स्वयमेव ही आह्वान होता है—

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥

यहाँ बड़ा रहस्यपूर्ण प्रसङ्ग है। श्रीहनुमानजीके

निकट जानेपर माताजी पूरी परीक्षा लेनेके विचारसे मुँह फेरकर बैठ गयीं—*'फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ॥'*

तदनन्तर जब हनुमानजीने श्रीराम-भक्त होनेके परिचयमें सहिदानी मुद्रिकाका लक्ष्य कराते और 'करुनानिधान'* नामकी सत्य शपथ करते हुए उनका दास होनेकी सूचना देकर पूर्णरूपसे विश्वास दिलाया—

राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥

—तब माता उन्हें मन-कर्म-वचनसे 'कृपासिंधु' का दास जानकर परम प्रसन्न हुईं और पुलकित होकर संतुष्ट मनसे उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया—

'जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥'

हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी॥
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥

भक्तने विमल वरदान पाया। हनुमानजी प्रेममें तन-मनकी सुधि भूल गये—

करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

—यही निष्काम भक्तोंका परम धन है।

यहाँ श्रीहनुमानजीने यह प्रमाणित कर दिया कि भगवत्-प्रेमियोंको प्रभुकी कृपाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहिये—

अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥

इसके बाद लंकासे विदा होते समय हनुमानजी कोई सहिदानी माँगते हैं और माता चूड़ामणि उतारकर देती हैं।

मुद्रिकाके बदले चूड़ामणि प्रदान करनेमें भी गूढ़ रहस्य है। भगवान्ने जो अपने हाथका भूषण 'मुद्रिका' दी, इसका अभिप्राय यह है कि 'सीते! तुम कहीं भी हो, मेरे कर-कमलकी छाया सदा तुम्हारे सिरपर मौजूद है; तुम अभय हस्तके आश्रयमें अभय हो।' और उसके बदलेमें सिरका गहना 'चूड़ामणि' देनेका अभिप्राय यह है कि 'नाथ! यह शीश आपके कर-कमलकी छाया छोड़कर दूसरा अवलम्बन नहीं रखता।' इस अभीष्ट सिद्धान्तकी शिक्षा प्राप्त कर श्रीरामकी जल्दी लौटनेकी आज्ञाके अनुसार श्रीहनुमानजी माताको धैर्य दिलाकर लौट चले।

सारा काम श्रीहनुमानजीके कौशलसे ही पूरा हुआ था; तथापि आप संकोचवश स्वामी श्रीरामजी और सुग्रीवके पास घमंडसे सीना तान कर नहीं गये, वरं सिर झुकाये ही गये और जाकर भी पीछे ही छिपे रहे। सम्भवत: यह भी ध्यान रहा होगा कि स्वामीकी आज्ञा बिना ही प्रसङ्गवश लंका-दहन और राक्षस-वध करना पड़ा, इसके लिये कहीं प्रभु अप्रसन्न तो नहीं होंगे। तदनन्तर आपकी सारी कहानी भगवान्को जाम्बवान्ने सुनायी। इतना महान् कार्य करके भी हनुमानजीके हृदयमें अभिमानका अङ्कुर न जमा। अभिमानका अत्यन्त अभाव होनेके कारण ही आप अपना बल भूले रहते थे। इससे शिक्षा मिलती है कि बड़े-से-बड़ा कार्य करके भी कभी अभिमान नहीं करना चाहिये। श्रीहनुमानजीने यह सत्य सिद्धान्त बतला दिया—

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

—सारी सिद्धियाँ केवल प्रभु-कृपासे ही प्राप्त होती हैं; साधकके लिये यह अत्यन्त शिक्षाप्रद विषय है। श्रीहनुमानजीकी नम्रताका वर्णन प्रसंगवश गोस्वामीजीने रावण-अंगद-संवादके प्रकरणमें किया है। जब रावण श्रीरघुनाथजीकी सेनामें सबके बलकी निन्दा तथा श्रीहनुमानजीकी प्रशंसा करता है, तब अङ्गदजी वस्तुस्थितिको प्रकट करते हुए कहते हैं—

सत्य नगरु कपि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न गयउ सुग्रीव पहिं तेहिं भय रहा लुकाइ॥

तथा—

रावन नगर अल्प कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई॥

'रावण! अब मुझे यह रहस्य ज्ञात हुआ। बिना प्रभुकी आज्ञा लिये ही उस वानरने लंका-दहन किया; तभी तो वह भगवान्के सामने नहीं गया, भयके मारे छिप रहा। अथवा तुम्हारी बात ही सच्ची नहीं है। भला, वह नन्हा-सा सीधा-सादा वानर क्या इतने विशाल नगरको जला सकता है?' अंगदजीके इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि श्रीहनुमानजीकी अत्यन्त नम्रता एवं निरभिमानताके कारण अंगदने भी उनको इतना महान् कार्य करनेवाला नहीं समझा था। कोई समझता भी कैसे? श्रीहनुमानजी तो अपने मुँहसे अपनी बड़ाईकी

* श्रीमाताजी राघवेन्द्र सरकारको सदा 'करुणानिधान' शब्दसे सम्बोधन करती थीं, अत: हनुमानजीको इस मर्मका ज्ञाता जानकर ही विश्वास किया।

कोई बात कभी कहते ही नहीं थे, वे तो चुपचाप सेवामें लगे रहते थे। वे कपि-समाजके गर्जन-तर्जनमें भी कभी भाग नहीं लेते थे।

गोस्वामीजीने इनकी वन्दना *'महाबीर बिनवउँ हनुमाना।'*, **'प्रनवउँ पवनकुमार'** इत्यादि बड़े ही अच्छे शब्दोंमें की है और इनका ऐसा स्वभाव देखकर इनके विनयानुसंधानकी स्पष्टताके लिये एक जगह तो इनके 'मान' शब्दको हटा ही देना अच्छा समझा है। जिसने जीवनभर 'मान' की उपेक्षा की, उसके नामके अन्तर्गत 'मान' का रहना गोस्वामीजीको कैसे नहीं खटकता?

उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद 'हनू' समेत॥

कैसा अच्छा प्रसंग है। विभीषणजी रावणसे विमुख हो भगवान्‌की शरणमें आ रहे हैं, उन्हें लिवा लानेके लिये कपि-समाज जाता है। संत-मिलनका शुभ अवसर है। ऐसे अवसरपर श्रीमारुतिजी 'मान' लेकर क्या करते? यही कारण है कि श्रीतुलसीदासजीने 'हनु' मात्रका प्रयोग कर स्वाभाविक वर्णनकी पराकाष्ठा दिखला दी।

इसी नम्रताके कारण हनुमानजी भक्ति और शक्तिके समान अधिकारी हुए, जिसके कारण अन्तमें श्रीभगवान्‌के श्रीमुखसे भी ये उद्गार निकल पड़े—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥

इतना ही नहीं, श्रीहनुमानजीने जड़ी लाकर श्रीलक्ष्मणजीको, विजय-संदेशसे श्रीजानकीजीको और अवध-आगमन-संदेशसे श्रीभरतजीको तथा समस्त अयोध्याको ऋणी बना लिया। यही कारण है कि श्रीरामपञ्चायतनमें आपको भी स्थान प्राप्त है।

भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥
मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥

भगवान् ऐसे भक्तका गुणानुवाद स्वयं अपने श्रीमुखसे करते हैं। आपका जीवन सेवा और पुरुषार्थका नमूना है और इससे हमें यह अन्यतम शिक्षा प्राप्त होती है कि भगवान्‌की सेवाके साथ-साथ पुरुषार्थ करनेसे भगवान्‌की कृपादृष्टि होती है और जीवन सफल हो जाता है—

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

धन्य हनुमान! आपको और आपके लोकपावन चरित्रको!

केसरीकुमारका अवतार

(रचयिता—श्रीतारकेश्वरजी वाजपेयी शास्त्री, 'लल्लन')

(१)

केसरीकुमारको जो अवतार होतो नहिं, भूमिको सकल भार छिनमें हटाता कौन।
सागरको लाँघि मातु सिया पास जाता कौन, लंका जारि, अक्षय सँहारि लौट आता कौन॥
अचल समेत संजीवनीको लाता कौन, जाय कै पाताल अहिरावण नशाता कौन।
'लल्लन' उपासकोंको दुःखसे छुड़ाता कौन, रामके सुयशकी पताका फहराता कौन॥

(२)

जगत्‌में जन्म जो न होतो हनुमानजीको, असुर-समूहको समूल ही मिटाता कौन।
दुःख औ दुरित दूरि करि साधु-संतनके, लोक-परलोक दोनों सुखद बनाता कौन॥
परम पुनीत दीर्घ जीवनको देनहार, ब्रह्मचर्य-व्रतके महत्त्वको बढ़ाता कौन।
अति ही कुटिल कलिकालके कुचालियोंको, 'लल्लन' श्रीरामभक्ति-मारग दिखाता कौन॥

ज्ञानिनामग्रगण्य

(भक्त-गाथा)

'बेटा! बेटा!' विधवा ग्वालिनने अपने नन्हे-मुन्नेको पुकारा। वह नन्हा-मुन्ना पाँच वर्षका बालक अपनी आराधनामें तन्मय था। माताके पुकारनेका उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

'मेरे बेटे! भोजन तैयार है, बड़ी देर हो गयी है, चल, पहले भोजन कर ले।' माता पुनः पुकार उठी। माँकी वाणीमें वात्सल्य-भरा प्यार छलछला रहा था।

माताने देखा, बालक उसी तरह ध्यानमें मग्न है। वह भगवान् शिवकी वैराग्यप्रदायिनी आराधनामें तल्लीन था। एक दिन उस बालकने राजा चन्द्रसेनको भगवान् गौरीपतिके मन्दिरमें महापूजा करते हुए ध्यानमग्न देखा था। राजाको अनन्य भावसे शिवाराधना करते देखकर बालकके मनमें भी भक्तिभाव जाग्रत् हो उठा। छल-कपटहीन बालक कहींसे एक सुन्दर पत्थर खोज लाया और उसीकी उसने अपने आराध्य गिरिजापतिके रूपमें स्थापना कर दी। पूजाके उपकरणोंका अभाव उस बालककी भावमयी पूजामें बाधक नहीं बना। मानसिक अलंकार, चन्दन, धूप, दीप और अक्षत आदि पूजा-सामग्रीसे उसके आराध्यदेव पूजित हुए एवं मनःकल्पित दिव्य नैवेद्य उमापतिको निवेदन किये गये। माताकी स्नेहपूर्ण पुकार भी आँख बंद किये स्थित उस बालकके ध्यानमें विघ्न उपस्थित नहीं कर सकी।

भोजन ग्रहण न करनेसे अपने पुत्रके अनिष्टकी वात्सल्यमयी आशंकाने ग्वालिनके हृदयमें क्रोधाग्नि उत्पन्न कर दी। वह बालकपर बरस पड़ी। उसने बालकको बलपूर्वक पूजाके आसनसे खींचकर पीटा। क्रोधके आवेशमें उसने शिवलिंगको भी उठाकर दूर फेंक दिया। माताकी दृष्टिमें तो वह एक कल्पित शिवलिंग ही था—बालकका एक खिलौना मात्र। वह अपने पुत्रके भक्तिभावित हृदयकी थाह कहाँ पा सकती थी। उसे उस शिवलिंगमें साक्षात् शिवकी अनुभूति कहाँ थी? क्रोधमें झुँझलाती हुई वह बालकको वहीं छोड़कर घर लौट गयी।

बालक अपने आराध्यदेव गौरीशंकरकी इस तरह दुर्दशा देखकर व्याकुल हो उठा। उसके हृदयने धैर्य त्याग दिया, नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी। 'हा देव! हा देव!' चिल्लाता हुआ वह बालक मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

मणिमय स्तम्भ, सुवर्णमय द्वार-कपाट, बहुमूल्य नीलमणि एवं हीरोंकी वेदिकाएँ उस शिवालयकी शोभा बढ़ा रही थी। दो घड़ी बाद अकस्मात् उस बालककी आँख खुली। चेत होते ही अपने स्थानपर पूजास्थलको मणिमण्डित शिवालयके रूपमें परिणत हुआ देखकर वह आश्चर्यचकित एवं परमानन्द-समुद्रमें निमग्न हो गया।

'देव! मेरी मूढ़ माताके अपराध क्षमा करके उसे कृपादान दीजिये।' बालक साष्टाङ्ग प्रणत हो गया अपने आराध्यके सम्मुख। भगवान् शंकरकी अर्चना करके वह अपने शिविरकी ओर बढ़ा। विस्मित हो उठा वह बालक अपने शिविरको देखकर। उसके टूटे-फूटे शिविरकी जगह सभी तरहके वैभवोंसे सम्पन्न एक मणिमय प्रासाद खड़ा था। स्वर्ण एवं रत्नजटित बहुमूल्य पदार्थोंसे विभूषित वह प्रासाद इन्द्रके महलकी तरह सुशोभित था। मणिमय पर्यङ्कपर लेटी हुई माँ उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

आशुतोष औढरदानी भोलेनाथ उस सरल एवं निष्कपट बालककी मन्त्र तथा क्रियाहीन पूजासे भी प्रसन्न हो गये। भगवान्को भक्ति बड़ी ही प्रिय है। उनके रिझानेका सबसे सरल साधन निष्कपट भक्ति ही है। उस गोप-बालकका हृदय भावमयी भक्तिसे पूरित था। फिर भोलेबाबाको रीझते कितनी देर लगती?

बालकपर भगवान् गंगाधरकी इस अद्भुत कृपाकी चर्चा राजा चन्द्रसेन एवं पुरवासियोंके भी कानोंमें पड़ी। अपने मन्त्रिगण, पुरोहित एवं अन्य नगरवासियोंके साथ राजा चन्द्रसेन स्वतः प्रकटित भगवान् शंकरके विग्रहके दर्शनार्थ वहाँ आये। प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उन्होंने उस गोप-बालकको हृदयसे लगा लिया। राजा चन्द्रसेनके शत्रु राजाओंपर भी इस घटनाका अद्भुत प्रभाव पड़ा। वे शत्रुभावको त्यागकर भगवान्के दर्शनार्थ वहाँ एकत्र हो गये।

उस गोप-बालकको भगवान् शंकरके वरदानद्वारा वैभव एवं ऐश्वर्यकी प्राप्ति तो अवश्य हो गयी थी, परंतु

अभी भगवान् शंकरकी नित्य संनिधि एवं उनके नित्यधाममें निवासका अधिकार नहीं प्राप्त हुआ था। एक दिन भक्तोंके मार्गदर्शक अञ्जनिनन्दन पवनपुत्र श्रीहनुमानजी उसके समक्ष अनायास स्वत: प्रकट हो गये। उसने भक्तराज हनुमानजीको विनम्रभावसे प्रणाम किया।

तेजस्वी हनुमानजी उस गोप-बालकपर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे 'श्रीकर' नामसे विभूषित किया और कहा—'यह गोप-बालक अपने वंशकी कीर्ति बढ़ानेवाला एवं परम पुण्यात्मा होगा। आगे चलकर इसीकी वंशपरम्परामें परम यशस्वी गोपराज नन्द उत्पन्न होंगे, जिनके यहाँ अखिल सौन्दर्य-माधुर्य-निकेतन स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका पुत्ररूपमें प्राकट्य होगा।'

सर्वदेव-पूजित पवनपुत्र हनुमानजीका ज्ञानियोंमें अग्रतम स्थान है। इतिहास एवं पुराणोंमें स्थान-स्थानपर उनकी विद्वत्ताके उल्लेख हैं। 'रामरहस्योपनिषद्' में श्रीसनकादि, शाण्डिल्य आदि ऋषिगण एवं प्रह्लाद आदि विष्णु-भक्तोंको हनुमानजीने श्रीरामोपासनासम्बन्धी महत्त्वपूर्ण उपदेश दिये हैं। श्रीहनुमानजी भगवद्भक्तोंकी साधनामें प्रगतिके उद्देश्यसे स्वत: प्रकट होकर समय-समयपर उनका सही मार्गदर्शन करते रहते हैं।

रुद्रावतार हनुमानजी भक्तोंके अहैतुक हितैषी हैं। श्रीकर गोपका हृदय शिव-भक्तिसे पूर्ण था, परंतु उसे अभीतक शिवोपासनासम्बन्धी आचार-पद्धतिका ज्ञान न था। हनुमानजीने उसे शिवोपासना-पद्धतिका महत्त्वपूर्ण उपदेश किया, जिससे वह सांसारिक भोगोंसे उपराम होकर उनके उपदेशानुसार शिव-आराधना करके परमपदको प्राप्त हो गया।

जीवोंके उद्धारक होनेके कारण श्रीराम-भक्तिके मूर्तिमान् रूप एवं शिव-भक्तिके उपदेशक श्रीहनुमानजी '**ज्ञानिनामग्रगण्य**' कहलाते हैं।

—ह० कृ० दु०

श्रीहनुमानजी (हनुमन्त)

(लेखक—स्व० रायबहादुर लाला श्रीसीतारामजी, बी० ए०)

हनुमानजी श्रीरघुनाथजीके परम भक्त, दुर्धर्ष वीर और महान् ज्ञानी थे। इनके जन्मकी कथा वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डके ६६ वें सर्गमें इस प्रकार वर्णित है—जब सीताजीकी खोज करते-करते वानर-सेना समुद्र-तटपर पहुँची तो अथाह जल-राशि देखकर सभी घबरा गये। तब अंगदने धीरज धारणकर उनसे कहा कि 'यह समय विक्रम दिखानेका है, विषादका नहीं। विषादसे पुरुषका तेज नष्ट हो जाता है और तेजोहीन पुरुषका कोई काम सिद्ध नहीं होता। तुमलोग हमें यह बताओ कि तुममेंसे कौन वीर समुद्र लाँघ सकता है?' इसपर अनेक वानर बोल उठे—किसीने कहा कि हम तीस योजन लाँघ सकते हैं, किसीने चालीस कहा; जाम्बवान्ने नब्बे योजनतक लाँघनेका बल बताया। इसपर अंगदने कहा कि 'समुद्रकी चौड़ाई सौ योजन है, सो तो हम लाँघ जायँगे; किन्तु यह निश्चय नहीं कि लौट भी सकेंगे या नहीं।' तब जाम्बवान् बोले कि 'आप सबके स्वामी हैं, आपका जाना उचित नहीं है।' इसपर अंगदने उत्तर दिया कि 'न हम जायँ और न कोई अन्य जाय तो हमलोगोंको यहीं मर जाना चाहिये; क्योंकि सुग्रीवकी आज्ञा है कि बिना सीताका पता लगाये मुझे मुँह न दिखाना।' जब ये बातें हो रही थीं, तब हनुमानजी एकान्तमें बैठे थे। जाम्बवान्ने कहा कि 'तुम चुपचाप क्यों बैठे हो, तुम्हारी भुजाओंमें इतना बल है जितना कि गरुड़के पंखोंमें। तुम्हारी माता अञ्जना पहले पुञ्जिकस्थला नामकी अप्सरा थीं। अत्रि मुनिके शापके कारण वे वानरी हो गयीं और कुञ्जर नामक वानरश्रेष्ठके घरमें जन्मीं, उनका विवाह केसरीके साथ हुआ था। वर्षा-ऋतुमें वे एक बार पहाड़पर घूम रही थीं कि पवनने उनका अञ्चल उड़ा दिया। अञ्जनाने कहा कि हमारा पातिव्रत-धर्म कौन नष्ट करना चाहता है? इसपर पवनदेवने उत्तर दिया कि तुम्हारा पातिव्रत-धर्म भंग न होगा। हमारे संसर्गसे तुम महासत्त्व, महातेजस्वी और महापराक्रमी पुत्र जनोगी। वही पुत्र तुम हो। जब तुम बालक ही थे, वनमें सूर्यको

उदय होते देख उसे फल समझकर खानेके लिये दौड़ पड़े थे। इसपर इन्द्रने तुम्हारे ऊपर वज्र-प्रहार किया और तुम्हारी बायीं हनु टूट गयी। तबसे तुम्हारा नाम 'हनुमान' पड़ा।'

ब्रह्मपुराणमें यह कथा विशेष विस्तारके साथ दी हुई है। गोदावरी और फेना (पेनगंगा) के संगमपर एक बड़ा तीर्थ है, जिसमें स्नान-दान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता। इस तीर्थके अनेक नाम हैं—वृषाकपि, हनुमत्, मार्जार और अब्जक। यह तीर्थ गोदावरीके दक्षिण तटपर है और इसकी कथा इस प्रकार है—

'वानरराज केसरीकी दो स्त्रियाँ थीं—अञ्जना और अद्रिका। दोनों पहले अप्सराएँ थीं। शापवश अञ्जनाका मुँह वानरीका-सा हो गया और अद्रिकाका बिल्लीका-सा। दोनों अञ्जन पर्वतपर रहती थीं। एक बार अगस्त्य मुनि वहाँ पहुँचे। दोनोंने उनकी पूजा की और मुनिने प्रसन्न होकर दोनोंको एक-एक पुत्रका वर दिया। दोनों उसी पर्वतपर नाचती-गाती रहीं। वहीं वायुदेव और निर्ऋतिदेव पहुँच गये। वायुके संसर्गसे अञ्जनाके पुत्र हनुमान हुए और निर्ऋतिदेवके संयोगसे अद्रिकाका पुत्र अद्रि नामक पिशाचराज हुआ। पीछे गोदावरीमें स्नान करनेपर दोनोंकी शाप-निवृत्ति हुई। जहाँ अद्रिने अञ्जनाको नहलाया, उस तीर्थका नाम 'आञ्जन' और 'पैशाच' पड़ा और जहाँ हनुमानजीने अद्रिकाको स्नान कराया था, वह 'मार्जार' 'हनुमत्' और 'वृषाकपि' के नामोंसे प्रसिद्ध हुआ।[1]

'वृषाकपि' का अर्थ है—जिसका सम्बन्ध वृषकपिसे हो और वृषकपिकी कथा ब्रह्मपुराणके अध्याय १२९ में दी हुई है।

दैत्योंका पूर्वज महाबली हिरण्य तपस्याके बलसे देवताओंके लिये अजेय हो गया था। उसका पुत्र महाशनि भी महान् बलशाली था। उसने एक युद्धमें इन्द्रको हाथीसहित बाँधकर अपने पिताको भेंट कर दिया। पिताने इन्द्रको बंद कर रखा। पीछे महाशनिने वरुणपर चढ़ाई कर दी, परंतु वरुणदेवने उसे अपनी बेटी देकर उससे संधि कर ली। इन्द्रके बँध जानेसे देवता बहुत दु:खी हुए और उन्होंने विष्णुसे सहायता माँगी। विष्णुने उत्तर दिया कि 'वरुणदेवकी सहायताके बिना हम कुछ नहीं कर सकते।' तब देवता वरुणके पास गये।[2]

वरुणके कहनेसे महाशनिने इन्द्रको छोड़ तो दिया; परंतु उनको बहुत फटकारा और उनसे कहा कि तुम वरुणको आजसे गुरु मानो। इन्द्र मुँह लटकाये अपने घर आये और इन्द्राणीसे अपनी दुर्दशा कही। इन्द्राणीने कहा—'यद्यपि हिरण्य मेरा चाचा था तो भी मैं अपने चचेरे भाईकी मृत्युका उपाय बताती हूँ। तपस्या और यज्ञसे सब कुछ हो सकता है। आप दण्डक वनमें शिव और विष्णुकी आराधना करें।' इन्द्रने शिवकी आराधना की। शिवने कहा—'हम अकेले कुछ नहीं कर सकते। तुम विष्णुकी पूजा करो।' तब इन्द्र और इन्द्राणीने आपस्तम्बके साथ गोदावरीके तटपर—गोदावरी और फेनाके संगमपर विष्णुभगवान्‌की आराधना की। शिव और विष्णुके प्रसादसे जलके भीतरसे शिव और विष्णु—दोनोंका स्वरूप धारण किये हुए (अर्थात् चक्रपाणि और शूलधर) एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने रसातलमें जाकर महाशनिको मारा। यही इन्द्रका प्यारा मित्र अब्जक वृषाकपि कहलाया।

वृषाकपि अरिंदमका नाम इसी ग्रन्थके अध्याय ७० में उन लोगोंके साथ भी आया है जिन्होंने गोदावरी-तटपर तीर्थ-स्थापन किये थे।

विचारनेसे यह ध्वनित होता है कि वृषाकपि[3] और हनुमान एक ही थे। वृषाकपिका अर्थ होता है—पुँल्लिङ्गी बंदर। क्या हनुमानजी ऐसे ही बंदर थे, जैसे आजकल अयोध्या आदि नगरोंमें उपद्रव करते हैं? यदि ऐसे ही थे तो क्या कारण है कि आजकल कोई बंदर ज्ञानी नहीं निकलता? कुछ लोग यह समझते हैं कि हनुमानजी और उनके सैनिक दक्षिण देशके निवासी थे। आधुनिक विज्ञानसे यह सिद्ध होता है कि हजारों वर्ष पहले भारतका दक्षिण प्रान्त अफ्रीकासे मिला हुआ था, कालान्तरमें धरतीके बैठ जानेसे बीचमें अरबसागर बन

१. यह संगम अकोलाके दक्षिण निजाम-राज्यमें है।

२. ब्रह्मपुराण, अध्याय ८४।

३. क्योंकि हनुमानके संसर्गसे वह वृषाकपि तीर्थ कहलाया।

गया। अफ्रीकाके हब्शियोंका मुँह बंदरोंसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। दोनोंकी चिपटी नाक, दबे मत्थे और थूथनकी भाँति आगे निकले हुए मुँह अब भी देखे जाते हैं। क्या इस बातके माननेमें कोई आपत्ति हो सकती है कि ये वानर उन्हीं हब्शियोंके भाई हों, जो अफ्रीकामें अबतक बसे हैं और भारतमें नष्ट हो गये या वर्णसंकर होकर यहाँके निवासियोंसे मिल गये। इसमें एक शंका हो सकती है कि रामायणके बंदर पिङ्गल वर्णके थे और अफ्रीकाके हब्शी काले होते हैं; परंतु यह जलवायुका प्रभाव हो सकता है।

अब रहा हनुमन्त नाम! यदि हम मान लें कि हनुमान और उनके सैनिक प्राचीन द्रविड थे तो सम्भव है कि रावणकी भाँति हनुमन्त भी किसी तमिल-शब्दका संस्कृत रूप हो और जब हनुमन्त शब्द बना हो तो उसकी उत्पत्ति दिखानेके लिये इन्द्रके वज्रसे हनु टूटनेकी कथा रची गयी हो। इस कथासे यह भी ध्वनित होता है कि हनुमानजी पहले ऐसे कुरूप न थे। हनु टूट जानेसे उनका मुख बंदरका-सा हो गया। ऐसे ही वृषाकपि भी किसी द्रविड शब्दका संस्कृत अनुवाद हो सकता है; क्योंकि यह तो सिद्ध ही है कि वानर गोदावरीसे दक्षिणके रहनेवाले थे, जहाँ आजकल कन्नड या तमिल भाषा बोली जाती है। हम इस विषयमें १९१३ के जर्नल ऑफ रायल—एशियाटिक सोसाइटीसे प्रसिद्ध विद्वान् मिस्टर पार्जिटरका मत उद्धृत करते हैं।

द्रविडमें 'वृषा' शब्द पुँल्लिङ्गी बंदरके लिये आया है और यह शब्द कन्नड, तमिल और मलयालम्—तीनों भाषाओंमें प्रयुक्त होता है। तेलगुमें इसके बदले मन और पोटु कहा जाता है। कपि—बंदरके लिये इन चारों भाषाओंमें दो शब्द हैं—एक कुरंगु, दूसरा मंडी। वानरवाची कुरंगु तमिल-भाषाका है। शेष तीनोंमें 'कुरंगु' हिरनको कहते हैं। मलयालम्में इस शब्दके दो रूप हैं—कुरंग हिरन और कुरन्नु बंदर[१]। तमिल-भाषामें मंडी विशेषकर बंदरियाको कहते हैं। मलयालम्में मंडी काले मुँहके बंदरोंके अर्थमें कहा जाता है। कन्नड और तेलगुमें मंडी संयुक्त शब्दोंमें हिंदी-भाषामें 'लोग' के अर्थमें आता है। यह अर्थ विचारणीय है। कन्नडमें बंदरके लिये दो शब्द हैं—कोटि और तिम्मा। ये दोनों ही नये शब्द हैं। यह बात सर्वसम्मत है कि तमिलमें प्राचीन शब्द बहुत हैं। अब आण और मंडीके मिलनेसे एक द्रविड शब्द बन जाता है और उसका संस्कृतानुवाद 'वृषाकपि' होता है।

आण-मंडीका संस्कृतरूप हुआ हनुमन्त। द्रविड शब्दसे संस्कृत शब्द बनानेके लिये बहुधा एक 'ह' पहले जोड़ दिया जाता है। इसके कई उदाहरण मिस्टर पार्जिटरने दिये हैं। जैसे तमिल-भाषामें इडुम्बीका अर्थ है—'गर्वीली स्त्री'। यही नाम उस स्त्रीका था, जो हिडिम्बा कहलायी।

आजकल हनुमानको तमिलमें 'अनुमण्डन' कहते हैं, जिससे प्रकट है कि तमिलमें संस्कृतका 'ह' गिर जाता है। इसीसे यह सिद्ध होता है कि श्रीहनुमानजी दक्षिण देशके प्राचीन निवासी थे और उनका असली नाम आण-मंडी था, जिसका अक्षरार्थ लेकर संस्कृतमें वृषाकपि[२] बनाया गया और संस्कृत रूप हनुमन्त हुआ।

हम यहाँ इतना और कहना चाहते हैं कि प्राचीन यूरोपमें एक असभ्य लड़ाकू जाति बंडल थी। उनके आक्रमणोंसे रोम-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था। बंदर और बंडल शब्द बहुत मिलते-जुलते हैं। बच्चे बहुधा बंदरको बंडल ही कहते हैं।

श्रीहनुमानजीद्वारा रावणको आध्यात्मिक उपदेश

मेघनादने हनुमानजीको ब्रह्मास्त्रसे बाँधकर अपने पिता रावणके समक्ष उपस्थित किया। दैत्य-सम्राट् रावणका वैभवशाली सुसज्जित दरबार लगा था। प्रहस्त आदि प्रधान सचिव और सेनापति यथास्थान आसीन थे। वरुण, कुबेर आदि लोकपाल रावणकी आज्ञा-प्रतीक्षामें खड़े थे। हनुमानजीको देखते ही रावणने प्रहस्तके द्वारा प्रश्न किया—'अरे बंदर! तू कौन है? कहाँसे आया है? मेरे प्रमदा-वनको तूने क्यों उजाड़ दिया? और मेरे वीर

१. बंदरके लिये संस्कृतमें 'शाखामृग' शब्दका प्रयोग इसका उदाहरण है।

२. आधुनिक संस्कृतमें 'वृषाकपि' के अनेक अर्थ हैं—इन्द्र, शिव, विष्णु आदि।

योद्धाओंका संहार क्यों कर डाला?' इसके उत्तरमें हनुमानजीने उसे अपना परिचय देते हुए जो सारगर्भित आध्यात्मिक उपदेश दिया, उसीका कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है—

स्पृष्ट्वैव मां ब्रह्मवरप्रभावत-
स्त्यक्त्वा गतं सर्वमवैमि रावण।
तथाप्यहं बद्ध इवागतो हितं
प्रवक्तुकामः करुणारसार्द्रधीः॥

हे रावण! मैं यद्यपि यह जानता था कि ब्रह्माजीके वरके प्रभावसे वह ब्रह्मपाश मुझे छूते ही चला गया, तथापि करुणावश तुम्हारे हितकी बात बतानेके लिये ही मैं बँधे हुएके समान यहाँ चला आया हूँ।

विचार्य लोकस्य विवेकतो गतिं
न राक्षसीं बुद्धिमुपैहि रावण।
दैवीं गतिं संसृतिमोक्षहैतुकीं
समाश्रयात्यन्तहिताय देहिनः॥

हे रावण! तू विवेकपूर्वक संसारकी गतिका विचार कर, राक्षसी बुद्धिको मत अंगीकार कर और संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाली प्राणियोंकी अत्यन्त हितकारिणी दैवीगतिका आश्रय ले।

इदं तु सत्यं तव नास्ति विक्रिया
विकारहेतुर्न च तेऽद्वयत्वतः।
यथा नभः सर्वगतं न लिप्यते
तथा भवान् देहगतोऽपि सूक्ष्मकः।
देहेन्द्रियप्राणशरीरसङ्गत-
स्त्वात्मेति बुद्ध्वाखिलबन्धभाग्भवेत्॥

यह बिलकुल सत्य है कि तुम्हारे आत्मस्वरूपमें कोई विकार नहीं है; क्योंकि अद्वितीय होनेसे उसमें कोई विकारका कारण ही नहीं है; जिस प्रकार आकाश सर्वत्र होनेसे भी (किसी पदार्थके गुण-दोषसे) लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार तुम देहमें रहते हुए भी सूक्ष्मरूप होनेसे उसके सुख-दुःखादि विकारोंसे लिप्त नहीं होते। 'आत्मा देह, इन्द्रिय, प्राण और शरीरसे मिला हुआ है'—ऐसी बुद्धि ही सारे बन्धनोंका कारण होती है।

चिन्मात्रमेवाहमजोऽहमक्षरो
ह्यानन्दभावोऽहमिति प्रमुच्यते।
देहोऽप्यनात्मा पृथिवीविकारजो
न प्राण आत्मानिल एष एव सः॥

और 'मैं चिन्मात्र, अजन्मा, अविनाशी तथा आनन्द-स्वरूप ही हूँ'—इस भावनासे जीव मुक्त हो जाता है। पृथ्वीका विकार होनेसे देह भी अनात्मा है और प्राण वायुरूप ही है, अतः यह भी आत्मा नहीं है।

मनोऽप्यहङ्कारविकार एव नो
न चापि बुद्धिः प्रकृतेर्विकारजा।
आत्मा चिदानन्दमयोऽविकारवान्
देहादिसंघाद् व्यतिरिक्त ईश्वरः॥

अहंकारका कार्य मन अथवा प्रकृतिके विकारसे उत्पन्न हुई बुद्धि भी आत्मा नहीं है। आत्मा तो चिदानन्दस्वरूप, अविकारी तथा देहादि संघातसे पृथक् और उसका स्वामी है।

निरञ्जनो मुक्त उपाधितः सदा
ज्ञात्वैवमात्मानमितो विमुच्यते।
अतोऽहमात्यन्तिकमोक्षसाधनं
वक्ष्ये शृणुष्वावहितो महामते॥

वह निर्मल और सर्वदा उपाधिरहित है, उसका इस प्रकार ज्ञान होते ही मनुष्य संसारसे मुक्त हो जाता है। अतः हे महामते! मैं तुम्हें आत्यन्तिक मोक्षका साधन बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो।

विष्णोर्हि भक्तिः सुविशोधनं धिय-
स्ततो भवेज्ज्ञानमतीव निर्मलम्।
विशुद्धतत्त्वानुभवो भवेत्ततः
सम्यग्विदित्वा परमं पदं व्रजेत्॥

भगवान् विष्णुकी भक्ति बुद्धिको अत्यन्त शुद्ध करनेवाली है, उसीसे अत्यन्त निर्मल आत्मज्ञान होता है। आत्मज्ञानसे शुद्ध आत्मतत्त्वका अनुभव होता है और उससे दृढ़ बोध हो जानेसे मनुष्य परमपद प्राप्त करता है।

नो चेत्त्वमज्ञानमयेन वह्निना
ज्वलन्तमात्मानमरक्षितारिवत् ।
नयस्यधोऽधः स्वकृतैश्च पातकै-
र्विमोक्षशङ्का न च ते भविष्यति॥

यदि तुम भगवान् श्रीरामका भजन न करोगे तो अज्ञानरूपी अग्निसे जलते हुए अपने-आपको शत्रुके समान सुरक्षित न रख सकोगे और उसे अपने किये हुए पापोंसे उत्तरोत्तर नीचेकी ओर ही ले जाओगे, फिर तुम्हारे मोक्षकी कोई सम्भावना ही न रहेगी। (अध्या० रा० ५। ४। १४-१५, १८—२२, २५)

नम्रताकी मूर्ति—श्रीहनुमानजी

(लेखक—श्री स० ना० पाण्डेय)

अधिकांश भगवत्प्रेमी पुरुष पवनसुत हनुमानजीको प्रमुखत: शक्तिके आराध्यदेवके रूपमें ही मानते एवं पूजते हैं। किंतु जैसा विद्याके विषयमें कहा है—

'विद्या विनयेन शोभते।'

—उसी प्रकार नम्रता भी बलवान्‌का ही आभूषण है। बल होना एवं उसका दर्प होना मनुष्यको रावण बना देता है, जिससे वह अन्यायी-अत्याचारी हो जाता है। यथार्थमें तो प्रत्येक अत्याचारी व्यक्ति डरपोक होता है, निर्भीक कभी नहीं। क्रूरता निर्बलताकी निशानी है। अत: सच्चा बलशाली व्यक्ति अपने बलका प्रदर्शन नहीं करता। उसका बल तो उस समय प्रकट होता है, जब उसे निर्बलोंकी तथा धर्मकी रक्षा एवं आततायीका मर्दन करना हो या अपने स्वामीके हितमें कोई शुभ कार्य करनेके हेतु ललकारा जाता हो, जैसा कि जाम्बवान्‌ने समुद्र-लङ्घनकी समस्याके समय कहा—

'का चुप साधि रहेहु बलवाना॥'

तथा—

कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा॥

हनुमानजी पर्वताकार तो अवश्य हुए, गरजे-तरजे भी, किंतु उन्होंने अपना मानसिक संतुलन नहीं खोया। नम्रतापर अधिकार बनाये रखा एवं जाम्बवान्‌से बोले—'मैं समुद्रको लील सकता हूँ, लाँघ सकता हूँ, बन्धुसहित रावणको मारकर त्रिकूटपर्वतको उखाड़कर अभी ला सकता हूँ' पर—

जामवंत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही॥

अत: हनुमानजीकी उतनी महानता उनकी शक्तिमें नहीं थी, जितनी उनकी भक्ति तथा नम्रतामें। जब श्रीराम-दलके वीरोंकी यह स्थिति थी—

निज निज बल सब काहूँ भाषा। पार जाइ कर संसय राखा॥

—ऐसे अवसरपर भी सबमें शक्तिशाली होते हुए भी आप चुप्पी साधे रहे। इसी प्रकार 'राम-काज' कर आनेके बाद भी वही नम्रताकी मूर्ति, वही प्रशंसासे पृथक् छिपे रहनेकी प्रवृत्ति। उन्होंने सुग्रीवसे स्वयं आगे बढ़कर यह नहीं कहा कि 'हे स्वामी! मैंने आपका दिया काम पूरा किया है तथा मैं सीताका संदेश भी ले आया हूँ।'

पूँछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपाँ भा काजु बिसेषी॥
नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। ....॥

आदि।

अङ्गदने ऐसी सूचना दी तथा ऐसी ही सूचना फिर सुग्रीवने भी श्रीरामको दी।

'प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू।'

तथा—

पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥

यद्यपि श्रीरामने हनुमानजीको अपना विशेष दूत बनाकर भेजा था अपनी मुद्रिका देकर। अत: श्रीरामको स्वयं सूचना देनेका उन्हें अधिकार था। साथ ही वे सीताजीका विशेष संदेश तथा चूड़ामणि भी तो लाये थे। अत: आगे बढ़कर भेट कर सकते थे। पर नहीं, श्रीरामदलमें उनका चतुर्थ स्थान था—पहले सुग्रीव, फिर जाम्बवान्, फिर अङ्गद, तब हनुमानका नाम आता है एवं अपनेसे बड़ोंको सीधे सूचना देना बड़ोंका अपमानसूचक होता है। फिर हनुमानजी तो नम्रताकी प्रतिमूर्ति थे, तभी तो लंका-यात्रापर जाते समय भी वे सबको शीश नवाकर ही चले—

'यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा।'

हनुमानजीद्वारा सीताजीकी सुध लानेपर जब उनका संदेश एवं निशानी प्राप्त कर श्रीराम उन्हें अपने निकट बैठाकर प्रेमपूर्वक पूछते हैं—

कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥

—तब अभिमानगलित, नम्रताके अवतार श्रीहनुमानजी कहते हैं—

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

इस प्रकार जब भगवान् श्रीराम कहते हैं—

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥

देखिये, सफलताके चरम विन्दुपर भी दीनता, महावीर होते हुए भी अपने-आपको एक शाखामृग मानना कितनी बड़ी नम्रता है। इसी प्रकार जब सीताजी हनुमानजीके लघु रूप—साधारण रूपको देखकर शंका प्रकट करती

हैं कि कैसे ऐसे वानरोंकी सेनासे प्रबल राक्षसोंपर श्रीराम विजय प्राप्त करेंगे, तब पुनः ऐसे अवसरपर अपने प्रभुका प्रताप-प्रदर्शन तथा एक दुष्टके चंगुलमें फँसी हुई दुःखी माताकी सान्त्वनाके लिये वे अपनी देह—अपना पौरुषमय विराट्स्वरूप प्रदर्शित करते हैं—

कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥

पर तुरंत ही, विशाल शक्तिके प्रदर्शनके साथ ही फिर अपने-आपको शाखामृग ही कहते हैं—

'सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।'

विशालताके साथ लघुताका कैसा अद्भुत समन्वय है, जो विरलोंमें ही पाया जाता है।

फिर यह बात नहीं कि अपने प्रभु या स्वामी सम्मुख ही उनकी यह नम्रता, आत्मश्लाघा या अभिमानसे दूर रहनेकी प्रवृत्ति प्रकट होती हो, प्रत्युत यह तो उनका स्वभाव ही बन गया था। तभी तो वे बेचारे दूतगण, जो श्रीरामसेनाका भेद लेने रावणद्वारा भेजे गये थे, धोखा खा गये। उन्होंने देखा कि यह हनुमान, जिसने लंकामें इतना उपद्रव मचाया, एक शान्त नगण्य-सा बंदर है। अतः उन्होंने सूचना दे दी—

जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महुँ तेहि बलु थोरा॥

पर निरभिमानताका तो परम उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित होता है तब, जब उनकी विभीषणजीसे भेंट होती है एवं विभीषण दीन-भावसे कहते हैं—

तात कबहुं मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥

तब परम भक्त हनुमानजी अपने उस महापौरुषको भूल जाते हैं, जो अभी-अभी दिखा आये हैं।

यथा—समुद्र-लङ्घन तथा समुद्री राक्षसोंका हनन या मानमर्दन करनेके बाद भी वे यही कहते हैं—'प्रिय सखा विभीषण! सुनो, प्रभुकी शरणमें अधम-से-अधमको स्थान है। मुझको ही देखो न—

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
अस मैं अधम सखा सुनु......................................।

इस प्रकार महावीर विक्रमी बजरंगी अपने-आपको एक परम साधारण बंदरसे अधिक कुछ नहीं मानते। वे तो अपना बल श्रीरामको मानते थे एवं अपनी गरिमा एक नदीकी भाँति शक्तिके पुंज श्रीरामरूप समुद्रमें खोकर अपने-आपको हलका पाते थे। इसलिये प्रत्येक कार्यके पूर्व उन्होंने श्रीरामका स्मरण किया एवं सुगमतापूर्वक अभिमानसे रहित होकर विलक्षण कार्य किये। यही सम्भवतः उनकी अभयताका भी कारण था। तभी तो मेघनादद्वारा बाँधे जानेपर रावण-दरबारमें सभीत दिक्पालोंको—वरुण, कुबेरको हाथ जोड़े देखकर भी उन्होंने—

'जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका॥'

—निःशङ्क प्रवेश किया एवं रावणको निर्भय उपदेश देते हुए कहा—

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥

ठीक है, पहले ही तुलसीने कहा है—

'प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥'

पर रामायणमें एक प्रसंग ऐसा अवश्य आता है, जिसमें श्रीहनुमानजीको कुछ क्षणोंके लिये अपने बलका घमंड आ जाता है। वह प्रसंग लक्ष्मण-शक्तिके समय जड़ी लेकर आते हुए भरतद्वारा बाण मारे जानेपर एवं उनके द्वारा त्वरित उन्हें भेजनेके हेतु अपने बाणोंपर बैठनेका आह्वान करनेपर होता है—

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरें भार चलिहि किमि बाना॥

किंतु श्रीरामके प्यारे, अनन्य भक्त एवं सेवकको घमंडका स्पर्श ही आश्चर्यकी बात है, उसका टिकना तो असम्भव ही है। अस्तु—

राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि कर जोरी॥

श्रीराम-प्रभावकी स्मृति होते ही उनके संशयका तुरन्त नाश हो जाता है। रावण-जैसे महान् बलशालीसे टक्कर लेनेवाले एवं उस विशाल शैलकायको भी अपने एक मुष्टिका-प्रहारसे धराशायी कर देनेवाले पवनसुतके महापराक्रमकी बरबस दैत्य-सम्राट् रावणको भी प्रशंसा करनी पड़ी—

मुरुछा गै बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥

पर वे ही अतुलितबलधाम हेमशैलाभदेह परम दीनतापूर्वक प्रभुसे परिचयके समय कहते हैं—

'एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।'

अस्तु, इससे यही सिद्ध होता है कि पवनसुत हनुमान न केवल एक आदर्श सेवक, निर्मल हृदय संत तथा श्रेष्ठ भक्त हैं, वरं अतुलित बलके धाम होते हुए भी वे विनय, नम्रता और सौजन्यकी साक्षात् मूर्ति हैं। अतुलनीय शक्तिके साथ विनम्रताका रहना ही वास्तविक विनम्रता है।

श्रीहनुमद्गायत्री-मन्त्र-विवेचन

(लेखक—प्रो० श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव, शास्त्री, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०)

मन्त्र-साधना अति प्राचीन है। वैदिक, तान्त्रिक एवं पौराणिक जीवन-पद्धतिमें ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, शान्ति एवं पौष्टिक कर्म, प्रायश्चित्तादि कर्म सभी मन्त्राश्रित हैं। जपयज्ञ यज्ञोंमें मुख्य है एवं वह भी मन्त्राश्रित ही है। मन्त्र-साधना योग-साधनाका प्रमुख अङ्ग है। मन्त्रोंमें अचिन्त्य शक्ति होती है*। एवं वे चतुर्वर्गकी प्राप्ति, देवताका साक्षात्कार एवं परब्रह्मकी अनुभूति करानेमें समर्थ होते हैं।

विभिन्न देवोंके गायत्री-मन्त्र—ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥—यह सवितृदेवताका वैदिक गायत्री-मन्त्र—मूल गायत्री है। आत्मशोधन, परब्रह्मकी उपासना एवं साक्षात्कारके लिये इसका जप किया जाता है। यह गायत्री सर्वशक्तिमयी एवं सर्वदेवमयी है। परंतु साधककी प्रकृति, कामना, इष्टकी प्राप्ति एवं अनिष्टके परिहारकी आवश्यकताके अनुसार परब्रह्मकी किसी एक विशिष्ट शक्तिरूप देवताकी आराधना-उपासनाकी आवश्यकता पड़ती है। यथा विद्या-प्राप्तिके लिये हयग्रीव, सरस्वती या गणेशकी, धन-प्राप्तिके लिये लक्ष्मी या कुबेरकी, विघ्न-विनाशके लिये गणेशकी, रोग-विनाशके लिये त्र्यम्बक महादेव (मृत्युंजय)-की, संकट-निवारणके लिये दुर्गाकी, ग्रहबाधा, अभिचारादि प्रयोगोंके निवारणके लिये नृसिंह आदिकी। अतः भिन्न-भिन्न देवोंकी शक्तिके साक्षात्कार तथा उनकी अनुग्रह-प्राप्तिके लिये मूल गायत्री-मन्त्रके अनुकरणपर भिन्न-भिन्न देवताओंके गायत्री-मन्त्रोंका साक्षात्कार उस-उस देवताके उपासक ऋषियोंको हुआ है—**'येनोद्धृतस्तु यो मन्त्रः ऋषिस्तस्य स एव च।'** (स० कु० सं०, ऋषिराज ७।) जिस मन्त्रका जिसने समाधि-दशामें प्रथम साक्षात्कार कर उद्धार किया, वही उस मन्त्रका ऋषि होता है। मन्त्र-साधनामें ऋषि गुरु-स्थानीय होता है। परंतु देव-गायत्रीकी साधनामें सामान्य नियम यह है कि मूल गायत्रीके जपके साथ देव-गायत्रीका दशांश जप होता है। अर्थात् यदि विद्याप्राप्तिकी विशेष कामनासे गायत्री-साधना करनी हो तो मूल वैदिक गायत्रीकी १० माला (एक सहस्र) जप करनेके साथ गणपति या सरस्वतीकी गायत्रीकी एक माला (सौ बार) जपनी चाहिये। विशिष्ट प्रयोजनकी सिद्धि एवं शीघ्र फल-प्राप्तिकी साधनामें मूल गायत्री-मन्त्रकी एक मालाका जप प्रारम्भमें करके विशिष्ट देव-गायत्रीका यथासंख्य या एक हजार या दस हजार जप करें एवं जपके अन्तमें पुनः वैदिक गायत्रीकी एक माला (१०८ संख्या)-का जप करें।

हनुमद्गायत्री-मन्त्र—उपर्युक्त विवेचनके अनुसार देवताका साक्षात्कार, भगवत्प्रेमकी प्राप्ति, ब्रह्मचर्य एवं पराक्रमकी उपलब्धि, संकटसे मुक्ति, बाधा-विपत्तिका निवारण, प्रेतादिके अपसारण एवं ज्वर, शूलादि रोगोंको दूर करनेके लिये हनुमानजीकी गायत्रीका जप विधिपूर्वक व्रतानुष्ठानके साथ किया जाता है। जप-शक्तिको अभीष्ट दिशामें प्रवाहित करनेके लिये जपके पूर्व नित्य अभीष्ट कामनाकी पूर्तिके लिये नियत संख्यावाले जपका संकल्पात्मक विनियोग करना आवश्यक है। श्रीहनुमानजी श्रीरामजीकी कला हैं, अतः जपके पूर्व श्रीहनुमानजी एवं श्रीरामचन्द्रजीका विधिपूर्वक श्रद्धा, भक्ति तथा विश्वासके साथ शुद्ध हृदयसे पूजन अनिवार्यरूपसे करना चाहिये। पूजनके बाद यथाविधि न्यास, ध्यान करके गुरु, मन्त्र, देवता एवं आत्मामें तादात्म्यभावसे अभेद चिन्तन करते हुए जप करना चाहिये।

श्रीहनुमानजीके गायत्री-मन्त्रके निम्नलिखित तीन रूप मिलते हैं—

(१) **ॐ रामदूताय विद्महे कपिराजाय धीमहि। तन्नो हनुमान् प्रचोदयात्॥**

(२) **ॐ आञ्जनेयाय विद्महे महाबलाय धीमहि। तन्नो मारुतिः प्रचोदयात्॥**

(३) **ॐ अञ्जनीसुताय विद्महे वायुपुत्राय धीमहि। तन्नो मारुतिः प्रचोदयात्॥**

इनमेंसे हम प्रथम मन्त्रको ही मुख्य हनुमद्गायत्री-मन्त्र मानकर इसकी यथामति व्याख्या करनेका प्रयत्न करेंगे। यह मन्त्र एकमुखी हनुमत्कवचमें उपलब्ध होता

* मन्त्राणामचिन्त्यशक्तिता। (परशुराम-कल्पसूत्र, ८)

है। इस कवचके ऋषि श्रीरामचन्द्र हैं, वे ही इस गायत्री-मन्त्रके ऋषि भी हैं। श्रीरामचन्द्र परब्रह्मके सगुण अवतार हैं। श्रीरामावतार-कालमें ही श्रीहनुमानजीकी शक्ति एवं उनके स्वरूपकी अभिव्यक्ति हुई थी, अत: श्रीरामचन्द्रका हनुमद्गायत्रीका ऋषि, साक्षात्कर्त्ता एवं उद्धारक होना उपयुक्त ही जँचता है। इस मन्त्रका छन्द गायत्री है एवं देवता श्रीमहावीर हनुमान हैं।

देहमास्थाय भक्तानां वरदानाच्च पार्वति।
तापत्रयादिशमनाद् देवता परिकीर्तित:॥

(कुलार्णवतन्त्र)

भक्तके देहमें निवास करते हुए वरदान देने तथा उसके तापत्रयका शमन करनेके कारण ब्रह्मकी व्यष्टिरूपा विशेष शक्तिको देवता कहते हैं।

किसी मन्त्रके ऋषि, छन्द एवं देवताका ज्ञान प्राप्त करके उस देवताके अनुग्रहकी प्राप्तिपूर्वक अभीष्ट-सिद्धिके लिये मन्त्र-जपका विनियोग करना प्रशस्त होता है।

श्रीहनुमद्गायत्रीका अर्थ इस प्रकार है—

पदार्थ—(ॐ) 'ॐ' यह परब्रह्मका वाचक नाम है। सभी मन्त्रोंका मूल 'ॐकार' है, अत: इसे महामन्त्र भी कहते हैं। यह मन्त्रोंका सेतु है, इसलिये शास्त्रीय निर्देशके अनुसार प्रत्येक मन्त्रके आरम्भमें इसका उच्चारण होता है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि उच्चार्यमाण मन्त्र और उसके देवताकी शक्तिका मूल 'ॐ' शब्दवाच्य परब्रह्म है। यह सभी तत्त्वोंका सार एवं प्रकाशक है।*

(रामदूताय) रामदूतके लिये या (द्वितीयार्थमें चतुर्थी विभक्तिका प्रयोग माननेपर) रामदूतको।

(विद्महे) हम जानते हैं या हम जानें।

(कपिराजाय) कपिराजके लिये या कपिराजको।

(धीमहि) ध्यान करते हैं, धारण करते हैं, अथवा ध्यान करें, धारण करें।

(तत्) उसको, उसकी ओर (उस ध्यान करनेयोग्य एवं धारण करनेयोग्य अत्युत्कृष्ट परब्रह्म तत्त्वकी ओर)।

(न:) हमको, हमें।

(हनुमान्) हनुमान नामक उपास्य इष्टदेव।

(प्रचोदयात्) प्रेरित करें।

सरलार्थ—ओंकारमूलक रामदूतके लिये हम जानते हैं, कपिराजके लिये ध्यान करते हैं, धारण करते हैं, हनुमान हमें उस (अनिर्देश्य परम ब्रह्म तत्त्व)-की ओर प्रेरित करें।

अथवा ओंकारमूलक रामदूतको हम जानें, कपिराजको हम (ध्यान करें), धारण करें, हनुमान हमें उस (परतत्त्व)-की ओर प्रेरित करें।

(१) इस मन्त्रमें देवता हनुमानका स्वरूप, उपासनाका गूढ़ रहस्य एवं साधना-विधि संकेतित है। मन्त्रके तीन पदोंमें तीन क्रियाएँ हैं और ये तीनों उपासनाके तीन अंग ज्ञान, ध्यान एवं समर्पणको सूचित करती हैं। गायत्रीके ये तीन पद ब्रह्मशक्तिके तीन रूपोंके सूचक भी हैं। वस्तुत: मूलदेवशक्ति एक ही है। परंतु वही व्यवहारमें सत्, चित्, आनन्द अथवा इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाके रूपमें विभक्त हो जाती है। सच्चिदानन्ददेवकी सत् अथवा इच्छाशक्ति ही जीवकी सत्ता, शरीर एवं कामना, अभिलाषाके रूपमें प्रकट होती है। चित्, चेतना, ज्ञान या तप:शक्ति (**'यस्य ज्ञानमयं तप:'**) जीवके चित्त, बुद्धि एवं विविध प्रकारके ज्ञान-विज्ञानके रूपमें परिमित मात्रामें अभिव्यक्त होती है एवं आनन्द या क्रियाशक्ति जीवात्माको अनुभूत होनेवाले नाना प्रकारके सुख-दु:ख, प्रसन्नता-विषयादि तथा उसकी विविध क्रियाशक्ति एवं कर्मशक्तिके रूपमें प्रकट होती है।

इस प्रकार जीवकी त्रिविध शक्तियोंका मूल सच्चिदानन्द ब्रह्मकी शक्ति है, परंतु वह अविद्याके

* (क) 'सर्वेषामेव मन्त्राणां कारणं प्रणव: स्मृत:॥' (बृ० हारीतस्मृति ६। ८८)

(ख) 'ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविध: स्मृत:।'
तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतप:क्रिया:। प्रवर्तन्ते विधानोक्ता: सततं ब्रह्मवादिनाम्॥
(गीता १७। २३-२४)

(ग) प्रणवो मन्त्रणां सेतु:। यदोंकारमकृत्वा किंचिदारभ्यते तद् वज्रीभवति। तस्माद् वज्रभयाद् भीत ओंकारपूर्वमारभेदिति॥

(घ) ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म। (महानारायण उप० ३३। १)
प्रणवो हि परं तत्त्वं त्रिवेदं त्रिगुणात्मकम्॥
सर्वमेतत् त्रिरूपेण व्याप्तं तु प्रणवेन हि। (बृ० पाराशरस्मृति ३। १०-११)

(ङ) 'ओंकार: सर्वतत्त्वानां सारस्तत्त्वप्रकाशक:।'

कारण अभिमानवश यह समझता है कि ये शक्तियाँ मेरी हैं। मैं ज्ञानी हूँ, मैं तपस्वी हूँ, मैं कर्त्ता हूँ, मैं सुख-दु:खका भोक्ता हूँ, मेरा यह शरीरादि सम्पत्ति है—इस प्रकार वह अहंता और ममताके अभिमानसे युक्त हो जाता है। साधनाका प्रारम्भ सर्वविध कामना और अहंकारके त्याग, इष्टदेवताको ब्रह्मका रूप मानकर उसके प्रति पूर्ण समर्पण तथा देवताके स्वरूप-ज्ञानके उद्देश्यसे होता है। इस बातका संकेत '**रामदूताय विद्महे**'—हम रामदूतके लिये जानते हैं या जानें—इस प्रथम पादसे मिलता है।

'**देवो भूत्वा देवं यजेत्**—देवता बनकर देवताकी उपासना करे'—यह पूजा-उपासनाका मूल सिद्धान्त है[१]। देवताके साथ तादात्म्य स्थापित करनेके पूर्व जीव-भावकी—अहंभावकी बलि देनी होती है, देवोपासनाकी यज्ञाग्निमें अपनी सम्पूर्ण सत्ता—शरीर, प्राण, मन, हृदय, बुद्धि, अहंकार, चेता—की पूर्णाहुति देनी पड़ती है। तब साधकका अपना कहनेको कुछ नहीं रह जाता। उसका व्यक्तित्व उसी देवतामें विलीन हो जाता है। वह देवताका वाहन या यन्त्र बन जाता है, देवतासे अधिष्ठित होता है, उसके शरीरमें देवताका वास होता है, वह सदैव इष्टदेवकी भावनासे अनुभावित रहता है। वह जीता है तो देवताके लिये। ज्ञानादिका सम्पादन कर बुद्धि आदिका विकास करता है तो देवताके लिये। साधना, ध्यान, तप आदि करता है या देव-शक्तिको अपनेमें धारण करता है तो देवताके लिये एवं उसके द्वारा विश्वमें 'देवताका कार्य-सम्पादन होनेके लिये। चतुर्थ्यन्त पदसे 'देवताके लिये जीओ, ईश्वरके लिये ही ज्ञान-ध्यानादि साधनाओंका सम्पादन करो'—का संकेत किया गया है। इस दिशामें श्रीहनुमानजीका 'रामदूत' के रूपमें चरित सभी प्रकारसे अनुकरणीय, आदर्श स्वरूप एवं जानने योग्य है। 'रामदूत' के रूपमें हनुमानजी निरभिमानता, निष्कामता, पूर्ण समर्पण, प्रभु-सेवा-भक्ति, कर्म-कुशलता, विविध ज्ञान, नीतिमत्ता एवं प्रचण्ड कर्मठताकी साक्षात् मूर्ति हैं।

मनुष्यकी सभी क्रियाएँ ज्ञानमूलक, ज्ञानाश्रित एवं बुद्धिप्रेरित होती हैं। ज्ञानका आश्रय बुद्धि है, जो जीवात्माके व्यवहारका प्रधान उपकरण या साधन है। जैसा ज्ञान होगा, वैसी क्रिया होगी। जैसी बुद्धि होगी, उसी रूपमें वह ज्ञानको ग्रहण कर सकेगी। उपास्यके स्वरूपका जैसा ज्ञान होगा, वैसी ही साधककी साधना एवं उसका आहार-आचार होगा। अत: ज्ञानको ग्रहण करनेवाली बुद्धि भी शुद्ध, सात्त्विक, निर्मल एवं शान्त होनी चाहिये एवं उसमें प्रतिफलित होनेवाला ज्ञान भी भ्रान्ति और अपूर्णतादि दोषोंसे रहित, यथार्थ होना चाहिये। यथार्थ ज्ञानमें शास्त्र एवं गुरु-वाक्य ही प्रमाण हैं। '**तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया**' (गीता ४। ३४)। तत्त्वदर्शी, ज्ञानी गुरुकी श्रद्धा एवं विनयपूर्वक सेवा करनेसे एवं प्रबुद्ध विवेकके साथ शिष्यभावसे जिज्ञासा करनेपर तत्त्व ज्ञान प्राप्त होता है। गुरु-मुखसे शास्त्रका श्रवण, अध्ययन करके स्वाध्याय, मनन एवं निदिध्यासन करनेसे ज्ञानका हृदयमें साक्षात्कार होता है। ज्ञानका अर्थ मानसिक या बौद्धिक रूपसे किसी विषयको अंशत: जानना नहीं है, अपितु ज्ञेय विषयमें प्रवेश कर उसके साथ तादात्म्य स्थापित करके उसके अशेष रूपको सम्पूर्ण रूपसे साक्षात् करना है। ऐसा ज्ञान ही पूर्ण प्रकाशमय एवं अशेष होता है। वह आत्माद्वारा प्रत्यक्षीकृत होता है। इन्द्रियजन्य ज्ञान आंशिक, त्रुटियुक्त, सीमित एवं भ्रान्तियुक्त होता है। आत्मतत्त्वका या ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है, अत: यहाँ उसी परतत्त्वको आत्मसाक्षात्कारद्वारा जाननेकी बात कही गयी है। ब्रह्मजिज्ञासा, देवतत्त्वको तादात्म्य एवं साक्षात्कारकी प्रक्रियासे जाननेके संकल्पके साथ उपासनाका आरम्भ होता है। साधक जो कुछ करता है, वह देव-प्रीत्यर्थ—देवार्पित बुद्धिसे करता है। श्रीकृष्णने गीतामें स्पष्ट ही अर्जुनको कहा है कि 'तुम जो भी भोजन, होम, दान, तप आदि क्रियाएँ एवं जीवन-व्यापार करते हो, वह सब मुझ ईश्वरको अर्पित कर दो।[२] यहाँ हनुमदुपासकके ज्ञानादि कर्म हनुमत्स्वरूपको जानने एवं श्रीहनुमानजीकी प्रीतिके लिये उन्हींके समर्पित हैं। यही बात '**रामदूताय विद्महे**',—इस प्रथम पादमें संकेतित है।

---

१. नादेवोऽभ्यर्चयेद्देवमिति वेदविदो विदु:। (गायत्री-तन्त्र ४। ६)

२. यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ (गीता ९। २७)

(२) हनुमद्गायत्रीका द्वितीय पाद है—'**कपिराजाय धीमहि**'—कपिराजके लिये हम ध्यान करते हैं, धारण करते हैं अथवा कपिराजको हम ध्याते हैं, धारण करते हैं। '**धीमहि**'—यह क्रियापद चिन्तनार्थक '**ध्यै** (क्र्या०)' धातुसे अथवा धारणार्थक '**धा**' धातुसे निष्पन्न हुआ है, अत: इसका ध्यान (चिन्तन) एवं धारणा—दोनों अर्थ हो सकते हैं—'**धीमहि—ध्यायामो मनसा धारयामो वा॥**'

प्रथम पादमें सत्तार्थक एवं ज्ञानार्थक '**विद्**' धातुसे निर्मित क्रियापदद्वारा परब्रह्ममूलक इष्टदेवकी सत्ता (आनन्द-स्पन्दलक्षणा)-को जाननेकी बात कही गयी थी। इस द्वितीय पादमें मनन एवं निदिध्यासनद्वारा उस ज्ञानकी विचारधाराकी निरवच्छिन्नताको बनाये रखने तथा ध्यानद्वारा देवताके साथ अभेदरूप होकर उसको अपने अंदर धारण करनेका संकल्प किया गया है। अहिर्बुध्न्यसंहिताके अनुसार—

धीमहीत्यत्र धीर्ज्ञानं मननं भावनं तथा॥ (५७।१४)

'**धीमहि**' शब्दमें '**धी**' अंश ज्ञान, मनन एवं भावन अर्थका वाचक है। यह उपासनाकी प्रक्रियामें मनन एवं निदिध्यासनकी अवस्थाका निर्देशक है। तत्त्वज्ञान केवल बुद्धितक सीमित न रहकर जीवात्माकी सम्पूर्ण सत्ताको प्रकाशित कर दे, उसकी सम्पूर्ण चेष्टाओं एवं कार्य-कलापोंमें वह ब्रह्मज्ञान स्थितप्रज्ञकी चेष्टाकी भाँति धारित हुआ दिखायी दे—यह '**धीमहि**' पदका भाव है। '**स श्रुतेन गमेमहि**'—ज्ञानके अनुसार हमारी गति हो, इस वैदिक श्रुतिका भी यही अभिप्राय है।

निरवच्छिन्न तैलधाराकी भाँति ज्ञानवृत्तिका प्रवाह अविराम रूपसे बना रहना 'ध्यान' कहलाता है। भागवत-चेतना या दैव-चेतनाके साथ आत्मचेतनाके अभेदकी सतत ज्ञानमयी वृत्ति बनी रहे एवं वह वृत्ति निष्कम्प दीपशिखाके सदृश सदैव स्थिर रहे—यह '**धीमहि**' पदसे संकेतित है। इसी बातको भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें '**मामनुस्मर युध्य च**—मेरा सतत स्मरण करते हुए युद्धादि (जगत्‌के कार्य) करो'—इस वाक्यसे कहा है।

'**यथाक्रतुः पुरुषो भवति**'—जैसा संकल्प (चिन्तन) होता है, वैसा पुरुष बन जाता है—यह सिद्धान्त है। ब्रह्म या देवके सतत ध्यान (चिन्तन)-से उपासक ब्रह्मरूप या देवरूप हो जाता है। वैदिक गायत्री-मन्त्रके '**धीमहि**' पदकी व्याख्या करते हुए प्राय: सभी व्याख्याकारोंने '**धीमहि**' पदका '**सोऽहंभाव**' से अभेदरूपमें ध्यान अथवा परतत्त्वका निरन्तर अनुसंधानात्मक निदिध्यासन—ऐसा अर्थ किया है। यथा*—

(१) **धीमहि आत्मना आत्मरूपेण ध्यायेम। ध्यानं नाम सर्वशरीरेषु चैतन्यैकतानता॥** —प्रह्लाद

"**धीमहि**' का अर्थ है—आत्माद्वारा आत्मरूपका ध्यान, चिन्तन करें। सभी शरीरोंमें एक ही चैतन्य है, ऐसा ज्ञान एवं अनुभव होना 'ध्यान' है।"

(२) **धीमहि तद् योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहमिति वयं ध्यायेम॥** —सायण

'जो मैं हूँ, वह वह (आदित्यतेजोगत) पुरुष है, जो वह है, वह मैं हूँ—इस प्रकार (जीव एवं ब्रह्ममें सोऽहं-भावसे अभेदका) हम ध्यान करें।'

(३) **धीमहि तदेवाहमस्मि तद्दासोऽहमिति वा ध्यायेम॥** —भट्टोजी दीक्षित

'वह ब्रह्म ही मैं हूँ अथवा मैं उस (ब्रह्म)-का दास हूँ—इस प्रकार हम ध्यान करें।'

(४) **धीमहीति—**

निगमाद्येन दिव्येन विद्यारूपेण चक्षुषा।
यः सूक्ष्मः सोऽहमित्येव चिन्तयामः सदैव तु॥

—प्रपञ्चसारतन्त्र

'वेद-शास्त्रादि दिव्य विद्यारूपी चक्षुके द्वारा 'जो सूक्ष्म ब्रह्म है, वह मैं हूँ'—ऐसा सदैव चिन्तन करें।'

(५) **यन्मे स्वरूपं तत्सर्वाधिष्ठानभूतं परमानन्दं निरस्तसमस्तानर्थरूपं स्वप्रकाशचिदात्मकं ब्रह्मेत्येवं धीमहि, ध्यायेम।**

"जो मेरा स्वरूप है, वह सभीका अधिष्ठानभूत, परमानन्द, समस्त अविद्याप्रपञ्चरूप अनर्थसे रहित, प्रकाशचैतन्यात्मक ब्रह्म है'—ऐसा हम ध्यान करें।"

'**ध्यातृध्येयव्यापाराभिन्नतत्त्वमेव ध्यानम्**'—चित्तको सभी वृत्तियोंसे शून्य करके '**सोऽहम्**' की भावनाके द्वारा ध्याता एवं ध्येयमें अभेदवृत्तिका सम्पादन करना ही 'ध्यान' है। ध्यानकी यह यौगिक प्रक्रिया उपासनाका

* गायत्री-महाविज्ञान, द्वितीय खण्ड।

मुख्य अङ्ग, जीवात्माका परम कल्याण करनेवाली, देवताका सांनिध्य प्राप्त करानेवाली एवं ब्रह्मसाक्षात्कारके साधनभूत समाधिकी प्राप्तिमें परम सहायक है। गायत्रीका जप इस अभेद ध्यानके साथ ही नित्य अविरामरूपसे नियत स्थान एवं नियत समयपर करना चाहिये।

ध्यानावस्थामें जो अभेद रूपसे सर्वत्र एक चैतन्यात्माका चिन्तन होता है, उसकी वृत्तिका प्रवाह जाग्रत्-दशा एवं व्यवहार-कालमें भी प्रवाहित होते रहना चाहिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि हम देहादिके पार्थिव बोधसे अपनेको पृथक् करके आत्मचैतन्यके स्वस्वरूप-बोधमें प्रतिष्ठित हों। जितना ही अधिक हम अपने चैतन्यरूपके स्वरूप-बोधके प्रति जाग्रत् होंगे, उतना ही अधिक हम सर्वव्यापक चैतन्यके साथ एकात्मताका अनुभव करेंगे तथा इस स्वरूप-बोधकी सतत स्मृतिके साथ ही हम अधिक व्यापकता, सामर्थ्य एवं गम्भीरताके साथ ब्रह्म-चैतन्य या देव-चैतन्यको अपने अंदर धारण कर सकेंगे। तब हमें अपनी सत्ताके सभी अंगोंसे उन सभी भावों, विचारों, कामनाओं, कार्योंको निकाल बाहर करना होगा, जो देवत्वके विरोधी हैं, आसुरी हैं। इस प्रकार जब हमारी सत्ताके सभी अङ्ग निर्मल, पवित्र, आत्माके प्रकाशसे पूर्ण एवं केवल ब्रह्म या इष्टदेवताके निवासके लिये ही वासभूमि या मन्दिरके रूपमें होंगे, तभी हम देवशक्तिको अधिकाधिकरूपमें एवं स्थायी तौरपर अपने अंदर धारण करनेमें समर्थ हो सकेंगे। तब इस अभेदभावनारूपी धारणा एवं ध्यानके निरन्तर अभ्याससे भावनाकी प्रगाढ़ता होनेपर उपासकका देवरूपमें रूपान्तर होना सम्भव हो सकेगा, अथवा जैसे हनुमानजीद्वारा हृदय फाड़कर दिखा देनेपर वहाँसे भी श्रीराम-रामकी ध्वनि सुनायी पड़ती थी, वैसे ही इष्टदेवमय उपासकके रोम-रोमसे इष्टदेवताके नामकी ध्वनि गूँजती हुई सुनायी पड़ेगी। तभी यह कहा जा सकेगा कि उसने इष्टदेवको अपने अंदर धारण कर लिया।

'**धीमहि**' के साथ '**कपिराजाय**'का प्रयोग सार्थक एवं साभिप्राय है। हनुमानजीका राम-दूतत्व कपिराजके रूपमें प्रकट हुआ था। प्रत्येक योनि-शरीरका अपना-अपना विशेष गुण एवं धर्म है। कपि-जातिकी स्वामिभक्ति प्रसिद्ध है। रामचरितमानसमें रावणने भी वानरोंके इस जाति-सिद्ध गुणकी प्रशंसा की है—

हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालइ तासु हित करइ उपाय अनेक॥
धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करइ धर्म निपुनाई॥
अंगद स्वामिभक्त तव जाती। प्रभु गुन कस न कहसि एहि भाँती॥

हनुमानजी स्वामिभक्तोंके तो आदर्श हैं। रावणकी सभामें बाँधे जाने और अपमानित किये जानेपर भी वे बुरा नहीं मानते। उस प्रतिकूल परिस्थितिमें भी वे स्वामिकाज-साधनकी ही बात सोचते हैं—

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥

श्रीमद्भागवतपुराण (५। १९। ७)-में हनुमानजी कहते हैं कि 'भगवान् श्रीरामकी वानरोंके साथ मित्रता होनेमें भक्तिकी अतिशयता एवं प्रभुकी भक्तवत्सलता प्रकट होती है। प्रभुकी प्राप्तिमें भक्ति ही प्रधान कारण है, जन्म, बुद्धि, सौन्दर्यादि नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि महापुरुष उसी शरीरका आदर करते हैं, जिससे भगवान्‌की भक्ति-सेवा हो सके। वानर-शरीरसे प्रभु श्रीरामकी स्वाभाविक रूपसे आदर्श सेवा हो सकेगी—ऐसा विचार कर भगवान् शंकर कपि-योनिमें हनुमान बन गये।

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥

(दोहावली १४२)

'कपि'-शब्द चलनार्थक '**कम्प**' धातुसे (**कुडि-कम्प्योर्नलोपश्च**)—इस औणादिक सूत्रद्वारा 'इ' प्रत्यय तथा 'न' लोप करनेसे निष्पन्न हुआ है। 'चलना' नाना प्रकारकी क्रियाओंका सूचक है। 'कपिराज'-शब्दसे रामदूतकी वेगवत्ता, क्षिप्रकारिता, सर्वत्र गतिशीलता एवं विविध प्रकारके कर्मोंमें दक्षता सूचित होती है। पूर्वपदमें वर्णित परतत्त्व एवं रामदूतके स्वरूप-ज्ञानकी अविराम गतिशीलता भी इस कपिराज-शब्दसे संकेतित है।

एकमुखी हनुमत्कवचमें 'कपिराज' का ध्येय रूप इस प्रकारका है—

उद्यन्मार्तण्डकोटिप्रकटरुचियुतं चारुवीरासनस्थं
मौञ्जीयज्ञोपवीतारुणरुचिरशिखाशोभितं कुण्डलाङ्कम्।
भक्तानामिष्टदं तं प्रणतमुनिजनं वेदनादप्रमोदं
ध्यायेद् देवं विधेयं प्लवगकुलपतिं गोष्पदीभूतवार्द्धिम्॥

जो उदय होते हुए कोटि सूर्यके समान कान्तिसे

युक्त, सुन्दर वीरासनसे स्थित, मुञ्ज-निर्मित मेखला, यज्ञोपवीत, सुन्दर अरुण शिखासे सुशोभित, कानोंमें स्वर्णकुण्डलसे युक्त, भक्तोंकी मनोवाञ्छाको पूर्ण करनेवाले, मुनिजनोंसे नमस्कृत, वेदध्वनिके श्रवणसे प्रमुदित समुद्रको लाँघनेके समय गोष्पद (गौके खुरके समान अत्यल्प) के समान कर देनेवाले और श्रीरघुनाथके किंकर हैं, उन वानरकुलपति हनुमानदेवका ध्यान करना चाहिये।

श्रीतुलसीदासजीने भी कपीन्द्रका उदयकालीन सूर्यके समान रक्तवर्णका ध्यान करनेका संकेत किया है—

लाल देह लाली लसे अरु धरि लाल लँगूर।
बज्रदेह दानव दलन जय जय जय कपि सूर॥

जिस देवताकी श्रद्धापूर्वक भक्ति की जाती है, उसका वास भक्त-शरीरमें तथा भक्तका वास देवता-शरीरमें हो जाता है। यही है ध्यानद्वारा देवतत्त्वको धारण करना। '**ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥**' (गीता ९। २९) यह भगवद्वचन भी इसकी पुष्टि करता है।

(३) हनुमद्गायत्रीका तृतीय पाद है—**तन्नो हनुमान् प्रचोदयात्। तत्+नः=तन्नः।** 'तत्पदवाच्य परब्रह्मके प्रति हनुमान हमें प्रेरित करें।'—यह उपासककी प्रार्थना है। '**तत्**' शब्द द्वितीयाके एक वचनमें है। इसका अर्थ है वह, उसको, उसकी ओर। यह सर्वनाम अन्यपुरुषवाची है एवं दूरस्थ वस्तुका संकेत करनेमें प्रयुक्त होता है। यहाँ '**तत्**'-पद मन-वाणीके अगोचर, अकृतात्माके लिये अति दूर, सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मके लिये प्रत्युक्त हुआ है। गीता (१७। २३) के अनुसार ब्रह्मका संकेत ओम्, तत्, सत्—इन तीन पदोंसे किया जाता है। '**तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।**' (गीता ५। १७) इस श्लोकमें भी तत्पद ब्रह्मवाची है।

'प्रपञ्चसारतन्त्र' के अनुसार वैदिक गायत्रीमें '**तत्**' पद अखिल सृष्टिकी उत्पत्ति-स्थिति-लयके कारणभूत, आदित्य-मण्डलस्थ तेजोरूप सदानन्द परब्रह्मका वाचक है—

तद्द्वितीयैकवचनमनेनाखिलवस्तुनः ॥
सृष्ट्यादिकारणं तेजोरूपमादित्यमण्डले।
अभिध्येयं सदानन्दं परब्रह्माभिधीयते॥

सभी वेदादि शास्त्र, मन्त्र, तप, व्रतादिके एकमात्र लक्ष्य सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदꣳ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

(कठोपनिषद् १। २। १५)

सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्मरूपात्मक है। सभी देवता परब्रह्मके अंश हैं। जैसे अंशका अंशीमें अवसान होता हैं, वैसे ही किसी भी देवताकी उपासनाका अवसान अन्तमें परब्रह्ममें ही होता है। किसी भी देवताकी पूजा प्रकारान्तरसे परब्रह्मकी ही पूजा है, ऐसा स्पष्ट कथन गीतामें मिलता है—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।

(९। २३)

परब्रह्म महेश्वर ही सभी यज्ञोंके, सभी पूजा एवं उपासनाके भोक्ता तथा स्वामी हैं। जो उनको न जानकर सीमित बुद्धिसे यजन-पूजनादि कर्म कामनापूर्वक करते हैं, वे तत्त्व-भ्रष्ट हो जाते हैं—

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥

(९। २४)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(५। २९)

अतः यहाँ तत्पद परब्रह्मका ही वाचक है। हनुमद्गायत्रीका लक्ष्य भी श्रीहनुमानजीके अनुग्रहसे सच्चिदानन्दात्मक श्रीरामपदवाच्य परब्रह्मको पाना है। उसीकी प्राप्तिकी ओर हमारी बुद्धि, कर्मादिकी चेष्टाओं एवं अन्तःकरणकी वृत्तियोंको हनुमान प्रेरित करें, ऐसी प्रार्थना की गयी है।

'**नः**' (हमको) पदमें बहुवचनका प्रयोग गूढ़ अभिप्रायसे किया गया है। उपासनाके प्रारम्भमें उपासक जब अपने '**अहं**' का लोप करके अपनी चेतनाको विश्व-चेतनामें मिलाकर विश्वात्मरूप हो देवतासे तादात्म्य स्थापित करता है, तब उसके व्यक्तित्वकी इकाईका, निज बुद्धिका भी लोप हो जाता है। उस समय वह उपासकरूपमें व्यष्टि होते हुए भी मानव-चेतनाकी समष्टिका केन्द्र होता है। जितने अंशोंमें वह

ब्रह्मपदके निकट पहुँचता है, उतने ही अंशोंमें समग्र मानव-चेतना भी अध्यात्मके ब्रह्मपथपर अग्रसर होती है। वह अकेले ब्रह्मानन्दका उपभोग नहीं करना चाहता, अपितु सम्पूर्ण मानव-जातिको ही ब्रह्म-चैतन्यसे आप्लावित कर ब्रह्मपदतक ले जाना चाहता है। सर्वत्र आत्मदर्शनकी भावनाके कारण ही यहाँ प्रार्थनामें एकवचनके स्थानपर बहुवचनका प्रयोग हुआ है।

'हनुमान' रामदूत कपिराजका व्यक्तिसंज्ञक नाम है। श्रीरामकार्य-साधनके लिये ही इनका जन्म हुआ था। ये अञ्जनादेवीके गर्भसे सम्भूत वानरराज केसरीके क्षेत्रज पुत्र एवं वायुके औरस पुत्र हैं। भगवान् सूर्य इनके आचार्य हैं। ये सभी विद्याओंके निधान, महातपस्वी, महापराक्रमी, कामरूप, कामचारी, अति तेजस्वी एवं शौर्य, दक्षता, प्रज्ञा, धैर्य, नीति, प्रभाव एवं भक्तिसे सम्पन्न हैं। ये सुग्रीवके सखा थे। ये दास्य-भक्तिके परमादर्श एवं चिरंजीवी हैं। 'हनुमान'-शब्दकी व्युत्पत्ति हिंसागत्यर्थक '**हन्**' धातुसे 'उ' एवं 'मतुप्' प्रत्यय लगानेसे हुई है। 'गति' शब्दके ज्ञान, गमन आदि कई अर्थ होते हैं। इस प्रकार इनके नामसे ही इनका पराक्रम, संहारशक्ति, ज्ञान, गति, भक्ति, नीति एवं विविध सिद्धियोंसे सम्पन्न होना सूचित होता है। कहते हैं, बचपनमें इन्द्रके वज्र-प्रहारसे इनकी बायीं ठुड्डी टूट गयी थी, अतः इनका नाम 'हनुमान' पड़ा। ये स्वयं परब्रह्मके अवतार श्रीरामके परम प्रिय भक्त तो हैं ही, कृपाकर अपने भक्तोंको भी श्रीरामका दर्शन करा देते हैं। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीको इनकी कृपासे ही भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए थे। श्रीरामके साथ हनुमानजीकी कीर्तिका प्रीतिपूर्वक गान संसार-समुद्रसे पार करनेवाला है, ऐसा स्वयं भगवान् श्रीरामने रामचरितमानसमें कहा है—

मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं।
संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥

हनुमानजी सभी सिद्धियोंको तथा परम प्रसन्न होनेपर श्रीराम-भक्तिको भी देनेवाले हैं। उनकी उपासनासे सभी संकट दूर होते हैं, व्याधिजनित पीड़ाएँ नष्ट होती हैं, दुर्गम कार्य सिद्ध होते हैं, कुमति दूर होकर सुमति एवं सर्वसुखकी प्राप्ति होती है।

अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता। अस बर दीन जानकी माता॥
राम रसायन तुम्हरे पासा। सदा रहो रघुपति के दासा॥
दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते॥
नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा॥
संकट तें हनुमान छुड़ावै। मन क्रम बचन ध्यान जो लावै॥
और देवता चित्त न धरई। हनुमत सेइ सर्ब सुख करई॥

'**प्रचोदयात्**' (प्रेरित करे) पद साधकके यन्त्र-भाव एवं पूर्ण समर्पणको सूचित करता है। साधनाके आरम्भमें जबतक साधकके अहंभाव तथा कामनाओंका लोप नहीं होता एवं बुद्धिमें रजोविकारात्मक चञ्चलता रहती है, तबतक उसका अपना संकल्प और प्रयत्न अधिक कार्यशील रहता है। वह सजग साक्षीभावसे देखता रहता है कि उसके बुद्धि-मन-प्राणकी कौन-सी चेष्टाएँ देवताके प्रति निरन्तर समर्पणशील हैं तथा कौन-सी असुरत्वके प्रति झुकाव रखती हैं। वह आत्मनिरीक्षणके द्वारा खोज-खोजकर अपनेमेंसे देवविरोधी आसुरीवृत्तियों, भावों एवं चेष्टाओंको निकालता जाता है तथा उनके स्थानपर समर्पणके द्वारा देवत्वकी स्थापना करता जाता है। बढ़ती हुई समर्पणशीलताके साथ देवशक्ति भी उसमें बढ़ने लगती है, अधिकाधिक क्षेत्रमें स्थायीरूपसे निवास करने लगती है एवं अन्तःकरण, बुद्धि, मन, प्राणादिको अधिकाधिक दैव संकल्पके अनुकूल संचालित करने लगती है। अहंकार और कामनाके पूर्ण विनाशके साथ सर्वाङ्गीण आत्मसमर्पणके होते ही साधकके निज संकल्प या निज चेष्टाका भी लोप हो जाता है। वह पूर्णरूपसे देवताका यन्त्र बन जाता है। शरीरसे बुद्धिपर्यन्त सभी अंग देवशक्तिद्वारा नियन्त्रित, प्रेरित, संचालित और रूपान्तरित होते हैं। साधकको जगत्में ईश्वरका कौन-सा कार्य किस रूपमें करना है तथा उसकी सत्ताके कौन-से अंग कब किस रूपमें कार्यशील होने हैं—यह सब निर्णय देवशक्ति करती है। जैसे मशीन अपने-आप कुछ नहीं सोचती या करती, उसमें विद्युत्-शक्तिका संचार होते ही या चालकके चलाते ही वह अपनी प्रकृतिके अनुसार निर्धारित कार्य करने लगती है, उसी प्रकार साधक निज संकल्प, निज चेष्टा एवं कर्तृत्वभावनासे रहित होकर केवल देवताका यन्त्रमात्र होता है। उसकी निर्मल एवं शान्त बुद्धि तथा अन्तःकरणमें देवताका संकल्प प्रतिभासित होकर उसे देवशक्तिद्वारा प्रेरित एवं चालित करता है। इसी अवस्थातक पहुँचानेकी प्रार्थना यहाँ की गयी है। हमारी बुद्धि आदि वृत्तियाँ कामना या अहंकारसे संचालित न होकर

देवतासे प्रेरित एवं संचालित हों तथा उस देवप्रेरित बुद्धि आदिकी चेष्टाओंको ब्रह्मार्पित-भावसे करते हुए हम ब्रह्मपदतक पहुँचें। चेतनाचेतन सबका प्रेरक ब्रह्म है, देवताके द्वारा प्रेरणा करनेवाला भी वही है, इस रूपमें हमारी बुद्धि सर्वत्र ब्रह्मशक्तिका ही कार्य कर रही है—इस तत्त्वका अनुभव करें—ऐसा भी भाव इस '**प्रचोदयात्**' में संकेतित किया गया है। सर्वत्र ब्रह्मशक्तिके दर्शन होनेसे तथा शरीर, प्राण, मन, हृदय एवं बुद्धि—सभीके देवताद्वारा नियन्त्रित एवं ब्रह्मत्वके प्रति प्रेरित होनेसे जीवन देवसंचालित बन जाता है। देवशक्तियुक्त एवं देवसंचालित दिव्य जीवनसे ही देवकार्य सिद्ध होते हैं। अतः मनुष्यत्वसे देवत्वकी ओर बढ़ो और पुनः देवत्वसे ऊपर उठकर परब्रह्मको प्राप्त होओ—यही हनुमद्गायत्रीका संदेश है। मनुष्यसे देव बननेकी साधनाका रहस्य 'रामदूत' के चरित एवं आदर्शमें पूर्णतया प्रस्फुटित हुआ है। हनुमानके सम्पूर्ण चरितमें कहीं भी निजकी इच्छा, संकल्प या कर्तापनका अभिमान नहीं है। उनका चरित भगवदर्पित, भगवत्प्रेरित, भगवत्संकल्पसे संचालित एवं भक्तकार्य-कर्ताका आदर्श रूप है।

भगवान् श्रीरामके नित्य परिकर एवं उनमें श्रीहनुमानका स्थान

(लेखक—श्रीवैदेहीकान्तशरणजी)

भगवान् श्रीरामका निवासभूत साकेतधाम तथा उनके समस्त परिवार और परिकर नित्य हैं—

नित्या इक्ष्वाकवः सर्वे नित्या रघुकुलोद्भवाः।
नित्योऽहं मुनयो नित्या नित्याः सर्वे च मन्त्रिणः॥
अयोध्यावासिनो नित्या ब्राह्मणप्रमुखास्तथा।
नित्या भृत्याश्च दास्यश्च श्रीराजकुलसेवकाः॥
कौसल्या श्रीमती नित्या नित्यो दशरथो नृपः।
कैकेयी च सुमित्राद्या नित्याः श्रीराजयोषितः॥
श्रीरामो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नो भरतस्तथा।
नित्या रघुकुलोद्भूता नित्याः सर्वे कुमारकाः॥
नित्यं दशरथस्याङ्के स्थितस्य परमात्मनः।
तावद् ब्रह्ममहेशाद्याः सेन्द्रा ब्रह्माण्डकोटयः॥
कटाक्षाद्रामचन्द्रस्य लयं यावद् भवेति च।
रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥

(वसिष्ठसंहिता)

(श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—) 'समस्त इक्ष्वाकुवंशी नित्य हैं, रघुकुलमें जन्म लेनेवाले नित्य हैं, मैं (वसिष्ठ) नित्य हूँ, मुनिगण नित्य हैं और सभी मन्त्री नित्य हैं तथा ब्राह्मण आदि सम्पूर्ण अयोध्यावासी प्रजा नित्य हैं। श्रीराजकुलकी सेवा करनेवाले नौकर तथा दासियाँ भी नित्य हैं। श्रीमती कौसल्या नित्य हैं, नरेश्वर दशरथ नित्य हैं और कैकेयी तथा सुमित्रा आदि सभी राजरानियाँ नित्य हैं। श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न नित्य हैं और रघुकुलमें उत्पन्न होनेवाले सभी कुमार नित्य हैं। दशरथकी गोदमें विराजमान परमात्माका अंश (श्रीराम) नित्य हैं। ब्रह्मा, महेश, इन्द्र आदिसे संयुक्त ये करोड़ों ब्रह्माण्ड तभीतक हैं जबतक श्रीरामचन्द्रजीके कटाक्षसे प्रलय नहीं हो जाता, अर्थात् महाप्रलयके समय इन सबका भी विनाश हो जाता है। श्रीरामका नाम, रूप, लीला, धाम—ये चारों नित्य, परात्पर तथा सच्चिदानन्दके विग्रहस्वरूप हैं।'

तद्रूपं विविधाकारैः सेव्यमानं परात्परम्।
वसिष्ठवामदेवादिमुनिभिः परिसेवितम्॥
लक्ष्मणं पश्चिमे भागे धृतच्छत्रसुचामरम्।
उभौ भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तकराम्बुजौ।
अग्रे व्यग्रं हनूमन्तं वाचयन्तं सुपुस्तकम्॥

(शिवसंहिता)

'भगवान् श्रीरामका रूप परात्पर—सर्वश्रेष्ठ है, उसकी विविध प्रकारसे सेवा की जाती है, वह वसिष्ठ, वामदेव आदि मुनिगणोंद्वारा परिवेष्टित है, उसके पीछेकी ओर लक्ष्मण सुन्दर चँवर और छत्र धारण किये हुए खड़े हैं तथा भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई अपने-अपने करकमलोंमें ताड़-पत्रनिर्मित व्यजन लिये हुए दायें-बायें भागमें अवस्थित हैं एवं सम्मुख हनुमान तन्मनस्क हुए सुन्दर पुस्तकका पाठ कर रहे हैं।'

साकेतदक्षिणद्वारे हनुमान् रामवत्सलः।
यत्र सांतानिकं नाम वनं दिव्यं हरेः प्रियम्॥

पश्चिमं पाति धर्मात्मा राक्षसेन्द्रो हरिप्रियः।
पूर्वमावृत्य विश्वात्मा सुग्रीवस्तेजसात्मकः॥
उत्तरं रक्षति वीरो बालिपुत्रो मम प्रियः।
दक्षिणं तु सदा पाति हनूमान् रामवत्सलः॥
सर्वसत्त्वगुणोपेतः सर्वसत्त्वनिकेतनः।
महाशम्भुः स्वयं सोऽपि कपिरूपो दुरासदः॥
(शिवसंहिता)

'साकेतधामके दक्षिण द्वारपर, जहाँ भगवान् श्रीरामका परमप्रिय 'सांतानिक' नामक दिव्य वन है, श्रीरामवत्सल हनुमान सदा स्थित रहते हैं। भगवान् श्रीरामके प्रिय पात्र धर्मात्मा राक्षसराज विभीषण पश्चिम द्वारकी तथा सूर्य-पुत्र विश्वात्मा सुग्रीव पूर्व द्वारको घेरकर उसकी रक्षा करते हैं। मेरा परम प्रिय वीरवर वालिपुत्र अंगद उत्तर द्वारकी रखवाली करता है तथा जो सारे सत्त्वगुणोंसे युक्त और सम्पूर्ण बलका आश्रयस्थान है एवं स्वयं महाशम्भु ही जिस दुर्धर्ष बंदरके रूपमें विराजमान हैं, वह रामवत्सल हनुमान सदा दक्षिण द्वारका परिरक्षण करता है।'

सुग्रीवो हनुमान् नीलो नलश्च पनसस्तथा॥
जाम्बवानङ्गदो मैन्दस्तथा दधिमुखः कपिः।
केसरी द्विविदश्चैव गन्धमादन एव च॥
एते कपीश्वराः सर्वे सप्तमावरणे स्थिताः।
दिव्यदेहधरा धीरा वीरा वीरमनोहराः॥
दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः।
दिव्यरत्नविचित्राङ्गा दिव्याभरणभूषिताः॥
रत्नप्रवेकसंयुक्तैः किरीटमुकुटैर्युताः।
दिव्यहाराङ्गदाकल्पग्रैवेयनिष्ककुण्डलाः॥
यशस्विनो महासत्त्वाः सर्वज्ञा दीर्घचक्षुषः।
दर्शनीया ह्युदारेक्षा रामसेवनतत्पराः॥
कामगाः कामरूपाश्च रामानन्दरसोत्सुकाः।
गौरवर्णाः श्यामवर्णाः कर्पूराश्चैव चित्रकाः॥
एते मुख्याः कपीशाश्च संस्थिता मण्डले स्वके।
गणानां गणमुख्यानां कोटिशः कोटिशः पुनः॥
(बृहद्रामायणे)

'साकेतधाममें सुग्रीव, हनुमान, नील, नल, पनस, जाम्बवान्, अङ्गद, मैन्द, दधिमुख, केसरी, द्विविद और गन्धमादन—ये सभी वानरेन्द्र सप्तम कक्षमें स्थित रहते हैं। ये सभी दिव्य देहधारी, धैर्यशाली, श्रेष्ठ वीर और वीरोंके भी मनको आकृष्ट करनेवाले हैं, इनके शरीर दिव्य गन्धसे अनुलिप्त तथा दिव्य माला और वस्त्रसे सुशोभित हैं। दिव्य रत्नोंकी चमकसे इनके अङ्ग चित्र-विचित्र-से लगते हैं और ये सभी दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। इनके मस्तक बहुमूल्य रत्नोंसे खचित किरीट-मुकुटोंद्वारा सुशोभित हैं। इनके गलेमें दिव्य हार, भुजाओंमें बाजूबंद और कानोंमें स्वर्णनिर्मित कुण्डल अपनी कान्ति बिखेर रहे हैं। ये सभी यशस्वी, महान् पराक्रमी, सर्वज्ञ, दीर्घदर्शी अथवा विशाल नेत्रोंवाले, दर्शनीय, सुन्दर नेत्रधारी, श्रीरामकी सेवामें तत्पर, स्वच्छन्दगामी, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और श्रीरामके आनन्द-रसके इच्छुक हैं। इनमेंसे किन्हींके रंग गौर, किन्हींके कृष्ण, किन्हींके कर्पूर-सरीखे उज्ज्वल और किन्हींके चितकबरे हैं। ये सभी मुख्य-मुख्य कपिराज अपने-अपने मण्डलमें स्थित रहते हैं और इनके साथ करोड़ों गणों तथा गणराजोंके दल भी रहते हैं।'

इस प्रकार श्रीहनुमानजी श्रीरामजीके नित्य परिकर हैं तथा उनके समस्त परिकरोंमें उनका विशिष्ट स्थान है।

श्रीहनुमानजीका प्रिय भक्त वेङ्कटरमण

(लेखक—स्व० पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम्० ए०)

भारतवर्षकी परम पावन भूमिमें जिस प्रकार अनादिकालसे गङ्गा और यमुना बह रही हैं, जिस प्रकार हिमालय और विन्ध्यकी पर्वतमालाएँ इसकी शोभा बढ़ा रही हैं, उसी प्रकार अनादिकालसे संत-महात्माओंकी अखण्ड अविच्छिन्न धारा इस देशमें अविरल रूपसे प्रवाहित होती आयी है। यहाँके वातावरणमें ही एक दिव्य विद्युत्-धाराका प्रवाह चला करता है, जिसके कारण यहाँके साधारण प्राणीमें भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी त्रिवेणी तरङ्गित होती रहती है। किसी मामूलीसे उजड़े हुए गाँवमें भी चले जाइये, किसी भी व्यक्तिसे भगवान्‌का प्रसङ्ग छेड़िये, भक्तिकी बात पूछिये, ज्ञानकी चर्चा चलाइये, वैराग्यका महत्त्व जाननेके लिये अपनी आकाङ्क्षा प्रकट कीजिये; बात-ही-बातमें आप देखेंगे कि उसकी सरल निश्छल वाणीमें उसके हृदयकी भक्ति उमड़ी आ रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो इसने अपनी इन आँखोंसे भगवान्‌को

देखा है और बराबर देखता ही रहता है। ज्ञान और वैराग्यके संस्कार तो हमारी नस-नसमें माताके दूधके साथ पैठे हुए हैं। 'सबै भूमि गोपालकी' केवल हमारी वाणीपर ही हो, ऐसी बात नहीं; यह तो हमारी रग-रगमें व्याप्त है। इस जगत्को 'चिड़िया रैन बसेरा' हम सदासे समझते आये हैं और ऐसा भी नहीं कि भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी यह दिव्य त्रिवेणी भारतके किसी प्रान्तविशेषमें ही प्रवाहित हुई हो। भारत भूमिका एक-एक रज:कण, एक-एक परमाणु इसके रससे भीगा हुआ है। बदरीनारायणसे लेकर रामेश्वरम्तक और कामाख्यासे लेकर कश्मीरतक समान भावसे इसकी धारा बही है। हाँ, यह और बात है कि उपासनाकी विधियाँ स्थान-स्थानपर अवश्य कुछ-कुछ भिन्न हो गयी हैं—कहीं वैष्णवधारा प्रबल है तो कहीं शैवधारा; कहीं भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना है तो कहीं भगवान् श्रीरामकी; कहीं शिवकी उपासना है तो कहीं शक्तिकी।

दक्षिण भारतकी पश्चिमी सीमापर पहाड़ियोंकी एक पतली रेखा-सी खिंच गयी है। समुद्र इसके चरण-प्रान्तको पखारता रहता है। इतनी सुन्दर उपत्यका संसारमें शायद ही अन्यत्र कहीं हो। यहाँ हरियाली बारहों महीने बनी रहती है। यहीं तुङ्गभद्राके तटपर श्रीरंगपुरम् नामका एक छोटा-सा गाँव था—सौ-सवा सौ घरका। इसी श्रीरंगपुरम्के एक साधारण-से ब्राह्मण-परिवारमें वेङ्कटका जन्म श्रीरामनवमीके दिन दोपहरको हुआ। लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्वकी यह घटना है। गाँवमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका जन्मोत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया जा रहा था। घण्टा, घड़ियाल, शंख, झाँझ, मृदंग, डफ बज रहे थे और बधाइयाँ गायी जा रही थीं। जय-जयकारकी सुमन-ध्वनिसे सारा गाँव गूँज उठा था। आनन्दके फौवारे छूट रहे थे। भाँति-भाँतिके मेवे, मिठाइयाँ और पकवान बँट रहे थे। दही और हल्दीके रंगकी कीच मची हुई थी। ऐसे आनन्दकी वेलामें वेङ्कटने पहली साँस ली—जन्म ग्रहण किया।

परिवार छोटा-सा ही था—माता, पिता, दो बहनें और एक भाई। वेङ्कटको इन सबका प्यार एक साथ मिला और परिवारके परम्परागत संस्कारोंकी छाप उसके कोमल हृदयपर पड़ती गयी। घरके आँगनमें तुलसी-चौंतरा था और उसपर सिन्दूरसे पोती हुई श्रीमारुतिकी एक सुन्दर मूर्ति विराजमान थी। चौतरेके एक कोनेपर श्रीमारुतिकी एक विशाल ध्वजा थी, जो ऊँचे आकाशमें फहराती रहती थी। प्रत्येक मंगल और शनिवारको रात्रिमें श्रीमारुतिका उत्सव होता, कथा होती, कीर्तन होता और अन्तमें प्रसाद बँटता। गाँवभरके बड़े-बूढ़े, बालक-युवा, स्त्रियाँ, बच्चे जुटते और बड़े ही उत्साहसे श्रीमारुतिकी सभी पूजा करते। वेङ्कटके पिता कथा बाँचते, माँ बच्चेको गोदमें लेकर बैठती और कीर्तनमें पीछे-पीछे बोलती। खूब ताल और स्वरके साथ कीर्तन होता। बालक वेङ्कट अभी तुतला ही रहा था कि उसे कीर्तनके कई बोल याद हो गये और उसके मुँहसे 'लघुपति लाघव लाजा लाम' बहुत ही प्यारा बड़ा ही मीठा लगता था। गाँवके लड़के-लड़कियोंका वेङ्कटके घर दिनमें भी मेला लगा रहता था। 'हाँ, वेङ्कट, भैया, कैसे है ? बोलो तो जरा 'रघुपति राघव राजा राम!' उनका इतना कहना था कि वेङ्कट प्यारभरी तुतली वाणीमें अपना कीर्तन छेड़ देता। उसके इस कीर्तनपर माता-पिता तो मुग्ध थे ही, गाँवके लोग भी कहते कि वेङ्कट किसी दिन बहुत बड़ा भक्त होगा। अभीसे इतनी उम्रमें उसे भगवान्के नामका इतना चस्का लग गया है कि जरा-सा छेड़नेपर ही वह भगवान्का नाम लेने लगता है और तबतक लेता जाता है जबतक उसे चुप न कराया जाय।

वेङ्कट चौथे वर्षमें पदार्पण कर चुका था। पिताने उसे भगवान्की स्तुतिके कई श्लोक कण्ठस्थ करा दिये थे। वेङ्कट जब कभी अकेले होता या श्रीमारुतिके सामने चबूतरेके पास आता तो एकाएक वह उन श्लोकोंकी आवृत्ति करने लगता। इसमेंसे दो श्लोक उसे बहुत ही प्रिय थे, जिन्हें वह स्वरके साथ गा सकता था—

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

—ये दोनों श्लोक उसके प्राणोंमें बस गये थे। प्रति मंगल और शनिवारको कथा आरम्भ होनेके पूर्व वेङ्कट इन श्लोकोंको बहुत प्रेमसे गाता और तब कथा

प्रारम्भ होती। अब वह कीर्तनमें भी बड़े प्रेमसे भाग लेने लगा था और गाँवके सभी लड़कोंको जुटा लाता था। कभी-कभी वह स्वयं अगुआ बनकर कीर्तन कराने लगता था—

राम राम जय राजा राम। राम राम जय सीता राम॥
भयहर दशरथनन्दन राम। जय जय मंगल सीता राम॥
रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीता राम॥
जय रघुनन्दन जय घनश्याम। जानकि-वल्लभ सीता राम॥
राम राम जय राजा राम। राम राम जय सीता राम॥

कथामें भी वेङ्कटको अब विशेष रस आने लगा था। वह बड़े ध्यानसे कथा सुनता। ऐसा मालूम होता कि पूर्वजन्मके संस्कारोंके कारण उसे कथाकी सारी बातें अपने-आप खुलती जाती थीं। एक बार मंगलका दिन था। अध्यात्मरामायणके किष्किन्धाकाण्डकी कथा हो रही थी। भगवान् श्रीराम अपने प्रिय भाई लक्ष्मणको पूजाकी विधि बता रहे हैं। प्रसङ्ग बहुत सुन्दर था। आरम्भमें ही आज एक बात वेङ्कटको बहुत प्यारी लगी। कथारम्भके समय ही पिताने व्यासासनसे श्रीमारुतिके चरणोंमें वन्दना करते हुए यह श्लोक पढ़ा—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

इस श्लोककी व्याख्या करते हुए उन्होंने श्रोताओंको समझाया कि 'जहाँ-जहाँ प्रभु श्रीरघुनाथजीकी कथा और कीर्तन होता है, वहाँ-वहाँ श्रीहनुमानजी महाराज अवश्यमेव रहते हैं और हाथ जोड़े आँखोंमें आँसूभरे प्रेमपूर्वक कथा सुनते हैं। श्रीरघुनाथजीको जो प्रसन्न करना चाहे पहले वह श्रीहनुमानजीको प्रसन्न करे, उनका आशीर्वाद—प्रसाद प्राप्त करे। इस प्रकार बड़ी सुगमतासे बहुत थोड़े समयमें श्रीमारुतिकी कृपासे श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें अविचल भक्ति प्राप्त होती है। श्रीहनुमानजीकी उपासना व्यर्थ नहीं जाती। वे बहुत शीघ्र अपने भक्तपर ढलते हैं और उसे उचित मार्गपर लगाकर रात-दिन बराबर उसकी साधनाकी सँभाल रखते हैं; उसे गिरनेसे बचाते हैं और ऊपर उठाते जाते हैं और अन्तमें उसे भगवान्के चरणोंमें युक्त कर देते हैं। श्रीमारुतिने अनेकों भक्तोंको भगवान्के चरणोंमें लगाया है और अब भी जो उनकी उपासना करते हैं, वे अवश्यमेव प्रभुके चरणोंमें आश्रय पाते हैं।' इसके बाद कथाका प्रसङ्ग चला। भगवान् श्रीराम अपने भाई लक्ष्मणको वनमें समझा रहे हैं—"हे रघुकुलनन्दन लक्ष्मण! जगत्के प्रपञ्चोंसे मुँह मोड़कर मौन हो मेरा ध्यान और स्मरण करता हुआ जप करे। फिर प्रीतिपूर्वक मेरा नाम लेकर नाचे, गाये, स्तुतिपाठ करे और हृदयमें मेरी मनोहर मूर्तिको धारण कर पृथ्वीपर लोटकर साष्टाङ्ग दण्डवत् करे। मेरे दिये हुए भावनामय प्रसादको 'यह भगवत्प्रसाद है'—ऐसी भावनासे सिरपर रखे और भक्तिभावमें विभोर हो मेरे चरणोंको अपने मस्तकपर रखकर 'हे प्रभो! इस भीमभयार्णवसे मुझे उबारो'—ऐसा कहकर मुझे प्रणाम करे और मेरा चरणामृत ले। अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण आदिसे अथवा जो कुछ सामग्री मिल सके, उसीसे निष्कपट भावसे मेरी पूजा करे। यदि धनवान् हो तो नित्यप्रति कर्पूर, कुङ्कुम, अगुरु, चन्दन और अत्युत्तम सुगन्धित पुष्पोंसे मन्त्रोच्चारण करता हुआ मेरी पूजा करे तथा नीराजन (पाँच बत्तियोंकी आरती), धूप, दीप और नाना प्रकारके नैवेद्योंद्वारा मेरा अर्चन करे। इस प्रकार की हुई मेरी पूजा शीघ्र ही फल देनेवाली होती है। भक्तके द्वारा श्रद्धापूर्वक निवेदन किया हुआ एक अँजुली जल भी मेरी प्रसन्नताका कारण होता है। फिर गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि सामग्रीकी तो बात ही क्या है। मुख्य बात तो है भाव। मैं भावका भूखा हूँ। भावके सहित अर्पण किये हुए तुलसीके दो-चार दल और एक चुल्लू जल ही मुझे खरीद लेनेके लिये पर्याप्त है।"

आजकी कथा वेङ्कटके हृदयमें बैठ गयी। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि 'अब श्रीमारुतिकी उपासना करके प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका दिव्य दर्शन करूँगा, अवश्य करूँगा!' कितनी सुन्दर है यह लालसा, कितनी मङ्गलमयी है यह वासना, कितना दिव्य है यह लोभ, कितनी प्यारी है यह ललक, कैसा अलौकिक है यह मोह!

श्रीमारुतिरायके सम्बन्धमें अधिकाधिक जाननेकी लालसा वेङ्कटरमणके हृदयमें बढ़ती गयी। रातको जब वह खा-पी लेता तो पिताके पास जाकर पूछता—'बाबूजी! मेरे श्रीहनुमानजीकी कोई लीला सुनाओ, उनकी कोई कहानी कहो।' पिताको बालककी इस

जिज्ञासासे बहुत सुख मिलता और वे उसे श्रीहनुमानजीका चरित्र थोड़ा-थोड़ा नित्य सुनाते। 'हाँ, अच्छा, यह कैसे, वह ऐसा'—आदि शब्दोंसे वेङ्कट पिताके मनको उल्लसित किये रहता। पिताने बड़े ही प्रेमके साथ बच्चेको यह बतलाया कि चैत्र मासके शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको मंगलके दिन अञ्जना माताके गर्भसे साक्षात् भगवान् शंकरने ही दिव्य वानररूपसे अवतार ग्रहण किया। यही हनुमानजी हैं। इनके पिताका नाम केसरी है। बचपनसे ही हनुमानजी बहुत नटखट थे। एक दिन प्रात:काल ही उन्हें भूख लगी और घरमें खानेकी कोई वस्तु दीखी नहीं। उनकी दृष्टि उदयकालीन सूर्यपर पड़ी। उन्होंने सोचा, यह तो बहुत सुन्दर लाल-लाल फल है। फिर क्या था, वे आकाशमें उड़ ही तो गये। किसी-किसी तरह सूर्यकी जान बची। आरम्भसे ही ये बहुत चपल थे। ऋषियोंके आसन उठाकर पेड़पर टाँग देते, उनके कमण्डलुका जल गिरा देते, उनकी लँगोटी फाड़ डालते, कभी-कभी किसी ऋषिकी गोदमें बैठकर खेलते होते, बस एकाएक उसकी दाढ़ी नोचकर भाग खड़े होते।

इन कथाओंसे वेङ्कटको अद्भुत सुख मिलता। वह सोचता, कितना अच्छा होता यदि स्वयं मैं ही हनुमानजी हो जाता। मुझमें उड़नेकी शक्ति होती तो मैं बराबर आकाशमें उड़ा ही करता और वृक्षोंकी फुनगीपर बैठता। फिर मेरे बाबूजी और मेरी मैया मुझे बुलाते तो मैं आता, मनमें आता तो नहीं भी आता। ये मेरे पीछे खूब परेशान होते। मैं इन्हें खूब छकाता।

इस प्रकार नित्य कथा होती। कभी कोई प्रसंग तो कभी कोई। कभी सुग्रीवसे मिताई करानेकी कहानी, तो कभी सीताकी खोजमें कनकभूधराकार शरीरसे समुद्र लाँघनेकी विस्मयकारी लीला। कभी विभीषणसे बातचीतका प्रसंग चलता तो कभी अशोकवाटिकामें माता जानकीको प्रभु श्रीरघुनाथजीकी मुद्रिका देनेका प्रसंग चलता। लंकादहनवाली कथा वेङ्कटको बहुत भाती थी। वह एक बात पितासे पूछा—'हाँ बाबूजी! हनुमानजीने लंकामें अपनी पूँछ कैसे बढ़ायी? क्या सब-का-सब कपड़ा उनकी पूँछमें अँट गया? क्या सैकड़ों मन तेल उसपर छिड़का गया? फिर इतनी भारी पूँछको लेकर वे इतने ऊँचे कैसे कूदे और एक कँगूरेसे दूसरे कँगूरेपर उछले कैसे?' पिता अपने प्यारे बच्चेके एक-एक कुतूहलको बड़े प्रेमसे शान्त करते; एक-एक कर सारी बात सुनाते और उसमें उन्हें बड़ा सुख मिलता। वे पूरी कथा कहकर अन्तमें कहते कि "भगवान् श्रीरामके कामके लिये ही श्रीहनुमानजीका जन्म हुआ और वे निरन्तर भगवान्के स्मरणमें ही डूबे रहते थे। आज भी भक्तोंको श्रीहनुमानजीके दर्शन होते हैं।' 'भगवान्की अनन्त कृपा और सम्पूर्ण शक्ति मेरे लिये है'—यह विश्वास श्रीहनुमानजीके हृदयमें बराबर बना रहता था।

वेङ्कटके पिता एक दिन अपने बच्चेको बड़े ही प्यारसे यह समझा रहे थे कि श्रीहनुमानजीके जीवनमें यह विशेषता है कि जो इनके सम्पर्कमें आ जाता है, उसे ये किसी-न-किसी प्रकार भगवान्की संनिधिमें पहुँचा ही देते हैं। उन्होंने विभीषण, सुग्रीव और तुलसीदासको भगवान्से मिलाया। उनका एकमात्र काम है—भगवान्की सेवा और भगवान्की शरणमें जानेवालोंकी सहायता करना। विभीषण और सुग्रीवकी कहानी वेङ्कट पहले सुन ही चुका था। आज गोस्वामी तुलसीदासजीकी कथा सुननेकी उत्सुकता उसने प्रकट की। पिताने बहुत ही विस्तारके साथ प्रेमपूर्वक यह बतलाया कि एक स्थानपर श्रीरामायणकी कथा नित्य हुआ करती थी। वहाँ एक वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें श्रीहनुमानजी नित्य आया करते थे। वे सबसे पहले आते थे और प्रसाद बँट चुकनेपर सबके चले जानेके बाद जाते थे। तुलसीदासजीने उन्हें पहचान लिया और उनके चरण पकड़ लिये। फिर क्या था, वे अपने असली रूपमें प्रकट हो गये। फिर उन्हींकी कृपासे चित्रकूटमें तुलसीदासजीको श्रीराम-लक्ष्मणके दर्शन हुए। मन-ही-मन वेङ्कटको ऐसा प्रतीत हुआ कि वही तुलसीदास है और उसे ही श्रीहनुमानजीकी कृपासे भगवान्के साक्षात् दर्शन हुए थे। आज उसे एक ऐसी बात मिली, जिसके कारण उसके हृदयको बहुत ही सुख मिला। वह आज मस्त होकर नाच रहा था। मनमें वह यह समझ रहा था कि अब तो मुझे भगवान्के दर्शन होंगे ही; क्योंकि श्रीहनुमानजीकी यही लीला है।

धीरे-धीरे वेङ्कट सयाना हुआ। नवें वर्षमें उसका विधिवत् उपनयन संस्कार हुआ। श्रीगुरु-मुखसे उसे गायत्रीमन्त्रके साथ-साथ '**ॐ हरिः**' की दीक्षा मिली। माता-पिताकी आज्ञा और आशीर्वादसे वह गुरुकुलमें

शिक्षा प्राप्त करनेके लिये भेजा गया।

मदुराका दक्षिण भारतमें वही स्थान है, जो काशीका उत्तर भारतमें। काशी प्राचीन कालसे उत्तर भारतका प्रधान विद्यापीठ रही है। समस्त उत्तर भारतके विद्यार्थी यज्ञोपवीत-संस्कारके बाद काशीमें ही विद्याभ्यासके लिये आया करते थे।

आज भी यज्ञोपवीत-संस्कार हो जानेपर बालक अपने माता-पितासे भिक्षा माँगता है—यह कहकर कि 'माँ! मुझे भिक्षा दो, मैं काशी विद्या पढ़ने जाता हूँ।' यह आज भले ही केवल अभिनयके रूपमें हमारे समाजमें रह गया हो; परंतु है यह हमारे एक बहुत ही पवित्र संस्कारकी परम पावन स्मृति। मदुराके पास ही एक छोटी-सी नदी है, उसका नाम है वाइकै। इस नदीके तटपर मदुरासे दस-बारह कोसपर एक छोटा-सा आश्रम था, जहाँ वेङ्कट शिक्षा प्राप्त करनेके लिये आया। गुरुजीके चरणोंमें उसने साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम किया और उसकी आज्ञा प्राप्तकर वहाँ रहने लगा। धीरे-धीरे उसने वेद-वेदाङ्ग, दर्शन, स्मृति, पुराण, इतिहास, ज्योतिष आदि सम्पूर्ण शास्त्रोंका विधिपूर्वक अध्ययन किया। उसकी मेधा बहुत ही प्रखर थी और बुद्धि बहुत ही विचक्षण। एक बार सुनकर किसी भी बातको स्मरण कर लेना उसके लिये बहुत ही सरल था। गुरुजीके मुखसे कोई भी बात सुनता, उसे सदाके लिये याद कर लेता। गुरुजी उसके गुणोंपर मुग्ध तथा उसकी विद्या और बुद्धिकी विलक्षणतापर विस्मित थे। वे प्राय: पढ़ाते समय विद्यार्थियोंसे कहा करते—ब्रह्मचारी हो तो वेङ्कटरमण-जैसा। इस प्रकार गुरुके यहाँ पूरे सोलह वर्ष व्यतीत कर वेङ्कट गुरुकी आज्ञासे समावर्तन-संस्कारके अनन्तर घर लौटा। आश्रमकी छाप उसपर पड़ चुकी थी। अखण्ड ब्रह्मचर्यके तेजसे उसका मुखमण्डल जगमगा रहा था। विद्या जब अन्तरमें प्रवेश कर जाती है, तब वस्तुत: वह अन्तस्तलको ब्रह्मतेजसे आलोकित कर देती है, जीवके समस्त बन्धन खुल जाते हैं और उसे एक ऐसी 'गुरुकिल्ली' मिल जाती है, जिसके सहारे वह समस्त रहस्योंका उद्घाटन कर लेता है। उसके समक्ष समस्त लोक-लोकान्तर अपना हृदय-द्वार खोल देते हैं और तत्त्वोंकी तहमें जो सार-सत्ता है, उसीका आधार लेकर वह अविचल खड़ा रहता है। उसके लिये बाहरी पुस्तकें बंद हो जाती हैं, अंदरके पन्ने खुलने लगते हैं। सारा रहस्य तो भीतर है, बाहर तो अंदरका एक धुँधला प्रतिबिम्बमात्र है। जो कुछ है, वह भीतर है, हृदयके भीतर है और हृदयका द्वार खुले बिना परम सत्यका साक्षात्कार नहीं होता। यही बाहरकी दृष्टि जब भीतरकी ओर मुड़ती है, तब अपनी निधि खोज लाती है, जिसे खोकर वह जन्म-जन्मसे भटकती आयी है।

वेङ्कटरमणने अपने जीवनका मार्ग निश्चित कर लिया था। समस्त वेद-वेदाङ्ग, उपनिषद्, पुराण आदिकी गहराईमें डूबनेपर उसे '**ॐ हरि:**' के ही दर्शन हुए। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य और '**ॐ हरि:**' का अखण्ड एकतार स्मरण—उसकी इस अनन्य निष्ठाको देखकर घरवालोंने उसके सम्मुख विवाहका प्रस्ताव ही नहीं रखा। पिताको बड़ी प्रसन्नता थी कि उनका पुत्र सन्मार्गपर बढ़ता चला जा रहा है। उन्होंने किसी प्रकारकी छेड़-छाड़ नहीं की। वेङ्कटरमण नित्यप्रति प्रात:काल ब्राह्ममुहूर्तमें उठता, स्नान-संध्या-तर्पणसे निवृत्त होकर वेदोंकी कुछ ऋचाओंका तथा उपनिषदोंके कुछ मन्त्रोंका स्वरसहित पाठ करता और फिर श्रीमारुतिकी मूर्तिके सामने आसन लगाकर एकनिष्ठ होकर बैठ जाता और पूरे छ: घंटे '**ॐ हरि:**' का जप करता। दोपहरको घरमें जो कुछ भोजन तैयार होता, उसे प्रभुका मधुर प्रसाद समझकर लेता और फिर कुछ स्वाध्याय करता। तीसरे पहर वह पुन: जपमें बैठ जाता और चार घंटेतक श्वासके द्वारा '**ॐ हरि:**' का जप करता। जपकी ओर उसकी रुझान बढ़ती ही गयी। निश्चित समयोंमें तो वह विधिवत् जप करता ही था, शेष समय भी वह मन-ही-मन उसीकी बारंबार आवृत्ति करता रहता था। फल यह हुआ कि रातको सोते समय भी उसके द्वारा जप होता रहता था। इस जपमें उसे किसी भी प्रकारका कोई कष्ट, श्रम या असुविधाका बोध नहीं होता था, वरं उसे इसमें अधिकाधिक रस मिलता था एवं एक दिव्य सुखानुभूति होती थी।

जपकी ओर उसका मन ज्यों-ज्यों झुकता गया, उसकी एकान्तकी चाह भी उसी मात्रामें बढ़ती गयी। कभी-कभी चाँदनी रातमें तुंगभद्राके तटपर एकान्तमें बैठकर जब वह '**ॐ हरि:**' की धुन लगाता तो ऐसा

मालूम होता कि उसके रोम-रोमसे '**ॐ हरिः**' '**ॐ हरिः**' की कोमल किरणें निकल रही हैं और भीतर-बाहर यह मन्त्र दिव्य ललित अक्षरोंमें लहरा रहा है। कभी-कभी वह इस मन्त्रमें इस प्रकार डूबकर तैरने लगता, जैसे मछली महासागरके तलमें जाकर अपनी अलमस्तीमें दाहिने-बायें, ऊपर-नीचे तैरती है। मन्त्रमें वह और उसमें मन्त्र—एक अद्भुत-सा दृश्य। लोग इसे दृश्य ही कहेंगे; परंतु वेङ्कटरमणके लिये तो यह एक स्पष्ट सत्य था। कभी-कभी वह नदीकी धारापर पड़ती हुई चन्द्रमाकी स्निग्ध किरणोंकी क्रीड़ा देखा करता—मन्त्र-मुग्ध-सा, विस्मित-सा। वहाँपर भी उसे '**ॐ हरिः**' की ही ललित लीला दीख पड़ती। कभी-कभी वह आँख उठाकर अनन्त आकाशके असंख्य नक्षत्रोंकी ओर देखता और उसे इन सारे नक्षत्रोंके हृदयलोकमें '**ॐ हरिः**' के ही दर्शन होते। अपने हृत्पिण्डकी गतिमें उसे स्पष्ट '**ॐ हरिः**' सुनायी पड़ता, अपनी साँसोंमें भी वह उसी मन्त्रको सुनता, अपने प्राणोंमें भी उसे उसी मन्त्रका आलोक दीखता; आँखें जहाँ जातीं, मन जहाँ जाता, दृष्टि जिधर मुड़ती, बुद्धि जो विचारती—सर्वत्र केवल '**ॐ हरिः**' का ही स्फुरण उसे मोहे रहता। पूरे ग्यारह वर्ष इस प्रकार इस मधुर साधनामें बीत गये। परंतु वेङ्कटको मालूम होता कि अभी कल ही मैं इस मार्गमें प्रवृत्त हुआ हूँ। वस्तुतः है भी यही बात। जो लोग शर्त बाँधकर साधनाके मार्गमें प्रवृत्त होते हैं, वे साधनाका रस क्या जानें? इतना नाम जप लेनेसे, इतने दिन मौन रखनेसे, इतना स्वाध्याय करनेसे, इतना एकादशी-व्रत करनेसे, अमुक धर्म-ग्रन्थका इतना पाठ कर लेनेसे भगवान् मिल जायँगे—फिर साधनासे पिण्ड छूट जायगा—ऐसा सोचकर जो साधन-पथमें पैर रखते हैं, उन्हें निराशाके अतिरिक्त और क्या मिलेगा? भगवान् शर्तोंमें नहीं बँधते, वे बँधते हैं केवल प्रेमसे, एकमात्र अनन्य प्रेमसे। बिना प्रेम और लगनके की हुई असंख्य वर्षोंकी साधनासे एक पलकी प्रेमपरिप्लुत साधना उन्हें विशेष प्यारी है। भगवान्में अनुरक्ति होनी चाहिये। मुख्य वस्तुएँ हैं—अनुरक्ति और आसक्ति। हाँ, यह बात और है कि आरम्भमें मन न लगता हो, प्रीति न उपजती हो तो बलपूर्वक भी मनको भजनमें लगाना चाहिये। पीछे धीरे-धीरे आप ही प्रभुकी कृपासे प्रीति और संसक्तिका उदय होगा और इनके उदय होनेपर फिर शेष ही क्या रह जाता है।

आज श्रीहनुमानजीकी जयन्ती थी। दिनभर वेङ्कटके घर बड़ी धूम-धाम रही। आधी राततक जागरण हुआ—खूब भजन हुआ, पद गाये गये, कथा हुई, धुआँधार श्रीमारुतिरायके नामका जयघोष हुआ, प्रसाद बँटा। सब लोग घर गये। परंतु वेङ्कटरमणके मनमें एक अद्भुत तरहका आन्दोलन छिड़ा हुआ था। उत्सव समाप्त होते ही पञ्चामृत लेकर वह धीरेसे घरसे सरका और नदीकी ओर बढ़ा। चैत्र शुक्ला पूर्णिमाकी आधी रात, तुंगभद्राका सैकत तट, वासन्ती वायुके झोंके, वन्य पुष्पोंके परागसे मदमाती हवाकी अठखेलियाँ—वेङ्कट अपने इष्टदेव श्रीमारुतिके ध्यानमें बैठ गया। बैठते ही उसकी समाधि लग गयी और अन्तस्तलमें उसने श्रीमारुतिरायकी किलकिलाहट स्पष्ट सुनी। फिर देखा कि असंख्य वानरोंकी सेना लेकर वे आगे आ रहे हैं—धीरे-धीरे सभी वानर न जाने कहाँ और कब अन्तर्धान हो गये और रह गये केवल श्रीमारुतिराय। वे स्नेहभरी दृष्टिसे वेङ्कटकी ओर देख रहे थे और उसके सिरपर अपना दाहिना हाथ रखकर उसे आशीर्वाद दे रहे थे। वेङ्कटसे अब रहा नहीं गया। वह अपने प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा और आनन्दके भारसे मूर्च्छित हो गया। उस दिव्य मूर्च्छामें वेङ्कटको यह बोध हुआ कि श्रीहनुमानजी उसके हृदय-पटपर अपनी तर्जनी अँगुलीसे स्वर्णाक्षरोंमें '**ॐ हरिः**' लिख रहे हैं। आज उसे श्रीमारुतिका दिव्य प्रसाद मिला।

अब प्रायः रात्रिको, जब सब सो जाते, वेङ्कट तुंगभद्राके तटपर एकान्तमें मारुतिसे मिलने लगा। उसे ऐसा लगता मानो श्रीमारुति पहलेसे ही उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वह उनके चरणोंमें मस्तक टेकता और आँसुओंसे उनके वक्षःस्थलको भिगो देता। फिर श्रीहनुमानजी उसे अपनी वात्सल्य-धारामें डुबाकर अपने स्वामीके परम धाम श्रीसाकेतलोकमें ले जाते। वहाँ प्रभु श्रीरघुनाथजीके नित्य लीलाधाममें नित्य लीला-विहारका दर्शन होता। वहाँका दृश्य बहुत ही दिव्य और परम मंगलमय था—

कल्पवृक्षके नीचे सोनेका महामण्डप है। उसके नीचे अत्यन्त सुन्दर मणिरत्नमय सिंहासन है। उसपर

भगवान् श्रीरामचन्द्र श्रीसीताजीसहित विराजित हैं। नवीन दूर्वादलके समान उनका श्यामवर्ण है। कमल-दलके समान विशाल नेत्र हैं। विशाल भालपर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक सुशोभित है। घुँघराले काले केश हैं। मस्तकपर करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशयुक्त मुकुट है। मुनिमनमोहन महान् लावण्य है। दिव्य अङ्गपर पीताम्बर सुशोभित है। गलेमें रत्नोंके हार और दिव्य पुष्पोंकी माला है। देहपर चन्दन लगा है। हाथोंमें धनुष-बाण लिये हैं, लाल-लाल होंठ हैं। उनपर मीठी मुसकानकी छवि छा रही है। बायीं ओर माता श्रीसीताजी विराजिता हैं। इनका उज्ज्वल स्वर्णवर्ण है, नीली साड़ी पहने हुए हैं और रक्त कमल धारण किये हैं। सभी दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। बड़ी ही अपूर्व और मनोहर झाँकी है।

प्रभुकी यह दिव्य झाँकी पाकर वेङ्कटका जीवन धन्य हो गया।

यह लीला-विहार कितने दिनतक चलता रहा—वेङ्कटको कुछ पता नहीं। एक दिन अञ्जनीकुमार श्रीहनुमानजीने प्रसन्न होकर उससे पूछा—'कहो वत्स! तुम क्या चाहते हो?' वेङ्कटसे कुछ बोला नहीं गया; परंतु फिर भी मन-ही-मन उसके भीतर यह लालसा जगी कि 'श्रीहनुमानजीका जो परम प्रिय पदार्थ है, वही देखना चाहिये।' श्रीहनुमानजी उसके मनकी भावना समझ गये; उन्होंने कहा—'अच्छा, मेरा परम प्रिय पदार्थ, जो मेरे प्राणोंसे भी प्रिय है, तुम देखो और सुनो।' ऐसा कहकर वे दोनों हाथोंमें करताल धारणकर मस्त हो कीर्तन करने लगे—

जय सीताराम सीताराम सीताराम जय सीताराम।
जय सीताराम सीताराम सीताराम जय सीताराम॥

भक्तराज हनुमानका यह दिव्य कीर्तन त्रिभुवनको पावन करनेवाला है। वे सदा यही कीर्तन किया करते हैं, परंतु आजका यह कीर्तन केवल वेङ्कटरमण ही सुन रहे हैं और उनकी क्या अवस्था है, यह कोई बड़भागी भक्त ही बता सकता है। कीर्तनकी धुन गाढ़ी होती गयी और धीरे-धीरे शीतल-मधुर प्रकाशकी कोमल किरणें समीप आती दीखीं। साक्षात् प्रभु श्रीरघुनाथजी माता जानकीसहित वहाँ पधारे और अपने मन्द-मन्द मृदुल हास्यसे अपने भक्त श्रीहनुमानको और अपने भक्तके भक्त वेङ्कटरमणको कृतकृत्य कर दिया। वेङ्कटके प्राण प्रभुके प्राणोंमें लीन हो गये।

पढ़ो, समझो और करो

श्रीहनुमानजी महाराज प्रत्यक्ष देवता हैं। श्रीरामरहस्योपनिषद्के '**ऐहिके समनुप्राप्ते मां स्मरेद्रामसेवकम्।**······· **सर्वथा जागरूकोऽस्मि रामकार्यधुरन्धरः।**' एवं '***नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा॥***' आदि वचनोंके अनुसार दृढ़ विश्वासपूर्वक आर्तभावसे इनका स्मरण करनेसे प्राय: चमत्कारिक ढंगसे कार्य सिद्ध होते हैं। श्रीहनुमानजीसे सम्बन्धित कुछ घटना-प्रसङ्ग यहाँ दिये जा रहे हैं—

(१)

मारुति-प्रसन्न

स्वनामधन्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके साथ मैं रतनगढ़ (राजस्थान)-में रह रहा था। उनकी आत्मीयता, सौहार्द एवं प्रीति चिरस्मरणीय है। तबतक उनकी विमाता जीवित थीं और विशेष वात्सल्यके साथ हमलोगोंके खान-पान, रहन-सहनका ध्यान रखा करती थीं। एक बार वहाँ उनके मुँहसे यह प्रसङ्ग सुननेको मिला—

श्रीभाईजीके माता-पिताकी कोखसे उस समयतक कोई पुत्र नहीं हुआ था। एक महात्माने श्रीहनुमानजीकी उपासना बतलायी। माताजीको स्वप्नमें हनुमानजीने दर्शन देकर एक फल दिया। उसी आशीर्वाद—प्रसादके बाद भाईजीका जन्म हुआ। इसके प्रमाणस्वरूप वे कहा करती थीं कि 'भाईजीका एक हाथ कुछ छोटा है और केहुनीके मोड़से पीछेकी ओर वह अत्यधिक मुड़ जाता है।' निश्चय ही भाईजीकी प्रतिभा, संकल्प और प्यारमें किसी देवताके प्रसादकी झलक मिलती थी। कोई-कोई ही मृत्तिका चमकदार होती है—'**ज्योत्स्नावत्यः क्वचिद् भुवः।**' रेलवे-स्टेशनपर आते समय हमलोग रतनगढ़के हनुमानजीका दर्शन कर लिया करते थे। यह पुण्य-श्रवण निश्चय ही सन् १९४० के पूर्व माताजीके मुखसे ही हुआ था।

(२)

अकारण-कारुण्य

सन् १९३१ या ३२में श्रीसुदर्शनसिंहजी '**चक्र**' मेरे

साथ घरपर रहा करते थे। प्राकृतिक चिकित्सामें उनकी विशेष रुचि थी। एक बार मुझे पित्तके प्रकोपसे ज्वर आ गया। तीन-चार दिनतक वह १०३ डिग्रीके लगभग तक रहा। जब मैं बेसुध हो गया तो 'चक्र' जीने मेरा शरीर पानीके टबमें बैठा दिया। मैंने देखा कि एक भयंकर स्त्री-मूर्ति बाल बिखेरे, हाथमें तलवार लिये चीखती हुई मुझे मारने दौड़ी आ रही है। बेहोशीमें भी मैं बहुत डरा नहीं। महात्माओंके सत्संगसे मुझे इतना संस्कार मिल गया था कि मौत आती है, शरीरको मारती भी है, परंतु जीवात्माकी अमरताको देखते हुए उससे डरना व्यर्थ है। मैं चुपचाप बेहोशीमें पड़ा रहा। उसी समय स्वर्णपर्वतके समान विशाल गिरिधारी हनुमान गदा घुमाते हुए प्रकट हुए और मृत्युको भगाकर स्वयं अदृश्य हो गये। आश्चर्य यह है कि उसके बाद जब मैं होशमें आया तो ज्वर सर्वथा उतर गया था और मस्तिष्कमें विश्राम एवं शरीरमें बलका अनुभव हो रहा था। बेसुध-दशामें ऐसी वृत्तिका आना मेरे पौरुष-साधनका फल नहीं था, निश्चय ही देवताके अकारण कारुण्यसे ही तादृश परिणाम हुआ था।

यं तु रक्षितुमिच्छन्ति
सुबुद्ध्या योजयन्ति तम्।

—यह प्राचीन उक्ति सर्वथा सत्य है।

(३)

सकाम अनुष्ठानमें सफलता

एक हैं हमारे शास्त्रीजी। सन् १९४२ के लगभग वे सर्वथा ही अकिंचन एवं मातृ-पितृ-विहीन थे। उन्होंने एक यजमानके मुकदमेके लिये जो कि प्रीवी-कौंसिल लन्दनमें चल रहा था, हनुमानजीका एक सकाम अनुष्ठान किया। अनुष्ठान पूरा होनेसे कुछ पूर्व ही उन्हें स्वप्नमें हनुमानजीके दर्शन हुए जिसमें उन्होंने यजमान-परिवारपर गिरते हुए पहाड़को हाथसे रोककर ऊपर ही छिन्न-भिन्न कर दिया था। थोड़े ही दिनोंमें मुकदमेकी जीतका समाचार आया। दक्षिणास्वरूप उन्हें अपेक्षासे अधिक धन, भूमि और भवनकी प्राप्ति हुई।

कहना न होगा कि मुकदमा बहुत बड़ा था। उसमें सफलता मिलनेसे शास्त्रीजीका श्रद्धा-विश्वास बढ़ गया। उन्होंने अपनी मनोरथ-पूर्तिके लिये अनुष्ठान किया। थोड़े ही दिनोंमें विवाह हुआ, ससुरालकी सैकड़ों एकड़ भूमि, सैकड़ों पशु एवं द्रव्य उन्हें प्राप्त हुआ। पक्का मकान बन गया, पाँच पुत्र हुए। अब वे अपने परिवारके साथ सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। वे तबसे अबतक मेरे पूरे सम्पर्कमें हैं। ये सब बातें मैं विश्वासके बलपर नहीं, अपनी पूरी जानकारीके अनुसार कह रहा हूँ। श्रीहनुमानजीका आराधन भगवत्प्राप्तिके साधन एवं लौकिक धन प्राप्तिका भी हेतु है। सतत सावधानी एवं निष्काम प्रीतिपूर्वक आराधना करनेसे सत्वर सफलता मिलती है।

(४)

भगवद्दर्शनकी लालसा

भारतवर्षके एक प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ कथा-व्यास लगभग तीस वर्षोंसे मेरे सम्पर्कमें हैं। एक बार हमलोग स्वर्गाश्रममें रह रहे थे। दण्डी स्वामी श्रीस्वरूपानन्दजी महाराज भी हमारे मित्रोंमें ही थे। एक दिन कथा-व्यास यह आग्रह करने लगे कि मुझे भगवान्‌का दर्शन होना चाहिये। मैंने उन्हें जब समझाया कि भगवान् किसीके अधीन नहीं होते कि कोई चाहे जब उनका दर्शन करा दे। इसके लिये दीर्घकालव्यापी साधनाभ्यास और प्रभुके अकारण करुणाके अवतरणकी अपेक्षा होती है। इससे वे निराश होकर रूठ गये और हमसे थोड़ी दूरपर जा कमरेमें व्याकुल होकर रोने-छटपटाने लगे। उनका कहना था कि जब भगवत्प्राप्तिकी आशा ही टूट गयी तो अब जीकर क्या करूँगा? घंटे, दो घंटेके बाद दण्डीस्वामीने मुझसे कहा कि ब्राह्मण मर जायगा, जाकर समझाओ। मैंने जाकर उनका सिर गोदमें ले लिया, आँसू पोंछने लगा, समझाने लगा, आश्वासन देने लगा। थोड़ी ही देरमें उस कमरेके अंदर एक स्वर्ण-वर्ण वानर अचानक प्रकट हो गया। उसके हाथोंमें वर-अभय-मुद्रा थी। वह दो पाँवोंपर खड़ा था। मेरे मुँहसे निकला—'जय हो, जय हो।' कथा-व्यासके नेत्र खुले। उन्होंने सहसा उठकर वानरके चरणोंमें दण्डवत् किया और आनन्दमग्न हो गये। वानर देव वहाँसे एक बेलका फल उठाकर चलते बने। कहना न होगा कि तबसे कथा-व्यासके जीवनमें एक अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया।

(५)

श्रीहनुमन्मन्त्र-अनुष्ठानका प्रभाव

मैं अपनी बाल्यावस्थामें श्रीअवध जाया करता

था। जानकीघाटवाले पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराजके चरणोंमें श्रद्धा थी और वे अकारण ही मेरे ऊपर वात्सल्य-स्नेहकी वर्षा किया करते थे। एक दिन प्रसङ्गवश उन्होंने अपने पूर्व-जीवनकी बात सुनायी।

वे अपनी युवावस्थामें कुछ पढ़े-लिखे नहीं थे। एक श्रीराम-भक्त विद्वान् महात्माका सत्सङ्ग उन्हें प्राप्त हुआ। महात्माने पूछा—'तुम क्या चाहते हो?' उन्होंने कहा—'विद्या और भगवद्भक्ति।' महात्माने उन्हें श्रीहनुमन्मन्त्र और उसकी अनुष्ठानविधि बता दी। वे श्रद्धा-विश्वासपूर्वक उसे करने लगे। अनुष्ठानकी पूर्णतापर श्रीहनुमानजीने उन्हें दर्शन दिया और वरदानमें कहा कि—'तुम तीन दिनोंके भीतर जितने ग्रन्थोंका दर्शन कर लोगे, वे साभिप्राय तुम्हें कण्ठस्थ हो जायँगे। साथ ही तुम्हें श्रीराम-भक्ति भी मिलेगी।' पण्डितजीने काशीमें जाकर तीन दिनोंमें बड़े-बड़े ग्रन्थागारोंके दर्शन किये। वे विधिपूर्वक शास्त्रोंका स्वाध्याय किये बिना ही कितने उच्चकोटिके विद्वान् हो गये थे—यह बात वे ही लोग समझ सकते हैं, जिन्होंने कभी उनका प्रत्यक्ष दर्शन किया होगा। सम्पूर्ण विद्वत्समाज उनके प्रगाढ़ पाण्डित्यका समादर करता था। श्रीराम-भक्ति तो उनके रोम-रोममें भरी हुई थी।

—श्रीस्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

(६)

पागलपन मिट गया

सन् १९६५ की बात है। कलकत्तेके ट्रुथ (Truth) प्रेसके श्रीअजितकुमार चक्रवर्ती (रामबाबू)-को बँडिशाके किसी घरमें कोई बुला ले गया। उस घरमें एक बहू पागल हो गयी थी, उसके लिये शान्ति-स्वस्त्ययन कराना था। श्रीचक्रवर्ती महाशयने वहाँ जाकर श्रीहनुमानचालीसाका पाठ और '**ॐ हनुमते नमः**'—मन्त्रका जप किया। साथ ही रोगिणी जिस कमरेमें थी, उसकी दीवालपर '**जय श्रीसीताराम श्रीहनुमते नमः**' लिख दिया। पाँच दिनके बाद पता लगा कि रोगिणी एकदम ठीक हो गयी है।

(७)

भक्तवत्सल श्रीहनुमानजी

श्रीहनुमानजी अपने अनन्य भक्तोंकी किस प्रकार सदा रक्षा करते हैं और उन्हें भक्ति प्रदान करते हैं, इसके अनेक सच्चे प्रसङ्ग आजकलके समयमें भी सुननेको मिल जाते हैं। यहाँ एक ऐसा ही प्रसङ्ग दिया जा रहा है—

अभी इस घटनाको सौ वर्ष भी नहीं हुए। देवरी (ग्वालियर)-के एक सम्पन्न जमींदार-परिवारमें श्रीउरूसिंहका जन्म संवत् १९२८ में हुआ था। यह बालक छोटी अवस्थासे ही भगवान्की लीलाके पद लिखने और गाने लगा तो लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। १५ वर्षकी अवस्थामें उरूसिंहजीका विवाह कर दिया गया। पर सांसारिक बन्धनमें बँधनेके स्थानपर उरूसिंहजीके आध्यात्मिक मार्गपर बढ़नेवाले चरणोंमें और भी दृढ़ता आती गयी। १८ वर्षकी आयुमें उरूसिंहजीको ग्वालियर-सेनाके रिसालेमें नौकरी मिल गयी।

सेनाकी नौकरीने भी उरूसिंहजीको अपने भक्तिमार्गसे विचलित नहीं किया। वे बड़े मधुर स्वरमें भाव-विभोर होकर 'रामचरितमानस' की कथा सुनाते। अनेक अवसरोंपर वह स्वयं अपनी सुध-बुध खो बैठते और श्रीरामके पावन चरितका ऐसा मधुर वर्णन करते, मानो श्रीराम उनके सामने प्रत्यक्ष लीला कर रहे हों। उनकी भक्ति-भावनाकी प्रसिद्धि बढ़ती गयी और उसीके साथ कथामृतका पान करनेवाले श्रद्धालु श्रोताओंकी संख्या भी।

इन्हीं दिनों उरूसिंहजीके जीवनमें एक ऐसी अलौकिक घटना हुई, जिससे उनके जीवनका प्रवाह ही बदल गया। मुरार छावनीकी बात है। गोल पहाड़ियाके श्रीहनुमानमन्दिरमें रामचरितमानसकी कथाका अमृत बरस रहा था। भक्ति-रसकी सरितामें श्रोता-वक्ता सभी ऐसे निमग्न हुए कि समयका ध्यान ही न रहा। घड़ियाँ जैसे जड़ हो गयीं। अन्तमें जब प्रसङ्गानुसार कथाकी समाप्ति हुई तो श्रीउरूसिंह अपनी अलौकिक अवस्थासे संसारमें लौटे। घड़ी और समयका बोध हुआ। सेनामें ड्यूटीका समय निकल गया था। उरूसिंहजी चिन्तित हुए। घोड़ीपर काठी कसकर रकाबमें पैर डाले और निरीक्षणके कार्यपर चल पड़े।

किंतु ज्यों ही उरूसिंहजी निरीक्षणके पहले ठिकानेपर पहुँचे त्यों ही कर्मचारियोंने आश्चर्यसे पूछा—'पण्डितजी! अभी तो आप आये थे। रजिस्टरमें आपने सही की है, फिर इतनी जल्दी दुबारा कैसे लौट आये!'

उरूसिंहजीकी वाणी रुद्ध हो गयी, बुद्धि चकित हो गयी। रजिस्टर देखा तो आँखें चौंधिया गयीं। मेरे ही हस्ताक्षर हैं, ऐसा कौन कर गया? दूसरे और तीसरे ठिकानेपर भी गये, सभी जगह वही नाटक। हनुमानजी उरूसिंहके वेशमें सब जगह स्वयं गये, निरीक्षण किया, हस्ताक्षर किये और ड्यूटी पूरी हो गयी, उरूसिंहने तत्काल सेनाकी नौकरी छोड़ दी। उनका शेष जीवन श्रीमारुतिकी सेवा-पूजामें ही व्यतीत हुआ।

—श्रीराजेन्द्र शर्मा

(८)

श्रीहनुमानजीने बचाया

उस समय मैं ग्यारह वर्षका था। आम पके हुए थे। मुझे वृक्षपर चढ़नेमें बड़ा आनन्द आता था। मेरे साथ कई लड़के आम तोड़ने निकले। कई वृक्षोंसे आम तोड़े। एक बहुत विशाल वृक्ष था। उसका तना सीधा और मोटा था। उसमें दूरतक कोई शाखा नहीं थी। चढ़ना बहुत कठिन होनेसे उसपर खूब अधिक पके आम सुरक्षित बचे थे। मैं तीन दिनोंसे उस वृक्षपर चढ़नेको आतुर था, किंतु साहस नहीं होता था। अन्तमें फरसी लेकर मैंने तनेमें पैर रखने-जितना गड्ढा किया और चढ़ गया। भूलसे एक सूखी टहनीपर पैर रखकर जो आम तोड़ने झुका तो टहनी टूट गयी। मैं तीस फुट ऊपरसे गिरने लगा। मुझसे अनायास—'जय बजरंगबली! महावीरजी बचाइये!! इतना निकला और नेत्र बंद हो गये। मैं मूर्च्छित हो गया था। नीचे मेरे साथी रोते-चिल्लाते थे। कुछ क्षणमें होश आया तो मैंने अपनेको एक डालीपर पड़ा पाया। जहाँसे मैं गिरा था, उससे लगभग दस हाथ नीचे वह डाली थी, किंतु सीधमें नहीं, एक ओर हटकर थी। मैं उसपर कैसे पहुँच गया, यह श्रीहनुमानजी ही जानते हैं। मुझे कोई चोट नहीं आयी थी। वहाँसे मैं सरलतापूर्वक नीचे उतर आया।

—शम्भुशरणप्रसादजी

(९)

प्रार्थनाका चमत्कार

मेरे श्वशुरके स्वर्गवासके पश्चात् मेरे पति तथा जेठजीमें मनमुटाव रहने लगा। एक दिन दोनों भाइयोंमें कुछ कहा-सुनी हो गयी। मेरे पतिने माताजी (मेरी सास)-से घर छोड़कर अन्यत्र चलकर रहनेका आग्रह किया। माताजी बोलीं—'तुम्हें जहाँ जाना हो, जाओ! मैं घर छोड़कर कहीं नहीं जाती।'

यह बात उन्हें इतनी बुरी लगी कि वे जैसे खड़े थे, वैसे ही चल दिये। मुझसे उन्होंने एक बाततक भी न की। मुझे जब पता लगा कि वे अपने कार्यालय नहीं गये, तब मेरी आँखोंके सामने अन्धकार छा गया। उनके मित्र दौड़-धूप करने लगे, किन्तु उनका कहीं कुछ पता न लगा।

मुझे बुरी तरह रोना आ रहा था। श्रीहनुमानजीकी मूर्तिके सम्मुख बैठकर मैंने—

दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥

—यह टेर लगायी और 'हरे राम' महामन्त्रका जप करने लगी। मैं छत्तीस घंटेतक प्रभुके सामने पड़ी रही। उस दयाधामको छोड़कर अब मेरा कोई सहारा नहीं था। मेरे बच्चे छोटे-छोटे थे। मैं थक जाती, गिर जाती और फिर उठकर वही रट लगाती थी। मैंने अन्न-जल छोड़ दिया था।

करुणासागर प्रभुने मुझ अबलाकी पुकार सुन ली। छत्तीस घंटे बाद हरद्वारसे पतिदेवका तार आया कि 'वे आ रहे हैं।' तब मैंने जलपान किया।

श्रीहनुमानजीकी कृपा देखिये। पतिदेवको लक्सर स्टेशनपर एक बूढ़े सरदारजी मिले। उन्होंने इनको उदास देखकर पूछा और स्वयं अपना संदेह प्रकट किया—'लगता है कि तुम घरसे भागकर-झगड़कर आये हो। तुम्हारे पास कोई भी सामान क्यों नहीं है?'

पतिदेवको सच बात बतलानी पड़ी। वे सरदारजी इन्हें हरद्वार ले गये, गङ्गा-स्नान कराया तथा उन्होंने ही तार भिजवाया था। उन्होंने ही मार्गव्यय देकर इन्हें घर भेजा। घर आकर पतिदेवने सरदारजीका रुपया वापस भेज दिया। सरदारजी प्रभुकी प्रेरणासे ही मिले और श्रीहनुमानजीने ही यह कृपा की, इसमें सन्देहका स्थान ही नहीं है।

—श्रीमती केशीदेवी

(१०)

श्रीहनुमानजीने पुकार सुनी

एक बार किसी जिलेके एक उच्चाधिकारी महोदय तीर्थयात्राके उद्देश्यसे श्रीचित्रकूट स्टेशनपर उतरे। ताँगा या किसी सवारीके अभावमें उन्होंने सोचा कि पहले सवारियोंके साधन न होनेपर लोग पैदल ही

तीर्थयात्रा करते थे, तब हम भी पैदल क्यों न चलें। बच्चोंको दो मजदूरोंने लिया और अधिकारी महोदयकी धर्मपत्नीने एक बच्चेको स्वयं अपनी गोदमें लेकर प्रस्थान किया। वहाँसे चलकर पयस्विनीजीके तटपर पहुँचनेपर अधिकारी महोदयने कहा कि 'पहले मैं स्नान कर लूँ, फिर और लोगोंको स्नान करा दूँगा।' वे चले गये। श्रीमतीजीने सोचा कि 'मैं भी नहा लूँ' और छोटे बच्चेको लेकर वे भी स्नानके लिये चलीं। बच्चेको किनारेपर बैठाकर वे गंगाजीमें स्नान करने लगीं। वे स्नान करनेमें तन्मय हो गयीं। बच्चेका ध्यान नहीं रहा। इसी समय वह किनारेपर बैठा हुआ बच्चा नदीमें खिसक गया। बच्चेका ध्यान आते ही देखा तो वह जहाँ बैठा था वहाँ नहीं दिखायी दिया। अब तो वे बड़े जोरसे रोने-चिल्लाने लगीं। मजदूर भी दौड़े, अधिकारी महोदयने सुना तो वे भी दौड़े। बच्चेको ढूँढ़ा, पर कहीं पता न लगा।

इधर माता जब बच्चेके लिये बेचैन होकर रो रही थीं, तभी उनका ध्यान श्रीभगवान्‌की कृपा-सुधाकी ओर गया। उन्होंने रोते-रोते ही कहा—'भगवन्! चित्रकूट आनेपर तो दुःख दूर होते हैं, मुझे यह महान् दुःख क्यों मिला?' उनका विलाप बढ़ता ही गया। वे जोरसे रोकर हाथ उठाकर कहने लगीं—'हे हनुमानजी! तुम्हें श्रीरामजीकी दुहाई है, मेरे लड़केको ढूँढ़कर तुरंत ला दो।' इस करुण प्रार्थनाको सुनकर एक मोटा-ताजा बंदर पासके वृक्षसे गंगाजीमें कूद पड़ा और उसने कुछ ही देरमें बच्चेका हाथ पकड़कर लाकर किनारेपर बैठा दिया। उस बंदरको केवल उन श्रीमान् अधिकारी महोदय, श्रीमतीजी तथा पासके सज्जनोंने ही देखा, किंतु उसी समय वह बंदर अदृश्य हो गया।

उन दोनोंके हर्षका पार न रहा। उन्होंने बच्चेके मिलनेकी प्रसन्नतामें चित्रकूटकी अपार महिमाका वर्णन किया। बच्चों तथा बंदरोंको मिठाई बाँटी गयी, तत्पश्चात् वे चित्रकूटजीकी परिक्रमा करके अपने पूर्व निश्चित स्थानपर चले गये।

मैं भी उस समय गंगाजीमें स्नान कर रहा था, किंतु वहाँसे पर्याप्त दूर था। इसलिये मैं उस बंदरको न देख पाया। —रामेश्वरप्रसादजी गुप्त

पञ्चमुख पवनकुमारका ध्यान

पूर्वं तु वानरं वक्त्रं कोटिसूर्यसमप्रभम्। दंष्ट्राकरालवदनं भृकुटीकुटिलेक्षणम्॥ १॥
अस्यैव दक्षिणं वक्त्रं नारसिंहं महाद्भुतम्। अत्युग्रतेजोवपुषं भीषणं भयनाशनम्॥ २॥
पश्चिमं गारुडं वक्त्रं वक्रतुण्डं महाबलम्। सर्वनागप्रशमनं विषभूतादिकृन्तनम्॥ ३॥
उत्तरं सौकरं वक्त्रं कृष्णं दीप्तं नभोपमम्। पातालसिंहवेतालज्वररोगादिकृन्तनम्॥ ४॥
ऊर्ध्वं हयाननं घोरं दानवान्तकरं परम्। येन वक्त्रेण विप्रेन्द्र तारकाख्यं महासुरम्॥ ५॥
जघान शरणं तत् स्यात् सर्वशत्रुहरं परम्॥ ५ १/२॥ (मन्त्रमहार्णव)

(पञ्चमुख श्रीहनुमानजीका) पूर्वकी ओरका मुख वानरका है, उसकी प्रभा करोड़ों सूर्योंके तुल्य है। वह विकराल दाढ़ोंसे युक्त है और उसकी भृकुटियाँ चढ़ी हुई हैं॥ १॥ इन्हींका दक्षिणकी ओरवाला मुख नृसिंह-भगवान्‌का है, यह महान् अद्भुत, अत्यन्त उग्र तेजसे युक्त, भयावह और (शरणागतोंके लिये) भयनाशक है॥ २॥ इनका पश्चिम दिशावाला मुख गरुड़का है, इसकी चोंच टेढ़ी और अत्यन्त पुष्ट है। यह सभी नागोंको परास्त करनेवाला तथा विष एवं भूत-प्रेत आदिका उच्छेदक है॥ ३॥ इनका उत्तरकी ओरका मुख सूकरका है, यह दीप्तिमान्, आकाशके सदृश कृष्णवर्ण तथा पातालचारी जीवों, सिंह, वेताल एवं ज्वर आदि रोगोंका विदारक है॥ ४॥ इनका ऊपरकी ओर उठा हुआ (पाँचवाँ) मुख घोड़ेका है, यह अत्यन्त भयानक और राक्षसोंका संहारक है। विप्रवर! जिस मुखके द्वारा हनुमानजीने तारक नामक महादैत्यका वध किया था, वह समस्त शत्रुओंका विघातक एवं सर्वोत्कृष्ट मुख (भक्तोंके लिये) रक्षक हो॥ ५ १/२॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

सीतारामपदाम्बुजे मधुपवद् यन्मानसं लीयते सीतारामगुणावली निशि दिवा यज्जिह्वया पीयते॥
सीतारामविचित्ररूपमनिशं यच्चक्षुषोर्भूषणं सीतारामसुनामधामनिरतं तं मारुतिं सम्भजे॥

(श्रीरामायणरसायन)

वर्ष ४९ | गोरखपुर, सौर चैत्र, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०१, मार्च १९७५ | संख्या ३, पूर्ण संख्या ५८०

संकीर्तन-प्रेमी श्रीहनुमान

ध्यानमग्न हनुमान नाचते-गाते राम नाम अविराम।
जय सियाराम, जय सियाराम, जय सियाराम, जय सियाराम॥
जय रघुनायक, जय सुखदायक, जय वरदायक, जय सियाराम।
जय सियाराम, जय सियाराम, जय सियाराम, जय सियाराम॥

श्रीहनुमद्व्रत-पूजा-पद्धति

(अनुवादक—साहित्याचार्य पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको हनुमद्व्रत होता है। इसे आरम्भ करनेवाले पुरुषको आचारके अनुसार पहले पम्पा-पूजा करनी चाहिये। उसके लिये इस प्रकार संकल्प करे—देश-काल कीर्तनके पश्चात् अमुक गोत्र, अमुक शर्मा (वर्मा गुप्त वा) **विशिष्टाचारपरम्पराप्राप्तां पम्पापूजां यथाशक्तिद्रव्यैः करिष्ये।**

इस प्रकार संकल्प कर व्रत आरम्भ करनेवाला उपासक मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशीको ही शौच-संतोष आदि नियमोंके पालनपूर्वक ब्रह्मचारी एवं जितेन्द्रिय रहकर अच्छी तरह रात्रि व्यतीत करे। फिर प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर वह सम्पूर्ण पदार्थों एवं कर्तव्योंकी देखभाल करे। इस विषयमें सूत और शौनकका संवाद इस प्रकार है—

शौनक आदि ऋषियोंने पूछा—'सूतजी! हनुमद्व्रतका संकल्प करनेकी इच्छावाले लोग पूछा करते हैं कि किस स्थानपर इस व्रतका सम्यक् प्रकारसे अनुष्ठान करना चाहिये। आप यह व्रत बताइये। वह व्रत क्या है? पूर्वजोंने उस अद्भुत व्रतका अनुष्ठान कहाँ किया है?

व्रतके लिये व्रज और वृन्दावन आदि बहुत-से स्थान हैं। बावड़ियाँ, कुएँ, पोखरे, नहरें या छोटी नदियाँ, कृत्रिम और विस्तृत नदियाँ तथा नद, समुद्र आदि, पर्वत, सरिताएँ, वृक्ष—ये बहुत-से स्थान हैं। इनपर विचार कर आप हमारे लिये स्थानका निर्णय करें; क्योंकि आप समस्त वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं।'

सूतजी बोले—महाभाग महर्षिगण! आपलोगोंने बहुत अच्छी बात पूछी है। मैं इस विषयका सम्यक्रूपसे प्रतिपादन करता हूँ। बहुत-से ऐसे पवित्र देश एवं स्थान हैं, जो पुण्यकी वृद्धि करनेवाले हैं तथापि मुनीश्वरो! जो सबसे गोपनीय स्थान है, उसे मैं बताता हूँ। आप सब लोग सुनें।

'पहले पम्पा नदीके तटपर हनुमानजीकी पूजा की गयी थी। इसलिये उसीके तटपर हनुमद्व्रत किया जाय तो सर्वोत्तम है। विभिन्न देशोंमें रहनेवाले लोगोंको पहले यत्नपूर्वक पम्पाका आवाहन-पूजन करना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर शौच आदिसे निवृत्त हो आलस्य छोड़कर नित्यकर्म करे। तत्पश्चात् योगक्षेमके कार्यमें लगे। पाँच बाजोंके साथ अपने भाई-बन्धुओंसे घिरकर उस स्थानके आसपासकी किसी नदीके तटपर जाय। वहाँ मौन होकर स्नान करे। अघमर्षण मन्त्रोंके पाठसे अपनेको शुद्ध करे और एकाग्रचित्त हो जाय। तदनन्तर संध्या-वन्दनपूर्वक नित्यकर्म पूरा करे। फिर यत्नपूर्वक पितरोंका तर्पण कर ललाटमें उज्ज्वल तिलक लगाये। तत्पश्चात् व्रती पुरुष पम्पाकी पूजाके लिये सब ओरसे सोलह उपचारोंका संग्रह करे। फिर इस प्रकार पूजा आरम्भ करे—

आवाहन

हेमकूटगिरिप्रान्तजनानां गिरिसानुगाम्।
पम्पामावाहयाम्यस्यां नद्यां हृद्यां प्रयत्नतः॥

हेमकूटगिरिके प्रान्तमें रहनेवाले लोगोंकी आदरणीया, गिरिशिखर-गामिनी, मनोरम पम्पानदी (या पुष्करिणी*)-का मैं इस नदीमें प्रयत्नपूर्वक आवाहन करता हूँ।

आसनसमर्पण

तरंगशतकल्लोले रिङ्गत्तामरसोज्ज्वले।
पम्पानदि नमस्तुभ्यं गृहाणासनमुत्तमम्॥

सैकड़ों तरंगोंके साथ कल्लोल करनेवाली तथा हिलते हुए कमलसमूहोंसे सुशोभित पम्पे! तुम्हें नमस्कार है। तुम यह उत्तम आसन ग्रहण करो।

पाद्य

हृद्यं सुगन्धसम्पन्नं शुद्धं शुद्धाम्बुसत्कृतम्।
पाद्यं गृहाण पम्पाख्ये महानदि नमोऽस्तु ते॥

पम्पा-नामवाली महानदी! तुम्हें नमस्कार है। यह मनोरम, सुगन्धयुक्त, शुद्ध एवं स्वच्छ जल पाद्यके रूपमें सत्कारपूर्वक समर्पित है। तुम इसे ग्रहण करो।

अर्घ्य

भागीरथि नमस्तुभ्यं सलिलेन सुशोभने।
अनर्घ्यमर्घ्यमनघे गृह्यतामिदमुत्तमम्॥

* श्रीमद्वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, रघुवंश एवं कोशादिमें पम्पाका पुष्करिणी तथा नदी—दोनों रूपोंमें वर्णन प्राप्त होता है।

पम्पे! तुम भागीरथीस्वरूपा हो। तुम्हें नमस्कार है। स्वच्छ सलिलसे सुशोभित होनेवाली निष्पाप नदी! तुम इस बहुमूल्य उत्तम अर्घ्यको स्वीकार करो।

आचमनीय

पम्पानदि महापुण्ये सम्पादितसुशोभने।
गोदावरीजलेनाद्य गृहाणाचमनीयकम्॥

महापुण्यमयी पम्पानदी! तुम परम कल्याण सम्पादित करनेवाली हो। आज गोदावरीके जलसे दिया गया यह आचमनीय स्वीकार करो।

पञ्चामृतस्नान

दुग्धाऽऽज्येक्षुरसैः पुण्यैर्दध्ना च मधुना तथा।
पञ्चामृतैः स्नापयिष्ये पम्पानदि नमोऽस्तु ते॥

पम्पानदि! तुम्हें नमस्कार है। मैं पवित्र दूध, घी, इक्षुरस, दही और मधु—इन पञ्चामृतोंद्वारा तुम्हें स्नान कराता हूँ।

शुद्धोदकस्नान

शुद्धनीलैः शुद्धजलैर्नारिकेलाम्बुभिस्तथा।
पुण्यैः कृष्णानदीतोयैः सिञ्चामि त्वां सरिद्वरे॥

सरिताओंमें श्रेष्ठ पम्पे! मैं तुम्हें शुद्ध, नील एवं स्वच्छ जलसे, नारियलके पानीसे तथा कृष्णानदीके पवित्र जलसे अभिषिक्त करता हूँ।

वस्त्र

महामूल्यं च कार्पासं दिव्यवस्त्रमनुत्तमम्।
पम्पानदि महापुण्ये पम्पाशोभातिशोभने॥

महापुण्यमयी पम्पानदी! तुम पम्पासरोवरकी शोभासे अत्यन्त शोभायमान हो। मैं तुम्हें कपासका बना हुआ बहुमूल्य एवं परम उत्तम दिव्य वस्त्र समर्पित करता हूँ।

यज्ञोपवीत

श्रौतस्मार्तादिसत्कर्मफलदं पावनं शुभम्।
यज्ञोपवीतमधुना कल्पये सरिदुत्तमे॥

सरिताओंमें श्रेष्ठ पम्पे! अब मैं तुम्हारे लिये यज्ञोपवीत प्रस्तुत करता हूँ, जो श्रौत, स्मार्त आदि सत्कर्मोंका फल प्रदान करनेवाला, पावन एवं शुभ है।

गन्ध

कर्पूरगुटिकामिश्रं कस्तूर्या च विमर्दितम्।
यत्नेन कल्पितं गन्धं लेपयेऽङ्गं सरिद्वरे॥

सरिद्वरे पम्पे! कर्पूरके डलेसे मिश्रित तथा कस्तूरीसे विमर्दित यह गन्ध बड़े यत्नसे तैयार किया गया है। मैं तुम्हारे अङ्गमें इसका लेपन करता हूँ।

अक्षत

लक्षणोक्तान् हरिद्राक्तानक्षतांश्चोत्तमाञ्छुभान्।
पम्पानदि गृहाणेमाञ्छुभशोभातिवृद्धये॥

पम्पानदि! ये उत्तम एवं शुभ अक्षत शास्त्रोक्त लक्षणोंसे युक्त तथा हल्दीमें रँगे हुए हैं। तुम इन्हें अपनी शुभ शोभाकी अतिशय वृद्धिके लिये स्वीकार करो।

कुङ्कुम

अतसीकुसुमोपेतं पङ्करुहदलोज्ज्वलम्।
कुङ्कुमं शंकरजटासम्भूते सरिदर्पये॥

भगवान् शंकरकी जटासे प्रकट हुई नदी! तीसीके फूलसे युक्त तथा कमलदलसे प्रकाशमान यह कुङ्कुम तुम्हें अर्पित करता हूँ।

नेत्राञ्जन

कज्जलं त्रिजगद्वन्द्यं महापुण्यतरङ्गिणि।
नेत्रयोः पालमनघं गृह्यतां सरितां वरे॥

तीनों लोकोंकी वन्दनीया महापुण्यमयी तरंगिणी! सरिताओंमें श्रेष्ठ पम्पे! यह नेत्रोंमें लगानेयोग्य निर्दोष कज्जल ग्रहण करो।

पुष्प

शतपत्रैश्च कह्लारैः कुमुदैर्बकुलैरपि।
मल्लिकाजातिपुन्नागैः केवलैश्चापि चम्पकैः॥
तुलसीदामभिश्चापि तथा बिल्वदलैरपि।
पूजयामि महापुण्ये पम्पानदि नमोऽस्तु ते॥

परम पुण्यमयी पम्पानदी! तुम्हें नमस्कार है। मैं कमल, कह्लार, कुमुद, बकुल, मल्लिका, जाती, पुन्नाग, केवड़ा, चम्पा और तुलसीकी माला तथा बेलपत्रोंद्वारा तुम्हारी पूजा करता हूँ।

अङ्गपूजा

गोदावर्यै नमः, पादौ पूजयामि। कृष्णायै नमः, गुल्फौ पूजयामि। पापहारिण्यै नमः, जङ्घे पूजयामि। सुभ्रुवे नमः, जानुनी पूजयामि। उरुतरङ्गिण्यै नमः, ऊरू पूजयामि। तडिदुज्ज्वलजवायै नमः, कटिं पूजयामि। अम्बुशोभिन्यै नमः, नितम्बं पूजयामि। अणुमध्यायै नमः, मध्यं पूजयामि। सुस्तनायै नमः, स्तनौ पूजयामि। कम्बुकण्ठायै नमः, कण्ठं पूजयामि। ललितबाहुतरङ्गायै नमः, बाहू पूजयामि। दीर्घवेण्यै नमः, वेणीं पूजयामि। सुवक्त्रायै नमः, वक्त्रं पूजयामि। दुर्वारवारिपूरायै नमः, शिरः पूजयामि।

सहस्त्रमुखायै नमः, सर्वाङ्गं पूजयामि।

धूप

सदशाङ्गं शुभं दिव्यं सगुग्गुलमनुत्तमम्।
साज्यं परिमलोद्भूतं धूपं स्वीकुरु पावने॥

पावन नदी पम्पे! तुम घृतमिश्रित मनोहर गन्ध प्रकट करनेवाला यह धूप स्वीकार करो। इसमें दशाङ्ग और गुग्गुल पड़े हैं। यह शुभ, दिव्य और परम उत्तम है।

दीप

साज्यमग्निप्रकाशोद्यत्कोटिसूर्यसमद्युतिम्।
पश्य दीपं प्रसन्नाङ्गे पम्पानदि नमोऽस्तु ते॥

स्वच्छ अङ्गोंवाली पम्पानदी! तुम्हें नमस्कार है। तुम इस घृतपूरित दिव्य दीपको देखो। यह अग्निके प्रकाशसे युक्त हो उगते हुए करोड़ों सूर्योंके समान द्युति विखेर रहा है।

नैवेद्य

शाल्यन्नं स्वर्णपात्रस्थं शाकापूपसमन्वितम्।
साज्यं दधि पायसं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥

देवि! ये सोनेकी थालीमें रखे हुए अगहनी चावलके भात, शाक एवं पूए हैं। घी, दही और खीर भी है, तुम यह नैवेद्य ग्रहण करो।

ताम्बूल

पूगैः सुशोभनैश्चापि नागवल्लीदलैर्युतम्।
ताम्बूलं गृह्यतां देवि पम्पानदि नमोऽस्तु ते॥

देवि! सुन्दर सुपारी और नागवल्लीके दलोंसे युक्त यह ताम्बूल ग्रहण करो। पम्पानदी! तुम्हें नमस्कार है।

हनुमत्-व्रतको करनेवाले पुरुषोंको पम्पा नदीके लिये सुवर्णमय पुष्प अर्पित करना चाहिये। यह व्रत-पूर्तिजनित महान् यश, दिव्य स्फूर्ति और उत्तम कीर्तिको देनेवाला है।

प्रदक्षिणा

प्रदक्षिणत्रयं देवि प्रयत्नेन प्रकल्पितम्।
पश्याद्य पावने देवि पम्पानदि नमोऽस्तु ते॥

देवि! पावन पम्पानदी! आज मैंने यत्नपूर्वक तीन बार तुम्हारी परिक्रमा की है। इसे देखो और स्वीकार करो। तुम्हें नमस्कार है।

नमस्कार

नमस्ते नमस्ते विशालोज्ज्वलाङ्गे नमस्ते नमस्ते लसत्सत्तरङ्गे।
नमस्ते नमस्ते गिरिप्रान्तरङ्गे नमस्ते नमस्ते कलद्बर्हिरङ्गे॥

विशाल उज्ज्वल अङ्गवाली देवि! तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है। सुशोभित सुन्दर तरंगवाली पम्पे! तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है। पर्वत-प्रान्तमें क्रीडा करनेवाली सरिद्वरे! तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है। अपने अङ्ग अर्थात् तटभूमिपर विचरते हुए मयूरोंकी शोभासे सम्पन्न पम्पे! तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।

क्षमापन

अपराधशतं देवि मत्कृतं च दिने दिने।
क्षम्यतां पावने देवि पम्पानदि नमोऽस्तु ते॥

पावन पम्पानदीरूपी देवि! तुम्हें नमस्कार है। देवि! दिन-दिन मेरेद्वारा जो सैकड़ों अपराध हुए हैं, आप उन्हें क्षमा करें।

प्रार्थना

पम्पानदि महापुण्य तरङ्गिणि नमोऽस्तु ते।
त्वत्तीरे हनुमत्पूजा कृता रामेण धीमता॥
मनोरथफलावाप्तिस्तस्याभीष्टं न संशयः।
सुग्रीवेण च तीरेऽस्मिन् कपिवर्यपतेर्व्रतम्॥
सत्कृतं च मनोवाञ्छा सद्यस्तस्य बभूव सा।
अतस्त्वन्नीरपुलिने कृते हनुमतो व्रते॥
श्रेयांसि मम सर्वाणि निर्विघ्नानि भवन्त्विह।

परम पुण्यमय तरंगोंसे सुशोभित पम्पानदी! तुम्हें नमस्कार है। बुद्धिमान् श्रीरामने तुम्हारे तटपर हनुमानजीकी पूजा की थी। उन्हें मनोवाञ्छित फल प्राप्त हुआ। उनका अभीष्ट सिद्ध हो गया, इसमें संशय नहीं। सुग्रीवने भी तुम्हारे कूलपर कपिवर्यपति हनुमानजीका व्रत किया, इससे उनकी भी मनोवाञ्छा तत्काल सफल हुई। अतः तुम्हारे नीरके पुलिनपर हनुमानजीका व्रत करनेके कारण मेरे भी सम्पूर्ण श्रेय यहाँ निर्विघ्न सिद्ध हों।

इस प्रकार पम्पा नामक शुभ नदीकी प्रार्थना करके हाथमें कलशका जल ले आदरपूर्वक अपने घरको जाय।

इस प्रकार पम्पाकी पूजा पूरी हुई। इसके बाद श्रीहनुमानजीकी पूजा करनी चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है—

पहले निम्नाङ्कित वाक्य बोलकर संकल्प करे। देश-कालके उच्चारणके बाद **अमुकगोत्रोऽहं मया आचरितस्य व्रतस्य आचर्यमाणस्य च व्रतस्य सम्पूर्णफलावाप्त्यर्थं भार्यया सह हनुमत्पूजां करिष्ये।**

संकल्पके बाद प्रधानपूजाके अङ्गरूपसे

'**ॐ श्रीगणेशाय नमः**' इस मन्त्रसे गणेशजीका पूजन करके भूशुद्धि और भूतशुद्धि करे। तत्पश्चात् कलशकी पूजा करके पीठ-पूजा करे। पीठके अधोभागमें क्रमशः '**अतलाय नमः, वितलाय नमः, सुतलाय नमः, रसातलाय नमः, तलातलाय नमः, महातलाय नमः, पातालाय नमः**'— इस प्रकार सात पातालोंकी पूजा करके पीठपर— '**शब्दात्मने नमः**' इस मन्त्रसे सब ओर पूजन करे। पीठगत कमलके ऊपर '**कमठाय नमः**' से कमठकी पूजा करे। उसके ऊपर—'**सहस्रमणिमत्फणाभिः प्रकाशमानाय शेषाय नमः।**' इस मन्त्रसे शेषकी पूजा करे। फिर आठ दिशाओंमें '**अष्टदिग्गजेभ्यो नमः**' इस मन्त्रसे दिग्गजोंकी पूजा करे। दिग्गजोंके ऊपर भूमण्डलकी भावना करके '**भूमण्डलाय नमः**' इस मन्त्रसे भूमण्डलकी पूजा करे। उसके ऊपर-ऊपर क्रमशः '**भूलोकाय नमः, भुवर्लोकाय नमः, स्वर्लोकाय नमः, जनलोकाय नमः, तपोलोकाय नमः, महर्लोकाय नमः, सत्यलोकाय नमः**'— इन मन्त्रोंसे सात लोकोंकी पूजा करके '**अष्टदिक्पालेभ्यो नमः**' का उच्चारण कर दिक्पालोंकी पूजा करे। भूमण्डलके मध्य भागमें '**मेरवे नमः**' इस मन्त्रसे मेरुकी पूजा करे।

मेरुके दक्षिण भागमें द्रोणशैलकी[१], उसके मध्यभागमें कल्पवृक्षकी[२], उसके मूलभागमें सुवर्ण वेदिकाकी[३], वेदीपर वृक्षके पूर्वभागमें '**नवरत्नखचितचारुरत्नपीठाय नमः**' इस मन्त्रसे रत्नपीठकी पूजा करे।

इस प्रकार पूजन कर पाँच रंगोंसे स्वस्तिक, शङ्ख, कमल तथा रंगवल्ली अङ्कित करके इनके मध्यमें तेरह दलोंका कमल लिखे। उसके ऊपर श्वेत चावल रखकर चावलके ऊपर कलश स्थापित करे। उस कलशको शुद्ध जलसे भरे। उसके ऊपर पीताम्बर रखे। पीताम्बरपर पुनः त्रयोदशदल कमल अङ्कित करे। उन दलोंमें '**ॐ नमो भगवते वायुनन्दनाय**'—इस तेरह अक्षरवाले मन्त्रके वर्णबीजोंका पूर्वादिक्रमसे उल्लेख करे। फिर तेरह गाँठवाला डोरा, जो हल्दीमें रँगा हुआ हो, उस कमलपर स्थापित करे। तत्पश्चात् प्राणायाम करके अन्तःकरणको शुद्ध कर उत्तराभिमुख बैठे। फिर सीतासहित श्रीरामचन्द्रजीका ध्यानादि मानसपूजन करके श्रीहनुमानजीका आवाहन करे।

आवाहन

श्रीहनुमतः प्राणा इह प्राणा हनुमतो जीव इह स्थितः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणपाणिपाद-पायूपस्थानि हनुमत इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा॥

श्रीरामचरणाम्भोजयुगलस्थिरमानसम्।
आवाहयामि वरदं हनुमन्तमभीष्टदम्॥

भगवान् श्रीरामके युगलचरणारविन्दोंमें स्थिरभावसे मनको लगाये रखनेवाले, अभीष्टदाता एवं वरदायक हनुमानजीका मैं आवाहन करता हूँ।

आवाहनं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

ध्यान

कर्णिकारसुवर्णाभं वर्णनीयं गुणोत्तमम्।
अर्णवोल्लङ्घनोद्युक्तं तूर्णं ध्यायामि मारुतिम्॥

कनेरके फूल और सुवर्णके समान जिनकी अङ्गकान्ति है, जिनमें वर्णनीय (प्रशंसनीय) उत्तम गुण विद्यमान हैं तथा जो समुद्रको लाँघ जानेके लिये उद्यत हैं, उन शीघ्रगामी पवननन्दन हनुमानजीका मैं ध्यान करता हूँ।

ध्यानं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

आसन

नवरत्नमयं दिव्यं चतुरस्रमनुत्तमम्।
सौवर्णमासनं तुभ्यं कल्पये कपिनायक॥

कपिनायक हनुमानजी! मैं आपके लिये सोनेका सिंहासन प्रस्तुत करता हूँ, जिसमें नौ प्रकारके रत्न जटित हैं तथा जो दिव्य, चौकोर और अत्यन्त उत्तम है।

आसनं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

पाद्य

सुवर्णकलशानीतं सुष्ठु वासितमादरात्।
पादयोः पाद्यमनघ प्रतिगृह्ण प्रसीद मे॥

निष्पाप पवनपुत्र! मैं आपके चरणोंमें पाद्य-जल अर्पित करता हूँ, जो सोनेके कलशमें लाया गया है और जिसे आदरपूर्वक सुवासित किया गया है। आप इसे ग्रहण कीजिये और मुझपर प्रसन्न होइये।

पाद्यं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

अर्घ्य

कुसुमाक्षतसम्मिश्रं गृह्यतां कपिपुङ्गव।
दास्यामि तेऽञ्जनीपुत्र स्वमर्घ्यं रत्नसंयुतम्॥

कपिप्रवर अञ्जनीनन्दन! मैं आपको फूल, अक्षत और रत्नोंसे युक्त अर्घ्य दे रहा हूँ। आप इसे स्वीकार करें।

अर्घ्यं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

मन्त्र—१. द्रोणशैलाय नमः। २. कल्पवृक्षाय नमः। ३. सुवर्णवेदिकायै नमः।

आचमन

महाराक्षसदर्पघ्न सुराधिपसुपूजित।
विमलं शमलघ्न त्वं गृहाणाचमनीयकम्॥

बड़े-बड़े राक्षसोंका दर्प चूर्ण करनेवाले देवेन्द्रपूजित हनुमानजी! आप पापका नाश करनेवाले हैं। इस निर्मल आचमनीय जलको ग्रहण करें।

आचमनं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

पञ्चामृतस्नान

मध्वाज्यक्षीरदधिभिः सगुडैर्मन्त्रसंयुतैः।
पञ्चामृतैः पृथक् स्नानैः सिञ्चामि त्वां कपीश्वर॥

कपीश्वर! मैं मधु, घी, दूध, दही और गुड़—इन पाँच मन्त्रयुक्त अमृतोंद्वारा आपको पृथक्-पृथक् स्नान कराता हूँ।

पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

शुद्धोदकस्नान

सुवर्णकलशानीतैर्गङ्गादिसरिदुद्भवैः।
शुद्धोदकैः कपीश त्वामभिषिञ्चामि मारुते॥

कपिराज वायुनन्दन! सोनेके कलशमें लाये हुए गङ्गा आदि नदियोंके शुद्ध जलसे मैं आपका अभिषेक करता हूँ।

शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

मौञ्जीमेखला

ग्रथितां नवभी रत्नैर्मेखलां त्रिगुणीकृताम्।
मौञ्जीं मुञ्जमयीं पीतां गृहाण पवनात्मज॥

पवनकुमार! यह मूँजकी बनी हुई त्रिगुणित एवं पीतवर्णकी मौञ्जी-मेखला, जिसमें नवरत्न गुँथे हुए हैं, आपको अर्पित है, इसे ग्रहण कीजिये।

मौञ्जीमेखलां समर्पयामि श्रीहनुमते नमः।

कटिसूत्र एवं कौपीन

कटिसूत्रं गृहाणेदं कौपीनं ब्रह्मचारिणः।
कौशेयं कपिशार्दूल हरिद्राक्तं सुमङ्गलम्॥

कपिसिंह! ब्रह्मचारीके लिये उपयोगी यह कटिसूत्र तथा रेशमी कौपीन, जो हल्दीमें रँगा हुआ है, ग्रहण कीजिये, यह परम मङ्गलमय है।

कटिसूत्रं एवं कौपीनं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

उत्तरीय

पीताम्बरं सुवर्णाभमुत्तरीयार्थमेव च।
दास्यामि जानकीप्राणत्राणकारण गृह्यताम्॥

जानकीके प्राणोंकी रक्षा करनेवाले श्रीहनुमानजी! मैं उत्तरीयके लिये आपको यह सुनहरा पीताम्बर दे रहा हूँ। आप इसे स्वीकार कीजिये।

उत्तरीयं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

यज्ञोपवीत

श्रौतस्मार्त्तादिकर्तॄणां साङ्गोपाङ्गफलप्रदम्।
यज्ञोपवीतमनघं धारयानिलनन्दन॥

वायुनन्दन! जो श्रौत-स्मार्त्त आदि कर्म करनेवालोंके लिये साङ्गोपाङ्ग फल देनेवाला तथा पाप-दोषसे रहित है, उस यज्ञोपवीतको धारण कीजिये।

यज्ञोपवीतं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

गन्ध

दिव्यकर्पूरसंयुक्तं मृगनाभिसमन्वितम्।
सकुङ्कुमं पीतगन्धं ललाटे धारय प्रभो॥

प्रभो! जो दिव्यकर्पूरसे युक्त, कस्तूरीमिश्रित तथा कुङ्कुमविशिष्ट है, उस पीले रंगके गन्ध अथवा चन्दनको आप अपने ललाटमें धारण कीजिये।

गन्धं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

अक्षत

हरिद्राक्तानक्षतांस्त्वं कुङ्कुमद्रव्यमिश्रितान्।
धारय श्रीगन्धमध्ये शुभशोभनवृद्धये॥

प्रभो! हल्दीसे रँगे हुए कुङ्कुममिश्रित इन अक्षतोंको गन्ध या चन्दनके बीचमें सुन्दर शोभाकी वृद्धिके लिये धारण कीजिये।

अक्षतान् समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

पुष्प

नीलोत्पलैः कोकनदैः कह्लारैः कमलैरपि।
कुमुदैः पुण्डरीकैस्त्वां पूजयामि कपीश्वर॥
मल्लिकाजातिपुष्पैश्च पाटलैः कुटजैरपि।
केतकीबकुलैश्चूतैः पुन्नागैर्नागकेसरैः॥
चम्पकैः शतपत्रैश्च करवीरैर्मनोहरैः।
पूजये त्वां कपिश्रेष्ठ सबिल्वैस्तुलसीदलैः॥

कपीश्वर! कपिश्रेष्ठ! मैं नील उत्पल, कोकनद, कह्लार, कमल, कुमुद और पुण्डरीक पुष्पोंसे आपकी पूजा करता हूँ। मल्लिका, जाती, पाटल, कुटज, केतकी, बकुल, आम्र, पुन्नाग, नागकेसर, चम्पा, शतदल और करवीर आदि मनोहर पुष्पोंसे तथा बिल्वपत्र और तुलसीदलोंसे आपकी अर्चना करता हूँ।

पुष्पाणि समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

ग्रन्थिपूजा

अञ्जनीसूनवे नमः, प्रथमग्रन्थिं पूजयामि। हनुमते नमः, द्वितीयग्रन्थिं पूजयामि। वायुपुत्राय नमः, तृतीयग्रन्थिं पूजयामि। महाबलाय नमः, चतुर्थग्रन्थिं पूजयामि। रामेष्टाय नमः, पञ्चमग्रन्थिं पूजयामि। फाल्गुनसखाय नमः, षष्ठग्रन्थिं पूजयामि। पिङ्गाक्षाय नमः, सप्तमग्रन्थिं पूजयामि। अमितविक्रमाय नमः, अष्टमग्रन्थिं पूजयामि। कपीश्वराय नमः, नवमग्रन्थिं पूजयामि। सीताशोकविनाशनाय नमः, दशमग्रन्थिं पूजयामि। लक्ष्मणप्राणदात्रे नमः, एकादशग्रन्थिं पूजयामि। दशग्रीवदर्पघ्नाय नमः, द्वादशग्रन्थिं पूजयामि। भविष्यद्ब्राह्मणे नमः, त्रयोदशग्रन्थिं पूजयामि।

अङ्गपूजा

हनुमते नमः, पादौ पूजयामि। सुग्रीवसखाय नमः, गुल्फौ पूजयामि। अङ्गदमित्राय नमः, जङ्घे पूजयामि। रामदासाय नमः, ऊरू पूजयामि। अक्षघ्नाय नमः, कटिं पूजयामि। लङ्कादहनाय नमः, बालं पूजयामि। राममणिदाय नमः, नाभिं पूजयामि। सागरोल्लङ्घनाय नमः, मध्यं पूजयामि। लङ्कामर्दनाय नमः, केशावलिं पूजयामि। संजीवनीहर्त्रे नमः, स्तनौ पूजयामि। सौमित्रिप्राणदाय नमः, वक्षः पूजयामि। कुण्ठितदशकण्ठाय नमः, कण्ठं पूजयामि। रामाभिषेककारिणे नमः, हस्तौ पूजयामि। मन्त्ररचितरामायणाय नमः, वक्त्रं पूजयामि। प्रसन्नवदनाय नमः, वदनं पूजयामि। पिङ्गनेत्राय नमः, नेत्रे पूजयामि। श्रुतिपारगाय नमः, श्रुतिं पूजयामि। ऊर्ध्वपुण्ड्रधारिणे नमः, कपोलं पूजयामि। मणिकण्ठमालिने नमः, शिरः पूजयामि। सर्वाभीष्टप्रदाय नमः, सर्वाङ्गं पूजयामि।

धूप

दिव्यं सगुग्गुलं साज्यं सदशाङ्गं सवह्निकम्।
गृहाण मारुते धूपं सुप्रियं घ्राणतर्पणम्॥

वायुनन्दन! घ्राणेन्द्रियको तृप्त करनेवाले इस अत्यन्त प्रिय धूपको आप ग्रहण करें। इसमें गुग्गुल, घी और दशाङ्गधूप मिलाया गया है। अग्निके साथ संयोग होनेसे यह दिव्य गन्ध प्रदान करता है।

धूपं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

दीप

घृतपूरितमुज्ज्वालं सितसूर्यसमप्रभम्।
अतुलं तव दास्यामि व्रतपूर्त्यै सुदीपकम्॥

यह सुन्दर दीप है, जो घृतसे पूरित है। इसकी लौ ऊपरकी ओर उठ रही है। यह श्वेत सूर्यके समान प्रकाश फैला रहा है। इसकी कहीं तुलना नहीं है। इसे मैं व्रतकी पूर्तिके लिये आपको दे रहा हूँ।

दीपं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

नैवेद्य

सशाकापूपसूपाद्यपायसानि च यत्नतः।
सक्षीरदधि साज्यं च सपूपं घृतपाचितम्॥

प्रभो! यह नैवेद्य घीमें पकाकर तैयार किया गया है। इसके साथ खीर, दही, घी और अपूप भी है। इतना ही नहीं, मैंने यत्नपूर्वक साग, पूआ, दाल और पायस भी इनके साथ प्रस्तुत किये हैं। आप यह सब स्वीकार करें।

नैवेद्यं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

पानीय

गोदावरीजलं शुद्धं स्वर्णपात्राहृतं प्रियम्।
पानीयं पावनोद्भूतं स्वीकुरु त्वं दयानिधे॥

दयानिधे! यह गोदावरीका शुद्ध जल है, जिसे सोनेके पात्रमें लाया गया है। यह प्रिय पानीय पावन तीर्थमें प्रकट हुआ है। आप इसे स्वीकार करें।

पानीयं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

उत्तरापोशन

आपोशनं नमस्तेऽस्तु पापराशितृणानलम्।
कृष्णावेणीजलेनैव कुरुष्व पवनात्मज॥

पवनपुत्र! आपको नमस्कार है। यह उत्तरापोशन* जल आपको अर्पित है। यह पापराशिरूपी तृणको भस्म करनेके लिये अग्निके समान है। आप कृष्णावेणी नदीके जलसे उत्तरापोशन कीजिये।

उत्तरापोशनं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

हस्तप्रक्षालन

दिवाकरसुतानीतजलेन स्पृश गन्धिना।
हस्तप्रक्षालनार्थाय स्वीकुरुष्व दयानिधे॥

दयानिधे! यमुनाके द्वारा लाये हुए सुगन्धित जलका स्पर्श कीजिये। यह हाथ धोनेके लिये अर्पित किया गया है, कृपया इसे स्वीकार कीजिये।

हस्तौ प्रक्षालयितुं जलं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

शुद्धाचमनीय

रघुवीरपदन्यासस्थिरमानसमारुते।
कावेरीजलपूर्णेन स्वीकुर्वाचमनीयकम्॥

* भोजन करनेसे पूर्व तथा पश्चात् आचमन करनेको 'उत्तरापोशन' कहते हैं। ऐसा न करनेसे भोजन नंगा होता है।

रघुवीरके चरणन्यासमें मनको स्थिर रखनेवाले पवननन्दन! आप कावेरीके जलसे भरे हुए इस पात्रके द्वारा आचमनीय स्वीकार कीजिये।

शुद्धाचमनीयं जलं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः।

सुवर्णपुष्प

वायुपुत्र नमस्तुभ्यं पुष्पं सौवर्णकं प्रियम्।
पूजयिष्यामि ते मूर्ध्नि नवरत्नसमुज्ज्वलम्॥

वायुनन्दन! आपको नमस्कार है। आपके मस्तकपर नौ प्रकारके रत्नोंसे जगमगाते हुए इस प्रिय सुवर्ण-पुष्प या चम्पाके फूलको चढ़ाकर मैं पूजा करूँगा।

सुवर्णपुष्पं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

ताम्बूल

ताम्बूलमनघ स्वामिन् प्रयत्नेन प्रकल्पितम्।
अवलोकय नित्यं ते पुरतो रचितं मया॥

निष्पाप स्वामिन्! मैंने यत्नपूर्वक यह ताम्बूल तैयार किया है। आपके सामने ही इसका बीड़ा बनाया है। आप सदा इसपर दृष्टिपात कीजिये।

ताम्बूलं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

नीराजन

शतकोटिमहारत्नदिव्यसद्रत्नपात्रके।
नीराजनमिदं दृष्टेरतिथीकुरु मारुते॥

वायुनन्दन! शतकोटि महारत्नोंसे युक्त इस दिव्यरत्न-पात्रमें आपके लिये नीराजन (आरती) अर्पित है। आप इसपर दृष्टिपात कीजिये।

नीराजनं सम्पादयामि श्रीहनुमते नमः॥

पुष्पाञ्जलि

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥

(शुक्लयजुर्वेदसंहिता ७। २४)

पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

प्रदक्षिणा

पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव॥

प्रदक्षिणां समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

नमस्कार

नमस्तेऽस्तु महावीर नमस्ते वायुनन्दन।
विलोक्य कृपया नित्यं त्राहि मां भक्तवत्सल॥

महावीर! आपको नमस्कार है। वायुनन्दन! आपको प्रणाम है। भक्तवत्सल! कृपापूर्वक मेरी ओर देखकर सदा मेरी रक्षा कीजिये।

नमस्कारं समर्पयामि श्रीहनुमते नमः॥

दोरक-ग्रहण

ये पुत्रपौत्रादिसमस्तभाग्यं वाञ्छन्ति वायोस्तनयं प्रपूज्य।
त्रयोदशग्रन्थियुतं तदङ्कं बध्नन्ति हस्ते वरदोरसूत्रम्॥

जो लोग पुत्र-पौत्र आदि समस्त सौभाग्यकी इच्छा करते हैं, वे वायुपुत्र हनुमानजीकी पूजा करके तेरह ग्रन्थियोंसे युक्त श्रेष्ठ डोरेको अपने हाथमें बाँध लेते हैं।

दोरग्रहणं करोमि श्रीहनुमते नमः॥

पूर्वदोरकोत्तारण

अञ्जनीगर्भसम्भूत रामकार्यार्थसम्भव।
वरदोरकृता भासा रक्ष मां प्रतिवत्सरम्॥

अञ्जनीके गर्भसे उत्पन्न और श्रीरामके कार्यके लिये शरीर धारण करनेवाले हनुमानजी! श्रेष्ठ दोरक-ग्रहणके तेजसे आप प्रतिवर्ष मेरी रक्षा कीजिये।

पूर्वदोरकमुत्तारयामि श्रीहनुमते नमः।

प्रार्थना

अनेन भगवान् कार्यप्रतिपादकविग्रहः।
हनुमान् प्रीणितो भूत्वा प्रार्थितो हृदि तिष्ठतु॥

जिनका श्रीविग्रह सम्पूर्ण कार्योंका साधक है, वे भगवान् हनुमान इस पूजनसे प्रसन्न हो मेरी प्रार्थना सुनकर मेरे हृदयमें निवास करें।

प्रार्थनां करोमि श्रीहनुमते नमः॥

वायन-दान

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥

जिनके स्मरण और नाम-कीर्तनसे तप, यज्ञ और क्रिया आदिमें न्यूनताकी पूर्ति हो जाती है, उन अच्युतका मैं तत्काल वन्दन करता हूँ।

वायनं ददामि श्रीहनुमते नमः॥

वायन ग्रहण

ददाति प्रतिगृह्णाति हनूमानेव नः स्वयम्।
व्रतस्यास्य च पूर्त्यर्थं प्रतिगृह्णातु वायनम्॥

स्वयं हनुमानजी ही हम सबको देते और हमसे ग्रहण करते हैं। वे इस व्रत (हनुमद्व्रत)-की पूर्तिके लिये वायन ग्रहण करें।

वायनं प्रतिग्राहयामि श्रीहनुमते नमः॥

वीरविंशतिकाख्यं श्रीहनुमत्स्तोत्रम्

लाङ्गूलमृष्टवियदम्बुधिमध्यमार्ग-
मुत्प्लुत्य यान्तममरेन्द्रमुदो निदानम्।
आस्फालितस्वकभुजस्फुटिताद्रिकाण्डं
द्राङ्मैथिलीनयननन्दनमद्य वन्दे॥ १॥

जो अपनी पूँछसे स्वच्छ किये हुए आकाश तथा समुद्रके मध्यवर्ती मार्गपर उछलकर चलते समय इन्द्रके आनन्दका कारण हो रहे थे और आगेकी ओर फैलायी हुई जिनकी भुजाओंसे पर्वतखण्ड फूटते जाते थे, जानकीजीके नेत्रोंको शीघ्र ही आनन्द देनेवाले उन हनुमानजीकी आज मैं वन्दना करता हूँ॥ १॥

मध्येनिशाचरमहाभयदुर्विषह्यं
घोराद्भुतव्रतमियं यददश्चचार।
पत्ये तदस्य बहुधापरिणामदूतं
सीतापुरस्कृततनुं हनुमन्तमीडे॥ २॥

जानकीजीने पतिके लिये जो निशाचरोंके बीच अत्यन्त भयके कारण दु:सह, घोर एवं अद्भुत व्रत किया था, उसीके विविध फलस्वरूप दूत-वेषमें सीताके सम्मुख अपने शरीरको प्रकट किये हुए हनुमानजीकी मैं स्तुति करता हूँ॥ २॥

यः पादपङ्कजयुगं रघुनाथपत्न्या
नैराश्यरूषितविरक्तमपि स्वरागैः।
प्रागेव रागि विदधे बहु वन्दमानो
वन्देऽञ्जनाजनुषमेष विशेषतुष्ट्यै॥ ३॥

जिन्होंने श्रीरघुनाथ-पत्नी जानकीजीके दोनों चरणारविन्दोंको, जो निराशारूप धूलिसे धूसरित होनेके कारण रागशून्य हो गये थे, बारंबार प्रणाम करते हुए अपने अनुरागद्वारा [पति-मिलनके] पहले ही राग-रञ्जित कर दिया, उन अञ्जनीनन्दन महावीरजीकी मैं विशेष संतोषके लिये वन्दना करता हूँ॥ ३॥

ताञ्जानकीविरहवेदनहेतुभूतान्
द्रागाकलय्य सदशोकवनीयवृक्षान्।
लङ्कालकानिव घनानुदपाटयद् य-
स्तं हेमसुन्दरकपिं प्रणमामि पुष्ट्यै॥ ४॥

सुन्दर अशोकवनके घने वृक्षोंको जानकीजीकी विरह-वेदना [-को बढ़ाने]-का कारण समझकर जिन्होंने लंकानगरीकी स्निग्ध अलकावलीके समान उन्हें शीघ्र ही उखाड़ डाला, उन सुवर्णके सदृश सुन्दर शरीरवाले कपिवर हनुमानजीको मैं अपने पालन-पोषणके लिये प्रणाम करता हूँ॥ ४॥

घोषप्रतिध्वनितशैलगुहासहस्र-
सम्भ्रान्तनादितवलन्मृगनाथयूथम्।
अक्षक्षयक्षणविलक्षितराक्षसेन्द्र-
मिन्द्रं कपीन्द्रपृतनावलयस्य वन्दे॥ ५॥

अपने गम्भीर घोषसे प्रतिध्वनित पर्वतोंकी सहस्रों कन्दराओंमें रहनेवाले सिंहोंके समूहको जिन्होंने सम्भ्रमवश शब्दायमान एवं विचलित कर दिया और अक्षकुमारके विनाशकालमें राक्षसराज रावणको भी आश्चर्यमें डाल दिया, उन कपिराज सुग्रीवकी सेनाके नायक हनुमानजीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ५॥

हेलाविलङ्घितमहार्णवमप्यमन्दं
घूर्णद्गदाविहतिविक्षतराक्षसेषु।
स्वम्मोदवारिधिमपारमिवेक्षमाणं
वन्देऽहमक्षयकुमारकमारकेशम्॥ ६॥

लीलासे ही महासागरको लाँघ जानेपर भी जो तीव्र गतिसे घूमती हुई गदाद्वारा राक्षसोंके क्षत-विक्षत होनेपर अपने आनन्दसमुद्रको अपार-सा देख रहे थे, उन अक्षयकुमारके मारकेशरूप महावीरजीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ६॥

जम्भारिजित्प्रसभलम्भितपाशबन्धं
ब्रह्मानुरोधमिव तत्क्षणमुद्वहन्तम्।
रौद्रावतारमपि रावणदीर्घदृष्टि-
संकोचकारणमुदारहरिं भजामि॥ ७॥

जिन्होंने इन्द्रजित् (मेघनाद)-के हठात् फेंके हुए पाशबन्धनको ब्रह्माजीके अनुरोधकी भाँति तत्काल ग्रहण कर लिया और रुद्रका अवतार होनेपर भी जो रावणकी विशाल दृष्टिके संकोचका कारण बन गये, उन उदार वानर-वीरको मैं भजता हूँ॥ ७॥

दर्पोन्नमन्निशिचरेश्वरमूर्धचञ्च-
त्कोटीरचुम्बि निजबिम्बमुदीक्ष्य हृष्टम्।
पश्यन्तमात्मभुजयन्त्रणपिष्यमाण-
तत्कायशोणितनिपातमपेक्षि वक्षः॥ ८॥

जो अभिमानसे ऊपर उठे हुए रावणके मस्तकोंपर

देदीप्यमान किरीटोंमें अपने प्रतिबिम्बको देखकर उसमें अपने भुजयन्त्रद्वारा पीसे जानेवाले रावणके शरीरके रक्तपातकी अपेक्षा रखनेवाली अपनी छातीकी ओर निहारते हुए प्रसन्न हो रहे थे (उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ)॥ ८॥

अक्षप्रभृत्यमरविक्रमवीरनाश-
क्रोधादिव द्रुतमुदञ्चितचन्द्रहासाम्।
निद्रापिताभ्रघनगर्जनघोरघोषैः
संस्तम्भयन्तमभिनौमि दशास्यमूर्तिम्॥ ९॥

देवताओंके समान पराक्रम रखनेवाले अक्षकुमार आदि वीरोंके नाशजनित क्रोधसे ही मानो जिसने शीघ्र ही बदला लेनेके लिये चन्द्रहास नामक तलवार उठा ली है, उस दशशीश (रावण)-के शरीरका गम्भीर मेघ-गर्जनाको भी मूक बनानेवाले अपने भयंकर सिंहनादसे स्तम्भन करते हुए हनुमानजीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ९॥

आशंस्यमानविजयं रघुनाथधाम
शंसन्तमात्मकृतभूरिपराक्रमेण ।
दौत्ये समागमसमन्वयमादिशन्तं
वन्दे हरेः क्षितिभृतः पृतनाप्रधानम्॥ १०॥

जो अपने किये हुए प्रचुर पराक्रमोंद्वारा विजयकी आशंसासे युक्त श्रीरामचन्द्रजीके तेजका वर्णन कर रहे हैं और दूतधर्ममें प्राप्त होनेके समन्वयका (अथवा समस्त शास्त्रोंके अन्वयका) उपदेश करते हैं, उन राजा सुग्रीवकी सेनाके प्रधान (सेनापति) वीरकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १०॥

यस्यौचितीं समुपदिष्टवतोऽधिपुच्छं
दम्भान्धितां धियमपेक्ष्य विवर्धमानः।
नक्तंचराधिपतिरोषहिरण्यरेता
लङ्कां दिधक्षुरपतत्तमहं वृणोमि॥ ११॥

उचित उपदेश दे चुकनेपर, जिनकी पूँछमें निशाचरराज रावणका कोपानल ही उसकी दम्भसे अंधी हुई बुद्धिके सहारे बढ़कर, लंकाको जलानेकी इच्छासे वहाँ कूद पड़ा था, उन्हीं हनुमानजीका मैं वरण करता हूँ॥ ११॥

क्रन्दन्निशाचरकुलां ज्वलनावलीढैः
साक्षाद्गृहैरिव बहिः परिदेवमानाम्।
स्तब्धस्वपुच्छतटलग्नकृपीटयोनि-
दन्दह्यमाननगरीं परिगाहमानाम्॥ १२॥

उनकी तनी हुई पूँछके किनारे अग्नि लगी थी, उससे समस्त लंका नगरी अत्यन्त वेगसे जल रही थी, बाहर निशाचरकुलका करुणक्रन्दन मचा हुआ था, उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो अग्निज्वालासे झुलसे हुए घर ही बाहर निकल रहे हों, ऐसी लंकामें चारों ओर दौड़ते हुए हनुमानजीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १२॥

मूर्तैर्गृहासुभिरिव द्युपुरं व्रजद्भि-
र्व्योम्नि क्षणं परिगतं पतगैर्ज्वलद्भिः।
पीताम्बरं दधतमुच्छ्रितदीप्ति पुच्छं
सेनां वहद्भिहगराजमिवाहमीडे॥ १३॥

प्रासादशिखरपर रहनेवाले तोता और कबूतर आदि पक्षी जलते हुए जब आकाशमें उड़ते थे, तब ऐसा मालूम होता था मानो उन दग्ध होनेवाले गृहोंके प्राण ही मूर्तिमान् होकर स्वर्गमें जा रहे हैं, उन पक्षियोंसे क्षणभर घिरकर ऊपर उठी हुई ज्वालाओंवाली पूँछ धारण किये, जिनकी शोभा पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुको पीठपर चढ़ाकर अपना समूह साथ लिये विचरनेवाले पक्षिराज गरुड़की-सी हो रही थी, उन हनुमानजीकी मैं स्तुति करता हूँ॥ १३॥

स्तम्भीभवत्स्वगुरुबालधिलग्नवह्नि-
ज्वालोल्ललद्ध्वजपटामिव देवतुष्ट्यै।
वन्दे यथोपरि पुरो दिवि दर्शयन्त-
मद्यैव रामविजयाजिकवैजयन्तीम्॥ १४॥

लंका नगरके ऊपर अपनी विशाल पूँछरूपी खम्भेमें लगी हुई अग्निकी ज्वाला ही जिसमें पताकाके समान है, ऐसी श्रीरामचन्द्रजीकी रणविजय-वैजयन्तीको देवताओंकी प्रसन्नताके लिये मानो आज ही आकाशमें दिखलाते हुए महावीरजीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १४॥

रक्षश्चयैकचितकक्षकपूश्चितौ यः
सीताशुचो निजविलोकनतो मृतायाः।
दाहं व्यधादिव तदन्त्यविधेयभूतं
लाङ्गूलदत्तदहनेन मुदे स नोऽस्तु॥ १५॥

जिन्होंने सीताजीकी पीड़ाको, जो उनके दर्शनमात्रसे मर चुकी थी, एकमात्र राक्षससमूहरूप काठ-कबाड़ोंसे बनी हुई लंकारूपिणी चितापर सुलाकर अपनी पूँछकी लगायी हुई अग्निसे उसका मरणान्त-कालोचित दाह-संस्कार किया, वे हनुमानजी हमारी प्रसन्नताके कारण हों॥ १५॥

आशुद्धये रघुपतिप्रणयैकसाक्ष्ये
वैदेहराजदुहितुः सरिदीश्वराय।

न्यासं ददानमिव पावकमापतन्त-
मब्धौ प्रभञ्जनतनूजनुषं भजामि॥ १६॥

विदेहनन्दिनी सीताकी शुद्धिके लिये श्रीरामचन्द्रजीके प्रति प्रेमके एकमात्र साक्षीपदपर स्थित पावकको मानो समुद्रके यहाँ धरोहर रखनेके निमित्त उसमें कूद पड़नेवाले वायुनन्दनको मैं भजता हूँ॥ १६॥

रक्षस्स्वतृप्तिरुडशान्तिविशेषशोण-
मक्षक्षयक्षणविधानुमितात्मदाक्ष्यम्।
भास्वत्प्रभातरविभानुभरावभासं
लङ्काभयंकरममुं भगवन्तमीडे॥ १७॥

राक्षसों [-के साथ संग्राम]-में तृप्त न होनेके कारण क्रोध एवं अशान्तिसे जो विशेष रक्तवर्ण हो गये हैं, अक्षकुमारके संहारकालके कार्योंसे जिनकी दक्षताका अनुमान किया जा चुका है तथा जो प्रभातसमयके प्रभामय सूर्यकी किरणोंके समान कान्तिमान् हैं, लंकाको भय देनेवाले उन भगवान् हनुमानकी मैं स्तुति करता हूँ॥ १७॥

तीर्त्वोदधिं जनकजार्पितमाप्य चूडा-
रत्नं रिपोरपि पुरं परमस्य दग्ध्वा।
श्रीरामहर्षगलदश्रवभिषिच्यमानं
तं ब्रह्मचारिवरवानरमाश्रयेऽहम्॥ १८॥

समुद्रको लाँघकर, सीताके दिये हुए चूडारत्नको पाकर और शत्रुके महान् नगरको भी जलाकर, श्रीरामचन्द्रजीके आनन्दाश्रुसे सींचे जानेवाले, ब्रह्मचारिश्रेष्ठ वानरवीरकी मैं शरण लेता हूँ॥ १८॥

यः प्राणवायुजनितो गिरिशस्य शान्तः
शिष्योऽपि गौतमगुरुर्मुनिशंकरात्मा।
हृद्यो हरस्य हरिवद्धरितां गतोऽपि
धीधैर्यशास्त्रविभवेऽतुलमाश्रये तम्॥ १९॥

जो पूर्वजन्ममें गौतम ऋषिके शंकरात्मा नामक शान्त शिष्य होनेपर भी उनके गुरुके समान श्रद्धापात्र थे, शंकरजीके प्राणवायुसे जिनका प्रादुर्भाव हुआ है, जो हरि (वानर) भावको प्राप्त होकर भी हरि (विष्णु)-की भाँति शंकरजीके हार्दिक प्रेमी हैं तथा बुद्धि, धैर्य और शास्त्रके वैभवमें जिनकी कहीं समता नहीं है, उन हनुमानजीकी मैं शरण लेता हूँ॥ १९॥

स्कन्धेऽधिवाह्य जगदुत्तरगीतिरीत्या
यः पार्वतीश्वरमतोषयदाशुतोषम्।
तस्मादवाप च वरानपरानवाप्यां-
स्तं वानरं परमवैष्णवमीशमीडे॥ २०॥

जिन्होंने आशुतोष उमानाथको कंधेपर चढ़ाकर अपनी लोकोत्तर गानशैलीसे उन्हें प्रसन्न किया और उनसे पाने योग्य उत्तम वरोंको भी प्राप्त कर लिया, मैं उन परम वैष्णव भगवान् वानरवीरकी स्तुति करता हूँ॥ २०॥

उमापतेः कविपतेः स्तुतिर्बाल्यविजृम्भिता।
हनूमतस्तुष्टयेऽस्तु वीरविंशतिकाभिधा॥

कविपति श्रीउमापतिजीकी बालकालमें रचित यह वीरविंशतिका नामकी स्तुति हनुमानजीकी प्रसन्नताके लिये हो।

इति श्रीकविपत्युपनामकोमापतिशर्मद्विवेदिविरचितं वीरविंशतिकाख्यं श्रीहनुमत्स्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

(नारदपुराणोक्त) श्रीमारुतिकवच*

सनत्कुमार उवाच

कार्तवीर्यस्य कवचं कथितं ते मुनीश्वर।
मोहविध्वंसनं जैत्रं मारुतेः कवचं शृणु॥ १॥

सनत्कुमारजीने कहा—मुनीश्वर! मैंने तुमसे कार्तवीर्य-कवचका वर्णन किया। अब मोहनाशक और विजयप्रद मारुति-कवचका वर्णन सुनो॥ १॥

यस्य संधारणात् सद्यः सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः।
भूतप्रेतारिजं दुःखं नाशमेति न संशयः॥ २॥

जिसके धारण करनेसे सभी उपद्रव तत्काल नष्ट हो जाते हैं तथा भूत, प्रेत एवं शत्रुसे उत्पन्न दुःखका भी नाश हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ २॥

एकदाहं गतो द्रष्टुं रामं रमयतां वरम्।
आनन्दवनिकासंस्थं ध्यायन्तं स्वात्मनः पदम्॥ ३॥

एक समयकी बात है, मैं मनको रमानेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीरामका दर्शन करनेके लिये अयोध्या गया हुआ था। वे आनन्दवनमें बैठकर अपने ही स्वरूपका ध्यान कर रहे थे॥ ३॥

* इस कवचके प्रारम्भिक कई श्लोक आनन्दरामायणोक्त हनुमत्कवचसे मिलते-जुलते हैं और शेष सर्वथा भिन्न हैं।

तत्र रामं रमानाथं पूजितं त्रिदशेश्वरः।
नमस्कृत्य तदादिष्टमासनं स्थितवान् पुरः॥ ४॥

वहाँ पहुँचकर देवेश्वरोंसे पूजित रमानाथ श्रीरामको नमस्कार करके उन्हींके आदेशसे उनके सामने ही एक आसनपर बैठ गया॥ ४॥

तत्र सर्वं मया वृत्तं रावणस्य वधान्तकम्।
पृष्टं प्रोवाच राजेन्द्रः श्रीरामः स्वयमादरात्॥ ५॥

उस जगह मैंने उनसे आरम्भसे लेकर रावण-वधतकका सारा वृत्तान्त पूछा। तब राजाधिराज श्रीरामने बड़े आदरके साथ स्वयं वह सारी कथा कह सुनायी॥ ५॥

ततः कथान्ते भगवान् मारुतेः कवचं ददौ।
मह्यं तत्ते प्रवक्ष्यामि न प्रकाश्यं हि कुत्रचित्॥ ६॥

तत्पश्चात् कथाके अन्तमें भगवान्ने मुझे मारुति-कवच प्रदान किया, जिसका मैं तुम्हारे समक्ष वर्णन करूँगा। तुम इसे कहीं भी प्रकट न करना॥ ६॥

भविष्यदेतन्निर्दिष्टं बालभावेन नारद।
श्रीरामेणाञ्जनासूनोर्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ७॥

नारद! श्रीरामने बालभावसे भविष्यमें होनेवाला यह सब वृत्तान्त बताया और अञ्जनीनन्दन हनुमानका कवच भी कह सुनाया, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है॥ ७॥

कवच

हनुमान् पूर्वतः पातु दक्षिणे पवनात्मजः।
पातु प्रतीच्यामक्षघ्नः सौम्ये सागरतारकः॥ ८॥

पूर्व दिशामें हनुमान रक्षा करें, दक्षिण दिशामें पवनपुत्र रक्षा करें। पश्चिम दिशामें रावणपुत्र अक्षकुमारके विनाशक रक्षा करें तथा उत्तर दिशामें सागरतारक (समुद्रको तैर जानेवाले) रक्षा करें॥ ८॥

ऊर्ध्वं पातु कपिश्रेष्ठः केसरिप्रियनन्दनः।
अधस्ताद्विष्णुभक्तस्तु पातु मध्ये च पावनिः॥ ९॥

ऊर्ध्व दिशामें केसरीके प्रिय पुत्र कपिश्रेष्ठ रक्षा करें। अधोभागमें विष्णुभक्त रक्षा करें तथा दिशाओंके मध्यभागमें पावनि (पवन-पुत्र) रक्षा करें॥ ९॥

लङ्काविदाहकः पातु सर्वापद्भ्यो निरन्तरम्।
सुग्रीवसचिवः पातु मस्तकं वायुनन्दनः॥ १०॥
भालं पातु महावीरो भ्रुवोर्मध्ये निरन्तरम्।
नेत्रे छायापहारी च पातु नः प्लवगेश्वरः॥ ११॥

लंका जलानेवाले हनुमानजी सम्पूर्ण विपत्तियोंसे निरन्तर हमारा संरक्षण करें । सुग्रीवके मन्त्री मस्तककी रक्षा करें। वायुनन्दन हनुमान भालदेशकी रक्षा करें। महावीर दोनों भौंहोंके मध्यभागमें निरन्तर रक्षा करें। छायाग्राहिणी राक्षसीका अपहरण करनेवाले तथा वानरोंके स्वामी हनुमानजी हमारे दोनों नेत्रोंकी रक्षा करें॥ १०-११॥

कपोलौ कर्णमूले च पातु श्रीरामकिङ्करः।
नासाग्रमञ्जनासूनुः पातु वक्त्रं हरीश्वरः॥ १२॥

श्रीरामके सेवक दोनों कपोलों तथा कानोंके मूलभागोंकी रक्षा करें, अञ्जनाके पुत्र नासिकाके अग्रभागकी तथा बंदरोंके स्वामी मुखकी रक्षा करें॥ १२॥

पातु कण्ठं तु दैत्यारिः स्कन्धौ पातु सुरारिजित्।
भुजौ पातु महातेजाः करौ च चरणायुधः॥ १३॥

दैत्योंके शत्रु कण्ठकी रक्षा करें, देवशत्रुओंको जीतनेवाले दोनों कंधोंकी रक्षा करें। महातेजस्वी दोनों भुजाओं और चरणरूपी शस्त्रवाले दोनों हाथोंकी रक्षा करें॥ १३॥

नखान् नखायुधः पातु कुक्षौ पातु कपीश्वरः।
वक्षो मुद्रापहारी च पातु पार्श्वे भुजायुधः॥ १४॥

नखरूपी शस्त्रवाले नखोंकी रक्षा करें, कपियोंके स्वामी कुक्षिभागकी रक्षा करें। अँगूठी ले जानेवाले वक्षःस्थलकी तथा भुजारूपी आयुधवाले दोनों पार्श्वभागोंकी रक्षा करें॥ १४॥

लङ्कानिभर्जनः पातु पृष्ठदेशे निरन्तरम्।
नाभिं श्रीरामभक्तस्तु कटिं पात्वनिलात्मजः॥ १५॥

लंकाको भूज देनेवाले पृष्ठ (पीठ) भागकी निरन्तर रक्षा करें। श्रीरामभक्त नाभिकी और अनिल (पवन)-पुत्र कमरकी रक्षा करें॥ १५॥

गुह्यं पातु महाप्राज्ञः सक्थिनी अतिथिप्रियः।
ऊरू च जानुनी पातु लङ्काप्रासादभञ्जनः॥ १६॥

महाप्राज्ञ गुह्यभागकी तथा अतिथिप्रिय जाँघोंकी रक्षा करें। लंकाके महलोंको नष्ट करनेवाले दोनों ऊरुओं तथा घुटनोंकी रक्षा करें॥ १६॥

जङ्घे पातु कपिश्रेष्ठो गुल्फौ पातु महाबलः।
अचलोद्धारकः पातु पादौ भास्करसंनिभः॥ १७॥

कपिश्रेष्ठ दोनों पिण्डलियोंकी रक्षा करें। महाबलवान् दोनों गुल्फों (टखनों)-की रक्षा करें। पर्वतको उठानेवाले एवं सूर्यके समान तेजस्वी हनुमानजी दोनों चरणोंकी रक्षा करें॥ १७॥

अङ्गानि पातु सत्त्वाढ्यः पातु पादाङ्गुलीः सदा।
मुखाङ्गानि महाशूरः पातु रोमाणि चात्मवान्॥ १८॥

अत्यन्त बलशाली हनुमानजी अङ्गों तथा पैरकी अङ्गुलियोंकी सदा रक्षा करें। महाशूर मुख आदि अङ्गोंकी तथा मनको वशमें रखनेवाले रोमावलियोंकी रक्षा करें॥ १८॥

दिवारात्रौ त्रिलोकेषु सदागतिसुतोऽवतु।
स्थितं व्रजन्तमासीनं पिबन्तं जक्षतं कपिः॥ १९॥

वायु-पुत्र कपिश्रेष्ठ हनुमानजी दिन-रात तीनों लोकोंमें खड़े, चलते, बैठे, पीते और खाते समय मेरी रक्षा करें॥ १९॥

लोकोत्तरगुणः श्रीमान् पातु त्र्यम्बकसम्भवः।
प्रमत्तमप्रमत्तं वा शयानं गहनेऽम्बुनि॥ २०॥

मैं सावधान होऊँ या असावधान, अथवा गहरे जलमें ही क्यों न सोया होऊँ, सब जगह लोकोत्तर गुणशाली शिवपुत्र श्रीमान् हनुमान मेरी रक्षा करें॥ २०॥

स्थलेऽन्तरिक्षे ह्यग्नौ वा पर्वते सागरे द्रुमे।
संग्रामे संकटे घोरे विराड्रूपधरोऽवतु॥ २१॥

स्थलमें, आकाशमें, अग्निमें, पर्वतपर, समुद्रमें, वृक्षपर, युद्धमें अथवा घोर संकटके समय विराट्रूपधारी हनुमानजी मेरी रक्षा करें॥ २१॥

डाकिनीशाकिनीमारीकालरात्रिमरीचिकाः ।
शयानं मां विभुः पातु पिशाचोरगराक्षसीः॥ २२॥

सोते समय मेरे प्रभु हनुमानजी डाकिनी, शाकिनी, मारी, कालरात्रि, मरीचिका, पिशाच, नाग तथा राक्षसियोंको भगाकर मेरी रक्षा करें॥ २२॥

दिव्यदेहधरो धीमान् सर्वसत्त्वभयंकरः।
साधकेन्द्रावनः शश्वत्पातु सर्वत एव माम्॥ २३॥

सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये भयंकर तथा श्रेष्ठ साधकोंके रक्षक दिव्यदेहधारी बुद्धिमान् हनुमानजी सदा सब ओरसे मेरी रक्षा करें॥ २३॥

यद्रूपं भीषणं दृष्ट्वा पलायन्ते भयानकाः।
स सर्वरूपः सर्वज्ञः सृष्टिस्थितिकरोऽवतु॥ २४॥

जिनके भीषण रूपको देखकर भयानक जन्तु भी भाग खड़े होते हैं, वे सृष्टि, पालन (और संहार) करनेवाले सर्वस्वरूप एवं सर्वज्ञ हनुमान मेरी रक्षा करें॥ २४॥

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः साक्षाद्देवो महेश्वरः।
सूर्यमण्डलगः श्रीदः पातु कालत्रयेऽपि माम्॥ २५॥

जो स्वयं ब्रह्मा, स्वयं विष्णु और स्वयं साक्षात् महेश्वर देव हैं, वे सूर्यमण्डलतक पहुँचनेवाले लक्ष्मीदाता हनुमान तीनों कालोंमें मेरी रक्षा करें॥ २५॥

यस्य शब्दमुपाकर्ण्य दैत्यदानवराक्षसाः।
देवा मनुष्यास्तिर्यञ्चः स्थावरा जङ्गमास्तथा॥ २६॥
सभया भयनिर्मुक्ता भवन्ति स्वकृतानुगाः।
यस्यानेककथाः पुण्याः श्रूयन्ते प्रतिकल्पके॥ २७॥
सोऽवतात् साधकश्रेष्ठं सदा रामपरायणः।

जिनके शब्दको सुनकर दैत्य, दानव तथा राक्षस भयभीत हो जाते हैं और देवता, मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदि स्थावर-जङ्गम प्राणी भयसे छूटकर अपने-अपने कर्मोंमें लग जाते हैं तथा प्रत्येक कल्पमें जिनकी अनेक पुण्य-कथाएँ सुनी जाती हैं, वे श्रीरामभक्त हनुमान श्रेष्ठ साधककी सदा रक्षा करें॥ २६-२७½॥

वैधात्रधातृप्रभृति यत्किंचिद्दृश्यतेऽत्यलम्॥ २८॥
विद्धि व्याप्तं यथा कीशरूपेणानञ्जनेन तत्।

[नारद!] ब्रह्मा और ब्रह्माकी सृष्टि आदि जो कुछ भी सम्पूर्ण जगत् दृष्टिगोचर होता है, उस सबको निरञ्जन (निर्मल) वानर हनुमानरूपसे व्याप्त समझो॥ २८½॥

यो विभुः सोऽहमेषोऽहं स्वीयः स्वयमणुर्बृहत्॥ २९॥
ऋग्यजुःसामरूपश्च प्रणवस्त्रिवृदध्वरः।
तस्मै स्वस्मै च सर्वस्मै नतोऽस्म्यात्मसमाधिना॥ ३०॥

जो सर्वव्यापी परमात्मा हैं, वह मैं हूँ। यह मैं, मेरा अपना, मैं स्वयं, अणु, महान् ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद सब हनुमानजीके ही रूप हैं। प्रणव तथा त्रिवृत् यज्ञ भी वे ही हैं। वे 'स्व' रूप तथा 'सर्व' रूप हैं। मैं अपने चित्तको एकाग्र करके उनको नमस्कार करता हूँ॥ २९-३०॥

अनेकानन्तब्रह्माण्डधृते ब्रह्मस्वरूपिणे।
समीरणात्मने तस्मै नतोऽस्म्यात्मस्वरूपिणे॥ ३१॥

जो अनेकानेक अनन्त ब्रह्माण्डको धारण करते हैं तथा जो ब्रह्मस्वरूप, वायुरूप और आत्मस्वरूप हैं, उन हनुमानजीको मैं नमन करता हूँ॥ ३१॥

नमो हनुमते तस्मै नमो मारुतसूनवे।
नमः श्रीरामभक्ताय श्यामाय महते नमः॥ ३२॥

उन हनुमानजीको नमस्कार है, वायुपुत्रको नमस्कार है, श्रीरामभक्तको नमस्कार है तथा महान् श्यामस्वरूपको नमस्कार है॥ ३२॥

नमो वानरवीराय सुग्रीवसख्यकारिणे।
लङ्काविदहनायाथ महासागरतारिणे॥ ३३॥

जो सुग्रीवकी श्रीरामके साथ मैत्री करानेवाले, लंकापुरीको दग्ध करनेवाले तथा महासागरको लाँघ जानेवाले हैं, उन वानरवीरको नमस्कार है॥ ३३॥

सीताशोकविनाशाय राममुद्राधराय च।
रावणान्तनिदानाय नमः सर्वोत्तरात्मने॥ ३४॥

जो सीताजीके शोकका विनाश करनेवाले, श्रीरामकी दी हुई मुद्रिकाको धारण करनेवाले तथा रावणके विनाशके आदि-कारण हैं, उन सर्वोत्तरात्मा (लोकोत्तर वीर) हनुमानजीको नमस्कार है॥ ३४॥

मेघनादमखध्वंसकारणाय नमो नमः।
अशोकवनविध्वंसकारिणे जयदायिने॥ ३५॥

मेघनादके यज्ञका विध्वंस करनेवाले, अशोकवाटिकाको नष्ट-भ्रष्ट कर देनेवाले तथा विजयप्रदाता हनुमानजीको बारंबार नमस्कार है॥ ३५॥

वायुपुत्राय वीराय आकाशोदरगामिने।
वनपालशिरश्छेत्रे लङ्काप्रासादभञ्जिने॥ ३६॥
ज्वलत्काञ्चनवर्णाय दीर्घलाङ्गूलधारिणे।
सौमित्रिजयदात्रे च रामदूताय ते नमः॥ ३७॥

जो आकाशके भीतर चलनेवाले, (अशोक) वनरक्षकोंके मस्तकका छेदन और लंकाके महलोंका भञ्जन करनेवाले, तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान्, लंबी लाङ्गूल धारण करनेवाले तथा सुमित्राकुमारको विजय दिलानेवाले हैं, उन वीरवर वायुपुत्र श्रीरामदूतको नमस्कार है॥ ३६-३७॥

अक्षस्य वधकर्त्रे च ब्रह्मशस्त्रनिवारिणे।
लक्ष्मणाङ्गमहाशक्तिजातक्षतविनाशिने॥ ३८॥
रक्षोघ्नाय रिपुघ्नाय भूतघ्नाय नमो नमः।
ऋक्षवानरवीरौघप्रसादाय नमो नमः॥ ३९॥

जो रावणकुमार अक्षका वध करनेवाले, मेघनादके ब्रह्मास्त्रका निवारण कर देनेवाले, लक्ष्मणके शरीरमें महाशक्तिजनित घावका विनाश करनेवाले, राक्षसोंके हन्ता, शत्रुओंके नाशक और भूतोंके विघातक तथा रीछों और वानर वीरोंके समुदायको प्रसन्न करनेवाले हैं, उन पवननन्दनको बारंबार नमस्कार है॥ ३८-३९॥

परसैन्यबलघ्नाय शस्त्रास्त्रघ्नाय ते नमः।
विषघ्नाय द्विषघ्नाय भयघ्नाय नमो नमः॥ ४०॥

शत्रु-सैन्य-बलके नाशक और शस्त्र तथा अस्त्रोंके विनाशक आपको नमस्कार है। विष-नाशक, शत्रु-नाशक और भय-नाशक आपको बारंबार नमस्कार है॥ ४०॥

महारिपुभयघ्नाय भक्तत्राणैककारिणे।
परप्रेरितमन्त्राणां यन्त्राणां स्तम्भकारिणे॥ ४१॥
पयःपाषाणतरणकारणाय नमो नमः।
बालार्कमण्डलग्रासकारिणे दुःखहारिणे॥ ४२॥

आप बड़े-बड़े शत्रुओंके भयको मिटानेवाले तथा भक्तोंके एकमात्र रक्षक हैं। शत्रुओंद्वारा प्रयुक्त यन्त्र-मन्त्रोंका स्तम्भन (रुकावट) करनेवाले, पानीपर पत्थरको तैरानेवाले, प्रातःकालीन बाल-सूर्यके मण्डलको अपना ग्रास बनानेवाले तथा सबके दुःख हर लेनेवाले आप हनुमानको बारंबार नमस्कार है॥ ४१-४२॥

नखायुधाय भीमाय दन्तायुधधराय च।
विहङ्गमाय शर्वाय वज्रदेहाय ते नमः॥ ४३॥

नख ही आपके आयुध हैं। आप देखनेमें भयंकर तथा दाँतोंको भी आयुधके रूपमें धारण करते हैं। आप आकाशचारी, शिवस्वरूप तथा वज्रदेहधारी हैं। आपको नमस्कार है॥ ४३॥

प्रतिग्रामस्थितायाथ भूतप्रेतवधार्थिने।
करस्थशैलशस्त्राय रामशस्त्राय ते नमः॥ ४४॥

आप प्रत्येक ग्राममें स्थित हैं, भूतों और प्रेतोंका वध करनेके लिये उद्यत रहते हैं। आपके एक हाथमें शस्त्रके रूपमें पर्वत है तथा आप श्रीरामके वाण हैं। आपको नमस्कार है॥ ४४॥

कौपीनवाससे तुभ्यं रामभक्तिरताय च।
दक्षिणाशाभास्कराय सतां चन्द्रोदयात्मने॥ ४५॥
कृत्याक्षतव्यथाघ्नाय सर्वक्लेशहराय च।
स्वाम्याज्ञापार्थसंग्रामसख्यसंजयकारिणे॥ ४६॥
भक्तानां दिव्यवादेषु संग्रामे जयकारिणे।
किल्किलाबुबुकाराय घोरशब्दकराय च॥ ४७॥
सर्वाग्निव्याधिसंस्तम्भकारिणे भयहारिणे।
सदा वनफलाहारसंतृप्ताय विशेषतः॥ ४८॥
महार्णवशिलाबद्धसेतुबन्धाय ते नमः।

आप कौपीन वस्त्रधारी तथा श्रीरामभक्तिमें तत्पर रहनेवाले हैं। आप दक्षिण दिशाके सूर्य तथा सत्पुरुषोंके लिये चन्द्रोदयरूप हैं। आप कृत्याजनित क्षति एवं

व्यथाके नाशक तथा सम्पूर्ण क्लेशोंका हरण करनेवाले हैं। स्वामीकी आज्ञासे पृथापुत्र अर्जुनको महाभारत युद्धमें सहायता देने एवं विजय दिलानेवाले हैं। आप दिव्य वादों तथा संग्राममें भक्तोंको विजय दिलानेवाले, किलकिला एवं बुबुकार करनेवाले तथा भयंकर सिंहनाद करनेवाले हैं। आप सम्पूर्ण अग्नि एवं व्याधियोंका स्तम्भन करनेवाले तथा भय हर लेनेवाले हैं। विशेषत: आप सदा वन्यफलोंके आहारसे ही पूर्णत: तृप्त रहते हैं। महासागरमें पत्थरोंका सेतु बाँधनेवाले आपको नमस्कार है॥ ४५—४८ १/२ ॥

इत्येतत्कथितं विप्र मारुतेः कवचं शिवम्॥ ४९॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं रक्षणीयं प्रयत्नतः।

ब्रह्मन्! यह मैंने कल्याणमय मारुति-कवचका वर्णन किया है। जिस किसीको भी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। प्रयत्नपूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिये॥ ४९ १/२ ॥

अष्टगन्धैर्विलिख्याथ कवचं धारयेत्तु यः॥ ५०॥
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ जयस्तस्य पदे पदे।

जो इस कवचको अष्टगन्धसे लिखकर कण्ठ अथवा दाहिनी बाँहमें धारण करता है, उसे पद-पदपर विजय प्राप्त होती है॥ ५० १/२ ॥

किं पुनर्बहुनोक्तेन साधितलक्षमादरात्॥ ५१॥
प्रजप्तमेतत्कवचमसाध्यं चापि साधयेत्॥ ५२॥

बहुत कहनेसे क्या लाभ। यदि आदरपूर्वक लाख बार पाठ करके इसको सिद्ध कर लिया जाय तो इस कवचका जप असाध्य कार्यको भी सिद्ध कर सकता है॥ ५१-५२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे मारुतिकवचनिरूपणं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीबृहन्नारदीयपुराणके पूर्वभागमें बृहदुपाख्यानके तृतीयपादमें मारुति-कवचनिरूपणका अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७८॥

श्रीहनुमदुपनिषद्

ॐ सनकाद्या योगिवर्या अन्ये च ऋषयस्तथा।
प्रह्लादाद्या विष्णुभक्ता हनूमन्तमथाब्रुवन्॥ १॥

सनक-सनन्दनादि योगीन्द्रों, अन्य ऋषियों एवं प्रह्लादादि विष्णु-भक्तोंने हनुमानजीसे (यह) कहा—।

वायुपुत्र महाबाहो किं तत्त्वं ब्रह्मवादिनाम्।
पुराणेष्वष्टादशसु स्मृतिष्वष्टादशस्वपि॥ २॥

महाबाहु पवननन्दन! अठारह पुराणों तथा अठारह स्मृतियोंमें निरूपित ब्रह्मवादियोंका तत्त्व कौन-सा है?

चतुर्वेदेषु शास्त्रेषु विद्यास्वाध्यात्मिकेषु च।
सर्वेषु विबुधाद्येषु विघ्नसूर्येशशक्तिषु॥ ३॥
एतेषु मध्ये किं तत्त्वं कथयस्व महाबल।

चारों वेद, छहों शास्त्र, अठारहों विद्या, अध्यात्म-ज्ञान, गणेश, सूर्य, शिव, शक्ति एवं सभी देवता—इन सबमें भी सार-तत्त्व क्या है महाबल! आप उसे बतलाइये।

श्रीहनुमानुवाच

भो योगीन्द्राश्च ऋषयो विष्णुभक्तास्तथैव च॥ ४॥
शृणुध्वं मामकीं वाचं भवबन्धविनाशिनीम्।
एतेषु चैव सर्वेषु तत्त्वं च ब्रह्मतारकम्॥ ५॥

श्रीहनुमानजीने कहा—हे योगीन्द्रों, ऋषियों तथा विष्णु-भक्त वैष्णवगण! आपलोग संसार-बन्धनको नष्ट करनेवाली मेरी बात सुनें। वस्तुत: इन सभीमें तारक-ब्रह्म ही तत्त्व है।

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्॥ ६॥

और श्रीराम ही परब्रह्म, श्रीराम ही सर्वोपरि तप, श्रीराम ही परम तत्त्व एवं श्रीराम ही तारक-ब्रह्म हैं।

वायुपुत्रेणोक्तास्ते योगीन्द्रा ऋषयो विष्णुभक्ताः पुनः पप्रच्छुर्हनूमन्तं रामस्याङ्गानि यानि तानि नो ब्रूहीति।

हनुमानजीके ऐसा कहनेपर उन ऋषि-मुनि-योगीन्द्रों एवं विष्णु-भक्तोंने उनसे पुन: पूछा कि श्रीरामके जितने अङ्ग हैं, आप उन्हें भी हमें बतलाइये।

स होवाच वायुपुत्रः॥ ७॥ विघ्नेशं शक्तिं दुर्गां क्षेत्रपालं सूर्यं चन्द्रं रुद्रं नारायणं नारसिंहं वासुदेवं वाराहं तत्सर्वान् समन्त्रान् सीतां लक्ष्मणं हनुमन्तं भरतं शत्रुघ्नं विभीषणं सुग्रीवम् अङ्गदं जाम्बवन्तं प्रणवमन्त्रं रामस्याङ्गानि जानीथाः॥ ८॥ तान् विना रामो विघ्नकरो भवति॥ ९॥

श्रीहनुमानजीने कहा—गणेश, शक्ति, दुर्गा, क्षेत्रपाल, सूर्य, चन्द्र, रुद्र, नारायण, नृसिंह, वासुदेव और वाराह—ये सभी अपने मन्त्रादि (पञ्चाङ्गों)-सहित तथा सीता,

लक्ष्मण, (स्वयं मैं) हनुमान, भरत, शत्रुघ्न, विभीषण, सुग्रीव, अङ्गद, जाम्बवान् एवं प्रणव-मन्त्र—इन सभीको आपलोग श्रीरामके अङ्ग समझें। इन अङ्गोंकी उपासनाके बिना श्रीराम विघ्नकारी हो जाते हैं।

पुनर्वायुपुत्रेणोक्तास्ते हनुमन्तं पप्रच्छुः। आञ्जनेय महाबल विप्राणां गृहस्थानां प्रणवाधिकारः कथं स्यादिति॥ १०॥ पुनरुवाच हनुमान्॥ ११॥ अयोध्यानगरे रम्ये समासीनो रामो मया पृष्टः॥ १२॥ सीतापते योगीन्द्रमानसहंस विप्रगृहस्थानां प्रणवाधिकारः कथं स्यादिति॥ १३॥ स होवाच रामः॥ १४॥ येषां मे षडक्षराधिकारो वर्तते तेषां प्रणवाधिकारः स्यान्नान्येषाम्॥ १५॥ प्रणवस्य केवल-मकारोकारमकारार्द्धमात्रासहितस्य साह्नेन यो राममन्त्रं जपति तस्याभयंकरो[1]ऽहं स्याम्। तस्मात् प्रणवस्याकारस्य चोकारस्य च मकारस्य चार्द्धमात्रासहितस्य ऋषिश्छन्दो देवता तत्तद् वर्णावस्थानं स्वरवेदाग्निगुणानुच्चार्य न्यासं कृत्वा प्रणवमन्त्राद् द्विगुणं जप्त्वा पश्चाद्राममन्त्रमाद्यतः प्रणवं यो जपेत् स रामो भवेदिति रामेणोक्तम्॥ १६॥ तस्माद्रामाङ्गं प्रणवः कथित इति॥ १७॥

हनुमानजीके इस प्रकार कहनेपर फिर उन ऋषियोंने उनसे पूछा—महाबली आञ्जनेय! गृहस्थ ब्राह्मणोंका प्रणव-अधिकार कैसे हो? इसपर हनुमानजीने कहा कि एक बार रमणीय अयोध्या-नगरमें भगवान् श्रीराम बैठे हुए थे। मैंने उनसे उस समय यही बात पूछी कि हे सीतापति, योगीन्द्रमानस-हंस, प्रभो! गृहस्थ ब्राह्मणोंका प्रणवमें अधिकार कैसे हो? इसपर उन भगवान् श्रीरामने कहा कि जिन्हें मेरे षडक्षरका अधिकार है, उन्हें ही प्रणवका भी अधिकार है, अन्योंका नहीं। प्रणवस्थ अ, उ, म् एवं अर्द्धमात्राके साथ जो श्रीराम-मन्त्रका जप करता है, मैं उसे (सर्वथा) निर्भय कर देता हूँ। इसलिये अकार, उकार, मकार एवं अर्द्धमात्रासहित प्रणवको ऋषि, छन्द, देवता एवं उन-उन वर्णावस्थाओंके ७४६ गुना (प्रायः ५४ हजार) जपकर, न्यासकर, प्रणवमन्त्रसे दूना जपकर, बादमें जो आदिमें प्रणवयुक्त श्रीराममन्त्रका जप करता है, वह भी स्वयं श्रीराम हो जाता है। ऐसा उन्होंने कहा था। अतः प्रणवको श्रीरामजीका ही अङ्ग कहा गया है।

वायुपुत्रेणोक्तास्ते पुनर्हनुमन्तं पप्रच्छुः॥ १८॥ रामभक्तविभीषणकृतस्य परिचयं श्रोतुमिच्छामः॥ १९॥ स होवाच हनुमान्॥ २०॥ विभीषणोक्तं रामचर्यायां सप्त-सहस्राणि संस्कृतवाक्यानि सप्तसहस्राणि गद्यानि॥ २१॥ पञ्चशतान्यार्या अष्टौ सहस्राणि श्लोकाश्चतुर्विंशतिसहस्राणि पद्यानि दशसहस्राणि दण्डकाः। इत्येवमनुक्रमं ज्ञात्वा कृतकृत्यो भवेदिति॥ २२॥

हनुमानजीके ऐसा कहनेपर उन ऋषियोंने उनसे पुनः पूछा कि अब हमलोग श्रीरामभक्त विभीषणका परिचय सुनना चाहते हैं। हनुमानजीने कहा—विभीषणद्वारा कथित रामचर्यामें सात हजार संस्कृत-वाक्य एवं सात हजार गद्य हैं। उसमें पचास आर्या, आठ हजार श्लोक, चौबीस हजार पद्य और दस हजार दण्डक हैं। यह उनकी अनुक्रमणिका है। इसे जानकर मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।[2]

—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा

---

१. पाठान्तर—'शुभकरो'—श्रीमहेशचन्द्रजी पालकर्तृक बंगला-संस्करण।

२. आगमोंमें उपासनाको जप (मौन)-पाठ-भजन-पूजन-ब्राह्मण-भोजनादि पञ्चाङ्गसे बद्ध बतलाया गया है। इस पञ्चाङ्गके भी अनेक भेद हैं। इसे तन्त्रोंमें ही देखना चाहिये। इनमें पुनः प्रत्येकके भी पाँच भेद हैं। यथा पाठमें उपनिषद्, कवच, पटल, स्तोत्र और सहस्रनाम-जप—ये पञ्चाङ्ग-भेद हैं। कहीं पटलकी जगह पद्धति या हृदय भी गृहीत है। अतः 'उपनिषत्'-पाठ उपासनाका मुख्य अङ्ग है। इस अङ्कमें हनुमत्कवच, सहस्रनाम आदि सभी अङ्ग दिये गये हैं। उपनिषत्की जगह प्राप्त यह 'हनुमदुपनिषत्' कहीं 'रामोपनिषत् तथा रामरहस्योपनिषत्' के प्रथम अध्यायके रूपमें भी प्राप्त है, किंतु उपासना-मर्मज्ञोंने इसका रहस्य जानकर यहाँ इसे रत्नवत् ठीक ही पिरोया है; क्योंकि श्रीरामसेवाप्राण हनुमानजी श्रीरामसेवाका ही उपदेश दे सकते हैं, अपनी सेवा उन्हें अभीष्ट नहीं। अतः पाठकोंको कोई शङ्का न कर इसके पारायण एवं अनुष्ठानसे अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

तन्त्रसारोक्त श्रीहनुमत्कल्प

(अनुवादक—पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल, शास्त्री, साहित्यकेसरी)

देव्युवाच

शैवादिगाणपत्यादिशाक्तानि वैष्णवानि च।
साधनानि च सौराणि चान्यानि यानि कानि च॥ १॥
एतानि देवदेवेश त्वदुक्तानि श्रुतानि च।
किंचिदन्यच्च देवानां साधनं यदि कथ्यताम्॥ २॥

पार्वतीदेवीने पूछा—देवदेवेश्वर! शैव, गाणपत्य, शाक्त, वैष्णव और सौर तथा अन्य जो कोई भी साधन है, उन सबका वर्णन तो मैंने आपके श्रीमुखसे श्रवण किया, अब यदि किन्हीं अन्य देवोंका भी कोई साधन हो तो उसे बतलाइये॥ १-२॥

शंकर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय।
हनुमत्साधनं पुण्यं महापातकनाशनम्॥ ३॥
एतद् गुह्यतमं लोके शीघ्रसिद्धिकरं परम्।
जपो यस्य प्रसादेन लोकत्रयजितो भवेत्॥ ४॥
तत्साधनविधिं वक्ष्ये नृणां सिद्धिकरं मतम्।

शंकरजीने कहा—देवि! मैं हनुमत्साधनका वर्णन करता हूँ, तुम सावधानीपूर्वक उसे सुनो और धारण करो। यह साधन परम पवित्र, महापातकोंका विनाशक, अत्यन्त गोपनीय और संसारमें शीघ्र ही उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला है। जिसकी कृपासे जप करनेवाला मनुष्य तीनों लोकोंमें विजयी होता है। यह मनुष्योंके लिये सिद्धिकारक माना गया है, इसलिये मैं इसकी साधनविधिका वर्णन करता हूँ॥ ३-४½ ॥

हुंकारमादौ संप्रोक्तं हनुमते तदनन्तरम्।
रुद्रात्मकाय हुं चैव फडिति द्वादशाक्षरम्॥ ५॥

(१ हुं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्॥ १)

एतन्मन्त्रं समाख्यातं गोपनीयं प्रयत्नतः।
तव स्नेहेन भक्त्या च ददामि तव सुन्दरि॥ ६॥

आदिमें 'हुं' कारका उच्चारण करके तदनन्तर '**हनुमते रुद्रात्मकाय हुं**' और 'फट्' का उच्चारण करनेसे '**हुं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्**'—यह द्वादशाक्षर हनुमन्मन्त्र भलीभाँति कहा गया है। प्रयत्नपूर्वक इसे गुप्त रखना चाहिये। सुन्दरि! तुम्हारे स्नेह और भक्तिके वशीभूत होकर मैं तुम्हें इसे बतला रहा हूँ॥ ५-६॥

एतन्मन्त्रमर्जुनाय पुरा दत्तं तु शौरिणा।
जपेन साधनं कृत्वा जितं सर्वं चराचरम्॥ ७॥

प्राचीनकालमें श्रीकृष्णने अर्जुनको यह मन्त्र प्रदान किया था। इसी मन्त्रका जप करके अर्जुनने सारे चराचर जगत्को जीत लिया था॥ ७॥

नदीकूले विष्णुगेहे निर्जने पर्वते वने।
एकाग्रचित्तमाधाय साधयेत् साधनं महत्॥ ८॥

नदी-तटपर, विष्णु-मन्दिरमें, जनशून्य-पर्वतपर अथवा वनमें चित्तको एकाग्र करके इस महान् मन्त्रको सिद्ध करना चाहिये॥ ८॥

ध्यान

महाशैलं समुत्पाट्य धावन्तं रावणं प्रति।
तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट मम जीवन्न मोक्ष्यसे॥ ९॥
इति ब्रुवन्तं कोपेन क्रोधरक्तमुखाम्बुजम्।
भोगीन्द्राभं स्वलाङ्गूलमुत्क्षिपन्तं मुहुर्मुहुः॥ १०॥
लाक्षारक्तारुणं रौद्रं कालान्तकयमोपमम्।
ज्वलदग्निसमं नेत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥ ११॥
अङ्गदाद्यैर्महावीरैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम्।
एवं रूपं हनूमन्तं ध्यात्वा यः प्रजपेन्मनुम्॥ १२॥
लक्षजापात् प्रसन्नः स्यात् सत्यं ते कथितं मया।
ध्यानैकमाश्रितानां च सिद्धिरेव न संशयः॥ १३॥

उस समय हनुमानजीका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—"वे युद्धस्थलमें महान् पर्वत उखाड़कर रावणपर आक्रमण कर रहे हैं और कह रहे हैं—रे दुष्ट! खड़ा रह, खड़ा रह! तू मेरे (हाथसे) जीता हुआ नहीं छूट सकेगा।' वे क्रुद्ध होकर इस प्रकार बोल रहे हैं, क्रोधके कारण उनका मुखकमल लाल हो गया है, वे शेषनागकी-सी कान्तिवाली अपनी पूँछको बारंबार फटकार रहे हैं, उनके शरीरका वर्ण लाक्षाके समान लाल है, वे अत्यन्त भयंकर और प्रलयकालीन यमराजके सदृश दीख रहे हैं। उनके नेत्र प्रज्वलित अग्निके समान हैं और शरीर-

कान्ति करोड़ों सूर्योंकी आभा-सरीखी है तथा उन रुद्रावतारको अङ्गद आदि श्रेष्ठ योद्धा घेरे हुए हैं।'' हनुमानजीका इस रूपमें ध्यान करके जो हनुमन्मन्त्रका जप करता है, उसका एक लाख जप पूर्ण होनेपर हनुमानजी उसपर प्रसन्न हो जाते हैं। यह मैंने तुम्हें सत्य बात बतलायी है। जो एकमात्र ध्यानका ही आश्रय लेनेवाले हैं, उन्हें भी निस्संदेह सिद्धि प्राप्त होती है॥ ९—१३॥

प्रातः स्नात्वा नदीतीर उपविश्य कुशासने।
प्राणायामं षडङ्गं च मूलेन सकलं चरेत्॥ १४॥

प्रातःकाल स्नान करके नदी-तटपर कुशासनपर बैठकर प्राणायाम करके मूलमन्त्रद्वारा षडङ्ग न्यास (करन्यास, अङ्गन्यास आदि) करे॥ १४॥

पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा ध्यात्वा रामं ससीतकम्।
ताम्रपात्रे ततः पद्ममष्टपत्रं सकेसरम्॥ १५॥
रक्तचन्दनघृष्टेन लिखेत्तस्य शलाकया।
कर्णिकायां लिखेन्मन्त्रं तत्रावाह्य कपिं प्रभुम्॥ १६॥
कर्णिकायां यजेद्देवं दत्त्वा पाद्यादिकं ततः।
गन्धपुष्पादिकं चैव निवेद्य मूलमन्त्रतः॥ १७॥

तत्पश्चात् सीतासहित श्रीरामका ध्यान कर उन्हें आठ बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। तदनन्तर ताँबेके पात्रमें रक्त-चन्दनकी शलाका (लेखनी)-से घिसे हुए रक्त-चन्दनसे केसरसहित अष्टदल-कमल बनावे, उसकी कर्णिकामें मन्त्राक्षरोंका विन्यास करे, फिर उसी कर्णिकामें सामर्थ्यशाली देवता कपिराज हनुमानजीका आवाहन करके उन्हें पाद्य-अर्घ्य आदि देनेके पश्चात् मूलमन्त्रसे गन्ध-पुष्प आदि निवेदित करके उनकी पूजा करे॥ १५—१७॥

सुग्रीवं लक्ष्मणं चैव अङ्गदं नलनीलकम्।
जाम्बवन्तं च कुमुदं केसरिणं दले दले॥ १८॥
पूर्वादिक्रमतो देवि पूजयेद् गन्धचन्दनैः।
पवनं चाञ्जनीं चैव पूजयेद् दक्षवामतः॥ १९॥
दलाग्रेषु क्रमात्पूज्या लोकपालास्ततः परम्।
ध्यात्वा जपेन्मन्त्रराजं लक्षं यावच्च साधकः॥ २०॥
लक्षान्ते दिवसं प्राप्य कुर्याच्च पूजनं महत्।

देवि! फिर उस अष्टदल-कमलके प्रत्येक दलपर पूर्वादि क्रमसे सुग्रीव, लक्ष्मण अङ्गद, नल, नील, जाम्बवान्, कुमुद और केसरीका आवाहन करके सुगन्धित चन्दनादिद्वारा उनकी पूजा करे। पुनः उस कमलके दायें-बायें क्रमशः पवन और अञ्जनीकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् दलोंके अग्रभागमें क्रमशः लोकपालोंकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार साधकको हनुमानजीका ध्यान करके इस मन्त्रराजका एक लाखकी संख्यातक जप करना चाहिये और जिस दिन एक लाखकी संख्या-पूर्ति हो, उस दिन हनुमानजीकी विशेषरूपसे पूजा करे॥ १८—२०½॥

एकाग्रमनसा धीमांस्तस्मिन् पवननन्दने॥ २१॥
दिवारात्रौ जपं कुर्याद् यावत्संदर्शनं भवेत्।

बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि उन पवननन्दन हनुमानमें मनको एकाग्र करके दिन-रात तबतक जप करता रहे, जबतक उनका दर्शन प्राप्त न हो जाय॥ २१½॥

सुदृढं साधकं मत्वा निशीथे पवनात्मजः॥ २२॥
सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा प्रयाति साधकाग्रतः।
यथेप्सितं वरं दत्त्वा साधकाय कपिप्रभुः॥ २३॥
सर्वसौख्यमवाप्नोति विहरेदात्मनः सुखैः।

साधकको सुदृढ़ जानकर पवनकुमार परम प्रसन्न होते हैं और फिर आधी-रातके समय वे कपिराज उस साधकके समक्ष प्रकट होकर उसे मनोवाञ्छित वर प्रदान करके अन्तर्हित हो जाते हैं। इससे साधकको सब प्रकारके सुखकी प्राप्ति हो जाती है और वह आत्म-सुखमें निमग्न होकर आनन्दका उपभोग करता है॥ २२-२३½॥

एतच्च साधनं पुण्यं देवानामपि दुर्लभम्।
तव स्नेहात् समाख्यातं भक्तासि यदि पार्वति॥ २४॥

पार्वति! यह परम पवित्र साधन देवताओंके लिये भी दुर्लभ है, परंतु तुम्हारी मुझमें अटल भक्ति है, इस कारण तुम्हारे स्नेहके वशीभूत होकर मैंने तुमसे इसका वर्णन किया है॥ २४॥

वीरसाधनम्—

हनुमतोऽतिगुह्यं च लिख्यते वीरसाधनम्।
ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय कृतनित्यक्रियो द्विजः॥ २५॥
गत्वा नदीं ततः स्नात्वा तीर्थमावाह्य त्वष्टधा।
मूलमन्त्रं ततो जप्त्वा संसिक्तो नित्यसंख्यया॥ २६॥
ततो वासः परीधाय गङ्गातीरेऽथवा शुचौ।

अब हनुमानजीका परम गोपनीय वीरसाधन लिखा जा रहा है—द्विजको चाहिये कि ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर शौचादि नित्यकर्मोंसे निवृत्त होकर किसी नदीके तटपर जाय और तीर्थोंका आवाहन करके स्नान करे। तत्पश्चात् गीले वस्त्र पहने हुए ही नियमित संख्यापूर्वक आठ बार मूलमन्त्रका जप करे और फिर स्वच्छ वस्त्र धारण करके गङ्गा-तटपर अथवा किसी भी पवित्र स्थानपर बैठकर न्यासादि करे॥ २५-२६ $\frac{1}{2}$ ॥

उपविश्य—

आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।

आं हृदयाय नम इत्यादिना च कराङ्गन्यासौ कुर्यात्।

करन्यासः—ॐ आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ईं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ ऊं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ ऐं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ औं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ अः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

अङ्गन्यासः—पूर्वोक्त प्रकारसे '**ॐ आं हृदयाय नमः। ॐ ईं शिरसे स्वाहा। ॐ ऊं शिखायै वषट्। ॐ ऐं कवचाय हुम्। ॐ औं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ अः अस्त्राय फट्।**' आदिसे अङ्गन्यास भी करना चाहिये।

ततः प्राणायामः।

अकारादिवर्णानुच्चरन्वामनासापुटेन वायुं पूरयेत्।
पञ्चवर्गानुच्चरन्कुम्भयेत्। यकाराद्येन रेचयेत्॥
एवं वारत्रयं कृत्वा मन्त्रवर्णैरङ्गन्यासं कुर्यात्।

प्राणायाम—बायीं नासिकासे अकारादि वर्णोंका उच्चारण करते हुए वायुको भीतर खींचकर पूरक और क, च, ट, त, प—इन पाँच वर्गोंका उच्चारण करते हुए कुम्भक तथा यकारसे हकारतकके वर्णोंका उच्चारण करते हुए रेचक करे। इस प्रकार तीन बार करके पुनः मन्त्रवर्णोंद्वारा अङ्गन्यास करना चाहिये।

ततो ध्यानम्—

ध्यायेद्रणे हनूमन्तं कपिकोटिसमन्वितम्।
धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमागतम्॥ २७॥
लक्ष्मणं च महावीरं पतितं रणभूतले।
गुरुं च क्रोधमुत्पाद्य गृहीत्वा गुरुपर्वतम्॥ २८॥
हाहाकारैः सदण्डैश्च कम्पयन्तं जगत्रयम्।
आब्रह्माण्डसमप्रस्थं कृत्वा भीमं कलेवरम्॥ २९॥

जो रणभूमिमें करोड़ों वानर-सैनिकोंसे घिरे हुए हैं, महावीर लक्ष्मणको युद्धस्थलमें धराशायी हुआ देखकर जो तुरंत वहाँ आ पहुँचे हैं और परम क्रुद्ध हो विशाल-पर्वत लेकर रावणको पराजित करनेके लिये उसपर आक्रमण कर रहे हैं, जो ब्रह्माण्डव्यापी विशाल भयंकर शरीर धारण करके अपने प्रहारों एवं हाहाकारोंसे त्रिलोकीको कम्पित कर रहे हैं, उन हनुमानजीका ध्यान करना चाहिये॥ २७—२९॥

इति ध्यात्वाष्टसहस्रं जपेदस्य मन्त्रः।

इस प्रकार ध्यान करके हनुमानजीके मन्त्रका आठ हजार जप करना चाहिये।

मन्त्रः

श्रीबीजं पूर्वमुच्चार्य पवनं च ततो वदेत्।
नन्दनं च ततो देयं ङेऽवसानेऽनलप्रिया॥
(श्रीपवननन्दनाय स्वाहा)॥ ३०॥

पहले '**श्री**' बीजका उच्चारण करके तत्पश्चात् चतुर्थ्यन्त '**पवननन्दनाय**' का उच्चारण करे और अन्तमें अग्निकी प्रियतमा '**स्वाहा**' का प्रयोग करे। इस प्रकार '**श्रीपवन-नन्दनाय स्वाहा**' यह दशाक्षर-मन्त्र निष्पन्न होता है॥ ३०॥

दशार्णोऽयं मनुः प्रोक्तो नराणां सुरपादपः॥

यह दशाक्षर-मन्त्र मनुष्योंके लिये कल्पवृक्षके समान कहा गया है।

सप्तदिवसं महाभयं दत्त्वा त्रिभागशेषासु निशासु नियतमागच्छति। यदि साधको मायां तरति ईप्सितं वरं प्राप्नोति॥

सात दिनोंतक रात्रिके तीन भाग शेष रहनेपर हनुमानजी साधकको महान् भयानक दृश्य दिखलाते हैं और अन्तमें निश्चय ही उसके सम्मुख प्रकट हो जाते हैं। फिर तो वह साधक मायासे पार हो जाता है और उसे मनोवाञ्छित वरकी प्राप्ति होती है।

विद्यां वापि धनं वापि राज्यं वा शत्रुनिग्रहम्।
तत्क्षणादेव प्राप्नोति सत्यं सत्यं सुनिश्चितम्॥ ३१॥

यह सर्वथा सत्य एवं सुनिश्चित है कि उसे उसी क्षण विद्या, धन, राज्य, शत्रु-निग्रह—सभी प्राप्त हो जाते हैं॥ ३१॥

(हनुमदुपासना एकादशप्रकरण)

श्रीसौभाग्यहनुमन्महामन्त्रकी प्रयोग-विधि

विनियोग

ॐ अस्य श्रीसौभाग्यहनुमन्महामन्त्रस्य श्रीरामचन्द्र ऋषिः, अतिजगती छन्दः, श्रीहनुमान्परमात्मा रुद्रो देवता, हनुमानिति बीजम्, वायुर्देवता इति शक्तिः, अञ्जनीसुत इति कीलकम्, श्रीहनुमत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ॐ इस श्रीसौभाग्यहनुमन्महामन्त्रके श्रीरामचन्द्र ऋषि, अतिजगती छन्द, श्रीहनुमान परमात्मा रुद्र देवता, 'हनुमान' बीज, वायुदेवता शक्ति और अञ्जनीसुत कीलक हैं। श्रीहनुमानकी कृपा-सिद्धिके लिये जपकालमें इसका विनियोग किया जाता है।

करन्यास

ॐ हं हनुमन् अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ वं वायुदेवतायै तर्जनीभ्यां नमः। ॐ अं अञ्जनीसुताय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ रं रामदूताय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ हं हनुमते कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ रुं रुद्रमूर्तये करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयादिन्यासः।

करन्यासके मन्त्रोंद्वारा हृदयादिन्यास भी कर लेना चाहिये।

ध्यान

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वाङ्गसुन्दरि।
अथैवं देवदेवेशध्यानं श्रीहनुमत्परम्॥ १॥
पञ्चवक्त्रं महाभीमं त्रिपञ्चनयनैर्युतम्।
बाहुभिर्दशभिः प्रोक्तं सर्वकामार्थसिद्धिदम्॥ २॥
पूर्वं च वानरं प्रोक्तं कोटिसूर्यसमप्रभम्।
दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीकुटिलेश्वरम्॥ ३॥
तथैव दक्षिणं वक्त्रं नारसिंहं महाद्भुतम्।
अत्युग्रतेजसं वर्यं भीषणं भयनाशनम्॥ ४॥
पश्चिमे गारुडं वक्त्रं वज्रतुण्डं महाबलम्।
पवनाद्रिप्रशमनं सर्वभूतनिकृन्तनम्॥ ५॥
उत्तरे सूकरं वक्त्रं कृष्णादीप्तिं नभोनिभम्।
पातालनिधिभेत्तारं ज्वररोगनिकृन्तनम्।
कुर्वन् संतोषणं तेषां सर्वशत्रुहरं परम्॥ ६॥

सर्वाङ्गसुन्दरी देवि! अब देवदेवेश्वर श्रीहनुमानसम्बन्धी ध्यानका वर्णन करता हूँ, सुनो—

जिनका स्वरूप महान् भयंकर है, जो पाँच मुख, पंद्रह नेत्र और दस भुजाओंसे युक्त हैं तथा सम्पूर्ण कामनाओंके सिद्धिदाता कहे जाते हैं, जिनका पूर्व-दिशाका मुख वानरका है, वह करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् और विकराल दाढ़ोंसे सुशोभित है, उसकी भौंहें तिरछी चढ़ी हुई हैं। उसी प्रकार दक्षिण-दिशाका मुख नृसिंहका-सा है, वह महान् अद्भुत, प्रचण्ड तेजस्वी, सर्वश्रेष्ठ, भीषण और भयनाशक है। पश्चिमवाला मुख गरुडके सदृश है, उसकी चोंच वज्र-सरीखी है तथा वह महाबली, पवन एवं पर्वतोंको प्रशान्त करनेवाला और सम्पूर्ण प्राणियोंको छिन्न-भिन्न कर देनेवाला है। उत्तर-दिशामें सूकर-सरीखा मुख है, उसकी कान्ति आकाश-सदृश कृष्ण-वर्णकी है तथा वह पाताल-निधिका भेदन करनेवाला, ज्वर-रोगका समूलोच्छेदक, परमोत्कृष्ट, सम्पूर्ण शत्रुओंका संहारक और अपने भक्तोंको संतुष्ट करनेवाला है, (उन हनुमानजीका ध्यान करना चाहिये)॥ १—६॥

इति ध्यात्वा पञ्चोपचारैः पूजां कुर्यात्। अथ सप्तमुद्राः प्रदर्शयेत्॥

इस प्रकार हनुमानजीका ध्यान करके पञ्चोपचारद्वारा उनकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर उन्हें सात मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिये।

सप्तमुद्रा

खड्गं त्रिशूलं खट्वाङ्गं पाशं चाङ्कुशमेव च।
चक्रमुद्गरमुद्रे च सप्तमुद्राः प्रकीर्तिताः॥ ७॥

खड्ग, त्रिशूल, खट्वाङ्ग, पाश, अङ्कुश, चक्र और मुद्गर—ये सात मुद्राएँ कही गयी हैं॥ ७॥

माला-मन्त्र

ॐ रामदूताय अञ्जनीवायुसुताय महाबलाय सीताशोक-दुःखनिवारणाय लङ्कोपदहनाय बाहुबलप्रचण्डाय फाल्गुन-सखाय कोलाहलब्रह्माण्डविश्वरूपाय सप्तसमुद्रनीरलङ्घनाय पिङ्गनयनायामितविक्रमाय सूर्यबिम्बफलसेविताय दृष्टिनिरा-लंकृताय संजीवसंजीवितलक्ष्मणाङ्गदसुग्रीवमहाकपिसैन्य-प्राणनिर्वाहकाय दशकण्ठविध्वंसनकारणसेविताय श्रीसीतासमेतश्रीरामचन्द्रमूर्त्तये स्वाहा॥

मूल-मन्त्र

ॐ हनुमन् वायुदैवताय अञ्जनासुत रामदूत हनुमन् रुद्र-मूर्त्तये स्वाहा॥ इति यथाशक्ति यथाज्ञानं यथासंख्यं मूल-मन्त्रजपं कुर्यात्॥ मूलमन्त्रजपकाले मालामन्त्रजपस्याद्यन्तयो-

स्त्रिरावृत्तिः। एतन्नामसम्पुटीकरणसूचनम्॥ अथ पूर्वोक्तमुद्राः प्रदर्शयेत्। तथा पूर्वोक्तं ध्यानं कराङ्गन्यासांश्च कुर्यात्। गन्धादिनमस्कारान्तं पूजनं चेति॥

(श्रीहनुमदुपासनाध्याये श्रीसौभाग्यहनुमन्महामन्त्र-निरूपणं नाम प्रकरणमष्टमम्॥ ८॥)

'ॐ हनुमन् वायुदैवताय अञ्जनासुत रामदूत हनुमन् रुद्रमूर्तये स्वाहा।'—इस मूल-मन्त्रका अपनी शक्ति और ज्ञानके अनुसार नियमित संख्यातक जप करना चाहिये। मूल-मन्त्रका जप करते समय आदि-अन्तमें मालामन्त्रका तीन बार पाठ करना चाहिये। इसीको सम्पुटीकरण कहते हैं। तदनन्तर पूर्वोक्त मुद्राओंको प्रदर्शित करे तथा पूर्वोक्त ध्यान और करन्यास एवं अङ्गन्यास भी करे। फिर गन्धादिसमर्पणसे लेकर नमस्कारपर्यन्त पूजन भी करे। —'शुक्ल'

हनुमद्द्वादशाक्षर-मन्त्रके प्रयोगकी विधि

'मन्त्र-महोदधि' में हनुमद्द्वादशाक्षर-मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—**'हौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्त्रौं ह्स्ख्फ्रें ह् सौं हनुमते नमः।'**

पहले हाथमें जल लेकर निम्नाङ्कित वाक्य बोलकर जलको पृथ्वीपर गिरा दे—इसे विनियोग कहते हैं।

विनियोग

ॐ अस्य द्वादशाक्षरहनुमन्मन्त्रस्य रामचन्द्र ऋषिः। जगती छन्दः। हनुमान् देवता। ह्सौं बीजम्। ह्स्फ्रें शक्तिः। सर्वेष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

तत्पश्चात् ऋष्यादि न्यास करे—

ऋष्यादिन्यास

ॐ रामचन्द्र ऋषये नमः, शिरसि॥ १॥ जगतीछन्दसे नमः, मुखे॥ २॥ हनुमद्देवतायै नमः, हृदि॥ ३॥ ह्सौं बीजाय नमः, गुह्ये॥ ४॥ ह्स्फ्रें शक्तये नमः, पादयोः॥ ५॥ विनियोगाय नमः, सर्वाङ्गे॥ ६॥

इसके बाद हृदयादि अङ्गन्यास करना चाहिये—

हृदयाद्यङ्गन्यास

ॐ हौं हृदयाय नमः॥ १॥ ॐ ह्स्फ्रें शिरसे स्वाहा॥ २॥ ॐ ख्फ्रें शिखायै वषट्॥ ३॥ ॐ ह्स्त्रौं कवचाय हुम्॥ ४॥ ॐ ह्स्ख्फ्रें नेत्रत्रयाय वौषट्॥ ५॥ ॐ ह्सौं अस्त्राय फट्॥ ६॥

इन्हीं मन्त्रोंसे करन्यास भी करना चाहिये—

करन्यास

ॐ हौं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्स्फ्रें तर्जनीभ्यां नमः। ॐ ख्फ्रें मध्यमाभ्यां नमः। ॐ ह्स्त्रौं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ ह्स्ख्फ्रें कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ह्सौं करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः।

इसके बाद मन्त्रके बारह अक्षरोंका बारह अङ्गोंमें न्यास करे—

ॐ हौं नमः, मूर्ध्नि॥ १॥ ॐ ह्स्फ्रें नमः, भाले॥ २॥ ॐ ख्फ्रें नमः, नेत्रयोः॥ ३॥ ॐ ह्स्त्रौं नमः, मुखे॥ ४॥ ॐ ह्स्ख्फ्रें नमः, कण्ठे॥ ५॥ ॐ ह्सौं नमः, बाह्वोः॥ ६॥ ॐ हं नमः, हृदि॥ ७॥ ॐ नुं नमः, कुक्षौ॥ ८॥ ॐ मं नमः, नाभौ॥ ९॥ ॐ तें नमः, लिङ्गे॥ १०॥ ॐ नं नमः, जानुद्वये॥ ११॥ ॐ मः नमः, पादयोः॥ १२॥

इस प्रकार न्यास करके ध्यान करे—

ध्यान

बालार्कायुततेजसं त्रिभुवनप्रक्षोभकं सुन्दरं
सुग्रीवादिसमस्तवानरगणैः संसेव्यपादाम्बुजम्।
नादेनैव समस्तराक्षसगणान् संत्रासयन्तं प्रभुं
श्रीमद्रामपदाम्बुजस्मृतिरतं ध्यायामि वातात्मजम्॥

जिनका तेज प्रातःकालके दससहस्र सूर्योंके समान है, जो तीनों लोकोंको क्षुब्ध करनेमें समर्थ एवं सुन्दर हैं, सुग्रीव आदि समस्त वानरगण जिनके चरण-कमलोंकी सेवामें लगे रहते हैं, जो अपनी गम्भीर गर्जना मात्रसे ही समस्त राक्षससमूहोंको संत्रस्त कर देते हैं तथा श्रीमान् रामके चरणारविन्दोंकी स्मृतिमें सदा संलग्न रहते हैं, उन सर्वसमर्थ पवनपुत्र हनुमानजीका मैं ध्यान करता हूँ।

इस प्रकार ध्यान करके सर्वतोभद्रमण्डलमें मण्डूकसे लेकर परतत्त्वपर्यन्त पीठदेवताओंकी निम्न प्रकारसे स्थापना करे। पहले फूल और अक्षत लेकर पीठके वाम (उत्तर)-भागमें चतुर्विध गुरुओंका स्मरण और पूजन करे। यथा—

ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परात्परगुरुभ्यो नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः। फिर पीठके दक्षिण भागमें गणेशका आवाहन-पूजन करे। यथा—**'गणपतये नमः।' गणपतिमावाहयामि,** फिर पीठके

मध्यभागमें इष्ट देवताको नमस्कार करे। यथा—'**हनुमद्देवतायै नमः।**' इस प्रकार नमस्कार करके पीठके मध्यभागमें ही "**ॐ मं मण्डूकाय नमः, ॐ कं कालाग्निरुद्राय नमः, ॐ आं आधारशक्तये नमः, ॐ कूं कूर्माय नमः, ॐ अं अनन्ताय नमः, ॐ पृं पृथिव्यै नमः, ॐ क्षीं क्षीरसागराय नमः, ॐ रं रत्नद्वीपाय नमः, ॐ रं रत्नमण्डलाय नमः, ॐ कं कल्पवृक्षाय नमः, ॐ रं रत्नवेदिकायै नमः, ॐ रं रत्नसिंहासनाय नमः,** (पीठके अग्निकोणगत पायेमें) **ॐ धं धर्माय नमः,** (नैर्ऋत्यकोणमें) **ॐ ज्ञां ज्ञानाय नमः,** (वायव्यकोणमें) **ॐ वैं वैराग्याय नमः,** (ईशान कोणमें) **ॐ ऐं ऐश्वर्याय नमः,** (पीठके पूर्वभागमें) **ॐ अं अधर्माय नमः,** (दक्षिण भागमें) **ॐ अं अज्ञानाय नमः,** (पश्चिम भागमें) **ॐ अं अवैराग्याय नमः,** (उत्तर भागमें) **ॐ अं अनैश्वर्याय नमः,** (पुनः पीठके मध्यभागमें) **ॐ आं आनन्दकन्दाय नमः, ॐ सं संविन्नालाय नमः, ॐ सं सर्वतत्त्वकमलासनाय नमः, ॐ प्रं प्रकृतिमय-पत्रेभ्यो नमः, ॐ विं विकारमयकेसरेभ्यो नमः, ॐ पं पञ्चाशद्वर्णाढ्यकर्णिकाभ्यो नमः, ॐ अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः; ॐ सों सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः; ॐ वं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः; ॐ सं सत्त्वाय नमः; ॐ रं रजसे नमः; ॐ तं तमसे नमः; ॐ आं आत्मने नमः; ॐ पं परमात्मने नमः; ॐ अं अन्तरात्मने नमः; ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः; ॐ मां मायातत्त्वाय नमः; ॐ कं कलातत्त्वाय नमः; ॐ विं विद्यातत्त्वाय नमः; ॐ पं परतत्त्वाय नमः**"—इन मन्त्रोंद्वारा उन-उन देवताओंकी स्थापना और पूजा करके नौ पीठ-शक्तियोंका पूजन करे। यथा—(पूर्व दिशामें) **ॐ विमलायै नमः,** (अग्निकोणमें) **ॐ उत्कर्षिण्यै नमः,** (दक्षिण दिशामें) **ॐ ज्ञानायै नमः,** (नैर्ऋत्यकोणमें) **ॐ क्रियायै नमः,** (पश्चिममें) **ॐ योगायै नमः,** (वायव्यकोणमें) **ॐ प्रह्व्यै नमः,** (उत्तर दिशामें) **ॐ सत्यायै नमः,** (ईशानकोणमें) **ॐ ईशानायै नमः,** (मध्यभागमें) **ॐ अनुग्रहायै नमः।**

तदनन्तर स्वर्णादिनिर्मित यन्त्र अथवा मूर्तिको ताम्रपात्रमें रखकर उसमें घी लगाकर उसके ऊपर दूध या जलकी धारा गिराये। फिर स्वच्छ वस्त्रसे पोंछकर '**ॐ नमो भगवते हनुमते सर्वभूतात्मने हनुमते सर्वात्मसंयोगपद्मपीठात्मने नमः**'—इस मन्त्रके द्वारा पुष्प आदिका आसन देकर पीठके मध्यभागमें उसकी स्थापना और प्रतिष्ठा करे। फिर ध्यान करके पूर्वोक्त मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना कर पाद्यसे लेकर पुष्पाञ्जलिपर्यन्त विविध उपचारोंसे पूजा करके इष्टदेवकी आज्ञासे आवरण-पूजा करे। यथा—

संविन्मयः परो देवः परामृतरसप्रियः।
अनुज्ञां हनुमन् देहि परिवारार्चनाय मे॥

इस मन्त्रद्वारा पुष्पाञ्जलि देकर आज्ञा प्राप्त करके आवरण-पूजा करे। क्रम इस प्रकार है—पहले षट्कोणात्मक केसरोंमें, फिर कमलके आठ दलोंमें, फिर दलोंके अग्रभागोंमें आवरण-पूजा की जाती है। तदनन्तर भूपुर-चक्रमें दिक्पालों और आयुधोंकी पूजा होती है।

षट्कोणात्मक केसरोंमें आग्नेयादि क्रमसे हृदयादि छः अङ्गोंकी पूजा की जाती है—

ॐ हौं हृदयाय नमः। हृदयश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥१॥ ॐ ह् स्फ्रें शिरसे स्वाहा। शिरः-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ २॥ ॐ ख्फ्रें शिखायै वषट्। शिखाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ३॥ ॐ ह् स्त्रौं कवचाय हुम्। कवचश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ४॥ ॐ ह्स्ख्फ्रें नेत्रत्रयाय वौषट्। नेत्रत्रय-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ५॥ ॐ ह् सौं अस्त्राय फट्। अस्त्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ६॥

तत्पश्चात् पुष्पाञ्जलि लेकर मूलमन्त्रका उच्चारण करके कहे—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्॥

—ऐसा कहकर पुष्पाञ्जलि दे और '**पूजितास्तर्पिताः सन्तु**' (पूजित देवता तृप्त हों) यह उच्चारण करे। यह प्रथम आवरणकी पूजा हुई।

तदनन्तर कमलके आठ दलोंमें पूर्वादि दिशाओंमें दक्षिणावर्तक्रमसे श्रीरामभक्त आदिकी पूजा करे। यथा—

ॐ रामभक्ताय नमः। रामभक्तश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ १॥ ॐ महातेजसे नमः। महातेजःश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ २॥ ॐ कपिराजाय नमः। कपिराजश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ३॥ ॐ महाबलाय नमः। महाबलश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ४॥ ॐ द्रोणाद्रिहारकाय नमः। द्रोणाद्रिहारकश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ५॥ ॐ मेरुपीठार्चनकारकाय

नमः। मेरुपीठार्चनकारकश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ६॥ ॐ दक्षिणाशाभास्कराय नमः। दक्षिणाशाभास्करश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ७॥ ॐ सर्वविघ्ननिवारकाय नमः। सर्वविघ्ननिवारकश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ८॥

इस प्रकार नाम-मन्त्रोंसे पूजन करके पुष्पाञ्जलि दे। यह द्वितीय आवरणकी पूजा हुई।

तत्पश्चात् आठ दलोंके अग्रभागोंमें पूर्वादिक्रमसे सुग्रीव आदिकी पूजा करे। यथा—

ॐ सुग्रीवाय नमः। सुग्रीवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ १॥ ॐ अङ्गदाय नमः। अङ्गदश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ २॥ ॐ नीलाय नमः। नीलश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ३॥ ॐ जाम्बवते नमः। जाम्बवच्छ्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ४॥ ॐ नलाय नमः। नलश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ५॥ ॐ सुषेणाय नमः। सुषेणश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ६॥ ॐ द्विविदाय नमः। द्विविदश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ७॥ ॐ मयन्दाय नमः। मयन्दश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥ ८॥

इस प्रकार आठ वानरोंकी पूजा करके पुष्पाञ्जलि दे। यह तीसरे आवरणकी पूजा हुई।

तदनन्तर भूपुरचक्रकी दस दिशाओंमें इन्द्रादि दस दिक्पालोंकी पूर्ववत् पूजा करे। यथा—

(पूर्व दिशामें) **ॐ इन्द्राय नमः। इन्द्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।** इसी प्रकार अन्य दिक्पालोंके लिये भी वाक्य-योजना कर लेनी चाहिये। इस प्रकार पूजा करके पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। यह चतुर्थ आवरणकी पूजा हुई।

तदनन्तर भूपुरचक्रके बाह्य भागमें पूर्वादि दिशाओंमें वज्र आदि आयुधोंकी पूजा करे। यथा—

ॐ वं वज्राय नमः। वज्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। इत्यादि। इस तरह पूजा समाप्त करके पुष्पाञ्जलि दे। यह पञ्चम आवरणकी पूजा हुई।

इस प्रकार आवरण-पूजा करनेके बाद धूप, दीप, नैवेद्य, मुख-शुद्धि और नमस्कार—इन पूजनोपचारोंद्वारा पूजन करके मन्त्रका जप करे। बारह हजार जप करनेसे इस मन्त्रका एक पुरश्चरण होता है। जपके पश्चात् उसका दशांश होम, होमका दशांश तर्पण और उसका दशांश अथवा बाईस ब्राह्मणोंको भोजन करानेका विधान है।

धर्मारण्यके ब्राह्मणोंद्वारा श्रीहनुमानजीकी स्तुति

नमः श्रीरामभक्ताय अक्षविध्वंसनाय च। नमो रक्षःपुरीदाहकारिणे वज्रधारिणे॥
नमो ब्राह्मणदेवाय वायुपुत्राय ते नमः। नमोऽस्तु रामभक्ताय गोब्राह्मणहिताय च॥
नमोऽस्तु रुद्ररूपाय कृष्णवक्त्राय ते नमः। अञ्जनीसूनवे नित्यं सर्वव्याधिहराय च॥
नागयज्ञोपवीताय प्रबलाय नमोऽस्तु ते। स्वयं समुद्रतीर्णाय सेतुबन्धनकारिणे॥

(स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्ड, धर्मारण्यमा० ३७। ३—८)

आप श्रीरामके भक्त और अक्षकुमारके प्राणोंको हरनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। राक्षसराज रावणकी लंकापुरीको जलानेवाले तथा वज्रधारी आपको प्रणाम है। ब्राह्मणोंके लिये देवरूप आपको नमस्कार है। वायुनन्दनको प्रणाम है। श्रीरामजीके भक्त तथा गौओं और ब्राह्मणोंके हितकारी आपको नमस्कार है। आपने रुद्ररूपसे अवतार लिया है, आपका मुख कृष्णवर्णका है, आप सम्पूर्ण व्याधियोंका नित्य विनाश करते रहते हैं, अञ्जनानन्दन! आपको अभिवादन है। जिन्होंने नागको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण कर रखा है, जो स्वयं ही समुद्रको लाँघ जानेवाले और सेतुबन्धके कार्यके सहयोगी हैं, उन महाबली हनुमानजीको नमस्कार है।

श्रीहनुमदष्टादशाक्षरमन्त्र-प्रयोग

'मन्त्र-महोदधि' में यह मन्त्र इस प्रकार उल्लिखित है—'**ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा।**' इस अष्टादशाक्षर-मन्त्रका प्रयोग स्नान एवं संध्यादि नित्यक्रियासे निवृत्त होकर करना चाहिये।

विनियोग

ॐ अस्य मन्त्रस्य ईश्वर ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, हनुमान् देवता, हुं बीजम्, स्वाहा शक्तिः, सर्वेष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

इसके अनन्तर ऋष्यादिन्यास करे—

ऋष्यादिन्यास

ॐ ईश्वर ऋषये नमः, शिरसि। ॐ अनुष्टुप् छन्दसे नमः, मुखे। ॐ हनुमद्देवतायै नमः, हृदि। ॐ हुं बीजाय नमः गुह्ये। ॐ स्वाहा शक्तये नमः, पादयोः। ॐ विनियोगाय नमः, सर्वाङ्गे।

इसके अनन्तर हृदयादिन्यास करे—

हृदयादिन्यास

ॐ आञ्जनेयाय नमः, हृदयाय नमः। ॐ रुद्रमूर्तये नमः, शिरसे स्वाहा। ॐ वायुपुत्राय नमः, शिखायै वषट्। ॐ अग्निगर्भाय नमः, कवचाय हुम्। ॐ रामदूताय नमः, नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ब्रह्मास्त्रनिवारकाय नमः, अस्त्राय फट्।

इस प्रकार अङ्गन्यास करनेके अनन्तर उपर्युक्त मन्त्रोंसे करन्यास भी कर लेना चाहिये।

तत्पश्चात् हनुमानजीका ध्यान करे—

ध्यान

ॐ दहनतप्तसुवर्णसमप्रभं
भयहरं हृदये विहिताञ्जलिम्।
श्रवणकुण्डलशोभिमुखाम्बुजं
नमत वानरराजमहाद्भुतम्॥

अग्निमें तपाये हुए सुवर्णकी चटकीली आभा-सरीखी जिनकी शरीर-कान्ति है, जो भयको दूर करनेवाले हैं, जिनकी बद्धाञ्जलि हृदयपर विराजमान है, जिनका मुख-कमल कानोंमें झलमलाते हुए कुण्डलोंकी छटासे सुशोभित है, उन महान् अद्भुत रूपधारी वानरराज हनुमानजीको नमस्कार करना चाहिये।

इसके अनन्तर सर्वतोभद्रमण्डलपर मण्डूकादि परतत्त्वान्त पीठ-देवताओंकी स्थापना कर नौ पीठ-शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। क्रमशः पूर्वकी ओरसे मन्त्रोंको पढ़ता जाय और उनपर गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि एक ही साथ चढ़ाता जाय।

ॐ विमलायै नमः (पूर्वमें), **ॐ उत्कर्षिण्यै नमः** (अग्निकोणमें), **ॐ ज्ञानायै नमः** (दक्षिणमें), **ॐ क्रियायै नमः** (ईशानकोणमें), **ॐ योगायै नमः** (पश्चिममें), **प्रह्व्यै नमः** (वायुकोणमें), **ॐ सत्यायै नमः** (उत्तरमें), **ॐ ईशानायै नमः** (नैर्ऋत्यकोणमें), **ॐ अनुग्रहायै नमः** (मध्यमें)।

इसके पश्चात् सुवर्ण या अन्य किसी धातुसे निर्मित मूर्तिको ताम्रपात्रमें रखकर घृतसे लेप करके उसपर दूध या जलकी धारासे स्नान कराये, फिर पीठके मध्यमें उसकी स्थापना एवं प्राणप्रतिष्ठा करके मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना कर पाद्य, अर्घ्य, नैवेद्य, पुष्प, गन्ध आदिसे पूजन करना चाहिये।

आवरण-पूजनके लिये सर्वप्रथम हाथमें फूल लेकर मूलमन्त्रका उच्चारण करके हनुमानजीकी आज्ञाके लिये निम्नलिखित मन्त्र पढ़े—

ॐ संविन्मयः परो देवः परामृतरसप्रियः।
अनुज्ञां हनुमन् देहि परिवारार्चनाय मे॥

इस प्रकार फूल चढ़ाकर '**पूजितास्तर्पिताः सन्तु**' ऐसा कहे। तदनन्तर सबसे पहले षट्कोण-केसरमें अग्निकोणसे आरम्भकर क्रमशः छः अङ्गोंका पूजन मन्त्र पढ़कर इस प्रकार करे—

ॐआञ्जनेयाय हृदयाय नमः, हृदयश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (अग्निकोणमें), **ॐ रुद्रमूर्तये शिरसे स्वाहा, शिरःश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः** (दक्षिणमें), **ॐ वायुपुत्राय शिखायै वषट्, शिखाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः** (ईशानकोणमें), **ॐ अग्निगर्भाय कवचाय हुम्, कवचश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः** (पश्चिममें), **ॐ रामदूताय नेत्रत्रयाय वौषट्, नेत्रत्रयश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः** (वायुकोणमें), **ॐ ब्रह्मास्त्रनिवारकाय अस्त्राय फट्, अस्त्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः** (उत्तरमें)।

इसके पश्चात् हाथमें पुष्प लेकर मूलमन्त्रका उच्चारण कर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए पुष्पाञ्जलि समर्पित करना चाहिये—

ॐ अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्॥

इसके अनन्तर अष्टदल कमलपर पूज्य और पूजक अर्थात् अपने इष्ट और स्वयंके मध्य पूर्व दिशाकी कल्पना करके पूर्वसे आरम्भ कर अन्य दिशाओंमें क्रमशः द्वितीयावरणका पूजन करे—

ॐ रामभक्ताय नमः (पूर्वमें), **ॐ महातेजसे नमः** (अग्निकोणमें), **ॐ कपिराजाय नमः** (दक्षिणमें), **ॐ महाबलाय नमः** (ईशानकोणमें), **ॐ द्रोणाद्रिहारकाय नमः** (पश्चिममें), **ॐ मेरुपीठार्चनकारकाय नमः** (वायुकोणमें), **ॐ दक्षिणाशाभास्कराय नमः** (उत्तरमें), **ॐ सर्वविघ्ननिवारकाय नमः** (नैर्ऋत्यमें)। इस प्रकार द्वितीयावरणका पूजन करके पुष्पाञ्जलि समर्पित करे।

तृतीयावरणका पूजन अष्टकोणके अग्रभागपर पहलेकी ही भाँति पूर्वसे आरम्भकर अन्य दिशाओंमें पूजन करते हुए निम्नोक्त प्रकारसे करना चाहिये—

ॐ सुग्रीवाय नमः (पूर्वसे अष्टकोणके अग्रभागपर), **ॐ अङ्गदाय नमः** (अग्निकोणमें), **ॐ नीलाय नमः** (दक्षिणमें), **ॐ जाम्बवते नमः** (ईशानकोणमें), **ॐ नलाय नमः** (पश्चिममें), **ॐ सुषेणाय नमः** (वायुकोणमें), **ॐ द्विविदाय नमः** (उत्तरमें), **ॐ मयन्दाय नमः** (नैर्ऋत्यमें)। इस प्रकार तृतीयावरणका पूजन समाप्त कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये।

सबके अन्तमें चतुर्थ आवरणके पूजनमें भूपुरपर अर्थात् सर्वतोभद्रके बाह्य भागपर दसों दिक्पालोंकी और उनके वज्रादि आयुधोंकी पूजा करके पुष्पाञ्जलि समर्पित करे। इस प्रकार आवरण-पूजनके समाप्त होनेपर धूप, दीप, नैवेद्यादिसे पूजन कर नमस्कार करे।

इसके अनन्तर मूलमन्त्रका पुरश्चरण-विधिसे लक्ष बार जप करना चाहिये। उसका दशांश अर्थात् दस हजार होम करना चाहिये। ऐसा करनेसे मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मन्त्र सिद्ध हो जानेपर मन्त्र-प्रयोगका साधन करना चाहिये।

अनुवादक—श्रीवैदेहीशरणजी, शास्त्री

श्रीरामकृतं
श्रीहनुमत्सहस्त्रनामस्तोत्रम्

श्रीहनुमानजी जिनके इष्ट देवता हैं, उनको तो श्रीहनुमत्-सहस्त्रनामका पाठ प्रतिदिन करना ही चाहिये, परंतु साधारणतः कोई भी साधक इस सहस्त्रनामका पाठ करके लाभ उठा सकता है। यह हनुमत्सहस्त्रनाम 'बृहज्ज्योतिषार्णव' से लिया गया है।

देवाराधनामें सहस्त्रनामका पाठ एक विशेष स्थान रखता है। इस कारण प्रायः सभी देवताओंके पृथक्-पृथक् सहस्त्रनाम उपलब्ध हैं। प्रत्येक देवताके दो स्वरूप होते हैं—सगुण और निर्गुण। सगुणस्वरूपमें उनकी लीला, रूप, गुण, प्रभावका समावेश होता है और निर्गुणस्वरूपमें वे परब्रह्म हैं। अतः सहस्त्रनाममें इन दोनों रूपोंका दर्शन होता है। ब्रह्मस्वरूपमें प्रकृति-पुरुष, देवी-देवता, ऋषि-मुनि आदि सबका समावेश होता है। अतएव सहस्त्रनाममें उन सबका इष्ट देवताके नामके रूपमें उल्लेख किया जाता है। इष्ट देवता सर्वमय हैं, सर्वस्वरूप हैं; क्योंकि वे परब्रह्म हैं। श्रीहनुमत्सहस्त्रनाममें श्रीविष्णुभगवान्‌के प्रायः सभी अवतारोंको श्रीहनुमानजीके नामके रूपमें वर्णन किया गया है। ऋषियों, देवताओं तथा सृष्टिकी महान् ऐश्वर्यशाली विभूतियोंको श्रीहनुमानजीके नामके रूपमें वर्णन किया है। इस प्रकार सहस्त्रनामके माध्यमसे अनायास ही 'वासुदेवः सर्वम्' का पाठ साधकको पढ़ा दिया जाता है। दूसरे शब्दोंमें सहस्त्रनाममें जो नानात्व है, वह एकत्वमें अन्तर्हित है। एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य, गणेश, हनुमान आदि भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रकट होकर विभिन्न लीलाएँ करते हैं। साधक अपनी-अपनी रुचि, योग्यता, विश्वास एवं श्रद्धाके अनुसार उनमेंसे किसी एक रूपकी उपासना कर अन्तमें उसी एक परब्रह्म परमात्माको प्राप्त करते हैं।

प्रत्येक नामके उच्चारणके साथ साधकको अपने आराध्यके एक विशेष स्वरूप, गुण, प्रभाव एवं लीलाका स्मरण होता है। इष्टदेवके विभिन्न नामोंके साथ विभिन्न लीलाओंका स्मरण, चिन्तन एवं कीर्तन कर साधक भाव-

विभोर होता रहे, सहस्रनामोंके उल्लेखका यही रहस्य प्रतीत होता है। सहस्रनामका पाठ नैष्ठिक ब्राह्मणसे या किसी साधकसे करवाकर उसका श्रवण करनेसे भी मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। मुख्यरूपसे मंगलवार और शनिवार— ये दोनों दिन श्रीहनुमानजीके पूजा-अनुष्ठानके लिये विशेष मान्य हैं। श्रीहनुमानजीके या श्रीरामजीके विग्रहके सामने इस सहस्रनामका पाठ श्रद्धा-प्रेमपूर्वक नियमितरूपसे करना चाहिये।

इस स्तोत्रका सर्वाधिक वैशिष्ट्य यह है कि स्वयं श्रीरामचन्द्रजीने इस हनुमत्सहस्रनामका पाठ करके लाभ उठाया है, यह इसकी भूमिकासे ही ज्ञात होता है तथा इसकी फलश्रुतिसे इसकी विशेष महिमा जानी जा सकती है। सहस्रनामके प्रत्येक नामका अर्थ समझते हुए निष्कामभावसे श्रद्धा-प्रेमपूर्वक पाठ करनेपर मनुष्यको परम शान्ति और परमानन्दस्वरूप परमपदकी प्राप्ति तथा परम दुर्लभ भगवत्प्रेमकी प्राप्ति भी हो सकती है। इसीलिये यहाँ इस स्तोत्रको अर्थसहित प्रकाशित किया जा रहा है। एक-एक नामको चतुर्थी विभक्तिके साथ जोड़कर 'नमः' पदके साथ पढ़कर पुष्प अर्पण करनेका विधान भी पाया जाता है। जैसे 'श्रीहनुमते नमः', 'श्रीश्रीप्रदाय नमः', 'श्रीवायुपुत्राय नमः'— इत्यादि। अस्तु, जिस विधिसे हो सके, वैसे ही साधकको अपने इष्ट देवताकी कृपा-प्राप्तिके लिये समाहित चित्तसे श्रद्धा-प्रेमपूर्वक सहस्रनामका पाठ करना चाहिये। —सम्पादक

ऋषय ऊचुः

ऋषे लौहगिरिं प्राप्तः सीताविरहकातरः।
भगवान् किं व्यधाद् रामस्तत्सर्वं ब्रूहि सत्वरम्॥ १॥

ऋषिगण बोले—महर्षि वाल्मीकिजी! सीताजीके विरहमें कातर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने लौहगिरि (ऋष्यमूक पर्वत)-पर जाकर क्या किया? वह सब वृत्तान्त अविलम्ब बतलानेकी कृपा करें॥ १॥

वाल्मीकिरुवाच

मायामानुषदेहोऽयं ददर्शाग्रे कपीश्वरम्।
हनुमन्तं जगत्स्वामी बालार्कसमतेजसम्॥ २॥
स सत्वरं समागम्य साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा हनुमान् राममब्रवीत्॥ ३॥

वाल्मीकिजीने कहा—अपनी मायाशक्तिके द्वारा मानव-विग्रह धारण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् श्रीरामने उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी महाकपीश्वर श्रीहनुमानजीको अपने सामने देखा। तब श्रीहनुमानजीने शीघ्र भगवान् श्रीरामके पास जाकर, साष्टाङ्ग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे॥ २-३॥

श्रीहनुमानुवाच

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि दृष्ट्वा त्वत्पादपङ्कजम्।
योगिनामप्यगम्यं च संसारभयनाशनम्॥ ४॥
पुरुषोत्तम देवेश किं कर्तव्यं निवेद्यताम्।

श्रीहनुमानजी बोले—पुरुषोत्तम! आप योगियोंके लिये भी अगम्य हैं तथा संसारके भयका नाश करनेवाले हैं। आज मैं आपके चरणकमलका दर्शन कर धन्य और कृतकृत्य हो रहा हूँ। देवेश! अब मेरे लिये जो कार्य हो, उसे बतलाइये॥ ४½॥

श्रीराम उवाच

जनस्थानं कपिश्रेष्ठ कोऽप्यागत्य विदेहजाम्॥ ५॥
हतवान् विप्रसंवेशो मारीचानुगते मयि।
गवेष्यः साम्प्रतं वीर जानकीहरणे परः॥ ६॥
त्वया गम्यो न को देशस्त्वं च ज्ञानवतां वरः।
सप्तकोटिमहामन्त्रमन्त्रितावयवः प्रभुः॥ ७॥

श्रीरामजी बोले—कपिश्रेष्ठ हनुमान! जब मैं मारीचको मारनेके लिये उसके पीछे गया तो ब्राह्मण-वेषधारी कोई दुष्ट जनस्थानमें आकर सीताको चुरा ले गया। वीर! अब जानकीको चुरानेवाले उस शत्रुकी खोज होनी चाहिये। कौन-सा ऐसा देश है, जहाँ तुम नहीं जा सकते। तुम ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हो तथा सात करोड़ महामन्त्रोंसे अभिमन्त्रित शरीरके कारण तुम सर्वथा समर्थ हो॥ ५—७॥

ऋषय ऊचुः

को मन्त्रः किं च तद्ध्यानं तन्नो ब्रूहि यथार्थतः।
कथासुधारसं पीत्वा न तृप्यामः परंतप॥ ८॥

ऋषिगण बोले—श्रीहनुमानजीका मन्त्र क्या है, उनके ध्यानका स्वरूप क्या है, वह सब हमको ठीक-ठीक बतलाइये। परम तपस्वी वाल्मीकिजी! आपके द्वारा वर्णित कथारूपी अमृतरसका पान कर हमलोगोंको तृप्ति नहीं हो रही है॥ ८॥

वाल्मीकिरुवाच

मन्त्रं हनुमतो विद्धि भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
महारिष्टमहापापमहादुःखनिवारणम्॥ ९॥

वाल्मीकिजीने कहा—सप्तकोटि महामन्त्रोंमें

श्रीहनुमानजीका यह मन्त्र भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है, यह सब प्रकारके महान्-से-महान् क्लेश, पाप, ग्रह-पीड़ा तथा महान् दुःखोंका निवारण करनेवाला है॥ ९॥

यह मन्त्र इस प्रकार है—

अथ मन्त्रः

'ॐ ऐं ह्रीं हनुमते रामदूताय लङ्काविध्वंसनायाञ्जनी-गर्भसम्भूताय शाकिनीडाकिनीविध्वंसनाय किलिकिलि-बुबुकारेण विभीषणाय हनुमद्देवाय। ॐ ह्रीं श्रीं ह्रौं ह्रां फट् स्वाहा'॥ १०॥

अन्यं हनुमतो मन्त्रं सहस्रनामसंज्ञितम्।
जानन्तु ऋषयः सर्वे महादुरितनाशनम्॥ ११॥

ऋषिगण! इसके अतिरिक्त एक दूसरा श्रीहनुमानजीका सहस्रनाम-संज्ञक मन्त्र है, जिसे आपलोग महापापोंका नाश करनेवाला समझें॥ ११॥

यस्य संस्मरणात् सीता लब्धा राज्यमकण्टकम्।
विभीषणाय च ददावात्मानं लब्धवान् मया॥ १२॥

जिसके जपसे श्रीरामने सीताको प्राप्त किया तथा लंकाका निष्कण्टक राज्य विभीषणको प्रदान किया और मेरेद्वारा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त किया; अर्थात् उन्होंने यह समझा कि वे पूर्णब्रह्म हैं, मनुष्य नहीं॥ १२॥

ऋषय ऊचुः

सहस्रनामसन्मन्त्रं दुःखाघौघनिवारणम्।
वाल्मीके ब्रूहि नस्तूर्णं शुश्रूषामः कथां पराम्॥ १३॥

ऋषिगण बोले—वाल्मीकिजी! हमलोग आपकी श्रेष्ठ कथाको बड़े ध्यानसे सुन रहे हैं। आप कृपया समस्त दुःख एवं पापपुञ्जको दूर करनेवाले हनुमत्सहस्रनामरूपी मन्त्रका शीघ्र ही वर्णन करें॥ १३॥

वाल्मीकिरुवाच

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे सहस्रनामकं स्तवम्।
स्तवानामुत्तमं दिव्यं सदर्थस्य प्रदायकम्॥ १४॥

वाल्मीकिजी बोले—ऋषियो! आपलोग ध्यानसे हनुमत्सहस्रनामस्तोत्रको सुनिये। यह स्तवोंमें उत्तम तथा सत्प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला दिव्य स्तोत्र है॥ १४॥

इसका विनियोग इस प्रकार है—

अथ विनियोगः

'ॐ अस्य श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीरामचन्द्र ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीहनुमान् महारुद्रो देवता, ह्रीं श्रीं ह्रौं ह्रां बीजम्, श्रीं-इति शक्तिः, किलिकिलिबुबुकारेणेति कीलकम्, लङ्काविध्वंसनायेति कवचम्, मम सर्वोपद्रवशान्त्यर्थे सर्वकामसिद्ध्यर्थे च जपे विनियोगः।'

इस हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र-मन्त्रके ऋषि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं, इसका छन्द अनुष्टुप् है, महारुद्र श्रीहनुमानजी इसके देवता हैं, **ह्रीं श्रीं ह्रौं ह्रां** बीज हैं, **श्रीं** शक्ति है, **किलिकिलिबुबुकारेण** कीलक है, **लङ्काविध्वंसनाय** कवच है। मेरे सारे उपद्रवोंकी शान्तिके लिये तथा सारी कामनाओंकी सिद्धिके लिये जपमें इसका विनियोग है।

(विनियोग-विधि—दाहिने हाथमें जल लेकर **'ॐ अस्य श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य'** से प्रारम्भ करके **'जपे विनियोगः'** तक सारा विनियोग-मन्त्र पढ़कर भूमिपर जल छोड़ दे।)

अथ न्यासः

ऋष्यादिन्यासः—'ॐ श्रीरामचन्द्रऋषये नमः, शिरसि' (पढ़कर सिरका स्पर्श करे)। **'अनुष्टुप् छन्दसे नमः, मुखे'** (पढ़कर मुखका स्पर्श करे)। **'ह्रौं बीजाय नमः, गुह्ये'** (पढ़कर गुप्त अङ्गका स्पर्श करे)। **'श्रीहनुमते कीलकाय नमः, नाभौ'** (पढ़कर नाभिका स्पर्श करे)। **'इष्टार्थे विनियोगाय नमः, अञ्जलौ'** (पढ़कर अञ्जलिका स्पर्श करे)। **इति ऋष्यादिन्यासः।**

करादिन्यासः—ॐ ऐं ह्रीं हनुमते रामदूताय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः (कहकर दोनों अङ्गुष्ठोंके बीचमें तर्जनीको लगावे)। **ॐ लङ्काविध्वंसनाय तर्जनीभ्यां नमः** (दोनों तर्जनीसे अङ्गुष्ठोंको लगावे)। **ॐ अञ्जनीगर्भसम्भूताय मध्यमाभ्यां नमः** (दोनों मध्यमा अङ्गुलियोंको अङ्गुष्ठसे लगावे), **ॐ शाकिनीडाकिनीविध्वंसनाय अनामिकाभ्यां नमः** (पढ़कर दोनों अनामिका अङ्गुलियोंको अङ्गुष्ठसे स्पर्श करे)। **ॐ किलिकिलिबुबुकारेण विभीषणाय हनुमद्देवाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः** (पढ़कर दोनों कनिष्ठिका अङ्गुलियोंको अङ्गुष्ठसे स्पर्श करे)। **ॐ ह्रीं श्रीं ह्रौं ह्रां फट् स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः** (पढ़कर दोनों हथेलियों और हाथोंके पृष्ठभागोंको परस्पर स्पर्श करे)।

हृदयादिन्यासः—ॐ ऐं ह्रीं श्रीहनुमते रामदूताय हृदयाय नमः (कहकर पाँचों अङ्गुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे), **ॐ लङ्काविध्वंसनाय शिरसे स्वाहा** (कहकर शिरका स्पर्श करे), **ॐ अञ्जनीगर्भसम्भूताय शिखायै वषट्** (कहकर शिखाका स्पर्श करे), **ॐ शाकिनीडाकिनी-विध्वंसनाय कवचाय हुम्** (कहकर दाहिने हाथकी पाँचों

अङ्गुलियोंसे बायें कंधेका और बायें हाथकी अङ्गुलियोंसे दायें कंधेका स्पर्श करे), **ॐ किलिकिलिबुबुकारेण विभीषणाय हनुमद्देवाय नेत्रत्रयाय वौषट्** (कहकर दोनों नेत्र तथा ललाटका स्पर्श करे), **ॐ ह्रीं श्रीं ह्रौं ह्रां अस्त्राय फट् स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः** (कहकर दाहिने हाथको आगेसे लेकर बायें कंधेसे पीठपर घुमाकर ताली बजाये)।

अथ ध्यानम्

प्रतप्तस्वर्णवर्णाभं संरक्तारुणलोचनम्।
सुग्रीवादियुतं ध्यायेत् पीताम्बरसमावृतम्॥
गोष्पदीकृतवारीशं पुच्छमस्तकमीश्वरम्।
ज्ञानमुद्रां च बिभ्राणं सर्वालंकारभूषितम्॥

जो तपे हुए सुवर्णके समान कान्तियुक्त हैं, जिनके नेत्र अत्यन्त लाल हैं, जो पीताम्बर धारण किये हैं, समुद्रको गौके खुरके समान सहज ही लाँघ जाते हैं, अपनी पूँछको मस्तकके ऊपर उठाये रहते हैं, सुग्रीव आदि वानर-वृन्दसे युक्त, सब प्रकारके अलंकारोंसे भूषित, ज्ञान-मुद्राधारी, परमात्मस्वरूप श्रीहनुमानजीका ध्यान करे।

अथ सहस्रनाम

श्रीरामचन्द्र उवाच—

हनुमाञ्श्रीप्रदो वायुपुत्रो रुद्रोऽनघोऽजरः।
अमृत्युर्वीरवीरश्च ग्रामवासो जनाश्रयः॥ १॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—१. हनुमान्-जिनकी ठुड्डी विशाल और टेढ़ी है, २. **श्रीप्रदः**-शोभा प्रदान करनेवाले, ३. **वायुपुत्रः**-पवनदेवके पुत्र, ४. **रुद्रः**-जो रुद्रके अवतार हैं, ५. **अनघः**-निष्पाप हैं, ६. **अजरः**-जरा (बुढ़ापा)-से रहित हैं, ७. **अमृत्युः**-जिनकी मृत्यु नहीं हो, ८. **वीरवीरः**-वीरोंमें परम वीर, ९. **ग्रामवासः**-जो गाँवोंमें वास करते हैं, १०. **जनाश्रयः**-जो लोगोंको आश्रय देते हैं॥ १॥

धनदो निर्गुणोऽकायो वीरो निधिपतिर्मुनिः।
पिङ्गाक्षो वरदो वाग्मी सीताशोकविनाशनः॥ २॥

११. **धनदः**-धन देनेवाले, १२. **निर्गुणः**-सत्त्वादि गुणोंसे रहित, १३. **अकायः**-प्राकृत देहसे रहित, १४ **वीरः**-रणभूमिमें शत्रुओंको पछाड़नेवाले, १५. **निधिपतिः**-नवनिधियोंके स्वामी, १६. **मुनिः**-वेद-शास्त्रोंके तत्त्वको जाननेवाले, १७. **पिङ्गाक्षः**-पीली-पीली आँखोंवाले, १८. **वरदः**-अभीष्ट वर प्रदान करनेवाले, १९. **वाग्मी**-प्रशस्त वक्ता, २०. **सीताशोकविनाशनः**-सीताके शोकको मिटानेवाले॥ २॥

शिवः सर्वः परोऽव्यक्तो व्यक्ताव्यक्तो रसाधरः।
पिङ्गकेशः पिङ्गरोमा श्रुतिगम्यः सनातनः॥ ३॥

२१. **शिवः**-मङ्गलमय, २२. **सर्वः**-सर्वस्वरूप, २३. **परः**-प्रकृतिसे अतीत, २४. **अव्यक्तः**-जिनका स्वरूप अव्यक्त है, २५. **व्यक्ताव्यक्तः**-जो प्रेमी भक्तोंके सामने व्यक्त हैं और भक्तिशून्य जनके लिये अव्यक्त हैं, २६. **रसाधरः**-पृथ्वीको धारण करते हैं, २७. **पिङ्गकेशः**-पीले बालवाले, २८. **पिङ्गरोमा**-पीले रोमवाले, २९. **श्रुतिगम्यः**-श्रुतियोंके द्वारा जो गम्य हैं, प्राप्य हैं, ३०. **सनातनः**-सदा रहनेवाले॥ ३॥

अनादिर्भगवान् देवो विश्वहेतुर्निरामयः।
आरोग्यकर्ता विश्वेशो विश्वनाथो हरीश्वरः॥ ४॥

३१. **अनादिः**-उनका कोई आदि नहीं, अतः वे अनादि हैं, ३२. **भगवान्**-ऐश्वर्यवान्, ३३. **देवः**-अतिदीप्तरूप, ३४. **विश्वहेतुः**-विश्वके कारण, ३५. **निरामयः**-रोगरहित, ३६. **आरोग्यकर्ता**-नीरोग करनेवाले, ३७. **विश्वेशः**-विश्वके ईश, ३८. **विश्वनाथः**-विश्वके स्वामी, ३९. **हरीश्वरः**-वानरोंके स्वामी॥ ४॥

भर्गो रामो रामभक्तः कल्याणप्रकृतिः स्थिरः।
विश्वम्भरो विश्वमूर्तिर्विश्वाकारोऽथ विश्वपः॥ ५॥

४०. **भर्गः**-तेजःस्वरूप, ४१. **रामः**-जिनमें भक्तलोग रमण करते हैं, ४२. **रामभक्तः**-रामके भक्त, ४३. **कल्याणप्रकृतिः**-कल्याण करना जिनका स्वभाव है, ४४. **स्थिरः**-पर्वतके समान अचल, ४५. **विश्वम्भरः**-विश्वका भरण-पोषण करनेवाले, ४६. **विश्वमूर्तिः**-विश्व जिनकी मूर्ति है, ४७. **विश्वाकारः**-जो सर्वस्वरूप हैं, ४८. **विश्वपः**-जो विश्वका पालन करते हैं॥ ५॥

विश्वात्मा विश्वसेव्योऽथ विश्वो विश्वहरो रविः।
विश्वचेष्टो विश्वगम्यो विश्वध्येयः कलाधरः॥ ६॥

४९. **विश्वात्मा**-जो विश्वकी आत्मा हैं, ५०. **विश्वसेव्यः**-सारे विश्वके सेवनीय, ५१. **विश्वः**-जो विश्व हैं, ५२. **विश्वहरः**-विश्वके हर्त्ता, ५३. **रविः**-सूर्यस्वरूप, ५४. **विश्वचेष्टः**-विश्वके हितमें चेष्टा करनेवाले, ५५. **विश्वगम्यः**-विश्वके प्राणिमात्रके प्राप्त करने योग्य, ५६. **विश्वध्येयः**-सबके ध्यान करने योग्य, ५७. **कलाधरः**-कलाओंको धारण करनेवाले॥ ६॥

प्लवङ्गमः कपिश्रेष्ठो ज्येष्ठो वैद्यो वनेचरः।
बालो वृद्धो युवा तत्त्वं तत्त्वगम्यः सखा ह्यजः॥ ७॥

५८. **प्लवङ्गमः**-उछलते-कूदते चलनेवाले, ५९. **कपिश्रेष्ठः**-वानरोंमें श्रेष्ठ, ६०. **ज्येष्ठः**-महान्, ६१. **वैद्यः**-भवरोगके चिकित्सक, ६२. **वनेचरः**-सीताजीकी खोजमें वन-वन भटकनेवाले, ६३. **बालः**-बालकके समान निश्चल अथवा बालरूप हो सुरसाके मुँहमें प्रवेश करनेवाले, ६४. **वृद्धः**-बढ़कर पर्वताकार होनेवाले, ६५. **युवा**-सदा तरुण-स्वरूप, ६६. **तत्त्वम्**-संसारके कारणस्वरूप, ६७. **तत्त्वगम्यः**-तत्त्वरूपमें जाननेयोग्य, ६८. **सखा**-सबके सखा, ६९. **अजः**-अजन्मा ॥ ७ ॥

अञ्जनासूनुरव्यग्रो ग्रामख्यातो धराधरः।
भूर्भुवः स्वर्महर्लोको जनलोकस्तपोऽव्ययः ॥ ८ ॥

७०. **अञ्जनासूनुः**-माता अञ्जनाके पुत्र, ७१. **अव्यग्रः**-कभी व्यग्र न होनेवाले, ७२. **ग्रामख्यातः**-गाँव-गाँवमें प्रसिद्ध, ७३. **धराधरः**-पृथ्वीको धारण करनेवाले—पर्वताकार, ७४. **भूः**-पृथ्वीलोकस्वरूप, ७५. **भुवः**-भुवर्लोकस्वरूप, ७६. **स्वः**-स्वर्गलोकस्वरूप, ७७. **महर्लोकः**-महर्लोकस्वरूप, ७८. **जनलोकः**-जनलोकस्वरूप, ७९. **तपः**-तपोलोकस्वरूप, ८०. **अव्ययः**-अविनाशीस्वरूप ॥ ८ ॥

सत्यमोङ्कारगम्यश्च प्रणवो व्यापकोऽमलः।
शिवधर्मप्रतिष्ठाता रामेष्टः फाल्गुनप्रियः ॥ ९ ॥

८१. **सत्यम्**-संतोंके लिये हितकर, ८२. **ॐकारगम्यः**-ॐकारके द्वारा प्राप्त होनेवाले, ८३. **प्रणवः**-ॐकारस्वरूप, ८४. **व्यापकः**-सर्वव्यापी, ८५. **अमलः**-दोषरहित, ८६. **शिवधर्मप्रतिष्ठाता**—पाशुपत अथवा कल्याण-धर्मको प्रतिष्ठित करनेवाले, ८७. **रामेष्टः**-जिनके श्रीराम इष्टदेव हैं, ८८. **फाल्गुनप्रियः**-जो अर्जुनके प्रिय हैं ॥ ९ ॥

गोष्पदीकृतवारीशः पूर्णकामो धरापतिः।
रक्षोघ्नः पुण्डरीकाक्षः शरणागतवत्सलः ॥ १० ॥

८९. **गोष्पदीकृतवारीशः**-समुद्रको जलपूरित गोपदके समान लाँघनेवाले, ९०. **पूर्णकामः**-जिनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हैं, ९१. **धरापतिः**-पृथ्वीके स्वामी, ९२. **रक्षोघ्नः**-राक्षसोंको मारनेवाले, ९३. **पुण्डरीकाक्षः**-श्वेत कमलके समान नेत्रवाले, ९४. **शरणागतवत्सलः**-शरणमें आये हुएपर कृपा करनेवाले ॥ १० ॥

जानकीप्राणदाता च रक्षःप्राणापहारकः।
पूर्णः सत्यः पीतवासा दिवाकरसमप्रभः ॥ ११ ॥

९५. **जानकीप्राणदाता**-जानकीको जीवन प्रदान करनेवाले, ९६. **रक्षःप्राणापहारकः**-राक्षसोंका प्राण-नाश करनेवाले, ९७. **पूर्णः**-पूर्णकाम, ९८. **सत्यः**-सत्यस्वरूप, ९९. **पीतवासाः**-पीला वस्त्र धारण करनेवाले, १००. **दिवाकर-समप्रभः**-सूर्यके समान तेजस्वी ॥ ११ ॥

देवोद्यानविहारी च देवताभयभञ्जनः।
भक्तोदयो भक्तलब्धो भक्तपालनतत्परः ॥ १२ ॥

१०१. **देवोद्यानविहारी**-देवताओंके नन्दन-वनमें विहार करनेवाले, **१०२ देवताभयभञ्जनः**-देवताओंके भयको नष्ट करनेवाले, १०३. **भक्तोदयः**-भक्तोंकी उन्नति करनेवाले, १०४. **भक्तलब्धः**-भक्तोंके द्वारा प्राप्त, १०५. **भक्तपालनतत्परः**-भक्तोंकी रक्षामें तत्पर ॥ १२ ॥

द्रोणहर्ता शक्तिनेता शक्तिराक्षसमारकः।
अक्षघ्नो रामदूतश्च शाकिनीजीवहारकः ॥ १३ ॥

१०६. **द्रोणहर्ता**-द्रोणाचलको उखाड़कर लानेवाले, १०७. **शक्तिनेता**-शक्तियोंके संचालक, १०८. **शक्ति-राक्षसमारकः**-शक्तिशाली राक्षसोंको मारनेवाले, १०९. **अक्षघ्नः**-अक्षकुमारको मारनेवाले, ११०. **रामदूतः**-भगवान् श्रीरामचन्द्रके दूत, १११. **शाकिनीजीवहारकः**-शाकिनीका प्राण हरण करनेवाले ॥ १३ ॥

बुबुकारहतारातिर्गर्वपर्वतमर्दनः ।
हेतुस्त्वहेतुः प्रांशुश्च विश्वभर्त्ता जगद्गुरुः ॥ १४ ॥

११२. **बुबुकारहताराति**:-बुबुकार-ध्वनिसे शत्रुका नाश करनेवाले, ११३. **गर्वपर्वतमर्दनः**-गर्वरूपी पर्वतको चूर-चूर करनेवाले, ११४. **हेतुः**-कारणरूप, ११५. **अहेतुः**-कारणरहित, ११६. **प्रांशुः**-बहुत उन्नत, ११७. **विश्वभर्त्ता**-विश्वका भरण-पोषण करनेवाले, ११८. **जगद्गुरुः**-सारे संसारके गुरु ॥ १४ ॥

जगन्नेता जगन्नाथो जगदीशो जनेश्वरः।
जगद्धितो हरिः श्रीशो गरुडस्मयभञ्जनः ॥ १५ ॥

११९. **जगन्नेता**-संसारके नेता, १२०. **जगन्नाथः**-संसारके स्वामी, १२१. **जगदीशः**-जगत्के ईश, १२२. **जनेश्वरः**-भक्तोंके ईश्वर, १२३. **जगद्धितः**-संसारका हित करनेवाले, १२४. **हरिः**-पापोंको हर लेनेवाले, १२५. **श्रीशः**-शोभाके स्वामी, १२६. **गरुड़स्मयभञ्जनः**-गरुड़के गर्वको नष्ट करनेवाले ॥ १५ ॥

पार्थध्वजो वायुपुत्रोऽमितपुच्छोऽमितविक्रमः।
ब्रह्मपुच्छः परब्रह्मपुच्छो रामेष्टकारकः ॥ १६ ॥

१२७. **पार्थध्वजः**-अर्जुनके ध्वज-चिह्न, १२८. **वायुपुत्रः**-वायुके पुत्र, १२९. **अमितपुच्छः**-अपरिमित पूँछवाले, १३०. **अमितविक्रमः**-असीम पराक्रमवाले, १३१. **ब्रह्मपुच्छः**-जिनकी पूँछ वर्द्धनशील है, १३२. **परब्रह्मपुच्छः**-जिनका

परब्रह्म आधार है, **१३३. रामेष्टकारकः**-जो श्रीरामके अभीष्ट कार्यको सिद्ध करते हैं॥ १६ ॥

सुग्रीवादियुतो ज्ञानी वानरो वानरेश्वरः।
कल्पस्थायी चिरंजीवी तपनश्च सदाशिवः॥ १७॥

१३४. सुग्रीवादियुतः-सुग्रीवादि वानरोंसे युक्त, **१३५. ज्ञानी**-ज्ञानसम्पन्न, **१३६. वानरः**-वनमें रहनेवालोंकी रक्षा करनेवाले, **१३७. वानरेश्वरः**-वानरोंके स्वामी, **१३८. कल्पस्थायी**-कल्पपर्यन्त रहनेवाले, **१३९. चिरंजीवी**-चिरकालतक जीवित रहनेवाले, **१४०. तपनः**-सूर्य-सदृश तेजस्वी, **१४१. सदाशिवः**-सदा कल्याणस्वरूप॥ १७॥

संनतः सद्गतिर्भुक्तिमुक्तिदः कीर्तिदायकः।
कीर्तिः कीर्तिप्रदश्चैव समुद्रः श्रीप्रदः शिवः॥ १८॥

१४२. संनतः-विद्याके द्वारा जो सम्यक् रूपसे विनयानवत हैं, **१४३. सद्गतिः**-संतोंकी गति हैं, **१४४. भुक्तिमुक्तिदः**-भुक्ति और मुक्तिको देनेवाले, **१४५. कीर्तिदायकः**-कीर्ति प्रदान करनेवाले, **१४६. कीर्तिः**-कीर्तिस्वरूप, **१४७. कीर्तिप्रदः**-यशस्वी बनानेवाले, **१४८. समुद्रः**-जो श्रीरामकी मुद्रा या मुद्रिका साथ लिये हुए हैं, **१४९. श्रीप्रदः**-बुद्धि या ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, **१५०. शिवः**-संसारका उच्छेद करनेवाले॥ १८॥

भक्तोदयो भक्तगम्यो भक्तभाग्यप्रदायकः।
उदधिक्रमणो देवः संसारभयनाशनः॥ १९॥

१५१. भक्तोदयः-भक्तके लिये प्रकट होनेवाले, **१५२. भक्तगम्यः**-भक्तद्वारा प्राप्त होनेवाले, **१५३. भक्त-भाग्यप्रदायकः**-भक्तके लिये भाग्यप्रदायक, **१५४. उदधि-क्रमणः**-समुद्र लाँघनेवाले, **१५५. देवः**-देवस्वरूप, **१५६. संसार-भयनाशनः**-संसारके भयका नाश करनेवाले॥ १९॥

वार्धिबन्धनकृद् विश्वजेता विश्वप्रतिष्ठितः।
लङ्कारिः कालपुरुषो लङ्केशगृहभञ्जनः॥ २०॥

१५७. वार्धिबन्धनकृत्-समुद्रपर सेतु बँधानेवाले, **१५८. विश्वजेता**-विश्वको जीतनेवाले, **१५९. विश्वप्रतिष्ठितः**-विश्वमें प्रतिष्ठित, **१६०. लङ्कारिः**-लंकाके शत्रु, **१६१. कालपुरुषः**-कालरूपी पुरुष, **१६२. लङ्केशगृहभञ्जनः**-रावणके महलोंको नष्ट करनेवाले॥ २०॥

भूतावासो वासुदेवो वसुस्त्रिभुवनेश्वरः।
श्रीरामरूपः कृष्णस्तु लङ्काप्रासादभञ्जकः॥ २१॥

१६३. भूतावासः-भूतोंके आवास-स्थल हैं, **१६४. वासुदेवः**-विश्वमें व्यापक, **१६५. वसुः**-वसुस्वरूप, **१६६. त्रिभुवनेश्वरः**-त्रिभुवनके स्वामी, **१६७. श्रीरामरूपः**-जो श्रीराम-तुल्य हैं, **१६८. कृष्णः**-चित्तको आकर्षित करनेवाले, **१६९. लङ्काप्रासादभञ्जकः**-लंकाके राक्षसोंके महलोंका विध्वंस करनेवाले॥ २१॥

कृष्णः कृष्णस्तुतः शान्तः शान्तिदो विश्वपावनः।
विश्वभोक्ताथ मारघ्नो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः॥ २२॥

१७०. कृष्णः-कृष्णस्वरूप, **१७१. कृष्णस्तुतः**-कृष्णके द्वारा स्तुति किये गये, **१७२. शान्तः**-शान्तस्वरूप, **१७३. शान्तिदः**-शान्ति प्रदान करनेवाले, **१७४. विश्वपावनः**-विश्वको पवित्र करनेवाले, **१७५. विश्वभोक्ता**-सारे भोग्य पदार्थोंके भोक्ता, **१७६. मारघ्नः**-कामदेवका हनन करनेवाले, **१७७. ब्रह्मचारी**-आजन्म ब्रह्मचारी, **१७८. जितेन्द्रियः**-जिन्होंने इन्द्रियोंको जीत लिया है॥ २२॥

ऊर्ध्वगो लाङ्गुली माली लाङ्गूलाहतराक्षसः।
समीरतनुजो वीरो वीरतारो जयप्रदः॥ २३॥

१७९. ऊर्ध्वगः-आकाश-मार्गसे गमन करनेवाले, **१८०. लाङ्गुली**-बड़ी पूँछवाले, **१८१. माली**-मालावाले, **१८२. लाङ्गूलाहतराक्षसः**-पूँछसे राक्षसोंको मार डालनेवाले, **१८३. समीरतनुजः**-वायुदेवताके पुत्र, **१८४. वीरः**-शौर्यशाली, **१८५. वीरतारः**-वीर शत्रुओंको मारकर तारनेवाले, **१८६. जयप्रदः**-जय प्रदान करनेवाले॥ २३॥

जगन्मङ्गलदः पुण्यः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
पुण्यकीर्तिः पुण्यगतिर्जगत्पावनपावनः॥ २४॥

१८७. जगन्मङ्गलदः-जगत्‌को मङ्गल प्रदान करनेवाले, **१८८. पुण्यः**-भगवन्नाम-संकीर्तनसे विश्वको पवित्र करनेवाले, **१८९. पुण्यश्रवणकीर्तनः**-जिनकी कथाओंका श्रवण-कीर्तन पुण्यप्रद है, **१९०. पुण्यकीर्तिः**-जिनका यशोगान पुण्यप्रद है, **१९१. पुण्यगतिः**-जिनकी उपासना पुण्यका फल है, **१९२. जगत्पावनपावनः**-जो जगत्‌को पवित्र करनेवालोंको पावन बनाते हैं॥ २४॥

देवेशो जितमारोऽथ रामभक्तिविधायकः।
ध्याता ध्येयो लयः साक्षी चेता चैतन्यविग्रहः॥ २५॥

१९३. देवेशः-देवताओंके स्वामी, **१९४. जितमारः**-कामदेवको जीतनेवाले, **१९५. रामभक्तिविधायकः**-श्रीराम-भक्तिका विधान करनेवाले, **१९६. ध्याता**-रात-दिन श्रीरामका ध्यान करनेवाले, **१९७. ध्येयः**-मुनियोंके द्वारा ध्येय, **१९८. लयः**-अपनेमें अखिल चराचरको विलीन करनेवाले, **१९९. साक्षी**-सर्वद्रष्टा, **२००. चेता**-सर्वज्ञ,

२०१. चैतन्यविग्रहः-चिन्मय शरीरवाले॥ २५॥

ज्ञानदः प्राणदः प्राणो जगत्प्राणः समीरणः।
विभीषणप्रियः शूरः पिप्पलाश्रयसिद्धिदः॥ २६॥

२०२. ज्ञानदः-ब्रह्मज्ञानके दाता, **२०३. प्राणदः**-प्राण (बल) प्रदान करनेवाले, **२०४. प्राणः**-जिससे प्राणी प्राणवाले हैं, अर्थात् प्राणस्वरूप, **२०५. जगत्प्राणः**-जगत्के प्राण, **२०६. समीरणः**-वायुरूप, **२०७. विभीषणप्रियः**-विभीषणके प्यारे, **२०८. शूरः**-शत्रुओंको रणमें सुलानेवाले, **२०९. पिप्पलाश्रयसिद्धिदः**-(आनन्दरामायणके मनोहरकाण्डके अनुसार) अश्वत्थको गृह मानकर साधना करनेवाले साधकको सारी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाले॥ २६॥

सिद्धः सिद्धाश्रयः कालो महोक्षः कालजान्तकः।
लङ्केशनिधनस्थायी लङ्कादाहक ईश्वरः॥ २७॥

२१०. सिद्धः-सिद्धस्वरूप, **२११. सिद्धाश्रयः**-सिद्धोंके आश्रय, **२१२. कालः**-यमरूप, **२१३. महोक्षः**-महान् धर्मरूपी बैलवाले भगवान् शिवके स्वरूप, **२१४. कालजान्तकः**-कालसे उत्पन्न जरा-व्याधि आदि दोषोंका अन्त करनेवाले, **२१५. लङ्केशनिधनस्थायी**-रावणके विनाशके लिये स्थिरचित्त, **२१६. लङ्कादाहकः**-लंकाको जलानेवाले, **२१७. ईश्वरः**-त्रिलोकीमें परम ऐश्वर्यशाली॥ २७॥

चन्द्रसूर्याग्निनेत्रश्च कालाग्निः प्रलयान्तकः।
कपिलः कपिशः पुण्यराशिर्द्वादशराशिगः॥ २८॥

२१८. चन्द्रसूर्याग्निनेत्रः-चन्द्र, सूर्य और अग्निरूप तीन नेत्रोंवाले शिवस्वरूप, **२१९. कालाग्निः**-मृत्युकारी अग्निरूप, **२२०. प्रलयान्तकः**-प्रलयका अन्त करनेवाले अर्थात् भक्तोंको जन्म-मृत्युसे रहित करनेवाले, **२२१. कपिलः**-काले-पीले वर्णके रोमसे युक्त, **२२२. कपिशः**-श्याम-पीतवर्णमिश्रित कपिशवर्ण, **२२३. पुण्यराशिः**-पुण्यकी राशि, **२२४. द्वादशराशिगः**-द्वादश राशियोंके ज्ञाता अर्थात् ज्योतिषशास्त्रके जाननेवाले*॥ २८॥

सर्वाश्रयोऽप्रमेयात्मा रेवत्यादिनिवारकः।
लक्ष्मणप्राणदाता च सीताजीवनहेतुकः॥ २९॥

२२५. सर्वाश्रयः-सबके आश्रयस्थान, **२२६. अप्रमेयात्मा**-अनुपम शरीरवाले, **२२७. रेवत्यादिनिवारकः**-रेवती-पूतना आदि ग्रह-दोषोंका निवारण करनेवाले, **२२८. लक्ष्मणप्राणदाता**-संजीवनीद्वारा लक्ष्मणजीको प्राण देनेवाले, **२२९. सीताजीवनहेतुकः**-श्रीजानकीजीको श्रीरामका संदेश देकर जीवन प्रदान करनेवाले॥ २९॥

रामध्येयो हृषीकेशो विष्णुभक्तो जटी बली।
देवारिदर्पहा होता धाता कर्ता जगत्प्रभुः॥ ३०॥

२३०. रामध्येयः-श्रीराम जिनका ध्यान-स्मरण करते हैं, **२३१. हृषीकेशः**-इन्द्रियोंके स्वामी, **२३२. विष्णुभक्तः**-विष्णुके भक्त, **२३३. जटी**-जटावाले, **२३४. बली**-बलशाली, **२३५. देवारिदर्पहा**-देवशत्रुओंके दर्पको नष्ट करनेवाले, **२३६. होता**-भगवद्भक्तिका अनुष्ठान करनेवाले, **२३७. धाता**-जगत्को धारण करनेवाले, **२३८. कर्ता**-जगत्को बनानेवाले, **२३९. जगत्प्रभुः**-जगत्के स्वामी॥ ३०॥

नगरग्रामपालश्च शुद्धो बुद्धो निरत्रपः।
निरञ्जनो निर्विकल्पो गुणातीतो भयंकरः॥ ३१॥

२४०. नगरग्रामपालः-नगर और ग्रामवासियोंकी रक्षा करनेवाले, **२४१. शुद्धः**-शुद्धस्वरूप, **२४२. बुद्धः**-ज्ञान स्वरूप, **२४३. निरत्रपः**-सलज्ज, **२४४. निरञ्जनः**-अज्ञान या मायासे रहित, **२४५. निर्विकल्पः**-विकल्परहित, **२४६. गुणातीतः**-सत्त्वादि गुणोंसे रहित, **२४७. भयंकरः**-दुष्टोंके लिये विकराल स्वरूपवाले॥ ३१॥

हनुमांश्च दुराराध्यस्तपःसाध्यो महेश्वरः।
जानकीधनशोकोत्थतापहर्ता परात्परः॥ ३२॥

२४८. हनुमान्-श्रीरामके अनुचर, **२४९. दुराराध्यः**-अभक्तोंके लिये कष्टसे आराधनीय, **२५०. तपःसाध्यः**-तपके द्वारा साध्य, **२५१. महेश्वरः**-महान् ईश्वर, **२५२. जानकीधनशोकोत्थतापहर्ता**-जानकीधन अर्थात् श्रीरामके शोकसे उत्पन्न संतापको हरनेवाले, **२५३. परात्परः**-जो अव्यक्तसे भी परे हैं॥ ३२॥

वाङ्मयः सदसद्रूपः कारणं प्रकृतेः परः।
भाग्यदो निर्मलो नेता पुच्छलङ्काविदाहकः॥ ३३॥

२५४. वाङ्मयः-वेदशास्त्र-सरस्वतीस्वरूप, **२५५. सदसद्रूपः**-सत् और असत्-स्वरूप, **२५६. कारणम्**-संसारके अभिन्न निमित्तोपादान कारण, **२५७. प्रकृतेः परः**-जो त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे परे हैं, **२५८. भाग्यदः**-कर्मजन्य शुभाशुभ फलोंको देनेवाले, **२५९. निर्मलः**-मल अर्थात् दोषसे रहित, **२६०. नेता**-मार्गदर्शक, **२६१. पुच्छलङ्काविदाहकः**-पुच्छसे लंकाको जलानेवाले॥ ३३॥

पुच्छबद्धयातुधानो यातुधानरिपुप्रियः।
छायापहारी भूतेशो लोकेशः सद्गतिप्रदः॥ ३४॥

* मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन—ये द्वादश राशियाँ हैं।

२६२. **पुच्छबद्धयातुधानः**-पुच्छसे राक्षसोंको बाँधनेवाले, २६३. **यातुधानरिपुप्रियः**-राक्षसोंके शत्रु श्रीरामके प्रिय, २६४. **छायापहारी**-छायानामकी राक्षसीको मारनेवाले, २६५. **भूतेशः**-भूतोंके स्वामी, २६६. **लोकेशः**-लोकोंके स्वामी, २६७. **सद्गतिप्रदः**-संतोंको सद्गति प्रदान करनेवाले ॥ ३४ ॥

प्लवंगमेश्वरः क्रोधः क्रोधसंरक्तलोचनः।
सौम्यो गुरुः काव्यकर्ता भक्तानां च वरप्रदः ॥ ३५ ॥

२६८. **प्लवंगमेश्वरः**-वानरोंके स्वामी, २६९. **क्रोधः**-शत्रुओंके लिये क्रोधस्वरूप, २७०. **क्रोधसंरक्तलोचनः**-युद्धकालमें क्रोधसे लाल नेत्रवाले, २७१. **सौम्यः**-सौम्यस्वरूप, २७२. **गुरुः**-अज्ञान दूर करके परमात्मदर्शन करानेवाले, २७३. **काव्यकर्ता**-काव्य-रचना करनेवाले, २७४. **भक्तानां वरप्रदः**-भक्तोंको अभीष्ट वर प्रदान करनेवाले ॥ ३५ ॥

भक्तानुकम्पी विश्वेशः पुरुहूतः पुरंदरः।
क्रोधहर्ता तमोहर्ता भक्ताभयवरप्रदः ॥ ३६ ॥

२७५. **भक्तानुकम्पी**-भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले, २७६. **विश्वेशः**-विश्वके संचालक, २७७. **पुरुहूतः**-बहुत बार लोग जिनको पुकारते हैं, २७८. **पुरंदरः**-शत्रुके नगरोंको ध्वस्त करनेवाले, २७९. **क्रोधहर्ता**-क्रोधको हरनेवाले, २८०. **तमोहर्ता**-अज्ञानान्धकारको दूर करनेवाले, २८१. **भक्ताभयवरप्रदः**-भक्तोंको अभय वर प्रदान करनेवाले ॥ ३६ ॥

अग्निर्विभावसुर्भास्वान् यमो निर्ऋतिरेव च।
वरुणो वायुगतिमान् वायुः कौबेर ईश्वरः ॥ ३७ ॥

२८२. **अग्निः**-अग्निस्वरूप, २८३. **विभावसुः**-दिव्य तेजःस्वरूप, २८४. **भास्वान्**-प्रकाशयुक्त, २८५. **यमः**-संयमस्वरूप, २८६. **निर्ऋतिः**-नैर्ऋतगणके स्वामी, २८७. **वरुणः**-जलके देवता वरुणस्वरूप, २८८. **वायुगतिमान्**-वायुके समान गतिशील, २८९. **वायुः**-वायुपुत्र होनेके कारण वायुस्वरूप, २९०. **कौबेर ईश्वरः**-कुबेर-सम्बन्धी धनके मालिक ॥ ३७ ॥

रविश्चन्द्रः कुजः सौम्यो गुरुः काव्यः शनैश्चरः।
राहुः केतुर्मरुद्धोता दाता हर्ता समीरजः ॥ ३८ ॥

२९१. **रविः**-सूर्यस्वरूप, २९२. **चन्द्रः**-जगत्को आह्लादित करनेवाले चन्द्रस्वरूप, २९३. **कुजः**-मंगल-ग्रहस्वरूप, २९४. **सौम्यः**-बुधग्रहस्वरूप, २९५. **गुरुः**-बृहस्पतिग्रहस्वरूप, २९६. **काव्यः**-शुक्रग्रहस्वरूप, २९७. **शनैश्चरः**-शनिग्रहस्वरूप, २९८. **राहुः**-राहुग्रहस्वरूप, २९९. **केतुः**-केतुग्रहस्वरूप, ३००. **मरुत्**-वायुस्वरूप, ३०१. **होता**-हवन करनेवाले, ३०२. **दाता**-भक्तोंके भव-बन्धनको काटनेवाले, ३०३. **हर्ता**-भक्तोंकी ममताको हरनेवाले, ३०४. **समीरजः**-पवन देवताके पुत्र ॥ ३८ ॥

मशकीकृतदेवारिर्दैत्यारिर्मधुसूदनः।
कामः कपिः कामपालः कपिलो विश्वजीवनः ॥ ३९ ॥

३०५. **मशकीकृतदेवारिः**-देवताओंके शत्रुओंको मच्छरके समान समझनेवाले, ३०६. **दैत्यारिः**-दैत्योंके शत्रु, ३०७. **मधुसूदनः**-भक्तोंके शुभाशुभ कर्मोंका विनाश करनेवाले, ३०८. **कामः**-श्रीराम-भक्तिकी कामना करनेवाले, ३०९. **कपिः**-जलसे पृथिवीकी रक्षा करनेवाले, ३१०. **कामपालः**-वीर्यरक्षक अर्थात् ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले, ३११. **कपिलः**-कपिलमुनिस्वरूप, ३१२. **विश्वजीवनः**-विश्वके जीवन ॥ ३९ ॥

भागीरथीपदाम्भोजः सेतुबन्धविशारदः।
स्वाहा स्वधा हविः कव्यं हव्यवाहप्रकाशकः ॥ ४० ॥

३१३. **भागीरथीपदाम्भोजः**-जिनके चरणकमल भागीरथीके समान पवित्र करनेवाले हैं, ३१४. **सेतुबन्धविशारदः**-सेतु बाँधनेमें चतुर, ३१५. **स्वाहा**-स्वाहास्वरूप, ३१६. **स्वधा**-स्वधास्वरूप, ३१७. **हविः**-हविःस्वरूप, ३१८. **कव्यम्**-पितरोंको दिये जानेवाले अन्नादिरूप, ३१९. **हव्यवाहप्रकाशकः**-देवताओंके लिये हव्य वहन करनेवाले अग्निके समान प्रकाशक ॥ ४० ॥

स्वप्रकाशो महावीरो लघुरूर्जितविक्रमः।
उड्डीनोड्डीनगतिमान् सद्गतिः पुरुषोत्तमः ॥ ४१ ॥

३२०. **स्वप्रकाशः**-स्वयं प्रकाशस्वरूप, ३२१. **महावीरः**-बड़े बलवान्, ३२२. **लघुः**-लघुरूप धारण करनेवाले, ३२३. **ऊर्जितविक्रमः**-सुदृढ़ पराक्रमवाले, ३२४. **उड्डीनोड्डीनगतिमान्**-आकाशमें उड़नेवालोंमें तीव्र-गतिशाली, ३२५. **सद्गतिः**-सम्यक् रीतिसे चलनेवाले, ३२६. **पुरुषोत्तमः**-पुरुषोंमें श्रेष्ठ ॥ ४१ ॥

जगदात्मा जगद्योनिर्जगदन्तो ह्यनन्तकः।
विपाप्मा निष्कलङ्कोऽथ महान् महदहंकृतिः ॥ ४२ ॥

३२७. **जगदात्मा**-जगत्-स्वरूप, ३२८. **जगद्योनिः**-जगत्के कारण, ३२९. **जगदन्तः**-जगत्का अन्त करनेवाले, ३३०. **अनन्तकः**-जिनके अनन्त गुण हैं, ३३१. **विपाप्मा**-

पापरहित, **३३२. निष्कलङ्कः**-कलङ्करहित, **३३३. महान्**-महत्तत्त्वस्वरूप, **३३४. महदहंकृतिः**-महान् अहंकारतत्त्व-स्वरूप ॥ ४२ ॥

खं वायुः पृथिवी चापो वह्निर्दिक्पाल एव च।
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रहर्ता च पल्वलीकृतसागरः ॥ ४३ ॥

३३५. खं-आकाशतत्त्वस्वरूप, **३३६. वायुः**-वायुतत्त्व-स्वरूप, **३३७. पृथिवी**-पृथिवीतत्त्वस्वरूप, **३३८. आपः**-जलतत्त्वस्वरूप, **३३९. वह्निः**-अग्नितत्त्वस्वरूप, **३४०. दिक्पालः**-दिशाओंका पालन करनेवाले, **३४१. क्षेत्रज्ञः**-क्षेत्रके ज्ञाता, **३४२. क्षेत्रहर्ता**-क्षेत्रका हरण करनेवाले, **३४३. पल्वलीकृतसागरः**-सागरको लघु जलाशयरूप मानकर सरलतासे पार करनेवाले ॥ ४३ ॥

हिरण्मयः पुराणश्च खेचरो भूचरोऽमरः।
हिरण्यगर्भः सूत्रात्मा राजराजो विशाम्पतिः ॥ ४४ ॥

३४४. हिरण्मयः-स्वर्णके समान कान्तिवाले, **३४५. पुराणः**-पुराणपुरुष, **३४६. खेचरः**-आकाशमें विचरण करनेवाले, **३४७. भूचरः**-पृथिवीपर घूमनेवाले, **३४८. अमरः**-न मरनेवाले, **३४९. हिरण्यगर्भः**-विश्वको उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मास्वरूप, **३५०. सूत्रात्मा**-सर्वव्यापक, **३५१. विशाम्पतिः राजराजः**-मनुष्योंका पालन करनेवाले राजाधिराज ॥ ४४ ॥

वेदान्तवेद्य उद्गीथो वेदवेदाङ्गपारगः।
प्रतिग्रामस्थितिः सद्यःस्फूर्तिदाता गुणाकरः ॥ ४५ ॥

३५२. वेदान्तवेद्यः-वेदान्त शास्त्रद्वारा जानने योग्य, **३५३. उद्गीथः**-ॐकारस्वरूप, **३५४. वेदवेदाङ्गपारगः**-चारों वेदों और छहों वेदाङ्गोंमें पारंगत, **३५५. प्रतिग्रामस्थितिः**-प्रत्येक गाँवमें स्थित रहनेवाले, **३५६. सद्यःस्फूर्तिदाता**-तत्काल स्फूर्ति प्रदान करनेवाले, **३५७. गुणाकरः**-गुणोंकी खानि ॥ ४५ ॥

नक्षत्रमाली भूतात्मा सुरभिः कल्पपादपः।
चिन्तामणिर्गुणनिधिः प्रजाधारो ह्यनुत्तमः ॥ ४६ ॥

३५८. नक्षत्रमाली-सत्ताईस नक्षत्रोंकी मालावाले,[1] **३५९. भूतात्मा**-प्राणियोंकी आत्मा, **३६०. सुरभिः**-कामधेनुस्वरूप, **३६१. कल्पपादपः**-भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्षस्वरूप, **३६२. चिन्तामणिः**-चिन्तामणिस्वरूप, **३६३. गुणनिधिः**-गुणोंकी खानि, **३६४. प्रजाधारः**-प्रजाके आधारभूत, **३६५. अनुत्तमः**-जिनसे उत्तम कोई नहीं है अर्थात् सर्वश्रेष्ठ ॥ ४६ ॥

पुण्यश्लोकः पुरारातिर्ज्योतिष्माञ् शर्वरीपतिः।
किल्किलारावसंत्रस्तभूतप्रेतपिशाचकः ॥ ४७ ॥

३६६. पुण्यश्लोकः-पुण्यकीर्तिवाले, **३६७. पुरारातिः**-पुरनामक राक्षसके शत्रु शिवस्वरूप, **३६८. ज्योतिष्मान्**-ज्योतिःस्वरूप, **३६९. शर्वरीपतिः**-चन्द्रस्वरूप, **३७०. किल्किलारावसंत्रस्तभूतप्रेतपिशाचकः**-किल-किल शब्दसे भूत-प्रेत-पिशाचादिको संत्रस्त करनेवाले ॥ ४७ ॥

ऋणत्रयहरः सूक्ष्मः स्थूलः सर्वगतिः पुमान्।
अपस्मारहरः स्मर्ता श्रुतिर्गाथा स्मृतिर्मनुः ॥ ४८ ॥

३७१. ऋणत्रयहरः-भक्तोंके तीनों ऋणोंको हरनेवाले,[2] **३७२. सूक्ष्मः**-सूक्ष्मस्वरूप, **३७३. स्थूलः**-स्थूलस्वरूप, **३७४. सर्वगतिः**-सर्वत्र गतिवाले, **३७५. पुमान्**-पुरुषार्थी, **३७६. अपस्मारहरः**-अपस्मार (मिरगीरोग)-को हरनेवाले, **३७७. स्मर्ता**-भगवान्का स्मरण करनेवाले, **३७८. श्रुतिः**-वेदस्वरूप, **३७९. गाथा**-स्तोत्रस्वरूप, **३८०. स्मृतिः**-स्मृतिस्वरूप, **३८१. मनुः**-मन्त्रस्वरूप ॥ ४८ ॥

स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं यतीश्वरः।
नादरूपः परं ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्मपुरातनः ॥ ४९ ॥

३८२. स्वर्गद्वारम्-स्वर्गके द्वारस्वरूप, **३८३. प्रजाद्वारम्**-प्रजा अर्थात् संतति प्रदान करनेवाले, **३८४. मोक्षद्वारम्**-मोक्ष प्रदान करनेवाले, **३८५. यतीश्वरः**-संयम करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ, **३८६. नादरूपः**-नाद-ब्रह्मस्वरूप, **३८७. परम्**-मोक्षरूप, **३८८. ब्रह्म**-परब्रह्मस्वरूप, **३८९. ब्रह्म**-सर्वव्यापक, **३९०. ब्रह्मपुरातनः**-आदिकारणरूप पुरातन ब्रह्म ॥ ४९ ॥

एकोऽनेको जनः शुक्लः स्वयंज्योतिरनाकुलः।
ज्योतिर्ज्योतिरनादिश्च सात्त्विको राजसस्तमः ॥ ५० ॥

३९१. एकः-अद्वितीय, **३९२. अनेकः**-अनेकरूप, **३९३. जनः**-भक्तस्वरूप, **३९४. शुक्लः**-शुक्लस्वरूप, **३९५. स्वयंज्योतिः**-स्वयं प्रकाशस्वरूप, **३९६. अनाकुलः**-

१. अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र हैं। एक-एक नक्षत्रके चार-चार चरण होते हैं और चरणोंकी संख्या एक सौ आठ होती है। मालाओंकी मणियाँ भी एक सौ आठ होती हैं। अतः विराट्-रूप हनुमानजीकी सत्ताईस नक्षत्र-रूप माला है।

२. देव-ऋण, पितृ-ऋण और ऋषि-ऋण—ये मुख्य तीन ऋण होते हैं।

व्याकुल न होनेवाले, **३९७. ज्योतिः**-प्रकाशस्वरूप, **३९८. अनादिर्ज्योतिः**-सब प्रकारकी ज्योतिके मूलभूत अनादि ज्योति, **३९९. सात्त्विकः**-सात्त्विक रूपमें पालनकर्ता, **४००. राजसः**-राजसरूपमें उत्पन्न करनेवाले, **४०१. तमः**-तमोरूपमें संहारकर्ता॥ ५०॥

तमोहर्ता निरालम्बो निराहारो गुणाकरः।
गुणाश्रयो गुणमयो बृहत्कर्मा बृहद्यशाः॥ ५१॥

४०२. तमोहर्ता-तमोगुणका नाश करनेवाले, **४०३. निरालम्बः**-आश्रयरहित, **४०४. निराकारः**-आकाररहित, **४०५. गुणाकरः**-गुणोंकी खानि, **४०६. गुणाश्रयः**-तीनों गुणोंके आश्रय, **४०७. गुणमयः**-सद्‌गुणोंसे सम्पन्न, **४०८. बृहत्कर्मा**-महान् कार्य करनेवाले, **४०९. बृहद्यशाः**-विस्तीर्ण कीर्तिवाले॥ ५१॥

बृहद्धनुर्बृहत्पादो बृहन्मूर्धा बृहत्स्वनः।
बृहत्कर्णो बृहन्नासो बृहद्बाहुर्बृहत्तनुः॥ ५२॥

४१०. बृहद्धनुः-बड़ी ठुड्डीवाले, **४११. बृहत्पादः**-लंबी टाँगवाले, **४१२. बृहन्मूर्धा**-बड़े मस्तकवाले, **४१३. बृहत्स्वनः**-बड़ा शब्द करनेवाले, **४१४. बृहत्कर्णः**-बड़े कानवाले, **४१५. बृहन्नासः**-लंबी नासिकावाले, **४१६. बृहद्बाहुः**-लंबी भुजावाले, **४१७. बृहत्तनुः**-विशाल देहधारी॥ ५२॥

बृहज्जानुर्बृहत्कार्यो बृहत्पुच्छो बृहत्करः।
बृहद्गतिर्बृहत्सेव्यो बृहल्लोकफलप्रदः॥ ५३॥

४१८. बृहज्जानुः-बड़े घुटनोंवाले, **४१९. बृहत्कार्यः**-महान् कार्य करनेवाले, **४२०. बृहत्पुच्छः**-लंबी पूँछवाले, **४२१. बृहत्करः**-लंबे हाथोंवाले, **४२२. बृहद्गतिः**-तीव्र गतिवाले, **४२३. बृहत्सेव्यः**-महापुरुषोंके द्वारा सेव्य, **४२४. बृहल्लोकफलप्रदः**-सम्पूर्ण लोकरूप फल देनेवाले॥ ५३॥

बृहच्छक्तिर्बृहद्वाञ्छाफलदो बृहदीश्वरः।
बृहल्लोकनुतो द्रष्टा विद्यादाता जगद्गुरुः॥ ५४॥

४२५. बृहच्छक्तिः-महान् शक्तिशाली, **४२६. बृहद्वाञ्छाफलदः**-बड़ी-बड़ी इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले, **४२७. बृहदीश्वरः**-महान् सामर्थ्यवान्, **४२८. बृहल्लोकनुतः**-असंख्य लोगोंके द्वारा नमस्कृत, **४२९. द्रष्टा**-शुभाशुभ कर्मोंको देखनेवाले, **४३०. विद्यादाता**-विद्या प्रदान करनेवाले, **४३१. जगद्गुरुः**-जगत्‌को सन्मार्गमें लगानेवाले गुरु॥ ५४॥

देवाचार्यः सत्यवादी ब्रह्मवादी कलाधरः।
सप्तपातालगामी च मलयाचलसंश्रयः॥ ५५॥

४३२. देवाचार्यः-देवताओंके आचार्य, **४३३. सत्यवादी**-सत्य बोलनेवाले, **४३४. ब्रह्मवादी**-ब्रह्म-(परमात्म)-विषयक विवेचन करनेवाले, **४३५. कलाधरः**-कलाओंके ज्ञाता, **४३६. सप्तपातालगामी**-सातों पातालोंमें विचरण करनेवाले,* **४३७. मलयाचलसंश्रयः**-मलयगिरिपर निवास करनेवाले॥ ५५॥

उत्तराशास्थितः श्रीदो दिव्यौषधिवशः खगः।
शाखामृगः कपीन्द्रोऽथ पुराणश्रुतिचञ्चुरः॥ ५६॥

४३८. उत्तराशास्थितः-उत्तर दिशामें स्थित, **४३९. श्रीदः**-शोभा (ऐश्वर्य) प्रदान करनेवाले, **४४०. दिव्यौषधिवशः**-दिव्य ओषधियोंको वशीभूत करनेवाले, **४४१. खगः**-नभोमण्डलमें विचरण करनेवाले, **४४२. शाखामृगः**-शाखाओंपर कूदनेवाले, **४४३. कपीन्द्रः**-वानरोंके अधिपति, **४४४. पुराणश्रुतिचञ्चुरः**-श्रुति और पुराणकी विशेष जानकारी रखनेवाले॥ ५६॥

चतुरब्राह्मणो योगी योगगम्यः परावरः।
अनादिनिधनो व्यासो वैकुण्ठः पृथिवीपतिः॥ ५७॥

४४५. चतुरब्राह्मणः-निपुण ब्राह्मणस्वरूप, **४४६. योगी**-योगसिद्ध, **४४७. योगगम्यः**-योगाभ्यासके द्वारा प्राप्त होनेवाले, **४४८. परावरः**-विश्वके आदि और अन्तस्वरूप, **४४९. अनादिनिधनः**-आदि-अन्तसे रहित, **४५०. व्यासः**-वेदोंका विस्तार करनेवाले, **४५१. वैकुण्ठः**-मायाके प्रभावसे रहित, **४५२. पृथिवीपतिः**-भूलोकके रक्षक॥ ५७॥

अपराजितो जितारातिः सदानन्दो दयायुतः।
गोपालो गोपतिर्गोप्ता कलिकालपराशरः॥ ५८॥

४५३. अपराजितः-शत्रुओंके द्वारा अजेय, **४५४. जितारातिः**-शत्रुओंको जीतनेवाले, **४५५. सदानन्दः**-सदा आनन्दित रहनेवाले, **४५६. दयायुतः**-दयालु, **४५७. गोपालः**-पृथ्वीका पालन करनेवाले, **४५८. गोपतिः**-इन्द्रियोंके स्वामी, **४५९. गोप्ता**-भक्तोंके रक्षक, **४६०. कलिकालपराशरः**-कलिकालके पराशर अर्थात् कथावाचकोंके उत्पादक॥ ५८॥

---

* अतलं वितलं चैव सुतलं च तलातलम्। महातलं च विख्यातं ततो ज्ञेयं रसातलम्॥
ततः पातालमित्येव सप्त पातालसंज्ञकाः॥ (पद्मपु० पा० खण्ड)

मनोवेगी सदायोगी संसारभयनाशनः।
तत्त्वदाताथ तत्त्वज्ञस्तत्त्वं तत्त्वप्रकाशकः॥ ५९॥

४६१. **मनोवेगी**-मनके समान वेगवाले, ४६२. **सदायोगी**-सदा योगयुक्त रहनेवाले, ४६३. **संसारभयनाशनः**-भवभयका नाश करनेवाले, ४६४. **तत्त्वदाता**-तत्त्वज्ञानके दाता, ४६५. **तत्त्वज्ञः**-तत्त्वज्ञानी, ४६६. **तत्त्वम्**-ब्रह्मस्वरूप, ४६७. **तत्त्वप्रकाशकः**-तत्त्वका प्रकाश करनेवाले॥ ५९॥

शुद्धो बुद्धो नित्यमुक्तो भक्तराजो जयद्रथः।
प्रलयोऽमितमायश्च मायातीतो विमत्सरः॥ ६०॥

४६८. **शुद्धः**-सबको पवित्र करनेवाले, ४६९. **बुद्धः**-ज्ञानवान्, ४७०. **नित्यमुक्तः**-सदा मुक्तस्वरूप, ४७१. **भक्तराजः**-भगवद्भक्तोंमें देदीप्यमान, ४७२. **जयद्रथः**-आक्रमणमें जय प्राप्त करनेवाले, ४७३. **प्रलयः**-शत्रुओंके लिये प्रलयंकर, ४७४. **अमितमायः**-अनन्त माया जाननेवाले, ४७५. **मायातीतः**-सर्वथा मायाजालसे रहित, ४७६. **विमत्सरः**-ईर्ष्यासे रहित॥ ६०॥

मायाभर्जितरक्षाश्च मायानिर्मितविष्टपः।
मायाश्रयश्च निर्लेपो मायानिर्वर्तकः सुखम्॥ ६१॥

४७७. **मायाभर्जितरक्षाः**-अपनी मायासे राक्षसोंको भून डालनेवाले, ४७८. **मायानिर्मितविष्टपः**-मायासे भुवनोंकी सृष्टि करनेवाले, ४७९. **मायाश्रयः**-मायाका आश्रय लेनेवाले, ४८०. **निर्लेपः**-निरासक्त रहनेवाले, ४८१. **मायानिर्वर्तकः**-मायाशक्तिद्वारा कार्य सम्पन्न करनेवाले, ४८२. **सुखम्**-सुखस्वरूप॥ ६१॥

सुखी सुखप्रदो नागो महेशकृतसंस्तवः।
महेश्वरः सत्यसंधः शरभः कलिपावनः॥ ६२॥

४८३. **सुखी**-सदा सुखसे रहनेवाले, ४८४. **सुखप्रदः**-सुख प्रदान करनेवाले, ४८५. **नागः**-नागस्वरूप, ४८६. **महेशकृतसंस्तवः**-शंकरजीके द्वारा स्तुत, ४८७. **महेश्वरः**-महान् ऐश्वर्यशाली, ४८८. **सत्यसंधः**-सत्यवादी, ४८९. **शरभः**-शरभ नामक पशुके समान महान् बलशाली, ४९०. **कलिपावनः**-कलियुगको पवित्र करनेवाले॥ ६२॥

सहस्रकन्धरबलविध्वंसनविचक्षणः।
सहस्रबाहुः सहजो द्विबाहुर्द्विभुजोऽमरः॥ ६३॥

४९१. **सहस्रकन्धरबलविध्वंसनविचक्षणः**-हजारों सिरवाले रावणके बलको विध्वंस करनेमें चतुर, ४९२. **सहस्रबाहुः**-हजारों भुजावाले, ४९३. **सहजः**-सहज स्थितिस्वरूप, ४९४. **द्विबाहुः**-दो बाहुवाले, ४९५. **द्विभुजः**-दो भुजाओंवाले, ४९६. **अमरः**-अविनाशी॥ ६३॥

चतुर्भुजो दशभुजो हयग्रीवः खगाननः।
कपिवक्त्रः कपिपतिर्नरसिंहो महाद्युतिः॥ ६४॥

४९७. **चतुर्भुजः**-चार भुजावाले, ४९८. **दशभुजः**-दस भुजावाले, ४९९. **हयग्रीवः**-अश्वके समान गर्दनवाले, ५००. **खगाननः**-गरुडके समान मुखवाले, ५०१. **कपिवक्त्रः**-कपि-सदृश मुखवाले, ५०२. **कपिपतिः**-वानरोंकी रक्षा करनेवाले, ५०३. **नरसिंहः**-नरसिंहके समान विकराल रूप धारण करनेवाले, ५०४. **महाद्युतिः**-अत्यन्त तेजस्वी॥ ६४॥

भीषणो भावगो वन्द्यो वराहो वायुरूपधृक्।
लक्ष्मणप्राणदाता च पराजितदशाननः॥ ६५॥

५०५. **भीषणः**-युद्धमें भयंकररूप, ५०६. **भावगः**-भगवद्भावको प्राप्त, ५०७. **वन्द्यः**-वन्दना करनेयोग्य, ५०८. **वराहः**-वराह-मुखवाले, ५०९. **वायुरूपधृक्**-वायुका रूप धारण करनेवाले, ५१०. **लक्ष्मणप्राणदाता**-लक्ष्मणको (संजीवनी लाकर) जिलानेवाले, ५११. **पराजितदशाननः**-दशानन (रावण)-को पराजित करनेवाले॥ ६५॥

पारिजातनिवासी च वटुर्वचनकोविदः।
सुरसास्यविनिर्मुक्तः सिंहिकाप्राणहारकः॥ ६६॥

५१२. **पारिजातनिवासी**-पारिजात वृक्षके नीचे निवास करनेवाले, ५१३. **वटुः**-ब्रह्मचारीस्वरूप, ५१४. **वचनकोविदः**-बोलनेमें अति चतुर, ५१५. **सुरसास्यविनिर्मुक्तः**-सुरसाके मुखसे सुखपूर्वक निकल आनेवाले, ५१६. **सिंहिकाप्राणहारकः**-सिंहिका राक्षसीका प्राण हरनेवाले॥ ६६॥

लङ्कालंकारविध्वंसी वृषदंशकरूपधृक्।
रात्रिसंचारकुशलो रात्रिंचरगृहाग्निदः॥ ६७॥

५१७. **लङ्कालंकारविध्वंसी**-लंकाकी शोभाको नष्ट करनेवाले, ५१८. **वृषदंशकरूपधृक्**-वृषदंशक अर्थात् विडालका रूप धारण करनेवाले, ५१९. **रात्रिसंचारकुशलः**-रातमें घूमनेमें चतुर, ५२०. **रात्रिंचरगृहाग्निदः**-राक्षसोंके घरोंमें आग लगानेवाले॥ ६७॥

किंकरान्तकरो जम्बुमालिहन्तोग्ररूपधृक्।
आकाशचारी हरिगो मेघनादरणोत्सुकः॥ ६८॥

५२१. **किंकरान्तकरः**-रावणके सेवकोंको मार डालनेवाले, ५२२. **जम्बुमालिहन्ता**-जम्बुमाली राक्षसको मारनेवाले, ५२३. **उग्ररूपधृक्**-उग्ररूप धारण करनेवाले, ५२४. **आकाशचारी**-आकाशमें विचरण करनेवाले,

५२५. हरिगः-प्रभुको प्राप्त करनेवाले, **५२६. मेघनाद-रणोत्सुकः**-मेघनादके साथ युद्ध करनेके लिये उत्कण्ठित ॥ ६८ ॥

मेघगम्भीरनिनदो महारावणकुलान्तकः।
कालनेमिप्राणहारी मकरीशापमोक्षदः ॥ ६९ ॥

५२७. मेघगम्भीरनिनदः-बादलके समान गम्भीर शब्द करनेवाले, **५२८. महारावणकुलान्तकः**-महारावणके कुलको नष्ट करनेवाले, **५२९. कालनेमिप्राणहारी**-कालनेमि राक्षसका प्राण हरनेवाले, **५३०. मकरीशापमोक्षदः**-मकरीको शापसे मुक्त करनेवाले ॥ ६९ ॥

रसो रसज्ञः सम्मानो रूपं चक्षुः श्रुतिर्वचः।
घ्राणो गन्धः स्पर्शनं च स्पर्शोऽहंकारमानगः ॥ ७० ॥

५३१. रसः-रसस्वरूप, **५३२. रसज्ञः**-रसको जाननेवाले, **५३३. सम्मानः**-प्रभुका सम्यक् सम्मान करनेवाले, **५३४. रूपम्**-रूपस्वरूप, **५३५. चक्षुः**-चक्षुस्वरूप, **५३६. श्रुतिः**-श्रवणस्वरूप, **५३७. वचः**-वाणीस्वरूप, **५३८. घ्राणः**-नासिकास्वरूप, **५३९. गन्धः**-गन्धरूप, **५४०. स्पर्शनम्**-स्पर्शरूप, **५४१. स्पर्शः**-सम्पर्क-ज्ञानस्वरूप, **५४२. अहंकारमानगः**-अहंकारके स्वरूपको प्राप्त होनेवाले ॥ ७० ॥

नेतिनेतीतिगम्यश्च वैकुण्ठभजनप्रियः।
गिरीशो गिरिजाकान्तो दुर्वासाः कविरङ्गिराः ॥ ७१ ॥

५४३. नेतिनेतीतिगम्यः-नेति-नेति शब्दोंद्वारा गम्य, **५४४. वैकुण्ठभजनप्रियः**-भगवान्‌के भजनमें प्रीति रखनेवाले, **५४५. गिरीशः**-पर्वतोंके ईश, **५४६. गिरिजाकान्तः**-माता पार्वतीके प्रिय शंकरस्वरूप, **५४७. दुर्वासाः**-दुर्वासा मुनिस्वरूप, **५४८. कविः**-कविस्वरूप, **५४९. अङ्गिराः**-अङ्गिरा-मुनिरूप ॥ ७१ ॥

भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनो नारदस्तुम्बरोऽमलः।
विश्वक्षेत्रो विश्वबीजो विश्वनेत्रश्च विश्वपः ॥ ७२ ॥

५५०. भृगुः-भृगुमुनिस्वरूप, **५५१. वसिष्ठः**-वसिष्ठमुनिस्वरूप, **५५२. च्यवनः**-च्यवन ऋषिस्वरूप, **५५३. नारदः**-नारदमुनिस्वरूप, **५५४. तुम्बरः**-तुम्बुरु गन्धर्वस्वरूप, **५५५. अमलः**-दोषरहित, **५५६. विश्वक्षेत्रः**-विश्वक्षेत्रस्वरूप, **५५७. विश्वबीजः**-विश्वबीज अर्थात् कारणस्वरूप, **५५८. विश्वनेत्रः**-सर्वद्रष्टा, **५५९. विश्वपः**-विश्वके पालक ॥ ७२ ॥

याजको यजमानश्च पावकः पितरस्तथा।
श्रद्धा बुद्धिः क्षमा तन्द्रा मन्त्रो मन्त्रयिता सुरः ॥ ७३ ॥

५६०. याजकः-यज्ञकर्मा, **५६१. यजमानः**-प्रधान होतारूप, **५६२. पावकः**-अग्निरूप, **५६३. पितरः**-जगत्‌के माता-पिता, **५६४. श्रद्धा**-श्रद्धास्वरूप, **५६५. बुद्धिः**-बुद्धिस्वरूप, **५६६. क्षमा**-क्षमास्वरूप, **५६७. तन्द्रा**-तन्द्रारूप, **५६८. मन्त्रः**-मन्त्रस्वरूप, **५६९. मन्त्रयिता**-शुभ मन्त्र देनेवाले, **५७०. सुरः**-देवस्वरूप ॥ ७३ ॥

राजेन्द्रो भूपती रुण्डमाली संसारसारथिः।
नित्यसम्पूर्णकामश्च भक्तकामधुगुत्तमः ॥ ७४ ॥

५७१. राजेन्द्रः-राजाओंमें श्रेष्ठ, **५७२. भूपतिः**-पृथ्वीके पालक, **५७३. रुण्डमाली**-रुण्डोंकी मालावाले, **५७४. संसारसारथिः**-भक्तोंको भवसिन्धु पार करनेमें सहायक, **५७५. नित्यसम्पूर्णकामः**-सदा सभी कामनाओंसे तृप्त, **५७६. भक्तकामधुक्**-भक्तोंकी कामनाओंके दोग्धा, **५७७. उत्तमः**-श्रेष्ठ ॥ ७४ ॥

गणपः केशवो भ्राता पिता माता च मारुतिः।
सहस्रमूर्द्धानेकास्यः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ ७५ ॥

५७८. गणपः-वानरगणोंके पालक, **५७९. केशवः**-घुँघराले केशवाले, **५८०. भ्राता**-भ्रातृस्वरूप, **५८१. पिता**-पितारूप, **५८२. माता**-वात्सल्यमयी मातारूप, **५८३. मारुतिः**-पवनदेवताके पुत्र, **५८४. सहस्रमूर्द्धा**-हजारों सिरवाले, **५८५. अनेकास्यः**-अनेक मुखवाले, **५८६. सहस्राक्षः**-सहस्रों नेत्रवाले, **५८७. सहस्रपात्**-सहस्रों पैरवाले ॥ ७५ ॥

कामजित् कामदहनः कामः कामफलप्रदः।
मुद्रापहारी रक्षोघ्नः क्षितिभारहरो बलः ॥ ७६ ॥

५८८. कामजित्-कामदेवको जीतनेवाले, **५८९. कामदहनः**-कामको जलानेवाले, **५९०. कामः**-सौन्दर्यशाली, **५९१. कामफलप्रदः**-कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, **५९२. मुद्रापहारी**-श्रीराम-मुद्रिकाको ले जानेवाले, **५९३. रक्षोघ्नः**-राक्षसोंका नाश करनेवाले, **५९४. क्षितिभारहरः**-पृथ्वीका भार उतारनेवाले, **५९५. बलः**-शत्रु-संहारक ॥ ७६ ॥

नखदंष्ट्रायुधो विष्णुर्भक्ताभयवरप्रदः।
दर्पहा दर्पदो दंष्ट्राशतमूर्तिरमूर्तिमान् ॥ ७७ ॥

५९६. नखदंष्ट्रायुधः-नख और दंष्ट्रारूप शस्त्र धारण करनेवाले, **५९७. विष्णुः**-व्यापकस्वरूप, **५९८. भक्ताभय-वरप्रदः**-भक्तोंको अभय वर प्रदान करनेवाले, **५९९. दर्पहा**-दर्पका नाश करनेवाले, **६००. दर्पदः**-उत्साह प्रदान करनेवाले, **६०१. दंष्ट्राशतमूर्तिः**-सौ दंष्ट्राओंसे युक्त मूर्तिवाले,

६०२. अमूर्तिमान्-मूर्तिरहित अर्थात् निराकारस्वरूप॥ ७७॥

महानिधिर्महाभागो महाभर्गो महर्द्धिदः।
महाकारो महायोगी महातेजा महाद्युतिः॥ ७८॥

६०३. महानिधिः-सद्‌गुणोंके महान् भण्डार, **६०४. महाभागः**-बड़े भाग्यशाली, **६०५. महाभर्गः**-महातेजस्वी, **६०६. महर्द्धिदः**-महान् ऋद्धि प्रदान करनेवाले, **६०७. महाकारः**-बड़े आकारवाले, **६०८. महायोगी**-महान् योगी, **६०९. महातेजाः**-बड़े तेजस्वी, **६१०. महाद्युतिः**-अत्यन्त शोभावाले॥ ७८॥

महासनो महानादो महामन्त्रो महामतिः।
महागमो महोदारो महादेवात्मको विभुः॥ ७९॥

६११. महासनः-अत्यन्त स्थिर आसनवाले, **६१२. महानादः**-बड़ी गर्जना करनेवाले, **६१३. महामन्त्रः**-उच्चकोटिके मन्त्रवाले, **६१४. महामतिः**-महान् बुद्धिमान्, **६१५. महागमः**-महान् गतिवाले, **६१६. महोदारः**-बड़े उदार, **६१७. महादेवात्मकः**-महादेवस्वरूप, **६१८. विभुः**-सर्वव्यापक॥ ७९॥

रौद्रकर्मा क्रूरकर्मा रत्ननाभः कृतागमः।
अम्भोधिलङ्घनः सिंहः सत्यधर्मप्रमोदनः॥ ८०॥

६१९. रौद्रकर्मा-भयानक कर्म करनेवाले, **६२०. क्रूरकर्मा**-कठोर कर्म करनेवाले, **६२१. रत्ननाभः**-रत्नके समान नाभिवाले, **६२२. कृतागमः**-शास्त्रकी रचना करनेवाले, **६२३. अम्भोधिलङ्घनः**-समुद्र लाँघनेवाले, **६२४. सिंहः**-सिंहस्वरूप, **६२५. सत्यधर्मप्रमोदनः**-सत्यधर्मका पालन करनेमें प्रसन्न॥ ८०॥

जितामित्रो जयः सोमो विजयो वायुनन्दनः।
जीवदाता सहस्रांशुर्मुकुन्दो भूरिदक्षिणः॥ ८१॥

६२६. जितामित्रः-शत्रुओंको जीतनेवाले, **६२७. जयः**-जयस्वरूप, **६२८. सोमः**-सोमस्वरूप, **६२९. विजयः**-पराक्रमी, **६३०. वायुनन्दनः**-पवनदेवताको आनन्दित करनेवाले, **६३१. जीवदाता**-प्राणदान करनेवाले, **६३२. सहस्रांशुः**-सूर्यस्वरूप, **६३३. मुकुन्दः**-मुक्ति प्रदान करनेवाले, **६३४. भूरिदक्षिणः**-विपुल दक्षिणा प्रदान करनेवाले॥ ८१॥

सिद्धार्थः सिद्धिदः सिद्धसंकल्पः सिद्धिहेतुकः।
सप्तपातालचरणः सप्तर्षिगणवन्दितः॥ ८२॥

६३५. सिद्धार्थः-सदासिद्ध प्रयोगवाले, **६३६. सिद्धिदः**-सिद्धि देनेवाले, **६३७. सिद्धसंकल्पः**-सिद्ध संकल्पवाले, **६३८. सिद्धिहेतुकः**-सिद्धियोंके कारण, **६३९. सप्तपातालचरणः**-सप्तपातालमें संचरण करनेवाले, **६४०. सप्तर्षिगणवन्दितः**-सप्तर्षियोंद्वारा वन्दित[1]॥ ८२॥

सप्ताब्धिलङ्घनो वीरः सप्तद्वीपोरुमण्डलः।
सप्ताङ्गराज्यसुखदः सप्तमातृनिषेवितः॥ ८३॥

६४१. सप्ताब्धिलङ्घनः-सातों समुद्रोंको लाँघनेवाले[2], **६४२. वीरः**-संदेश पहुँचानेवालोंमें वीर, **६४३. सप्तद्वीपोरुमण्डलः**-सप्तद्वीपके विशाल मण्डलमें विचरण करनेवाले[3], **६४४. सप्ताङ्गराज्यसुखदः**-सप्ताङ्गयुक्त राज्यके लिये सुखद[4], **६४५. सप्तमातृनिषेवितः**-सात माताओंद्वारा सेवित[5]॥ ८३॥

सप्तस्वर्लोकमुकुटः सप्तहोता स्वराश्रयः।
सप्तच्छन्दोनिधिः सप्तच्छन्दः सप्तजनाश्रयः॥ ८४॥

६४६. सप्तस्वर्लोकमुकुटः-सात स्वर्गलोकोंके मुकुटमणि[6], **६४७. सप्तहोता**-सामवेदके सात मन्त्रोंसे हवन करनेवाले, **६४८. स्वराश्रयः**-स्वरोंका आश्रय लेनेवाले अर्थात् संगीत-शास्त्रोंमें प्रवीण, **६४९. सप्तच्छन्दोनिधिः**-सात वैदिक छन्दोंके[7] आश्रय, **६५०. सप्तच्छन्दः**-सात छन्दस्वरूप, **६५१. सप्तजनाश्रयः**-सप्तजनोंके आश्रयस्वरूप॥ ८४॥

सप्तसामोपगीतश्च सप्तपातालसंश्रयः।
मेधादः कीर्तिदः शोकहारी दौर्भाग्यनाशनः॥ ८५॥

६५२. सप्तसामोपगीतः-जिनका सामवेदकी सात स्वरोंद्वारा गान किया जाता है[8], **६५३. सप्तपातालसंश्रयः**-सप्तपातालके आश्रय, **६५४. मेधादः**-मेधाको प्रदान करनेवाले, **६५५. कीर्तिदः**-यश देनेवाले, **६५६. शोकहारी**-

---

१. मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अङ्गिरा और वसिष्ठ—ये सात ऋषि हैं।
२. क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद, क्षीरोद, दधिमण्डोद और शुद्धोद—ये सात समुद्र हैं।
३. जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर—ये सात द्वीप हैं।
४. राजा, मन्त्री, सामन्त, देश, कोष, गढ़ और सेना—ये राज्यके सात अङ्ग हैं।
५. ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा—ये सात माताएँ हैं।
६. भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—ये सात स्वर्लोक होते हैं।
७. गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, आदि सात छन्द हैं।
८. निषाद, आर्षभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पञ्चम—ये सात स्वर हैं।

शोक हरण करनेवाले, ६५७. **दौर्भाग्यनाशनः**-दुर्भाग्यका नाश करनेवाले॥ ८५॥

सर्वरक्षाकरो गर्भदोषहा पुत्रपौत्रदः।
प्रतिवादिमुखस्तम्भो रुष्टचित्तप्रसादनः॥ ८६॥

६५८. **सर्वरक्षाकरः**-चारों ओरसे रक्षा करनेवाले, ६५९. **गर्भदोषहा**-गर्भ-दोषको दूर करनेवाले, ६६०. **पुत्रपौत्रदः**-पुत्र और पौत्र प्रदान करनेवाले, ६६१. **प्रतिवादिमुखस्तम्भः**-प्रतिवादीके मुखको बंद करनेवाले अर्थात् श्रेष्ठ वक्ता, ६६२. **रुष्टचित्तप्रसादनः**-रुष्टचित्तवालोंको प्रसन्न करनेवाले॥ ८६॥

पराभिचारशमनो दुःखहा बन्धमोक्षदः।
नवद्वारपुराधारो नवद्वारनिकेतनः॥ ८७॥

६६३. **पराभिचारशमनः**-शत्रुके मारण-मोहन आदि अभिचारोंको शमन करनेवाले, ६६४. **दुःखहा**-दुःखोंका नाश करनेवाले, ६६५. **बन्धमोक्षदः**-बन्धनसे मुक्त करनेवाले, ६६६. **नवद्वारपुराधारः**-नवद्वारपुर (शरीर)-के आधार,* ६६७. **नवद्वारनिकेतनः**-नवद्वारवाले शरीररूपी घरमें रहनेवाले आत्म-स्वरूप॥ ८७॥

नरनारायणस्तुत्यो नवनाथमहेश्वरः।
मेखली कवची खड्गी भ्राजिष्णुर्जिष्णुसारथिः॥ ८८॥

६६८. **नरनारायणस्तुत्यः**-नर और नारायणके द्वारा स्तुत्य, ६६९. **नवनाथमहेश्वरः**-नवनाथोंके महेश्वर, ६७०. **मेखली**-मेखला धारण करनेवाले, ६७१. **कवची**-कवच धारण करनेवाले, ६७२. **खड्गी**-खड्ग धारण करनेवाले, ६७३. **भ्राजिष्णुः**-देदीप्यमान, ६७४. **जिष्णुसारथिः**-अर्जुनके सारथि अर्थात् ध्वजामें निवास करनेवाले॥ ८८॥

बहुयोजनविस्तीर्णपुच्छः पुच्छहतासुरः।
दुष्टग्रहनिहन्ता च पिशाचग्रहघातकः॥ ८९॥

६७५. **बहुयोजनविस्तीर्णपुच्छः**-अनेक योजन लंबी पूँछवाले, ६७६. **पुच्छहतासुरः**-पूँछसे राक्षसोंको मारनेवाले, ६७७. **दुष्टग्रहनिहन्ता**-दुष्टग्रहोंके नाशक, ६७८. **पिशाचग्रहघातकः**-पिशाचग्रहके हन्ता॥ ८९॥

बालग्रहविनाशी च धर्मनेता कृपाकरः।
उग्रकृत्यश्चोग्रवेग उग्रनेत्रः शतक्रतुः॥ ९०॥

६७९. **बालग्रहविनाशी**-बालग्रहोंका विनाश करनेवाले, ६८०. **धर्मनेता**-धर्मके नेता, ६८१. **कृपाकरः**-कृपा करनेवाले, ६८२. **उग्रकृत्यः**-उग्र कृत्यकर्ता, ६८३. **उग्रवेगः**-भयंकर वेगवान्, ६८४. **उग्रनेत्रः**-उग्र नेत्रवाले, ६८५. **शतक्रतुः**-सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्रस्वरूप॥ ९०॥

शतमन्युनुतः स्तुत्यः स्तुतिः स्तोता महाबलः।
समग्रगुणशाली च व्यग्रो रक्षोविनाशकः॥ ९१॥

६८६. **शतमन्युनुतः**-इन्द्रद्वारा स्तुत, ६८७. **स्तुत्यः**-स्तुति करनेयोग्य, ६८८. **स्तुतिः**-स्तुतिस्वरूप, ६८९. **स्तोता**-स्तुति करनेवाले, ६९०. **महाबलः**-अत्यन्त बलशाली, ६९१. **समग्रगुणशाली**-सारे गुणोंसे युक्त, ६९२. **व्यग्रः**-सदा उद्यत, ६९३. **रक्षोविनाशकः**-असुरोंका विनाश करनेवाले॥ ९१॥

रक्षोऽग्निदाहो ब्रह्मेशः श्रीधरो भक्तवत्सलः।
मेघनादो मेघरूपो मेघवृष्टिनिवारकः॥ ९२॥

६९४. **रक्षोऽग्निदाहः**-राक्षसोंको अग्निमें जला देनेवाले, ६९५. **ब्रह्मेशः**-ब्रह्माके ऊपर शासन करनेवाले, ६९६. **श्रीधरः**-ऐश्वर्य धारण करनेवाले, ६९७. **भक्तवत्सलः**-भक्तोंपर कृपा करनेवाले, ६९८. **मेघनादः**-मेघके समान गर्जनेवाले, ६९९. **मेघरूपः**-मेघके समान रूपवाले, ७००. **मेघवृष्टिनिवारकः**-मेघकी वृष्टिको रोकनेवाले॥ ९२॥

मेघजीवनहेतुश्च मेघश्यामः परात्मकः।
समीरतनयो योद्धा नृत्यविद्याविशारदः॥ ९३॥

७०१. **मेघजीवनहेतुः**-मेघोंके जीवनके हेतु समुद्रस्वरूप, ७०२. **मेघश्यामः**-मेघके समान श्याम वर्णवाले, ७०३. **परात्मकः**-परमात्मस्वरूप, ७०४. **समीरतनयः**-वायुदेवताके पुत्र, ७०५. **योद्धा**-शत्रुओंके साथ लड़नेवाले, ७०६. **नृत्यविद्याविशारदः**-नृत्यकलामें निपुण॥ ९३॥

अमोघोऽमोघदृष्टिश्च इष्टदोऽरिष्टनाशनः।
अर्थोऽनर्थापहारी च समर्थो रामसेवकः॥ ९४॥

७०७. **अमोघः**-कभी व्यर्थ न होनेवाले, ७०८. **अमोघदृष्टिः**-जिनकी कृपादृष्टि कभी व्यर्थ नहीं जाती, ७०९. **इष्टदः**-मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले, ७१०. **अरिष्टनाशनः**-विघ्ननाशक, ७११. **अर्थः**-अर्थस्वरूप, ७१२. **अनर्थापहारी**-अनर्थको दूर करनेवाले, ७१३. **समर्थः**-सर्वथा सामर्थ्यवान्, ७१४. **रामसेवकः**-श्रीरामके सेवक॥ ९४॥

अर्थिवन्द्योऽसुराराति: पुण्डरीकाक्ष आत्मभूः।
संकर्षणो विशुद्धात्मा विद्याराशिः सुरेश्वरः॥ ९५॥

७१५. **अर्थिवन्द्यः**-अर्थियोंके द्वारा वन्दनीय, ७१६. **असुराराति:**-असुरोंके शत्रु, ७१७. **पुण्डरीकाक्षः**-श्वेतकमलके

* दो नेत्र, दो कर्ण, दो नासिका-छिद्र, मुख, उपस्थ और गुदा—ये नौ द्वार हैं।

समान नेत्रवाले, अथवा विष्णुस्वरूप, ७१८. **आत्मभूः**-स्वेच्छासे प्रकट होनेवाले, ७१९. **संकर्षणः**-शत्रुओंको कर्षण करनेवाले बलदेवस्वरूप, ७२०. **विशुद्धात्मा**-परम पवित्रस्वरूप, ७२१. **विद्याराशिः**-विद्याकी राशि—पूर्ण विद्वान्, ७२२. **सुरेश्वरः**-देवताओंके स्वामी॥ ९५॥

अचलोद्धारको नित्यः सेतुकृद् रामसारथिः।
आनन्दः परमानन्दो मत्स्यः कूर्मो निराश्रयः॥ ९६॥

७२३. **अचलोद्धारकः**-अचलों (पर्वतों)-का उद्धार करनेवाले, ७२४. **नित्यः**-नित्य विद्यमान, ७२५. **सेतुकृत्**-सेतु बनानेवाले, ७२६. **रामसारथिः**-श्रीरामके वाहन, ७२७. **आनन्दः**-आनन्द प्रदान करनेवाले, ७२८. **परमानन्दः**-परमानन्दस्वरूप, ७२९. **मत्स्यः**-मत्स्यस्वरूप, ७३०. **कूर्मः**-कूर्मस्वरूप, ७३१. **निराश्रयः**-आश्रयरहित॥ ९६॥

वाराहो नारसिंहश्च वामनो जमदग्निजः।
रामः कृष्णः शिवो बुद्धः कल्की रामाश्रयो हरिः॥ ९७॥

७३२. **वाराहः**-वराहस्वरूप, ७३३. **नारसिंहः**-नृसिंहस्वरूप, ७३४. **वामनः**-वामनस्वरूप, ७३५. **जमदग्निजः**-परशुरामस्वरूप, ७३६. **रामः**-श्रीरामस्वरूप, ७३७. **कृष्णः**-श्रीकृष्णस्वरूप, ७३८. **शिवः**-शिवस्वरूप, ७३९. **बुद्धः**-बुद्धस्वरूप, ७४०. **कल्किः**-कल्किस्वरूप, ७४१. **रामाश्रयः**-श्रीरामके आश्रित, ७४२. **हरिः**-जगत्का दुःख हरनेवाले॥ ९७॥

नन्दी भृङ्गी च चण्डी च गणेशो गणसेवितः।
कर्माध्यक्षः सुराध्यक्षो विश्रामो जगतीपतिः॥ ९८॥

७४३. **नन्दी**-नन्दीस्वरूप, ७४४. **भृङ्गी**-भृङ्गीस्वरूप, ७४५. **चण्डी**-देवीस्वरूप, ७४६. **गणेशः**-गणपतिरूप, ७४७. **गणसेवितः**-वानरगणोंद्वारा सेवित, ७४८. **कर्माध्यक्षः**-कर्मोंके स्वामी, ७४९. **सुराध्यक्षः**-देवताओंके अध्यक्ष, ७५०. **विश्रामः**-सब प्राणियोंके विश्रामस्थल, ७५१. **जगतीपतिः**-पृथ्वीका पालन करनेवाले॥ ९८॥

जगन्नाथः कपीशश्च सर्वावासः सदाश्रयः।
सुग्रीवादिस्तुतो दान्तः सर्वकर्मा प्लवङ्गमः॥ ९९॥

७५२. **जगन्नाथः**-जगत्के स्वामी, ७५३. **कपीशः**-वानरोंके स्वामी, ७५४. **सर्वावासः**-सबके निवासस्थान, ७५५. **सदाश्रयः**-परमार्थपथपर चलनेवालोंके आश्रय, ७५६. **सुग्रीवादिस्तुतः**-सुग्रीव आदि वानर जिनकी स्तुति करते हैं, ७५७. **दान्तः**-इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले, ७५८. **सर्वकर्मा**-कृतकृत्य, ७५९. **प्लवङ्गमः**-वानररूप॥ ९९॥

नखदारितरक्षाश्च नखयुद्धविशारदः।
कुशलः सुधनः शेषो वासुकिस्तक्षकस्तथा॥ १००॥

७६०. **नखदारितरक्षाः**-नखोंके द्वारा राक्षसोंको विदीर्ण करनेवाले, ७६१. **नखयुद्धविशारदः**-नखयुद्धमें कुशल, ७६२. **कुशलः**-परम निपुण, ७६३. **सुधनः**-भक्तिरूपी सुन्दर धनवाले, ७६४. **शेषः**-शेषनागस्वरूप, ७६५. **वासुकिः**-वासुकिसर्पस्वरूप, ७६६. **तक्षकः**-तक्षक सर्पस्वरूप॥ १००॥

स्वर्णवर्णो बलाढ्यश्च पुरुजेताघनाशनः।
कैवल्यरूपः कैवल्यो गरुडः पन्नगोरगः॥ १०१॥

७६७. **स्वर्णवर्णः**-सोनेके समान दीप्तवर्णवाले, ७६८. **बलाढ्यः**-अति शक्तिशाली, ७६९. **पुरुजेता**-बहुल विजयी, ७७०. **अघनाशनः**-पापका नाश करनेवाले, ७७१. **कैवल्यरूपः**-मुक्तिस्वरूप, ७७२. **कैवल्यः**-अद्वयस्वरूप, ७७३. **गरुडः**-गरुडरूप, ७७४. **पन्नगोरगः**-लेटे-लेटे चलनेवाले तथा उरसे चलनेवाले अर्थात् हनुमान्‌जी सब प्रकारसे चलनेवाले हैं॥ १०१॥

किल्किल्रावहतारातिर्गर्वपर्वतभेदनः।
वज्राङ्गो वज्रदंष्ट्रश्च भक्तवज्रनिवारकः॥ १०२॥

७७५. **किल्किल्रावहताराति**:-किल-किल शब्दसे शत्रुओंका नाश करनेवाले, ७७६. **गर्वपर्वतभेदनः**-गर्वरूप पर्वतको काट गिरानेवाले, ७७७. **वज्राङ्गः**-वज्रशरीर, ७७८. **वज्रदंष्ट्रः**-वज्रके समान दाँतवाले, ७७९. **भक्तवज्रनिवारकः**-भक्तोंके ऊपर गिरते हुए वज्रको रोकनेवाले॥ १०२॥

नखायुधो मणिग्रीवो ज्वालामाली च भास्करः।
प्रौढप्रतापस्तपनो भक्ततापनिवारकः॥ १०३॥

७८०. **नखायुधः**-नख जिनके शस्त्र हैं, ७८१. **मणिग्रीवः**-कण्ठमें मणि धारण करनेवाले, ७८२. **ज्वालामाली**-लंकादाहके समय अग्नि-ज्वालाकी माला धारण करनेवाले, ७८३. **भास्करः**-सूर्यके समान प्रकाशस्वरूप, ७८४. **प्रौढप्रतापः**-प्रवृद्ध प्रतापवाले, ७८५. **तपनः**-सूर्यरूप, ७८६. **भक्ततापनिवारकः**-भक्तोंका संताप दूर करनेवाले॥ १०३॥

शरणं जीवनं भोक्ता नानाचेष्टो ह्यचञ्चलः।
स्वस्तिमान् स्वस्तिदो दुःखशातनः पवनात्मजः॥ १०४॥

७८७. **शरणम्**-शरणागत-रक्षक, ७८८. **जीवनम्**-सबके जीवनस्वरूप, ७८९. **भोक्ता**-सबको पालन करनेवाले, ४९०. **नानाचेष्टः**-अनेक चेष्टावाले, ७९१. **अचञ्चलः**-

स्वरूपमें अटल रहनेवाले, ७९२. **स्वस्तिमान्**-कल्याणस्वरूप, ७९३. **स्वस्तिदः**-कल्याण वितरण करनेवाले, ७९४. **दुःखशातनः**-दुःखोंके नाशक, ७९५. **पवनात्मजः**-पवनके पुत्र॥ १०४॥

पावनः पवनः कान्तो भक्तागःसहनो बली।
मेघनादरिपुर्मेघनादसंहतराक्षसः ॥ १०५॥

७९६. **पावनः**-पवित्र करनेवाले, ७९७. **पवनः**-वायुरूप, ७९८. **कान्तः**-कान्तिमान्, ७९९. **भक्तागःसहनः**-भक्तोंके अपराधोंको सहन करनेवाले, ८००. **बली**-बलवान्, ८०१. **मेघनादरिपुः**-मेघनादके शत्रु, ८०२. **मेघनादसंहतराक्षसः**-जिनकी मेघ-तुल्य गर्जनासे राक्षस नष्ट हो जाते हैं॥ १०५॥

क्षरोऽक्षरो विनीतात्मा वानरेशः सतां गतिः।
श्रीकण्ठः शितिकण्ठश्च सहायः सहनायकः॥ १०६॥

८०३. **क्षरः**-प्रकृतिकार्यस्वरूप, ८०४. **अक्षरः**-अविनाशी आत्मस्वरूप, ८०५. **विनीतात्मा**-विनम्र-स्वभाव, ८०६. **वानरेशः**-वानरोंके ईश, ८०७. **सतां गतिः**-संतोंकी गति, ८०८. **श्रीकण्ठः**-शोभायमान कण्ठवाले, ८०९. **शितिकण्ठः**-नीलकण्ठ भगवान् शंकरस्वरूप, ८१०. **सहायः**-सहायता करनेवाले, ८११. **सहनायकः**-अपने स्वामी श्रीरामके साथ रहनेवाले॥ १०६॥

अस्थूलस्त्वनणुर्भर्गो दिव्यः संसृतिनाशनः।
अध्यात्मविद्यासारश्च ह्यध्यात्मकुशलः सुधीः॥ १०७॥

८१२. **अस्थूलः**-सूक्ष्मस्वरूप, ८१३. **अनणुः**-महान्, ८१४. **भर्गः**-आभायुक्त, ८१५. **दिव्यः**-दिव्यरूपधारी, ८१६. **संसृतिनाशनः**-भवबन्धनको मिटानेवाले, ८१७. **अध्यात्मविद्यासारः**-अध्यात्मविद्याके सार-तत्त्व, ८१८. **अध्यात्मकुशलः**-अध्यात्मविद्यामें कुशल, ८१९. **सुधीः**-सुन्दर बुद्धिवाले॥ १०७॥

अकल्मषः सत्यहेतुः सत्यदः सत्यगोचरः।
सत्यगर्भः सत्यरूपः सत्यः सत्यपराक्रमः॥ १०८॥

८२०. **अकल्मषः**-निष्पाप, ८२१. **सत्यहेतुः**-सत्यस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले, ८२२. **सत्यदः**-सत्य प्रदान करनेवाले, ८२३. **सत्यगोचरः**-सत्यसे दृष्टिगोचर होनेवाले, ८२४. **सत्यगर्भः**-सत्य आशयवाले, ८२५. **सत्यरूपः**-सत्य (प्रशस्त) रूप-सौन्दर्यसे युक्त, ८२६. **सत्यः**-सत्यस्वरूप, ८२७. **सत्यपराक्रमः**-जिनका पराक्रम निष्फल नहीं होता॥ १०८॥

अञ्जनाप्राणलिङ्गश्च वायुवंशोद्भवः शुभः।
भद्ररूपो रुद्ररूपः सुरूपश्चित्ररूपधृक्॥ १०९॥

८२८. **अञ्जनाप्राणलिङ्गः**-माता अञ्जनाके प्राणप्यारे पुत्र, ८२९. **वायुवंशोद्भवः**-वायुदेवताके वंशमें उत्पन्न, ८३०. **शुभः**-कल्याणप्रद, ८३१. **भद्ररूपः**-मङ्गलमय, ८३२. **रुद्ररूपः**-शंकरस्वरूप, ८३३. **सुरूपः**-सुन्दर स्वरूपवाले, ८३४. **चित्ररूपधृक्**-चित्र-विचित्र रूप धारण करनेवाले॥ १०९॥

मैनाकवन्दितः सूक्ष्मदर्शनो विजयो जयः।
क्रान्तदिङ्मण्डलो रुद्रः प्रकटीकृतविक्रमः॥ ११०॥

८३५. **मैनाकवन्दितः**-मैनाकपर्वतद्वारा वन्दित, ८३६. **सूक्ष्मदर्शनः**-सूक्ष्मदृष्टिवाले, ८३७. **विजयः**-अर्जुनस्वरूप, ८३८. **जयः**-विष्णुके द्वारपालस्वरूप, ८३९. **क्रान्तदिङ्मण्डलः**-दिशाओंके पार जानेवाले, ८४०. **रुद्रः**-आर्द्रानक्षत्ररूप, ८४१. **प्रकटीकृतविक्रमः**-अपने पराक्रमको प्रकट करनेवाले॥ ११०॥

कम्बुकण्ठः प्रसन्नात्मा ह्रस्वनासो वृकोदरः।
लम्बौष्ठः कुण्डली चित्रमाली योगविदां वरः॥ १११॥

८४२. **कम्बुकण्ठः**-शङ्खके समान सुन्दर गर्दनवाले, ८४३. **प्रसन्नात्मा**-सदा प्रसन्न चित्त रहनेवाले, ८४४. **ह्रस्वनासः**-छोटी नासिकावाले, ८४५. **वृकोदरः**-भेड़ियाके समान बड़े उदरवाले, ८४६. **लम्बौष्ठः**-बड़े-बड़े ओठवाले, ८४७. **कुण्डली**-कानोंमें कुण्डल धारण करनेवाले, ८४८. **चित्रमाली**-चित्र-विचित्र पुष्पोंकी माला पहननेवाले, ८४९. **योगविदां वरः**-योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ॥ १११॥

विपश्चित्कविरानन्दविग्रहोऽनल्पशासनः।
फाल्गुनीसूनुरव्यग्रो योगात्मा योगतत्परः॥ ११२॥

८५०. **विपश्चित्कविः**-तत्त्वज्ञ कवि, ८५१. **आनन्दविग्रहः**-मूर्तिमान् आनन्द, ८५२. **अनल्पशासनः**-सबके ऊपर शासन करनेवाले, ८५३. **फाल्गुनीसूनुः**-पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें उत्पन्न होनेके कारण वे फाल्गुनीपुत्र हैं, ८५४. **अव्यग्रः**-कभी व्याकुल न होनेवाले, ८५५. **योगात्मा**-योगस्वरूप, ८५६. **योगतत्परः**-योगमें तत्पर रहनेवाले॥ ११२॥

योगविद् योगकर्ता च योगयोनिर्दिगम्बरः।
अकारादिहकारान्तवर्णनिर्मितविग्रहः ॥ ११३॥

८५७. **योगवित्**-योगके ज्ञाता, ८५८. **योगकर्ता**-योगको बनानेवाले, ८५९. **योगयोनिः**-योगकी उत्पत्तिके कारण, ८६०. **दिगम्बरः**-दिशारूपी वस्त्रधारी, ८६१. **अकारादि-**

हकारान्तवर्णनिर्मितविग्रहः-सर्ववर्णस्वरूप ॥ ११३ ॥

उलूखलमुखः सिद्धसंस्तुतः प्रमथेश्वरः।
श्लिष्टजङ्घः श्लिष्टजानुः श्लिष्टपाणिः शिखाधरः ॥ ११४ ॥

८६२. **उलूखलमुखः**-ओखलीके समान मुखारविन्दवाले, ८६३. **सिद्धसंस्तुतः**-सिद्धपुरुषोंके द्वारा जिनकी सम्यक् रीतिसे स्तुति होती है, ८६४. **प्रमथेश्वरः**-भूतगणोंके स्वामी, ८६५. **श्लिष्टजङ्घः**-सटी हुई जङ्घावाले, ८६६. **श्लिष्टजानुः**-मिले हुए घुटनोंवाले, ८६७. **श्लिष्टपाणिः**-मिले हुए हाथोंवाले, ८६८. **शिखाधरः**-चोटी धारण करनेवाले ॥ ११४ ॥

सुशर्मामितशर्मा च नारायणपरायणः।
जिष्णुर्भविष्णू रोचिष्णुर्ग्रसिष्णुः स्थाणुरेव च ॥ ११५ ॥

८६९. **सुशर्मा**-सुन्दर सुख देनेवाले, ८७०. **अमितशर्मा**-असीम सुख देनेवाले, ८७१. **नारायणपरायणः**-भगवान् नारायणमें लीन रहनेवाले, ८७२. **जिष्णुः**-जीतनेवाले, ८७३. **भविष्णुः**-भविष्यमें होनेवाले, ८७४. **रोचिष्णुः**-कान्तिमान्, ८७५. **ग्रसिष्णुः**-सर्वसंहार करनेवाले शिवरूप, ८७६. **स्थाणुः**-स्थिर रहनेवाले ॥ ११५ ॥

हरिरुद्रानुसेकोऽथ कम्पनो भूमिकम्पनः।
गुणप्रवाहः सूत्रात्मा वीतरागस्तुतिप्रियः ॥ ११६ ॥

८७७. **हरिरुद्रानुसेकः**-भगवान् विष्णु और शंकरका अभिषेक करनेवाले, ८७८. **कम्पनः**-शत्रुओंको कम्पायमान करनेवाले, ८७९. **भूमिकम्पनः**-पृथ्वीको कम्पित करनेवाले, ८८०. **गुणप्रवाहः**-गुणोंके प्रवाह, अर्थात् सर्वगुणसम्पन्न, ८८१. **सूत्रात्मा**-यज्ञोपवीतधारी, ८८२. **वीतरागस्तुतिप्रियः**-वीतराग पुरुषके द्वारा की गयी स्तुति जिन्हें प्रिय लगती है ॥ ११६ ॥

नागकन्याभयध्वंसी रुक्मवर्णः कपालभृत्।
अनाकुलो भवोपायोऽनपायो वेदपारगः ॥ ११७ ॥

८८३. **नागकन्याभयध्वंसी**-नागकन्याओंके भयका ध्वंस करनेवाले, ८८४. **रुक्मवर्णः**-सुवर्णके समान वर्णवाले, ८८५. **कपालभृत्**-कपाल धारण करनेवाले महादेवस्वरूप, ८८६. **अनाकुलः**-व्यग्रतारहित, ८८७. **भवोपायः**-भवसागर पार करनेके लिये उपायरूप, ८८८. **अनपायः**-भगवान् श्रीरामसे कभी वियुक्त न होनेवाले, ८८९. **वेदपारगः**-वेदोंमें पारंगत ॥ ११७ ॥

अक्षरः पुरुषो लोकनाथ ऋक्षप्रभुर्दृढः।
अष्टाङ्गयोगफलभुक् सत्यसंधः पुरुष्टुतः ॥ ११८ ॥

८९०. **अक्षरः**-अविनाशी, ८९१. **पुरुषः**-बुद्धिरूपी पुरीमें सोनेवाले, ८९२. **लोकनाथः**-सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी, ८९३. **ऋक्षप्रभुः**-नक्षत्रोंके स्वामी, अर्थात् चन्द्रस्वरूप, ८९४. **दृढः**-हृष्ट-पुष्टशरीर, ८९५. **अष्टाङ्गयोगफलभुक्**-अष्टाङ्गयोगके फलका उपभोग करनेवाले, ८९६. **सत्यसंधः**-दृढ़ मैत्रीवाले, ८९७. **पुरुष्टुतः**-देवताओंके द्वारा संस्तुत ॥ ११८ ॥

श्मशानस्थाननिलयः प्रेतविद्रावणक्षमः।
पञ्चाक्षरपरः पञ्चमातृको रञ्जनध्वजः ॥ ११९ ॥

८९८. **श्मशानस्थाननिलयः**-श्मशानमें निवास करनेवाले, ८९९. **प्रेतविद्रावणक्षमः**-प्रेतको तुरंत भगानेमें समर्थ, ९००. **पञ्चाक्षरपरः**-'नमः शिवाय' इस प्रधान पञ्चाक्षर मन्त्रको जपनेवाले, ९०१. **पञ्चमातृकः**-सीता, उर्मिला, माण्डवी, श्रुतकीर्ति तथा अञ्जना—इन पाँच माताओंवाले, ९०२. **रञ्जनध्वजः**-लाल रंगकी ध्वजावाले ॥ ११९ ॥

योगिनीवृन्दवन्द्यश्रीः शत्रुघ्नोऽनन्तविक्रमः।
ब्रह्मचारीन्द्रियरिपुर्धृतदण्डो दशात्मकः ॥ १२० ॥

९०३. **योगिनीवृन्दवन्द्यश्रीः**-योगिनीवृन्दके द्वारा वन्दनीय शोभास्वरूप, ९०४. **शत्रुघ्नः**-शत्रुओंको हनन करनेवाले, ९०५. **अनन्तविक्रमः**-अपार पराक्रमशाली, ९०६. **ब्रह्मचारी**-ब्रह्ममें विचरण करनेवाले, ९०७. **इन्द्रियरिपुः**-इन्द्रियोंके शत्रु अर्थात् जितेन्द्रिय, ९०८. **धृतदण्डः**-दण्डधारी (गदाधारी), ९०९. **दशात्मकः**-दशावतारस्वरूप ॥ १२० ॥

अप्रपञ्चः सदाचारः शूरसेनाविदारकः।
वृद्धः प्रमोद आनन्दः सप्तद्वीपपतिन्धरः ॥ १२१ ॥

९१०. **अप्रपञ्चः**-संसारके प्रपञ्चसे रहित, ९११. **सदाचारः**-सदाचारयुक्त, ९१२. **शूरसेनाविदारकः**-शूर पुरुषोंकी सेनाको विदीर्ण करनेवाले, ९१३. **वृद्धः**-सब प्रकारसे बड़े, ९१४. **प्रमोदः**-प्रमोद-वृत्तिस्वरूप, ९१५. **आनन्दः**-आनन्दस्वरूप, ९१६. **सप्तद्वीपपतिन्धरः**-सप्तद्वीपपतियोंको धारण करनेवाले ॥ १२१ ॥

नवद्वारपुराधारः प्रत्यग्रः सामगायकः।
षट्चक्रधाम स्वर्लोकाभयकृन्मानदो मदः ॥ १२२ ॥

९१७. **नवद्वारपुराधारः**-नवद्वारवाले पुर अर्थात् शरीरोंके आधार, ९१८. **प्रत्यग्रः**-सबके आगे चलनेवाले, ९१९. **सामगायकः**-सामवेदका गान करनेवाले, ९२०. **षट्चक्रधाम**-

सहस्रार आदि षट्चक्रोंमें परमात्मरूपसे निवास करनेवाले,[१] **९२१. स्वर्लोकाभयकृत्**-स्वर्गलोकको अभय करनेवाले, **९२२. मानदः**-मान देनेवाले, **९२३. मदः**-सम्पूर्ण अहंकृतिरूप॥ १२२॥

सर्ववश्यकरः शक्तिरनन्तोऽनन्तमङ्गलः।
अष्टमूर्तिर्नयोपेतो विरूपः सुरसुन्दरः॥ १२३॥

९२४. सर्ववश्यकरः-सबको वशमें करनेवाले, **९२५. शक्तिः**-शक्तिस्वरूप, **९२६. अनन्तः**-जिनके गुणोंका अन्त नहीं है, **९२७. अनन्तमङ्गलः**-जो अनन्त मङ्गलोंसे पूर्ण हैं, **९२८. अष्टमूर्तिः**-पञ्च भूत, सूर्य, चन्द्र और आत्मा—ये आठ जिनकी मूर्ति अर्थात् स्वरूप हैं, **९२९. नयोपेतः**-नीतिमान्, **९३०. विरूपः**-विविध रूपवाले, **९३१. सुरसुन्दरः**-देवताओंसे भी अधिक सुन्दर॥ १२३॥

धूमकेतुर्महाकेतुः सत्यकेतुर्महारथः।
नन्दिप्रियः स्वतन्त्रश्च मेखली डमरुप्रियः॥ १२४॥

९३२. धूमकेतुः-अग्निस्वरूप, **९३३. महाकेतुः**-विशाल बुद्धिवाले, **९३४. सत्यकेतुः**-जिनका सत्य आदर्श है, **९३५. महारथः**-महारथी, **९३६. नन्दिप्रियः**-नन्दि (शिववाहन) जिनके प्रिय हैं, **९३७. स्वतन्त्रः**-जो किसीके अधीन नहीं हैं, **९३८. मेखली**-कटिसूत्र धारण करनेवाले, **९३९. डमरुप्रियः**-जिनको डमरू प्रिय है उस शिवके स्वरूप॥ १२४॥

लौहाङ्गः सर्वविद्धन्वी खण्डलः शर्व ईश्वरः।
फलभुक् फलहस्तश्च सर्वकर्मफलप्रदः॥ १२५॥

९४०. लौहाङ्गः-लोहेके समान दृढ़ शरीरवाले, **९४१. सर्ववित्**-सब कुछ जाननेवाले, **९४२. धन्वी**-धनुर्धर, **९४३. खण्डलः**-द्रोणगिरिको खण्डित कर लानेवाले, **९४४. शर्वः**-शिवस्वरूप, **९४५. ईश्वरः**-ईश्वरस्वरूप, **९४६. फलभुक्**-फल खानेवाले वानररूप, **९४७. फलहस्तः**-जिनके करकमलमें फल है, **९४८. सर्वकर्मफलप्रदः**-सब कर्मोंका फल प्रदान करनेवाले॥ १२५॥

धर्माध्यक्षो धर्मपालो धर्मो धर्मप्रदोऽर्थदः।
पञ्चविंशतितत्त्वज्ञस्तारको ब्रह्मतत्परः॥ १२६॥

९४९. धर्माध्यक्षः-धर्म-निधिके अध्यक्ष, **९५०. धर्मपालः**-धर्मका पालन करनेवाले, **९५१. धर्मः**-धर्मस्वरूप, **९५२. धर्मप्रदः**-न्यायधर्मके दाता, **९५३. अर्थदः**-अर्थ प्रदान करनेवाले, **९५४. पञ्चविंशतितत्त्वज्ञः**-पचीस तत्त्वोंके यथार्थ ज्ञाता,[२] **९५५. तारकः**-भवसागरसे तारनेवाले, **९५६. ब्रह्मतत्परः**-परब्रह्ममें तत्पर॥ १२६॥

त्रिमार्गवसतिर्भीमः सर्वदुःखनिबर्हणः।
ऊर्जस्वान् निष्कलः शूली मौलिर्गर्जन्निशाचरः॥ १२७॥

९५७. त्रिमार्गवसतिः-ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग—इन तीनों मार्गोंके निवास-स्थल, **९५८. भीमः**-भयंकरस्वरूप, **९५९. सर्वदुःखनिबर्हणः**-सारे दुःखोंको दूर करनेवाले, **९६०. ऊर्जस्वान्**-बलशाली, **९६१. निष्कलः**-निर्गुण ब्रह्मस्वरूप, **९६२. शूली**-शूल धारण करनेवाले, **९६३. मौलिः**-किरीट धारण करनेवाले, **९६४. गर्जन्निशाचरः**-रात्रिमें गर्जते हुए विचरण करनेवाले अर्थात् निःशङ्क॥ १२७॥

रक्ताम्बरधरो रक्तो रक्तमाल्यो विभूषणः।
वनमाली शुभाङ्गश्च श्वेतः श्वेताम्बरो युवा॥ १२८॥

९६५. रक्ताम्बरधरः-लाल वर्णका वस्त्र धारण करनेवाले, **९६६. रक्तः**-लाल वर्णवाले, **९६७. रक्तमाल्यः**-लाल रंगकी मालासे सुशोभित, **९६८. विभूषणः**-अलंकारस्वरूप, **९६९. वनमाली**-वन्य पुष्पोंकी माला पहननेवाले, **९७०. शुभाङ्गः**-मङ्गलस्वरूप, **९७१. श्वेतः**-श्वेतरूप, **९७२. श्वेताम्बरः**-शुक्ल वर्णका वस्त्र धारण करनेवाले, **९७३. युवा**-सदा तरुणस्वरूप॥ १२८॥

जयोऽजयपरीवारः सहस्रवदनः कपिः।
शाकिनीडाकिनीयक्षरक्षोभूतप्रभञ्जकः॥ १२९॥

९७४. जयः-विजेता, **९७५. अजयपरीवारः**-जिसका विजय ही परिवार है, **९७६. सहस्रवदनः**-सहस्र मुखवाले, **९७७. कपिः**-कपिस्वरूप, **९७८. शाकिनीडाकिनीयक्षरक्षोभूतप्रभञ्जकः**-शाकिनी, डाकिनी, यक्ष, राक्षस, भूत आदिका नाश करनेवाले॥ १२९॥

सद्योजातः कामगतिर्ज्ञानमूर्तिर्यशस्करः।
शम्भुतेजाः सार्वभौमो विष्णुभक्तः प्लवङ्गमः॥ १३०॥

९७९. सद्योजातः-तुरंत प्रकट होनेवाले, **९८०. कामगतिः**-स्वच्छन्द घूमनेवाले, **९८१. ज्ञानमूर्तिः**-ज्ञानकी

---

१. मूलाधार, अधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा—ये षट्-चक्र हैं।

२. पञ्च महाभूत, अहंकार, बुद्धि, मन, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच विषय और प्रकृति तथा चेतन—ये पञ्चविंशति तत्त्व हैं।

साक्षात् मूर्ति, ९८२. **यशस्करः**-यशस्वी, ९८३. **शम्भुतेजाः**-भगवान् शंकरके समान तेजस्वी, ९८४. **सार्वभौमः**-सब संसारके अधिपति, ९८५. **विष्णुभक्तः**-भगवान् विष्णुके भक्त, ९८६. **प्लवङ्गमः**-मर्कटस्वरूप॥ १३०॥

चतुर्नवतिमन्त्रज्ञः पौलस्त्यबलदर्पहा।
सर्वलक्ष्मीप्रदः श्रीमानङ्गदप्रिय ईडितः॥ १३१॥

९८७. **चतुर्नवतिमन्त्रज्ञः**-चौरानबे मन्त्रोंके ज्ञाता, ९८८. **पौलस्त्यबलदर्पहा**-रावणके बलके घमंडको नष्ट करनेवाले, ९८९. **सर्वलक्ष्मीप्रदः**-सारे ऐश्वर्यको प्रदान करनेवाले, ९९०. **श्रीमान्**-सर्वैश्वर्यशाली, ९९१. **अङ्गदप्रियः**-अङ्गदके प्यारे, ९९२. **ईडितः**-स्तुत्य॥ १३१॥

स्मृतिबीजं सुरेशानः संसारभयनाशनः।
उत्तमः श्रीपरीवारः श्रितो रुद्रश्च कामधुक्॥ १३२॥

९९३. **स्मृतिबीजम्**-स्मृतियोंके बीज, ९९४. **सुरेशानः**-देवताओंके स्वामी, ९९५. **संसारभयनाशनः**-संसारके भयका नाश करनेवाले, ९९६. **उत्तमः**-श्रेष्ठ, ९९७. **श्रीपरीवारः**-श्री (माता जानकी)-के पुत्र, ९९८. **श्रितः**-आश्रयवान्, ९९९. **रुद्रः**-रुद्रस्वरूप, १०००. **कामधुक्**-सारी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले॥ १३२॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच

इति नाम्नां सहस्रेण स्तुतो रामेण वायुभूः।
उवाच तं प्रसन्नात्मा संधायात्मानमव्ययम्॥ १३३॥

वाल्मीकिमुनि बोले—इस प्रकार श्रीरामके द्वारा सहस्रनामसे स्तुति किये जानेपर प्रसन्नचित्त श्रीहनुमानजी अपने अविनाशी आत्मस्वरूपमें स्थित होकर उनसे बोले—॥ १३३॥

श्रीहनुमानुवाच

ध्यानास्पदमिदं ब्रह्म मत्पुरः समुपस्थितम्।
स्वामिन् कृपानिधे राम ज्ञातोऽसि कपिना मया॥ १३४॥

श्रीहनुमानजी बोले—स्वामिन्! कृपासिन्धु श्रीरामचन्द्रजी! मैं कपि होते हुए भी आपको जान गया कि मेरे सामने आप परम ध्येय, परात्पर परब्रह्म ही समुपस्थित हैं॥ १३४॥

त्वद्ध्यानिरता लोकाः किं न पश्यन्ति सादरम्।
तवागमनहेतुश्च ज्ञातो ह्यत्र मयानघ॥ १३५॥

निष्पाप श्रीरामजी! आदरपूर्वक आपके ध्यानमें लगे हुए भक्तलोग क्या नहीं देखते? अर्थात् सब कुछ देख लेते हैं। अतएव आपके यहाँ आनेका हेतु मैं जान गया॥ १३५॥

कर्तव्यं मम किं राम तथा त्वं ब्रूहि राघव।
इति प्रचोदितो रामः प्रहृष्टात्मा तमब्रवीत्॥ १३६॥

राघवेन्द्र श्रीराम! मेरे लिये क्या कर्तव्य है, उसे आप मुझसे कहिये। इस प्रकार श्रीहनुमानजीद्वारा प्रेरित किये जानेपर हर्षितचित्त श्रीरामजी उनसे बोले—॥ १३६॥

श्रीराम उवाच

दुर्जयः खलु वैदेहीं गृहीत्वा कोऽपि निर्गतः।
हत्वा तं निर्गुणं वीरमानय त्वं कपीश्वर॥ १३७॥

श्रीरामजी बोले—कपीश्वर! निश्चय ही कोई महान् दुरात्मा विदेहराजपुत्रीको लेकर निकल गया है। अतः तुम उस निर्दयी वीरको मारकर सीताको ले आओ॥ १३७॥

मम दास्यं कुरु सखे भव विश्वासकारकः।
तथा कृते त्वया वीर मम कार्यं भविष्यति॥ १३८॥

मित्र! तुम मेरी दासता स्वीकार करो और विश्वासपात्र बनो। ऐसा करनेपर वीर! तुम्हारेद्वारा मेरा कार्य हो जायगा॥ १३८॥

ओमित्याज्ञां तु शिरसा गृहीत्वा स कपीश्वरः।
विधेयं विधिवत्तच्च चकार शिरसा स्वयम्॥ १३९॥

कपीश्वर श्रीहनुमानजीने 'ओम्' (अच्छा) कहकर उस आज्ञाको नम्रतापूर्वक शिरसे धारण किया और फिर स्वयं उस कार्यको विधिवत् सम्पन्न किया॥ १३९॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच

इदं नाम्नां सहस्रं तु योऽधीते प्रत्यहं नरः।
दुःखौघो नश्यते तस्य सम्पत्तिर्वर्धते चिरम्॥ १४०॥

श्रीवाल्मीकिजी बोले—जो मनुष्य इस सहस्रनाम-स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करता है, उसके दुःखोंके समूह नष्ट हो जाते हैं और चिरकालतक धन-सम्पत्ति बढ़ती रहती है॥ १४०॥

वश्यं चतुर्विधं तस्य भवत्येव न संशयः।
राजानो राजपुत्राश्च राजकीयाश्च मन्त्रिणः॥ १४१॥

तथा राजा, राजपुत्र, मन्त्री और राजकीय नौकर-चाकर—ये चारों उसके वशमें हो जाते हैं। इसमें तनिक भी संशय नहीं है॥ १४१॥

अश्वत्थमूले जपतां नास्ति वैरिकृतं भयम्।
त्रिकालपठनात्तस्य सिद्धिः स्यात् करसंस्थिता॥ १४२॥

अश्वत्थ वृक्षके नीचे इस स्तोत्रका पाठ करनेवालोंको शत्रुसे भय नहीं होता। प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल

तीनों समय पाठ करनेसे सिद्धि उनके हाथोंमें स्थित हो जाती है॥ १४२॥

ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय प्रत्यहं यो पठेन्नरः।
ऐहिकामुष्मिकीं चैव लभते ऋद्धिमुत्तमाम्॥ १४३॥

जो मनुष्य प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर इसका पाठ करता है, वह इहलोक और परलोककी उत्तम ऋद्धि (सम्पन्नता)-को प्राप्त करता है॥ १४३॥

संग्रामे संनिविष्टानां वैरिविद्रावणं परम्।
ज्वरापस्मारशमनं गुल्मादीनां निवारणम्॥ १४४॥

यह स्तोत्र युद्धभूमिमें प्रविष्ट वीरोंके लिये विशेष रूपसे शत्रुहन्ता है तथा ज्वर, अपस्मार (मूर्च्छा)-का शमन करनेवाला और गुल्म आदि रोगोंका निवारक है॥ १४४॥

साम्राज्यसुखसम्पत्तिदायकं पठनान्नृणाम्।
स्वर्गं मोक्षं समाप्नोति रामचन्द्रप्रसादतः॥ १४५॥

यह स्तोत्र पाठ करनेसे साम्राज्यकी सुख-सम्पत्ति प्रदान करता है तथा इसका पाठ करनेवालोंको श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है॥ १४५॥

य इदं पठते नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः।
सर्वान् कामानवाप्नोति वायुपुत्रप्रसादतः॥ १४६॥

जो मनुष्य इन्द्रियोंका संयम करके इसे पढ़ता है अथवा किसीको सुनाता है, वह श्रीहनुमानजीकी कृपासे सारी अभिलषित वस्तुओंको प्राप्त करता है॥ १४६॥*

इति मन्त्रमहार्णवे पूर्वखण्डे नवमतरङ्गे श्रीरामकृतं हनुमत्सहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

इस प्रकार मन्त्रमहार्णव-ग्रंथके पूर्वखण्डके नवम तरङ्गमें श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा कथित 'हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र' समाप्त हुआ।

महायोगी श्रीहनुमान

(लेखक—पं० श्रीरेवाप्रसादजी द्विवेदी)

श्रीहनुमानजी महान् योगी हैं। उन्हें प्राणायामकी सिद्धि प्राप्त है। प्राण वायु है। इस प्रकार प्रत्येक योगी वायु-पुत्र होता है। केसरीकी पत्नी अञ्जनाके कोखमें जब हनुमानजी आये तभी उन्हें उसी प्रकार योगाभ्यास करा दिया गया, जिस प्रकार अभिमन्युको चक्रव्यूह-भेदनका परिज्ञान हो गया था। '**जातो वातेन**' का अर्थ है—वायुके उपायसे, अथवा उनकी साधनासे उत्पन्न।

निस्संदेह केसरीने हनुमानजीको प्राणायाम या प्राण-विद्याकी साधना गर्भमें ही करा दी थी। हनुमानजी शंकरजीके अवतार माने जाते हैं। वे शंकर-सुत भी हैं। शंकरजीसे बड़ा योगी कौन हो सकता है। अतः हनुमानजी जन्मतः योगी हैं ही।

हनुमानजी योगी हैं—इस तथ्यकी पुष्टि उनकी विशेषताओं और योगसूत्रके तुलनात्मक अध्ययनसे भी होती है। हनुमानजीके विषयमें वाल्मीकिरामायणमें कहा गया है कि पैदा होते ही उन्हें छोड़कर अञ्जना कहीं चली गयीं। तब भयंकर भूखसे पीड़ित होकर हनुमानजी उगते हुए सूर्यको फल समझकर उसे खानेके लिये आकाशमें उछले। उसी समय राहु भी सूर्यको ग्रसने आ रहा था। उसने हनुमानजीको भी राहु समझा और इन्द्रसे शिकायत की। इन्द्रने हनुमानजीपर वज्रसे प्रहार किया। वह हनुमानजीकी बायीं ठुड्डीमें लगा और वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े—

तदोद्यन्तं विवस्वन्तं जपापुष्पोत्करोपमम्।
ददर्श फललोभाच्च ह्युत्पपात रविं प्रति॥
* * *
पितुर्बलाच्च बाल्याच्च भास्कराभ्याशमागतः॥
(वा० रा० ७। ३५। २३,२९)

योगसूत्रमें भगवान् पतञ्जलिकी उक्ति है—

'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्।' (विभूति० २६)

सूर्यमें संयम अर्थात् धारणा, ध्यान तथा समाधि करनेसे भुवनज्ञान हो जाता है। सूर्यका अर्थ व्यासजीने

* श्रीविष्णुसहस्रनाम आदि अन्य सहस्रनामस्तोत्रोंकी तरह श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रमें भी कई नाम एकसे अधिक बार आये हैं। नाम-स्मरणमें एक ही नामका बार-बार आना पुनरुक्ति-दोष नहीं, अपितु गुण ही है। यह मन्त्रशक्तिकी महत्ताका परिचायक है।

अपने भाष्यमें सूर्यद्वार किया है और वाचस्पति मिश्रने सुषुम्णा नाड़ी। अर्थ स्पष्ट है। जो योगी सुषुम्णासे समाधि लगाता है, वह सर्वज्ञ बन जाता है। सुषुम्णासे ही कुण्डलिनी उठती है और सहस्रारचक्रतक पहुँचती है। सूर्यको सहस्रार्चि कहा जाता है और सहस्रार ही सहस्रार्चि सूर्य हैं। पैदा होते ही हनुमानजीको यह सिद्धि प्राप्त हो गयी थी। यह सिद्धि अविदेहलय नामक योगीके लिये बतलायी गयी है। विदेहलयका अर्थ है—असम्प्रज्ञात-समाधिका योगी अर्थात् वह योगी जिसे समाधिकी स्थितिमें द्वैतका भान सर्वथा नहीं होता। सम्प्रज्ञात-समाधिमें द्वैतका भान होता है, किंतु यह योगी भी प्राय: विदेह-जैसा ही होता है। हनुमानजीके चरित्रसे उनका विदेहत्व भी स्पष्ट है।

यह भी विदित है कि सीताजीकी खोजके लिये हनुमानजीको ही भेजा गया। जिसे भुवनज्ञान न हो, वह किस प्रकार खोज कर सकता है। दूसरे सीताजीको जो ले गया है, वह रावण भी स्वयं महान् योगी है। योगसाधनामें यम और नियमकी अपेक्षा होती है! रावणने नियमके प्रथम अङ्ग तपका घोर अनुष्ठान किया था, किंतु वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डके अनुसार उसकी उत्पत्तिकी जड़में वंश-परंपरासे तमोवृत्ति चली आ रही थी, अत: वह योगसिद्धि पाकर तमोमार्गकी ओर बढ़ा। रावणको अमृतत्व भी प्राप्त था ही। मेघनाद आदि राक्षसगण भी आकाशमें उड़ जाते थे तथा उन्हें छाया पकड़ लेनेतककी सिद्धि प्राप्त थी। इस प्रकार वे भी योगसिद्धिसे विभूषित थे।

योगशास्त्रमें संयम (धारणा, ध्यान, समाधि)-के और भी अनेक फल निरूपित हैं। उनमें अणिमादि सिद्धियाँ भी हैं। हनुमानजीमें भी ये सिद्धियाँ विद्यमान हैं। वे जब चाहते तब छोटा या बड़ा रूप धारण कर लेते थे। सुरसाके मुखमें प्रवेशके पूर्व वे अपना आकार बढ़ाते गये और जब उसका मुख उत्तरोत्तर विस्तीर्ण होता गया तो अँगूठेके बराबर छोटे हो गये तथा उसमें प्रवेश करके बाहर निकल आये। (वा० रा० ५।१५०—१६१) सिंहिकाके साथ भी उन्होंने ऐसा ही व्यवहार किया (वा० रा० ५।१।१९१)।

किष्किन्धाकाण्डमें हनुमानजीने भगवान् श्रीरामके समक्ष सुन्दर रूप धारण किया था, जब वे सुग्रीवके द्वारा भेद लेनेके लिये भेजे गये थे। उन्हें वाल्मीकिजीने सुन्दर ही नहीं, '**वज्रसंहननः**' भी कहा है। सिंहिकाने जब हनुमानजीकी छाया पकड़ ली और मुँह फैलाया तो हनुमानजी, जिनका शरीर पर्वतके समान विशाल था, लघुकाय हो गये और उसमें प्रवेश कर बाहर निकल आये। तत्पश्चात् उसे मार भी डाला। वाल्मीकिजीका कथन है—

स तस्या विकृते वक्त्रे वज्रसंहननः कपिः॥
संक्षिप्य मुहुरात्मानं निपपात महाकपिः।

(वा० रा० ५।१।१९४-१९५)

योगशास्त्रमें वर्णन है—'सिद्ध योगीके शरीरमें रूप, लावण्य, बल और वज्र-सी दृढ़ता आ जाती है'—

रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसंपत्।

(विभूति० ४६)

वज्रसंहननत्वका अर्थ करते हुए वाचस्पति मिश्रने लिखा है—'**वज्रस्येव संहननम् अवयवव्यूहो दृढो (ढं) यस्य स तथोक्तः॥**' अर्थात् जिसका संहनन—अङ्गोंका समुदाय अर्थात् शरीर वज्रके समान दृढ़—कठोर या घना हो। संस्कृतमें संहननका अर्थ शरीर है। अमरकोषके इस वचनसे यह तथ्य स्पष्ट है—

'गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः।'

(२।६।७०)

'बजरंगबली' या 'वज्राङ्गवीर' शब्द हनुमानजीके अतिरिक्त अन्य किसी देवताके लिये नहीं प्रयुक्त हुआ है। ये शब्द संस्कृतके 'वज्रसंहनन शब्दके ही रूपान्तर हैं।'

योगसिद्धिमें 'मनोजवित्व' की भी गणना की जाती है। कहा जाता है—विशिष्ट संयमद्वारा इन्द्रियजयकी सिद्धिपर पहुँचते ही 'मनोजवित्व' चला आता है अर्थात् योगी वेगमें मनके समान तीव्रता प्राप्त कर लेता है—

ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः॥
ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च॥

(यो० सू० वि० पा० ४७-४८)

हनुमानजीके लिये मनोजवित्व प्रसिद्ध ही है। यथा—**मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।**

इन्द्रियजयके लिये रावणके अन्त:पुरमें अस्त-व्यस्त अवस्थामें सोयी हुई स्त्रियोंके दर्शनके बाद हनुमानजीके निम्नलिखित वाक्य भारतीय साहित्यके

अमूल्य रत्न हैं—

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते॥
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम्॥
* * *
तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया॥

(वा० रा० ५।११।४१-४२, ४५)

'मैंने स्त्रियोंको देखा तो अवश्य, किंतु इन्हें देखकर मेरे मनमें कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ।' बहुत बड़ी कसौटी है यह जितेन्द्रियत्वकी।

हनुमानजी किष्किन्धाकाण्डमें ऋक्षबिलमें प्रवेश करके स्वयंप्रभा नामक कृष्णाजिनधारिणी दिव्य तापसीके दर्शन करते हैं। वही तापसी उन्हें उस बिलसे बाहर निकालती है और निकालनेके पहले कहती है कि सभी वानर अपनी-अपनी आँखें बंद कर लें। यह तापसी हेमानामक देवीके उत्तम उपवनकी रक्षामें उद्यत है। क्या है वह स्वयंप्रभा? स्पष्ट ही **'हिरण्मयेन पात्रेण'** जिस सत्यका मुख ढका है, उसे अनावृत करनेवाली प्रतिभा ही तो है। योगशास्त्र प्रतिभाको 'उदयके पूर्वकी सूर्य-प्रभा' की उपमा देता है। **'प्रातिभाद्वा सर्वम्'**—सूत्रके भाष्यमें व्यासजीका कथन है—

'प्रतिभं नाम तारकम्, तद् विवेकजस्य ज्ञानस्य पूर्वरूपम्। यथा उदये प्रभा भास्करस्य। तेन वा सर्वं जानाति योगी प्रातिभस्य ज्ञानस्योत्पत्तौ।' (विभूति० ३३ व्यासभाष्य)

यह प्रभा अहैतुकी है, अतः स्वयम्भू अर्थात् स्वयं-प्रभा है। यह हनुमानजीको प्राप्त हुई, तभी वे दक्षिण दिशाकी यात्रा कर जगदम्बा सीताजीके दर्शन कर सके।

इस स्थूल विवेचनसे भी यह स्पष्ट है कि हनुमानजीका चरित्र योगीका चरित्र है—उस योगीका जो प्राणायाम अथवा प्राणनिरोधके द्वारा प्राणशक्तिको वशीभूत करके मृत्युपर विजय प्राप्त कर चुका हो। यह तो सर्वविदित ही है कि हनुमानजी चिरंजीवी हैं और भगवान्‌का जहाँ कथा-कीर्तन होता है वहाँ वे विद्यमान रहते हैं।

महाकवि कालिदासने समुद्रसंतरणके समय हनुमानजीको ममत्वसे रहित योगीकी उपमा दी है और कहा है—'जिस प्रकार निर्मम योगी संसार-सागरको पार कर जाता है, उसी प्रकार मारुति समुद्र-पार हो गये'—

'मारुतिः सागरं तीर्णः संसारमिव निर्ममः'

(रघुवंश १२।६०)

सत्य यह है कि जो योगी होता है, वह ममतारहित होता है, अतः संसारको भी पार कर लेता है। यहाँ हनुमानजीके विषयमें महाकवि कालिदास दोनों बातें कह रहे हैं—मारुति योगी हैं, अतः वे ममता-मोहके बन्धनसे परे हैं। उन्होंने समुद्रको ही नहीं, संसारको भी पार कर लिया।

श्रीभरत और हनुमानजी

(लेखक—श्रीरामाश्रयप्रसादसिंहजी)

पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने इष्टदेव मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके अतिरिक्त अपने ग्रन्थोंमें जिन पात्रोंको अपना आदर्श बनाया है, उनमें प्रेममूर्ति श्रीभरत एवं सेवामूर्ति हनुमानजी सर्वाधिक प्रशस्त हैं। गोस्वामीजीकी रचनाओंमें प्रेम-भक्ति और सेवाका जो सात्त्विक रूप मिलता है वह अधिकांश इन्हीं दोनों पात्रोंके माध्यमसे स्पष्ट हो सका है। वास्तवमें भक्तिके जिन विविध रूपोंका वर्णन मानस तथा अन्य ग्रन्थोंमें किया गया है, उनकी समग्रता श्रीभरत एवं हनुमानजीके चरित्रमें ही मिलती है। श्रीभरतके माध्यमसे प्रेम, दैन्य, तप एवं त्यागका तथा हनुमानजीके माध्यमसे सेवा, कर्म, शक्ति एवं शौर्यका प्रतिपादन हुआ है।

श्रीरामचरितमानसमें जब हम श्रीभरत और हनुमानजीके चरित्रका अवलोकन करते हैं तो बाहरसे भिन्नता प्रतीत होनेपर भी दोनोंके पावन चरित्रमें अद्भुत साम्य है। दोनोंने स्वेच्छासे अपने-आपको प्रभु श्रीरामके चरणोंमें

अर्पित कर दिया है। दोनोंका जीवन अपने लिये न होकर प्रभु श्रीरामके लिये है। भगवान् श्रीरामकी इच्छा ही इन दोनोंके लिये एकमात्र करणीय कर्म है। दोनोंका मार्ग भिन्न है, पर लक्ष्य एक। दोनों एक ही जगह पहुँचना चाहते हैं—पतितपावन भगवान् श्रीरामके दिव्य चरणोंतक। श्रीभरतकी मान्यता है—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदान न आन॥

और हनुमानजी तो भगवान् श्रीरामके चरणोंको छोड़ अन्यत्र रहते ही नहीं। गोस्वामीजीने बार-बार हनुमानजीको भगवान् श्रीरामके चरणोंपर प्रणिपात करते हुए दिखलाया है—

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥

(मानस ४।१।३, ४।२।३)

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥

(मा० सुन्दरकाण्ड ३२)

श्रीभरत और हनुमानजी—दोनों सीताजीको माँ मानते हैं और सीताजीने दोनोंको आशीर्वाद भी दिया है; किंतु अन्तर इतना ही है कि हनुमानजीको प्रकट रूपमें और श्रीभरतको अप्रकट रूपमें।

हनुमानजीको—

आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥

(मानस ५।१६।१-२)

श्रीभरतको—

सीयँ असीस दीन्हि मन माहीं। मगन सनेह देह सुधि नाहीं॥

श्रीभरत और हनुमानजी दोनों भक्तिके आचार्य हैं। दोनों जीवको भगवान् श्रीरामतक पहुँचाते हैं। दोनोंका जीवन परोपकारके लिये है। दोनोंकी यात्रा श्रीरामकार्यके लिये होती है। श्रीभरतकी यात्रा भूमिपर होती है और हनुमानजीकी यात्रा आकाशमार्गसे। श्रीभरतलालकी यात्रा भावकी भूमिपर हुई और हनुमानजीकी यात्रा चिदाकाशमें। श्रीभरतके साथ समाज है, हनुमानजी अकेले हैं। श्रीभरतके समाजके साथ सबके अपने-अपने वाहन हैं। हनुमानजीके साथ कुछ नहीं। चिदाकाशकी यात्रामें ज्ञान और वैराग्यके पंख एवं देहाभिमानसे ऊपर उठना अनिवार्य है। इसीलिये हनुमानजी समुद्रके ऊपर आकाशमार्गसे जा रहे हैं। सागर देहाभिमानका प्रतीक है। 'विनयपत्रिका' में गोस्वामीजीने लिखा है—

'कुणप-अभिमान सागर भयंकर घोर,
बिपुल अवगाह, दुस्तर अपारं।'

अर्थात् देहाभिमान अत्यन्त भयंकर, अथाह, अपार एवं दुस्तर समुद्र है। अतः हनुमानजी देहाभिमानसे ऊपर उठकर ज्ञान-वैराग्यके पंखसे चिदाकाशमें यात्रा कर रहे हैं।

चित्रकूटके श्रीराम-भरत-मिलन और ऋष्यमूक पर्वतके निकट श्रीराम-हनुमान-मिलनमें एक और अन्तर द्रष्टव्य है। श्रीभरत मिलते समय बिलकुल चुप थे, श्रीराम भी चुप थे और सारा समाज चुप था। किंतु हनुमानजी मिलते समय बोलते गये और प्रश्न पूछते गये। पर अन्तमें जब अपनी अज्ञताका बोध हुआ, तब दीन भावसे प्रार्थना करने लगे—

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥

(मानस ४।२)

तब भगवान् श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगा लिया।

श्रीभरत और हनुमानजी ऐसे उच्चकोटिके संत हैं जो अपने पावन साहचर्य और दर्शन-लाभसे सबको पवित्र करते हैं। हनुमानजी-जैसे संतके दर्शनसे लंकिनी-जैसी निशाचरी (या निशिचरी)-का कल्याण हो जाता है और उसे स्वर्ग तथा अपवर्गके अलभ्य सुखसे भी अत्यधिक सुखकी प्राप्ति हो जाती है—

तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥

(मानस ५।३।४)

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(मानस ५।४)

विभीषण भी हनुमानजीको संत कहकर सम्बोधित करते हैं—

अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता॥

भरद्वाज मुनि तो श्रीभरतके दर्शनको श्रीसीतारामके

दर्शनका ही फल मानते हैं। वे भरतलालजीसे कहते हैं—

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा॥

(मानस २।२०९।२-३)

हनुमानजी श्रीभरतकी सराहना करते हैं और श्रीभरत हनुमानजीकी। हनुमानजीकी धारणा है कि श्रीभरतका चरित अद्वितीय महासागर है। धरतीका सागर तो श्रीभरतचरित-सागरके समक्ष अत्यन्त छोटा और न्यून है। धरतीके सागरको सगर-पुत्रोंने खोदा है, देवता और दैत्योंने मथा है, स्वयं हनुमानजीने लाँघा है, नल-नीलने बाँधा है और अगस्त्यजीने पी लिया है, किंतु श्रीरघुनाथजीके भाई श्रीभरतकी महिमाको कौन तर सकता है—

धनि भरत! धनि भरत! करत भयो,
मगन मौन रह्यो मन अनुराग रयो है॥
यह जलनिधि खन्यो, मथ्यो,
लँघ्यो, बाँध्यो, अँचयो है।
तुलसिदास रघुबीरबंधु महिमाको सिंधु
तरि को कवि पार गयो है?

(गीतावली, लंकाकाण्ड ११)

हनुमानजी अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें कहते हैं कि यदि धरतीपर भरतजीका जन्म नहीं हुआ होता तो खाँड़ेकी धाररूप इस दुर्गम मार्गपर चलकर प्रेमव्रतका आचरण कौन करता—

होतो नहि जौ जग जनम भरतको।
तौ कपि कहत, कृपान-धार मग चलि आचरत बरत को?

(गीतावली, लंकाकाण्ड १२)

दूसरी ओर श्रीभरत पवनतनय हनुमानजीकी प्रशस्ति गाते नहीं थकते। अपनेको मूढ कहते हुए श्रीभरत हनुमानजीको शुद्धचित्त, सुमतिवाला और सुहृद् कहते हैं। उनकी उक्ति है कि 'हे हनुमान! तुम भगवान् श्रीरामके पैरोंको पकड़कर मेरी एक विनय सुनाना। मुझ मूढ़को मेरी माताने प्रभुको कष्ट पहुँचानेके लिये व्यर्थ ही जन्म दिया है; क्योंकि मैं उनका सेवक कहलाकर भी समय उपस्थित होनेपर उनकी सहायता न कर सका'—

बिनय सुनायबी परि पाय।
कहौं कहा, कपीस! तुम्ह सुचि, सुमति, सुहृद सुभाय॥
स्वामि-संकट-हेतु हौं जड़ जननि जनम्यो जाय।
समौ पाइ, कहाइ सेवक घट्यो तौ न सहाय॥

(गीतावली, लंकाकाण्ड १४)

इतना ही नहीं, श्रीराम-विरह-सागरमें डूबते हुए श्रीभरतको जब हनुमानजीने यह समाचार दिया कि रघुकुलतिलक भगवान् श्रीराम अपने अनुज और धर्मपत्नी सीताके साथ सकुशल वापस आ रहे हैं, तब श्रीभरतने दौड़कर हनुमानजीको गले लगाते हुए कहा—तुम्हारे दर्शनमात्रसे ही मेरे सारे कष्ट मिट गये, जो आज तुम-जैसे *'रामपिरीते'* से भेंट हुई।

श्रीभरत एवं हनुमानजी—दोनों भक्तवत्सल, दीनबन्धु भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त एवं सेवक हैं। भगवान् श्रीरामकी लीलामें श्रीभरत और हनुमानजी—दोनोंको जो भाग दिया गया था, उसका वे पूर्णरूपसे निर्वाह करते हैं। दोनों ही साधकोंकी सहायता करते हैं। संतोंकी मान्यता है कि प्रभु श्रीराम-भक्तिकी प्राप्तिके लिये भरत-चरितका पाठ नियमपूर्वक करना चाहिये। अयोध्याकाण्डके अन्तमें गोस्वामीजी कहते हैं—

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीयराम पद प्रेमु अवसि होइ भवरस बिरति॥

(मानस २।३२६)

हनुमानजीका चरित्र भी ऐसा ही पावन है। ये वैराग्यके प्रतीक तो हैं ही, कर्म, सेवा और भक्तिके मानदण्ड भी हैं। हनुमानजी भक्तोंकी कामनाओंकी भी पूर्ति करते हैं और प्रभु-भक्ति तथा श्रीराम-प्रेम भी प्रदान करते हैं। श्रीभरत भगवत्सेवामय प्रेम-विग्रह हैं तो हनुमानजी भगवत्प्रेममय सेवा-विग्रह।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

जीवनदाता श्रीहनुमानजी

सन् १९५९ ई० में मेरी सिकमी जमीनकी मकई कुछ विरोधी भाइयोंने जबरदस्ती काट ली। जब मैं स्कूलसे गाँव पहुँचा तो लोग मुझे धिक्कारने लगे। मेरी पत्नीने भी पूजा-पाठके समय ताना मारा। मैं रो पड़ा। इसी समय मनमें आया कि 'आजीवन जिस पथसे चला हूँ, उसी पथसे मैं विरोधी भाइयोंका भी प्रतिकार करूँगा तथा शेष खेतको स्वयं काटूँगा।' इसके लिये मैंने हनुमानचालीसाका सौ बार पाठ किया और जलपान करके खेतकी ओर चल पड़ा। पत्नी घबरायी। उसने मेरे भाई तथा एक मजदूरको साथ कर दिया। मैं लगातार हनुमानचालीसाका पाठ करता हुआ ग्यारह बजे खेतपर पहुँचा। वहाँ कोई न था। आँखें उठायीं तो सामने हनुमानजीकी एक विशाल मूर्ति दिखायी दी जो एक पैर दूसरी जाँघपर टेके सुरसाके सामनेवाले विशाल रूपमें थी। मैंने एक विचित्र स्फूर्तिका अनुभव किया और खचाखच मकई काटने लगा। पर मेरा भाई और मजदूर भयभीत होकर चारों ओर घूम-घूमकर देखने लगे। वे बीच-बीचमें मकई भी काटते जाते थे। लगभग तीन घंटेतक हमलोग मकई काटते रहे। मुझे बड़ा उत्साह था और बार-बार मैं उनसे कह रहा था कि देखो सामने हनुमानजी स्वयं हमारी रक्षामें आ गये हैं। पर वे उन्हें नहीं देख पा रहे थे और 'बोझ ढो लेंगे'—कहकर वे मुझे खेतपरसे हट जानेके लिये विनय करने लगे; क्योंकि बगलके मकई-खेतमें कुछ शोरगुल होने लगा था। मैंने उनसे कहा कि 'जबतक मैं हूँ, बोझ ढोकर ले जाओ, नहीं तो आपत्तिकी आशङ्का है।'

विरोधियोंकी ओरसे एकाध आदमी झाँकी देकर चले गये। बोझ ढोनेमें काफी समय लग गया। जब थोड़े-से बोझ रह गये, तब मेरा एक धोबी मित्र आया और वह मुझे वहाँसे खींच ले चला। मैं उसके साथ चला कि वह विशाल मूर्ति ओझल हो गयी और हो-हल्ला करते बाईस विरोधी नौजवान बर्छे-भालोंके साथ हमारे चारों ओर आ खड़े हुए। हम कुछ सँभलें, इससे पहले ही वे धड़ाधड़ मेरे धोबी मित्रको मारने लगे और मुझे उठाकर सघन मकईमें ले गये। मेरे भाईको एक ओर पकड़ रखा। मैं आँखें बंदकर अब भी ***'जै हनुमंत संत हितकारी'*** गुनगुना रहा था। इतनेमें ही बाहरसे आवाज आयी—*'महावीर बजरंगबलीकी जय!'* और विरोधी कुछ घबराये हुए-से बोले—'क्या आप आपसमें ही दंगा कराना चाहते हैं?' मैंने कहा कि 'जल्दी मुझे जहाँसे उठाकर लाये हो, वहीं रख दो। नहीं तो अनर्थ हो जायगा।' उन्होंने वैसा ही किया और साठ-सत्तर जवान जो पड़ोसके गाँवसे मेरे वधका समाचार सुनकर आ गये थे, मेरे इशारेपर वापस लौट गये। बात यह हुई कि पड़ोसके भाइयोंने मेरे मजदूरसे जब यह हाल सुना, तब वे एकाएक जोशमें आ गये थे। पर मेरी तथा विरोधी भाइयोंकी आँखोंके सामने एक दूसरी ही झाँकी थी, जिसके बलपर आज भी ये विरोधी भाई मेरे सहयोगी बने हुए हैं। अस्तु, ***'एक भरोसो एक बल'*** हो जानेपर श्रीहनुमानजी महाराज रक्षा करते ही हैं। आवश्यकता है सच्चे विश्वासकी।

—हनुमानजीका भक्त एक भाई

(२)

निस्संदेह श्रीहनुमानजी ही प्रकट हो गये

राजस्थानके अन्तर्गत मेवाड़राज्यमें स्थित सियारवाँ ग्राम उदयपुरके महाराणा सज्जनसिंहने ब्राह्मणोंको प्रदान कर दिया था तथा इस ग्राम-दानके अतिरिक्त उन्हें राज्यकी ओरसे बारह सौ रुपयेकी भेंट भी मिलती थी। इतना ही नहीं, ग्रामके लिये उन्हें कर भी नहीं देना पड़ता था। महाराणा सज्जनसिंहके उत्तराधिकारी महाराणा फतहसिंहने निश्चित प्रमाण अथवा किसी दानपत्र या ताम्रलेखके अभावमें ब्राह्मणोंको उपर्युक्त रकम देना बंद कर देनेके साथ-ही-साथ पूरे सियारवाँ ग्रामसे कर लेनेका भी निश्चय कर लिया। महाराणाके इस निर्णयसे ब्राह्मणोंके मनमें अत्यन्त क्षोभ हुआ। बात सन् १९२२ ई० की है। उन दिनों भारतके शासक अंग्रेज थे। उदयपुरके रेजिडेंट श्रीविलकिंसन साहब थे तथा आबूमें ए० जी० जी० श्रीकालोन इलियट रहते थे। यद्यपि भारत-सरकारका राजनीतिक विभाग (पोलिटिकल डिपार्टमेंट) देशी राज्योंके भीतरी मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं

करता था तथापि सियारवाँ ग्रामके ब्राह्मणोंके विशेष आवेदनपर इलियट महोदयने मामलेको स्वयं समझना चाहा। एक सुनिश्चित तिथिको वे सियारवाँमें रेजिडेंटके साथ वस्तुस्थितिका पता लगानेके लिये आ पहुँचे, उनके साथ महाराणा फतहसिंह भी विराजमान थे।

सियारवाँ ग्राम उदयपुरके संनिकट ही है। एक रमणीय स्थानमें महाराणाने श्रीइलियट महोदयके पड़ावका प्रबन्ध किया था। पड़ावके निकट ही एक मनोरम बावली थी, जिसके किनारोंपर संगमरमरका फर्श बड़ा सुहावना लगता था। बावलीके किनारे एक विशाल वृक्ष भी था। वह नीरव स्थान पहाड़ तथा सघन वृक्षोंसे आच्छन्न था। महाराणा आदि अपने स्थानपर बैठे थे, ठीक सामने सियारवाँके ब्राह्मण बैठकर अपने आवेदनका निर्णय सुननेके लिये समुत्सुक थे।

'यदि ग्राम-दान तथा बारह सौ रुपयोंकी भेंटके सम्बन्धमें आपलोगोंके पास कोई दानपत्र या ताम्रलेख हो तो उसे इस न्यायालयमें उपस्थित कर सकते हैं।' इलियट महोदयने नीरवता भङ्ग की।

ब्राह्मण एक-दूसरेका मुख देखने लगे। उनके प्रस्विन्न भालसे यह स्पष्ट हो गया था कि उनके पास कोई प्रमाणपत्र नहीं है। ग्रामके मुखियाके मुखसे एक शब्द भी नहीं निकला। तब एक अधेड़ व्यक्तिने साहसपूर्वक निवेदन किया कि महाराणा सज्जनसिंहने ताम्रपत्रपर हस्ताक्षर तो किया था, पर हमें उस सम्बन्धमें अब कोई जानकारी नहीं है। यह बात प्राय: निश्चित-सी हो चली थी कि निर्णय सियारवाँके ब्राह्मणोंके विरुद्ध होगा।

अचानक लोगोंका ध्यान एक वृद्ध ब्राह्मणकी ओर खिंच गया। वह लाठीके सहारे खड़ा था और आँखें बंदकर मन-ही-मन कुछ गुनगुना रहा था। वह मेवाड़ी बोलीमें अपने इष्ट देवताकी स्तुति कर रहा था और कह रहा था कि 'हे देव! हमारे ग्रामके लोगोंने यदि जीवनमें सदा सत्यका आश्रय लिया हो तो आप कृपापूर्वक इस आकस्मिक संकटसे हमें मुक्त करें, हमारी रक्षा करें, हमें विजय प्रदान करें।' लोग ब्राह्मणको विस्मयभरी दृष्टिसे देख ही रहे थे कि सहसा मनुष्यके आकार-प्रकारका एक बंदर घने वृक्षपरसे बावलीमें कूद पड़ा। पलभरमें ही बाहर आकर उसने एक ताम्रपत्र बावलीमेंसे निकालकर इलियट महोदयके सामने रख दिया और तत्काल वृक्षपर चढ़ गया। ताम्रपत्र पढ़ा गया। इलियट महोदयको बतलाया गया कि महाराणा सज्जनसिंहने ब्राह्मणोंकी सदाचार-निष्ठा और कर्तव्यपरायणतासे प्रसन्न होकर उन्हें सियारवाँ ग्राम प्रदान कर दिया था तथा साथ-ही-साथ उसे करमुक्त भी कर दिया था। इस (ताम्रपत्र) पर महाराणाकी मुद्रा अङ्कित है। लोग ताम्रलेखसे आश्चर्यचकित हो गये। वह बंदर यथासमय वृक्षसे उतर पड़ा और लोगोंके देखते-ही-देखते उसने ताम्रपत्र पुन: बावलीमें फेंक दिया।

'मैं ताम्रपत्रका सम्मान करता हूँ। अपने पूर्वजोंकी उदारताकी हृदयसे सराहना करता हूँ। ब्राह्मणोंके प्रति पूज्यभाव तथा श्रद्धा-निष्ठा मेरी वंशपरम्पराकी अक्षय निधि है, सियारवाँ ग्राम सदा ब्राह्मणोंके अधिकारमें रहेगा, यह करमुक्त होगा, मेरे उत्तराधिकारी मेवाड़के सभी भावी शासक मेरे इस वचनका आदर करेंगे'—मेवाड़-कुलसूर्यकी इस घोषणासे उपस्थित लोग रोमाञ्चित हो उठे।

निस्संदेह श्रीहनुमानजीने ही साक्षात् प्रकट होकर अपने भक्त वृद्ध ब्राह्मणकी मन:कामना पूर्ण की। हैं भी तो वे ***'अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता।'***

—श्रीअमरनाथजी सत्सङ्गी

(प्रे०—स्वामी श्रीपारसनाथजी सरस्वती)

(३)

लोभीको शिक्षा और भूखेको भिक्षा

जयपुरसे कुछ ही दूर हनुमानजीके एक मन्दिरमें प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ला पूर्णिमाको हनुमान-जयन्तीका मेला लगता है। आसपासके हजारों लोग मेलेमें आते हैं। आठ-दस दिन पूर्व ही दूकानदार अपनी दूकानें लगा देते हैं। पिछले तीन दिनोंमें यह मेला विशेष आकर्षक बन जाता है।

एक धनाढ्य कंजूस हलवाई प्रतिवर्ष अपनी दूकान लगाकर बैठता है। इस वर्ष बरसात अच्छी होनेके कारण लोगोंकी भीड़ भी अच्छी हो गयी थी। उस हलवाईका नियम था—मेलेमें मिठाइयोंको तिगुने भावसे बेचना। भला, ऐसा मौका बार-बार कहाँ मिलता? आज मेलेका अन्तिम दिन था, इसलिये वह जितना बन सके, अधिक कमा लेनेमें लगा हुआ था।

संध्याका समय था। मेला धीरे-धीरे शान्त होता जा रहा था। उसी समय एक मस्त साधुने आकर हलवाईके हाथमें चार आने पैसे (चवन्नी) रखकर कहा—'इस चार आनेके पावभर पेड़े दे दो।' हलवाईने चवन्नी देखी और पावभर पेड़ेकी माँग सुनी तो उसका मिजाज ठिकानेपर न रहा। वह ऊँचे स्वरसे बोला—

'बाबाजी! पेड़ेका भाव तीन रुपये सेरका है। एक पाव पेड़ेके लिये बारह आने दीजिये।'

'सेठजी!' साधुने शान्त स्वरमें कहा—कलसे तो मैंने श्रीहनुमान-जयन्तीका उपवास कर रखा है, आज भी कुछ खाया नहीं और मेरे पास चार ही आने हैं। अत: आप कृपया चार आनेके एक पाव पेड़े दे दीजिये। मुझे बहुत भूख लगी है।'

'भूख लगी है तो इस गड्ढेमें गिर पड़ो।' चवन्नीको सामनेके एक गड्ढेमें फेंककर हलवाई बोल उठा—'तुम्हारे बापका माल है, जो मुफ्तमें लेना चाहते हो?'

'सेठजी!' साधुने कहा—'सामनेवाले ध्वजाधारी महाबली हनुमान मेरे बाप होते हैं और आपके भी बाप हैं। उनके निमित्तसे ही आप बहुत रुपये कमा लेते हैं, अत: मेरे बापका ही माल है। आप पावभर पेड़े न दे सकें तो मेरी चवन्नी वापस दीजिये। मैं दूसरी दूकानसे कुछ ले लूँगा। संध्या होने आयी है, दूकानें उठ जायँगी तो मुझे आज भी भूखा रहना पड़ेगा।'

'चवन्नी चाहिये' हलवाई बोला—'तो सामनेके गड्ढेमेंसे ले ले। मुझे फुरसत नहीं है, बड़ा आया है पेड़े खाने।'—और वह दूसरे ग्राहकोंको माल देनेमें व्यस्त हो गया। श्रीहनुमानजीकी ओर देखता हुआ वह निराश साधु एक पत्थरके ऊपर बैठ गया। सायंकाल होनेके कारण धीरे-धीरे ग्राहक भी कम होते जा रहे थे। इधर हलवाई दिनभरकी कमायी हुई धनराशि गिननेमें संलग्न हो गया। चार सौ नब्बे रुपये गिनकर उसने एक थैलीमें बाँध दिये; किंतु लोभका मारा वह अब भी बैठा रहा कि दस रुपयेकी बिक्री और हो जाय तो पाँच सौ रुपये पूरे हो जायँगे।

थोड़े ही समयमें न मालूम कहाँसे चार बंदर उस दूकानमें घुस गये। एक बड़े बंदरने चार सौ नब्बे रुपयेवाली थैली हड़प ली। दूसरा टोकरीमेंसे मिठाई ले-लेकर उछालने लगा और तीसरेने सेर-डेढ़-सेर पेड़े लेकर उस साधुकी गोदमें रख दिये और चौथा दूकानके द्वारपर प्रहरी बनकर चौकी करने लगा।

यह सब देखते-ही-देखते हो गया। बहुत-से लोग एकत्र हो गये। रुपये और माल-सामान लूटे जानेके कारण लोभी हलवाई सिर पीटकर रोने लगा। रुपयेकी थैली लेकर बंदर सामनेके पेड़पर जा बैठा।

अन्य वानर दूकानके माल-सामानको नष्ट करके चले गये। केवल रुपयोंकी थैली लेकर एक वानर सामनेवाले वृक्षकी डालीपर बैठा हुआ दिखायी पड़ता था। उसको प्रलोभन देकर थैली छुड़ानेके सभी प्रयत्न व्यर्थ हो चुके थे। आखिर हलवाईकी आँखें खुल गयीं। सामने पत्थरपर बैठे हुए उस भूखे साधुके चरणोंमें नमस्कार कर वह कहने लगा—

'महाराजजी! मैं लुट गया। मैं आपके पैरों पड़ता हूँ। मेरे रुपये उस वानरसे दिलवा दीजिये। नहीं तो मैं कहींका न रहूँगा।'

'मैं क्या कर सकता हूँ भाई! जिसके बापके थे, वही तो ले गया है रुपये? मेरी भी चवन्नी गयी। अब मेरी चवन्नीको गड्ढेमेंसे खोजकर ला दे। दूसरेके बापके रुपये अपने बनानेमें तो उन्हींके चरणोंमें गिरना पड़ता है, इसलिये मेरे पाँव छूनेसे कुछ न मिलेगा; भगवान् महावीरके चरणोंमें जाकर प्रार्थना करनेसे तुम्हें सब कुछ मिल सकता है। अन्य कोई उपाय नहीं।'—साधुने कहा।

पेड़के टोकरेमें बस, दो-ढाई सेर ही पेड़े बच रहे थे। उन्हें लेकर हलवाई मन्दिरमें आया और श्रीहनुमानजीको भोग लगाकर सभीको प्रसाद बाँट दिया। गड्ढेमें फेंकी हुई चवन्नी और पावभर पेड़ेका प्रसाद उस साधुके हाथमें देकर उसने नम्र भावसे क्षमा माँगी।

इस ओर पेड़के ऊपर बैठे हुए वानरने जोरसे उस थैलीको नीचे फेंक दिया। लोगोंने रुपये बटोरकर हलवाईको दे दिये। वे वानर देवता अदृश्य हो गये थे।

—श्रीविनोदकुमारजी एम्० पुरोहित, एम्० ए०, बी० एड्०

पंजीकृत-संख्या-जी० आर—१३

पो० गीताप्रेस—२७३००५
गोरखपुर, फोन (०५५१) २३३४७२१

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित 'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण
1135 भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क
572 परलोक और पुनर्जन्माङ्क
517 गर्ग-संहिता
1113 नरसिंहपुराणम् (हिन्दी-अनुवादसहित)
1362 अग्निपुराण
(मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)
1432 वामनपुराण (हिन्दी-अनुवादसहित)
557 मत्स्यमहापुराण (हिन्दी-अनुवादसहित)
657 श्रीगणेश-अङ्क (परिशिष्टसहित)
42 हनुमान-अङ्क (,,)
1361 सं० श्रीवराहपुराण
791 सूर्याङ्क
584 सं० भविष्यपुराण
586 शिवोपासनाङ्क
653 गोसेवा-अङ्क
1131 कूर्मपुराण (हिन्दी-अनुवादसहित)
1044 वेद-कथाङ्क
1189 सं० गरुडपुराण
1592 आरोग्य-अङ्क (संवर्धित संस्करण)
1467 भगवत्प्रेम-अङ्क
1610 देवीपुराण (महाभागवत)